॥ श्रीः ॥

चरकसंहिता ।

श्रीमन्महर्षिप्रवरचरकप्रणीता ।

पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिपण्डितठाकुरदासात्मजाऽऽयुर्वेदोद्धारकर्णधारप्रधाननराजवैद्य-
पण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचित-

प्रसादनी-

भाषाटीकासहिता ।

तत्र

प्रथमो भागः १

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

(खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन)

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशित ।

संवत् १९६८, शके १८३३

पं० रामप्रसाद वैद्योपाध्याय

अर्धांगी शिवकी मूर्ति

धन्वतरी वैद्यराजेकी मूर्ति

आयुर्वेदस्वरूपम्
आयुर्वेदाभिमानी
धन्वतरिस्वरूपम्
प्रजापतिश्श्राता
ब्रह्मा वक्ता

चरकसंहिता।

ज्वर १ ला

बीभत्सज्वर

त्रिशिराज्वर

कापिल ज्वर

भस्मविक्षेपज्वर

त्रिपादज्वर
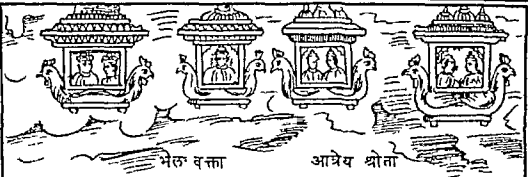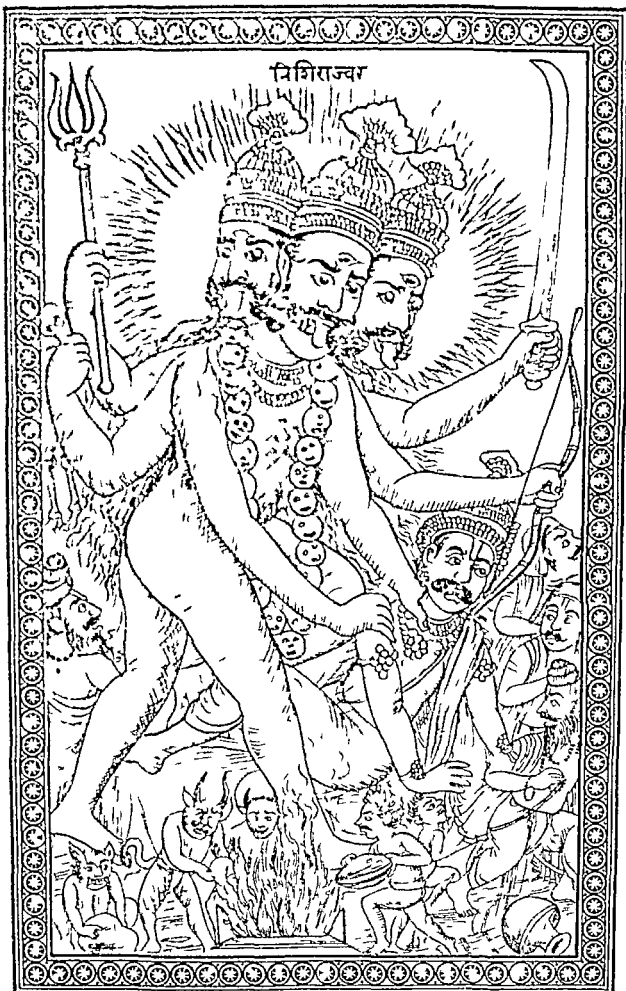
उत्कटास्यज्वर
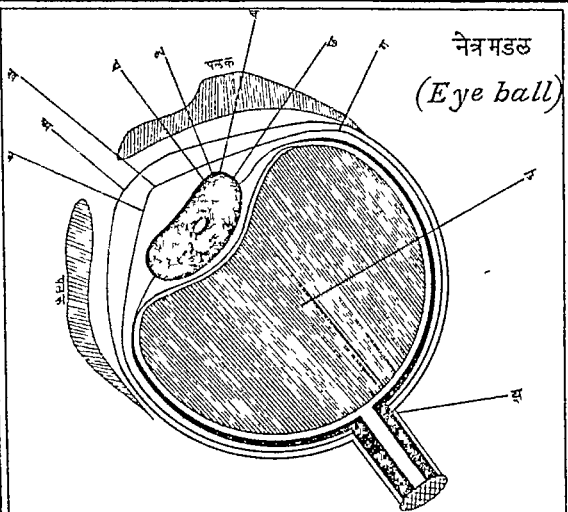
इसमे "अ" नेत्रका प्रथमपटल अर्थात् सुपेद परदा
"क" स्वच्छ भाग
"ख" नेत्र भित्तिका द्वितीय पटल अर्थात स्याह परदा
"ग" इसके नीचेका स्वच्छ भाग
"घ 'वहस्थान जहा सदैव जल भरा रहताहै
"ङ" तृतीय पटल अर्थात् पुतलीवाला परदा
"च" पुतली अर्थात् कृष्ण भाग
"छ" काचपटल चतुर्थ अर्थात् आखका शीशा
"ज" नेत्रगत द्रव पदार्थ अर्थात् रेशदारशेकी जगह
"झ' दृष्टिशिरा अर्थात् बीनाईकी रग
आयुर्वेदज्ञ वैद्य नेत्रोमे चार पटल (परदे) मानते है और यूनानी हकीम सातत्वके मानतेहै और डाक्टर तीनही परदे मानते हैं

मस्तिष्क सवन्धिचित्र (Brain)
इस मस्तिष्क सवधी चित्रमे १-२-
३-४ चिन्ह इत्यादिसे लेकर १८-
१९-२० चिन्हपर्यंत मस्तिष्क
का नीचेका प्रतिरूप तिन्होमे
१ क्षुद्रमस्तिष्क
३ मस्तिष्ककाअग्रखंड
४ घ्राणस्नायु
७ दर्शनस्नायु
८ दर्शनस्नायुप्रदेश
९ नेत्रस्पदक स्नायु
१० दृष्टिसन्धि
१२ पश्चाच्छिद्रान्वितप्रदेश
हस्तशिराप्रदर्शकचित्र
चरणशिराप्रदर्शकचित्र
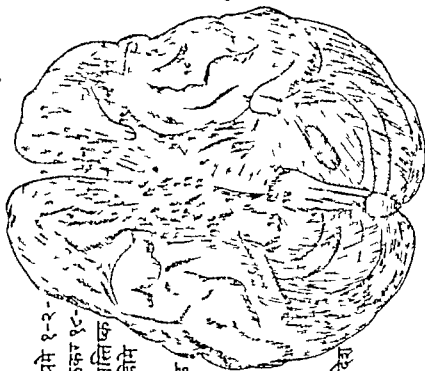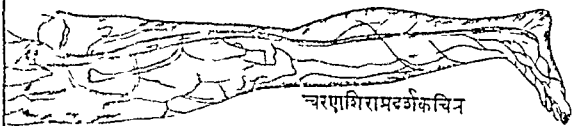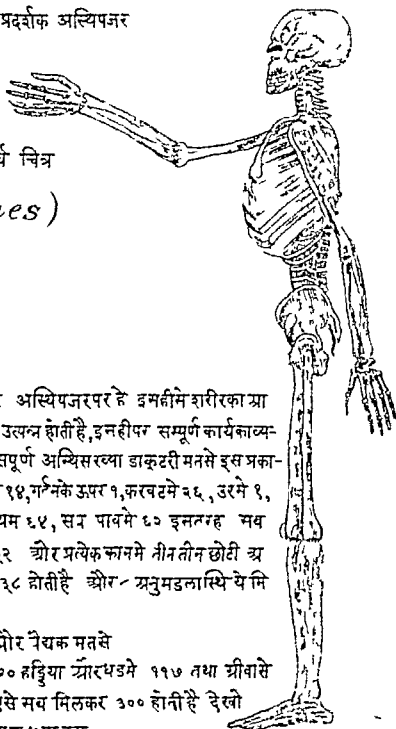
शरीरका मुख्य आधार अस्थिपजरपर है इसहीमे शरीरका आकार, दृढता, गमनशक्ति उत्पन्न होती है, इनहीपर सम्पूर्ण कार्यकाव्यवहार निर्भरहै शरीरमे सपूर्ण अस्थिसंख्या डाकुटरी मतसे इस प्रकारहै खोपडीमे ८, चहरामे १४, गर्दनके ऊपर १, करवटमे २६, उरमे १, पासूमे २५, सम्पूर्ण हाथमे ६४, सब पावमे ६२ इसतरह सब मिलकर २००है दात ३२ और प्रत्येक कानमे तीन तीन छोटी अस्थिहै सबमिलकर २३८ होतीहै और अनुमडलास्थि ये मिलकर २६ है

और वैद्यक मतसे

चारा हाथ पावोमे १२० हड्डिया औरधडमे ११७ तथा ग्रीवासे ऊपर ६३ हड्डियाहै ऐसे सब मिलकर ३०० होती है देखो शारीरकस्थान अध्याय ५ पाचवा

स्नायुप्रदर्शक चित्र (*Nerves*)

इस चित्रमें क मस्तकस्थ बृहत् मस्तिष्क
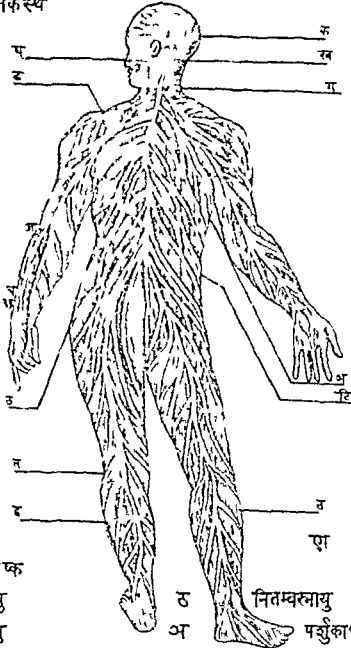
ख	क्षुद्रमस्तिष्क		
ग	ग्रीवास्नायु	ठ	नितम्बस्नायु
घ	पद्नस्नायु	ञ	पर्शुकाभ्यतर स्नायु
ङ	प्रगण्डसन्धिस्नायु	ड	जानुपश्चात्स्नायु
ज	प्रगण्डस्नायु	ट	जान्वभिमुखस्नायु
च	प्रकोष्ठस्नायु	ण	पदतलस्नायु
छ	प्रकोष्ठनिम्नस्नायु	टि	कटिस्नायु
झ	करतलस्नायु	त	ऊरुस्नायु

भूमिका।

आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ।

आयुर्वेदके उपदेशोंको परम आदरसे धारण करना चाहिये । यह क्यों ? कि, यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंकी आधारभूत आरोग्यताकी प्राप्ति और आयुकी रक्षाके लिये है। और "हिताहितं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् । मानञ्च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥" जिस शास्त्रमें आयुसबंधी हित अवस्था, अहित अवस्था, सुखी अवस्था, अवस्था, आयु, आयुका हित और अहित तथा आयुका परिमाण रूपसे कहे हों उसे आयुर्वेद कहतेहैं । महात्मा धन्वन्तरिजीने सुश्रुतसे "एकोत्तर मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते।तत्रैकः कालसज्ञस्तु शेपास्त्वागन्तवः, अर्थात्–अथर्ववेदके जाननेवाले '१०१ मृत्युएँ होतीहैं' 'ऐसा कहतेहैं' अवश्यम्भावी समयोचित एक मृत्यु है उसको कालमृत्यु कहतेहैं, शेप सौ ओंको आगन्तुक, (अकालमृत्यु) कहतेहै । उन १०० मृत्युओंसे बचनेके आयुर्वेदके उपदेशोंको परम आदरसे धारण करना चाहिये क्योंकि, यह धर्मादि चतुर्विध पुरुषार्थका साधनभूत आयुका रक्षक है ।

यह आयुर्वेद प्रथम ब्रह्माके हृदयमें आविर्भूत हुआ, ब्रह्माने दक्ष पढाया, दक्षसे अश्विनीकुमारोंने पढा, अश्विनीकुमारोंने इन्द्रको पढाया, यहांसे भरद्वाज (आयुर्वेदको) लाये और सागोपाग ऋषियोंको सुनाया इसी आयुर्वेदको महर्षि आत्रेयजीने इन्द्रके भवनमें जाकर संपूर्णरूपसे फिर इन महात्मा आत्रेयजीने आत्रेयसंहितानामक पचास हजार श्लोकोंमें एक बनाकर अग्निवेश आदि अपने छः शिष्योंको पढाया। फिर इन छःओं शिष्योंने आत्रेयजीसे आयुर्वेदको पढकर अपने २ नामसे छः संहितायें बनाईं उन अग्निवेशकृत संहिता अत्युत्तम मानी गई, इस संहिताकी ऋषि और प्रशसा की । यह सपूर्ण संहितायें आज कल लुप्त प्राय सी होगई हैं ।

इनके सिवाय शल्यशालाक्य तत्रमें भगवान् धन्वंतरिजीकी संहिता मानी गई । भगवान् धन्वंतरिजीने सुश्रुत आदि अपने शिष्योंको २८५ प्रधान जो आयुर्वेदका उपदेश किया उसको महात्मा नागार्जुनने संग्रह ग्रंथ "सुश्रुतसंहिता" नामसे प्रख्यात और अतिउत्तम तथा शल्यशालाक्य चि

अति श्रेष्ठतम मानागया । और वृद्धवाग्भट्ट वाग्भट्टादि और संहितायें भी चरक और सुश्रुतसे पीछे बनीं ।

चरक भगवान्‌को शेष भगवान्‌का अवतार कहाजाताहै इन्होंने आत्मिक मल दूर करनेके लिये "योग दर्शन", वाणीका मल दूरकरनेके लिये व्याकरण "अष्टाध्यायी" पर "महाभाष्य' और शारीरिक मलोंको दूरकरनेके लिये यह "चरकसंहिता" बनाई ।

अग्निवेशकृत संहिताको ही महर्षि चरकजीने विधिवत् संस्कारकर जो विषय अत्यंत बढेहुएथे उनको संक्षिप्त और जो अत्यत सूक्ष्म थे उनको किंचित् बढाकर और विना कथन किये विषयोंको सम्मेलित कर यह अद्वितीय, अनुपम "चरकसंहिता" ग्रंथ बनाया । चिकित्सामें इसके समान अन्य कोई ग्रंथ आयुर्वेदके ज्ञाताओंकी दृष्टिमें माननीय न हुआ । इस ग्रंथमें १७ अध्याय चिकित्सास्थानके, कल्प और सिद्धिस्थान महात्मा दृढबलने अग्निवेश आदि संहिताओंमेंसे संग्रहकर मिलायेहैं इसलिये कोई ऐसी शंका भी करतेहैं कि, यह संपूर्ण संहिता महर्षि चरकप्रणीत नहीं है । परन्तु कुछ भी हो यह चरकसंहिता चिकित्सा शास्त्रमें अद्वितीय है इसीलिये कहा है कि "यदिहास्ति तदेवास्ति यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्" । अर्थात् जो विषय इस संहितामें लिखा है वही और तन्त्रोंमें भी मिलसकताहै परन्तु जो इसमें नहीं है वह कहीं भी नहीं । यद्यपि भावमिश्र आदिकोंने फिरंग आदि एक आध विषयको विशेषरूपसे लिखकर यह माना है कि, यह नवीन रोग हमने ही अपने ग्रन्थमें लिखाहै और फिरंगियोंके संसर्गसे यह फिरंग रोग उत्पन्न हुआ परन्तु चरकसंहितामें ऐसे अनेक विषय सूक्ष्मरूपसे कहे गयेहैं जिनको देश व कालके भेदसे विभक्तकर स्थूलरूपसे यदि लिखाजाय तो "भावप्रकाश" जैसे पचासों ग्रन्थ तैयार करनेपर भी संपूर्ण विषय नहीं लिखे जा सकते । इसलिये कहा है कि "एकस्मिन्नपि यस्येह शास्त्रे लब्धास्पदा मतिः । स शास्त्रमन्यदप्याशु युक्तिं ज्ञात्वा प्रबुध्यते" ॥ अर्थात् जिसकी मति इस एकही शास्त्रको यथोचित रीतिसे जानगईहै वह इस तन्त्रकी युक्तियोंको जानलेनेसे अन्य शास्त्रोंको भी शीघ्र जानसकताहै, तात्पर्य यह कि, जिसको यह चरकसंहिता यथोचित रीतिसे आतीहै वह अन्य शास्त्रोंको इस चरककी युक्तियों द्वारा शीघ्र जानलेताहै। "इदमखिलमधीत्य सम्यगर्थान्विमृशति यो विमलः प्रयोगनित्यः । स मनुजसुखजीवितप्रदानाद्भवति धृति–स्मृति–बुद्धि–धर्मवृद्धः॥ " अर्थात् जो मनुष्य इस संपूर्ण संहिताको यथोचित पढकर इसके विषयोंको भले प्रकार समझ चिकित्साका प्रयोग करताहै वह मनुष्योंको सुख और जीवनको देनेवाला होनेसे धृति, स्मृति, बुद्धि और धर्ममें सबसे बडा मानाजाताहै ।

" यस्य द्वादश साहस्री हृदि तिष्ठति संहिता ।

सोर्थज्ञः स विचारज्ञश्चिकित्साकुशलश्च सः।
रोगास्तेषा चिकित्साश्च स किमर्थं न बुध्यते ॥

अर्थात्–यह बारह हजार श्लोकात्मक सहिता जिसके हृदयमें स्थित है वह जाननेवाला सपूर्ण वैद्यकीय विषयोंको समझनेवाला विचारवान् और कुशल होताहै ऐसे कौन रोग और उनकी चिकित्सायें है जिनको इस सहि जाननेवाला वैद्य न समझताहो। परन्तु शोक है कि आज इस चरकसहिताके पढानेवाले और आयुर्वेदीय ज्ञानके समझने तथा समझानेवालोंका प्रायः अभाव होगयाहै जिससे इस समय आयुर्वेदकी अत्यत अवनत दशा है।

यद्यपि आजकल सुननेमें आताहै कि आयुर्वेदकी उन्नति होने लगीहै। कहीं वैद्यविद्यापीठ, कहीं वैद्य महासभा, कहीं नये ढगकी शिक्षा, कहीं और कहीं आयुर्वेदीय महौषधालय खोलेगयेहै। कोई २ महाशय तो धन्वन्तरिसे ही गुप्तप्रयोग सीखआयेहै, किसी किसीने वनस्पतियोंका उद्धार ही करमारा है परन्तु क्या इन सब बातोंसे आयुर्वेदकी उन्नति होनेका ढंग दिखाई पडताहै? विचारसे देखिये तो उन्नतिबाजोंने इस जीर्ण शीर्ण आयुर्वे सर्वथा नष्ट करनेकाही सूत्रपात करदियाहै। अब सम्भव है कि आयुर्वेदके जाननेव को भी किसी आईनके अन्दर बन्द होना पडेगा। यह सब अदूरदर्शी उन्नति झूठे चटकीले विज्ञापनोंका फल नहीं तो और क्या है? अब आप विचारसे देखिये औषधालयों और विज्ञापनों द्वारा आयुर्वेदकी कितनी उन्नति हुई। औषधालय भी आयुर्वेदके अग है, आयुर्वेद विद्यापीठसे भी बहुत कुछ लाभ सकताहै और वैद्य महासभायें भी आयुर्वेदको उन्नत अवस्थामें ला सकती है कब? जब कि आयुर्वेदके प्रेमसे आकर्षित हो, जब आयुर्वेदके पुनरुद्धारार्थ स्वार्थ त्याग दें। जब आयुर्वेदके महत्त्वको जान, आयुर्वेदके गौरवको समझ, भूतपूर्व आ वेदकी उन्नत अवस्थाको यादकर और पूर्वज महर्षियोंकी परोपकारितापर ध्यान प्रेमभरे हृदयसे ऐहलौकिक और पारलौकिक उन्नतिका आधार आयुर्वेदको मानने लगें।

इसमें कोई सदेह नहीं कि अब आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये ऋषियोंके हिमालय और देवलोकमें जानेकी आवश्यकता नहीं। क्योंकि यह आयुर्वेद इस जीर्ण शीर्ण दशामें भी किसी अगमें अपूर्ण नहीं है। निरूहण, अनुवासन, (गुदा द्वारा पिचकारियोंका करना) आदि वस्तिकर्म, उत्तरवस्ति (मूत्रमार्गसे आदि प्रवेशकर मूत्राशय और उसके मार्गको दोषरहित करना) शिरावस्ति (शरीरकी नसोंमे सूक्ष्म पिचकारी द्वारा औषध पहुचाना) अर्शके मस्से काटना, प

अति श्रेष्ठतम मानागया । और वृद्धवाग्भट्ट वाग्भट्टादि और संहितायें भी चरक और सुश्रुतसे पीछे बनी ।

चरक भगवान्को शेष भगवान्का अवतार कहाजाताहै इन्होंने आत्मिक मल दूर करनेके लिये "योग दर्शन", वाणीका मल दूरकरनेके लिये व्याकरण "अष्टाध्यायी" पर "महाभाष्य" और शारीरिक मलोंको दूरकरनेके लिये यह "चरकसंहिता" बनाई ।

अग्निवेशकृत संहिताको ही महर्षि चरकजीने विधिवत्त संस्कारकर जो विषय अत्यंत बढेहुएथे उनको संक्षिप्त और जो अत्यंत सूक्ष्म थे उनको किंचित् बढाकर और बिना कथन किये विषयोंको सम्मेलित कर यह अद्वितीय, अनुपम "चरकसंहिता" ग्रंथ बनाया । चिकित्सामें इसके समान अन्य कोई ग्रंथ आयुर्वेदके ज्ञाताओंकी दृष्टिमें माननीय न हुआ । इस ग्रंथमें १७ अध्याय चिकित्सास्थानके, कल्प और सिद्धिस्थान महात्मा दृढबलने अग्निवेश आदि संहिताओंमेंसे संग्रहकर मिलायेंहैं इसलिये कोई ऐसी शंका भी करतेहैं कि, यह संपूर्ण संहिता महर्षि चरकप्रणीत नहीं है । परन्तु कुछ भी हो यह चरकसंहिता चिकित्सा शास्त्रमें अद्वितीय है इसीलिये कहा है कि "यदिहास्ति तदेवास्ति यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्" । अर्थात् जो विषय इस संहितामें लिखा है वही और तन्त्रोंमें भी मिलसकताहै परन्तु जो इसमें नहीं है वह कहीं भी नहीं । यद्यपि भावमिश्र आदिकोंने फिरंग आदि एक आध विषयको विशेषरूपसे लिखकर यह माना है कि, यह नवीन रोग हमने ही अपने ग्रन्थमें लिखाहै और फिरंगियोंके संसर्गसे यह फिरंग रोग उत्पन्न हुआ परन्तु चरकसंहितामें ऐसे अनेक विषय सूक्ष्मरूपसे कहे गयेहैं जिनको देश व कालके भेदसे विभक्तकर स्थूलरूपसे यदि लिखाजाय तो "भावप्रकाश" जैसे पचासों ग्रन्थ तैयार करनेपर भी संपूर्ण विषय नहीं लिखे जा सकते । इसलिये कहा है कि "एकस्मिन्नपि यस्येह शास्त्रे लब्धास्पदा मतिः । स शास्त्रमन्यदप्याशु युक्तिं ज्ञात्वा प्रबुध्यते" ॥ अर्थात् जिसकी मति इस एकही शास्त्रको यथोचित रीतिसे जानगईहै वह इस तन्त्रकी युक्तियोंको जानलेनेसे अन्य शास्त्रोंको भी शीघ्र जानसकताहै, तात्पर्य यह कि, जिसको यह चरकसंहिता यथोचित रीतिसे आतीहै वह अन्य शास्त्रोंको इस चरककी युक्तियों द्वारा शीघ्र जानलेताहै। "इदमखिलमधीत्य सम्यगर्थान्विमृशति यो विमलः प्रयोगनित्यः । स मनुजसुखजीवितप्रदानाद्भवति धृति-स्मृति-बुद्धि-धर्म-वृद्धः॥ " अर्थात् जो मनुष्य इस संपूर्ण संहिताको यथोचित पढकर इसके विषयोंको भले प्रकार समझ चिकित्साका प्रयोग करताहै वह मनुष्योंको सुख और जीवनको देनेवाला होनेसे धृति, स्मृति, बुद्धि और धर्ममें सबसे बडा मानाजाताहै ।

" यस्य द्वादश साहस्री हृदि तिष्ठति संहिता ।

सोर्थज्ञ स विचारज्ञश्चिकित्साकुशलश्च स ।
रोगास्तेषा चिकित्साश्च स किमर्थं न बुध्यते ॥

अर्थात्–यह बारह हजार श्लोकात्मक सहिता जिसके हृदयमें स्थित है वह अर्थका जाननेवाला सपूर्ण वैद्यकीय विषयोंको समझनेवाला विचारवान् और चिकित्सामें कुशल होताहै ऐसे कौन रोग और उनकी चिकित्सायें है जिनको इस सहिताका जाननेवाला वैद्य न समझताहो । परन्तु शोक है कि आज इस चरकसहिताके पढने पढानेवाले और आयुर्वेदीय ज्ञानके समझने तथा समझानेवालोका प्राय अभाव ही सा होगयाहै जिससे इस समय आयुर्वेदकी अत्यत अवनत दशा है ।

यद्यपि आजकल सुननेमें आताहै कि आयुर्वेदकी उन्नति होने लगीहै। कहीं आयुर्वेदविद्यापीठ, कहीं वैद्य महासभा, कहीं नये ढगकी शिक्षा, कहीं आरोग्यभवन और कहीं आयुर्वेदीय महौषधालय खोलेगयेहै । कोई २ महाशय तो खास धन्वन्तरिसे ही गुप्तप्रयोग सीखआयेहैं, किसी किसीने वनस्पतियोंका अद्वितीय उद्धार ही करमारा है परन्तु क्या इन सब बातोंसे आयुर्वेदकी उन्नति होनेका कोई ढग दिखाई पडताहै ? विचारसे देखिये तो उन्नतिबाजोंने इस जीण शीण आयुर्वेदको सर्वथा नष्ट करनेकाही सूत्रपात करदियाहै । अब सम्भव है कि आयुर्वेदके जाननेवालों को भी किसी आईनके अन्दर बन्द होना पडेगा। यह सब अदूरदर्शी उन्नतिबाजोंके झूठे चटकीले विज्ञापनोंका फल नहीं तो और क्या है? अब आप विचारसे देखिये कि औषधालयों और विज्ञापनों द्वारा आयुर्वेदकी कितनी उन्नति हुई । यद्यपि औषधालय भी आयुर्वेदके अग है, आयुर्वेद विद्यापीठसे भी बहुत कुछ लाभ पहुच सकताहै और वैद्य महासभायें भी आयुर्वेदको उन्नत अवस्थामें ला सकती है परन्तु कब ? जब कि आयुर्वेदके प्रेमसे आकर्षित हों, जब आयुर्वेदके पुनरुद्धारार्थ स्वार्थका त्याग दें । जब आयुर्वेदके महत्त्वको जान, आयुर्वेदके गौरवको समझ, भूतपूर्व आयुर्वेदकी उन्नत अवस्थाको यादकर और पूर्वज महर्षियोंकी परोपकारितापर ध्यान दें, प्रेमभरे हृदयसे ऐहलौकिक और पारलौकिक उन्नतिका आधार आयुर्वेदको ही मानने लगें ।

इसमें कोई सदेह नहीं कि अब आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये ऋषियोंके समान हिमालय और देवलोकमें जानेकी आवश्यकता नहीं । क्योंकि यह आयुर्वेद भण्डार इस जीर्ण शीर्ण दशामें भी किसी अगमें अपूर्ण नहीं है । निरूहण, अनुवासन, (गुदा द्वारा पिचकारियोंका करना) आदि वस्तिकर्म, उत्तरवस्ति (मूत्रमार्गमें कैथीटर आदि प्रवेशकर मूत्राशय और उसके मार्गको दोषरहित करना) सिरावेध (शरीरकी नसोंमें सूक्ष्म पिचकारी द्वारा औषध पहुचाना) अर्शके मस्से काटना, पथरी

निकालना और क्षारकर्म आदि यह सब आयुर्वेदके चिकित्साका अनुकरण करके ही आज उन्नतशील शुभराजमें डाक्टरी विद्याकी उन्नति हो रही है । इस इतनी उन्नत अवस्थामें भी बहुतसी शल्यचिकित्सा इण्डियन सर्जरी कहीजाती है । आख बनाना भारतके सामान्य वैद्योंका अनुकरण है । आयुर्वेदके शल्यशालाक्य जाननेवालोंने जो २ कार्य किये हैं उनको अभी उन्नतशील चिकित्सकोंने स्वप्नमें भी नहीं देखा होगा । जैसे अश्विनीकुमारोंका दक्षका कटाहुआ शिर लगादेना, ब्रह्माका मस्तक जोडना, भोजका मस्तक चीरकर कपालके भीतरसे जीवोंका निकालना आदि अनेक प्रकारकी क्रियायें कैसी विचित्र थीं । परन्तु समय भगवान्‌के हेरफेरसे आज वह सब कहानी मात्र रहगई । जिसको अनुकरण मानतेहैं वह डाक्टरी विद्या अब शल्यक्रियामें इतनी उन्नत होतीजाती है कि विचारे आयुर्वेदाभिमानी उनकी बातनक नहीं समझ सकते । हा! समय भगवान् क्या नहीं कर सकते? परिवर्त्तन शील जगत्‌में ऐसी कौनसी वस्तु है जिसको समय भगवानने अपने झपाटेमें न लिया हो? । आज जिसको राजा महाराजा ऋषि और देवता भी महान् सत्कारसे देखते हों कल उसीकी ओर देखकर तुच्छ प्राणी भी बडी घृणासे नाक चढाने लगतेहैं । आज जिसका झण्डा आकाशमें फहराताहै कालचक्रसे कल वह मटियामेट होकर मानो कभी था ही नहीं ऐसा प्रतीत होनेलगताहै । काल भगवानकी विचित्र महिमा है । जिस आयुर्वेदको ऋषिगण देवलोकसे लायेथे जिस आयुर्वेदको ब्रह्मासे प्राप्त न होनेके रोषमें भैरव जलकर मरनेलगेथे जिस आयुर्वेदको ऋषियोंने हिमालयकी चोटियोंपर पहुच अनेक प्रयासोंसे प्राप्तकर निःस्वार्थभावसे जगत्‌के हितके लिये प्रचार कियाथा आज उन्हीं ऋषियोंकी सवान झूठे विज्ञापनों द्वारा ठगीकर उस आयुर्वेदको लाञ्छित करना मुख्य उन्नति माननेलगी ।

यह कभी नहीं कहा जासकता कि, सब संसार ही एकसा होताहै, अब भी बहुतेरे योग्य पुरुष परोपकारी सद्वैद्य और आयुर्वेदकी महिमाको जाननेवाले हैं जिनकी कृपासे औरंगजेबी जमानेके महाआघातसे बचेहुए ग्रंथ इस उन्नतशील श्रीभारत-सरकारके शुभ राज्यमें बडी आसानीसे छपछपकर प्राप्त होनेलगे हैं ।

परन्तु खेदका विषय है कि,और सब विद्याओंकी उन्नति होतेहुए भी आयुर्वेदकी रक्षा व जीर्णोद्धारका कोई प्रबंध अभी तक नहीं दीखता । उचित प्रबंध नहीं होनेके अनेक कारणोंमें सबसे बडे चार कारण हैं, जिनके बिना आयुर्वेद अपने चमत्कारकी गर्जना नहीं करसकता । वह चार कारण यह हैं—राजाओंकी ओरसे आयुर्वेदीय सर्वांग शिक्षाका कोई प्रबन्ध न होना१। आयुर्वेदके जिस अंगके जो ज्ञाता है उनका स्वच्छ हृदयसे आयुर्वेदका प्रचार न करना २ । आयुर्वेदीय शिक्षाके

योग्य मनुष्योंका सीखनेमें यत्न न करना ३। आयुर्वेदीय औषधिसग्रह आदि नियम न रखकर दुकानोंकी पुरानी गली, सडी औषधियोंसे चिकित्सा करना ४। यदि आयुर्वेदीय शिक्षाका यथोचित प्रबन्ध होजाय तो फिर भी आयुर्वेद उसी उन्नत अवस्थामें पहुच सकताहै। उन्नतिके लिये कुछ बाहरसे लानेकी आवश्यकता नहीं। उन्हीं पुराने ऋषिप्रणीत सहिताओंकी सर्वांग शिक्षाका प्रबन्ध होजाय तो सब कुछ होसकताहै।

चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थोंसे ऐसा कौन विषय बचा है जो स्थूल वा सूक्ष्मरूपसे इनके भीतर न भराहो।

विचारशील महाशयगण, जरा विचार करें कि, पहलेके आप्त वैद्य किसप्रकारसे औषधोंको सिद्ध करतेथे और निदानज्ञानपूर्वक कैसी उत्तम रीतिसे औषधप्रयोग करतेथे जिससे वे पीयूषपाणि कहे जातेथे और रोगी निस्सन्देह नीरोग होतेथे। परन्तु आजकलके बहुतसे चिकित्सकनामधारी महाशय तो इन सब आयुर्वेदीय क्रियाओंको छोडकर आलस्यग्रस्त हो अमृतसागर भाषा पढपढाकर अण्ट-सण्ट सस्कृत असस्कृत जैसे तैसे गोलिय बना अपनेको रसवैद्य–देववैद्य होताहै ऐसा माननेलगे।

ऐसे वैद्य ऐसी रस गोलियोंको पास रख रोगीको देखकर निदान कहने और रोगानुसार चिकित्सा करनेकी कठिनतासे निरन्तर बचे रहतेहैं और इसी कारण इनकी योग्यताकी पोल भी नहीं खुलनेपाती परन्तु इनकी कृपासे आयुर्वेदीय असली क्रिया नष्ट होकर आगेको प्रायः निर्मूल होतीजातीहै और इनकी उन गोलियोंके खानेसे क्या होताहै इसे तो खानेवाले या उनके परिवारके लोग या ईश्वर ही जाने।

बहुतसे लोगोंको चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थोंका रहस्य जानने और इनके अनुसार क्रिया करनेका उत्साह भी होताहै तो यह विचारे "चरक" जैसे सर्व युक्तिसम्पन्न ग्रन्थको किससें पढे ? । यद्यपि इस ग्रथकी, भोजवृत्ति और चाचरपतिकी टीका सपूर्ण नहीं मिलती तथापि चक्रपाणिकृत सस्कृतटीका तथा गगाधर शास्त्रीकृत सस्कृतटीका (पुरानी) सपूर्ण मिलतीहैं। जिससे इस ग्रन्थकी योग्यतासे विद्वान् लोगोंको लाभ उठाना कठिन नहीं परन्तु केवल भाषामात्र जाननेवालोंको "चरकका" भाव जाननेके लिये भाषाटीकाको छोड और कोई उपाय नहीं। यद्यपि एक दो टीकाए हिन्दी भाषामें पहिले भी छपचुकी हैं परन्तु वे बहुतसी जगह ग्रन्थके मर्मको अच्छी तरह न समझानेके कारण आयुर्वेद रसिकोंको आदरणीय न हुई इसलिये यह पुस्तक "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसके स्वत्वाधिकारी

भूमिका।

श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीने संवत् १९६६ में हिन्दीभाषामें मूलानुसार सरल उत्तम टीका बनानेके लिये मुझे दिया। इस डेढसालके बीचमें यद्यपि अनेक प्रकार आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक आपत्तियोंके असामयिक आक्रमणोंसे अभिभूत होनेके कारण इस ग्रंथकी टीकाबनानेके लिये मुझे यथेष्ट अवकाश न मिलसका, तथापि इस टीकामें अपनी मति गतिके अनुसार निरालस होके कठिनसे कठिन भावोंको सर्वसाधारणके समझने योग्य करनेमें त्रुटि नहीं की है, और यथास्थल औषधनिर्माणक्रियायें इस तौर लिखी गई है कि, फिर किसीसे कुछ पूछनेकी आवश्यकता नहीं। शीघ्रतावश यदि कहीं कुछ त्रुटि रहगई हो तो बुध जन क्षमाकर मुझे सूचित करेंगेजिससे दूसरी वार छपनेमें वह ठीक होजावे।

और प० हरिदत्त शर्म्मा शास्त्रीजीने इसका शोधन करते समय, शीघ्रताके कारण पुनरुक्ति, वाक्योंमें कर्मणि कर्त्तरि प्रयोगभेद आदिको दुरुस्त कर हमारी वडी भारी सहायताकी है इस लिये उन्हे अनेकशः धन्यवाद है।

इस प्रसादनीनामक भाषाटीका सहित चरक संहिताको 'त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पितम्' के तौर श्रीमान सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास अध्यक्ष "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम प्रेस बम्बई को सर्वाधिकार सहित सादर अर्पण करताहू और कोई महाशय इसके छापने आदिका साहस न करें,नहीं तो लाभके वदले हानि उठानी पडेगी

बंबई.	भवदीय लघुसेवक—
अश्विन शुक्ल १० सोमवार	रामप्रसाद वैद्योपाध्याय.
संवत् १९६८	टकसाल—(रियासत पटियाला)

॥ श्री. ॥

अथ चरकसंहिता-

विषयाऽनुक्रमणिका ।

सूत्रस्थान १

१ दीर्घजीवित अध्याय ।

२ अपामार्ग तण्डुलिया अध्याय ।

श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीने संवत् १९६६ में हिन्दीभाषामें मूलानुसार सरल उत्तम टीका बनानेके लिये मुझे दिया। इस डेढसालके बीचमें यद्यपि अनेक प्रकार आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक आपत्तियोंके असामयिक आक्रमणोंसे अभिभूत होनेके कारण इस ग्रंथकी टीकाबनानेके लिये मुझे यथेष्ट अवकाश न मिलसका, तथापि इस टीकामें अपनी मति गतिके अनुसार निरालस होके कठिनसे कठिन भावोंको सर्वसाधारणके समझने योग्य करनेमें त्रुटि नहीं की है, और यथास्थल औषधनिर्माणक्रियायें इस तौर लिखी गई है कि, फिर किसीसे कुछ पूछनेकी आवश्यकता नहीं। शीघ्रतावश यदि कहीं कुछ त्रुटि रहगई हो तो बुध जन क्षमाकर मुझे सूचित करेंगेजिससे दूसरी बार छपनेमें वह ठीक होजावें।

और प० हरिदत्त शर्म्मा शास्त्रीजीने इसका शोधन करते समय, शीघ्रताके कारण पुनरुक्ति, वाक्योंमें कर्मणि कर्त्तरि प्रयोगभेद आदिको दुरुस्त कर हमारी बडी भारी सहायताकी है इस लिये उन्हे अनेकशः धन्यवाद हैं।

इस प्रसादनीनामक भाषाटीका सहित चरक संहिताको 'त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पितम्' के तौर श्रीमान सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास अध्यक्ष "श्रीवे ङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस बम्बई को सर्वाधिकार सहित सादर अर्पण करताहू और कोई महाशय इसके छापने आदिका साहस न करें,नहीं तो लाभके बदले हानि उठानी पडेगी

बंबई
अश्विन शुक्ल १० सोमवार
संवत् १९९८

भवदीय लघुसेवक—
रामप्रसाद वैद्योपाध्याय
टकसाल-(रियासत पटियाला)

॥ श्री ॥

अथ चरकसंहिता-

विषयाऽनुक्रमणिका ।

सूत्रस्थान १

१ दीर्घजीवित अध्याय ।

२ अपामार्ग तण्डुलिया अध्याय ।

५ मात्राशितीय अध्याय ।

६ तस्याशितीय अध्याय ।

७ न वेगान्धारणीय अध्याय ।

२६ आत्रेयभद्रकाप्यीय अध्याय ।

२७ अन्नपानविधि अध्याय ।

शूकधान्यवर्ग ।

शमी धान्य वर्ग ।

मांसवर्ग ।

इति सूत्रस्थानकी अनुक्रमणिका ।

अथ निदानस्थान ।

१ ज्वरनिदान ।

२ रक्तपित्तनिदान ।

३ गुल्मनिदान ।

७ उन्मादनिदान ।

८ अपस्मारनिदान ।

इति निदानस्थानकी विषयाऽनुक्रमणिका ।

अथ विमानस्थान ।

१ रसविमान ।

२ त्रिविध कुक्षीयविमान ।

इति विमानस्थानकी अनुक्रमणिका ।

अथ शारीरस्थान ।

१ कतिधापुरुषीय अध्याय ।

इति शारीरस्थानकी विषयानुक्रमणिका।

इति शारीरस्थानकी विषयानुक्रमणिका।

अथेन्द्रियस्थान ।

इति इन्द्रियाध्यायकी विषयानुक्रमणिका ।

इति
चरकसहिता-सूत्रस्थान-निदानस्थान-विमान-
स्थान-शारीरस्थान-इन्द्रियस्थानकी
विषयाऽनुक्रमणिका
समाप्त ।

॥ श्रीः ॥

अथ चरकसंहिता ।

भाषाटीकासहिता ।

सूत्रस्थान

प्रथम अध्याय १.

मंगलाचरण ।

यत्सेवया जडधियोऽपि हि तां प्रतिष्ठां
गच्छन्ति या न विबुधा अमितप्रयासैः ॥
तां वै प्रसादसुमुखीं गिरिराजकन्यां
सर्वस्य चास्य जननीं हृदि भावयामि ॥ १ ॥

अथाहीशप्रणीतायाः संहितायाः प्रसादनी ॥
रामप्रसादवैद्येन भाषा वै क्रियते मया ॥ २ ॥

दोहा–जाकी सेवा जडहु नर, लभहि प्रतिष्ठा जोय ।
अतिप्रयास करि करि विबुध, पायसकै नहि सोय ॥ १ ॥
सो प्रसन्नमुख गिरिसुता, जो सब जगकी माय ।
कारज रामप्रसादके, होवहु सदा सहाय ॥ २ ॥
चरकरचित या ग्रथकी, भाषा लिखों बनाय ।
रामप्रसाद प्रसादनी, जो सबके मन भाय ॥ ३ ॥

अथातो दीर्घंजीवितमध्यायं व्याख्यास्याम इतिह स्माह भगवानात्रेयः ॥

भगवान् आत्रेय कहने लगे कि अब हम दीर्घंजीवितीय अध्यायका विस्तारपूर्वक कथन करतेहैं क्यों कि संसारमें धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष, इन चार पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके लिये ही सत्पुरुषोंकी प्रवृत्ति होतीहै इन सब पुरुषार्थोंके साधनके लिये दीर्घजीवनकी आवश्यकता है वह दीर्घजीवन अरोगिता (तदुरुस्ती) रहनेपर होसक्ताहै अरोगिता रखनेके लिये ही आयुर्वेदकी प्रवृत्ति है इसलिये अरोगिताको मुख्य रखते हुए प्रथम दीर्घजीवितीय अध्यायका कथन करतेहैं ॥ १ ॥

आयुर्वेदावतरणक्रम ।

दीर्घजीवितमन्विच्छन्भरद्वाजउपागमत् ।
इन्द्रमुग्रतपाबुद्ध्वाशरण्यममरेश्वरम् ॥ १ ॥

पूर्व कालमें वर्तमान समयकी समान किसीबातको जाननेके लिये सहस्रों प्राणियोंका प्राण अर्पण करनेकी आवश्यकता नहीं होतीथी । उस समय महात्मा तपस्वी अपने तप और योग बलसे भूत भविष्यत्को जानकर उसका उचित उपाय अपने तपोबलसे जानलेतेथे फिर वह कार्य जिसरीतिसे सिद्ध होनेवाला हो वह प्रयत्न करलेतेथे । सो यही इसमें लिखा है कि दीर्घजीवनकी इच्छा करते हुए तपोबलशाली महात्मा भरद्वाजजी देवताओंके पति इद्रको इस कार्यकी सिद्धिके योग्य समझकर उनके पास गये ॥ १ ॥

ब्रह्मणाहियथाप्रोक्तमायुर्वेदप्रजापति । जग्राहनिखिलेनादा-
वश्विनौतुपुनस्तत ॥ २ ॥ अश्विभ्यांभगवाञ्छक्रःप्रतिपेदे
हिकेवलम् । ऋषिप्रोक्तोभरद्वाजः तस्माच्छक्रमुपागमत् ॥ ३ ॥

क्योंकि पहलेपहल ब्रह्माने संपूर्णरूपसे आयुर्वेद दक्षप्रजापतिके पास कथन किया था । फिर प्रजापतिसे अश्विनीकुमारोंने क्रमपूर्वक संपूर्ण ग्रहण किया । अश्विनीकुमारोंसे केवल इंद्रने ही पढा इसलिये ऋषियोंके कहनेसे महर्षि भरद्वाज इद्रके पास गये ॥ २ ॥ ३ ॥

आयुर्वेदका प्रयोजन ।

विघ्नीभूतायदारोगाःप्रादुर्भूता शरीरिणाम् । उपवासतपःपाठ-
ब्रह्मचर्य्यव्रतायुषाम् ॥ ४ ॥ तदाभूतेष्वनुक्रोशंपुरस्कृत्य
महर्षयः । समेताःपुण्यकर्म्माणः पार्श्वे हिमवतः शुभे ॥ ५ ॥

असलमें भरद्वाजका इद्रके पास जाकर आयुर्वेदके जाननेका कारण यह था कि जब मनुष्योंके उपवास, तप, पठनपाठन, ब्रह्मचर्य, व्रत, आयु, इनके नष्ट करनेवाले अथवा यों कहिये कि इनमें विघ्न डालनेवाले रोग प्रगट हुए । तब पुण्यकर्मा महात्मा ऋषि प्राणियोंपर दया करके हिमवान् पर्वतके एक सुंदर आश्रम इकठे हुए ॥ ४ ॥ ५ ॥

ऋषियोंका एकत्रित हो विचार करना ।

अंगिराजमदग्निश्चवसिष्ठःकश्यपो भृगुः । आत्रेयोगौतमः
सांख्यः पुलस्त्योनारदोऽसितः ॥ ६ ॥ अगस्त्योवामदेवश्चमा-

कंण्डेयाश्वलायनौ । पारीक्षिर्भिक्षुरात्रेयो भरद्वाजःकपिष्ठलः ॥ ७ ॥ विश्वामित्राश्वरथ्यौचभार्गवश्च्यवनोऽभिजित् । गार्ग्यःशाण्डिल्यकौण्डिन्यौवार्क्षिर्देवलगालवौ ॥ ८ ॥ साङ्कृत्योवैजवापिश्चकुशिकोबादरायणः । बडिशःशरलोमाचकाप्यकात्यायनावुभौ ॥ ९ ॥ काकायनकैकशेयौधौम्योमारीचिकाश्यपौ । शर्कराक्षोहिरण्याक्षो लौगाक्षिः पैंगिरेवच ॥ १० ॥ शौनकःशाकुनेयश्चमैत्रेयो मैमतायनिः । वैखानसावालखिल्यास्तथाचान्येमहर्षयः ॥ ११ ॥

जो ऋषि हिमालयके एकपार्श्वमें इकट्ठे हुए थे उनके नाम लिखते हैं—अंगिरा, जमदग्नि, वशिष्ठ, काश्यप, भृगु, आत्रेय, गौतम, सांख्य, पुलस्त्य, नारद, असित, अगस्त्य, वामदेव, मार्कण्डेय, आश्वलायन, पारिक्षित्, भिक्षु, अत्रि, भरद्वाज, कपिष्ठल, विश्वामित्र, अश्वरथ्य, भार्गव, च्यवन, अभिजित्, गर्ग, शाडिल्य, कौडिन्य, वार्क्षि, देवल, गालव, साकृत्य, वैजवापि, कुशिक, बादरायण, बडिश, सरलोमा, काप्य, कात्यायन, काकायन, कैकशेय, धौम्य, मरीचि, कश्यप, शर्कराक्ष, हिरण्याक्ष, लौगाक्षि, पैंगि, शौनक, शाकुनेय, मैत्रेय, मैमतायनि, वैखानस, वालखिल्य, तथा अन्य महर्षिलोग आनकर इकट्ठे हुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

ब्रह्मज्ञानस्यनिधयोदमस्यनियमस्यच । तपसातेजसादीप्याहूयमानाइवाग्नय ॥ १२ ॥ सुखोपविष्टास्तेतत्रपुण्याश्चक्रुरिमांकथाम् । धर्म्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यमूलमुत्तमम् ॥ १३ ॥ रोगास्तस्यापहर्त्तारःश्रेयसोजीवितस्यच । प्रादुर्भूतोमनुष्याणामन्तरायोमहानयम् ॥ १४ ॥

यह सब महात्मा ब्रह्मके जाननेमें और इंद्रियोंके दमन करनेमें तथा नियमोंके पालनेमें समुद्र थे, तप और तेजके प्रभावसे हवन करनेमें प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशमान होरहे थे। यह सब महात्मा सुखपूर्वक बैठेहुए इस हिमालयके शिखरमें यह पवित्र कथा कहने लगे—कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इनका उत्तम मूल आरोग्यता ही है अर्थात् आरोग्यता रहनेसे ही धर्मादि चतुर्विध पुरुषार्थोंकी प्राप्ति

होसकती है। सो रोग (बीमारिया) इस आरोग्यताके हरलेनेवाले है आरोग्यता न रहनेसे जीवन और कल्याण (सुख) भी नष्ट ही होजाताहै । इस लिये यह मनुष्योंके लिये महान् अतराय (भारी विघ्न) आन उपस्थित हुआ है ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

उपायका निश्चय ।

कःस्यात्तेषांशमोपायइत्युक्त्वाध्यानमास्थिताः । अथतेशरणं शक्रंददृशुर्ध्यानचक्षुषा ॥ १५ ॥ सवक्ष्यतिशमोपाययथावदमरप्रभुः । कःसहस्राक्षभवनंगच्छेत्प्रष्टुंशचीपतिम् ॥ १६ ॥

सो अब इन रोगोंके शांत करनेका क्या उपाय करना चाहिये इसके जाननेके लिये सब ऋषियोंने ध्यान लगाया, इसके अनंतर उन ऋषियोंने इस विघ्नसे बचानेका यत्न इंद्रके पास जानेसे प्राप्त होगा यह अपनी समाधिमें ध्यान करके जान लिया । फिर नेत्र खोलकर सब आपसमें कहने लगे कि इन रोगोंकी शांतिका ठीक २ उपाय हमको देवताओंके पति इंद्र बतलावेंगे परंतु उन शचीपति इंद्रके भवनमें इस उपायको सीखने कौन जावेगा ॥ १५ ॥ १६ ॥

अहमर्थेनियुज्येयमत्रेतिप्रथमंवचः ।
भरद्वाजोऽब्रवीत्तस्मादृषिभिःसनियोजितः ॥ १७ ॥

इस आन्दोलनको सुनकर भरद्वाजजीने सबसे पहले कहा कि यह काम मुझे सौंपाजाय मैं इस कार्यको करूंगा इसलिये सब ऋषियोंने इनहीको नियुक्त किया कि आप ही जाइये ॥ १७ ॥

भरद्वाजका इंद्रभवनमें जाना ।

सशक्रभवनंगत्वासुरर्षिगणमध्यगम् । ददर्शबलहन्तारंदीप्यमानमिवानलम् ॥ १८ ॥ सोऽभिगम्यजयाशीर्भिरभिनन्द्यसुरेश्वरम् । प्रोवाचभगवान्धीमानृषीणांवाक्यमुत्तमम् ॥ १९ ॥

ऋषियोंसे विदा होकर भरद्वाज इन्द्रके स्थानमें (स्वर्गमें) पहुँचे वहां जाकर देवर्षिगणोंके मध्यमें सिंहासनपर प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी इन्द्रको देखा । फिर बुद्धिमान भगवान् भरद्वाजने इंद्रके पास जाकर आशीर्वादा[illegible] योंके उत्तम वाक्योंको कथन किया ॥ १८ ॥ १९ ॥

व्याधयोहिसमुत्पन्ना'सर्व्वप्राणिभयकरा । तद्ब्रूहिमेशमोपाय यथावदमरप्रभो ॥ २० ॥ तस्मैप्रोवाचभगवानायुर्वेदंशतक्रतुः । पदैरल्पैर्मतिंबुद्ध्वाविपुलापरमर्षये ॥ २१ ॥

कि हे देवेश ! पृथ्वीमे सपूर्ण मनुष्योंको दु.ख देनेवाले भयकर रोग उत्पन्न होगयेहैं कृपा करके उन रोगोंके शातिकारक उपायका कथन कीजिये। यह सुनकर भगवान् इन्द्रने भरद्वाजजीको विपुलबुद्धिशाली जानकर सक्षेपमें ही आयुर्वेद शास्त्रका उपदेश करादिया ॥ २० ॥ २१ ॥

आयुर्वेदका स्वरूप तथा भरद्वाजका इन्द्रसे उसे प्राप्तकरना।

हेतुलिंगौषधज्ञानस्वस्थातुरपरायणम् । त्रिसूत्रशाश्वतपुण्यबुबुधेयंपितामहः ॥ २२ ॥ सोऽनन्तपारंत्रिस्कन्धमायुर्वेदमहामति । यथावदचिरात्सर्वंबुबुधेतन्मनामुनि ॥ २३ ॥ तेनायुरमितलेभेभरद्वाज'सुखान्वित । ऋषिभ्योऽनधिकन्तश्चशशसाऽनवशेषयन् ॥ २४ ॥

जिस शास्त्रमें हेतु अर्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाला कारण और रोगबोधक चिह्न तथा औषधज्ञान होनेका भलीप्रकार वर्णन है। और आरोग्य (तन्दुरस्त) तथा रोगियोको परम उपयोगी है। जिसमे वात, पित्त कफ यह तीन प्रधान सूत्र है ऐसे इस सनातन पवित्र आयुर्वेदशास्त्रको पहले पितामहने जाना अर्थात् इसका आविर्भाव पहले ब्रह्माके हृदयमे हुआ। सो इस अनन्तपार आयुर्वेदको "जिसमे निदान, निदान, चिकित्सा, अथवा वात, पित्त, कफ, यह तीन स्कध अर्थात् कधे हैं" महामति भरद्वाजजीने चित्त लगाकर थोडे ही कालमे सपूर्णरूपसे जानलिया। फिर इस आयुर्वेदके प्रतापसे भरद्वाजजी दीर्घायु और सुखको प्राप्त हुए। और यह शास्त्र क्रमपूर्वक ऋषियोंको पढादिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

भरद्वाजसे ऋषियोंका आयुर्वेदका ग्रहण करना।

ऋषयश्चभरद्वाजाज्जगृहुस्तंप्रजाहितम् । दीर्घमायुश्चिकीर्षन्तो वेदवर्धनमायुष. ॥ २५ ॥ महर्षयस्तेददृशुर्यथावज्ज्ञानचक्षुषा॥ सामान्यञ्चविशेषञ्चगुणान्द्रव्याणिकर्म्मच ॥ २६ ॥ समवायचतज्ज्ञात्वातन्त्रोक्तविधिमास्थिता । लेभिरेपरमशर्म्मजीवितचापिनिर्गदम् ॥ २७ ॥

ऋषियोंने भी दीर्घायु होनेकी इच्छा करतेहुए प्रजाके हितके लिये इस आयुवर्द्धक शास्त्रको भलीभाति ग्रहण किया। फिर इस शास्त्रके ज्ञानरूपी नेत्रद्वारा ऋषियोंने सामान्यतासे और अधिकतासे द्रव्योंके गुण व, स्वरूप तथा प्रयोग आदि कर्म, या वस्तिकर्म आदि कर्मको भलीप्रकार जाना । फिर इन सबके सूक्ष्म स्थूल समवायको तथा जिसप्रकार पाच भूतोंमे आरम्भ हो शारीरक व द्रव्योंके सूक्ष्म अशोंद्वारा चयापचय कोप शमन होताहै इन सबको जानकर आयुर्वेदोक्त विधिका अनुसरण करतेहुए परम-आनद और रोगरहित जीवनको प्राप्त किया ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

पुनर्वसुका छ॰ शिष्योंको आयुर्वेद उपदेश।

अथमैत्रीपर.पुण्यमायुर्वेदपुनर्वसु । शिष्येभ्योदत्तवान्षड्भ्यः सर्वभूतानुकम्पया ॥२८॥अग्निवेशश्चभेलश्चजतूकर्णःपराशर । हारीत.क्षारपाणिश्चजगृहुस्तन्मुनेर्वचः ॥ २९ ॥ बुद्धेर्विशेष-स्तत्रासीन्नोपदेशान्तर मुने. । तन्त्रप्रणेताप्रथममग्निवेशो यतोऽभवत् ॥ ३० ॥ अतोभेलादयश्चक्रु स्वंस्वंतन्त्रकृतानिच। श्रावयामासुरात्रेयंसर्षिसंघंसुमेधसः ॥ ३१ ॥

इसके अनतर मित्रतापरायण पुनर्वसुजीने सपूर्ण प्राणियोंपर कृपा करके यह पवित्र आयुर्वेद ६ शिष्योंको पढाया और १ अग्निवेश २ भेल ३ जतूकर्ण ४ पराशर ५हारीत ६ क्षारपाणी इन छहा शिष्योंने भी मुनिके कहे आयुर्वेदको ग्रहण किया। यद्यपि महर्षि आत्रेय (पुनर्वसु) जीके उपदेशमे कुछ भेद न था वह सबकेलिये एकसाही था परतु इन ६ शिष्योंमे अग्निवेश सबमे अधिक बुद्धिवाले थे इसलिये प्रथम तत्र (ग्रथ) कर्ता अग्निवेश ही हुए फिर भेल आदि पाचोंने भी अपने २ नामसे संहिताए बनाकर ऋषियोंमे विराजमान आत्रेयजीको (अपने गुरु पुनर्वसुको) सुनाई ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अग्निवेशादि छ॰ संहिताओमे ऋषियोंकी अनुमति।

श्रुत्वासूत्रणमर्थानामृषयःपुण्यकर्म्मणाम् । यथावत्सूत्रितमि-तिप्रहृष्टास्तेऽनुमेनिरे ॥ ३२ ॥ सर्वएवाऽस्तुवस्ताश्चसर्वभूत-हितैषिण॰ । सर्वभूतेष्वनुक्रोशइत्युच्चैरब्रुवन्समम् ॥ ३३ ॥ तपुण्यशुश्रुवु॰ शब्दं दिविदेवर्षय स्थिता । सामरा.परमर्षी-णाश्रुत्वामुमुदिरेपरम् ॥ ३४ ॥ अहोसाध्विितिघोपश्चलोका

त्रीनन्ववादयत् । नभसिरिनग्धगम्भीरोहर्षोद्भूतैरुदीरित. ॥ ॥ ३५ ॥ शिवोवायुर्ववौसर्व्वाभाभिरुन्मीलितादिश' । निपेतु.सजलाश्चैवदिव्याःकुसुमवृष्टय' ॥ ३६ ॥

इनकी वनाईहुई सहिताओंको सुनकर सपूर्ण ऋषि प्रसन्न हुए और मनम कहने-लगे कि वहुत अच्छे प्रकारसे सूत्रोंका क्रम रखकर ग्रथोंको वनायाहै, फिर सपूर्ण सृष्टिके हितैषी वह ऋषि इनकी स्तुति करके कहनेलगे कि आपने सव प्राणियोंपर दया कीहै आपको धन्य है । ऋषियोकी कीहुई इस पवित्र आनदध्वनिको सुनकर स्वर्गके देवता अत्यंत प्रसन्न हुए और वहुत अच्छा हुआ २ यह प्रेमसे कहाहुआ शब्द तीनों लोकोंमें उत्तम गुञ्जार कर्ता हुआ आकाशसे प्रतिशब्द देनेलगा । उस समय कल्याणकारी मद सुगध पवित्र वायु चलनेलगा और सव दिशा प्रकाशमय हो शोभा देनेलगीं देवलोकसे जलसे भीगेहुए सुगंधित दिव्यपुष्पोंकी वृष्टि होनेलगी ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथाग्निवेशप्रमुखान्विविशुर्ज्ञानदेवता' । बुद्धि'सिद्धि'स्मृतिर्मेधाधृतिःकीर्त्ति'क्षमादय. ॥ ३७ ॥ तानिचानुमतान्येषां तन्त्राणिपरमर्षिभिः । भावायभूतसङ्घाना प्रतिष्ठा भुविलेभिरे ॥ ३८ ॥

इसके अनतर इस पुण्य कर्मके फलसे अग्निवेश आदि छहों ग्रथकर्ताओंके शरीरम बुद्धि, सिद्धि स्मृति, मेधा, धृति, कीर्ति, क्षमा, दया, यह ज्ञानदेवता प्रविष्ट हुए अर्थात् यह सव उत्तम गुण उनमें निवास करनेलगे । और ऋषियोंसे सम्मान पाएहुए इनके ग्रथ सपूर्ण मनुष्योंके कल्याणकारक होतेहुए पृथिवीम प्रतिष्ठाको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

आयुर्वेदका लक्षण ।

हिताहितंसुखंदुःखमायुस्तस्यहिताहितम् ।
मानञ्चतच्चयत्रोक्तमायुर्वेदःसउच्यते ॥ ३९ ॥

अव प्रथम आयुर्वेद शब्दकी निरुक्ति कहतेहै । जिस शास्त्रम आयुके हित(अच्छी) अवस्था, अहित (खराव) अवस्था, सुखयुक्त अवस्था, दु खयुक्त अवस्था आयु और आयुका हित, अहित, तथा आयुका परिमाण कथन कियाहुआ हो या यों कहिये जिसके द्वारा यह सव जानाजाय उसको आयुर्वेद कहतेहै ॥ ३९ ॥

आयुके नाम ।

शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगोधारिजीवितम् ।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्य्यायैरायुरुच्यते ॥ ४० ॥

शरीर, इंद्रिय, मन, आत्मा, इनके सयोगको आयु कहतेहै । उसीको धारी, जीवित, नित्यग, और अनुवध भी कहतेहैं यह आयुके पर्यायवाचक शब्द है ॥४०॥

आयुर्वेदका महत्त्व ।

तस्यायुषःपुण्यतमोवेदोवेदविदामत ।
वक्ष्यतेयन्मनुष्याणांलोकयोरुभयोर्हितः ॥ ४१ ॥

वेदके जाननेवालोंने उस आयुके वेदको अर्थात् इस आयुर्वेद (वैद्यक) शास्त्रको परमोत्तम मानाहै, यह मनुष्योंके लिये इस लोकमें और परलोकमें परमहितकारी है। सो उसीका यहा वर्णन करतेहै ॥ ४१ ॥

वृद्धिह्रासके कारण व सामान्य और विशेषके लक्षण ।

सर्व्वदासर्व्वभावानासामान्यंवृद्धिकारणम् ।
ह्रासहेतुर्विशेषश्चप्रवृत्तिरुभयस्यतु ॥ ४२ ॥
सामान्यमेकत्वकरविशेषस्तुपृथक्त्वकृत् ।
तुल्यार्थताहिसामान्यविशेषस्तुविपर्य्यय ॥ ४३ ॥

द्रव्य गुण कर्मो की समानता उनकी वृद्धि करनेमे कारण होतीहै जैसे चिकने पदार्थके सेवनसे उसीके समान चिकने स्वभाववाली मेदकी वृद्धि होती है । और शोकातुर अवस्थामे शोकयुक्त बात सुननेसे शोकवृद्धि होती है सर्दीके मौसममें उसीके स्वभाववाली शीतल पवन चलनेसे शीतकी वृद्धि होती है । आठ घटोंमें समान गुणवाले दो घट और मिलादेनेसे घटोंकी सख्याम वृद्धि होती है, वातप्रकृतिवालेको वातकारक समानगुणवाले पदार्थसे वातवृद्धि होती है । इसी प्रकार द्रव्यादिकोंकी असमानता घटानेका कारण है, जैसे-मेदसे असमान गुणवाला रूक्षपदार्थ मेदको घटाने (ह्रास) का कारण होताहै । शोकातुर चित्तम आनददायक बातके आनेसे शोक कम होताहै इस प्रकार द्रव्य गुण कर्मोंकी समानतासे प्रवृत्तिवृद्धि और असमानतासे प्रवृत्तिह्रासका कारण होती है । यहा सामान्यका अर्थ एकत्व करनेवाला जानना । और विशेषका अर्थ अलग २ करनेवाला जानना । तुल्यार्थता जैसे मेदमें

स्नेह तुल्य अर्थ करताहै उसको सामान्य कहतेहै ओर विपर्यय अर्थात् उलटे अर्थके करनेवालेको विशेष कहते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

आयुर्वेदका अधिकार।

सत्त्वमात्माशरीरश्चत्रयमेतत्त्रिदण्डवत् । लोकस्तिष्ठतिसयोगात्तत्रसर्व्वंप्रतिष्ठितम् ॥ ४४ ॥ सपुमाश्चेतनतच्चतच्चाधिकरण स्मृतम् । वेदस्यास्यतदर्थंहिवेदोऽयसम्प्रकाशित ॥ ४५ ॥

मन शरीर आत्मा इन तीनोंका तीन दडोंकी समान परस्पर सबध है इन तीनोके सबधको वैद्यक शास्त्रमे पुरुष कहाजाताहै और सपूर्ण ससार इन तीनोंके सबधसे ही है। इस वैद्यक शास्त्रमे इन तीनोके सबधरूप पुरुषको ही पुमान्, चेतन और आयुर्वेदका अधिकरण मानते है। और इस पुरुषके लिये ही इस आयुर्वेदका प्रकाश कियागयाहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

द्विविध द्रव्य।

खादीन्यात्ममामन कालोदिशश्चद्रव्यसग्रह । सेन्द्रियंचेतनंद्रव्यंनिरिन्द्रियमचेतनम् ॥ ४६ ॥

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, आत्मा, मन, काल, दिशा, इन सबको द्रव्य कहते है । इनमें भी इन्द्रियवालोंको चेतन और इन्द्रियरहितको अचेतन कहतेहैं। मनुष्य पशु पक्षी आदि इन्द्रियवालोंको चेतन और वृक्षादि जड पदार्थोंको अचेतन कहते है ॥ ४६ ॥

गुण कर्म।

सार्थागुर्वादयोबुद्धि प्रयत्नान्ता परादय । गुणा प्रोक्ता प्रयत्नादिकर्म्मतेष्विदमुच्यते ॥ ४७ ॥

शब्द, स्पर्श, गध, रस, रूप, (यह अर्थ अर्थात् इन्द्रियाके विषय कहेजातेह) और गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मद, तीक्ष्ण, स्थिर, सर, मृदु, कठिन, विशद, पिच्छल, खर, मसृण, स्थूल, सूक्ष्म, सान्द्र, द्रव यह वीस द्रव्यके गुण है । बुद्धि, इच्छा, द्वेष, सुख, दु'ख, प्रयत्न, पर, अपर, युक्ति, सख्या, सयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिमाण, सस्कार, अभ्यास यह सब गुण कहाते है और प्रयत्न चेष्टा आदि कर्म कहे जाते है ॥ ४७ ॥

वायुके गुण और शमनका उपाय ।

रूक्षःशीतोलघुःसूक्ष्मश्चलोऽथविशदःखरः ।
विपरीतगुणैर्द्रव्येर्मारुतःसंप्रशाम्यति ॥ ५७ ॥

तीनों दोषोंमें प्रथम वायुका स्वभाव लिखतेहैं । वायु रूक्ष, शीतल, लघु, सूक्ष्म, चचल, विशद, खर, होताहै । इसके विपरीत स्निग्ध, उष्ण, आदि गुणोवाले द्रव्योंसे शांतिको प्राप्त होताहै ॥ ५७ ॥

पित्तके गुण और शमनोपाय ।

सस्नेहमुष्णंतीक्ष्णंचद्रवमम्लंसरंकटु ।
विपरीतगुणैःपित्तद्रव्यैराशुप्रशाम्यति ॥ ५८ ॥

पित्त-स्नेहयुक्त, उष्ण, तीक्ष्ण, पतला, खट्टा, सारक और कटुस्वभाववाला है। अपनेसे विपरीत रूक्ष, शीतादिगुणवाले द्रव्योंसे शांत होताहै ॥ ५८ ॥

कफके गुण और शमन उपाय ।

गुरुशीतमृदुस्निग्धमधुरस्थिरपिच्छिलाः ।
श्लेष्मणःप्रशमयान्तिविपरीतगुणैर्गुणाः ॥ ५९ ॥

कफ-भारी, शीतल, मृदु, चिकना, मधुर, स्थिर, पिच्छिलस्वभाववाला है और अपनेसे विपरीत हलके, उष्ण, चरपरे, रूक्ष गुणोंवाले द्रव्योंसे शांत होताहै ॥ ५९ ॥

चिकित्साका साधारण निर्देश ।

विपरीतगुणैर्देशमात्राकालोपपादितैः ।
भेषजैर्विनिवर्त्तन्तेविकाराःसाधुसंमताः ॥ ६० ॥
साधनंनत्वसाध्यानाव्याधीनामुपदिश्यते ।
भूयश्चातोयथाद्रव्यंगुणकर्मप्रवक्ष्यते ॥ ६१ ॥

कारण और कारणसे उत्पन्नहुई व्याधिसे विपरीत गुणवाले द्रव्योंको देश काल और मात्रा विचारकर उपयोग करनेसे साध्य व्याधियोंकी शांति होतीहै । परन्तु जो संपूर्ण लक्षणोंसे असाध्य रोग हैं उनकी शांति नहीं होती । फिर भी द्रव्योंमें गुण तथा कर्मको कथन करतेहैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

रसस्वरूपनिदर्शन ।

रसनार्थोरसस्तस्यद्रव्यमापः क्षितिस्तथा ।
निर्वृत्तौचविशेषेचप्रत्ययाः खादयस्त्रयः ॥ ६२ ॥

रसका स्वाद जीभद्वारा होताहै क्योंकि रस, रसना (जीभ) इंद्रियका विषय है। उस रसका कारण पृथ्वी और जल ही मानेगयेहैं। वैसे तो उस रसमें कमी और अधिकता पहुचानेमें आकाश, अग्नि, वायु, इन तीनोंको भी कारण मानाहै ॥ ६२ ॥

रसोंकी संख्या और नाम।

स्वादुरम्लोऽथलवणोकटुकस्तिक्त एवच।
कषायश्चेतिषट्कोऽयंरसानांसंग्रहःस्मृतः ॥ ६३ ॥

मीठा, खट्टा, नमकीन, चर्परा, कड़ुवा, कषेला, यह छः रस है ॥ ६३ ॥

रसोंका कार्य।

स्वाद्वम्ललवणावायुकषायस्वादुतिक्तकाः।
जयन्तिपित्तश्लेष्माणकषायकटुतिक्तकाः ॥ ६४ ॥

इनमें मीठा, खट्टा, नमकीन, यह तीन रस वायुको शांत करतेहै। कषेला, मीठा, कड़ुवा, यह तीन रस पित्तको शांत करतेहै। कषेला, चर्परा, कड़ुवा, यह तीन कफको शांत करतेहै ॥ ६४ ॥

द्रव्यके तीन प्रकार।

किञ्चिद्दोषप्रशमनंकिञ्चिद्धातुप्रदूषणम्।
स्वस्थवृत्तौहितंकिञ्चिद्द्रव्यंत्रिविधमुच्यते ॥ ६५ ॥

कोई द्रव्य दोषोंको शमन करनेवाला होताहै कोई द्रव्य ऐसे है जो रस रक्त आदि धातुओंको दूषित करतेहै। कोई ऐसे है जो स्वस्थ अवस्थाकी रक्षा रखतेहै। इसप्रकार द्रव्य तीन प्रकारके होतेहै ॥ ६५ ॥

जाङ्गमादिभेदसे फिर तीनप्रकार।

तत्पुनस्त्रिविधंज्ञेयंजाङ्गमौद्भिदपार्थिवम् ॥ ६६ ॥

फिर वह द्रव्य जंगम, औद्भिद, पार्थिव, इन भेदोंसे तीन प्रकारके है ॥ ६६ ॥

जाङ्गमवर्णन।

मधूनिगोरसाःपित्तवसामज्जासृगामिषम्। विण्मूत्रचर्मरेतोऽस्थिस्नायुशृङ्गखुरानखाः। जङ्गमेभ्यः प्रयुज्यन्तेकेशालोमानिरोचना ॥ ६७ ॥

उनमें–शहद, दूध पित्त चर्बी, मज्जा, रक्त, मांस, मल, मूत्र, चर्म, वीर्य, हड्डियां, स्नायु, सींग, नख, खुर, केश, लोम, रोचन यह जंगम द्रव्य मानेजातेहै ॥ ६७ ॥

हस्तिपर्णिनी । एतानिवमनेचैवयोज्यान्यास्थापनेषु च ॥८२॥ दशयान्यवशिष्टानितान्युक्तानिविरेचने । नामकर्म्मभिरुक्ता-निफलान्येकोनविंशति ॥ ८३ ॥

शंखपुष्पी, वायविडंग, त्रपुष (खीरा), मैनफल, अनूपज और जलज, मुलहटी, धामार्गव (अपामार्ग या कड्डतुम्बी), इक्ष्वाकु (कडुई तोरई), जीमूत और कृतवेधन (यह दोनो भी तोरईके भेद हैं) कजा, लताकरज, चिरचिटा, हरड, अतःकोटर-पुष्पी, (नीलिनी) हस्तिपर्णीके फल, (मोरट या लाल एरंडका फल), कमीला, अमलतास, और इंद्रजौ यह उन्नीस फलप्रधान है । इनमेंसे कडुई तोरई, कडुई घीया, कडुई तुंबी, कृत वेधन (यह भी तोरईका ही भेद है) मैनफल, इंद्रजौ, खीरा, हस्ति-पर्णी, यह नव द्रव्य वमन और आस्थापनमें काम आते हैं । प्रत्यक्पुष्पी (चिरचिरा) नस्य और वमनमें प्रयुक्त कीजाती है । बाकी दश फलप्रधान द्रव्य विरेचनमें प्रयुक्त किये जाते हैं । इस प्रकार फलप्रधान १९ औषधियोंके नाम और कर्मको कथन किया है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

चारप्रकारके स्नेह ।

सर्पिस्तैलवसामज्जास्नेहोदृष्टश्चतुर्विधः । पानाभ्यञ्जनवस्त्यर्थं नस्यार्थंचैवयोगतः ॥ ८४ ॥ स्नेहनाजीवनावल्यावर्णोपचयव-र्धनाः । स्नेहाह्येतेपुविहितावातपित्तकफापहाः ॥ ८५ ॥

घी, तेल, चरवी, मज्जा, यह चार प्रकारके स्नेह देखनेमे आते है । यह पाय' पीनेमें, मालिश करनेमें, वस्तिकर्ममें, और नस्यमें प्रयुक्त कियेजाते है । यह चतुर्विध स्नेह, स्नेहन, जीवन, वर्णकारक और बलवर्धक हैं तथा वात, पित्त, कफ, इन तीनों दोषोंको दूर करते है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

लवणपंचक ।

सौवर्चलसैन्धवञ्चविडमौद्भिदमेवच । सामुद्रेणसहैतानिपञ्च-स्युर्लवणानिच ॥ ८६ ॥ स्निग्धान्युष्णानितीक्ष्णानिदीपनीय-तमानिच । आलेपनार्थेयुज्यन्तेस्नेहस्वेदविधौतथा ॥ ८७ ॥ अधोभागोर्द्ध्वभागेषुनिरूहेष्वनुवासने । अभ्यञ्जनेभोजनार्थे शिरसश्चविरेचने ॥ ८८ ॥ शस्त्रकर्म्मणिवस्त्यर्थमञ्जनोच्छादने-षुच । अजीर्णानाहयोर्वातेगुल्मेशूलेतथोदरे ॥ ८९ ॥

सचर, सांभा, विड, उद्भिद् (खारी), सामुद्र यह पांच प्रकारके नमक होतेहै, यह चिकने, गर्म, तीक्ष्ण, अत्यंत क्षुधावर्द्धक होते हैं और लेप, स्नेह, स्वेद आदि कर्ममें शरीरके नीचे ऊपरके भागोंमें प्रयुक्त कियेजाते है तथा निरूहण, अनुवासन, अभ्यंग, भोजन, शिरोविरेचन, शस्त्रकर्म, वर्ती, अंजन, उत्सादन, अजीर्ण, अफ़रा, वादी, गोला, शूल, और उदररोग इनमें इनका प्रयोग किया जाता है ॥ ८९ ॥

मूत्राष्टक तथा उपयोग ।

उक्तानिलवणान्यूर्द्धंमूत्राण्यष्टौनिबोधमे । मुख्यानियानिद्दिष्टा-निसर्वाण्यात्रेयशासने ॥ ९० ॥

ऊपर सब लवणोंका कथन करचुके हैं अब आठ प्रकारके मूत्रोंका वर्णन सुनो, जो आठ प्रकारके प्रधान हैं ॥ ९० ॥

अविमूत्रमजामूत्रगोमूत्रमाहिषंतथा । हस्तिमूत्रमथोष्ट्रस्यह-यस्यचखरस्यच ॥ ९१ ॥ उष्णन्तीक्ष्णमथोस्निग्धकटुकलव-णान्वितम् । मूत्रमुत्सादनेयुक्तं युक्तमालेपनेषुच ॥ ९२ ॥ युक्तमास्थापनेयुक्तंमूत्रञ्चापिविरेचने । स्वेदेष्वपिचतद्युक्तमा-नाहेष्वगदेषुच ॥ ९३ ॥ उदरेष्वथचार्शस्सुगुल्मकुष्ठकिलासिषु । तद्युक्तमुपनाहेषुपरिषेकेतथैवच ॥ ९४ ॥ दीपनीयंविषघ्नंचक्रि-मिघ्नंचोपदिश्यते । पांडुरोगोपसृष्टानामुत्तमशर्मंचोच्यते॥९५॥ श्लेष्माणशमयेत्पीतमारुतञ्चानुलोमयेत् । कर्षेत्पित्तमधोभाग-मित्यस्मिन्गुणसंग्रह ॥ ९६ ॥ सामान्येनमयोक्तंतुपृथक्त्वेन प्रवक्ष्यते ॥ ९७ ॥

भेडका मूत्र, बकरीका मूत्र, गोमूत्र, भैंसका मूत्र हथिनीका मूत्र, ऊंटनीका मूत्र, घोडेका मूत्र, गधेका मूत्र, यह आठ मूत्र है । यह-गर्म, तीक्ष्ण, चिकने, कटु, और नमकीन हैं । इन मूत्रोंका उत्सादन,लेप,आस्थापन, विरेचन, स्वेदन, अफरा उदररोग, अर्श, गुल्म, कुष्ठ, किलास, उपनाह (पुल्टिस), परिषेक, इनमे प्रयोग किया जाताहै । तथा अग्निको दीपन करताहै और विष तथा कृमियोंको नष्ट करताहै । इन मूत्रोंका प्रयोग सब किरमके पाण्डुरोगोंमें परम उत्तम मानाहै । इनके पीनेसे कफ शान्त

होताहै । वायुका अनुलोमन होताहै और बढाहुआ पित्त नीचे गमन कर निकल जाताहै । यह सामान्यतासे मूत्रोंके लक्षण कथन कियेहैं । अब विशेषतासे श्रवण करो ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

मेषादिमूत्रके गुण ।

अविमूत्रंसतिक्तंस्यात् स्निग्धपित्ताविरोधिच॥आजकषायमधुरं पथ्यंदोषान्निहन्तिच । गव्यसमधुरंकिञ्चिद्दोषघ्नंक्रिमिकुष्ठ-नुत् ॥ ९८ ॥ कण्डूलंशमयेत्पीतसम्यग्दोषोदरेहितम् । अर्श-शोफोदरघ्नन्तुसक्षारमाहिषंसरम् ॥ ९९ ॥ हस्तिकंलवणमूत्रं हितन्तुक्रिमिकुष्ठिनाम् । प्रशस्तंबद्धविण्मूत्रविषश्लेष्मामयार्श-साम् ॥ १०० ॥ सतिक्तंश्वासकासघ्नमर्शोघ्नचौष्ट्रमुच्यते । वाजिनातिक्तकटुककुष्ठव्रणविषापहम् ॥ १०१ ॥ खरमूत्रमप-स्मारोन्मादग्रहविनाशनम् । इतीहोक्तानिमूत्राणियथासाम-र्थ्ययोगतः ॥ १०२ ॥

भेडका मूत्र-कडुआ, चिकना, गर्म तथा पित्तको कुपित नहीं करनेवाला होताहै । बकरीका मूत्र-कषैला, मीठा, पथ्य, और त्रिदोषनाशक है । गोमूत्र, कषैला, मीठा, कुछ कुछ दोषोंको नष्टकरनेवाला, कृमि तथा कुष्ठको नष्ट कर्ता, खाजनाशक, और पीयाहुआ उदरके सब विकारोंको शांत करताहै । भैसका मूत्र-अर्श, शोथ और उदररोगोंको नष्ट करताहै तथा खारा और दस्तावर है । हस्तीका मूत्र-नमकीन है और कृमि, कुष्ठ और मल मूत्रके अवरोधको नष्ट करताहै, तथा विषविकार, कफ और अर्शवालोंको हित है । ऊंटका मूत्र-कटुतायुक्त, श्वासकासनाशक, और अर्शजित् है । घोडेका मूत्र-कडवा है, चर्परा है, और कुष्ठ, घाव विष, इनको नष्ट करताहै । गधेका मूत्र-मिरगी, उन्माद, ग्रहदोष, इनको नष्ट करताहै । इसप्रकार क्रमपूर्वक मूत्रोंके गुण कथन करदियेहैं ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

भेडी बकरी गाय आदिके दूधोंका वर्णन ।

अतःक्षीराणिवक्ष्यन्तेकर्मचैषांगुणाश्चये । अविक्षीरमजाक्षीरं गोक्षीरमाहिषंचयत् ॥ १०३ ॥ उष्ट्रीणामथनागीनांवडवायाः स्त्रियास्तथा । प्रायशोमधुरंस्निग्धंशीतंस्तन्यंपयःस्मृतम् ॥१०४॥

प्रीणनंवृंहणवृष्यमेध्यवल्यंमनस्करम् । जीवनीयश्रमहरश्वासकासनिवर्हणम् ॥ १०५ ॥ हन्तिशोणितपित्तञ्चसन्धानविहतस्यच । सर्वप्राणभृतासात्म्यशमनशोधनंतथा ॥ १०६ ॥ तृष्णाघ्नदीपनीयचश्रेष्ठक्षीणक्षतेषुच । पाण्डुरोगेऽम्लपित्तेचशोषेगुल्मेतथोदरे ॥१०७॥ अतीसारज्वरेदाहेश्वयथौचविधीयते॥ योनिशुक्रप्रदोषेषुमूत्रेष्वप्रसरेषुच ॥ १०८ ॥ पुरीषेग्रथितेपथ्य वातपित्तविकारिणाम् । नस्यालेपावगाहेषुवमनास्थापनेषुच ॥ ॥ १०९ ॥ विरेचनेस्नेहनेचपयःसर्वत्रयुज्यते । यथाक्रमक्षीरगुणानेकैकस्यपृथक्पृथक् ॥ ११० ॥ अन्नपानादिकेऽध्यायेभूयोवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १११ ॥

अब दूधोंका और उनके गुण कर्म का कथन करतेहैं । भेड, बकरी, गौ, भैंस ऊँटनी, हथनी, घोडी, स्त्री,इन आठोंके दूध-मीठे, चिकने, शीतल, स्तनोंमें दूध बढानेवाले, पालनकर्ता, मांसवर्द्धक, वीर्यजनक, बुद्धि, बल, मनको ताकत देनेवाले, जीवनकर्ता, श्रमहर्ता, श्वासकासनाशक, रक्तपित्तके हरनेवाले, संधानकर्ता (टूटे स्थानको जोडनेवाले), संपूर्ण प्राणियोंको सात्म्य, दोषोंको शमन और शोधन करनेवाले, तृषानाशक, दीपनीय है और क्षतक्षीणमें अत्यंत पथ्य है तथा पाण्डुरोग, अम्लपित्त, शोष, गुल्म, उदररोग, अतिसार, ज्वर, दाह, सूजन, योनिदोष, शुक्रदोष, मूत्ररोग, मलकी गांठसी बंधना, इनमें पथ्य है और वात पित्तके रोगियोंको हितकर्ता है,इनका प्रयोग नस्य, लेप, अवगाहन, वमन, आस्थापन, विरेचन, स्नेहन इन कर्मोंमें किया जाताहै । इसप्रकार सामान्यतासे दूधोंके गुणोंका वर्णन करदियाहै । आगे अन्नपानादिवर्णनाध्यायमें सबके गुणोंका अलग २ वर्णन कियाजायगा ॥ १०३-१११ ॥

वहेडा और थूहरके दूधके गुण ।

अथापरेत्रयोवृक्षाः पृथग्येफलमूलिभिः। स्नुह्यर्काश्मन्तकास्तेषामिदंकर्म्मपृथक्पृथक् ॥ वमनेऽश्मन्तकंविद्यात्स्नुहीक्षीरं विरेचने ॥ ११२ ॥

अब फलप्रधान व मूलप्रधान वृक्षोंसे अन्य तीन वृक्षोंका वर्णन करतेहैं । वह यह है- १ थोहर, २ आक, ३ अश्मंतक (कोविदार) इनमें अश्मंतक वमन करानेमें, थोहरका दूध रेचन करानेमें ॥ ११२ ॥

अर्कक्षीरके गुण ।

क्षीरमर्कस्यविज्ञेयवमनेसविरेचने ॥ ११३ ॥

आकका दूध विरेचन, और वमनमें प्रयुक्त किया जाताहै ॥ ११३ ॥

विरेचनीय वृक्ष ।

इमांस्त्रीनपरान्वृक्षानाहुर्येषांहितास्त्वचः । पूतिकः कृष्णगन्धाचतिल्वकश्चतथातरु । विरेचनेप्रयोक्तव्यःपूतिकस्तिल्वकस्तथा ॥ ११४ ॥ कृष्णगन्धापरीसर्पेशोथेष्वर्शस्सुचोच्यते । दद्रुविद्रधिगण्डेषुकुष्ठेष्वप्यलजीषुच ॥ ११५ ॥

जिनकी त्वचा प्रयुक्त कीजाती है इन तीन वृक्षोंका और कथन कियाहै । वह यह हैं-१ पूतिकरज, २ सुहाँजना, ३ पठानीलोध । इनमें पूतिकरज और लोध विरेचन कर्ममें प्रयुक्त करने चाहिये । और सुहाँजना-विसर्प, शोथ और अर्श रोगोंमें प्रयुक्त कियाजाताहै ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

षट्प्रकार वृक्ष गुण कथन ।

षड्वृक्षाञ्शोधनानेतानपिविद्याद्विचक्षणः । इत्युक्ताःफलमूलिन्यःस्नेहाश्चलवणानिच ॥ ११६ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि थोहर, आँक, अश्मतक, पूतिकरज, सुहाजना, लोध, इन छः वृक्षोंको दद्रु, विद्रधि, गलगंड, कुष्ठ, अलजी, (अजीर्णरोगका भेद और पादरोग) और संशोधन कर्ममें प्रयुक्त करे ॥ ११६ ॥

वृक्षका किसकिसप्रकारका उपयोग होताहै ।

मूत्रंक्षीराणिवृक्षाश्चषड्येदृष्टाःपयस्त्वचः ॥ ११७ ॥

इसप्रकार १९ फलप्रधान द्रव्य १६ मूलप्रधान, ४ स्नेह, ५ लवण, ८ मूत्र, ८ दूध, और जिनके दूध व त्वचाका वर्णन कियाहै वह ६ वृक्ष इन सबका वर्णन किया जा चुकाहै ॥ ११७ ॥

गडरिये आदियोंसे औषधिका ज्ञान ।

ओषधीर्नामरूपाभ्यांजानतेह्यजपावने ।

अविपाश्चैवगोपाश्चयेचान्येवनवासिनः ॥ ११८ ॥

अब ओषधियोंके जाननेकी विधि लिखते हैं कि बकरी, भेड और गौओंके चरानेवालोंसे और वनमें रहने और विचरनेवालोंसे वनौषधियोंके नाम और रूप जानना चाहिये ॥ ११८ ॥

औषधियोंके ज्ञानकी कठिनता ।

ननामज्ञानमात्रेणरूपज्ञानेनवापुनः ।
ओषधीनांपरांप्राप्तिंकश्चिद्वेदितुमर्हति ॥ ११९ ॥

क्योंकि कोई भी मनुष्य संपूर्ण औषधियोंके नाम और रूपोंको नहीं जान-सकता कोई २ पुरुष ऐसे होंगे जो बहुतसी औषधियोंको जानते है परन्तु उनमें उसीको ओषधियोंके तत्त्वका जाननेवाला कहना चाहिये जो उनके नाम रूप और प्रयोग करनेकी विधि जानता हो ॥ ११९ ॥

औषधी जाननेवालेकी प्रशसा ।

योगज्ञस्तस्यरूपज्ञस्तासांतत्त्वविदुच्यते ।
किंपुनर्योविजानीयादोषधीः सर्वथाभिषक् ॥ १२० ॥

जो वैद्य औषधियोंका नाम रूप प्रयोग और किस २ कालमें कौन २ औषधि कैसे २ संपादन कर उसका कैसे २ प्रयोग करना यह विधि जानताहै उसका तो कहना ही क्या है अर्थात् उसको धन्य है ॥ १२० ॥

सर्वोत्तम वैद्य ।

रूपन्तासान्तुयोविद्याद्देशकालोपपादितम् । पुरुषंपुरुषंवीक्ष्यस विज्ञेयोभिषक्तम ॥ १२१ ॥

हरेक मनुष्यको देख देख कर शास्त्रविधिसे जो उसके अनुकूल हो वह औषध देना चाहिये ॥ १२१ ॥

विनजानी औषध विषतुल्य ।

यथाविषयथाशस्त्रंयथाग्निरशनिर्यथा । तथौषधमविज्ञातंविज्ञा-तममृतंयथा ॥ १२२ ॥ औषधमनभिज्ञातंनामरूपगुणैस्त्रि भि । विज्ञातंवापिदुर्युक्तयुक्तिवाधेनभेषजम् । योगादपिविष तीक्ष्णमुत्तमभेषजंभवेत् ॥ १२३ ॥ भेषजंचापिदुर्युक्तंतीक्ष्णं सम्पद्यतेविषम् । [illegible] जम् ॥ १२४ ॥

क्योंकि विना जानी औषधका प्रयोग कियाहुआ जैसे विष, शस्त्र, अग्नि, विद्युत मनुष्यको मारडालते हैं ऐसे अनर्थकारक होताहै । विचारकर जानीहुई औषधी अमृतके समान गुणको करती है । जो औषध नाम, रूप, गुण इन तीनोंसे जानीहुई नहीं अथवा जानीहुई होनेपर भी अनुचित रीतिसे प्रयुक्त कीगई हो वह औषधी महाअनर्थको करती है । इसीप्रकार अच्छीतरह जानकर प्रयोगमें लायाहुआ विष भी उत्तम औषधीके गुणको करताहै । और उत्तम औषधी अनुचित विधिसे देनेसे विषकी समान मारडालती है । इसलिये वैद्योंको उचित है कि विना युक्तिसे कभी औषधीका प्रयोग न करे ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

मूर्खवैद्यके औषधका निषेध ।

सदोषमातुरकुर्य्यान्नत्वज्ञमतमौषधम् । दुःखितायशयानाय श्रद्दधानायरोगिणे ॥ १२६ ॥ योभेषजमविज्ञायप्राज्ञमानीप्रयच्छति । तस्याथमृत्युदूतस्यदुर्मतेस्त्यक्तधर्मण ॥ ॥ १२७ ॥ नरोनरकपातीस्यात्तस्यसम्भाषणादपि । वरमाशीविषविषकथितताम्रमेववा ॥ १२८ ॥ पीतमत्यग्निसन्तसा भक्षितावाप्ययोगुडाः । नतुश्रुतवतावेदविभ्रताशरणागतात् ॥ १२९ ॥ गृहीतमन्नपानवावित्तवारोगपीडितात् । भिषक्बुभूर्षुर्मतिमानतः स्याद्गुणसम्पदि ॥ १३० ॥ परंप्रयत्नमातिष्ठेत्प्राणद स्याद्यथानृणाम् । तदेवयुक्तभैषज्ययदारोग्यायकल्पते ॥ १३१ ॥ सचैवभिषजाश्रेष्ठोरोगेभ्योय प्रमोचयेत् । सम्यक्प्रयोगंसर्वेषासिद्धिराख्यातिकर्म्मणाम् ॥ १३२ ॥ सिद्धिराख्यातिसर्वैश्चगुणैर्युक्ताभिषक्तमम् इति ॥ १३३ ॥ तत्र श्लोका । आयुर्वेदागमोहेतुरागमस्यप्रवर्त्तनम् । सूत्रणं साभ्यनुज्ञानमायुर्वेदस्यनिर्णय ॥ १३४ ॥ सम्पूर्णकारणंज्ञेयं आयुर्वेदप्रयोजनम् । हेतवश्चैवदोषाश्चभेषजसंग्रहेणच ॥ ॥ १३५ ॥ रसा.सप्रत्ययद्रव्यास्त्रिविधोद्रव्यसंग्रह । मूलिन्यश्चफलिन्यश्च स्नेहाश्चलवणानिच ॥ १३६ ॥

मूत्रक्षीराणिवृक्षाश्चपड्येक्षीरत्वगाश्रया. । कर्माणिचैपासर्वेपा योगायोगगुणागुणा' ॥ १३७ ॥ वैद्यापवादोयत्रस्था सर्वेचभिपजांगुणा. । सर्वमेतत्समाख्यातंपूर्वेऽध्यायेमहर्षिणा ॥ १३८ ॥

इति दीर्घजीविताध्याय' ॥ १ ॥

जीवन और आरोग्यताकी इच्छावालेको कभी अयोग्यरीतिसे औपध सेवन न करना चाहिये । यदि इन्द्रलोकसे वज्र गिरकर मनुष्यके शिरम लगे वह अच्छा है क्योंकि उससे भी शायद मनुष्य जीवित रहसकता हो, परतु अज्ञ (मूर्ख) की दीहुई औपधी उस वज्रसे भी अधिक दुर्गुण करती है अर्थात् मारही डालती है । जो वैद्य दुःखसे व्याकुल शय्यापर पडे श्रद्धालु रोगीको विनाजानी औपधी देदेताहै उस धर्मरहित, पापी, नरकगामी मृत्युके दूतसे बोलनेमे भी मनुष्य नरकगामी होजाता है । सापविप पीलेना अच्छा है, लाल कियाहुआ तपाहुआ ताम्र भी पीना अच्छा है परतु पाखडसे विद्वान् वैद्यकासा रूप धारणकर शरणागत रोगियोको भ्रममें डालकर उनसे अन्न, पान, धन आदि लेना कदापि उचित नहीं । इसलिये वैद्य होनेकी इच्छावाला बुद्धिमान् मनुष्य पहले जो २ वैद्यके गुण कहेहैं (आगे लिखेंगे) उनको अपनेमें उत्पन्न करे फिर मनुष्योंके प्राणोंकी रक्षाके लिये सदैव यत्नवान् रहै क्योंकि वैद्य मनुष्योंके प्राणोंका देनेवाला होताहै । औषधी वही उत्तम होतीहै जो रोगसे छुडाकर आरोग्य बनावे । और जो रोगोंसे छुडादे उसीको उत्तम वैद्य कहतेहैं । सपूर्ण कर्मोका विधिवत् प्रयोग कियाहुआ सपूर्ण गुणोंसे युक्त वैद्यको सिद्धि और ख्यातिको देताहै ॥ १२६–१३३ ॥

अब इस अध्यायका उपसहार कहतेहै इस अध्यायम आयुर्वेदका आगमन, और उसके आनेका कारण, आयुर्वेदकी प्रवृत्ति, अग्निवेशादिकोका सहिताए बनाना, आयुर्वेदका निर्णय, सपूर्ण कारण और कार्य,आयुर्वेदका प्रयोजन, हेतु, दोप, सक्षेपसे औपधसग्रह कथन, छःरस, द्रव्य, तीन प्रकारका द्रव्यसग्रह, फलप्रधान, मूलप्रधान द्रव्य, स्नेह, लवण, मूत्राष्टक, दूधवर्ग, छ. वृक्ष जिनके दूध और छिल्के काम आतेहै । इन सबके कर्म तथा योग, अयोग, गुण, अगुण, वैद्यके दोप और वैद्यकी सिद्धि ख्यातिका प्रकार यह सब इस प्रथमाध्यायमें वर्णन कियाहै ॥ १३५–१३८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतान्फलाउनिवासि-
वैद्यपचानन प० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषार्टीकायां
दीर्घजीवितीयो नाम प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

प्रतिज्ञावर्णन ।

अथातोऽपामार्गतण्डुलीयमध्यायं व्याख्यास्यामः
इतिह स्माह भगवानात्रेयः ।

भगवान् आत्रेय कहने लगे कि अब हम अपामार्गतण्डुलीय नामक दूसरे अध्यायका कथन करते हैं ॥ १ ॥

शिरोरोग नाशक औषधि ।

अपामार्गस्यबीजानिपिप्पलीर्मरिचानिच । विडङ्गान्यथशिग्रूणिसर्षपास्तुम्बुरूणिच ॥ १ ॥ अजाजीश्चाजगन्धाश्चपीलून्येलाहरेणुकाम् । पृथ्वीकांसुरसाश्वेताकुठेरकफणिज्जकौ ॥ २ ॥ शिरीषबीजलशुनहरिद्रेलवणद्वयम् । ज्योतिष्मतीनागरञ्चविद्यात्मूर्द्धविरेचने ॥ ३ ॥ गौरवेशिरसःशूलेपीनसेऽर्द्धावभेदके । क्रिमिव्याधौअपस्मारेघ्राणनाशेप्रमोहने ॥ ४ ॥

अपामार्ग के बीज, पीपल, कालीमिर्च, वायविडंग, सुहाजनेके बीज, सरसा, तुंबरु, काला जीरा, अजमोद, पीलू, इलायची, रेणुका, बडी इलायची, तुलसीके बीज, सफेद कोयलके बीज, छोटी तुलसीके बीज, सिरसके बीज, लहसन, दोनों हल्दियें, सेंधा और सचर नमक, मालकांगुनीके बीज, सोंठ, इन सब औषधियोंको शिरोविरेचनमें देवे । मस्तकके भारीपनमें, शिरकी पीडामें, पीनस रोगमें, आधाशीशीमें, मस्तकके कृमियोंमें, अपस्मारमें, गंध लेनेकी शक्तिके जाते रहनेमें, बेहोशीमें, इतने रोगोंमें प्रयोग करे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

वान्तिकारक औषधियां ।

मदनमधुकनिम्बजीमूतकृतवेधनम् । पिप्पलीकुटजेक्ष्वाकूण्येलाधामार्गवाणिच ॥ ५॥ उपस्थितेश्लेष्मपित्तेव्याधावामाशयाश्रये । वमनार्थंप्रयुञ्जीतभिषग्देहमदूषयन् ॥ ६ ॥

मैनफल, मुलैठी, नीम, जीमूत (कडवी तोरईका भेद), कृतवेधन (तोरई), पीपल, इन्द्रजौ, कडुतुम्बी, बडी इलायची, कडुवी तोरई इन औषधियोंको आमाशयमें स्थित

पित्त कफकी व्याधियोंमें जिस प्रकार देह दूषित न हो उस प्रकार वमन करानेके लिये प्रयुक्त करे ॥ ५ ॥ ६ ॥

विरेचक द्रव्य ।

त्रिवृतात्रिफलादन्तीनीलिनींसप्तलावचाम् । कम्पिल्लकगवाक्षीश्वक्षीरिणीमुदकीर्टिकाम् ॥ ७ ॥ पीलून्यारग्वधद्राक्षाद्रवन्तींनिचुलानिच । पक्वाशयगतेदोषेविरेकार्थंप्रयोजयेत् ॥ ८ ॥

निशोत, हरड, बहेडा, आमला, दंती, नीलिनी, सप्तला, वच, कमीला, इंद्रायण, हरी दूधली, करजुआ, पीलू, अमलतास, मुनक्का, छोटीदंती, निचुल (हिंजल) इन सबको पक्वाशयमें स्थित दोष निकालनेको विरेचनके लिये प्रयुक्त करे ॥ ७ ॥ ८ ॥

उदावर्तादिमें देनेयोग्य औषधि ।

पाटलाश्चाग्निमन्थाश्वबिल्वश्योनाकमेवच । काश्मर्य्यंशालपर्णींचपृश्निपर्णीनिदिग्धिकाम् ॥ ९ ॥ बलाश्वदंष्ट्राबृहतीमेरण्डसपुनर्नवम् । यवानकुलत्थान्कोलानिगुडूचीं मदनानिच॥१०॥ पलाशकत्तृणचैवस्नेहाश्चलवणानिच । उदावर्तेविबन्धेपुयुज्यादास्थापनेसदा ॥ ११ ॥

पाढ, अरणी, बेलगिर, सोनापाठा, खमार वृक्ष, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, कटेली, रास्टी, गोखरू, बडीकटेली, एरंड, पुनर्नवा, यव, कुल्थी बेर, गिलोय, मनफल, पलास, रोहिसतृण, और चतु:स्नेह, पचलवण, इनको-उदावर्त, मल मूत्र का अवरोध तथा आस्थापन, वस्तीकर्म आदिमें प्रयुक्त करे ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

वातनाशक पांचकर्मिक संग्रह ।

अतएवौषधगतात्सकल्प्यमनुवासनम् । मारुतघ्नमितिप्रोक्त. सग्रंह पाञ्चकर्मिक ॥ १२ ॥ तान्यपस्थितदोषाणास्नेहस्वेदोपपादने । पञ्चकर्माणिकुर्वीतमात्राकालौविचारयन् ॥ १३ ॥ मात्राकालाश्रयायुक्ति सिद्धिर्युक्तौप्रतिष्ठिता । तिष्ठत्युपरियुक्तिज्ञोद्रव्यज्ञानवतासदा ॥ १४ ॥

और यही उपरोक्त द्रव्य अनुवासनवस्तिमें भी प्रयुक्त किये जाते है । तथा यही द्रव्य वातनाशक होनेसे पचकर्मोंमें प्रयुक्त किये जाते है । जिन मनुष्योंके शरीरोंमेंसे दोष निकालना हो उनको पहले स्नेहन स्वेदन कराकर फिर मात्रा और कालका विचार

रखते हुए "वमन, विरेचन, नस्य, निरूहण, अनुवासन" यह पचकर्म करावे । औपधीकी मात्रा और समयका विचार युक्तिके अधीन है जो बुद्धिमान् वैद्य युक्तिद्वारा विचारकर काम करताहै उसीको सिद्धिकी प्राप्ति होती है । औपधी जाननेवाले वैद्योंमें युक्तिक्रम जाननेवाला वैद्य सदा शिरोमणि रहताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

यवागुगुण।

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामियवागूर्विविधौषधाः । विविधानाविकाराणांतत्साध्यानानिवृत्तये ॥ १५ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । यवागूर्दीपनीयास्याच्छूलघ्नीचोपसाधिता ॥१६॥

अब अनेक प्रकारकी औपधियासे सिद्ध कीहुई यवागुओंका वर्णन जो रोग यवागूद्वारा शान होते है उन रोगोंकी शातिके लिये करते है। पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, इन पाचोमे सिद्ध कीहुई यवागू अग्निको दीपन करतीहै और उदरके शूलको नष्ट करती है ॥ १५ ॥ १६ ॥

दधित्थबिल्वचाङ्गेरीतक्रदाडिमसाधिता ।
पाचनीग्राहणीपेयासवातेपाञ्चमूलिका ॥ १७ ॥

कैथ, बिल्व, चूका, तक्र (बलोई हुई दही), अनारदाना, इनसे सिद्ध कीहुई यवागू पाचन और सग्राही है । लघुपचमूलसे सिद्ध कीहुई यवागू वातातिसारमें हितकारक है ॥ १७ ॥

शालपर्णीबलाबिल्वैः पृश्निपर्ण्याचसाधिता ।
दाडिमाम्लाहितापेयापित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ १८ ॥

शालिपर्णी, खरटी, बिल्वगिरी, पृष्ठपर्णी, इनसे सिद्ध कीहुई यवागू खट्टे अनारसे खट्टी करके पीहुई यवागू पित्त कफके अतिसारमें हितकारक है ॥ १८ ॥

पयस्यर्धोदकेछागेह्रीवेरोत्पलनागरैः ।
पेयारक्तातिसारघ्नीपृश्निपर्ण्याचसाधिता ॥ १९ ॥

बकरीके दूधमें दूधसे आधा जल मिलाकर उसम सुगधवाला, नीलोफर, सोंठ पृष्ठपर्णी, इनसे सिद्ध कीहुइ पेया रक्तातिसारको नष्ट करती है ॥ १९ ॥

दद्यात्सातिविषापेयासामेसाम्लामनागराम् ।
श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यामूत्रकृच्छ्रेसफाणिताम् ॥ २० ॥

अनारके रससे खट्टी कीहुई और अतीस तथा सोंठसे सिद्ध कीहुई पेया आमातिसारमें देना चाहिये। गोखरू और कटेलीसे सिद्ध कीहुई पेयामें फाणित मिलाकर मूत्रकृच्छ्रकी शांतिके लिये देवे ॥ २० ॥

विडङ्गपिप्पलीमूलशिग्रुभिर्मरिचेनच ।
तक्रसिद्धायवागूःस्यात्क्रिमिघ्नीससुवर्चिका ॥ २१ ॥

बायविडंग, पीपलामूल, सुहाजना, काली मिर्च, और तक्र इनसे सिद्ध कीहुई पेयामें सचर नमक मिलाकर पीनेसे पेटके कृमि नष्ट होते है ॥ २१ ॥

मृद्वीकाशारिवालाजपिप्पलीमधुनागरैः ।
पिपासाघ्नीविषघ्नीचसोमराजीविपाचिता॥ २२ ॥

मुनक्का, सारिवा, धानोंकी खील, पीपल, सोंठ इनसे सिद्ध कीहुई पेया शहद मिलाकर पीनेसे प्यासको शांत करती है। बावचीसे सिद्ध कीहुई पेया विषविकारको शांत करती है ॥ २२ ॥

सिद्धावराहनिर्यूहेयवागूर्बृंहणीमता ।
गवेधुकानाम्भृष्टानाकर्षणीयासमाक्षिका ॥ २३ ॥

वाराहीकन्दसे सिद्ध कीहुई पेया देहको पुष्ट करती है। गवेधुका (स्पिंयोंका अन्न) को भूनकर उसकी पेयाको ठंडाकर शहद मिलाकर पीनेसे स्थूलता नष्ट होती है ॥ २३ ॥

सर्पिष्मतीबहुतिलास्नेहनीलवणान्विता ।
कुशामलकनिर्यूहेश्यामाकानांविरूक्षणी ॥ २४ ॥

घृत और बहुतसे तिलोंकी सिद्ध कीहुई पेया लवण युक्त कर पीनेसे शरीर चिकना होताहै। कुशा और आमलोंसे सिद्ध कीहुई श्यामाकके चावलोंकी पेया शरीरको रूखा करती है ॥ २४ ॥

दशमूलीशृताकासहिक्काश्वासकफापहा ।
यमकेमदिरासिद्धापक्वाशयरुजापहा ॥ २५ ॥

दशमूलसे सिद्ध कीहुई यवागू-खांसी, हिचकी, श्वास, और कफको नाश करती है। घृत, तेल, मद्य इनके साथ सिद्ध कीहुई यवागू पक्वाशयके सब रोगोंको नष्ट करती है ॥ २५ ॥

शाकैर्मांसैस्तिलैर्माषैःसिद्धावर्चोनिरस्यति ।
जम्ब्वाम्रास्थिदधित्थाम्लबिल्वैःसाग्राहिकीमता ॥ २६ ॥

फलपत्रोंके शाक, मास तिल, उडद, इनसे सिद्ध हुई यवागू मलको निकालती है। जामुन, आमकी गुठली, कैथका गुद्दा, काजी, बेलगिर, इनसे सिद्ध यवागू सग्राही (दस्तरोकनेवाली) होती है ॥ २६ ॥

क्षारचित्रकहिङ्ग्वम्लवेतसैर्भेदनीमता ।
अभयापिप्पलीमूलविश्वैर्वातानुलोमनी ॥ २७ ॥

खार (जवाखार), चीता, हींग, अम्लवेत इनसे बनाई हुई यवागू भेदिनी (दस्तावर) होती है । हरड, पीपलामूल, सोंठ इनसे सिद्ध यवागू वायुको अनुलोमन करती है ॥ २७ ॥

तक्रसिद्धायवागूःस्याद्घृतव्यापत्तिनाशिनी ।
तैलव्यापदिशस्तातुतक्रपिण्याकसाधिता ॥ २८ ॥

तक्र (मट्ठा) से सिद्ध कीहुई यवागू अधिक घृत खानेसे पैदाहुए विकारको शात करती है । ऐसे ही तिलोंकी खल और छाछसे सिद्ध यवागू तेलके खानेसे हुए विकारोंकी शाति करती है ॥ २८ ॥

गव्यमांसरसैःसाम्लाविषमज्वरनाशिनी ।
कण्ठ्यायवानायमकैपिप्पल्यामलकैःश्रिता ॥ २९ ॥

हरिणके मासरसके और गोदुग्धसे सिद्ध और अनारदानेसे खट्टी कीहुई यवागू विषमज्वरको नष्ट करती है । घृत, तेल, पीपल और आँवलाके साथ सिद्ध जौवोंकी यवागू कठके रोगोंमे हितकारी है ॥ २९ ॥

ताम्रचूडरसेसिद्धारेतोमार्गरुजापहा ।
समाषविदलावृष्याघृतक्षीरोपसाधिता ॥ ३० ॥

मुर्गेके माससे सिद्ध पेया वीर्यमार्गके रोगोको शात करती है । उडदकी दाल, घी, और दूधकी पेया वीर्यको उत्पन्न करती है ॥ ३० ॥

उपोदिकादधिभ्यान्तुसिद्धामदविनाशिनी ॥
क्षुधंहन्यादपामार्गक्षीरगोधारसेश्रिना ॥ ३१ ॥

पोईका शाक और दहीसे सिद्ध यवागू उन्मत्तताको नष्ट करतीहै । अपामार्गके बीज, दूध और गोधाबूटीके रस अथवा गोवाके मासके रससे सिद्ध यवागू क्षुधाको नष्ट करती है ॥ ३१ ॥

द्वितीयाध्याय विषय वर्णन ।

तत्रश्लोकाः ॥ अष्टाविंशतिरित्येतायवाग्वःपरिकीर्तिता. । पञ्चकर्माणिचाश्रित्यप्रोक्तोभैषज्ज्यसंग्रहः ॥ ३२ ॥ पूर्वंमूलफलज्ञानहेतोरुक्तयदौषधम् । पञ्चकर्माश्रयज्ञानहेतोस्तत्कीर्त्तितंपुन. ॥ ३३ ॥

इस प्रकार इस अध्यायमे अट्ठाईस प्रकारकी यवागुओंका और पंचकर्मके आश्रयीभूत औषधियोंका कथन कियाहै । जो पहले मूलफलके ज्ञानार्थ कहआयेहै, पंचकर्ममे आश्रय होनेके कारण वे यहा फिर कहेगये हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

वैद्यका लक्षण ।

स्मृतिमान्युक्तिहेतुज्ञोजितात्माप्रतिपत्तिमान् ।
भिषगौषधसंयोगैः चिकित्साकर्त्तुमर्हति ॥ ३४ ॥
इति भेषजचतुष्केऽपामार्गतण्डुलीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

स्मृतिमान् जितेंद्रिय, औषध और रोग तथा युक्तिको जाननेवाला वैद्य औषधियोंके संयोगसे चिकित्सा करे ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिवैद्य पञ्चाननप० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यटीकायामपामार्गतण्डुलीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातआरग्वधीयमध्यायंव्याख्यास्यामः
इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम आरग्वधीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे ऐसा भगवान् आत्रेय कहने लगे ॥ १ ॥

कुष्ठ किलास आदिपर लेप ।

आरग्वधः सैडगजः करञ्जोवासागुडूचीमदनहरिद्रे । श्र्याह्वः सुराह्वः खदिरोधवश्चनिम्बोविडङ्गंकरवीरकत्वक् ॥ १ ॥ ग्रन्थिश्चभौर्जोलशुनः शिरीषः सलोमशोगुग्गुलुःकृष्णगन्धे । फणि

अथवा-मनसिल, कूठ, कुडाकी छाल, जटामासी, पनवाडके बीज, करजुवेके बीज, भोजपत्रकी गाठ, कनेरकी जडकी छाल, इन सबको एक २ कर्ष लेकर एक आढक तुषोके पानीमें और एक आढक ढाकके खार मिले जलमें पकावे जब गाढी होकर कडछीसे लिपटने लगे तो इसको उतारलेवे इसके लेपसे अवश्य ही कुष्ठ नाशको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

पर्णानिपिष्ट्वाचतुरंगुलस्यतक्रेणपर्णान्यथकाकमाच्याः ।
तैलाक्तगात्रस्यनरस्यकुष्ठान्युद्वर्त्तयेदश्वहनच्छदैश्च ॥ १५ ॥

आरग्वधके पत्र, मकोहके पत्र इनको छाछमें घोटकर अथवा कनेरके पत्तोंको तेलमें पकाकर शरीरपर मलनेसे कुष्ठ दूर होताहै ॥ १५ ॥

वातजन्यरोगोंपर लेप।

कोलकुलत्था सुरदारुरास्नामाषातसीतैलफलानिकुष्ठम् ।
वचाशताह्वायवचूर्णमम्लमुष्णानिवातामयिनाप्रदेहः ॥ १६ ॥

बेर, कुलथी, देवदारु, उडद, अलसी, तिल, सरसों, सूक्ष्म, राई, एरंडबीज, कूठ, वच, सौंफ, जौ, इनके चूर्णको काजीमें घोटकर वायुके रोगीके शरीरपर लेप करे ॥ १६ ॥

आनूपमत्स्यामिषवेशवारैरुष्णैः प्रदेहः पवनापहः स्यात् ।
स्नेहैश्चतुर्भिर्दशमूलमिश्रैर्गन्धौषधैर्वानिलजित्प्रदेहः ॥ १७ ॥

जलयुक्त भूमिमें रहनेवाले जीवोंका तथा मछलीका मास, हींग, मिर्च अदरक, जीरा, हलदी, धनिया इनको घोटकर गर्म करके लेप करनेसे वायुका रोग शात होताहै। अथवा चतु:स्नेहमें दशमूलका चूर्ण, और गधद्रव्योंको मिलाकर गर्म मलनेसे वायुकी उग्रपीडा शात होतीहै ॥ १७ ॥

तक्रेणयुक्तयवचूर्णमुष्णसक्षारमार्त्तिंजठरेनिहन्यात् ।
कुष्ठशताह्वासवचायवानाचूर्णंसतैलाम्लमुपन्तिवाते ॥ १८ ॥

छाछमें यवोंका चूर्ण और जवाखार मिलाकर गर्म करके पेटपर लेप करनेसे पेटकी पीडा नष्ट होतीहै। कूठ, सोंफ, वच, यवोका चूर्ण तेल, काजी इनको पकाकर गर्म २ लेप करनेसे वायुकी पीडा शात होतीहै ॥ १८ ॥

उदरपीडापर लेप।

उभेशताह्वेसधुकमधूकबलाप्रियालश्चकशेरुकश्च ।
घृतंविदारीश्चसितोपलाश्चकुर्यात्प्रदेहंपवनेसरक्ते ॥ १९ ॥

सोया, सौंफ, मुलैठी, खरैटी, महुवा, चिरौंजी, कसेरू, घृत, विदारीकन्द, मिसरी, नको मिलाकर कियाहुआ लेप वातरक्तको शांत करताहै ॥ १९ ॥

रक्तवातपर लेप।

रास्नागुडूचीमधुकबलेद्वेसजीवकर्षभकम्पयश्च।
घृतश्चसिद्धंमधुशेषयुक्तरक्तानिलार्त्तिप्रणुदेत्प्रदेहः॥ २०॥

रास्ना, गिलोय, मुलैठी, खरैटी, गगेरण, जीवक ऋषभक, इन, औषधियोंके र्णसे चारगुना घी और १६ गुना दूध मिलाकर घृतपाकविधिसे घृत सिद्ध करे इस तम शहद मिलाकर लेप करनेसे वातरक्तको शांत करताहै ॥ २० ॥

शिरःपीडा पर लेप।

वातेसरक्तेसघृत प्रदेहोगोधूमचूर्णछगलीपयश्च॥ २१ ॥

अथवा घी,गेहूंका चूर्ण, बकरीका दूध इनको पकाकर लेप करना भी वातरक्तम त है ॥ २१ ॥

नतोत्पलचन्दनकुष्ठयुक्तशिरोरुजायासघृत प्रदेह । प्रपौण्डरी-कंसुरदारुकुष्ठयष्ट्याह्वमेलाकमलोत्पलेच । शिरोरुजायांसघृ-त प्रदेहोलोहैरकापद्मकचोरकैश्च ॥ २२ ॥

तगर, कमल, चंदन, कूठ, इनके चूर्णको घृतसे लेप करे तो मस्तकपीडा शांत तीहै। अथवा पडवारा, देवदारु, कूठ, मुलैठी, इलायची, कमल, नीलोफर, इनको सकर घृत मिलाकर लेप करनेसे मस्तकपीडा शांत होतीहै। अथवा अगर, एरकगास, माख, गठिवन इनको जलमे पीस लेप करनेसे मस्तकपीडा शान्त होतीहै ॥ २२ ॥

पार्श्वपीडा पर लेप।

रास्नाहरिद्रेनलदंशताह्वेद्वेदेवदारूणिसितोपलाच।
जीवन्तिमूलंसघृतसतैलमालेपनपार्श्वरुजासुकोष्णम् ॥ २३ ॥

रास्ना, हल्दी, दारुहल्दी, खस, सौंफ, सोया, देवदारु मिसरी, जीवंतीकी ज को घृत और तेलमें मिलाकर थोडा गर्म लेप कियाहुआ पसवाडेके शूलको नष्ट रताहै ॥ २३ ॥

दाहनिवारक लेप।

शैवालपद्मोत्पलवेत्रतुङ्गप्रपौण्डरीकाण्यमृणाललोध्रम्।
प्रियंगुकालीयकचन्दनानिनिर्वापण स्यात्सघृत प्रदेहै ॥ २४ ॥

पानीकी काई, कमलगट्टा, नीलोफर, वेत, तुंग, पुडरिया, कमलकी डंडी, पठानी लोद, गोदनीके फूल, कालीयक, (काली अगर) चंदन, इनको घृतयुक्त कर लेप करनेसे दाह दूर होताहै ॥ २४ ॥

सितालतावेतसपद्मकानियष्ट्याह्वमैन्द्रीनलिनानिदूर्वा ।
यवासमूलंकुशकाशयोश्चनिर्वापण·स्याज्जलमेरकाच ॥ २५ ॥

सफेद दूब, वेतमसजनु, पद्माख, मुलेठी, इंद्रायण, कमलगट्टे, दूर्वा, जवासेकी जड, कुशा, कासकी जड, जलभंके पटेरेकी जड, इन सबको जलसे पीस लेप करनेसे दाह दूर होताहै ॥ २५ ॥

विषघ्न लेप।

शैलेयमेलागुरुणीसकुष्ठेचण्डानतंत्वक्सुरदारुरास्ना ।
शीतनिहन्यादचिरात्प्रदेहोविषंशिरीषस्तुससिन्धुवार· ॥ २६ ॥

भूरिछरीला, इलायची, अगर, कूठ, गठिवन, तगर, दारचीनी देवदारु, रास्ना, इनका लेप शीतताको शीघ्र नष्ट करताहै। ऐसे ही सम्भालू और सिरसका लेप विषको शीघ्र नष्ट करदेताहै ॥ २६ ॥

देहदुर्गंधनाशक लेप।

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसस्वेदहर·प्रघर्ष· ।
पत्राम्बुलोध्राभयचन्दनानिशरीरदौर्गन्ध्यहर प्रदेह ॥ २७ ॥

सिरस, खस, नागकेशर, लोध, इनके चूर्णका उबटना मलनेसे त्वचाका दोष और पसीना नष्ट होताहै। तेजपत्र, नेत्रवाला, पठानी लोध, खस, चंदन इन सबको पीस-कर लेप करनेसे देहकी दुर्गन्धि नष्ट होतीहै ॥ २७ ॥

उक्तअध्यायमें ३२ चूर्णोंके लेप।

तत्र श्लोक·। इहात्रिज·सिद्धतमानुवाचद्वात्रिंशतसिद्धमहर्षिपूज्यः। चूर्णप्रदेहान्विविधामयघ्नानारग्वधीयेजगतो हितार्थम् ॥ २८ ॥

इति भेषजचतुष्केआरग्वधीयो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार इस आरग्वधीय अध्यायमें सिद्ध और महर्षियोंके पूज्य आत्रेय भगवानने अनेक रोगोंको नष्ट करनेवाले ३२ प्रकारके चूर्णोंके प्रलेपोंका कथन जगतके हितार्थ कियाहै ॥ २८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतदकनालाग्रामनिवासिवैद्यपंचानन प० राम प्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायामारग्वधीयो नाम तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातःपड्विरेचनशताश्रितीयमध्याय व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेय ।

अव हम पड्विरेचनशताश्रितीय अध्यायका कथन करेंगे ऐसा भगवान आत्रेय कहनेलगे ।

अध्यायभरके विषय ।

इहखलुपड्विरेचनशतानिभवन्ति । पड्विरेचनाश्रयाः । पञ्च-कपायशतानि । पञ्चकपाययोनय । पञ्चविधंकपायकल्पनम् । पञ्चाशन्महाकपायाइतिसग्रह ॥ १ ॥

इस ग्रथमें ६०० योग विरेचनके हैं । उन छ सो विरेचनाको ६ स्थानाम आश्र-यीभूत मानाहै और ५०० काथ तथा ५ कार्योंके कारण पाचप्रकारकी कार्योंकी कल्पना, पचास ५० महाकपाय, यह सग्रह इस अध्यायम वणन कियाहै ॥ १ ॥

पड्विरेचनशतानीतियदुक्ततदिहसग्रहेणोदाहृत्यविस्तरेणक-ल्पोपनिपदिव्याख्यास्यामः ॥ २ ॥

जो ६०० विरेचन इस अध्यायमें कहेहैं इनको सक्षेपसे यहा कहकर आगे कल्प-स्थानमें विशेपतासे वर्णन करेंगे ॥ २ ॥

जलादिके योग ।

त्रयस्त्रिंशद्योगशतप्रणीतफलेष्वेकोनचत्वारिंशज्जीमृतकेपु यो-गा. ॥ पञ्चचत्वारिंशदिक्ष्वाकुपुधामार्गव. । पष्टिर्याभवन्ति योगयुक्त ॥ ३ ॥ कुटजस्त्वष्टादशधायोगमेतिकृतवेधनपष्टि-धाभवतियोगयुक्तम् । श्यामात्रिवृद्योगशतप्रणीतदशापरे-चात्रभवन्तियोगा ॥ ४ ॥ चतुरगुलोद्वादशधायोगमेतिलोध्र विधोपोडशयोगयुक्तम् । महावृक्षोभवतिविंशतियोगयुक्त एकोनचत्वारिंशत्सप्तलाशङ्खिन्योर्योगा ॥ ५ ॥ अष्टाचत्वा-रिंशद्दन्तीद्रवन्त्योरितिपड्विरेचनशतानि ॥ ६ ॥

इनमें १३३ विरेचन मैनफलके योगसे होतेहै । ३९ योग जगली तोरकि सयोगसे ४५ कटवी तुम्बीके सयोगसे । ६० प्रकारके धामार्गव (अपामार्ग) के योगसे । १८ प्रकारके कुटजके योगसे । ६० प्रकारके कृतवेधन (कडुवी तोरी) के योगसे । ११० प्रकारके दर्सिणी निशोथ (काली निशोथ) के योगसे । १२ प्रकार अमलतासके योगसे । १६ प्रकारके लोध्रके योगसे । २० प्रकार थोहरके योगसे । ३९ सातला और शखिनीके योगसे । ४८ प्रकार दती और द्रवतीके योगसे । इसप्रकार सन मिलाकर ६०० प्रकारके विरेचनके योग होतेहै ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

षड्विरेचनाश्रयाः क्षीरमूलत्वक्पत्रपुष्पफलानीति ॥ ७ ॥

विरेचनके ६ आश्रय है जैसे—दूध, मूल, छाल, पत्र, फूल, । इन छहों द्वारा ही विरेचन होतेहै ॥ ७ ॥

कषायोंकी सज्ञा रस कल्क आदि ।

पञ्चकषाययोनयइति मधुरकषायोऽम्लकषायःकटुकषायस्तिक्त- कषाय.कषायकषायश्चेतितन्त्रेसज्ञा ॥ ८ ॥

मधुरकषाय, अम्लकषाय, कटुकषाय, तिक्तकषाय, कषायकषाय यह पाच प्रकारसे शास्त्रमे कषाययोनी मानी है या ऐसे कहिये कि जिन द्रव्योंसे कषाय (काथ) बनताहै उनको कषाययोनि अर्थात् कषायका कारण कहते है यह द्रव्य मधुरादि पाच रसोंके आश्रयीभूत होनेसे कषाययोनि ५ प्रकारकी है ॥ ८ ॥

पञ्चविधंकषायकल्पनमिति । तद्यथा । स्वरस कल्क शृत शीतः फाण्ट.कषायइति ॥ ९ ॥ "यन्त्रप्रपीडनाद्द्रव्याद्रस स्वरस उच्यते । यत्पिण्डरसपिष्टानांतत्कल्कपरिकीर्त्तितम् ॥ १० ॥ वह्नौतुक्वथितंद्रव्यंशृतमाहुश्चिकित्सकाः । द्रव्यादापोत्थिता-त्तोयेतत्पुनर्निशिसस्थितात् ॥ ११ ॥ कषायोयोऽभिनिर्यातिस-शीत समुदाहृतः । क्षिप्त्वोष्णेतोयेमृदित तत्फाण्टपरिकी-र्त्तितम्" ॥ १२ ॥ तेषा यथापूर्वंवलाधिक्यम् । अत'कषायक-ल्पनाव्याध्यातुरवलापेक्षिणीनत्वेवखलुसर्वाणिसर्वत्रोपयोगी-निभवन्ति । पञ्चाशन्महाकषायाइतियदुक्ततदनुव्याख्या-स्याम. ॥ १३ ॥

ऐसे ही कषायोंकी कल्पना भी पाच प्रकारकी है जैसे स्वरस, कल्क, शृत, शीत, और फाट, यह पाच कषाय है । यन्त्र आदिसे औषधको दबाकर जो उसमसे रस निकले उसको स्वरस कहते है । जो द्रव्यको गीला ही पीसकर चटनीकी समान गोलासा बना लिया जाय उसको कल्क कहते है। जो द्रव्य पानीमें डालकर आगपर पकायाजाय उसको शृत (क्काथ, काढा) कहते है । द्रव्य (औषधि) को थोडा कुटकर शीतल पानीम सायकाल भिगोदेवे और रात्रीभर पडा रहनेदे फिर प्रात.काल मलकर छानले इसको शीत (शीतकषाय, हिम) कहते है । द्रव्यके चूर्णको गर्म जलमे डालकर मसले फिर छानलेवे इसको फाट कहते है ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२॥ इनमें फाटसे हिममें, हिमसे क्काथमें, क्काथसे कल्कमें, कल्कसे स्वरसमें अधिक गुण होताहै । यह क्काथ विना विचारे सर्वत्र ही उपयुक्त नहीं किये जाते । रोग और रोगीका बलाबल विचारकर जो जहा उपयोगी हो उसीका वर्ताव करना चाहिये । अब जो पचास महाकषाय कह आये है उनकी व्याख्या करते है ॥ १३ ॥

जीवनीयादि ६ कषायवर्ग ।

तद्यथा। जीवनीयोबृंहणीयोलेखनीयोभेदनीयःसन्धानीयोदीपनीयइतिषट्कःकषायवर्गः ॥ १४ ॥

यह सब इसप्रकार है-जीवनीय, (जीवनके बढाने वाले) बृंहणीय (मासको पुष्ट करनेवाले) लेखनीय (मलको उखाडकर निकालनेवाले) भेदनीय (मलको फाडनेवाले) सधानीय (टूटेहुएको जोडनेवाले) दीपनीय (जठराग्निको चैतन्य करनेवाले) इसप्रकार यह छः कषायोंका वर्ग हुआ ॥ १४ ॥

बलकारकादि ४ कषाय० ।

बल्योवर्ण्यःकण्ठ्योहृद्य इतिचतुष्कः कषायवर्गः ॥ १५ ॥

बलकारक, वर्णकर्ता, कठ्य (स्वरशोधक), हृद्य (हृदयको हितकारी) यह चार प्रकारका कषायवर्ग है ॥ १५ ॥

तृप्तिनाशकादि ६ कषाय० ।

तृप्तिघ्नोऽर्शोघ्न कुष्ठघ्न कण्डूघ्न क्रिमिघ्नोविषघ्नइतिषट्कः कषाय वर्गः ॥ १६ ॥

तृप्तिनाशक (रुचिकारक) अर्शनाशक, कुष्ठनाशक, कण्डू (खाज) नाशक, कृमि नाशक, विषनाशक, यह छ प्रकारके कषाय है ॥ १६ ॥

छातीके दूध बढानेवाले आदि ४ कषाय० ।

स्तन्यजननःस्तन्यशोधन.शुक्रजनन.शुक्रशोधनइतिचतुष्क. कषायवर्ग. ॥ १७ ॥

स्तन्य (स्तनामें दूध) जनक, स्तन्य शोधक, शुक्रजनक, शुक्रशोधक, यह चार प्रकारके क्वाथ है ॥ १७ ॥

स्नेहके उपयोगी आदि ७ कषाय० ।

स्नेहोपगःस्वेदोपगोवमनोपगोविरेचनोपगआस्थापनोपगोऽनु वासनोपग.शिरोविरेचनोपगइतिसप्तकःकषायवर्गः ॥ १८ ॥

स्नेहकर्मोपयोगी, स्वेदोपयोगी, वमनोपयोगी, विरेचनोपयोगी, आस्थापनोपयोगी, अनुवासनोपयोगी, शिरोविरेचनोपयोगी, यह सात प्रकारके क्वाथ है ॥ १८ ॥

छर्दिनिग्रहण आदि ३ कषाय० ।

छर्दिनिग्रहणस्तृष्णानिग्रहणोहिक्कानिग्रहणइतित्रिक कषाय- वर्गः ॥ १९ ॥

छर्दिनिग्रहण (छर्दिको रोकनेवाले), प्यासको रोकनेवाले, हिचकी रोकनेवाले यह तीन प्रकारके कषाय है ॥ १९ ॥

पुरीषसंग्रहणीयआदि ५ कषाय० ।

पुरीषसंग्रहणीय.पुरीषविरजनीयोमूत्रसंग्रहणीयोमूत्रविरेजनी योमूत्रविरेचनीय इतिपञ्चक'कषायवर्गः ॥ २० ॥

मलको बांधनेवाले, मलको शुद्ध करनेवाले, अधिक मूत्रको रोकनेवाले, मूत्रको शुद्ध करनेवाले, मूत्रको लानेवाले । यह पाच कषायोंका वर्ग है ॥ २० ॥

कासहरआदि ५ कषाय० ।

कासहर श्वासहर.शोथहरोज्वरहर श्रमहरइतिपञ्चक.कषाय- वर्ग. ॥ २१ ॥

खासीको हरनेवाला, श्वासको हरनेवाला, सूजनको हरनेवाला, ज्वरको हरनेवाला, श्रमको हरनेवाला, यह पाच प्रकारका कषायवर्ग है ॥ २१ ॥

दाहप्रशमनआदि ५ कषाय० ।

दाहप्रशमन शीतप्रशमनउदर्दप्रशमनोऽङ्गमर्दप्रशमन.शूलप्र- शमन इतिपञ्चक कषायवर्ग. ॥ २२ ॥

दाहको शमन करता, शीतको शात करनेवाला, उदर्दरोगको शात करनेवाला, अंगमर्द (अँगडाई) को शात करनेवाला, शूलको शातकरनेवाला यह पाच प्रकारका कार्योका वर्ग है ॥ २२ ॥

शोणितास्थापन आदि ५ कषाय० ।

शोणितास्थापनोवेदनास्थापनःसंज्ञास्थापन.प्रजास्थापनोवयः स्थापनइतिपञ्चकःकषायवर्ग. ।इतिपञ्चाशन्महाकषायाः ॥२३॥

रक्तको स्थापन करनेवाला, पीडाको हटानेवाला, बुद्धिको ठहरानेवाला, सतानकारक, आयुवर्द्धक, यह पाचप्रकारका कषाय है । इसप्रकार पचास महाकषाय होतेहै ॥ २३ ॥

५०० कषाय ।

महताञ्चकषायाणालक्षणोदाहरणार्थंव्याख्याताभवन्ति।तेषामेकैकस्मिन्महाकषायेदशदशावयविकान्कषायाननुव्याख्यास्यामः । तान्येवपञ्चकषायशतानिभवन्ति ॥ २४ ॥

ऊपर कहे पचास ५० कषायोंके लक्षण उदाहरणके लिये कहेहै । अब उनहीमेसे एक २ के दश ? अगोका वर्णन करतेहै । वही सब मिलकर पाच सौ होतेहै ॥ २४ ॥

जीवनीय १० द्रव्य ।

तद्यथा । जीवकर्षभकौमेदामहामेदाकाकोलीक्षीरकाकोलीमुद्गमाषपर्णीजीवन्तीमधुकमितिदशेमानिजीवनीयानिभवन्ति ॥ २५ ॥

जैसे–जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवती, मुलहटी, यह दश औषधियोका जीवनीय गण है ॥ २५ ॥

बृहणीय १० द्रव्य ।

क्षीरिणीराजक्षवकबलाकाकोलीक्षीरकाकोलीवाट्यायनीभद्रौदनीभारद्वाजीपयस्यर्ष्यगन्धाइतिदशेमानिबृहणीयानिभवन्ति ॥ २६ ॥

क्षीरविदारी, गनक्षवक (दूधिया), खरटी, काकोली, क्षीरकाकोली, सफेद खरटी, सहदेई वनकपास, विदारीकन्द, विधायरा, यह दश औषध बृंहणीय गण है ॥ २६ ॥

लेखनीय १० द्रव्य ।

मुस्तकुष्ठहरिद्रादारुहरिद्रावचातिविषाकटुरोहिणीचित्रकचिरबिल्वहैमवत्यइतिदशेमानिलेखनीयानिभवन्ति ॥ २७ ॥

नागरमोथा, कूठ, हलदी, दारुहलदी, वच, अतीस, कुटकी, चित्रक, करंज, सफेद वच, यह लेखनीय दशक है ॥ २७ ॥

भेदनीय १० द्रव्य ।

सुवहार्कोरुबूकाग्निमुखीचित्राचित्रकचिरबिल्वशंखिनीशकुलादनीस्वर्णक्षीरिण्यइतिदशेमानिभेदनीयानिभवन्ति ॥ २८ ॥

निशोत, आक, एरंड, भलावे, दंती, चित्रक, करंजा, शंखिनी (गुलचीन) कुटकी, स्वर्णक्षीरी (सत्यानासी) यह दश औषधी भेदन करनेवाली है ॥ २८ ॥

सन्धानीय १० द्रव्य ।

मधुकमधुपर्णीपृश्निपर्ण्यम्बष्ठकीसमङ्गामोचरसधातकीलोध्रप्रियंगुकट्फलानीतिदशेमानिसंधानीयानि भवन्ति ॥ २९ ॥

मुलहटी, गिलोय, पृष्ठपर्णी, पाटला, वाराहक्रांता, मोचरस, धायके फूल, लोध, प्रियगु, कायफल, यह दश औषध संधानीय (जोडनेवाली) है (कहीं संधारणीय पाठ है जिसका अर्थ मलको धारणकरनेवाली होसकता है) ॥ २९ ॥

दीपनीय १० द्रव्य ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेराम्लवेतसमरिचाजमोदाभल्लातकास्थिहिंगुनिर्यासाइतिदशेमानिदीपनीयानिभवन्ति ॥ ३० ॥

इतिषट्ककषायवर्गः ।

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, अम्लवेत, मिर्च, अजवायन, भलावेकी मींगी, हींग, यह दश औषध अग्निको दीपन करनेवाली हैं यह ६ कषायोंका वर्ग है ॥ ३० ॥

बलकारक १० द्रव्य ।

ऐन्द्रीऋषभ्यतिरसर्ष्यप्रोक्तापयस्याश्वगन्धास्थिरारोहिणीबलातिबलाइतिदशेमानिबल्यानिभवन्ति ॥ ३१ ॥

इद्रायण, कौंच, सतावर, विधायरा, विदारीकंद, असगंध, शालपर्णी, कुटकी, बला, अतिबला, यह दश बलदायक औषध है ॥ ३१ ॥

वर्णशोधक १० द्रव्य ।

चन्दनतुङ्गपद्मकोशीरमधुकमञ्जिष्ठाशारिवापयस्यासितालता इति दशेमानिवर्ण्यानिभवन्ति ॥ ३२ ॥

चन्दन, तुंग, नागकेशर, पद्मकाष्ठ, खस, मुलैठी, मजीठ, सारिवा क्षीरकाकोली, सफेद दूब, यह दश औषध वर्णकारक (देहका रंग सुधारक) है ॥ ३२ ॥

उत्तम कण्ठ करनेवाले १० द्रव्य ।

शारिवेक्षुमूलमधुकपिप्पलीद्राक्षाविदारीकैटर्यहंसपदीबृहतीकण्टकारिकइतिदशेमानिकण्ठ्यानिभवन्ति ॥ ३३ ॥

सारिवा, इक्षुमूल, मुलैठी, पीपल, मुनक्का, विदारीकंद, कायफल, लाजवंती, बडी कटेली, कटेली, यह दश औषध कंठको शुद्ध करती है ॥ ३३ ॥

हृदयके हितकारक १० द्रव्य ।

आम्राम्रातकनिकुचकरमर्दवृक्षाम्लाम्लवेतसकुवलवदरदाडिममातुलुङ्गानीतिदशेमानिहृद्यानिभवन्ति ॥ ३४ ॥ इति चतुष्कःकषायवर्गः ।

आम, अवाडा, बडहर, करोंदा, इमली, अम्लवेत, कलमी बेर, जंगली बेर, दाडिम, बिजौरा, यह दश हृदयको प्रिय है ॥ यह चार कषायोंका वर्ग हुआ ॥ ३४ ॥

तृप्तिनाशक १० द्रव्य ।

नागरचित्रकचव्यविडङ्गमूर्वागुडूचीवचामुस्तपिप्पलीपटोलानीतिदशेमानितृप्तिघ्नानिभवन्ति ॥ ३५ ॥

सोंठ, चीता, चव्य, विडंग, मूर्वा, गिलोय, वच, मोथे, पीपल, पटोल यह दश औषध तृप्तिनाशक (रुचिकारक) है ॥ ३५ ॥

अर्शोनाशक १० द्रव्य ।

कुटजबिल्वचित्रकनागरातिविषाभयाधन्वयशकदारुहरिद्रावचाचव्यानीतिदशेमानिअर्शोघ्नानिभवन्ति ॥ ३६ ॥

कूडा, बेल, चीता, सोंठ, इलायची, हरड, जवासा, दारुहल्दी, वच चव्य, यह दश औषध तृप्तिनाशक है ॥ ३६ ॥

कुष्ठनाशक १० द्रव्य ।

खदिराभयामलकहरिद्रारुष्करसप्तपर्णारग्वधकरवीरविडङ्गजा-तिप्रवालाइतिदशेमानिकुष्ठघ्नानिभवन्ति ॥ ३७ ॥

खैरसार, हरड, आमले, हल्दी, भलावे, सप्तपर्ण, अमलतास, कनेर, विडंग, चमेलीकी कोंपलें, यह दश औषध कुष्ठनाशक हैं ॥ ३७ ॥

खर्जूनाशक १० द्रव्य ।

चन्दननलदकृतमालनक्तमालनिम्बकुटजसर्षपमधुकदारुहरि-द्रामुस्तानीतिदशेमानिकण्डुघ्नानिभवन्ति ॥ ३८ ॥

रक्तचंदन, खस, अमलतास, कञ्जा, निंब, कुडा, सरसों, मुलेठी, दारुहल्दी, नागरमोथा, यह दशक खाजनाशक हैं ॥ ३८ ॥

कृमिनाशक १० द्रव्य ।

अक्षीवमरिचगण्डीरकेबूकविडङ्गनिर्गुण्डीकिणहीश्वदंष्ट्रावृषप-र्णिकाआखुपर्णिकाइतिदशेमानिकृमिघ्नानिभवन्ति ॥ ३९ ॥

सुहाजना, मिर्च, गडीर (समठशाक), केबुक (केमुकवृक्ष), विडंग, सभालू, कटभी (मालकाङ्गनी या कटभीलता), गोखरू, वृषपर्णी, आखुपर्णी, यह दशक कृमिनाशक हैं ॥ ३९ ॥

विषनाशक १० द्रव्य ।

हरिद्रामञ्जिष्ठासुवहासूक्ष्मैलापालिन्दीचन्दनकतकशिरीषसि-न्धुवारश्लेष्मातकाइतिदशेमानिविषघ्नानिभवन्ति ॥ ४० ॥

इतिषट्कःकषायवर्गः ।

हल्दी, मजीठ, रास्ना, इलायची छोटी, सारिवा, चंदन निर्मलीका फल, सीरस, सभालु, लिसोडे, यह दशक विषनाशक है । यह ६ कषायोंका वर्ग है ॥ ४० ॥

स्तनोंमें दूधको बढानेवाले १० द्रव्य ।

वीरणशालीषष्टिकेक्षुवालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रेत्कटकत्तृणमू-लानीतिदशेमानिस्तन्यजननानिभवन्ति ॥ ४१ ॥

खस, शालिधान्य षष्टिकधान, इक्षुवालिका (बडी किस्मकी डाभ), दर्भ, कुशा, कास, गुन्द्र, डेर, उत्कट (वरू), कतृण (गंधितृण) यह दशक स्तनोंमें दूध उत्पन्न करनेवाला है ॥ ४१ ॥

दुग्धशोधक १० द्रव्य।

पाठामहौषधसुरदारुमुस्तमूर्वागुडूचीवत्सकफलकिराततिक्तक-
टुरोहिणीशारिवाइतिदशेमानिस्तन्यशोधनानिभवन्ति ॥४२॥

पाठा, साठ, देवदारु, मोथा, मूर्वा, गिलोय, इन्द्रजो, चिरायता, कुटकी, सारिवा, यह दशक स्तनोंके दूधको शुद्ध करताहै ॥ ४२ ॥

वीर्यउत्पन्नकरनेवाले १० द्रव्य।

जीवकर्षभककाकोलीक्षीरकाकोलीमुद्गपर्णीमाषपर्णीमेदावृद्धर-
हाजटिलाकुलिङ्गाइतिदशेमानिशुक्रजननानिभवन्ति ॥ ४३ ॥

जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, वदा, जटामांसी, कुलिंग (काकडासिंगी) यह दशक शुक्रको पैदाकरताहै ॥ ४३ ॥

वीर्यशोधक १० द्रव्य।

कुष्ठैलवालुककट्फलसमुद्रफेणकदम्बनिर्यासेक्षुकाण्डेक्षिक्षुर-
कवसुकोशीराणीतिदशेमानिशुक्रशोधनानिभवन्ति ॥ ४४ ॥

इति चतुष्कः कषायवर्गः।

कूठ एलवालुक, कायफल, समुद्रफेन, कदंबका गोंद, ईख, कास, तालमखाने अगस्तियाके फूल, खस, यह दशक शुक्रको शुद्ध करताहै। यह चार कषायोंका वर्ग है ॥ ४४ ॥

स्नेहके उपयोगी १० द्रव्य।

मृद्वीकामधुकमधुपर्णीमेदाविदारीकाकोलीक्षीरकाकोलीजीवक-
जीवन्तीशालपर्ण्यइतिदशेमानिस्नेहोपयोगानिभवन्ति ॥४५॥

मुनक्का, मुलैठी गिलोय, मेदा विदारीकंद, काकोली, क्षीरकाकोली जीवक, जीवंती शालपर्णी, यह दशक स्नेहकर्ममें उपयोगी है ॥ ४५ ॥

पसीना उत्पन्न करनेवाले १० द्रव्य।

शोभाञ्जनकैरण्डार्कवृश्चीरपुनर्नवायवतिलकुलत्थमाषबदराणी-
तिदशेमानिस्वेदोपगानिभवन्ति ॥ ४६ ॥

सुहांजना, आक, एरंड, सफेद पुनर्नवा लाल पुनर्नवा जौ, तिल, कुलथी उड़द बेर, यह दशक पसीना लेनेमें उपयोगी है ॥ ४६ ॥

वमनकारक १० द्रव्य ।

मधुमधुककोविदारकर्बुदारणोपविदुलविम्बीशणपुष्पीसदापुष्पीप्रत्यक्पुष्प्यइति दशेमानिवमनोपगानिभवन्ति ॥ ४७ ॥

शहद, मुलैठी, लाल कचनार सफेद कचनार, कदम्ब जलबेत, कडूरी, शणपुष्पी, आक, अपामार्ग, यह दशक वमनकारनम उपयोगी है ॥ ४७ ॥

विरेचन प्रवर्त्तक १० द्रव्य ।

द्राक्षाकाश्मर्य्यपरूपकाभयामलकविभीतककुवलयदरकर्कन्दुपीलूनीतिदशेमानिविरेचनोपगानिभवन्ति ॥ ४८ ॥

दाख, कभारी, फालसा, हरड आमले, बहेडे, बडाबेर, बेर, झडबेर, पीलूफल, यह दशक विरेचनमें उपयोगी है ॥ ४८ ॥

मलबन्धक १० द्रव्य ।

त्रिवृद्बिल्वपिप्पलीकुष्टसर्षपवचावत्सकफलशतपुष्पामधुकमदनफलानीतिदशेमान्यास्थापनीयोपगानिभवन्ति ॥ ४९ ॥

निशोत, बिल्व, पीपल, कूठ, सर्सों, वच, इन्द्रजौ, सौंफ, मुलैठी, मैनफल, यह दशक आस्थापन वस्तीमें उपयोगी है ॥ ४९ ॥

सुगन्धिकारक १० द्रव्य ।

रास्नासुरदारुबिल्वमदनशतपुष्पावृश्चीरपुनर्नवाश्वदंष्ट्राग्निमन्थश्योणाकाइतिदशेमानिअनुवासनोपगानिभवन्ति ॥ ५० ॥

रास्ना, देवदारु, बिल्व, मैनफल, सौंफ, सफेद पुनर्नवा लाल पुनर्नवा, गोखरू, अरणी, सोनापाठा, यह दशक अनुवासन वस्तीमें उपयोगी है ॥ ५० ॥

शिरोविरेचनीय १० द्रव्य ।

ज्योतिष्मतीक्षवकमरिचपिप्पलीविडङ्गशिग्रुसर्षपापामार्गतण्डुलश्वेतामहाश्वेताइतिदशेमानिशिरोविरेचनोपगानिभवन्ति॥५१॥

इति सप्तकः कषायवर्गः ॥

मालकांगुनी, नकछिकनी मिरच, पीपल, वायविडंग, सुहांजना, सरसों, अपामार्गके बीज, सफेद कोयल, बडी कोयलका वृक्ष, यह दशक शिरोविरेचनमें उपयोगी है। इसप्रकार सात कषायोंका वर्ग है ॥ ५१ ॥

वमन विनाशक १० द्रव्य।

जम्व्वाम्रपल्लवमातुलुङ्गाम्लवदरदाडिमयवयष्टिकोशीरमृल्लाजा इति दशेमानिछर्दिनिग्रहाणिभवन्ति ॥ ५२ ॥

जामनके पत्र,आमके पत्र, बिजौरा, खट्टा वेर, दाडिम, जव, मुलैठी, खस, सोरठकी मट्टी (गोपीचदन), लाजा (धानकी खील), यह दशक वमन रोक नेवाला है ॥ ५२ ॥

तृषानिग्रहकर १० द्रव्य।

नागरधन्वयवासकमुस्तपर्पटकचन्दनकिराततिक्तकगुडूची-ह्रीवेरधान्यकपटोलानीतिदशेमानितृष्णानिग्रहाणिभवन्ति५३

सोंठ, जवासा, नागरमोथा, पापडा, चदन चिरायता, गिलोय, खस, धनिया, पटोलपत्र, यह दश औषध प्यासको रोकती है ॥ ५३ ॥

हिचकी निवारक १० द्रव्य।

शटीपुष्करमूलवदरवीजकण्टकारिकावृहतीवृक्षरुहाभयापि-प्पलीदुरालभाकुलीरशृङ्गयइतिदशेमानिहिक्कानिग्रहाणिभव-न्ति ॥ ५४ ॥

इति त्रिक कषायवर्गः।

कचूर, पोहकरमूल वेरकी मींगी, कटेली, वडी कटेली, आकाशवेल, हरड, पीपल, जवासा, काकडासिंगी यह दश औषध हिचकीको हटाती है। यह तीन कषायोंका वर्ग है ॥ ५४ ॥

मलरोधक १० द्रव्य।

प्रियग्वनन्ताम्रास्थिकट्वङ्गलोध्रमोचरससमङ्गाधातकीपुष्पप-द्मापद्मकेशराणीतिदशेमानिपुरीषसंग्रहणानिभवन्ति ॥ ५५ ॥

प्रियगु, सारिवा, आमकी गुठली, सोनापाठा लोध, मोचरस, समगा, धायके फूल, भाडगी, कमलकी केशर, यह दश औषध मलको बांधती है ॥ ५५ ॥

पुरीष शोधक १० द्रव्य।

जम्बुशल्लकीत्वक्कच्छुरामधूकशाल्मलीश्रीवेष्टकभृष्टमृत्पयस्यो-त्पलतिलकणाइतिदशेमानिपुरीषविरजनीयानिभवन्ति ॥५६॥

जामनकी छाल, उल्लके वृक्षकी छाल, जवासा, मुलैठी, सेमलकी छाल, सरलका गोद, भुनीहुई मिट्टी, क्षीरकाकोली, कमल, तिल, यह दशक मलको शुद्ध करनेवाला है ॥ ५६ ॥

मूत्रके रोधक १० द्रव्य ।

जम्ब्वाम्रप्लक्षवटकपीतनोदुम्बराश्वत्थभल्लातकाश्मन्तकसोमवल्काइतिदशेमानिमूत्रसंग्रहणानिभवन्ति ॥ ५७ ॥

जामन, आम, पाकर, वड, अवाडा, गूलर, पीपल वृक्ष, भिलावा, अश्मतक (कोविदार), खैर यह दश औषध अधिकमूत्रको रोकनेवाली है ॥ ५७ ॥

मूत्रशोधक तथा मूत्र विरेचनीय १० द्रव्य ।

वृक्षादनीश्वदंष्ट्रावसुकोशिरपाषाणभेददर्भकुशकशगुन्द्रोत्कटमूलानीति दशेमानिमूत्रविरेचनीयानिभवन्ति ॥ ५८ ॥

बंदा, गोखुरू, वसुक (अगस्तिया वृक्ष), हुलहुल, पाषाणभेद, दर्भ, कुश, काँस, गुद्रपटेर, वरू, यह दश औषध मूत्र लानेवाली है ॥ ५८ ॥

पद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रमधुकप्रियंगुधातकीपुष्पाणीतिदशेमानिमूत्रविरजनीयानिभवन्ति॥५९॥

इति पञ्चक कषायवर्ग ।

कमल, नीलकमल, नलिनकमल, कुमुद (भधूर), सौगंधिक कमल, पुंडरीक कमल, गुलाब, मुलैठी, फूल प्रियगु, धावेके फूल, यह दश औषधी मूत्रको शुद्ध करनेवाली है। यह पाच प्रकारका कषायवर्ग है ॥ ५९ ॥

कासहारक १० द्रव्य ।

द्राक्षाभयामलकपिप्पलीदुरालभाशृङ्गीकण्टकारिकावृश्चीरपुनर्नवातामलक्यइतिदशेमानिकासहराणिभवन्ति ॥ ६० ॥

दाख, हरड, आमला, पीपल, जवासा, ककडासिगी, कटेरी, सफेद पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, भूमिआमला, यह दशन खांसीको नष्टकरनेवाली औषधियां है॥६०॥

श्वासहर १० द्रव्य ।

शटीपुष्करमूलाम्लवेतसैलाहिंग्वगुरुसुरसातामलकीजीवन्तीचण्डाइतिदशेमानिश्वासहराणिभवन्ति ॥ ६१ ॥

कचूर, पोहकरमूल, अमलबेत, छोटी इलायची, हींग, अगर, तुलसी, भूमिआमला जीवती, चंडा, यह दश औषधी श्वासको हरनेवाली है ॥ ६१ ॥

शोथहारक १० द्रव्य।

**पाटलाग्निमन्थविल्वश्योणाककाश्मर्य्यकण्टकारिकाबृहतीशा-
लपर्णीपृश्निपर्णीगोक्षुरकाइतिदशेमानिशोथहराणिभवन्ति ॥६२॥**

पाटला, अरणी, वेल, सोनापाठा, कभारी, कटेली, वडी कटेली, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरू, यह दश औषधि सूजनको हरनेवाली है ॥ ६२ ॥

ज्वरनाशक १० द्रव्य।

**शारिवाशर्करापाठामञ्जिष्ठाद्राक्षापीलपरूषकाभयामलकविभी-
तकानीतिदशेमानिज्वरहराणिभवन्ति ॥ ६३ ॥**

सारिवा, शर्करा (तरजवीन, और शीरखीस्त या खाड), पाठा, मजीठ, मुनक्का, पीलू, फालसा, हरड, आमले, बहेडे, यह दश औषध ज्वरनाशक है ॥ ६३ ॥

श्रमनाशक १० द्रव्य।

**द्राक्षाखर्जूरपियालबदरदाडिमफल्गुपरूषकेक्षुयवयष्टिकाइति
दशेमानिश्रमहराणिभवन्ति ॥ ६४ ॥ इति पञ्चकः कषायवर्ग**

दाख, खजूर, चिरौजी, वेर, अनार, गूलर, फालसा, ईख, जौ, साठीके चावर, यह दश औषधि श्रमको हरती है। यह पाचमकारका कषायवर्ग है ॥ ६४ ॥

दाहनाशक १० द्रव्य।

**लाजाचन्दनकाश्मर्य्यफलमधुकशर्करानीलोत्पलोशीरशारि-
वागुडूचीह्रीबेराणीतिदशेमानिदाहप्रशमनानिभवन्ति ॥६५॥**

धानकी खील, चदन, कभारी, मुल्ठी, मिसरी, नीलोफर, खस, सारिवा, गिलोय, नेत्रवाला, यह दश औषध दाहको शान्त करतीहै ॥ ६५ ॥

शीतप्रशामक १० द्रव्य।

**तगरागुरुधान्यकशृङ्गवेरभूतीकवचाकण्टकारिकाग्निमन्थश्यो-
णाकपिप्पल्यइतिदशेमानिशीतप्रशमनानिभवन्ति ॥ ६६ ॥**

तगर, अगर, धनिया, सोठ, अजवायन, वच, कटेली, अरणी, श्योनाक, पीपल, यह दश औषध शीतको हरनेवाली है ॥ ६६ ॥

उदर्दशामक १० द्रव्य।

**तिन्दुकपियालबदरखदिरकदरसप्तपर्णाश्वकर्णार्जुनासनारिमे-
दाइतिदशेमान्युदर्दप्रशमनानिभवन्ति ॥ ६७ ॥**

तिंदुक (कड) चिरौजी, बेर, खरसार, सफेद कत्था, सप्तवर्ण, सालवृक्ष, अर्जुनवृक्ष विजेसार, अरिमेद यह दश औषध उदर्दको शांत करती है ॥ ६७ ॥

अंगमर्दनाशक १० द्रव्य ।

विदारिगन्धापृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिकैरण्डकाकोलीचन्दनो- शीरैलामधुकानीतिदशेमान्यङ्गमर्दप्रशमनानिभवन्ति ॥६८॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बडी कटेली, छोटी कटेली, एरंडकी जड, काकोली, चंदन, उशीर, इलायची, मुलेठी, यह दश औषध अंगमर्दको रोकतीहैं ॥ ६८ ॥

शूलनाशक १० द्रव्य ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरमरिचाजमोदाजगन्धा- जाजीगण्डीराणीतिदशेमानिशूलप्रशमनानिभवन्ति ॥ ६९ ॥

इति पञ्चक.कषायवर्गः ।

पीपल, पीपलामूल चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च, अजवायन, अजमोद, जीरा, गडीर, यह दश औषध शूलको शांत करतीहैं । यह पांचप्रकारका कषायवर्ग हुआ॥६९॥

रुधिरस्थापक १० द्रव्य ।

मधुमधुकरुधिरमोचरसमृत्कपाललोध्रगैरिकप्रियंगुशर्करालाजाइतिदशेमानिशोणितस्थापनानिभवन्ति ॥ ७० ॥

शहद, मुलैठी रुधिर (रक्तचन्दन या केशर), मोचरस मट्टीका ठीकरा, लोध, गेरू, प्रियगु, मिश्री, लाजा (खील) यह दश औषध रुधिरको स्थापन करती है ॥ ७० ॥

पीडानिवारक १० द्रव्य ।

शालकट्फलकदम्बपद्मकतुङ्गमोचरसशिरीषवञ्जुलैलावालुकाशोकाइतिदशेमानिवेदनास्थापनानिभवन्ति ॥ ७१ ॥

शाल कायफल, कदंब, पद्मकाष्ठ, नागकेशर, मोचरस, सिरस, बेत, एलवालुक, अशोक, यह दश औषधियोंका वर्ग पीडा नष्ट करताहै ॥ ७१ ॥

संज्ञास्थापक १० द्रव्य ।

हिंगुकैटर्य्यारिमेदवचाचोरकवयःस्थागोलोमीजटिलापलंकषाशोकरोहिण्यइतिदशेमानिसंज्ञास्थापनानिभवन्ति ॥ ७२ ॥

हींग, कट्यं (वकायन), अरिमेद (दुर्गंधिवाला खैर) वच, ग्रंथिपर्ण, ब्राह्मी, जटामासी, ऊड, गूगल, कुटकी, यह दश औषध सज्ञास्थापक (बेहोशी दूरकरनेवाले) है ॥ ७२ ॥

सतानस्थापन १० द्रव्य ।

ऐन्द्रीब्राह्मीशतवीर्य्यासहस्त्रवीर्य्यामोघाव्यथाशिवारिष्टावाव्य पुष्पीविश्वक्सेनकान्ताइतिदशेमानिप्रजास्थापनानिभवन्ति७३

ऐंद्री (इलायची या इद्रायण), ब्राह्मी, दूर्वा, सफेददूर्वा, पाडर, आमला, हरड कुटकी, खरटी, प्रियगु, यह दश औषध प्रजास्थापक है ॥ ७३ ॥

वयस्थापन १० द्रव्य ।

अमृताभयाधात्रीमुक्ताश्वेताजीवन्त्यतिरसामण्डूकपर्णीस्थिरा पुनर्नवाइति दशेमानिवयस्थापनानिभवन्ति ॥ ७४ ॥ इति पञ्चक कपायवर्ग. ।

गिलोय, हरडे, आँवला, रास्ना, सफेद कोयल, जीवती, शतावर, मजीठ, शालि-पर्णी, पुनर्नवा, यह दश ओषध मवस्था (आयु) को स्थापन करते हैं। यह पाच कपायोंका वर्ग है ॥ ७४ ॥

इति पञ्चकपायशतान्यभिसमस्यपञ्चाशन्महाकपायाःमहता ञ्चकपायाणां लक्षणोदाहरणार्थंव्याख्याताभवन्ति ॥ ७५ ॥ नहिविस्तरस्यप्रमाणमस्तिनचाप्यतिसक्षेपोऽल्पबुद्धीनांसाम-र्थ्यायोपकल्पतेतस्मादनतिसक्षेपेणानतिविस्तरेणचोदिष्टा । एतावन्तोह्यल्पबुद्धीनाव्यवहारायबुद्धिमताञ्चस्वालक्षण्यानु-मानयुक्तिकुशलानामनुक्तार्थज्ञानायेति ॥ ७६ ॥

इसप्रकार यह पाच सौ महाकपाय और इनके लक्षण उदाहरणके लिये कहदिये हैं। क्योंकि यदि इनका विस्तार करनेलगें तो अप्रमाण यदजायेंगे । और अयत संक्षेपसे कहनेमें अल्पबुद्धिवाले समझनेमें असमर्थ होंगे। इसलिये न अति विस्तारसे और न अति सक्षेपसे इन कपायोंका वर्णन करदियाहै । इतना कहना ही अल्पबुद्धिवालोंको व्यवहारके लिये उत्तम है और बुद्धिमान् तो लक्षण, अनुमान युक्ति द्वारा जो विपय कहनेसे रहगया उसको भी समझ सकेंगे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

एवं वादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच । नैतानिभगवन्प ञ्चकपायशतानिपूर्य्यन्ते । तानितानिह्येवाङ्गानिसंप्लवन्तेतेपु तेपुमहाकपायेष्विति ॥ ७७ ॥ तमुवाचभगवानात्रेय. । नैत- देवं बुद्धिमताद्रष्टव्यमग्निवेश । एकोऽपिह्यनेकांसंज्ञांलभतेका- र्य्यान्तराणिकुर्व्वन् । तद्यथापुरुपोवहूनांकर्म्मणाकरणेसमर्थो भवति । स यद्यत्कर्मकरोतितस्यतस्यकर्मणः कर्तृकरणकार्य्य- संप्रयुक्तंतत्तद्गौणंनामविशेपप्राप्नोति । तद्वदौपधद्रव्यमपिद्रष्ट- व्यम् । यदिचैकमेवकिञ्चिद्द्रव्यमासादयामस्तथागुणयुक्तंय- त्सर्व्वकर्मणांकरणेसमर्थस्यात्कस्ततोऽन्यदिच्छेदुपधारयितु- मुपदेष्टुंवाशिष्येभ्यइति ॥ ७८ ॥

इसप्रकार कहतेहुए आत्रेयभगवानसे अग्निवेश कहनेलगे हे भगवन् ! यह पांचसौ कपाय पूरे नहीं होसकते क्योंकि वही २ अग और कपायोंमें भी हैं । जैसे मुलैठी कई जगह कपायोंमें गिनी जाचुकी और अलग २ एक २ अंगसे ५०० कपाय पूर्ण करते हैं फिर मुलैठीके कपायको किनमें लियाजाय।उसीके अनेकजगह आनेसे गणना भी पूरी नहीं होती॥७७॥यह प्रश्न सुनकर भगवान आत्रेय कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! बुद्धिमानोंको इस प्रकार कहना उचित नहीं क्योंकि एक वस्तुभी अलग२कार्योंके करनेमें अनेकसंज्ञाको प्राप्त होती है।जैसे एक ही पुरुप अनेक कामोंको अलग२करनेकी सामर्थ्य रखताहै । फिर वह जिस २ समय जिस २ कामको करताहै उस २ समय उसी २ कामको करनेवाला होनेसे उसी २ गौण नामको प्राप्त होताहै । उसीप्रकार औपध भी अलग २ कार्य करते अलग २ नामोंको प्राप्त होती है । यदि एक ही द्रव्य सब कर्मोंमें गुणकर्ता प्राप्त होजाय और उसीसे सब कार्य सिद्ध होसकें तो फिर और द्रव्योंका अपने शिष्योंको उपदेश करना ही वृथा है । (सो इन ५० दशकोंमें एक २ कपायमें आभूत होनेसे मधुयष्टी आदिको कहना ही या इन दशों २ को ही कपायत्व है । एक २ में दश २ होनेसे ५०० संज्ञा होगई) ॥ ७८ ॥

कपाय और उनके कारण व पांच प्रकारकी कल्पना ।

तत्र श्लोकाः । यतोयावन्तियैर्द्रव्यैर्विरेचनशतानिपट् । उक्ता- निसंग्रहेणेहतथैवैपांपडाश्रया. ॥ ७९ ॥ रसालवणवर्जाश्चक-

पायाइतिसंज्ञिताः । तस्मात्पञ्चविधायोनिःकषायाणामुदा-
हृता ॥ ८० ॥ तथाकल्पनमप्येषामुक्तंपञ्चविधंपुनः ।महताञ्च-
कषायाणापञ्चाशत्परिकीर्तिता ॥ ८१ ॥

यहा अध्यायका उपसहार करते श्लोक कहते है । सक्षेपसे ६०० विरेचन सग्रहके लिये कहेहै और उनके ६ आश्रय कहेहैं । छे रसोंम नमकको छोड पाच रसावाले कषाय होते है इसीलिये कषायोंकी पाच प्रकारकी योनि है । इसीप्रकार कषायोंकी कल्पना भी पाचप्रकारकी कही है । और पचास महाकषाय कहे हैं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥

पाचसौ कषाय ।

पञ्चचापिकषायाणांशतान्युक्तानिभागशः ।
लक्षणार्थंप्रमाणंहिविस्तरस्यनविद्यते ॥ ८२ ॥

फिर उनको ५०० कषायोंमें विभागसे कथन करदियाहै । लक्षणार्थ कहनेमें विस्तारसे कथन करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ ८२ ॥

न्यूनाधिकताका विचार व मुख्य ५० कषाय ।

नचालमतिसंक्षेपःसामर्थ्यायोपकल्प्यते ।
अल्पबुद्धेरयंतस्मान्नातिसक्षेपविस्तरः ॥ ८३ ॥
मन्दानांव्यवहारायबुधानांबुद्धिवृद्धये ।
पञ्चाशत्कोह्ययवर्गः कषायाणामुदाहृतः ॥ ८४ ॥

और अति सक्षेपसे कहना भी अल्पबुद्धिवालोंके लिये समझनेमें कठिन होगा । इसलिये न अति सक्षेपसे और न विस्तारसे, साधारण मनुष्योंके व्यवहारके लिये और बुद्धिमानोंकी बुद्धिकी वृद्धिके लिये यह पाच सौ कषायोंका वर्ग कहा है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

कषायज्ञवैद्यकी प्रशसा ।

तेषाकर्मसुबाह्येषुयोगमाभ्यन्तरेषुच ।
सयोगचवियोगञ्चयोवेदसभिषग्वरः ॥ ८५ ॥

इति भेषजचतुष्कषट्विरेचनशताश्रितीयोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

सो जो मनुष्य इन ६०० विरेचनोंका और ५०० कषायोंका बाह्यकर्मोंमें और आभ्यन्तर कर्मोंमें संयोग और वियोग भलीप्रकार जानकर उपयोग करताहै वही वैद्योंमें श्रेष्ठ है ॥ ८५ ॥

इति श्रीचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिवैद्यवंशा-वतंस प० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां षड्विरेचनशताश्रितीयो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातोमात्राश्रितीयमध्यायव्याख्यास्यामः ।
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम मात्राश्रितीय अध्यायका कथन करतेहैं । ऐसा भगवान आत्रेय कहनेलगे ।

मात्राविचार ।

मात्राशीस्यात् । आहारमात्रापुनरग्निवलापेक्षिणी ॥ यावद्धय-स्याशनमशितमनुपहत्यप्रकृतिंयथाकालजरांगच्छतितावदस्य मात्राप्रमाण वेदितव्यंभवति ॥ तत्रशालिषष्टिकमुद्गलावकपि-ञ्जलैणशशशरभशम्बरादीन्याहारद्रव्याणिप्रकृतिलघून्यपि-मात्रापेक्षीणिभवन्ति ॥ तथापिष्टेक्षुक्षीरविकृतिमाषानूपोदक-पिशितादीन्याहारद्रव्याणिप्रकृतिगुरूण्यपिमात्रामेवापेक्षन्ते॥ नचैवमुक्तेद्रव्येगुरुलाघवमकारण मन्यते । लघूनिहिद्रव्या-णिवाय्वग्निगुणबहुलानिभवन्ति । पृथिवीसोमगुणबहुलानी-तराणि । तस्मात्स्वगुणादपिलघून्यग्निसन्धुक्षणस्वभावान्य-ल्पदोषाणिचोच्यन्ते अपिसौहित्योपयुक्तानिगुरूणिपुनर्नाग्नि-सन्धुक्षणस्वभावान्यसामान्यादतश्चातिमात्रदोषवन्तिसौहि-त्योपयुक्तानिअन्यत्रव्यायामाग्निवलात्। सैषाभवत्यग्निवलापे-क्षिणीमात्रानचनापेक्षेतद्रव्यम् । द्रव्यापेक्षयाचत्रिभागसौहि-

त्यमर्द्धसौहित्यंवागुरूणामुपदिश्यते। लघूनामपिचनातिसौहित्यमग्नेर्युक्त्यर्थम्। मात्रावद्ध्यशनमशितमनुपहत्यप्रकृतिंबलवर्णसुखायुपायोजयत्युपयोक्तारमनुष्यमिति ॥ १ ॥

मनुष्यको उचित मात्रासे भोजन करना चाहिये। वह मात्रा अर्थात् आहारका परिमाण मनुष्यकी जठराग्निके बलके आधीन है। जो भोजन कियाहुआ मनुष्यके स्वभावमें कुछ फर्क न लावे और ठीक समयपर पचजावे उस मनुष्यके लिये वही परिमित (ठीक मात्रा) भोजन है। शाली चावल, साठी चावल, मूग, लवा तित्तर, कृष्णसार, शशा, शरभ, शाबर यह स्वभावसे ही हलके होतेहै। परतु फिर भी मात्रासे अधिक सेवन करना उचित नहीं। इसीतरह पिष्टपदार्थ, खाड, गुड, आदी, दूधका विकार, खोआ, खडी आदि,-उडद, और अनूपसचारी जीवोका मास यह स्वभावसे ही गुरु (भारी) हैं। यह भी जितने ठीक पचसक उतनी मात्रासे सेवन करने चाहिये। यहा पर जो इन द्रव्योंकी गुरुता, लघुता, कहीहै वह निष्प्रयोजन नहीं। क्योकि जितने हलके पदार्थ है उनमें वायु और अग्निका गुण अधिक होताहै। इसप्रकार गुरुपदार्थोंमे पृथ्वीका गुण और सोमगुण अधिक होताहै। इसी कारणसे हलके पदार्थ अपने गुणके सबबसे स्वभावसे ही अग्निदीपन, अल्पदोष, और तृप्तिकर होतेहै। और भारी पदार्थ स्वभावसे ही अग्निके मद करनेवाले होतेहै इसलिये अधिक मात्रासे उपयोग कियेहुए दोषोंको प्रबल करतेहै। और विना व्यायाम (कसरत) और जठराग्निकी ताकतसे गुरु (भारी) भोजन करना उचित नहीं। तात्पर्य यह हुआ कि हलके पदार्थ यथेच्छ पेट भरकर खाय परतु भारी पदार्थ बहुत पेट भरकर न खावे किंतु आहारकी मात्रा जठराग्निके बल पर निर्भर है द्रव्यके हलकेभारीपन पर नहीं। असलमें सब पदार्थोंके खानेका क्रम यह है कि जितने हलके पदार्थ है उनको तीन भाग पेट भर कर खाना हित है। और जितने भारी है उनको आधा पेट भर कर खाना हित है। और हलका पदार्थ भी अधिक पेट भरकर खाना-जठराग्निको मद करताहै। ठीक मात्रासे किया भोजन प्रकृति (स्वभाव) को नहीं बिगाडता इसलिये ठीक मात्रासे कियाहुआ भोजन मनुष्यको बल, वर्ण, सुख, आयु इनको देनेवाला होताहै ॥ १ ॥

भोजन करने पर तुरत भोजन निषेध।

भवन्तिचात्र ॥ गुरुपिष्टमयतस्मात्तण्डुलान्पृथुकानपि।
नजातुभुक्तवान्खादेन्मात्राखादेद्बुभुक्षित ॥ २ ॥

अब यहां कहतेहैं कि जब तक पहले कियाहुआ आहार पाचन न होलेवे तब तक उसके ऊपर कोई भारी पदार्थ या पिष्टपदार्थ (मैदा, पिष्टी आदि) खीर, चावल, चिड्वा, कदापि न खावे । जब अन्न जीर्ण होकर भूख लगीं होय तब परिमाणसे भोजन करे ॥ २ ॥

न खानेयोग्य पदार्थ ।

वल्लूरशुष्कशाकानिशालूकानिबिसानिच । नाभ्यस्येद्गौरवा न्मांसंकृशनैवोपयोजयेत् ॥ ३ ॥ कूर्चिकाश्चकिलाटांश्चशौ- करगव्यमाहिषे । मत्स्यान्दधिचमाषांश्च यवकांश्चनशीलयेत्॥४॥

मास, शुष्कशाक, शालूक (कमलकी डंडी), बिस, अनूपादिमांस इन सबको भारी होनेके कारण नित्य खानेका अभ्यास न करे और रोगादिसे सूखे जीवका मास न खाय। छाछसे तथा और तरहसे फटाहुआ दूध,सूअरका मास,गोमांस,(भैसका मास) इनको कभी भी ग्रहण न करे । मछली, दही, उडद, जौ, इनको नित्य खानेका अभ्यास न करे ॥ ३ ॥ ४ ॥

सेवन योग्य पदार्थ ।

षष्टिकाञ्शालिमुद्गांश्चसैन्धवामलकेयवान् ।
आन्तरीक्षंपय सर्पिर्जाङ्गलमधुचाभ्यसेत् ॥ ५ ॥
तच्चनित्यंप्रयुञ्जीतस्वास्थ्ययेनानुवर्त्तते ।
अजातानांविकाराणामनुत्पत्तिकरञ्चयत् ॥ ६ ॥

सट्ठीके चावल, शाली चावल, मूग, सेंधा नमक, आमले, गेहू, आकाशका जल, दूध, घी, जाङ्गल पदार्थ, सहद, इनको नित्य खायाकरे । जो द्रव्य देहकी स्वस्थ्यताको न बिगाडे, और रोगोंको उत्पन्न न करे वह पदार्थ खाना चाहिये ॥५॥६॥

अतऊर्द्ध्वंशरीरस्यकार्य्यमभ्यञ्जनादिकम् ।
स्वस्थवृत्तमभिप्रेत्यगुणत सम्प्रवक्ष्यते ॥ ७ ॥

अब इसके उपरांत स्वस्थताकी रक्षाके लिये अभ्यजनादि शरीरके कृत्य और उनके गुणोंका कथन करतेहैं ॥ ७ ॥

अंजन लगाना ।

सौवीरमञ्जनंनित्यंहितमक्ष्णो प्रयोजयेत् ।
पञ्चरात्रेऽष्टरात्रेवास्रावणार्थेरसाञ्जनम् ॥ ८ ॥

---

१ आमिषमिति पाठान्तरम् ।

सफेद सुर्मा शुद्धतापूर्वक बनाया हुआ नित्यप्रति दोनों नेत्रोंमें डालना नेत्रोंको हितकारी है। और पाचवीं या आठवीं रात्रीमें आखोंसे जल निकालनेके लिये रसोत डालना चाहिये ॥ ८ ॥

दिनमे तीक्ष्ण अंजन न लगावे ।

नहिनेत्रामयंतस्यविशेषाच्छ्लेष्मतोभयम् । दिवातन्नप्रयोक्तव्यनेत्रयोस्तीक्ष्णमञ्जनम् ॥ ९ ॥ विरेकदुर्बलादृष्टिरादित्य प्राप्यसीदति । तस्मात्स्राव्यंनिशायान्तुध्रुवमञ्जनमिष्यते ॥ ॥ १० ॥ ततःश्लेष्महरंकर्महितदृष्टे॰प्रसादनम् ॥ ११ ॥

ऐसा करनेसे मनुष्यको नेत्ररोगका आखोंमें नजला आनेका भय नहीं होता । नेत्रोंको स्रावित करनेवाला तीक्ष्ण अजन दिनमें नहीं डालना चाहिये क्योंकि नेत्रोंका जल निकलकर निर्मल नेत्रोंमें सूर्यका प्रकाश लगनेसे दृष्टि कमजोर पडजातीहै। इसलिये जल निकालनेवाला अजन रात्रीको ही डालना चाहिये। और इसी कारणसे कफको नष्ट करनेवाला तीक्ष्ण अजन रात्रिमें डालना नेत्रोंकी ज्योतिको प्रसन्न रखताहै ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

अंजनसे दृष्टिप्रसाद ।

यथाहिकणकादीनामलिनाविविधात्मनाम् । धौतानानिर्मलाशुद्धिस्तैलचेलकचादिभि॰ ॥ १२ ॥ एवनेत्रेषुमर्त्यानामञ्ज नाश्च्योतनादिभि । दृष्टिर्निराकुलाभातिनिर्मलेनभसीन्दुवत् ॥ १३ ॥

जैसे सुवर्णादि धातु तेल कपडा बाल आदिके सयोगसे धुलकर स्वच्छ होजातेहै ऐसे ही मनुष्योंके नेत्र अजन और आश्च्योतन आदि कर्मसे स्वच्छ होकर जैसे निर्मल आकाशमें चद्रमा प्रकाशमान होताहै ऐसे निर्मल प्रकाशमान नेत्र रहतेहै ॥१२॥१३॥

अंजनके द्रव्य ।

हरेणुकाप्रियंगुश्चपृथ्वीकाकेशरनखम् । ह्रीवेरचन्दनपत्रत्वगेलोशीरपद्मकम् ॥ १४ ॥ ध्यामकमधुकमांसीगुग्गुल्वगुरुशर्करम् । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षलोध्रत्वच शुभा ॥ १५ ॥ वन्यस्सर्जरसंमुस्तशैलेयकमलोत्पले । श्रीवेष्टकशल्लकीशुक॰

वर्हमथापिच ॥ १६ ॥ पिष्ट्वालिम्पेच्छिरपिकातावर्त्तियवसन्निभाम् । अंगुष्ठसंमिताकुर्य्यादष्टांगुलसमांभिषक् ॥ १७ ॥ शुष्काविगर्भातावर्त्तिंधूमनेत्रार्पितानरः । स्नेहाक्तामग्निसंप्लुष्टा पिवेत्प्रायोगिकींसुखाम् ॥ १८ ॥

रेणुक, मियगु, कालाजीरा, नागकेशर, नख, सुगधवाला, चदन, तेजपत्र, तज, इलायची, खस, पद्माख, गेहिपत्रण, मुलैठी, जटामासी, गुगुल, अगर, मिश्री, वड, गूलर, पीपलवृक्ष, प्लक्ष, पठानीलोध, वशलोचन, वडा नरसल, राल, मोथा, छाल्छ बीला कमल, उत्पल, सगलका गोंद, छलछ्रल, शुकवर्ह (सिरस या ग्रथिपर्ण) इन सबको पीसकर आठ अगुल लबे काने (सरपतेकी सींख) पर एक जौके समान मोटा लेप करके अगूठेकी समान मोटा करके सुखालेवे सूखनेपर उसमेसे सींख निकालडाले फिर इस वत्तीको घीमे भिगोकर एकतर्फसे नालमे लगादे दूसरी तर्फसे आग लगादेवे फिर इसके धूमको पान करे यह धूम नजलेको नष्ट करता है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

वसाघृतमधूच्छिष्टैर्युक्तियुक्तैर्वरौषधैः ।
वर्तिमधुरकैःकृत्वास्नैहिकींधूममाचरेत् ॥ १९ ॥

चर्वी, घी, मोम और जीवनीय दश औषधी इनको मिलाकर इनका धूम पीवे इसको स्नेहिक धूमपान कहतेहैं ॥ १९ ॥

शिरोविरेचनमें धूम ।

श्वेताज्योतिष्मतीचैवहरितालमनःशिला ।
गन्धाश्चागुरुपत्राद्याधूमोमूर्द्धविरेचनम् ॥ २० ॥

सफेद कोयल, मालकांगुनी, हरिताल, मनसिल, अगर, पत्रजआदि गधद्रव्य मिलाकर वत्ती वनावे इसका धुआ पीनेसे शिरका विरेचन होताहै ॥ २० ॥

अन्यरोगोंमें धूम प्रयोग ।

गौरवशिरसःशूलपीनसार्द्धावभेदकौ । कर्णाक्षिशूलकासश्चहिक्काश्वासौगलग्रहः ॥ २१ ॥ दन्तदौर्बल्यमास्रावः श्रोत्रघ्राणाक्षिदोषजः । पूतिघ्राणास्यगन्धश्चदन्तशूलमरोचकः ॥ २२ ॥ हनुमन्याग्रहःकण्डू क्रिमयःपाण्डुतामुखे । श्लेष्मप्रसेकोवैस्वर्यंगलशुण्डयुपजिह्विका ॥ २३ ॥ खालित्यपिञ्जरत्वश्चकेशा-

नापतनन्तथा । क्षवथुश्चातितन्द्राचबुद्धेर्मोहोऽतिनिद्रता॥२४॥ धूमपानात्प्रशाम्यतिवलभवतिचाधिकम् । शिरोरुहकपालाना-मिन्द्रियाणास्वरस्यच ॥२५॥ नचवातकफात्मानोबलिनोऽप्यूर्द्ध्वजत्रुजाः । धूमवक्त्रकपानस्यव्याधयःस्युःशिरोगता ॥ २६ ॥

धूआ पीनेसे भारीपन, मस्तक पीडा, पीनस, अर्धावभेदक, कानकी पीडा, नेत्रपीडा, खासी, हिचकी, श्वास, गलेका रुकना, दांतोंकी दुर्बलता, रोममार्गका बद्धहोना, कान नासिका और नेत्रोंका वहना तथा दुर्गंधि, दंतपीडा, अरोचक, हनुग्रह, मन्या स्तंभ, खाज, कृमि, पाडु, मुखसे कफका गिरना, स्वरभग, गलशुडी, उपजिह्व, खालित्य, बालोका पीलापन व गिरना, छींक, तन्द्रा, बेहोशी, अतिनिद्रा यह सब नष्ट होतेहैं । और बाल, शिर, इंद्रिय, स्वर इनका बल बढताहै । जो मनुष्य मुखसे धूँएको पीकर नासिका द्वारा निकालताहै उस मनुष्यके ऊर्ध्वजत्रुवोंमे वात कफके बलवान रोग नहीं होते और शिरमे होनेवाली वात कफकी व्याधियें नहीं होतीं ॥ २१-२६ ॥

धूमपानके काल ।

प्रयोगपानेतस्याष्टौकाला सम्परिकीर्त्तिता । वातश्लेष्मसमुत्क्लेश कालेष्वेषुहि लक्ष्यते ॥ २७ ॥ स्नात्वाभुक्त्वासमुल्लिख्य क्षुत्त्वादन्तान्विघृष्यच । नावनाञ्जननिद्रान्तेचात्मवान्धूमपो भवेत् ॥ २८ ॥ तथावातकफात्मानोनभवन्त्यूर्द्ध्वजत्रुजाः । रोगास्तस्यतुपेयाःस्युरापानास्त्रिस्त्रयस्त्रयः ॥ २९ ॥ परद्विकाल पायीस्यादह्न कालेषुबुद्धिमान् । प्रयोगेस्नेहिकेत्वेव विरेच्यत्रिश्चतु पिबेत् ॥ ३० ॥

धूएके पीनेके आठ काल हैं क्योंकि वात कफके बल्वान् होनेका भी यही आठ काल है । स्नान करके, भोजन करके, वमन करके, छींक लेकर, दतौनके पीछे, नास लेनेके पीछे, अंजन करके, और सोकर उठके बुद्धिमान् मनुष्य धूमपान करे । इस प्रकार धूमपान करनेसे ऊर्द्ध्वजत्रु (गर्दनसे ऊपर) के होनेवाले वात और कफके रोग कभी नहीं होते । यह धूमपानके आठ काल कहे हैं, इनमें एक २ समय तीन २ वार धूमपान करना चाहिये । यही धूमपानका क्रम है यद्यपि धूमपानके आठ समय कहे गये तथापि एक दिनमें प्रायोगिक धूम दो समय, स्नेहिक धूम एक वार, विरेचन धूम एकदिनमे तीन चार वार पीवे ॥ २७-३० ॥

लौंगादि मुखमें रखनेके लाभ ।

धार्य्याण्यास्येनवैशद्यरुचिसौगन्ध्यमिच्छता । जातीकटुकपूगानां लवङ्गस्यफलानिच ॥ ७० ॥ कक्कोलकफलंपत्रताम्बूलस्यशुभं तथा । तथाकर्पूरनिर्य्यासःसूक्ष्मैलायाः फलानिच ॥ ७१ ॥

मुखकी शुद्धि, रुचि, और सुगंधिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको जायफल, रत्ता-कस्तूरी सुपारी, लौंग, कक्कोल शुद्ध पान, कपूर, छोटी इलायची इनको मुखमें धारण करना चाहिये ॥ ७० ॥ ७१ ॥

हन्वोर्बलस्वरबलवदनोपचयःपरः । स्यात्परश्चरसज्ञानमन्नेच रुचिरुत्तमा ॥ ७२ ॥ नचास्यकण्ठशोषःस्यान्नौष्ठयोःस्फुटना-द्भयम् । नचदन्ताःक्षयं यान्तिदृढमूलाभवन्तिच ॥ ७३ ॥

मुखमें तेलको धारण करके कुल्ला करना ठोडीको बल देताहै स्वरको बलवान् करताहै । मुखकी पुष्टि, रसका परिज्ञान और अन्नमें परमरुचिको पैदा करताहै ॥७२॥ तथा मुख और कंठका सूखना, होठोंका फटना यह कदापि नहीं होता । और दांत गिरते नहीं उनकी जडें दृढ होजातीहैं ॥ ७३ ॥

तैलगण्डूषका फल ।

नशूलन्तेनचाम्लेनहृष्यन्तेभक्षयन्तिच ॥ परानपिपरान्भक्ष्या-न्तैलगण्डूषसेवनात् ॥ ७४ ॥

तथा दांतोंमें पीडा, और खट्टे पदार्थके खानेसे दांत खट्टे नहीं होते और बहुत कडी वस्तुको भी तोडसके यह मुखमें तेल धारणकरनेका फल है ॥ ७४ ॥

शिरमें तैल मर्दनके गुण ।

नित्यस्नेहार्द्रशिरसः शिरःशूलंनजायते । नखालित्यनपालित्यं नकेशाःप्रपतन्ति च ॥ ७५ ॥ बलंशिरःकपालानांविशेषेणा-भिवर्द्धते । दृढमूलाश्चदीर्घाश्चकृष्णाःकेशाभवन्तिच ॥ ७६ ॥ इन्द्रियाणिप्रसीदन्तिसुत्वग्भवतिचाननम् । निद्रालाभःसुखं चस्यान्मूर्ध्नितैलनिषेवणात् ॥ ७७ ॥

प्रतिदिन मस्तकमें तेल डालनेसे–मस्तककीपीडा, खालित्य (गंज), बालोंका सफेद होना, बालोंका टूटना यह कभी नहीं होते । और मस्तक तथा कपालमें दृढ

आताहै। केश चिकने, दृढमूल, लंबे, और काले होतेहैं ॥७५॥ ७६ ॥ तेलको शरीरपर मालिस करना सब इंद्रिय और त्वचाको प्रसन्न और नरम करताहै तथा निद्राको और सुखको देताहै ॥ ७७ ॥

कर्ण और शरीरमे तेलसे लाभ।

नकर्णरोगावातोत्था नमन्याहनुसंग्रह । नोच्चैःश्रुतिर्नबाधिर्य्यंस्यान्नित्यकर्णतर्पणात् ॥ ७८ ॥ स्नेहाभ्यङ्गाद्यथाकुम्भश्चर्म स्नेहविमर्द्दनात्। भवत्युपाङ्गादक्षश्चदृढःक्लेशसहोयथा ॥७९॥ तथाशरीरमभ्यङ्गाद्दृढसुत्वक्प्रजायते। प्रशान्तमारुताबाध क्लेशव्यायामसंग्रहम् ॥ ८० ॥ स्पर्शनेचाधिकोवायुःस्पर्शनश्च त्वगाश्रितम्। त्वच्यश्चपरमोभ्यङ्गस्तस्मात्तशीलयेन्नर. ॥८१॥ नचाभिघाताभिहतंगात्रमभ्यङ्गसेविनः। विकारभजतेऽत्यर्थं बलकर्मणिवाकचित् ॥ ८२ ॥ सुस्पर्शोपचिताङ्गश्चबलवान् प्रियदर्शन.। भवत्यभ्यङ्गनित्यत्वान्नरोऽल्पोजरएवच ॥ ८३ ॥

प्रतिदिन कानोंमे तेल डालना-वातजनित कानके रोग, मन्यास्तंभ, हनुस्तम्भ, ऊंचा सुनना, और बहरापन इनको दूर करताहै ॥ ७८ ॥ चिकनाईके संयोगसे जैसा घडा मजबूत होताहै और चमडा नरम होताहै, तथा रथका पहिया मजबूत और घूमनेवाला होताहै, ऐसे ही स्नेह मर्दनसे शरीर भी मजबूत, नरम, क्लेशसहनकी शक्तिवाला दृढ होजाताहै। बादी नष्ट होकर रोग रहित होजाता, क्लेश और श्रमको सह सकता है। स्पर्शमे वायुकी अधिकता है और वह स्पर्श त्वचाके आधीन है। तेलका मालिस करना त्वचाको बलवान् करताहै इसलिये मालिस करनेका नित्य अभ्यास करे ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ नित्य स्नेह मर्दन करनेवालेके शरीरमे चोट आदि असर नहीं करती। कहीं जोरका काम करनेमें इसको कष्ट नहीं होता ॥ ८२ ॥ और उत्तम नरम अंगोंवाला, बलवान सुरूपसूरत, बुढापारहित, नित्य स्नेहमर्दनके प्रभावसे होता है ॥ ८३ ॥

पांवमें तेल लगानेके गुण।

खरत्वंशुप्कतारौक्ष्यश्रम सुप्तिश्चपादयो। सद्यएवोपशाम्यन्ति पादाभ्यङ्गनिषेवणात् ॥ ८४ ॥ जायतेसौकुमार्य्यंचबलस्थैर्य्यं चपादयो। दृष्टि प्रसादंलभतेमारुतश्चोपशाम्यति ॥ ८५ ॥

नचस्याद्गृध्रसीवाता पादयोःस्फुटनंनच । नशिरास्नायुसङ्कोचःपादाभ्यङ्गेनपादयोः ॥ ८६ ॥

और पैरोंका-खरदरापन, सूखापन, रूखापन, थकावट, पैरोंका सोजाना, यह सब पैरोंपर तेल मर्दनसे शीघ्र शांत होतेहैं और पैरोंमें सुकुमारता बल, दृढता यह होजाते हैं । दृष्टि प्रसन्न होतीहै वायु शांत होजाती है। और पादाभ्यंग करनेवालेके गृध्रसी आदि वायुके रोग, पैरोंका फटना, शिरा और स्नायुओंका संकोच यह कभी नहीं होते ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

स्नानके महाफल ।

दौर्गन्ध्यगौरवंतन्द्राकण्डूमलमरोचकम् । स्वेदंबीभत्सताहन्तिशरीरपरिमार्जनम् ॥ ८७ ॥ पवित्रंवृष्यमायुष्यंश्रमस्वेदमलापहम् । शरीरबलसन्धानंस्नानमोजस्करंपरम् ॥ ८८ ॥

शरीरको स्पंज या गीले कपडेसे अथवा उबटनसे मर्दन करे तो शरीरकी दुर्गंध, भारीपन, तंद्रा, खुजली, मैल, अरुचि, पसीना, बीभत्सता यह सब दूर होते हैं ॥८७॥ स्नान करना-पवित्रताकारक, वृष्य, आयुवर्द्धक, श्रमनाशक, स्वेदनाशक, मलनाशक, बलकारक और तेजको करनेवाला है ॥ ८८ ॥

स्वच्छवस्त्रपरिधानके फल ।

काम्यंयशस्यमायुष्यमलक्ष्मीघ्नप्रहर्षणम् ।
श्रीमत्पारिषदंशस्तंनिर्मलाम्बरधारणम् ॥ ८९ ॥

निर्मल वस्त्रोंको धारण करनेसे-शोभा, यश, आयु, लक्ष्मी, आनंद, और सम्पता बढतीहै तथा प्रशंसा होतीहै ॥ ८९ ॥

सुगन्धि पुष्पोंका धारण ।

वृष्यंसौगन्ध्यमायुष्यंकाम्यंपुष्टिबलप्रदम् ।
सौमनस्यमलक्ष्मीघ्नंगन्धमाल्यनिषेवणम् ॥ ९० ॥

चंदन और सुगंधित फूल माला धारण करना वृष्यता, सुगंधि, आयु, सुंदरता, पुष्टि और बल को बढाताहै । तथा अलक्ष्मीका नाश करता है ॥ ९० ॥

रत्नयुक्त भूषणधारण करनेका फल ।

धन्यंमङ्गल्यमायुष्यंश्रीमद्व्यसनसूदनम् ।
हर्षणंकाम्यमोजस्यंरत्नाभरणधारणम् ॥ ९१ ॥

रत्न, और आभूषण धारण करना-संपत्ति, मंगल, आयु, इनको बढातांहै, धनवानोंके दोषोंको दूर करताहै, तथा आनंद, काम्यता और ओजको बढाताहै ॥९१॥

शौचान्तमें पादप्रक्षालन ।

मेध्यम्पवित्रमायुष्यमलक्ष्मीकलिनाशनम् ।
पादयोर्मलमार्गाणांशौचाधानमभीक्ष्णश ॥ ९२ ॥

नित्य पैरों और गुदा आदि मलमार्गोंका धोकर शुद्ध रखना-बुद्धि, पवित्रता, आयु, इनको देताहै और अलक्ष्मी तथा कलियुगके दोषोंको दूर करताहै ॥ ९२ ॥

डाढीमूछके बालोंको स्वच्छ रखनेका फल ।

पौष्टिकंवृष्यमायुष्यंशुचिरूपविराजनम् ।
केशश्मश्रुनखादीनाकल्पनसप्रसाधनम् ॥ ९३ ॥

क्षौरकर्म कराने, नख कटानेसे तथा कंघी आदिसे केशोंको साफ रखनेसे-पुष्टि, वृष्यता, आयु, पवित्रता, और सुंदरताकी वृद्धि होती है ॥ ९३ ॥

जूतेधारणके फल ।

चक्षुष्यंस्पर्शनहितपादयोर्व्यसनापहम् ।
बल्यंपराक्रमसुखंवृष्यंपादत्रधारणम् ॥ ९४ ॥

जूता पहनना-नेत्रों और स्पर्शको हितकारी है तथा बल, पराक्रम, सुख, वीर्य, इनको करताहै ॥ ९४ ॥

छत्र और दण्ड धारणका फल ।

ईतेःप्रशमनवल्यंगुप्त्यावरणसंकरम् । घर्मानिलरजोम्बुमछत्रधारणमुच्यते । स्खलत सम्प्रतिष्ठानं शत्रूणाञ्चनिषेधनम् ।
अवष्टम्भनमायुष्यंभयघ्नदण्डधारणम् ॥ ९५ ॥

छतरी धारणकरना-टीडी आदि जानवरोंका गिरना, ओस, धूप, वायु, जल, धूल, पिशाच आदिकोंसे रक्षा करताहै और बल देताहै । हाथमें दण्ड रखना-पांव चूककर गिरनेसे बचाताहै, शत्रुओंको भय देताहै, देहको सहारा देताहै, और आयु तथा बलको बढाताहै ॥ ९५ ॥

शरीररक्षावृत्ति धर्मपूर्वक है ।

नगरीनगरस्येवरथस्येवरथीसदा ।
स्वशरीरस्यमेधावीकृत्येस्वरहितोभवेदिति ॥ ९६ ॥

जैसे नगरका रक्षक नगरकी रक्षाके लिये और रथ हांकनेवाला रथकी रक्षाके लिये सावधान रहताहै ऐसे ही बुद्धिमान् मनुष्यको अपने शरीरके कृत्योंमें सावधान रहना चाहिये ॥ ९६ ॥

योग्यायोग्यविचार ।

भवतिचात्र । वृत्त्युपायान्निषेवेत येस्युर्धर्माविरोधिन ।
शममध्ययनञ्चैवसुखमेवंसमश्नुते ॥ ९७ ॥

मनुष्यको उचित है कि धर्मसे अविरोधी अर्थात् धर्मयुक्त जीविकाके उपायोंको करे (अधर्मसे जीवन निर्वाह न करे) और इन्द्रियोंको तथा चित्तवृत्तियोंको शांत भावसे रखता हुआ अध्ययन आदि करे ऐसा करनेसे दोनों लोकोंमें सुख प्राप्त होताहै ॥ ९७ ॥

तत्रश्लोका. । मात्राद्रव्याणिमात्राञ्चसंश्रित्यगुरुलाघवम् । द्रव्याणांगर्हितोभ्यासोयेयायेयाश्चशस्यते ॥ ९८ ॥ अञ्जनंधूमवर्त्तिश्चत्रिविधावर्त्तिकल्पना । धूमपानगुणा काला पानमानंचयस्ययत् ॥ ९९ ॥ व्यापत्तिचिह्नभैषज्यधूमोयेयाविगर्हित. । पेयोयथायन्मयचनेत्रयस्यचयद्विधम् ॥१००॥ नस्यकर्म्मगुणानस्त कार्य्यंयच्चयथायदा । भक्षयेद्दन्तपवनंयथायद्गुणश्च यत् ॥ १०१ ॥ यदर्थंयानिचास्येनधार्य्याणिकवलग्रहे । तैलस्यये गुणादृष्टाशिरस्तैलगुणाश्चये ॥ १०२ ॥ कर्णतैलतथाभ्यङ्गे पादाभ्यङ्गे च मार्जने । स्नानेवाससिशुद्धेचसौगन्ध्येरत्नधारणे ॥ १०३ ॥ शौचेसंहरणेलोम्नापादत्रच्छत्रधारणम् । गुणमात्राश्रितीयेऽस्मिन् यथोक्तादण्डधारणे ॥ १०४ ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेश्लोकस्थानेमात्राश्रितीयोनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करतेहैं । इस अध्यायमें मात्रा, द्रव्य, और मात्राको लेकर गुरु द्रव्य और हल्के द्रव्य, निंदनीय द्रव्य, द्रव्योंका निंदित अभ्यास और जिनको गुरुपदार्थ पच सकतेहैं इनका वर्णन कियाहै। इसके उपरान्त क्रमसे अंजन, धूमवत्ती, तीन प्रकारकी वत्तियें, धूमपानके गुण, समय, प्रमाण, धूमपानके दोष, उनका यत्न, जिनको धूम न पीना चाहिये, जैसे पीना, जैसे धूमपानकी नली बनाना, जिन चीजोंसे पीना यह सब वर्णन कियाहै तथा नस्य कर्मके गुण, जो नस्य जिस प्रकार जब लेना, दतौनकी विधि, गुण, वृक्ष,कवल, तेल मुखमें धारण करनेके गुण मस्तकमें तेल लगानेका गुण, कानमें तेल डालनेका गुण, शरीरपर तेल मलनेका गुण, पैरोंमें तेल मलनेका गुण, देहको उबटने या गीले वस्त्रसे माजनेका गुण, स्नान, शुद्धवस्त्रधारण, सुगंधित चंदनादिधारण, रत्नाभरणधारण, शौच, क्षौरकर्म, जूता पहनना, छत्र, दंडा, इन सबको धारण करनेके गुण इस मात्राश्रितीय अध्यायमें वर्णन कियेहैं ॥ ९९ ॥ १०४ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यांतर्गतटकसाउनिवासि वैद्यपंचानन प० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादाख्यभाषाटीकायां मात्राश्रितीयो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातस्तस्याशितीयमध्यायंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम तस्याशितीय (जो पहले भोजनसंबंधी कहचुकेहैं उसीके विषयमें) अध्यायकी व्याख्या करतेहैं । ऐसा भगवान् आत्रेय कहनेलगे ।

मात्रा और ऋतुके अनुकूल भोजनसे लाभ ।

तस्याशितीयाघ्याहाराद्बलवर्णश्च वर्द्धते ।
तस्यर्तुसात्म्यंविदितंचेष्टाहारव्यपाश्रयम् ॥ १ ॥

और मात्रासे उचित रीतिपर कियाहुआ भोजन बल और वर्णको बढाताहै परंतु जिस ऋतुमें जैसा आहार और विहार शरीरके अनुकूल हो वैसा करना हित है और वर्णकी पुष्टि करताहै ॥ १ ॥

ऋतुद्वारा वर्षकी अङ्गकल्पना ।

इहखलुसंवत्सरंषडङ्गमृतुविभागेनविद्यात्तदादित्यस्योदगयनमादानं चत्रीनृतूञ्शिशिरादीन् ग्रीष्मान्तान् व्यवस्येत्वर्षादीन्पुनर्हेमन्तान्तान्दक्षिणायनविसर्गश्च ॥ २ ॥

ऋतुओंके विभागसे सँवत्सर छः भागामें बाटाहुआहै । इन छहोंमें शिशिर, वसंत, ग्रीष्म इन तीन ऋतुओंमें सूर्यका उत्तरायण काल है इसीको आदानकाल कहतेहै (इस कालमें सूर्य अपनी किरणों द्वारा रसको ग्रहण करताहै) । और वर्षा, शरद, हेमंत इन तीन ऋतुओंमें सूर्य दक्षिणायन होताहै इसको विसर्ग काल कहतेहै । (इस कालमे सूर्य रसादिको त्यागताहै अर्थात् छोडताहै) ॥ २ ॥

विसर्गेचपुनर्वायवोनातिरूक्षा.प्रवान्तीतरेपुनरादानेसोमश्चाव्याहतबलः। शिशिराभिर्भाभिरापूरयञ्जगदाप्याययतिशश्वदतोविसर्गः सौम्य. ॥ ३ ॥

विसर्गकालकी पवन-अत्यन्त रूखी नहीं होती । किंतु आदानकालकी पवन अत्यंत रूखी होतीहै । विसर्गकालमें चन्द्रमा बलवान्, सुंदर शीतल अपने प्रकाशसे जगत्को सुख देनेवाला होताहै इस कारण विसर्गकाल सौम्य होताहै ॥ ३ ॥

सूर्यादिकोंका कर्तव्य उपदेश ।

आदानंपुराग्नेयतावेतावर्कवायूसोमश्चकालस्वभावमार्ग परिगृहीता कालर्त्तुरसदोषदेहबलनिर्वृत्तिप्रत्ययभूता समुपदिश्यन्ते ॥ ४ ॥

आदानकाल-अग्निस्वभाववाला होताहै और अत्यंत रूक्ष होताहै । आदानकाल और विसर्गकाल, तथा सूर्य, वायु, चंद्रमा, यह सब अपने २ कालस्वभाव और गतिमें प्रवृत्तहुए काल, ऋतु, दोष, देहबल, इनको प्रवृत्त करनेवाले अर्थात् रचनेवाले कहे जातेहै ॥ ४ ॥

मलहरणमें सूर्यको कारणता ।

तत्ररविर्भाभिराददानोजगत स्नेहंवायवस्तीव्ररूक्षाश्चोपशोषयन्त. शिशिरवसन्तग्रीष्मेषुयथाक्रमरौक्ष्यमुत्पादयन्तोरूक्षान्रसान्तिक्तकषायकटुकांश्चाभिवर्द्धयन्तो नृणांदौर्बल्यमावहन्ति ॥ ५ ॥

आदानकालमें सूर्य्य अपनी तीक्ष्ण किरणोंसे जगत्‌के रसको खींचताहै । संपूर्ण वायु तीव्र और रूखा होनेसे चिकनाईको शोषण करताहै इसप्रकार सूर्य और वायु क्रमसे शिशिर, वसंत, ग्रीष्म ऋतुओंमें रूक्षताको करतेहुए कडुए, कषैले, और चर्परे रसप्रधान द्रव्योंको प्रगट करतेहैं । इसलिये आदानकालमें रूक्षतासे मनुष्योंको दुर्बल करतेहैं ॥ ५ ॥

दक्षिणायनमे रसोंसे लाभ ।

वर्षाशरद्धेमन्तेषुतुदक्षिणाभिमुखेऽर्केकालमार्गमेघवातवर्षाभि-हतप्रतापेशशिनिचाव्याहतबलेमाहेन्द्रसलिलप्रशान्तसन्तापे जगत्यरूक्षारसा प्रवर्द्धन्तेऽम्ललवणमधुरायथाक्रमतत्रबल-मुपचीयन्तेनृणामिति ॥ ६ ॥ भवतिचात्र ॥ आदावन्तेचदौ-र्बल्यंविसर्गादानयोर्नृणाम् । मध्ये मध्यबलन्त्वन्तेश्रेष्ठमग्रेचनि-र्दिशेत् ॥ ७ ॥

वर्षा, शरद और हेमंत ऋतुमें सूर्य दक्षिणमें होनेसे सूर्यके प्रतापको काल, मार्ग, मेघ, वायु, वर्षा, दबा रखतेहैं । तब चंद्रमाका प्रताप बलवान् रहताहै । वर्षाके जलसे जगतका संताप दबजाताहै इसी कारण संपूर्ण चिकने रसोंवाले द्रव्योंकी सामग्री बढतीहै । और अम्ल, लवण, मधुर रस यथाक्रम बढकर मनुष्योंके बलको बढातेहैं ६॥ विसर्गकालके प्रथम (वर्षाऋतुमें) और आदानकालके अंत (ग्रीष्म) में मनुष्यआदिकोंमे निर्बलता होतीहै । ऐसे ही आदान और विसर्गके मध्य (शरद, वसंत) में मध्यबल होताहै । और विसर्गके अंत (हेमंत) में और आदानके आदि (शिशिर) में सब मनुष्यादिकोंमें पूर्ण बल होताहै ॥ ७ ॥

हेमन्तमें वायुका पाचकत्व ।

शीतेशीतानिलस्पर्शसंरुद्धोबलिनांबली । पक्ताभवतिहेमन्ते मात्राद्रव्यगुरुक्षम. ॥ ८ ॥ सयदानेन्धनंयुक्तंलभतेदेहजं तदा । रसंहिनस्त्यतोवायु शीतः शीते प्रकुप्यति ॥ ९ ॥

शीतकालमें ठंढे पवनके लगनेसे शरीरके भीतर रुककर बलवान मनुष्योंकी जठराग्नि बलवान् होतीहै । इसीलिये शीतकालमें जठराग्नि भारी मात्रा और गुरुभोजनको पाचन करसकती है । यदि चैतन्य जठराग्निको इंधन (आहार) न मिले तो यह देहके रसको फूंकदेतीहै । रसके फुंकनेसे शरीर रूखा होजाताहै इसलिये रूक्ष, गुणयुक्त शीतल शारीरिक वायु शीतकालमें कुपित होताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

शीतमें लवणादि रस और मांसका सेवन करे ।

तस्मात्तुषारसमयेस्निग्धाम्ललवणान्रसान् । औदकानूपमांसानांमेध्यानामुपयोजयेत् ॥ १० ॥ विलेशयानांमांसानिप्रसहानांभृतानिच । भक्षयेन्मदिरांसीधुंमधुचानुपिबेन्नरः॥ ११ ॥

इसलिये शीतकालमें चिकने, खट्टे, नमकीन रसयुक्त पदार्थोंको और जलचारी (मछली आदि) अनूपसचारी जीवोंके मांस और प्रसह आदि बिलमें रहनेवालोंके मांस, मद्य, सीधु, और मधु इनका सेवन करे ॥ १० ॥ ११ ॥

हेमन्तमें गोरसादि सेव्य है ।

गोरसानिक्षुविकृतीर्वसांतैलंनवौदनम् । हेमन्तेऽभ्यस्यतस्तोयमुष्णंचायुर्नहीयते ॥ १२ ॥ अभ्यंगोत्सादनंमूर्ध्नितैलंजेन्ताकमातपम् । भजेद्भूमिगृहंचोष्णमुष्णंगर्भगृहंतथा ॥ १३ ॥ शीतेसुखस्पर्शंसेव्यंयानंशयनमासनम् । प्रावाराजिनकौषेयप्रवेणीकुथकास्तृतम् ॥ १४ ॥ गुरूष्णवासादिग्धाङ्गोगुरुणाऽगुरुणासदा । शयनेप्रमदांपीनांविशालोपचितस्तनीम् ॥ १५ ॥ आलिङ्ग्याऽगुरुदिग्धाङ्गींसुप्यात्समदमन्मथः । प्रकामंचनिषेवेतमैथुनंशिशिरागमे ॥ १६ ॥

हेमन्त ऋतुमें–दूध, खाड, आदि मिठाई वसा, तैल, नवीन अन्न, और गर्म जलमें स्नान इनका सेवन करनेसे आयु क्षीण नहीं होती तथा शरीर पर मालिश, उबटना, सिरमें तैल लगाना, जेंताक स्वेद, धूप गर्म घर, घरमें भीतरका कमरा, चारों तरफसे ढकी हुई सवारी, शय्या, आसन, बाघम्बर, शालकी और रेशमके कपडे रंग बिरंगे कम्बल, गर्म और भारी वस्त्र, इनका सेवन करे तथा गाढे अगरका लेपन कियाहो और जिसके पुष्ट स्तन हों वाली अगरसे सुगंधित लेपन कीहुई कामदेवको भी मोहित करनेवाली स्त्रीसे लिपटकर शयन करे और इच्छापूर्वक मैथुन करे ॥ १२–१६ ॥

हलके अन्न पानादिका त्याग ।

वर्जयेदन्नपानानिलघूनिवातलानिच । प्रवातंप्रमिताहारमुदमन्थं हिमागमे ॥ १७ ॥

शिशिर ऋतुमें भी हेमंतके समान क्रिया करे । और हलके, रूक्ष, वातल अन्नपान, वायुका वेग, अल्पाहार, जलमें घुले सत्तू शर्बत आदि सेवन न करे ॥ १७ ॥

हेमन्त और शिशिरके कार्य ।

हेमन्तशिशिरेतुल्येशिशिरेऽल्पंविशेषणम् । रौक्ष्यमादानजशीतमेघमारुतवर्षजम् ॥ १८ ॥ तस्माद्धैमन्तिकं सर्वं शिशिरेविधिरिष्यते ॥ निवातमुष्णमधिकं शिशिरेगृहमाश्रयेत् ॥ १९ ॥ कटुतिक्तकषायाणिवातलानिलघूनिच । वर्जयेदन्नपानानिशिशिरेशीतलानिच ॥ २० ॥ हेमन्तेनिचितःश्लेष्मादिनकृद्भाभिरीरितः । कायाग्निंबाधतेरोगास्ततःप्रकुरुतेबहून् ॥ २१ ॥

हेमंत और शिशिर यह दोनों ऋतु बराबर ही हैं किन्तु शिशिरमें आदानजन्य रूक्ष शीत होताहै और वृष्टि, वायु आदिसे शीत अधिक होताहै इतनी विशेषता है ॥ १८ ॥ इसीलिये शिशिर ऋतुमें सब क्रिया हेमंतके समान ही करनी चाहिये । विशेषतासे निर्वात और गर्म स्थानमें रहना चाहिये । तथा कटुए, कषैले तीते, वायुके करनेवाले हलके, शीतल पदार्थोंको त्यागदेना चाहिये ॥ १९ ॥ २० ॥ हेमंतमें शीतसे संचित हुआ कफ वसंतऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे पिघलकर शरीरमें संचालित हुआ शरीरकी अग्निको बिगाड़कर अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै ॥ २१ ॥

वसन्तमें वमनादि कर्म धारणीय द्रव्य तथा भोज्य पदार्थ ।

तस्माद्वसन्तेकर्माणिवमनादीनिकारयेत् । गुर्वम्लस्निग्धमधुरंदिवास्वप्नंचवर्जयेत् ॥ २२ ॥ व्यायामोद्वर्तनधूमकवलग्रहमञ्जनम् । सुखाम्बुनाशौचविधिंशीलयेत्कुसुमागमे ॥ २३ ॥ चन्दनागुरुदिग्धाङ्गोयवगोधूमभोजनः । शारभंशाशमैणेयंमांसंलावकपिञ्जलम् ॥ २४ ॥ भक्षयेन्निगदंसीधुंपिबेन्माध्वीकमेवना । वसन्तेनुपिबेत्स्त्रीणांकामिनीनांचयौवनम् ॥ २५ ॥

इसलिये वसंतमें वमन विरेचनादिसे बढ़ेहुए दोषको निकाल देना चाहिये । भारी, खट्टे, चिकने, और मीठे पदार्थ तथा दिनमें सोना इनको त्याग देवे । व्यायाम, मालिश, धूमपान, कवलग्रहण, अंजन, सुखोष्ण जलसे स्नान शौचादि, अगुरु चन्दनका लेपन

शीतमे लवणादि रस और मासका सेवन करे ।

तस्मात्तुषारसमयेस्निग्धाम्ललवणान्रसान् । औदकानूपमांसानामेध्यानामुपयोजयेत् ॥ १० ॥ बिलेशयानामांसानिप्रसहानाम्भृतानिच । भक्षयेन्मदिरासीधुंमधुचानुपिबेन्नर ॥ ११ ॥

इसलिये शीतकालमें चिकने, खट्टे, नमकीन रसयुक्त पदार्थोंको और जलचारी (मछली आदि) अनूपसचारी जीवोके मास और प्रसह आदि बिलमें रहनेवालोंके मास, मद्य, सीधु, और मधु इनका सेवन करे ॥ १० ॥ ११ ॥

हेमन्तमें गोरसादि सेव्य है ।

गोरसानिक्षुविकृतीर्वसांतैलनवौदनम् । हेमन्तेऽभ्यस्यतस्तोयमुष्णञ्चायुर्नहीयते ॥ १२ ॥ अभ्यगोत्सादनमूर्ध्नितैलंजेन्ताकमातपम् । भजेद्भूमिगृहञ्चोष्णमुष्णगर्भगृहंतथा ॥ १३ ॥ शीतेसुखघृतंसेव्यंयानशयनमासनम् । प्रावाराजिनकौषेयप्रवेणीकुथकास्तृतम् ॥ १४ ॥ गुरूष्णवासादिग्धाङ्गोगुरुणाऽगुरुणासदा । शयनेप्रमदांपीनाविशालोपचितस्तनीम् ॥ १५ ॥ आलिङ्गयाऽगुरुदिग्धाङ्गींसुप्यात्समदमन्मथः । प्रकामञ्चनिषेवेतमैथुनंशिशिरागमे ॥ १६ ॥

हेमंत ऋतुमें–दूध, खाड, आदि मिठाई वसा, तैल, नवीन अन्न, और गर्म जलसे स्नान इनका सेवन करनेसे आयु क्षीण नहीं होती तथा शरीर पर मालिश, उबटना, सिरमें तेल लगाना, जेताक स्वेद, धूप, गर्म घर, घरके बीचका कमरा, चारों तरफसे ढकी हुई सवारी, शय्या, आसन, बाघम्बर, शाणीके और रेशमके कपडे, रग बेरंगे कम्बल, गर्म और भारी वस्त्र, इनका सेवन करे तथा गाढे अगरका लेपन कियाकरे और तीखे पुष्ट स्तना वाली अगरसे सुगंधित लेपन कीहुई कामदेवको भी मोहित करनेवाली स्त्रीसे लिपटकर शयन करे और इच्छापूर्वक मैथुन करे ॥ १२–१६ ॥

हलके अन्न पानादिका त्याग ।

वर्जयेदन्नपानानिलघूनिवातलानिच । प्रवातंप्रमिताहारमुदमन्थं हिमागमे ॥ १७ ॥

शिशिर ऋतुमे भी हेमतके समान क्रिया करे । और हलके, रूक्ष,वातर अन्नपान, वायुका वेग, अल्पाहार, जलमे घुले सत्तू शर्बत आदि सेवन न करे ॥ १७ ॥

हेमन्त और शिशिरके कार्य ।

हेमन्तशिशिरेतुल्येशिशिरेऽल्पंविशेषणम् । रौक्ष्यमादानजशी-तमेघमारुतवर्षजम् ॥ १८ ॥ तस्माद्धैमन्तिकं सर्वं शिशिरेवि-धिरिष्यते ॥ निवातमुष्णमधिकं शिशिरेगृहमाश्रयेत् ॥ १९ ॥ कटुतिक्तकषायाणिवातलानिलघूनिच । वर्जयेदन्नपानानिशि शिरेशीतलानिच ॥ २० ॥ हेमन्तेनिचितःश्लेष्मादिनकृद्भा-भिरीरितः । कायाग्निंबाधतेरोगास्ततःप्रकुरुतेबहून् ॥ २१ ॥

हेमत और शिशिर यह दोनो ऋतु बराबर ही है किन्तु शिशिरमे आदानजन्य रूक्ष शीत होताहै और वृष्टि, वायु आदिसे शीत अधिक होताहै इतनी विशेषता है ॥ १८ ॥ इसीलिये शिशिर ऋतुमें सब क्रिया हेमतके समान ही करनी चाहिये । विशेषतासे निर्वात और गर्म स्थानमें रहना चाहिये । तथा कडुए कषैले तीते, वायुके करनेवाले हल्के, शीतल पदार्थोंको त्यागदेना चाहिये ॥ १९ ॥ २० ॥ हेमतमे शीतसे सचित हुआ कफ वसतऋतुमे सूर्यकी किरणोसे पिघलकर शरीरमें सचालित हुआ शरीरकी अग्निको बिगाडकर अनेक रोगोको उत्पन्न करताहै ॥ २१ ॥

वसन्तमें वमनादि कर्म धरणीय द्रव्य तथा भोज्य पदार्थ ।

तस्माद्वसन्तेकर्माणिवमनादीनिकारयेत् । गुर्वम्लस्निग्धमधुरं दिवास्वप्नश्चवर्जयेत् ॥ २२ ॥ व्यायामोद्वर्त्तनधूमकवलग्रहम-ञ्जनम् । सुखाम्बुनाशौचविधिंशीलयेत्कुसुमागमे ॥ २३ ॥ चन्दनागुरुदिग्धाङ्गोयवगोधूमभोजनः । शारभशाशमैणेयमा-र्गलावकपिञ्जलम् ॥ २४ ॥ भक्षयेन्निगदसीधुपिबेन्माध्वीकमे-वना । वसन्तेनुपिबेत्स्त्रीणांकामिनीनाश्चयौवनम् ॥ २५ ॥

इसलिये वसतमे वमन विरेचनादिसे बढेहुए दोषको निकाल देना चाहिये । भारी, खट्टे,चिकने, और मीठे पदार्थ तथा दिनमे सोना इनसे त्याग देवे व्यायाम मालिश, धूमपान, कवलग्रहण, अंजन, सुखोष्ण जलसे स्नान शौचादि, चदन अगरका लेपन

इनका सेवन करे । तथा जव, गेंहू, शावर, शशा, हिरन, लवा, सफेद तीतर, इनका भोजन करे और आसव, सींधु, अथवा माध्वीक इनको पीवे । और वसतऋतुमें बगीचों तथा स्त्रीकी जवानीका आनद लेवे ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

ग्रीष्मके गुण तथा उसमे सेवनीय पदार्थ ।

मयूखैर्जगत सारग्रीष्मेपेपीयतेरविः। स्वादुशीतंद्रवंस्निग्धमन्नपानंतदाहितम् ॥२६॥ शीतंसशर्करमन्थंजाङ्गलान्मृगपक्षिण.। घृतंपयःसशाल्यन्नभजन्ग्रीष्मेनसीदति ॥२७॥ मद्यमल्पनवा पेयमथवासुवहूदकम् । लवणाम्लकटूष्णानिव्यायामश्चात्रवर्जयेत् ॥२८॥ दिवाशीतगृहेनिद्रानिशिचन्द्रांशुशीतले। भजेच्चन्दनदिग्धाङ्ग प्रवातहर्म्यमस्तके ॥ २९॥ व्यजनै.पाणिसंस्पर्शैश्चन्दनोदकशीतलै । सेव्यमानोभजेदास्यामुक्तामणिविभूपित' ॥ ३० ॥ काननानिचशीतानिजलानिकुसुमानिच । ग्रीष्मकालेनिपेवेतमैथुनाद्विरतोनर. ॥ ३१ ॥

ग्रीष्मऋतुमें-सूर्यभगवान् अपनी किरणोंसे जगत्के सारको पीजाते है इसलिये ग्रीष्मऋतुमें-पतले, शीतल, और चिकने आहारका सेवन करना चाहिये ऐसे ही शीतल,सुगधित, मीठे जल पीने उचित हैं। और ठढे मिसरी मिले मथ, जगली जीवोंकामास, घृत, दूध, शाली चावल, इनका भोजन करनेसे मनुष्य गर्मीसे दुःखित नहीं होता । ग्रीष्मऋतुमें मद्यपीना उचित नहीं यदि पीनेकी आवश्यकता भी हो तो थोडा मद्य अधिक जल मिलाकर पीवे । गर्मीम नमकीन, खट्टे, चरपरे, और उष्ण पदार्थ सेवन नहीं करना चाहिये । दिनमे शीतल स्थानमें रात्रीको जहाँ चद्रमाकी किरण पडतीहों और हवा आती हो ऐसे स्थानमें मकानके शिखर पर शीतल चदनादि लगाकर शयन करे और शीतल चदनादिसे सुगधित जलसे भीगे पखेकी पवनका सेवन करे। तथा मणि मुक्ता आदि आभूषणोंको पहने । और घने वृक्षोंके जंगल, शीतल जल, सुगधित फूल इनको सेवे। परतु गर्मीमें स्त्रीका सेवन न करे ॥२६-३१॥

वर्षामे जठराग्निका दुर्वल होना ।

आदानदुर्वलेदेहेपक्ताभवतिदुर्वल. ।
स वर्षास्वनिलादीनादूपणैर्बाध्यतेपुन ॥ ३२ ॥

आदानकालके आकर्षणसे दुर्बलहुए देहमें जठराग्नि भी दुर्बल होजातीहै। फिर वह जठराग्नि वर्षाकालके जल वायु आदिसे और भी क्षीण होजाती है ॥ ३२ ॥

पवनका कोप।

भूवाष्पान्मेघनिस्यन्दात्पाकादम्लाज्जलस्यच।
वर्षास्वग्निवलेक्षीणेकुप्यन्तिपवनादयः ॥ ३३ ॥

वर्षाकालमें पृथ्वीकी भाफ निकलनेसे, वर्षाके होनेसे, जलका खट्टा परिपाक होनेसे अग्नि दुर्बल होकर वातादि दोष कुपित होते हैं ॥ ३३ ॥

वर्षामें त्यागनेयोग्य कर्म।

तस्मात्साधारण.सर्व्वोविधिर्वर्षासुवक्ष्यते। उदमन्थदिवास्वप्न-मवश्यायनदीजलम् ॥ ३४ ॥ व्यायाममातपश्चैवव्यवायश्चात्र वर्जयेत्। पानभोजनसस्कारान् प्राय.क्षौद्रान्वितान्भजेत् ॥ ॥ ३५ ॥ व्यक्ताम्ललवणस्नेहवातवर्षाकुलेऽहनि। विशेषशीते भोक्तव्यंवर्षास्वनिलशान्तये ॥ ३६ ॥ अग्निसंरक्षणवतायवगो-धूमशालय। पुराणाजाङ्गलैर्मांसैर्भोज्ययूषैश्चसस्कृतः ॥३७॥ पिवेत्क्षौद्रान्वितश्चाल्पमाध्वीकारिष्टमम्बुवा। माहेन्द्रत-प्तशीतंवाकौपसारसमेववा ॥ ३८ ॥ प्रघर्षोद्वर्त्तनस्नानगन्ध-माल्यपरोभवेत्। लघुशुद्धाम्बर.स्थानभजेदक्लेदिवार्षि-कम् ॥ ३९ ॥

इसलिये वर्षाकालमें त्रिदोष नाशक साधारण क्रियाका सेवन करे वर्षाऋतुमें-शर्बत आदि जलके मथ, दिनमें सोना, ओस, नदीका पानी, कसरत, धूपमें फिरना, मैथुन, इनको त्यागदेवे। खाने पीने के पदार्थोंमें-प्राय शहदका प्रयोग करना हितकारक है। जिसदिन हवा और वर्षा होनेसे ठंढा होरहाहो उसदिन खट्टे, नमकीन, चिकने, पदार्थ खाने चाहिये। ऐसा करनेसे वर्षाकालकी वायुकी शांति होती है। जठराग्निकी रक्षा करनेवालेको-यव, गेहू, पुराने चावल, और जीवनके देनेवाले जंगली जीवोंके मांसका यूष, मधुयुक्त माध्वीक और अरिष्ट, और आकाशका जल या गरमकरके ठंढा कियाहुआ अथवा कूपका जल सेवन करना चाहिये। देहको भीगे वस्त्रसे घिसना, उबटन लगाना, स्नान करना, गंध लगाना माला पहनना, हल्के सफेद वस्त्र, इनको धारणकरना चाहिये और सीलवाले तथा गीले स्थानमें न रहे ॥ ३४-३९ ॥

वर्षामें रहनेके नियम ।

वर्षाशीतोचिताङ्गानासहसैवार्करश्मिभि । तप्तानामाचितंपित्त प्राय शरदिकुप्यति ॥ ४० ॥ तत्रान्नपानंमधुरलघुशीतसतिक्त-कम् । पित्तप्रशमनसेव्यमात्रयासुप्रकाङ्क्षितै. ॥ ४१ ॥ लावा-न्कपिञ्जलानेणानुरभ्राञ्शरभाञ्शशान् । शालीनयवगोधूमा न्सेव्यानाहुर्घनात्यये ॥४२ ॥ तिक्तस्यसर्पिप. पानविरेकोरक्त-मोक्षणम् । धाराधरात्ययेकार्य्यमातपस्यचवर्जनम् ॥ ४३ ॥ वसातैलमवश्यायमौदकानूपमामिपम् । क्षारदधिदिवास्वप्नं प्राग्वातश्चात्रवर्जयेत् ॥ ४४ ॥

वर्षाऋतुके शीतसे सचित हुआ पित्त-शरदऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे तपायमान होकर कुपित होताहै । इसलिये शरद ऋतुमे-मधुर, हलके, शीतल, कडुए, पित्तनाशक, पदार्थ क्षुधाके समय परिमाणसे खाने चाहिये । और लवा, सफेद तीतर, हिरन, मेढा, शावर, शशा, इनका मास चावल, जौ, गेहू इनका भोजन करना हित है । शरदऋतुमे तिक्तपदार्थका सेवन, घृतपान, विरेचन, रक्तमोक्षण इनको करे और धूपमे न फिरे । तथा-वसा, तेल, ओस, मछली, अनूपसचारी जीवोका मास, खार, दही, दिनमे शयन, पूर्वकी वायु इनका सेवन न करे ॥ ४०-४४ ॥

पीने योग्यजल तथा हंसोदक ।

दिवासूर्य्यांशुसन्तप्तंनिशिचन्द्रांशुशीतलम् । कालेनपक्वनि-र्दोपमगस्त्येनाविषीकृतम् ॥ ४५ ॥ हसोदकमितिख्यातशारद विमलशुचि । स्नानपानावगाहेषुशस्यतेतद्यथामृतम् ॥ ४६ ॥ शारदानिचमाल्यानिवासासिविमलानिच । शरत्कालेप्रशस्य-न्तेप्रदोपेचन्द्ररश्मय ॥ ४७ ॥

शरदऋतुमे जल-दिनमे सूर्यकी किरणोसे तपकर रात्रिको चद्रमाकी किरणोंसे शीतल हो कालके प्रभावसे निर्दोष होजाताहै और अगस्त्यऋपिके उदय होनेसे निर्विष होजाताहै । वह शरदऋतुका निर्मल जल हंसोदक कहाजाताहै इस पवित्र जलको स्नान, पान, अवगाहन आदिमे अमृतके समान गुणकारी मानाहै शरदऋतुमें उत्तम फूलमाला, स्वच्छवस्त्र, और सायकालकी चादनी इनका सेवन करना चाहिये ॥ ४५-४७ ॥

ओकसात्म्य।

इत्युक्तमृतुसात्म्ययच्चेष्टाहारव्यपाश्रयम्।
उपशेतेयदौचित्यादोकसात्म्यतदुच्यते ॥ ४८॥

इसप्रकार जिस २ ऋतुमे जैसा २ आहार विहार सात्म्य (शरीरानुकूल) है उसका कथन करदियाहै । आहार विहार का सुखकारी अभ्यास "ओकसात्म्य" कहाजाताहै ॥ ४८ ॥

सात्म्यका लक्षण।

दोषाणामामयानाञ्चविपरीतगुण गुणै । सात्म्यमिच्छन्तिसात्म्यज्ञाश्चेष्टितचाद्यमेवच ॥ ४९ ॥ इति ।

जो आहार विहार दोषासे और रोगासे विपरीत गुण करनेवाला अर्थात् रोगसे बचाकर आरोग्य रखनेवाला है उसको "सात्म्य" कहतेहै । सात्म्यके जाननेवाले ओकसात्म्यको भी सात्म्य ही कहतेहै ॥ ४९ ॥

तत्रश्लोक । घृतावृतोनृभि.सेव्यमसेव्यंयच्चाकिञ्चन । तस्याशितीयेनिर्दिष्टहेतुमत्सात्म्यमेवचेति ॥ ५० ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसस्कृतेतस्याशितीयोऽध्यायः ॥६॥

यहा अध्यायकी पूर्तिका श्लोक है कि इस तस्याशितीय अध्यायमे जो २ पदार्थ जिस २ ऋतुमे सेवन करने योग्य है उन उनका वर्णन किया गयाहै कारणके अनुसार सात्म्य अर्थात् शरीरानुकूल है ॥ ५० ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतटफमालनिवासिवैद्य पञ्चानन प० रामप्रसादकृतप्रसादाख्यभाषाटीकायां तस्याशितीयो नाम षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्याय ।

अथातो न वेगान्धारणीयमध्याय व्याख्यास्याम । इति हस्माह भगवानात्रेय ।

अब हम "न वेगान्धारणीय" नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहै । ऐसा भगवान् आत्रेय कहनेलगे ।

वेगोंके रोकनेका निषेध ।

नवेगान्धारयेद्धीमाञ्जातान्मूत्रपुरीषयोः । नरेतसोनवातस्यन वम्याःक्षवथोर्नच ॥ १ ॥ नोद्गारस्यनजृम्भायानवेगान्क्षुत्पिपासयो । नवाष्पस्यननिद्रायानश्वासस्यश्रमेणच ॥ २ ॥ एतान्धारयतोजातान्वेगान्रोगाभवन्तिये। पृथक्पृथक्चिकित्सार्थं तन्मेनिगदतःशृणु ॥ ३ ॥

बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि-मूत्र, मल, रेत, अधोवायु, छर्दि, छींक,डकार, जंभाई, भूख, प्यास, अश्रुपात, निद्रा, श्रमजन्यश्वास, इनके वेगोंको कभी न रोके। इनके वेग रोकनेसे जो जो रोग पैदा होतेहै उनको अलग २ आगे वर्णन करतेहै सो तुम सुनो ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

मूत्रके वेगको रोकनेसे रोग ।

वस्तिमेहनयोःशूलमूत्रकृच्छ्रशिरोरुजा ।
विनामोवङ्क्षणानाहःस्याल्लिङ्गेमूत्रनिग्रहे ॥ ४ ॥

मूत्रका वेग रोकनेसे वस्ति और लिंगमें पीडा होतीहै । मूत्रकृच्छ्र, मस्तकमें पीडा, देहका नँवना, पेटमें पीडा, और अफारा यह उपद्रव होतेहै ॥ ४ ॥

मूत्र रुकनेपर उपाय ।

स्वेदावगाहनाभ्यङ्गान्सर्पिषश्चावपीडकम् ।
मूत्रेप्रतिहतेकुर्य्यात्त्रिविधंवस्तिकर्मच ॥ ५ ॥

(यत्न) मूत्रके रुकनेमें-पसीना देना, जलमें बैठना, मालिस करना, घृतपान करना, और निरूहण, अनुवासन, उत्तरवस्ति यह तीन प्रकारका वस्तिकर्म करना ॥ ५ ॥

मलरोकनेमें रोग ।

पक्वाशयशिरःशूलंवातवर्चोनिरोधनम् ।
पिण्डिकोद्वेष्टनाध्मानं पुरीषेस्याद्विधारिते ॥ ६ ॥

मलका वेग रोकनेसे-पक्वाशयमें और शिरमें पीडा, अधोवायु और विष्ठाका रुकना, पिंडलियोंमें पीडा, अफारा, यह उपद्रव होतेहै ॥ ६ ॥

मलरोकनेमे चिकित्सा ।

स्वेदाभ्यङ्गावगाहाश्ववर्त्तयोवस्तिकर्म्मच । हितप्रतिहतेवर्च्च-स्यन्नपानं प्रमाथिच ॥ ७ ॥

(यत्न) मलके रुकनेम–स्वेदन, मालिश, गरमजलमें बैठना, तीन प्रकारकी वर्ती, बस्तिकर्म, और वायुको अनुलोम करनेवाले अन्नपान, इनका सेवन करे ॥ ७ ॥

वीर्यके वेगके रोकनेमे उपद्रव ।

मेढ्रेवृषणयोःशूलमङ्गमर्दोहृदिव्यथा । भवेत्प्रतिहतेशुक्रे विबद्धंमूत्रमेवच ॥ ८ ॥ तत्राभ्यङ्गावगाहाश्चमदिराचरणायुधा. । शालि.पयोनिरूहाश्चशस्तमैथुनमेवच ॥ ९ ॥

रेत (वीर्य) के आयेहुए वेगको रोकनेमे–लिंग और पोताम पीडा, अंगोंका टूटना, हृदयमें व्यथा, और मूत्रका रुकना यह उपद्रव होतेहै । (यत्न) मालिश, अवगाहन, मद्यपान, मुरगेका मास, चावल, दूध, निरूहनवस्ती, मैथुन यह वीर्यके वेग रोकनेके उपद्रवोंको शात करतेहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

अधोवायुके रोकनेमे उपद्रव ।

वातमूत्रपुरीषाणांसङ्गोध्मानक्लमोरुजा ।
जठरेवातजाश्चान्येरोगा.स्युर्वातनिग्रहात् ॥ १० ॥

अधोवायुका वेग रोकनेसे–वात, मूत्र, मल, इनका रुकना तथा अफारा, आलस्य, शूल, पेटमें दर्द, और वायुके रोग उत्पन्न होतेहै ॥ १० ॥

उपाय ।

स्नेहस्वेदविधिस्तत्रवर्त्तयोभोजनानिच ।
पानानिवस्तयश्चैवशस्तनातानुलोमनम् ॥ ११ ॥

अधोवायुके वेग रोकनेके विकारशातिके लिये–स्नेहन, स्वेदन, त्रिविधवर्तीका धूमपान, वातका अनुलोमन करनेवाले अन्न पान और बस्तिकर्म करना हित है॥११॥

वमन रोकनेसे रोग और उनका उपाय ।

कण्डूकोठारुचिव्यङ्गशोथपाण्डवामयज्वरा ।कुष्ठहृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजागदा ॥ १२ ॥ भुक्त्वाप्रच्छर्दनधूमोऽलंघनं रक्तमोक्षणम । रूक्षान्नपानव्यायामोविरेकश्चात्रशस्यते॥१३॥

वमनका वेग रोकनेसे-खाज, कोठमें पीडा, अरुचि, व्यग (छाई), सूजन, पाडु, ज्वर, कुष्ठ, हृल्लास, विसर्प यह रोग होतेहैं । (यत्न) वमन रोकनेसे हुए रोगोंमें भोजनके पीछे वमन कराना, धूम्रपान, लंघन, सिरामोक्षण (फस्त), रूक्ष अन्नपानका सेवन, व्यायाम, विरेचन यह कर्म करने हितकारी हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

छींक रोकनेके उपद्रव और उपाय ।

मन्यास्तम्भःशिरःशूलमर्दितावर्द्धभेदकौ । इन्द्रियाणाञ्चदौर्बल्यक्षवथोःस्याद्विधारणात् ॥ १४ ॥ तत्रोर्द्ध्वजत्रुकेऽभ्यङ्गः स्वेदोधूमसनावन. । हितवातघ्नमाद्यश्चघृतञ्चोत्तरभक्तिकम्॥१५॥

छींकके रोकनेसे-गरदनका अकडना, शिरमें पीडा, अर्दितवायु, अधसिरा, इंद्रियोंकी दुर्बलता यह उपद्रव होतेहैं । (यत्न) छींकका वेग रोकनेसे हुए रोगोंमें-गर्दनकी नाडियोंपर मालिश करना, स्वेदन धूम्रपान, नस्य, और वायुकी नाश करनेवाली क्रिया भोजनके पीछे घृतपान करना, यह क्रियाएँ हित है ॥ १४॥ १५ ॥

डकारके रोकनेमें उपद्रव ।

हिक्काकासेऽरुचिःकम्पोविबन्धोहृदयोरसोः ।
उद्गारनिग्रहात्तत्रहिक्कायास्तुल्यमौषधम् ॥ १६ ॥

डकारका वेग रोकनेसे-हिचकी, खासी, अरुचि,कंप,हृदय और छातीका जकडना और भारी होना यह लक्षण होतेहै (यत्न) जो यत्न हिचकीके होतेहै सो करे॥१६॥

जँभाईके रोकनेसे उपद्रव ।

विनामाक्षेपसङ्कोचा सुप्तिःकम्प प्रवेपनम् ।
जृम्भायानिग्रहात्तत्रसर्ववातघ्नमौषधम् ॥ १७ ॥

-भाईका वेग रोकनेसे-अगाका नैवना, आक्षेपक, सकोच, तन्द्रा या अगाका सोना-कंप, यह उपद्रव होतेहै (यत्न) वातनाशक क्रिया करना हित है ॥ १७ ॥

क्षुधा रोकनेके उपद्रव ।

कार्श्यदौर्बल्यवैवर्ण्यमङ्गमर्दोऽरुचिर्भ्रम. ।
क्षुद्वेगनिग्रहात्तत्रस्निग्धोष्णलघुभोजनम् ॥ १८ ॥

क्षुधाका वेग रोकनेसे-कृशता, दुर्बलता, विवर्णता, अंगमर्द, अरुचि, भ्रम, यह उपद्रव होतेहै। (यत्न) इसमें उत्तम, स्निग्ध, हलके भोजन कराना हितकारक है ॥ १८ ॥

प्यासके रोकनेमे उपद्रव ।

कण्ठास्यशोषोबाधिर्य्यंश्रमःश्वासोहृदिव्यथा ।
पिपासानिग्रहात्तत्रशीततर्पणमिष्यते ॥ १९ ॥

प्यासका वेग रोकनेसे–कंठ और मुखका सूखना, कानोंसे न सुनना, श्रम, श्वास, हृदयमें व्यथा, यह उपद्रव होतेंहै । (यत्न) इसमे शीतल और तर्पण (दूध शर्बत आदि पिलाना) हित है ॥ १९ ॥

आँसू रोकनेमे उपद्रव और उपाय ।

प्रतिश्यायोऽक्षिरोगश्चहृद्रोगश्चारुचिर्भ्रमः ।
वाष्पनिग्रहणात्तत्रस्वप्नोमद्यंप्रिया कथा. ॥ २० ॥

आंसुओंका वेग रोकनेसे प्रतिश्याय, नेत्ररोग, हृद्रोग, अरुचि, भ्रम, यह उपद्रव होतेंहै (यत्न) इसमें सोना मद्यपीना, मीठी वातें सुनना हितकारक है ॥ २० ॥

निन्द्रारोकनेमे उपद्रव और उपाय ।

जृम्भाङ्गमर्दस्तन्द्राचशिरोरोगाक्षिगौरवम् ।
निद्राविधारणात्तत्रस्वप्न संवाहनानिच ॥ २१ ॥

निद्राका वेग रोकनेसे–जभाई, अंगमर्द (अंगडाई), तंद्रा, मस्तक और नेत्रोंका भारी प्रतीत होना यह उपद्रव होतेंहै । (यत्न) इसमे आनंदसे सोना, शरीरको धीरे२ दबाना, या पाँवोंको हाथोंसे मलना यह हित है ॥ २१ ॥

श्वासरोकनेमे उपद्रव और उपाय ।

गुल्महृद्रोगसमोहा श्रमनिश्वासधारणात् ।
जायन्तेतत्रविश्रामोवातघ्नाश्चक्रियाहिता ॥ २२ ॥

परिश्रमका श्वास रोकनेसे–गुल्म, हृदयमें रोग, और मोह होताहै । (यत्न) विश्राम करना और वातनाशक क्रिया यह सब हित है ॥ २२ ॥

वेगोंको कदापि न रोके ।

वेगनिग्रहजारोगायएतेपरिकीर्त्तिता. ।
इच्छंस्तेषामनुत्पत्तिंवेगानेतान्नधारयेत् ॥ २३ ॥

वेगोंके रोकनेसे जो रोग होतेहैं उन रोगोंके उत्पन्न करनेवाले वेगोंको रोकना नहीं चाहिये ॥ २३ ॥

धारणकरनेयोग्य वेग ।

इमांस्तुधारयेद्वेगान्हितैषीप्रेत्यचेहचासाहसानामशस्तानांमनोवाक्कायकर्म्मणाम् ॥ २४ ॥ लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् निधारयेत् । नैर्लज्जेर्ष्यातिरागाणामभिध्यायाश्चबुद्धिमान् ॥२५॥ परुपस्यातिमात्रस्यसूचकस्यानृतस्यच । वाक्यस्याकालयुक्तस्य धारयेद्वेगमुत्थितम् ॥ २६ ॥ देहप्रवृत्तिर्याकाचित्वर्ततेपरपीडया । स्त्रीभोगस्तेयहिंसाद्यातस्यावेगान्विधारयेत् ॥ २७ ॥

इस लोक और परलोकके सुखकी इच्छावाले मनुष्यको नीचे लिखे वेगोंको रोकना चाहिये, जैसे-अयोग्य रीतिपर-साहस, मनका वेग, वाणीका वेग, शरीरका वेग, कर्मका वेग, तथा लोभ, शोक, भय, क्रोध, अभिमान इनके वेगोंको रोकना चाहिये। और बुद्धिमान्को उचित है कि निर्लज्जता, ईर्षा, अत्यंत राग इनको भी त्याग देवे। कठोर, गदे, मिथ्या, बेसमय, असगत वाक्योंके कहनेका स्वभाव या वेग भी रोकना उचित है । जिस कार्यसे किसीको दुःख हो ऐसा कार्य कभी न करे और परस्त्रीगमन, चोरी, तथा हिंसा आदि अयोग्य कार्योंको भी न करे ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

पुण्यके लाभ ।

पुण्यशब्दोविपापत्वान्मनोवाक्कायकर्म्मणाम् । धर्मार्थकामान्पुरुष सुखोभुङ्क्तेचिनोतिच ॥ २८ ॥

जो मनुष्य, मन, वाणी-देह, इन कर्मोंसे निष्पाप है अर्थात् मन, वाणी, देहसे, कोई पाप नहीं करता वह पवित्र धर्मात्मा पुरुष, धर्म, अर्थ, काम इनके सुखको भोगता है और मोक्ष साधनके लिये धर्मको सचय करता है ॥ २८ ॥

व्यायामके लाभ ।

शरीरचेष्टायाचेष्टास्थैर्य्यार्थाबलवर्धिनी । देहव्यायामसख्याता मात्रयातासमाचरेत् ॥ २९ ॥ लाघवंकर्मसामर्थ्यंस्थैर्य्यंक्लेशसहिष्णुता । दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥ ३० ॥

जिस शारीरिक चेष्टासे-शरीरकी दृढता और बल बढे उस चेष्टाको व्यायाम (कसरत) कहते हैं । वह व्यायाम जितनी शरीरकी सामर्थ्य हो उतना-

ही करना चाहिये॥ २९ ॥ व्यायाम करनेसे–देहमे हलकापन, कामकरनेकी सामर्थ्य, दृढता, और कष्ट सहलेनेकी सामर्थ्य बढती है। तीनो दोष शांत होते है तथा जठराग्नि बलवान् होती है ॥ ३० ॥

अत्यन्त कसरतके उपद्रव।

श्रम.क्लमःक्षयस्तृष्णारक्तपित्तंप्रतामकः । अतिव्यायामत· कासोज्वरश्छर्दिश्चजायते ॥ ३१ ॥ व्यायामहास्यभाष्याध्व ग्राम्यधर्मप्रजागरान् । नोचितानपिसेवेतबुद्धिमानतिमात्रया॥३२॥

अतिव्यायाम करनेसे–थकावट, ग्लानि, क्षय, तृषा, रक्तपित्त, तमक श्वास, खासी, ज्वर और वमन, होतेहै ॥ ३१ ॥ बुद्धिमान्को उचितहै कि व्यायाम, हास्य, भाषण, रस्ताचलना, मैथुन, जागना इन को अधिकतासे सेवन न करे ॥ ३२ ॥

शक्तिके बाहर कोई कार्य न करे।

एतानेवंविधांश्चान्यान्योऽतिमात्रंनिषेवते । गज.सिंहमिवाकर्षन्सहसासविनश्यति ॥ ३३ ॥

इन ऊपर लिखे कामोको जो पुरुष बहुत अधिकतासे करताहै अथवा अन्य ऐसेही कामोंको अधितासे करताहै वह पुरुष जैसे सिंहको खाचनेसे हाथी नष्ट होताहै ऐसा शीघ्र नष्ट होजाताहै ॥ ३३ ॥

हिताहितका विचार करे।

उचितादहिताद्धीमान्क्रमशोविरमेन्नर ।हितक्रमेणसेवेतक्रम श्चात्रोपदिश्यते ॥ ३४ ॥ प्रक्षेपापचयेताभ्यांक्रम पादांशिको भवेत् । एकान्तरततश्चोर्द्ध्वद्व्यन्तर त्र्यन्तरंतथा ॥ ३५ ॥ क्रमेणापचितादोषा·क्रमेणोपचितागुणा । सन्तोयान्त्यपुनर्भावमप्रकम्प्याभवंतिच ॥ ३६ ॥

जो अफीम आदि अहित पदार्थ है उन्हे शरीरके अनुकूल होने पर भी सेवन न करे, यदि उनको सेवनका अभ्यास हो तो क्रमसे त्यागदेवे । इसी प्रकार दुग्धादि हित पदार्थोंका सेवन अनुकूल न होनेपर भी क्रमसे अभ्यास करे। यहा सेवन और त्यागके क्रमको दिखातेहै–जिस द्रव्यको त्यागना या ग्रहण करना चाहे उसको एकबार ही त्यागना या ग्रहण करना उचित नहीं । जिसको त्यागना चाहे उसमेसे प्रथम दिन एक अंश (चौथाई हिस्सा) कम करके दो दिन या तीन दिन दोनोंमे

देकर एक अंश और कम करे, इस प्रकार चार चार दिनके अंतरसे एक २ अंश कम करते२ अहित पदार्थको त्यागदेवे। इसी प्रकार एक २ अंश बढाते हुए हित पदार्थका अभ्यास करे । ऐसे ही जो २ अवगुण (दोष) हों उनको क्रमसे छोडता २ त्याग-देवे । और गुणोंको क्रमपूर्वक अभ्यास करते २ ग्रहण करलेवे । ऐसा करनेसे गुण निश्चल हो शरीरमें निवास करतेहैं और दोष अपना बल नहीं करसकते ॥३८-३६॥

वातादिकी समता विषमता ।

समपित्तानिलकफाःकेचिद्गर्भादिमानवाः । दृश्यन्तेवातलाः केचित्पित्तलाःश्लेष्मलास्तथा ॥ ३७ ॥ तेषामनातुराःपूर्वेवात-लाद्याःसदातुराः । दोषानुशयिताह्येषादेहप्रकृतिरुच्यते॥३८॥ विपरीतगुणस्तेषांस्वस्थवृत्तेर्विधिर्हितः । समसर्वरसंसात्म्यं समधातोःप्रशस्यते ॥ ३९ ॥

कोई पुरुष ऐसे भाग्यवान् होतेहैं जिनके शरीरमें गर्भसे ही वात, पित्त, कफ, साम्यावस्थावाले होतेहैं । किसीकी प्रकृति वातकी किसीकी पित्तकी, तथा किसी-की कफप्रधान होतीहै। इन सब मनुष्योंमें पहले कहेहुए (समप्रकृतिके) नीरोग रहतेहैं और बाकी तीन सदा रोगी रहतेहैं । जिसके शरीरमें जो दोष प्रधान होताहै उसके अनुसार उसकी प्रकृति कही जातीहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ जिनके शरीरमें वातादि दोष बढेहुए है उनके शरीरमें वायुआदि दोषोंसे विपरीत गुणवाली क्रिया हितकारक होतीहै (जैसे वातप्रकृतिवालेको उष्ण और स्निग्ध तथा लवणरसयुक्त पदार्थोंका सेवन हितकर है) । और जिसके शरीरमें वातादिक और धातुसाम्य हो उसके शरीरमें तो सब रस सात्म्य (शरीरानुकूल) ही होतेहैं ॥ ३९ ॥

शरीरगत छिद्रोंका वर्णन ।

द्वेअधःसप्तशिरसिखानिस्वेदमुखानि च ।
मलायनानिबाध्यन्तेदुष्टैर्मात्राधिकैर्मलैः ॥ ४० ॥

शरीरके नीचेके भागमें गुदा, लिंग यह दो मलमार्ग होतेहैं । ऊपरके भागमें दो नेत्र, दो कान, दो नासिका, एक मुख यह सात मलमार्ग होतेहैं और इनसे अन्य रोममार्ग पसीना निकालनेके मार्ग है । इन सबको मलमार्ग कहते हैं । मल दुष्ट होने अथवा अधिक होनेसे मलमार्गोंको दूषित करतेहै ॥ ४० ॥

मलवृद्धि आदिका ज्ञान ।

मलवृद्धिंगुरुत्वेनलाघवान्मलसंक्षयम् । मलायनानांबुध्येतसङ्गोत्सर्गादतीवच ॥ ४१ ॥

यदि मलमार्ग भारी हो तो मल बढेहुए जानना और मलमार्गोंके हल्केपनसे मलका क्षय जानना चाहिये। अथवा यों कहिये कि मलमार्गोंसे मल अधिक निकले तो मल बढाहुआ समझे और अन्यत कम होनेसे मलकी क्षीणता जाने ॥ ४१ ॥

साध्य रोगकी चिकित्सा करे।

तान्दोषलिङ्गैरादिश्यव्याधीन्साध्यानुपाचरेत्। व्याधिहेतुप्रतिद्वन्द्वैर्मात्राकालौविचारयेत् ॥ ४२ ॥

वैद्यको उचित है कि दोषोंके चिह्नोंसे रोगको समझकर जो साध्य रोग है उनमें रोगमें और रोगके कारणसे विपरीत गुणवाली चिकित्सा मात्रा और कालको विचारकर करे ॥ ४२ ॥

विषमवृत्तिसे वर्तनेमें रोग।

विषमस्वस्थवृत्तानामेतेरोगास्तथापरे।
जायन्तेऽनातुरस्तस्मात्स्वस्थवृत्तपरोभवेत् ॥ ४३ ॥

जो मनुष्य स्वस्थ अवस्थामें ही अपनी आरोग्यताकी रक्षाका यत्न नहीं रखता उसको यह रोग तथा अन्यान्य रोग होतेहैं इसलिये अपने स्वास्थ्यकी रक्षामें सदैव सावधान रहना चाहिये ॥ ४३ ॥

दोष दूर करनेका समय।

माधवप्रथमेमासिनभस्यप्रथमेपुन.।
सहस्यप्रथमेचैवहारयेद्दोषसञ्चयम् ॥ ४४ ॥

स्निग्धस्विन्नशरीराणामूर्द्ध्वञ्चाधश्चबुद्धिमान्। बस्तिकर्मततः कुर्यान्नस्त कर्मचबुद्धिमान् ॥ ४५ ॥ यथाक्रमंयथायोगमतऊर्द्ध्वंप्रयोजयेत्। रसायनानिसिद्धानिवृष्ययोगाश्चकालवित् ॥ ॥४६॥ रोगास्तथानजायन्तेप्रकृतिस्थेषुधातुषु। धातवश्चाभिवर्द्धन्तेजराचान्त्यमुपैतिच ॥ ४७ ॥ विधिरेषविकाराणामनुत्पत्तौनिदर्शित। निजानामितरेषान्तुपृथग्ज्ञेनोपदिश्यते ॥४८॥

बुद्धिमान् मनुष्य चैत्र, श्रावण, मार्गशीर्ष, इन तीन महीनाम एक २ बार शरीरको स्नेहन और स्वेदन करके वमन, विरेचन आदिसे शरीरके और नस्य आदिसे मस्तकके दोष निकाले तथा बस्ति कर्म करे। यदि उचित समझे तो नसोंमेंसे रक्तस्राव करे। फिर यथाक्रम शरीरकी सत्ता ठीक होनेपर जैसे उचित हो वैसे रसायन और वृष्य योगोंको समय आदिको जाननेवाला वैद्य प्रयुक्त करे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

इस प्रकार दोषोंको दूर करनेसे नीरोग मनुष्यके शरीरमें रोग उत्पन्न नहीं होते और प्रकृतिमें स्थित हुई धातुएँ वृद्धिको प्राप्त होती है तथा बुढापा शीघ्र नहीं आता॥४७॥ स्वस्थ मनुष्यकी आरोग्यताकी रक्षाके लिये यह विधि कहचुकेहैं । अब शारीरिक आगतुक, मानसिक, रोगोंके विषयमें अलग कथन करतेहैं ॥ ४८ ॥

आगन्तुरोगोंका कारण ।

येभूतविषवाय्वग्निसम्प्रहारादिसम्भवाः । नृणामागन्तवोरोगा. प्रज्ञातेष्वपराध्यति ॥ ४९ ॥ ईर्ष्याशोकभयक्रोधमानद्वेषादय-श्चये । मनोविकारास्तेऽप्युक्ता.सर्वेप्रज्ञापराधजा' ॥ ५० ॥

भूत, विष, वायु, अग्नि, प्रहार आदिसे उत्पन्नहुए रोगोंको आगतुक रोग कहतेहैं। यह रोग मनुष्योंकी बुद्धिके दोषसे होतेहैं, अर्थात् किसी असावधानतासे होतेहैं यदि बुद्धिमान् विचारपूर्वक बचकर रहे तो यह रोग नहीं होते । इन रोगोंमें बुद्धिका दोष होनेसे इनको प्रज्ञापराधज कहाजाताहै ॥ ४९ ॥और ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, मान, द्वेष आदि सब मनके विकार (मानसिक रोग) भी बुद्धिके दोषसे ही होतेहैं ॥ ५०॥

आगन्तुरोगोंकी शान्ति ।

त्याग प्रज्ञापराधानामिन्द्रियोपशम'स्मृति. । देशकालात्मवि ज्ञानसद्वृत्तस्यानुवर्त्तनम् ॥५१॥ आगन्तूनामनुत्पत्तावेषमार्गो निदर्शित' ।प्राज्ञ प्रागेवतत्कुर्य्याद्धितविद्यात्तदात्मन ॥५२॥

इन रोगोंमें बुद्धिके कुविचारोंका त्याग, इन्द्रियोंको वशमें रखना, शास्त्रोंके उपदेशोंका स्मरण, देश काल और आत्माका ज्ञान, अच्छे महात्माओंके सुयोग्य आचरणोंका सेवन, यह आगतुक रोगोंके न होनेका मार्ग दिखायाहै अर्थात् इन आचरणोंके सेवनसे आगंतुक रोग होतेही नहीं । इसलिये बुद्धिमान्को आत्माके हितकार्यका प्रथमसे ही सेवन करना चाहिये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

आप्तोपदेश.प्राज्ञानाप्रतिपत्तिश्चकारणम् । विकाराणामनुत्प त्तावुत्पन्नानाञ्चशान्तये॥५३॥पापवृत्तवच.सत्त्वाःसूचकाःकलह-प्रिया । मर्मोपहासिनोलुब्धा परवृद्धिद्विष शठाः ॥ ५४ ॥ परापवादरतय.परनारीप्रवेशिन । निर्घृणास्त्यक्तधर्माण.परि-वर्ज्यानराधमाः ॥ ५५ ॥

प्रामाणिक भद्रपुरुषोंके उपदेश और प्राज्ञपुरुषोंके सिद्धांत पर चलना आगंतुक विकारोंको उत्पन्न नहीं होनेदेता और उत्पन्नहुए विकारोंकी शांति करताहै ॥ ५३ ॥ पापके आचरणवाले, पापयुक्त वाक्य कहनेवाले, पापी मनवाले, झूठे, दंभी, कलहप्रिय, दूसरोंके चित्तोंको दुःखप्रद हास्य करनेवाले, अतिलोभी, पराई समृद्धिको देखकर जलनेवाले, शठ, पराई निंदामें रत रहने वाले, परस्त्रीगामी, निर्दयी, धर्मसे विहीन ऐसे अधम मनुष्योंका संग कभी नहीं करना चाहिये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

सेवनकरनेयोग्य पुरुष ।

बुद्धिविद्यावयःशीलधैर्य्यस्मृतिसमाधिभिः । वृद्धोपसेविनो वृद्धाःस्वभावज्ञागतव्यथाः ॥ ५६ ॥ सुमुखाः सर्वभूतानांप्रशान्ताः शंसितव्रताः । सेव्याः सन्मार्गवक्तारः पुण्यश्रवणदर्शनाः ॥ ५७ ॥

जो मनुष्य बुद्धि, विद्या, अवस्था, शीलता, धैर्य, स्मृति, समाधि, इन गुणोंसे युक्त हो तथा वृद्ध पुरुषोंकी सेवा कियाहुआ हो और स्वयं भी योग्य या वृद्ध हो, जिसको दुनियाके हाल मालूम हों, जिसके चित्तमें ईर्ष्या आदि विकार न हों, उत्तम सत्य मीठे वाक्य बोलनेवाला हो, जो सबसे शांतिपूर्वक वर्तावबाला हो, और, जिसका शुद्ध आचार हो तथा अच्छे मार्गका उपदेश करनेवाला हो जिसका दर्शन पुण्यकारक हो, ऐसे भद्रपुरुषका संग अवश्य करना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

भोजन आदिमें नियम ।

आहाराचारचेष्टासुसुखार्थीप्रेत्यचेहच । परप्रयत्नमातिष्ठेद्बुद्धिमान् हितसेवने ॥ ५८ ॥ ननक्तंदधिभुञ्जीतनचाप्यघृतशर्करम् । नामुद्गयूषंनाक्षौद्रंनोष्णंनामलकैर्विना ॥ ५९ ॥ अलक्ष्मीदोषयुक्तत्वान्नक्तन्तुदधिवर्जितम् । श्लेष्मणस्यात्ससर्पिष्कंदधिमारुतसूदनम् ॥ ६० ॥

बुद्धिमान् मनुष्य इस लोक और परलोकके सुखकी इच्छा करताहुआ हितकारक आहार विहारका यत्नसे सेवन करताहै ॥ ५८ ॥ रात्रिके समय दही न खावे । इसी प्रकार घी खांडके बिना अथवा मूंग या आमलेके यूष बिना, या शहदके बिना मिलाये दही न खावे और गरम करके भी दही न खाय, रात्रिमें दही खानेसे लक्ष्मीका नाश होताहै इस लिये रात्रिको दही नहीं खाना चाहिये । घीयुक्त दही कफको करताहै और वायुको हरताहै और पित्तको कुपित नहीं करता तथा भोजनको पचाताहै ॥ ५९ ॥ ६० ॥

नचसन्धुक्षयेत्पित्तमाहारञ्चविपाचयेत् । शर्करासंयुतदध्यात्तृ-ष्णादाहनिवारणम् ॥ ६१ ॥ मुद्गसूपेनसंयुक्तंदध्याद्रक्तानिला-पहम् । सुरसञ्चाल्पदोषञ्चक्षौद्रयुक्तभवेद्दधि ॥ ६२ ॥ उष्ण-पित्तास्रकृद्दोषान्धात्रीयुक्तन्तुनिर्हरेत् । ज्वरासृक्पित्तवीसर्प-कुष्ठपाण्ड्वामयभ्रमान् ॥ ६३ ॥ प्राप्नुयात्कामलाञ्चोग्रांविधिं हित्वादधिप्रियइति ॥ ६४ ॥

खाड मिलाकर दही खानेसे दाह और तृषा शात होतेहै । मूगके यूपके साथ दही खानेसे वायु शात होताहै । शहत मिली दही सुस्वाद होतीहै और उसमें कफका दोष क्षीण होजाताहै । गर्म दही रक्तपित्तको करतीहै । आमलेके यूपसे त्रिदोषको हरतीहै ॥ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ जो मनुष्य बिना विधिसे दहीका सेवन करताहै उसको ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कुष्ठ, पाडु, भ्रम, कामला, आदि रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ ६३ ॥ ६४॥

अध्यायका उपसहार ।

अत्र श्लोका ॥

वेगावेगसमुत्थाश्चरोगास्तेषाञ्चभेषजम् । येषांवेगाविधार्य्याश्च यदर्थयद्धिताहितम् ॥ उचितेचाहितेवर्ज्येसेव्येचानुचितेक्रम. । यथाप्रकृतिचाहारोमलायनगदौषधम् ॥ ६५ ॥ भविष्यतामनु त्पत्तौरोगाणामौषधञ्चयत् । वर्ज्याः सेव्याश्चपुरुषाधीमतात्मसु-खार्थिना ॥ ६६ ॥ विधिनादधिसेव्यञ्चयेनयस्मात्तदात्रिज. । नवेगान्धारणेऽध्याये सर्वमेवावदन्मुनिरिति ॥ ६७ ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृते न वेगान्धारणीयोऽध्यायः ॥

अब अध्यायका उपसहार करतेहैं । इस अध्यायमे वेग रोकनेका निषेध, और वेगोंके रोकनेमे पैदाहुए रोग, एव उनकी चिकित्सा रोकनेयोग्य वेग और मनुष्यके लिये हित तथा अहित, उचित अभ्यास करना और अनुचितका त्यागना और उनका क्रम, वातादि प्रकृतिके आहार, मलोंके मार्ग, रोगोंकी औषधी, जिसमे रोग ही न प्रगट हों ऐसा क्रम, प्रगटहुए रोगोंकी औषध, आत्मसुखकी इच्छावाले बुद्धिमान्को सेवनीय और त्याज्य कर्म, विधिसे दहीका सेवन, इन सब बातोंको भगवान् पुनर्वसुमुनिने इस नवेगान् धारणीय अध्यायमे वर्णन कियाहै ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतदकसाग्रामनिवासिवैद्य पञ्चानन प० रामप्रसादवैद्योपाध्यायनिर्मितप्रसादभाषाटीकायां नवेगान्धा-रणीयो नाम सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातइन्द्रियोपक्रमणीयमध्याय व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेय ।

भगवान् आत्रेय कहतेहैं कि अब हम इन्द्रियोपकरणीय अध्यायकी व्याख्या करतेहैं ।

इन्द्रियोका वर्णन तथा मनकी अनेकता ।

इहखलुपञ्चेन्द्रियाणिपञ्चेन्द्रियद्रव्याणि । पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानानिपञ्चेन्द्रियार्था' । पञ्चेन्द्रियाधिकारेअतीन्द्रियं पुन मन सत्त्वसंज्ञकश्चेत्याहुरेकेतदर्थात्मसम्पत्तदायत्तचेष्टम् ॥ चेष्टाप्रत्ययभूतमिन्द्रियाणाम् ॥ १ ॥ स्वार्थेन्द्रियार्थसङ्कल्पव्यभिचरणाच्चानेकमेकस्मिन्पुरुपेसत्त्वम् रजस्तम सत्त्वगुणयोगाच्चन चानेकत्वनानेकंह्येककालमनेकेपुप्रवर्त्तते ॥ २ ॥ तस्माच्चानेककालासर्वेन्द्रियप्रवृत्ति । यद्गुणंचाभीक्ष्णपुरुपमनुवर्त्ततेसत्त्वंतत्सत्त्वमेवोपदिशान्तिऋपयोवाहुल्यानुशयात् ॥ ३ ॥ मनःपुर सराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहणसमर्थानिभवन्ति ॥ ४ ॥

पाच इन्द्रिय हैं।पॉच ही इन्द्रियाके द्रव्यहै।पाच इन्द्रियाके अधिष्ठान हैं।और पाच ही इन्द्रियाके विपय है। तथा पाच इन्द्रियाकी बुद्धि है । ऐसा इन्द्रियाधिकारमें कहाहै । और मन अतीन्द्रिय है, कोई मनको सत्त्व भी कहतेहै । मनविपय ही आत्माकी संपत्ति है तथा आत्माके और मनके सन्निकर्षमे चेष्टाएँ निर्वाहित है । ऐसे ही सब इन्द्रियाकी चेष्टाका कारणभूत भी मन ही है । यदि कहैं कि स्वार्थ, इन्द्रियार्थ, और सकल्पकी पृथक्तासे एक ही पुरुपमे अनेक मन है और सत्त्व, रज,तम, इन प्रकृतिके गुणासे भी मन अनेक है ऐसा प्रतीत होताहै । सो ठीक नहीं । क्याकि एक पुरुप पर ही प्रारम्भ साथ गुणामे या स्वार्थ आदि सब कार्योमे प्रवृत्त नहा होता । इसी लिये अनेक कालोमे सब इन्द्रियाकी प्रवृत्ति होतीहै अर्थात् जब जिस इन्द्रियसे मनका संयोग होता

तो देखताहै, जब श्रवणेन्द्रियसे संयोग होताहै तब सुनताहै किन्तु एक ही कालमें सब इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति नहीं होती और एक कालमें सब गुण ही पाए जातेहैं इसलिये मन एक है अनेक नहीं। जो गुण जिसके मनमें अधिकतासे निरंतर रहताहै उसके अनुसार ही ऋषिलोग उसकी वृत्तिको कथन करतेहैं अर्थात् सत्त्वगुणकी अधिकतासे सतोगुणी, रजोगुणसे रजोगुणी, तमोगुणसे तमोगुणी वृत्ति कही जाती है। मनकी अनुगामिनी होकर इंद्रियें अपने अर्थको ग्रहण करनेमें समर्थ हो सकती है॥ १-४ ॥

इन्द्रियोंके नाम द्रव्य और अधिष्ठान।

तत्रचक्षुः श्रोत्रघ्राणरसनस्पर्शनमितिपञ्चेन्द्रियाणि ॥ पञ्चेन्द्रियद्रव्याणिखंवायुर्ज्योतिरापोभूरिति। पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानान्यक्षिणीकर्णौनासिकेजिह्वात्वक्चेति ॥ ५ ॥

चक्षु, श्रवण, घ्राण, रसन, स्पर्श यह पाच इंद्रियें हैं। और तेज, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, यह क्रमसे पाच इंद्रियोंके पाच द्रव्य हैं। आख, कान, नासिका, जीभ, त्वचा, यह क्रमसे पाच इंद्रियोंके अधिष्ठान (रहनेके स्थान) है॥ ५॥

इन्द्रियोंके विषयादि।

पञ्चेन्द्रियार्थाःशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः ।
पञ्चेन्द्रियबुद्धयश्चक्षुर्बुद्ध्यादिकास्ता ॥ ६ ॥

रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, यह क्रमसे पाचों इन्द्रियोंके अर्थ (विषय) है। देखनेकी बुद्धि, सुननेकी बुद्धि, गंधलेनेकी बुद्धि, रसज्ञानकी बुद्धि, स्पर्शकी बुद्धि यह क्रमसे पाच इंद्रियोंकी बुद्धि (बोध) है ॥ ६ ॥

पुनरिन्द्रियेन्द्रियार्थस्वत्त्वात्मसन्निकर्षजा ।
क्षणिकानिश्चयात्मिकाश्चेत्येतत्पञ्चपञ्चकम् ॥ ७ ॥

इन्द्रियबुद्धि यह (बोध,ज्ञान) इंद्रिय और उस इन्द्रियका अर्थ (विषय) तथा मन और आत्मा इन सबके सन्निकर्षसे होतीहै। फिर यह बुद्धि क्षणिका और निश्चयात्मिका इन भेदोंसे दो प्रकारकी है। यह इंद्रियपंचकका पंचक कहागया अर्थात् एक २ इन्द्रियका एकएक पंचक होनेसे पांच पंचक कहेगयेहैं ॥ ७ ॥

अध्यात्मिकद्रव्यगण।

मनोमनोरथोबुद्धिरात्माचेत्यध्यात्मद्रव्यगणसमहः शुभाशुभ प्रवृत्तिनिवृत्तिहेतुश्चद्रव्याश्रितकर्मयदुच्यते क्रियेति ॥ ८ ॥

मन, मनके विषय, बुद्धि, आत्मा, यह अध्यात्मद्रव्योंके गणका समूह है। शुभ तथा अशुभ कार्योंमें प्रवृत्त और निवृत्त होनेका हेतु भी यही आध्यात्मिक द्रव्यगण है। द्रव्यके आश्रयीभूत जो कर्म है उसको क्रिया कहतेहैं ॥ ८ ॥

इन्द्रियोंमें विशेषता।

तत्रानुमानगम्यानापञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मकानामपि सतामिन्द्रियाणातेजश्चक्षुषिश्रोत्रेनभः घ्राणेक्षितिरापोरसने स्पर्शनेऽनिलोविशेषेणोपदिश्यते ॥ ९ ॥

यह अनुमान द्वारा सिद्ध है कि पांचों इन्द्रियां पांच महाभूतोंके ही विकार है। इनमें तेज नेत्रोंमें, आकाश कानोंमें, और नासिकामें पृथ्वी, जीभमें जल,स्पर्शमें वायु विशेषतासे रहतेहै ॥ ९ ॥

तत्रयद्यदात्मकमिन्द्रियविशेषात्तदात्मकमेवार्थमनुधावति तत्स्वभावाद्विभुत्वाच्च ॥ १० ॥

इनमें जो इंद्रिय जिस महाभूतसे बनीहुईहै वह उसीके स्वभाववाली होनेसे और विभु होनेसे उसी महाभूतके गुणको ग्रहण करनेवाली होतीहै ॥ १० ॥

इन्द्रियोंके विपरीत होनेका कारण।

तदर्थातियोगायोगमिथ्यायोगात्समनस्कमिन्द्रियविकृतिमापद्यमानयथास्वबुद्ध्युपघातायसम्पद्यते ॥ ११ ॥ समयोगात्पुन प्रकृतिमापद्यमानयथास्वंबुद्धिमाप्याययति ॥ १२ ॥

इनके विषयोंका अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग होनेसे मन और इन्द्रिय विकृत होजातेहै और बुद्धि भी नाशको प्राप्त होती है। ऐसे ही ठीक योग होनेसे मन और इंद्रिय ठीक प्रकृतिस्थ रहतेहै और बुद्धि भी बढतीहै ॥ ११ ॥ १२ ॥

मनका विषय।

मनसस्तुचिन्त्यमर्थ। तत्रमनसोबुद्धेश्चतएवसमानातिहीनामिथ्यायोगा प्रकृतिविकृतिहेतवोभवन्ति ॥ १३ ॥ तत्रेन्द्रियाणा समनस्कानामनुपतप्तानामनुपतापायप्रकृतिभावेप्रयतितव्य मेभिर्हेतुभि ॥ १४ ॥

मनका विषय चिंतन करनाहै। यहा पर मन और बुद्धिका ठीक यान [illegible] प्रकृति (ठीकस्वभाव) का कारण है और अतियोग मिथ्यायोग अयोग विकृति

कारण है । इसलिये जिस योगमें मन और इद्रिय अपनी शक्तिसे हत न हों और अपने ठीक स्वभावमें रहें उस योगका अनुसरण करना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

प्रकृति स्थिर रखनेके हेतु ।

तद्यथासात्म्येन्द्रियार्थसंयोगेनबुद्ध्यासम्यगवेक्ष्यावेक्ष्यकर्मणां सम्यक्प्रतिपादनेनदेशकालात्मगुणाविपरीतोपसेवनेनचेति ॥ तस्मादात्महितचिकीर्षतासर्वेणसर्वसर्वदास्मृतिमास्थायसद्वृत्तमनुष्ठेयम् । तद्ध्यनुष्ठानयुगपत्सम्पादयत्यर्थद्वयमारोग्यमिन्द्रियविजयश्चेति ॥ १५ ॥

इन नीचे कहेहुए हेतुओंसे असात्म्य विषयोंका सेवन न करना, और आत्माके अनुकूल अर्थोंका सेवन करना, इस लिये आत्महितेच्छावालेको सब कार्योंको विचारपूर्वक देश, काल, और आत्माके अनुकूल जानकर सेवन करना चाहिये सत्कार्योंका सेवन करे । ऐसा करनेसे आरोग्यताका लाभ और इन्द्रियोंका बल ठीक रहसकताहै ॥ १५ ॥

सत्कार्योंका वर्णन ।

तत् सद्वृत्तमखिलेनोपदेक्ष्यामः । तद्यथा ॥ देवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धाचार्यानर्चयेत् । अग्निमनुचरेत् । ओषधीःप्रशस्ताधारयेत् ॥ द्वौकालावुपस्पृशेत् ॥ मलायतनेष्वभीक्ष्णपादयोश्चवैमल्यमादध्यात् । त्रिःपक्षास्यकेशश्मश्रुलोमनखान्संहारयेत् । नित्यमनुपहतवासाःसुगन्धिः स्यात् ॥ १६ ॥

सो अब हम उसी संपूर्ण सद्वृत्तका कथन करतेहैं वह ऐसा है कि देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्धपुरुष, सिद्ध, आचार्य, इनका पूजन करे । अग्निमें हवन करे । पवित्र उत्तम औषधियोंको धारण करे । प्रातःकाल और सायंकाल जलसे आचमन आदि करे (संध्या करे) मलमार्ग और हाथ पावोंको पवित्र रखना चाहिये, एक पक्षमें (१५ दिनमें) तीन वार क्षौरकर्म दाढी नख आदि ठीक करावे मैले और फटे वस्त्रोंको न पहने । मनको प्रसन्न रक्खे । उत्तम सुगंधोंको धारण करे ॥ १६ ॥

साधुवेशःप्रसाधितकेशोमूर्द्धश्रोत्रपादतैलनित्योधूमपःपूर्वाभिभाषीसुमुखः । दुर्गेष्वभ्युपपत्ताहोतायष्टादाताचतुष्पथानांनमस्कर्त्ताबलीनामुपहर्त्ताऽतिथीनांपूजकः पितृणांपिण्डदः काले-

हितमितमधुरार्थवादी। वश्यात्मधर्मात्माहेतुवीर्य्यं.फलेनेर्षु। निश्चिन्तोनिर्भीकोधीमान्ह्रीमान्महोत्साह दक्ष.क्षमावान्धार्मिकःआस्तिक विनयबुद्धिविद्याभिजनवयोवृद्धसिद्धाचार्य्याणामुपासिता। छत्रीदण्डीमौनीसोपानत्कोयुगमात्रदृग्विचरेत्॥ १७॥

श्रेष्ठ पुरुषोंकी समान वेप धारण करे। केशोंको साफ और सवारकर रक्खे। मस्तक, कान, नाक, और पैरोंके तलुवोंमें नित्य तेल लगायाकरे, धूमपान करे, जब कोई भले पुरुष घर आवे उनका आदर सत्कारसे सम्मान करे अथवा जिनसे मिले, पहले ही मीठे वचनोंसे प्रसन्न करले, भयसे व्याकुलको धैर्य देवे, कठिन कार्योंकी प्राप्तिके लिये होम, यज्ञ, दान, इनको करे, चतुष्पथको नमस्कार करे, बलि आदिसे अग्निदेवता, भद्रपुरुष और दीन आदिकोंको प्रसन्न रक्खे। अतिथियोंका पूजन करे, पितरोंको पिंड आदि देवे, समय विचारकर हितयुक्त और मधुर अर्थवाला सभापण करे, आत्माको वशमें रखनेमें तत्पर रहे, धर्मात्मा होय, जिस कार्यमें सबका भला हो वह करे, कार्यको कर फलके लिये ईर्षा न करे, निश्चिन्त रहे, भयभीत न हो, बुद्धि, लज्जा, उत्साह, चातुरी, क्षमा इनको धारण करे। धर्म करे, आस्तिकतावाला होय, और विनय, बुद्धि, विद्या, इनमें जो वृद्ध हो और सिद्ध तथा आचार्य हों उनकी उपासना, सेवा, करे, छत्री, यष्टि, पगडी, उपानह इनको धारण करे मार्ग चलने समय आगेको चार हाथ मार्ग देखकर चले॥ १७॥

मङ्गलाचारशीलःकुचैलास्थिकण्टकामेध्यकेशतुषोत्करभस्मकपालस्नानबलिभूमीनापरिहर्त्ताप्राक्श्रमाद्व्यायामवर्जीस्यात्। सर्वप्राणिषुवन्धुभूतःस्यात्क्रुद्धानामनुनेताभीतानामाश्वासयितादीनानामभ्युपपत्ता। सत्यसन्धः। सामप्रधानः। परुषवचनसहिष्णुःअमर्षघ्न.। प्रशमगुणदर्शी॥ १८॥

सदा ही मंगलवस्तुओं और मंगल (शुभ) कार्योंका सेवन करे, मलिन वस्त्र, अस्थि कांटे अमेध्य (विष्ठाआदि), केश, तुष, कतवार आदि, भस्म, ठीकरे वाली भूमिमें और जहां स्नान करनेका जल पड़ताहो तथा जिस भूमिमें बलि दी हो एव श्मशान आदि भूमिमें न जावे। थकावट होनेसे पहले कसरत छोडदेवे अर्थात् अत्यंत व्यायाम न करे। सब प्राणियोंसे बंधुओंकी समान प्रेम रक्खे क्रोधयुक्तोंको नम्रतासे शांत करे। भयभीतोंको आश्वासन करे अर्थात् दिलासा देवे दीन पुरुषों पर कृपा करे, सत्यभा

पणोंमें तत्पर रहे, और साम, दान, दंड, भेद, इन चारोंमें सामगुणका अवलंबन करे, परके कहेहुए कठोर वचनोंको सहन करलेनेवाला होय, आप क्रोध और अहभाव न लावे, उत्तम शांतिदायक गुणोंका अवलंबन करे ॥ १८ ॥

अकर्तव्योंका वर्णन ।

रागद्वेषहेतूनाहन्ता ॥ नानृतंब्रूयात् । नान्यस्वमाददीत । नान्यस्त्रियमभिलषेत् । नान्यश्रियंनवैरंरोचयेत् । नकुर्यात् पापंन पापेऽपिपापीस्यात् । नान्यदोषान्ब्रूयात् । नान्यरहस्यमागमयेत् ॥ १९ ॥ नाधार्मिकैर्ननरेन्द्रद्विष्टै सहासीत । नोन्मत्तैर्नपतितैर्नभ्रूणहन्तृभिर्नक्षुद्रैर्नदुष्टै । नदुष्टयानान्यारोहेत् । नजानुसमंकठिनमासनमध्यासीन ॥ २० ॥ नानास्तीर्णमनुपहितमविशालमसमंवाशयनप्रपद्येत । नगिरिविषममस्तकेष्वनुचरेत् । नद्रुममारोहेत । न जलोग्रवेगमवगाहेत । कुलच्छाया नोपासीत । नाग्न्युत्पातमभितश्चरेत् । नोच्चैर्हसेत् । नशब्दवन्तमारुतमुत्सृजेत् । नासंवृतमुखो जृम्भाक्षवथुंहास्यंवाप्रवर्त्तयेत् । ननासिकांकुष्णीयात् । नदन्तान्विघट्टयेत् । ननखान्वादयेत् । नास्थीन्यभिहन्यात् । नभूमिंविलिखेत् । नछिंद्यात्तृणम् ॥ नलोष्टमृद्नीयात् ॥ २१ ॥ नविगुणसङ्गैश्चेष्टेत । ज्योतींष्यग्निश्चामेध्यमशस्तञ्चनाभिवीक्षेतनहुंकुर्याच्छवम् । नचैत्यध्वजगुरुपूज्याशस्तच्छायामाक्रामेत् । नक्षपास्वमरसदनचैत्यचत्वरचतुष्पथोपवनश्मशानायतनान्यासेवेत । नैक शून्यगृहनचाटवीमनुप्रविशेत् । नपापवृत्तान्स्त्रीयमित्रभृत्यान्भजेत् । नोत्तमैर्विरुध्येत्नावरानुपासीतनजिह्मंरोचयेत् । नाऽनार्यमाश्रयेत् । नभयमुत्पादयेत् । नसाहसातिस्वप्नप्रजागरस्नानपानाशनान्यासेवेत । नोर्द्ध्वजानुश्चिरंतिष्ठेत् । नव्यालानुपसर्पेन्नदंष्ट्रिण नविषाणिन । पुरोवातातपावश्यायातिप्रवाताञ्जह्यात्कलिंनारभेत । नानिभृतोऽग्निमुपासीत ।

नोच्छिष्टोनाधःकृत्वाप्रतापयेत् । नाविगतक्लमोमानाप्लुतवदनोननग्नउपस्पृशेत् । नस्नानशाट्यास्पृशेदुत्तमाङ्गम् । नकेशाग्राण्यभिहन्यात् । नोपस्पृशेतएववाससीबिभृयात् । नास्पृष्ट्वारत्नाज्यपूज्यमंगलसुमनसोऽभिनिष्क्रामेत् । नपूज्यमंगलान्यपसव्यंगच्छेत् । नेतराण्यनुदक्षिणम् ॥ २२ ॥

राग और द्वेषके कारणोंको न रहनेदे । झूठ न बोले, पराई वस्तु न लेवे, परस्त्रीकी कभी भी इच्छा न करे । परसंपत्ति देखकर डाह न करे, किसीसे विरोध न करे, पाप न करे, पापीसे भी पाप न करे, किसीके भी दोष अपने मुखसे न कहे, किसीकी भी गुप्त बात को प्रगट न करे ॥ १९ ॥ अधर्मी और राजद्रोही पुरुषके पास भी न जाय । उन्मत्त, पतित भ्रणहत्यारे (गर्भगिरानेवाले), और क्षुद्र तथा दुष्ट पुरुषोंका संग न करे । खराब घोडे आदिपर सवारी न करे जानु (गोडे,) आधे कदके अथवा जिस तरह बैठनेमें कष्ट हो वैसे न बैठे ॥ २० ॥ जिस शय्यापर वस्त्र न बिछा हो, और ओढनेको कपडा न हो, तथा जो लम्बी चौडी ठीक न हो, और नष्ट भ्रष्ट हो तथा टेढी हो ऐसी शय्यापर शयन न करे । पर्वत और पर्वतोंकी खराब घाटियोंपर न चढे । वृक्षपर न चढे । अधिक वेगवाली चढी हुई नदीमें स्नान न करे । अपने कुलकी छाया या वैरीके वृक्षकी छायामें न बैठे । अग्नि लगे स्थानमें न जाय ऊचे स्वरसे न हँसे । सभा आदिमें अपान वायुका शब्द न करे । मुखको विना ढके जभाई, छींक, हास्य न करे । नाकको न कुरेदे, दांतोंको न कटकटावे, नखोंको न बजावे, हड्डियोंको हनन न करे, (मटकावे नहीं), पृथ्वीको न कुरेले, तिनके न तोडाकरे, वृथा मट्टीके ढले न फोडाकरे ॥ २१ ॥ दुराचारी मनुष्योंका संग अथवा उनसे कोइ व्यवहार न करे । तेज, ज्योति, अग्नि, पवित्र और निंदिताके सामने न देखे । मुर्देको देखकर हुंकार न करे । चैत्यस्थान, ध्वजा, गुरु, माता पिता आदि पूज्य जनोंकी, छायाको और स्वगर छायाको उल्लंघन न करे । रात्रिमें-देवालय, चैत्य, आगन, चतुष्पथ, बाग, श्मशान, और हिंसाकी भूमिमें न रहे । शून्य स्थान अथवा शून्य वनमें अकेला न जाय । पापवृत्तिवाले-स्त्री, मित्र, नौकर, आदिको अपने पास न रक्खे । भद्रपुरुषोंसे विरोध न करे । कुटिल पुरुषका संग न करे । चपल पुरुषसे मित्रता न करे । खोटे पुरुषका आश्रय न लेय । किसीको भी भय न देवे । बहुत साहस, बहुत सोना, बहुत जागना, बहुत स्नान करना, बहुत पानी और बहुत भोजन करना उचित नहीं, अर्थात् इनको बहुत न करे । जानुओंको ऊंचाकी कर

बडी देर तक न बैठे । साप, सिंहादि, और सींगवाले, जीवोंके पास न जाय, पूर्वकी वायु, सूर्यकी धूप, हिम, बहुत वेगवाली पवन इनको त्यागदेवे । कलह न छेडे, दावानल आदि अग्निके समीप न जाय । उच्छिष्ट होकर या शय्या आदिके नीचे रख अग्नि न सेके । जबतक थकावट दूर होकर पसीना न सूखजाय तबतक स्नान न करे । नगा होकर न न्हावे । जिस कपडेसे स्नान कियाहो उससे मस्तकादि उत्तम अगको न पोंछे । केशोंके अग्रभागको पकडकर न झटके । जिस कपडेसे शरीर पोंछा हो या स्नान किया हो उस गीले वस्त्रको न पहिरे । रत्न, घृत, पूज्य और मंगलवस्तुओंका स्पर्श करके प्रसन्न मन हो घरसे निकले । पूज्य और मगल वस्तुओंको बाईं ओर करके न जाय । ऐसेही अपूज्य और अमगलको दाहनी ओर करे न जाय ॥ २२ ॥

भोजन करनेके नियम ।

नारत्नपाणिर्नास्नातोनोपहतवासानाऽजपित्वानाहुत्वादेवता-भ्योऽनारूप्यपितृभ्योनाऽदत्त्वा गुरुभ्योनातिथिभ्योनोपाश्रि-तेभ्योनापुण्यगन्धोनामालीनाप्रक्षालितपाणिपादवदनोनाऽशु-द्धमुखोनोदङ्मुखोनविमनाभक्ताशिष्टाशुचिक्षुधितपरिचरोना-पात्रीष्वमेध्यासुनादेशेनाऽकालेनाकीर्णेनाऽदत्त्वाग्रमग्नयेनाप्रो-क्षितंप्रोक्षणोदकैर्नमन्त्रैरनभिमन्त्रितंनकुत्सयन्नकुत्सितनप्रति-कूलोपहितमन्नमाददीत । नपर्य्युषितमन्यत्रमांसहरितशुष्क-शाकफलभक्ष्येभ्यः ॥ २३ ॥

हाथोंमें रत्नको धारण किये विना, न्हाये विना, मैले तथा फटे कपडे पहनकर, विना जपकिये, हवन किये विना, देवताओंको अर्पण किये विना, पितृजनों, गुरुजनों और अतिथियोंको दिये विना, अपने आश्रित पुरुषोंको दिये विना, पवित्र चंदन गंध आदि धारण किये विना, माला पहने विना, हाथ, पांव, मुख धोये विना अशुद्ध मुखसे, उत्तरको मुख करके भोजन न करे । और अपमानित, अभक्त, दुष्ट, अपवित्र, और भूखे नौकरोंके पास रहते हुए, अशुद्ध पात्रमें, निंदित स्थानमें, विना समय, बहुत मनुष्योंमें भरेहुए, अग्निमें आहुति डाले विना, प्रोक्षणोदकसे प्रोक्षण किये विना, मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किये विना, भोजनकी निंदा करते हुए, निंदित पदार्थोंको शत्रुके हाथसे दियेको ऐसे भोजनको न करे । और मांस, हरितपत्ती, सूखे शाक, फलोंसे और पेडा आदि मिठाईसे सिवाय वासी पदार्थ न खाय ॥ २३ ॥

नाऽशेषभुक्स्यादन्यत्रदधिमधुलवणसक्तुसर्पिर्भ्यः । ननक्तदधि भुञ्जीत । नसक्तूनेकानश्नीयात् ॥ २४ ॥ ननिशिनभुक्त्वान वहूनद्विर्नोदकान्तरितान् ॥ २५ ॥

भोजन करते समय दधि, मधु, लवण, और सत्तुओंके विना सब पदार्थ, थोडे २ छोडकर भोजन करने चाहिये ॥ रातको दही न खाय । केवल सत्तू (घी मीठे विना) न खाय । रात्रिको और भोजनके पीछे तथा वहुत किस्मके मिलेहुए सत्तू न खाय । दो वार सत्तू न खाय । सूखे सत्तू न फाके ॥ २४ ॥ २५ ॥

नछित्त्वाद्विजैर्भक्षयेत् । नाऽनृजु'क्षुयान्नाद्यान्नशयीत । नवेगितोऽन्यकार्य्यःस्यात् । नवाय्वग्निसलिलसोमार्कद्विजगुरुप्रतिमुखनिष्ठीविकावातवर्चोमूत्राण्युत्सृजेत् । नपन्थानमवमूत्रयेन्नजनवतिनान्नकाले नजप्यहोमाध्ययनवलिमङ्गलक्रियासुश्लेष्मसिंघाणकमुञ्चेत । नस्त्रियमवजानीत । नातिनिश्रम्भयेत् नगुह्यमनुश्रावयेन्नाधिकुर्य्यात् । नरजस्वलानातुरानामेध्यानाशस्तांनानिष्टरूपाचारोपचारानादक्षिणांनाकामानान्यकामानान्यस्त्रियंनान्ययोनिंनायोनौनचैत्यचत्वरचतुष्पथपवनश्मशानायतनसलिलौषधिद्विजगुरुसुरालयेपुनसन्ध्ययोर्नातिथिषुनाशुचिर्नजग्धभेषजोनाप्रणीतसङ्कल्पोनानुपस्थितप्रहर्षोनाभुक्तवान् नात्यशितोनविषमस्थोनमूत्रोच्चारपीडितोनश्रमव्यायामोपवासक्लमाभिहतोनाऽरहसिव्यवायगच्छेत् ॥२६॥

दातोंसे कुचले विना न खाय । शरीरको टेढा करके छींकना, खाना, सोना उचित नहीं । मलादिकके वेगको रोककर कोइ कार्य न करे । वायु अग्नि, जल, चंद्रमा, सूर्य, ब्राह्मण, गुरु, इनके सामने थूक, अपानवायुका त्याग, मलत्याग, मूत्र, यह न करे । मार्गमें मल मूत्र न करे । वहुत मनुष्योंमें भोजनके समय, जप होम, पठन, पाठन, वलि, तथा मंगलकार्यमें थूक और नाकका मलको न त्यागे । स्त्रीका वहुत अपमानित न करे और उसका अयन्त विश्वास भी न करे तथा अपनी गुप्त वातोंको भी स्त्रीसे प्रगट न करे और गुप्त अपने कार्योमें मालिक भी न वनावे ।

ऐसे ही रजस्वला, रोगिणी, मशुद्ध अश्रेष्ठा, कुरूपा, खोटे आचारवाली, कुबुद्धिनी, बिना इच्छावाली, दूसरे पुरुषकी इच्छावाली, परस्त्री, इनसे मैथुन न करे स्त्रीकी योनिसे बिना अयोनिमैथुन न करे। चैत्य, चत्वर (देवालय मंदिर आदि), चौगड्डा, उपवन, श्मशान, वधस्थान, जल, औषधीदेनेके स्थान, द्विजस्थान, गुरुस्थान, देवमंदिर, इन स्थानोंमें भी स्त्रीगमन न करे । दोनों सध्याओंम, एकादशी आदि निषिद्ध तिथियोंमें, अपवित्र अवस्थामें, औषधी खाकर, बिना निश्चय किये, बिना कामेच्छा प्रगटहुए, भूखे, बहुत भोजन करके, विषमरीतिसे, मलमूत्रके वेगमें, थकाहुआ, व्यायाम करके, व्रत करके, आलस्य युक्त भी मैथुन न करे। एकान्त स्थानके बिना भी स्त्रीसंग न करे ॥ २६ ॥

अध्ययनकालके नियम ।

नसतोनगुरूनपरिवदेत् । नाशुचिरभिचारकर्मचैत्यपूज्यपूजाध्ययनमभिनिवर्त्तयेत् । नविद्युत्स्वनार्त्तवीपुनाभ्युदितासुदिक्षु नाग्निसम्प्लवेनभूमिकम्पेनमहोत्सवेनोल्कापातेनमहाग्रहोपगमनेनष्टचन्द्रायांतिथौनसन्ध्ययोर्नमुखाद्गुरोर्नावपतितनातिमात्रं नतान्तनविस्वरनानवस्थितपदंनातिद्रुतनविलम्बितनातिक्लीबंनात्युच्चैर्नातिनीचै । स्वरैरध्ययनमभ्यसेत् । नातिसमयंद्रुह्यात् । ननियमंभिन्द्यात् ॥ २७ ॥

श्रेष्ठ महात्माओंकी और गुरुजनोंकी निन्दा न करे । बिना शुद्ध हुए मंत्र तंत्र, देवमंदिर पीपल आदिका पूजन, पूज्योंका पूजन, विद्याध्ययन, न करे । अकाल विद्युत्पात होनेपर, दिग्दाह होनेपर, भूकंप होनेपर, बडे उत्साहमें, उल्कापातके समय, सूर्य चंद्रके ग्रहणमें, अमावस्याको, दोनों सन्ध्याओंमें, ऐसे ही गुरुमुखके सिवाय, अत्यंत मात्रासे, बहुत जोरसे, खराब स्वरसे, पदोंको तोड फोड कर, बहुत जल्दी २, बहुत देरमें, बहुत दुर्बलतासे, बहुत ऊंचे स्वरसे, बहुत नीचे स्वरसे, अध्ययन न करे । पढनेके समयको व्यर्थ न खोवे । पढनेके नियमको न बिगाडे ॥ २७ ॥

अन्य नियम ।

न नक्तंनादेशेचरेत्। नसन्ध्यास्वभ्यवहाराध्ययनस्त्रीस्वप्नसेवी स्यात् । नबालवृद्धलुब्धमूर्खक्लिष्टक्लीबैःसहसख्यंकुर्यात् । न मद्यद्यूतवेश्याप्रसङ्गरुचिःस्यात । नगुह्यंविवृणुयात् । नकंचिदव-

जानीयात्। नाहंमानीस्यात्। नदक्षोनादक्षिणोनासूयकोनद-क्षिणान्परिवदेत्। नगवांदण्डमुद्यच्छेत्। नवृद्धान्नगुरून्नग-णान्ननृपान्वाधिक्षिपेत्नचातिब्रूयात्॥नबान्धवानुरक्तकृच्छ्रा-द्वितीयगुह्यज्ञान्बहिःकुर्य्यात् ॥ २८ ॥

रात्रिके समय और खराब स्थानमें न फिरे। सध्याके समय भोजन, अध्ययन, मैथुन, और शयन, न करे। बालक, अतिवृद्ध, लोभी, मूर्ख, रोगी, और नपुंसकोंसे मित्रता न करे। मद्यपान,जूआ और वेश्याओंमें कभी रुचि न करे। घरकी गुप्त बातें किसीसे न कहे। किसीका भी अपमान न करे। अहंकार (मैं बडा हूं वा बडा गुणी हूं) न करे। चतुराई रहित, सूम, तथा किसीको दोष लगानेवाला न हो। ब्राह्मण आदिकोंकी निंदा न करे। गौओंपर डंडा न चलावे। वृद्धपुरुषों, गुरुजनों, बहुत दलवाले तथा राजाओंकी निंदा आदि न करे। न इनके सामने बहुत बोले। अपने बांधवोंको अपने प्रेमियोंको आपत्तिमें सहायता करनेवालोंको, अपने रहस्य जाननेवालोंको नछोडे ॥ २८ ॥

विशेष उपयोगीनियम।

नाधीरोनात्युच्छ्रितसत्त्व स्यात्। नाभृतभृत्योनविश्रब्धास्वज-नोनैक.सुखी।नदु.खशीलाचारोपचारोनसर्वविश्रम्भी। नस-र्वाभिशङ्की। नसर्वकालविचारी॥ नकार्य्यकालमतिपातयेत्। नापरीक्षितमभिनिविशेत्। नेन्द्रियवशग स्यात्॥ २९ ॥

धैर्यरहित और बडा सात्त्विक न बने नौकरोंकी नौकरी न रक्खे। आदमियोंसे विश्वासरहित भी न बने। कुटुंबके विना अकेला ही सुख न भोगे। और दूसरोंको दु.ख मिलनेवाला आचरण न करे। सभीका विश्वास भी न करे। प्रत्येक मनुष्यसे शंका होनेका भ्रम भी न करे। सदा सोचता भी न रहे। कामके समयको व्यर्थ नष्ट न करे। विना जाने कार्यमें प्रवेश न करे। इंद्रियोंके वशमें न होजाय॥ २९ ॥

नचञ्चलमनोभ्रामयेत्। नबुद्धीन्द्रियाणामतिभारमादध्यात्॥ नचातिदीर्घसूत्रीस्यात्। नक्रोधहर्षावनुविदध्यात्। नशोकम-नुविशेत्।नासिद्धावौत्सुक्यगच्छेन्नासिद्धौदैन्यम्। प्रकृतिमभी-क्ष्णस्मरेत्। हेतुप्रभावनिश्चित स्यात्। हेत्वारम्भनित्य। नकृ-तमित्याश्वसेत्॥ नवीर्यंजह्यात्। नापवादमनुस्मरेत्॥ ३०॥

मन स्वयं ही चचल होताहै इसको और भी भ्रमित न करे अर्थात् मनको टिकाकर रक्खे। बुद्धि और इंद्रियोंपर बहुत भार न दे अर्थात् जिससे रोग होजाय इतना काम न लेय। कामको बहुत देरमें करनेवाला न होय। क्रोध और हर्षको बढने न दे। शोकातुर न बनारहे। कार्य सिद्ध होनेसे अत्यन्त प्रसन्न न होय। कार्यके न होनेमें अति दीनता भी न प्रगटकरे। अपने जन्म कर्म आदिका सदैव स्मरण रक्खे। जिस कार्यका आरंभ करे उसके फल (नतीजे)को पहले सोचलेवे। उन्नतिके हेतुओंको नित्य आरंभ करतारहे। अपने आपको कभी कृतकृत्य न समझे। अपने पराक्रमको न छोडे। किसीने अपमान कियाहो तो, उसको याद न करे॥ ३०॥

हवनादिके नियम।

नाशुचिरुत्तमाज्याक्षततिलकुशसर्षपैरग्निंजुहुयात्। आत्मानमाशीर्भिराशासानः॥ अग्निर्मेनापगच्छेच्छरीरात्। वायुर्मेप्राणानादधातु। विष्णुर्मेबलमादधातु। इन्द्रोमेवीर्य्यंशिवामाप्रविशंस्त्वाप.॥ आपोहिष्ठेत्यप.स्पृशेत्॥ द्वि.परिमृजेदोष्ठौ पदौचाभ्युक्ष्यमूर्धिखानिचोपस्पृशेत्। अद्भिरात्मानहृदयशिरश्चब्रह्मचर्य्यज्ञानदानमैत्रीकारुण्यहर्षापेक्षाप्रशमपरश्चस्यादिति॥ ३१॥

शुद्ध पवित्र होकर घी, चावल, तिल, कुशा, सर्सो इनको अग्निमें हवन करे। होम करनेके पीछे अपनेको इस प्रकार आशीर्वाद दे " अग्नि हमारे शरीरमेंसे मत जाय, वायु हमारे प्राणोंकी रक्षाकरे, विष्णु हमारे शरीरमें बल दे। इन्द्र हमारे वीर्यको बढावे। शुभकारक जल हमारे शरीरमें प्रवेश करे। इस प्रकार कहके आपोहिष्ठा मयोभुवः इत्यादि मन्त्रोंसे अपने शरीरको छींटे दे। दो बार होठोंको दोनों पांवोंको ऊपरके सब द्वारोंको जलसे छींटे देकर मस्तक और आकाशको छींटे दे। जलसे शरीर हृदय, मस्तक प्रोक्षण करे। ब्रह्मचर्य, ज्ञान, दान, मैत्री कृपा तथा आनंदको चाहे और शांतचित्त रहे॥ ३१॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन।

अत्र श्लोकाः।

पञ्चपञ्चकमुद्दिष्टमनोहेतुचतुष्टयम्। इन्द्रियोपक्रमेऽध्यायेसद्वृत्तमखिलेनच॥३२॥ स्वस्थवृत्तयथोद्दिष्टंय.सम्यगनुतिष्ठति। ससमा.शतमव्याधिरायुषानवियुज्यते॥ ३३॥ नृलोकमापूर-

यतेयशसासाधुसम्मत.। धर्मार्थौचेतिभूतानावन्धतामुपगच्छति ॥ ३४ ॥ परान्सुकृतिनोलोकान्पुण्यकर्माप्रपद्यते। तस्माद्वृत्तमनुष्ठेयमिदसर्वेणसर्वदा ॥ ३५ ॥ यच्चान्यदपिकिञ्चित्स्यादनुक्तमिहपूजितम्। वृत्ततदपिचात्रेय सदैवाभ्यनुमन्यते ॥ ३६ ॥

इति स्वस्थवृत्तचतुष्कः ॥ अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसस्कृते इन्द्रियोपक्रमणीयोऽष्टमोध्याय ॥ ८ ॥

अव अध्यायका उपसहार करतेहै। इस इन्द्रियोपक्रमणीय अध्यायमे-पाच पचक न, हेतुचतुष्टय, सपूर्ण सद्वृत्त, स्वास्थ्यरक्षा, भलेप्रकार कहेगयेहैं। इनका जो नुष्य अनुसरण करेगा वह रोगरहित, शतायु, साधुसमत, यशस्वी-मनुष्यलोकको पनी शोभासे परिपूर्ण करनेवाला होगा। सब लोग उसको धर्मात्मा कहकर उससे नभाव करेंगे। वह पुण्यकर्मा सब मनुष्योंसे उत्तमलोकोंको प्राप्त होताहै। इसलिये ह सद्वृत्त सबको ही ग्रहण करना चाहिये। जो इस अध्यायमें कहनेसे रहेहुए सदाचरण हो महात्मा आत्रेयजीने उनकी भी प्रशसा कीहै ॥ ३२-३६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसहितायां पटियालाराज्यांतर्गतदकसालनिवासिवैद्यपञ्चानन प० रामप्रसादवैद्योपाध्यायनिर्मितप्रसादन्याख्यभाषाटीकाया मिन्द्रियोपक्रमणीयो नामाष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

नवमोऽध्याय।

अथात खुड्डाकचतुष्पादमध्यायव्याख्यास्याम। इतिहस्माहभगवानात्रेय. ॥

अब हम खुड्डाक चतुष्पाद नामके अध्यायका व्याख्यान करेंगे। ऐसा भगवान आत्रेयजी कहनेलगे।

चिकित्साके चार पाद।

भिषग्द्रव्याण्युपस्थातारोगीपादचतुष्टयम्। गुणवत्कारणज्ञेयविकारव्युपशान्तये ॥ १ ॥

वैद्य, औषधी, परिचारक, और रोगी यह चिकित्साके चार पाद है यदि यह चार यथोचित गुणोंवाले हो तो रोगकी शान्ति अवश्य होजातीहै ॥ १ ॥

विकार और स्वास्थ्यका लक्षण ।

विकारोधातुवैषम्यसाम्यंप्रकृतिरुच्यते ।
सुखसञ्ज्ञकमारोग्यंविकारोदुःखमेवच ॥ २ ॥

शरीरकी धातुओंमें और वातादिदोषोंमें विषमता (यथोचित न होना) विकार अर्थात् रोग कहाजाताहै । और इनका ठीक होना आरोग्यता कहाहै । सो आरोग्यताको सुख कहतेहैं । रोगको दुःख कहतेहैं ॥ २ ॥

चिकित्सा ल० ।

चतुर्णांभिषगादीनांशस्तानाधातुवैकृते ।
प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्थाचिकित्सेत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

धातुदोष आदिकी विकृतिमें उनको ठीक अर्थात् साम्यावस्थामें करनेके लिये वैद्य आदि चार पादोंकी जो योग्यतासे प्रवृत्ति है वह चिकित्सा कही जातीहै ॥ ३ ॥

वैद्यके चार गुण ।

श्रुतेपर्य्यवदातृत्वंबहुशोदृष्टकर्मता ।
दाक्ष्यशौचमितिज्ञेयंवैद्येगुणचतुष्टयम् ॥ ४ ॥

शास्त्रको अच्छीतरहसे जाननेवाला, दूरदर्शी (रोगादिमें भविष्यत्को जाननेवाला) क्रियामें कुशल शुद्धता यह वैद्यके चार गुण हैं ॥ ४ ॥

औषधिगुण चतुष्टय ।

बहुतातत्रयोग्यत्वमनेकविधकल्पना ।
सम्पच्चेतिचतुष्कोऽयंद्रव्याणांगुणउच्यते ॥ ५ ॥

अच्छे गुणयुक्त, रोगके अनुसार, अनेक प्रकारसे कल्पनापूर्वक प्रयोग, और कीटे आदिसे रहित नवीन होना, यह चार गुण औषधके कहेहैं ॥ ५ ॥

सेवकके चार गुण ।

उपचारज्ञतादाक्ष्यमनुरागश्चभर्त्तरि ।
शौचञ्चेतिचतुष्कोऽयंगुणःपरिचरेजने ॥ ६ ॥

प्रेमसे सेवाकरना, सब कार्यका जाननेवाला होना, चतुरता स्वामीका भक्त होना, यह चार गुण परिचारक (सेवक) के होनेचाहिये ॥ ६ ॥

रोगीके चार गुण ।

स्मृतिर्निर्देशकारित्वमभीरुत्वमथापिच ।
ज्ञापकत्वञ्चरोगाणामातुरस्यगुणाः स्मृताः ॥ ७ ॥

स्मरण रखना, वैद्यकी आज्ञामे चलना, निर्भय होना (घबगनेवाला न होना), अपने रोगोंको यथार्थ कहना यह चार गुण रोगीके कहेहै ॥ ७ ॥

१६ गुणोंमे वैद्यकी प्रधानता ।

कारणंषोडशगुणासिद्धौपादचतुष्टयम् । विज्ञाताशासितायोक्ताप्रधानंभिषगत्रतु ॥ ८ ॥

वैद्य आदि चार पादोंका जो चतुष्टय है अर्थात् सोलह गुण संपन्न होनेसे रोगी आरोग्य होताहै । इन सबमें ज्ञाता, उपदेश करता, औषधि आदिके क्रमको बताकर आरोग्यकारक पथपर चलानेवाला होनेसे वैद्य प्रधान होताहै ॥ ८ ॥

पक्तौहिकारणपक्तुर्यथापात्रेन्धनानला । विजेतुर्विजयेभूमिश्च-मू.प्रहरणानिच ॥ ९ ॥ आतुराद्यस्तथासिद्धौपादा कारणसंज्ञिताः । वैद्यस्यातश्चिकित्सायांप्रधानकारणंभिषक् ॥ १० ॥

जैसे भोजन बनानेमे वर्तन, लकडी, अग्नि आदि अन्य पाकके कारण होनेपर भी बनानेवाला ही मुख्य मानाजाताहै । और विजयमें-भूमि, सेना, शस्त्र शस्त्र आदि विजयके कारण होतेहुए भी सेनापति ही मुख्य माना जाताहै । ऐसे ही आरोग्य करनेमें रोगी, परिचारक, औषध, इनके कारण होनेपर भी वैद्यको ही प्रधान कारण समझना चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥

मृद्दण्डचक्रसूत्राद्या कुम्भकारादृतेयथा । नावहन्तिगुणंवैद्या-दृतेपादत्रयतथा ॥ ११ ॥

जैसे घट आदि मट्टीका पात्र बनाते समय मट्टी, दड, चक्र, सूतका डोरा आदि सब होतेहुए भी कुम्हारके विना घडा नहीं बनासकते । ऐसे ही वैद्यके विना सेवक, औषध रोगी आरोग्यता प्राप्त नहीं करसकते ॥ ११ ॥

रोगोंमे वैद्यको कारणता ।

गन्धर्वपुरवन्नाशयद्विकारा सुदारुणा । यान्तियच्चेतरेवृद्धिमा-शूपायप्रतीक्षिण ॥ १२ ॥ सतिपादत्रयेज्ञाज्ञौभिषजावत्रकारणम् । वरमात्माहुतोज्ञेननचिकित्साप्रवर्त्तिता ॥ १३ ॥

रोगी, औषध, और परिचारक यह चिकित्साके तीन पाद होतेहुए भी इन्द्रजालके समान जो रोग शीघ्र निवृत्त होजाताहै अथवा ठीक उपाय न होनेसे बढजाताहै इसमे भी सर्वज्ञ अथवा अज्ञ वैद्यको ही कारण मानना चाहिये अर्थात् अच्छ कारण

होनेपर भी वैद्य अच्छा होनेसे रोगका नाश और वैद्यके मूर्ख होनेसे रोगकी वृद्धि होतीहै। इसीसे कहतेहैं कि अपने आप मरजाना अच्छा है परंतु मूर्खसे चिकित्सा करना अच्छा नहीं ॥ १२ ॥ १३ ॥

मूर्ख वैद्यके लक्षण ।

पाणिचाराद्यथाचक्षुरज्ञानाद्भीतभीतवत् ।
नौर्मारुतवशेवाज्ञोभिषक्चरतिकर्मसु ॥ १४ ॥

जथा मनुष्य जैसे चलते समय आगेको हाथ मारता है और अति पवनके वेगसे जैसे नाव डगमगातीहै ऐसे ही चिकित्साके समय मूर्ख वैद्य डगमगाताहुआ अटसंट यत्न करताहै ॥ १४ ॥

कुत्सित वैद्यका कर्म ।

यदृच्छयासमापन्नमुत्तार्य्यानियतायुषम् ।
भिषग्मानीनिहन्त्याशुशतान्यनियतायुषाम् ॥ १५ ॥

मूर्ख वैद्यके हाथसे यदि कोई दैववश एक पुरुष भी अच्छा होजाय फिर वह उसको दृष्टांतमें "रख मैं ऐसा योग्य वैद्य हूं" यह कहकर वह दुष्ट सैकडों मनुष्योंकी आयुको नष्ट करताहै ॥ १५ ॥

वैद्यकी प्राणदातृत्व ।

तस्माच्छास्त्रेऽर्थविज्ञानेप्रवृत्तौकर्मदर्शने ।
भिषक्चतुष्टयेयुक्त प्राणाभिसरउच्यते ॥ १६ ॥

इसलिये जिस वैद्यने शास्त्र और उसके मर्मको समझाहो, औषध और औषधके प्रयोगको जाना हो तथा चिकित्साकर्मको अच्छी तरह देखलियाहो वह गुणचतुष्टय युक्त वैद्य प्राणोंको देनेवाला कहा जाताहै ॥ १६ ॥

राजयोग्य चिकित्सकके लक्षण ।

हेतौलिङ्गेप्रशमनेरोगाणामपुनर्भवे ।
ज्ञानचतुर्विधंयस्यसराजार्हभिषक्तमः ॥ १७ ॥

जो वैद्य रोगके कारण और लक्षण तथा रोगनाशक उपाय और जिस प्रकार फिर रोग न होय ऐसी स्वास्थ्यरक्षा इन चार प्रकारोंके विषयको जानताहै वह, नरनाथों। चिकित्सा करने योग्य वैद्यराज होताहै ॥ १७ ॥

वैद्यका कर्त्तव्यकर्म ।

शस्त्रशास्त्राणिसलिलंगुणदोपप्रवृत्तये ।
पात्रापेक्षिण्यत.प्रज्ञांचिकित्सार्थंविशोधयेत् ॥ १८ ॥

शस्त्र, शास्त्र, जल, यह गुण और दोषमें पात्रकी अपेक्षा करतेहैं अर्थात् शस्त्र योग्य शरीरके हाथमें होनेसे गुणदायक होताहै और नालायक दुष्ट आदिके हाथमें होनेसे दोपकारक (दुःखदायक) होताहै । जल उत्तम पात्रमें शुद्ध और उत्तम होताहै मलिन पात्रमें निंदनीय होताहै अथवा या कहिये नीममें जानेसे कडुआ और इक्षुमें मीठा होताहै इसी प्रकार शास्त्र भी बुद्धिके आधार पर है । इसलिये वैद्यको निर्मल (उत्तम) बुद्धिकी आवश्यकता है ॥ १८ ॥

वैद्यके षड्गुण ।

विद्यावितर्कोविज्ञानस्मृतिस्तत्परताक्रिया ।
यस्यैतेषड्गुणास्तस्यनसाध्यमतिवर्त्तते ॥ १९ ॥

जिस वैद्यमें-विद्या, युक्ति, विज्ञान, स्मृति, तत्परता (दत्तचित्तता) और क्रियाकुशल होना, यह छः गुण विद्यमान हैं उस वैद्यको कोई भी रोग असाध्य नहीं होता ॥ १९ ॥

वैद्यकी व्युत्पत्ति ।

विद्यामतिः कर्मदृष्टिरभ्यास.सिद्धिराश्रयः ।
वैद्यशब्दाभिनिष्पत्तौवलमेकैकमप्यदः ॥ २० ॥

विद्या, बुद्धि, वैद्यकार्यमें बहुत दृष्टि, अभ्यास, सिद्धि, आश्रय, इनमेंसे एक एक गुण पूर्ण होना भी वैद्यशब्दकी निष्पत्तिके लिये हो सकताहै यदि संपूर्ण अर्थात् छः गुण हों तो फिर कहना ही क्या है अर्थात् बहुत ही अच्छा है ॥ २० ॥

सुखदाता वैद्यके लक्षण ।

यस्यत्वेतेगुणाःसर्वेसन्तिविद्यादयःशुभाः ।
सवैद्यशब्दंसद्भूतमर्हन्प्राणिसुखप्रदः ॥ २१ ॥

जिस वैद्यमें यह सब गुण हैं वही वैद्य समानके योग्य और सबको सुख देनेवाला होताहै ॥ २१ ॥

दोषोंसे बचनेका उपाय ।

शास्त्रज्योतिः प्रकाशार्थंदर्शनंबुद्धिरात्मनः ।
ताभ्यांभिषक्सुयुक्ताभ्यांचिकित्सन्नापराध्यति ॥ २२ ॥

शास्त्र सूर्यकी समान सब वस्तुओं और रोग द्रव्यादिकोंमें प्रकाश कारक है और इसके प्रकाशमें नेत्रोंकी समान सब वस्तुओंको देखनेवाली अपनी बुद्धि है। इसलिये जो वैद्य शास्त्र और बुद्धिके संयोगसे अर्थात् शास्त्र और बुद्धि इन दोनोंको मिलाकर काम लेताहै वह चिकित्सा करनेमें दोषका भागी नहीं होता अर्थात् यशको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥

वैद्यके उपदेश ।

चिकित्सितेत्रयःपादायस्माद्वैद्यव्यपाश्रयाः ।
तस्मात्प्रयत्नमातिष्ठेद्भिषक्स्वगुणसम्पदि ॥ २३ ॥

चिकित्साके तीन पाद (आतुर, परिचारक, भेषज) वैद्यके ही अधीनहैं इसलिये वैद्यको उचित है, कि अपने गुणोंमें पूर्ण रूपसे सपन्न रहनेमें यत्नवान् रहै ॥ २३ ॥

वैद्यकी चार प्रकारकी वृत्ति ।

मैत्रीकारुण्यमार्त्तेषुशक्यंप्रीतिरुपेक्षणम् ।
प्रकृतिस्थेषुभूतेषुवैद्यवृत्तिश्चतुर्विधेति ॥ २४ ॥

वैद्यको रोगियोंमें मित्रभाव और दयाभाव रखना योग्य है। तथा साध्य रोगोंमें साहसपूर्वक यत्न करना उचित है। और स्वस्थ मनुष्योंमें जिस प्रकार वह रोगी न हों यह यत्न रखना आवश्यक है इस चार प्रकारकी बुद्धिको ब्राह्मी बुद्धि कहतेहै ॥ २४ ॥

अध्यायका संक्षिप्त विवरण ।

तत्रश्लोकौ ।

भिषग्जिताचतुष्पादंपाद पादश्चतुर्गुण । भिषक्प्रधानपादे-भ्योयस्माद्वैद्यस्तुयद्गुण ॥ २५ ॥ ज्ञानानिबुद्धिर्ब्राह्मीचभिष-ग्जायाचतुर्विधा॥सर्वमेतच्चतुष्पादेखुड्डकेसम्प्रकाशितमिति॥२६॥

खुड्डाकचतुष्पादाध्याय.समाप्त ॥ ९ ॥

चिकित्साके चार पाद और एक एक पादके चार चार गुण उन सबमें वैद्यकी प्रधानता, वैद्यके चार प्रकारके गुण और ज्ञान ब्राह्मी बुद्धि यह इस खुड्डाकचतुष्पाद अध्यायमें वर्णन किया गयाहै ॥ २० ॥ २६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहिताया पण्डितदत्तराम माथुरविरचितभाषाटीकायां वैद्यराजपं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रकाशमाध्यटीकायां मात्राशितीयो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्याय ।

अथातोमहाचतुष्पादमध्यायव्याख्यास्याम ।
इतिहस्माह भगवानात्रेय. ॥

अब हम महाचतुष्पाद् नामक अध्यायकी व्याख्या करतेहै । ऐसा आत्रेय भगवान् कहनेलगे ।

औषधसे आरोग्यलाभ ।

चतुष्पादषोडशकलभेषजमितिभिषजोभाषन्ते । यदुक्तपूर्वाध्यायेषोडशगुणमितितद्भेषजम् । युक्तियुक्तमलमारोग्यायेति भगवान्पुनर्वसुरात्रेय ॥ १ ॥

वैद्य जन षोडशगुणसपन्न चतुष्पादको ही औषध अर्थात् चिकित्सा मानतह । सो षोडशगुणसपन्न चिकित्सा इससे पहले अध्यायमे कह आए है, वह युक्तियुक्त चिकित्सा आरोग्यताप्राप्तिके लिये बहुत है ऐसा भगवान् पुनर्वसुजीने कथन किया ॥ १ ॥

उक्तविषयमे मैत्रेयका प्रतिवाद ।

नेतिमैत्रेय किंकारणदृश्यन्तेह्यातुरा.केचिदुपकरणवन्तश्चपरिचारकसम्पन्नाश्चात्मवन्तश्चकुशलैश्चभिषग्भिरनुष्ठिता'समुत्तिष्ठमानास्तथायुक्ताश्चापरेम्रियमाणाम्तस्माद्भेषजमकिंचित्कर भवति ॥ २ ॥

यह सुनकर मैत्रेयजी कहनेलगे ऐसा नहीं होता क्योकि हमने देखाहै कि बहुतसे रोगी तो योग्य औषध उत्तम सेवक, बुद्धिमान् और कुशल वैद्यकी चिकित्सासे आरोग्य (तदुरुस्त) होजातेहै । और बहुतसे सर्वगुणयुक्त औषधादि होनेपर और योग्य चिकित्सकसे चिकित्सा किये जाने पर भी मृत्युको प्राप्त होतेहै । इसमे क्या कारण है कि उसी प्रकार चिकित्सा करनेसे बहुतसे रोग आरोग्य होजातेहै और उसी प्रकारकी चिकित्सासे बहुतसे मृत्युवश होतेहै । इसलिये जानपडताहै कि मनुष्यका जीवन मरण दैवाधीन है औषध आदिसे कुछ नहीं होता ॥ २ ॥

दृष्टान्त ।

नयथा—श्वभ्रेसरसिचप्रसिक्तमल्पमुदकम्, नद्यास्यन्दमाना-यापांशुधानेपांशुमुष्टिप्रकीर्णइति । तथापरेदृश्यन्तेअनुपकरणाश्चापरिचारिकाश्चानात्मवन्तश्चाकुशलैश्चभिषग्भिरनुष्ठिता समुत्तिष्ठमानाः । तथायुक्ताम्रियमाणाश्चापरेयतश्चप्रतिकुर्वन् सिध्यतिप्रतिकुर्वन्म्रियतेअप्रतिकुर्वन्म्रियतेततश्चिन्त्यतेभेषजमभेषजेनाविशिष्टमितिमैत्रेय ॥ ३ ॥

उसको इसतरहसे समझिये कि जैसे एक बडे भारी गढेमें अथवा तालाबमें जलकी अजली डालदेना अथवा किसी बहतीहुई नदी या रेतके बडे भारी ढेर पर एक बार रेतकी मुट्ठी बखेरदेना किसी गणनामें नहीं होती । इसी प्रकार असंख्य प्राणियोंके मरणमें एक दो का अच्छा हो जाना भी किस गणनामें है । और देखनेमें भी आताहै कि बहुतसे रोगी योग्य परिचारकके विना, उत्तम औषधादि न होनेपर, खोटे स्वभावके होनेपर, और अयोग्य वैद्यसे अथवा विना ही वैद्यसे आरोग्य होजातेहैं । एवं योग्य चतुष्पादी चिकित्सासे भी अनेक २ प्राणी मरजातेहैं । कोई यत्न न करनेसे मरजातेहैं बस, जब यत्न करनेपर भी मरजातेहैं और विना यत्न भी आरोग्य होजातेहैं सो चिकित्सा करना और न करना एकसा ही प्रतीत होताहै । इस प्रकार मैत्रेयजीने कहा ॥ ३ ॥

उक्त विषयमें आत्रेयका खण्डन ।

मिथ्याचिन्त्यतइत्यात्रेयःकिंकारणंयेह्यातुरापोडशगुणसमुदितेनानेनभेषजेनोपपद्यमानाइत्युक्ततदनुपपन्नंनहिभेषजसाध्यानांव्याधीनाभेषजमकारणंभवति। येपुनरातुराकेवलाद्भेषजादृतेसमुत्तिष्ठन्तेनतेपांसम्पूर्णभेषजोपपादनायसमुत्थानाविशेषोऽस्तियथाहिपतितपुरुषसमर्थमुत्थानायोत्थापयनपुरुषोबलमस्योपादध्यात् । सक्षिप्रतरमपरिक्लिष्टएवोत्तिष्टेत्तद्वत्संम्पूर्णभेषजोपलम्भादातुराः । येचातुराकेवलाद्भेषजादपिम्रियन्तेन च सर्वएवतेभेषजोपपन्ना समुत्तिष्ठेरन्नहिसर्वेव्याधयोभवन्त्युपायसाध्या ॥ ४ ॥ नचोपायसाध्यानांव्याधीनामनुपायेन-

सिद्धिरस्तिनचासाध्यानाव्याधीनाभेषजसमुदायोऽस्तिनखल
ज्ञानवान्भिषङ्मुमूर्षुमातुरमुत्थापयितुम्। परीक्ष्यकारिणोहि
कुशलाभवन्ति। यथाहियोगज्ञोऽभ्यासनित्यइष्वासोधनुरादा-
येषुमपास्यन्नातिविप्रकृष्टेमहतिकायेनापवाधोभवति। सम्पा-
दयतिचेष्टकार्य्यम्। तथाभिषक्स्वगुणसम्पन्नउपकरणवानवी-
क्ष्यकर्मारम्भमाण साध्यरोगमनपराधःसम्पादयत्येवातुरमारो-
ग्येणनतस्मान्नभेषजमभेषजेनाविशिष्टंभवति ॥ ५ ॥

यह सुनकर आत्रेय कहनेलगे हे मैत्रेय! यह शंका करना आपका वृथा है क्या कारण है जो षोडश गुण संपन्न चिकित्सासे रोगी मरजातेहैं और आरोग्य होजातेहैं आप ऐसा कहतेहैं। जो रोग भेषजसाध्य है उसमें षोडशगुणयुक्त चिकित्सा कीहुई कभी निष्फल नहीं जाती। और जो कहतेहो विना चिकित्सासे ही रोगी अच्छे होते देखेहैं उनके रोगमें विशेषतासे संपूर्ण चिकित्साकी आवश्यकता नहीं उनके अल्पदोषवाली व्याधी स्वयं भी परिपाकको प्राप्त हो शांत होजातीहै। जैसे कोई मनुष्य गिरपडा हो वह अपने आप उठनेको तयार है परन्तु दूसरेका लिया सहारा मिलनेसे वह और भी सुखपूर्वक उठ जाताहै और दूसरेके सहारेसे उठनेका सुख प्राप्त होनेसे विना कष्ट खडा होताहै। ऐसाही साध्य रोगोंमें औषधीके प्रयोगसे रोगी शीघ्र आरोग्य होजातेहैं। और जो औषधीके प्रयोगसे रोगी शीघ्र आरोग्य होजातेहैं। और जो औषध सेवन करनेपर भी मरजातेहैं सो संपूर्ण रोग भेषजसाध्य नहीं होते अर्थात् असाध्य रोग औषधसे साध्य नहीं है ॥ ८ ॥ और जो रोग चिकित्सा करनेसे दूर होतेहैं वह चिकित्साके विना शांत होही नहीं सकते। ऐसे ही असाध्य रोग संपूर्ण यत्नसे भी साध्य नहीं होते। और मरणोन्मुख रोगीको ज्ञानवान वैद्य भी आरोग्य नहीं कर सकता। इसलिये, साध्य, असाध्य, कष्टसाध्यकी परीक्षा करके चिकित्सा करनेवाले कुशल वैद्य निदानद्वारा रोगको जानकर चिकित्सा करनेसे व्याधिको जीतलेतेहैं। जैसे बाणचलानेमें चतुर तथा नित्यका अभ्यासवाला धनुर्धारी सामने आयेहुए बडे शरीरवालेको बाण मारकर विद्ध करताहुआ और उस बडे बलवालेसे अबाध्य रहताहै। और अपने इच्छित कार्यको सिद्ध करलेताहै। ऐसे ही योग्य वैद्य भी अपने गुणोंके बलसे और उपकरण (औषधादि) के बलसे विचारपूर्वक चिकित्सा करताहुआ साध्य और कष्टसाध्य रोगोंमें निर्विघ्नतासे रोगियोंको आरोग्य कर देताहै। इसलिये चिकित्सा करना और न करना समान नहीं हो सकता ॥ ९ ॥

त्वपीडितम् । शस्त्रक्षाराग्निकृत्यानामनवक्कृच्छ्रदोपजम् ॥ १६ ॥
विद्यादेकपथंरोगंनातिपूर्णचतुष्पदम् । द्विपथनातिकालवाकृ-
च्छ्रसाध्यद्विदोपजम् ॥ १७ ॥ शेपत्वादायुपोयाप्यमसाध्य
पथ्यसेवया । लब्धाल्पसुखमल्पेनहेतुनाशप्रवर्त्तकम् ॥ १८ ॥

जिस व्याधिमें निमत्त, पूर्वरूप, रूप, यह मध्यम बलवाले हों और समय, स्वभाव, और दूष्य (रसरक्तादि) इनके साथ रोगकी तुल्यता होय । गर्भिणी, बालक, वृद्ध. इनके रोग, और जिनमें बहुत बढ़ेहुए उपद्रव नहीं तथा जिन रोगोंमें शस्त्र, क्षार, अग्नि इनका प्रयोग करनापडे, और बहुत दिनका रोग, यह सब कष्ट साध्य होतेहैं । एक दोपज और एकमार्गी रोग भी चिकित्साके चार पादाके विना कष्टसाध्य होताहै । द्विमार्गगामी (ऊर्ध्वगामी और अधोगामी) शीघ्र प्रगटहुआ तथा द्विदोपज रोग भी कष्टसाध्य होताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ यदि आयुबल बाकी हो तो असाध्य रोगमें भी पथ्य आदि सेवनसे कुछ समय व्यतीत होजाताहै और वह रोग कुछ दबासा रहताहै ऐसे रोगको याप्य कहतेहैं । इस रोगमें थोडा सा कुपथ्य करनेसे भी यह रोग बढजाताहै जैसे पुराना अर्श और श्वास ॥ १८ ॥

द्विदोषज तथा कष्टसाध्य व्याधिके लक्षण ।

गम्भीरंबहुधातुस्थमर्म्मसन्धिसमाश्रितम् । नित्यानुशायिनं
रोगदीर्घकालमवस्थितम् ॥ १९ ॥ विद्याद्विदोपजतद्वत्प्रत्या-
ख्येयंत्रिदोपजम् । क्रियापथमतिक्रान्तंसर्वमार्गानुसारिणम्
॥ २० ॥ औत्सुक्यारतिसम्मोहकरमिन्द्रियनाशनम् । दुर्बलस्य
सुसंवृद्धव्याधिसारिष्टमेवच ॥ २१ ॥

(असाध्य) जो रोग गम्भीर हो बहुत धातुओंमें स्थित हो, मर्मस्थान और सन्धियामें पहुंचाहुआ होय जिसमें नित्य उपद्रव रहतेहों ऐसा द्विदोषज अथवा त्रिदोषज रोग असाध्य देनेयोग्य होताहै अर्थात् यत्नकरनेयोग्य नहीं । जब व्याधि चिकित्सायोग्य न रहीहो । सम्पूर्णमार्गगामी होगइहो । और रोगीके शरीरमें व्यग्रता (घबराहट) बीमारी अशक्ति और मोह उत्पन्न होय, तथा इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होगईहो तथा दुर्बल मनुष्यकी बढीहुई और मरणसूचक व्याधिका यत्न करना उचित नहीं यह रोग असाध्य होते ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

वैद्यकी शिक्षा।

भिषजाप्राक्परीक्ष्यैवविकाराणांसुलक्षणम्। पश्चात्कार्य्यस-
मारम्भ कार्य्य.साध्येषुधीमता ॥ २२ ॥ साध्यासाध्यविभाग-
ज्ञोय सम्यक् प्रतिपत्तिमान् । नसमैत्रेयतुल्यानामिथ्याबुद्धि
प्रकल्पयेत्। इति ॥ २३ ॥

मतिमान् योग्य वैद्यको चाहिये कि इस प्रकार पहले रोगाकी परीक्षा करके यदि रोग साध्य प्रतीत हो तो उनका यत्न आरम्भ करे। जो वैद्य साध्य और असाध्य रोगोंको अच्छी तरहसे जानताहै जो लक्षणद्वारा रोग जानकर चिकित्सा करताहै जो गुण और सामग्रीयुक्त है वह चिकित्सासे साध्य रोगीको आरोग्य कर सकताहै हे मैत्रेय! उसकी चिकित्सामें आपको मिथ्याशंका करना उचित नहीं ॥ २२ ॥ २३ ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन।

तत्रश्लोकौ। इहौषधपादगुणा प्रभावोभेषजाश्रय । आत्रेय-
मैत्रेयमतीमतिद्वैविध्यनिश्चय ॥ २४ ॥ चतुर्विधविकल्पाश्च
व्याधय'स्वस्वलक्षणा । उक्तामहाचतुष्पादेयेष्वायत्तभिषग्-
जितमिति ॥ २५ ॥

अशीत्यादि ॥ महाचतुष्पादाध्याय'समाप्त. ॥

इस महाचतुष्पाद अध्यायमें-औषध, पादगुण, और औषधका प्रभाव तथा आत्रेय और मैत्रेयजीका पक्ष प्रतिपक्ष और मतभेद तथा उनका निश्चय और व्याधिके चार भेद, तथा व्याधियें और उनके लक्षण, कथन किये गयेहै जिस वैद्यको इस महाचतुष्पादका ज्ञान है वह औषधि द्वारा रोगाको जीत सकताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतदरबारराजवैद्य वैद्यशास्त्रनिपुण रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादाख्यभाषाटीकायां महाचतुष्पादो नाम दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

एकादशोऽध्याय ।

अथातस्तिस्रैषणीयमध्यायंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभग-
वानात्रेय ।

अब हम तिस्रैषणीय (तीन एषणावाले) अध्यायकी व्याख्या करतेहै, ऐसा आत्रेय भगवान कहनेलगे।

एषणाओंका निर्देश ।

इहखलुपुरुषेणानुपहतसत्त्वबुद्धिपौरुषपराक्रमेणहितमिहचा-
मुष्मिंश्चलोकेसमनुपश्यतातिस्रएषणाःपर्य्येष्टव्याभवन्ति॥१॥

इस संसारमें मन, बुद्धि, पुरुषार्थ और पराक्रमवाले पुरुषको इस लोक और परलोकमें सुखकी इच्छा करतेहुए तीन प्रकारकी एषणा अर्थात् चाहनाएं प्राप्त करने योग्यहै ॥ १ ॥

एषणाओंका वर्णन ।

तद्यथा । प्राणैषणाधनैषणापरलोकैषणेतिआसान्तुखल्वेषणा-
नांप्राणैषणांतावत्पूर्वतरमापद्येतकस्मात्प्राणपरित्यागेहिसर्व-
त्याग । तस्यानुपालनंस्वस्थस्यस्वस्थवृत्तिरातुरस्यविकारप्रश-
मनेऽप्रमादस्तदुभयमेतदुक्तंवक्ष्यतेच। तद्यथोक्तमनुवर्त्तमानः
प्राणानुपालनादीर्घमायुरवाप्नोतीति । प्रथमैषणाव्याख्याता
भवति ॥ २ ॥

यह तीन एषणा यह है । १ प्राणैषणा, २ धनैषणा, ३ परलोकैषणा, इन तीन एषणाओंमें प्राणैषणा अर्थात् प्राणरक्षामें यत्नवान् होना सबसे प्रथम कहाहै क्योंकि प्राणोंके परित्याग होने पर ही सब वस्तुओंका परित्याग होजाताहै । इससे आरोग्य पुरुषको अपनी आरोग्यता (तन्दुरुस्ती)की सावधानीसे रक्षा करना अत्यावश्यकहै और रोगयुक्तको सर्वथा रोगको शांत करनेका उपाय करना चाहिये । यह बात कह भी चुकेहैं और आगेको भी कहतेहैं कि जैसे स्वास्थ्यरक्षाके लिये पहले कथन करचुके हैं या कथन किये जायगे उनके अनुसार बर्ताव करते हुए प्राणोंका पालन करनेसे दीर्घायु होताहै । यह प्रथम एषणाका कथन किया गया ॥ २ ॥

धनकी इच्छा ।

अथद्वितीयाधनैषणामापद्यते । प्राणेभ्योह्यनन्तरधनमेवपर्य्ये-
ष्टव्यंभवति । नह्यतःपापात्पापीयोऽस्तियदनुपकरणस्यदीर्घ
मायु तस्मादुपकरणानिपर्य्येष्टुंयतेततत्रोपकरणोपायाननुव्या-
ख्यास्यामः ॥ ३ ॥

अब दूसरी धनैषणा अर्थात् धनप्राप्तिके लिये यत्न करनेका कथन करतेहैं क्योंकि प्राणरक्षाके अनन्तर धनकी आवश्यकता होतीहै । इस पापसे बढकर संसारमें कोई भी

दुःखदायक पाप नहीं कि आयु तो दीर्घ होय परंतु धन पास न होय । इसलिये जीवनका परम उपकरण आरोग्यतासे अनन्तर धन होताहै सो उस धनके प्राप्त करनेके लिये यत्नवान् रहना चाहिये अब उस धनप्राप्तिके यत्नोंको कथन करते हैं ॥ ३ ॥

धनप्राप्तिके उपाय ।

तद्यथा । कृषिपाशुपाल्यवाणिज्यराजोपसेवादीनि । यानिचान्यान्यपिसतामविगर्हितानिकर्माणिवृत्तिपुष्टिकराणिवियात्तान्यारभेतकर्त्तुम् । तथाकुर्वन्दीर्घजीवितमनुवसतःपुरुषोभवतीति । द्वितीयाधनैषणाव्याख्याताभवति ॥ ४ ॥

जैसे खेती करना, पशुओंको पालना, वाणिज्य (व्यापार आदि) करना, राजसेवा अर्थात् नौकरी आदि करना, तथा और भी ऐसे २ धनप्राप्तिके उपाय "जिनके करनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंमें निंदा और अपयश न होय" और धन तथा जीवनकी वृद्धि होय वैसे २ यत्नोंको करे । ऐसा करनेसे मनुष्य श्रेष्ठतापूर्वक दीर्घजीवनका आनद प्राप्त करसकताहै । यह दूसरी धनकी एषणाका कथन कियागयाहै ॥ ४ ॥

परलोककी इच्छा ।

अथतृतीयापरलोकैषणामापद्येतसशयश्चात्रकथंभविष्यामइतश्च्युतानवेतिकुतःपुनःसशयइतिउच्यतेसन्तिह्येकेप्रत्यक्षपराः परोक्षत्वात्पुनर्भवस्यनास्तिक्यमाश्रिता सन्तिचागमप्रत्ययादेवपुनर्भवमिच्छन्तिश्रुतिभेदाच्च ।

"मातरंपितरञ्चैकेमन्यन्तेजन्मकारणम् । स्वभावंपरनिर्माणं यदृच्छाञ्चापरेजनाः ॥"

इत्यत संशय । किंनुखल्वस्तिपुनर्भवोनवेति ~~। तत्रबुद्धिमाना~~स्तिक्यबुद्धिजह्यात्विचिकित्साञ्चाकस्मात्प्रत्यक्षंह्यल्पमनल्पमप्रत्यक्षमस्तियदागमानुमानयुक्तिभिरुपलभ्यते । यैरेवतावदिन्द्रियैः प्रत्यक्षमुपलभ्यतेतान्येवसन्तिचाप्रत्यक्षाणि ॥ ५ ॥

अब इसके उपरान्त तीसरी परलोकएषणाको कहतेहैं । सो यहां यह संशय होताहै कि इस लोकमे पतित होनेपर अर्थात् यह शरीर छोडने पर हम फिर कहीं प्रगट होंगे या नहीं, अथवा शरीरपातके अनंतर हम किसी रूपमें रहेंगे या नहीं सो यह

समका अंत है । यह संदेह कैसे हुआ उसको कहतेहैं (॥ १ ॥) कुछ लोग प्रत्यक्ष-वादी हैं वह कहतेहैं कि हमको कोई परलोकको जाता या परलोकसे आकर जन्मलेता दिखाई नहीं देता इसलिये पुनर्जन्म या परलोकको हम नहीं मानते जो इंद्रियद्वारा प्रत्यक्ष है उसीको हम मानतेहैं अप्रत्यक्ष नहीं । इस प्रकार नास्तिकताको ग्रहण करतेहैं (॥ २ ॥) दूसरे (आस्तिकलोग) अनुमानसे तथा आप्तवाक्यसे और श्रुति वाक्यसे पुनर्जन्म सिद्ध है ऐसा मानतेहैं (॥ ३ ॥) तीसरे जन्मका कारण माता पिता ही होतेहैं सदासे ऐसा ही चला आयाहै इनसे सिवाय और कोई कारण नहीं (॥४॥) चौथे स्वभावको ही मानतेहैं, अर्थात् जीव अपने आप ही जन्म लेताहै अन्य कारण नहीं (॥ ५ ॥) पांचवे कहतेहैं कि कोई इस संसारको रचनेवाला है वही इस जीवको उत्पन्न करताहै(॥६॥)छठे कहतेहैं यह विभव एक ऐसी शक्ति है जिससे मनुष्यादि उत्पन्न होतेहैं और इसको रचनेवाला कोई नहीं। इसलिये संशय होताहै कि पुनर्भव (पुनर्जन्म) होताहै या नहीं। अब समाधान करतेहैं कि धृष्टतासे नास्तिक ही बनजाना और युक्ति प्रमाण इत्यादिक न मानना इसका तो कुछ फल ही नहीं। यदि तुम कहो पुनर्जन्म प्रत्यक्ष नहीं अर्थात् दीखता नहीं; सो सुनो जगत्‌में प्रत्यक्ष बहुत कम है और अप्रत्यक्ष बहुत है अर्थात् ऐसी बहुत वस्तुएं हैं जो प्रत्यक्ष तो नहीं परन्तु आप्तोपदेश अनुमान युक्ति इनसे स्पष्ट प्रतीत होती है । और देखिये तो सही जिन इंद्रियोंद्वारा हमको प्रत्यक्षकी उपलब्धि होतीहै वह इंद्रियें ही अप्रत्यक्ष हैं या प्रत्यक्ष न होनेसे क्या इंद्रियोंका अभाव मानोगे ? (कभी नहीं) ॥ ५ ॥

प्रत्यक्षके बाधक।

सतां च रूपाणामतिसन्निकर्षादतिविप्रकर्षादावरणात्करणदौर्बल्यान्मनोऽनवस्थानात्समानाभिहारादभिभवादतिसौक्ष्म्याच्च प्रत्यक्षानुपलब्धिः । तस्मादपरीक्षितमेतदुच्यते प्रत्यक्षमेवास्ति नान्यदस्तीति श्रुतयश्चैता न कारणं युक्तिविरोधात् ॥ ६ ॥

औरभी देखिये अनेक प्रकारसे रूपादि वस्तुके विद्यमान रहते भी प्रत्यक्ष नहीं होता। जैसे अति समीप होनेसे अर्थात् नेत्रमें जो अंजन या अन्य कोई पदार्थ नेत्रसे छुआ इनसे दिखाई नहीं पडता ऐसे ही बहुत दूर होनेसे भी प्रत्यक्ष नहीं होता। पर्दे वा बीचमें कोई भीत आदि होनेसे, इंद्रियकी दुर्बलतासे अथवा मनकी चंचलतासे अर्थात् मनके संयोगके विना भी इंद्रियके प्रत्यक्ष होने योग्य वस्तु का प्रत्यक्ष नहीं होता । ऐसे ही समान वस्तुओंमें मिलजानेसे अर्थात् एक प्रकार

उठाकर फिर चावलोके बडे ढेरमें मिलादो तो फिर वह प्रत्यक्ष नहीं होता। एक वस्तु दूसरेसे वढजाय तवभी प्रत्यक्ष नहीं होता जैसे सूर्यके प्रकाशसे तारागण रहते हुए भी दिखाई नहीं देते और अत्यंत सूक्ष्म होनेसे (जैसे परमाणु) भी प्रत्यक्ष नहीं होता इसलिये यह कहदेना कि जो हमारी इंद्रियोंसे प्रत्यक्ष है वह ही है और कुछ नहीं यह कहना अप्रामाणिक बकवाद है। श्रुतिवाक्योंसे तथा युक्तिसे भी पुनर्जन्मके न होनेमें कोई हेतु नहीं अर्थात् पुनर्जन्म युक्ति और शास्त्रसे सिद्ध है ॥ ६ ॥ (यह प्रत्यक्षवादियोंका खंडन हो चुका)।

जन्मकारणपर विवाद।

आत्मामातु पितुर्वाय सोपत्ययदिसञ्चरेत्। द्विविधसञ्चरेदात्मा सर्वोवावयवेनवा ॥ ७ ॥ सर्वश्चेत्सञ्चरेन्मातु पितुर्वामरण भवेत्। निरन्तरंनावयव कश्चित्सूक्ष्मस्यचात्मन. ॥ ८ ॥ वुद्धिर्मनश्चनिर्णीतेयथैवात्मातथैवते। येषाञ्चैषामतिस्तेषायो-निर्नास्तिचतुर्विधा ॥ ९ ॥

अब यदि कहो कि माता और पिताका आत्मा ही पुत्र रूपसे पैदा होताहै या माता अथवा पिताके आत्मासे पुत्रका आत्मा उत्पन्न होताहै तो यह भी नहीं होसकता। क्योंकि माता या पिताका आत्मा दो प्रकारसे अपत्यरूपमें आसकताहै या तो सपूर्ण रूपसे, अथवा अंशविभाग अर्थात् हिस्सेमे। यदि कहो कि सपूर्ण आत्मा ही अपत्य (संतान) रूपसे संचार करताहै तो माता या पिताका सपूर्ण आत्मा पुत्रमें आनेसे माता या पिताका मृत्यु होजाना चाहिये। यदि कहो आत्माका कोई भाग संतानरूपसे पैदा होताहै तो यह भी नहीं होसकता। क्योंकि सूक्ष्म आत्माके विभाग नहीं होसकते। इसलिये यह कहना कि कर्माधीन पुनर्जन्म नहीं होता माता पितासेही आत्माकी उत्पत्ति होतीहै–वृथा है ॥ यदि कहो कि माता पिता की बुद्धि और मन संतान रूपसे पैदा होतेहैं, यह कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि बुद्धि, मन भी आत्माके समान सूक्ष्म है और उनके भी विभाग नहीं होसकते दूसरे यह भी बात है जो माता पितासे ही संतानकी उत्पत्ति मानोगे तो उनके मतमें स्वेदज, अंडज, जरायुज, उद्भिज्ज, यह चार प्रकारकी योनि नहीं होसकती क्योंकि पसीनेसे उत्पन्न होनेवालोंके और जमीनको फोडकर पैदा होनेवालोंके माता पिता कौन है अर्थात् कोई नहीं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

---

१ इन्द्रिय और अर्थके संनिकर्षसे उत्पन्न अव्यभिचार रहित निश्चयात्मक ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते

स्वभाववादियोंके मतका खण्डन ।

विद्यात्स्वाभाविकंपण्णाधातूनांयस्त्वलक्षणम् ।
संयोगेचवियोगेचतेषांकर्मैवकारणम् ॥ १० ॥

यदि कहो कि यह स्वाभाविक धर्म है कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश और आत्मा इनके संयोग होनेसे उत्पत्ति और वियोग होनेसे नाश होजाताहै तो मतलाइये इन सबके संयोग और वियोग होनेमे कारण कौन है यदि कहो पूर्वजन्मका कर्म कारण है तो पुनर्जन्म सिद्ध होगया । नहीं तो संयोग वियोगमें कोई हेतु नहीं दीखता ॥ १० ॥

परनिर्माणवादियोंका खण्डन ।

अनादेश्चेतनाधातोर्नेष्यतेपरनिर्मिति ।
परआत्मासचेद्धेतुरिष्टोऽस्तुपरिनिर्मिति· ॥ ११ ॥

और अनादि चैतन्य आत्मा कोई बना भी नहीं सकता क्यों कि जो वस्तु बनाई जाती है वह जिस दिन बनी वह दिन उसकी आदिका है इसलिये जो अनादि है उसको कोई बना नहीं सकता । यदि कहो परमात्मा इसका बनानेवाला है तो इसमे कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि परमात्माको कर्त्ता माननेमें आस्तिकनाम कोई हानि नहीं ॥ ११ ॥

यदृच्छावादियोंका विषय ।

नपरीक्षानपारीक्ष्यंनकर्त्ताकारणनच । नदेवानर्षय सिद्धा कर्म्मकर्म्मफलंनच ॥ १२ ॥ नास्तिकस्यास्तिनैवा-त्मायदृच्छोपहतात्मन । पातकेभ्यःपरश्चैतत्पातकन्नास्तिक-ग्रहः ॥ १३ ॥ तस्मान्मतिंविमुच्यैताममार्गप्रसृतांबुध । सता बुद्धिप्रदीपेनपश्येत्सर्वंयथातथम् ॥ १४ ॥ इति ॥

यदि कहो प्रमाणसे कोई परीक्षा नहीं और न परीक्षाका कोई विषय है । न कोई कर्त्ता है । न कारण है । न ऋषि है । न देवता है । न सिद्ध है । न कुछ कर्म है । न कर्मका फल होताहै । न और कुछ है । न आत्मा है । मरण जन्म भी ऐसे ही है इसका भी कोई कारण नहीं । ऐसे अंटसंट बकनेवालेके समीप जाना भी पापोंमें बडा महापाप है । क्योंकि इस कुल निंदक नास्तिक को किसी प्रकार मानना तो दूर ही नहीं, इससे बात करना भी मूर्खता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसलिये प्रहता और दुना-

गैगामी कुबुद्धिको त्यागकर श्रेष्ठबुद्धिरूपदीपकसे जैसा जो कुछ यथार्थ (ठीक ?) हो उसकी परीक्षा करे अर्थात् देखलेवे ॥ १४ ॥

सतअसत्की परीक्षा ।

द्विविधमेवखलुसर्वंसच्चासच्चतस्यचतुर्विधापरीक्षा । आप्तोपदेश. प्रत्यक्षमनुमानंयुक्तिश्चेति ॥ १५ ॥

सपूर्ण जगतमें भला और बुरा यह दो भेद है । सत् सत्यको कहतेहैं और असत झूठको कहतेहैं । इन सत् और असत्के जाननेके लिये चार प्रकारकी परीक्षा है अर्थात् चार प्रमाणों द्वारा यावन्मात्रका सत् और असत् निर्णय होसकता है । वह चार परीक्षा (प्रमाण) यह है । १ आप्तोपदेश, २ प्रत्यक्ष, ३ अनुमान और ४ युक्ति, ॥ १५ ॥

आप्त तथा उनका उपदेश ।

आप्तास्तावत् ।

रजस्तमोभ्यानिर्मुक्तास्तपोज्ञानवलेनये । येषात्रिकालममलज्ञानमव्याहतसदा ॥ १६ ॥ आप्ता.शिष्टविवुद्धास्तेतेषावाक्यमसशयम् । सत्यवक्ष्यन्तितेकस्मादसत्यनीरजस्तमा. ॥ १७ ॥

अब पहले आप्तके लक्षण कहतेहै । जिन महात्माओका रजोगुण और तमोगुण तप तथा ज्ञानके बलसे नष्ट होगयाहै और जो भूत, भविष्यत्, वर्तमान के जानने वाले हैं तथा जिनका निर्मल ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता उन महात्माओंको आप्त शिष्ट और ज्ञानी कहतेहैं इनके वाक्य नि'सदेह सत्य होतेहै क्योंकि, रज तमसे निर्मुक्त होनेके कारण यह असत्य बोलतेही नहीं इसलिये इनके वाक्य (आप्तोपदेश) नि'सन्देह सत्य माननीय है ॥ १६ ॥ १७ ॥

प्रत्यक्षका लक्षण ।

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानासन्निकर्षात्प्रवर्त्तते । व्यक्तातदात्वेयाबुद्धि प्रत्यक्षंसानिरुच्यते ॥ १८ ॥

आत्मा, इंद्रिय, मन और इंद्रियका विषय इन सबका सन्निकर्ष होनेसे जो निश्चयात्मक ज्ञान होताहै उसको प्रत्यक्ष कहते हैं ॥ १८ ॥

अनुमानका लक्षण ।

प्रत्यक्षपूर्वंत्रिविधंत्रिकालश्चानुमीयते । वह्निर्निगूढोधूमेनमैथु
नंगर्भदर्शनात् ॥ १९ ॥ एवंव्यवस्यन्त्यतीतंबीजात्फलमना
गतम् । दृष्ट्वाबीजात्फलं जातमिहैवसदृशंबुधाः ॥ २० ॥

प्रत्यक्षपूर्वक तीन प्रकारका अनुमान होताहै । कार्य लिङ्गानुमान, कारण लिङ्गा-
नुमान, कार्यकारण लिङ्गानुमान, अथवा यों कहिये पूर्ववत्, शेषवत्, सामान्यतो-
दृष्ट, यह तीनप्रकारका अनुमान अतीत, अनागत, वर्तमान, इन तीन कालके
ज्ञानका बोधक होताहै । जैसे धूमके दर्शनसे अग्निका बोध होजाना यह वर्तमान-
कालिक अनुमान है । गर्भवतीको देखकर यह बोध होना इसने पहले मैथुन कियाहै
यह अतीतकालिक अनुमान है । बीजोंको देखकर यह बोध होना कि इनसे ऐसे
फल होंगे यह भविष्यत्कालिक अनुमान है अथवा यों कहिये इन बीजोंसे ऐसे फल
होंगे और ऐसे फलोंमेंसे ही यह बीज हुए इसको कार्यकारणानुमान कहतेहैं॥१९॥२०॥

युक्तिका लक्षण ।

जलकर्षणबीजर्तुसंयोगात्सस्यसंभवः । युक्तिः षड्धातुसंयो-
गाद्गर्भाणांसम्भवस्तथा ॥ २१ ॥ मथ्यमन्थनमन्थानसंयो-
गादग्निसम्भवः । युक्तियुक्ताचतुष्पादसम्पद्व्याधिनिबर्हणी ॥
॥ २२ ॥ बुद्धिः पश्यतियाभावान्बहुकारणयोगजान् । युक्तिस्त्रि-
कालासाज्ञेयात्रिवर्गः साध्यतेयया ॥ २३ ॥

युक्तिके लक्षण जैसे-जल, खेत, बीज, ऋतु इन चारोंके योगसे सस्य (अन्नकी
खेती) उत्पन्न होतीहै । ऐसे ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, और आत्माके
योगसे गर्भ उत्पन्न होताहै । और जैसे मंथ और मथन (जिससे घिसकर अग्नि पैदा
करनेकी दोनों लकडियोंको मथ और मथन कहतेहैं) तथा मंथनकर्त्ता, इनके संयोगसे
अग्निकी उत्पत्ति होतीहै इसी प्रकार चतुष्पादसम्पन्न चिकित्सासे व्याधि भी नष्ट हो-
जातीहै । इसप्रकार जो बुद्धि अनेक कारणोंसे पैदाहुए अनेक भावोंको देखनेमें समर्थ
होतीहै उसीको युक्ति कहतेहैं यह युक्ति भूत, भविष्यत् वर्तमान, इन तीन
कालमें ही उपकारक होनेवाली है । इसीके द्वारा धर्म अर्थ काम की सिद्धि होती
है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

एवापरीक्षानास्त्यन्यायपासर्वंपरीक्ष्यते ।
परीक्ष्यंसदसच्चैवंतयाचास्तिपुनर्भवः ॥ २४ ॥

सपूर्ण सत् और असत् के जाननेके लिये यह चार प्रकारकी परीक्षा है अर्थात् यह चार प्रमाण हैं। इन चारोंसे अधिक परीक्षा अर्थात् पाँचवा कोई प्रमाण नहीं। यद्यपि कोई २ अर्थापत्ति अनुपलब्धि आदि अन्य प्रमाण भी मानतेहैं परंतु अनुमान और युक्तिके अंतर्गत अर्थापत्ति आदिके आजानेसे इन चारोंसे अन्य प्रमाण कल्पना करना वृथा है। इन चार परीक्षाओंसे ही समीक्षा परीक्षण होजाताहै। इन चार परीक्षाओं द्वारा ही सत्, असत् और पुनर्भव जानाजाता है ॥ २४ ॥

आप्तागमका लक्षण, फल।

तत्राप्तागमस्तावद्वेदोयश्चान्योऽपिकश्चिद्वेदार्थादविपरीतःपरीक्षकैःप्रणीत । शिष्टानुमतोलोकानुग्रहप्रवृत्त.शास्त्रवाद सचाप्तागम॰ । आप्तागमादुपलभ्यते दानतपोयज्ञसत्याहिंसा ब्रह्मचर्य्याण्यभ्युदयनि॰श्रेयस्कराणीति । नचानतिवृत्तसत्त्वदोषाणामदोषैरपुनर्भवोधर्म्यद्वारैरुपदिश्यते ॥ २५ ॥

सबसे बढकर प्रमाणिक वेद है और भी जो वेदके आशयसे विरुद्ध न हो ऐसे वाक्य तथा आप्तऋषियोंके रचेहुए शास्त्र एव श्रेष्ठ पुरुषोंके मानेहुए और लोकपरपरासे प्रचलित शास्त्रोंके वाक्य वेदमें अविरुद्ध आप्तागम कहेजातेहैं। इन आप्तागम (प्रामाणिक वाक्य) द्वारा–दान, तप, यज्ञ, सत्य, अहिंसा, और ब्रह्मचर्य इनकी प्राप्ति होतीहै इसीसे इस लोक और पर लोकमें सुखकी प्राप्ति होतीहै। आप्तोंका उपदेश है कि जब तक रजोगुण और तमोगुण दूर होकर मनकी शुद्धि नहीं होती तब तक मोक्षकी प्राप्ति नहीं होसकती ॥ २५ ॥

प्रत्यक्षका फल।

धर्मद्वारावहितैश्चव्यपगतभयरागद्वेषलोभमोहमानैर्ब्रह्मपरैराप्तै॰ कर्मविद्भिरनुपहतसत्त्वबुद्धिप्रचारैः पूर्वैः पूर्वतरैर्महर्षिभिर्दिव्यचक्षुर्भिर्दृष्ट्वोपदिष्टपुनर्भवइतिव्यवस्येदेव प्रत्यक्षमपिचोपलभ्यते ॥ २६ ॥

जो धर्मपरायण हैं और जिनके भय, राग, द्वेष, लोभ, मोह, मान, यह समूल नाशहो गये होचुकेहैं तथा ब्रह्मके जाननेवाले, आप्त, कर्मके जाननेवाले, और जिनके मन, बुद्धि निश्चल हैं तथा जो सदैव ज्ञानयुक्त हैं उन पहले होनेवाले प्राचीनतम महर्षियोंने ज्ञानके नेत्रोंद्वारा पुनर्जन्मको देखकर उस सिद्ध किया है और प्रत्यक्ष भी पुनर्भवकी उपलब्धि होतीहै ॥ २६ ॥

अनुमानका फल।

मातापित्रोर्विसदृशान्यपत्यानितुल्यसम्भवानांवर्णस्वराकृति-सत्त्वबुद्धिभाग्यविशेषा. । प्रवरावरकुलजन्मदास्यैश्वर्य्यसुखा-सुखमायुः । आयुषोवैषम्यमिहकृतस्याप्राप्तिरशिक्षितानाम्रु-दितस्तनपानहासत्रासादीनाञ्चप्रवृत्तिलक्षणोत्पत्ति'कर्मसामा-न्येफलविशेषोमेधाक्वचित्कचित्कर्मण्यमेधाजातिस्मरणमिहा-गमनमितश्च्युतानाञ्चभूतानासमदर्शनेप्रियाप्रियत्वमतएवानु मीयते। यत् स्वकृतमपरिहार्य्यमविनाशिपौर्वदेहिकदेवसञ्ज्ञक-मानुबन्धिकंकर्म्मतस्यैतत्फलमितश्चान्यद्भविष्यतीतिफलाद्बी-जमनुमीयते । फलञ्च बीजात् ॥ २७ ॥

और यह देखनेमें भी आताहै कि सन्तानके शरीरावयव–माता पिताके समान नहीं होते। और एक ही माता पितासे पैदा हुए पुत्रोंके भी वर्ण, स्वर, आकृति, सत्त्व, बुद्धि, और भाग्यमें भेद (फरक) होताहै अर्थात् सब एकसे नहीं होते। ऐसे ही कुल, जन्म, दास्य ऐश्वर्य, इनमें भी बड़ाई छोटाई तथा किसीकी सुखायु और किसीकी दुःखायु वर्तमान होती दिखाई देतीहै। इसी प्रकार आयुमें न्यूनता अधिकता, और इस जन्ममें किये हुए पहलेके कर्मोंका फल इसी जन्ममें न होना, बिना ही सिखाये नीचे जन्मतेही बच्चेका रोना, स्तनपान करना, हँसना, दुःखित होना, इनसे भी पुनर्जन्म सिद्ध है। ऐसे ही पापकर्मके जन्मसे शुभ तथा अशुभ लक्षणोंसे कर्म तुल्य होतेहुए भी फलमें भेद होनेसे, एककामके करनेमें बुद्धिभेद होनेसे और इस लोकसे मरकर फिर इसी लोकमें आकर जन्म लियाहै ऐसा बहुत मनुष्योंको स्मरण होताहै इससे तथा एक ही वस्तुमें एकको प्रेम दूसरेको विरोध देखनेमें आताहै, ऐसे हेतुओंसे स्पष्ट प्रतीत होताहै कि जो२ जिस २ ने पूर्वजन्ममें कियाहै वह किसीसे मिटाया नहीं जाता. वह अविनाशी है, उसी कर्मको दैव कहते हैं उसीको अनुगामी कर्म (प्रारब्ध) कहते हैं जिसका फल इस जन्ममें भोगना पड़ताहै। ऐसे ही इस जन्मके किये कर्मके फलको

१ [illegible]) च० शा० । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

आगेको होनेवाले जन्ममें भोगना पडेगा । जैसे फलसे बीज और बीजसे फल होता है, ऐसे ही कर्माधीन जन्म होता जाता है ॥ २७ ॥

युक्तिसे पुनर्जन्मकी सिद्धि ।

युक्तिश्चैषापड्धातुसमुदयाद्गर्भजन्मकर्तृकरणसंयोगात्क्रियाकृतस्यकर्मण फलनाकृतस्यनाकुरोत्पत्तिरवीजात् । कर्मसदृशंफलनान्यस्माद्वीजादन्यस्योत्पत्तिरितियुक्ति ॥ २८ ॥

और यह युक्तिसे भी सिद्ध है कि पाच महाभूत और छठी आत्मा इन छहोंके सबन्धसे ही गर्भकी उत्पत्ति होतीहै और गर्भमें आकर जन्म लेनेमें आत्माके पूर्वजन्मका सबध है क्योंकि कर्ता और कारणके सयोग होने पर ही क्रियाका आरभ होताहै । कियेहुए कर्मका ही फल होताहै विना कियेका नहीं होता । जैसे विना बीजके अकुरकी उत्पत्ति नहीं होसकती । जैसा कोई कर्म करताहै उसी प्रकारका फल भोगना पडताहै । जैसे जवके बीजसे जवकी उत्पत्ति सर्पपसे सर्पपकी उत्पत्ति होतीहै अन्य बीजसे अन्यकी उत्पत्ति नहीं होती ऐसे ही जैसा कर्म होताहै उसका वैसाही फल होताहै । यह युक्ति है ॥ २८ ॥

एवप्रमाणैश्चतुर्भिरुपदिष्टे पुनर्भवेधर्म्मद्वारेष्वनुविधीयते ॥२९॥

इस प्रकार चार प्रमाणासे पुनर्जन्म स्पष्ट सिद्ध है इन चार प्रमाणाद्वारा पुनर्जन्ममें आस्तिकता होनेसे मनुष्य धर्मपरायण होसकता है जिन कार्योंके करनेसे मनुष्यका परलोक अच्छा होसकता है उन धर्मकार्योंको कथन करतेहै ॥ २९ ॥

परलोकैषणामे कर्तव्य कर्म ।

तद्यथागुरुशुश्रूपायामध्ययनेव्रतचर्य्यायादारक्रियायामपत्योत्पादनेभृत्यभरणेऽतिथिपूजायादानेनाभिध्यायांतपस्यनसूयायादेहवाङ्मनसेकर्म्मण्यक्लिष्टेदेहेन्द्रियमनोऽर्थबुद्ध्यात्मपरीक्षायामन समाधाविति । यानिचान्यान्यप्येवविधानिकर्म्माणिसतामविगर्हितानिस्वर्ग्याणिवृत्तिपुष्टिकराणिवियाचान्यारभेतकर्तुम् । तथा कुर्वन्निहचैवयशोलभतेप्रेत्यचस्वर्गमिति । तृतीयापरलोकैषणाव्याख्याताभवति ॥ ३० ॥

वह परलोकको उत्तम बनानेवाले कर्म इस प्रकार है गुरुशुश्रूषा, अध्ययन और व्रत करना शास्त्रोक्त रीतिसे विवाह कर धर्मसे सतान पैदा करना, भृत्याका

अनुमानका फल ।

मातापित्रोर्विसदृशान्यपत्यानितुल्यसम्भवानांवर्णस्वराकृतिसत्त्वबुद्धिभाग्यविशेषाः । प्रवरावरकुलजन्मदास्यैश्वर्य्यसुखासुखमायुः । आयुषोवैषम्यमिहकृतस्यावाप्तिरशिक्षितानाञ्चरुदितस्तनपानहासत्रासादीनाञ्चप्रवृत्तिलक्षणोत्पत्तिःकर्मसामान्येफलविशेषोमेधाक्वचित्क्वचित्कर्मण्यमेधाजातिस्मरणमिहागमनमितश्च्युतानाञ्चभूतानासमदर्शनेप्रियाप्रियत्वमतएवानुमीयते। यत् स्वकृतमपरिहार्य्यमविनाशिपौर्वदेहिकदैवसंज्ञकमानुबन्धिककर्म्मतस्यैतत्फलमितश्चान्यद्भविष्यतीतिफलाद्बीजमनुमीयते । फलञ्च बीजात् ॥ २७ ॥

और यह देखनेमें भी आताहै कि संतानके शरीरावयव-माता पिताके समान नहीं होते । और एक ही माता पितासे पैदा हुए पुत्रोंके भी वर्ण, स्वर, आकृति, सत्त्व, बुद्धि, और भाग्यमें भेद (फरक) होताहै अर्थात् सब एकसे नहीं होते । ऐसे ही कुल, जन्म, दास्य, ऐश्वर्य, इनमें भी बडाई छोटाई तथा किसीकी सुखायु और किसीकी दुःखायु व्यतीत होती दिखाई देतीहै । इसी प्रकार आयुमें न्यूनता अधिकता, और इस जन्ममें कियेहुए बहुतसे कर्मोंका फल इसी जन्ममें न होना, विना ही किसीसे सीखे जन्मलेते ही बच्चेका रोना, स्तनपान करना, हँसना, दुःखित होना, इनसे भी पुनर्जन्म सिद्ध है । ऐसे ही बालकके जन्मसे शुभ तथा अशुभ लक्षणोंसे कर्म तुल्य होतेहुए भी फलमें भेद होनेसे, एककामके करनेमें बुद्धिभेद होनेसे और इस लोकसे मरकर फिर इसी लोकमें आकर जन्म लियाहै ऐसा बहुत मनुष्योंको स्मरण होजाताहै इससे तथा एक ही वस्तुमें एकका प्रेम दूसरेका विरोध देखनेमें आताहै, ऐसे२ हेतुओंसे स्पष्ट प्रतीत होताहै कि जो२ जिस २ ने पूर्वजन्ममें कियाहै वह किसीसे मिटाया नहीं जाता. वह अविनाशी है, उसी कर्मको लोकमें दैव उसीको अनुबन्धी कर्म (प्रारब्ध) कहतेहैं जिसका फल इस जन्ममें भोगना पडताहै । ऐसे ही इस जन्मके किये कर्मके फलको

---

१ पूर्वाऽभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धाज्जातस्य हर्षभयशोकसंप्रतिपत्ते:) न्या० भा० । जातः खल्वयं कुमारकोऽस्मिञ्जन्मन्यगृहीतेषु हर्षभयशोकहेतुषु हर्षभयशोकान् प्रतिपद्यते लिङ्गानुमेयान् ते च स्मृत्यनुबन्धादुत्पद्यन्ते नान्यथा । स्मृत्यनुबन्धश्च पूर्वाभ्यासमन्तरेण न भवति पूर्वाभ्यासश्च पूर्वजन्मनि सति नान्यथा ।

आगेको होनेवाले जन्मम भोगना पडेगा । जैसे फलसे बीज और बीजमे फल होना है, ऐसे ही कर्माधीन जन्म होता जाता है ॥ २७ ॥

युक्तिसे पुनर्जन्मकी सिद्धि ।

युक्तिश्चैषापड्धातुसमुदयाद्गर्भजन्मकर्तृकरणसयोगात्क्रियाकृतस्यकर्मण-फलनाकृतस्यनाकुरोत्पत्तिरबीजात् । कर्मसदृशं-फलनान्यस्माद्बीजादन्यस्योत्पत्तिरितियुक्तिः ॥ २८ ॥

और यह युक्तिसे भी सिद्ध है कि पाच महाभूत और छठी आत्मा इन छहोंके सबन्धसे ही गर्भकी उत्पत्ति होतीहै और गर्भमे आकर जन्म लेनेमे आत्माके पूर्व जन्मका सबध है क्योंकि कर्ता और कारणके सयोग होने पर ही क्रियाका आरम्भ होताहै । कियेहुए कर्मका ही फल होताहै विना कियेका नहीं होता। जैसे विना बीजके अकुरकी उत्पत्ति नहीं होसकती । जैसा कोई कर्म करताहै उसी प्रकारका फल भोगना पडताहै। जैसे जवके बीजसे जवकी उत्पत्ति सर्षपसे सर्षपकी उत्पत्ति होतीहै अन्य बीजसे अन्यकी उत्पत्ति नहीं होती ऐसे ही जैसा कर्म होताहै उसका वैसाही फल होताहै। यह युक्ति है ॥ २८ ॥

एवंप्रमाणैश्चतुर्भिरुपदिष्टेःपुनर्भवोधर्म्मद्वारेष्वनुविधीयते ॥२९॥

इस प्रकार चारों प्रमाणोंसे पुनर्जन्म स्पष्ट सिद्ध है इन चार प्रमाणोद्वारा पुनर्जन्ममें आस्तिकता होनेसे मनुष्य धर्मपरायण होसकता है जिन कार्योंके करनेसे मनुष्यका परलोक अच्छा होसकता है उन धर्मकार्योंको कथन करतेहै ॥ २९ ॥

परलोकैषणामे कर्तव्य कर्म ।

तद्यथागुरुशुश्रूपायामध्ययनेव्रतचर्य्यायादारक्रियायामपत्योत्पादनेभृत्यभरणेऽतिथिपूजायादानेनाभिध्यायांतपस्यनसूयायादेहवाङ्मनसेकर्म्मण्यक्लिष्टेदेहेन्द्रियमनोऽर्थबुद्ध्यात्मपरीक्षायामन समाधाविति । यानिचान्यान्यप्येवविधानिकर्म्माणिसतामविगर्हितानिस्वर्ग्याणिवृत्तिपुष्टिकराणिविद्यात्तान्यारभेतकर्तुम् । तथा कुर्वन्निहचैवयशोलभतेप्रेत्यचस्वर्गमिति । तृतीयापरलोकैषणाव्याख्याताभवति ॥ ३० ॥

वह परलोकको उत्तम बनानेवाले कर्म इस प्रकार हैं गुरुशुश्रूषा, अध्ययन, और व्रत करना शास्त्रोक्त रीतिसे विवाह कर घरमें संतान पैदा करना, नौकरो

पालन, अतिथिपूजन, और दान करना, पराये द्रव्यमें लोभ न करना, तप करना, अनसूया (किसीकी निन्दा न करना), शरीर, मन, वाणीसे, कोई अशुभ काम न करना, आलस्य न करना, और देह इंद्रिय, मनके विषय, बुद्धि, और आत्मा इनकी परीक्षामें विपर्यासे मनको रोकनेमें तत्पर रहना । तथा और भी जो २ इसप्रकारके सत्कार्य स्वर्गदायक हों और जो श्रेष्ठपुरुषोंसे अनिंदित काम जीविकाकी वृद्धि करनेवाले समझे उनको भी किया करे। ऐसा करनेसे इस लोकमें यशकी प्राप्ति और परलोकमें स्वर्गकी प्राप्ति होती है। यह तीसरी परलोक एषणा कही गई है ॥ ३० ॥

उपस्तम्भादि त्रिक।

अथखलुत्रयउपस्तम्भा, त्रिविधवलम्, त्रीण्यायतनानि, त्रयोरोगा., त्रयोरोगमार्गाः,त्रिविधाभिषज, त्रिविधमौषध मिति ॥ ३१ ॥

यहा-तीन उपस्तंभ अर्थात् खम्भे हैं। तीन प्रकारका बल है तीन आयतन हैं तीन रोग हैं। तीन रोगमार्ग हैं। तीन प्रकारके वैद्य हैं। तीन प्रकारकी औषधि है ॥ ३१ ॥

उपस्तंभोंका वर्णन।

त्रयउपस्तम्भाइत्याहार स्वप्नोब्रह्मचर्य्यमितिएभिस्त्रिभिर्युक्तियुक्तैरुपस्तब्धमुपस्तम्भै शरीरबलवर्णोपचयोपचितमनुवर्त्तते यावदायुष सस्कारात् ॥ ३२ ॥

(३ उपस्तंभ) आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य, यह तीन शरीरके उपस्तंभ-खंभ हैं। इन तीनों युक्तियुक्त स्तंभोंके ठीक सेवनसे शरीरमें बल और वर्णकी वृद्धि होती रहेगी और आयुकी वृद्धि होगी। इसी प्रकार इनके अनुचित व्यवहारसे आयुकी हानि करनेवाले रोग होते हैं उनका इसी अध्यायमें कथन करते ॥ ३२ ॥

तीनप्रकारका बल।

सस्कारमहितमनुपसेवमानस्य यइहैवोपदेक्ष्यते। त्रिविधबलमितिसहजकालजयुक्तिकृतश्चसहजयच्छरीरसत्त्वयो प्राकृतम्। कालकृतमृतुविभागजवय कृतश्च । युक्तिकृतंपुनस्तदाहारचेष्टायोगजम् ॥ ३३ ॥

(३ प्रकारका बल) सहजबल, कालकृतबल, युक्तिकृतबल, यह तीन प्रकारका बल होताहै। इनमें शरीर और मनका जो स्वाभाविक बल है उसको सहजबल कहतेहैं। और ऋतुविशेष या अवस्थाजन्य जो बल है उसको कालकृत बल कहतेहैं। एवं आहार, कसरत, अथवा किसी औषध आदि योग या अभ्याससे प्राप्त किये हुए बलको युक्तिकृत बल कहतेहैं ॥ ३३ ॥

तीन आयतनोका वर्णन।

त्रीण्यायतनानीतिअर्थानांकर्म्मणःकालस्यचातियोगायोगाभियोगाः । तत्रातिप्रभावतांदृश्यानामतिमात्रदर्शनमतियोगः सर्वशोऽदर्शनमयोगः। अतिसूक्ष्मातिविप्रकृष्टरौद्रभैरवाद्भुतद्विष्टबीभत्सविकृतादिरूपंदर्शनंमिथ्यायोगः ॥ ३४ ॥

(३ आयतन) इंद्रियार्थ, कर्म, काल, इन तीनोंका अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग, तीन प्रकारके आयतन अर्थात् रोगोंके पैदा करनेवाले कारण कहे जातेहैं। उनमें अत्यंत कांतिवाले पदार्थको बहुत गौरसे अधिक देर देखना यह अतियोग है। और एकदम सबतरहसे देखना बंद करदेना अयोग कहाताहै। इसी प्रकार बहुत बारीक, अत्यंत समीप, तथा बहुत दूर, अतिभयंकर, अद्भुत, बुरा लगनेवाला, जिसके देखनेसे ग्लानि हो, तथा विकृत आदि वस्तुओंके देखनेको मिथ्यायोग कहतेहैं (यह दर्शनेंद्रियका अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग हुआ ॥ ३४ ॥

शब्दातियोगादिका वर्णन।

तथातिमात्रस्तनितोपहतक्रुष्टादीनांशब्दानामतिमात्रश्रवणमतियोगः। सर्वशोऽश्रवणमयोगः। परुषेष्टविनाशोपघातप्रधर्षणभीषणादिशब्दश्रवणंमिथ्यायोगः ॥ ३५ ॥

इसीप्रकार, वज्रपातके शब्दको सुनना, नगारे आदिका अथवा किसी वस्तुपर अन्यवस्तुके लगनके तीक्ष्ण शब्दका सुनना, अत्यंत तीक्ष्ण अनुरोध आदि शब्दका सुनना अथवा किसी शब्दका बहुत देर तक सुनना श्रवणेन्द्रियका अतियोग होताहै कुछ भी न सुनना अयोग कहाताहै। ऐसे ही-कठोरवाक्य, प्यारी वस्तुका नाश वज्रपात, रोमांचकारक शब्द, भयकारक शब्द, ऐसे २ शब्द सुननेको श्रवणेन्द्रियका मिथ्यायोग कहाताहै। यह श्रवणका अतियोग अयोग, मिथ्यायोग हुआ ॥ ३५ ॥

गन्धातियोगादिवर्णन ।

तथातितीक्ष्णोग्राभिष्यन्दिनागन्धानामतिसात्रघ्राणमतियोग. सर्वशोऽघ्राणमयोगः । पूतिद्विष्टामेध्यक्लिन्नविषपवनकुणपगन्धादिघ्राणमिथ्यायोग. ॥ ३६ ॥

अतितीक्ष्ण अतिउग्र, और अभिष्यन्दि आदि गंध अत्यंत सूंघना अतियोग कहाजाताहै । कुछ भी न सूंघना अयोग, और दुर्गंधित, द्वेषयुक्त गंधवाला, अपवित्र, भीगाहुआ विषयुक्त पवन, मुर्देकी गंध, इनके सूंघनेको मिथ्यायोग कहतेहैं । यह घ्राणका-अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग हुआ ॥ ३६ ॥

रसातियोगादिका वर्णन ।

तथारसानामत्यादानमतियोग. । अनादानमयोगः । मिथ्यायोगोराशिवर्ज्येष्वाहारविधिविशेषायतनेषूपादेक्ष्यते ॥ ३७ ॥

रसके अधिक सेवन करनेको अतियोग, कुछ भी न खानेको अयोग, और आहारके मिथ्यासेवनको मिथ्यायोग कहतेहैं । मिथ्यायोगको अपरिमित भोजनके वर्णनमें विशेषरूपसे कहेंगे ॥ ३७ ॥

स्पर्शातियोगादिका वर्णन ।

तथातिशीतोष्णानास्पृश्यानास्नानाभ्यङ्गोत्सादनादीनाञ्चात्युपसेवनमतियोग । सर्वशोऽनुपसेवनमयोग । विषमस्थानाभिघाताशुचिभूतसस्पर्शादयश्चेतिमिथ्यायोग ॥ ३८ ॥

अत्यन्त शीतल और अतिउष्ण जलसे देर तक स्नान करना, मालिश, उद्वर्तन आदिका अतिसेवन अतियोग कहाताहै । एकदम किसी स्पर्शकारक वस्तुका सेवन न करना अयोग है । ऐसे ही विषमस्थानमें फिरना, बैठना, सोना, चोट लगना तथा अपवित्र वस्तुके, स्पर्शआदिको मिथ्यायोग कहतेहैं । यह स्पर्शके अतियोगादि हुआ ॥ ३८ ॥

स्पर्शनेन्द्रियकी सर्वव्यापकता ।

तत्रैकस्पर्शनेन्द्रियमिन्द्रियाणामिन्द्रियव्यापकमत समवायिस्पर्शनव्याप्तेर्व्यापकमपिचचेतस्तस्मात्सर्वेन्द्रियाणाव्यापक.स्पर्शकृतोयोभावविशेष'सोऽयमनुपशयात्पञ्चविधस्त्रिविधविकल्पो भवत्यसात्म्येन्द्रियार्थसंयोग । सात्म्यार्थोह्युपशयार्थ. ॥ ३९ ॥

सब इंद्रियोंमें एक स्पर्शनेन्द्रिय ही नेत्र, कर्ण, रसन, आदिमें व्यापक है क्योंकि सब इंद्रियोंमें स्पर्शेंद्रिय विद्यमान है। और सब इंद्रियें अपने विषयमें सयोग स्पर्श द्वारा ही क्रिया करसकती है (जैसे शब्दके परमाणु, जब कर्णेन्द्रियसे स्पर्श करतेहैं तब कर्णेन्द्रिय शब्दको जान सकती है। ऐसे ही सबमें जानो) इन्द्रिय और इंद्रियके विषयके स्पर्शमें मन व्यापक है। इसलिये स्पर्श होनेवाली वायु (स्पर्शशक्ति) सबमें प्रधानहै। सो स्पर्शजन्य भाव पाचों इंद्रियोंमें व्यापक होनेसे पाच प्रकारका होताहै। यह पाच प्रकारका इंद्रिय और विषयका सयोग अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग, इन भेदोंसे तीन प्रकारका है और यह तीनप्रकारका योग असात्म्य अर्थात् आत्माके प्रतिकूल होताहै, और यथोचित सयोग आत्माके अनुकूल होताहै ॥ ३९ ॥

कर्मकृत आयतनका वर्णन।

कर्म्मवाङ्मन.शरीरप्रवृत्ति.। तत्रवाङ्मन
शरीरातिप्रवृत्तिरतियोग.सर्वशोऽप्रवृत्तिरयोग' ॥ ४० ॥

वाणी, मन, और शरीरकी प्रवृत्तिको कर्म कहतेहैं। मन, वाणी, शरीर, इनकी अत्यत प्रवृत्तिको अतियोग कहतेहैं और सर्वथा अप्रवृत्तिको अयोग कहतेहैं ॥ ४० ॥

वाणीके मिथ्यायोगका वर्णन।

सूचकानृताकालकलहाप्रियाबद्धानुपचारपरुष
वचनादिर्वाङ्मिथ्यायोग ॥ ४१ ॥

इनमें-निंदा करना, झूठा बोलना, बिनासमय कहना, कलह करना, अप्रिय बोलना, अट सट बकना, असगत अश्रद्धेय वाक्य कहना और दुखदाई वाक्य कहना वाणीका मिथ्यायोग है ॥ ४१ ॥

मानस मिथ्यायोग।

भयशोकक्रोधलोभमोहमानेर्ष्यामिथ्यादर्शनादिर्मानसोमिथ्या
योग. ॥ ४२ ॥

भय, शोक, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान, ईर्ष्या, मिथ्यादर्शन (झूठा गुरु मानलेना) आदि मनका मिथ्यायोग है ॥ ४२ ॥

शारीरिक मिथ्यायोग।

वेगधारणोदीरणविषमस्खलनपतनाङ्गप्रणिधानाङ्गप्रदूषणप्र-
हारमर्दनप्राणोपरोधसङ्क्लेशनादि शारीरोमिथ्यायोग. ॥ ४३ ॥

मलमूत्रादिकोंके वेगको रोकना, एवं विना वेग त्यागना विषमतासे बैठना सोना आदि, गिरना, फिसलना, अगोंको, दूषित करना, शरीरमें चोट आदि लगाना, शरीरको वेहिसाब मलना, वेहिसाब श्वासका रोकना और शरीरको पीडा देना। यह शरीरका मिथ्यायोग है ॥ ४३ ॥

कर्मके मिथ्याभोगका संक्षिप्त वर्णन ।

संग्रहेणचातियोगायोगवर्जंकर्म्मवाङ्मनःशरीरजमहितमनुप-दिष्टंयत्तच्च मिथ्यायोगंविद्यादिति । त्रिविधविकल्पत्रिविधमे-वकर्म्मप्रज्ञापराध इतिव्यवस्येत् ॥ ४४ ॥

यह संक्षेपसे कहागयाहै इनसे अन्य, और भी अतियोग और अयोगसे भिन्न जो वाणी, मन, शरीर इनके अहित कर्म हैं उनको भी मिथ्यायोग कहतेहैं। यह जो वाणी, मन, शरीर, इन तीनोंके कर्मोका तीन प्रकारका अतियोगादि विकल्प कहाहै यह बुद्धिके दोषसे ही होताहै ॥ ४४ ॥

कालातियोगादिका वर्णन ।

शीतोष्णवर्षालक्षणाःपुनर्हेमन्तग्रीष्मवर्षासंवत्सरःसकाल । तत्रातिमात्रस्वलक्षण काल कालातियोग । हीनस्वलक्षण कालयोग । यथास्वलक्षणविपरीतलक्षणस्तुकालोमिथ्यायोग काल पुन परिणामउच्यते ॥ ४५ ॥

जाडा, गर्मी, वर्षात, इन तीनोंमें क्रमसे शीत होना गर्मीपडना, वर्षावरसना, इन तीनोंका लक्षण है, इन तीन कालोंके समुदायको संवत्सर (वर्ष) कहतेहैं इसीका नाम काल है। सो इस कालमें अपने २ समयपर सर्दी, गर्मी, वर्षा, का अत्यंत होना कालका अतियोग कहाजाताहै । न होना अयोग कहाताहै। एवं अपने २ समयसे आगे पीछे होनेको और समयके विपरीत लक्षणाको कालका मिथ्यायोग कहतेहैं कालको ही परिणाम भी कहतेहैं ॥ ४५ ॥

इत्यसात्म्येन्द्रियार्थसंयोगः प्रज्ञापराध परिणामश्चेति ॥ ४६ ॥

इस प्रकार असात्म्य (आत्माके प्रतिकूल) इंद्रिय तथा विषयोंका संयोग, बुद्धिके दोष और कालका वर्णन किया गया है ॥ ४६ ॥

रोगोंके कारण ।

त्रयस्त्रिविधविकल्पा कारणविकाराणाम् ।
समयोगयुक्तास्तुप्रकृतिहेतवोभवन्ति ॥ ४७ ॥

इंद्रियार्थसयोग, बुद्धि और कालका अतियोग, अयोग, और मिथ्यायोग यह तीन प्रकारका विकल्प–रोगोंके उत्पन्न होनेका कारण है और इन तीनोंका ही सुप्रयोग होना आरोग्यताका कारण है ॥ ४७ ॥

सर्वेषामेवभावानाभावाभावौनान्तरेणयोगायोगातियोगामि-
थ्यायोगात्समुपलभ्येते । यथासयुक्त्यापेक्षिणौहिभावाभावौ४८

सपूर्ण वस्तुओंका अभाव और सद्भाव यह दोनों मनुष्यके शरीरमें क्रिया करते-हैं। वह क्रिया सम्यक योग अयोग, अतियोग मिथ्यायोग, इन भेदोंसे अलग २ हैं। यह भाव और प्रभाव योगमें युक्तकी अपेक्षा करतेहैं अर्थात् मन, वाणी, शरीर, इनका युक्ति पूर्वक योग सुखका हेतु और अयुक्ति योग दुखका हेतु होताहै ॥ ४८ ॥

तीनप्रकारके रोग।

त्रयोरोगाइतिनिजागन्तुमानसा.तत्रनिज.शरीरदोषसमुत्थ ।
आगन्तुर्भूतविषवाय्वग्निसम्प्रहारादिसमुत्थ । मानसःपुनरि-
ष्टस्यालाभाल्लाभाच्चानिष्टस्योपजायते ॥ ४९ ॥

निज अर्थात् शारीरिक, आगतुक, मानसिक, इन भेदोंसे रोग तीन प्रकारके होतेहैं। उनमें शरीरस्थ वात, पित्त, कफके कारणसे जो व्याधि उत्पन्न हो उसको निज अर्थात् शारीरिक व्याधि कहतेहैं। भूत, विष, बाहरसे आकर लगनेवाला वायु और अग्निप्रहार आदिसे होनेवाली व्याधिको आगतुक कहतेहैं। इसी प्रकार मनकी प्रिय अर्थात् इच्छितपदार्थके न मिलनेसे अप्रिय वस्तुके मिलनेसे जो मनमें शोका-दिक होतेहैं। उनको मानसिक रोग कहतेहैं ॥ ४९ ॥

हितकर्तव्य।

तत्रबुद्धिमतामानसव्याधिविपरीतेनापिसताबुद्धयाहिताहित-
मवेक्ष्यावेक्ष्यधर्मार्थकामानामहितानामनुपसेवनेहितानाञ्चोप
सेवनेप्रयातितव्यम् ॥ ५० ॥

मानसिक व्याधिमें अथवा मानसिक व्याधिके विना भी बुद्धिमानको उचित है कि, अपने हित और अहितका विचार कर अहितकारक धर्म अर्थ कामका त्याग और हितकारक धर्म अर्थ कामका सेवन करनेमें यत्नवान् होना चाहिये ॥ ५० ॥

नह्यन्तरेणलोकेत्रयमेतन्मानसंकिञ्चिन्निष्पद्यतेसुखंवादुःखंवा
तस्मादेतच्चानुष्टेयम् । तद्विद्यावृद्धानाञ्चोपसेवनेप्रयातितव्यम् ।
आत्मदेशकालबलशक्तिज्ञानेयथावच्चेति ॥ ५१ ॥

क्योंकि इस लोकमे धर्म अर्थ कामके विना कोई भी मानसिक दुःख, सुख नहीं होसकता इसलिये हितकारक धर्म अर्थ काम का सेवन करे । उस धर्मादि त्रिविध पुरुषार्थको हितकर बनानेके लिये योग्य बुद्धिमानो और वृद्धजनों का सेवन तथा सत्संग करना चाहिये । और आत्मा, देश, काल, बल, शक्ति, इनके यथावत् ज्ञानमे तत्पर रहे अर्थात् इनसे विरुद्ध आचरण न करे ॥ ५१ ॥

भवतिचात्र । मानसप्रतिभैषज्यत्रिवर्गस्यान्ववेक्षणम् । तद्वि-द्यसेवाविज्ञानमात्मादीनाञ्चसर्वशइति ॥ ५२ ॥

यहा पर श्लोक है कि–धर्म अर्थ काम इस त्रिवर्गको यथोचित जानकर सेवन करना, और इस त्रिवर्गके ज्ञाता वृद्धजनोंकी सेवा तथा आत्म आदिकके ज्ञानमें तत्पर रहना यह मानसिक व्याधिकी औषधि है ॥ ५२ ॥

रोगोंके तीन मार्ग ।

त्रयोरोगमार्गाइति । शाखामर्मास्थिसन्धय कोष्ठश्च । तत्रशा-खारक्तादयोधातवस्त्वक्चबाह्योरोगमार्ग. । मर्माणिपुनर्वस्ति-हृदयमूर्द्धादीन्यस्थिसन्धयोऽस्थिसयोगास्तत्रोपनिबद्धाश्चस्ना-युकण्डरासमध्यमोरोगमार्ग. । कोष्ठपुनरुच्यतेमहास्रोत.श-रीरमध्यंमहानिम्नमामपक्वाशयश्चेतिपर्य्यायशब्दै. सरोगमार्ग आभ्यन्तर ॥ ५३ ॥

रोगमार्ग तीन प्रकारकेहै । वह इस प्रकार है १ शाखा, २ मर्म अस्थिसंधि, ३ कोष्ठ । इनमें शाखाशब्दसे रक्तादिधातुए और त्वचा लेना इनको बाह्यमार्ग कहतेहै । और वस्ति, हृदय, मूर्द्धा आदिक मर्मस्थान, अस्थिसंधि और अस्थिसंयोगस्थान, एव उन २ स्थानोमे बंधीहुई स्नायु, और कंडरा, इनको मध्य रोग मार्ग कहतेहै । कोष्ठशब्दसे कोष्ठके अन्य पर्याय जैसे महास्रोत, शरीरमध्य, महानिम्न, आमाशय, पक्वाशय, इनको आभ्यंतर रोगमार्ग कहतेहै ॥ ५३ ॥

बहिर्मार्गज रोगोंके नाम ।

तत्रगण्ड पीडकालज्यपचीचर्म्मकीलाधिमांसालसकुष्ठव्यङ्गा-दयोविकाराबहिर्मार्गजा ॥ ५४ ॥

इनमें गंड (गल्गंड), पीडका, अलजी, अपची, चर्मकील, अर्बुद, अधिमांस, अल्स पावका रोग), कुष्ठ, और व्यंग आदि रोग बाह्य रोगमार्गमें पैदा होतेहै ॥ ५४ ॥

शाखानुसारीरोग।

वीसर्पश्वयथुगुल्मार्शोविद्रध्यादय. शाखानुसारिणोभवन्ति रोगा. ॥ ५५ ॥

वीसर्प, शोथ, गुल्म, ववासीर, विद्रधि आदि रोग शाखानुसारी कहेजाते हैं॥५५॥

मध्यममार्गानुसारी रोग।

पक्षवधग्रहापतानकार्दितशोषराजयक्ष्मास्थिसंधिशूलगुदभ्रंशादय शिरोहृद्वस्तिरोगादयश्चमध्यममार्गानुसारिणोभवन्ति रोगाः ॥ ५६ ॥

पक्षवध (पक्षाघात, अर्धांग), ग्रह (अगग्रह,किसी अगका रहजाना) अपतानक, अर्दित, सोजा, राजयक्ष्मा, अस्थिशूल, सांधिशूल, गुदभ्रंश, और शिरोगत रोग,हृदयगत रोग, एव वस्तिगत रोग, मध्यममार्गानुसारी कहेजातेहैं ॥ ५६ ॥

कोष्ठानुसारी रोग।

ज्वरातीसारछर्द्यलसकविषूचिकाश्वासहिक्कानाहोदरप्लीहादयोऽन्तर्मार्गजाश्च। विसर्पश्वयथुगुल्मार्शोविद्रध्यादय.कोष्टमार्गानुसारिणोभवन्तिरोगा ॥ ५७ ॥

ज्वर, अतिसार, वमन, अलसक (अजीर्णका भेद), विशूचिका, श्वास, काम, हिचकी, अफरा, उदररोग प्लीहरोग, यह अभ्यतरमार्गजन्य रोग है। वीसर्प, शोथ, गुल्म, अर्श, तथा विद्रधिआदि कोष्ठमार्गानुसारी रोग होते हैं ॥ ५७ ॥

तीनप्रकारके वैद्य।

त्रिविधाभिपजइति। भिपक्छद्मचरा सन्तिसन्त्येकेसिद्धसाधिता। सन्तिवैद्यागुणैर्युक्तास्त्रिविधाभिपजोभुवि ॥ ५८ ॥

तीन प्रकारके वैद्य है। छद्मचर वैद्य १, सिद्धसाधित वैद्य २, वैद्यगुणयुक्त वैद्य ३ ॥ ५८ ॥

भिषक्छद्मचरके लक्षण।

वैद्यभाण्डोषधे पुस्ते पल्लवैरवलोकने।
लभन्तेयेभिषक्शब्दमज्ञास्तेप्रतिरूपका ॥ ५९ ॥

इनम दूसरे अर्थात पात्र, औषध, पुस्तक पत्र आदि देखकर आदमी उनको नकल रूप बनाकर वैद्य कहलानेवाले मतिरूपक या छद्मचर वैद्य कहलाते ॥ ५९ ॥

सिद्धसाधितवैद्यके लक्षण ।

श्रीयशोज्ञानसिद्धानांव्यपदेशादतद्विधा ।
वैद्यशब्दंलभन्तेयेज्ञेयास्तेसिद्धसाधिता ॥ ६० ॥

जो वैद्य वैद्यगुणसंपन्न तो नहीं परन्तु धनवान् यशवाले ज्ञानवान और सिद्धलोगोंने उनकी प्रशंसा फैलादीहो उनको सिद्धसाधित वैद्य कहतेहैं ॥ ६० ॥

वैद्यगुणयुक्तके लक्षण ।

प्रयोगज्ञानविज्ञानसिद्धिसिद्धाःसुखप्रदाः ।
जीविताभिसरास्तेस्युर्वैद्यत्वंतेष्ववस्थितमिति ॥ ६१ ॥

जो वैद्य औषधप्रयोग आदिमें कुशल है तथा हेतु, रोग, चिकित्साके ज्ञान विज्ञानमें सिद्धिसंपन्न है, वह सुखके और जीवनके देनेवाले सद्वैद्य वैद्यगुणसंपन्न वैद्य होते हैं इनहीमें वैद्य शब्दकी स्थिति है ॥ ६१ ॥

औषधियोंके भेद ।

त्रिविधमौषधमिति । दैवव्यपाश्रययुक्तिव्यपाश्रयसत्त्वावजयश्च । तत्रदैवव्यपाश्रयंमन्त्रौषधिमणिमङ्गलनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपाततीर्थगमनादि । युक्तिव्यपाश्रयपुनराहारौषधद्रव्याणायोजना । सत्त्वावजय पुनरहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रहः ॥ ६२ ॥

तीन प्रकारकी औषध होती है । दैवव्यपाश्रय १, युक्तिव्यपाश्रय २, सत्त्वावजय ३ । इनमें मंत्र, मंगल औषधी रत्न इनका धारण, मंगलाचरण, बलि, पूजन, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास, स्वस्तिवाचन, प्रणाम, तीर्थगमन आदिको दैवव्यपाश्रय औषध कहतेहैं । युक्तिपूर्वक आहार और औषधके सेवनको युक्तिव्यपाश्रय कहतेहैं । अहित अर्थोंसे मनको रोकनेका नाम सत्त्वावजय औषध है ॥ ६२ ॥

शारीरिक रोगोंमें औषधभेद ।

शरीरदोषप्रकोपेखलुशरीरमेवाश्रित्यप्रायशस्त्रिविधमौषधमिच्छन्ति । अन्तःपरिमार्जनंबहिःपरिमार्जनंशस्त्रप्रणिधानञ्चेति । तत्रान्तःपरिमार्जनंयदन्तःशरीरमनुप्रविश्यौषधमाहारजातव्याधीन्प्रतिमार्ष्टि । यत्पुनर्बहिःस्पर्शमाश्रित्याभ्यङ्गस्वेदप्रदेहपरिषेकोन्मर्दनाद्यैरामयान्प्रमार्ष्टितद्बहिःपरिमार्जनम् ॥ ६३ ॥

शस्त्रप्रणिधानंपुनश्छेदनभेदनव्यधनदारणलेखनोत्पाटनप्रच्छनसीवनैषणक्षारजलौकाश्चेति ॥ ६४ ॥ प्राज्ञोरोगेसमुत्पन्ने वाह्येनाभ्यन्तरेणवा । कर्मणालभतेशर्मशस्त्रोपक्रमणेनवा ६५

शारीरक दोषोंके कोपको शान्त करनेके लिये बहुत करके तीन प्रकारकी औषधका प्रयोग किया जाताहै । वह तीन प्रकारके औषध यह है–अतःपरिमार्जन, बहि परिमार्जन और शस्त्रप्रणिधान । इनमें जो औषध शरीरके भीतर जाकर मिथ्या आहारादि हुए रोगको नष्ट करे उसको अतःपरिमार्जन कहते हैं । जो औषध बाहिरके आश्रयसे अर्थात् मालिश, पसीना, प्रलेप, परिषेक, उद्वर्तन आदिके प्रयोगसे रोगको नष्ट करे उसको बहिःपरिमार्जन कहतेहैं । शस्त्रद्वारा–छेदन, भेदन, व्यधन, विदारण, लेखन, उत्पाटन, पृच्छन, सीवन, एषण तथा क्षारकर्म और जलौका आदिके प्रयोगको शस्त्रप्रणिधान कहतेहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य उत्पन्नहुए रोगकी शांतिके लिये अतःपरिमार्जन अथवा बाह्यपरिमार्जन या शस्त्रप्रणिधान, इन तीन उपायोंको करनेसे ही सुखको प्राप्त होसकताहै ॥ ६५ ॥

बालकोंकी अज्ञानताका फल ।

बालस्तुखलुमोहाद्वाप्रमादाद्वानबुध्यते । उत्पद्यमानप्रथमरोगं शत्रुमिवाबुधः ॥ ६६ ॥ अग्राहिप्रथमभूत्वारोगःपश्चाद्विवर्द्धते । सजातमूलोमुष्णातिबलमायुश्चदुर्मते ॥ ६७ ॥ नमर्त्योलभतेश्रद्धातावद्यावन्नपीड्यते । पीडितस्तुमतिंपश्चात्कुरुतेव्याधिनिग्रहे ॥ ६८ ॥ अथपुत्राश्चदाराश्चज्ञातींश्चाहूयभाषते । सर्वस्वेनापिमेकश्चिद्भिषगानीयतामिति ॥ ६९ ॥ तथाविधञ्च कःशक्तोदुर्बलव्याधिपीडितम् । कृशक्षीणेन्द्रियदीनपरित्रातुं गतायुषम् ॥ ७० ॥ सत्रातारमनासाद्यबालस्त्यजतिजीवितम् । गोधालांगूलबद्धेनाकृष्यमाणाबलीयसा ॥ ७१ ॥

बालक अर्थात् अज्ञानी मनुष्य पहले तो उत्पन्न होते हुए रोगको मोह अथवा प्रमादवश तुच्छ मानताहै।जैसे मूर्खपुरुष अपने शत्रुको तुच्छ समझताहै ॥६६॥ परन्तु जब पहले उत्पन्न होने ही रोगका यत्न नहीं किया जाता तिब वह रोग वृद्धिको प्राप्त होकर जड पकड जाताहै और पीछे ही यत्न न करनेसे मूर्खक बलको तथा आयुको नष्ट करदेताहै ॥ ६७ ॥ जब तक मूर्खमनुष्यको रोग द्वारा पीडित

नहीं करदेता तब तक उस रोगको यत्न करनेके लिये उसकी श्रद्धा नहीं होती । जब रोगसे व्याकुल होजाताहै फिर यत्न करानेके लिये प्रयत्नवान् होताहै । और अपने पुत्र स्त्री तथा बान्धवोंको बुलाकर कहताहै कि चाहे सर्वस्व भी खर्च होजाय परन्तु किसी योग्य वैद्यको बुलाकर मेरी चिकित्सा करो ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ फिर वैसे दुर्बल, असाध्य व्याधिसे पीडित हुए, कृश, तथा क्षीण इंद्रिय होनेपर दीन, और गतायुकी रक्षा करनेको कौन समर्थ होसकताहै अर्थात् कोई नहीं । फिर जब उसकी कोई चिकित्सा नहीं करसकता तब वह मूर्ख अपनी आयुको त्याग देता है अर्थात् रोगवश होकर मृत्युको प्राप्त होताहै जैसे गोहकी पूछको कोई बलवान् जानवर पकडकर खींचताहै तब वह आगेको बलपूर्वक भागताहुई अपने जीवनको त्यागदेतीहै ऐसे ही रोगोंसे खींचाहुवा मनुष्य भी अपने जीवनको त्याग देताहै ॥ ७० ॥ ७१ ॥

रोगीका कर्तव्य ।

तस्मात्प्रागेवरोगेभ्योरोगेषुतरुणेषुवा । भेषजैःप्रतिकुर्वीतयइच्छेत्सुखमात्मनः ॥ ७२ ॥

इसलिये रोग होनेसे पहले ही अथवा रोगके बलवान् होनेसे पहले ही औषध द्वारा अपने सुखके लिये यत्न करे ॥ ७२ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ । एषणा समुपस्तम्भाबलकारणमामयाः । तिस्रैषणीयेमार्गाश्चभिषजोभेषजानिच ॥ ७३ ॥ त्रित्वेनाष्टौसमुद्दिष्टाः कृष्णात्रेयेणधीमता । भावाभावेषुशक्तेनयेषुसर्वंप्रतिष्ठितम् । इति ॥ ७४ ॥

अग्नीत्यादि ॥ एकादशस्तिस्रैषणीयाध्याय समाप्त ।

यहा इस अध्यायकी पूर्तिमे दो श्लोक है, कि इस तिस्रैषणीयाध्यायमें वैराग्यवान् बुद्धिसंपन्न कृष्णात्रेयजीने एषणा, उपस्तंभ, बल, कारण, रोग, रोगमार्ग, वैद्य, औषध इन आठोंके तीन २ भेद कथन कियेहै । और सबके भावाभाव कहेहै । जिनमे समस्त प्रतिष्ठित है अर्थात् जिनके आधार पर समस्त वैद्यक है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतरूपनगरनिवासि-वैद्यराजानन प० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां तिस्रैषणीयो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्याय ।

अथातोवातकलाकलीयमध्यायंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

वायुके विषयमे ऋषियोका प्रश्न ।

वातकलाकलाज्ञानमधिकृत्यपरस्परमेतानिजिज्ञासमाना'समुपविश्यमहर्षयःप्रपच्छुरन्योन्यकिंगुणोवायु किमस्यप्रकोपनमुपशमनानिवास्यकानि । कथश्चैनमसङ्घातमनवस्थितमनासाद्यप्रकोपनप्रशमनानिप्रकोपयन्तिप्रशमयन्तिवा । कानि चास्यकुपिताकुपितस्यशरीराशरीरचरस्यशरीरेषुचरत कर्माणि वहिःशरीरेभ्योवेति ॥ १ ॥

अब हम वातकलाकलीय अध्यायका कथन करतेहै ऐसा भगवान आत्रेयजी कहनेलगे महर्षिलोग एक स्थानमे एकत्रित होकर बैठेहुए वातकलाकलीय अर्थात वायुको सूक्ष्मविचार करनेका उद्देश्य रखकर परस्पर जाननेकी इच्छा करतेहुए आपसमे इस प्रकार आदोलन करने लगे कि वायुके क्या गुण है । इसके प्रकोपका कारण क्या है, और इसकी शान्ति किस प्रकार होतीहै । और किस प्रकार इस असहत और अनवस्थित वायुका प्रकोपकारक द्रव्य प्राप्त होकर प्रकुपित करतेहै । और कैसे शमनकारक शमन करतेहै । जब यह वायु कुपित होकर, अथवा बिना क्रुद्ध हुएही शरीरके भीतर या बाहर विचरतीहै तब इसकी क्या क्रिया होतीहै । और शरीरके भीतर रहकर किन कर्मोको करतीहै तथा शरीरके बाहर रहकर किन कर्मोको करती है ॥ १ ॥

साङ्कृत्यायनकुशका मत ।

अत्रोवाचकुश साङ्कृत्यायन । रूक्षलघुशीतदारुणखरविशदाः षडिमेवातगुणाभवन्ति ॥ २ ॥

उन ऋषियोंमे कुश-साङ्कृत्यायन ऋषि कहनेलगे कि वायुमे रूक्ष, लघु, शीत, दारुण, खर, विशद, यह छः गुण है ॥ २ ॥

भरद्वाजका मत ।

तच्छ्रुत्वावाक्यकुमारशिराभरद्वाजउवाच एवमेतद्यथाभगवा-
नाहएतएववातगुणाभवन्ति । सत्त्वेवगुणैरेवंद्रव्यैरेवप्रभावे-
श्चकर्म्मभिरभ्यस्यमानैर्वायुःप्रकोपमापद्यतेसमानगुणाभ्यासो
हिधातूनांवृद्धिकारणमिति ॥ ३ ॥

यह सुनकर "कुमारशिरा भरद्वाज" कहनेलगे जैसे आपने कहा है ठीक वायुमे यही गुण होतेहैं यह वायु वैसे ही रूक्षादि गुणयुक्त द्रव्योंसे तथा वैसे ही रूक्षादि प्रभाववाले कर्मोंके अभ्याससे कुपित होतीहै । क्योंकि समानगुणोंवाले द्रव्यों तथा कर्मोंका अभ्यास ही धातुओंकी वृद्धिका कारण होताहै जैसे 'सर्वदा सर्वभावाना' यह पहले अध्यायमे कहचुके है ॥ ३ ॥

वाह्लीकका मत ।

तच्छ्रुत्वावाक्यकाङ्क्षायनोवाह्लीकभिषगुवाच । एवमेतद्यथा
भगवानाह । एतान्येववातप्रकोपनानिभवन्ति । अतोविपरी-
तानिखल्वस्यप्रशमनानिभवन्ति । प्रकोपनविपर्य्ययोहिधातू-
नांप्रशमकारणमिति ॥ ४ ॥

यह वाक्य सुनकर "काङ्क्षायन-वाह्लीक वैद्य" कहनेलगे जैसे आपने कहाहै वैसे ही है । यही रूक्षादिगुणयुक्त द्रव्यादि वातके कोप करनेमे कारण होतेहैं । इससे विपरीत स्निग्धादिगुण प्रभाव युक्त द्रव्यों या कर्मोंसे वातकी शान्ति होती है क्योंकि प्रकोपके कारणसे विपरीतगुणोंवाले द्रव्यादिकोंका सेवन ही धातुओं (वातादिकोंमे ही यहां धातुशब्दका लक्षण है) को शांत करनेके कारण होतेहैं ॥ ४ ॥

वडिशधामार्गवका मत ।

तच्छ्रुत्वावाक्यवडिशोधामार्गवउवाच । एवमेतद्यथाभगवा-
नाह । एतान्येववातप्रकोपप्रशमनानिभवन्ति । यथाह्येनमस
घातमवस्थितमनासाद्यप्रकोपनप्रशमनानिप्रकोपयन्तिप्रशमय
न्तिवा । तथानुव्याख्यास्यामः । वातप्रकोपनानिखलुरूक्षल-
घुशीतदारुणखरविशदशुषिरकराणिशरीराणांतथाविधेषुशरीरे
षुवायुराश्रयगत्वाआप्यायमानः प्रकोपमापद्यते । वातप्रशम-
नानिपुनःस्निग्धगुरूष्णश्लक्ष्णमृदुपिच्छिलघनकराणिशरीरा-
णांतथाविधेषुशरीरेषुवायुरासज्यमानश्चरन्प्रशान्तिमापद्यते५

यह सुनकर "वडिश धामार्गव" बोले, जैसे आपने कहा है ठीक ऐसे ही है। यह ही वायुके प्रकोप और शांतिके कारण होतेहैं । जिस प्रकार इस सूक्ष्म और चल वायुको प्राप्त हो कोपकारक और शांतिकारक द्रव्य प्रकुपित और शमनको प्राप्त होतेहैं उनका वर्णन भी करतेहैं । वह ऐसेहैं वातको प्रकुपित करनेवाले पदार्थ अपने रूक्ष, लघु, शीतल, दारुण, खर, विशद और शुषिर करनेवाले गुणोंसे वातस्वभाववाले शरीरोंमें वायुके आश्रय होकर वायुके कोपको प्राप्त होतेहैं अर्थात् रूक्षादि गुणोवाले पदार्थ वातप्रधान शरीरमें अपने रूक्षादि गुणोंसे वायुको बढाकर कुपित करदेतेहैं । (तात्पर्य यह हुआ कि अपने रूक्षादि गुणोंको प्राप्त हो वायु बढकर कुपित होजाताहै) । ऐसे ही वातको शान्त करनेवाले द्रव्य शरीरोंमें-चिकनाई, गुरुता, उष्णता श्लक्ष्णता, कोमलता पिच्छिलता और घनताको करतेहैं। फिर स्निग्धादि गुणयुक्त शरीरमें विचरता हुआ वायु स्निग्धादिगुणोंसे मिलकर शान्तिको प्राप्त होताहै । अर्थात् वातसे विपरीत चिकने आदि गुणयुक्त पदार्थोंसे स्निग्धता आदि गुण प्राप्त होनेपर रूक्षता आदि गुण त्यागताहुआ शांत होजाताहै ॥ ५ ॥

वार्योविद्का मत ।

तच्छ्रुत्वावडिशवचनमवितथमृषिगणैरनुमतमुवाचवार्योविदो राजर्षि । एवमेतत्सर्वमनपवादयथाभगवानाह । यानितुखलुवायो कुपिताकुपितस्यशरीराशरीरचरस्यशरीरेषुचरत कर्माणिबहि शरीरेभ्योवाभवन्तितेषामवयवान्प्रत्यक्षानुमानोपमानैः साधयित्वानमस्कृत्यवायवेयथाशक्तिप्रवक्ष्याम ॥ ६ ॥

इस प्रकार कहेहुए यथार्थ, और ऋषियोंके बहुमत अर्थात् मानेहुए वडिशके वाक्यको सुनकर राजर्षि वार्योविद कहनेलगे कि आपने जो कहाहै यह निर्विवाद है अर्थात् सबको मतव्य और यथार्थ है। अब शरीरमें बाहिर विचरतेहुए कुपित अथवा शान्तिको प्राप्त हुए वायुके जो २ कार्य शरीरके भीतर और बाहर होतेहैं अर्थात् कुपित या बिना कुपितवायु शरीरमें अथवा बाहिर जो २ कार्य करताहै उनसबको प्रत्यक्ष अनुमान और उपमानद्वारा सिद्ध करतेहुए वायुको नमस्कार करके यथाशक्ति वर्णन करताहूं ॥ ६ ॥

वायुके भेद और कर्म ।

वायुस्तन्त्रयन्त्रधर प्राणोदानसमानव्यानापानात्माप्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानांनियन्ताप्रणेताचमनस । सर्वेन्द्रियाणामु-

द्योतकः । सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढा सर्वशरीरधातुव्यूहाकरः सन्धानकरः शरीरस्य प्रवर्त्तको वाचः प्रकृतिः स्पर्शशब्दयोः श्रोत्रस्पर्शनयोर्मूलं हर्षोत्साहयोर्योनिः समीरणोऽग्नेर्दोषसंशोषणः । क्षेप्ता बहिर्मलानां स्थूलाणुस्रोतसां भेत्ता कर्त्ता गर्भाकृतीनाम् आयुषोऽनुवृत्तिप्रत्ययभूतो भवत्यकुपितः ॥ ७ ॥

इस शरीरतंत्र और शरीररूपी यंत्रके धारण करनेवाला वायु-प्राण, उदान, समान, व्यान, अपान इन भेदोंसे पांच प्रकारका है। यह चलना फिरना आदि शरीरकी चेष्टाका प्रवर्तक है और ऊंची नीची क्रियाका नियंता है। मनका प्रणेता, सब इंद्रियोंमें उद्योग करनेवाला, सब इंद्रियोंका चलानेवाला सब शरीरकी धातुओंका ग्राहक, शरीरका संधान करनेवाला, वाणीको प्रवृत्त करनेवाला, शब्द और स्पर्श स्वभाववाला शब्द और स्पर्शके बोधका कारण, हर्ष और उत्साहका कारण, अग्निको प्रेरण करनेवाला, दोषोंका शोषण करनेवाला, मलोंको निकालकर बाहिर फेंकनेवाला, स्थूल और सूक्ष्म स्रोतोंको भेदन करनेवाला, गर्भकी आकृति बनानेवाला, और आयुका आधारभूत है। यह कर्म प्रकृतिस्थ अर्थात् कोपको बिना प्राप्त हुएँ वायुके हैं ॥ ७ ॥

कुपितवायुके कर्म ।

कुपितस्तु खलु शरीरे शरीरं नानाविधैर्विकारैरुपतपति बलवर्णसुखायुषामुपघाताय मनो व्याहर्षयति सर्वेन्द्रियाण्युपहन्ति । विहन्ति गर्भान् विकृतिमापादयत्यतिकालं धारयति । भयशोकमोहदैन्यातिप्रलापाञ्जनयति प्राणांश्चोपरुणद्धि । प्रकृतिभूतस्य खल्वस्य लोके चरतः कर्माणीमानि भवन्ति ॥ ८ ॥

शरीरस्थ वायु कुपित होनेपर शरीरको अनेक प्रकारके रोगोंसे पीडित करता है। तथा बल, वर्ण, सुख और आयुको नष्ट करता है। और गर्भको नष्ट अथवा विकारयुक्त करदेता है या प्रसवमें अतिकाल अर्थात् विलम्ब करदेता है। भय, शोक, मोह, बकवाद, दीनता इनको उत्पन्न करदेता है। तथा प्राणोंकी गतिको रोकदेता है। यह शरीरमें कुपित हुए वायुके कर्म हुए ॥ ८ ॥

बाह्य वायुके कर्म ।

तद्यथा । धरणीधारणं ज्वलनोज्ज्वालनम् । आदित्यचन्द्रनक्षत्रग्रहगणानां सन्तानगतिविधानं सृष्टिश्च मेघानाम् । अपाञ्च

विसर्ग प्रवर्तनस्रोतसापुष्पफलानाश्चाभिनिर्वर्त्तनमुद्भेदनश्चौ द्भिदानामृतूनाप्रविभाग । विभागोधातूनाधातुमानसस्थान-व्यक्तिः । बीजाभिसंस्कार'शस्याभिवर्द्धनविक्लेदोपशोषणम-वैकारिकविकारश्चेति ॥ ९ ॥

बाह्यवायु-प्रकृतिस्थ अर्थात् अपने उचित स्वभावमें रहनेसे संसारमें विचरता हुआ इन कर्मोको करताहै।

जैसे-पृथ्वीका धारण, अग्निका ज्वालन, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, और ग्रहगणोंको अपने क्रमपूर्वक गतिसे घुमाना तथा मेघ आदिको उत्पन्न करना, आकाशसे जलोंका पातन करना, स्रोता (सोता) अर्थात् झरनोंमेंसे जलको प्रवर्तन करना, पुष्प, फल आदिकोंका अपने २ समयमें उत्पन्न होना, वृक्षादि उद्भिज्ज सृष्टिका ठीक उत्पन्न होना, ६ ऋतुओंका ठीक होना, संपूर्ण पार्थिव धातुओंका विभाग तथा घनता और आकृतिका ठीक होना, बीजोंमेंसे अंकुरादि निकलना, खेती तथा घासका बढ़ना, क्लेदका हरना, विकारयुक्त वस्तुको विकाररहित बनादेना। ऐसे ऐसे शुभ कार्योको प्रकृतिस्थ बाह्य वायु करताहै ॥ ९ ॥

कुपित बाह्य वायुके कर्म ।

प्रकुपितस्यखल्वस्यलोकेषुचरत कर्माणीमानि भवन्ति ॥१०॥

प्रकुपित हुए बाह्यवायुके यह कर्म (आगे कहे हुए) होतेहैं ॥ १० ॥

तद्यथा । उत्पीडनसागराणामुद्वर्त्तनसरसाप्रतिसरणमापगा-नामाकम्पनश्चभूमेराधमनमम्बुदानांशिखरिशिखरावमथन-मुन्मथनमनोकहानांनिहारनिर्ह्लादपांशुसिकतामत्स्यभेकोरग क्षाररुधिराश्माशनिविसर्गोव्यापादनश्चषण्णामृतूनांशस्यानाम-संघातेभूतानाश्चोपसर्गोभावानाश्चाभावकरणम्। चतुर्युगान्त कराणांमेघसूर्य्यानलानांविसर्ग , साहिभगवान्प्रभवश्चाव्यय श्चभूतानांभावानामभावाकर ॥ ११ ॥

वह ऐसे हैं समुद्रोंका डगमगा देना, तालाओंर जलोंका आलोडन करना नदियोंको उलटा करदेना, भूकंप होना, मेघोंका इधर उधर चालन होना पर्वतोंके शिखरोंका टूटना, वृक्षोंका उखाड़ना, नीहार (पानी गिरना) धूलका [illegible], गरदा, रेत, मत्स्य, मेंडक, सांप, खार, रुधिर, पत्थर, वज्र, इनका आकाशसे गिरना,

छहों ऋतुओंमें विकृति होना, खेतीका बिगडना, भूत आदि गणोंकी बाधा होना, होनेयोग्य वस्तुओंका न होना, यह उपद्रव होतेहै। चारों युगोंके नष्टकर्ता अर्थात् प्रलयकारक मेघ, सूर्य, वायु, और अग्निको फैलाना, । यह वायु भगवान् ही भूत सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशको करनेवाला है ॥ ११ ॥

वायुके साधारण धर्म ।

सुखासुखयोर्विधातामृत्युर्यमोनियन्ताप्रजापतिरदितिर्विश्वकर्माविश्वरूप'सर्वग'सर्वतन्त्राणाविधाता । भावानामणुर्विभुर्विष्णु'क्रान्तालोकानावायुरेवभगवानिति ॥ १२ ॥

यह वायु ही सुख दुःखको देनेवाला मृत्यु, यम, नियंता प्रजापति, अदिती, विश्वकर्मा, विश्वरूप, सर्वगामी, सर्वतंत्रोंको रचनेवाला है। और सब भावोंमें-अणु, विभु-विष्णु, तीनों लोकोंमें व्यापक, और भगवान है ॥ १२ ॥

मारीचिका प्रश्न ।

तच्छ्रुत्वावाक्यंविद्धचोमारीचिरुवाच। यद्यप्येवमेतत्किमर्थस्यास्यवचनेविज्ञानेवासामर्थ्यमस्तिभिषग्विद्यायाम् । भिषग्विद्यावाधिकृत्यकथाप्रवर्त्तते । वार्योविदउवाच। भिषक्पवनमतिबलमतिपरुषमतिशीघ्रकारिणमात्ययिकञ्चेन्नानुनिशम्येत्॥१३॥ सहसाप्रकुपितमतिप्रयत'कथमग्रेऽभिरक्षितुमभिधास्यति । प्रागेवेनमत्ययभयादिति । वायोर्यथार्थास्तुतिरपिभवत्यारोग्यायवलवर्णवृद्धयेवर्चस्वित्वायोपचयायच । ज्ञानोपपत्तयेपरमायु प्रकर्षायचेति ॥ १४ ॥

वार्योविद्के इस वाक्यको सुनकर मारीचि ऋषि बोले। जैसा आप कहतेहैं यदि वायु ऐसा ही है तो इस वायुके कहने और स्वरूप जाननेके लिये वैद्यकशास्त्रमें क्या प्रयोजन है अर्थात् बाह्यवायुका इस प्रकारका प्रस्ताव पदार्थविद्यामें होना चाहिये वैद्यकका सम्बन्ध इस प्रस्तावमें नहीं क्योंकि इस समय आयुर्वेदको आश्रय करके ही इस कथा (बात चीत) की प्रवृत्ति है। यह प्रश्न सुनकर वार्योविद् बोले कि यहां पर इस कथनका यह प्रयोजन है कि वैद्यजन पवनको अतिवेगसे बहता हुआ, अति कठोर, अतिशीघ्रकारी, और विनाशको करनेवाला जानलेवे ॥ १३ ॥ फिर शीघ्र ही उसके कोपसे होनेवाले अनिष्टोंसे बचानेके यत्नमें समर्थ हों यदि वैद्य पवनकी गतिसे

उसके विकार आदिको न समझेगा तो होनेवाले भयसे पहले ही रक्षा किसप्रकार करसकेगा। शुद्ध वायुका यथार्थ सेवन करनेमें आरोग्यताकी प्राप्ति, बल और वर्णकी वृद्धि होतीहै। तेजस्विता और पुष्टता प्राप्त हो और ज्ञानकी प्रतिपत्ति तथा आयुकी वृद्धि होतीहै ॥ १४ ॥

पित्तकी उष्माका वर्णन।

मारीचिरुवाच। अग्निरेवशरीरेपित्तान्तर्गत कुपिताकुपित शुभाशुभानिकरोति ॥

तद्यथा।

पक्तिमपक्तिंदर्शनमदर्शनंमात्रामात्रत्वमूष्मणःप्रकृतिविकृतिवर्णोऽशौर्य्यंभयक्रोधंहर्षमोहंप्रसादमित्येवमादीनिचापराणिद्वन्द्वादीनीति ॥ १५ ॥

मारीचि ऋषि कहनेलगे कि शरीरमें अग्नि ही पित्तमें रहकर अकुपित और कुपित होकर शुभ तथा अशुभको करतीहै। वह इसप्रकार है जैसे विपाक और अविपाक, दर्शन, अदर्शन, गर्मीको ठीक रखना या बेठीक रखना, प्रकृति या विकृति, वर्ण और अवर्ण, शूरता, अशूरता, ऐसे ही भय, क्रोध, हर्ष, मोह, प्रसन्नता आदि और भी दो दो हिस्सेमें करताहै अर्थात् कुपित अग्नि अशुभ और अकुपित शुभकारक होताहै ॥ १५ ॥

शरीरमे सोमकी प्रधानता।

तच्छ्रुत्वामारीचिवच काश्यपउवाच। सोमएवशरीरेश्लेष्मान्तर्गत कुपिताकुपित शुभाशुभानिकरोति।

तद्यथा।

दार्ढ्यंशैथिल्यमुपचयकार्श्यमुत्साहमालस्यंवृषताक्लीनताज्ञानमज्ञानबुद्धिमोहमेवमादीनिचापराणिद्वन्द्वादीनीति ॥ १६ ॥

इस प्रकार मारीचिके वाक्यको सुनकर काश्यप बोले कि सोम ही शरीरके कफमें रहकर विना कुपित हुआ शुभ और कुपित हुआ अशुभ करताहै। जैसा दृढता, शिथिलता, पुष्टता, कृशता, उत्साह आलस्य, पुरुषार्थता क्लीनता, ज्ञान अज्ञान, बुद्धि, मोह आदि अन्य कार्य भी प्रकृतिस्थ होनेसे शुभ और कुपित होनेपर अशुभ करताहै ॥ १६ ॥

पुनर्वसुका सिद्धांत ।

तच्छ्रुत्वाकाश्यपवचोभगवान्पुनर्वसुरात्रेयउवाच । सर्वएवभव-न्तःसम्यगाहुरन्यत्रैकान्तिकवचनात् ॥ सर्वएवखलुवातपित्त-श्लेष्मणःप्रकृतिभूता पुरुषमव्यापन्नेन्द्रियबलवर्णसुखोपपन्न-मायुषामहतोपपादयन्ति । सम्यगेवाचरिताधर्मार्थकामानि-श्रेयसेनमहतोपपादयतिपुरुषमिहचामुष्मिंश्चलोके । विकृ-तास्त्वेनंमहताविपर्ययेणोपपादयन्ति । ऋतवस्त्रयइवविकृति-मापन्नालोकमशुभेनोपघातकालेइत्येतदृषय सर्वएवानुमेनिरे वचनमात्रेयस्यभगवतोऽभिननन्दुश्चेति ॥ १७ ॥

यह काश्यपका वचन सुनकर भगवान् पुनर्वसु आत्रेयजी बोले कि आप सबने ही वात पित्त और कफके विषयमें ठीक कहा । यह तीनो (वात पित्तकफ) ही अपनी प्रकृति (स्वभाव, ठीक प्रमाण) मे स्थित हुए पुरुषकी इंद्रियोंको बलवान् करतेहैं और बल, वर्ण तथा सुखको उत्पन्न करतेहै । और दीर्घ आयुको देतेहै।जिसके प्रभावसे मनुष्य (धर्म अर्थ काम मोक्ष इन पुरुषार्थोंका साधन करसक्ता है अर्थात् इस लोक और परलोकका सुख प्राप्त कर सक्ताहै । और विकारको प्राप्तहुए यह तीनों ऊपर कहे हुए गुणासे विपरीत (दोषोंको) करतेहै । जैसे जाडा गर्मी, वर्षा यह तीन ऋतुभी विकारको प्राप्त हुई संसारमें प्रलय कालमें अशुभ करतीहै ऐसे ही यह वात, पित्त, कफ, तीनो शरीरमें विकारको प्राप्त होनेसे अशुभ करतेहै । इस प्रकार भगवान् आत्रेयके कहे वचनको सुनकर सब ऋषि आनन्दसे अनुमोदन करने लगे ॥ १७ ॥

भवतिचात्र ॥ तदात्रेयवचःश्रुत्वासर्वएवानुमेनिरे । ऋषयोऽभि-ननन्दुश्चयथेन्द्रवचनसुरा ॥ १८ ॥

जैसे इन्द्रके वचनको सुन सब देवता अनुमोदन करनेलगे ऐसे ही भगवान् आत्रेयके वचनको सुनकर सब ऋषि ठीककहा ऐसा कहकर प्रशंसा करनेलगे ॥ १८ ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

तत्रश्लोकौ । गुणाःषड्द्विविधोहेतुर्विविधकर्म्मतत्पुनः । वायो-श्चतुर्विधकर्म्मपृथक्चकफपित्तयोः ॥ १९ ॥ महर्षीणामतिर्या

यापुनर्वसुमतिश्चया । कलाकलीयेनातस्यनरसर्वसम्प्रकाशि-तम् ॥ इति ॥ २० ॥

निर्देशचतुष्कम् ।

अष्टीत्यादिवातकलाकलीयोऽध्याय समाप्त ।

अध्यायकी पूर्तिमें यह दो श्लोक हैं इस वातकलाकलीय नामके अध्यायमें वायुके ७ गुण, दोषकारके हेतु और अनेक प्रकारके वायुके कर्म, कुपित अकुपित भेदसे पित्त और कफके दो कर्म, वात पित्त कफ के सम्बन्ध ऋषियोंका मत, तथा पुनर्वसुजीका मत वर्णन किया गया है ॥ १९ २० ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालागरान्तर्गतैर्नेटदमाटनिवासि-वैद्यवाचनन प० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादाख्यभाषाटीकायां वातकलाकलीयो नाम द्वादशोऽध्याय ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्याय ।

अथात स्नेहाध्याय व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेय ॥

अब हम स्नेहाध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान आत्रेयजी कहनेलगे ।

अग्निवेशका प्रश्न ।

साङ्ख्यै सङ्ख्यातसङ्ख्येयै.सहासीन पुनर्वसुम् । जगद्धितार्थंपप्रच्छवह्निवेश सुसंशयम् ॥१॥ किंयोनय कतिस्नेहा केचस्नेहगुणा.पृथक् । कालानुपानेकेकस्यकतिकाश्चविचारणा ॥ २ ॥ कतिमात्रा कथंमानाकाचकेषूपदिश्यते । कश्चकेभ्योहित स्नेह प्रकर्ष स्नेहनेचक. ॥ ३ ॥ स्नेह्या केकेचनस्निग्धा स्निग्धातिस्निग्धलक्षणम् । किंपानात्प्रथमपीतेजीर्णेकिश्चहिताहितम् ॥४॥ केमृदुक्रूरकोष्ठा काव्यापद सिद्ध्यश्चका । अच्छेसंशोधनेचैवस्नेहेकावृत्तिरिष्यते ॥ ५ ॥ विचारणा केषुयोज्याविधिनाकेनतत्प्रभो । स्नेहस्यामितविज्ञानज्ञानमिच्छामिवेदितुम् ॥ ६ ॥

सारय शास्त्रके विख्यात और प्रसिद्ध २ ऋषियोंमें विराजमान पुनर्वसुजीसे सबोंके हितके लिये अग्निवेश अपने संशयको पूछनेलगे ॥१॥ हे प्रभो ! स्नेहके कारण कौन२ द्रव्य है । स्नेह कितने प्रकारके है । स्नेहोंके अलग२कौनसे गुण है । किस समय कौनसे स्नेहको पान करना चाहिये और उनके अनुपान क्या है । स्नेह कितने प्रकारके है विचारणा कितनी और कौन है । कितनी मात्रासे सेवन करना,इसका मान कैसा है । कैसा किसके लिये कहाहै । कौन स्नेह किसको हितकारक है सब स्नेहोंमें उत्तम स्नेह कौनसा है । किसको स्नेहन करना चाहिये किसको नहीं करना । स्निग्ध और अति-स्निग्धके क्या२ लक्षणहै । स्नेह पीनेसे पहले और स्नेहपीनेसे पीछे तथा स्नेहके जीर्ण होनेपर कौन क्रिया हित है और कौन अहितहै। मृदु कोष्ठ और क्रूर कोष्ठ कौन होतेहै । स्नेहपानके अयोगमें क्या खराबी होतीहै और उसका फल क्या है । अच्छस्नेह और संशोधन स्नेहमें क्या वर्ताव करना चाहिये।विचारणा स्नेह किस विधिसे किसको देना।हे अमितज्ञान ! स्नेहनके प्रकारोंको जाननेकी मेरी इच्छा है इसलिये कृपया स्नेहशास्त्रका विधान कीजिये ॥ २ ॥ ३ ॥ ४॥ ५ ॥ ६ ॥

पुनर्वसुका उत्तर ।

अथतत्संशयच्छेत्ताप्रत्युवाचपुनर्वसुः । स्नेहानांद्विविधासौम्य योनिःस्थावरजङ्गमा ॥ ७ ॥ तिलःपियालाभिषुकौविभीतक-श्चित्राभयैरण्डमधूकसर्षपाः । कुसुम्भबिल्वारुकमूलकातसीनि-कोचकाक्षोडकरञ्जशिग्रुकाः ॥ ८ ॥ स्नेहाश्रयाःस्थावरसंज्ञिता-स्तथास्युर्जाङ्गमामत्स्यमृगाःसपक्षिणः।तेषांदधिक्षीरघृतामिष-वसास्नेहेषुमज्जाचतथोपदिश्यते ॥ ९ ॥

अग्निवेशके इस प्रश्नको सुनकर इस संशयके दूर करनेवाले पुनर्वसुजी कहनेलगे । हे सौम्य ! स्नेहोंकी योनि (कारण) स्थावर और जंगम इन दो भेदोंसे दो प्रकारकी है ॥ ७ ॥ उनमें तिल, चिरौंजी पहाडों पर होनेवाले फलोंकी मींग, बहेडे, चित्रा (जमालगोटा या पहाडी एरंड),एरंड, महुवा, सरसों, कसूंभेके बीज, बिल्व, भिलावा, मूलीके बीज, अलसी निकोठक अखरोट, करंजेके बीज, सुहांजनेके बीज, यह सब स्थावर स्नेहोंके योनि है अर्थात् इनमेंसे जो तेलादि निकलतेहै वह स्थावर स्नेह है । ऐसे ही गौ, भैंस, बकरी आदि तथा मछली, मृग, पशु, पक्षियोंको जंगम स्नेहकी योनि कहतेहै इनके दही, दूध, घी, तथा मछली आदिके मांस, चरबी, और मज्जा जंगमस्नेह कहे जातेहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

रोग विशेषोंमें तैलोकी उत्कृष्टता ।

सर्वेषांतैलजातानांतिलतैलंविशिष्यते। बलार्थेस्नेहनेचाग्र्यमेरण्डन्तुविरेचने ॥ १० ॥ सर्पिस्तैलंवसामज्जासर्वस्नेहोत्तमामताः। एष्वप्यश्चैवोत्तमंसर्पिःसंस्कारस्यानुवर्त्तनात् ॥ ११ ॥

चिकनाईके लिये मर्दन आदिसे बल बढानेको सब प्रकारके तेलोंमे तिलोंका तेल उत्तम होताहै। और जुलाब करानेके लिये एरंडतैल उत्तम होताहै ॥ १० ॥ सब प्रकारके स्नेहोंमें-घी, तेल, चरबी, मज्जा यह उत्तम होतेहैं। इन सबमें घी बहुत उत्तम है क्योंकि इसको यदि औषधियोंसे सिद्ध कियाजाय तो यह उन औषधियोंके गुणको भी करताहै और अपना गुण भी करताहै ॥ ११ ॥

घृतकेगुण ।

घृतंपित्तानिलहरंरसशुक्रौजसांहितम् ।
निर्वापणंमृदुकरंस्वरवर्णप्रसादनम् ॥ १२ ॥

घृत-बात और पित्तको नष्ट करताहै। रस, शुक्र, ओज, इनको बढाताहै, अग्निको मंदकरनेवाला, शरीरको मृदुकारक, स्वर तथा वर्णको प्रसन्न अर्थात् उज्ज्वल करनेवाला है ॥ १२ ॥

तैलके गुण ।

मारुतघ्नंनचश्लेष्मवर्द्धनंबलवर्द्धनम् ।
त्वच्यमुष्णंस्थिरकरंतैलंयोनिविशोधनम् ॥ १३ ॥

तैल-बातनाशक है, कफको बढाता नहीं, बलको बढानेवाला, और त्वचाका उत्तम बनानेवाला, उष्ण दृढकारक, और योनिको शुद्ध करताहै ॥ १३ ॥

वसाके गुण ।

विद्धभग्नाहतभ्रष्टयोनिकर्णशिरोरुजि ।
पौरुषोपचयेस्नेहेव्यायामेचेष्यतेवसा ॥ १४ ॥

चरबी-छिदेहुए और कटेहुएमें हित करतीहै । योनिभ्रंश, कानका शूल, शिरपीडा, इनको दूर करतीहै । तथा पुरुषार्थकी वृद्धिकारक चिकना करनेवाली कसरतमें हितकारी है ॥ १४ ॥

मज्जाके गुण ।

बलशुक्ररसश्लेष्ममेदोमज्जाविवर्द्धनः ।
मज्जाविशेषतोऽस्थ्नांचबलकृत्स्नेहनेहितः ॥ १५ ॥

मज्जा-बल, वीर्य, रस, कफ, मेद, मज्जा, इनको बढावांहै और विशेषतासे हड्डियोंमें वर देतीहै और चिकनाई करनेमें हित है ॥ १५ ॥

स्नेहपानका समय।

सर्पिश्शरादिपातव्यवसामज्जान्त्रमाधवे । तैलप्राट्पिनात्युष्णं शीतेस्नेहपिबेन्नर. ॥ १६ ॥ वातपित्ताधिकेरात्रावुष्णेचापिपिवेन्नरः । श्लेष्माधिकेदिवाशीतेपिबेच्चामलभास्करे ॥ १७ ॥ अत्युष्णेवादिवापीतेवातपित्ताधिकेनच । मूर्च्छापिपासामुन्मादंकामलावासमीरयेत् ॥ १८ ॥

घीका शरद ऋतुमे,चर्वी और मज्जाका वसंतमें, तेलका वर्षामे उपयोग करे । और जिस कालमें अधिक गर्मी तथा अधिक सर्दी न हो उस समय घर्ड्तैलको पावे॥१६॥ वात और पित्तकी अधिकतामें तथा गर्म ऋतुमें रात्रिके समय स्नेहपान करे। कफकी अधिकतामें और शीतकालमे निर्मल आकाश होनेपर दिनमें स्नेहपान करे ॥१७॥वात पित्त की अधिकतामें अतिगर्मीके समयमें दिनमें स्नेहपान करनेसे-मूर्छा, प्यास, उन्माद, और कामलारोग होतेहैं ॥ १८ ॥

शीतेरात्रौपिबेत्स्नेहंनर श्लेष्माधिकोऽपिवा ।
आनाहमरुचिंशूलंपाण्डुतावासमृच्छति ॥ १९ ॥

कफकी अधिकतामें और शीतकालमें रात्रिके समय स्नेहपान करनेसे अफारा, अरुचि, शूल, पाडुरोग, यह रोग होतेहैं ॥ १९ ॥

स्नेहपर अनुपान ।

जलमुष्णघृतेपेययूपस्तैलेऽनुशस्यते ।
वसामज्जोऽस्तुमण्ड स्यात्सर्वेपूष्णमथाम्बुवा ॥ २० ॥

घृतपान करके ऊपरसे गर्म जल पीना चाहिये । और तेल पीकर ऊपरसे मासरस पीना चाहिये । वसा और मज्जाके पीछे माड पीना चाहिये । अथवा सब स्नेहोंके पीछे गर्म जल पीवे ॥ २० ॥

स्नेहकी विचारणा ।

ओदनश्चविलेपीचरसोमांसंपयोदधि । यवागू सूपशाकौचयूप काम्बलिक खड ॥ २१ ॥ सक्तवस्तिलपिष्टञ्चमद्यलेहास्तथै-

वच । भक्ष्यनभ्यञ्जनवस्तिस्तथाचोत्तरवस्तय ॥ २२ ॥ गण्डूप कर्णतैलञ्चनस्त कर्णाक्षितर्पणम् । चतुर्विंशतिरित्येता. स्नेहस्यप्रविचारणाः ॥ २३ ॥

भात आदि अन्न, गोड़, मासरस, मास, दूध, दही, यवागू सूप, साग, कावलिकयूप, पट्यूप, सत्तू, तिलपिष्टक, सुरा, अवलेह, सब प्रकारके भोजन, मालिश, वस्ति, उत्तरवस्ति, गडूष, कानकी औषधी डालना, नस्य कर्म, कानका तर्पण, नेत्रतर्पण, इन भेदोंमें स्नेहकी चौवीस प्रकारकी विचारणा है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

असंयुक्तस्नेहका वर्णन ।

अच्छपेयस्तुय स्नेहोनतमाहुर्विचारणाम् ।
स्नेहस्यसभिषग्दष्टःकल्प प्राथमकल्पिक ॥ २४ ॥

जो स्नेह किसी अन्य द्रव्यसे न मिला हो उसको विचारण नहीं कहते उसका नाम अच्छस्नेह है। और किसी अन्य द्रव्यके योगसे स्नेहकी विचारणा कहतेहैं । अच्छस्नेह अर्थात् स्वच्छस्नेहको वैद्य लोग स्नेहका प्रथम कल्प मानतेहैं ॥ २४ ॥

स्नेहकी चौसठ विचारणा ।

रसैश्चोपहतःस्नेह समासव्यासयोगिभि । षड्भिस्त्रिषष्टिधासंख्या.प्राप्नोत्येकश्चकेवल ॥ २५ ॥ एवमेपाचतु.षष्टि स्नेहाना प्रविचारणा । सात्म्यर्तुव्याधिपुरुपान्प्रयोज्याजानताभवेत् ॥ २६ ॥

मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय, इन छ रसोंके मिलाप, विकल्प और अंशयोगसे रस ६३ प्रकारके होते हैं इन तिरसठोंके सयोग भेदसे स्नेह भी ६३ प्रकारके होतेहैं । और एक अच्छस्नेह (केवल स्नेहमात्र) है इस प्रकार रस सयोगभेदसे ६३ और विना किसी सयोगसे केवल एक यह सब मिलाकर स्नेहकी ६४ प्रकारकी विचारणा हुई, स्नेहके प्रकरण और प्रयोगको जाननेवाला वैद्य शरीरका सात्म्य,ऋतु भेद, व्याधि, मनुष्यका बलाबल विचारकर स्नेहका प्रयोग करे॥२५॥२६॥

मात्राओंका वर्णन ।

अहोरात्रमह कृत्स्नमर्धाहश्चप्रतीक्ष्यते। प्रधानामध्यमाह्रस्वास्नेहमात्राजराप्रति ॥ २७ ॥ इतितिस्त्र समुद्दिष्टामात्रा स्नेहस्य मानत । तासाप्रयोगान्वक्ष्यामिपुरुषपुरुषप्रति ॥ २८ ॥

---

(१) सुश्रुतके मतमें स्नेहके ६३ भेद जानने ।

प्रधानमात्रा मध्यम मात्रा ह्रस्वमात्रा इन भेदोंसे स्नेहोंकी मात्रा (खुराक) तीनप्रकारकी होतीहै । जो मात्रा एकदिन रातमें परिपाकको प्राप्त हो उसको प्रधान मात्रा कहतेहैं । जो केवल दिन में ही पाचन होजाय उसको मध्यम मात्रा कहतेहैं । जो आधे दिनमें ही पाचन होजाय उसको ह्रस्वमात्रा कहतेहैं । अब उन स्नेहकी मात्राओंको पुरुषभेदसे कथन करतेहैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

उत्तममात्राके योग्य पुरुष ।

प्रभूतस्नेहनित्यायेक्षुत्पिपासासहानराः । पावकश्चोत्तमबलोयेपायेचोत्तमाबले ॥ २९ ॥ गुल्मिनः सर्पदष्टाश्चविसर्पोपहताश्चये । उन्मत्ताःकृच्छ्रमत्राश्चगाढवर्चसएवच ॥ ३० ॥

जो मनुष्य स्नेहपीनेके अभ्यासवाले हों, जो भूख प्यासके सहन करनेकी शक्तिवाले हों, जिनकी जठराग्नि उत्तम बलवान् हो, जो शरीरमें बलिष्ठ हो, गुल्मरोगवाला, सांपका काटाहुआ, विसर्परोगवाला, उन्मत्त, मूत्रकृच्छ्रयुक्त, और जिसका मल कठोर हो, इन उपरोक्त मनुष्योंको स्नेहकी प्रधान मात्रा देनी उचित है ॥ २९ ॥ ३० ॥

प्रधानमात्राके गुण ।

पिबेयुरुत्तमामात्रातस्याःपानेगुणाञ्छृणु । विकाराञ्शमयत्येपा शीघ्रसम्यक्प्रयोजिता ॥ ३१ ॥ दोषानुकर्षिणीमात्रासर्वमार्गानुसारिणी । बल्यापुनर्नवकरीशरीरेन्द्रियचेतसाम् ॥ ३२ ॥

इन मनुष्योंको प्रधान मात्रासे स्नेह पान करानेसे जो गुण होतेहैं सो सुनो । इस प्रधानमात्राका विधिसे प्रयोग किया हुआ सब विकारोंको शीघ्र नष्ट करताहै । बढेहुए दोषोंको खींचकर निकालदेताहै । शरीरके सब छिद्रोंमें स्नेहका प्रवेश होजाताहै शरीरका बल बढताहै और शरीर मन, इंद्रियें इनमें नवीनता आजाती है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

मध्यममात्राके योग्य पुरुष ।

अरुष्कस्फोटपीडकाकण्डुपामाभिरर्दिता । कुष्ठिनश्चप्रमेहाश्च वातशोणितकाश्चये ॥ ३३ ॥ नातिबह्वाशिनश्चैवमृदुकोष्ठास्तथैवच । पिबेयुर्मध्यमामात्रामध्यमाश्चापियेबले ॥ ३४ ॥ मात्रैपामन्दविभ्रंशानचातिबलहारिणी । सुखेनचस्नेहयतिशोधनार्थेचयुज्यते ॥ ३५ ॥

और पिटिका, विस्फोटक, अरुंपिका, खाज, पामा, कुष्ठ, प्रमेह, वातरक्त, इन रोगोंसे पीडितोंको तथा सामान्य आहार करनेवालोंको, मृदुकोष्ठयुक्तोंको और साधारण बलवालोंको स्नेहकी मध्यम मात्रा देनी चाहिये क्योंकि मध्यम मात्रा न तो अधिक विरेचन करतीहै और न शरीरमें अधिक शिथिलता लातीहै। यह मात्रा विना किसी तकलीफके स्नेहन करनेवाली है और शोधनके लिये प्रयुक्त कीजातीहै ॥३३॥ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

हृस्वमात्राके योग्य पुरुष।

येतुवृद्धाश्चबालाश्चसुकुमारा सुखोचिता.। रिक्तकोष्ठत्वमहितं येषामन्दाग्नयश्चये ॥ ३६ ॥ ज्वरातीसारकासश्चयेषाचिरसमुत्थित । स्नेहमात्रापिबेयुस्तेहस्वायेचावरावले ॥ ३७ ॥ परिहारेसुखाचैषामात्रास्नेहनबृंहणी । वृष्याबल्यानिराबाधाचिरश्चाप्यनुवर्त्तने ॥ ३८ ॥

इसीप्रकार अतिवृद्ध, बालक, सुकुमार,सुखमें रहनेवाले, जिनका कोष्ठ अहितकारी विरेचनसे खाली हो, मंदाग्निवाले, ज्वर, अतिसार, खांसी, यह जिनको बहुत दिनासे हों, जो बलहीन है,इन सबको स्नेहकी हृस्वमात्रा पिलानी चाहिये। यह मात्रा इन मनुष्योंको सुख देनेवाली है, अंतमें कष्ट नहीं देती शरीरको चिकना करतीहै। वीर्य और बलको बढातीहै। बहुत काल सेवन करनेसे भी कोई कष्ट नहीं देती (इस समय हृस्वमात्रा ही बहुतसे रोगोंको हितकर होतीहै) ॥ ३६ ॥ ३७॥ ३८ ॥

घृतपानके योग्य व्यक्ति।

वातपित्तप्रकृतयोवातपित्तविकारिण । चक्षु कामा क्षता क्षीणावृद्धाबालास्तथाबला ॥ ३९॥ आयु प्रकर्षकामाश्चबलवर्णस्वरार्थिन । पुष्टिकामा प्रजाकामा.सौकुमार्य्यार्थिनश्चये ॥ ४० ॥ दीप्त्योज स्मृतिमेधाग्निबुद्धीन्द्रियबलार्थिन.। पिबेयु सर्पिरार्त्ताश्चदाहशस्त्रविषाग्निभि ॥ ४१ ॥

वात और पित्तकी प्रकृतिवालेको वात पित्त के विकारवालेको दृष्टिकी शक्तिकी इच्छावालेको, क्षत और क्षीणको, वृद्धको बालकको, दुर्बलको, आयुकी इच्छावालेको, बल वर्ण और स्वरके उत्तम करनेको, पुष्टताकी इच्छावालेको, सन्तानकी कामनावालेको, सुकुमारताकी इच्छावालेको, कांति, ओज, स्मरणशक्ति [illegible] अग्नि,बुद्धि

और इंद्रियाके बलकी इच्छावालेको, दाह शस्त्र, विष, अग्नि, इनसे पीडितको घृत-मान करना बहुत उत्तम है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

तैलपानके योग्य व्यक्ति ।

प्रवृद्धश्लेष्ममेदस्काश्चलस्थूलगलोदरा । वातव्याधिभिराविष्टावातप्रकृतयश्चये ॥ ४२ ॥ बलतनुत्वंलघुतांदृढतास्थिरगात्रताम् । स्निग्धश्लक्ष्णतनुत्वक्तायेचकांक्षन्तिदेहिन. ॥ ४३ ॥ कृमिकोष्ठा क्रूरकोष्ठास्तथानाडीभिरर्दिता । पिबेयु.शीतले कालेतैलंतैलोचिताश्चये ॥ ४४ ॥

कफ और चर्बी जिनकी बढीहुई हो, जिनका गला और पेट स्थूल हो तथा हिलता हो, जो वातव्याधिसे पीडित हो, वातके स्वभाववाले हो, तथा बल,तनुता, हलकापन, दृढता, अंगाकी मजबूती, चिकनाहट, श्लक्ष्णतायुक्त शरीर और त्वचाको करना चाहते हों, और जिनके कोष्ठमें कृमि हो तथा कठिन कोष्ठ वाले, नासूर तथा नाडीरोगसे पीडित, और भी जो तैलयोग्य मनुष्य हो अथवा तैलपान या तैलमर्दनके अभ्यास-वाले हो उनको शीतकालमें उचित मात्रासे तैलपान करना हितकारी है ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

वसापानके योग्यपुरुष ।

वातातपसहायेचरूक्षाभाराध्वकर्षिता । संशुष्करेतोरुधिरानिष्पीतकफमेदस. ॥ ४५ ॥ अस्थिसन्धिशिरास्नायुमर्मकोष्ठमहारुज' । बलवान्मारुतोयेषांस्रोतांस्यावृत्यतिष्ठति ॥ ४६ ॥ महच्चाग्निबलंयेषांवसासात्म्याश्चयेनरा. । तेषांस्नेहयितव्यानां वसापानंविधीयते ॥ ४७ ॥

जो मनुष्य वायु और धूप सहसकते हों, रूक्ष शरीरवाले, भार उठाने तथा मार्ग चलनेसे कृश हुए हो, जिनका वीर्य और रक्त क्षीण होगयाहो, जिनके शरीरसेंसे कफ और मेद नष्ट होचुका हो, जिनके अस्थि, सन्धि, शिरा स्नायु, मर्मस्थान तथा कोष्ठ पीडायुक्त हो, । जिनके शरीरके छिद्रोंको बढे हुए वायुने आवृत करलियाहो जिनकी अग्नि और बल उत्तम हो तथा जो चर्बी पीनेके अभ्यासवाले हो । उन स्नेहयोग्य मनुष्योंको वसापान करना चाहिये ॥ ४५ ॥ ४६ ४७ ॥

मज्जापानके योग्य पुरुष।

दीप्ताग्नय क्लेशसहाघस्मराःस्नेहसेविन.।
वातार्त्ता क्रूरकोष्ठाश्चस्नेह्यामज्जानमाप्नुयु ॥ ४८॥

जिनकी अग्नि बलवान हो, जो क्लेश सहसकते हों, बहुत खाते हों, स्नेहके अभ्यास-वाले हों, वातसे पीडित हों, कठिन कोष्ठवाले हों, स्नेहन योग्य हों ऐसे मनुष्योंको मज्जा का प्रयोग करावे ॥ ४८॥

स्नेहपानकी अवधि।

येभ्योयेभ्योहितोयोय स्नेह सपरिकीर्तित.।
स्नेहनस्यप्रकर्षौतुसप्तरात्रत्रिरात्रकौ ॥ ४९ ॥

जिन मनुष्योंको जो जो स्नेह हितकारी हो उनका कथन कियागया है। स्नेहकर्ममें स्नेहकी अधिकता होनेसे या न्यूनता होनेसे सात दिन या तीन दिनके अन्तरमे स्नेहपान करावे ॥ ४९ ॥

स्नेहकर्मके योग्य पुरुष।

स्वेद्या'शोधयितव्याश्चरूक्षवातविकारिण।
व्यायाममद्यस्त्रीनित्या स्नेह्या.स्युर्येचचिन्तका ॥ ५० ॥

रूक्ष वायुके व्याधिवालोंको पसीना लेवे, तथा स्वेदन करे एव कसरत करनेवाले मद्यपान करनेवाले, नित्य स्त्रीगमन करनेवाले, और जिनको शोचने विचारनेका काम अधिक रहता हो वह मनुष्य स्नेहन करने योग्य है ॥ ५० ॥

स्नेहकर्मके अयोग्य व्यक्ति।

संशोधनादृतेयेपारूक्षणंसप्रवक्ष्यते। नतेपास्नेहनशस्तमुत्सन्न कफमेदसाम् ॥५१॥ अभिष्यन्दाननगुदानित्यमन्दाग्नयश्चये। तृषामूर्च्छापरीताश्चगर्भिण्यस्तालुशोषिण. ॥ ५२ ॥ अन्नद्वि पश्छर्दयन्तोजठरामगरार्दिता'। दुर्बलाश्चप्रतान्ताश्चस्नेहग्ला-नामदातुरा ॥ ५३ ॥ नस्नेह्यावर्त्तमानेपुननस्तोवस्तिकर्म्मसु। स्नेहपानात्प्रजायन्तेतेपारोगा सुदारुणा ॥ ५४ ॥

जिन मनुष्योंको संशोधन नहीं करना और रूक्षण करना है अर्थात् जो मनुष्य रूक्षण करनेके योग्य है उनको स्नेहपान कराना हितकर नहीं है। बढेहुए कफवालोंको और मेदवालोंको भी स्नेहन नहीं करना। एव जिनके मुखसे और गुदासे स्राव होताहै,

गुड, इक्षुरस, दहीका पानी, दूध, अथवा मथा दही, खीर, कृसरा, घी, काश्मरीके फलोंका काथ, त्रिफलेका काथ, मुनक्काका काथ, पीलूका काथ, अथवा गर्म जल, इनके पीनेसे ही मृदुकोठेवालेको विरेचन होजाताहै । परंतु क्रूर कोठेवालेको इन वस्तुओंसे विरेचन नहीं होता क्योंकि क्रूर कोष्ठवालेकी ग्रहणीकला वातप्रधान होतीहै इसलिये कोष्ठ क्रूरता और वातजन्य रूक्षता होनेसे विरेचन नहीं होता ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

मृदुकोष्ठके लक्षण ।

उदीर्णपित्ताल्पकफाग्रहणीमन्दमारुता ।
मृदुकोष्ठस्यतस्मात्सलुविरेच्योनरःस्मृतः ॥ ६७ ॥

जिसकी ग्रहणीकलामे पित्त प्रधान है और कफ अल्प तथा वायु मंद है उसका कोष्ठ मृदु (नरम) होताहै । इसलिये उसको सहजमें ही विरेचन होसक्ताहै ॥ ६७ ॥

स्नेहयुक्त अग्निका तीव्रत्व ।

उदीर्णपित्ताग्रहणीयस्यचाग्निबलंमहत् । भस्मीभवतितस्याशु स्नेहः पीतोऽग्नितेजसा ॥ ६८॥ सजग्ध्वास्नेहमात्रातामोजः प्रक्षालयन्वली । स्नेहाग्निरुत्तमातृष्णासोपसर्गामुदीरयेत् ॥ ६९ ॥ घालंस्नेहसमृद्धस्यशमायान्नसुगुर्वपि। सचेत्सुशीतसलिलं ना सादयतिदह्यते॥७०॥यथैवाशीविषः कक्षमध्यगः स्वविषाग्निना ७१॥

जिस मनुष्यकी ग्रहणीकलामे पित्त बहुत बढाहुआ है और अग्निका बल अधिक है वह मनुष्य यदि स्नेह पीवे तो अग्निके बलसे वह स्नेह भस्म होजाताहै । फिर वह बढाहुआ अग्नि स्नेहका जलाकर शरीरके ओजनेजको दहन करने लगताहै और घोर प्यासको प्रगट करताहै, उस समय स्नेहसे बढे हुए अग्निमें भारी अन्न भी बहुत नहीं होता अर्थात् उस भस्मकाग्निमें यदि भारी भोजन और शीतल जल न दिया जाय तो वह शरीरकी धातुओंको ऐसे दहन करदेताहै जैसे कक्षमें स्थित आशीविष अपने विषरूप अग्निसे दहन करदेताहै ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अजीर्ण स्नेहपानमें उपाय ।

अजीर्णेयदितुस्नेहेतृष्णास्याच्छर्दयेद्भिषक् ॥ शीतोदकंपुनः पीत्वाभुक्त्वारूक्षान्नमुल्लिखेत् ॥७२ ॥ नसर्पिः केवलं पि मेविशेषतः ॥ सर्वंह्यनुचरेद्देहहत्वासंज्ञाश्चमारयेत्

जब तक स्नेह जीर्ण न हुआ हो और तृषा आदि उपद्रव न लगते हो तब तक शीघ्र उद्वर्तन करादेवे और शीतल जल पिलावे। तथा रूक्ष भोजन करावे फिर उद्वर्तन करावे॥ ७२॥ केवल पित्तमें और आमसहित पित्तमें विशेष करके घृतपान न करे, क्योंकि वह स्नेह सर्वशरीरमें व्याप्त होकर संज्ञाको नष्ट करदेताहै और मृत्यु तक करदेताहै॥ ७३॥

स्नेहभ्रमके उपद्रव।

तन्द्रासोत्क्लेशआनाहोज्वरःस्तम्भोविसंज्ञता। कोष्ठानिकण्डूःपाण्डुत्वशोफार्शांस्यरुचिस्तृषा। जठरंग्रहणीदोष स्तैमित्यंवाक्यनिग्रहः॥७४॥ शूलमामप्रदोषाश्चजायन्तेस्नेहविभ्रमात्। तत्राप्युल्लेखनंशस्तंस्वेदःकालप्रतीक्षणम्॥७५॥ प्रतिप्रत्तिर्व्याधिबलंबुद्धास्रंसनमेवच। तक्रारिष्टप्रयोगश्चरूक्षपानान्नसेवनम्॥ मूत्राणांत्रिफलायाश्चस्नेहव्यापत्तिभेषजम्॥ ॥ ७६॥ अकालेचाहितश्चैवमात्रयानचयोजितः॥ ७७॥

स्नेहपानमें कुपथ्य होनेसे–तन्द्रा, उत्क्लेश, अफारा, ज्वर, स्तंभ, बेहोशी, कुष्ठ, खुजली, शोथ, अर्श, अरुचि, प्यास, उदररोग, ग्रहणीदोष, देहमें गीलापनसा, वाणीका स्तंभन होना, शूल, आमदोष यह उपद्रव होतेहैं। यहां पर भी वमन कराना अथवा स्वेद स्नेह होय तो जीर्ण होनेकी प्रतीक्षा करना और व्याधिका बलाबल विचारकर दोषोंको निकाला तथा तक्र, अरिष्ट, रूक्ष अन्न पान तथा गोमूत्र, वा त्रिफलाका सेवन करना हितकारी है बिना समय अथवा अहितकारी या अतिमात्रासे स्नेहपान करनेसे अथवा स्नेहपानके मिथ्या योग होनेसे स्नेहव्यापत्ति (स्नेहसे प्रगट रोग) होतेहैं॥ ७४-७७॥

स्नेहपानमें विरेचनविधि।

स्नेहोमिथ्योपचाराच्चव्यापद्येतातिसेवितः। स्नेहात्प्रस्कन्दनोजन्तुस्त्रिरात्रोपरतःपिबेत्॥ ७८॥ स्नेहवद्द्रवमुष्णञ्चत्र्यहं भुक्त्वारसौदनम्। एकाहोपरतस्तद्वद्भुक्त्वाप्रच्छर्दनंपिबेत्॥ ७९॥

बिना विधि स्नेहपानसे यदि रोगादि होय तो तीन दिन स्नानकर (पतला और मांसरस तथा अन्न भोजन करके फिर तीन दिन पहले स्नेहको दूर और गरम द्रव...

मिलाकर पीवे । अथवा वमन करादेवे और एक दिन ठहर कर फिर स्नेह पीवे । संशोधन स्नेह पीकर जैसे विरेचनके दिन गर्म जल आदि पीतेहैं वैसा उपचार करे । ७८ ॥ ७९ ॥

स्यात्तुसंशोधनार्थायवृत्तिः स्नेहेविरिक्तिवत् । स्नेहद्विष स्नेहनित्यामृदुकोष्ठाश्चयेनराः ॥ क्लेशासहामद्यनित्यास्तेपामिष्टाविचारणा ॥ ८० ॥ लावनैत्तिरिमायूरहंसवाराहकौक्कुटाः ॥ ८१ ॥ गव्यजोरभ्रमात्स्याश्चरसाः स्युस्नेहनेहिताः ॥ ८२ ॥

जिनको स्नेहपानमें द्वेष हो, जो सर्वदा स्नेह पीताहो, जो मृदुकोष्ठवाला हो, जो क्लेशको सहन करनेवाला हो, जो नित्य मद्य पीताहो, इनको विचारणास्नेह (किसी रसआदि योगसे) पानकरना चाहिये । जैसे मांसके पर गौके दूध अथवा लवा, तीतर, मोर, मकर, मुरगा, बकरी, मेढा, मछली इनके मांसरसके संयोगसे स्नेहपान करावे ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

स्नेहमें मिलानेयोग्य यूप । और यूपके द्रव्य ।

यवकोलकुलत्थाश्चस्नेहाः सगुडशर्करा ॥
दाडिमदधिसव्योपरससयोगसंग्रहः ।
स्नेहयन्तितिलाः पूर्वंजग्धाः सस्नेहफाणिताः ॥ ८३ ॥

और जो, बेर, कुलथी इनके यूप, । गुड, खांड, अनारका रस, दही, और त्रिकुटा इनके योगमें स्नेहपान करावे, इस प्रकार स्नेहके योगका संग्रह कहाहै । तिल, स्नेह, फाणित, इनको मिलाकर भोजनसे पहले खान करे तो शरीरको चिकना करतेहैं ॥ ८३ ॥

कृशराश्चबहुस्नेहास्तिलकाम्बलिकास्तथा । फाणितंशृङ्गवेरश्चतैलञ्चसुरयासह ॥ ८४ ॥ पिबेद्रूक्षोभृष्टैर्मांसैर्जीर्णेऽस्मिन्याञ्च भोजनम् । तैलसुरायामण्डेनवसामज्जानमेववा ॥ ८५ ॥ पिबेत्सफाणितक्षीरेनरः स्निग्धनिवारिकः । धारोष्णस्नेहसंयुक्तपीत्वासशर्करंपय. ॥ ८६ ॥

खिचडी तिल काम्बलिक यूपमें स्नेहको साथ सेवन करनेसे शरीर चिकना होताहै । फाणित, सोंठ तेल, सुरा इनको मिलाकर पीवे, जीर्ण होनेपर यूप और मांसरस-

से भोजन करे तो रूक्ष शरीर भी स्निग्ध होय । वातप्रधान मनुष्य वारुणीमण्डके साथ तैल मिलाके पीवे अथवा केवल वसा और मज्जाको पानकरे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ अथवा फाणितके साथ दूध पीनेसे वातप्रधान मनुष्यका शरीर चिकना होताहै । अथवा धारोष्णदूध, घृत और खाड मिलाके पीवे ॥ ८६ ॥

स्निग्धकरना ।

नरःस्निह्यतिपीत्वात्वासरंदध्न सफाणितम् । पाञ्चप्रसृतिकींपेयां पायसोमाषमिश्रकः ॥ ८७ ॥ क्षीरसिद्धोवहुस्नेहःस्नेहयेद-चिरान्नरम् । सर्पिस्तैलवसामज्जातण्डुलप्रसृते कृता ॥ ८८ ॥ पाञ्चप्रसृतिकींपेयापेयास्नेहनमिच्छता । ग्राम्यानूपोदकमांसं गुडदधिपयस्तिलान् ॥ ८९ ॥ कुष्ठीशोपीप्रमेहीचस्नेहनेनप्रयो-जयेत् । स्नेहैर्यथास्वतान्सिद्धैःस्नेहयेदविकारिभिः ॥ ९० ॥

अथवा दहीकी मलाई और फाणितके पीनेसे मनुष्य स्निग्ध होजाताहै । अथवा आगे कहीहुई पाच प्रसृतिपेया या दूधमें सिद्ध कीहुई उडदोंकी खीर अत्यंत चिकनी होनेसे मनुष्यको शीघ्र स्निग्ध करदेतीहै । घी, तेल, वसा, मज्जा और चावलोंको दो२ छटाक लेकर इकट्ठेकर पकावे इसको पाचप्रसृतिकी पेया कहतेहैं अपने शरीरको चिकना करनेकी इच्छाकरनेवाला इस पेयाको पीवे । कोढी, शोषवाला, प्रमेहरोगी, स्नेहनके लिये ग्राम्य और अनूप सचारी जीवोंके मासरस तथा जल-सचारी मास अथवा गुड, दही, दूध, और तिलोंका प्रयोग न करे क्योंकि यह इनके रोगोंको, बढातेहैं एव विकाररहित मनुष्योंको विकाररहित अनुकूल रचित द्रव्योंसे सिद्धकर स्नेहपान करावे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥

पिप्पलीभिर्हरीतक्यासिद्धैस्त्रिफलयापिवा । द्राक्षामलकयूषा-भ्यांदध्नाचाम्लेनसाधयेत् ॥ ९१ ॥

उनको-पीपर, हरड, और त्रिफलाके साथ सिद्ध कर अथवा आवले और दाखोंके रस या काजीके साथ सिद्ध कर स्नेह्यको युक्तकर स्नेहपान करावे तो मनुष्य स्निग्ध हो ॥ ९१ ॥

व्योषगर्भंभिषक्स्नेहंपीत्वास्निह्यतितन्नरः । यवकोलकुलत्थाना रसा क्षीरसुरादधि ॥ ९२ ॥ क्षीरं सर्पिश्चतत्सिद्धंस्नेहनीयघृतो-त्तमम् । तैलमज्जावसासर्पिर्बदरत्रिफलारसैः ॥ ९३ ॥ योनि

स्वेदनके भेद ।

व्याधौशीतेशरीरेचमहान्स्वेदोमहाबले ।
दुर्बलेदुर्बलः स्वेदोमध्यमेमध्यमोहितः ॥ ५ ॥

जब रोगसे शरीर शीतल पडजाय उसमें गर्मी रोमसमगसे न आती हो अथवा शीत आदिसे शरीर अकडजाय तो अवश्य स्वेदन करना चाहिये। यदि व्याधि घर यती हो तो स्वेद भी वैसा ही अधिक घरवाला देना चाहिये। दुर्बल रोगमें दुर्बल स्वेद करना और मध्यबल रोगमें स्वेद भी मध्यम ही करना चाहिये ॥ ५ ॥

रोगानुसार स्वेदनविधि ।

वातश्लेष्मणिवातेवाकफेवास्वेदइष्यते ।
स्निग्धरूक्षस्तथास्निग्धोऽरूक्षश्चाप्युपकल्पितः ॥ ६ ॥

वात कफ की व्याधिमें स्निग्ध रूक्ष, स्वेद करना चाहिये वातव्याधिमें स्निग्ध स्वेद करना चाहिये। और कफकी व्याधिमें रूक्ष स्वेद करना चाहिये ॥ ६ ॥

आमाशयगतेवातेकफेपक्काशयाश्रिते ।
रूक्षपूर्वोहितःस्वेदःस्नेहपूर्वस्तथैवच ॥ ७ ॥

वात आमाशयमें प्राप्त हो तो पहले रूक्ष फिर स्निग्ध स्वेद करे क्योंकि आमाशय कफका स्थान होता है। इसी प्रकार यदि कफ पक्काशयमें हो तो पहले स्निग्ध स्वेद करके फिर रूक्ष स्वेद करे ॥ ७ ॥

स्वेदनके अयोग्य अंग ।

वृषणौहृदयंदृष्टीस्वेदयेन्मृदुनैववा ।
मध्यमंवक्षणौशेषमङ्गावयवमिष्टतः ॥ ८ ॥

अण्डकोश हृदय और नेत्रोंमें स्वेदन करना उचित नहीं, यदि किसी कारणसे आवश्यकता भी हो तो मृदु स्वेद करे। और वंक्षणमें स्वेद करना हो तो मध्यम स्वेद करे। किन्तु अन्य अंगोंमें जैसा उचित हो वैसा स्वेदन करे ॥ ८ ॥

नेत्रमें स्वेदन विधि ।

शुद्धवर्त्रक्तकैःपिण्डयागोधूमानामथापिवा ।
पद्मोत्पलपलाशैर्वास्वेद्यःसंवृत्यचक्षुषी ॥ ९ ॥

शुद्ध स्वच्छ नरम वस्त्रसे या गेहूंके आटेके पिण्डसे अथवा कमलके पत्ते या अन्य कमलादिकोंके पत्तोंसे नेत्रोंको ढककर फिर आंखोंमें स्वेद करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि नेत्रोंमें स्वेद करनेसे गर्मी न पहुंचनी चाहिये ॥ ९ ॥

मुक्तावलीभिःशीताभि शीतलैर्भाजनैरपि ।
जलार्द्रैर्जलजैर्हस्तै स्विद्यतोहृदयस्पृशेत् ॥ १० ॥

मोतियोंकी माला, शीतल पात्र, पानीमें भिगोया हुआ कमलविशेष, अथवा शीतल हाथ स्वेदन योग्य मनुष्यके हृदय पर रखना चाहिये ॥ १० ॥

शीतशूलव्युपरमेस्तम्भगौरवनिग्रहे ।
सञ्जातेमार्दवेस्वेदेस्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ११ ॥

शीत, शूल, जडता, भारीपन, यह नष्ट होकर जब देहमें नर्मी आजाय तो पसीना देना बंद करदेना चाहिये ॥ ११ ॥

पित्तप्रकोपोमूर्च्छाचशरीरसदनतृषा ।
दाहस्वेदाङ्गदौर्बल्यमतिस्विन्नस्यलक्षणम् ॥ १२ ॥

'अधिक पसीना देनेमें-पित्तका कोप, मूर्छा शरीरमें शिथिलता, प्यास दाह, पसीना, और अंगोंमें दुर्बलता यह लक्षण होतेहैं ॥ १२ ॥

उक्तस्तस्याश्रितीयेयोग्रैष्मिक सर्वशोविधि ।
सोऽतिस्विन्नस्यकर्तव्योमधुर स्निग्धशीतल ॥ १३ ॥

ऐसा होनेपर तस्याशितीय (छठे) अध्यायमें जो ग्रीष्मकालकी विधि कहीहै वही विधि अतिस्विन्नकी करे और मधुर, स्निग्ध, शीतल क्रिया करे ॥ १३ ॥

स्वेदनकर्मके योग्य रोगी ।

कषायमद्यनित्यानागर्भिण्यारक्तपित्तिनाम्।पित्तिनासातिसारा णारूक्षाणामधुमेहिनाम् ॥ १४ ॥ विदग्धभ्रष्टनाडीनाविषमद्य-विकारिणाम्।श्रान्तानानष्टसञ्ज्ञानास्थूलानापित्तमेहिनाम्॥१५॥ तृष्यताक्षुधितानाञ्चक्रुद्धानाशोचतामपि । कामल्युदरिणाञ्चैव क्षतानामाढ्यरोगिणाम् ॥ १६ ॥ दुर्बलातिविशुष्काणामुपक्षी-णौजसातथा । भिषक्तैमिरिकाणाञ्चनस्वेदमवनारयेत् ॥ १७ ॥

नित्य कषाय या मद्य पान करनेवालेको, गर्भवती, रक्तपित्तवाला, पित्तप्रधान, पित्तके अतिसारवाला रूक्ष, मधुमेही, अग्निदग्ध, भ्रष्टाग, पद्का रोगवाला, विष तथा मद्यके विकारवालेको, कामलीयुक्तको, मूर्छित, स्थूल, पित्तमेहयुक्त, प्यासयुक्त, भूखा, क्रोधी, शोकयुक्त कामलारोगी, उदररोगी, क्षतरोगी, वहत वीडासे रोगवा-

ऐको, दुर्बल, अतिमूर्च्छाहुवा और जिसका ओजक्षीण होगयाहो, तथा तिमिररोगवाला इनको कभी स्वेदन न करे ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

स्वेदनके योग्य रोग ।

प्रतिश्यायेचकासेचहिक्काश्वासेष्वलाघवे । कर्णमण्याशिरःशूले स्वरभेदेगलग्रहे ॥ १८ ॥ अर्दितेकाङ्गसर्वाङ्गपक्षाघातेविनामके । कोष्ठानाहविबन्धेषुशुक्राघातेविजृम्भके ॥ १९ ॥ पार्श्वपृष्ठकटीकुक्षिसंग्रहेगृध्रसीषुच । मूत्रकृच्छ्रेमहत्त्वेचमुष्कयोरङ्गमर्दके ॥ २० ॥ पादोरुजानुजङ्घार्तिसंग्रहेश्वयथावपि । खल्लीष्वामेषुशीतेचवेपथौवातकण्टके ॥ २१ ॥ सङ्कोचायामशूलेषु स्तम्भगौरवसुप्तिषु । सर्वाङ्गेषुविकारेषुस्वेदनहितमुच्यते ॥ २२

प्रतिश्याय, खांसी, हिचकी, श्वास, गुरुता, कर्णशूल, मन्यास्तम्भ, शिर शू[illegible] स्वरभंग, गलग्रह, अर्दितवात, एकांगगतवात, सर्वांगगतवात, पक्षाघात, वि[illegible] (शरीरका या किसी अंगका नमजाना कुबडा आदि), कोष्ठरोग, अनाह, वि[illegible] शुक्राघात, विशेष जमाई आना, पसलीशूल, पृष्ठशूल, कटिशूल, कुक्षिशूल, गृ[illegible] मूत्रकृच्छ्र, अंडवृद्धि, अंगमर्द, ऊरुस्तम्भ, जानु और जंघाकी पीडा, सूजन, [illegible] आमरोग, शीत, कंप, वातकंटक, संकोच, आयाम, शूल, अंगोंकी गौरवता, अंगोंका सूजना, इन सब विकारोंमें स्वेदन करना परम हितकारक है ॥ १८ ॥ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

पिण्ड[illegible] ॥

तिलमाषकुलत्था[illegible]

[illegible]सि ।

तिल, उडद, [illegible] घृत,
अथवा मांस, इन [illegible] इनम
जो स्वेद किय[illegible] वेद

गोखरोष्ट्र[illegible]
रीपायस
चरेत् । द्रव्या

गौ, गधा, ऊंट, सूकर, घोड़ा, इनकी विष्ठाको गर्म करके अथवा तुष, जौ, इनके चूर्णसे, या बालूरेत, पत्थरका चूरा सूखे गोबरका चूर्ण, लोहचूर्ण, इनको गरम करके कफप्रधान रोगमें स्वेदन करे। और पहले कहाहुआ पिंडस्वेद वातप्रधानव्याधिमें करे। प्रस्तरस्वेदके लिये भी इन ही द्रव्योंको दोषानुसार प्रयुक्त करे ॥ २४॥२५॥

स्वेदनका सहज उपाय ।

भूगृहेषुचजेन्ताकेषूष्णगर्भगृहेषुच ।
विधूमाङ्गारतप्तेऽभ्यक्तःस्विद्यतिनासुखम् ॥ २६ ॥

भूमिके भीतरके घरमें, जेताकमें, गरम घरमें, प्रथम तेलकी मालिस कर धूमरहित अंगारोंकी गर्मीसे ही विना परिश्रम पसीने आजाते हैं ॥ २६ ॥

नाडीस्वेदनकी विधि ।

ग्राम्यानूपौदकमांसपयोबस्तशिरस्तथा । वराहमध्यपित्तासृक्स्नेहवत्तिलतण्डुलान् ॥ २७ ॥ इत्येतानिसमुत्क्वाथ्यनाडीस्वेदंप्रयोजयेत् । देशकालविभागज्ञोयुक्त्यपेक्षोभिषक्तम ॥२८॥ वारुणामृतकैरण्डशिग्रुमूलकसर्षपैः । वासावंशकरञ्जार्कपत्रैरश्मान्तकस्यच ॥२९॥ शोभाञ्जनकशैरीयमालतीसुरसार्जकैः । पत्रैरुत्क्वाथ्यसलिलंनाडीस्वेदंप्रयोजयेत् ॥ ३० ॥

ग्राम्य, आनूप, और जलचारी जीवोंका मांस, दूध, बकरीका शिर, सूअरकी अंतड़ी, पित्ता, रुधिर, घी, तेल, तिल, चावल, इन सबको एक घड़े बर्तनमें पकाकर एक नली द्वारा इसकी भाफ शरीरमें दीजाय इसको नाडीस्वेद कहतेहैं। देश, काल, व्याधि, स्वभाव, युक्तिआदि जाननेवाला वैद्य परीक्षा करके वरना, गिलोय, एरंड, लाल सुहांजना, मूली, सरसों, अड्सा, बांस, करंज, आकके पत्र, अश्मंतकके पत्र, सिरस, मालती, तुलसी, वनतुलसी, इन सबके पत्तोंका क्वाथ करके नाडीस्वेद करे ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

भूतीकपञ्चमूलाभ्यांसुरयादधिमस्तुना ।
मूत्रैरम्लैश्चसस्नेहैर्नाडीस्वेदंप्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥

अथवा अजवायन, पंचमूल, मद्य, दहीका पानी, गोमूत्र, कांजी, इनमें घृत, तेल आदि मिला तथा क्वाथ करके नाडीस्वेद करे ॥ ३१ ॥

एतएवचानिर्य्यूहाःप्रयोज्याजालकोष्ठके ।
स्वेदनार्थंघृतक्षीरतैलकोष्ठांश्चकारयेत् ॥ ३२ ॥

इन उपरोक्त काथोंको एक बडे पात्रमें भरकर उस सहते २ काथमें रोगीको विठानेसे स्वेदक्रिया होतीहै । ऐसे ही घृत तैलादिकोंमें भी स्वेदनके रोगीको विठाया जाताहै ॥ ३२ ॥

गोधूमशकलैश्चूर्णैर्यवानामम्लसंयुतैः ।
सस्नेहकिण्वलवणैरुपनाहःप्रशस्यते ॥ ३३ ॥

गेहूं और जोवोंके चूर्णमें-कांजी, स्नेह, मदिराकी किट्ट, सेंधा नमक, इनको मिलाकर लेप करनेसे भी उत्तम स्वेदन होताहै ॥ ३३ ॥

गन्धैः सुरायाःकिण्वेनजीवन्त्याशतपुष्पया ।
उमयाकुष्टतैलाभ्यायुक्तयाचोपनाहयेत् ॥ ३४ ॥

गंधद्रव्य, मदिराकी किट्टी, जीवंती, सोफ, बावची, कूठ, तेल, इनको मिलाकर कुछ गर्म लेप करनेसे स्वेदन होताहै ॥ ३४ ॥

लेपपर पट्टी बांधनेका सामान ।

चर्मभिश्चोपनद्धव्य सलोमभिरपूतिभिः ।
उष्णवीर्य्यैरलाभेतुकौशेयाविकशाटकैः ॥ ३५ ॥

लेप करके ऊपरसे कोमल और दुर्गंधरहित उष्णवीर्य चमडा बांधे, यदि ऐसा चमडा न मिले तो रेशमी वस्त्र या भेडकी ऊनसे बनाहुआ वस्त्र लपेटे ॥ ३५ ॥

लेपबन्धनका समय ।

रात्रौबद्धंदिवामुञ्चेन्मुञ्चेद्रात्रौदिवाकृतम् ।
विदाहपरिहारार्थंस्यात्प्रकर्षस्तुशीतले ॥ ३६ ॥

रातका कियाहुआ लेप दिनमें उतारदेवे और दिनका किया रातको उतारदे । और दाह आदिकी निवृत्तिके लिये कियाहुआ लेप ठंढा होने पर भी देर तक रहे तो कोई हानि नहीं ॥ ३६ ॥

स्वेदके तेरह भेद ।

सङ्करःप्रस्तरोनाडीपरिषेकोऽवगाहनम् । जेन्ताकोऽश्मघनःकर्षु-
कुटीभू कुम्भिकैवच ॥ ३७ ॥ कूपोहोलाकइत्येतेस्वेदयन्तित्र-
योदश ॥ तान्यथावत्प्रवक्ष्यामिसर्वानेवानुपूर्वशः । इति ॥ ३८ ॥

शकर, प्रस्तर, नाडी, परिषेक, अवगाहन, जताक, अश्मघन, कर्षू, कुटी, भू, कुम्भी, कूप, होलाक, इन भेदोंमें स्वेद तेरह प्रकारके हैं। उनको क्रमपूर्वक ठीक कथन करतेहैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सकरस्वेदका लक्षण।

तत्रवस्त्रान्तरितैरवस्त्रान्तरितैर्वापिण्डैर्यथोक्तैरुपस्वेदनशङ्करस्वेदइतिविद्यात् ॥ ३९ ॥

उनमें गर्म कीहुई औषधिको कपडेमें लपेटकर उससे स्वेदन करे, अथवा गीली औषधियोंका पिंडसा बनाकर उसको गर्म करके उससे स्वेदन कियाजाय उसको शकर स्वेद कहतेहैं ॥ ३९ ॥

प्रस्तरस्वेदका लक्षण।

शूकशमीधान्यपुलाकानावेशवारपायसकृशरोत्कारिकादीनावाप्रस्तरेकौशेयाविकोत्तरप्रच्छदेपञ्चाङ्गुलोरुबुकार्कपत्रप्रच्छदेवास्वभ्यक्तसर्वगात्रस्यशयानस्योपरिस्वेदनप्रस्तरस्वेदइतिविद्यात् ॥ ४० ॥

पहले स्नेहसे रोगीका सब शरीर चिकना करे। फिर शूकधान्य, शमीधान्य और पुलकधान्यको खिचडीकी समान पकाकर अथवा वेशवार, खीर, खिचडी, उडदाकी रोटीरी आदि जो उचित हो बनाकर रोगीका शरीर जिस पर आसके उतनी भूमिमें बिछावे उसके ऊपर रेशमी या ऊनका वस्त्र अथवा एरंडके पत्र बिछाकर उसके ऊपर रोगीको सुलाया जावे उसको प्रस्तरस्वेद कहतेहैं (परन्तु नीचे बिछायाहुआ द्रव्य गर्म होना चाहिये) ॥ ४० ॥

नाडीस्वेदका लक्षण।

स्वेदनद्रव्याणापुनर्मूलफलपत्रशुङ्गादीना मृगशकुनपिशितशिरस्पादादीनामुष्णस्वभावानावायथार्हमम्ललवणस्नेहोपसहितानामूत्रक्षीरादीनावाकुम्भ्यामाष्पमनुद्वमत्यासुक्कथितानां नाड्याशरेपीकावंशदलकरञ्जार्कपत्रान्यतमकृतयागजाग्रहस्तसंस्थानयाव्याममदीर्घयाव्यामार्द्धदीर्घयावाव्यामचतुर्भागाष्टभागमूलाग्रपरिणाहस्रोतसासर्वतोवातहरपत्रसंवृतच्छिद्रयाद्विस्त्रिर्वाविनामितयावातहरसिद्धस्नेहाभ्यक्तगात्रोवाष्पमुपहरेत्।

वाष्पोह्यनूर्द्धगामीविहतचण्डवेगस्त्वचमविदहन्सुखंस्वेदयतीतिनाडीस्वेदः ॥ ४१ ॥

स्वेदनके द्रव्याके-जड, पत्र, फल, शुग, आदि लेकर और उष्णस्वभाववाले मृग, पक्षी आदिकोंके मास, शिर, पाद आदि लेकर और यथोचित अम्ल, लवण, स्नेह, मिलाकर तथा मूत्र दूध, जल आदि किसी पात्रमे डालकर उसीमे उपरोक्त औषधियें डालकर पकावे और उस पात्रका मुख बद करके उसमे एक नाल लगावे उसमस जो भाफ आवे उसमे रोगी स्वेदन करे । इस नालको सरपते, नरसल, बांस, करज, आँक इनमेसे कित्तीके पत्रोंसे या अन्य उचित द्रव्यसे बनावे । यह हाथीकी सूँडके अग्रभागके समान मोटी और दोनों बाहोंको फैलानेसे जितना लम्बा होताहै उतनी लम्बी होनी चाहिये । या एक गज लम्बी हो और पात्रके मुखपरसे अधिक खुला और आगेसे छोटा ऐसा उस नालमे छिद्र होना चाहिये । वातनाशक पत्रोंसे नालके सब स्रोत बद होने चाहियें जिससे भाफ बाहर न निकले । इस नालको दो तीन जगहसे नवाकर भाफ देनी चाहिये । भाफ देनेसे पहले ही वातनाशक तेलोंकी मालिशसे रोगीका शरीर नम्र रखना चाहिये । भाफको रोगीके शरीरमे छोडते समय नालका मुख तिरछा रक्खे जिससे भाफ रोगीकी छालको दहन न करे क्योंकि सीधी भाफ अत्यन गर्म लगतीहै । इसको नाडी स्वेद कहतेहै ॥ ४१ ॥

परिषेकका लक्षण ।

वातिकोत्तरवातिकानांपुनर्मूलादीनामुत्क्वाथै सुखोष्णै कुम्भीर्वावर्षुलिकाःप्रनाडीर्वापूरयित्वायथार्हसिद्धस्नेहाभ्यक्तगात्रंवस्त्रावच्छन्नंपरिषेचयेदितिपरिषेक ॥ ४२ ॥

रोगीको-वातनाशक तैलादिकोंसे स्निग्धकर ऊपर वस्त्र देकर फिर वातनाशक द्रव्योंके मूल, फल, शुगादिकोंके सुखोष्ण क्वाथको किसी तूतनीद्वारा लोटेमे भरकर वस्त्रवेष्टित स्निग्धगात्र रोगी पर सींच देना । इसको परिषेक स्वेद कहतेहै ॥ ४२ ॥

अवगाहका लक्षण ।

वातहरोत्क्वाथक्षीरतैलघृतपिशितरसोष्णसलिलकोष्ठकावगाहस्तुयथोक्तएवावगाह. ॥ ४३ ॥

एक खुले पात्रमें वातनाशक औषधियोंका क्वाथ या दूध, तेल, घी मासरस, अथवा गर्म जल भरकर उसमें बैठना । उसको अवगाहन स्वेद कहतेहै ॥ ४३ ॥

जेन्ताकस्वेदके लिये भूमिपरीक्षा।

अथजेन्ताकंचिकीर्षुर्भूमिंपरीक्षेत। तत्रपूर्वस्यांदिश्युत्तरस्यांवा गुणवतिप्रशस्तेभूमिभागेकृष्णमृत्तिकेसुवर्णमृत्तिकेवापरीवाप पुष्करिण्यादीनांजलाशयानामन्यतमस्यकूलेदक्षिणेपश्चिमेवा सूपतीर्थेसमसुविभक्तभूमिभागेसप्ताष्टौवाअरत्नीमुपक्रम्योदका-त्प्राङ्मुखमुदङ्मुखंवाभिमुखतीर्थंकूटागारंकारयेत्॥ ४४॥

जेंताकस्वेद करनेकी इच्छावाला मनुष्य पहले भूमिकी परीक्षा करे। रोगीके स्थानसे पूर्व अथवा उत्तर दिशामें गुणयुक्त पवित्र भूमि देखकर जहां काली या पीली, मधुर, उत्तम मिट्टी हो और जिस भूमिके समीप ही नदी बापी, पुष्करणी आदि कोई जलाशय हो उस जलाशयके दक्षिण या पश्चिमके किनारे दूसरा तीर्थ हो वहां पवित्र सीधी उत्तम भूमिमें जलाशयसे सात आठ हाथ पर एक मकान ऐसा बनावे जिसका मुख जलाशयकी ओर हो॥ ४४॥

उत्सेधविस्तारतःपरमरत्नीहिषोडशसमन्तात्सुवृत्तंमृत्कर्मसम्प-न्नमनेकवातायनम्।अस्यकूटागारस्यान्तःसमन्ततोभित्तिमर-त्नीविस्तारोत्सेधांपिण्डिकांकारयेत्कपाटवर्जम्। मध्येचास्यकूटा-गारस्यचतुष्किष्कुमात्रंपुरुषप्रमाणं मृण्मयंकन्दुसंस्थानंबहु-सूक्ष्मच्छिद्रमङ्गारकोष्ठकान्तःसपिधानंकारयेत्॥ ४५॥

और वह मकान लंबा चौडा ऊंचा परिमाणमें चारों ओर सोलह हाथ होना चाहिये यह घर मृत्तिकासे बनाहुआ और जिसमें हवा आनेको कई जगह खिडकी रक्खीहुई हो। इस मकानके भीतर चारों ओर दीवारमें एक २ हाथकी भीत बनावे और उनमें किवाडे न लगावे। फिर मकानके ठीक बीचमें एक चार हाथका चौडा और सात हाथ लंबा भाड सा बनाले उसके ऊपर बारीक २ छिद्रयुक्त ढकना रक्खे॥ ४५॥

तत्रखादिराणामाश्वकर्णादीनांवाकाष्ठानांपूरयित्वाप्रदीपयेत्। सयदाजानीयात्साधुदग्धानिकाष्ठानिगतधूमानिअवतप्तश्चकेव लमग्निनातदग्निगृहंस्वेदयोग्येनचोष्मणायुक्तमिति॥ ४६॥ तत्रैनंपुरुषंवातहराभ्यक्तगात्रंवस्त्रावच्छन्नंप्रवेशयेत्प्रवेशयंश्चैन मनुशिष्यात्। सौम्यप्रविश कल्याणायारोग्यायचेति। प्रवि

श्यचैनांपिण्डिकामधिरुह्यपार्श्वापरपार्श्वाभ्यांयथासुखशयीथा· नचत्वयास्वेदमूर्च्छापरीतेनापिसतांपिण्डिकैषाविमोक्तव्यात्मा- आप्राणोच्छ्वासात् । भ्रश्यमानोह्यतः पिण्डिकावकाशाद्द्वारम- नधिगच्छन्स्वेदमूर्च्छापरीततयासद्य प्राणाञ्जह्याः ॥ ४७ ॥

इसके भीतर खैर या शालविशेषकी लकडीके अंगार रक्खे जब धूम निकलजावे और भीतरका स्थान तपगयाहो और स्वेदनयोग्य गर्मीसे भरजाय । फिर रोगीको वातनाशक तेलासे स्निग्धगात्र कर, कपडा लपेटकर इस गर्म घरमें प्रविष्ट करावे, और कहे हे सौम्य ! अपनी आरोग्यता और कल्याणके लिये इस घरमें प्रवेश कर । इस बीचमें बनीहुई पिंडका पर चढकर जिस करवटसे तुझे सुभीता हो उस करवट सोजा । तुमको इस पर लेटनेसे पसीने आवेंगे उस समय यदि तुमको मूर्छा भी आवे तो वहांसे नहीं उठना, जब तक तुम्हारे प्राण चलरहे तब तक उसको मत त्यागो । यदि तुम डरकर उसके ऊपरसे एकदम भागआओगे तो द्वारमें आते ही पसीने और मूर्छासे प्राण निकल जायगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

तस्मात्पिण्डिकामेनानकथञ्चनमुञ्चेथा त्वंयदाजानीयाः विग ताभिष्यन्दमात्मानसम्यक्प्रस्नुतस्वेदपिच्छसर्वस्रोतोविमुक्त लघुभूतमपगतविबन्धस्तम्भसुप्तिवेदनागौरवमिति । तत स्तां पिण्डिकामनुसरन्द्वारंप्रपद्येथा । निष्क्रम्यचनसहसाच- क्षुषो परिपालनार्थंशीतोदकमुपस्पृशेथा । अपगतसन्तापक्ल- मस्तुमुहूर्त्तात्सुखोष्णेनवारिणायथान्यायपरिषिक्तोऽश्नीयाइति जेन्ताकस्स्वेद ॥ ४८ ॥

इसलिये उस पिंडिकाको मत छोडना, जब तुम्हारा शरीर बिल्कुल कफ रहित होजाय और पसीनेका स्राव सब होचुके, शरीरके सब छिद्र खुल जायँ, और शरीर हलका होजाय । तथा शरीरका विबन्धस्तम्भ, सुप्ति, पीडा, गुरुता यह सब दूर होकर शरीर हलका होजाय तब उस पिंडिकाके सहारेसे उसको धीरे २ छोडकर सहजसे द्वारकी ओर आना । फिर बाहर आते ही नेत्रोंके आरामके लिये शीत जल स्पर्श न करना । जब संताप और क्लम दूर होजाय तब एक मुहूर्त सुखोष्ण जलसे स्नान करके पथ्य भोजन करना इसको जंताकस्वेद कहतेहैं ॥ ४८ ॥

अश्मघनस्वेदका लक्षण।

शयानस्यप्रमाणेनघनामश्ममयींशिलाम् । तापयित्वामारुतघ्नैर्दारुभि स्सम्प्रदीपितै ॥ ४९ ॥ व्यपोह्यसर्वानङ्गारान्प्रोक्ष्यचैवोष्णवारिणा । ताशिलामथकुर्वीतकौशेयाविकसंस्तराम् ॥ ॥ ५० ॥ तस्यास्त्वभ्यक्तसर्वाङ्ग शयानः स्विद्यनेसुखम् । रौरवाजिनकौशेयप्रावाराद्यैस्सुसंवृत ॥ ५१ ॥ इत्युक्तोऽश्मघनस्वेद• कर्षूस्वेद• प्रवक्ष्यते ॥ ५२ ॥

रोगीके सोनेके प्रमाण योग्य एक शिलाको वातनाशक लकडियाकी आगसे गरम करे। फिर सब अगार हटाकर गरम पानीसे धो देवे । फिर उस धुलीहुई गरम शिलापर रेशमी वस्त्र या कमल बिछावे । उसपर वातनाशक तेलोंसे अभ्यक्त रोगीको सुलावे तो सुखपूर्वक पसीने आवे । रुरु मृगके चर्मसे या रेशमी कपडेसे अथवा अन्य वस्त्रसे आच्छादितहो रोगी इस शिलापरलेटे । इसको अश्मघन स्वेद कहतेहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

खानयेच्छयनस्याध कर्षूंस्थानविभागवित् । दीप्तैरधूमैरङ्गारैस्ताकर्षूंपूरयेत्तत• । तस्यामुपरिशय्यायास्वपन्स्विद्यतिना सुखम् ॥ ५३ ॥

बुद्धिमान वैद्य रोगीकी शय्याके नीचे एक भीतरसे खुले मुखवाला छोटा गढा बनाकर निर्धूम प्रदीप्त अगारोंसे उसको भरदे । उसके ऊपर बिछी हुई शय्या पर पडा रोगी सुखपूर्वक पसीना लेताहै इसको कर्षूस्वेद कहतेहै ॥ ५३ ॥

कुटीस्वेदका वर्णन।

अनत्युत्सेधविस्ताराम्वृत्ताकारामलोचनाम् । घनभित्तिंकुटींकृत्वाकुष्ठाद्यै सम्प्रलेपयेत् ॥ ५४ ॥ कुटीमध्येभिषक्शय्यास्वास्तीर्णाञ्चोपकल्पयेत् । प्रावाराजिनकौशेयकुथकम्बलगोलकै ॥ ५५ ॥ सहडिकाभिरङ्गारपूर्णाभिस्ताश्चसर्वश । परिवार्य्यान्तरारोहेदभ्यक्त' स्विद्यतेसुखम् ॥ ५६ ॥

न बहुत ऊंची न लंबी और न चौडी एक दृत्ति गोल, झिरखीरहित घनी भीतवाली कुटिया बनावे उसको कूठ आदि औषधियोंका लेपन करे । फिर वैद्य उस कुटीमें आवार, मृगछाला, रेशमीवस्त्र, गुदडी, कमल, गोना आदि बिछाकर शय्या बनावे

और इस कुटीके चारों ओर भीतकी जडमें अगारोंसे भरकर हाडिये रखदे फिर स्निग्धगात्र रोगीको इसमें सुलावे तो सुखपूर्वक स्वेदन होगा। इसको कुटीस्वेद कहतेहैं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

भूस्वेदका वर्णन ।

यएवाश्मघनस्वेदविधिर्भूमौसएवतु ।
प्रशस्तायानिवातायासमायामुपदिश्यते ॥ ५७ ॥

अश्मघन स्वेदकी समान ही भूस्वेद होताहै अश्मघन स्वेदमें पत्थरकी शिला तपाई जातीहै और भूस्वेदमें निर्वातस्थानमें पवित्र और सीधी भूमि तपाकर भूस्वेद होताहै ॥ ५७ ॥

कुम्भीस्वेदका वर्णन ।

कुम्भीवातहरक्वाथपूर्णांभूमौनिखातयेत् । अर्द्धभागत्रिभागंवाशयनंतत्रचोपरि ॥ ५८ ॥ स्थापयेदासनंवापिनातिसान्द्रपरिच्छदम् । अथकुम्भ्यासुसन्तप्तान्प्रक्षिपेदयसोगुडान् ॥ ॥ ५९ ॥ पाषाणान्वोष्मणातेनतत्स्थः स्विद्यतिनासुखम् । सुसंवृताङ्गस्त्वभ्यक्तः स्नेहैरनिलनाशनैः ॥ ६० ॥

पहले वातनाशक क्वाथसे घडेको आधा या तीन भाग भरकर जमीनमें गाडदे उसके ऊपर रागाक शय्या या बैठनेयोग्य कोई वस्तु रखकर ऊपर बारीक वस्त्र बिछादे उस पर तेलादिसे स्निग्धहुए रोगीको कनल आदि वस्त्र लपेटकर बिठा या लेटा दवे और पत्थर या लोहेके टुकडे आगमें लालकरके नीचेके घडेमें डाले उससे भाफ निकलकर जो रोगीको पसीना आवे उसको कुम्भीस्वेद कहतेहैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

कूपस्वेदका वर्णन ।

कूपंशयनविस्तारंद्विगुणश्चापिवेधतः । देशेनिवातेशस्तेच कुर्यादन्तः सुमार्जितम् ॥ ६१ ॥ हस्त्यश्वगोखरोष्ट्राणाकरीषैर्दग्धपूरिते । स्ववच्छन्नः ससंस्तीर्णेऽभ्यक्तःस्विद्यतिना सुखम् ॥ ६२ ॥

पहले निवात और सीधी भूमिमें सोनेयोग्य लम्बा चौडा और उससे दुगुना गहरा कूप बनावे और अंदर साफ करदे । फिर उसमें हाथी, घोडा, गौ, गर्दभ, ऊंट इनकी सूखीहुई लीद भरकर आग लगादेवे । जब धूम निकलजावे तो उसपर शय्या बिछाकर रोगीके शरीरपर तेल मलकर उस शय्यापर सुलावे इससे सुखपूर्वक स्वेदन होगा इसको कूपस्वेद कहतेहैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

होलाकस्वेदका वर्णन।

धीतिकान्तुकरीपाणायथोक्तानाप्रदीपयेत। शयनान्त प्रमाणेनशय्यामुपरितत्रच ॥ ६३ ॥ सुदग्धायाविधूमायायथोक्तामुपकल्पयेत्। स्ववच्छन्न. स्वपस्तत्राभ्यक्त. स्विद्यतिनासुखम् ॥ ६४ ॥ होलाकस्वेदइत्येपसुख प्रोक्तोमहर्पिणा। इतित्रयोदशाविध' स्वेदोऽग्निगुणमश्रयः ॥ ६५ ॥

हाथी आदिकी सखी लीदकी-शयन प्रमाण ढेरी लगाकर जलावे जब जलकर धूम निकलजाय फिर उसपर ऊची सी चारपाइ बिछावे। फिर वातनाशक तेलासे स्निग्ध कर रजाई आदि वस्त्र लेकर उस शय्यापर रोगी सोवे तो सुखपूर्वक पसीना आवे इसको होलाक स्वेद कहतेहैं। इस प्रकार अग्निके योगसे १३ प्रकारके स्वेद होतेहैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

विना अग्नि स्वेदनाविधान।

व्यायामउष्णसदनगुरुप्रावरणक्षुधा। बहुपानभयक्रोधाबुपनाहाहवातपा ॥ ६६ ॥ स्वेदयन्तिदशैतानिनरमग्निगुणादृते। इत्युक्तोद्विविध. स्वेद सयुक्तोऽग्निगुणैर्नच ॥ ६७ ॥

व्यायाम करनेसे, गरम घरम रहनेस, भारी वस्त्र धारण करनेसे, भूख रहनेसे बहुत मद्य पीनेसे, भयसे, क्रोधसे, उपनाहसे, धुप लगनेसे, इन दश कारणोसे अग्निके विना ही पसीने होनातेहैं। इस प्रकार अग्निके योगसे और विना अग्निके दो प्रकारसे पसीने आतेहैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

एकाङ्गसर्वाङ्गगत स्निग्धोरूक्षस्तथैवच। इत्येतत्रिविधद्वन्द्वस्वेदमुद्दिश्यकीर्तितम् ॥ ६८ ॥ स्निग्ध स्वेदम्पक्रम्य. स्विन्न पथ्याशनोभवेत। तदह स्विन्नगात्रस्तुव्यायामवर्जयेन्न रङति ॥ ६९ ॥

इसी प्रकार एकांगगत और सर्वांगगत इन भेदोंसे स्वेद दो प्रकारके है। और रूक्ष स्वेद तथा स्निग्धस्वेद इन भेदोंसे दो प्रकारके है यह तीन द्वन्द्व स्वेदके कहेहैं। स्नान स्वेदन के अनन्तर गर्मी पथ्यपूर्वक रहे। जिस दिन पसीना निपाहा मब वामाको छोडकर वैद्यकी आज्ञाका पालन करे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

तमुवाच भगवानात्रेयः। शक्यं तथाप्रतिविधातुमस्माभिरस्मद्विधैर्वाप्यग्निवेश यथाप्रतिविहिते सिध्येदेवौषधमेकान्तेन तच्च प्रयोगसौष्ठवमुपदेष्टुं यथावन्न हि कश्चिदस्ति। य एतदेवमुपदिष्टमुपधारयितुमुत्सहेत ॥ ३ ॥

यह सुनकर आत्रेय भगवान् कहनेलगे कि हे अग्निवेश! जैसा तुम कहतेहो ऐसा विचारकर कार्य हम लोग और हमारे समान अन्य वैद्य भी करसकतेहैं। जिस प्रकार प्रयोग करनेसे वमनादि किसी कार्यमें कोई विघ्न न हो। और उसी प्रकारके प्रयोगोंकी सुंदरताका उपदेश भी किया जा सकता है। परंतु इस प्रकारके उपदेशको सब कोई धारण नहीं करसकते ॥ ३ ॥

उपधार्य्य वा तथाप्रतिपत्तुं प्रयोक्तुं वा। सूक्ष्माणि हि दोषभेषजदेशकालबलशरीराहारसात्म्यसत्त्वप्रकृतिवयसामवस्थान्तराणि ॥ ४ ॥ यान्यनुचिन्त्यमानानि विमलविपुलबुद्धेरपि बुद्धिमाकुलीकुर्य्युः किं पुनरल्पबुद्धेः ॥ ५ ॥

यदि कोई समझही लेवे अर्थात् उस प्रयोगविधिको धारण भी करले तो उन प्रयोगोंको यथोचित करलेना कठिन है। क्योंकि दोष, औषध, देश, काल, बल, शरीर, आहार, सात्म्य, सत्त्व, प्रकृति, अवस्था, इनका यथोचित विचार बहुत सूक्ष्म अर्थात् बारीक है। इनके सूक्ष्म विचार करनेमें बडे २ निर्मल और विपुल बुद्धिवालेकी बुद्धि भी व्याकुल होजातीहै। फिर बिचारे अल्पबुद्धिवालोंका तो कहना ही क्या है॥४॥५॥

तस्मादुभयमेतद्यथावदुपदेक्ष्यामः। सम्यक्प्रयोगं चौषधानां व्यापन्नानां च व्यापत्साधनानि सिद्धिषूत्तरकालम्। इदानीं तावत्संभारान् विविधानपि समासेनोपदेक्ष्यामः ॥ ६ ॥

इसलिये हम दोनों प्रकारोंको अर्थात् जिस प्रयोगसे उपद्रव न हो उनका कथन करेंगे और यदि किसी कारणसे कहीं कोई उपद्रव होजाय उनका शमनोपाय भी कथन करेंगे। औषधोंका उत्तम प्रयोग, और वमनादिमें कोई विकार हो तो उसका शमनोपाय, इन दोनोंको हम उत्तरकालमें सिद्धिस्थानमें कहेंगे। और वमन विरेचन विषयक सामग्रियोंको और इनके प्रकारोंको यहां संक्षेपसे कथन करतेहैं ॥ ६ ॥

निवासस्थानका वर्णन ।

तद्यथा । दृढनिवातप्रवातैकदेशंसुखप्रविचारमनुपत्यकं धूमातपरजसामनभिगमनीयमनिष्टानाञ्चशब्दस्पर्शरसरूपगन्धाना सोपानोदूखलमुसलवर्चःस्थानस्नानभूमिमहानसोपेतवास्तुविद्याकुशल प्रशस्तगृहमेवतावत्पूर्वमुपकल्पयेत् ॥ ७ ॥

पहले घरके रचनेमे कुशल वैद्य एक ऐसा घर बनवावे जिसमे दीवार आदि सब मजबूत हो, एक भागमें हवा आती है। और एक भागमे बिल्कुल हवा न लगे, जिसमें इधर उधर फिरनेको सीधी और खुली जगह हो, तथा इधर उधरके मकानोंसे रुका हुआ नहो, जिसमें धूम, धूप, धूल, न आतेहो, और बुरे लगनेवाले शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, न होय, कुंडी सोटा आदि दवाई कूटनेका सामान रक्खाहुआ हो, और पैड-साल (सीढी), पाखाना, स्नान करनेका स्थान, औषध भोजन आदि बनानेका स्थान विधिवत् यथास्थान बनेहुए हो ॥ ७ ॥

तत शीलशौचाचारानुरागदाक्ष्यप्रादक्षिण्योपपन्नानुपचारकुशलान्सर्वकर्मसुपर्य्यवदातान्सूपौदनपाचकस्नापकसंवाहकोत्थापकसंवेशकौषधपेषकांश्चपरिचारकान्सर्वकर्मस्वप्रतिकूलांस्तथागीतवादित्रोल्लापकश्लोकगाथाख्यायिकेतिहासपुराणकुशलानभिप्रायज्ञाननुमतांश्चदेशकालविद परिषद्यांश्च । तथालावकपिञ्जलशशहरिणणकालपुच्छकमृगमातृकोरभ्रान् ॥ ८ ॥

फिर उस घरमे सुशील, शुद्ध आचारवाले, स्वामिके भक्त, चतुर, सेवाकरनेमे कुशल, सब कामोमे निपुण भोजन बनानेमे चतुर स्नान करानेवाले, मुटानेवाले, हाथ पकडकर चलनेवाले, उठाने बिठानेवाले, औषध पीसनेवाले, अन्य सब काम करनेमे योग्य, परिचारकोंको रक्खे । तथा गाने, बजाने, आलाप करनेवाले, श्लोक, कहानियें, कथा, इतिहास, पुराण, इनमे कुशल और अभिप्राय तथा मनकी इच्छाके समझनेवाले, देश-कालके अनुसार बात चीत करके चित्तको प्रसन्न रखनेवाले सभासदोंको नियुक्त करे । और लवा तीतर, शशा, हिरन, काला हिरन, कालपुच्छक, मृगविशेष, मेढा, इन सबको उस घरमें स्थापन करे ॥ ८ ॥

गादोग्ध्रीशीलवतीमनातुरांजीवद्वत्सांसुप्रतिविहिततृणशरणपानीयाम् । पात्र्याचमनीयोदकोष्टमणिकघटपिठरपर्य्योगकु-

म्भीकुम्भकुण्डशरावदर्वीकटोदञ्चनपरिपचनमन्थानचर्मचे-
लसूत्रकार्पासोर्णादीनिचशयनासनादीनिचोपन्यस्तभृङ्गारप्र
तिगृहाणिसुप्रयुक्तास्तरणोत्तरप्रच्छदोपधानानिस्वापाश्रयाणि
संवेशनस्नेहस्वेदाभ्यङ्गप्रदेहपरिषेकानुलेपनवमनविरेचना-
स्थापनानुवासनशिरोविरेचनमूत्रोच्चारकर्मणामुपचारसुखानि
सुप्रक्षालितोपधानाश्चसुश्लक्ष्णखरमध्यमादृषदःशस्त्राणिचो
पकरणार्थानि । धूमनेत्रवस्तिनेत्रश्चोत्तरवस्तिकश्च । कुश
हस्तकश्चतूलाश्चमानभाण्डश्चघृततैलवसामज्जक्षौद्रफाणितल-
वणेन्धनोदकमधुसीधुसुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकदधिदधि-
मण्डोदश्विद्धान्याम्लमूत्राणिच ॥ ९ ॥

और दूध देनेवाली, सुशीला, नीरोग, जिसका बछडा जीताहो ऐसी गौको रक्खे और उस गौको यथेच्छ घास, जल तथा उत्तम स्थान मिलना चाहिये और जल तथा आचमन आदिके लिये पान, जलकी कोठी, पतीला, कलशा, घडा, माट, झारी, शराव, कडछी पाक बनानेके पात्र, थाली, कटोरे, गिलास, आदि मथानी कपडे, सूत, कपास, ऊन आदिकसे बनीहुई सोनेकी शय्या, आसन आदि आरामके सामान स्थापन करे । और शय्या आसनके समीप ही जलकी झज्झर और थूकने आदिके लिये पीकदान आदि स्थापन करे । सुंदर बिछौना, ओढना तकिया, पलंगके पडावे, बैठने लेटनेम सुखदायक सामान रहना चाहिये तथा स्नेह,स्वेद,मालिश प्रलेप, परिषेक अनुलेपन, वमन, विरेचन, शिरोविरेचन, आस्थापन अनुवासन, इन सबकी यथायोग्य साधनसामग्री होनी चाहिये और मलमूत्र त्यागनेका पात्र, और वमनके पात्र धोकर साफ रखने चाहिये अन्य उपधान, शिला श्लक्ष्ण और शुद्ध होनी चाहिये । तथा शस्त्रास्त्रआदि अन्य उपकरण भी रक्खे । धूमपानकी नली, वस्तिकर्मके लिये पिचकारी, और उत्तरवस्तिका सामान कुशहस्त, तराजूकांटा आदि, मापनेका पात्र, घृत, तेल, चर्बी, मज्जा, शहद, फाणित, लवण, काष्ठ जल, सहदकी बनी सुरा, सीधु, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, दही मण्डमण्ड, उदश्वित, धान्याम्ल, और गोमूत्र आदिक सामान रखने चाहिये ॥ ९ ॥

तथाशालिषष्टिकमुद्गमाषयवतिलकुलत्थबदरमृद्वीकाश्मर्य्यप-
रूषाभयामलकविभीतकानिनानाविधानिचस्नेहस्वेदोपकर-

णानिद्रव्याणितथैवोर्द्ध्वहरानुलोमिकोभयभाञ्जिसंग्रहणीयदी-
पनीयपाचनीयोपशमनीयवातहराणिसमाख्यातानिचौषधानि
यच्चान्यदपिकिंचिद्व्यापदःपरिसंख्यायोपकरणंविद्यात्। यच्चप्र
तिभोगार्थंतत्तदुपकल्पयेत् ॥ १० ॥

तथा शालीचावल, साठी, मूंग, उडद, जौ, तिल, कुल्थी, उन्नाब, मुनक्का, फाल
सा, हरड, बहेडा, आमला, और अनेक स्नेह तथा स्वेदनकी सामग्री और उपरका
दोष निकालनेवाली अनुलोमन, ऊपर नीचेका शोधन करनेवाली, स्तंभनकर्ता,
दीपनीय, पाचनीय, उपशमनीय, और वायुनाशक औषधियें तथा अन्यान्य औषधिये
जो वमन विरेचनसे किसी कारणसे हुए उपद्रवोंमे काम देनेवाली हो ऐसी औषधिये
पास रक्खे। तथा जिन अन्य द्रव्यासे रोगीको सुख प्राप्त होसके उनको भी
संग्रह करे ॥ १० ॥

ततस्तंपुरुषंयथोक्ताभ्यांस्नेहस्वेदाभ्यांयथार्हमुपपादयेत्।तस्मिं-
स्मिन्नन्तरेमानसःशारीरोवाव्याधिःकश्चित्तीव्रतरःसहसाभ्याग-
च्छेत्तमेवतावदस्योपावर्त्तयितुंयतेत। ततस्तमुपावर्त्यतावन्तमे
वेनकालंतथाविधेनैवकर्मणोपाचरेत्।ततस्तंपुरुषंस्नेहस्वेदोपपन्न-
मनुपहतमानसमभिसमीक्ष्यसुखोषितंप्रजीर्णभक्तंशिरःस्नातम-
नुलिप्तगात्रंस्रग्विणमनुपहतवस्त्रसंवीतंदेवताग्निद्विजगुरुवृद्धवै-
द्यानर्चितवन्तमिष्टेनक्षत्रेतिथिकरणमुहूर्तेकारयित्वाब्राह्मणा-
न्स्वस्तिवाचनंप्रयुक्ताभिराशीर्भिरभिमन्त्रितांमधुमधुकसैन्धव-
फाणितोपहितांमदनफलकषायमात्रांपाययेत् ॥ ११ ॥

इसके उपरांत जिसको वमन विरेचन कराना हो उसका यथोचित स्नेहन और
स्वेदन द्वारा नम्र बनालेवे। यदि उसको इस अवसरमे कोई मानसिक या शारीरिक
तीव्र व्यथा शीघ्र उपस्थित हुई हो तो पहले उसका यत्न करले। फिर विकार शांत
होनेपर कुछ काल ठहरकर स्नेहन, स्वेदन करे। जब वह स्नेह स्वेद द्वारा मृदु होजाय
और स्वस्थचित्त हो तथा भोजन कियाहुआ अच्छीतरह पाचन होचुकाहो तब उसका
शिर धुलावे और सुगंधित द्रव्यासे शरीरको सुगंधित करे तथा माला आदि धारण
करा और शुद्ध वस्त्र पहनाकर देवता, अग्नि ब्राह्मण, गुरु वृद्ध, और वैद्य आदिकोंका
पूजन करावे। फिर शुभ नक्षत्र, तिथि, करण, मुहूर्तमें ब्राह्मणाके आशीर्वाद मत्रों-

द्वारा अभिमंत्रित कियाहुआ मधु, मुलहटी, सेंधानमक, फाणित, यह यथोचित मैन-फलके क्राथमें मिलाकर पीवे ॥ ११ ॥

मदनफलकी मात्राका प्रमाण ।

मदनफलकषायमात्राप्रमाणन्तुखलुसर्वसंशोधनमात्राप्रमाणानिच प्रतिपुरुषमपेक्षितव्यानिभवन्ति । यावद्धियस्यसंशोधनंपीतवैकारिकदोषहरणायोपपद्यते ॥ १२ ॥ नचातियोगायोगायतावदस्यमात्राप्रमाणवेदितव्यभवति ॥ १३ ॥

मैनफलके क्राथकी मात्राका प्रमाण तथा अन्य संशोधन द्रव्योंकी मात्राका प्रमाण मनुष्यके बलाबलके अनुसार है । जितनी मात्रासे पान कीहुई औषधि यथोचित शोधन करदे और विकारोंकी शांति करे उसके लिये उतनी ही मात्रा ठीक है । औषधका अतियोग और अयोग न होना ही औषधकी मात्राका प्रमाण जानना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥

पीतवन्तन्तुखल्वेनमुहूर्तमनुकांक्षेत । तस्ययदाजानीयात्स्वेदप्रादुर्भावेणदोषप्रविलयनमापद्यमानलोमहर्षेणचस्थानेभ्य.प्रचलितकुक्षिसमाध्मानेनचकुक्षिमनुगतहल्लासास्यश्रवणाभ्यामपह्नितोर्द्ध्वमुखीभूतमथास्मैजानुसममसम्बाधसुप्रयुक्तास्तरणोत्तरप्रच्छदोपधानस्वापाश्रयमासनमुपवेष्टुप्रयच्छेत् ॥ १४ ॥

औषध पीकर मनुष्य थोडी देर तक चित्तको टिकाकर वमनकी प्रतीक्षा करे। फिर जब पसीने आनेलगे तो समझले कि अब वातादिदोष लीन होगये हैं । अथवा जब रोमाच होनेलगे तो जाने कि दोष अपने स्थानमे चलायमान होगये और जब कुक्षिमे अफारा सा होकर दोष कूख तक फैलकर दिल मचलाने लगे तथा मुखमें पानी गिरनेलगे तो समझे कि अब दोष ऊर्द्ध्वमुख होगये हैं । फिर इसको सुखपूर्वक घुटनोंके बल गद्दाआदि बिछीहुई आश्रययुक्त चौकी आदि पर बिठावे ॥ १४ ॥

प्रतिग्रहाश्चोपचारयेत् । ललाटप्रतिग्रहेपार्श्वोपग्रहणेनाभिप्रपीडनेपृष्ठोन्मर्दनेचअव्युपक्रमणीया.सुहृदोऽनुमता.प्रवर्तेरन् । अथैनमनुशिष्यात् । विवृतोष्ठतालुकण्ठोनातिमहताव्यायामेनवेगानुदीर्णानुदीरयन्किञ्चिदवनम्यग्रीवामूर्द्ध्वशरीरमुपवेग

मप्रवृत्तान्प्रवर्त्तयन्सूपलिखितनखाभ्यामङ्गुलीभ्यामुत्पलकुमुदसौगन्धिकनालैर्वाकण्ठमनभिस्पृशन्सुखप्रवर्त्तयस्वेति॥१५॥

और इसके आगे छर्दि करनेका पात्र हाथ पोंछनेका साफ जल आदि रक्खे। फिर वैद्य या परिचारक अपने दोनो हाथोंसे वमनकर्ताके ललाटकी दोनों पसलियाको पकडे। और नाभि तथा पीठको उसके मित्र या परिचारक धीरे २ मसलें जिससे सुखपूर्वक वमन हो। और इस रोगीको भी ऐसी शिक्षा देवे कि तू होठ तालु कठ खोलकर जिस तरह अधिक श्रम न हो वैसे वमनके वेगको निकालदे। और गरदन मस्तक शरीरको कुछेक आगेको झुकाले। यदि वमनका वेग न आताहो तो उसके लानेको साफ किये हुए नखवाली उंगलियोंसे अथवा कमल, कुमोदनी, कह्लार आदिकी नरम डंडीसे हृदयको स्पर्श करे जिससे सुखपूर्वक वमन हो ॥ १५ ॥

वमन होनेपर वैद्यका कर्तव्य।

सतथाविधकुर्य्यात्ततोऽस्यवेगान्प्रतिग्रहगतानवेक्षेतावहित वेगविशेषदर्शनाद्धिकुशलोयोगायोगातियोगविशेषानुपलभेतवेगविशेषदर्शीपुन कृत्ययथार्हमवबुध्येतलक्षणेन। तस्माद्वेगानवेक्षेतावहित ॥ १६ ॥

रोगीको इसी प्रकार करना चाहिये। फिर कुशल वैद्य सावधानतासे देखे कि वमन ठीक होगये या नहीं वमनके वेगोंको देखकर कुशल वैद्य वमनके योग, अतियोग, अयोगकी परीक्षा करे। यदि कुछ अतियोग आदि दिखाईदेवे तो उस समय करनेयोग्य कृत्योंको विचार ले। इसलिये सावधान होकर वेगोंको देखे ॥ १६ ॥

वमनके योगायोगादि लक्षण।

तत्रअमून्ययोगयोगातियोगविशेषज्ञानानिभवन्ति। तद्यथा अप्रवृत्ति कुतश्चित् केवलस्यवाप्यौषधस्यविभ्रंशोविबन्धोवेगानाम् योगलक्षणानिभवन्ति ॥ १७ ॥

उनमें वमनके अयोग, सम्यक् योग, अतियोगके यह लक्षण होते हैं। वमनका न होना या जो औषध वमनके लिये पीगई हो केवल वह निकलजाय और वमन न होय। यह वमनके अयोगके लक्षण है ॥ १७ ॥

कालेप्रवृत्तिरनतिमहतीव्यथायथास्वदोषहरणम्स्वयञ्चावस्थानमिति योगलक्षणानिभवन्ति। योगेनतुदोषप्रमाणविशेषेणतीक्ष्णमृ-

दुमध्यविभागोऽलेयः । योगाधिक्येनतुफेनिलरक्तचन्द्रिकोपग-
मनमित्यतियोगलक्षणानिभवन्ति । तत्रातियोगायोगनिमि-
त्तानिमानुपद्रवान्विद्यात् । आध्मानपरिकर्त्तिकापरिस्रावोहृ-
दयोपशरणमङ्गग्रहोजीवादानविभ्रंशःस्तम्भःक्लमउपद्रव इति ॥१८॥

ठीक समयपर वमन होय अति अधिक वमन न होय वमनकर्ताको अधिक कष्ट न होय पहले दोषोंको निकालकर फिर औषध निकले । यह वमनके ठीक योगके लक्षण हैं । ठीक योगमें भी तीक्ष्ण मृदु, मध्य, यह तीन भेद हैं । वमनको अतियोग होनेसे छर्दमें झाग रुधिर, चमक, आदि होतेहै और वमनके वेग बहुत ज्यादा आतेहैं यह वमनके अतियोगके लक्षण हैं । उनमें अयोग और अतियोग होनेसे यह उपद्रव होतेहैं जैसे-अफरा पेटमें कतरनेकी पीड़ा, रुधिरका निकलना, हृदयकी रुकावट, अंगोंकी शिथिलता, जीवसंज्ञक रक्तका निकलना अथवा जीवनका क्षय होना, जीभका निकल आना शरीरका स्तंभ, और कायरी होना यह लक्षण होतेहैं ॥ १८ ॥

योगेनतुखल्वेनंछर्दितवन्तमभिसमीक्ष्यसुप्रक्षालितपाणिपा-
दास्यंमुहूर्तमाश्वास्यस्नैहिकवैरेचनिकोपशमनीयानाधूमानाम-
न्यतमसामर्थ्यतःपाययित्वापुनरेवोदकमुपस्पर्शयेत् । उपस्पृष्टो-
दकश्चैननिवातमगारमनुप्रवेश्यसंवेश्यचानुशिष्यात् ॥ १९ ॥
उच्चैर्भाष्यमत्यासनमतिस्थानमतिचंक्रमणक्रोधशोकहिमातपा-
वश्यायातिप्रवातान् । यानयानग्राम्यधर्मास्वपननिशिदिना-
स्वप्नम् । विरुद्धाजीर्णासात्म्याकालप्रमितासितातिहीनगुरुवि-
षमभोजनवेगसन्धारणोदीरणमितिभावानेनान्मनसाप्यसेव-
मान सर्वमाहारमथादिति । सनथाकुर्यात् ॥ २० ॥

यदि उत्तम प्रकारसे वमन होलेवे तो उस वमनकर्ताके [illegible] मुख, [illegible] भूमि [illegible] मु [illegible]
आराम करनेदे फिर दोघडी पश्चात् उसको स्नैहिक धूम [illegible]
शमन धूम वा यथासाध्य अन्य धूम पान करावे । फिर [illegible] और [illegible]
वात रहित स्थानमें सुखोचित [illegible] ति [illegible]
अधिक बैठना अत्यंत आराममें [illegible] गण, [illegible]
धूप, शीत, अगत वायु, सवारी,

अजीर्णकर्ता तथा असात्म्य भोजन, असमय भोजन, अल्प भोजन, अतिभोजन, हीन तथा भारी और विषम भोजन, मलमूत्रादिका वेग रोकना, विना वेग मलादि त्यागना, इन कामोंको मनसे भी न करना। और मद्य आदि भी सेवन न करना वमनकर्ताको भी वैद्यके कथनानुसार ही करना चाहिये॥ १९॥ २०॥

रात्रिके भोजनका क्रम।

अथैनंसायाह्नेपरेवाह्निसुखोदकपरिषिक्तपुराणानांलोहितशा-
लितण्डुलानांस्ववक्लिन्नानामण्डपूर्वांसुखोष्णांयवागूंपाययेदग्नि-
बलमभिसमीक्ष्यचैवंद्वितीयेतृतीयेचान्नकालेचतुर्थेत्वन्नकाले
तथाविधानामेवशालितण्डुलानामुत्स्विन्नांविलेपीमुष्णोदकद्वि-
तीयामस्नेहलवणामल्पस्नेहलवणांवाभोजयेत् । एवंपञ्चमेषष्ठे
चान्नकालेसप्तमेत्वन्नकालेतथाविधानामेवशालीनांद्विप्रसृतंसु-
स्विन्नमोदनमुष्णोदकानुपानंतनुमातनुस्नेहलवणोपपन्नेनमुद्ग-
यूषेणभोजयेत्। एवमष्टमेनवमेचान्नकालेदशमेत्वन्नकालेलाव-
कपिञ्जलादीनामन्यतमस्यमांसरसेनौदकलावणिकेनापिसार-
वताभोजयेत् । उष्णोदकानुपानमेवमेकादशेद्वादशेचान्नका-
ले ॥ २१ ॥

इसके अनन्तर उस मनुष्यको सायंकाल या दूसरे दिन प्रातःकाल सुखोष्ण जलसे स्नान कराके पुराने साठीके चावल आदिकी यवागू बनाकर सुखोष्ण पिलावे। ऐसे ही दूसरे तीसरे समयभी सुखोष्ण नरम साठी चावल आदिकी पेया बनाकर देवे। चौथे समय साठीके चावलोंको बहुत नरम और गाढ़ा बनाकर देवे अथवा उन चावलोंकी विलेपीमें थोड़ीसी चिकनाई और लवण मिलाकर देवे। और गर्म जल पीनेको देवे। ऐसे ही पांचवें, छठे भोजनके समय भी करे। सातवें समय साठी या शालिचावलोंका नरम बनाहुआ आधसेर भात और थोड़ेसे नमक और चिकनाई युक्त मूंगका यूष देवे और गर्म जल पिलावे। आठवें, नवमें अन्नकालमें भी ऐसा ही करे। दशवें समय लवा तीतर आदि किसी पक्षीके मांसरसमें थोड़ा स्नेह लवण मिलाकर अन्न खावे और गर्म जल पीवे। ऐसे ही ग्यारहवें, बारहवें समय भी करे॥ २२॥

अतऊर्द्धमन्नगुणानुक्रमेणोपभुञ्जानःसप्तरात्रेणप्रकृतिभोजन-
मागच्छेत् ॥ २२ ॥

इसके उपरांत सात दिन तक सात्म्य और पथ्य भोजन करताहुआ अपने स्वाभाविक भोजन पर आजाय ॥ २२ ॥

विरेचनविधि ।

अथैनंपुनरेवस्नेहस्वेदाभ्यामुपपाद्यानुपहतमनसमभिसमीक्ष्य सुखोपितसुप्रजीर्णभक्तकृतहोमबलिमङ्गलजप्यप्रायश्चित्तमिष्ट-तिथिनक्षत्रकरणमुहूर्तेब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयित्वात्रिवृतकल्क-मक्षमात्रायथार्हालोडनप्रतिविनीतंपाययेत् ॥ २३ ॥

अब फिर स्नेहन स्वेदन करके सर्वदुःखरहित सुखपूर्वक बैठे हुए इसको पहले दिनका अन्न जीर्ण होनेपर होम, बलिदान, मंगलाचरण, जप, प्रायश्चित्त आदि कराके शुभ तिथि नक्षत्र, करण, मुहूर्तमें ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन और पुण्याहवाचन कराके एक बहेडेके समान (अथवा जितना उचित हो) निशोथका कल्क लेकर पानीमें घोलकर पिलादेवे ॥ २३ ॥

प्रसमीक्ष्यदोपभेपजदेशकालबलशरीराहारसात्म्यसत्त्वप्रकृति-वयसामवस्थान्तराणिविकारांश्चसम्यग्विरिक्तश्चैनंवमनोक्तेन-धूमवर्जेनविधिनोपपादयेदाबलवर्णप्रतिलाभात् ॥ २४ ॥

फिर-दोष औषध, देश, काल, बल, शरीर, आहार सात्म्य, सत्त्व, प्रकृति, वय, तथा अन्य व्यवस्था, और रोगोंका विचारकर तथा रोगीको उत्तम विरेचन होचुका यह विचारकर जबतक बल वर्ण ठीक न होजाय तब तक वमनमें कही विधिके वर्ताव करतारहै । परन्तु वमनमें कहेहुए धूमपानको न करे ॥ २४ ॥

बलवर्णोपपन्नश्चैनमनुपहतमनसमभिसमीक्ष्यसुखोपितसुप्र-जीर्णभक्तंशिरःस्नातमनुलिप्तगात्रंस्रग्विणमनुपहतवस्त्रसंवीत-मनुरूपालङ्कारालङ्कृतंसुहृदांदर्शयित्वाज्ञातीनांदर्शयेदथैनंकामे-ष्वेवसृजेत् ॥ २५ ॥

जब वह मनुष्य बलवर्ण युक्त होजाय, और मन प्रसन्न हो तब पहले दिनका अन्न जीर्ण होनेपर सुखपूर्वक बिठाकर शिरसे स्नान करावे । और शरीरमें चन्दनादि सुगन्धित लेप करे-फूलमाला, शुद्ध हलके वस्त्र और यथायोग्य वस्त्र आदिसे शोभा-

यमान कर इसके मित्र और बान्धवोंके दर्शन करावे। फिर इसको इसकी इच्छानुसार वर्तावकी आज्ञा देवे॥ २५॥

भवतिचात्र। अनेनविधिनाराजाराजमात्रोऽथवापुनः। यस्य वाविपुलंद्रव्यंससंशोधनमर्हति॥ २६॥ दरिद्रस्त्वापदंप्राप्य प्राप्तकालंविरेचनम्। पिबेत्कामममसंभृत्यसम्भारानपिदुर्लभान्॥ २७॥

यहां कहतेहैं कि, इस विधिसे राजा अथवा राजाओंकी समान धनिक पुरुष जिसके यहां बहुत द्रव्य हो उसका शोधन करना चाहिये॥ २६॥ और दरिद्रीके पास सब सामान हो नहीं सकता इसलिये जब उसको कोई वमन विरेचन साध्य रोग होय उसी समय यथासंभव योग्य औषध देकर आरोग्य करे॥ २७॥

नहिसर्वमनुष्याणांसन्तिसर्वपरिच्छदाः। नचरोगानबाधन्ते दरिद्रानपिदारुणाः॥ २८॥ यद्यच्छक्यंमनुष्येणकर्तुमौषध मापदि। तत्तत्सेव्यंयथाशक्तिवमनान्यशनानिच॥ २९॥

क्योंकि सब मनुष्योंके यहां सब साधन नहीं होसकते और रोग तो दरिद्रियोंको भी वैसाही दारुण कष्ट देतेहैं। इसलिये जिससे जिस प्रकार यत्न हो जैसी, औषध आदि होसकती हो उसको रोग होनेपर वैसे ही यथाशक्ति शोधन और भोजनादि करने चाहिये॥ २८॥ २९॥

मलापहंरोगहरंबलवर्णप्रसादनम्। पीत्वासंशोधनंसम्यगायु षायुज्यतेचिरम्॥ ३०॥

उत्तम प्रकारसे संशोधन करनेसे दुष्ट मल और रोग नष्ट होतेहैं। तथा बल और वर्ण उत्तम होतेहैं और आयु दीर्घ होतीहै॥ ३०॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन।

तत्रश्लोकाः। ईश्वराणांवसुमतांवमनंसविरेचनम्। सम्भारा ये यदर्थंश्च समानीयप्रयोजयेत्॥ ३१॥ यथाप्रयोज्ययामात्रा- यत्योगस्यलक्षणम्। योगातियोगयोर्यच्चदोषायेचाप्युपद्रवाः॥ ३२॥ यदसेव्यंविशुद्धेनयश्चसंसर्जनक्रमः। तत्सर्वंकल्पना ध्यायेव्याजहारपुनर्वसुः॥ ३३॥

इतिकल्पनाचतुष्केउपकल्पनीयोऽध्यायः।

अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक है कि इस कल्पनीयाध्यायमें राजाओं और धनिक पुरुषोंको वमन विरेचन का क्रम और उनके साधनकी सामग्री, तथा वमन विरेचनकी मात्रा अयोगके लक्षण तथा सम्यग् योग और अतियोगके लक्षण अतियोगके उपद्रव, संशोधित मनुष्यके सेवनका क्रम और उसको छुट्टी देनेकी विधि यह सब भगवान् पुनर्वसुजीने कथन किया है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदग्निवेशकृतप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पन्तियालीरामपौत्रेणैतद्देशमाजाग्रामसि वैद्यस्थानेन प०रामप्रसादवैद्योपाध्यायेन रचितप्रसाद्याख्यभाषाटीकायां सुश्रुत्कल्पनीयो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः ।

अथातश्चिकित्साप्राभृतीयमध्यायं व्याख्यास्यामः इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम चिकित्साप्राभृतीय अध्यायका कथन करतेहैं। ऐसा भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे।

सम्यक् वैद्यके कर्मका फल।

चिकित्साप्राभृतोविद्वान् शास्त्रवान् कर्मतत्परः । नरंविरेचयतियंसयोगात्सुखमश्नुते ॥ १ ॥

चिकित्सामें निपुण, शास्त्रको जाननेवाला, अपने चिकित्साकर्ममें तत्पर वैद्य जिस मनुष्यको विरेचन करातांहै वह मनुष्य रोगमुक्त होकर परम सुखको भोगताहै ॥ १ ॥

यंवैद्यमानीत्वबुधोविरेचयतिमानवम् ।
सोऽतियोगादयोगाच्चमानवोदुःखमश्नुते ॥ २ ॥

और अपने आप वैद्य कहलानेवाला मूर्ख जिसको विरेचन देताहै वह अतियोग अथवा अयोगके होनेसे दुःखको भोगताहै ॥ २ ॥

अच्छे विरेचनके लक्षण।

दौर्बल्यलाघवग्लानिर्व्याधीनामणुतारुचिः । हृद्वर्णशुद्धिः क्षुत्तृष्णाकालेवेगप्रवर्त्तनम् ॥ ३ ॥ बुद्धीन्द्रियमनःशुद्धिर्मारुत

स्यानुलोमता । सम्यग्विरिक्तलिङ्गानिकायाग्नेश्चानुवर्त्तनम् ॥ ४ ॥

देहमें दुर्बलता, हलकापन, ग्लानि, रोगका ह्रास, रुचि, हृदय और वर्णकी शुद्धि, क्षुधा, तृषाका ठीक होना, समयपर मलमूत्रका होना, बुद्धि, इन्द्रिय, और मनका शुद्ध होना, वायुका अनुलोम होना, जठराग्निका बलवान् होना यह लक्षण उत्तम विरेचन होनेके हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

दुष्टविरेचनके लक्षण ।

ष्ठीवनहृदयाशुद्धिरुत्क्लेशःश्लेष्मपित्तयोः । आध्मानमरुचिश्छर्दिरदौर्बल्यमलाघवम् ॥ ५ ॥ जंघोरुसादनंतन्द्रास्तैमित्यपीनसागमः । लक्षणान्यविरिक्तानामारुतस्यचनिग्रहः ॥ ६ ॥

मुखसे पानी गिरना, हृदयका भारी होना, कफपित्तके निकलनेकी सी शंका रहना, अफारा, अरुचि, छर्दि, देहमें पुष्टता सी और भारीपन, जंघाओं और घुटनोंमें शिथिलता, तन्द्रा, देहमें गीलापन, प्रतिश्याय, अधोवायुका ठीक न निकलना यह लक्षण ठीक विरेचन न होनेसे होतेहैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

अतिविरेचितके लक्षण ।

विट्पित्तश्लेष्मवातानामागतानांयथाक्रमम् । परस्स्रवतियद्रक्तमेदोमांसोदकोपमम् ॥ ७ ॥ निःश्लेष्मपित्तमुदकंशोणितंकृष्णमेववा । तृष्यतोमारुतार्त्तस्यसोतियोगप्रमुच्यते ॥ ८ ॥

पहले विष्ठा, पित्त, कफ और वात यह यथाक्रम निकलकर फिर भेद और मांसके धोवनकी समान रक्त निकलनेलगे और कफपित्त रहित पानीका निकलना अथवा काले रंगका रुधिर गिरना। और बेहोशी, प्यासकी अधिकता तथा वायुका कोप होना यह विरेचनके अतियोगके लक्षण हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

वमनातिकृतेलिङ्गान्येतान्येवभवन्तिहि ।
ऊर्द्ध्वगावातरोगाश्चवाग्ग्रहश्चाधिकोपमः ॥ ९ ॥

वमनके अतियोग होनेसे भी यही लक्षण होतेहैं परन्तु ऊर्ध्वजत्रुगत वायुके रोग और वाणीका रुकना यह विरेचनके अतियोगसे वमनके अतियोगमें अधिक होतेहैं ॥ ९ ॥

चिकित्साप्राभृतंतस्मादुपेयात्कारणनरः ।
युञ्ज्याद्यएनमत्यन्तमायुषाचसुखेनच ॥ १० ॥

इसीलिये चिकित्साके जाननेवाले सुज्ञ वैद्यकी शरणमें ही मनुष्यको स्वेदन वमन, विरेचनादि लेने चाहिये क्योंकि योग्य वैद्य ही इसकी आयु और सुखकी रक्षा करताहै ॥ १० ॥

संशोधनीय रोग।

अविपाकोऽरुचि स्थौल्यपाण्डुतागौरवक्लम । पित्तकाकोठकण्डू-नांसम्भवोऽरतिरेवच ॥ ११ ॥ आलस्यश्रमदौर्बल्यदौर्गन्ध्यम-वसादकः । श्लेष्मपित्तसमुत्क्लेशोनिद्रानाशोऽतिनिद्रता ॥१२॥ तन्द्राक्लैब्यमबुद्धित्वमशस्तस्वप्नदर्शनम् । बलवर्णप्रणाशश्चतृ-प्यतोबृंहणैरपि ॥ १३ ॥ बहुदोषस्यलिङ्गानितस्मैसंशोधन हितम् । ऊर्द्ध्वंचैवानुलोमञ्चयथादोषयथाबलम् ॥ १४ ॥

अन्नका परिपाक न होना, अरुचि, स्थूलता, पाडु, गुरुता, क्लम, फोडे, कोठ, जिल्दपर चकत्तेसे होना, खाज, इन सबका अधिकतासे होना, आलस्य, दुर्बलता,श्रम देहसे दुर्गंध आना अंगोका अवसाद, श्लेष्मा और पित्तकी अधिकता, दिलमचलाना, निद्राका नाश, अथवा अतिनिद्रा, नपुंसकता, तन्द्रा, बुद्धिनाश, खराब स्वप्न दीखना, बल और वर्णका नाश होना, यह लक्षण बृंहणद्वारा अत्यंत संतर्पित होनेसे होताहै ॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ और यही लक्षण जिसके शरीरमे बहुत दोष बढेहुए हों उसके भी होतेहै । ऐसे समय संशोधन करना परम हितकारक होताहै । यह शोधन दोषादि विचारकर ऊर्ध्वशोधन या अधःशोधन अथवा वमन विरेचन द्वारा दोनों तरहसे शोधन करना चाहिये ॥ १४ ॥

संशोधनका फल ।

एवंविशुद्धकोष्टस्यकायाग्निरभिवर्द्धते । व्याधयश्चोपशा म्यन्तिप्रकृतिश्चानुवर्तते ॥ १५ ॥ इन्द्रियाणिमनोबुद्धिर्वर्णश्चा स्यप्रसीदति । बलपुष्टिरपत्यञ्चवृषताचास्यजायते ॥ १६ ॥ जराकृच्छ्रेणलभतेचिरजीवत्यनामय । तस्मात्संशोधनकाले युक्तियुक्तंपिबेन्नर ॥ १७ ॥

इस प्रकार शुद्ध कोष्ठवाले मनुष्यके जठराग्निकी वृद्धि होताहै । सब रोग शांत होजातेहै । सब स्वाभाविक गुण ठीक होजातेहै । इन्द्रिये, मन बुद्धि, वर्ण, यह प्रसन्न होय । बल, पुष्टि, सतान, पुरुषपना, यह उत्पन्न होय । बुढापा जल्दी नहीं आता, नीरोग रहकर बडी आयुवाला होय । इसलिये युक्तियुक्त वमन विरेचनसे शरीरको उचित कालमे शुद्ध करना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

संशोधनकी उत्कृष्टता।

दोषा कदाचित्कुप्यन्तिजितालघनपाचनै. । जिता सशोधनैर्ये तुनतेषापुनरुद्भव ॥ १८ ॥ दोषाणाश्चद्रुमाणाश्चमूलेऽनुपहते सति । रोगाणाप्रसवाणाश्चगतानामागतिर्ध्रुवा ॥ १९ ॥

यदि लघन और पाचनद्वारा दोष जीतेजाय तो वह कभी फिर भी कुपित होसकतहै । परतु सशोधनद्वारा जीतेहुए दोष फिर प्रगट नहीं होसकते । दोषोंको और वृक्षोको यदि बिल्कुल जडसे न निकालदिया जाय तो उन दबेहुएदोषोंसे काल पाकर रोग और रहीहुई वृक्षकी जडसे फिर अकुरादि पैदा होना अवश्यभावी है इसलिये इनको जडसे निकालदेना ही अच्छा है ॥ १८ ॥ १९ ॥

औषधक्षीणके लिये पथ्य ।

भेषजक्षपितेपथ्यमाहारैरेवबृहणम् । घृतमासरसक्षीरहृद्ययूषोपसाधितै ॥ २० ॥ अभ्यङ्गोत्सादनै स्नानैर्निरूहै सानुवासनै । तथासलभतेशर्मयुज्यतेचायुषाचिरम् ॥ २१ ॥

यदि वमन विरेचनकी औषधिके अधिक सेवनसे मनुष्य क्षीण होजाय तो उसको पथ्य आहारासे पुष्ट करना चाहिये । तथा घृत, मासरस, दूध, हृद्य (हृदयको प्रिय) पदार्थ, यूषआदि देकर पुष्ट करे । और तेलकी मालिश उबटना, स्नान, निरूहण और अनुवासन वस्ति, करे ऐसा करनेसे उसका कल्याण होताहै और आयु बढतीहै ॥ २० ॥ २१ ॥

वमनविरेचनातियोगमे चिकित्सा ।

अतियोगानुबद्धानासर्पिःपानप्रशम्यते । तैलमधुकरै स्निग्धैश्च वाप्यनुवासनम् ॥ २२ ॥ यस्यत्वयोगस्तस्निग्धपुन सशोधयेन्नरम् । मात्राकालबलापेक्षीस्मरन्पूर्वमितिक्रमम् ॥ २३ ॥

यदि वमन विरेचनका अतियोग होगयाहो तो उसको योग्य औषधियोसे सिद्ध किया हुआ घृत पिलावे । अथवा मधुर आदि गणसे सिद्ध कियेहुए तेलकी मालिश

कर अथवा ऐसे ही तेलसे अनुवासनक्रिया करे ॥ २२ ॥ जिस मनुष्यको वमन, विरेचनका प्रयोग हुआहो उसको फिर स्नेहन, स्वेदन करके संशोधन करे । और मात्रा, समय, बल, इनका ध्यान रखना चाहिये, तथा प्रथम कहेहुए वमन विरेचनके क्रम और पेयादि पान करानेको याद रक्खे ॥ २३ ॥

स्नेहनेस्वेदनेशुद्धौरोगाः संसर्जनेचये । जायन्तेऽमार्गविहितेतेते पासिद्धिपुसाधनम् ॥ २४ ॥

स्नेहन स्वेदन, संशोधनआदि किसी क्रमसे बिगडनेसे जो रोग होतेहैं उनका यत्न सिद्धिस्थानमें कहाजायगा ॥ २४ ॥

जायन्तेहेतुवैषम्याद्विषमादेहधातवः । हेतुसाम्यात्समास्तेषा-स्वभावोपरमःसदा ॥ २५ ॥ प्रवृत्तिहेतुर्भावानानिरोधेऽस्तिकारणम् । केचित्तत्रापिमन्यन्तेहेतुहेतोरवर्त्तनम् ॥ २६ ॥

आहार विहार आदि किसी कारणकी विषमतासे शारीरिक धातुओंमें विषमता होतीहै और इसी प्रकार हेतु (कारण) की समतासे देहधारी धातुओंमें भी समता रहतीहै अर्थात् हेतुवैषम्यसे विषमता और हेतुसाम्यसे समता होना यह देहधारक धातुओंमें जो विषमता आदि अर्थात् कम और ज्यादा होना है इनका उपराम (नाश) होसकताहै । परन्तु धातुओंका नाश कभी नहीं होता । धातुओंको बढानेमें कारणोंकी प्रवृत्ति होसकतीहै अर्थात् अपने कारणोंसे प्रवृत्त होनेसे देहधारी धातु यह तो बढतेहैं परन्तु नाशको प्राप्त नहीं होसकते कोई कहतेहैं कि बढानेवाले कारणोंकी अप्रवृत्ति (अभाव) से यह बढते नहीं अर्थात् कम होजातेहैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एवमुक्तार्थमाचार्यमग्निवेशोऽभ्यभाषत । स्वभावोपरमकर्म चिकित्साप्राभृतस्यकिम् ॥ २७ ॥ भेषजैर्विषमान्धातून्कान्स मीकुरुतेभिषक् । कावाचिकित्साभगवन् किमर्थवाप्रयुज्यते ॥२८॥

इस प्रकार कहेहुए आचार्यके वचनको सुन अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन् ! इन स्वाभाविक देहधारी धातुओंके स्वभावका उपराम होने पर चिकित्सामें निपुण वैद्यका क्या कार्य है । और किन २ विषम धातुओंको वैद्य औषधिद्वारा समान करताहै । और वह चिकित्सा क्या है । तथा किस कार्यके लियेउस चिकित्साका प्रयोग कियाजाताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥

पुनर्वसुका उत्तर ।

तच्छिष्यवचनंश्रुत्वाव्याजहारपुनर्वसु । श्रूयतामत्रयासौम्य युक्तिर्दृष्टामहर्षिभि. ॥ २९ ॥ ननाशकारणाभावाद्भावानां नाशकारणम् । ज्ञायतेनित्यगस्येवकालस्यात्ययकारणम् ॥३०॥ शीघ्रगत्वाद्यथाभूतस्तथाभावोविपद्यते । विरोधकारणंनस्यना- स्तिनैवान्यथाक्रिया ॥ ३१ ॥

ऐसा शिष्यका कहाहुआ वचन सुनकर पुनर्वसुजी कहनेलगे कि हे सौम्य ! इस विषयमें महर्षियोंने जिस युक्तिका कथन कियाहै वह सुन जैसे नित्य कालके नाशका कारण नहीं प्रतीत होता अथवा यो कहिये कि जैसे भूतकालका शीघ्रगामी होनेसे भी नाशका कारण प्रतीत नहीं होता ऐसे ही नाशके कारणके अभावसे भावोंका नाश नहीं जाना जाता अर्थात् अभावको जो नाशका कारण मानतेहैं वह नहीं हो सकता क्योंकि भूत अवस्थामें जब द्रव्य विकृत हुआ तब वर्तमान अवस्थामें भी वही भूत अवस्था आई और भूत अवस्थाको ही सब लोग नाश कहतेहैं अवस्थामें वह नाशको प्राप्त नहीं हुआ इसलिये चिकित्साका करना भी अन्यथा नहीं है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

याभि क्रियाभिर्जायन्तेशरीरेधातव समा । साचिकित्साविका राणाकर्मतद्भिषजाम्मृतम् ॥ ३२ ॥ कथंशरीरेधातूनांवैषम्यंन भवेदिति । समानाञ्चानुबन्ध स्यादित्यर्थंक्रियतेक्रिया ॥ ३३ ॥

जिस क्रियाके करनेसे शरीरकी धातुएं साम्यावस्थाको प्राप्त होजायँ उस क्रियाको विकारोंकी चिकित्सा कहतेहैं । और चिकित्साकरनेमें जो कर्म होताहै वह वैद्योंका कर्म है ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार करनेसे शरीरकी धातुएं विषम न होनेपावें और जो विषम हों वह साम्यावस्थामें आजायँ तथा धातुओंकी समता बनी रहे इस वास्ते चिकित्साका प्रयोग किया जाताहै ॥ ३३ ॥

त्यागाद्विषमहेतूनांसमानाञ्चोपसेवनात् । विषमानानुबध्नन्ति जायन्तेधातव समा. ॥ ३४ ॥

धातुओंको विषम करनेवाले जो हेतु हैं उनका त्यागनेसे और साम्यावस्थाम रखनेवाले हेतुओंके सेवनसे धातुओंमें विषमता नहीं आती और समता प्राप्त रहती है ॥ ३४ ॥

समैस्तुहेतुभिर्यस्माद्धातून्सञ्जनयेत्समान् । चिकित्साप्राभृत-स्तस्माद्दातादेहसुखायुपाम् ॥ ३५ ॥ धर्मस्यार्थस्यकामस्यात्रि-लोकस्याभयस्यच । दातासम्पद्यतेवैद्योदानाद्देहसुखायु-षाम् ॥ ३६ ॥

सम हेतु आसे जिसलिये धातुओंम समता प्राप्त करताहै इसीलिये चिकित्साप्राभृत वैद्य ही आयु और सुखका दाता मानना चाहिये । धर्म, अर्थ, काम, और त्रिलोकीके सुखका कारण आरोग्यताको प्राप्त करनेवाला होनेसे वैद्यही देहसुख और आयुका दाता कहाजासकता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

तत्रश्लोकाः ।

चिकित्साप्राभृतगुणोदोपोयश्चेतराश्रय । योगायोगातियोगा-नालक्षणशुद्धिसंश्रयम् ॥ ३७ ॥ बहुदोपस्यलिङ्गानिसंशोधन-गुणाश्चये । चिकित्सासूत्रमात्रश्चसिद्धिव्यापत्तिसंश्रयम॥३८॥ याचयुक्तिश्चिकित्सायायचार्थंकुरुतेभिषक् ॥ चिकित्साप्राभृतेऽध्यायेतत्सर्वमवदन्मुनिः ॥ ३९ ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेकल्पनाचतुष्केचि-कित्साप्राभृतीयोनामपोडशोऽध्यायःसमाप्तः ॥ १६ ॥

(१) अध्यायपूर्तिमें यह श्लोक है कि इस चिकित्साप्राभृत अध्यायमें चिकित्साप्राभृत वैद्यके गुण और मूर्ख वैद्यके दोष, संशोधन विधिके योग, अयोग, अतियोग, इनके लक्षण, बहुत दोषके चिह्न, और संशोधनके गुण, सिद्धि और व्यापत्तिके आश्रयीभूत चिकित्साका सूत्रमात्र, चिकित्साके समयम युक्ति, जिसकारके लिये वैद्य चिकित्सा करताहै यह सब मुनिजीने वर्णन कियाहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं० रामप्रसाद०प्रसाद्यास्व्यभाषाटीकायां चिकित्साप्राभृतीयो नाम षोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्याय ।

अथातःकियन्त शिरसीयमध्यायंव्याख्यास्याम इतिहस्माह-भगवानात्रेय. ।

अब हम कियत.शिरसीय अध्यायका कथन करतेहैं । ऐसा आत्रेय भगवान् कहनेलगे ।

रोगोंपर अग्निवेशका प्रश्न ।

कियन्त.शिरसिप्रोक्तारोगाहृदिचदेहिनाम् ॥ १ ॥ कतिचाप्य-निलादीनांरोगामानविकल्पजा । क्षया कतिसमाख्याता पिडका.कतिचानघ ॥ २ ॥ गति कतिविधाचोक्तादोषाणांदो-षसूदन । हुताशवेशस्यवच तच्छुत्वागुरुरब्रवीत् ॥ ३ ॥

अग्निवेश पूछनेलगे हे अनघ ! मनुष्योंके शिरमें कितने रोग होतेहैं, हृदयमें कितने रोग होतेहैं तथा वात, पित्त, कफ के भेदसे और इनके विकल्प तथा अशादिभेदसे रोग कितने प्रकारके होतेहैं, क्षय कितने प्रकारके होतेहैं, पिडिका कितने प्रकारकी है । हे दोषोंके दूरकरनेवाले गुरो ! दोषोंकी गति कितने प्रकारकी है । अग्निवेशके इस वचनको सुनकर गुरु कहनेलगे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

गुरुका उत्तर ।

पृष्टवानसियत्सौम्य ! तन्मेशृणुसुविस्तरम् । दृष्टा पञ्चशिरो-रोगा पञ्चैवहृदयामया ॥ ४ ॥ व्याधीनांद्व्यधिकाषष्टिर्दोषमा-नविकल्पजा । दशाष्टौचक्षया सप्तपिडकामधुमेहिका ॥ ५ ॥ दोषाणांत्रिविधाचोक्तागतिर्विस्तरत शृणु ॥ ६ ॥

हे सौम्य ! जो तुमने मुझसे पूछाहै उसको विस्तारपूर्वक श्रवण करो । शिरमें होनेवाले रोग पांच प्रकारके देखनेमें आतेहैं । हृदयके रोग भी पांच प्रकारके ही होतेहैं । वातादि दोषोंकी अंशादिभेदकल्पनासे ६२ बासठ प्रकारके रोग होतेहैं । क्षय १८ प्रकारके होतेहैं । मधुमेहसे सात प्रकारकी पिडका होतीहै । दोषोंकी गति तीन प्रकारकी है । इन सबको अब विस्तारसे सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

शिरोरोगोंके कारण ।

सन्धारणाद्दिवास्वप्नाद्रात्रौजागरणान्मदात् । उच्चैर्भाष्यादव-

शिरके रोगोंको, जिन २ अपने कारणोंसे वह होतेहैं और उनके लक्षणोंको सुनो ॥ १२ ॥ १३ ॥

वातज रोगोंके कारण।

उच्चैर्भाष्यातिभाष्याभ्यातीक्ष्णपानात्प्रजागरात् । शीतमारुतसस्पर्शाद्व्यवायाद्वेगनिग्रहात् । उपवासाच्चाभिघाताद्विरेकाद्वमनादपि ॥ १४ ॥ बाष्पशोकपरित्रासाद्भारमार्गातिकर्षणात् । शिरोगताःशिराद्युष्टोवायुराविश्यकुप्यति ॥ १५ ॥ तत शूलंमहत्तस्यवातात्समुपजायते । निस्तुद्येतेभृशंशङ्खौघाटासम्भिद्यतेतथा ॥ १६ ॥ भ्रुवोर्मध्यललाटञ्चतपतीवातिवेदनम् । बाध्येतेस्वनत श्रोत्रेनिष्क्रष्येतइवाक्षिणी ॥ १७ ॥ घूर्णतीव शिर सर्वंसन्धिभ्यइवमुच्यते । स्फुरत्यतिशिराजालतुद्यतेच शिरोधरा ॥ १८ ॥

बहुत ऊचे और अधिक बोलनेसे, तीक्ष्ण मद्यादि पीनेसे, रात्रिमे जागनेसे, शीत पवनके लगनेसे, अति कसरतसे, मलादिवेगोंको रोकनेसे,उपवास करनेसे, अभिघातसे विरेचन और वमनजन्य विकारसे, रोनेसे, शोकसे, भयसे, त्राससे, वोझ उठानेसे, अति मार्गचलनेसे, अत्यत दु.खसे, मस्तकगत वायु शिरकी नसाम प्रवेश कर कुपित होजाताहै तब उस वायुसे भारी शूल उत्पन्न होताहै । और दोनो कनपटियोंमे पीडा होना, गरदनमे पीडा, भौंवके मध्यमे पीडा, मस्तकका तपना और पीडायुक्त होना, कानोम शब्दसा होना, नत्रोमे खिचावट, शिरका घूमना और शिरकी सधियोका खुलसा जाना, शिरकी नसोका फडकना,शिरके धारण करनेवाली नसोमे पीडा होना, यह लक्षण वातजन्य शिरोरोगमे होतेहै ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

स्निग्धोष्णमुपसेवेतशिरोरोगेऽनिलात्मके ॥ १९ ॥

वातजन्य शिरोरोगमे स्निग्ध और उष्णक्रियाका सेवन करे ॥ १९ ॥

पित्तज शिरोरोगोंके कारण।

कट्वम्ललवणक्षारमद्यक्रोधातपानलै । पित्तंशिरसिसन्दुष्टंशिरोरोगायकल्पते ॥ २० ॥ दह्यतेरुज्यतेतेनशिर शीतिनशाम्यते । दह्येतेचक्षुषीतृष्णाभ्रम स्वेदश्चजायते ॥ २१ ॥

चर्परे, खट्टे, नमकीन और खारे, पदार्थोंके सेवनसे, मद्य पीनेसे, क्रोधसे, धूप, और अग्निके परितापसे, मस्तकका पित्त कुपित होकर मस्तकमें पित्तकी पीडा करताहै । तब मस्तकमें दाहयुक्त तोद (पीडा) होताहै यह तोद शीतल पदार्थोंके सेवनसे शान्त होताहै । जब पित्तजन्य मस्तकपीडा होतीहै तो नेत्रोंमें दाह प्यास भ्रम, पसीना आना, यह उपद्रव होतेहैं ॥ २० ॥ २१ ॥

कफज शिरोरोगके लक्षण ।

आस्यासुखैःस्वप्नसुखैर्गुरुस्निग्धातिभोजनै । श्लेष्माशिरसि सन्दुष्टः शिरोरोगायकल्पते ॥ २२ ॥ शिरोमन्दरुजतेन सुप्तिस्तिमितभारिकम् । भवत्युत्पद्यतेतन्द्रातथालस्यमरोचक. २३ ॥

बहुत बैठारहनेसे, बहुत सोनेसे, भारी और चिकने पदार्थोंके अधिक सेवनसे, शिरमें रहनेवाला कफ दूषित होकर कफजन्य मस्तक पीडा करताहै । उससे शिरमें मंद २ पीडा होना, निद्रा आईहुईसी रहना, मस्तक गीलासा प्रतीत होना और बोझल होना, तन्द्रा, आलस्य, और अरुचिका होना यह लक्षण कफजन्य मस्तक पीडाके होतेहै ॥ २२ ॥ २३ ॥

त्रिदोषज शिरोरोगके लक्षण ।

वाताच्छूलभ्रमःकम्प.पित्ताद्दाहोमदस्तृषा ।
कफाद्गुरुत्वतन्द्राचशिरोरोगेत्रिदोषजे ॥ २४ ॥

त्रिदोषसे उत्पन्नहुए शिरोरोगमें-वायुसे शूल और भ्रम, पित्तसे दाह, मद, तृषा, कफसे भारीपन और तन्द्रा, यह लक्षण होतेहै ॥ २४ ॥

कृमिज शिरोरोगका लक्षण ।

तिलक्षीरगुडाजीर्णपूतिसंकीर्णभोजनात् । क्लेदोऽसृक्कफमांसानांदोषलश्चास्योपजायते ॥ २५ ॥ तत शिरसिसंक्लेदात्क्रिमय' पापकर्मण । जनयन्तिशिरोरोगजातवीभत्सलक्षणम् ॥२६॥ व्यधच्छेदरुजाकण्डूशोफदौर्गन्ध्यदु:खितम् । क्रिमिरोगातुर विद्यात्क्रिमीणांलक्षणेनच ॥ २७ ॥

तिल, दूध, गुड, अजीर्णकर्ता पदार्थ, दुर्गंधित और बासी विरुद्ध भोजनके सेवनसे मस्तकके रक्त, कफ और मांसमें दोषयुक्त क्लेद (गीलापन) होजाताहै ।

इस कुपथ्य पर चलनेवाले मनुष्यके शिरमें इस दूषित क्लेदसे कृमि उत्पन्न होतेहैं। जो भयानक लक्षणावाले शिरोरोग उत्पन्न करतेहैं तब शिरमें वेधने और छेदनेकी सी पीडा, खाज, सूजन, दुर्गंधसे दुःखित होना, कृमियोंके अन्य लक्षण होना यह कृमिजन्य मस्तकपीडामें होतेहैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

वातजन्य हृदयरोग।

शोकोपवासव्यायामशुष्करूक्षाल्पभोजनैः। वायुराविश्य हृदयं जनयत्युत्तमारुजम् ॥ २८ ॥ वेपथुर्वेष्टनंस्तम्भः प्रमोहः शून्यता द्रवः। हृदिवातातुरेरूपजीर्णेचात्यर्थवेदना ॥ २९ ॥

शोक, उपवास और व्यायाम, शुष्क, रूक्ष और अल्प भोजनके करनेसे वायु हृदयमें प्रवेश कर अत्यंत पीडाको पैदा करताहै। तब हृत्कंप, लपेटनेकी सी पीडा, स्तंभ, मोह, शून्यता, होलदिली, यह वातके हृदयरोगमें होतेहैं और अन्न जीर्ण होनेपर विशेषतासे पीडा होतीहै ॥ २८ ॥ २९ ॥

पित्तज हृदयरोग।

उष्णाम्ललवणक्षारकटुकाजीर्णभोजनैः। मद्यक्रोधातपैश्चाशु हृदिपित्तप्रकुप्यति ॥ ३० ॥ हृद्दाहस्तिक्तताक्त्रेऽम्ल पित्ताम्लकोद्गर। तृष्णामूर्च्छाभ्रम स्वेद पित्तहृद्रोगलक्षणम् ॥ ३१ ॥

गरम, खट्टे, नमकीन, खारे, चरपरे और अजीर्णकर्ता पदार्थोंके खानेसे, मद्य पीनेसे, क्रोधसे, धूपके लगनेसे, हृदयमें पित्त कुपित होताहै। तब हृदयमें दाह होताहै, मुखमें कड़वापन, खट्टी, कडुई डकारका आना, कायली, तृषा, मूर्छा, भ्रम, दाह, यह लक्षण पित्तसे उत्पन्न हुए हृद्रोगमें होतेहैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

कफज हृद्रोगके लक्षण।

अत्यादानगुरुस्निग्धमचिन्तनमचेष्टनम्। निद्रासुखंचाभ्यधिककफहृद्रोगलक्षणम् ॥ ३२ ॥ हृदयकफहृद्रोगेसुप्तंस्तिमितभारिकम्। तन्द्रारुचिपरीतस्यभवत्यश्मावृतयथा ॥ ३३ ॥

अत्यंत भोजनसे, भारी और चिकने पदार्थोंके खानेसे, बेफिकरी और आलस्यसे, अधिक सोनेसे, कफजन्य हृद्रोग उत्पन्न होताहै। कफके हृद्रोगमें हृदय सोयाहुआ सा, गीला और भारी प्रतीत होताहै। तथा तन्द्रा, अरुचि, और हृदयका पत्थरसे दबा हुआसा प्रतीत होना यह लक्षण कफजन्य हृद्रोगमें होतेहैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

सान्निपातिक हृद्रोगवर्णन ।

हेतुलक्षणससर्गादुच्यतेसान्निपातिक । त्रिदोपजेतुहृद्रोगेयो दुरात्मानिपेवते । तिलक्षारगुडादीनिग्रन्थिस्तस्योपजायते॥३४॥ मर्मैकदेशेसंक्लेदरसश्चास्योपगच्छति । संक्लेदात्क्रिमयश्चास्यभवन्त्युपहतात्मन ॥३५॥ मर्मैकदेशेतेजाता सर्पन्तोभक्षयन्तिच । तुद्यमानस्वहृदयसूचीभिरिवमन्यते ॥ ३६ ॥ छिद्यमानयथाशस्त्रैर्जातकण्डूमहारुजम् । हृद्रोगक्रिमिजंत्वेतैर्लिङ्गैर्बुद्ध्वासुदारुणम् । त्वरेतजेतुतविद्वान्विकारशीघ्रकारिणम् ३७

तीनो दोपोके हेतुआसे त्रिदोपके लक्षणवाला हृद्रोग होताहै । जो अनितात्मा मनुष्य त्रिदोपके हृद्रोगमे तिल, दूध, गुड, आदि पदार्थोको खाताहै उसके हृदयमे ग्रंथि उत्पन्न होजातीहै । तब मर्मके किसी एक स्थानमे रस संक्लेदित होजाताहै. उत्क्लेदसे कृमि होजातेहै वह किसी एक स्थानमे पैदाहुए कृमि इधर उधर घूमते और खाते फिरतेहै । उस समय इस मनुष्यको अपने हृदयमे सुई चुभनेकीसी पीडा प्रतीत होतीहै । और जैसे शस्त्रसे कोइ काटताहो ऐसा प्रतीत होताहै।खुजली और भारी शूल भी कृमिजन्य हृद्रोगके लक्षण है। ऐसे घोर लक्षणवाले हृद्रोगको बुद्धिमान् वैद्य त्यागदेवे (या शीघ्र उपायकरे) क्योकि यह रोग मनुष्यको शीघ्र मार डालताहै ॥ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

द्व्युल्बणैकोल्बणै षट्स्युर्हीनमध्याधिकैश्चषट् । समैश्चैकोविकारास्तेसन्निपातेत्रयोदश ॥ ३८ ॥

दो दो दोपोकी प्रबलतासे ३ एक २ दोपकी प्रबलतासे ३ मिलकर ६ हुए जैसे वातपित्तोल्बण, वातकफोल्बण, कफपित्तोल्बण वातोल्बण, पित्तोल्बण, कफोल्बण यह ६ हुए ऐसे ही वात पित्त कफ इनके हीन मध्य अधिकके भेदसे ६ हुए और एक तीनोकी समतासे, ऐसे सब मिलकर सन्निपात १३ प्रकारके हुए ॥ ३८ ॥

संसर्गविकारोके भेद ।

संसर्गेणनवषट्तेभ्यएकवृद्ध्यासमैस्त्रय ।
पृथक्त्रयश्चतैर्वृद्धैर्व्याधय पञ्चविंशति. ॥ ३९ ॥

एक दोपकी वृद्धिसे ६ भेद और दोनोकी समतासे तीन भेद इस प्रकार द्विदोपज व्याधि ९ प्रकारकी होतीहै । और अलग २ एक २ दोपके बढनेसे एकदोपज रोग तीन प्रकारके ३ । इस प्रकार दोपोकी वृद्धि आदिके भेदसे २५ प्रकारकी व्याधियां होतीहै ॥ ३९ ॥

यथावृद्धेस्तथाक्षीणेदोषे स्युः पञ्चविंशतिः ।
वृद्धिक्षयकृतश्चान्योविकल्पउपदेक्ष्यते ॥ ४० ॥

दोषाकी वृद्धिके अनुसार दोषाकी क्षीणतासे भी २५ प्रकारकी व्याधिया होतीहै । ऐसे ही दोषाकी वृद्धि और क्षीणताके विकल्पसे व्याधिय होतीहै ॥ ४० ॥

वृद्धिरेकस्यसमताचैकैकस्यचसंक्षय. ।
द्वन्द्ववृत्ति क्षयश्चैकस्यैकावृद्धिर्द्वयो क्षय ॥ ४१ ॥

एक दोषकी वृद्धि, दूसरेकी समता तीसरेका क्षय इस प्रकार ६ भेद हुए । दोनोकी वृद्धि एकका क्षय और एककी वृद्धि दोनोका क्षय इस प्रकारसे ७ भेद होसकतेहै उनको ही आगे कहतेहै ॥ ४१ ॥

प्रकृतिस्थयदापित्तमारुत श्लेष्मण क्षये । स्थानादादायगात्रेषुतत्रतत्रविसर्पति ॥ ४२ ॥ तदाभेदश्चदाहश्चतत्रतत्रानवस्थिता । गात्रदेशेभवेत्तस्यश्रमोदौर्बल्यमेवच ॥ ४३ ॥

जब कफक्षय होजाताहै तो प्रकृतिस्थ पित्तको उसके स्थानसे लेकर वायु इधर उधर शरीरके अगाम भ्रमण करताहै । वह वायु इधर उधर फिरताहुआ जिस २ अगमें घूमताहै उसी २ स्थानम भेदनकी सी पीडा, दाह, भ्रम और दुर्बलताको करताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

साम्येस्थितकफवायु क्षीणेपित्तेयदावली ।
कर्षेत्कुर्यात्तदाशूलसशैत्यस्तम्भगौरवम् ॥ ४४ ॥

जब पित्त क्षीण होजाताहै तो प्रकृतिस्थ कफको बलवान वायु जिस २ स्थानम लेजाताहै उस २ अगम शूल, शीतता, स्तंभ, और भारीपनको करताहै ॥ ४४ ॥

यदानिलप्रकृतिगपित्तकफपरिक्षये ।
सरुणद्धितदादाह शूलचास्योपजायते ॥ ४५ ॥

कफके क्षय होनेसे प्रकृतिस्थ वायुके मध्य मार्गोंको जब पित्त रोकताहै तो इस मनुष्यके शरीरमें दाह और शूल होताहै ॥ ४५ ॥

श्लेष्माणहिमसपित्तयदावातपरिक्षये ।
निपीडयेत्तदाकुर्यात्सतन्द्रागौरवज्वरम् ॥ ४६ ॥

वायुके क्षय होनेपर प्रकृतिस्थ कफको पित्तसे जब रोकताहै तब तन्द्रा भारीपन और ज्वर इनको उत्पन्न करताहै ॥ ४६ ॥

वातपित्तक्षयेश्लेष्मास्रोतास्यभिदधक्षशम् ।
चेष्टाप्रणाशमूर्च्छांश्चवाक्सङ्गञ्चकरोतिहि ॥ ५६ ॥

वात पित्तके क्षय होनेपर कफ स्रोतोंको अच्छीतरहसे रोककर चेष्टाका नाश, मूर्छा, और वाणीका अवरोध करताहै ॥ ५६ ॥

श्लेष्मवातक्षयेपित्तदेहौज स्त्रसयेद्यदा ।
ग्लानिमिन्द्रियदौर्बल्यतृष्णामूर्च्छांक्रियाक्षयम् ॥ ५७ ॥

वात और कफके क्षय होने पर पित्त देहके ओजको बिगाडकर ग्लानि इंद्रियोंकी दुर्बलता, तृषा, मूर्छा और देहकी क्रियाका नाश करताहै ॥ ५७ ॥

पित्तश्लेष्मक्षयेवायुर्मर्माण्यतिनिपीडयन् ।
प्रणाशयतिसंज्ञांचवेपयत्यथवानरम् ॥ ५८ ॥

जब पित्त और कफ क्षीण होजातेहै तो वायु मर्मस्थानोंको पीडित करता हुआ संज्ञाका नाश करताहै अथवा कंप पैदा करताहै ॥ ५८ ॥

दोषा प्रवृद्धा स्वलिङ्गंदर्शयन्तियथाबलम् ।
क्षीणाजहतिलिङ्गंस्वसमा सङ्कर्म्मकुर्वते ॥ ५९ ॥

जब दोष बढ जातेहै तो अपने २ लक्षणोंको दिखातेहैं । ऐसे ही क्षीण हुए दोष अपने चिह्नोंको त्यागदेतेहै । और साम्यावस्थामें स्थितहुए दोष अपने योग्य कार्य करतेहै ॥ ५९ ॥

वातादीनांरसादीनामलानामोजसस्तथा ॥
क्षयस्तत्रानिलादीनामुक्तसंक्षीणलक्षणम् ॥ ६० ॥

वातादि तीन दोष, रसादि सात धातु, मलमूत्र और ओज इन सबका क्षय होताहै । इनमें वातादि तीन दोषोंके १८ प्रकारसे क्षयके लक्षण कहे जाचुके है (अब रसादिकोंके कहतेहै) ॥ ६० ॥

क्षीणरसके लक्षण ।

घट्टतेसहतेशब्दनोच्चैर्द्रवतिशूयते । हृदयताम्यतिस्वल्पचेष्टस्या पिरसक्षये ॥ ६१ ॥ परुषास्फुटिताम्लानात्वग्रूक्षारक्तसंक्षये । मांसक्षयेविशेषेणस्फिग्ग्रीवोदरशुष्कता ॥ ६२ ॥

रसके क्षय होनेसे हृदयमें घटपटी, ऊंचा शब्द न सहाजाना, हृदयका धडकना शरीरमें शोथ होना, हृदयका धक २ करना, अल्प परिश्रम करनेसे भी मनकी व्याकुलता

प्रवृद्धोहियदाश्लेष्मापित्तेक्षीणेसमीरणम् ।
रुन्ध्यात्तदाप्रकुर्वीतशीतकंगौरवज्वरम् ॥ ४७ ॥

पित्तकी क्षीणतामें प्रकृतिस्थ वायुको जब कफ रोकदेताहै तब शीत लगना गौरव, और ज्वर यह होतेहैं ॥ ४७ ॥

समीरणेपरिक्षीणेकफ पित्तसमत्वगम् । कुर्वीतसन्निरुन्धानो मृद्वग्नित्वशिरोग्रहम् ॥ ४८ ॥ निद्रातन्द्राप्रलापश्चहृद्रोगगात्रगौरवम् । नखादीनाञ्चपीतत्वष्ठीवनकफपित्तयोः ॥ ४९ ॥

वायुके क्षय होनेपर यदि प्रकृतिस्थ पित्तको कफ रोकदेवे तो मन्दाग्नि, शिरमें पीडा, निद्रा, तन्द्रा नकवाद हृद्रोग, गौरव, नख नेत्र मूत्रमें पीलापन, कफ और पित्तका मुखसे थूकना यह लक्षण होतेहैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

हीनवातस्यतुकफ पित्तेनसहितश्चरन् । करोत्यरोचकापाकौसदनगौरवंतथा ॥ ५० ॥ हृल्लासमास्यस्रवणदूयनंपाण्डुतामदम् । विरेकस्यहिवैपम्यंवैपम्यमनलस्यच ॥ ५१ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें वायुकी क्षीणता हो उसके शरीरमें कफ पित्तसे मिलकर विचरती हुई अरुचि, अपाक, देहका रहजाना, गुरुता, हृल्लास, मुखस्राव पांडु, मदना मन्द, मलकी विषमता और जठराग्निकी विषमताको करती है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

क्षीणपित्तस्यतुश्लेष्मामारुतेनोपसंहितः । स्तम्भशैत्यचतोदञ्चजनयत्यनवस्थितम् ॥ ५२ ॥ गौरवमृदुतामग्नेर्भक्ताश्रद्धाप्रवेपनम् । नखादीनाञ्चशुक्लत्वगात्रपारुष्यमेवच ॥ ५३ ॥

पित्तके क्षय होनेपर कफ-वायुसे मिलकर विचरताहुआ स्तंभ शीतता, तोद गुरुता मन्दाग्नि, अन्नमें द्वेष, कंप, नखादिकोंमें श्वेतता तथा देहमें कठोरता करताहै॥५२॥५३॥

हीनेकफेमारुतस्तुपित्तंतुकुपितद्वयम् । करोतियानिलिङ्गानिशृणुतानिसमासतः ॥ ५४ ॥ भ्रममुद्वेष्टनन्तोददाहस्फोटनवेपनम् । अङ्गमर्दपरीशोपहृदयेधूपनंतथा ॥ ५५ ॥

कफके क्षय होनेपर वायु और पित्तके मिलकर जो रोग होतेहैं उनको भी संक्षेपसे सुनो । वह यह है-भ्रम उद्वेष्टन तोद, दाह, हड्डियोंका स्फोटन, कंपन, अंगमर्द, देहका शोष, हृदयमें धुवाँसा उठना ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

वातपित्तक्षयेश्लेष्मास्त्रोतास्यभिदधद्भृशम् ।
चेष्टाप्रणाशमूर्च्छांश्चवाक्सङ्गश्चकरोतिहि ॥ ५६ ॥

वात पित्तके क्षय होनेपर कफ स्रोतोंको अच्छीतरहसे रोककर चेष्टाका नाश, मूर्छा, और वाणीका अवरोध करताहै ॥ ५६ ॥

श्लेष्मवातक्षयेपित्तदेहौज स्त्रंसयेद्यदा ।
ग्लानिमिन्द्रियदौर्बल्यंतृष्णामूर्च्छांक्रियाक्षयम् ॥ ५७ ॥

वात और कफके क्षय होने पर पित्त देहके ओजको बिगाडकर ग्लानि इंद्रियोंकी दुर्बलता, तृषा, मूर्छा और देहकी क्रियाका नाश करताहै ॥ ५७ ॥

पित्तश्लेष्मक्षयेवायुर्मर्माण्यतिनिपीडयन् ।
प्रणाशयतिसञ्ज्ञाचवेपयत्यथवानरम् ॥ ५८ ॥

जब पित्त और कफ क्षीण होजातेहैं तो वायु मर्मस्थानोंको पीडित करता हुआ सज्ञाका नाश करताहै अथवा कंप पैदा करताहै ॥ ५८ ॥

दोषा प्रवृद्धा.स्वलिङ्गं दर्शयन्तियथाबलम् ।
क्षीणाजहतिलिङ्गंस्वसमा सङ्कर्म्मकुर्वते ॥ ५९ ॥

जब दोष बढ जातेहै तो अपने २ लक्षणोको दिखातेहैं । ऐसे ही क्षीण हुए दोष अपने चिह्नोको त्यागदेतेहै । और साम्यावस्थामे स्थितहुए दोष अपने योग्य कार्य करतेहै ॥ ५९ ॥

वातादीनांरसादीनामलानामोजसस्तथा ॥
क्षयस्तत्रानिलादीनामुक्तसंक्षीणलक्षणम् ॥ ६० ॥

वातादि तीन दोष, रसादि सात धातु, मलमूत्र और ओज इन सबका क्षय होताहै । इनमे वातादि तीन दोषोके १८ प्रकारसे क्षयके लक्षण कहे जाचुके है (अब रसादिकोके कहतेहै) ॥ ६० ॥

क्षीणरसके लक्षण ।

घट्टतेसहतेशब्दनोच्चैर्द्रवतिशूयते। हृदयताम्यतिस्वल्पचेष्टस्या पिरसक्षये ॥ ६१ ॥ परुपास्फुटितम्लानात्वग्रूक्षारक्तसंक्षये । मांसक्षयेविशेषेणास्फिग्ग्रीवोदरशुष्कता ॥ ६२ ॥

रसके क्षय होनेसे हृदयमें पीडा, ऊंचा शब्द न सहाजाना रस क्षीण होनेसे हृदयमें न रहना हौल होना, स्वल्प श्रम २ करना, अल्प परिश्रम करनेसे भी मनकी व्याकुलता

नेत्रोंके आगे अंधकार सा आजाना यह लक्षण होतेहैं ॥ ६१ ॥ रक्तके क्षय होनेसे त्वचा कठोर फटनेसी और रूखी होजातीहै। मांसके क्षय होनेसे कमर, गर्दन और उदर यह विशेषतासे सूख जाते ॥ ६२ ॥

मेदक्षीणके लक्षण।

सन्धीनांस्फुटनंग्लानिरक्ष्णोरायासएवच।
लक्षणंमेदसिक्षीणेतनुत्वंचोदरस्यच. ॥ ६३ ॥

मेदके क्षय होनेसे-गांठियोंका स्फोटन, ग्लानि, नेत्रोंका निकलसा पड़ना, थकावट, और उदर तथा त्वचाका कृश होना यह लक्षण होतेहैं ॥ ६३ ॥

अस्थिक्षयके लक्षण।

केशलोमनखश्मश्रुद्विजप्रपतनंश्रमः।
ज्ञेयमस्थिक्षयेरूपंसन्धिशैथिल्यमेवच ॥ ६४ ॥

अस्थियोंमें क्षीणता होनेसे केश, रोम, नख, डाढीमूछ, और दांतोंका गिरना और श्रम तथा संधियोंमें शिथिलता यह लक्षण होतेहैं ॥ ६४ ॥

मज्जाक्षीणके लक्षण।

शीर्यन्तइवचास्थीनिदुर्बलानिलघूनिच।
प्रततंवातरोगीचक्षीणेमज्जनिदेहिनाम् ॥ ६५ ॥

मज्जाके क्षय होनेसे हड्डियोंका गिरपड़ना सा प्रतीत होना और दुर्बल तथा हलकी होना और दुर्बल तथा हलकी होजाना, और सर्व शरीरमें वातव्याधिका रहना यह लक्षण होतेहैं ॥ ६५ ॥

क्षीणशुक्रके लक्षण।

दौर्बल्यंमुखशोषश्चपाण्डुत्वंसदनंश्रमः।
क्लैब्यंशुक्राविसर्गश्चक्षीणशुक्रस्यलक्षणम् ॥ ६६ ॥

वीर्यके क्षय होनेसे दुर्बलता, मुखका सूखना, शरीरका पीला पड़जाना, अंगोंका रहजाना, श्रम, नपुंसकता और वीर्यका न आना यह लक्षण होतेहैं ॥ ६६ ॥

विष्ठाक्षयके लक्षण।

क्षीणेशकृतिचान्त्राणिपीडयन्निवमारुतः।
रूक्षस्योन्नमयन्कुक्षिंतिर्य्यगूर्ध्वंचगच्छति ॥ ६७ ॥

मलके क्षय होनेसे–वायु आत्माको पीडन करताहै ऐसा प्रतीत होताहै। और इसी कारण उस रूक्ष मनुष्यके शरीरमें वायु कूखको ऊंची तिरछी करता हुआ ऊपरको गमन करताहै ॥ ६७ ॥

मूत्रक्षीणका लक्षण।

मूत्रक्षयेमूत्रकृच्छ्रंमूत्रवैवर्ण्यमेवच।
पिपासाबाधतेचास्यमुखञ्चपरिशुष्यति ॥ ६८ ॥

मूत्रके क्षय होनेसे–मूत्रकृच्छ्र, मूत्रकी विवर्णता, प्यास, मुखशोष, यह लक्षण होतेहैं ॥ ६८ ॥

मलक्षीणके लक्षण।

मलायनानिचान्यानिशून्यानिचलघूनिच।
विशुष्काणिचलक्ष्यन्तेयथास्वंमलसंक्षये ॥ ६९ ॥

अन्य२मलमार्गोके मलहीन होनेसे वह मार्ग शून्यतायुक्त तथा हलके और सूखेसे प्रतीत होतेहैं ॥ ६९ ॥

क्षीण ओजका लक्षण।

बिभेतिदुर्बलोऽभीक्ष्णंध्यायतिव्यथितेन्द्रियः।
दुश्छायोदुर्मनारूक्षः क्षामश्चैवौजसःक्षये ॥ ७० ॥

ओजके क्षयहोनेसे मनुष्य–भयभीत, दुर्बल, निरन्तर चिन्तायुक्त, विकलेन्द्रिय, कान्तिरहित, रूक्ष और कृश होजाताहै ॥ ७० ॥

ओजलक्षण।

हृदितिष्ठतियच्छुद्धंरक्तमीषत्सपीतकम्।
ओजःशरीरेसंख्याततन्नाशान्नाविनश्यति ॥ ७१ ॥

जो शुद्ध रक्त किंचित पीतता लिये हृदयमें रहताहै शरीरमें उसका ओज कहतेहैं, उस ओजके नाश होनेसे मनुष्य भी नाशको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥

धातुक्षयके कारण।

व्यायामोऽनशनंचिन्तारूक्षाल्पप्रमिताशनम्।
वातातपौभयंशोकोरूक्षपानंप्रजागरः ॥ ७२ ॥
कफशोणितशुक्राणांमलानांचातिवर्त्तनम्।
कालोभूतोपघातश्चज्ञातव्याःक्षयहेतवः ॥ ७३ ॥

अतिव्यायाम, भूखे रहना, चिंता, रूक्ष और थोड़ा भोजन करना, वायु और धूपका सहना, भय शोक रूक्ष वस्तुओंका सेवन बहुत जागना कफ और रक्त तथा वीर्यका अत्यंत निकलना, या निकालना खाँसी और भूतबाधा यह सब क्षय होनेके कारण हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

गुरुस्निग्धाम्ललवणं भजतामतिमात्रशः । नवमन्नं च पानं च निद्रामास्यासुखानि च ॥ ७४ ॥ त्यक्तव्यायामचिन्तानां संशोधनमकुर्वताम् । श्लेष्मा पित्तं च मेदश्च मांसं चातिप्रवर्द्धते ॥ ७५ ॥ तैरावृतः प्रसादं ह्यगृहीत्वा याति मारुतः । यदा वस्तिं तदा कृच्छ्रो मधुमेहः प्रवर्त्तते ॥ ७६ ॥

भारी, चिकने, खट्टे, और नमकीन पदार्थोंके अधिक सेवनसे नवीन अन्नके खानेसे, बहुत जल अथवा मद्यके पीनेसे बहुत सोनेसे बहुत सुखपूर्वक बैठे रहनेसे, कसरतके न करनेसे, बेफिकर रहनेसे, संशोधन कर्म न करनेसे कफ, पित्त, मेद और मांस बहुत बढ़जाते हैं। फिर वायु उनसे आवृत हो ओज (सबधातुओंके परम तेजको) लेकर जब वस्तिस्थानमें प्राप्त होताहै तब दुःसाध्य मधुमेह उत्पन्न होजाताहै ॥ ७४-७६ ॥

समारुतस्य पित्तस्य कफस्य च मुहुर्मुहुः ।
दर्शयत्याकृतिं कृत्वा क्षयमाप्याययते पुनः ॥ ७७ ॥

यह मधुमेह पहले वात पित्त और कफके लक्षणोंको बारबार दिखाताहै फिर क्षयको उत्पन्न करदेताहै ॥ ७७ ॥

मधुमेहके उपद्रव ।

उपेक्षयास्य जायन्ते पिडकाः सप्त दारुणाः । मांसलेष्ववकाशेषु मर्मस्वपि च सन्धिषु ॥ ७८ ॥ शराविका कच्छपिका जालिनी सर्षपी तथा । अलजी विनता या च विद्रधी चेति सप्तमी ॥ ७९ ॥

मधुमेहकी उपेक्षासे सात प्रकारकी दारुण पिडका मांसवाले स्थानोंमें, मर्मस्थानमें संधिस्थानमें उत्पन्न होतीहैं । उनके-शराविका कच्छपिका, जालिनी, सर्षपी, अलजी, विनता विद्रधि, यह सात नाम हैं ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अन्तोन्नता मध्यनिम्ना श्यावा क्लेदरुजान्विता । शराविका स्यात्पिडका शरावाकृतिसंस्थिता ॥ ८० ॥

जो पिडका ऊंचे किनारोंवाली हो मध्यमें नीची हो श्याव क्लेद और पीड़ा युक्त हो तथा शरावके आकारकी हो उसको शराविका कहतेहैं ॥ ८० ॥

अवगाढार्त्तिनिस्तोदामहावास्तुपरिग्रहा। श्लक्ष्णाकच्छपपृष्ठा भापिडकाकच्छपीमता ॥ ८१ ॥ स्तब्धाशिराजालवतीस्निग्ध-स्रावामहाशया। रुजानिस्तोदबहुलासूक्ष्मच्छिद्राचजालिनी ॥८२॥

जिसमें कडापन हो, भेदनकी सी पीडा होतीहो, गभीर हो, जो अनेक स्थानोंमें व्यापक हो, जिसका ऊपरका भाग चिकना और कछुवेकी पीठके समान हो उस-को कच्छपिका कहतेहैं ॥ ८१ ॥ जो पिटक चौडीसी हो, उसपर नसोंका जालसा दिखाई देताहो, उसमेंसे चिकना २ स्राव होताहो, अधिक दूर तक व्याप्तहो जिसमें अत्यंत पीडा हो, भेदनकी सी पीडा हो, छोटे २ बहुतसे छिद्र हो उसको जालिनी कहतेहैं ॥ ८२ ॥

पिडकानातिमहतीक्षिप्रपाकामहारुजा । सर्षपीसर्षपाभाभि पिडकाभिश्चिताभवेत् ॥ ८३ ॥ दहतित्वचमुत्थानेतृष्णामोह-ज्वरप्रदा ॥ विसर्पत्यनिशंदुःखाद्दहत्यग्निरिवालजी ॥ ८४ ॥

जो पिडका बडी न हो, और शीघ्र पकजावे, उसमें पीडा बहुत हो, सरसोंके समान हो, खुजलीयुक्त हो उसको सर्षपिका कहतेहैं ॥ ८३ ॥ जिस पिटकामें कडापन हो, पीडा अधिक हो, क्लेद अधिक हो पीठ अथवा पेट पर प्रगट हुईहो, जो बडी हो, दबानेमें नरम हो, नीले रंगकी हो उसको विनता कहतेहैं ॥ ८४ ॥

अवगाढरुजाक्लेदापृष्ठेवाप्युदरेऽपिवा । महतीविनतानीला पिडकाविनतामता ॥ ८५ ॥

विद्रधी दो प्रकारकी होतीहै एक बाहरी दूसरी भीतरी । बाह्य विद्रधि-त्वचा, स्नायु और मांसमें प्रगट होतीहै यह देखनेमें मोटी नसके समान होतीहै और इसमें पीडा अधिक होतीहै ॥ ८० ॥

विद्रधिंद्विविधामाहुर्बाह्यामाभ्यन्तरींतथा ॥ बाह्यात्वक्स्नायु मांसोत्थाकण्डराभामहारुजा ॥ ८६ ॥ शीतकान्नविदाह्युष्ण रूक्षशुष्कातिभोजनात् । विरुद्धाजीर्णसंक्लिष्टविषमासात्म्य भोजनात् । व्यापन्नबहुमद्यत्वाद्वेगसन्धारणाच्छ्रमात् ॥ ८७ ॥ जिह्मव्यायामशयनादतिभाराध्वमैथुनात् । अन्तःशरीरेमांसा-

सरक्ताविशन्तिचयदामलाः ॥ ८८ ॥ तदास्यजायतेग्रन्थिर्गम्भीरस्थःसुदारुणः । हृदयेक्लोम्नियकृतिप्लीह्निकुक्षौचवृक्कयो ॥ ८९ ॥ नाभ्यांवङ्क्षणयोर्वापिवस्तौवातीव्रवेदन । दुष्टरक्तातिमात्रत्वात्सवैशीघ्रविदह्यते ॥ ९० ॥ ततःशीघ्रविदाहित्वाद्विद्रधीत्यभिधीयते ॥ ९१ ॥

शीतल अन्न, विदाही, रूक्ष, सूखे पदार्थोंके खानेसे अत्यन्त भोजन करनेसे विरुद्ध भोजन अजीर्णकर्ता पदार्थ, सड़े बासे पदार्थ, विषम भोजन, असात्म्य भोजन, तथा दूषित भोजन के सेवनसे, अधिक मद्य पीनेसे, वेगोंको रोकनेसे, श्रमसे, शरीरको विषमतासे रखनेसे, व्यायामकी अधिकतासे, अतिसोनेसे, भार उठानेसे, अति मार्ग चलने और अति मैथुनसे दूषित भए वात शरीरके भीतर मांस और रक्तमें प्रवेश करतेहैं तो शरीरके भीतर गंभीर और दारुण ग्रन्थिको पैदा करतेहैं। यह ग्रन्थि (गांठ)–हृदय, क्लोम, यकृत्, प्लीहा, कुक्षि, दोनों वृक्क, नाभी, वंक्षण अथवा वस्तिमें तीव्र वेदना युक्त होतीहै। यह गांठ दुष्टरुधिरकी अधिकताके कारण दाहपूर्वक शीघ्र पाकको प्राप्त होतीहै। इसलिये यही विदाही होनेसे विद्रधि कही जातीहै ॥ ८६–९१ ॥

व्यधच्छेदभ्रमानाहशब्दस्फुरणसर्पणैः । वातिकींपैत्तिकीं तृष्णादाहमोहमदज्वरैः । जृम्भोत्क्लेशारुचिस्तम्भशीतकैःश्लैष्मिकींविदुः ॥ ९२ ॥ सर्वासुचमहच्छूलंविद्रधीषूपजायते ॥ तप्तैःशस्त्रैर्यथास्पृष्टेनोल्मुकैरिवदह्यते । विद्रधौव्यम्लतांयातावृश्चिकैरिवदश्यते ॥ ९३ ॥

भेदन और छेदनेकी सी पीड़ा, भ्रम, अफारा, शब्द, फड़कना, सरसराहट, यह लक्षण वातकी विद्रधिमें होतेहैं। प्यास, दाह, मोह मद, तथा ज्वर यह पित्तकी विद्रधिमें होतेहैं तथा उत्क्लेश (वमनकी सी चाहना), अरुचि स्तम्भ इनका होना तथा विद्रधिका शीतल होना यह कफकी विद्रधिमें होताहै। इन सब प्रकारकी विद्रधियोंमें अत्यन्त पीड़ा होतीहै। जैसे तपेहुए शस्त्रसे सताजाय अथवा अंगारोंसे दहन कियाजाय ऐसा प्रतीत होताहै। जब विद्रधि परिपाकको प्राप्त होतीहै तो बिच्छूके काटनेकी सी पीड़ा होतीहै ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

तनुरूक्षारुणस्रावफेनिलवातविद्रधी । तिलमाषकुलत्थोदस-न्निभपित्तविद्रधी ॥ ९४ ॥ श्लैष्मिकीस्रवतिश्वेतबहुलपिच्छिलबहु । लक्षणसर्वमेतेनजतेसान्निपातिकी ॥ ९५ ॥

वातकी विद्रधिमें अल्प, रूखा, लाल, झागदार स्राव होताहै । पित्तकी विद्रधिमें तिल, उडद, अथवा कुलथीके क्वाथकी समान स्राव होताहै । कफकी विद्रधिमें—श्वेत, पिच्छल, बहुत और गाढा स्राव होताहै । सन्निपातकी विद्रधिमें तीनों दोषोंके लक्षण होतेहैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

अथासाविद्रधीनांसाध्यासाध्यविशेषज्ञानार्थस्थानकृतालिङ्गवि-शेषमुपदेक्ष्यामः । तत्रप्रधानमर्मजायाविद्रध्याहृद्घट्टनतमकप्र-मोहकासा क्लोमजायापिपासामुखशोषगलग्रहा । यकृज्जाया श्वास । प्लीहजायामुच्छ्वासोपरोध । कुक्षिजायाकुक्षिपार्श्वान्त रासशूलम् । वृक्कजायांपार्श्वपृष्ठकटिग्रह नाभिजायांहिक्का वंक्षणजायां सक्थिसाद । वस्तिजायाकृच्छ्रमूत्रपूतिवर्चस्त्व चेति ॥ ९६ ॥

अब हम इन विद्रधियोंके साध्यासाध्य व विशेष जानके लिये स्थानभेदसे लक्षणोंको कहतेहैं । इनमें प्रधान मर्म (हृदय) में विद्रधि हो तो हृदयका धडकाना, तमकश्वास, बेहोशी, खांसी, यह उपद्रव होतेहैं । क्लोमस्थानमें विद्रधि हो तो—प्यास लगना, मुखका सूखना, गलेका रुकना यह लक्षण होतेहैं । यकृतमें विद्रधि हो तो श्वास होताहै । प्लीहामें विद्रधि होनेसे श्वास रुक जाताहै । कुक्षिमें विद्रधि हो तो कुख, पसवाडा, और पीठका वास तथा इनके भीतरमें अत्यन्त पीडा होतीहै । वृक्कस्थानमें विद्रधि होनेसे पसवाडा, पीठ और कमरमें पीडा होतीहै । नाभिमें होनेसे हिचकी होतीहै । वंक्षणस्थानमें होनेसे हड्डियामें पीडा और सांथलोंका रहजाना यह लक्षण होतेहैं । वस्तिस्थानमें विद्रधि होनेसे मूत्रकृच्छ्र, और मलमूत्रका गाढापन दुर्गन्धयुक्त आना यह लक्षण होतेहै ॥ ९६ ॥

पक्वामभिन्नासुउर्ध्वजासुमुखात्स्राव स्रवति ।
अधोजासुगुदात्, उभयतस्तुनाभिजायाम् ॥ ९७ ॥

नाभिसे ऊपरके स्थानोंमें हुई अन्तर्विद्रधि जब पकके फूटतीहै तो मुखद्वारा स्राव निकलताहै । नाभिसे नीचेके भागोंमें अन्तर्विद्रधि पककर फूटे तो गुदाद्वारा स्राव

होताहै । नाभिमें हुई अंतर्विद्रधि फूटे तो मुख और गुदा दोनों द्वारा स्राव होताहै ॥ ९७ ॥

तासाहृन्नाभिवस्तिजा परिपक्वा सान्निपातिकीचमरणाय । अवशिष्टा पुन:कुशलमाशुप्रतिकारिणचिकित्सकमासाद्योपशाम्यन्ति । तस्मादचिरोत्थिनाविद्रधींगिरूसर्षपविद्युदग्नितुल्या स्नेहस्वेदविरेचनेश्चोपक्रामेत् । सर्वशोगुल्मवच्चेति ॥ ९८ ॥

इन सब स्थानोकी विद्रधियोमें हृदय, नाभि, और वस्तिस्थानकी विद्रधि तथा सन्निपातकी विद्रधि मनुष्यकी मृत्युको करनेवाली होती है और अन्य विद्रधियां शीघ्र यत्न करनेवाले कुशल वैद्यसे शीघ्र यत्न करानेसे शांत होजातीहै । इसलिये शस्त्र, सांप, बिजुली, अग्निके, समान, प्राण हरनेवाली विद्रधिया, विद्रधि होते ही स्नेहन, स्वेदन,विरेचन द्वारा शीघ्र यत्न करे । संपूर्ण अन्तर्विद्रधियोमें गुल्मरोगकी समान चिकित्सा करे ॥ ९८ ॥

भवतिचात्राविनाप्रमेहमप्येताजायन्तेदुष्टमेदस ।
नावचैतानलक्ष्यन्तेयावद्वस्तुपरिग्रह ॥ ९९ ॥

और यहा यह भी कहा जाताहै कि प्रमेहके विना भी मेदके दूषित होनेसे यह विद्रधिये उत्पन्न होजातीहै । जब तक यह विद्रधिया जड नहीं पकडलेती अर्थात अपना जमाव नहीं करलेती तब तक पहिचानी नहीं जासकती ॥ ९९ ॥

शराविकाकच्छपिकाजालिनीचेनिदु सहा ।
जायन्तेताश्चतिबला प्रभूतश्लेष्ममेदसाम् ॥ १०० ॥

शराविका, कच्छपिका और जालनी, यह तीन प्रकारकी पिडका अतिदुःसह होतीहै और कफप्रकृति तथा मेदस्वी शरीरमें यह पिडका अतियत्नपूर्वक होतीहै ॥ १०० ॥

सर्षपीचालजीचैवविनताविद्रधीचया ।
सद्य पित्तोल्वणास्ताहिसम्भवन्त्यल्पमेदसाम ॥ १०१ ॥

सर्षपी, अलजी, और विनता, तथा यह विद्रधि यह पिडका पित्तप्रधान होती है और साध्य है, तथा अल्पमेदवाले शरीरमें होतीहै ॥ १०१ ॥

मर्मस्वसेगुदेपाल्यो:स्तनेसन्धिषुपादयोः । जायन्तेयस्यापिडका सप्रमेहीनजीवति॥१०२॥ तथान्या:पिडका:सन्तिरक्तपीतासितारुणा. । पाण्डुरा पाण्डुवर्णाश्चभस्माभामेचकप्रभा ॥१०३॥

मृद्वयश्चकठिनाश्चान्याःस्थूलाःसूक्ष्मास्तथापरा । मन्दवेगाम हावेगाःस्वल्पशूलामहारुजा ॥ १०४ ॥

जिस प्रमेहपीडित मनुष्यके मर्मस्थान, कक्षा, गुदा, पाली, स्तन, सन्धि और पगमें पिडका होजावे उसकी अवश्य मृत्यु होतीहै ॥ १०२ ॥ इनके सिवाय अन्य पिडका (फोडे) भी अनेक प्रकारकी होती हैं । वह पिडका-पीली, लाल, सफेद, किंचित् लाल, भूरी, पाण्डुरंगकी, भस्मके रंगकी, मेचकके रंगकी, कोई नरम, कोई कठोर, कोई छोटी, कोई बडी, कोइ मंदवेगवाली, कोई शीघ्र वेगवाली, कोई अल्प पीडावाली, कोई महापीडावाली, होतीहै ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

ताश्चुद्ध्वामारुतादीनायथास्वैर्हेतुलक्षणै ।
ब्रूयादुपाचरेच्चाशुप्रागुपद्रवदर्शनात् ॥ १०५ ॥

उन पिडकाओंको वातादिकोंके हेतु लक्षणोंद्वारा जानकर वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, जो हो सो कहे । और उत्पन्न होते ही उपद्रव बढनेसे पहले यत्न करे ॥ १०५ ॥

तृट्श्वासमांससकोथमोहहिक्कामदज्वरा ।
वीसर्पमन्दसंरोधा पिडकानामुपद्रवा ॥ १०६ ॥

प्यास, श्वास, मांसका पचना, मोह, हिचकी, मद, ज्वर, विसर्प, हृदयका रुकाना होना, यह पिडकाओंके उपद्रव होतेहैं ॥ १०६ ॥

क्षय.स्थानचवृद्धिश्चदोपाणात्रिविधागति । ऊर्ध्वश्चाधश्चति-र्यक्चविज्ञेयात्रिविधापरा ॥ १०७ ॥ त्रिविधाचापराकोष्ठशा-खामर्मास्थिसन्धिपु । इत्युक्ताविधिभेदेनदोपाणात्रिविधा-गति ॥ १०८ ॥

क्षीण होजाना, साम्यावस्थामें रहना, और बढजाना, दोषों (वातपित्तकफ) की यह तीन प्रकारकी गति होतीहै । ऐसे ही ऊर्द्धगमन, अधोगमन, तिर्यक् गमन, यह गतिहै । इनसे सिवाय कोष्ठगति, शाखा (रक्तादि) गति, और मर्म, अस्थि, सन्धिमें गति, यह अन्य तीन प्रकारकी गति है । इस प्रकार वातादि दोषोंकी विधिभेदसे तीन प्रकार तीन गतिया है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

चयप्रकोपप्रशमा पित्तादीनायथाक्रमम् ।
भवन्त्येकैकश षट्सुकालेष्वग्रागमादिपु ॥ १०९ ॥

वर्षा आदि छ ऋतुओंमें क्रमपूर्वक पित्त, कफ और वात इनमें एक २ का सञ्चय प्रकोप और उपशम होतेहैं । अर्थात् वर्षामें पित्तका सञ्चय, शरदमें कोप हेमंतमें शमन, शिशिरमें कफका सञ्चय, वसंतमें कोप ग्रीष्ममें शान्ति, एवं ग्रीष्ममें वायुका सञ्चय, वर्षामें कोप, और शरदमें उपशम होताहै ॥ १०९ ॥

गतिः कालकृताचैषाचयाद्यापुनरुच्यते ।

गतिश्चद्विविधादृष्टाप्राकृतावैकृताचया ॥ ११० ॥

यह चय आदि गति अर्थात् दोषोंका सञ्चय, प्रकोप, उपशम यह त्रिविध गति कालकृत कही जातीहै । वह कालकृत गति भी प्राकृत और वैकृत भेदसे दो प्रकारकी है ॥ ११० ॥

पित्तादेवोष्मणः पक्तिर्नराणामुपजायते ।

तच्चपित्तंप्रकुपितंविकारान्कुरुतेबहून् ॥ १११ ॥

प्राकृत अर्थात् प्रकृतिस्थ पित्तकी गरमीसे मनुष्योंके अन्नका यथोचित परिपाक होताहै, और विकारको प्राप्तहुआ पित्त अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै ॥ १११ ॥

प्राकृतस्तुबलंश्लेष्माविकृतोमलउच्यते ।

सचैवौजः स्मृतःकायेसचपाप्मोपदिश्यते ॥ ११२ ॥

प्रकृतिस्थ अर्थात् ठीक स्वभावमें स्थित हुआ कफ शरीरमें बल और ओज कहा जाताहै । और वही कफ विकृत होकर मल (पाप) और पाप कहाजाताहै ॥ ११२ ॥

सर्वाहिचेष्टावातेनसप्राणः प्राणिनांस्मृतः ।

तेनैवरोगाजायन्तेतेनचैवोपरुध्यते ॥ ११३ ॥

प्रकृतिस्थ वायुसे ही शरीरधारियोंकी सब प्रकारकी चेष्टा होतीहै और यह वायु ही प्राणियोंका प्राण कहाजाताहै । यदि यह वात विकृत होजाय तो इसीसे अनेक रोग उत्पन्न होतेहैं, और यही प्राणोंका अवरोध करताहै ॥ ११३ ॥

नित्यसंनिहितामित्रसमीक्ष्यात्मानमात्मवान् ।

नित्ययुक्तः परिचरेदिच्छन्नायुरनित्वरम् ॥ ११४ ॥

क्योंकि रोगरूपी शत्रु सदैव मनुष्योंके निकट रहतेहैं इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य दीर्घआयुकी इच्छावाला आयुकी रक्षाके नियम पालताहै ॥ ११४ ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

तत्रश्लोकौ ।

शिरोरोगाःसहृद्रोगारोगामानविकल्पजाः । क्षयाःसपिडकाश्चो क्तादोषाणांगतिरेवच ॥ ११५ ॥ कियन्तःशिरसीयेऽस्मिन्न-ध्यायेतत्त्वदर्शिना । ज्ञानार्थंभिषजाञ्चैवप्रजानाञ्चहितै-षिणा ॥ ११६ ॥

इति रोगचतुष्के कियन्तःशिरसीयोनाम सप्त-दशोऽध्यायः समाप्तः ।

यहां अध्यायकी समाप्तिमें श्लोक है कि इस 'कियन्तःशिरसीय' अध्यायमें-शिरो रोग, हृद्रोग, रोगोंका मानभेद, क्षयोंके प्रकार, पिडकाओंके भेद, दोषोंकी गति, यह सब वैद्यलोगोंके ज्ञानके लिये और प्रजाके हितके लिये भगवान् आत्रेयजीने वर्णन किया ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० प० रामप्रसाद० भाषाटीकायां कियन्तःशिरसीयो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथातस्त्रिशोफीयमध्यायंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवाना-त्रेयः ।

अब हम त्रिशोफीय अध्यायकी व्याख्या करतेहैं ऐसा भगवान आत्रेयजी कहनेलगे ।

शोफभेद तथा वातादिजन्य लक्षण ।

त्रय शोथाभवन्ति । वातपित्तश्लेष्मनिमित्ताः । तेपुनर्द्विविधाः निजागन्तुभेदेन । तत्रागन्तवः । छेदनभेदनक्षणनभञ्जनपि च्चनोत्पेषणप्रहारवधबन्धनवेष्टनव्यधनपीडनादिभिर्वा । भल्लातकपुष्पफलरसात्मगुप्ताशूकक्रिमिशूकाहितपत्रलतागु-ल्मसंस्पर्शनैर्वास्वेदनपरिसर्पणावमूत्रणैर्वाविषिणाम् । सविषा-

विषप्राणिदंष्ट्रादन्तविषाणनखनिपातैर्वा । सगरविषवाताहिम दहनसंस्पर्शनैर्वाशोथा समुपजायन्ते । तेयथास्वंहेतुजैर्व्यञ्जनैरादावुपलभ्यन्ते । निजव्यञ्जनैकदेशाविपरीतै र्बन्धनमन्त्रागदप्रलेपप्रवातनिर्वापणादिभिश्चोपक्रमैरुपक्रम्यमाणा प्रशान्तिमापद्यन्ते ॥ १ ॥

शोथ (सूजन) तीन प्रकारका होताहै । एक वातका, दूसरा पित्तका, तीसरा कफका । वह भी फिर दो प्रकारका होताहै एक निज, दूसरा आगंतुक । उनमें आगंतुक शोथ–छेदन, भेदन, क्षणन (घसीट लगना), भञ्जन, पिच्चन (दबना) उत्क्षेपण, प्रहार, वध, बंधन, वेष्टन, व्यथन और पीडन आदिसे उत्पन्न होताहै । अथवा भिलावेके फूल, फल, रस, कौचकी फली, शूकविशेष, कृमियोंसे वा अन्य विषैले पत्र, लता, गुल्म, आदिके स्पर्श, स्वेद, परिसर्पण, वा मूत्रआदिसे अथवा विषवाले वा बिना विषवाले प्राणियोंके दांत, सींग, नख, आदि लगनेसे अथवा गर, विष, पवन, हिम और अग्निके लगनेसे जो शोथ (सूजन) होताहै उसको आगंतुक शोथ कहतेहैं । यह आगंतुक शोथ अपने कारण और लक्षणोंसे प्रथम ही जाना जासकता है क्योंकि यह शोथ निज कारणोंसे विपरीत अर्थात् बाहरी कारणोंसे प्रगट होताहै । प्रगर्बंधन, मंत्र, अगद, प्रलेप, सेक और निर्वापण आदि चिकित्सा द्वारा आगंतुज शोथ शांत होजाताहै ॥ १ ॥

निजास्तुपुन स्नेहस्वेदनवमनविरेचनास्थापनानुवासनशिरोविरेचनानामयथावत्प्रयोगान्मिथ्यासंसर्जनाद्वा । छर्द्यलसकविसूचिकाश्वासकासातीसारशोषपाण्डुरोगज्वरोदरप्रदरभगन्दरार्शोविकारातिकर्षणैर्वा । कुष्ठकण्डूपिडकादिभिर्वाछर्दिक्षवथूद्गारशुक्रवातमूत्रपुरीषवेगधारणैर्वाचर्मरोगोपवासकर्षितस्यवा । सहसातिगुर्वम्ललवणपिष्टान्नफलशाकरागदधिहरितकमद्यमन्दकविरूढयावशूकशमीधान्यानूपौदकपिशितोपयोगान्मृत्पङ्कलोष्टभक्षणाल्लवणातिभक्षणाद्गर्भसम्पीडनादामगर्भप्रपतनात्प्रजातानाञ्चमिथ्योपचारादुदीर्णदोषत्वाच्छोथा प्रादुर्भवन्ति । इत्युक्तःसामान्योहेतुः ॥ २ ॥

निज शोथ, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन और शिरोविरेचनके अनुचित प्रयोगसे अथवा इनमें कुपथ्यादि होनेसे उत्पन्न होताहै । ऐसे ही वमन, अलसक, विषूचिका, श्वास, खांसी, अतिसार, शोष, पाण्डु, उदररोग, प्रदर, भगन्दर, अर्श, इनके कारणसे क्षीणहुए पुरुषोंके भी शोथ उत्पन्न होजाताहै। एव कुष्ठ, खाज, पिडका आदिसे अथवा वमन, छींक, डकार, शुक्र, अधोवात, मल और मूत्रके वेगके धारणसे और चर्मरोग तथा उपवाससे कृश हुए मनुष्यके भी शोथ उत्पन्न होजाताहै । और एकाएकी बहुत भारी, खट्टे, नमकीन, पिष्टपदार्थ, फल, शाक, राग, दही, हरित, मद्य, मदक, अंकुर आयेहुए धान्य, शूकधान्य, शमीधान्य, अनूपसचारी और जलचारी जीवोंके बहुत मास खानेसे । मट्टी, कीच और रोडके खानेसे, अधिक नमक खानेसे । गर्भके पीडन या पात होनेसे अथवा प्रसूतकालमें मिथ्या उपचार होनेसे । और उखडे हुए दोषोंको रोक लेनेसे शोथ उत्पन्न होताहै । यह शोथके सामान्य कारण कहेगयेहै ॥ २ ॥

अयस्त्वत्रविशेष• । शीतरूक्षलघुविशदश्रमोपवासातिकर्षणक्षेपणादिभिर्वायु प्रकुपित त्वङ्मांसशोणितादीन्यभिभूयशोथजनयति । सक्षिप्रोत्थापनप्रशमोभवति । श्यावारुणवर्णः प्रकृतिवर्णोवाचल•स्पन्दन खरपरुषभिन्नत्वग्लोमाच्छिद्यतइव भिद्यतइवपीड्यतइवसूचीभिरिवतुद्यतेपिपीलिकाभिरिवसंसृप्यतेसर्षपकल्कालिप्तइवचिमिचिमायतेसकुच्यतेआयम्यतेइतिवातशोथ• ॥ ३ ॥

शोथके विशेष कारण यह है कि शीतल, रूक्ष, हलके, और विशद पदार्थके अधिक सेवनसे, परिश्रम और उपवासके कारण कृश होनेसे और आक्षेपण आदिसे वायु कुपित होकर त्वचा, मास, रक्तादिकम प्राप्त हो शोथको उत्पन्न करदेताहै । वह वातजन्य शोथ शीघ्र प्रगट और शीघ्र ही शान्त होजाताहै । वह काला, लाल तथा स्वाभाविक वर्ण होताहै, इधर उधर चलनेवाला होताहै और फडकताहै । इसमे त्वचा, रोम, कडे रूखे तथा फटेसे होतेहै । और छेदने, भेदन, पीडन करने तथा सुई चुभोनेके समान पीडा होतीहै । इस शोथमे कीडियोंके चलनेके समान प्रतीत होताहै और सर्षप पीसकर लेपकरनेसे जैसी चरचराहट लगतीहै वह शोथ वैसी कम होजातीहै गर्मी लगजातीहै । यह सब लक्षण वातके सूजनके है ॥ ३ ॥

उष्णतीक्ष्णकटुकक्षारलवणाम्लाजीर्णभोजनैरग्न्यातपप्रतापैश्च पित्तप्रकुपितंत्वङ्मांसशोणितान्यभिभूयशोथंजनयति। सक्षि-

प्रोत्थानप्रशमोभवति । कृष्णपीतनीलताम्रकावभासउष्णो मृदु कपिलताम्रलोमाउष्यतेदूयतेधूप्यतेऊष्मायतेस्विद्यतेक्लिद्यतेनचस्पर्शमुष्णंवासुपूयतेइतिपित्तशोथ. ॥ ४ ॥

उष्ण, तीक्ष्ण, कटु, क्षार, नमकीन और अजीर्णकारक पदार्थोंके खानेसे, अग्नि, धूप और संतापके सहनेसे पित्त कुपित होकर त्वचा, मांस, रक्त आदिको बिगाडकर सूजन प्रगट करताहै । यह शीघ्र ही उत्पन्न होजाता और शांत होजाताहै । और यह काले, पीले, नीले और तामेके वर्णका होताहै । तथा स्पर्शमें उष्ण और नर्म होताहै । लोम भूरे और ताम्रवर्णके प्रतीत होतेहैं । इसमें दाह और पीडा अधिक होतीहै, धूआसा उठताहै अग्निके समान गर्म मालूम हो, पसीना आवे, क्लेद निकले । गरम वस्तु छू ही न जाय । यह पित्तशोथके लक्षण है ॥ ४ ॥

गुरुमधुरशीतस्निग्धैरतिस्वप्नव्यायामादिभिश्चश्लेष्माप्रकुपित· त्वङ्मांसशोणितादीन्यभिभूयशोथजनयति । स कृच्छ्रोत्थानप्रशमोभवति । पाण्डुःश्वेतावभास·स्निग्ध श्लक्ष्ण·गुरुःस्थिर स्त्यानः शुक्लाग्ररोमास्पर्शोष्णसहश्चेतिश्लेष्मशोथ. ॥ ५ ॥

भारी, मीठे, शीतल, चिकने, पदार्थोंके सेवनसे, अधिक सोनेसे, परिश्रम न करनेसे कफ कुपित होकर त्वचा, मांस रुधिर आदिकोंमें प्रवेश कर शोथको उत्पन्न करताहै। यह (शोथ देरमें प्रगट होताहै और देरमें ही शांत होताहै । और पांडु या सफेद वर्णका होताहै, तथा चिकना, गाढा, भारी, कठोर, गीला सा होताहै रोमोंका अग्र भाग सफेद सा होजाताहै और इस शोथ पर गरम स्पर्श प्रिय मालूम होताहै । यह कफके सूजनके लक्षण है ॥ ५ ॥

यथास्वकारणाकृतिसंसर्गाद्विदोषजास्त्रय·शोथाःभवन्ति । तथास्वकारणाकृतिसन्निपातात्सान्निपातिकएकः । एवमेतेपि धोभेद । प्रकृतिभिन्नाभिर्भिद्यमानोद्विविधस्त्रिविधश्चतुर्विध· सप्तविधश्चशोथउपलभ्यते । पुनर्श्चैकप्रयोस्तेवसामान्यादिति ॥६॥

दो दो दोषोंके कारण और लक्षणोंके मिलनेसे वातपित्त वातकफ, पित्तकफ इन भेदोंसे तीन प्रकारका सूजन होताहै । ऐसे ही तीनों दोषोंके कारण और लक्षण मिलनेसे सन्निपातका १ सूजन होताहै । इस प्रकार नित सूजनके भाव [illegible] हुए ।

प्रथम स्वभावभेदसे निज और आगतुज सूजन दो प्रकारका है। फिर वात, पित्त, कफ इन भेदोंसे तीन प्रकारका होताहै। और वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, सन्निपातज इन भेदोंसे चार प्रकारका हुआ, वातादिकोंके भेदोंसे सन्निपातपर्यंत सात प्रकारका हुआ। सामान्य शोथ धर्मसे देखाजाय तो शोथ एक ही प्रकारका है ॥ ६ ॥

वातजशोथके लक्षण।

भवतिचात्र। शूयन्तेयस्यगात्राणिस्वपन्तीवरुजन्तिच। निपीडितान्युन्नमन्तिवातशोथन्तमादिशेत् ॥ ७ ॥ यश्चाप्यरुणवर्णाभ शोथोनक्तप्रणश्यति। स्नेहोष्णमर्दनाभ्याञ्चप्रणश्येत्सचवातिक. ॥ ८ ॥

औरभी कहाहै कि जिस सूजनके अग सोएहुएसे प्रतीत हो और पीडा होतीहो तथा अगुलीसे दवाने पर दवजाय और अगुली उठानेसे फिर ऊपर उठआवे उसको वातका सूजन जानना। और जो शोथ लाल वर्णका हो, रात्रिमें कुछ शात होजाय तथा स्नेहन करनेसे और गरम वस्तुओंके लेप या मर्दनसे शात होजाय वह वायुका सूजन जानना ॥ ७ ॥ ८ ॥

यःपिपासाज्वरार्तस्यदूयतेऽथविदह्यते। स्विद्यतेक्लिद्यतेगन्धी सपित्तश्वयथुःस्मृत ॥ ९ ॥ यःपीतनेत्रवक्त्रत्वक्पूर्वंमध्यात्प्रसूयते। तनुत्वक्चातिसारीचपित्तशोथःसउच्यते ॥ १० ॥

जिस शोथमें-प्यास, ज्वर, पीडा, दाह, हों और पसीना आताहो तथा क्लेद, दुर्गंध, आतेहों वह पित्तका सूजन कहाहै। और जिसम रोगीके मुख, नेत्र, त्वचा पीले होगयेहों, पहले शरीरके मध्य भागसे उत्पन्न हो, शोथके ऊपर त्वचा पतली सी प्रतीत हो, और रोगीको दस्त आतेहों तो वह पित्तकी सूजन कही जातीहै ॥९॥१०॥

य.शीतल.सक्तगति कण्डूमान्पाण्डुरेवच। निपीडितोनोन्नमतिश्वयथु.स कफात्मक ॥ ११ ॥ यस्यशस्त्रकुशच्छेदाच्छोणितेनप्रवर्त्तते। कृच्छ्रेणपिच्छान्स्रवतिसचापिकफ.सम्भव ॥ १२ ॥

जो शोथ स्पर्शमें शीतल हो, स्थिर रहे, खुजलीयुक्त हो, पाडुवर्णका हो, दवानेसे न दवे वह सूजन कफात्मक होताहै। जिस सूजनमें कुशा, शस्त्र, आदिसे छेदन करनेपर भी रक्त न निकले, और कठिनतासे थोडा २ गाढा स्राव हो उस सूजनको कफसे उत्पन्नहुआ जानना ॥ ११ ॥ १२ ॥

निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुःस्याद्द्विदोषजः ।
सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोथोव्यामिश्रहेतुजः ॥ १३ ॥

दो दोषोंके निदान और लक्षण मिलनेमें द्विदोषज शोथ जानना । जिसमें तीनों दोषोंके हेतु, लक्षण मिलते हों वह सन्निपातका सूजन जानना ॥ १३ ॥

यस्तुपादाभिनिर्वृत्तः शोथःसर्वाङ्गगोभवेत् ।
जन्तोः सचसुकष्टःस्यात्प्रसृतः स्त्रीमुखाचयः ॥ १४ ॥

जो सोज पुरुषके पावोंसे उत्पन्न होकर सब अंगोंमें व्यापक होजाय और स्त्रीके मुखसे उठकर सब अंगोंमें प्राप्त होजाय वह सूजन कष्टसाध्य होताहै ॥ १४ ॥

यश्चापिगुह्यप्रभवःस्त्रियोवापुरुषस्यवा ।
सचकष्टतमोज्ञेयोयस्यचस्युरुपद्रवाः ॥ १५ ॥

जो शोथ स्त्रीके अथवा पुरुषके गुह्यस्थानमें प्रगट हुआ हो वह कष्टसाध्य होताहै। यदि उसमें अन्य उपद्रव भी हों तो बहुत ही कष्टसाध्य होजाताहै ॥ १५ ॥

छर्दिः श्वासोऽरुचिस्तृष्णाज्वरोऽतीसारएवच ।
सप्तकोऽयंसदौर्बल्यः शोथोपद्रवसंग्रहः ॥ १६ ॥

छर्दि, श्वास, अरुचि, प्यास, ज्वर, अतिसार, दुर्बलता, यह सात शोथरोगके उपद्रव होतेहैं ॥ १६ ॥

उपजिह्विकाकारण ।

यस्यश्लेष्माप्रकुपितःजिह्वामूलेऽवतिष्ठते ।
आशुसंजनयेच्छोथंजायतेऽस्योपजिह्विका ॥ १७ ॥

जिस मनुष्यके कफ कुपित होकर जीभकी जडमें स्थित होजाताहै उसके उपजिह्
का नामका सूजन प्रगट करताहै ॥ १७ ॥

यस्यश्लेष्माप्रकुपितः काकलेव्यवतिष्ठते ।
आशुसंजनयेच्छोथंकरोतिगलशुण्डिकाम् ॥ १८ ॥

जिसके कफ कुपित होकर काकलकी जडमें सूजन प्रगट करे उस सूजनको गलशुं
डिका कहतेहैं ॥ १८ ॥

गलशुण्डिकाकारण ।

यस्यश्लेष्माप्रकुपितस्तिष्ठत्यन्तर्गलेस्थितः ।
आशुसंजनयेच्छोथंगलगण्डोऽस्यजायते ॥ १९ ॥

जिसके कफ कुपित होकर गलेकी नसोंमें प्रवेश कर बाहरको सूजन प्रगट करे उस गलके बाहरी शोथको गलगंड कहतेहैं ॥ १९ ॥

गलगण्डका कारण।

यस्यश्लेष्माप्रकुपितोगलबाह्येऽवतिष्ठते ।
शनैःसञ्जनयञ्छोथजायतेऽस्यगलग्रहः ॥ २० ॥

जिसके कफ कुपित हो गलेके भीतर शोथको प्रगट करे उस शोथको गलग्रह कहतेहैं ॥ २० ॥

गलग्रहका कारण।

यस्यपित्तंप्रकुपितंसरक्तत्वचिसर्पति ।
शोथसरागंजनयन्विसर्पस्तस्यजायते ॥ २१ ॥

जिसके पित्त कुपित होकर रुधिरके साथ मिलकर त्वचामें विचरता हुआ लाल रंगका शोथ प्रगट करे उस शोथको विसर्प कहतेहैं ॥ २१ ॥

विसर्पका कारण।

यस्यपित्तप्रकुपितत्वचिरक्तेऽवतिष्ठते ।
रागसशोथञ्जनयन्पिडकातस्यजायते ॥ २२ ॥

जिसके पित्त कुपित होकर त्वचाके रक्तमें स्थित होकर लाल रंगकी फुनसी सी प्रगट करे उस सूजनको पिडका कहतेहैं ॥ २२ ॥

यस्यपित्तप्रकुपितशोणित प्राप्यशुष्यति ।
तिलकापिप्लवोव्यंगो नीलिकाचास्यजायते ॥ २३ ॥
यस्यपित्तप्रकुपितशंखयोरवतिष्ठते ।
श्वयथु शंखकोनामदारुणस्तस्यजायते ॥ २४ ॥

कुपितहुआ पित्त जिसके रक्तमें प्रवेश करके सूखजाय उसके शरीरमें तिल, छाई, लहसन, नीलिका आदि क्षुद्ररोगोंको प्रगट करताहै जिसके कुपितहुआ पित्त शंखों, (शिरकी हड्डियोंमें) में प्राप्त हो शोथ करे उस शोथको 'शंखक नामक दारुणशोथ कहतेहैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

कर्णमूलका कारण।

यस्यपित्तप्रकुपितकर्णमूलेऽवतिष्ठते ।
ज्वरान्तेदुर्जयोऽन्तायशोथस्तस्योपजायते ॥ २५॥

जिसके पित्त कुपित होकर कानकी जडम शोथ प्रगटकरे तो यह कर्णमूल शोथ दुर्जय होताहै यदि यह शोथ ज्वरके अंतम प्रगट होय तो मनुष्यका भी अंत कर देताहै ॥ २५ ॥

प्लीहाका कारण ।

वात प्लीहानमुद्धूयकुपितोयस्यतिष्ठति ।
शूलैःपरितुदन्पार्श्वंप्लीहातस्याभिवर्द्धते ॥ २६ ॥

जिसके वायु कुपित होकर प्लीहा (तिल्ली) म प्रवेश कर उसको ऊंची करदेवे यह प्लीहा धीरे २ पीडाके साथ बढजाती है (यह प्लीहशोथ कहाजाताहै) ॥ २६ ॥

गुल्मका कारण ।

यस्यवायुःप्रकुपितोगुल्मस्थानेचतिष्ठति ।
शोथंसशूलंजनयन्गुल्मस्तस्योपजायते ॥ २७ ॥

कुपित वायु जिसके गुल्मस्थानम प्रवेश करताहै उसके पीडाके साथ गुल्मरूपी शोथको पैदा करदेताहै ॥ २७ ॥

व्रध्नका कारण ।

यस्यवायुःप्रकुपितःशोथशूलकरश्चरन् ।
वंक्षणाद्वृषणौयातिव्रध्नस्तस्योपजायते ॥ २८ ॥

जिसके वायु कुपित होकर पीडायुक्त शोथवंक्षण (जंघाके मूल) म फैलै और फोतोंकी ओरको उत्पन्न करे उस शोथको व्रध्न कहतेहैं ॥ २८ ॥

उदरका लक्षण ।

यस्यवातःप्रकुपितस्त्वङ्मांसान्तरमाश्रितः ।
शोथंसञ्जनयन्कुक्षावुदरंतस्यजायते ॥ २९ ॥

कुपित वायु जिसके कुक्षिस्थानकी त्वचा और मांसमें स्थित होकर सूजा देताहै उस शोथको शोथोदर कहतेहैं ॥ २९ ॥

अनाहका कारण ।

यस्यवातःप्रकुपितःकुक्षिमाश्रित्यतिष्ठति ।
नाधोव्रजतिनाप्यूर्द्ध्वमानाहस्तस्यजायते ॥ ३० ॥

कुपित वायु जिसकी कुक्षिम स्थित होकर न नीचे गमन करै न ऊपर और इस वायुके आनाहको अफारा कहतेहैं ॥ ३० ॥

रोगाश्चोत्सेधसामान्यादधिमासार्बुदादयः ।
विशिष्टानामरूपाभ्यानिर्देश्या शोथसंग्रहे ॥ ३१ ॥

अधिमास और अर्बुदादिक नाम रूप करके शोथसे अलग होनेपर भी उठनेवाले सामान्यधर्मसे शोथोंमे ही गणना करने चाहिये ॥ ३१ ॥

रोहिणीका कारण ।

वातपित्तकफायस्ययुगपत्कुपितास्त्रय ।
जिह्वामूलेऽवतिष्ठन्तेविदहन्तःसमुच्छ्रिताः ॥ ३२ ॥
जनयन्तिभृशशोथवेदनाश्चपृथग्विधाः । तंशीघ्रकारिणरोगरोहिणीकेतिनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥ त्रिरात्रंपरमंतस्यजन्तोर्भवतिजीवितम् । कुशलेनत्वनुप्रात क्षिप्रंसम्पद्यतेसुखी ॥ ३४ ॥

जिस मनुष्यके वात पित्त कफ यह तीनों ही एककालमें कुपित होकर जीभकी जडम स्थित होजातेहै उसकी जीभकी जडमें दाहयुक्त ऊचा सा शोथ प्रगट करदेतेहैं इस शोथमें नाना प्रकारकी पीडा उत्पन्न होतीहै इस शीघ्रमारक रोगको 'रोहिणिका, कहतेहै । इसके होनेसे मनुष्य तीन दिनसे अधिक नहीं जीसकता। इसलिये यदि कुशल चिकित्सकने शीघ्र यत्न करायाजावे तो मनुष्य बचसकताहै ॥ ३२-३४ ॥

सन्तिह्येवंविधारोगा साध्यादारुणसम्मता ।
येहन्युरनुपक्रान्तामिथ्यारम्भेणवापुन ॥ ३५ ॥

अन्य भी जो इस प्रकारके दारुण रोगहै वह युक्तिपूर्वक शीघ्र कुशल वैद्य द्वारा चिकित्सा किये जानेसे साध्य होतेहै । और वही रोग उचित यत्नोंके शीघ्र न होनेसे अथवा अनुचित यत्नोके होनेसे शीघ्र मारडालतेहै ॥ ३५ ॥

व्याधिके भेद ।

साध्याश्चाप्यपरहन्तिव्याधयोमृदुसम्मता । यत्नायत्नकृतयेपु कर्मसिध्यत्यसशयम् ॥ ३६ ॥ असाध्याश्चापरेसन्तिव्याधयोयाप्यसज्ञिता । सुसाध्येऽपिकृतयेपुकर्मयाप्यकरभवेत् ॥ ३७ ॥ सन्तिचाप्यपरेरोगा कर्मयेपुनसिध्यति । अपियत्नकृतवैपर्नता न्विद्वानुपाचरेत् ॥ ३८ ॥

बहुतसे ऐसे मृदु रोग है जो शीघ्र यत्न करनेसे तो साध्य है ही परन्तु बिना चिकित्साके भी साध्य होजातेहै ॥ ३६ ॥ और बहुतसे रोग असाध्य है । बहुत से याप्य होतेहैं । जिन असाध्य और याप्य रोगोंमें योग्य चिकित्सा होनेपर भी वह रोग

जिसके पित्त कुपित होकर कानकी जडमें शोथ प्रगटकरे तो यह कर्णमूल शोथ दुर्जय होताहै यदि यह शोथ ज्वरके अंतमें प्रकट होय तो मनुष्यका भी अंत कर देताहै ॥ २५ ॥

प्लीहाका कारण।

वातःप्लीहानमुद्धूयकुपितोयस्यतिष्ठति ।
शूलैःपरितुदन्पार्श्वंप्लीहातस्याभिवर्द्धते ॥ २६ ॥

जिसके वायु कुपित होकर प्लीहा (तिल्ली) में प्रवेश कर उसको ऊची करदेवे वह प्लीहा धीरे २ पीडाके साथ बढजाती है (यह प्लीहशोथ कहाजाताहै) ॥ २६ ॥

गुल्मका कारण।

यस्यवायुःप्रकुपितोगुल्मस्थानेचतिष्ठति ।
शोथसशूलञ्जनयन्गुल्मस्तस्योपजायते ॥ २७ ॥

कुपित वायु जिसके गुल्मस्थानमें प्रवेश करताहै उसके पीडाके साथ गुल्मरूपी शोथको पैदा करदेताहै ॥ २७ ॥

ब्रध्नका कारण।

यस्यवायुःप्रकुपित शोथशूलकरश्चरन् ।
वक्षणाद्वृषणौयातिब्रध्नतस्योपजायते ॥ २८ ॥

जिसके वायु कुपित होकर पीडायुक्त शोथवक्षण (जघाके मूल) में पेडूसे अंड कोशकी ओरको उत्पन्न करे उस शोथको ब्रध्न कहतेहैं ॥ २८ ॥

उदरका लक्षण।

यस्यवातःप्रकुपितःत्वङ्मासान्तरमाश्रितः ।
शोथसञ्जनयन्कुक्षावुदरतस्यजायते ॥ २९ ॥

कुपित वायु जिसके कुक्षिस्थानकी त्वचा और मांसमें मिल पेटको सुजा देताहै उस शोथको शोथोदर कहतेहैं ॥ २९ ॥

अनाहका कारण।

यस्यवात.प्रकुपित कुक्षिमाश्रित्यतिष्ठति ।
नाधोव्रजतिनाप्यूर्द्ध्वमानाहस्तस्यजायते ॥ ३० ॥

क्रुद्ध वायु जिसकी कुक्षिमें स्थित होकर न नीचे गमन करे न ऊपर जावे इस वायुके अवरोधको अफारा कहतेहैं ॥ ३० ॥

रोगाश्चोत्सेधसामान्यादधिमासार्बुदादयः ।
विशिष्टानामरूपाभ्यानिर्देश्या.शोथसग्रहे ॥ ३१ ॥

अधिमास और अर्बुदादिक नाम रूप करके शोथसे अलग होनेपर भी उठनेवाले सामान्यधर्मसे शोथोंम ही गणना करने चाहिय ॥ ३१ ॥

रोहिणीका कारण ।

वातपित्तकफायस्त्ययुगपत्कुपितास्त्रय· ।
जिह्वामूलेऽवतिष्ठन्तेविदहन्त.समुच्छ्रिता· ॥ ३२ ॥
जनयन्तिभृशशोथवेदनाश्चपृथग्विधाः । तंशीघ्रकारिणरोगंरोहिणीकेतिनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥ त्रिरात्रंपरमंतस्यजन्तोर्भवतिजीवितम् । कुशलेनत्वनुप्राप्त·क्षिप्रंसम्पद्यतेसुखी ॥ ३४ ॥

जिस मनुष्यके वात पित्त कफ यह तीनों ही एककालमें कुपित होकर जीभकी जडमें स्थित होजातेहै उसकी जीभकी जडमें दाहयुक्त ऊचा सा शोथ प्रगट करदेतेहै इस शोथमें नाना प्रकारकी पीडा उत्पन्न होतीहै इस शीघ्रमारक रोगको 'रोहिणिका, कहतेहै । इसके होनेसे मनुष्य तीन दिनसे अधिक नहीं जीसक्ता । इसलिये यदि कुशल चिकित्सकने शीघ्र यत्न करायाजावे तो मनुष्य बचसकताहै ॥ ३२–३४ ॥

सन्तिह्येवंविधारोगा साध्यादारुणसम्मता ।
येहन्युरनुपक्रान्तामिथ्यारम्भेणवापुन ॥ ३५ ॥

अन्य भी जो इस प्रकारके दारुण रोगहै वह युक्तिपूर्वक शीघ्र कुशल वैद्य द्वारा चिकित्सा किये जानेसे साध्य होतेहैं । और वही रोग उचित यत्नोंके शीघ्र न होनेसे अथवा अनुचित यत्नोंके होनेसे शीघ्र मारडालतेहै ॥ ३५ ॥

व्याधिके भेद ।

साध्याश्चाप्यपरहान्तिव्याधयोमृदुसम्मता । यत्नायत्नकृतयेषु कर्मसिध्यत्यसशयम् ॥ ३६ ॥ असाध्याश्चापरेसन्तिव्याधयोयाप्यसञ्ज्ञिता । सुसाध्येऽपिकृतयेपुकर्मयाप्यकरम्भवेत् ॥ ३७ ॥ सन्तिचाप्यपरेरोगा कर्मयेपुनसिध्यति । अपियत्नकृतवेंघर्नेना न्विद्वानुपाचरेत् ॥ ३८ ॥

बहुतसे ऐसे मृदु रोग है जो शीघ्र यत्न करनेस तो साध्य है ही परन्तु विना चिकित्साके भी साध्य होजातेहै ॥ ३६ ॥ और बहुतसे रोग असाध्य है । बहुत से याप्य होतेहै । जिन असाध्य और याप्य रोगोंमें योग्य चिकित्सा होनेपर भी वह रोग

नाशकारक ही रहते है । और ऐसे २ अन्य भी बहुत से रोग है जो सुयोग्य वैद्योंद्वारा चिकित्सा किये जाने पर भी साध्य नहीं होसकते । विद्वान् वैद्यको उचित है जो रोग यत्नद्वारा साध्य न होसके उसकी चिकित्सा न करे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

व्याधिके भेद ।

साध्याश्चैवाप्यसाध्याश्चव्याधयोद्विविधाःस्मृता.। मृदुदारुणभेदेनतेभवन्तिचतुर्विधा. ॥ ३९ ॥ तएवापरिसख्येयाभिद्यमाना भवन्तिहि । निदानवेदनावर्णास्थानसस्थाननामभिः ॥ ॥ ४० ॥ व्यवस्थाकारणतेषाययथास्थूलेषुसग्रहः । तथाप्रकृतिसामान्यविकारेषूपदिश्यते ॥ ४१ ॥

व्याधिया साध्य और असाध्य भेदसे दो प्रकारकी होतीहैं । वह दोनों भी मृदु और दारुण भेदसे चार प्रकारकी होजाती है ॥ ३९ ॥ फिर वह व्याधिया-पीडा, वर्ण, कारण, स्थान, आकृति, इन भेदोंसे अलग २ होतीहुई असंख्य होजातीहैं । फिर भी उनकी व्यवस्था करनेके लिये उनमेंसे मुख्य २ व्याधियोंका सग्रह किया गया है। विकारोंका स्वभाव और तुल्यता देखकर उनको जिस दोषजन्य देखे वैसा उपदेश करना चाहिये ॥ ४० ॥ ४१ ॥

विकारनामाकुशलोनजिह्रीयात्कदाचन । नहिसर्वविकारणा नामतोऽस्तिध्रुवागति ॥ ४२ ॥ सएवकुपितोदोष समुत्थानविशेषत । स्थानान्तरगतश्चैवजनयत्यामयान्बहून् ॥ ४३ ॥ तस्माद्विकारप्रकृतीरधिष्ठानान्तराणिच । समुत्थानविशेषांश्चबुद्ध्वाकर्मसमाचरेत् ॥ ४४ ॥

इसीलिये यदि किसी रोगका नाम न मिलसके तो वैद्यको लज्जित नहीं होना चाहिये, क्योंकि सपूर्ण रोगोंका नाम नहीं कहा जासकता (हा उन रोगोंको प्रकृति और तुल्यतासे वातादिदोषजन्य जानकर यत्न करे) ॥ ४२ ॥ क्योंकि एक दोष ही कुपित होकर भिन्न २ कारणोंसे अलग २ स्थानाम जाकर अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै । इसलिये ऐसे रोगोंकी प्रकृति और स्थानभेद तथा कारणविशेष को जानकर चिकित्साकर्म करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

योह्येतत्त्रिविधंज्ञात्वाकर्माण्यारभतेभिषक् ।
ज्ञानपूर्वंयथान्यायसकर्मसुनमुह्यति ॥ ४५ ॥

जो वैद्य–साध्य, असाध्य, याप्य, इन तीन भेदोंको समझकर चिकित्सा आरंभ करताहै वह मोहको प्राप्त नहीं होताहै ॥ ४५ ॥

दोषोंका नित्यत्व ।

नित्याःप्राणभृतांदेहेवातपित्तकफास्त्रयः ।
विकृताःप्रकृतिस्थावातान्बुभुत्सेतपण्डितः ॥ ४६ ॥

वात, पित्त, कफ यह तीन प्राणधारियोंके शरीरमें नित्य रहतेहैं। परंतु यह साम्यावस्थामें है अथवा विकृत (बिगडी) अवस्थामें है यह बुद्धिमान्को परीक्षा करलेना चाहिये ॥ ४६ ॥

विकाररहित वायुआदिके कर्म ।

उत्साहोच्छ्वासनिःश्वासचेष्टाधातुगतिःसमा ।
समोमोक्षोगतिमतांवायोःकर्माविकारजम् ॥ ४७ ॥

शरीरमें प्रकृतिस्थ वायु रहनेसे–उत्साह, सासका आना जाना, चेष्टा, धातुओंकी अवस्था यह समान रहतीहै और मलमूत्रादिकी गति ठीक रहतीहै । यह विकारको नहीं प्राप्त हुए वायुके कर्महैं ॥ ४७ ॥

दर्शनपक्तिरूष्माचक्षुत्तृष्णादेहमार्दवम् ।
प्रभाप्रसादोमेधाचपित्तकर्म्माविकारजम् ॥ ४८ ॥

दीखना, अन्नका परिपाक, शरीरमें गरमाई, भूख, प्यास, देहमें नरमी, कांति, प्रसन्नता, मेधा, इनका उत्तम होना यह प्रकृतिस्थ अर्थात् विकाररहित पित्तका कर्म है ॥ ४८ ॥

स्नेहोबन्धः स्थिरत्वञ्चगौरवंवृषतावलम् ।
क्षमाधृतिरलोभश्चकफकर्माविकारजम् ॥ ४९ ॥

कफके प्रकृतिस्थ रहनेसे शरीरमें स्निग्धता, गठनता, दृढता, गुरुता, वृष्यता, बल, क्षमा, धृति, निर्लोभता, यह होतेहैं ॥ ४९ ॥

वातपित्तकफेश्चैवन्यूनेलक्षणमुच्यते ।
कर्मणाप्रकृतेर्हानिर्वृद्धिर्वापिविरोधिनाम् ॥ ५० ॥

वात, पित्त, और कफके क्षीण होनेसे ऊपर कहेहुए स्वाभाविक गुणोंकी हानि होती है और विपरीत गुणोंकी वृद्धि होतीहै ॥ ५० ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

दोषप्रकृतिवैशेष्यंनियतवृद्धिलक्षणम् ।
दोषाणाप्रकृतिर्हानिर्वृद्धिर्वापिपरीक्ष्यतेइति ॥ ५१ ॥

दोषोंको स्वभावोंका विशेष प्रतीत होना दोष वृद्धिके लक्षण है, इसलिये दोषोंकी साम्यावस्था, क्षीणता, और वृद्धिकी परीक्षा करना चाहिये ॥ ५१ ॥

तत्रश्लोकौ ।

संख्यानिमित्तरूपाणिशोथानांसाध्यतानच ।
तेषातेषाविकाराणात्रिविधवोध्यसंग्रहम् ॥
विधिभेदविकाराणात्रिविध दोषसग्रहम् ॥ ५२ ॥

प्राकृतंकर्मदोषाणालक्षणहानिवृद्धिषु । वीतमोहरजोदोषमोहमानमदस्पृह. । व्याख्यातवांस्त्रिशोफीयेरोगाध्यायेपुनर्वसु' ॥ ५३ ॥

इतिरोगचतुष्केत्रिशोफीयोऽष्टादशोऽध्याय.समास' ॥ १८ ॥

इस त्रिशोथीय अध्यायमें शोथोंके कारण, शोथ, शोथजविकार और उनकी संख्या उनके रूप तथा साध्यासाध्यता, दोषज और आगतुज शोथ, शोथके विकारोंके भेद, तीन प्रकारका दोषसंग्रह, प्रकृतिस्थ दोषोंके कर्म, दोषोंकी क्षीणता और वृद्धिके लक्षण, यह सब मोह, रजोदोष, लोभ, मान, मद और स्पृहारहित पुनर्वसुजीने कथन कियाहै ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्य पञ्चानन प० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां त्रिशोफीयो नामाष्टादशोऽध्याय ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथातोऽष्टोदरीयमध्यायव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम अष्टोदरीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे ऐसा भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

रोगोकी सख्या।

इहखल्वष्टावुदराणिअष्टौमूत्राघाता'अष्टौक्षीरदोपाअष्टौरेतोदो
पा.सप्तकुष्ठानिसप्तपिडका सप्तवीसर्पा.पडतीसारा.पडुदावर्ता.
पञ्चगुल्मा.पञ्चप्लीहदोपाःपञ्चकासाःपञ्चश्वासा.पञ्चहिक्काःपञ्च
तृष्णा.पञ्चछर्दयःपञ्चभक्तस्यानशनस्थानानिपञ्चशिरोरोगा.प-
ञ्चहृद्रोगा.पञ्चपाण्डुरोगाःपञ्चोन्मादा.चत्वारोऽपस्मारा.चत्वारो-
ऽक्षिरोगा'चत्वार.कर्णरोगा.चत्वार.प्रतिश्यायाःचत्वारोमुखरो
गा'चत्वारोग्रहणीदोपाःचत्वारोमदा.चत्वारोमूर्च्छाःचत्वार.
शोपा.चत्वारिक्लैव्यानित्रय'शोथाःत्रीणिकिलासानित्रिविधलो-
हितपित्तंद्वौज्वरौद्वौव्रणौद्वावायामौद्वेगृध्रस्यौद्वेकामलेद्विविधमाम
द्विविधवातरक्तंद्विविधान्यर्शांसिएक ऊरुस्तम्भ.एक सन्न्यास
एकोमहागद विंशति'क्रिमिजातय.विंशति.प्रमेहा विंशतिर्यो
निव्यापद.।इत्यष्टाचत्वारिंशद्रोगाधिकरणान्यस्मिन्संग्रहेभ-
वन्ति। उद्दिष्टानिएतानियथोद्देशमभिनिर्देक्ष्याम ॥ १ ॥

इस संग्रहमें ८ प्रकारके उदररोग हैं। ८ मूत्राघात हैं। ८ प्रकारके स्तन्य दोष हैं। ८ प्र० शुक्रदोष हैं। ७ प्र० कुष्ठ हैं। ७ प्रकारकी पिडका। ७ प्र० विसर्प। ६ प्र० अतिसार। ६ प्रकारके उदावर्त। ५ प्रकारके गुल्म। ५ प्रकारके प्लीहदोष। ५ प्र० खासी। ५ प्र० श्वास। ५ प्रकारकी हिचकी। ५ प्रकारकी प्यास। ५ प्रकारकी छर्दि। ५ प्र० अरुचि। ५ प्र० शिरोरोग। ५ प्र० हृद्रोग। ५ प्र० पांडुरोग। ५ प्र० उन्माद। ४ प्र० मृगी। ४ प्र० नेत्ररोग। ४ प्र० कर्णरोग। ४ प्र० प्रतिश्याय। ४ प्र० मुखरोग। ४ प्र० ग्रहणीदोष। ४ प्र० मदात्यय। ४ प्र० मूर्छा। ४ प्र० शोष। ४ प्र० नपुंसकता। ३ प्र० शोथ। ३ प्र० किलास। ३ प्र० रक्तपित्त। २ प्र० ज्वर। २ प्र० व्रण २ प्र० आयाम। २ प्र० गृध्रसी। २ प्र० कामला। २ प्र० आमदोष। २ प्र० वातरक्त। २ प्र० अर्श। १ प्र० ऊरुस्तम्भ। १ प्र० सन्न्यास। १ प्र० महाव्याधि। २० प्र० कृमिरोग। २० प्र० प्रमेह। २० प्र० योनिव्यापद्रोग इस प्रकार इस संग्रहमें ४८ रोग हैं। अब इन सबको यथाउद्देश आगे वर्णन करेंगे॥ १॥

अष्टावुदराणीतिवातपित्तकफसन्निपातप्लीहबद्धच्छिद्रोदकोदरा नीति ॥ अष्टौमूत्राघाताइतिवातपित्तकफसन्निपाताश्मरीशर्क-राशुक्रशोणितजाः ॥ अष्टौक्षीरदोषाइतिवैवर्ण्यवैगन्ध्यवैरस्य पैच्छिल्यफेनसङ्घातरौक्ष्यगौरवमतिस्नेहश्चेति॥अष्टौरेतोदोषाइ-तितनुशुष्कफेनिलमश्वेतपूतिपिच्छिलमन्यधातूपहितमवसा दिचेति॥ सप्तकुष्ठानीतिकपालोडुम्बरमण्डलर्ष्यजिह्वपुण्डरीक-सिध्मकाकणकानि ॥ सप्तपिडकाइतिशराविकाकच्छपिकाजा लिनीसर्षप्यलजीविनताविद्रधीच ॥ सप्तवीसर्पाइतिवातपित्त-कफाग्निकर्दमग्रन्थिसान्निपाताख्या.॥ षडतीसाराख्याइतिवात पित्तकफसन्निपातभयशोकजाः ॥ षडुदावर्त्ताइतिवातमूत्रपुरी-षशुक्रच्छर्दिक्षवथुजा ॥ पञ्चगुल्माइतिवातपित्तकफसन्निपात-रक्तजा ॥ पञ्चप्लीहदोषाइतिगुल्मैर्व्याख्याता ॥ पञ्चकासा इतिवातपित्तकफक्षतक्षयजा ॥ पञ्चश्वासाइतिमहोर्द्ध्वच्छिन्न-तमकक्षुद्रा ॥ पञ्चहिक्काइतिमहतीगम्भीराव्यपेताक्षुद्राचान्न जाच ॥ पञ्चतृष्णाइतिवातपित्तामक्षयोपसर्गात्मिका ॥ पञ्च-च्छर्दयइतिद्विष्टान्नसयोगजावातपित्तकफसन्निपातोद्रेकात्मिका श्च ॥ पञ्चभक्तस्यानशनस्थानानीतिवातपित्तकफद्वेषायासा ॥ पञ्चशिरोरोगाइतिपूर्वोद्देशमभिसमस्यवातपित्तकफसन्निपात क्रिमिजा ॥ पञ्चहृद्रोगाइतिशिरोरोगैर्व्याख्याता ॥ पञ्चपा-ण्डुरोगाइतिवातपित्तकफसान्निपातमृद्भक्षणजा ॥ पञ्चोन्मादा इतिवातपित्तकफसन्निपातागन्तुनिमित्ता ॥ चत्वारोऽपस्मारा इतिवातपित्तकफसन्निपातनिमित्तजाः ॥ चत्वारोक्षिरोगा. चत्वारः कर्णरोगा चत्वार. प्रतिश्याया चत्वारोमुखरोगा चत्वारोग्रहणीदोषा. चत्वारोमदा चत्वारोमूर्च्छाइति अप स्मारैर्व्याख्याता. ॥ चत्वार.शोषाइतिसाहससन्धारणक्षयवि-

पमाशनजाः ॥ चत्वारिक्लैब्यानीतिबीजोपघाताद्ध्वजभङ्गाज्जरा-
या.शुक्रक्षयाच्च ॥ त्रय शोथाश्चेतिवातपित्तश्लेष्मनिमित्ता ॥
त्रीणिकिलासानीतिरक्तताम्रशुक्लानि ॥ त्रिविधलोहितपित्तमि-
त्यूर्द्ध्वभागमधोभागमुभयभागश्च । द्वौज्वरौ शीतसमुत्थश्च-
शीताभिप्रायश्चोष्णसमुत्थ इति उष्णाभिप्राय द्वौव्रणौइतिनि-
जश्चागन्तुजश्च ॥ द्वावायामावितिबाह्यश्चाभ्यन्तरश्च ॥ द्वेगृध्र-
स्याविितिवाताद्वातकफाच्च ॥ द्वेकामलेइतिकोष्ठाश्रयाशाखाश्र-
याच ॥ द्विविधमाममित्यलसकोविसूचिकाचेति ॥ द्विविधवा-
तरक्तमितिगम्भीरमुत्तानश्च । द्विविधान्यर्शांसीतिआर्द्राणिशु
ष्काणिच ॥ एकऊरुस्तंभइतिआमत्रिदोषसमुत्थान ॥ एक
सन्यासइति ॥ त्रिदोषात्मकोमन·शरीराधिष्ठानसमुत्थ ॥
एकोमहागदइतिअतत्त्वाभिनिवेश. ॥ २ ॥

वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, प्लीहोदर, बद्धोदर, छिद्रोदर, जलोदर, इन भेदोंसे ८ प्रकारके उदररोग हैं वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, अश्मरीजन्य, शर्कराजन्य, शुक्रदोषज, और रक्तजन्य, यह आठ प्रकारके मूत्राघात हैं । विवर्णता, विकृतगंधि, वैरस्य, पिच्छिलता, फेनयुक्तता, रूक्षता, भारीपन, यह आठ स्तनोंके दूधके विकार हैं । पतलापन, सूखापन, फेनयुक्त गर्भ्भ्नी न होना, दुर्गंधित, पिच्छिल अन्यधातुमिश्रित, अवसादयुक्त, यह आठ वीर्यके दोष होते हैं । कुष्ठके सात भेद हैं । जैसे-कपाल, उदुंबर, मडल, ऋष्यजिह्व, पुंडरीक, सिध्म, और काकण । शराविका, कच्छपिका, जालनी, सर्षपी, अलजी, विनता, विद्रधि, इन भेदोंसे पिडका ७ प्रकारकी हैं । वातज, पित्तज, कफज सन्निपातज, अग्निविसर्प, कर्दमविसर्प, ग्रंथिविसर्प इन भेदोंसे विसर्प ७ प्रकारका है । वातज, पित्तज, कफज सन्निपातज, भयज शोकज इन भेदोंसे अतिसार ६ प्रकारके हैं । अधोवात, मूत्र, पुरीष, शुक्र [illegible] छींक, इन छहोंका वेग रोकनेसे छ प्रकारके उदावर्त होते हैं । वातज, पित्तज, [illegible] सन्निपातज, रक्तज इन भेदोंसे गुल्म पांच प्रकारके हैं । गुल्मके समान ही पांच प्रकारके प्लीहाके विकार होते हैं । वात, पित्त, कफ सन्निपात [illegible] इनसे पांच प्रकारकी खांसी होती है । ऐसे ही वातज, पित्तज कफज सन्निपातज, [illegible] क्षयज, इन भेदोंसे श्वास पांच प्रकारका है । महती, गम्भीर, व्यपेता [illegible] भक्ष्य

इन भेदोंसे पाच प्रकारकी हिचकी है । वातज, पित्तज, आमज, क्षयज, उपसर्गज इन भेदोंसे तृषा पाच प्रकारकी होती है । द्वेषजनक अन्नसे, वात, पित्त, कफ, और संनिपातसे छर्दि पाच प्रकारकी है । वातज, पितज, कफज, द्वेपज, श्रमज इन भेदोंसे अरुचि पाच प्रकारकी है । सामान्य सग्रहके उद्देशसे वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, कृमिजन्य, इन भेदोंसे शिरोगेग पाच प्रकारका है । शिरोरोगवाले भेदोंसे ही पाच प्रकारका हृद्रोग है । वात, पित्त, कफ, सन्निपात, और मृद्भक्षणसे पाच प्रकारका पाडुरोग होताहै । वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगतुज इन भेदोंसे उन्मादरोग पाच प्रकारका है । वात, पित्त, कफ, और सन्निपातसे च्यार प्रकारका अपस्मार (मृगी) रोग होताहै । अपस्मारके समान ही वातादि चार २ भेद-नेत्ररोग, कर्णरोग, प्रतिश्याय, मुखरोग, ग्रहणीदोप, मदरोग, मूर्च्छारोग इन सबके भी कहेहै । साहसजन्य, वेगावरोधजन्य, क्षयजन्य और विपमा कानजन्य इन भेदोंसे शोपरोग चार प्रकारका है । वात, पित्त, कफजनित तीन प्रकारकी सूजन होतीहै । रक्तवर्ण, ताम्रवर्ण, और श्वेत, इन तीन प्रकारका किलासरोग होताहै । ऊर्ध्वग, अधोगामी, उभयगामी, इन तीन प्रकारका रक्त पित्त होताहै । ज्वर दो प्रकारके हैं । एक ठढेसे, जिसमें शीतकी अधिकता होतीहै । दूसरा गरमीसे प्रगट होकर गरमीकी अधिकतावाला होताहै । निज और आगतुज भेदसे व्रण दो प्रकारके होतेहै । आयाम दो प्रकारका है एक अतरायाम दूसरा वाह्यायाम । गृध्रसी दो प्रकारका है-एक वातज, दूसरा वातकफज । कोष्ठाश्रय और शाखाश्रयके भेदसे कामला दो प्रकारका है । अलसक और विसूचिका भेदसे आमरोग दो प्रकारका है । वातरक्त दो प्रकारका है गभीर और उत्तान । ववासीर दो प्रकारकी है एक आर्द्र दूसरी शुष्क । आमयुक्त त्रिदोपसे उत्पन्नहुआ ऊरुस्तभ एक प्रकारका है । त्रिदोपसे उत्पन्नहुआ सन्यास एकप्रकारका है इसका अधिष्ठान मन और शरीर है । तत्त्वज्ञानमें मनका योग न होना ही एक महाव्याधि है ॥ २ ॥

विंशतिः क्रिमिजातयइतियूका॰पिपीलिकाश्चेतिद्विविधाबहिर्मलजा.केशादा लोमादालोमद्वीपा.सौरसाऔदुम्बराजन्तुमातरश्चेतिपट्शोणितजाः अन्त्रादाउदरादाहृदयचराः चुरवोदर्भपुष्पा.सौगन्धिकामहागुदाश्चेतिसप्तकफजा॰ ककेरुकामकेरुकालेलिहा सशूलका सौसुरादाश्चेतिपञ्चपुरीपजाइति विंशतिः क्रिमिजातय॰ ॥ ३ ॥

बीस प्रकारकी कृमियाकी जातिय हैं। उनमें यूका और पिप्पलीक यह दो प्रकारके कृमि बाहरके मलसे होतेहैं। और केशाद, लोमाद, लोमद्वीप, सौरस, उदुंबर, जन्तुमातर, यह छ. प्रकारके कृमि रक्तसे प्रकट होतेहैं। अन्नाद, उदराद, हृदयचर, च्युरव, दर्भपुष्प, सौगंधिक, महागुद यह सात प्रकारके कृमि कफसे प्रकट होतेहैं। ककेरुक, मकेरुक, लेलिह, सशूलक और सौसुराद यह पाच प्रकारके पुरीषज कृमि होतेहैं। इस प्रकार सब मिलकर २० प्रकारकी कृमिजाति है। इन बीसोंसे ही शरीरको कष्ट होताहै इसलिये बीस प्रकारका कृमिरोग मानाहै ॥ ३ ॥

विंशति प्रमेहाइतिउदकमेहश्चेक्षुमेहश्चरसमेहश्चसान्द्रमेहश्चसान्द्रप्रसादमेहश्चशुक्लमेहश्चशुक्रमेहश्चशीतमेहश्चशनैर्मेहश्चसिकतामेहश्चलालामेहश्चेतिदशश्लेष्मनिमित्ताः। क्षारमेहश्चकालमेहश्चनीलमेहश्चलोहितमेहश्चमञ्जिष्ठामेहश्चहारिद्रमेहश्चेति षट् पित्तनिमित्ता । वसामेहश्चमज्जमेहश्चहस्तिमेहश्चमधुमेहश्चेतिचत्वारोवातनिमित्ताइतिविंशति प्रमेहाः ॥ ४ ॥

बीस प्रकारके प्रमेह है। उनमें—उदकमेह, इक्षुमेह, रसमेह, सान्द्रमेह, सान्द्रप्रसाद मेह, शुक्लमेह शुक्रमेह, शीतमेह, शनैर्मेह, सिकतामेह, लालामेह यह १० प्रकारके प्रमेह कफसे होतेहैं। क्षारमेह, कालमेह, नीलमेह, लोहितमेह, मजिष्ठामेह, हरिद्रामेह यह छ. प्रमेह पित्तसे होतेहै। वसामेह, मज्जामेह, हस्तिमेह, मधुमेह, यह ४ प्रमेह वातसे होतेहै। इस प्रकार सब मिलकर बीस प्रकारके प्रमेह हुए ॥ ४ ॥

विंशतिर्योनिव्यापदइतिवातिकीपैत्तिकीश्लैष्मिकीसान्निपातिकीचेतिचतस्रः दोषजा. । दूष्यसंसर्गप्रकृतिनिर्देशैरवशिष्टाःषोडशनिर्दिश्यन्ते । तद्यथा—रक्तयोनिश्चारजस्काचाचरणाचातिचरणाचप्राक्चरणाचोपप्लुताचोदावर्त्तिनीचकर्णिनीचपुत्रघ्नीचान्तर्मुखीचसूचीमुखीचशुष्काचवामिनीचषण्डयोनिश्चमहायोनिश्चेतिविंशतिर्योनिव्यापद केवलश्चायमुद्देश । यथोद्देशमभिनिर्दिष्टइति ॥ ५ ॥

बीस प्रकारके योनिव्यापत् रोग है। उनमें—वात, पित्त, कफ, सन्निपात इनसे चार प्रकारके हुए। दोष, दूष्य, संसर्ग और स्वभावके निर्देशसे १६ प्रकारके और

होतेहैं । वह इस प्रकार हैं जैसे—रक्तयोनि,अरजस्का,अचरणा, अतिचरणा,प्राक्चरणा, उपप्लुता, उदावर्तनी, कर्णिनी, पुत्रघ्नी, अतर्मुखी, सूचिमुखी, शुष्का, वामिनी षडयोनि और महायोनि इस प्रकार सब मिलकर २० योनिरोग हुए । यहा पर पूर्व-सग्रहके उद्देशसे सख्यामात्र कथन कीगई है ॥ ५ ॥

अध्यायका उपसहार ।

सर्वएवनिजविकारानान्यत्रवातपित्तकफेभ्योनिवर्त्तन्ते । यथा शकुनि.सर्वांदिशमपिपरिपतन्स्वाछायानातिवर्त्ततेतथास्वधा-तुवैषम्यनिमित्ता.सर्वविकारावातपित्तकफान्नातिवर्त्तन्ते । वात पित्तश्लेष्मणापुन.समुत्थानस्थानसस्थानप्रकृतिविशेषानभि समीक्ष्यतदात्मकानपिचसर्वविकारास्तानेवोपदिशन्तिबुद्धि-मन्त इति ॥ ६ ॥

सब प्रकारके निज रोग—वात, पित्त, कफ, से विना नहीं होसकते । जैसे पक्षी उडता २ किसी भी दिशामें घूमताहुआ अपनी छायासे अलग नहीं होसकता इसी प्रकार अपनी २ धातुकी विषमतासे उत्पन्न हुए भी रोग वात, पित्त कफसे अलग नहीं होसकते । इसी लिये बुद्धिमान्को उचित है कि वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोंके कारण, स्थान, लक्षण और प्रकृतिको विचारकर सपूर्ण रोगोंको वात, पित्त, कफ इन दोषोंके अतर्गत ही माने, क्योंकि सपूर्ण धात्वादि इन तीनोंके ही अधीन है ॥ ६ ॥

भवतिचात्र ।

स्वधातुवैषम्यनिमित्तजायेविकारसघावहव शरीरे । नतेपृथक्-पित्तकफानिलेभ्यआगन्तवस्त्वेवततोविशिष्टा ॥ ७ ॥ आग-न्तुरन्वेतिनिजविकारनिजस्तथागतुरतिप्रवृद्ध । तत्रानुबन्ध प्रकृतिंचसम्यक्ज्ञात्वाततःकर्मसमारभेत ॥ ८ ॥

शरीरम होनेवाले सपूर्ण विकार अपने २ धातुकी विषमतासे अनेक प्रकारके होतेहुए भी वह वात, पित्त, कफसे अलग नहीं होसकते । और आगतुज विकार भी शरीरमें होकर पीछेसे निज (शारीरिक) रोगोंके समान ही वातादिदोषात्मक होजातेहैं । ऐसे ही निज रोग भी आगतुओंके समान लक्षणोंको धारण करतेहै इस लिये कारणानुबध और प्रकृतिको भली प्रकार समझकर चिकित्सा आरभ करनी चाहिये ॥ ७॥ ८ ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकौ ।

विंशकाश्चैककाश्चैवात्रिकाश्चोक्तास्त्रयस्त्रय.।द्विकाश्चाष्टौचतुष्का-
श्चदशद्वादशपञ्चका'॥ चत्वारश्चाष्टकावर्गा.षट्कौद्वौसप्तकास्त्र
य' । अष्टोदरीयेरोगाणामध्यायेसम्प्रकाशित' ॥ ९ ॥ १० ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेरोगचतुष्के,अष्टो-
दरीयोनामोनविंशोऽध्याय ॥ १९ ॥

यहा अध्यायकी पूर्तिमें दो श्लोक हैं कि इस अष्टोदरीय अध्यायमें-बीस २ प्रकारके तीन रोग । एक २ प्रकारके तीनरोग । तीन २ प्रकारके तीन रोग । दो दो प्रकारके आठ रोग । चार २ प्रकारके १० रोग । पाच २ प्रकारके १२ रोग । आठ२ प्रकारके चार रोग । छ २ प्रकारके दो रोग । सात २ प्रकारके तीन रोग इस प्रकार रोगसंग्रहका कथन कियाहै ॥ ९ ॥ १० ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्र० प० रामप्रसाद०भाषाटीकायामष्टोदरीयो नामैकोनविंशोऽध्याय ॥ १९ ॥

विंशोऽध्याय. ।

अथातो महारोगाध्यायव्याख्यास्यामि इति हस्माहभगवाना-
त्रेय. ।

अब हम महारोगाध्यायकी व्याख्या करतेहैं ऐसा आत्रेय भगवान् कहनेलगे ।

रोगोंके भेद ।

चत्वारोरोगाभवन्तिआगन्तुवातपित्तश्लेष्मनिमित्ता । तेषाच
तुर्णामपिरोगाणारोगत्वमेकविधरुक्सामान्यात् । द्विविधापुन'
प्रकृतिरेषामागन्तुनिजविभागाद्विविधंचैषामधिष्ठानमन शरी
रविशेषात् । विकारा पुनरेषामपरिसंख्येया.प्रकृत्यधिष्ठानलि
ङ्गायतनविकल्पविशेषाणामपरिसंख्येयत्वात् ॥ १ ॥

रोग चार प्रकारके होतेहै।वातज,पित्तज श्लेष्मज और आगन्तुज। परन्तु उन चारोंही दु खदाई होनेसे सामान्यतासे एक प्रकारका ही रोग मानाहै । वह फिर निज

और आगतुज भेदसे दो प्रकारके स्वभाववाले होतेंहं । इन द्विविध रोगोंका अधिष्ठान भी मन और शरीर दो प्रकारका है ॥ फिर रोगोंके, स्वभाव, अधिष्ठान, लक्षण, निदान, विकल्प इनमें अंशादि असख्यता होनेसे रोग भी असख्य होतेंहै ॥ १ ॥

मुखानितुखल्वागन्तोःनखदशनपतनाभिचाराभिशापाभिषङ्ग-
व्यधवन्धपीडनरज्जुदहनमन्त्राशनिभूतोपसर्गादीनि ॥ २ ॥
निजस्यतुमुखवातपित्तश्लेष्मणावैषम्यम् ॥ ३ ॥

आगतुज रोगोंके कारण यह होतेहे । जैसे–नख, दतादिका लगना, गिरना, अभिचार, अभिशाप, अभिषग, वेधन, बधन, पीडन, रस्सी आदिका बधन, दहन, मत्र, वज्रपात और किसी जानवर आदिके उपसर्गसे आगतुज रोग होतेंहैं ॥ २ ॥ और वात, पित्त, कफकी विषमतासे निज (शारीरिक) रोग होतेंहैं । ३ ॥

द्वयोस्तुखलुआगन्तुनिजयो॰प्रेरणसात्म्येन्द्रियार्थसयोगःप्रज्ञा
पराधःपरिणामश्चेति । सर्वेपितुखल्वेतेऽभिप्रवृद्धाश्चत्वारोरोगा
परस्परमनुवध्नन्तिनचान्योन्यसन्देहमापद्यन्ते ॥ ४ ॥

आगतुज और निज इन दोनों रोगोंको प्रेरण करके लानेका कारण असात्म्य पदार्थोंका सभोग होना ही है और बुद्धिके अपराधका परिणाम भी कारण है क्योंकि सब वस्तुओंका अयोग, अतियोग, मिथ्यायोग होनेसे ही दोनों प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति होतीहै । यह वातज, पित्तज, कफज, आगतुज, चारों रोग बहुत वृद्धिको प्राप्त होनेसे परस्पर लक्षणोंको प्रकाशित करतेंहैं । परतु इनके एकके लक्षणोंमे दूसरेका सदेह नहीं होता ॥ ४ ॥

आगन्तुर्हिव्यथापूर्वसमुत्पन्नोजघन्यवातपित्तश्लेष्मणावैषम्य-
मापादयति । निजेतुवातपित्तश्लेष्माण॰पूर्ववैषम्यमापद्यन्ते
जघन्यंव्यथामभिनिर्वर्त्तयन्ति । तेषत्रयाणामपिदोषाणांश
शरीरेस्थानविभागउपदेक्ष्यते ॥ ५ ॥

निज और आगतुज रोगोंमें भेद केवल इतना ही है कि आगतुज रोग पहले प्रगट होकर पीछे वात, पित्त, कफकी विषमताको धारण करताहै । और निज रोगोंमें पहले वात, पित्त, कफकी विषमता होकर पीछे रोगको उत्पन्न करतेंहै । अब उन वात,पित्त, कफके स्थान विभागको कहतेंहै ॥ ५ ॥

तद्यथावस्ति.पुरीषाधानंकटि सक्थिनीपादावस्थीनिवातस्थानानि। तत्रापिपक्वाशयोविशेषेणवातस्थानम् ॥ ६ ॥ स्वेदोरसोलसीकारुधिरमामाशयश्चपित्तस्थानानितत्रापिआमाशयोविशेषेणपित्तस्थानम् ॥७॥ उर शिरोग्रीवापर्वाण्यामाशयोमेदश्चश्लेष्मण. स्थानानि तत्रापिउरोविशेषेणश्लेष्मण स्थानम् ॥ ८ ॥

बस्ति, मलस्थान, कमर, नितंब, दोनों पांव, हड्डी यह वायुके स्थान हैं। इनमें भी पक्वाशय विशेषतासे वातका स्थान है ॥ ६॥ स्वेद, रस, लसीका, रक्त और आमाशय यह पित्तके स्थान हैं। इनमें भी आमाशय, विशेषतासे पित्तका स्थान है। इस जगह आमाशय शब्दसे आमाशयाशभूत ग्रहणी समझना ॥ ७ ॥ उरःस्थल,मस्तक, गर्दन, पर्व, आमाशय, और मेद यह कफके स्थान हैं। इनमें भी उर स्थल (छाती) विशेषतासे कफका स्थान है ॥ ८ ॥

सर्वशरीरचारास्तुवातपित्तश्लेष्माणोहिसर्वेस्मिञ्छरीरेकुपिताकुपिता शुभाशुभानिकुर्वन्ति । प्रकृतिभूता शुभानि, उपचयबलवर्णप्रसादादीनि । अशुभानिपुन.विकृतिमापन्नानिविकारसंज्ञकानि । तत्रविकारा.सामान्यजानानात्मजाश्चतत्रसामान्यजा.पूर्वमष्टोदरीयेव्याख्याता । नानात्मजास्त्विहाध्यायेऽनुव्याख्यास्याम ॥ ९ ॥

संपूर्ण शरीरमें वात, पित्त, कफ, यह तीनों विचरतेहैं और कुपित या अकुपित हुए सर्वशरीरमें शुभ तथा अशुभको करतेहैं।यदि यह वातादि प्रकृतिस्थ हों तो शरीरमें पुष्टि, बल, वर्ण, प्रसन्नता आदि शुभ शुभलक्षणोंको करतेहैं और विकृत होनेसे अनेक प्रकारके विकारोंको करतेहैं। इन दोषोंका विकृत होना ही विकार कहाजाताहै। यह विकार सामान्यज और नानात्मज इन भेदोंसे दो प्रकारके हैं। सामान्यज विकार अष्टोदरीय अध्यायमें कह चुके हैं और नानात्मज विकारोंको इस अध्यायमें कथन करतेहैं ॥ ९ ॥

तद्यथा—अशीतिर्वातविकारा चत्वारिंशत्पित्तविकारा.विंशति.श्लेष्मविकारा ॥ १० ॥

वह इस प्रकार हैं जैसे ८० प्रकारके वातविकार हैं। ४० प्रकारके पित्तविकार हैं और बीस २० प्रकारके कफके विकार होतेहैं ॥ १० ॥

तत्रादौवातविकाराननुव्याख्यास्यामः । तद्यथा—नखभेदश्च, विपादिकाच, पादशूलश्च, पादभ्रंशश्च, सुप्तपादताच, वातखुड्डताच, गुल्फग्रहश्च, पिण्डिकोद्वेष्टनश्च, गृध्रसीच, जानुभेदश्च, जानुविश्लेषश्च, ऊरुस्तम्भश्च, ऊरुसादश्च, पाङ्गुल्यश्च, गुदभ्रंशश्च, गुदार्त्तिश्च, वृषणोत्क्षेपश्च, शेफस्तम्भश्च, वङ्क्षणानाहश्च, श्रोणिभेदश्च, विड्भेदश्च, उदावर्त्तश्च, खञ्जत्वश्च, कुब्जत्वश्च, वामनत्वश्च, त्रिकग्रहश्च, पृष्ठग्रहश्च, पार्श्वावमर्दश्च, उदरवेष्टश्च, हृन्मोहश्च, हृद्द्रवश्च, वक्ष–उपरोधश्च, वक्ष–उद्धर्षश्च, बाहुशोषश्च, ग्रीवास्तम्भश्च, मन्यास्तम्भश्च,कण्ठोद्ध्वसश्च, हनुस्तम्भश्च, ओष्ठभेदश्च, दन्तभेदश्च, दन्तशैथिल्यश्च, मूकत्वश्च, वाक्सङ्गश्च, कषायास्यताच, मुखशोषश्च, अरसज्ञताच, घ्राणनाशश्च, कर्णशूलश्च, अशब्दश्रवणश्च, उच्चैःश्रुतिश्च, बाधिर्य्यश्च, वर्त्मस्तम्भश्च, वर्त्मसङ्कोचश्च, तिमिरश्च, आक्षिशूलश्च, अक्षिव्युदासश्च, भ्रूव्युदासश्च, शखभेदश्च, ललाटभेदश्च, शिरोरुक्च, केशभूमिस्फुटनश्च, अर्दितश्च, एकाङ्गरोगश्च, सर्वाङ्गरोगश्च पक्षवधश्च, आक्षेपकश्च, दण्डकश्च, श्रमश्च, भ्रमश्च, वेपथुश्च, जृम्भाच, विषादश्चातिप्रलापश्च, ग्लानिश्च,रौक्ष्यश्च,पारुष्यश्च,श्यावारुणावभासताच, अस्वप्नश्च, अनवस्थितत्वश्चेत्यशीतिर्वातविकारा ॥ ११ ॥

उनमें पहले वातविकारोंको कहतेहैं । नखभेद, विपादिका, 'पादशूल, पादभ्रंश' पादसुप्ति, वातखुड्डता, गुल्फग्रह, पिंडिकोद्वेष्टन, गृध्रसी, जानुभेद,जानुविश्लेष, ऊरुस्तम, ऊरुसाद, पांगुल्य, गुदभ्रंश, गुदार्ति, वृषणोत्क्षेप, शेफस्तभ, वक्षणानाह, श्रोणीभेद, विड्भेद, उदावर्त, खजता, कुवडापन, वामनत्व, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, पार्श्वशूल, उदर-वेष्ट, हन्मोह, हृद्द्रव, वक्षोपरोध, वक्षोद्धर्प, बाहुशोष, ग्रीवास्तभ, मन्यास्तभ, कठोध्वस, हनुस्तभ, ओष्ठभेद, दतभेद, दतशिथिलता, मूकता,वाण्यवरोध, कषायास्यता,मुखशोष,

रसाज्ञान, घ्राणनाश, कर्णशूल, कर्णनाद, उच्चै श्रवण, बाधिर्य वर्त्मस्तंभ, वर्त्मसंकोच, तिमिर, अक्षिशूल, अक्षिव्युदास, भ्रूव्युदास, शंखभेद, ललाटभेद, शिरःशूल, केशभूमिस्फुटन, अर्दित, एकांगरोग, सर्वांगरोग, पक्षाघात, आक्षेपक, दंडक, श्रमबोध, भ्रम, कंप, जृंभा, विषाद, अतिप्रलाप, ग्लानि, रूक्षता, पारुष्य, श्याम या अरुणावभास, अनिद्रा, चलचित्तता यह अस्सी रोग वातसे होतेहैं ॥ ११ ॥

वातविकाराणामपरिसंख्येयानामाविष्कृततमाव्याख्याता सर्वे ष्वपिखल्वेतेषुवातविकारेषुअन्येषुचानुक्तेषुवायोरिदमात्मरूप मपरिणामिकर्मणश्चस्वलक्षणयदुपलभ्यतदवयववाविमुक्तसन्देहावातविकारमेवाध्यवस्यन्तिकुशला ॥ १२ ॥

वातरोग असंख्य होतेहैं परंतु यहां पर उन असंख्य विकारोंमें जो मुख्य २ हैं उनका कथन करदियाहै इन वातविकारोंमें तथा इनसे अन्य जो यहां पर नहीं कहेगये उनमें भी वायुके विकृत और अविकृत अवस्थाके कर्म, लक्षण तथा अंशादि विचार कर संदेहरहित कुशल वैद्य वातविकारको जाने क्योंकि विकृत वायु अपनी अवस्था छोडदेनेसे जिस स्थानमें प्रवेश करताहै उसी स्थानमें अनेक विकारोंको उत्पन्न कर देताहै, इसलिये वातके स्वभाव, लक्षणोंको समझलेना बुद्धिमान् वैद्यका कर्म है ॥ १२ ॥

तद्यथा।

रौक्ष्यलाघववैशद्य शैत्यगतिरमूर्त्तत्वश्चेतिवायोरात्मरूपाणि । एवविधत्वाच्चकर्मणश्चस्वलक्षणमिदमस्यभवति ततशरीरावयवमाविशत स्रंसभ्रंशव्यासाङ्गभेदसादहर्ष-तर्षावर्त्त-मर्दकम्प चालतोदव्यथवेष्टभङ्गास्तथाखरपरुषविशदसुषिरतारुणकषायविरसता-शोषशूलसुप्तिसङ्कुचनस्तम्भनानिवायो कर्माणितैरन्वितवातविकारमेवाध्यवस्येत् ॥ १३ ॥

अब इन वायुके धर्मोंको कहतेहैं। जैसे-रूक्षता, लघुता, विशदता, शीतता, गमनशीलता, सूक्ष्मता यह वायुके आत्मरूप हैं। इन ही धर्मोंवाले वायुके कर्म और लक्षण होतेहैं। जब यह शरीरस्थ विकृत वायु शरीरके जिस २ अंगमें प्रवेश करताहै उसी २ अंगमें वायुके कार्य और लक्षण दिखाईदेतेहैं जैसे स्रंस, भ्रंश, प्रसार, अंगभेद विषाद, हर्ष, तृषा, आवर्तन, मर्द, कंप, चालन, तोद, व्यथा, चेष्टा

तत्रादौवातविकाराननुव्याख्यास्यामः । तद्यथा–नखभेदश्च, विपादिकाच, पादशूलश्च, पादभ्रंशश्च, सुप्तपादताच, वातखुड्डताच, गुल्फग्रहश्च,पिण्डिकोद्वेष्टनश्च, गृध्रसीच, जानुभेदश्च, जानुविश्लेषश्च, ऊरुस्तम्भश्च, ऊरुसादश्च, पाङ्गुल्यश्च, गुद भ्रंशश्च, गुदार्त्तिश्च, वृषणोत्क्षेपश्च, शेफस्तम्भश्च, वङ्क्षणानाहश्च, श्रोणिभेदश्च, विड्भेदश्च, उदावर्त्तश्च, खञ्जत्वञ्च, कुब्ज त्वञ्च, वामनत्वञ्च, त्रिकग्रहश्च, पृष्ठग्रहश्च, पार्श्वावमर्दश्च, उदरवेष्टश्च, हृन्मोहश्च, हृद्द्रवश्च, वक्ष–उपरोधश्च, वक्ष–उद्धर्षश्च, बाहुशोषश्च, ग्रीवास्तम्भश्च, मन्यास्तम्भश्च,कण्ठो द्धूसश्च, हनुस्तम्भश्च, ओष्ठभेदश्च, दन्तभेदश्च, दन्तशै थिल्यञ्च, मूकत्वञ्च, वाक्सङ्गश्च, कषायास्यताच, मुखशोषश्च, अरसज्ञताच, घ्राणनाशश्च, कर्णशूलश्च, अशब्दश्रवणञ्च, उच्चैःश्रुतिश्च, बाधिर्य्यश्च, वर्त्मस्तम्भश्च, वर्त्मसङ्कोचश्च, तिमिरञ्च, आक्षिशूलञ्च, अक्षिव्युदासश्च, भ्रूव्युदासश्च, शङ्ख भेदश्च, ललाटभेदश्च, शिरोरुक्च, केशभूमिस्फुटनञ्च, आर्दि तञ्च, एकाङ्गरोगश्च, सर्वाङ्गरोगश्च, पक्षवधश्च, आक्षेपकश्च, दण्डकश्च, श्रमश्च, भ्रमश्च, वेपथुश्च, जृम्भाच, विषादश्चाति प्रलापश्च, ग्लानिश्च,रौक्ष्यञ्च,पारुष्यञ्च,श्यावारुणावभासताच, अस्वप्नश्च, अनवस्थितत्वञ्चेत्यशीतिर्वातविकाराः ॥ ११ ॥

उनमें पहले वातविकारोंको कहतेहैं । नखभेद, विपादिका, पादशूल, पादभ्रंश, पादसुप्ति, वातखुड्डता, गुल्फग्रह, पिंडिकोद्वेष्टन, गृध्रसी, जानुभेद,जानुविश्लेप, ऊरुस्तंभ, ऊरुसाद, पांगुल्य, गुदभ्रंश, गुदार्ति, वृषणोत्क्षेप, शेफस्तंभ, वक्षणानाह, श्रोणीभेद, विड्भेद, उदावर्त, खजता, कुबडापन, वामनत्व, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, पार्श्वशूल, उदर-वेष्ट, हृन्मोह, हृद्द्रव, वक्षोपरोध, वक्षोद्धर्ष, बाहुशोष, ग्रीवास्तंभ, मन्यास्तंभ, कंठोध्वंस, हनुस्तंभ ओष्ठभेद, दंतभेद, दंतशिथिलता, मूकता,वाण्यवरोध, कषायास्यता,मुखशोष,

रमाज्ञान, प्राणनाश, कर्णशूल, कर्णनाद, उच्चैः श्रवण, बाधिर्य वत्मस्तभ, वर्त्मसंकोच, तिमिर, अक्षिशूल, अक्षिव्युदास भ्रूव्युदास,शसभेद, ललाटभेद, शिरःशूल, केशभूमिस्फुटन, अर्दित, एकांगरोग, सर्वांगरोग, पक्षाघात, आक्षेपक, दंडक, श्रमबोध, भ्रम, कंप, जृंभा, विषाद, अतिप्रलाप, ग्लानि, रूक्षता, पारुष्य, श्याम या अरुणावभास, अनिद्रा, चलचित्तता, यह अस्सी रोग वातसे होतेंहै ॥ ११ ॥

वातविकाराणामपरिसंख्येयानामाविष्कृततमाव्याख्याता सर्वे ष्वपिखल्वेतेषुवातविकारेषुअन्येषुचानुक्तेषुवायोरिदमात्मरूप मपरिणामिकर्मणश्चस्वलक्षणयदुपलभ्यतदवयववाविमुक्तसन्देहावातविकारमेवाध्यवस्यन्तिकुशला ॥ १२ ॥

वातरोग असंख्य होतेंहै परंतु यहां पर उन असंख्य विकारोंमें जो मुख्य २ हैं उनका कथन करदियाहै इन वातविकारोंमें तथा इनसे अन्य जो यहां पर नहीं कहेगये उनमें भी वायुके विकृत और अविकृत अवस्थाके कर्म, लक्षण तथा अंशादि विचार कर संदेहरहित कुशल वैद्य वातविकारोंको जाने क्योंकि विकृत वायु अपनी अवस्था छोडदेनेसे जिस स्थानमें प्रवेश करताहै उसी स्थानमें अनेक विकारोंको उत्पन्न कर देताहै, इसलिये वातके स्वभाव, लक्षणोंको समझलेना बुद्धिमान वैद्यका कर्म है ॥ १२ ॥

तद्यथा ।

रौक्ष्यलाघववैशद्य शैत्यगतिरमूर्त्तत्वञ्चेतिवायोरात्मरूपाणि । एवंविधत्वाच्चकर्मणश्चस्वलक्षणमिदमस्यभवति ततशरीरावयवमाविशत स्रंसभ्रंशव्यासाङ्गभेदसादहर्ष–तर्षावर्त्त–मर्दकम्पचालतोदव्यथवेष्टभङ्गास्तथाखरपरुषविषदसुषिरतारुणकषायविरसता–शोषशूलसुप्तिसंकुचनस्तम्भनानिवायोः कर्माणितैरन्वितवातविकारमेवाध्यवस्येत् ॥ १३ ॥

अथ उन वायुके धर्मोंको कहतेंहै । जैसे–रूक्षता,लघुता, विशदता, शीतता, गमनशीलता, सूक्ष्मता यह वायुके आत्मरूप है । इन छः धर्मोंवाले वायुके कर्म और लक्षण होतेहै । जब यह शरीरस्थ विकृत वायु शरीरके जिस २ अंगमें प्रवेश करताहै उसी २ अंगमें वायुके कार्य और लक्षण दिखाइदेतेहै जैसे स्रंस भ्रंश, प्रसार, अंगभेद विषाद, हर्ष तृषा, आवर्तन मर्द कंप चालन तोद व्यथा, वेष्ट, भंगता

कर्कशता, परुषता, विशदता, सुपिरता, अरुणवर्णता, कषायता, रसाज्ञान, शोष, शूल, सुप्ति, सकोचन, स्तभन यह वायुके कर्म हैं । इन लक्षणोंवाले विकारोंको वातविकार जाने ॥ १३ ॥

तंमधुराम्ललवणस्निग्धोष्णैरुपक्रमैरुपक्रमेत । स्वेदस्नेहास्थापनानुवासननस्त'कर्मभोजनाभ्यङ्गोत्सादनपरिषेकादिभिर्वातहरैर्मात्राकालञ्च प्रमाणीकृत्यास्थापनानुवासनन्तुसर्वथोपक्रमेभ्योवातेप्रधानतममन्यन्तेभिषज ॥ १४ ॥

वैद्यको उचित है कि मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध और उष्ण द्रव्य द्वारा वातकी चिकित्सा करे । वातनाशक स्वेदन, स्नेहन, आस्थापन, अनुवासन, नस्यकर्म, उष्णस्निग्धभोजन, अभ्यग, उत्सादन और परिषेक आदिसे मात्रा और काल विचारकर वायुको जीते । वातनाशक सव क्रियाओंम वैद्य लोग आस्थापन और अनुवासन वस्तिकर्मको ही मुख्य मानतेहै ॥ १४ ॥

तद्ध्यादितएवपक्काशयमनुप्रविश्यकेवलवैकारिकंवातमूलछिनत्ति । तत्रावजितेवातेऽपिशरीरान्तर्गतावातविकारा प्रशान्तिमापद्यन्ते । यथावनस्पतेर्मूलेछिन्नेस्कन्धशाखावरोहकुसुमफलपलाशादीनानियतोविनाशस्तद्वत् ॥ १५ ॥

(क्योंकि) आस्थापन और अनुवासन कर्म पकाशयमें प्रवेश करके विकार करने वाले वायुको जडसे ही नष्ट कर देताहै । जब पकाशयस्थ वैकारिक वायु नष्ट होजाताहै फिर वातजन्य विकार स्वय शातिको प्राप्त होजातेहै । जैसे वृक्षकी जड काटदेनेसे उसके टहने, टहनिया, अवरोह, फूल, फल, पत्ते आदि सब स्वय विनाशको प्राप्त होजातेहैं । ऐसे ही पकाशयस्थ वायुके उच्छेदसे सब वातविकार शात होजातेहैं ॥ १५ ॥

पित्तविकाराश्चत्वारिंशदतऊर्द्ध्वंव्याख्यास्यन्ते। तंयथा—ओपश्च, प्लोपश्च, दाहश्च, दवथुश्च, धूमकश्च, अम्लकश्च, विदाहश्च, अन्तर्दाहश्च,असदाहश्च,ऊष्माधिक्यश्च,अतिस्वेदश्चाङ्गगन्धश्च, अङ्गावयवदरणश्च, शोणितक्लेदश्च, मासक्लेदश्च, त्वग्दाहश्च, मासदाहश्च, त्वङ्मासदरणश्च, चर्मदरणश्च, रक्तकोठाश्च,

रक्तविस्फोटाश्च, रक्तपित्तश्च, रक्तमण्डलानिच, हरितत्वश्च, हारिद्रत्वश्च, नीलिकाच, कक्षाच, कामलाच, तिक्तास्यताच, पूतिमुखताच, तृष्णायाआधिक्यश्च, अतृप्तिश्च, आस्यपाकश्च, गलपाकश्च, अक्षिपाकश्च, गुदपाकश्च, मेढ्रपाकश्च, जीवादानश्च, तम प्रवेशश्च, हरितहारिद्रमूत्रनेत्रवर्चस्त्वश्चेतिचत्वारिंशत्पित्तविकाराः । पित्तविकाराणामपरिसंख्येयानामाविष्कृततमाव्याख्याताभवन्ति ॥ १६ ॥

अब इसके उपरात चालीस प्रकारके पित्तविकारोंका कथन करतेहैं। अग्निके तापके समान ताप, जलन, दाह, हृदयमे धक २ आगसी जलना, धूवासा निकलना, खट्टी डकार, विदाह, अतर्दाह, अंगदाह, गर्मीकी अधिकता, अतिस्वेद, अगगंध, अग और अवयवोंका फटना, शोणितक्लेद, मासक्लेद, त्वग्दाह, मासदाह, त्वचा और मासका फटना, चर्मदग्ण, रक्तके चकत्ते पडना, लाल रगके फोडे, रक्तपित्त, रक्तमडल, हरा वर्ण होजाना हल्दीका सा रग होना, नीलिका, कछगली, कामला, मुखमें कडुवापन, मुखदुर्गंध तृष्णाकी अधिकता, अतृप्ति, मुखपाक, गलपाक, नेत्रपाक, गुदपाक, शिश्नपाक जीवसज्ञक रक्तका क्षय अधकार प्रतीतहोना, हरे तथा हलदीके वर्णके समान नेत्र मूत्र, पुरीष, त्वचाका वर्णहोजाना, यह चालीस पित्तके विकार है। पित्तके विकार असख्य होतेहै परतु उन असख्योंमे जो मुख्य है उन ४० विकारोका यहा कथन किया गयाहै ॥ १६ ॥

सर्वेष्वपिखल्वेतेषुपित्तविकारेष्वन्येषुचानुक्तेषुपित्तस्येदमात्मरूपमपरिणामिकर्मणश्चस्वलक्षणयत्तदुपलभ्यतदवयववाविमुक्तसन्देहा पित्तविकारमेवाध्यवस्यन्तिकुशला ॥ १७ ॥

इन सब पित्तविकारोंमे तथा जो यहा नहीं भी कहे उन अन्य पित्तविकारोंमे पित्तके आत्मिक स्वभाव और परिणामोंको तथा पित्तके धर्म और लक्षणों द्वारा पित्तके अशविकारादि देखकर चतुरलोग निस्सन्देह उन रोगोंको पित्तजन्य मानतेहैं ॥ १७ ॥

तद्यथा ।

औष्ण्यंतैक्ष्ण्यंलाघवमनतिस्नेहोवर्णश्चशुक्लारुणवर्जोगन्धश्च विस्रोरसौचकटुकाम्लौपित्तस्यात्मरूपाणि । एवंविधस्यास्यकर्म

णःस्वलक्षणमिदमस्यभवति। ततशरीरावयवमाविशतोदाहो-ष्मपाकस्वेदक्लेदकोथस्नावरागा यथास्वञ्चगन्धवर्णरसादिभि-र्निर्वर्त्तनपित्तस्यकर्माणितैरन्वितपित्तविकारमेवाध्यवस्येत्॥१८॥

अब पित्तके कर्म और लक्षणाको कहतेहै जैसे उष्णता, तीक्ष्णता, लघुता, किंचित्स्निग्धता, शुक्ल और अरुणवर्णसे भिन्न वर्णवाला, दुर्गंधित, पूति, कटु, खट्टा, यह सब पित्तके आत्मधर्म है इस ही प्रकारके इसके कर्म और लक्षण होतेहै । जब यह कुपित होकर जिस २ अगमें जाताहै उसी २ अगमें दाह, गर्मी, पाक, स्वेद, क्लेद, कोथ, स्राव, लाली यह लक्षण होतेहै और पित्तके धर्मवाले ही गध, वर्ण, मुखका स्वाद आदि होतेहै ऐसे २ पित्तात्मक लक्षणाके होनेसे पित्तविकारको निश्चय करे ॥ १८ ॥

पित्तविकारोमे चिकित्साक्रम ।

तमधुरतिक्तकषायशीतैरुपक्रमैरुपक्रमेतस्नेहविरेकप्रदेहपरिषेकाभ्यङ्गावगाहादिभि पित्तहरैर्मात्राकालञ्चप्रमाणीकृत्य। विरेचनन्तुसर्वोपक्रमेभ्य.पित्तेप्रधानतममन्यन्तेभिषज ॥ १९ ॥

पित्तकी चिकित्सा मीठे, कडुवे, कषैले और शीतल द्रव्यों द्वारा करे। तथा पित्तको शान्त करनेवाले स्नेहन, विरेचन, प्रलेप, परिषेक, अभ्यग, अवगाह द्वारा मात्राकाल विचारकर चिकित्सा करे । पित्तनाशक सपूर्ण चिकित्साओंमे विरेचन कराना वैद्यजन सबसे उत्तम चिकित्सा मानतेहै ॥ १९ ॥

तद्ध्यादितएवामाशयमनुप्रविश्यकेवलवैकारिकपित्तमूलञ्चाप-कर्षतितत्रावजितेपित्तेऽपिशरीरान्तर्गता·पित्तविकारा प्रशान्तिमापद्यन्ते । यथाग्नौव्यपोढेकेवलमग्निगृहञ्चशीतभवतितद्वत्॥२०॥

क्योकि विरेचनकारक औषधि आमाशयमें प्रवेश करके विकारकारक पित्तको जडसे उखाडकर विरेचन द्वारा निकालदेतीहै आमाशयमे रहेहुए पित्तको जीतलेनेसे शरीरान्तर्गत पित्तविकार स्वय शान्त होजातेहैं जैसे अग्निके नष्ट होनेसे अग्निका स्थान भी स्वय शीतल होजाताहै उसीके समान पित्तविकार स्वय शात होजातेहै ॥ २० ॥

श्लेष्मविकाराश्चविंशतिरतऊर्द्ध्वंव्याख्यास्यन्ते । तद्यथा—तृप्तिश्च, तन्द्राच, निद्राधिक्यञ्च, स्तैमित्यञ्च, गुरुगात्रताच, आलस्यञ्च, मुखमाधुर्य्यञ्च, मुखस्रावश्च, उद्गारश्च, श्लेष्मो-

द्रणश्च, मलस्याधिक्यश्च, कण्ठोपलेपश्च, वलाशश्च, हृदयोपलेपश्च, धमनीप्रतिचयश्च, गलगण्डश्च, अतिस्थौल्यश्च, शीताग्निताच, उदर्दश्च, श्वेतावभासताच, श्वेतमूत्रनेत्रवर्चस्त्वश्चेतिविंशति श्लेष्माधिकारा ॥ २१ ॥

अब वीस प्रकारके कफके विकारोंको कहतेहै। वह इस प्रकारहैं। तृप्ति (अरुचि) तन्द्रा, निद्राकी अधिकता, स्तैमित्य, अंगोंका भारीपन, आलस्य, मुखमें मीठापन, लारबहना, उद्गार, वारवार कफका थूकना, मलकी अधिकता, कण्ठमें कफका लिपा रहना, बलास, हृदयका लिहसा सा रहना, धमनियामें स्थूलता, गलगंड, अतिस्थूलता, मदाग्नि, उदर्द, सफेद वर्ण होना, मूत्र, नेत्र और पुरीषका सफेद होना यह वीस प्रकारके कफके विकार है ॥ २१ ॥

श्लेष्मविकाराणामपरिसंख्येयानामाविष्कृततमाख्याता । सर्वेष्वपितुखल्वेतेषुश्लेष्मविकारेष्वन्येषुचानुक्तेश्लेष्मणइदमात्मरूपमपरिणामिकर्मणश्चस्वलक्षणयदुपलभ्यतेतदवयववाविमुक्तसन्देहा श्लेष्मविकारमध्यवस्यन्तिकुशला ॥ २२ ॥

यद्यपि कफके विकार असंख्य होसकतेहै परंतु उनमें जो मुख्य वीस विकार है यहा उनका कथन कियाहै। इन सब विकारोंमे जो यहा कथन कियेहै और जो कथन नहीं किये गये इन सबमें कफके धर्म और लक्षणाको और कफकी विकृतावस्थाके कर्मोंको विचारकर कुशल वैद्य कफके विकारका निश्चय करे ॥ २२ ॥

तद्यथा—श्वैत्यशैत्यगौरवमाधुर्य्यमात्सर्य्याणिश्लेष्मणआत्मरूपाण्येवविधत्वाच्चकर्मण स्वलक्षणमिदमस्यभवति । ततशरीरावयवमाविशत श्वैत्यशैत्यकण्डूस्थैर्य्यगौरवस्नेहस्तम्भसुप्तिक्लेदोपदेहवन्धमाधुर्य्यचिरकारित्वानिश्लेष्मण कर्माणितैरन्वितश्लेष्मविकारमेवाध्यवस्येत् ॥ २३ ॥

यह कफात्मक धर्म इसप्रकार है। जैसे—श्वैत्य, गौरव, माधुर्य, मात्सर्य, यह कफके आत्मरूप है। और इस ही प्रकारके इसके कर्म और लक्षण होतेहै। यह जब किस २ शरीरके अवयवमें प्रवेश करताहै उसमें श्वेतता, शीतता खाज, स्थिरता भारीपन स्निग्धता, स्तंभ, सुप्ति, क्लेद, उपलेप, बंध, माधुर्य, चिरकारीपन इन अपने कर्म लक्षणोंको दिखाताहै। इन लक्षणोंयुक्त विकारोंको कफके विकार जाने ॥ २३ ॥

श्लेष्मविकारकी चिकित्सा ।

तंकटुकतिक्तकषायतीक्ष्णोष्णरूक्षैरुपक्रमैरुपक्रमेतस्वेदनवमनशिरोविरेचनव्यायामादिभि.श्लेष्महरैर्मात्राकालश्चप्रमाणीकृत्य । वमनन्तुसर्वोपक्रमेभ्य श्लेष्मणिप्रधानतमंमन्यन्तेभिषजः ॥ २४ ॥ तद्ध्यादितएवामाशयमनुप्रविश्यकेवलंवैकारिकश्लेष्ममूलमपकर्षति । तत्रावजितेश्लेष्मण्यपिशरीरान्तर्गताः श्लेष्मविकाराःप्रशान्तिमापद्यन्ते । यथाभिन्नेकेदारसेतौशालियवषष्टिकादीन्यभिष्यन्द्यमानानि, अम्भसाप्रशोपमापद्यन्तेतद्वदिति ॥ २५ ॥

उस कफको कटु, तिक्त, कषाय, तीक्ष्ण और उष्ण तथा रूक्ष उपायों द्वारा जीते। एव स्वेदन, वमन, शिरोविरेचन, व्यायाम आदिक कफनाशक उपाया द्वारा मात्रा और काल विचारकर चिकित्सा करे । कफनाशक सब उपायोंमें वैद्यजन वमन कराना सबसे उत्तम मानतेहै, क्योंकि वामक औपधि प्रथम ही आमाशयम प्रवेश कर वैकारिक कफको जडसे आकर्षण करके निकालदेतीहै । फिर उस वैकारिक कफके जीते जानेसे शरीरान्तर्गत सब कफके विकार स्वय शान्त होजातेहै । जैसे पानीके भरे खेतकी डौल तोडदेनेसे खेतका सब पानी बाहर निकल जाताहै और उस खेतके अदरके सब धान सूखजातेहैं ऐसे ही कफविकार भी सब शात होजातेहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

भवन्तिचात्र ।

अध्यायका उपसहार ।

रोगमादौपरीक्षेतततोऽनन्तरमौषधम् ।
ततः कर्मभिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वंसमाचरेत् ॥ २६ ॥

यहा कहाहै कि पहले रोगकी परीक्षा करे फिर औषधिकी परीक्षा करे, इन दोनोंका यथोचित निश्चय करके फिर ज्ञानपूर्वक चिकित्साकर्मका आरम करे ॥ २६ ॥

यस्तुरोगमविज्ञायकर्माण्यारभतेभिषक् ।
अप्यौषधविधानज्ञस्तस्यसिद्धिर्यदृच्छया ॥ २७ ॥

जो वैद्य रोगको यथोचित समझे विना ही चिकित्साका आरम्भ करदेताहै वह यदि औषधज्ञानमें कुशल भी हो फिर भी उसकी सिद्धि दैवाधीन है अर्थात् अन्दाज लगगया तो लगगया नहीं तो नुकसान भी होजाताहै ॥ २७ ॥

यस्तुरोगविशेषज्ञ सर्वभैषज्यकोविद. ।
देशकालप्रमाणज्ञस्तस्यसिद्धिरसशयम् ॥ २८ ॥

जो वैद्य रोगको भले प्रकार समझलेताहै तथा सब प्रकारसे औषधक्रियामें भी कुशल है और देश काल विचारकर चिकित्सा करताहै उसकी सिद्धि अवश्य ही होतीहै ॥ २८ ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोका । सग्रह प्रकृतिर्देशोविकारसुखमीरणम् । असन्देहोऽनुबन्धश्चरोगाणांसम्प्रकाशित ॥ २९ ॥ दोषस्थानानिरोगाणागणानानात्मजाश्रये । रूपंपृथक्त्वाद्दोषाणाकर्मचापरिणामियत् ॥ ३० ॥ पृथक्त्वेनचदोषाणानिर्दिष्टा समुपक्रमा । सम्यङ्महतिरोगाणामध्यायेतत्त्वदर्शिना ॥ ३१ ॥

इत्यग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेरोगचतुष्केमहारोगाध्यायोनामविंशोऽध्याय समाप्त. ॥ २० ॥

अब यह अध्यायके उपसहारम श्लोक है कि इस महारोगाध्यायमें -रोगोंका सग्रह, प्रकृति,देश,काल,विकार,कारण,वातादिभेदसे अलग२कारण स्वभाव, रोगोंका निश्चय, रोगोंका अनुबंध, दोषोंके स्थान, रोगोंके गण, विकारोंकी अनेकता, दोषोंके अलग २ धर्म, और उनके परिणामि कर्म, तथा वातादिदोषोंकी अलग २ चिकित्सा यह सब तत्त्ववेत्ता महात्मा पुनर्वसुजीने कथन कियाहै ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० प०रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां महारोगाध्यायो नाम विंशोऽध्याय ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्याय ।

अथातोऽष्टौनिन्दितीयमध्यायव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेय ।

अब हम अष्टौनिन्दितीय नामके अध्यायकी व्याख्या करेंगे ऐसा आत्रेय भगवान् कहनेलगे ।

आठप्रकारके निन्दनीय पुरुष ।

इहखलुशरीरमधिकृत्याष्टौपुरुषानिन्दिताभवन्ति । तद्यथा-अतिदीर्घश्चातिह्रस्वश्चातिलोमाचालोमाचातिकृष्णश्चातिगौरश्चातिस्थूलश्चातिकृशश्चेति ॥ १ ॥

इस शास्त्रमें आठ प्रकारके शरीरवाले पुरुष निन्दनीय कहेजातेहै । वह आठ इस प्रकार है जैसे-बहुत लवा, बहुत छोटा, बहुत बालोवाला, जिसके शरीरपर रोम बिलकुल न हों, अत्यत काला, बहुत गोरा, और अतिस्थूल, एव अति कृश, यह आठ प्रकारके शरीर, निंदाके योग्य हैं ॥ १ ॥

अतिस्थूलमे आठ अवगुण ।

तत्रातिस्थूलकृशयोर्भूयएवापरेनिन्दिताविशेषाभवन्ति। अतिस्थूलस्यतावदायुषोह्रास जरोपरोध कृच्छ्रव्यवायतादौर्बल्यंदौर्गन्ध्यस्वेदाबाध क्षुदतिमात्रंपिपासातियोगश्चेतिभवन्त्यष्टौदोषाः २॥

इन आठोंमे, अधिक मोटा,एव अधिककृश, विशेष निंदाके योग्य होतेहैं, क्योंकि, अधिक मोटा होनेमे आयुका ह्रास होताहै और बुढापा शीघ्र ही आजाताहै तथा शरीरकेसूक्ष्म छिद्र रुक जातेहै । एव स्त्रीसगमें कष्ट, दुर्बलता, शरीरम दुर्गन्धि, पसीना, अधिक क्षुधा, अधिक प्यास यह आठ दोष होतेहैं । इस लिये बहुत मोटा शरीर निंदनीय होताहै ॥ २ ॥

अति स्थूलताका कारण ।

तदतिस्थौल्यमतिसपूरणाद्गुरुमधुरशीतस्निग्धोपयोगादव्यायामादव्यवायाद्दिवास्वप्नाद्धर्षनित्यत्वादचिन्तनाद्बीजस्वभावाच्चोपजायते ॥ ३ ॥

यह अतिस्थूलपना अधिक तृप्तिकारक, भारी, मीठे, शीतल, चिकने, पदार्थोंके खानेसे, कसरत न करनेसे, स्त्री सग न करनेसे, दिनमे सोनेसे, सदा प्रसन्न रहनेसे, चिन्ता न करनेसे, और माता पिताके मुटाईके कारणसे होताहै ॥ ३ ॥

तस्यातिमात्रमेदस्विनोमेदएवोपचीयतेनेतरेधातवस्तस्मादस्यायुषोह्रासः, शैथिल्यात्सौकुमार्याद्गुरुत्वाच्चमेदसोजरोपरोध , शुक्राबहुत्वान्मेदसावृतमार्गत्वात्कृच्छ्रव्यवायता दौर्बल्यमसमत्वाद्धातूना, दौर्गन्ध्यमेदोदोषान्मेदस स्वभावत्वात्स्वेदलत्वा

च्चमेदस', श्लेष्मसंसर्गाद्विष्यन्दित्वाच्चबहुत्वाद्व्यायामासहत्वा त्स्वेदाबाध, तीक्ष्णाग्नित्वात्प्रभूतकोष्ठवायुत्वाच्चक्षुदतिमात्रं पिपासातियोगश्चेति ॥ ४ ॥

उस अति स्थूल पुरुषके शरीरमे केवल चर्बीमात्र बढती जातीहै और सब धातु बढनेसे बन्द होजातेहैं तथा क्षीण होने लगजातेहै इस लिये मदस्वी पुरुषकी आयुका ह्रास होना आरम्भ होजाताहै तथा शरीरमे शिथिलता, सुकुमारता और भारीपनसे बुढापा और छिद्राका रुकजाना, वीर्यकी अल्पता, तथा मेदसे शरीरके मार्गोका रुकजाना, स्त्रीसगम अधिक कष्ट होना, धातुओंकी सामान्यावस्था न रहनेसे दुर्बलता होना, चर्बीके बढनेसे, चर्बीके दोषसे और चर्बीके स्वभावसे एव पसी- नेके आनेसे शरीरमें दुर्बलता बढजातीहै तथा कफका ससर्ग, स्थूलता, व्यायामकी असह्यताके कारण पसीने अधिक आने लगतेहै । एव अग्निकी क्षीणता, और कोष्ठवायुकी अधिकताके कारण क्षुधा और प्यास बहुत बढजातीहै ॥ ४ ॥

भवन्तिचात्र ।

मेदसावृतमार्गत्वाद्वायु'कोष्ठेविशेषत । चरन्सन्धुक्षयत्यग्निमा- हारशोषयत्यपि ॥ ५ ॥ तस्मात्सशीघ्रजनयत्याहारश्चावका- क्षति । विकाराश्चाश्नुतेघोरान्किञ्चित्कालव्यतिक्रमात् ॥ ६ ॥ एतावुपद्रवकरौविशेषादग्निमारुतौ । एतौहिदहतःस्थूलवनदा वोवनयथा ॥ ७ ॥

यहा पर कहतेहै कि, मेदद्वारा सम्भ मार्गोके बद होजानेसे वायु कोठम विशेषताश विचरण करताहै तथा जठराग्निको प्रज्वलित करके आहारको सुखादेताहै । यही कारण है कि मेदस्वी पुरुषका आहार शीघ्र पचजाताहै एव भोजन करनेकी वारवार इच्छा होने लगतीहै, यदि मेदस्वी मनुष्यको भोजन मिलनेमें किंचित् देर होतीहै तो वह घोरतर दु खोंको प्राप्त होताहै । मेदस्वी पुरुषके शरीरमें अग्नि और वायु इस प्रकार विशेष उपद्रव करतेहै जैसे दावानल वनको भस्मकर डालताहै ऐसे ही मेदस विशाय अन्य धातुओंको भी यह नाश करडालतेहै ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

मेदके बहुत बढजानेके दोष ।

मेदस्यतीवसंवृद्धेसहसैवानिलादय । विकारान्दारुणान्कृत्वा नाशयन्त्याशुजीवितम् ॥ ८ ॥ मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फि-

गुदरस्तन. । अयथोपचयोत्साहोनरोऽतिस्थूलउच्यते ॥ ९ ॥ इतिमेदस्विनोदोषाहेतवोरूपमेवच । निर्दिष्टवक्ष्यतेवाच्यम-तिकार्श्येऽप्यत परम् ॥ १० ॥

शरीरमें मेद वृद्धिको प्राप्त होकर वात, पित्त, कफके अनेक प्रकारके रोगोंको प्रकट करके जीवनको नष्ट करदेताहै ॥ ८ ॥ मेद और मासके अत्यन्त बढनेसे नितंब उदर एव स्तन थलथल करने लगजाते हैं । इस प्रकार वृथा मोटापन होनेसे उस मनुष्यको अतिस्थूल कहतेहैं ॥ ९ ॥ इस प्रकार मेदस्वी मनुष्यके दोष और हेतु तथा रूपोंका कथन किया गयाहै । अब अत्यन्त कृश शरीरवालाके हेतु और लक्षणोंको कहतेहै ॥ १० ॥

कृशहोनेका कारण ।

सेवारूक्षान्नपानानालंघनप्रमिताशनम् । क्रियातियोग.शोक-श्चवेगनिद्राविनिग्रह ॥ ११ ॥ रूक्षस्योद्वर्त्तनस्नानस्याभ्यास. प्रकृतिर्जरा । विकारानुशय'क्रोधःकुर्वन्त्यतिकृशनरम्॥ १२ ॥

रूक्ष अन्न पानके अधिक सेवन करनेसे, लंघन करनेसे, अल्पभोजन करनेसे, अति शोधन अथवा परिश्रम करनेसे, शोकसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, रात्रिमें जागनेसे, रूखे द्रव्योंके उद्वर्तन करनेसे, स्नानका अभ्यास न रखनेसे, कृशताकारक आहार विहारके सेवनसे, एव बुढापेसे, तथा सदैव रोगी और क्रोधी रहनेसे मनुष्य दुर्बल अर्थात् कृश होतेहै ॥ ११ ॥ १२ ॥

कृशको असह्यकर्म और रोग ।

व्यायाममतिसौहित्यक्षुत्पिपासामथौपधम् । कृशोनसहतेतद्व-दतिशीतोष्णमैथुनम् ॥ १३ ॥ प्लीहाकास क्षय श्वासोगुल्मा-र्शांस्युदराणिच । कृशप्रायोऽभिधावन्तिरोगाश्चग्रहणीग-ता ॥ १४ ॥

कृशशरीरवाला मनुष्य परिश्रम नहीं कर सकता, एव पेट भरकर भोजन, भूख, प्यास, अधिक औषधि सेवन, बहुत सर्दी, बहुत गर्मी,अधिक मैथुन इन सबको सहार नहीं सकता । एव इस दुर्बल शरीरवाले मनुष्यको-तिल्ली, खासी, क्षय, श्वास, गोला, अर्श और उदररोग आकर घेर लेते है तथा कृश मनुष्यको ग्रहणी रोग भी होजाताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

कृशताके लक्षण ।

शुष्कस्फिगुदरग्रीवोधमनीजालसन्तत । त्वगस्थिशेषोऽतिकृश'स्थूलपर्वानरोमत ॥ १५ ॥ सततव्याधितावेतावतिस्थूलकृशौनरौ । सततचोपचर्य्यौहिकर्षणबृंहणैरपि ॥ १६ ॥

कृश मनुष्यके-नितम्ब उदर, और ग्रीवा सूखजाती है तथा शरीर नसोंके जालसे व्याप्तहुआ दिखाई देने लगताहै, त्वचा और हड्डिए सूखजाती है और गालोंके स्थान मोटे मोटे दिखाई देने लगतेहै ॥ १५ ॥ क्योंकि स्थूल और कृश यह दोनो ही सर्वदा रोगग्रस्त होतेहै इसलिये इनको यथाक्रम लघन और बृंहणसे सर्दव उपचार करना योग्य है ॥ १६ ॥

कृशके उत्कृष्टत्व ।

स्थौल्यकार्श्येवरंकार्श्यंसमोपकरणौहितौ ।

यद्युभौव्याधिरागच्छेत्स्थूलमेवातिपीडयेत् ॥ १७ ॥

अधिक स्थूल और अधिक कृश इन दोनोमे स्थूलकी अपेक्षा कृश फिर भी अच्छा माना जाता है क्योंकि दोनोके उपकरण समान होनेपर भी स्थूल मनुष्यको रोगग्रस्त होनेपर अधिक कष्ट सहना पडताहै ॥ १७ ॥

समके लक्षण ।

सममासप्रमाणस्तुसमसहननोनर । दृढेन्द्रियत्वाद्व्याधीनान वलेनाभिभूयते ॥ १८ ॥ क्षुत्पिपासातपसह'शीतव्यायामसंसह. । समपक्तासमजर सममासचयोमत ॥ १९ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमे मासका परिमाण ठीक होताहै और देह सुडौल और सौम्य होताहै उसके सब इन्द्रिय दृढ और बलवान् रहतेहै । इसीलिये व्याधि उस मनुष्य पर अपना बल नहीं पासकती ॥ १८ ॥ वह सुडौल शरीरवाला मनुष्य क्षुधा, प्यास, धूप तथा सर्दी और परिश्रम सह सकताहै । एव उसकी पाचनशक्ति विषम नहीं होती उसे छोटी उमरमे बुढापा भी नहीं आता, ऐसा मनुष्य सम और उत्तम कहा जाताहै, इस मनुष्यकी अतिकृशता और अति स्थूलता नहीं होती ॥ १९ ॥

गुरुचातर्पणचेष्टस्थूलानाकर्षणप्रति ।

कृशानाबृंहणार्थंचलघुसन्तर्पणश्चयत् ॥ २० ॥

स्थूल मनुष्यको यदि कृश करनाहो तो कठोर और लघन द्रव्य सेवन कराना चाहिये । एव कृशको पुष्ट करनेके लिये लघुतर्पण द्रव्य सेवन करना चाहिये ॥ २० ॥

स्थूलव्यक्तिकी चिकित्सा ।

वातघ्नान्यन्नपानानिश्लेष्ममेदोहराणिच। रूक्षोष्णावस्तयस्ती क्ष्णारूक्षाण्युद्वर्त्तनानिच ॥२१॥ गुडूचीभद्रमुस्तानांप्रयोगस्त्रै फलस्तथा । तक्रारिष्टप्रयोगस्तुप्रयोगोमाक्षिकस्यच ॥ २२ ॥ विडङ्गनागरक्षार.काललोहरजोमधु । यवामलकचूर्णञ्चप्रयोग' श्रेष्ठउच्यते ॥ २३ ॥

अब स्थूल मनुष्यकी चिकित्साका वर्णन करतेहै । वात और कफनाशक तथा मेदके हरनेवाले अन्न पानोंका सेवन करावे और रूक्ष, गरम, तीक्ष्ण, वस्ति करे। रूक्ष उद्वर्तनोंका प्रयोग करावे ॥ २१ ॥ तथा गिलोय और भद्रमुस्तकका क्वाथ, त्रिफलेका क्वाथ, छाँछ, अरिष्ट, शहद, वायविडंग,सोंठ, जवाखार, शहदके सग उत्तम लोहभस्म, जव, आमलेका चूर्ण इन सबका प्रयोग करना मेदरोगके नष्ट करनेके लिये उत्तम मानाहै ॥ २२ ॥ २३ ॥

विल्वादिपञ्चमूलस्यप्रयोग क्षौद्रसयुत । शिलाजतुप्रयोगस्तु साग्निमन्थरसाशिला ॥ २४ ॥ प्रसातिकाप्रियगुश्चश्यामाकाय वकायवा । जूर्णाह्वा कोद्रवामुद्गाकुलत्थाश्चक्रमर्दका ॥ २५॥ आढकीनाञ्चबीजानिपटोलामलकै सह । भोजनार्थंप्रयोज्या- निपानञ्चानुमधूदकम् ॥ २६ ॥ अरिष्टाश्चानुपानार्थेमेदोमास कफापहान् । अतिस्थौल्यविनाशायसविभज्यप्रयोजयेत्॥२७॥

एव-बिल्वादि पचमूलके क्वाथमें शहद मिलाकर पिलाना उत्तम मानाहै । अथवा शिलाजीतका प्रयोग करे । अथवा अग्निमथका रस एव मनशिल्का प्रयोग भी परम उत्तमहै॥२४॥अणुव्रीहि नामक धान्य,प्रियगु (कागनी धान्य),श्यामाकधान्य,क्षुद्रधान्य जवार, जव, कोद्रव, मूग, कुल्थी, पनवाड (चक्रमर्द), अरहर, पटोल और आवले- का यूष यह सब खानेके लिये देना चाहिये । और मधु तथा जल या समयानुसार दोनों मिलाकर अनुपानके लिये देना चाहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥ और पीनेके लिये या औषधिके पीछे अनुपानके लिये मेदनाशक तथा स्थूलताके नष्ट करनेवाले एव कफना शक अरिष्ट देना चाहिये ॥ २७ ॥ .

प्रजागरव्यवायश्चव्यायामचिन्तनानिच । स्थौल्यमिच्छन्परि- त्यक्तुंक्रमेणाभिप्रवर्द्धयेत् ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यको अपने शरीरकी स्थूलता दूर करनेकी इच्छा हो वह रात्रिको जागरण, स्त्रीसेवन, व्यायाम, एवं चिन्ता इनका यथाक्रम सेवन करताजावे और धीरेधीरे इनके सेवनको बढाता जावे ॥ २८ ॥

कृशतानाशक प्रयोग।

स्वप्नोहर्ष सुखाशय्यामनसोनिर्वृतिःशम । चिन्ताऽव्यवायव्यायामविरामःप्रियदर्शनम् ॥ २९ ॥ नवान्नानिनवमद्यग्राम्यानूपौदकारसा । संस्कृतानिचमांसानिदधिसर्पिः पयांसिच ॥ ॥ ३० ॥ इक्षवःशालयोमाषागोधूमागुडवैकृतम् । वस्तयःस्निग्धमधुरास्तैलाभ्यङ्गश्चसर्वदा ॥ ३१ ॥ स्निग्धमुद्वर्त्तनस्नानगन्धमाल्यनिषेवणम् । शुक्लोवासोयथाकालदोषाणामवसेचनम् ॥ ३२ ॥ रसायनानांवृष्याणांयोगानामुपसेवनम् । हत्वातिकार्श्यमादत्तेनृणामुपचयपरम् ॥ ३३ ॥

अब कृशताके नाश करनेवाले यत्नोको कहतेहै। जैसे इच्छापूर्वक सोना, हर्ष, सुन्दर नरम शय्या, संतोष, शांति, चिन्ता न करना, स्त्री संग न करना, व्यायाम न करना, इष्टवस्तुकी प्राप्त होना, नवीन अन्न,नवीन मद्य, ग्रामसंचारी जीव, अनूप संचारी जीव, जलचर जीव, इनका मांसरस, उत्तम बनाया हुआ मांस, दधि, घृत, दूध, ईख, शालीचावल, उडद, गेहूं, मिठाई, चिकने और मीठे पदार्थोंकी बस्ति, नित्यतैलमर्दन, चिकने उद्वर्तन, स्नान, चंदनका लेपन, सुगंधित फूलमाला, स्वच्छ वस्त्र धारण करना, समय पर शरीर का शोधन करना, रसायन तथा वृष्य योगोंका सेवन करना इन सब द्रव्योंका उपयोग मनुष्यकी कृशता (दुबलापन) का दूर करके परमपुष्टिको देनेवाला है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अचिन्तनाच्चकार्याणांध्रुवंसन्तर्पणेनच । स्वप्नप्रसङ्गाच्चनरो वराहइवपुष्यति ॥ ३४ ॥

एवं किसी कार्यकी भी चिन्ता न करनेसे तथा सदैव संतर्पण द्रव्योंके सेवन करनेसे और मस्त पडे रहनेसे मनुष्यका शरीर सूकरके समान पुष्ट होजाताहै ॥ ३४ ॥

निद्राका कारण और उसके उचितानुचितप्रकार।

यदातुमनसिक्लान्तेकर्मात्मानः क्लमान्विताः । विषयेभ्योनिवर्तन्तेतदास्वपितिमानवः ॥ ३५ ॥ निद्रायत्तंसुखंदुःखंपुष्टिः का-

र्य्यबलावलम् । वृपताक्लीवताज्ञानमज्ञानजीवितंनच ॥३६॥
अकालेऽतिप्रसङ्गाच्चनचनिद्रानिपेविता । सुखायुपीपराकुर्य्या-
त्कालरात्रिरिवापरा ॥ ३७ ॥ सैवयुक्तापुनर्युङ्क्तेनिद्रादेहसु
खायुपा । पुरुपयोगिनंसिद्ध्यासत्यावुद्धिरिवागता ॥ ३८ ॥

जब मनुष्यके मनमे ग्लानि आजातीहैं और कर्मेंद्रियें थककर अपने विपयोंसे निवृत्त होजातीहैं तब इस मनुष्यको निद्रा आतीहै अर्थात् सो जाताहै ॥ ३५ ॥ सुख और दुःख पुष्टता और कृशता बल तथा निर्बलता, वृपता तथा क्लीवता, ज्ञान और अज्ञान एव जीवन और मरण यह सब निद्राके अधीन है ॥ ३६ ॥ बे समय सोनेसे बहुत ज्यादा सोनेसे, एव एकसाथ ही निद्राका त्याग देनेसे मनुष्योंका सुख और आयु रात्रिके प्रात कालके समान किंचित् शेप रहजातीहै, तात्पर्य यह कि जैसे दो घडी रात बाकी रहनेपर रात्रि नष्टप्राय ही होतीहै ऐसेही निद्राकी विपरीततासे मनुष्यका सुख और आयु भी नष्टप्राय समझना चाहिये ॥ ३७ ॥ और वही निद्रा यदि युक्ति-पूर्वक ठीक सेवन कीजावे तो जैसे योगी पुरुप सिद्धिको प्राप्त होकर सत्यबुद्धिका लाभ करलेताहै उसी प्रकार उचित रीतिसे निद्रासेवन करनेवाला मनुष्य सुख और दीर्घायुको प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥

गीताध्ययनमद्यस्त्रीकर्मभाराध्वकर्पिता । अजीर्णिन क्षताः
क्षीणावृद्धावालास्तथावला ॥ ३९ ॥ तृष्णातीसारशूलार्त्ताः
श्वासिन शूलिन कृशा । पतिताभिहतोन्मत्ता क्लान्तायान-
प्रजागरे ॥४०॥ क्रोधशोकभयक्लान्तादिवास्वप्नोचिताश्चये ।
सर्वएतेदिवास्वप्नसेवेरन्सार्वकालिकम् ॥ ४१ ॥

जो मनुप्य गायन, अध्ययन, मद्यपान, स्त्रीसग, कर्म, भार और मार्गसे थकगये हैं एव–अजीर्णरोगी, उरक्षतवाला, क्षीण, वृद्ध, बालक, दुर्बल तथा प्यास, अति-सार, शूलसे पीडित, श्वासरोगी, हिचकीसे, ग्रसाहुआ और कृश तथा गिरपडा हुआ एव जिनके चोट लगीहो बावरा और सवारीसे थकाहुआ,जो रात्रिमे जागाहो, क्रोधी, शोकाकुल, भयातुर, दिनमें सोनेके अभ्यासवाला इन सब मनुष्योंको सब ऋतुओंमें दिनमे भी सोना अनुचित नहीं (इनसे सिवाय अन्य मनुष्योंको दिनमे सोना नहीं चाहिये) ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

धातुसाम्यात्तथाश्लेपान्लश्चाप्युपजायते ॥ श्लेष्मापुष्यतिचा
ङ्गानिस्थैर्य्यंभवतिचायुप. ॥ ४२ ॥ श्लेष्माचादानरुक्षाणाम्
र्द्धमानेचमारुते । रात्रीणाचातिसक्षेपाद्दिवास्वप्न प्रशस्यते॥४३॥

ऊपर कहेहुए मनुष्योंके दिनमें सोनेसे सब धातु साम्यावस्थामें आकर बलकी वृद्धिको प्राप्त होतेहैं और श्लेष्मा इनके अंगोंको पुष्ट करताहै जिससे इनके आयुमें स्थिरता प्राप्त होतीहै ॥४२॥ ग्रीष्मऋतुमें मनुष्योंके शरीर आदानकालके आकर्षणसे रूक्ष होतेहैं और वायुका संचय होताहै तथा रात्रि बहुत छोटी होतीहै इसलिये गर्मियोंमें दिनका सोना भी उत्तम कहाहै ॥ ४३ ॥

दिवानिद्राका निषेध ।

ग्रीष्मवर्ज्येषुकालेषुदिवास्वप्नात्प्रकुप्यतः । श्लेष्मपित्तेदिवा स्वप्नस्तस्मात्तेपुनशस्यते ॥ ४४ ॥ मेदस्विन स्नेहनित्या श्लेष्मला श्लेष्मरोगिणः । दूषीविषार्त्ताश्चदिवानशयीरन्कदाचन ॥ ४५ ॥

गर्मियोंके सिवाय अन्यऋतुओंमें दिनके सोनेसे कफ और पित्त कुपित होतेहैं इसलिये अन्य ऋतुओंमें दिनका सोना अनुचित कहाहै ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य अधिक मेदवाले हैं अथवा स्नेहको सेवन करनेवाले एवं कफप्रधान और कफके रोगवाले तथा दूषीविषसे पीडित हों उन मनुष्योंको किसी कालमें भी दिनमें सोना नहीं चाहिये ॥ ४५ ॥

दिवानिद्रामें उपद्रव ।

हलीमक शिर शूलस्तैमित्यगुरुगात्रता । अङ्गमर्दोऽग्निनाशश्च प्रलेपोहृदयस्यच ॥ ४६ ॥ शोथारोचकहृल्लासपीनसार्द्धावभेदका । कोठाश्चपिडका कंडूस्तन्द्राकासोगलामया ॥ ४७ ॥ स्मृतिबुद्धिप्रमोहाश्चसंरोध स्रोतसाज्वर । इन्द्रियाणामसामर्थ्यंविषवेगप्रवर्त्तनम् ॥ ४८ ॥ भवेन्नृणादिवास्वप्नस्याहितस्य निषेवणात् । तस्माद्धिताहितस्वप्नंबुद्ध्वास्वप्यात्सुखंबुध ॥ ४९ ॥

बे समय अथवा बहुत सोनेसे मनुष्योंके शरीरमें हलीमक, मस्तकपीडा, स्तैमित्य, भारीपन, अंगमर्द, मंदाग्नि, हृदयका लिपासा होना, शोथ अरुचि, हल्लास, पीनस, अधावभेदक, कोठरोग, पिटका, खुजली, तन्द्रा, खास, गलरोग, स्मृति और बुद्धिका नाश, स्रोतोंका अवरोध, ज्वर, इंद्रियोंकी निर्बलता, यदि दूषित विष हो तो उसके वेगकी प्रवृत्ति इतने उपद्रव होते हैं इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि वह सोने (निद्रा) के विषयमें उचितानुचित पर हिताहित विचारकर शयन करे॥४६॥ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

रात्रौजागरणरूक्षस्निग्धमस्वपनंदिवा । अरूक्षमनभिष्यन्दि स्त्वासीनप्रचलायितम् ॥ ५० ॥ देहवृत्तौयथाहार तथास्वप्न. सुखोमत. । स्वाप्नाहारसमुत्थेचस्थौल्यकार्श्येविशेपत. ॥५१॥ अभ्यङ्गोत्सादनंस्नानंग्राम्यानूपौदकारसाः । शाल्यन्नंसदधिक्षीरंस्नेहोमद्यमनःसुखम् ॥ ५२ ॥ मनसोऽनुगुणागन्धा' शब्दा.संवाहनानिच । चक्षुपस्तर्पणलेप शिरसोवदनस्यच ॥ ॥ ५३ ॥ स्वास्तीणशयनवेश्मसुखकालस्तथोचितः । आनय न्त्यचिरान्निद्राप्रनष्टायानिमित्तत ॥ ५४ ॥

रात्रिको जागनेसे रूक्षता उत्पन्न होतीहै, दिनमे सोनसे स्निग्धता उत्पन्न होतीहै एव आसनपर बैठे बैठे ऊघनेसे न तो रूक्षता ही होतीहै और न स्निग्धता प्रकट होती है ॥ ५० ॥ शरीरवृत्तिके निर्वाहके लिये जैसे आहार उपयोगी है वैसेही निद्रा भी परम उपयोगी है इस लिये प्राय. स्थूलता और कृशता यह दोनों निद्रा और आहारके अधीनही है ॥ ५१ ॥ यदि किसी कारणसे मनुष्यकी निद्राका नाश होगया हो तो अभ्यग, उद्वर्तन, स्नान और ग्राम्य तथा जलचारी जीवोंके मासका रस, शालिचावल, दही, दूध, स्नेह, मद्य और मनको सुख देनेवाले कर्म और मनको हरनेवाली सुगधि तथा प्यारे प्यारे शब्द और देहका मसलना तथा दवाना, नेत्रोंका सन्तर्पण और मस्तक पर सुगधित लेप तथा शिरके ऊपर पानीकी धारा देना सुख कारक शय्या, समयोचित घरका सुख यह सब शीघ्र निद्राके लानेवाले है ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

निद्रा न आनेके हेतु ।

कायस्यशिरसश्चैवविरेकश्छर्दनभयम् । चिन्ताक्रोधस्तथाधूमो व्यायामो रक्तमोक्षणम् ॥ ५५ ॥ उपवास'सुखाशय्यासत्त्वो-दार्य्यंतमोजय ।निद्राप्रसङ्गमहितवारयन्तिसमुत्थितम् ॥५६॥ एतएवचाविज्ञेयानिद्रानाशस्यहेतव । कार्य्यंकालोविकारश्च प्रकृतिर्वायुरेवच ॥ ५७ ॥

शिरका और शरीरका विरेचन, सर्दी, भय, चिन्ता, क्रोध, धूम, परिश्रम, रक्तमोक्षण, उपवास, खराब शय्या, सत्त्वगुणकी अधिकता तमोगुणकी क्षीणता इन सबसे प्राप्त हुई निद्रा भी नष्ट होजाती है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ कार्य, काल, रोग, स्वभाव और वायु यह पाच ही सूक्ष्म रूपसे तथा स्थूल रूपसे भी निद्रानाशके कारण कहे हैं॥५७॥

अध्यायका उपसंहार ।

तमोभवाश्लेष्मसमुद्भवाचमनः शरीरश्रमसम्भवाच । आगन्तुकीव्याध्यनुवर्त्तिनीचरात्रिस्वभावप्रभवाचानिद्रा ॥ ५८ ॥
रात्रिस्वभावप्रभवामतायाताभूतधात्रींप्रवदन्तिनिद्राम्। तमोभवामाहुरघस्यमूलशेषपुनर्व्याधिपुनिर्दिशन्ति ॥ ५९ ॥

निद्रा तमोगुणसे उत्पन्न होतीहै तथा कफसे उत्पन्न होतीहै एव मन और शरीरके परिश्रमसे निद्रा आतीहै तथा विष आदि सेवनसे अथवा भूतादि आवेशसे आगन्तुक निद्रा उत्पन्न होतीहै और किसी किसी रोगमें भी निद्रा उत्पन्न होतीहै तथा रात्रिमें स्वाभाविक निद्रा उत्पन्न होतीहै, निद्राको भूत धात्री भी कहतेहैं, तमोभव निद्रा पापका मूल है और बाकी निद्राको व्याधिके प्रति निदर्शन कहतेहै अर्थात् स्वाभाविक निद्रा तो मनुष्योंके लिये प्राणरक्षक है और तमोभव पापका कारण है, अन्य निद्रा रोग रूप है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

तत्र श्लोकाः ।

निन्दिताः पुरुषास्तेषामष्टौविशेषेणनिन्दितौ । वक्ष्यामिकारणदोषास्तयोर्निन्दितभेषजम् ॥ ६० ॥ येभ्योयदाहितानिद्रायेभ्यश्चाप्यहितायदा । अतिनिद्रानिद्रयोश्चभेषजयद्भवाचसा ॥६१ ॥
यायायथाप्रभावाचनिद्रातत्सर्वमात्रिज । अष्टौनिन्दितसंख्याते व्याजहारपुनर्वसुः ॥ ६२ ॥

इति योजनाचतुष्केऽष्टौनिन्दितीयोनामैकविंशोऽध्यायः ।

अब अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक है इस अष्टौनिन्दनीय अध्यायमें आठ प्रकारके पुरुष निंदनीय और दो प्रकारके विशेष निंदनीय और निंदित होनेका कारण-स्थूल और कृशके दोष तथा औषधि, निद्रा हिताहित और जिसको जिस समय हितकर है, अतिनिद्रा, अनिद्रा, निद्राके उत्पन्न होनेके कारण, जो जो निद्रा जिस जिस स्वभावकी है यह सब भगवान् पुनर्वसुजीने कथन किया है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

इति श्रीचरकसंहिता० प० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायामष्टौनिन्दितीयो
नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्याय ।

अथातोलंघनबृंहणीयमध्यायव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम लघनबृहणीय नामक अध्यायकी व्याख्या करतेहै । ऐसा भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

तपःस्वाध्यायनिरतानात्रेयःशिष्यसत्तमान् । षडग्निवेशप्रमुखानुक्तवानुपरिचोदयन् ॥ १ ॥ लघनबृंहणकालेरुक्षणस्नेहनंतथा । स्वेदनंस्तम्भनश्चैवजानीतेय सवैभिषक् ॥ २ ॥

तप और स्वाध्यायपरायण अग्निवेश आदि अपने ६ शिष्योंको सम्बोधन करके महात्मा आत्रेयजी कहने लगे कि जो वैद्य समयानुसार लघन, बृहण, रूक्षण, स्नेहन, स्वेदन एव स्तम्भन इन छहोंका प्रयोग करना जानताहै उसको ही यथार्थ वैद्य कहतेहै, अन्य वैद्य नहीं कहाजाता ॥ १ ॥ २ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

इतितमेवमुक्तवन्तभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच । भगवंल्लघनंकिस्विल्लघनीयाश्चकीदृशाः । बृहण बृंहणीयाश्चरूक्षणीयाश्चरूक्षणम् ॥ ३ ॥ स्नेहनस्नेहनीयाश्चस्वेदा स्वेद्याश्चकेमता । स्तम्भनस्तम्भनीयाश्चवक्तुमर्हसितद्गुरो ॥ ४ ॥ लघनप्रभृतीनाञ्चषण्णामेषासमासतः । कृताकृतातिवृत्तानालक्षण वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

इस प्रकार कहतेहुए भगवान् आत्रेयजीसे महात्मा अग्निवेश कहने लगे कि हेभगवन् ! लघन किसको कहतेहैं और वह लघन कैसे मनुष्योंको कराया जाता है । बृंहण किसको कहतेहैं और वह कैसे मनुष्योंको कराया जाता है । रूक्षण क्या वस्तु है और कौन २ मनुष्य रूक्षणके योग्य है एवम् स्नेहन किसको कहतेहैं और किन मनुष्योंको कराना चाहिये । हे गुरो ! स्तम्भन क्या है और किनको कराना चाहिये । इन सबके विषयमें कृपया कथन कीजिये तथा सक्षेपसे लघन आदि छहोंका योग, अयोग, अतियोगके लक्षणोंका भी वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

गुरुरुवाच ।

यत्किञ्चिल्लाघवकरंदेहेतल्लङ्घनंस्मृतम् । बृहत्त्वयच्छरीरस्यज-नयेत्तच्चबृंहणम् ॥ ६ ॥ रौक्ष्यखरत्ववैशद्ययत्कुर्य्यात्तद्विरूक्ष-णम् । स्नेहनंस्नेहनं विष्यन्दमार्दवक्लेदकारकम् ॥ ७ ॥ स्तम्भ-गौरवशीतघ्नंस्वेदनंस्वेदकारकम् । स्तम्भनंस्तम्भयतियद्गति-मन्तंचलंध्रुवम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार अग्निवेशके कहेहुए वाक्यको सुनकर आत्रेय भगवान् इस प्रकार कथन करने लगे । जो शरीरमें लघुताका करनेवाला है उसको लंघन कहतेहैं । जो शरीरको पुष्ट करनेवाला है उसको बृंहण कहतेहैं एवम् जो शरीरमें रूक्षता, खरत्व, विशदता उत्पन्न करे उसको रूक्षण कहतेहैं । चिकनाई, अभिष्यंद, मृदुता, क्लेद उत्पन्न करने वाली क्रियाको स्नेहन कहतेहैं । स्तम्भ, गुरुता, शीतता नष्ट करके पसीना लानेवालेको स्वेदन कहतेहैं, जो पदार्थ चलनेवाले पतले द्रव्यको रोकदेवे उसको स्तम्भन कहतेहैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

लंघन द्रव्य ।

लघूष्णतीक्ष्णविशदरूक्षसूक्ष्मखरसरम् ।
कठिनंचैवयद्द्रव्यंप्रायस्तल्लङ्घनंस्मृतम् ॥ ९ ॥

जो द्रव्य लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, विशद, रूक्ष, सूक्ष्म, खर, सर और कठिन हो वह प्राय लंघन कहाजाताहै ॥ ९ ॥

बृंहण द्रव्य ।

गुरुशीतमृदुस्निग्धबहलस्थूलपिच्छिलम् ।
प्रायोमन्दस्थिरश्लक्ष्णंद्रव्यंबृंहणमुच्यते ॥ १० ॥

जो भारी, शीतल, मृदु, स्निग्ध, घन, स्थूल पिच्छिल, मन्द, स्थिर और श्लक्ष्ण हो वह द्रव्य प्राय बृंहण कहा जाता है ॥ १० ॥

रूक्षण द्रव्य ।

रूक्षंलघुखरंतीक्ष्णमुष्णंस्थिरमपिच्छिलम् ।
प्रायशः कठिनंचैवयद्द्रव्यंतद्विरूक्षणम् ॥ ११ ॥

जो द्रव्य रूक्ष, लघु, खर, तीक्ष्ण, उष्ण, स्थिर, अपिच्छिल तथा कठिन हो वह प्राय रूक्षण होताहै ॥ ११ ॥

स्नेहनद्रव्यके गुण ।

द्रवसूक्ष्मंसरस्निग्धपिच्छिलंगुरुशीतलम् ।
प्रायोमन्दमृदुचयद्द्रव्यतत्स्नेहनमतम् ॥ १२ ॥

जो द्रव्य द्रव, सूक्ष्म, सर, स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु, शीतल और मन्द तथा मृदु हो वह स्नेहन कहा जाता है ॥ १२ ॥

स्वेदन द्रव्य ।

उष्णतीक्ष्णसरस्निग्धंरूक्षंसूक्ष्मद्रवस्थिरम् ।
द्रव्यगुरुचयत्प्राय.तद्धिस्वेदनमुच्यते ॥ १३ ॥

जो द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, सर, स्निग्ध, रूक्ष, सूक्ष्म, द्रव, स्थिर और गुरु हो उसको प्राय' स्वेदन कहतेहैं ॥ १३ ॥

स्तम्भन द्रव्यके गुण ।

शीतमन्दंमृदुश्लक्ष्णरूक्षंसूक्ष्मंद्रवसरम् ।
यद्द्रव्यलघुचोद्दिष्टंप्रायस्तत्स्तम्भनस्मृतम् ॥ १४ ॥

जो द्रव्य शीतल, मन्द, मृदु, श्लक्ष्ण, रूक्ष, सूक्ष्म, द्रव, सर और लघु हो उसको प्राय' स्तम्भन कहतेहै ॥ १४ ॥

लंघन ।

चतुष्प्रकारासंशुद्धि पिपासामारुतातपौ ।
पाचनान्युपवासश्चव्यायामश्चेतिलंघनम् ॥ १५ ॥

चार प्रकारकी संशुद्धि होतीहै अर्थात् संशोधन होताहै और प्यास, पवनका सेवन, धूप, पाचन, उपवास एवम् परिश्रम यह लंघन कहे जातेहै ॥ १५ ॥

प्रभूतश्लेष्मपित्तास्रमला'संसृष्टमारुता ।
बृहच्छरीरावलिनोलंघनीयाविशुद्धिभि ॥ १६ ॥

जिनके शरीरमें श्लेष्म, पित्त, रुधिर और मल बढेहुए हों तथा पवन दूषित होगया हो एवम् जो स्थूल और बलवान् होनेसे संशोधनके योग्य है वह मनुष्य लंघनीय है ॥ १६ ॥

येषामध्यबलारोगा'कफपित्तसमुत्थिता. । वम्यतीसारहृद्रोग विसूच्यलसकज्वरा' ॥ १७ ॥ विबन्धगौरवोद्गारहृल्लासारोचकादयः । पाचनैस्तान्भिषक्प्राज्ञ प्रायेणादावपाचरेत् ॥ १८॥

जिनके शरीरमें कफ, पित्तसे उत्पन्न हुए रोग मन्दबल हैं उनको तथा जिनका वमन, अतिसार, हृद्यरोग, विषूचिका, अलसक, ज्वर, विबध, गुरुता, उद्गार, अरोचक आदि रोग हों उन पाचनयोग्य मनुष्योंको लंघन कराना चाहिये ॥ १७ ॥ १८ ॥

अतएवयथोद्दिष्टायेषामल्पबलागदाः । पिपासानिग्रहैस्तेषामु पवासैश्चताञ्जयेत्॥१९॥ रोगाञ्जयेन्मध्यबलान्व्यायामातपमा-रुतैः । बलिनांकिंपुनर्येषांरोगाणामवरंबलम् ॥ २० ॥

उपरोक्त रोग तथा अन्य भी अल्पबल जो रोग हैं वह सब प्यासके रोकनेसे, संयमसे तथा उपवाससे जीतने योग्य हैं ॥ १९ ॥ मध्यबली रोग व्यायाम, धूप और वायुसे लंघन करने योग्य है । लंघन द्वारा बड़े २ बलवान् रोग भी जीते जा सकते हैं और अल्पबल रोगोंका तो कहना ही क्या है ॥ २० ॥

शिशिरऋतुमें लङ्घनीय रोगी ।

त्वग्दोषिणाप्रमीढानांस्निग्धाभिष्यन्दिबृंहिणाम् ।
शिशिरेलंघनंशस्तमपिवातविकारिणाम् ॥ २१ ॥

त्वक्रोगी प्रमेहवाला, स्निग्ध, अभिष्यदयुक्त, स्थूल, और वातरोगीके भी शिशिर ऋतुमें लंघन पथ्य है ॥ २१ ॥

बृंहणमांसका वर्णन ।

अदिग्धविद्धमक्लिष्टंवयःस्थंसात्म्यचारिणाम् ।
मृगमत्स्यविहङ्गानांमांसंबृंहणमुच्यते ॥ २२ ॥

जो दुर्बल, किसीका माराहुआ और कठोर, जीर्ण न हो, स्वस्थहो ऐसे सब प्रकारके मृगोंका मांस और मछलियां तथा पक्षियोंका मांस बृंहण कहा जाता है ॥ २२ ॥

क्षीणाःक्षताः कृशावृद्धादुर्बलानित्यमध्वगाः ।
स्त्रीमद्यनित्याग्रीष्मेचबृंहणीयानराःस्मृताः ॥ २३ ॥

जो मनुष्य क्षीण, क्षत, कृश, वृद्ध, दुर्बल तथा रास्ता चलनेसे थकाहुआ हो तथा स्त्रीसंग और मद्यका सेवन करनेवाला हो, ग्रीष्मऋतुमें वह बृंहण करनेके योग्य है ॥ २३ ॥

मांसद्वारा बृंहणीय रोगी ।

शोषार्शोग्रहणीदोषैर्व्याधिभिः कर्शिताश्रये ।

तेषांक्रव्यादमांसानांबृंहणालघवोरसा ॥ २४ ॥

जो मनुष्य शोष, अर्श, ग्रहणी आदि रोगोंसे क्षीण होगये हों उनको मांस भक्षण करनेवाले जीवोंका मांसरस बृंहण कर्ता तथा लघु कहा गया है ॥ २४ ॥

सर्वोपयोगी बृंहणकर्म ।

स्नानमुत्सादनस्वप्नोमधुराःस्नेहवस्तय ।

शर्कराक्षीरसर्पींपिसर्वेषांविद्धिबृंहणम् ॥ २५ ॥

स्नान, उत्सादन, निद्रा, मधुर पदार्थ, स्नेहवस्ती, शर्करा, दूध और घी ये सब मनुष्योंके लिये बृंहण (पुष्ट) करनेवाले हैं ॥ २५ ॥

रूक्षण ।

कटुतिक्तकषायाणांसेवनंस्त्रीष्वसंयमः ।

खलीपिण्याकतक्राणामध्वादीनांचरूक्षणम् ॥ २६ ॥

कडुवे, कषैले, चर्परे रसोंका सेवन, स्त्रियोंका अत्यन्त सेवन, खल, तिलकल्क, छाछ और मधु आदि रूखे पदार्थ सब मनुष्योंको रूक्षणकर्ता कहे जाते हैं ॥ २६ ॥

अभिष्यन्दामहादोषामर्मस्थाव्याधयश्चये ।

ऊरुस्तम्भप्रभृतयोरूक्षणीयानिदर्शिता ॥ २७ ॥

जिनके शरीरमें अधिक मोटा होनेके कारण अथवा दोषोंकी वृद्धिके कारण गिल-गिलाहट उत्पन्न होगई हो और कफ बढाहुआ हो वे तथा मर्मस्थानमें बढे हुए दोष एवम् ऊरुस्तम्भ आदि रोग रूक्षण करनेके योग्य हैं ॥ २७ ॥

स्नेहाः स्नेहयितव्याश्चस्वेदाः स्वेद्याश्चयेनराः ।

स्नेहाध्यायेमयोक्तास्तेस्वेदाख्येचसाविस्तराः ॥ २८ ॥

सब प्रकारके स्नेह और स्नेहनके योग्य मनुष्य तथा सब प्रकारके स्वेद और स्वेद-नयोग्य मनुष्य हम स्नेह स्वेदाध्यायमें विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुके हैं ॥ २८ ॥

द्रवंतनुसरंयावच्छीतीकरणमौषधम् ।

स्वादुतिक्तकषायञ्चस्तम्भनसर्वमेवतत् ॥ २९ ॥

द्रव, तनु, सर, शीतल, स्वादु, तिक्त और कषाय द्रव्य स्तम्भन कहे जाते हैं ॥ २९ ॥

पित्तक्षाराग्निदग्धायेवम्यतीसारपीडिता ।
विषस्वेदातियोगार्त्तास्तम्भनीयास्तथापरा ॥ ३० ॥

जो मनुष्य पित्त, क्षार तथा अग्निसे दग्ध हुए हों और वमन तथा अतिसारसे पीडित हों अथवा विष और स्वेदके अतियोगसे क्लेशित हो वह सब स्तम्भन करने योग्य हैं ॥ ३० ॥

सम्यक् लंघनके लक्षण ।

वातमूत्रपुरीषाणाविसर्गेगात्रलाघवे । हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौतन्द्राक्लमेगते ॥ ३१ ॥ स्वेदेजातेरुचौचैवक्षुत्पिपासासहोदये । कृतलंघनमादेश्यनिर्व्यथेचान्तरात्मनि ॥ ३२ ॥

जब रोगीके वात, मूत्र और मलका त्याग होने लगे, शरीर हलका पडजाय, हृदय शुद्ध होय, डकार शुद्ध आने लगे, कण्ठ और मुख स्वच्छ प्रतीत होने लगे, तन्द्रा और क्लम दूर होजाय, शुद्ध पसीना आने लगे, रुचि प्रकट हो, भूख और प्यास लगने लगे, अपना शरीर शुद्ध, हलका और व्यथाहीन प्रतीत होवे तो समझना चाहिये कि उत्तम लंघन होगया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्चकास शोषोमुखस्यच । क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णादौर्बल्यश्रोत्रनेत्रयो ॥ ३३ ॥ मनस सम्भ्रमोऽभीक्ष्णमूर्द्ध्वं वायुस्तमोहृदि । देहाग्निबलनाशश्चलंघनेऽतिकृतेभवेत् ॥३४॥

पर्वभेद, अंगमर्द, खांसी, मुख सूखना, क्षुधा घट होना, अरुचि, प्यास, श्रोत्र, और नेत्रोंमें दुर्बलता, मनमें व्याकुलता, बारंबार ऊर्ध्व वायु, हृदयमें व्याकुलता, मन्दाग्नि ये सब लक्षण अतिलंघनके होते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

सम्यक् बृंहणके लक्षण ।

बलपुष्ट्युपलम्भश्चकार्श्यदोषविवर्जितम् । लक्षणबृंहितेस्थौल्यमतिचात्यर्थबृंहिते ॥ ३५ ॥ कृताकृतस्यचिह्नयल्लंघितेन विरूक्षिते । स्तम्भित स्याद्बलेलब्धेयथोक्तैश्चामयैर्जिते ॥३६॥ श्यावतास्तब्धगात्रत्वमुद्वेगोहनुसंग्रह । हृद्वर्चोनिग्रहश्चस्यादतिस्तम्भितलक्षणम् ॥ ३७ ॥

बल, पुष्टि, दृढता, अकृशता ये सब लक्षण बृंहणके होतेहैं । अत्यन्त बृंहण होनेसे शरीरमें स्थूलता बढजातीहै ॥ ३५ ॥ जैसे लंघनके योग और अयोगसे लक्षण होतेहैं वैसेही रूक्षणके योग और मिथ्यायोगसे भी जानने। यथोक्त रोगोंके उपद्रवोंको स्तम्भन द्वारा जीतकर शरीरमें बल प्राप्त होय तो उत्तम स्तम्भन हुआ जानो ॥ ३६ ॥ अति स्तम्भन होनेसे शरीरका रंग काला पडजाताहै और गात्रस्तम्भ, उद्वेग और हनुस्तम्भ, हृदयका उपरोध एवम् मलबद्धता उत्पन्न होजातीहै ॥ ३७ ॥

लक्षणञ्चकृतानांस्यात्षण्णामेषांसमासतः । तदौषधीनांव्याधीनामशमोवृद्धिरेव वा ॥ ३८ ॥ इतिषट्सर्वरोगाणांप्रोक्ताः सम्यगुपक्रमाः । साध्यानांसाधनेसिद्धामात्राकालानुरोधिन-इति ॥ ३९ ॥

इस प्रकार लंघनादि ६ प्रकारके उपयोग होनेसे जो लक्षण होतेहैं उनकी औषधि और धातुओंकी अशान्ति और वृद्धि यह सब कह चुके हैं । इस ६ प्रकारकी चिकित्सा द्वारा मनुष्य सब रोगोंको जीत सकता है, परन्तु यह सब मात्रा, काल आदि विचारकर प्रयोग करनेसे सब साध्यरोगोंको नष्ट कर देतेहैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

भवति चात्र ।

दोषाणांबहुसंसर्गात्सङ्कीर्य्यन्तेह्युपक्रमाः । षट्त्वंतुनातिवर्त्तन्तेत्रित्वंवातादयोयथा ॥ ४० ॥ इत्यस्मिंल्लंघनाध्यायेव्याख्याता षडुपक्रमाः । यथाप्रश्नंभगवताचिकित्सायै प्रवर्त्तिता॥४१॥

इति योजनाचतुष्केलंघनबृंहणीयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः समाप्तः ।

वात, पित्त, कफके बहुतसे प्रकार मिश्रित चिकित्सासे नष्ट करनेयोग्य हैं । जैसे वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोंके सिवाय और कोई दूषित करनेवाला नहीं है ऐसे ही लंघन प्रभृति ६ चिकित्सा भी इन वातादिकसे मिश्रित और पृथक् दोषोंको दूर करनेमें परमोपयोगी है । इस प्रकार भगवान् पुनर्वसुजीने अग्निवेशके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए इस लंघनबृंहणीयाध्यायमें ६ प्रकारकी चिकित्साका वर्णन कियाहै ॥ ४० ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० प० रामप्रसाद० भाषाटीकायां योजनाचतुष्के लंघनबृंहणीयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथातः सन्तर्पणीयमध्यायव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम सतर्पणीय नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं। ऐसा भगवान् आत्रेय कहनेलगे।

सन्तर्पणसे होनेवाले रोगोके सकारण नाम ।

सन्तर्पयतिय.स्निग्धैर्मधुरैर्गुरुपिच्छिलैः । नवान्नैर्नवमद्यैश्चमासैश्चानूपवारिजैः ॥ १ ॥ गोरसैर्गौडिकैश्चान्नै.पिष्टकैश्चातिमात्रशः । चेष्टाद्वेपीदिवास्वप्नशय्यासनसुखेरत ॥ २ ॥ रोगास्तस्योपजायन्तेसन्तर्पणनिमित्तजा । प्रमेहकण्डूपिडका.कोठपाण्ड्वामयज्वरा ॥ ३ ॥ कुष्ठान्यामप्रदोषाश्चमूत्रकृच्छ्रमरोचकम् । तन्द्राक्लैव्यमतिस्थौल्यमालस्यगुरुगात्रता ॥ ४ ॥ इन्द्रियेस्रोतसारोधोबुद्धेर्मोह प्रमीलक. । शोफाश्चैवंविधाश्चान्येशीघ्रमप्रतिकुर्वत ॥ ५ ॥

जिस प्रकार चिकने, मीठे, भारी और पिच्छिल द्रव्य तथा नवीन अन्न, मद्य, अनूपसचारी जीवोंका मास, जलचर जीवोंका मास, दूध और मिठाई, पुष्ट पदार्थ तृप्तिपूर्वक भोजन करनेसे सतर्पण होताहै। उसी प्रकार व्यायाम न करना, दिनमे सोना, सोने बैठनेके सुखमे आराममे रहना इनसे प्रमेह, खुजली, पिटका, कोठरोग पाण्डुरोग ज्वर, कुष्ठ,आमदोष, मूत्रकृच्छ, अरुचि, तन्द्रा, नपुसकता, मेदरोग आलस्य, भारीपन, इन्द्रियोंके स्रोतोंका अवरोध, बुद्धिनाश, प्रमीलक, सूजन आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होतेहै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

शतमुल्लेखनतेपाविरेकोरक्तमोक्षणम् । व्यायामश्चोपवासश्चधूमाश्चस्वेदनानिच ॥ ६ ॥ सक्षौद्रश्चाभयाप्रास प्रायोरूक्षान्नसेवनम् । चूर्णप्रदेहायेचोक्ता कण्डूकोठविनाशना ॥ ७ ॥

अधिक सतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंमें वमन कराना विरेचन, रक्तमोक्षण, व्यायाम, उपवास, धूम्रपान, स्वेदन, मधुके साथ हरड़ खाना और रूक्ष अन्नपानका सेवन तथा खाज और कुष्ठके नाश करनेवाले चूर्ण तथा प्रदेह आदिकोंका सेवन करना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

मोहादि नाशक क्वाथ।

त्रिफलारग्वधंपाठासप्तपर्णसवत्सकम् । मुस्तंनिम्बंसमदनजलेनोत्कथितंपिबेत् ॥ ८ ॥ तेनमोहादयोयान्तिनाशमभ्यस्यताध्रुवम् । मात्राकालप्रयुक्तेनसन्तर्पणसमुत्थिता ॥ ९ ॥

त्रिफला, अमलतास, पाठा सतवन, कुडाकी छाल,नागरमोथा,नीमका छिलका और मैनफल इन सबका क्वाथ (काढा) बनाकर मात्रा और कालको विचारकर सेवन करनेसे सतर्पणसे उत्पन्नहुए प्रमेह आदि रोग नष्ट होतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

त्वग्दोषपर क्वाथ।

मुस्तमारग्वधः पाठात्रिफलादेवदारुच । श्वदंष्ट्राखदिरोनिम्बो हरिद्रात्वक्कुचवत्सकात् ॥ १० ॥ रसमेषांयथादोषंप्रातःप्रात पिबेन्नर । सन्तर्पणकृतैःसर्वैर्व्याधिभिर्विप्रमुच्यते ॥ ११ ॥

नागरमोथा, अमलतास, पाठा, त्रिफला, देवदारु गोखरू,कत्था, नीमका छिलका, हल्दी, कुडाकी छाल इन सबका क्वाथ (काढा) नित्य प्रातःकाल पीनेसे सतर्पणसे उत्पन्नहुई सब प्रकारकी व्याधिया नष्ट होतीहैं ॥ १० ॥ ११ ॥

एभिश्चोद्वर्त्तनोद्धर्षस्नानयोगोपयोजितैः ।
त्वग्दोषाःप्रशमयान्तितथास्नेहोपसंहितैः ॥ १२ ॥

इन ऊपर कही हुई औषधियोंके तेलसे अथवा इन सबका उबटन बना मालिश करनेसे किंवा इनके क्वाथसे स्नान करनेसे सतर्पणसे उत्पन्नहुए त्वचाके रोग दूर होतेहैं ॥ १२ ॥

मूत्रदोषापर क्वाथ।

कुष्ठगोमेदकहिङ्गुक्रौञ्चास्थित्र्यूषणवचाम् । वृषकैलेश्वदंष्ट्राच खराह्वाश्मभेदिकम् ॥ १३ ॥ तक्रेणदधिमण्डेनबदराम्लरसेनवा । मूत्रकृच्छ्रंप्रमेहंचपीतमेतद्व्यपोहति ॥ १४ ॥

कडुआ कूट, गोमेदक नामका पत्थर, हींग, कमलगट्टेकी गिरी, सोंठ, पीपल, मिर्च, वच, अडूसा, इलायची, गोखरू, अजमोद, पाषाणभेद इन सब औषधियोंके चूर्णको छाछ अथवा दहीका जल या बेरके क्वाथके साथ पीनेसे सतर्पण जनित मूत्र कृच्छ्र और प्रमेह दूर होतेहैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

प्रमेहादिपर क्वाथ ।

तक्राभयाप्रयोगैश्चत्रिफलायास्तथैवच ।
अरिष्टानाप्रयोगैश्चयान्तिमेहादय शमम् ॥ १५ ॥

तक्र, हरड, त्रिफला और ऐसे ही अरिष्टाके प्रयोग करनेसे प्रमेह आदि रोग नाशको प्राप्त होतेहै ॥ १५ ॥

त्र्यूषणंत्रिफलाक्षौद्रक्रिमिघ्नसाजमोदकम् ।
मन्थोऽयसक्तव सर्पिर्हितोलोहोदकाप्लुत. ॥ १६ ॥

साठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, शहद, विडग, अजमोद इन सबके चूर्णमें अगरका जल और सत्तू तथा घी इनका मथ बनाकर पीवे तो सतर्पणसे उत्पन्न हुए सब रोग नष्ट होतेहै ॥ १६ ॥

व्योपविडङ्गशिग्रूणित्रिफलाकटुरोहिणी । बृहत्यौद्वेहरिद्रेद्वेपाठासातिविपास्थिरा । हिङ्गुकेबुकमूलानियवानीधान्यचित्रकम् ॥ १७ ॥ सौवर्चलमजाजीचहवुपाचेतिचूर्णयेत् । चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाःस्युर्मानत.समा ॥ १८ ॥ सक्तूनापोडशगुणो भागःसन्तर्पणपिवेत् । प्रयोगादस्यशाम्यन्तिरोगाःसन्तर्पणोत्थिता ॥ १९ ॥ प्रमेहामूढवाताश्चकुष्ठान्यर्शांसिकामला. । प्लीहापाण्ड्वामय'शोफोमूत्रकृच्छ्रमरोचक ॥ २० ॥ हृद्रोगोराजयक्ष्माचकास श्वासोगलग्रह । क्रिमयोग्रहणीदोषा' श्वैत्र्यस्थौल्यमतीवच । नराणादीप्यतेचाग्नि स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ २१ ॥

साठ, मिर्च, पीपल, सोहाञ्जनके बीज, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी, दोनों कटेली, हल्दी, दारुहल्दी, पाठा, अतीस, शालपर्णी, हींग, केमुककी जड, अजवायन, धनिया, चित्रक, संचरनमक, कालाजीरा दाऊवेर इन सबका चूर्ण करके चूर्णके समान तेल, घी और शहद मिलावे तथा १६ गुना सत्तू मिलावे । इस औषधिके सेवनसे सतर्पणसे उत्पन्न हुआ प्रमेह और ऊढवात, कुष्ठ, अर्श, कामला, प्लीहा, पाण्डु, सूजन, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृद्रोग, यक्ष्मा, खास, श्वास, गलग्रह कृमि, ग्रहणी, स्थूलता, श्वित्र ये सब

नष्ट होतेहैं और अग्नि चैतन्य होताहै तथा स्मृति और बुद्धिकी वृद्धि होती है ॥१७॥ ॥१८॥१९॥ २० ॥ २१ ॥

व्यायामनित्योजीर्णाशीयवगोधूमभोजन ।
सन्तर्पणकृतैर्दोषैर्मुक्तास्थौल्याद्विमुच्यते ॥ २२ ॥

नित्य व्यायाम करनेवाला तथा उचित रीति पर भोजन करनेवाला मनुष्य जौ, गेहूँ भोजन करते हुए भी सतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंसे तथा स्थूलतासे छूट जाताहै ॥ २२ ॥

उक्तसन्तर्पणोत्थानामपतर्पणमौषधम् ।
वक्ष्यन्तेसौषधाश्चोर्द्धमपतर्पणजागदाः ॥ २३ ॥

इस प्रकार सतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंकी औषधिया वर्णन करचुके हैं अब लघनसे उत्पन्न हुए रोगोंकी औषधिया कहतेहैं ॥ २३ ॥

अतर्पणजन्य रोगोंके नाम ।

देहोग्निबलवर्णोज:शुक्रमासबलक्षय ।ज्वर कासानुबन्धश्चपा र्श्वशूलमरोचक ॥ २४ ॥ श्रोत्रदौर्बल्यमुन्माद प्रलापोहृदय-व्यथा । विण्मूत्रसग्रह शूलजघोरुत्रिकसंश्रयम् ॥ २५ ॥ पर्वास्थिसन्धिभेदश्चयेचान्येवातजागदा । ऊर्द्ध्ववातादय सर्वे जायन्तेतेऽपतर्पणात् ॥ २६ ॥

अत्यन्त लघन करनेसे अथवा अनुचित रीति पर लघन करनेसे शरीर, जठराग्नि, बल, वर्ण, ओज, शुक्र, मास और बलका क्षय होताहै और ज्वर, खांसी इनका अनुबंध पार्श्वशूल, अरुचि और श्रवणशक्तिकी दुर्बलता, उन्माद, प्रलाप, हृदयमें पीडा, मल मूत्रका विबंध, जघा और ऊरु तथा त्रिकस्थानमें पीडा और पर्व, अस्थि, सन्धि इनमें भेदनकीसी पीडा, ऊर्द्ध्ववात आदिक बहुतसे रोग उत्पन्न होते हैं ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥

तेषासन्तर्पणतज्ज्ञै पुनराख्यातमौषधम् । यत्तदात्वेसमर्थस्या-दभ्यासेवातदिष्यते ॥ २७ ॥ सद्य क्षीणोहिसद्योवैतर्पणेनो पचीयते । नर्तेसन्तर्पणाभ्यासाच्चिरक्षीणस्तुपुष्यति ॥ २८ ॥ देहाग्निदोषभैषज्यमात्राकालानुवर्त्तिना । कार्य्यमत्वरमाणेन

भेषजचिरदुर्बले॥ २९॥ हितामासरसास्तस्मैपया सिद्घृता-
निच । स्नानानिवस्तयोऽभ्यङ्गास्तर्पणास्तर्पणाश्चये ॥ ३० ॥
ज्वरकासप्रसक्तानाकृशानामूत्रकृच्छ्रिणाम् । तृष्यतामूर्द्ध्ववा-
तानाहितवक्ष्यामितर्पणम् ॥ ३१ ॥

इन लंघनसे उत्पन्न हुए रोगाम सतर्पणके जाननेवाले वैद्याको उचित रीतिपर रके सतर्पणसे अभ्यास कराकर सामर्थ्यानुसार सतर्पणकी मात्राको बढाना ाहिये । जो मनुष्य अवतर्पण (लंघन)से शीघ्र क्षीण हुआहो वह सतर्पणके सेवनसे ीघ्रही पुष्ट होजाताहै और जो मनुष्य बहुत दिनका क्षीण है वह कुछ काल पर्यन्त तर्पणका अभ्यास करने बिना पुष्ट नहीं होसकता ॥ २७ ॥ २८ ॥ जो मनुष्य बहुत नसे क्षीण होरहा हो उसके देह, अग्नि, बल और दोषको विचारकर तथा औषध ात्रा, और कालका विचार करते हुए अल्प २ (थोडी २) मात्रासे सतर्पणका भ्यास करना चाहिये ॥ २९ ॥ बहुत रोगसे क्षीण हुए मनुष्यके लिये मांसरस, ध, घृत, स्नान, वस्तिकर्म और अभ्यग एवम् अनेक प्रकारके तर्पण योग्य रीति पर पयोग करना चाहिये ॥ ३० ॥ जो मनुष्य ज्वर और खासीसे पीडित हो, कृश हो, त्रकृच्छ्र रोगवाला, तृषायुक्त एवम् उर्द्ध्ववातवाला हो ऐसे रोगियोंके लिये हितकारी तर्पणोंका कथन करतेहैं ॥ ३१ ॥

पुष्टिकर्त्ता मन्थ ।

शर्करापिप्पलीतैलघृतक्षौद्रसमाशके ।
सक्तुद्विगुणितोवृष्यस्तेषामन्थ प्रशस्यते ॥ ३२ ॥

खाड, पीपल, तैल, घृत, मधु इनको समान भाग लेकर इनमें उनके दूने सत्तू मिलावे यह मथ सब प्रकारके क्षीण मनुष्योंके लिये परम हितकारी है ॥ ३२ ॥

विण्मूत्रानुलोमी तर्पण ।

सक्तवोमदिराक्षौद्रशर्कराचेतितर्पणम् ।
पिबेन्मारुतविण्मूत्रकफपित्तानुलोमनम् ॥ ३३ ॥

सत्तू मद्य, शहद, खांड इनका तर्पण सेवन करनेसे वायु, मल, मूत्र और कफ तथा ित्तका अनुलोमन होताहै ॥ ३३ ॥

मूत्रकृच्छ्रादिनाशक तर्पण ।

फाणितसक्तव सर्पिर्दधिमण्डोऽम्लकाञ्जिकम् ।
तर्पणमूत्रकृच्छ्रमसृग्वर्त्तहरंपिबेत् ॥ ३४ ॥

फाणित, सत्तू, घृत, दही, मड, खट्टी काजी इनका तर्पण पीनेसे मूत्रकृच्छ्र और उदावर्तका नाश होताहै ॥ ३४ ॥

मन्थःखर्जूरमृद्वीकावृक्षाम्लाम्लीकदाडिमैः ।
परूषकैःसामलकैर्युक्तोमद्यविकारनुत् ॥ ३५ ॥

छुहाडा, मुनक्का ततडीक, इमली, अनारदाना, फालसा, आँवले इन सबका बनाया मथ मद्य पीनेसे हुए विकारोंको नष्ट करताहै ॥ ३५ ॥

बलवर्णदायक सन्तर्पण ।

स्वादुरम्लोजलकृत सस्नेहोरूक्षएववा ।
सद्य सन्तर्पणोमन्थ'स्थैर्य्यवर्णवलप्रद ॥ ३६ ॥

मीठे और खट्टे पदार्थोंको लेकर जलके सयोगसे मथ बनावे अथवा मीठे खट्टे पदार्थोंका स्वरस स्नेहनके साथ या रूखा ही पीनेसे शरीरमें स्थिरता होती है और बल तथा वर्णकी वृद्धि होतीहै ॥ ३६ ॥

तत्रश्लोकः ।

सन्तर्पणोत्थायेरोगारोगायेचापतर्पणात् ।
सन्तर्पणीयेतेऽध्यायेसौषधा.परिकीर्त्तिता ॥ ३७ ॥

इतिसन्तर्पणीयोऽध्याय.समाप्त ।

इस सतर्पणीय नामक अध्यायमें सतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंका और लघनसे उत्पन्न हुए रोगोंका वर्णन तथा उनकी चिकित्साका वर्णन किया गयाहै ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० प० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां सतर्पणीयो नाम त्रयोविंशोऽध्याय ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्याय ।

अथातोविधिशोणितीयमध्यायव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेय ।

अब हम विधिशोणितीय नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं, ऐसा आत्रेय भगवान् कहनेलगे ।

शुद्ध रक्तके गुण ।

विधिनाशोणितजातशुद्धभवतिदेहिनाम् । देशकालौकसात्म्यानाविधिर्य सम्प्रदर्शित ॥ १ ॥ तद्विशुद्धहिरुधिरंबलवर्ण सुखायुषा । युनक्तिप्राणिनप्राण.शोणितह्यनुवर्त्तते ॥ २ ॥

देश, काल विचारकर आत्माके अनुकूल व्यवहार करनेवाले मनुष्योंके शरीरमे जिस प्रकार शुद्ध रक्त रहे वह विधि हम प्रकाशित करतेहै, क्योंकि शरीरमें शुद्ध रक्तके रहनेसे बल, वर्ण, सुख और आयुकी वृद्धि होती है कारण कि मनुष्योंके शरीरोंमे प्राण रुधिरके अनुवर्ती होतेहै ॥ १ ॥ २ ॥

प्रदुष्टबहुतीक्ष्णोष्णैर्मद्यैरन्यैश्चतद्विधैः । तथातिलवणक्षारैरम्लैः कटुभिरेवच ॥३॥ कुलत्थमाषनिष्पावतिलतैलनिषेवणैः । पिण्डालुमूलकादीनांहरितानांचसर्वशः ॥४॥ जलजानूपवैलानांप्रसहानांचसेवनात् । दध्यम्लमस्तुसक्तूनांसुरासौवीरकस्यच ॥ ॥ ५ ॥ विरुद्धानामुपक्लिन्नपूतीनांभक्षणेनच । भुक्त्वादिवाप्रस्वपतांद्रवस्निग्धगुरूणिच ॥ ६ ॥ अत्यादानंतथाक्रोधंभजतां चातपानलौ । छर्दिवेगप्रतीघातात्कालेचानवसेचनात् ॥ ७ ॥ श्रमाभिघातसन्तापैरजीर्णाध्यशनैस्तथा । शरत्कालस्वभावाच्चशोणितंसंप्रदुष्यति ॥ ८ ॥

अब रुधिरके दूषित करनेवाले कारणोंको कहतेहैं । खराब हुए बहुतसे तीक्ष्ण, गर्म पदार्थोंके सेवनसे मादक द्रव्य, लवण, क्षार, खटाई, चर्परे पदार्थ, कुल्थी, उडद, सेम, तिल, तेल, पिंडालु, मूली, सब्जी तथा जलसचारी और अनूपचारी एवम् बिलेशय और प्रसह आदि जीवोंके मांस खानेसे दही, कांजी, दहीका तोड, सत्तू, सुरा, सौवीर इनके सेवनसे एवम् अपनी आत्माके विरुद्ध आहार करनेसे तथा क्लिन्न, सडाहुआ आहार बहुत सेवन करनेसे शरीरमका रक्त दूषित होताहै । इसी प्रकार पतले, चिकने और भारी भोजन करनेसे, दिनमें सोनेसे, मात्रासे अधिक भोजन करनेसे और क्रोध, धूप, अग्नि इनके सेवनसे, वमनका वेग रोकनेसे, समयोचित रक्तमोक्षण न करानेसेभी रक्त दूषित होताहै । तथा परिश्रम, चोट लगना, अजीर्ण होना, बिना पचे भोजन करना इत्यादि कारणोंसे भी रक्त दूषित होताहै एवम् शरद् ऋतुके स्वभावसे ही रक्तके दूषित होनेका समय है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

दूषितरक्तके उपद्रव ।

ततःशोणितजारोगा प्रजायन्तेपृथग्विधाः । मुखपाकोऽक्षिरोगश्चपूतिघ्राणास्यगन्धता ॥ ९ ॥ गुल्मोपदंशवीसर्परक्तपित्तप्रमीलकाः । विद्रधीरक्तमेहश्चप्रदरोवातशोणितम् ॥ १० ॥

वैवर्ण्यमग्निनाशश्चपिपासागुरुगात्रता। सन्तापश्चातिदौर्बल्यम-
रुचिःशिरसश्चरुक् ॥ ११ ॥ विदाहश्चान्नपानस्यतिक्ताम्लो
द्गरणक्लमः । क्रोधप्रचुरताबुद्धेः संमोहोलवणास्यता ॥ १२ ॥
स्वेदः शरीरदौर्गन्ध्यमदः कम्पः स्वरक्षयः । तन्द्रानिद्रातियोग
श्चतमसश्चातिदर्शनम् ॥ १३ ॥ कण्डूरुकोठपिडकाः कुष्ठ
चर्मदलादयः । विकाराः सर्वएवैतेविज्ञेयाःशोणिताश्रयाः ॥१४॥

फिर वह दुष्ट हुआ रक्त अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करताहै । उन रोगोंका यहां वर्णन करतेहैं । मुखरोग तथा मुख, नाक और नेत्रोंका परिपाक होना नाकसे और मुखसे दुर्गन्धआना, गुल्म, उपदंश, विसर्प, रक्तपित्त, प्रमीलक, विद्रधि, रक्तमेह (पेशाबमें रक्तका आना), प्रदर वातरक्त, शरीरकी विवर्णता, मंदाग्नि,प्यास, भारीपन, संताप, अति दुर्बलता अरोचक, मस्तकपीडा, अन्नपानका विदाही परिपाक होना, खट्टे तथा कडुए डकार आना, क्लम, क्रोधकी अधिकता, बुद्धिका नाश, मुखका नमकीन स्वाद, दुर्गंधित स्वेद शरीरमें दुर्गंध, मस्ती, कम्प, स्वरभंग, तन्द्रा, अत्यंत निद्रा, अंधकार खाज पीडा, कोठरोग, पिडका, कुष्ठ, चर्मदल ऐसे २ रोग रक्तके दूषित होनेसे उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैरुपक्रान्ताश्चयेगदाः ।
सम्यक्साध्यानसिध्यन्तिरक्तजास्तान्विभावयेत् ॥ १५ ॥

इसी प्रकार जो रोग साध्य प्रतीत होने पर भी शीतल, उष्ण तथा रूक्ष आदि क्रिया करने पर भी शान्त नहीं होते उनको भी रक्तके विकारसे उत्पन्न हुआ जानना ॥ १५ ॥

दूषितरक्तमें कर्तव्य कर्म ।

कुर्य्याच्छोणितरोगेषुरक्तपित्तहरींक्रियाम् ।
विरेकमुपवासञ्चस्रावणंशोणितस्यवा ॥ १६ ॥

रक्तके विकारोंमें रक्तपित्तनाशक क्रिया, विरेचन, उपवास एवम् रक्तका निकालना ऐसे २ उपायोंको करे । रक्तमोक्षण (फस्त खुलाना) के समय देश, काल, बल और दोष एवम् शुद्धरक्तका प्रमाण जानकर तथा शारीरिक स्थान ... ही रुधिर निकालना चाहिये ॥ १६ ॥

वलदोषप्रमाणाद्वाविशुद्ध्यारुधिरस्यवा । रुधिरस्रावयेजन्तोराशयप्रसमीक्ष्यवा ॥ १७ ॥ अरुणाभमवेद्वातात्विशदंफेनिलतनु । पित्तात्पीतासितरक्तसौष्ण्यात्स्त्यायतिवौचिरात् ॥ ॥ १८ ॥ ईपत्पाण्डुकफादुष्टपिच्छिलतन्तुमद्धनम् । द्विदोषलिङ्गसंसर्गात्त्रिलिङ्गसान्निपातिकम् ॥ १९ ॥

वायुसे दूषितहुआ रक्त-लाल, झागदार, पिच्छिल और पतला होताहै । पित्तसे दूषित हुआ रक्त-पीला, काला, लाल, गर्म और देरमें जमनेवाला होताहै ॥ १७ ॥ इसी प्रकार कफसे दूषितहुआ रक्त-कुछ २ पाडुवर्णका, पिच्छिल, तारयुक्त, गाढा होताहै । दो दोषोंके लक्षणोंवाला दो दोषोंसे दूषित जानना एवम् त्रिदोषके लक्षण मिलनेसे तीनो दोषोंसे दूषित समझना चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥

शुद्धरक्तके लक्षण ।

तपनीयेन्द्रगोपाभपद्मालक्तकसन्निभम् । गुञ्जाफलसवर्णञ्च विशुद्धंविद्धिशोणितम् ॥ २० ॥

जो रक्त सुवर्णके समान तथा वीरबहूटीके समान लाल वर्णका हो एवम् पद्मराग मणिके समान प्रकाशवाला हो अथवा रत्तक (चिरमटी, घुंघची) के वर्णसमान लाल रंगका होताहै वह शुद्ध रक्त जानना ॥ २० ॥

नात्युष्णशीतलघुदीपनीयरक्तेऽपनीतेहितमन्नपानम् । तदाशरीरह्यनवस्थितासृगग्निर्विशेषेणचरक्षितव्यम् ॥ २१ ॥

रक्त निकलवानेके अनन्तर जो अधिक गर्म तथा अधिक शीतल न हो ऐसा हलका और अग्निको उद्दीपन करनेवाला अन्नपान सेवन करना चाहिये क्योंकि रक्तकी ताकतसे ही अन्नका परिपाक होताहै सो रुधिर निकल जाने पर शरीरमें रक्तकी स्थिरता नहीं रहती इसलिये ऐसे समय पाचन करनेवाली अग्निकी विधिपूर्वक रक्षा करनी चाहिये ॥ २१ ॥

प्रसन्नवर्णेन्द्रियमिन्द्रियार्थानिच्छन्तमव्याहतपक्तृवेगम् । सुखान्वितमुष्टिबलोपपन्नंविशुद्धरक्तंपुरुषंवदन्ति ॥ २२ ॥

मनुष्यके शरीरमें रक्तके शुद्ध होजानेसे रंग और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता होतीहै तथा भोगकी इच्छा पाचनशक्ति, सुख पुष्टि और बलकी वृद्धि होतीहै ॥ २२ ॥

यदातुरक्तवाहीनिरससंज्ञावहानिच । पृथक्पृथक्समस्तावा स्रोतांसिकुपितामला. ॥ २३ ॥ मलिनाहारशीलस्यरजोमोहा वृतात्मनः । प्रतिहत्यावतिष्ठन्तेजायन्तेव्याधयस्तदा ॥ २४ ॥ मदमूर्च्छायसन्यासास्तेपांविद्याद्विचक्षण । यथोत्तरंबला· धिक्यहेतुलिङ्गोपशान्तिषु ॥ २५ ॥

जो मनुष्य सड़ेबुसे दूषित भोजनको करताहै उसके शरीरमे वात आदि दोष कुपित होकर अलग २ अथवा मिलकर रक्तवाहिनी नसोंको दूषित करके उनमें रहतेहैं॥२३॥ तब उस दूषित आहारके करनेवाले मनुष्यके शरीरमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ॥२४॥ जैसे-उन्माद, मूर्छा, सन्यास (बेहोशी) इत्यादि इस लिये बुद्धिमान वैद्यको हेतु, लक्षण, उपशय इनको विचारकर चिकित्सा करना चाहिये । रक्तमें दोषके बलवान होनेसे मद, मूर्छा, सन्यास यह तीनों प्रथमकी अपेक्षा दूसरा दूसरेकी अपेक्षा तीसरा घोरतर होताहै । दूसरी बात यह है कि बढेहुए दोषोंसे दूषित हुए रक्तविकारोंको कारण और लक्षणोंसे उपशम अर्थात् उपाय द्वारा शान्त करना भारी बात है ॥ २५ ॥

कुपितवायुका कर्म ।

दुर्बलश्चेतस'स्थानयदावायु प्रपद्यते । मनोविक्षोभयञ्जन्तो' संज्ञांसंमोहयेत्तदा ॥ २६ ॥ पित्तमेवकफश्चैवमनोविक्षोभय· न्नृणाम् । सज्ञानयत्याकुलताविशेषश्चात्रवक्ष्यते ॥ २७ ॥

जब मनुष्यके दुर्बल चित्तमें कुपित होकर वायु प्रवेश करता है उस समय उस मनुष्यके मनको चञ्चल करके ज्ञानको बिगाड़ देताहै ॥ २६ ॥ इसी प्रकार कुपित हुआ पित्त और कफ मनुष्योंके मनको चञ्चल करता हुआ ज्ञानको नष्ट करदेताहै । उसीको विशेष रूपसे वर्णन करतेहैं ॥ २७ ॥

वाताधिकृत उन्मादका लक्षण ।

सक्तानल्पद्रुताभाषंचलस्खलितचेष्टितम् ।
विद्याद्वातमदाविष्टरूक्षश्यावारुणाकृतिम् ॥ २८ ॥

वातजनित मदरोगमें मनुष्य जल्दी २ और अधिक बकवाद करताहै । उसका स्वभाव चञ्चल होजाताहै एवम चेष्टा स्खलित होजाती है तथा आकृति रूखी, काली और लाल्मी होतीहै । ऐसे मनुष्यको वायुके मदसे दूषित जानना ॥ २८ ॥

सक्रोधपरुषाभाषसप्रहारकलिप्रियम् ।
विद्यात्पित्तमदाविष्टरक्तपीतसिताकृतिम् ॥ २९ ॥

पित्तजनित मदसे मनुष्य क्रोधयुक्त और कटु भाषण करनेवाला तथा मारनेको दौडनेवाला और कलह करनेवाला होताहै। उसका वर्ण लाल, पीला और काले रंगका होताहै ॥ २९ ॥

स्वल्पसम्बन्धवचनतन्द्रालस्यसमन्वितम् ।
विद्यात्कफमदाविष्टपाण्डुप्रध्यानतत्परम् ॥ ३० ॥

कफजनित मदरोगमें अटसट बकना, तन्द्रा, आलस्य इन लक्षणोंवाला होताहै और उसका वर्ण पाण्डुरंगका होताहै तथा वह फूत्कार करनेमें तत्पर रहताहै ॥ ३० ॥

सर्वाण्येतानिरूपाणिसन्निपातकृतेमदे । जायन्तेशाम्यतित्वाशुमदोमद्यमदाकृति ॥ ३१ ॥ यश्चमद्यमदःप्रोक्तोविषजोरौधिरश्चयः । सर्वएतेमदानर्त्तेवातपित्तकफाश्रयात् ॥ ३२ ॥

तीन दोषोंके लक्षण मिलनेसे त्रिदोषज मदरोग जानना। मद्यपानसे उत्पन्न हुआ मदरोग शीघ्र ही प्रगट होजाताहै और शीघ्र ही नाशको प्राप्त होताहै। अन्य भी जितने प्रकारके मदरोग हैं जैसे-मदजनित, विषजनित, रक्तजनित यह सब वात,पित्त, कफके आश्रय होकर ही होतेहैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

वातादिजनितमूर्छाका लक्षण।

नीलवायदिवाकृष्णमाकाशमथवारुणम् । पश्यस्तमः प्रविशति शीघ्रश्चप्रतिबुध्यते ॥ ३३ ॥ वेपथुश्चाङ्गमर्दश्चप्रपीडाहृदयस्य च । कार्श्यंश्यावारुणाछायामूर्च्छायेवातसम्भवे ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य आकाशको नीला काला, लाल देखताहुआ झटपट अपने आपको अधकारमें प्रवेश होता मालूम करे, शीघ्र ही होशमें आजाय तथा जिसके शरीरमें कम्प, अंगमर्द, हृत्पीडा कृशता, श्यामता तथा अरुणता प्रतीत हो उसको वातजनित मूर्च्छा जानना चाहिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

रक्तहरितवर्णवावियत्पीतमथापिवा । पश्यन्तमः प्रविशतिसस्वेदश्चप्रबुध्यते ॥३५॥सपिपासः ससन्तापोरक्तपीताकुलेक्षणः । सभिन्नवर्चाःपीताभोमूर्च्छायेपित्तसम्भवे ॥ ३६ ॥

पित्तकी मूर्च्छामें आकाश लाल हरित, पीला दिखाई देकर झट अधकारमें प्रवेश होना प्रतीत होताहै और अत्यन्त पसीना आकर फिर होशमें आजाताहै फिर उसको प्यास, सताप, लाल पीले नेत्र, दस्त, देहका वर्ण पीला ये लक्षण होतेहै ॥३५॥३६॥

मेघसङ्काशमाकाशमावृतवातमोघनैः । पश्यस्तमः प्रविशति चिराच्चप्रतिबुध्यते ॥ ३७ ॥ गुरुभिःप्रावृतैरङ्गैर्यथैवार्द्रेणचर्म्मणा । सप्रसेकः सहृल्लासोमूर्च्छायेकफसम्भवे ॥ ३८ ॥

कफकी मूर्च्छामें मनुष्य आकाशको बादलोंसे ढकाहुआ और अधेरी छाई हुई देखते २ अधकारमें प्रवेश करताहै बहुत देरमें होश आने पर अपने शरीरको गीले वस्त्रसे ढकासा प्रतीति करताहै। मुखसे पानीका बहना, और हृल्लास (जीमचलाना) यह लक्षण होतेहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मारइवागतः ।
सजन्तुपातयत्याशुविनावीभत्सचेष्टितैः ॥ ३९ ॥

सन्निपातकी मूर्च्छामें अपस्मार (मृगी) रोगके समान लक्षण होतेहै अन्तर केवल इतनाही होताहै कि अपस्मारमें वीभत्स (भयानक) चेष्टा नहीं होती और सन्निपातकी मूर्च्छामें होतीहै ॥ ३९ ॥

दोषेषुमदमूर्च्छायाःकृतवेगेषुदेहिनाम् ।
स्वयमेवोपशाम्यन्तिसन्न्यासोनौषधैर्विना ॥ ४० ॥

मदसे उत्पन्नहुई मूर्च्छामें दोषोंका वेग शान्त होने पर मूर्च्छा भी स्वयम् शान्त होजातीहै । परन्तु सन्न्यासरोग विना औषधिके कदापि शान्त नहीं होता ॥ ४० ॥

सन्यास रोगका लक्षण ।

वाग्देहमनसाचेष्टामाक्षिप्यातिबलामलाः । सन्यस्यन्त्यबलं जन्तुप्राणायतनसंश्रिताः ॥ ४१ ॥ सनासन्न्याससन्न्यस्तःकाष्ठभूतोमृतोपमः । प्राणैर्वियुज्यतेशीघ्रमुक्त्वासद्यःफलांक्रियाम् ॥ ४२ ॥

वात, पित्त, कफ अत्यन्त कुपित होनेसे प्राणोंका आश्रय लेते हुए जब देह, मन और वाणीकी क्रियाको नष्ट कर देतेहै तब मनुष्य पृथ्वी पर गिरकर बेहोश पडा रहताहै । इस रोगको सन्न्यास रोग कहतेहै । सन्न्यासरोगमें मनुष्य गिरकर लकडीके समान मराहुआ सा पडा रहताहै । उस समय यदि शीघ्र कड़ दवाई चिकित्सा न कीजाय तो वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होजाताहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

सन्यासरोगकी चिकित्सामे शीघ्रता ।

दुर्गेऽम्भसियथामज्जद्भाजनन्त्वरयाबुध ।
गृह्णीयात्तलमप्राप्ततथासंन्यासपीडितम् ॥ ४३ ॥

जैसे अथाह जलमें डूबते हुए पात्रको डूबजानेसे पहिले ही निकाल लिया जाय तब वह हाथ लग सकताहै नहीं तो फिर उसका हाथ आना कठिन होताहै । इसी प्रकार सन्यासरोगीका रोग भी जबतक जड न पकडलेवे तबतक उसकी चिकित्सा करनेसे वह अच्छा हो सकता है । नहीं तो उसका बचना भी कठिन है ॥ ४३ ॥

सन्यासरोगमे चिकित्सा ।

अञ्जनान्यवपीडाश्चधूम प्रधमनानिच । सूचीभिस्तोदनशस्त्रे दाह पीडानखान्तरे ॥ ४४ ॥ लुञ्चनकेशलोम्नाचदन्तैर्दंशनमेवच । आत्मगुप्तावघर्षश्चहितास्तस्यावबोधने ॥ ४५ ॥

अब सन्यासरोगकी चिकित्सा कहतेहैं । सन्यास रोगमे होश लानेके लिये अंजन और पीडन, नस्य, धूम्रप्रयोग प्रधमन, नस्य, सूई चुभाना, शस्त्रसे दागदेना, नखोंका पीडन करना, बालोंको खींचना, दांतोंसे काटना, कौंचकी फली लगाना आदि उपाय करने चाहिये । ऐसा करनेसे सन्यास छूटकर चैतन्यता लाभ होसकती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

चेतकरानेके अन्योपाय ।

समूर्च्छितानितीक्ष्णानिमद्यानिविविधानिच । प्रभूतकटुतिक्तानितस्यास्येगालयेन्मुहु ॥ ४६ ॥ मातुलुङ्गरसंतद्वन्महौषधसमायुतम् । तद्वत्सौवीरकदद्याद्युक्तमद्याम्लकाञ्जिके ॥४७॥ हिङ्गूपणसमायुक्तयावत्सज्ञाप्रबोधनात् । प्रबुद्धसज्ञमन्नैश्चलघुभिस्तमुपाचरेत् ॥ ४८ ॥ विस्मापनै स्मारणैश्चप्रियश्रुतिभिरेवच । पटुभिर्गीतवादित्रशब्दैश्चित्रैश्चदर्शनै ॥ ४९ ॥ स्रसनोल्लेखनैर्धूमैरञ्जनै कवलग्रहै । शोणितस्यावसेकैश्चव्यायामोद्धर्पणैस्तथा ॥ ५० ॥

बेहोश मनुष्यको जब तक होश न आवे तब तक उसके मुख पर अनेक तरहके समूर्च्छित और तीक्ष्ण मद्य तथा अत्यन्त चरपरे रसयुक्त पतले पदार्थोंसे छींटे देना या

गौ, घोडेसे घोडा, उत्पन्न होतेहैं वैसे ही मेह आदि विकार भी पितासे ही उत्पन्न होतेहैं इसलिये पुरुषकी उत्पत्तिमें और रोगकी उत्पत्तिमें भी माता पिताहीको कारण मानना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

भद्रकाप्यका मत ।

भद्रकाप्यस्तुनेत्याहनह्यन्धोऽन्धात्प्रजायते । मातापित्रोश्चतेपूर्वमुत्पत्तिर्नोपपद्यते ॥ १६ ॥ कर्म्मजस्तुमतोजन्तु कर्म्मजास्तस्यचामया । नह्यृतेकर्मणोजन्मरोगाणांपुरुषस्यच ॥ १७ ॥

यह सुनकर भद्रकाप्य कहने लगे कि ऐसा नहीं होता । हम देखतेहैं कि अंधेकी सन्तान कभी अंधी नहीं होती इसलिये माता पिता पुरुष और रोगकी उत्पत्तिके कारण हैं यह नहीं होसकता। सो हमारे मतमें तो पुरुष और व्याधियां कर्मसे उत्पन्न होतीहैं। कर्मके विना पुरुषका जन्म एवम् रोगोंकी उत्पत्ति होही नहीं सकती ॥ १६ ॥ १७ ॥

भरद्वाजका मत ।

भरद्वाजस्तुनेत्याहकर्तापूर्वंहिकर्मणः । दृष्टंनचाकृतकर्मयस्यस्यात्पुरुषः फलम् ॥ १८ ॥ भावहेतु स्वभावस्तुव्याधीनांपुरुषस्यच । खरद्रवचलोष्णत्वतेजोऽन्तानांयथैवहि ॥ १९ ॥

इसके उपरान्त भरद्वाज कहनेलगे इस तरह नहीं होता क्योंकि कर्म बिचारा स्वयम् उत्पन्न होनेकी ताकत ही नहीं रखता, वह कर्ताके आधीन है । जब कर्म किया ही नहीं गया तो वह पुरुषकी उत्पत्ति और रोगका उत्पत्तिरूपी फल कैसे दे सकताहै इसलिये कर्म पुरुष और रोगोंका कारण कभी नहीं होसकता । पुरुष और रोगोंकी उत्पत्तिका कारण तो स्वभावको ही मानना चाहिये । जैसे-पंच महाभूतोंका खरत्व, द्रवत्व, चरत्व, उष्णत्व प्रकाशत्व, यह धर्म स्वभावसे ही उत्पन्न होताहै इसी प्रकार पुरुषका जन्म और रोगकी उत्पत्ति भी स्वाभाविक धर्म है ॥ १८ ॥ १९ ॥

काङ्कायनका मत ।

काङ्कायनस्तुनेत्याहनह्यारम्भफलंभवेत् । भवेत्स्वभावाद्भावानामसिद्धि सिद्धिरेववा ॥ २० ॥ स्रष्टात्वमितसङ्कल्पोब्रह्मापत्यंप्रजापति । चेतनाचेतनस्यास्यजगतः सुखदुःखयो ॥ २१ ॥

यह सुनकर काङ्कायन ऋषि कहने लगे यह भी नहीं होसकता क्योंकि फल आरम्भके विना नहीं होसकता । हम देखतेहैं कर्मका फल धर्म नहीं होता । यदि आप

कहे कि स्वभावसे ही जन्मादिकोंकी सिद्धि होती है या असिद्धि होतीहै यह हम नहीं देखते । क्योंकि रचनेवाला संकल्पविशिष्ट प्रजापतिही पुरुष और उसके सुख दुःखका कारण है । यदि ऐसा न होता तो विना किसीको कर्ता माने स्वभावाधीन जगत् नियमबद्ध नहीं होता । जगत्मे नियम है, नियम नियन्ताके अधीन होताहै सो वह नियन्ता प्रजापति जगत्का कर्ता ही पुरुषके जन्म और सुख दुःखोंका कारण है ॥ २० ॥ २१ ॥

भिक्षुआत्रेयका मत ।

तथेतिभिक्षुरात्रेयोनह्यपत्यप्रजापतिः । प्रजाहितैषीसततदुःखै-र्युञ्ज्यादसाधुवत् ॥ २२ ॥ कालजस्त्वेवपुरुषःकालजास्तस्य चामयाः । जगत्कालवशंसर्वंकालः सर्वत्रकारणम् ॥ २३ ॥

यह सुनकर भिक्षु आत्रेय कहने लगे कि ऐसा नहीं होता क्योंकि प्रजाका हित चाहनेवाला और उत्पन्न करनेवाला प्रजापति ऐसा द्वेषी नहीं होसकता जो अपनी रचीहुई प्रजाको दुःखित करे इसलिये यह कहना चाहिये कि पुरुष कालसे उत्पन्न होताहै एवम् व्याधियां भी कालहीसे उत्पन्न होती हैं । और सम्पूर्ण जगत् कालके ही अधीन है सो हमारे मतमे काल ही सबका कारण है ॥ २२ ॥ २३ ॥

पुनर्वसुका वचन ।

तथर्षीणाविवदतामुवाचेदंपुनर्वसुः । मैववोचततत्त्वंहिदुष्प्रा-पंपक्षसंश्रयात् ॥ २४ ॥ वादान्सप्रतिवादान्हिवदन्तोनिश्चिता-निव । पक्षान्तंनैवगच्छन्तितिलपीडकवद्गतौ ॥ २५ ॥ मुक्त्वै-नवादसंघट्टमध्यात्ममनुचिन्त्यताम् । नाविधूतेतमःस्कन्धे ज्ञेयेज्ञानंप्रवर्त्तते ॥ २६ ॥ येषामेवहिभावानांसम्पत्संजनये-न्नरम् । तेषामेवविपद्व्याधीन्विविधान्समुदीरयेत् ॥ २७ ॥

इस प्रकार ऋषियोंके विवादको सुनकर पुनर्वसु आत्रेयजी कहनेलगे इस प्रकार झगडा क्यों करतेहो ? क्योंकि पक्षपात करनेसे तत्त्वका निश्चय नहीं होसकता । जब एक प्रश्न करताहै दूसरा उत्तर देताहै तीसरा अपना और ही पक्ष लेलेताहै ऐसा होनेसे वाद प्रतिवाद पडता चला जाताहै और तेली तिलके कोल्हूकी लकडी घमातारहै दूसरा प्रकार अपनी सीमाके बाहर नहीं जासकती ऐसे ही पक्षपातपूर्वक झगडाने भी यथार्थका निश्चय नहीं होता जब तक अन्धकार दूर नहीं होता तब तक ज्ञानमार्ग

पदार्थ पर दृष्टि नहीं पहुच सकती। यथार्थ बात तो यह है कि भिन भावासे मनुष्याको यथोचित संयोग होनेसे सुख संपत्ति उत्पन्न होतीहै इन्हींके अनुचित व्यवहारसे अनेक प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति होतीहै ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

वामकका प्रश्न ।

अथात्रेयस्यभगवतोवचनमनुनिशम्यपुनरेववामकःकाशिपतिरुवाचभगवन्तमात्रेयम्। भगवन्सम्पन्निमित्तजस्यपुरुषस्यविपन्निमित्तजानाचरोगाणांकिमभिवृद्धिकारणमिति । तमुवाचभगवानात्रेयोहिताहारोपयोग एकएवपुरुषस्यअभिवृद्धिकरो भवतिअहिताहारोपयोग पुनर्व्याधीनानिमित्तमिति ॥ २८ ॥

इस प्रकार भगवान् आत्रेयके कथनको सुनकर काशीपति वामकनामा ऋषि कहने लगे कि हे भगवन् ! शुभ भावोंके संयोगसे पुरुषकी उत्पत्ति और अशुभ भावोंके संयोगसे व्याधिकी उत्पत्ति होनेका कारण क्या है ? यह सुनकर आत्रेय भगवान् कहनेलगे कि हितकर आहार विहारके सेवनसे पुरुषोंके सुखकी वृद्धि होती है इसी प्रकार अहितकारक आहारादिकके सेवनसे रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ २८ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एववादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच । कथमिहभगवन्हिताहितानामाहारजातानालक्षणमनपवादमभिजानीयाहितसमाख्यातानाचैवहारजातानामहितसमाख्यातानाञ्चमात्राकालक्रियाभूमिदेहदोषपुरुषावस्थान्तरेषुविपरीतकारित्वमुपलभामहे इति ॥ २९ ॥

इस प्रकार कथन करतेहुए आत्रेय भगवान्के प्रति अग्निवेश बोले कि हे भगवन् ! हितकर और अहितकर आहारादिकोंका स्पष्ट लक्षण किस प्रकार जानना चाहिये । हित करनेवाले आहारों और अहित करनेवाले आहारकी मात्रा, काल, क्रिया, देश, देह, दोष और पुरुषकी अवस्था और पुरुषके लिये विपरीतकारी पदार्थोंको हम किस प्रकार जान सकतेहैं सो आप कृपा कर कहिये ॥ २९ ॥

आत्रेयका उत्तर ।

तमुवाचभगवानात्रेयः । यदाहारजातमग्निवेश ! समाश्चैवशरीरधातून्प्रकृतौस्थापयतिविषमाश्चसमीकरोतिइत्येतद्धितंविद्धिविपरीतमहितमितिएतद्धिताहितलक्षणमनपवादंभवति॥३०॥

यह सुनकर आत्रेयजी कहनेलगे कि, हे अग्निवेश ! सब प्रकारके आहार शरीरके सात्म्य (अनुकूल) होनेसे शारीरिक धातुओंको यथार्थ रखनाहि और विषम हुए धातुओंको भी समान अवस्थामें कर देता है । तात्पर्य यह हुआ कि जिस आहारके सेवनसे शरीरके सब धातु ठीक रहें उसको हितकारक आहार जानना, इससे विपरीत अहितकारी समझना चाहिये । बस हितकर और अहितकर आहारके यह निर्विवाद लक्षण समझो ॥ ३० ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एवंवादिनश्चभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच । भगवन् ! नन्वे-
तदेवमुपदिष्टभूयिष्टकल्पा सर्वेभिषजोविज्ञास्यन्ति ॥ ३१ ॥

अग्निवेश फिर आत्रेय भगवान्‌से कहने लगे कि संक्षेपमें कहे हुए आपके इस उपदेशको सब वैद्य नहीं समझ सकते इसलिये कृपया विस्तारपूर्वक कथन कीजिये ॥ ३१ ॥

आत्रेयका उत्तर ।

तमुवाचभगवानात्रेय । येषाविदितमाहारतत्त्वमग्निवेश !
गुणतोद्रव्यत कर्म्मत.सर्वावयवतोमात्रादयोभावास्तएनदेव-
मुपदिष्टविज्ञातुमुत्सहन्ते । यथातुखल्वेतदुपदिष्टभूयिष्टकल्पा.
सर्वेभिषजोविज्ञास्यन्तितथैतदुपदेक्ष्याम । मात्रादीन्भावानु-
दाहरन्त तेषाहिबहुविधविकल्पाभवन्ति । आहारविधिविशे-
षास्तुखलुलक्षणतश्चावयवतश्चानुव्याख्यास्याम. ॥ ३२ ॥

तब आत्रेय भगवान् अग्निवेशसे कहने लगे कि गुणसे, द्रव्यसे, कर्मसे और संपूर्ण अवयवोंसे मात्रादि भावके भेदसे आहार तत्त्वको जो वैद्य जानतेहि उनके लिये यह संक्षेपसे कियाहुआ उपदेश बोधगम्य होसकताहै अर्थात् समझसकतेहैं किन्तु साधारण बुद्धिके मनुष्य इस विचारको नहीं समझ सकते इसलिये साधारण वैद्योंको बोध होनेके लिये मात्रादिकोंका उपदेश करतेहैं । मात्रादि भावोंके अनेक प्रकारसे कल्पना है उनमें जो विशेष २ आहार विधिके लक्षण और विभाग हैं उनका कथन करतेहै सो श्रवणकरो ॥ ३२ ॥

आहारोंके भेदवर्णन ।

आहारस्तम् । आहारस्यैकविधमर्थाभेदात्सपुनर्द्वियोनि स्थाव-
रजङ्गमात्मकत्वात् । द्विविध प्रभावोहिताहितोदर्कविशेषात्-

तुर्विधोपयोग पानाशनभक्ष्यलेह्योपयोगात् ।षडास्वादोरसभेदत षड्विधत्वाद्विंशतिगुणोगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षमन्दतीक्ष्णास्थिरसरमृदुकठिनविशदपिच्छिलश्लक्ष्णखरसूक्ष्मस्थूलसान्द्रद्रवानुगमनात् ॥ ३३ ॥

यह ऐसा है कि अर्थमानस भेद न होनेसे सब प्रकारके आहारोंमें ही आहारत्व है। स्थावर और जगम भेदसे आहारकी उत्पत्ति दो प्रकारकी है। हितकर और अहितकर इन दो भेदोंसे आहार दो प्रकारका है। पान, भोजन, चर्वण और लेहन इन भेदोंसे आहारका सेवन चार प्रकारका है। रसभेदसे आहारका स्वाद ६ प्रकारका है । गुरु, लघु, शीतल, उष्ण, चिकना, रूक्ष, मद तीक्ष्ण, स्थिर, सर, मृदु, कठिन, विषद, पिच्छिल, श्लक्ष्ण, खर, सूक्ष्म, स्थूल, घन और द्रव इन भेदोंसे आहारके गुण बीस प्रकारके हैं ॥ ३३ ॥

अपरिसङ्ख्येयविकल्पोद्रव्यसयोगकरणबाहुल्यात्तस्ययेयेविकारावयवाभूयिष्ठमुपयुज्यन्ते।भूयिष्ठकल्पनाश्चमनुष्याणाप्रकृत्येवहिततमाश्चाहिततमाश्चतास्तान्यथानदनुव्याख्यास्याम ॥ ३४ ॥

द्रव्योंके सयोगवशसे आहारकी कल्पना असख्य प्रकारकी है। मनुष्योंके यह आहार असख्य प्रकारके होने हुए हितकर और अहितकर दो प्रकारोंमें विभक्त है। उनका अब वर्णन करतेहैं ॥ ३४ ॥

श्रेष्ठहितकारी द्रव्योंका वर्णन ।

तद्यथालोहितशालयःशूकधान्यानांपथ्यतमत्वेश्रेष्ठतमा । मुद्गाःशमीधान्यानाम्, आन्तरीक्ष्यमुदकाना सैन्धवलवणाना, जीवन्तीशाकशाकानाम्। ऐणेयमृगमासाना, लाव पक्षिणा, गोधाविलेशयाना रोहितोमत्स्याना, गव्यसर्पि सर्पिषा, गोक्षीरक्षीराणां तिलतैलस्थावरजानानांस्नेहाना, वराहवसाआनूपमृगवसानाचुलुकीवसामत्स्यवसाना हसवसाजलचरविहङ्गवसाना, कुक्कुटवसाविष्किरशकुनिवसानामाजमेद शाखादमेदसा, शृङ्गवेरकन्दानां मृद्वीकाफलाना शर्कराइक्षुविकाराणाम् । इतिप्रकृत्यैवहिततमानामाहारविकाराणा प्राधान्यतोद्रव्याणिव्याख्यातानि ॥३५॥

यह इस प्रकार है लाल शालिचावल सब शूकधान्योंमें सर्वश्रेष्ठ पथ्य गिने जाते हैं । इसी प्रकार सब प्रकारके शमीधान्योंमें मूंग सर्वश्रेष्ठ है । जलोंमें आकाशका जल सर्वश्रेष्ठ है । नमकोंमें सेंधा नमक श्रेष्ठ है शाकोंमें जीवन्तीका शाक श्रेष्ठ है । मृगमांसोंमें काले हिरणका मांस श्रेष्ठ है । पक्षियोंमें लवा, बिलेशयोंमें गोह, मछलियोंमें रोहित, घृतोंमें गोघृत, दूधोंमें गोदूध, स्थावर स्नेहोंमें तिलतैल, अनूपचारी जीवोंकी चर्बीमें सूअरकी चर्बी, मछलियोंकी चर्बीमें चुलुकीनामक मछलीकी चर्बी, जलचारी पक्षियोंकी चर्बीमें हंस या बत्तककी चर्बी सर्वोत्तम मानी जाती है । विष्किर पक्षियोंकी चर्बीमें मुर्गेकी चर्बी, शाखापत्र खानेवालोंमें बकरेकी चर्बी उत्तम है । मूलोंमें अदरक, फलोंमें मुनक्का, ईखके विकारोंमें मिश्री सर्वोत्तम कही जातीहै । इस प्रकार स्वभावसे ही हितकारी प्रधान २ आहारोंका वर्णन कियागया ॥ ३५ ॥

अहिततमानामप्युपदेक्ष्यामः । यवकः शूकधान्यानामपथ्यत्वेप्र-
कृष्टतमाभवन्ति । माषाःशमीधान्यानां, वर्षानादेयमुदकानां-
मौषरलवणानां, सर्षपशाकशाकानां, गोमांसंमृगमांसानां,
कालकपोत पक्षिणां, भेकोबिलेशयानां, चिलिचिमोमत्स्यानां-
माविकंसर्पिः सर्पिषामाविकंक्षीरंक्षीराणां, कुसुम्भस्नेहः स्नेहानां
स्थावराणां,महिषवसाआनूपमृगवसानां,कुम्भीरवसामत्स्यव-
सानां, काकमद्गुवसाजलचरविहगवसानां, मूलकं कन्दानां,
चटकवसाविष्किरशकुनिवसानां, हस्तिमेदः शाखादमे-
दसां, लिकुचफलानां, फाणितमिक्षुविकाराणामितिप्रकृत्यै-
वअहिततमानामाहारविकाराणांप्रकृष्टतमानिद्रव्याणिव्या
ख्यातानि ॥ ३६ ॥

अब अहितकारक द्रव्योंका वर्णन करते हैं । शूकधान्योंमें जव, शमीधान्योंमें उडद, जलोंमें वर्षाकालकी नदीका जल, नमकोंमें खारी नमक, शाकोंमें सरसोंका साग अहितकर और कुपथ्य होता है । पशुओंके मांसोंमें गोमांस, पक्षियोंमें कालकपोत, बिलेशयोंमें मेंडक, मछलियोंमें चिलचिम मछली, घृतोंमें भेडका घृत, दूधोंमें भेडका दूध, स्थावर स्नेहोंमें कसुम्भका तेल अहितकारी होता है । अनूपचारी जीवोंकी चर्बीमें भैंसेकी चर्बी, मछलियोंकी चर्बीमें कुम्भीरकी चर्बी, जलचर जीवोंमें जलकौआकी चर्बी अहितकारी होती है । विष्किर पक्षियोंमें चिडियाकी चर्बी, शाखापत्र खानेवाले

जानवरोंमें हाथीकी चर्बी निंदनीय होती है। कद्रोम पकीहुई मूली, फलोंमें कमरख, ईखके पदार्थोंमें खाडित अहितकारी होताहै। इस प्रकार स्वभावसे ही अहितकारी द्रव्योंका वर्णन किया गया है ॥ ३६ ॥

हिताहितावयवानामाहारविकाराणाम्, अतोभूय कर्मौपधाना प्राधान्यत ॥ सानुबन्धानिद्रव्याणिअनुव्याख्यास्याम । तद्यथा—अन्नवृत्तिकराणाश्रेष्ठम्। उदकमाश्वासकराणां, सुरा श्रमहराणा क्षीरंजीवनीयानां, मासबृंहणीयानां,रसस्तर्पणीयाना लवणमन्नद्रव्यरुचिकराणामम्लहृद्यानां कुक्कुटोबल्याना नक्ररेतोवृष्याणां, मधुश्लेष्मपित्तप्रशमनाना, सर्पिर्वातपित्तशमनाना, तैलवातश्लेष्मप्रशमनानां वमनश्लेष्महराणा,विरेचनपित्तहराण, वस्तिर्वातहराणा स्वेदोमार्दवकराणा व्यायाम स्थैर्यकाराणा, क्षार पुंस्त्वोपघातिना, तिन्दुकमन्नद्रव्यरुचिकराणामामकपित्थमकण्ठ्यानामाविकसर्पिरहृद्यानामजाक्षीरशोषघ्नस्तन्यसात्म्यरक्तसांग्राहिकरक्तपित्तप्रशमनानामाविक्षीरश्लेष्मपित्तोपचयकराणा,माहिषीक्षीरस्वप्नजननाना मन्दकदध्यभिष्यन्दकराणा,गवेधुकान्नकर्पणीयानामुद्दालकान्नविरूक्षणीयानामिक्षुर्मूत्रजनना यवा पुरीषजननाना. जाम्बववातजननाना. शष्कुल्य श्लेष्मापित्तजननाना, कुलत्थाअम्लपित्तजननाना,माषा श्लेष्मपित्तजननानां, मदनफलवमनास्थापनानुवासनोपयोगिना, त्रिवृत्सुखविरेचनाना, चतुरङ्गुलमृदुविरेचनाना, स्नुक्पयस्तीक्ष्णविरेचनाना, प्रत्यक्पुष्पीशिरोविरेचनाना विडङ्गक्रिमिघ्नाना,शिरीषोविषघ्नाना, खदिर कुष्ठघ्नाना रास्नावातहराणामामलकंवय स्थापनानां, हरीतकीपथ्यानामेरण्डमूलवृष्यवातहराणा,पिप्पलीमूलदीपनीयपाचनीयानाहृप्रशमनाना, चित्रकमूलदीपनीयगुदशूलशोथहराणा पुष्करमूलंहिक्काश्वासकासपार्श्वशूलहराणा,मुस्तसंग्रा–

कदीपनीयपाचनीयानामुदीच्यनिर्वापणीयदीपनीयच्छर्द्यतीसा-
रहराणां, कट्वङ्गसंग्राहकदीपनीयपाचनीयानाम्। अनन्तासंग्रा-
हिकदीपनीयरक्तपित्तप्रशमनानाममृतासंग्राहिकवातहरदीप
नीयश्लेष्मशोणितविबन्धप्रशमनानां, बिल्वंसंग्राहिकदीपनी-
यवातकफशमनानामतिविषादीपनीयपाचनीयसंग्राहिकसर्व-
दोषहराणामुत्पलकुमुदपद्मकिंजल्कः संग्राहकरक्तपित्तप्रशमना
नां, दुरालभापित्तश्लेष्मोपशोषणानां,गन्धप्रियङ्गुः शोणित-
पित्तातियोगप्रशमनानाम् ॥ ३७ ॥

अब हितकर और अहितकर आहारका वर्णन करतेहुए वस्ति आदि कर्म और औषधोंमें उत्तम तथा निकृष्ट आदि द्रव्योंका वर्णन करतेहैं, जीवन रखनेवाले पदार्थोंमें अन्न, तृषानाशक पदार्थोंमें जल परिश्रम हरनेवाले पदार्थोंमें मद्य, जीवनदायक पदार्थोंमें दूध, पुष्ट करनेवाले पदार्थोंमें मांस, रुचिकारक पदार्थोंमें नमक, हृदयको प्रिय पदार्थोंमें खट्टा सर्वश्रेष्ठ है। बलकारी पदार्थोंमें मुर्गेका मांस, वीर्यवर्द्धक पदार्थोंमें कुम्भीर (मगरमच्छ) का वीर्य, कफ पित्त नाशकोंमें शहद, वातपित्तहरोंमें घृत, वात कफ नाशकोंमें तेल, कफनाशक कर्मोंमें वमन, पित्तनाशक कर्मोंमें विरेचन, वातनाशक कर्मोंमें बस्तिकर्म, शरीरको नम्र करनेवालोंमें स्वेद, दृढ करनेवालोंमें कसरत, पुंस्त्व नष्ट करनेवालोंमें क्षार, अन्न पर अरुचि करनेवालोंमें तिन्दुकफल सबमें प्रधान माने जाते हैं। स्वर बिगाडनेवालोंमें कैथके कच्चे फल, हृदयको अप्रिय द्रव्योंमें भेडका घृत प्रधान माना जाता है। शोषके हरनेवाले, स्तनोंमें दूध करनेवाले, रक्तविकार और रक्त पित्तके नाशकोंमें बकरीका दूध सर्वश्रेष्ठ है। पित्त-कफ-वर्द्धकोंमें भेडका दूध निद्राजनक द्रव्योंमें भैंसका दूध अभिष्यन्दकारी द्रव्योंमें मन्दक दही, कृशताकारक द्रव्योंमें गवेधुक धान्य, रूक्षताकारक द्रव्योंमें उद्दालक धान्य, मूत्रवर्द्धक पदार्थोंमें गन्ना, मल वर्द्धक पदार्थोंमें जव, वायु वर्द्धक पदार्थोंमें जामुन कफ पित्त वर्द्धक पदार्थोंमें तिलोंकी सर, अम्लपित्तकारक पदार्थोंमें कुल्थी, पित्त कफ-कारकोंमें उडद उडद, वमन, आस्थापन और अनुवासन कर्ममें मैनफल प्रधान माना जाता है। सुखसे विरेचन करनेवालोंमें निशोथकी जड, मृदु विरेचकोंमें अमलतास, तीक्ष्ण विरेचकोंमें थोहरका दूध, शिरोविरेचन करनेवालोंमें अपामार्ग बीज, कृमिनाशकोंमें वायबिडंग, विषनाशकोंमें सिरसके बीज कुष्ठ नाश करनेवालोंमें कत्था, वातनाश

कोंमें रसना, वायुके स्थापन करनेवालोंमें आमला, सब प्रकारके पथ्योंमें हरड़ वृष्यकर्त्ता और वायुके हरनेवालोंमें एरंडकी जड़, दीपन, पाचन कर्त्ताओंमें तथा अनाह-रोग-नाशकोंमें पिपलामूल, दीपनीय और गुदाके शूल तथा शोथनाशकोंमें चित्तेकी छाल, संग्राहक और दीपन तथा पाचन द्रव्यमें नागरमोथा, हिचकी श्वास, खांसी तथा पार्श्वशूलनाशक द्रव्यमें पोहकर मूल, भस्मकनिवारक, दीपनीय, पाचन और वमनके हरनेवाले एवम् अतिसारके नष्ट करनेवालोंमें अनन्तमूल, संग्राहक वात कनाशक दीपन कफनाशक कफरक्तनाशक विषनाशक द्रव्यमें गिलोह (गुरच), संग्राहक दीपन वातकफनाशक द्रव्यमें कच्चा बेलफल, दीपनीय पाचनीय संग्राहक सर्वदोषहारक द्रव्यमें अतीस, संग्राहक रक्तपित्तनाशक द्रव्यमें कमलगट्टा नीलोत्पल और कमलकेशर सर्वोत्तम मानी जातीहै। पित्तकफनाशकोंमें जवासा सर्वश्रेष्ठ है। रक्तपित्तके शमनकरनेवालोंमें दुरालभा (जमा) पित्त और रक्तके उपशोषणकरनेवालोंमें गम्भारीफल सर्वश्रेष्ठ माना जाताहै ॥ ३७ ॥

कुटजत्वक्श्लेष्मपित्तरक्तसंग्राहकोपशोषणानां, काश्मर्य्यफलरक्तसंग्राहकरक्तपित्तप्रशमनानां, पृश्निपर्णीसंग्राहकवातहरदीपनीयवृष्याणां, विदारिगन्धावृष्यसर्वदोषहराणां, बला संग्राहकबल्यवातहराणां गोक्षुरकोमूत्रकृच्छ्रानिलहराणां, हिङ्गुनिर्य्यासःछेदनीयदीपनीयभेदनीयानुलोमिकवातकफप्रशमनानामम्लवेतसोभेदनीयदीपनीयानुलोमिकवातश्लेष्मप्रशमनानां, यावशूकः स्रंसनीयपाचनीयार्शोघ्नानां,तक्राभ्यासोग्रहणीदोषार्शोघृतव्यापत्प्रशमनानां, क्रव्यादमांसाभ्यासोग्रहणीदोषशोषार्शोघ्नानां, घृतक्षीराभ्यासोरसायनानां, समघृतसक्तुप्राशाभ्यासोवृष्योदावर्त्तहराणां, तैलगण्डूषाभ्यासो दन्तबलरुचिकराणां, चन्दनोदुम्बरदाहनिर्वापणानां रास्नागुरुणीशीतापनयनप्रलेपनानांलामज्जकोशीरंदाहत्वग्दोषस्वेदापनयनप्रलेपनानां, कुष्ठंवातहराभ्यङ्गोपनाहोपयोगिनां, मधुकं चक्षुष्यवृष्यकेश्यकण्ठ्यवर्ण्यवर्ण्यविरजनीयरोपणीयानां, वायुः प्राणसंज्ञाप्रधानहेतूनामग्निरामस्तम्भशीतशूलोद्वेपनप्रशमनानाम् ॥ ३८ ॥

कफ पित्त और रक्तको संग्रहण तथा उपशोषण करनेवाले द्रव्योंमें कुटजकी छाल, संग्राहक और रक्तपित्तनाशक द्रव्याम काश्मरीके फल, संग्राहक वातनाशक और वृष्याम पृश्निपर्णी, वृष्य और दोषनाशक द्रव्याम विदारीकन्द, संग्राही बलकारक और वातनाशक द्रव्योंम खरेटी, मूत्रकृच्छ्र और वातनाशक द्रव्याम गोखरू, छेदनीय दीपनीय अनुलोमकर्ता एवम वातकफनाशक द्रव्याम हींग, भेदन-अनुलोमन-और दीपन-कर्त्ता एवम वात कफ हरणकर्त्ता द्रव्योंम अमलबेत, स्रंसनकर्ता पाचनकर्त्ता अर्शहर्ता द्रव्यामें जवाखार, ग्रहणीविकारनाशक अर्शोघ्न अतिघृतपान जन्य विकार नाशक द्रव्याम तक्र, ग्रहणीदोष शोष और अर्शनाशक मांसोंमें मांसभक्षी जीवोंका मांस, रसायन पदार्थोंम दूध और घीका अभ्यास, वृष्य तथा उदावर्तनाशक द्रव्याम परिमाणसे घृत और सत्तुओंका सेवन, दांतोंको दृढ करनेवालोंम और रुचिकारक पदार्थोंमें तेलको मुखमें धारणकर कुल्ले करना, दाहनाशक लेपोंम चन्दनका लेप तथा गूलर, शीतनाशक लेपनोंमें रासना और अगर, दाह त्वग्दोष और स्वेदके हरनेवाले लेपोंम खस, वातनाशक अभ्यंगों और प्रलेपोंम कूठ, नेत्रोंको हितकारी वर्णवर्द्धक केश कण्ठ वर्ण इनको हितकर्त्ता एवम विरजनीय और रोपणकर्त्ता द्रव्योंम मुलहठी, घर और प्राणोंम चैतन्यता प्राप्त करनेवाले पदार्थोंम उत्तम वायु, आम, स्तम्भ शीतता शूल, कम्पनाशक द्रव्याम अग्नि सर्वश्रेष्ठ तथा सबोंमें प्रधान माना जाताहै ॥ ३८ ॥

जलस्तम्भनीयाना, मृद्भृष्टलोष्टनिर्वापितमुदकतृष्णातियोग-प्रशमनानामतिमात्राशनमामप्रदोषहेतूना, यथाग्न्यभ्यवहरणोऽग्निसन्धुक्षणाना, यथासात्म्यचेष्टाभ्यवहार सेव्याना, कालभोजनमारोग्यकराणा, वेगसन्धारणमनारोग्यकराणा, तृप्तिराहारगुणाना, मद्यसौमनस्यजनननाना,मद्याक्षेपोधीधृतिस्मृतिहराणा गुरुभोजनदुर्विपाकानामेकाशनभोजनसुखपरिणामकराणा, स्त्रीपुअतिप्रसङ्ग शोषकराणा, शुक्रवेगनिग्रह पाण्ड्यकराणा, परायतनमक्षमश्रद्धाजनननानामनशनमायुषोह्रासकराणा, प्रमिनाशनकर्षणीयानामजीर्णाध्यशनग्रहणीदूषणाना विषमाशनमग्निवैषम्यकराणा, विरुद्धवीर्याशननिन्दितव्याधिकराणा,प्रशम पथ्यानामायाम सर्वापथ्याना, मिथ्या

योगोव्याधिकराणां, रजस्वलाभिगमनमलक्ष्मीकराणां, ब्रह्म चर्य्यमायुष्यकराणां, सङ्कल्पोवृष्याणां, दौर्मनस्यमवृष्याणां मयथाबलमारम्भःप्राणोपरोधिनां,विषादोरोगवर्द्धनानाम् ॥३९॥

स्तम्भनीय द्रव्योंमे जल अति प्यासनाशक द्रव्योंमे तत्र मट्टीके ढेलेमें बुझाया जल। आमदोषकारक पदार्थोंमे बहुत भोजन, अग्निवर्द्धक आहारोंमें यथाग्नि भोजन, सेवनयोग्य कालोमे अभ्यासके अनुरूप कार्य, आरोग्यकर्त्ता उपायोमे यथोचित भोजन, व्याधिकारकोमे मलमूत्रादिकोंका वेग रोकना,आहारके गुणोंमें तृप्ति, मस्त करनेमे मद्य, बुद्धि धारणशक्ति स्मृति इनके नष्टकरनेवालोंमे मद्यका विकार, कठिनतासे पचनेवालोमे गुरु भोजन भलीप्रकार पचनेवालोमे एकसमय भोजन राजयक्ष्माका रकोंमें मैथुन, नपुंसककर्त्ताओमे शुक्रके वेगको रोकना आगे घृणा करानेवालोमे खडा जुठा भोजन आयु घटानेवालोमे उपवास कृशता करनेवालोमे यथासमय भोजन न मिलना, ग्रहणीरोगकर्त्ता पदार्थोंमे अजीर्णमें भोजन अग्निविषमकारकोमे विषमभोजन, कुष्ठ आदिक निंदित व्याधि करनेवालोमे मछली दूध आदि विरुद्ध द्रव्योंका एकसमय सेवन करना, हितकर्त्ता पदार्थोंमे शान्ति,सब प्रकारके पुरुषोंमें शक्तिसे अधिक परिश्रम रोगकारकोमे आहारविहारका अनुचित योग, अलक्ष्मी कारकोमे रजस्वलागमन, आयुवर्द्धकोंमे ब्रह्मचर्यपालन, पुरुषार्थकारकोंमें दृढारम्भ, अवृष्योंमे मनकी स्फूर्ति न होना, प्राणहरनेवालोंमे सामर्थ्यसे अधिक कार्य करना, रोगबढानेवालोमे विषाद प्रधान माना जाता है ॥ ३९ ॥

स्नानंश्रमहराणां हर्षःप्रीणनानां, शोकःशोषणानां, निर्वृत्तिः पुष्टिकराणामतिस्वप्नस्तन्द्राकराणां, सर्वरसाभ्यासोबलकराणामेकरसाभ्यासोदौर्बल्यकराणां, गर्भशल्यमनाहार्य्याणाम जीर्णमुद्धार्य्याणां, बालोमृदुभेषजीयानां, वृद्धोयाप्यानां, गर्भिणीतीक्ष्णौषधव्यायामवर्जनीयानां, सौमनस्यगर्भधारकाणां, सन्निपातोदुश्चिकित्स्यानामामोविषमचिकित्स्यानां, ज्वरोरोगाणां, कुष्ठंदीर्घरोगाणां राजयक्ष्मारोगसमूहानां, प्रमेहोऽनुषङ्गिणाम् ॥ ४० ॥

परिश्रम हरनेवालोमे स्नान प्रीति बढानेवालोमे हर्ष, शोषकारकोंमें एक शोक, पुष्टिकारकोंमे सन्तोष निद्राकारकोंमे पुष्टता, तन्द्राकारकोंमे निद्रा, बलकारको-

रसोंका अभ्यास, दुर्बल कर्ता पदार्थोंमें एकही रसका सेवन, अनाकर्षणीयोंमें गर्भालय, वमनके योग्योंमें अजीर्ण, मृदु औषधोंसे चिकित्सा करनेयोग्योंमें बालक, याप्यसाध्योंमें वृद्धपुरुषोंके रोग, तीक्ष्ण औषधियोंमें व्यायाम पुरुष संगम इन सबमें वर्जनीयोंमें गर्भवती स्त्री, गर्भधारणमें मनकी प्रसन्नता, दुश्चिकित्स्योंमें सन्निपात, विरुद्ध चिकित्सामें आमचिकित्सा, रोगोंमें ज्वर, दीर्घरोगोंमें कुष्ठ, रोगसमूहोंमें राजयक्ष्मा, अनुपगी रोगोंमें राजयक्ष्मा प्रधान मानेजातेहैं ॥ ४० ॥

जलौकसोऽनुशस्त्राणां,बस्तिस्तन्त्राणां, हिमवानौषधिभूमीनां, मरुभूरारोग्यदेशानामनूपमहितदेशानां, निर्देशकारित्वमातुरगुणानां,भिषक्चिकित्साङ्गानां,नास्तिकोवर्ज्यानांलौल्यक्लेशकराणामनिर्देशकारित्वमरिष्टानामनिर्वेदआर्त्तलक्षणानां, योगोवैद्यगुणानां,विज्ञानमौषधीनां,शास्त्रसहितस्तर्कःसाधनानां,सम्प्रतिपत्तिःकालज्ञानप्रयोजनानामनुद्योगोव्यवसायकालातिपत्तिहेतूनां,दृष्टकर्मतानिःसंशयकराणामसमर्थताभयकराणां,तद्विद्यसम्भाषाबुद्धिवर्द्धनानामाचार्य्यः शास्त्राधिगमहेतूनामायुर्वेदोऽमृतानां सद्वचनमनुष्ठेयानामसम्बद्धवचनसग्रहणसर्वाहितानां, सर्वसन्यासः सुखानामिति ॥ ४१ ॥

उपशस्त्रोंमें जलौका पञ्चकर्मोंमें बस्ति, औषधियोंके योग्य भूमिमें हिमालय पर्वत, आरोग्यदेशोंमें मरुभूमि, औषधियोंमें सोमलता, अहितकारी देशोंमें अनूप देश, रोगीके गुणोंमें वैद्यकी आज्ञाका पालन, चिकित्साके चार पादोंमें वैद्य वर्जनीयोंमें नास्तिक, क्लेशकर्त्ताओंमें-लोभ, मृत्युके लक्षणोंमें-रोगीकी अवाध्यता आर्त्तके लक्षणोंमें-अस्थिरता, वैद्यके गुणोंमें उचित रीतिपर प्रयोग करना, नि:शङ्कपनकर्त्ताओंमें-वैद्य समूह, औषधियोंमें-विज्ञान साधनोंमें शास्त्रविहित युक्ति, कालज्ञानके प्रयोजनोंमें-उत्तमज्ञान, समयनाशक हेतुओंमें आलस्य, नि:सन्देहकारकोंमें दृष्टकर्मता (जानकारी), भयकारकोंमें असमर्थता, बुद्धिविवर्द्धकोंमें स्वाध्यायियोंसे शास्त्रार्थ करना, शास्त्रज्ञानके हेतुओंमें आचार्य, अमृतोंमें आयुर्वेद, करनेयोग्य कार्योंमें सत्यवचन बोलना सब प्रकारसे अहित करनेवालोंमें बिना विचारे वचन कहना, परमानन्दकारकोंमें सर्वत्याग प्रधान मानाहै ॥ ४१ ॥

भवन्तिचात्र ।

अग्र्याणांशतमुद्दिष्टंयद्द्विपञ्चाशदुत्तरम् । अलमेतद्विकाराणां
विघातायोपदिश्यते ॥ ४२ ॥ समानकारणायेऽर्थास्तेषांश्रेष्ठ
स्यलक्षणम् । ज्यायस्त्वंकार्य्यकारित्वेऽवरत्वंचाप्युदाहृतम् ॥ ४३ ॥

इस प्रकार १५२ प्रधान २ वार्त्ताओंका कथन किया गया है सो रोगशान्तिके लिये इन एकसौ बावन प्रधान बातोंका जानना ही बहुत है। इनमें समान कार्यकर्त्ता द्रव्योंमें श्रेष्ठके लक्षण और प्रधानता तथा कार्यकारिता और निकृष्टता कथन कर दीगई है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

वातपित्तकफेभ्यश्चयद्यत्प्रशमनेहितम् । प्राधान्यतश्चनिर्दिष्टंय-
द्व्याधिहरमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ एतन्निशम्यनिपुणश्चिकित्सांस
म्प्रयोजयेत् । एवंकुर्वन्सदावैद्योधर्मकामौसमश्नुते ॥ ४५ ॥
पथ्यंपथोऽनपेतंयद्यच्चोक्तंमनसःप्रियम् । यच्चाप्रियमपथ्यंचनि-
यतंतन्नलक्षयेत् ॥ ४६ ॥

वात, पित्त, कफकी शान्ति करनेवालोंमें हितकारी और प्रधान तथा रोगनाशक द्रव्योंका वर्णन किया गया है। बुद्धिमान वैद्यको यह सब विषय स्मरण रखकर चिकित्सा करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे वैद्य धर्म, अर्थ और कामको सर्व प्रकार प्राप्त होता है। जो पदार्थ पुरुषके लिये सात्म्य (उपयोगी) और मनको हितकारी कहे गये हैं उनको पथ्य समझना चाहिये। जो असात्म्य और कुपथ्य हैं उनकी ओर ध्यान भी देना नहीं चाहिये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

मात्राकालक्रियाभूमिदेहदोषगुणान्तरम् । प्राप्यतत्तद्धिदृश्य-
न्तेतेतेभावास्तथातथा ॥ ४७ ॥ तस्मात्स्वभावोनिर्दिष्टस्त-
थामात्रादिराश्रयः । तदपेक्ष्योभयंकर्मप्रयोज्यंसिद्धिमिच्छता ॥ ४८ ॥

मात्रा, काल, क्रिया, देश, देह, दोष और गुण आदिकोंके अन्तर होनेसे अहित कर पथ्य और हितकर कुपथ्य होजाते हैं। इसलिये सब द्रव्योंका स्वभाव मात्रा आदि विचारकर उपयोग करना चाहिये। सिद्धिलाभ करनेवाले वैद्यको इन सब बातोंको विचारकर ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

तदात्रेयस्यभगवतोवचनमनुनिशम्यपुनरपिभगवन्तमात्रेयम ग्निवेशउवाच । यथोद्देशमभिनिर्दिष्टः केवलोऽयमर्थोभगवता श्रुतस्त्वस्माभिः । आसवद्रव्याणामिदानींलक्षणमनतिसंक्षेपे णोपदिश्यमानशुश्रूषामहेइति ॥ ४८ ॥

आत्रेय भगवानका यह सम्पूर्ण उपदेश सुनकर अग्निवेश कहने लगे कि हे भगवन्! जिस २ बातकी जाननेकी हमने इच्छा की वह सब आपने कृपापूर्वक निर्देश कर दिया है । अब हम आसवद्रव्योंकी प्रकृति और लक्षण विस्तारपूर्वक सुनना चाहतेहैं, कृपाकर उनका भी विस्तारपूर्वक कथन कीजिये ॥ ४९ ॥

तमुवाचभगवानात्रेयः । धान्यफलसारपुष्पकाण्डपत्रत्वचोभ- वन्त्यासवयोनयः अग्निवेश! सग्रहेणाष्टौशर्करानवमास्तासुद्र- व्यसयोगकरणतोऽपरिसंख्येयासुयथापथ्यतमानासवानाच- तुरशीतिंनिबोधसुरासौवीरतुषोदकमैरेयमेदकधान्याम्लपड् धान्यासवाः । मृद्वीकाखर्जूरकाश्मर्यधन्वनराजादनतृणशू ल्यपरूषाभयामलकमृगलण्डिकाजाम्बवकपित्थ–कुल–बद- रकर्कन्धुपीलुपियालपनसन्यग्रोधाश्वत्थप्लक्षकपीतनोदुम्बराज- मोदशृङ्गाटकशङ्खिनीतिफलासवाः षड्विंशतिः । विदारिग न्धाश्वगन्धाकृष्णगन्धाशतावरीश्यामात्रिवृद्दन्तीद्रवन्तीबि- ल्वोरुबुकचित्रमूलैरेकादशमूलासवाः । शालप्रियकाश्वकर्ण- चन्दनस्यन्दनखदिरकदरसप्तपर्णार्जुनासनारिमेदतिन्दुककि- णिहीशमीशुक्तिशिंशपाशिरीषवञ्जुलधन्वनमधूकैर्सारासवा विंशतिः ॥ ५० ॥

यह सुन आत्रेय भगवान् कहनेलगे कि हे अग्निवेश! धान्य, फल, मूल, सार, फूल, डंडी, पत्र, छाल इन आठ वस्तुओंसे आसव बनतेहैं और नवम शर्करासे आसव बनाये जाते हैं। इन द्रव्योंके परस्पर संयोग मिलानेसे असंख्य आसव बन सकतेहैं इनमें चौरासी ८४ प्रकारके आसव उत्तम और पथ्य माने जाते हैं। इन आसवोंमें सुरा,

मात्रा आदिका विचार करके ही आसवोंका उपयोग करना चाहिये। इस प्रकार जोर आसव जिस २ प्रकार जिस २ पदार्थसे बनताहै उसका यथोचित वर्णन किया गया है ॥ ५१ ॥

भवन्ति चात्र।

उपसंहार।

मनःशरीराग्निबलप्रदानामस्वप्नशोकारुचिनाशनानाम्। सहर्षणानाप्रवरासवानामशीतिरुक्ताचतुरुत्तरैषा ॥५२॥ शरीररोगप्रकृतौमतानितत्त्वेनचाहारविनिश्चयोय । उवाचयज्ञःपुरुषादिकेऽस्मिन्मुनिस्तथाग्र्याणिवरासवाश्चइति ॥ ५३ ॥

इत्यन्नपानचतुष्केयज्ञःपुरुषीयोऽध्याय समाप्तः ।

इस यज्ञ पुरुषीय अध्यायमें मन, शरीर, अग्नि और बल बढानेवाले और अनिद्रा, शोक तथा अरुचिको नष्ट करनेवाले हर्षके उत्पन्न करनेवाले ८४ चौरासी आसवोंका वर्णन किया गया है तथा शरीरकी रक्षाके लिये सब प्रकारके आहार और उपाय यथोचित रीति पर महर्षि आत्रेयजीने वर्णन कियेहैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० प० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां यज्ञःपुरुषीयो नाम पञ्चविंशोऽध्याय ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः ।

अथातआत्रेयभद्रकाप्यीयमध्याय व्याख्यास्यामः इतिहस्माह भगवानात्रेय ।

अब हम आत्रेयभद्रकाप्यीय नामके अध्यायकी व्याख्या करते हैं ऐसा आत्रेय भगवान् कहने लगे।

अनेक ऋषियोंके अनेक मत।

आत्रेयोभद्रकाप्यश्चशाकुन्तेयस्तथैवच । पूर्णाक्षश्चैवमौद्गल्यो हिरण्याक्षश्चकौशिक ॥ १ ॥ य कुमारशिरानामभरद्वाज सनानघ । श्रीमान्वार्योविदश्चैवराजासनिमतांवर ॥ २ ॥ निमिश्चराजावैदेहोबडिशश्चमहामति । काङ्कायनश्चवाह्लीको

वार्ह्लीकभिषजांवर. ॥ ३ ॥ एतेश्रुतवयोवृद्धाजितात्मानोमह-र्षय । वनेचैत्ररथेरम्येसमीयुर्विजिहीर्षवः ॥ ४ ॥ तेषांतत्रोप विष्टानामियमर्थवतीकथा । बभूवार्थविदांसम्यक्रसाहारवि-निश्चये ॥ ५ ॥

एक समय आत्रेय भद्रकाप्य शाकुन्तेय पूर्णाक्ष, मौद्गल्य, हिरण्याक्ष, कौशिक, महात्मा कुमारशिरा भरद्वाज बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीमान राजर्षि वार्योविद, निमि, राजर्षि वैदेह, विशालबुद्धि, बडिश, काङ्कायन बाह्लीक (वैद्योंमें श्रेष्ठ) यह सम्पूर्ण विद्याम और आयुमें वृद्ध, जितेन्द्रिय, महात्मालोग, रमणकरनेयोग्य चैत्र-रथ प्रभृति स्थानोंमें विचरण करते हुए एक स्थानमें एकत्रित हुए। उस समय इन ऋषियोंकी सभामें रसाहार सम्बन्धी सिद्धान्त निश्चय करनेके लिये आन्दोलन आरम्भ हुआ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

एकएवरसइत्युवाचभद्रकाप्योयपञ्चानामिन्द्रियार्थानामन्यत-मजिह्वावैषयिकभावमाचक्षतेकुशला । सपुनरुदकादनन्य इति ॥ ६ ॥

प्रथम भद्रकाप्य बोले कि रस १ एक प्रकारका होताहै । और यह रस पञ्च महा-भूतके इन्द्रियार्थोंमें जिह्वाग्राह्य है और जिह्वेन्द्रिय जलीय है इसलिये इस जलके सिवा और कोई वस्तु नहीं ॥ ६ ॥

द्वौरसावितिशाकुन्तेयोब्राह्मणश्छेदनीयश्चोपशमनीयश्चेति ॥७॥

यह सुनकर शाकुन्तेय ब्राह्मण कहनेलगे कि रस दो प्रकारका होताहै । १ छेदन करनेवाला २ उपशमन करनेवाला ॥ ७ ॥

त्रयोरसाइतिपूर्णाक्ष मौद्गल्यश्छेदनीयोपशमनीयौसाधारणश्च॥८॥

पूर्णाक्ष मौद्गल्य कहनेलगे कि रस तीन प्रकारका होताहै १ छेदन-(शोधन) करनेवाला २ शमनकर्ता ३ साधारण ॥ ८ ॥

चत्वारोरसाइतिहिरण्याक्ष कौशिकः स्वादुर्हितश्चास्वादुरहितश्च अस्वादुरहितश्चास्वादुर्हितश्चेति ॥ ९ ॥

हिरण्याक्षने कहा कि हितकर स्वादु, अहितकर स्वादु, अहितकर अस्वादु और हितकर अस्वादु इन भेदोंसे ४ चार प्रकारका रस है ॥ ९ ॥

पञ्चरसाइतिकुमारशिराभरद्वाजोभौमोदकाग्नेयवायव्यान्तरिक्षाः ॥ १० ॥

कुमारशिरा भरद्वाज कहनेलगे कि भौम, औदक आग्नेय, वायव्य, आन्तरिक्ष इन भेदासे ५ पाच प्रकारका रस होताहै ॥ १० ॥

षड्रसाइतिवार्य्योविदोराजर्षि गुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षाः ॥ ११ ॥

राजर्षि वार्योविद कहनलगे कि, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष इन भेदासे रस ६ छः प्रकारका होताहै ॥ ११ ॥

सप्तरसाइतिनिमिर्वैदेहोमधुराम्ललवणकटुकतिक्तकषायक्षाराः ॥ १२ ॥

निमि वैदेह कहनेलगे कि रस ७ सात प्रकारके होतहै । जैसे-मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय, क्षार ॥ १२ ॥

अष्टौरसाइतिबडिशोधामार्गवोमधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायक्षाराव्यक्ताः ॥ १३ ॥

बडिश धामार्गव कहतेहैं कि मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय, क्षार और व्यक्त इन भेदासे रस आठ प्रकारके है ॥ १३ ॥

अपरिसंख्येयारसाइतिकाङ्कायनोबाह्लीकभिषगाश्रयगुणकर्मसंस्कारविशेषाणामपरिमेयत्वात् ॥ १४ ॥

काकायन कहनलगे कि रस अपरिसंख्येय है क्योंकि आयुर्वेदाश्रित गुणकर्म, संस्कार विशेषासे असंख्य कल्पना होसकतीहै ॥ १४ ॥

षडेवरसाइत्युवाचभगवानात्रेय पुनर्वसु मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायाः । तेषांषण्णांरसानांयोनिरुदकम् । छेदनोपशमनेद्वेकर्मणी । तयोर्मिश्रीभावात्साधारणत्वम्स्वाद्वस्वादुताभक्तिः । तेहिताहितौप्रभावौ । पञ्चमहाभूतविकारास्त्वाश्रयाः ॥ १५ ॥

इस पर भगवान पुनर्वसु आत्रेयने कहा कि नहीं रस छःही प्रकारके होतेहैं । जैसे-मधुर, अम्ल लवण कटु तिक्त कषाय और इन छहों रसोंका कारण जल है । छेदन और उपशमन यह रसोंके दो कर्म है । इन दोनो रसोंके मिलजानेसे साधारण-

जाते दो स्वाद माने गये हैं । १ स्वादु और २ अस्वादु हितकर और अहितकर यह दो प्रकारके रसोंके प्रभाव होते हैं। और पांच महाभूतोंके विकार रसके आश्रय माने जाते हैं ॥ १५ ॥

प्रकृतिविकृतिविचारदेशकालवशास्तेष्वाश्रयेषुद्रव्यसंज्ञकेषु
गुणागुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्याः ॥ १६ ॥

यह आश्रय-प्रकृति, विकृति विकार देश कालके वश माने जाते हैं। फिर यह द्रव्यनामक आश्रय गुरु, लघु शीत, उष्ण, रूक्ष आदि, गुणोंके आश्रयी भूत हैं ॥ १६ ॥

क्षरणात्क्षारोनासौरसोद्रव्यंतदनेकरससमुत्पन्नमनेकरसंकटु-
कलवणभूयिष्ठमनेकेन्द्रियार्थसमन्वितंकरणाभिनिर्वृत्तम् ॥१७॥

क्षरण होनेसे क्षार कहा जाता है इसलिये यह रस नहीं द्रव्य है क्योंकि यह अनेक प्रकारके रसोंसे प्रकट होता है। इसीलिये अनेक रसयुक्त है किन्तु अधिक कटु और लवण रस अधिकतासे प्रतीत होता है । क्षार रस अनेक विषयोंसे युक्त और करणसे उत्पन्न होता है ॥ १७ ॥

अव्यक्तीभावस्तुखलुरसानांप्रकृतावनुरसेअनुरससमन्वितेवा
द्रव्ये ॥ १८ ॥ अपरिसङ्ख्येयत्वपुनस्तेषामाश्रयादीनांभावानां
विशेषापरिसंख्येयत्वान्नचतस्मादन्यत्वमुपपद्यते ॥ १९ ॥

रस अपनी प्रकृतिमें तथा अनुरसद्रव्योंमें मिला हुआ रहता है इससे मालूम नहीं होता है ॥ १८ ॥ इन रसोंके आश्रित असंख्य द्रव्य हैं इसलिये आश्रयभेदसे रस भी असंख्य प्रकारके हो सकते हैं । परन्तु रस रसमें रहता है अन्यत्वको प्राप्त नहीं होता ॥ १९ ॥

परस्परसंसृष्टभूयिष्ठत्वान्नैषामभिनिर्वृत्तिगुणप्रकृतीनामपरिसं
ख्येयत्वंभवति । तस्मान्नैषांसंसृष्टानांरसानांकर्मोपदिशन्तिबु-
द्धिमन्तः ॥ २० ॥

इस प्रकार परस्पर मिले हुए सबोंके होनेसे और अत्यन्त उत्पादित होनेसे रस असंख्य होनेपर भी गुण, प्रकृति स्वभावसे छः प्रकारके ही होते हैं । इसलिये बुद्धिमानोंने गुण, प्रकृतिके संयोगसे असंख्य होने पर भी रसोंका कर्म भेद नहीं कहे ॥ २० ॥

तच्चैवकारणमपेक्षमाणा'षण्णांरसानांपरस्परेणासंसृष्टानालक्ष-
णपृथक्त्वमुपदेक्ष्यामः । अग्रेतुतावद्द्रव्यभेदमभिप्रेत्यकिञ्चिद-
भिधास्याम । सर्वंद्रव्यपाञ्चभौतिकमस्मिन्नेवार्थेतच्चेतनावद
चेतनञ्च । तस्यगुणा'शब्दादयोगुर्वादयश्चद्रवान्ताः। कर्मपञ्च
विधमुक्तवमनादि ॥ २१ ॥

इसी लिये कारणकी अपेक्षा करतेहुए ६ छहों रसोके द्रव्यादिकाकी सहकारि-तासे अलग २ लक्षणोंको कहतेहैं । एवम् द्रव्यभेदका आश्रय लेकर रसोंके गुणोंको कहतेहैं । सम्पूर्ण द्रव्य पाचभौतिक है फिर इनके चेतन और अचेतन भेदसे दो प्रकार है । फिर उनके गुण शब्दादिक और गुरुआदिक द्रवपर्यन्त होतेहै । एवम् पाच प्रकारका वमनादिक कर्म है ॥ २१ ॥

पार्थिवादिद्रव्योंके गुणकर्म ।

तत्रद्रव्याणिगुरुखरकठिनमन्दस्थिरविपदसान्द्रस्थूलगन्धगु-
णबहुलानिपार्थिवानितान्युपचयसङ्घातगौरवस्थैर्य्यकराणि २२

उन द्रव्योंमें गुरु, खर, कठिन, मन्द, स्थिर, विपद सान्द्र, स्थूल और गंध ये गुण पार्थिव (पृथ्वीसम्बन्धी) होतेहै । पार्थिव द्रव्य शरीरको पुष्ट, कठिन, गुरुता और स्थिरताके करनेवाले होतेहै ॥ २२ ॥

द्रवस्निग्धशीतमन्दमृदुपिच्छिलरसगुणबहुलान्याप्यानितान्यु
पक्लेदस्नेहबन्धविष्यन्दप्रह्लादकराणि ॥ २३ ॥

जो द्रव्य द्रव, स्निग्ध, शीत, मन्द, मृदु, पिच्छिल, रस तथा रसगुणप्रधान होतेहै उनको जलीयद्रव्य जानना । जलीयद्रव्य-क्लेद, स्निग्धता, बंध, विष्यन्द और आल्हादता करनेवाले है ॥ २३ ॥

उष्णतीक्ष्णसूक्ष्मलघुरूक्षविपदरूपगुणबहुलानिआग्नेयानिता-
निदाहपाकप्रभाप्रकाशवर्णकराणि ॥ २४ ॥

जो द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, लघु, रूक्ष, विपद, तथा रूप-गुण-प्रधान होते है उनको आग्नेय जानना । आग्नेय द्रव्य-शरीरमें दाह पाक प्रभा, प्रकाश और वर्णको करतेहै ॥ २४ ॥

लघुशीतरूक्षखरविपदसूक्ष्मस्पर्शगुणबहुलानिवायव्यानिता-
निरौक्ष्यग्लानिविचारवैशद्यलाघवकराणि ॥ २५ ॥

जो द्रव्य लघु, शीत, रूक्ष, खर विशद सूक्ष्म और स्पर्शगुणप्रधान होतेहैं उनको वायवीय जानना । वायवीयद्रव्य-रूक्षता ग्लानि विचार, विशदता तथा लघुताको करतेहैं ॥ २५ ॥

मृदुलघुसूक्ष्मश्लक्ष्णशब्दगुणबहुलान्याकाशात्मकानितानिमा र्दवसौषिर्य्यलाघवकराणि ॥ २६ ॥

जो द्रव्य मृदु, लघु, सूक्ष्म, श्लक्ष्ण और शब्दगुणप्रधान होतेहैं वह आकाशीय है । आकाशीय द्रव्य मृदुता, पित्त तथा लघुताको करतेहैं ॥ २६ ॥

अनेनोपदेशेननानौषधिभूतजगतिकिञ्चिद्द्रव्यमुपलभ्यते । तांयुक्तिमर्थञ्चततमभिप्रेत्यनचगुणप्रभावादेवकार्मुकाणिभ- वन्ति ॥ २७ ॥

इस नियमसे यह सिद्ध है कि संसारमें यत्किंचित् वस्तु हैं उन सबमें ही औषधत्व होताहै । सम्पूर्ण द्रव्य उक्त गुण प्रभावसे ही कार्यकर्ता नहीं होते किन्तु युक्ति, अर्थ, योगविशेषकी अपेक्षासे ही कार्यकर्ता होतेहैं ॥ २७ ॥

द्रव्याणिहिद्रव्यप्रभावाद्गुणप्रभावाच्चतस्मिंस्तस्मिन्कालेतत्तद- धिष्ठानमासाद्यतांतांयुक्तिमर्थञ्चतत्कर्मयेनकुर्वन्तितद्वी- र्य्यं, यत्रकुर्वन्तितदधिकरणयदाकुर्वन्तिसकालो यथाकुर्वन्ति सउपायोयत्साधयन्तितत्फलम् ॥ २८ ॥

सम्पूर्ण द्रव्य द्रव्यके प्रभावसे,गुणोंके प्रभावसे और द्रव्यगुणोंके प्रभावसे कालानुसार यथोचित स्थिति पर प्रयोग करनेसे जो कार्य करतेहैं उसका नाम कर्म कहतेहैं, तथा जिसके द्वारा करतेहैं उसका नाम वीर्य कहतेहैं और जिस स्थानमें करतेहैं उसको अधि॰ कहतेहैं परन्तु जिस प्रकार करतेहैं उसका उपाय कहतेहैं और जो प्रयोजन सिद्ध होताहै उसको फल कहतेहैं ॥ २८ ॥

रसोंके त्रिषष्टिकी संख्या ।

भेदश्चैषांत्रिषष्टिविधविकल्पोद्रव्यदेशकालप्रभावाद्भवतितमुपदेक्ष्याम: ॥ २९ ॥

इन द्रव्योंके-देश, काल और प्रभावविकल्पोंसे ६३ प्रकार होतेहैं उनका आगे वर्णन करतेहैं ॥ २९ ॥

स्वादुरम्लादिभिर्योगंशेषैरम्लादय पृथक् । यानिपञ्चदशैतानि द्रव्याणिहिरसानितु ॥ ३० ॥ पृथगम्लादियुक्तस्ययोग.शेषैं पृथग्भवेत् । मधुरस्यतथाम्लस्यलवणस्यकटोस्तथा ॥ ३१ ॥ त्रिरसानियथासख्यद्रव्याण्युक्तानिविंशति. । वक्ष्यन्तेतुचतुष्केणद्रव्याणिदशपञ्चच ॥ ३२ ॥ स्वाद्वम्लौसहितौयोगलवणाद्यै पृथग्गतौ। योगशेषै पृथक्यात चतुष्करससख्यया॥३३॥ सहितौस्वादुलवणौतद्वत्कट्वादिभि पृथक् । युक्तौशेषै.पृथग्योग यात स्वादूषणौयथा ॥ ३४ ॥ कट्वाद्यैरम्ललवणौसयुक्तौसहितौपृथक् । यात शेषै पृथग्योगशेषैरम्लकटूतथा ॥ ३५ ॥ युज्यतेतुकषायेणसतिक्तौलवणोषणौ । षट्तुपञ्चरसान्याहुरेकैकस्यापवर्जनात् ॥ ३६ ॥ षट्चैवैकरसानिस्युरेकषड्रसमेवतु। इतित्रिषष्टिर्द्रव्याणानिर्दिष्टाररससख्यया ॥ ३७ ॥ त्रिषष्टि. स्यात्त्वसख्येयारसानुरसकल्पनात। रसास्तरतमाभ्यातासख्यामभिपतन्तिहि ॥ ३८ ॥

मधुर आदिक जो छः रस हैं उनमेंसे स्वादुरसका अम्ल आदिके संग जो लेवा संयोग करनेसे पांच प्रकार होतेहैं। जैसे मधुराम्ल, मधुरलवण, मधुरतिक्त, मधुरकटु, मधुरकषाय। एवम् अम्लरसका जो दोसे संयोग कियाजाय तो चार प्रकार होतेहैं। जैसे अम्ललवण, अम्लतिक्त, अम्लकटु, अम्लकषाय यह चार प्रकार हुए, क्योंकि अम्लमधुर पहिले पांच प्रकारोंमें आचुका है इसलिये छः रसोंमेंसे एक रसके दूसरे दूसरेके साथ मिलानेसे जिस रसका मिलान किया जायगा वह प्रथम होनेसे पांच प्रकारके होतेहैं। दूसरे रसका मिलान करनेसे चार प्रकार रह जातेहैं। इसी प्रकार लवणरसका मिलान करनेसे तीन प्रकार होतेहैं। तिक्तरसका मिलान करनेसे दो प्रकार होतेहैं तथा कटुरस केवल एक प्रकारका रहजाता है। इस प्रकार सब मिल १५ प्रकारके हुए। तीन तीनके मिलानेसे मधुर रस १० प्रकारका, अम्लरस ६ प्रकारका, लवणरस ३ प्रकारका होताहै एवम् तिक्तरस १ प्रकारका हुआ। कुल मिलकर २० प्रकार हुए। चार चारके संयोगसे मधुर रस १० प्रकारका, अम्लरस ४ प्रकारका, लवण रस १ प्रकारका इन सबको जोडदेनेसे १५ होतेहैं। पांच पांचके मिलानेसे मधुर ५ प्रकारका, अम्ल १ प्रकारका दोनोंको मिलानेसे ६ प्रकार हुए। और ६ रसोंको ही एकत्रित करनेसे १ प्रकार हुआ एवम् मधुर आदि पृथक्रसोंसे ६

जो द्रव्य लघु, शीत, रूक्ष, खर, विशद, सूक्ष्म और स्पर्शगुणप्रधान होतेहैं उनको वायवीय जानना । वायवीयद्रव्य-रूक्षता, ग्लानि, विचार, विशदता तथा लघुताको करतेहैं ॥ २८ ॥

मृदुलघुसूक्ष्मश्लक्ष्णशब्दगुणबहुलान्याकाशात्मकानितानिमार्दवसौषिर्य्यलाघवकराणि ॥ २६ ॥

जो द्रव्य मृदु, लघु, सूक्ष्म, श्लक्ष्ण और शब्दगुणप्रधान होतेहैं वह आकाशीय है । आकाशीय द्रव्य मृदुता, पित्त तथा लघुताको करतेहैं ॥ २६ ॥

अनेनोपदेशेननानौषधिभूतजगतिकिञ्चिद्द्रव्यमुपलभ्यते । तायुक्तिमर्थञ्चततमभिप्रेत्यनचगुणप्रभावादेवकार्मुकाणिभवन्ति ॥ २७ ॥

इस नियमसे यह सिद्ध है कि संसारमें यत्किंचित् वस्तु है उन सबमें ही औषधत्व होताहै । सम्पूर्ण द्रव्य उक्त गुण प्रभावसे ही कार्यकर्ता नहीं होते किन्तु युक्ति, अर्थ, योगविशेषकी अपेक्षासे ही कार्यकर्ता होतेहैं ॥ २७ ॥

द्रव्याणिहिद्रव्यप्रभावाद्गुणप्रभावाच्चतस्मिंस्तस्मिन्कालेतत्तदधिष्ठानमासाद्यतांताञ्चयुक्तियत्कुर्वन्तितत्कर्मयेनकुर्वन्तितद्वीर्यं, यत्रकुर्वन्तितदधिकरणयदाकुर्वन्तिसकालो यथाकुर्वन्ति सउपायोयत्साधयन्तितत्फलम् ॥ २८ ॥

सम्पूर्ण द्रव्य द्रव्यके प्रभावसे,गुणके प्रभावसे और द्रव्यगुणके प्रभावसे यथासमय यथोचित रीति पर प्रयोग करनेसे जो कार्य करतेहैं उसको कर्म कहतेहैं, तथा जिसके द्वारा करतेहैं उसको वीर्य कहतेहैं और जिस समय करतेहैं उसको काल कहतेहैं एवम् जिस प्रकार करतेहैं उसको उपाय कहतेहैं और कर्मद्वारा जो सिद्ध होताहै उसको फल कहतेहैं ॥ २८ ॥

रसोंके विकल्पकी संख्या ।

भेदश्चैषांत्रिषष्टिविधिविकल्पोद्रव्यदेशकालप्रभावाद्भवत्युपदेक्ष्यामः ॥ २९ ॥

इन द्रव्योंके-देश, काल, और प्रभावविशेषसे ६३ तिरसठ प्रकार होतेहैं उनको आगे वर्णन करतेहैं ॥ २९ ॥

स्वादुरम्लादिभिर्योगशेषैरम्लादयःपृथक्। यानिपञ्चदशैतानि द्रव्याणिंहिरसानितु ॥ ३० ॥ पृथगम्लादियुक्तस्ययोग शेषे पृथग्भवेत्। मधुरस्यतथाम्लस्यलवणस्यकटोस्तथा ॥ ३१ ॥ त्रिरसानियथासंख्यद्रव्याण्युक्तानिविंशति । वक्ष्यन्तेतुचतुष्केणद्रव्याणिदशपञ्चच ॥ ३२ ॥ स्वाद्वम्लौसहितौयोगलवणाद्यैःपृथग्गतौ। योगशेषे पृथक्यात चतुष्करससंख्यया॥३३॥ सहितौस्वादुलवणौतद्वत्कट्वादिभि पृथक्। युक्तौशेषेःपृथग्योग यातःस्वादूषणौयथा ॥ ३४ ॥ कट्वाद्यैरम्ललवणौसयुक्तौसहितौपृथक् । यात शेषे पृथग्योगशेषैरम्लकटूतथा ॥ ३५ ॥ युज्यतेतुकषायेणसतिक्तौलवणोषणौ । षट्तुपञ्चरसान्याहुरेकैकस्यापवर्जनात् ॥ ३६ ॥ षट्चैवैकरसानिस्युरेकंषड्समेवतु। इतित्रिषष्टिर्द्रव्याणांनिर्दिष्टारससंख्यया ॥ ३७ ॥ त्रिषष्टिःस्यात्त्वसंख्येयारसानुरसकल्पनात्। रसास्तरतमाभ्यातासंख्या मभिपतन्तिहि ॥ ३८ ॥

मधुर आदिक जो छः रस है उनमेसे स्वादुरसका अम्ल आदिके संग जो पांचोंका संयोग करनेसे पांच प्रकार होतेहैं। जैसे मधुराम्ल, मधुरलवण, मधुरतिक्त, मधुरकटु, मधुरकषाय। एवम् अम्लरसका जो दोसे संयोग कियाजाय तो चार प्रकार होतेहैं। जैसे अम्ललवण, अम्लतिक्त, अम्लकटु, अम्लकषाय यह चार प्रकार हुए यद्यपि अम्लमधुर पहिले पांच प्रकारमें आचुका है इसलिये छः रसोंमेसे एक रसके दूसरे दूसरेके साथ मिलानेसे जिस रसका मिलान किया जायगा वह कम होनेसे पांच प्रकारके होतेहैं। दूसरे रसका मिलान करनेसे चार प्रकार रह जातेहैं। ऐसेही प्रकार लवणरसका मिलान करनेसे तीन प्रकार होतेहैं। तिक्तरसका मिलान करनेसे दो प्रकार होतेहैं तथा कटुरस केवल एक प्रकारका रहजाता है। इस प्रकार सब मिल १५ प्रकारके हुए। तीन तीनके मिलानेसे मधुर रस १० प्रकारका अम्लरस ६ प्रकारका, लवणरस ३ प्रकारका होताहै एवम् तिक्तरस १ प्रकारका हुआ। कुल मिलकर २० प्रकार हुए। चार चारके संयोगसे मधुर रस १० प्रकारका, अम्ल ४ प्रकारका लवणरस १ प्रकारका इन सबको जोडनेसे १५ होतेहैं। पांच पांचके मिलानेसे मधुर ५ प्रकारका, अम्ल १ प्रकारका, दोनोंको मिलानेसे ६ प्रकार हुए। और ६ रसोंको एकत्रित करनेसे १ प्रकार हुआ एवम् मधुर आदि पृथक्‌रसोंको अलग ६

रखनेसे ६ प्रकार हुए। सबका मिलान करनेसे ६३ प्रकारके रस भेद हुए। इन ६३ तिरसठ ही प्रकारोंमें रस और अनुरस ये अशाश कल्पना करनेसे असंख्य संख्या बढजाती है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सयोगा.सप्तपञ्चाशत्कल्पनातुत्रिषष्टिधा। रसानांतत्रयोग्यत्वा त्कल्पितारसचिन्तकै ॥ ३९ ॥ क्वचिदेकोरस·कल्प्य.सयुक्ता श्चरसा क्वचित्। दोषौषधादीन्सञ्चिन्त्यभिषजासिद्धिमि- च्छता ॥ ४० ॥ द्रव्याणिद्विरसादीनिसयुक्तांश्चरसान्बुध. । रसानेकैकशश्चैवकल्पयन्तिगदान्प्रति ॥ ४१ ॥

इस प्रकार सयोगसे ५७ सत्तावन और कल्पनाविशेषसे ६३ तिरसठ रसोंके प्रकार होतेहै। रसचिंतकोंने रसतन्त्रमें इस प्रकार कल्पना कीहै। सिद्धिकी इच्छाकरनेवाले वैद्यको कहीं एक कहीं बहुत रसोंमे युक्त दोष और औषधियोंको विचारलेना चाहिये। बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि द्रव्य और द्रव्योंके रस तथा रससयोग आदि विचारकर रोगोंमें प्रयोग करे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

रसविकल्पज्ञ वैद्यकी प्रशसा।

य स्याद्रसविकल्पज्ञ स्याच्चदोषविकल्पवित्।
नसमुह्येद्विकाराणां हेतुलिङ्गोपशान्तिषु ॥ ४२ ॥

जो वैद्य रसोंके विकल्पको जानताहै तथा दोषोंके विकल्पको भली प्रकार जानताहै वह वैद्य रोगके निदान, लक्षण और उपाय करनेमे मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ ४२ ॥

व्यक्त शुष्कस्यचादौचरसोद्रव्यस्यलक्ष्यते।
विपर्ययेणानुरसोरसोनास्तिहिसप्तमः ॥ ४३ ॥

सम्पूर्ण द्रव्योंमें रस दो प्रकारका देखनेमें आताहै। १ व्यक्त रस २ अनुरस। सूखे वा गीले द्रव्यको मुखमें रखनेसे जो रस प्रबल होताहै वह व्यक्तरस होताहै एवम् जो रस पीछेसे प्रतीत हो उसको अनुरस कहतेहैं सो यह व्यक्तरस और अनुरस छः रसोंमें ही है। अनुरस छहोंसे अलग कोई सातवां रस नहीं है ॥ ४३ ॥

परादिगुणोंके नाम।

परापरत्वेयुक्तिश्चसंख्यासंयोगएव च। विभागश्चपृथक्त्वञ्चप रिमाणमथापिच ॥ ४४ ॥ सस्कारोऽभ्यासइत्येनेगुणाज्ञेया परादय.। सिद्ध्युपायधिकित्सायाःलक्षणैस्तान्प्रवक्ष्यते॥४५॥

परत्व, अपरत्व, युक्ति, संख्या संयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिमाण संस्कार और अभ्यास इन सबका यथोचित ज्ञान होने विना चिकित्साकी सिद्धि नहीं होती इसलिये अब इनके लक्षणोंको कहतेहैं ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

परापरत्वका लक्षण।

देशकालवयोमानपाकवीर्य्यरसादिषु ।
परापरत्वेयुक्तिस्तुयोजनायाचयुज्यते ॥ ४६ ॥

देश, काल, अवस्था, मान, पात्र, वीर्य, रस आदिकोंमें प्रधानको परत्व और अप्रधानको अपरत्व समझना चाहिये। इन देश, कालादिकोंका परत्वापरत्व विचार जो प्रयोग किया जाता है उसको युक्ति कहतेहैं ॥ ८६ ॥

संख्याआदिका लक्षण।

संख्यास्याद्गणितयोग सहसंयोग उच्यते।
द्रव्याणाद्वन्द्वसर्वैककर्मजोनित्यएवच ॥ ४७ ॥

द्रव्यकी गणनाको संख्या कहतेहैं उसके विधिपूर्वक मिलानको संयोग कहतेहैं। वह संयोग तीन प्रकारका होताहै। १ द्वन्द्वकर्मज, २ सर्वकर्मज ३ एककर्मज। वह संयोग अनित्य होताहै ॥ ८७ ॥

विभागस्तुविभक्तिस्तुवियोगोभागशाग्रह ।
पृथक्त्वस्यादसंयोगोवैलक्षण्यमनेकता ॥ ४८ ॥

विभागशब्दका अर्थ हिस्से करना अर्थात् भागपूर्वक वियोग करना है पृथक्त्व-एकसे दूसरेमें पृथक्ता प्रतिपादन करना है। जैसे-गौसे भैंस पृथक् होतीहै। घरसे पट पृथक् होताहै। इस प्रकार एक जगह संयोग होनेपर भी जो गुणविशेषसे अलग ही प्रतीतहो उसको पृथक्त्व कहतेहैं ॥ ८८ ॥

परिमाणपुनर्मानसंस्कार करणमतम्।
भावाभ्यसनमभ्यास शीलनसततक्रिया ॥ ४९ ॥

परिमाण-मान (तोल) के विधानका नाम है। द्रव्यादिकोंका स्वभाव बदलकर जो विशेष रूप प्रगट होताहै उसको संस्कार कहतेहैं। सत्क्रियाका निरन्तर सेवन करना अभ्यास कहा जाता है ॥ ८९ ॥

इतिस्वलक्षणैरुक्तागुणा सर्वेपरादय ।
चिकित्सायैर्विदितैर्नयथावत्प्रवर्त्तते ॥ ५० ॥

इस प्रकार परत्व आदिकोंके लक्षणोंका वर्णन कियागयाहै इनके यथोचित ज्ञान विना यथार्थ चिकित्सा नहीं होती ॥ ५० ॥

गुणागुणाश्रयानोक्तास्तस्माद्रसगुणान्भिषक् ।
विद्याद्द्रव्यगुणान्कर्त्तुरभिप्रायाःपृथग्विधाः ॥ ५१ ॥
अतश्चप्रकृतिबुद्ध्वादेशकालान्तराणिच ।
तन्त्रकर्त्तुरभिप्रायानुपायाश्चार्थमादिशेत् ॥ ५२ ॥

गुण गुणाके आश्रित नहीं होते किन्तु द्रव्य गुणके आश्रय कहे गये हैं । इसलिये वैद्य रसके गुणोंको द्रव्यके गुणाम समझे क्योंकि रसका गुण अन्य होनेपर भी द्रव्यम अन्य गुण पाया जाता है । जैसे-कुल्थीका कषाय रसमें कसैला होनेपर भी वातको उत्पन्न नहीं करता वल्कि नाश करता है ॥ ५१ ॥ इसलिये तन्त्रकर्त्ताका अभिप्राय और देश काल आदिकोंको यथोचित विचारकर उपाय आदि करना चाहिये ॥ ५२ ॥

परश्चातःप्रवक्ष्यन्तेरसानांषड्विभक्तय ।
षट्पञ्चभूतप्रभवा सङ्ख्याताश्चयथारसा ॥ ५३ ॥

अब फिर रसोंके ६ विभाग तथा इन छःहोंकी पांच महाभूतोंसे उत्पत्तिको कथन करतेहैं । जैसे- ६ प्रकारके रस पाच महाभूतोंसे उत्पन्न हुएहैं ॥ ५३ ॥

सौम्या खल्वापोऽन्तरिक्षप्रभवा प्रकृतिशीतालघ्व्यश्चअव्यक्तरसाश्चतास्त्वन्तरिक्षाद्भ्रश्यमानाभ्रष्टाश्चपञ्चमहाभूतविकारगुणसमन्विताजङ्गमस्थावराणाभूतानामूर्त्तीरभिप्रीणयन्तितासुमूर्त्तिषुषड्भिर्मूर्च्छन्तिरसा ॥ ५४ ॥

अन्तरिक्षका जल प्राय सौम्य (सोमगुणप्रधान) होताहै इसीलिये स्वभावसे ही शीतल और हल्का होताहै । यह अव्यक्त रस होताहै । आकाशसे गिरकर पंच महाभूतोंके गुणोंसे युक्त होताहै और जंगम तथा स्थावरोंको प्रीणनकर्त्ता होताहै वही स्थावरोंमे ६ प्रकारके रसोंको प्रगट करताहै ॥ ५४ ॥

रसोंकी उत्पत्ति ।
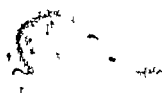
तेषांषण्णारसानांसोमगुणातिरेका-
षिष्टस्वादम्ल सलिलाग्निभूयिष्ठत्वा-

टुकोवाय्वाकाशातिरेकात्तिक्त पवनपृथिव्यतिरेकात्कषाय ।
एवमेषारसानाषट्त्वमुत्पन्नम् ॥ ५५ ॥

उन छः रसोंमें मधुर रस सोमगुणविशिष्ट होता है। पृथ्वी और तेज, गुण विशिष्ट अम्लरस होता है। जल और अग्निगुणविशिष्ट लवण रस होता है। वायु और अग्निगुण विशिष्ट कटु रस होता है। वायु और आकाशगुण विशिष्ट कषाय रस होता है। इस प्रकार पंचमहाभूतात्मक ६ रस होते हैं ॥ ५५ ॥

पंचमहाभूतोंके न्यूनाधिक्यका फल।

न्यूनातिरेकविशेषान्महाभूतानामिवजङ्गमस्थावराणांनानाव
र्णाकृतिविशेषाः षड्ऋतुकत्वाच्चकालस्यउत्पन्नोमहाभूतानान्यू
नातिरेकविशेष ॥ ५६ ॥

इन पांच महाभूतोंके ही न्यूनाधिक भावसे संपूर्ण स्थावर जंगम जगतके वर्ण और आकृतिमें भेद होता है। एवम् ६ ऋतुओंके भेदसे कालजनित कारणोंसे महाभूतोंके गुणोंमें न्यूनाधिकता होती है ॥ ५६ ॥

अग्निमारुतात्मक रसोंके कर्म।

तत्राग्निमारुतात्मकारसा प्रायेणोर्द्ध्वभाजोलाघवात्प्लवकत्वाच्च
वायोरूर्द्ध्वज्वलनत्वाच्चवह्नेः सलिलपृथिव्यात्मकास्तुप्रायेणाधो
भाज पृथिव्यागुरुत्वान्निम्नगत्वाच्चोदकस्यव्यामिश्रात्मकास्तु
पुनरुभयतोभागभाज ॥ ५७ ॥

इन द्रव्योंमें अग्नि और वायुआत्मक रस प्रधान कटुद्रव्य चरगति और लघुता आदि वायुके गुण होनेसे और ऊर्द्ध्वगति आदि अग्निके गुण होनेसे शरीरके ऊपरके भागमें अपने गुणको दिखाते हैं। जल और पृथ्वीप्रधान रस नीचेकी गति नीचे गमन करनेवाली और पृथ्वीके गुण गुरुत्व होनेसे शरीरके नीचेके भागमें अपनी क्रिया करते हैं ऊपरके भागमें क्रिया करनेवाले और नीचेके भागमें क्रिया करनेवाले सब प्रकारके रसोंको मिलानेसे उभयत क्रिया करते हैं ॥ ५७ ॥

मधुरादि रसोंके गुणागुण।

तेषांषण्णांरसानामेकैकस्ययथाद्रव्यगुणकर्माण्यनुव्याख्यास्या
मः । तत्रमधुरोरस शरीरसात्म्याद्रसरुधिरमांसमेदोऽस्थिम
ज्जौज शुक्राभिवर्द्धनआयुष्य षडिन्द्रियप्रसादनोबलवर्णकर

पित्तविषमारुतघ्नस्तृष्णाप्रशमनस्त्वच्य केश्य कण्ठ्य प्रीणनो जीवनस्तर्पण स्नेहन स्थैर्य्यकर क्षीणक्षतसन्धानकरोघ्राणमुखकण्ठौष्टतालुप्रह्लादनोदाहमूर्च्छाप्रशमन षट्पदपिपीलिकानामिष्टतम स्निग्ध शीतोगुरुश्च ॥ ५८ ॥

अब उन छ रसोंमें एक एक द्रव्यमें पृथक् २ होनेसे जो गुण, कर्म होते हैं उनका वर्णन करते हैं। मधुर रस शरीरके सात्म्य होनेसे रस, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, ओज, शुक्र इन धातुओंकी वृद्धि करताहै तथा आयुको बढाताहै। पंचेन्द्रिय और एक अतीन्द्रिय (मन) को प्रसन्नता देताहै, बल तथा वर्णको उत्तम बनाताहै। पित्त, विष वायु और तृषाको नष्ट करताहै । त्वचा, केश, और कण्ठको उत्तम करताहै तथा प्रीणन (शरीरको पुष्ट करना) जीवन, तर्पण, स्नेहन करताहै तथा आयुको स्थिर करताहै । क्षीण, क्षतपीडित मनुष्योंको, सन्धान करता है नाक, मुख, कण्ठ, ओष्ठ, और तालुको प्रसन्न करताहै। दाह तथा मूर्च्छाको शान्त करताहै। भ्रमर, चींटी आदिकोंको अत्यन्त प्रिय है तथा स्निग्ध, शीतल और भारी गुणयुक्त है ॥ ५८ ॥

सएवगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयुज्यमान.स्थौल्यंमार्दवमालस्यमतिस्वप्नगौरवमनन्नाभिलापमग्नेर्दौर्बल्यमास्यकण्ठमासाभिवृद्धिश्वासकासप्रतिश्यायालसकशीतज्वरानाहास्यमाधुर्य्यवमथुसज्ञास्वरप्रणाशगण्डमालाश्लीपदगलशोफवास्तिधमनीगुदोपलेपाक्ष्यामयानभिष्यन्दमित्येवप्रभृतीन्कफजान्विकारानुपजनयति ॥ ५९ ॥

इस प्रकार गुणयुक्त होनेपर भी मधुररसको सर्वथा और निरन्तर सेवन करनेसे मनुष्योंके शरीरमें मोटापन, नम्रता, आलस्य, निद्राधिक्य, गौरवता, मन्दाग्नि अरुचि, मुख तथा कण्ठके मांसकी वृद्धि, श्वास, खांसी, प्रतिश्याय, अलसक शीतज्वर, अफारा मुखमें मीठापन, छर्दि, संज्ञा और स्वरका नाश गलगण्ड,गण्डमाला, श्लीपद, गलशोथ आदि रोगोंको करताहै तथा वस्ति, धमनी और मलद्वारमें लेपका उपद्रव करताहै । एवम नेत्रोंके अभिष्यन्द आदि रोगोंको तथा कफके विकारोंको उत्पन्न करताहै ॥ ५९ ॥

अम्लोरसोभक्तंरोचयति, अग्निंदीपयति देहंवृंहयति, ऊर्जयति, मनोबोधयति इन्द्रियाणिदृढीकरोति, बलवर्द्धयति,

वातमनुलोमयति, हृदयन्तर्पयति, आस्यसंस्रावयति, भुक्तमपकर्षयति, क्लेदजनयति, प्रीणयतिलघुरुष्ण' स्निग्धश्च ॥६०॥

खट्टा रस अन्नमें रुचि, अग्निको दीपन देहमें पुष्टि करताहै। जीर्णकारी है मनको बोधन करताहै, इन्द्रियोंको दृढ करताहै, बलकी वृद्धि करताहै वायुको अनुलोमन करताहै, हृदयको तृप्त करताहै, मुखको श्रावण करताहै आहारको नीचेकी ओर खींचताहै, क्लेदको उत्पन्न करताहै, प्रीणन करताहै एवम् लघु उष्ण तथा तीक्ष्ण गुणयुक्त है ॥ ६० ॥

सएवगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयुज्यमानोदन्तान्हर्षयतितर्पयति, समीलयतिअक्षिणी, सवीजयतिलोमानि, कफविलापयति, पित्तमभिवर्द्धयति, रक्तदूपयति, मांसविदहति, कायशिथिलीकरोति, क्षीणक्षतकृशदुर्बलानाश्वयथुमापादयति । अपिचक्षताभिहतदष्टभग्नशूलिच्युतावमृदितपरिसर्पितमर्दितच्छिन्नविद्धोत्पिष्टादीनिपाचयत्याग्नेयस्वभावात्परिदहतिकण्ठमुरो हृदयञ्च ॥ ६१ ॥

इस प्रकारके गुणवाला अम्लरस अत्यन्त और निरन्तर सेवन करनेसे दन्तहर्ष रोग करताहै। भोजनमें अनिच्छा, नेत्रसमीलन और रोमहर्षको उत्पन्न करताहै। अपने स्वभावमें स्थित कफको पतला करताहै, पित्तको बढाताहै, रक्तको दूषित करताहै, मांसको विदग्ध करताहै, शरीरका शिथिल करताहै। क्षीण, क्षत, कृश तथा दुर्बल मनुष्योंके शरीरमें सूजन उत्पन्न करताहै। यह रस आग्नेय गुण प्रधान होनेसे क्षत, आहत, दष्ट, दग्ध, भग्न, शूलाहत, प्रच्युत, मृदित, परिसर्पित, मर्दित, छिन्न, विद्ध उत्पिष्ट स्थानोंमें पाकको उत्पन्न करताहै तथा अपने स्वभावसे कण्ठ, छाती एवम् हृदयमें दाहको उत्पन्न करताहै ॥ ६१ ॥

लवणोरस पाचन.क्लेदनोदीपनश्च्यावनश्छेदनोभेदनस्तीक्ष्णसरोविकास्यध स्रंस्यवकाशकरोवातहर स्तम्भबन्धसंघातविधमन सर्वरसप्रत्यनीकभूतआस्यविस्रावयति कफंविष्यन्दयति मार्गाञ्छोधयति, सर्वशरीरावयवान्मृदूकरोति रोचयत्याहारमाहारयोगीचात्यर्थगुरु स्निग्धउष्णश्च ॥ ६२ ॥

लवण रस-पाचन है, क्लेदन है, दीपन है, च्यावन है, छेदन है, भेदन है, सर है, विकाशी है, संसन है, अवकाश है, वातनाशक है, स्तम्भनाशक है [illegible]

रत्वमुपपादयतिबलमादत्ते कर्षयति मोहयति वदनमुपशोषयति,
अपराश्च वातविकारानुपजनयति ॥ ६७ ॥

इन गुणोंवाला होनेपर भी तिक्त रस अत्यन्त सेवन कियाहुआ रूक्ष खर और विषद होनेसे रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, और शुक्रको सुखाताहै। रोममार्गोंका खरदरा करताहै, बलका हरताहै। शरीरको कृश करताहै, मोहको उत्पन्न करता है, मुखको सुखादेताहै एवम् विकारोंको उत्पन्न करताहै ॥ ६७ ॥

कषायोरसः संशमनः संग्राही सन्धारणः पीडनो रोपणः शोषणः स्तम्भनः श्लेष्मरक्तपित्तप्रशमनः शरीरक्लेदस्योपयोक्ता रूक्षः शीतोगुरुश्च ॥ ६८ ॥

कषाय रस—संशमन है, संग्राही है, संधारण है तथा पीडन, रोपण, शोषण और स्तम्भन करताहै। कफ तथा रक्तपित्तको शान्त करताहै, शरीरके क्लेदको हरताहै एवम् रूक्ष, शीतल और गुरु है ॥ ६८ ॥

सएवगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयुज्यमानआस्यशोषयति, हृदयं पीडयति, उदरमाध्मापयति, वाचनिगृह्णाति, स्रोतांस्यवबध्ना-ति, श्यावत्वमापादयति, पौंस्त्वमुपहन्ति, विष्टभ्यजरांगच्छति, वातमूत्रपुरीषाण्यवगृह्णाति, कर्षयति, ग्लापयति, तर्षयति, स्तम्भयति, खरविशदरूक्षत्वात्पक्षवधग्रहापतानकार्दितप्रभृ-तींश्चवातविकारानुपजनयतीति ॥ ६९ ॥

इन गुणवाला होनेपर भी कषायरस अत्यन्त व्यवहार किये जानेसे मुखको सुखाताहै, हृदयको पीडन करताहै, पेटमें अफारा करताहै, वाणीको जकड़ताहै, स्रोतोंको बन्द करताहै शरीरको काला बनाताहै, पुरुषत्वको नष्ट करताहै, युगपका शीघ्र होताहै, वात, मूत्र और मलको रोकताहै शरीरको कृश करताहै ग्लानि तथा तृषाको उत्पन्न करताहै एवम् खर विशद तथा रूक्ष स्वभाववाला होनेसे पक्षाघात, हनुस्तम्भ, अपतानक और अर्दित आदि वायुके रोगोंको उत्पन्न करताहै ॥ ६९ ॥

एवमेतेषड्रसाः पृथक्त्वेनचामात्रशः सम्यगुपयुज्यमानाउपकारकराअध्यात्मलोकस्यापकारकराः पुनरतोऽन्यथोपयुज्यमानास्तान्विद्वानुपकारार्थमेवमात्रशः सम्यगुपयोजयेदिति ॥ ७० ॥

इस प्रकार यह छओं रस पृथक् २ यथोचित मात्रासे उचित रीति पर सेवन किये हुए शरीरका उपकार करतेहैं। नहीं तो विकारोंको उत्पन्न करनेवाले होतेहैं अतएव

विद्वान मनुष्य इस लोक और परलोकके हितकी इच्छा करता हुआ रसोंको विधिवत उचित मात्रासे सेवन करे ॥ ७० ॥

रसोंके वीर्यका वर्णन ।

भवन्तिचात्र । शीतवीर्य्येणयद्द्रव्यमधुररसपाकयो । तयोर-म्लयदुष्णचयच्चोष्णकटुकतयो ॥ ७१ ॥

अब यहां पर कहा जाताहै कि जो द्रव्य रस और विपाकमें मधुर हो वह शीत वीर्य होताहै एवम जिस द्रव्यका रस और विपाक दोनो अम्ल हों वह उष्णवीर्य होताहै एवम जिस द्रव्यका रस और विपाक कटु हो वह भी उष्णवीर्य होताहै ॥७१॥

तेषांरसोपदेशेननिर्देश्योगुणसंग्रह ।

वीर्य्यतोविपरीतानांपाकतश्चोपदेक्ष्यते ॥ ७२ ॥

इस प्रकार द्रव्योंके रसके उपदेशसे रसोंके गुणका संग्रह किया गयाहै । अब वीर्य तथा पाकसे विपरीत नियमोंका कथन करते हैं ॥ ७२ ॥

यथापयोयथासर्पिर्यथावाचव्यचित्रकौ । एवमादीनिचान्यानि निर्दिशेद्रसतोभिषक् ॥ ७३ ॥ मधुरंकिञ्चिदुष्णस्यात्कषाय तिक्तमेव च । यथामहत्पञ्चमूलंयथाचानूपमामिषम् ॥७४॥

वैद्यको दूध, घृत, चव्य, चित्रक आदि द्रव्योंका रसानुसार वीर्य और विपाक जानना चाहिये कोइ २ मधुर द्रव्य तथा कोई कषाय द्रव्य एवम् कोइ द्रव्य उष्णवीर्य होतेहं । जैसे-बृहत्पंचमूलका कषाय तिक्त होनेपर भी उष्णवीर्य है । और अनूपसचारी जीवोंका मांस मधुर होनेपर भी उष्णवीर्य होता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

लवणंसैन्धवंनोष्णमम्लमामलकंतथा ।

अर्कागुरुगुडूचीनांतिक्तानामुष्णमुच्यते ॥ ७५ ॥

लवण हो तथा नमक लवणरस होनेपर भी और आमला अम्लरस होनेपर भी उष्ण वीर्य नहीं किन्तु शीतवीर्य होताहै । और आक अगर, गिलोय तिक्तरस होनेपर भी उष्णवीर्य कहे जाते हैं ॥ ७५ ॥

किंचिदम्लंहिसंग्राहिकिंचिदम्लंभिनत्तिच । यथाकपित्थंसं ग्राहिभेदिचामलकंतथा । पिप्पलीनागरंप्रायःकटुचावृष्यमुच्य ते ॥ ७६ ॥ कषायःस्तम्भनःशीतःसोऽभयारन्यथामतः । तस्माद्रसोपदेशेननसर्वंद्रव्यमादिशेत् ॥ ७७ ॥ दृष्टंतुल्यरसे.

प्त्वेवंद्रव्येद्रव्येगुणान्तरम् । रौक्ष्यात्कषायोरूक्षाणामुत्तमोम ध्यमः कटु ॥ ७८ ॥ तिक्तोऽवरस्तथोष्णानामुष्णत्वाल्लवण परः । मध्योऽम्ल कटुकश्चान्त्य.स्निग्धानामधुर पर । मध्योऽम्लोलवणश्चान्त्योरस स्नेहान्निरुच्यते ॥ ७९ ॥

कोई अम्लरस मग्राही अर्थात मलको बांधनेवाला होता है और कोई अम्लरस मलका भेदन करनेवाला (दस्त लानेवाला) होता है । जैसे–कपित्थका फल ग्राही अर्थात् मलको बांधनेवाला है और आमलाका फल भेदनकर्त्ता होताहै । कटुरस-प्राय. वृष्य नहीं होता परन्तु पीपल, सोंठ आदि कटु होनेपर भी वृष्य होते हैं । इसी प्रकार कषायरस मलको रोकनेवाला और शीतल होताहै परन्तु हरड कषायरस होनेपर भी दस्तावर और उष्ण है । इसी लिये रसमात्रके गुणसे ही द्रव्योंका गुण नहीं कहना चाहिये क्योंकि एकसे रसवाले द्रव्यामें भी दो प्रकारके गुण पाये जाते हैं । कषायरस सब प्रकारके रूक्ष रसोंमें प्रधान होता है । कटु रस मध्यम है और तिक्त रस रूक्षतामें कनिष्ठ होताहै एवम् सब प्रकारके उष्णतामें लवण रस प्रधान है । अम्ल रस मध्यम है । कटु रस कनिष्ठ है । स्निग्धविशिष्ट रसोंमें मधुर रस प्रधान है । अम्ल रस मध्यम है । लवण रस कनिष्ठ होताहै ॥७६॥७७॥७८॥७९॥

मध्य.कृष्टावरा शैत्यात्कषायस्वादुतिक्तका । तिक्तात्कषायोम धुर शीताच्छीततर पर. । स्वादुर्गुरुत्वादधिक कषायाल्लवणोऽवरः ॥ ८० ॥

इसी प्रकार शीतलतामें मीठा रस प्रधान है और कषाय रस मध्यम है तथा तिक्त रस कनिष्ठ है । जैसे तिक्तसे कषाय और कषायसे मधुर शीतलतामें गुणमें श्रेष्ठ माने जाते हैं । और गुरुतामें मधुररस प्रधान है कषाय मध्यम है और लवण रस कनिष्ठ होता है ॥ ८० ॥

अम्लात्कटुस्ततस्तिक्तोलघुत्वादुत्तमोमत । कनिष्ठघ्नामधरमिच्छन्तिलवणरसम् ॥ ८१ ॥ गौरवेलाघवेचैवसोऽवरस्त्वभयोरपि । परश्चातोविपाकानाल्लक्षणसम्प्रवक्ष्यते ॥ ८२ ॥

अम्लरस कटु और कटुसे तिक्त लघुतामें प्रधान होते हैं । [illegible] लवणरस लघुतामें विषमरूप सबमें निरूप होताहै तथा अम्ल और लवण रसोंमें लवण रसको गुरुतामें प्रधान हैं और लघुतामें कनिष्ठ है । अब इसके उपरान्त विपाकके लक्षणोंका वर्णन करते हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

विपाकका वर्णन।

कटुतिक्तकषायाणांविपाकःप्रायश कटु.।
अम्लोऽम्लंपच्यतेस्वादुमधुरलवणस्तथा ॥ ८३ ॥

कटु, तिक्त और कषाय रसका प्रायः कटु विपाक होताहै। अम्लरसका प्रायः अम्ल विपाक होताहै। मीठे और लवणरसका प्राय. मधुर विपाक होताहै ॥ ८३ ॥

मधुरोलवणाम्लौचस्निग्धभावात्त्रयोरसा.।
वातमूत्रपुरीषाणांप्रायोमोक्षेसुखामता ॥ ८४ ॥

मधुर, लवण और अम्ल यह तीनो रस स्निग्ध होनेसे वायु मूत्र और मल इनको सुखपूर्वक निकालते है ॥ ८४ ॥

कटुतिक्तकषायास्तुरूक्षभावात्त्रयोरसा ।
दु खाविमोक्षेदृश्यन्तेवातविण्मूत्ररेतसाम् ॥ ८५ ॥

कटु, तिक्त और कषाय यह तीन रस रूक्ष होनेसे वात, मूत्र, मल और शुक्रको सुखपूर्वक नहीं निकलने देते अर्थात् इनके निकलनेमे रुकावट डालतेहै ॥ ८५ ॥

शुक्रहाबद्धविण्मूत्रोविपाकोवातल.कटु ।
मधुर सृष्टविण्मूत्रोविपाकेकफशुक्रल ॥ ८६ ॥

कटुरस-विपाक होने पर शुक्रको हरताहै। मल मूत्रको नष्ट करताहै। वायुको उत्पन्न करताहै। मधुररस-विपाक होने पर मल, मूत्रको निकालताहै, कफ तथा वीर्यको उत्पन्न करताहै ॥ ८६ ॥

पित्तकृत्सृष्टविण्मूत्र पाकेऽम्ल शुक्रनाशन ।
तेषांगुरु.स्यान्मधुर कटुकाम्लावतोऽन्यथा ॥ ८७ ॥

अम्लरस-विपाक होने पर पित्तको करताहै, मल, मूत्र निकालताहै, वीर्यको नष्ट करताहै। उपर कहेहुए मधुर, अम्ल और कटु इन विपाकोमे मधुर विपाक गुरु है अम्ल मध्यम है और कटु लघिष्ठ है ॥ ८७ ॥

विपाकलक्षणस्याल्पमध्यभूयिष्ठतांप्रति ।
द्रव्याणांगुणवैशेष्यात्तत्रतत्रोपलक्षयेत् ॥ ८८ ॥

वैद्यको उचित है कि विपाक लक्षणोंकी अल्पता, मध्यता अधिकता विशेषकर द्रव्यमात्रके गुणकी विशेषता माफिक माने ॥ ८८ ॥

तीक्ष्णरूक्षंमृदुस्निग्धलघूष्णगुरुशीतलम् । वीर्य्यमष्टविधंकेचित्केचिद्द्विविधमास्थिता. ॥ ८९ ॥ शीतोष्णमितिवीर्य्यन्तुक्रियतेयेनयाक्रिया । नावीर्य्यंकुरुतेकिंचित्सर्वावीर्य्यकृताक्रिया ॥ ९० ॥

किसीके मतसे तीक्ष्ण, रूक्ष, मृदु, स्निग्ध, लघु, उष्ण, गुरु और शीतल इन भेदोंसे द्रव्योंका वीर्य आठ प्रकारका होताहै । कोई शीतल और उष्ण इन दो भेदोंसे दो प्रकारका ही मानते हैं । जिस शक्तिद्वारा शरीरमें क्रिया होतीहै उसको वीर्य कहते हैं । जितने द्रव्य है विना वीर्यके वह कुछ नहीं करसकते क्योंकि संपूर्ण क्रिया वीर्यके ही अधीन है । इसी लिये वीर्य नष्टहुआ द्रव्य किसी कामका नहीं होता ॥ ८९ ॥ ९० ॥

रसविपाक वीर्यके लक्षण ।

रसोनिपातेद्रव्याणांविपाक कर्म्मनिष्ठया ।
वीर्य्यंयावदधीवासान्निपाताच्चोपलभ्यते ॥ ९१ ॥

किसी पदार्थको मुखमें लेनेसे जो आस्वादन होताहै उसको रस कहतेहैं । रसका परिपाक होनेपर जो कुछ बनताहै उसको वीर्य कहतेहैं ॥ ९१ ॥

प्रभावका लक्षण ।

रसवीर्य्यविपाकानांसामान्यंयत्रलक्ष्यते ।
विशेष कर्मणांचैवप्रभावस्तस्यचस्मृत ॥ ९२ ॥

जिस द्रव्यके रस, वीर्य, विपाकमें कोई विशेषता प्रतीत न हो किन्तु कर्मसे विशेष रूपसे विशेषता पाई जाय उसको प्रभाव कहतेहैं । जैसे-विष तथा हीरा आदि ॥ ९२ ॥

कटुक कटुक पाकेवीर्य्योष्णश्चित्रकोमत ।
तद्वद्दन्तीप्रभावात्तुविरेचयतिमानवम् ॥ ९३ ॥

जैसे चित्रक रसमें कटु और पाकमें भी कटु तथा वीर्यमें भी उष्णवीर्य है वैसे ही दन्ती (जमालगोटेकी जड) भी स्वाद, विपाक, वीर्यमें उसके समान होनेहुए भी विरेचनका प्रभाव विशेषसे अधिक रखतीहै ॥ ९३ ॥

विषंविषघ्नमुक्तंयत्प्रभावस्तत्रकारणम् ।
ऊर्द्ध्वानुलोमिकंयच्चतत्प्रभावप्रभावितम् ॥ ९४ ॥

विषको विष ही नष्ट करताहै यह जो कहावत है इसमें भी प्रभाव ही कारण होताहै। कुछ द्रव्य जिस प्रकार स्वभिजानसे वमनादि ऊर्ध्वविरेचन करतेहैं उसी प्रकार दूसरे द्रव्योंमें अधोविरेचनका प्रभाव देखनेमें आताहै॥ ९४॥

मणीनांधारणीयानांकर्मयद्विविधात्मकम्।
तत्प्रभावकृततेषांप्रभावोऽचिन्त्यउच्यते॥ ९५॥

मणि आदि धारण करनेके जो द्रव्य हैं उनमें भी अच्छे और बुरे दो प्रकारके प्रभाव पाये जातेहैं। सो उनमें वह प्रभाव अचिन्त्य है॥ ९५॥

किञ्चिद्रसेनकुरुतेकर्म्मवीर्य्येणचापरम्। द्रव्यगुणेनपाकेनप्र-
भावेणचकिञ्चन॥ ९६॥ रसविपाकस्तौवीर्य्यंप्रभावस्तान-
पोहति। गुणसाम्येरसादीनामितिनैसर्गिकंबलम्॥ ९७॥
सम्यग्विपाकवीर्य्याणिप्रभावश्चाप्युदाहृत॥ ९८॥

कोई द्रव्य रससे, कोई वीर्यसे, कोई गुणसे, कोई विपाकसे एवम् कोई प्रभावसे अपनी क्रियाको करतेहैं॥ ९६॥ इन रस आदिकोंकी साम्यतामें विपाकक्रिया करनेमें रससे बलवान् है। वीर्य-रस, विपाक इन दोनोंसे बलवान् है एवम् प्रभाव-रस, वीर्य, विपाक इन तीनोंसे बलवान् है। इस प्रकार रसादिकोंमें पहिलेसे सदृश क्रिया करनेमें गुणकी अधिकता रहतीहै॥ ९७॥ इस प्रकार विपाक और वीर्य एवम् प्रभावका वर्णन किया गया है॥ ९८॥

मधुरादिरसोंके स्वरूप।

षण्णांरसानांविज्ञानमुपदेक्ष्याम्यत परम्। स्नेहनप्रीणनाह्लाद-
मार्दवैरुपलभ्यते॥ ९९॥ मुखस्थोमधुरश्चास्यव्याप्नुवँल्लिम्प-
तीवच। दन्तहर्षान्मुखस्रावात्स्वेदनान्मुखबोधनात्। विदाहा-
च्चास्यकण्ठस्यप्राश्यैवाम्लरसंवदेत्॥ १००॥

अब आगे ६ प्रकारके रसोंके विज्ञानका वर्णन करते हैं। जैसे मधुर रस स्नेहन, प्रीणन, आह्लादन, मृदुता यह गुण मधुर पदार्थके मुखमें रखने ही प्रतीत होने लगतेहैं और ऐसा प्रतीत होताहै कि मुखमें मधुर रस मानो लिपटा गया। इन लक्षणोंसे मधुर रसका ज्ञान होताहै जैसे अम्लरस-मुखमें धारण करते ही दन्तहर्ष होना, मुखसे स्राव होना, पसीने आना, मुखका उद्दीपन होना, खाते ही कण्ठमें दाह सा निकलना इन लक्षणोंसे खट्टे रसका विज्ञान होताहै॥ ९९॥ १००॥

प्रलीयनक्लेदविष्यन्दलाघवंकुरुतेमुखे ।
यःशीघ्रलवणोज्ञेय सविदाहान्मुखस्यच ॥ १०१ ॥

जो मुखमें देते ही झट लीन होजाय और गीलापन होकर लार बहनेलगे, शीघ्र लाघवताको करे, तथा मुखमें दाहको करे उसको लवणरस कहतेहैं ॥ १०१ ॥

संवेजयेद्योरसानांनिपातेतुदतीवच ।
विदहन्मुखनासाक्षिसंस्रावीसकटुःस्मृतः ॥ १०२ ॥

जो रस मुखमें डालते ही घबराहट सी पैदा करे, जीभमें सूईसी चुभे, मुखमें दाह और चरचराहट उत्पन्न करे एवम् मुख, नासिका, और नेत्रमेंसे पानीका स्राव करे उसको कटु रस कहतेहैं ॥ १०२ ॥

प्रतिहन्तिनिपातेयोरसनंस्वदतेनच ।
सतिक्तोमुखवैशद्यशोषप्रह्लादकारक ॥ १०३ ॥

जो रस जीभ पर गिरते ही जीभको बिगाडे और स्वाद बुरा प्रतीत हो और जीभको तथा मुखको विशद और शोषण करे एवम् मुखको कडुआ बनादे उसको तिक्त रस कहतेहैं ॥ १०३ ॥

वैशद्यस्तम्भजाड्यैर्योरसनंयोजयेद्रस । वध्नातीवचय कण्ठन्याय सविकास्यपीड़ति ॥ १०४ ॥

जो रस जीभको विशद स्तम्भ, जड़तायुक्त करे वाणी और कण्ठको जकड़सा देवे एवम् विकारी हो उसको कषाय (कसैला) रस कहतेहै ॥ १०४ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एवंवादिनभगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच । भगवन् श्रुतमेतद्वितथमर्थसम्पद्युक्तंभगवतोयथावद्द्रव्यकर्माधिकारेच परस्त्वाहारविकाराणांवैरोधिकानांलक्षणमनतिसंक्षेपेणोपदिश्यमानंशुश्रूषामहेति ॥ १०५ ॥

इस प्रकार कहनेहुए भगवान आत्रेयजीसे अग्निवेश कहने लगे कि हे भगवन् द्रव्यकर्माधिकारमें आपने जो कुछ उपदेश दियाहै वह यथार्थ और श्रेष्ठ अर्थ करके गुणसम्पन्न उसको श्रवण करलिया है । अब कृपा कर आहारके विषयम विरोधक तथा विरुद्ध गुणोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये । इस विषयमें आपसे उसको विना [illegible] श्रवण करनेकी इच्छा है ॥ १० [illegible] ॥

आत्रेयका उत्तर ।

तमुवाचभगवानात्रेयः । देहधातुप्रत्यनीकभूतानिद्रव्याणिदे-हधातुविरोधमापाद्यन्तेपरस्परविरुद्धानिकानिचित्संयोगात्सं-स्कारादपराणिदेशकालमात्रादिभिश्चापराणितथास्वभावाद-पराणि ॥ १०६ ॥

यह सुनकर आत्रेय भगवान् अग्निवेशसे कहनेलगे कि देह और धातुओंसे प्रतिकूल जितने ही द्रव्य हैं वह सब देह और धातुओंसे विरोधको उत्पन्न करतेहैं । बहुतसे द्रव्य ऐसे भी हैं जो आपसमें संयोग विरोधी होनेसे देहधातुओंमें विकारको उत्पन्न करतेहैं एवम् कोई गुणविरुद्ध होनेसे, कोई संयोगविरुद्ध होनेसे कोई संस्कारविरुद्ध होनेसे रोगोत्पादक होतेहैं तथा देश, काल, मात्रा आदिके विरुद्ध होनेसे भी द्रव्य शरीर और धातुओंसे विरोधी होताहै । कोई ऐसे द्रव्य भी हैं जो स्वभावसे ही विरुद्ध होतेहैं ॥ १०६ ॥

तत्रयान्याहारमधिकृत्यभूयिष्ठमुपयुज्यन्तेतेषामेकदेशंवैरोधिक-मधिकृत्योपदेक्ष्यामः ॥ १०७ ॥

उनमें जो द्रव्य सदैव आहारमें भोजनके उपयोगमें लिये जातेहैं उनके एकदेशमें विरोधकारक होनेका वर्णन करतेहैं ॥ १०७ ॥

संयोग विरुद्ध आहार ।

नमत्स्यान्पयसासहाभ्यवहरेदुभयंह्येतन्मधुरंमधुरविपाकान्म-हाभिष्यन्दिशीतोष्णत्वाद्विरुद्धवीर्य्यंविरुद्धवीर्य्यत्वाच्छोणित-प्रदूषणायमहाभिष्यन्दित्वान्मार्गोपरोधायच ॥ १०८ ॥

मछलियोंको दूधके संयोगसे सेवन करनेसे विरोध आजाताहै, क्योंकि यह दोनों मधुर हैं और मधुरविपाकवाले हैं । तथा अभिष्यन्दी हैं परन्तु शीत और उष्णवीर्य होनेसे विरोधीभावको प्राप्त हो रक्तको दूषित करतेहैं और महा अभिष्यन्दी होनेसे मार्गोंका रोकदेतेहैं । इसीलिये वीर्य गुण विरुद्ध होनेसे रक्तको दूषित कर कुष्ठ आदि रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ १०८ ॥

तदनन्तरमात्रेयवचनमनुनिशम्यभद्रकाप्योऽग्निवेशमुवाच ।
सर्वानेवमत्स्यान्पयसासहाभ्यवहरेत्, अन्यत्रैकस्माच्चिलिचि-मात् । सपुनः शल्कीलोहितनयनःसर्वतोलोहितराजिः रोहितप्रकारःप्रायो

प्रलीयनक्लेदविष्यन्दलाघवंकुरुतेमुखे ।
यःशीघ्रलवणोज्ञेय'सविदाहान्मुखस्यच ॥ १०१ ॥

जो मुखम देते ही झट रीन होजाय और गीलापन होकर लार बहनेलगे, शीघ्र लावबताको करे, तथा मुखमें दाहको करे उसको लवणरस कहतेहैं ॥ १०१ ॥

संवेजयेद्योरसानानिपातेतुदतीवच ।
विदहन्मुखनासाक्षिसंस्रावीसकटु'स्मृत. ॥ १०२ ॥

जो रस मुखम डालते ही घबराहट सी पैदा करे, जीभमें सूईसी चुभे, मुखम दाह और चरचराहट उत्पन्न करे एवम् मुख, नासिका, और नेत्रमसे पानीका स्राव करे उसको कटु रस कहतेहैं ॥ १०२ ॥

प्रतिहन्तिनिपातेयोरसनस्वदतेनच ।
सतिक्तोमुखवैशद्यशोषप्रह्लादकारक ॥ १०३ ॥

जो रस जीभ पर गिरते ही जीभको बिगाडे और स्वाद बुरा प्रतीत हो और जीभको तथा मुखको विशद और शोषण करे एवम् मुखको कडुआ बनादे उसको तिक्त रस कहतेहैं ॥ १०३ ॥

वैशद्यस्तम्भजाडयैर्योरसनयोजयेद्रस । बध्नातीवचय कण्ठस्रोतःसकषायः
पाय सविकास्यपिडति ॥ १०४ ॥

जो रस जीभको विशद स्तम्भ, जडतायुक्त करे वाणी और कण्ठको बन्धसा देवे एवम् विकाशी हो उसको कषाय (कसैला) रस कहतेहैं ॥ १०४ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एववादिनभगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच । भगवन् श्रुतमे-
तदवितथमर्थसम्पद्युक्तंभगवतोयथावद्द्रव्यकर्माधिकारेच
परन्त्वाहारविकाराणांविरोधिकानालक्षणमनतिसंक्षेपेणोपदि
श्यमानशुश्रूषामहेति ॥ १०५ ॥

इस प्रकार कहतेहुए भगवान आत्रेयजीसे अग्निवेश कहन लगे कि हे भगवन् द्रव्यकर्माधिकारमें आपने जो कुछ उपदेश कियाहै यह यथार्थ और श्रेष्ठ एवम् अर्थ गुणसम्पन्न उपदेश श्रवण करलिया है । अब कृपा कर आहारके विषयमें विरोधकारक तथा विरुद्ध द्रव्योंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये । इस विषयमे आपके उपदेश श्रवण करनेकी इच्छा है ॥ १०५ ॥

आत्रेयका उत्तर ।

तमुवाचभगवानात्रेयः । देहधातुप्रत्यनीकभूतानिद्रव्याणिदेहधातुविरोधमापाद्यन्तेपरस्परविरुद्धानिकानिचित्संयोगात्संस्कारादपराणिदेशकालमात्रादिभिश्चापराणितथास्वभावादपराणि ॥ १०६ ॥

यह सुनकर आत्रेय भगवान अग्निवेशसे कहनेलगे कि देह और धातुओंसे प्रतिकूल जितने ही द्रव्य हैं वह सब देह और धातुओंसे विरोधको उत्पन्न करतेहैं। बहुतसे द्रव्य ऐसे भी हैं जो आपसमें संयोग विरोधी होनेसे देहधातुओंमें विकारको उत्पन्न करतेहैं एवम् कोई गुणविरुद्ध होनेसे, कोई संयोगविरुद्ध होनेसे कोई संस्कारविरुद्ध होनेसे रोगोत्पादक होतेहैं तथा देश, काल, मात्रा आदिके विरुद्ध होनेसे भी द्रव्य शरीर और धातुओंसे विरोधी होतेहैं । कोई ऐसे द्रव्य भी हैं जो स्वभावसे ही विरुद्ध होतेहैं ॥ १०६ ॥

तत्रयान्याहारमधिकृत्यभूयिष्ठमुपयुज्यन्तेतेषामेकदेशंवैरोधिकमधिकृत्योपदेक्ष्याम ॥ १०७ ॥

उनमें जो द्रव्य सर्वत्र आहारमें भोजनके उपयोगमें लिये जातेहैं उनके एकदेशमें विरोधकारक होनेका वर्णन करतेहैं ॥ १०७ ॥

संयोग विरुद्ध आहार ।

नमत्स्यान्पयसासहाभ्यवहरेदुभयंह्येतन्मधुरमधुरविपाकान्महाभिष्यन्दिशीतोष्णत्वाद्विरुद्धवीर्य्यंविरुद्धवीर्य्यत्वाच्छोणितप्रदूषणायमहाभिष्यन्दित्वान्मार्गोपरोधायच ॥ १०८ ॥

मछलियोंको दूधके संयोगसे सेवन करनेसे विरोध आजाताहै, क्योंकि यह दोनों मधुर हैं और मधुरविपाकवाले हैं । तथा अभिष्यन्दी हैं परन्तु शीत और उष्णवीर्य होनेसे विरोधीभावको प्राप्त हो रक्तको दूषित करतेहैं और महा अभिष्यन्दी होनेसे मार्गोंको रोकदेतेहैं । इसीलिये वीर्य गुण विरुद्ध होनेसे रक्तको दूषित कर कुष्ठ आदि रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ १०८ ॥

तदनन्तरमात्रेयवचनमनुनिशम्यभद्रकाप्योऽग्निवेशमुवाच । सर्वानेवमत्स्यान्पयसासहाभ्यवहरेत्, अन्यत्रैकस्माच्चिलिचिमात् । सपुनःशकलीसर्वतोलोहितनयनः सर्वतोलोहितराजिः रोहितप्रकारप्रायो

मूर्छाचरनितश्चेत्पयसामहाभ्यवहरेन्नि ।सशयंशोणितजानांवि-बन्धजानांवाव्याधीनामन्यतममथवामरणंप्राप्नुयादिति॥१०९॥

इसके उपरान्त आत्रेय भगवान्के इस उपदेशको सुनकर भद्रकाप्य ऋषि और आगे कहनेलगे कि चिलचिमनामक मछलीके सिवाय और मछलियोंको दूधके संयोगसे चाहे खाया भी जाय परन्तु चिलचिम मछलीको कभी न खाना चाहिये चिलचिम मछलीके शरीरमें कांटे और लालवर्णकी रेखा होती हैं तथा रोहित मछलीके आकारकी होती है और कीचड पर फिरा करती है यदि उसको दूधके साथ सेवन कियाजाय तो निश्चय ही रक्तजन्य तथा विषधजनित रोग उत्पन्न होकर खानेवाला मृत्युको प्राप्त होजाय ॥ १०९ ॥

नेतिभगवानात्रेय । सर्वानेवमत्स्यान्नपयसाभ्यवहरेद्विशेषत-स्तुचिलिचिमंसहिमहाभिष्यन्दितमत्वात्स्थूललक्षणतरानेना-न्व्याधीनुपजनयत्यामविषमुदीरयति च ॥ ११० ॥

भगवान आत्रेय कहने लगे कि किसी भी मछलीको दूधके साथ नहीं खाना चाहिये और चिलचिम मछलीको कभी भूलकर भी दूधके संयोगसे नहीं खाना चाहिये क्योंकि अभिष्यन्दी होनेसे महाव्याधियोंको उत्पन्न करती है तथा शरीरमें आम विषको बढाया करती है ॥ ११० ॥

ग्राम्यानूपौदकपिशितानिमधुतिलगुडपयोमाषमूलकबिसैर्वि-रूढधान्यैश्चनैकध्यमश्नीयात् । तन्मूलंहिबाधिर्यान्ध्यवेपथुजा-ड्यविकल्मूकतामैन्मिण्यमथवामरणमाप्नोति ॥ १११ ॥

ग्राम्य जीवोंका मांस, अनूपदेशवासी जीवोंका मांस, जलचर जीवोंका मांस, शहद, तिल, गुड, दूध, उडद, मूली, बिस, विरूढधान्य इन सबको मिलाकर एक समय भक्षण नहीं करना चाहिये । ऐसा करनेसे मनुष्य बहरापन, अंधता, कम्प, जडता, विकलता, मूकता, मिनमिनता अथवा मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १११ ॥

नपौष्कररोहिणीकंशाकंकपोतान्सार्षपतैलभृष्टान्मधुपयो-भ्यांसहाभ्यवहरेत् । तन्मूलंहिशोणिताभिष्यन्दधमनीप्रति-चयापस्मारशङ्खकगलगण्डरोहिणीनामन्यतमंप्राप्नोत्यथ-वामरणमिति ॥ ११२ ॥

शहद और दूधके साथ पुष्करपत्र और रोहिणीका साग नहीं खाना चाहिये। सरसोंके तेलमें भूना कपोतका मांस दूध और शहदके साथ नहीं खाना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यके शरीरमें रक्तका छेद, धमनियोंका फड़कना, अपस्मार, कलपर्दीके रोग, गलगण्ड और रोहिणी आदि रोग उत्पन्न होतेहैं अथवा मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ११२ ॥

नमूलकलशुनकृष्णगन्धार्जकसुमुखसुरसादीनिभक्षयित्वापय

सेव्यकुष्ठाबाधभयात् ॥ ११३ ॥

मूली, ल्हसन, काली तुलसी, श्वेत तुलसी, वनतुलसी आदि खाकर ऊपरसे दूध पीना कुष्ठरोगको उत्पन्न करताहै। इसलिये ऐसा न करे ॥ ११३ ॥

नजातुशाकनलिकुचंपक्वंमधुपयोभ्यासहोपयोज्यम् । एतद्धि

मरणायाथवाबलवर्णतेजोवीर्य्योपरोधायालघुव्याधयेषाण्ढ्या-

यच ॥ ११४ ॥ ॥

संपूर्ण शाक तथा कन्हर, शहद इन सबको दूधके साथ मिलाकर नहीं खाना चाहिये ऐसा करनेसे मृत्यु होतीहै अथवा बल, वर्ण, तेज और वीर्य नष्ट होतेहैं और महारोग तथा नपुंसकता उत्पन्न होतीहै। कोई कहतेहैं कि मूलमें जातुशाक जो लिखाहै वह घासकी कोंपलका वाचक है ॥ ११४ ॥

तदेवलिकुचपक्वनमाषसूपगुडसर्पिर्भिःसहोपयोज्यवैरोधकत्वा-

त्॥११५॥तथाम्रातकमातुलुङ्गलिकुचकरमर्दमोचदन्तशठबदर-

कोशाम्रभव्यजाम्बवकपित्थतिन्तिडीकपारावताक्षोटपनसना

लिकेरदाडिमामलकान्येवम्प्रकाराणिचान्यानिसर्वंचाम्लद्रव्य

मद्रवचपयसासहविरुद्धम् ॥ ११६ ॥

इसी प्रकार पकेहुए कन्हरको उड़दकी दाल, गुड़, और घीके संग नहीं खाना चाहिये क्योंकि यह भी विरोधकारक है ॥ ११५ ॥ अम्बाडा, बिजौरा, कन्हर, करौंदा, मोच (गदजनेकी फली), जम्भीरी नीबू, बेर, कोशाम्र, भव्यात्र (कमरख), जामुन, कैथ, इमली, पारावत (लवलीफल) अखरोट, पीलू, बड़हर, नारियल, अनार, आंवले एवम् जितने प्रकारके खटाई तथा खट्टे द्रव तथा कांजी आदि द्रव्यहैं वह दूधके साथ नहीं खाना चाहिये ॥ ११६ ॥

कंगुवरकमकुष्टककुलत्थमाषनिष्पावाःपयसासहविरुद्धाःपद्मो

त्तरिकाशाकशार्करमैरेयमधुचसहोपयुक्तंविरुद्धंवातंचातिको-

शहद और घी दोनों बराबर मिलाकर खाना, अथवा शहद और आकाशका जल या शहद और कमरखट्टे अथवा शहद पीकर गर्म जल पीना एवम् भेलावा खाकर गर्म जल पीना विषके समान होताहै ॥ १२४ ॥

तक्रसिद्धः कम्पिल्लकः पर्युषिताकाकमाची, अङ्गारशूल्योभासश्चेति विरुद्धानीत्येतद्यथाप्रश्नमभिनिर्दिष्टम् ॥ १२५ ॥

कमीलेको छाछमें सिद्ध करके खाना, बासी मकोयका साग और भासको (शूलमें तपाया मास) ये विरुद्ध भोजन है। इस प्रकार जैसे तुमने पूछा वैसा हमने यथोचित रीति पर विरुद्ध आहारका वर्णन करदियाहै ॥ १२५ ॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः।

यत्किञ्चिद्दोषमास्राव्य न निर्हरति कायतः ।
आहारजातं तत्सर्वमहितायोपपद्यते ॥ १२६ ॥

यहां श्लोक हैं -कि जो आहार दोषोंको कुपित कर देहसे बाहर नहीं निकालता वह सब अहितकर्त्ता जानना चाहिये ॥ १२६ ॥

यच्चापि देशकालाग्निसात्म्यासात्म्यानिलादिभिः । संस्कारतो वीर्य्यतश्च कोष्ठावस्थाक्रमैरपि ॥ १२७ ॥ परिहारोपचाराभ्यां पाकात्संयोगतोऽपि च । विरुद्धं तच्च न हितं हृत्सम्पद्विधिभिश्च यत् ॥ १२८ ॥

जो द्रव्य देश, काल और अग्नि, सात्म्य, असात्म्य इनसे विरुद्ध हो और वायु आदिसे करके प्रतिकूल हो तथा संस्कारसे अथवा वीर्यसे अथवा परिहारसे, परिहार अथवा उपचारसे, परिपाकसे अथवा-संयोगसे अथवा हार्दिक सम्पत्तिसे विरुद्ध हो वह सब पदार्थ हानिकारक और रोगोत्पादक होते हैं ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

विरुद्धं देशतस्तावद्रूक्षतीक्ष्णादि धन्वनि ।
आनूपे स्निग्धशीतादि भेषजं यन्निषेव्यते ॥ १२९ ॥

अब देशविरुद्धोंका वर्णन करतेहैं । रूखा और तीक्ष्ण पदार्थ मिलाकर सेवन करना धन्व (जङ्गलदेश) देशमें विरुद्ध है। स्निग्ध और शीत आदि पदार्थ मिलाकर खाना अनूपदेशमें विरुद्ध है ॥ १२९ ॥

कालतोऽपि विरुद्धं यच्छीतरूक्षादिसेवनम् ।
शीतकाले तथोष्णे च कटुकोष्णादिसेवनम् ॥ १३० ॥

शीत और रूक्ष पदार्थोंको मिलाकर शीतकालमें सेवन करना कालविरुद्ध है तथा उष्ण, कटु पदार्थोंका उष्णकालमें सेवन करना कालविरुद्ध होताहै ॥ १३० ॥

विरुद्धमनलेतद्वन्नानुरूपचतुर्विधे । मधुसर्पिःसमघृतंमात्रया तद्विरुध्यते ॥ १३१ ॥ कटुकोष्णादिसात्म्यस्यस्वादुशीतादि सेवनम् । यत्तत्सात्म्यविरुद्धन्तुविरुद्धंत्वनलादिभिः ॥ १३२ ॥

जो ४ प्रकारकी अग्नि प्रतिकूल हो वह अग्निविरुद्ध होताहै । मधु और घृतको समान भागमें मिलाकर खाना मात्राविरुद्ध होताहै । उष्ण प्रकृतिके मनुष्योंको चरपरा आदि उष्ण पदार्थ सात्म्य विरुद्ध है । एवम् शीतल और मधुर आदि सेवन सात्म्य विरुद्ध है । जो पदार्थ अग्नि आदिसे विरुद्ध होताहै वह सब ही सात्म्यविरुद्ध जानना ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

यासमानगुणाभ्यासविरुद्धान्नौषधक्रिया ।
संस्कारतोविरुद्धन्तद्यद्भोज्यंविषवद्भवेत् ॥ १३३ ॥

जो द्रव्य गुणसे और अभ्याससे विरुद्ध हो वह औषध क्रियामें नहीं देना चाहिये क्योंकि गुण, अभ्यास, संस्कार और प्रकृतिसे विरुद्ध पदार्थ विषके समान मनुष्यको मारडालनेवाले होते है ॥ १३३ ॥

एरण्डसीसकासक्तं शिखिमांसन्तथैव हि । विरुद्धवीर्यं तज्ज्ञेयं वीर्यतः शीतलात्मकम् ॥ १३४ ॥ तत्सर्पिर्योष्णवीर्येण द्रव्ये-णसहसेव्यते । क्रूरकोष्ठस्यचात्यल्पमन्दवीर्यमभेदनम् ॥ १३५ ॥ मृदुकोष्ठस्यगुरुचभेदनीयन्तथाबहु । एतत्कोष्ठविरुद्धन्तुविरुद्ध स्यादवस्थया ॥ १३६ ॥ श्रमव्यवायव्यायामसक्तस्यानिलको पनम् । निद्रालसस्यालसस्यभोजनंश्लेष्मकोपनम् ॥ १३७ ॥

एरण्डके भस्ममें सिका हुआ मोरका मांस संस्कारविरुद्ध होताहै । उष्णवीर्य द्रव्यके साथ शीतवीर्य द्रव्यको मिलाकर खाना वीर्यविरुद्ध कहा जाताहै । क्रूरकोष्ठवाले मनुष्यको अभेदनकारी पदार्थ थोड़ा मृदुकोष्ठवालोंको भारी और अधिकरेचक पदार्थ खाना कोष्ठविरुद्ध कहा जाताहै । श्रम मैथुन और व्यायाममें आसक्त मनुष्यको वातकारक पदार्थ निद्रा और आलस्यवालोंको कफकारक भोजन अवस्थाविरुद्ध कहा जाताहै ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

यच्चानुत्सृज्यविण्मूत्रंभुङ्क्तेयश्चानुभुक्षित ।
तच्चकर्मविरुद्धंस्याद्यच्चातिक्षुद्वशानुग ॥ १३८ ॥

जो मनुष्य मल, मूत्रके त्याग किये विना अथवा विना भूखके भोजन करताहै तथा अत्यन्त भूख लगने पर भोजन नहीं करताहै। उसको कर्मविरुद्ध कहतेहैं॥१३८॥

परहारविरुद्धन्तुवराहादीन्निपेव्ययत् ।
सेवेतोष्णघृतादींश्चपीत्वाशीतनिपेवते ॥ १३९ ॥

वाराह आदिका मास खाकर गम पदार्थोंका सेवन करना और घृत आदि पदार्थोंको पीकर शीत पदार्थोंका सेवन करना भी आहारविरुद्ध कहा जाताहै ॥ १३९ ॥

विरुद्धपाकनश्चापिदुष्टदुर्दारुसाधितम् ।
अपक्वतण्डुलात्यर्थपक्वदग्धचयद्भवेत् ॥ १४० ॥

विपैली लकडियोंकी अग्निसे सिद्ध किया पदार्थ गरम करके, जले भुन चावल आदिक पाकविरुद्ध कहे जातेहै ॥ १४० ॥

संयोगतोविरुद्धतद्यथाम्लपयसासह ।
अमनोरुचितयच्चहृद्विरुद्धतदुच्यते ॥ १४१ ॥

खट्टे पदार्थोंको दूधमें मिलाकर खाना संयोगविरुद्ध होताहै। मनको बुरा लगनेवाला पदार्थ हृदयमें विरुद्ध कहा जाताहै ॥ १४१ ॥

सम्पद्विरुद्धतद्विद्यादसञ्जातरसन्तुतत् ।
अतिक्रान्तरसवापिविपन्नरसमेववा ॥ १४२ ॥

जिस पदार्थमें यथोचित परिपक्व होकर रस न बनगया हो उसको सम्पद्विरुद्ध कहतेहैं। एवम् जिसका रस नष्ट होगयाहो अथवा नष्ट होगयाहो उसको भी सम्पद्विरुद्ध कहतेहैं ॥ १४२ ॥

ज्ञेयविधिविरुद्धन्तुभुज्यतेनिभृतेनयत् ।
तदेवविधमन्नस्याद्विरुद्धमुपयोजितम ॥ १४३ ॥

जो मनुष्य मानन कियाहुआ होने पर फिर भोजन करे अथवा स्वयं भोजन करे या स्वेदन आदिसे नम होनेपर एकदम अन्नका भोजन करनाय उसको विधिविरुद्ध कहतेहैं। इस प्रकार भोजनकी विरुद्धताका वर्णन कियागयाहै ॥ १४३ ॥

सात्म्यतोऽल्पतयावापिदीप्ताग्नेस्तरुणस्यच ।
स्नेहव्यायामबलिनोविरुद्धंवितथंभवेत् ॥ १४४ ॥

तत्रश्लोका ।

मतिरासीन्महर्षीणायायारसविनिश्चये । द्रव्याणिगुणकर्म-भ्याद्रव्यसंख्यारसाश्रया' ॥ १४९ ॥ कारणरससंख्याचरसानु-रसलक्षणम् । परादीनांगुणानाञ्चलक्षणानिपृथक्पृथक् ॥१५०॥ पञ्चात्मकानांपट्त्वञ्चरसानायेनहेतुना । ऊर्द्ध्वानुलोमभाजश्च यद्गुणातिशयाद्रसाः ॥ १५१ ॥ षण्णारसानापट्चैवसुविभ-क्ताविभक्तय । उद्देशश्चापविद्धश्चद्रव्याणांगुणकर्मणि ॥१५२॥ प्रवरावरमध्यत्वरसानांगौरवादिषु । पाकप्रभावयोर्लिङ्गवीर्य्य-संख्याविनिश्चय ॥ १५३ ॥ षण्णामास्वाद्यमानानारसानां यत्स्वलक्षणम् । यद्यद्विरुध्यतेतस्मायेनयत्कारिचैवयत् ॥१५४॥ वैरोधिकनिमित्तानाव्याधीनामौषधञ्चयत् । आत्रेयभद्रकाप्यी-येतत्सर्वमवदन्मुनि ॥ १५५ ॥

इत्यन्नपानचतुष्कआत्रेयभद्रकाप्यीयोनामषड्विंशोऽध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करते हैं—कि इस आत्रेय भद्रकाप्यीय अध्यायमें रसोंके विषयमें महर्षियोंके मत, द्रव्योंके गुण, कर्म, द्रव्यसंख्या, रसका आश्रय, रसोंका कारण, रससंख्या, रस तथा अनुरसके लक्षण, पर, अपरादि-विशेष गुणोंका वर्णन, रसोंका पंचभूतात्मक होना और उनके ६ भेद तथा उनका कारण भूतगुणविशिष्ट रसोंसे ऊर्द्ध्वशोधन, और अनुलोमन ६ रसोंके यथोचित विभाग, द्रव्योंके गुण कर्मके सम्बन्धमें उद्देश और अपवाद, गौरव आदि गुणोंमें रसोंकी प्रधानता मध्यता एवम् निकृष्टता, विपाक और प्रभावके लक्षण, वीर्य, संख्या आस्वादन द्वारा ६ रसोंके पृथक्पृथक् लक्षण, जो द्रव्य जिससे मिलाये जानेपर विरुद्ध होजाताहै और जो द्रव्य विरुद्ध होनेपर जिस जिस प्रकार विकार करताहै एवम् विरुद्ध भोजनसे उत्पन्न हुए रोगोंकी चिकित्सा यह सब भगवान् पुनर्वसुजीने वर्णन कियाहै ॥ १४९ ॥ ॥ १५० ॥ १५१ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

इति श्रीमन्महर्षिचरक० सू० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायामात्रेयभद्रकाप्यीयो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथातोऽन्नपानविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः इति ह स्माह भगवा-
नात्रेयः ।

अब हम अन्न पानविधि नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं ऐसा आत्रेय भग-
वान कहने लगे ।

अन्नपानकी उत्कृष्टता ।

इष्टवर्णगन्धरसस्पर्शविधिविहितमन्नपानप्राणिनाप्राणसंज्ञका-
नाप्राणमाचक्षतेकुशला । प्रत्यक्षफलदर्शनादिन्धनाद्यन्त-
रग्ने स्थितिस्तत्सत्त्वमूर्जयति । तच्छरीरधातुव्यूहबलव-
र्णेन्द्रियप्रसादकरंयथोक्तमुपसेव्यमानंविपरीतमहितायसम्प-
द्यते ॥ १ ॥

सुन्दर गंधवर्णवाले तथा सुखप्रद रसवाले और पवित्र स्पर्शयुक्त तथा यथार्थ
रीति पर बनाये हुए अन्न पान प्राणियोंके प्राण माने जाते हैं बुद्धिमानोंका ऐसा कथन
है। यथार्थ देखनेमें भी ऐसा ही आता है कि उनसे आहार ही अंतराग्निके इंधन
स्वरूप है तथा मनुष्योंके प्राणोंको धारण करनेका हेतु है। उचित रीतिसे
सेवन किया हुआ अन्न पान धातुओंको बलवान करता है तथा वर्णकारक है। इन्द्रि-
योंको प्रसन्न करता है और अनुचित रीतिसे सेवन किया हुआ हानिकारक होता है॥१॥

तस्माद्धिताहितावबोधनार्थमन्नपानविधिमखिलेनोपदेक्ष्यामोऽ-
ग्निवेश ॥ २ ॥

हे अग्निवेश ! अब हम अन्न पानका हित और अहित जान लेनेके लिये संपूर्ण
अन्नपान विधिका वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

अन्नपानादिके स्वाभाविक धर्म ।

तत्र स्वभावादुदकं क्लेदयति, लवणंविष्यन्दयति, क्षारःपाचयति,
मधुसन्दधाति सर्पिःस्नेहयति क्षीरंजीवयति, मांसंबृंहयति,
रसःप्रीणयति सुराजर्जरीकरोति, सीधुरवधमयति द्राक्षा-
सवोदीपयति फाणितमाचिनोति दधिशोफंजनयति पिण्या-

कशाकंग्लपयति, प्रभूनान्तर्मलोमापसृप, हृष्टिशुक्रघ्नःक्षार, प्राय.पित्तलमम्लमन्यत्रमधुनःपुराणाच्चशालियवगोधूमात्,प्राय.सर्वंतिक्तंवातलमवृष्यञ्चान्यत्रवेत्राग्रपटोलात्, प्रायःकटुक वातलमवृष्यञ्चान्यत्रपिप्पलीविश्वभेषजात ॥ ३ ॥

सो उस अन्न पानमें जल स्वभावसे ही क्लेदकारक होताहै,लवण विष्यन्दकारक होताहै, क्षार पाचनकर्त्ता होताहै, शहद व्रणमथानकारक होताहै, घृत स्नेहन है, दुग्ध जीवन है, मास वृंहण है, रस प्रीणन है, मद्य जीर्णकारी है, सीधु अवधमनकारी है, दाख दीपनकर्त्ता है, फाणित दोषोका सचय करताहै, दही सूजन करता है, पिण्याक तथा शाक ग्लानिकारक होताहै । उडदोका जुस मलको बढानेवाला है । क्षार दृष्टि तथा वीर्यका नाश करताहै । खटाई पित्तको उत्पन्न करताहै, शहद, पुराने शालिचावल, यव और गेहूके सिवाय सब प्रकारके मीठे द्रव्य कफोत्पादक होतेहै । इसी प्रकार बेतकी कोंपल और पटोलके सिवाय सब कडुए द्रव्य वायुको बढानेवाले होतेहैं एवम् पीपल और सोठके सिवाय सब प्रकारके चरपरे द्रव्य वीर्यनाशक, कृशकर्त्ता एवम् वातल होतेहै ॥ ३ ॥

परमतोवर्गसंग्रहेणाहारद्रव्याण्यनुव्याख्यास्याम ॥ ४ ॥

अब हम आगे वर्गसग्रहपूर्वक आहारद्रव्योंकी व्याख्या करतेहै ॥ ४ ॥

वर्गोंके नाम ।

शूकधान्यशमीधान्यमासशाकफलाश्रयान् । वर्गान्हरितमद्याम्बुगोरसेक्षुविकारिकान् ॥ ५ ॥ दशद्वौचपरौवर्गौकृतान्नाहारयोगिनाम् । रसवीर्य्यविपाकैश्चप्रभावैश्चोपदेक्ष्यते ॥ ६ ॥

जैसे शूकधान्यवर्ग, शमीधान्यवर्ग, मासवर्ग, शाकवर्ग, फलवर्ग, हरितवर्ग, मद्यवर्ग, जलवर्ग, गोरसवर्ग, इक्षुवर्ग यह अलग अलग दश वर्ग तथा कृतान्नवर्ग, तैलवर्ग और अनुपानादिवर्ग यह सब आहारके उपयोगी होनेसे रस, वीर्य, विपाक तथा प्रभावसहित वर्णन करतेहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ शूकधान्यवर्ग ।

रक्तशालिर्महाशालि कलम शकुनाहृत । तूर्णकोदीर्घशूकश्च गौर पाण्डुकलागुलौ ॥ ७ ॥ सुगन्धिकोलोहवाल शालिवा-

सप्तविंशोऽध्यायः।

अथातोऽन्नपानविधिमध्यायंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेय.।

अब हम अन्न पानविधि नामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं ऐसा आत्रेय भगवान कहने लगे।

अन्नपानकी उत्कृष्टता।

इष्टवर्णगन्धरसस्पर्शविधिविहितमन्नपानप्राणिनाप्राणसंज्ञकानाप्राणमाचक्षतेकुशला। प्रत्यक्षफलदर्शनात्तदिन्धनाह्यन्तराग्ने.स्थितिस्तदेवसत्त्वमूर्जयति। तच्छरीरधातुव्यूहबलवर्णेन्द्रियप्रसादकरंयथोक्तमुपसेव्यमानविपरीतमहितायसम्पद्यते॥ १॥

*सुन्दर गंधवर्णवाले तथा सुसपन्न रसवाले और पवित्र स्पर्शयुक्त एवम् यथार्थ रीति पर बनायेहुए अन्न पान प्राणियोंके प्राण मानेजातेहैं बुद्धिमानोंका ऐसा कथन है। यथार्थ देखनेमे भी ऐसा ही आताहै कि उत्तम आहार ही अंतराग्निके लिये इंधन स्वरूप है एवम् मनुष्योंके प्राणोंको धारण करनेका हेतु है। उचित रीतिपर सेवन किया हुआ अन्न पान धातुओंको बलवान करताहै तथा वर्णकारक है। इन्द्रियोंको प्रसन्न करताहै और अनुचित रीतिपर सेवन किया हुआ हानिकारक होताहै॥१॥

तस्माद्धिताहितावबोधनार्थमन्नपानविधिमखिलेनोपदेक्ष्यामोऽग्निवेश॥ २॥

हे अग्निवेश! अब हम अन्न पानका हित और अहित ज्ञान होनेके लिये संपूर्ण अन्नपान विधिका वर्णन करतेहैं॥ २॥

अन्नपानादिके स्वाभाविक कर्म।

तत्स्वभावादुदकंक्लेदयति, लवणंविष्यन्दयति, क्षारं पाचयति, मधुसन्दधाति सर्पि स्नेहयति, क्षीरजीवयति, मांसबृंहयति, रस प्रीणयति, सुराजर्जरीकरोति, शीधुअवधमयति, द्राक्षारसोदीपयति फाणिनमाचिनोति दधिशोफजनयति, पिण्या-

कशाकरूलपयति, प्रभूनान्तर्मलोमापसृप, दृष्टिशुक्रघ्नःक्षार, प्राय.पित्तलमम्लमन्यत्रमधुनःपुराणाच्चशालियवगोधूमात्,प्राय सर्वतिक्तंवातलमवृष्यश्चान्यत्रवेत्राग्रपटोलात्, प्रायःकटुक वातलमवृष्यश्चान्यत्रपिप्पलीविश्वभेषजात ॥ ३ ॥

सो उन अन्न पानम जल स्वभावसे ही छेदकारक होताहै,लवण विष्यन्दकारक होताहै, क्षार पाचनकर्त्ता होताहै, शहद व्रणसन्धानकारक होताहै, घृत स्नेहन है, दुग्ध जीवन है, मास बृहण है, रस प्रीणन है, मद्य जीर्णकारी है, सीधु अवमनकारी है, शराब दीपनकर्त्ता है, फाणित दोषोंका सचय करताहै, दही सूजन करता है, पिण्याक तथा शाक ग्लानिकारक होताहै। उडदोंका यूष मलको बढानेवाला है। क्षार दृष्टि तथा वीर्यका नाश कर्ताहै। खटाई पित्तको उत्पन्न कर्ताहै, शहद, पुराने शालिचावल, यव और गेहूं के सिवाय सब प्रकारके मीठे द्रव्य कफोत्पादक होतेहैं। इसी प्रकार वेतकी कोंपल और पटोलके सिवाय सब कडुए द्रव्य वायुको बढानेवाले होते हैं एवम् पीपर और सोठके सिवाय सब प्रकारके चरपरे द्रव्य वीर्यनाशक, कृशकर्त्ता एवम् वातल होतेहैं ॥ ३ ॥

परमतोवर्गसंग्रहेणाहारद्रव्याण्यनुव्याख्यास्याम ॥ ४ ॥

अब हम आगे वर्गसग्रहपूर्वक आहारद्रव्योंकी व्याख्या करतेहैं ॥ ४ ॥

वर्गोंके नाम।

शूकधान्यशमीधान्यमासशाकफलाश्रयान्। वर्गान्हरितमद्याम्बुगोरसेक्षुविकारिकान् ॥ ५ ॥ दशद्वौचपरोवर्गौकृतान्नाहारयोगिनाम्। रसवीर्य्यविपाकैश्चप्रभावैश्चोपदेक्ष्यते ॥ ६ ॥

जैसे शूकधान्यवर्ग, शमीधान्यवर्ग, मासवर्ग, शाकवर्ग, फलवर्ग, हरितवर्ग, मद्यवर्ग, जलवर्ग, गोरसवर्ग, इक्षुवर्ग यह अलग अलग दश वर्ग तथा कृतान्नवर्ग, तैलवर्ग और गुणव्याख्यावर्ग यह सब आहारके उपयोगी होनेसे रस, वीर्य, विपाक तथा प्रभावोंसहित वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ शूकधान्यवर्ग।

रक्तशालिर्महाशालि कलम शकुनाहृत । तूर्णकोदीर्घशूकश्च गौर पाण्डुकलाङ्गुलौ ॥ ७ ॥ सुगन्धिकालोहवाला शारिवा-

स्या.प्रमोदका ॥ पतङ्गास्तपनीयाश्चयेचान्येशालय.शुभा. ॥
॥ ८ ॥ शीतारसेविपाकेचमधुरा स्वल्पमारुता: । बद्धाल्पवर्च-
स:स्निग्धावृंहणा.शुक्रमूत्रला: ॥ ९ ॥

रक्तशालि, महाशालि, कलमशालि, शकुनाहृत, चूर्णक, दीर्घशूक, गौर, पाण्डुक, कागुल, सुगंधिक, लोहवाल, शालिका, शालिय, प्रमोदक, तपनीय, पतग इनके सिवाय और भी जो उत्तम २ चावलोंकी जातियें है वह सब शीतवीर्य, रस और पाकमें मधुर किंचित् वातकारक, मलको बांधनेवाले, अल्पमलकारक, चिकने, बृंहण, वीर्य तथा मूत्रको बढानेवाले होतेहै । प्रायः यह उत्तम जातिके चावलोंके गुण है ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

शालिधान्योंके गुण ।

रक्तशालिर्वरस्तेषातृष्णाघ्नस्त्रिमलापह ।
महांस्तस्यानुकलमस्तस्याप्यनुततःपरे ॥ १० ॥

लालरंगके शालिचावल इनमें श्रेष्ठ मानगयेहै तथा तृषा और त्रिदोषको नष्ट करतेहै । रक्तशालि चावलोंकी अपेक्षा मोटे शालिचावल और मोटे शालिचावलोंकी अपेक्षा कलमचावल हीनगुण होते है । इसी प्रकार पीछेसे दूसरे हीनगुण जानने चाहिये ॥ १० ॥

यवकादिका वर्णन ।

यवकाहायना पांशुवाप्योनैषधकादय ।
शालीनाशालय कुर्वन्त्यनुकारंगुणागुणे ॥ ११ ॥

यवकधान्य, हायनधान्य, पांशुधान्य तालावके धान्य, नैषधकधान्य, यह भी सब चावलोंकी जाति तथा गुणागुणकी अपेक्षासे उत्तरोत्तर हीनगुण जानने चाहिये ॥ ११ ॥

साठीचावलोंके गुण ।

शीत स्निग्धोगुरु स्वादुस्त्रिदोषघ्न स्थिरात्मक ।
षष्टिक.प्रवरोगौर कृष्णगौरस्ततोऽनुच ॥ १२ ॥

साठिकधान्य-शीतल चिकने, भारी, मधुर एवम त्रिदोषनाशक, शरीरको स्थिर करनेवाले होतेहै । इनमें भी श्वेतवर्णके षाष्टिक चावल उत्तम और कृष्णवर्णके हीनगुण होतेहै ॥ १२ ॥

वरकोद्दालकचीनशारदोज्ज्वलदर्दुराः ।
गन्धलाःकुरुविन्दाश्चषष्टिकाल्पान्तरागुणैः ॥ १३ ॥

वरकधान्य, उद्दालक, चीना, शारद, उज्ज्वल, दर्दुर, गधल, कुविन्द आदिक धान्य षाष्टिक चावलकी अपेक्षा किंचित् हीनगुण होतेहैं ॥ १३ ॥

व्रीहि और पाटलके गुण ।

मधुरश्चाम्लपाकश्चव्रीहिःपित्तकरोगुरुः ।
बहुमूत्रपुरीषोष्मात्रिदोषस्त्वेवपाटलः ॥ १४ ॥

व्रीहिधान्य-मधुर है, पाकमे अम्ल है, पित्तकारक तथा भारी होतेहैं । पाटलधान्य-अधिक मूत्र लानेवाले तथा मलको बढानेवाले एवम गर्मी प्रकट करनेवाले तथा त्रिदोषको कुपित करनेवाले है ॥ १४ ॥

कोरदूष और श्यामाकके गुण ।

सकोरदूषःश्यामाकः कषायमधुरोलघुः ।
वातलः कफपित्तघ्नः शीतसंग्राहिशोषणः ॥ १५ ॥

कोद्रव और श्यामक धान्य-कसैले, मधुर, हल्के, वातकारक, कफपित्तनाशक, शीतल, सग्राही तथा शोषण करनेवाले है ॥ १५ ॥

हस्तिश्यामाकनीवारतोयपर्णीगवेधुकाः । प्रशांतिकाम्भःश्यामाकलौहित्याणुप्रियङ्गवः ॥ १६ ॥ मुकुन्दझिण्टिगर्मूटीवरुकावरकास्तथा । शिबिरोत्कटजूर्णाह्वः श्यामाकसदृशा गुणैः ॥ १७ ॥

हस्तिश्यामाक, नीवार, तोयपर्णा गवेधुक, प्रशातिक, जलश्यामक, लौहित्य श्यामक अनुश्यामक, प्रियंगु, मुकुन्द, झिंगी, गर्मुटी, वरुका, वरका, शिबिर, उत्कट, जवार इन सबके गुण श्यामाक (समा) चावलके समान जानना ॥ १६ ॥ १७ ॥

यवके गुण ।

रूक्षः शीतोगुरुः स्वादुः बहुवातशकृद्यवः ।
स्थैर्य्यकृत्सकषायस्तुबल्यः श्लेष्मविकारनुत् ॥ १८ ॥

जव-रूखे, शीतल, गुरु, स्वादु, बहुत वायु और मलके करनेवाले, स्थिरताकारक कषाय, बलकारक एवम कफविकारनाशक है ॥ १८ ॥

वेणुयवके गुण ।

रूक्ष कषायानुरसोमधुरःकफपित्तहा ।
मेद.क्रिमिविषघ्नश्चबल्योवेणुयवोमत. ॥ १९ ॥

वेणुयव-रूक्ष, कसैले, मधुर, कफपित्तनाशक, मेदको हरनेवाले, कृमि तथा विषको नाश करनेवाले एवम् बलकारक होतेहैं ॥ १९ ॥

गेहूके गुण ।

सन्धानकृद्वातहरोगोधूम'स्वादुशीतलः ।
जीवनोबृंहणोवृष्य.स्निग्ध.स्थैर्य्यकरोगुरु. ॥ २० ॥

गोधूम (गेहू)-सधानकर्त्ता, वातहर, स्वादु, शीतल, जीवनकर्त्ता, पुष्टकर्त्ता, वीर्यवर्द्धक, स्निग्ध, दृढकारक एवम् भारी होताहै ॥ २० ॥

नान्दीमुख और मधूलीके गुण ।

नान्दीमुखीमधूलीचमधुरस्निग्धशीतले । इत्ययशूकधान्याना पूर्वोवर्गःसामाप्यते ॥ २१ ॥ इतिशूकधान्यवर्ग. ।

नान्दीमुखी तथा मधूलिका (गेहूका भेद)-मधुर स्निग्ध और शीतल होतेहै। इस प्रकार यह शूकधान्योंका वर्ग समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

अथशमीधान्यवर्ग ।

मूगके गुण ।

कषायमधुरोरूक्ष.शीत पाकेकटुर्लघु. ।
विषद.श्लेष्मपित्तघ्नोमुद्ग सूप्योत्तमोमत ॥ २२ ॥

सब प्रकारके शमीधान्योंमें मूंग उत्तम होताहै । मूग-कषाय, मधुर, रूक्ष, शीतल, पाकमें कटु, हलका, विशद और कफपित्तनाशक होताहै ॥ २२ ॥

राजमापके गुण ।

रूक्षश्चैवकषायश्चवातल श्लेष्मपित्तहा ।
विष्टम्भीचाप्यवृष्यश्चराजमाष प्रकीर्त्तित. ॥ २३ ॥

राजमाप (लोबिया)-ज्वर, रुचिकारक, कफ, शुक्र तथा अम्लपित्त करनेवाला है। एवम् स्वादु, वातकारक, रूक्ष, कषाय, विशद और गुरु होताहै ॥ २३ ॥

उरदके गुण ।

वृष्य परवातहर.स्निग्धोष्णमधुरोगुरुः ।
बल्योबहुमल पुंस्त्वमाप.शीघ्रददातिच ॥ २४ ॥

उडद-वृष्य, वायुनाशक, स्निग्ध, उष्ण, मधुर, गुरु, बल्य, बहुत मलका करनेवाला, शीघ्र पुरुषत्वको देनेवाला होताहै ॥ २४ ॥

कुलथीके गुण ।

उष्णा कषाया पाकेऽम्लाःकफशुक्रानिलापहाः ।
कुलत्थाग्राहिण कासहिक्काश्वासार्शसाहिता· ॥ २५ ॥

कुल्थी-गर्म, कसैली, पाकमे अम्ल, कफ, शुक्र एवम् वायु इन तीनोंको नष्ट करनेवाली है । सग्राही है तथा कास, हिक्का, श्वास, एवम् अर्शरोगमे हितकारक होती है ॥ २५ ॥

मोठके गुण ।

मधुरामधुरा पाकेग्राहिणोरूक्षशीतला· ।
मकुष्ठका·प्रशस्यन्तेरक्तपित्तज्वरादिषु ॥ २६ ॥

मोठ-रस और पाकमे मधुर, ग्राही, रूखा, शीतल, रक्तपित्तनाशक एवम् ज्वरादि-रोगोमे हितकारक होता है ॥ २६ ॥

चनाके गुण ।

चणकाश्चमसूराश्चखण्डिका सहरेणव । लघव·शीतमधुरा सकषायाविरूक्षणा ॥ २७ ॥ पित्तश्लेष्मणिशस्यन्तेसूपेष्वा-लेपनेषुच । तेषामसूर सग्राहीकषायोशीतल परम् ॥ २८ ॥

चना, मसुरी, दाना मकारक मटर-यह लघु, शीतल, मधुर, कषाय, रूक्ष एवम् पित्तकफके विकारोमे इनका यूष और आलेपन उत्तम कहाजाताहै । इनमें मसुरी सग्राही और कषाय तथा शीतल होती है ॥ २७ ॥ २८ ॥

तिलके गुण ।

स्निग्धोष्णमधुरस्तीक्ष्ण कषाय कटुकास्तिल ।
त्वच्य·केश्यश्चबल्यश्चवातघ्न कफपित्तकृत् ॥ २९ ॥

तिल-चिकने, उष्ण, मधुर, तीक्ष्ण, कषाय, कटु, त्वचाको सुन्दर बनाने वाले, केशोंको बढानेवाले, बलकारक, वातनाशक तथा कफपित्तको उत्पन्न करनेवाले है ॥ २९ ॥

शिम्बीके गुण।

गुर्व्योऽथमधुरा शीतावलघ्नारूक्षणात्मिका । सस्नेहाबलिभिर्भोज्याविविधाःशिम्बिजातयः ॥ ३० ॥ शिम्बीरूक्षाकषाया च कोष्ठेवातप्रकोपनी ॥ न च वृष्या नचक्षुष्या विष्टभ्य च विपच्यते ॥ ३१ ॥

सब प्रकारकी शिम्बी (सेम)-भारी, मधुर, शीतल, बलघ्न, रूक्षस्वभाववाली, स्नेहयुक्त, बलवान् पुरुषोंके खानेयोग्य होती है ॥ ३० ॥ सेम-रूक्ष, कषाय, कोष्ठमें वायुको कुपित करनेवाली, शरीरको दुर्बल करनेवाली, विष्टम्भकारक,दुर्जर तथा नेत्रोंकी हितकारी नहीं है ॥ ३१ ॥

अरहर आदिके गुण।

आढकीकफपित्तघ्नीवातलाकफवातनुत् । अवल्गुज'सैडगजौ निष्पावावातपित्तला' ॥ ३२ ॥ काकाण्डोलात्मगुप्तानामापवरफलमादिशेत् । द्वितीयोऽयशमीधान्यवर्ग प्रोक्तोमहर्षिणा३३

इतिशमीधान्यवर्ग ।

अरहर-कफ और पित्तको नष्ट करनेवाली और वातकारक होती है । बावचीके बीज-वात और कफको नाश करते है । मनवाड (चकमर्द)के बीजमें भी यही गुण है । निष्पाव (सेमविशेष) वातपित्तको करनेवाला है । कोलसिम्बी और कौंचके बीजोंमें भी उडदोंके समान गुण जानना । इस प्रकार, महर्षि आत्रेयजीने यह शमीधान्यवर्गनामक दूसरा वर्ग कथन किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथमांसवर्ग ।

प्रसह पशु और पक्षियोंके नाम।

गोखराश्वतरोष्ट्राश्वद्वीपिसिंहर्क्षवानरा । वृकोव्याघ्रस्तरक्षुश्च बभ्रुमार्जारमूषिका' ॥ ३४ ॥ लोपाकोजम्बुक श्येनोवान्ताद-श्चापवायसौ । शशघ्नीमधुहाभासोगृध्रोलूककुलिङ्गका ॥३५॥ धूमीकाकुररश्चेतिप्रसहामृगपक्षिण ॥ ३६ ॥

गाय, गदहा, घोडा, ऊंट और शार्दूल, सिंह, रीछ, बन्दर, भेडिया, बघेरा, तरख, नेवला, बिल्ला, मूसा, लोपाक, गीदड, शिकरा, कुत्ता, नीलकंठ, कौआ बाज, उल्लू, चिडा, धींगर, टटेहरी इन जानवरोंको प्रसह कहाजाताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

भूमिशयके नाम।

श्वेत श्यामश्चित्रपृष्ठ.कालक काकुलीमृग । कुचीकाचिल्लको-
भेकोगोधाशल्लकगण्डकौ। कदलीनकुलःश्वाविदितिभूमिशया
स्मृता ॥ ३७ ॥

सफेदापक्षी, श्यामा, चित्रपृष्ठ, कालक (सापविशेष), काकुली मृग, कुचीक, चील, मंडक, गोह, सेह, गण्डक, कदली, नकुल श्वावित् इनको भूमिशय (बिले-शय) कहते हैं ॥ ३७ ॥

आनूपजीवोंके नाम।

सृमरश्चमर खड्गोमहिषोगवयोगज ।
न्यङ्कुर्वराहश्चानूपामृगा सर्वेरुरुस्तथा ॥ ३८ ॥

जगली सुअर, चमरगऊ, गडा, भैसा, गेझ, हाथी, हरिण, ग्रामशूकर, बारहसिंघा इन सबको अनूपसचारी जीव कहते हैं ॥ ३८ ॥

जलमें सोनेवाले व जलचर पक्षियोंके नाम।

कूर्म कर्कटकोमत्स्य शिशुमारस्तिमिङ्गिल । शुक्तिशङ्खोद्रकु-
म्भीरचुलुकीमकरादय ॥ ३९ ॥ इतिवारिशया प्रोक्तावक्ष्यन्ते
वारिचारिण. । हस क्रौञ्चोवलाकाचबक'कारण्डव प्लव ॥४०॥
शरारीपुष्कराह्वश्चकेशरीमानतुण्डिक. । मृणालकण्ठोमद्गुश्च
कादम्ब.काकतुण्डक ॥४१॥ उत्क्रोश.पुण्डरीकाक्षोमेघरावोऽ-
म्बुकुक्कुटी । आरानन्दीमुखीवाटीसुमुखा.सहचारिण ॥४२॥
रोहिणीकामकालीचसारसोरक्तशीर्षक. । चक्रवाकास्तथान्ये
चखगा सन्त्यम्बुचारिण ॥ ४३ ॥

कूर्म कछुआ, मत्स्य, सूस (शिशुमार), तिमिंगल मछली, सीप, शंख, उद्र, कुंभीर (घडियाल), चिंगडी, मगर इन सबको जलेशय जीव कहते हैं। हंस, क्रौंच, बलाका काकबक बगुला, कारण्डव, प्लव, शरारी, पुष्कर, केशरी, मानतुण्डिक, मृणालकण्ठ, मद्गु, कादम्ब, काकतुण्ड, उत्क्रोश, पुण्डरीक, मेघराव, अम्बुकुक्कुट, आरा, नन्दीमुखी वाटी, सुमुखा, सहचारिणी, रोहिणी, कामकाली, सारस, रक्तशीर्षक, चकवा यह सब जलचारी कहे जाते हैं तथा और भी जलमें बसनेवाले पक्षियोंको जलचारी कहते हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

जाङ्गल पशुओंके नाम ।

पृषतःशरभोरामःश्वदंष्ट्रामृगमातृका. । शशोरणौकुरङ्गश्चगो-
कर्णःकोट्टकारकः ॥ ४४ ॥ चारुष्कोहरिणैणौचशम्बरःका
लपुच्छक । ऋष्यश्चतरपोतश्चविज्ञेयाजाङ्गलामृगा' ॥ ४५ ॥

चित्रहरण, महाशृग, हरिण, कस्तूरामृग, श्वदंष्ट्रा, मृगमात्रिका, खरगोश, उरण, कुरग, गोकर्ण, कोट्टकारक, चारुष्क, हरिण, ताम्रवर्णका हरिण, साबर, काल्पुच्छक, ऋष्य, तरपोत इन सबको जगलके मृग कहते है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

विष्किरपक्षियोंके नाम ।

लावोवर्तीरकश्चैववार्तीकःसकपिञ्जल. । चकोरश्चोपचक्रश्चकु-
क्कुटोरक्तवर्त्तक ॥ ४६ ॥ लावाद्याविष्किरास्त्वेतेवक्ष्यन्तेवर्त्त
कादय । वर्त्तकोवर्त्तिकाचैवबर्हीतित्तिरिकुक्कुटौ ॥ ४७ ॥
कङ्कसारपदेन्द्राभगोनर्दगिरिवर्त्तका । क्रकरोऽवकरश्चैववरा-
हश्चेतिविष्किरा. ॥ ४८ ॥

लवा, बटेर, वार्तीक, कपिंजल, चकोर, उपचक्र, कुक्कुट, लालवर्तक, वर्तिका, बर्ही तित्तरी, मुर्गा, कङ्क, सारपद, इन्द्राभ, सारस, गिरिवर्त्तक, क्रकर, अवकर, वराह इन सबको विष्किर कहते है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

प्रतुदपक्षियोंके नाम ।

शतपत्रोभृङ्गराज कोयष्टीजीवजीवक । कैरात कोकिलोऽत्यू-
होगोपापुत्र'प्रियात्मज ॥ ४९ ॥ लट्टालट्टपकोबभ्रुर्वटहाडि
ण्डिमानक । जटीदुन्दुभिवाक्कावलोहपृष्ठकुलिङ्गका ॥ ५० ॥
कपोतशुकसारङ्गाश्चिरिटीकङ्कुयष्टिका' । सारिकाकलविङ्कश्चच
टकोऽङ्गारचूडकः । पारावतःपाण्डविकइत्युक्ता.प्रतुदाद्विजा.॥५१॥

शतपत्र, भृगराज, कोयष्टी, जीवजीवक, कैरात, कोकिल, अत्यूह, गोपापुत्र, प्रिया त्मज, लट्टा, लट्टपक, नकुल, वटहा, डिंडिमानक, जटी, दुदुभीवाक अवलोह पृष्ठ-कुलिंगक, कपोत, शुक, सारग, चिरटी, कङ्कुयष्टी, सारिका, कलविंग, अंगार चूडक, पारावत, पाण्डवीक इन सब पक्षियोंको प्रतुद कहते हैं तथा द्विज भी कहते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

प्रसह्यभक्षयन्तीतिप्रसहास्तेनसंज्ञिता॰ ॥ ५२ ॥ भूशयाबिल॰
वासित्वादानूपानूपसंश्रयात्।जलेनिवासाज्जलजाजलचर्य्याज्ज
लेचरा ।स्थलजाजाङ्गला प्रोक्तामृगाजाङ्गलचारिणः॥५३ ॥
विकीर्य्यविष्किराश्चेतिप्रतुद्यप्रतुदा स्मृता । योनिरष्टविधा
त्वेषामासानापरिकीर्त्तिता ॥ ५४ ॥

जो जीव बलपूर्वक अपने भोजनकी सामग्रीको ग्रहण करके खातेहै उन सबको प्रसह कहतेहैं जो पृथ्वीमें बिल बनाकर रहतेहै उनको बिलेशय कहतेहै। जलके समीप वास करनेवाले अनूपसचारी कहेजातेहै। जलमें रहनेवालोंको जलेशय कहतेहै। जलमें विचरनेवालोंको जलचर कहतेहै। स्थलचर जीवोंको जो जगलमें रहतेहै उनको जागल कहतेहै। चोंचसे बखेरकर अथवा पजासे बखेरकर खानेवालोंको विष्किर कहतेहै। कीट आदिकोंको पजेसे दबाकर चोंचके साथ खानेवालोको प्रतुद कहतेहै। इस प्रकार मांसोंकी आठ प्रकारकी योनि वर्णन है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

प्रसहादिके मांसका गुण।

प्रसहाभूशयानूपवारिजावारिचारिण । गुरूष्णास्निग्धमधुरा
बलोपचयवर्द्धना ॥ ५५ ॥ वृष्या.परवातहरा.कफपित्ताभि-
वर्द्धिन॰ । हिताव्यायामनित्यानानरादीप्ताग्नयश्चये ॥ ५६ ॥

इनमे प्रसह, बिलेशय, अनूपसचारी, जलेशय और जलचारी जीवोंका मांस गुरु उष्ण, स्निग्ध, मधुर, बलवर्द्धक, पुष्टिजनक, वीर्यवर्द्धक, परमवातनाशक, कफपित्तवर्द्धक होताहै। व्यायाम करनेवाले और दीप्ताग्नि मनुष्योंको हितकारक है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

प्रसहानाविशेषेणमांसमांसाशिनाभिषक् । जीर्णार्शोग्रहणी-
दोषशोषार्त्तानाप्रयोजयेत् ॥ ५७ ॥

वैद्यको उचित है कि पुरानी बवासीर और सग्रहणी तथा शोषसे पीडित मनुष्योंको प्रसहजीवोंका मांस उपयोग करे ॥ ५७ ॥

लावाद्योविष्किरोवर्ग.प्रतुदाजाङ्गलामृगा. । लघव शीतमधुरा
सकषायाहितानृणाम् ॥ ५८ ॥ पित्तोत्तरेवातमध्येसन्निपाते
कफानुगे । विष्किरावर्त्तकाद्यास्तुप्रसहाल्पान्तरागुणे॰ ॥ ५९ ॥

लवाले लेकर विष्किरवर्ग तथा प्रतुद और जागल जीवोंका मांस, हलका, शीतल, मधुर, कषाय होताहै। इन जीवोंके मांसका पित्तप्रधान, वातमध्य, कफहीन

सन्निपातमें प्रयोग करनाचाहिये । वर्तकसे आदि लेकर विष्किरपक्षियोंका मास प्रतुद जातियोंके पक्षियोंसे किंचित् अल्पगुणवाला होताहै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

बकरेके मांसका गुण ।

नातिशीतगुरुस्निग्धमांसमाजमदोषलम् ।
शरीरधातुसामान्यादनभिष्यन्दिबृंहणम् ॥ ६० ॥

बकरेका मास न तो अधिक शीतल न अधिक भारी एवम् न अधिकस्निग्ध होताहै अतएव दोषोंको कुपित नहीं करता । मनुष्योंके शरीर और धातुके अनुकूल होनेसे अनभिष्यन्दी तथा पुष्टकारी होताहै ॥ ६० ॥

भेडआदिके मांसके गुण ।

मांसमधुरशीतत्वाद्गुरुबृंहणमाविकम् । योनावजाविकेमिश्रेगो चरत्वादनिश्चिते ॥ ६१ ॥ सामान्येनोपदिष्टानामांसानांस्व-गुणे पृथक् । केषाञ्चिद्गुणवैशेष्याद्विशेषउपदेक्ष्यते ॥ ६२ ॥

भेडका मास मधुर शीतल होनेसे भारी तथा बृंहण है । बकरा और भेडा यह इनसम मिलेजुलेसे होतेहैं और ग्राम्य तथा वन्य भेदसे कई प्रकारके होतेहैं । इस लिये इनके गुणोंको उपरोक्त भेदसे अलग अलग जानना । किसी २ जीवोंके मांसम गुण विशेष होनेसे विशेषरूपसे वर्णन करतेहैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

मोरके मांसका गुण ।

दर्शनश्रोत्रमेधाग्निवयोवर्णस्वरायुषाम् ।
बर्हीहिततमोबल्योवातघ्नोमांसशुक्रल ॥ ६३ ॥

मोरकामांस-दृष्टि, कान, बुद्धि, अग्नि, अवस्था, वर्ण, स्वर और आयु इनको हित कारी है तथा बलकारक, वातनाशक, मांसवर्द्धक एवम् वीर्यजनक है ॥ ६३ ॥

हंसके मांसका गुण ।

गुरूष्णस्निग्धमधुरा स्वरवर्णबलप्रदा ।
बृंहणा शुक्रलाश्चोक्ताहंसामारुतनाशना ॥ ६४ ॥

हंसका मास भारी, गरम, स्निग्ध, मधुर, स्वर और वर्णप्रद, बलकारक, बृंहण, शुक्रजनक, वातनाशक होताहै ॥ ६४ ॥

मुर्गेके मांसका गुण ।

स्निग्धाश्चोष्णाश्चवृष्याश्चबृंहणा स्वर
बल्या परमातहरा स्वेदनाश्चरणा

मुर्गेका मांस-स्निग्ध, उष्ण, वृष्य, बृंहण, स्वरकारक, बलवर्द्धक, वातनाशक एवम् स्वेदकारक होताहै ॥ ६५ ॥

धन्वानूप मांसके गुण ।

गुरूष्णमधुरोनातिधन्वानूपनिषेवणात् ।

तित्तिरिःसञ्जयेच्छीघ्रत्रीन्दोषाननिलोल्बणान् ॥ ६६ ॥

अनूपसंचारी जीवोंका मांस तथा जंगलीजीवोंका मांस न अधिक भारी, न अधिक गर्म और न अधिक मधुर होताहै । तीतरका मांस वातप्रधान सन्निपातको जीतनेवाला है ॥ ६६ ॥

कपिञ्जलके मांसका गुण ।

पित्तश्लेष्मविकारेषुसरक्तेषुकपिञ्जलाः ।

मन्दवातेषुशस्यन्तेशैत्यमाधुर्य्यलाघवात् ॥ ६७ ॥

कपिंजलका मांस-थोडे वायुवाले पित्त कफ विकार तथा रक्तविकारोंको जीतनेवाला है । क्योंकि यह शीतल, मधुर और हलका होताहै ॥ ६७ ॥

लवाके मांसका गुण ।

लावाः कषायमधुरालघवोऽग्निविवर्द्धनाः ।

सन्निपातप्रशमनाःकटुकाश्चविपाकतः ॥ ६८ ॥

ल्वाका मांस-कषाय, मधुर, हलका, अग्निवर्द्धक होताहै तथा सन्निपातको शान्त करताहै एवम् विपाकमें कटु होताहै ॥ ६८ ॥

कबूतरोंके मांसका गुण ।

कषायमधुराः शीतारक्तपित्तनिबर्हणाः । विपाकेमधुराश्चैवकपोतागृहवासिनः ॥ ६९ ॥ तेभ्योलघुतराः किञ्चित्कपोतावनवासिनः । शीताः सङ्ग्राहिणश्चैवस्वल्पमूत्राश्चतेमताः ॥ ७० ॥

घरमें रहनेवाले कबूतरका मांस-कषाय, मधुर, शीतल, रक्तपित्तनाशक तथा वनमें रहनेवाले कबूतरोंका मांस-घरके कबूतरोंकी अपेक्षा हलका है विपाकमें मधुर है, शीतल है, समाही है थोडा मूत्रवाला है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

शुकमांसके गुण ।

शुकमांसकषायाम्लंविपाकेरूक्षशीतलम् ।

शोषकासक्षयहितसङ्ग्राहिलघुदीपनम् ॥ ७१ ॥

तोतेका मांस-कषैला, विपाकमें अम्ल, रूक्ष तथा शीतल है । शोष, खांसी क्षयमें अच्छा है समाही, हलका और अग्निदायक है ॥ ७१ ॥

खरगोशके मांसका गुण।

कपायविशदोरूक्ष शीतःपाकेकटुर्लघु।
शश'स्वादु.प्रशस्तश्चसन्निपातेऽनिलावरे ॥ ७२ ॥

खरगोशका मास-कसैला, विषद, रूक्ष, शीतल, पाकम कटु, हलका और मधुर होताहै। इसका मांसरस हीनवात सन्निपातम हितकर होताहै ॥ ७२ ॥

चिडियाके मांसके गुण।

चटकामधुरा स्निग्धावलशुक्रविवर्द्धना।
सन्निपातप्रशमना.शमनामारुतस्यच ॥ ७३ ॥

चिडियाका मास-मधुर,चिकना,वलवर्द्धक शुक्रजनक, सन्निपातनाशक तथा वायुको शान्त करनेवाला होताहै ॥ ७३ ॥

गीदडके मांसके गुण।

मधुरा.कटुका पाकेत्रिदोपशमना शिवा.।
लघवोवद्धविण्मूत्रा शीताश्चैणा प्रकीर्त्तिता ॥ ७४ ॥

गीदडका मास-मधुर, पाकम कटु और त्रिदोषको शान्त करनेवाला होताहै। काले हरिणका मास हलका, मल, मूत्र विबधक और शीतल होताहै ॥ ७४ ॥

गोधाविपाकेमधुरा कपायकटुकारसे।
वातपित्तप्रशमनीवृंहणीवलवर्द्धिनी ॥ ७५ ॥

गोहका मास विपाकमें मीठा है, रसम कषाय तथा कटु है, एवम वातपित्त नाशक बृंहण तथा बलवर्द्धक होताहै ॥ ७५ ॥

शल्लकोमधुराम्लस्तुविपाकेकटुक स्मृत.।
वातपित्तकफघ्नश्चकासश्वासहरस्तथा ॥ ७६ ॥

सेहका मांस-मधुर है, अम्ल है, विपाकम कटु है तथा वात, पित्त कफ इनको नष्ट करताहै एवम कास, श्वासको हरताहै ॥ ७६ ॥

रोहूमछलीके मांसके गुण।

शैवलाहारभोजित्वात्स्वप्नस्यचविवर्जनात्।
रोहितोदीपनीयश्चलघुपाकोमहानल· ॥ ७७ ॥

रोहूमछली-सिवार खाती है और निद्रा रहित है इसलिये इसका मांस दीपन, लघुपाकी और अत्यन्त बलकारक है ॥ ७७ ॥

गुरूष्णमधुरावल्यावृंहणा.पवनापहा ।
मत्स्या स्निग्धाश्चवृष्याश्चवहुदोपा प्रकीर्त्तिता॰ ॥ ७८ ॥

अ॰प मछलियां–भारी, उष्ण, मधुर, बलकारक, वृंहण, वातनाशक, स्निग्ध, वीर्य-वर्द्धक तथा बहुतसे दोषोंको करनेवाली होती हैं ॥ ७८ ॥

कछुएके मांसका गुण ।

वल्योवातहरोवृष्यश्चक्षुष्योवलवर्द्धन ।
मेधास्मृतिकर पथ्य॰शोषघ्नःकूर्मउच्यते ॥ ७९ ॥

कूर्मका मांस–बलकारक, वातनाशक, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, मेधा और स्मृतिका बढानेवाला, पथ्य एवम् शोषनाशक होताहै ॥ ७९ ॥

स्नेहनवृंहणंवृष्यंश्रमघ्नमनिलापहम् ।
वराहपिशितवल्यरोचनंस्वेदनगुरु ॥ ८० ॥

सूअरका मांस–स्नेहन वृंहण, वीर्यवर्द्धक, श्रमनाशक, वातहर, बलवर्द्धक, रुचिकारक, स्वेदजनक एवम् भारी होताहै ॥ ८० ॥

गोमांसका गुण ।

गव्यकेवलवातेपुपीनसेविपमज्वरे ।
शुष्ककासश्रमात्यग्निमांसक्षयहितश्चयत् ॥ ८१ ॥

गवय (रोझ)–का मांस–जिस जगह केवल वात ही प्रधान हो और कफ तथा पित्त न हो एवम् प्रतिश्याय एवम् विपमज्वरम सूखी खांसी, भ्रम, भस्मकाग्नि और यक्ष्मामें हितकारी होताहै ॥ ८१ ॥

महिषमांसका गुण ।

स्निग्धोष्णमधुरंवृष्यमाहिपगुरुतर्पणम् ।
दार्ढ्यवृहत्त्वसुत्साहस्वप्नञ्चजनयत्यपि ॥ ८२ ॥

भैंसेका मांस–चिकना, उष्ण, मधुर, वृष्य, वृंहण, शरीरको दृढ करनेवाला एवम् वृहत्त्व, साहस, निद्रा इनको उत्पन्न करनेवाला होताहै ॥ ८२ ॥

अण्डोंके गुण ।

धार्त्तराष्ट्रचकोराणादक्षाणाशिखिनामपि । चटकानाञ्चयानि स्युरण्डानिचहितानिच ॥ ८३ ॥ रेत क्षीणेषुकासेपुहृद्रोगेपु क्षतेपु च । मधुराण्यनपाकीनिसद्योवलकराणिच ॥ ८४ ॥

हंस, चकोर, सुगा, मोर, चिडे इनके अंडे हृद्रोग और क्षतरोगमें हितकारी हैं तथा मधुर, अविपाकी, शीघ्र बलवर्द्धक होतेहैं ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

मांसकी उत्कृष्टता।

शरीरबृंहणेनान्यत्‌दाढ्यंमांसाद्विशिष्यते।
इतिवर्गस्तृतीयोऽयंमांसानांपरिकीर्त्तितः ॥ ८५ ॥

इति मांसवर्ग ।

जितने प्रकारके पदार्थ शरीरको पुष्ट करनेवाले हैं उनमें मांस प्रधान होताहै। इस प्रकार यह मांसवर्गनामक तीसरा वर्ग कथन किया गया ॥ ८५ ॥

अथ शाकवर्ग.।

पाठाशुषाशठीशाकवास्तुकंसुनिषण्णकम्।
विद्याद्ग्राहित्रिदोषघ्नंभिन्नवर्चस्तुवास्तुकम् ॥ ८६ ॥

पाठा, ऊषा, सांठी, सुनिषण्ण (चौपतिया शाक) यह सब शाक ग्राही तथा त्रिदोषनाशक है और बथुवेका शाक मलभेदक और त्रिदोषनाशक होताहै ॥ ८६ ॥

मकोयके शाकका गुण।

त्रिदोषशमनीवृष्याकाकमाचीरसायनी।
नात्युष्णशीतवीर्य्याचभेदनीकुष्ठनाशिनी ॥ ८७ ॥

काकमाची (मकोय) का शाक त्रिदोषको शान्त करनेवाला, वीर्यवर्द्धक, रसायन, वीर्यमें न बहुत गर्म और न बहुत शीतल, मलभेदक एवम् कुष्ठनाशक होताहै ॥ ८७ ॥

राजक्षवकके गुण।

राजक्षवकशाकन्तुत्रिदोषशमनंलघु।
ग्राहिशस्तंविशेषेणग्रहण्यर्शोविकारिणाम् ॥ ८८ ॥

राजक्षवक, जीरक, सर्मो, दुग्धिका का शाक त्रिदोषको शान्त करनेवाला हलका विशेषकर संग्रहणी और अर्शरोगमें हितकारी है ॥ ८८ ॥

कालशाक-करालशाक।

कालशाकन्तुकटुकंदीपनंगरशोफजित्।
लघूष्णंवातलंरूक्षंकरालशाकमुच्यते ॥ ८९ ॥

कालशाक (नाडीका शाक)-कटु, दीपन, विषविकार तथा सूजनको नष्ट करने वाला होताहै। करालशाक (कालो तुलसीका शाक)-हलका, उष्ण, वातकारक तथा रूक्ष होताहै ॥ ८९ ॥

चांगेरीके गुण ।

दीपनीचोष्णवीर्य्याचग्राहिणीकफमारुते ।
प्रशस्यतेऽम्लचाङ्गेरीग्रहण्यर्शोहिताचसा ॥ ९० ॥

अम्लचांगेरी (चूका) का शाक अग्निदीपन, उष्णवीय, ग्राही तथा कफ और वायुके रोगोंमें, ग्रहणीमें एवम् अर्शरोगमें हितकारी होताहै ॥ ९० ॥

पोईका शाक ।

मधुरामधुरापाकेभेदनीश्लेष्मवर्द्धिनी ।
वृष्यास्निग्धाचशीताचमदघ्नीचाप्युपोदका ॥ ९१ ॥

उपोदकी (पोई) का शाक मधुर, पाकमें भी मधुर, मलभेदक, कफवर्द्धक, वृष्य, स्निग्ध, शीतल एवम् मदविनाशक होताहै ॥ ९१ ॥

चौलाईका शाक ।

रूक्षोमदविषघ्नश्चप्रशस्तोरक्तपित्तिनाम् ।
मधुरोमधुरःपाकेशीतलस्तण्डुलीयकः ॥ ९२ ॥

चौलाइका शाक रूक्ष, मदविकार तथा विषविकारनाशक, रक्तपित्तमें हितकारी, रस तथा पाकमें मधुर एवम् शीतल होताहै ॥ ९२ ॥

मण्डूकपर्ण्यादिशाकोंके गुण ।

मण्डूकपर्णीवेत्राग्रकुचेलावनतिक्तकम् । कर्कोटकावल्गुजकौ
पटोलशकुलादनी॥वृषपुष्पाणिशार्ङ्गेष्टाकेम्बूकसकटिल्लकम्॥९३॥
नाडीकलायगोजिह्वावार्त्ताकतिलपर्णिका । कुलककर्कोटनिम्ब
शाकपर्पटकञ्चयत् । कफपित्तहरतिक्तशीतकटुविपच्यते॥९४॥

मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी) वेतकी कोंपल, कुचेला (विद्धकर्णा) वनतिक्तक [illegible] शाक फल, वल्गुज (वनमूल) पटोल, शकुलादनी (पचटशाक) वृष (अडूसा या ऋषभक) के फूल, शार्ङ्गेष्टा (महाकरज) केबूक, करेला, नाडी, मटर, गोभी, वर्षाकालीय फल तिलपर्णी, कुलक (करेलेकी जाति) छोटा ककोडा, नीम, पपट ये सब कफपित्तनाशक, कटुक शीतल एवम् पाकमें कटु होताहै ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

सूप्य शाकोंके गुण ।

सर्वाणिसूप्यशाकानिफञ्जीचिल्लीकुतुम्बुरु ॥ आलुका
निचसर्वाणिसपत्राणिकुटिञ्जरं । शणशाल्मलिपुष्पाणि

उत्पलानिकषायाणिपित्तरक्तहराणिच । तथातालप्रलम्बञ्च उर क्षतरुजापहम् ॥ ११० ॥ खर्जूरतालशस्यञ्चरक्तपित्तक्षयापहम् ॥ भरूटविसशालूकक्रौञ्चादनकशेरुकम् । शृङ्गाटकक-लोड्यञ्चगुरुविष्टम्भिशीतलम् ॥ १११ ॥ कुमुदोत्पलनालास्तु सपुष्पा सफला स्मृता । शीता स्वादुकषायास्तुकफमारुतको पना ॥ ११२ ॥

सब प्रकारके कमल-कमले और रक्तपित्त नाशक होते हैं । तालजटा (ताडकी कोमल जटा) उर क्षत विकारको शान्त करताहै । खजूरकी कोपल-रक्तपित्त और क्षयको नष्ट करती है ॥ ११० ॥ कमलकी जड, भिस, शालूक, पद्मबीज, कसेरू, सिंघाडा, छोटा कमलकन्द य सब भारी, विष्टम्भकर्त्ता और शीतल होते है ॥ १११ ॥ कुमुद और उत्पलकी नाल और इनके फूल, फल शीतल, मधुर, कषाय तथा कफ वातको कुपित करनवाले होते है ॥ ११२ ॥

कषायमीषद्विष्टम्भिरक्तपित्तहरस्मृतम ।
पौष्करन्तुभवेद्बीजमधुररसपाकयो ॥ ११३ ॥

पुष्करनामक कमलके बीज और फल तथा नाल-विष्टम्भकर्त्ता, रक्तपित्तनाशक रस तथा विपाकमें मधुर होते है ॥ ११३ ॥

बल्य.शीतोगुरु स्निग्धस्तर्पणोबृहणात्मक ।
वातपित्तहर स्वादुर्वृष्योमुञ्जातक स्मृत ॥ ११४ ॥

मुञ्जातक-बलकारक शीतल गुरु, स्निग्ध बृहण, तर्पण, वातपित्त नाशक, स्वादु और वीर्यवर्द्धक होताहै ॥ ११४ ॥

विदारीकन्दके गुण ।

जीवनोबृहणोवृष्य कण्ठ्य शस्तोरसायने । विदारीकन्दोबल्य-श्चमूत्रल स्वादुशीतल । अम्लीकाया स्मृत कन्दोग्रहण्यर्शो-हितोलघु ॥११५॥ नात्युष्ण कफवातघ्नोग्राहीशस्तोमदात्यये । त्रिदोषघ्नमिणमूत्रसार्षपशाकमुच्यते ॥ ११६ ॥

विदारीकन्द-जीवन, बृहण, वीर्यवर्द्धक, कण्ठशोधक और रसायनम श्रेष्ठ बलकारक, मूत्र लानेवाला, मधुर, शीतल, अम्लीका कन्द-ग्रहणी और अर्शमें हितकारी है,

हल्का है, अधिक गर्म नहीं है, कफवातको हरताहै, सभाही है, मदात्ययरोगमें हितकारक है। सरसोंका शाक-तीनों दोषोंको कुपित करनेवाला, मलमूत्रको बांधनेवाला होता है॥ ११६ ॥

तद्वत्पिण्डालुकंविद्यात्कन्दस्वाद्वसुखप्रियम्। सर्पच्छत्रकवर्ज्यास्तुवह्व्योऽन्यच्छत्रजातयः ॥ ११७ ॥ शीताःपीनसकर्त्र्यश्चमधुरागुर्व्यएवच । चतुर्थःशाकवर्गोऽयंपत्रकन्दफलाश्रयः ॥११८॥

इतिशाकवर्गः ।

पिंडआलूका शाक भी सरसाके समान गुणवाला है परन्तु खानेमें इसका कंद मुखको प्रिय मालुम होताहै । सर्पछत्रकके सिवाय अन्य सब प्रकारके छत्रजाति (बरसातमें लकडी तथा जमीनपर उत्पन्न होते है) शीतल, प्रतिश्याय कर्त्ता, मधुर तथा भारी होते है । इस प्रकार शाकवर्गनामक पत्र, कन्द, फल शाकाश्रित यह चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

अथफलवर्गः ।

दाखके गुण ।

तृष्णादाहज्वरश्वासरक्तपित्तक्षतक्षयान् । वातपित्तमुदावर्तं स्वरभेदमदात्ययम् ॥ ११९ ॥ तिक्तास्यतामास्यशोषंकासञ्चाशुव्यपोहति । मृद्वीकाबृंहणीवृष्यामधुरास्निग्धशीतला॥१२०॥

मुनक्का-तृषा, दाह, ज्वर, श्वास, रक्तपित्त, क्षत, क्षय, वातपित्त, उदावर्त्त, स्वरभेद, मदात्यय, मुखकी कडुआहट शोष, खांसी इन सबको नष्ट करताहै तथा पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, मधुर, स्निग्ध और शीतल है ॥ ११९ ॥ १२० ॥

खजूरके गुण ।

मधुरंबृंहणंवृष्यंखर्जूरंगुरुशीतलम् ।
क्षयेऽभिघातेदाहेचवातपित्तेचतद्धितम् ॥ १२१ ॥

खजूरका फल-मधुर, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, भारी, शीतल होताहै तथा क्षय, अभिघात, दाह और वातपित्तमें हितकारक होताहै ॥ १२१ ॥

फल्गु फालसा-महुआ ।

तर्पणंबृंहणंफल्गुगुरुविष्टम्भिशीतलम् ।
परूषकंमधूकञ्चवातपित्तेचशस्यते ॥ १२२ ॥

कठूमरका फल–तृप्तिकारक बृंहण, भारी, विष्टम्भी और शीतल होताहै । फालसा और महुआ–वातपित्तमें हितकारी होते हैं ॥ १२२ ॥

आंवडेके गुण ।

मधुरबृंहणबल्यमाम्रातंतर्पणगुरु ।
सस्नेहश्लेष्मलशीतवृष्यविष्टभ्यजीर्य्यति ॥ १२३ ॥

पका हुआ आमडाका फल–पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, तर्पण, मीठा, कफकारक, शीतल, वृष्य और विष्टम्भ होकर पाचन होनेवाला है ॥ १२३ ॥

ताल नारियल ।

तालशस्यानिसिद्धानिनारिकेलफलानिच ।
बृंहणस्निग्धशीतानिबल्यानिमधुराणिच ॥ १२४ ॥

सिद्धकिया ताडका फल और नारियलका फल–पुष्टिकर्त्ता, चिकना, शीतल, बलकारक और मधुर होताहै ॥ १२४ ॥

भव्यके गुण ।

मधुराम्लकषायञ्चविष्टम्भिगुरुशीतलम् ।
पित्तश्लेष्मकरंभव्यंग्राहिवक्त्रविशोधनम् ॥ १२५ ॥

भव्यफल–मीठा, खट्टा, कसैला, विष्टम्भकर्त्ता, शीतल, भारी, पित्तकफकारक, ग्राही और मुखका शोधनकर्त्ता है ॥ १२५ ॥

पके फलके ...

अम्लपरूपकद्राक्षाबदर ... णिच ... ॥

... णिच ... ग ...

... आरू ...

... भारी ...

... करनेवाले होते हैं

...

पकाहुआ मीठा ...

पालेवतके गुण ।

द्विविधंशीतमुष्णञ्चमधुरञ्चाम्लमेवच ।
गुरुपालेवतंज्ञेयमरुच्यत्यग्निनाशनम् ॥१२८॥

पारावतफल-शीतल और उष्ण दो प्रकारका होताहै । जो मीठा होताहै वह शीतल है और खट्टा उष्ण होताहै । यह दोनों प्रकारके अरुचि तथा भस्मकाग्निको नष्ट करनेवाले है ॥ १२८ ॥

खम्भारीतद ।

भव्यादल्पान्तरगुणकाश्मर्य्यफलमुच्यते ।
तथैवाल्पान्तरगुणन्तूदमम्लपरूपकम् ॥ १२९ ॥

काश्मरी (कभारी) फल-भव्यफलसे गुणोंमें किंचित् न्यून होता है एवम् खट्टा अहतूत फालसेसे गुणोंमें न्यून होता है ॥ १२९ ॥

टङ्कके गुण ।

कषायमधुरटङ्कवातलगुरुशीतलम् । कपित्थविषकण्ठघ्नमामसग्राहिवातलम् ॥ १३० ॥ मधुराम्लकषायत्वात्सौगन्ध्याद्धरुचिप्रदम् । परिपक्वसदोषघ्नविषघ्नग्राहिगुर्वपि ॥ १३१ ॥

टक (नील कपित्थ) पहाडी कच्चा कैथ का फल-कषाय, वातकारक, भारी और शीतल होताहै । कैथका फल-विषनाशक, स्वरको बिगाडनेवाला, सग्राही और वातकारक होताहै । पकाहुआ कैथका फल-मधुर, अम्ल, कषाय, सुगंधयुक्त होनेसे रुचिकारक त्रिदोषनाशक,विषनाशक,सग्राही और भारी होताहै॥१३०॥१३१॥

बिल्वके गुण ।

दुर्जरबिल्वसिद्धन्तुदोषलपूतिमारुतम् ।
स्निग्धोष्णतीक्ष्णतद्बालदीपनकफवातजित् ॥ १३२ ॥

पकाहुआ बिल्वफल-दुर्जर, दोषयुक्त, वायुमें गंधका फैलानेवाला, चिकना और गर्म और तीक्ष्ण होता है । कच्चा बिल्वफल-दीपन और कफ वातको जीतनेवाला होता है ॥ १३२ ॥

आमके गुण ।

वातपित्तकरबालमापूर्णपित्तवर्द्धनम् ।
पक्वमाम्रजयेद्वायुंमासशुक्रबलप्रदम् ॥ १३३ ॥

बहुत छोटा आम्रका फल रक्तपित्तको करनेवाला होताहै । कच्चा आमका फल पित्तको कुपित करताहै । पकाहुआ आमका फल वातनाशक, मांसवर्द्धक, शुक्रजनक तथा बलकारक होताहै ॥ १३३ ॥

जामुनके गुण ।

कषायमधुरप्रायंगुरुविष्टम्भिशीतलम् ।
जाम्बवंकफपित्तघ्नंग्राहिवातकरंपरम् ॥ १३४ ॥

पकेहुए जामुन-कषाय, मधुर, भारी, विष्टम्भकारक, शीतल, कफपित्तनाशक मलग्राही और वायुको कुपित करतेहैं ॥ १३४ ॥

बेरके गुण ।

मधुरंबदरंस्निग्धंभेदनंवातपित्तजित् । तच्छुष्कंकफवातघ्नंपि-त्तेनचविरुध्यते । कषायमधुरंशीतंग्राहिसिञ्चितिकाफलम् ॥ १३५ ॥

पके हुए बेर-स्निग्ध, मधुर, भेदनकर्ता, वातपित्तनाशक होतेहैं, सूखेहुए बेर वात और कफको हरतेहैं तथा पित्तके विरोधी नहीं हैं सिंचितिका फल-कषाय, मधुर, शीतल और मलग्राही होताहै ॥ १३५ ॥

गङ्गेरी-करील-विम्बी-तोदन ।

गाङ्गेरुकीकरीरञ्चबिम्बीतोदनधन्वनम् ।
मधुरंसकषायञ्चशीतंपित्तकफापहम् ॥ १३६ ॥

गांगेरुकी (नागबला) का फल और करीलके फल तथा कंदूरी, तोदन धन्वन यह सब फल मधुर किंचित् कषाय, शीतल और पित्तकफको हरनेवालेहैं ॥ १३६ ॥

खिरनी-पनस-केला-चिरौंजी ।

क्षीरिकपनसमोचराजादनफलानिच ।
स्वादूनिसकषायाणि [illegible] १३७ ॥

खिरनी, पकाहुआ कटहर, केलेकी फ[illegible] पे म[illegible] [illegible], स्निग्ध शीतल और भारी होतेहैं ॥ १३७ ॥

कषाय[illegible]
अवदर[illegible]

त्वटीके फल कषाय और विशद होनेसे तथा सुगंधयुक्त होनेसे रुचिकारक होतेहैं तथा चटनी आदिमें मिलाने योग्य,रूक्ष तथा वातकारक होतेहैं ॥ १३८ ॥

कदम्बादिके गुण ।

नीपसभार्गकपीलुतृणशून्यंविकङ्कतम् ।
प्राचीनामलकश्चैवदोपघ्नगरहारिच ॥ १३९ ॥

कदम्ब, भार्गीके फल, पीलूफल, केतकीफल, विकंकतके फल, प्राचीनाम्लके फल यह सब दोषनाशक तथा गरनाशक होतेहैं ॥ १३९ ॥

गोंदीफलआदिका गुण ।

इंगुदतिक्तमधुरस्निग्धोष्णकफवातजित् ।
तिन्दुककफपित्तघ्नकपायमधुरंलघु ॥ १४० ॥

गोंदनीके फल-कडुए, मधुर, चिकने, गर्म एवम् कफ और वातको जीतनेवाले होतेहैं । तिंदुकफल (तेंदु) कफपित्तनाशक, कषाय, मधुर और हल्के होतेहैं॥१४०॥

आंवलेका गुण ।

विद्यादामलकेसर्वान्रसान्लवणवर्जितान् ।
स्वेदमेद कफोत्क्लेदपित्तरोगविनाशनम् ॥ १४१ ॥

आँवलेमें-लवणरसके विना, मीठा, खट्टा, कडुआ, कसैला, चरपरा ये पाच रस हैं । आँवला-कफके उत्क्लेशको और पित्तविकारको नष्ट करताहै । तथा मेदरोग और अधिक पसीना आना इनको भी दूर करताहै ॥ १४१ ॥

बहेडेके गुण ।

रूक्षस्वादुकपायाम्लकफपित्तहरपरम् ।
रसासृङ्मासमेदोजान्दोपान्हन्तिविभीतकम् ॥ १४२ ॥

बहेडा-रूक्ष, स्वादु, कषाय, अम्ल एवम् कफ, पित्तको अत्यन्त नष्ट करनेवाला तथा रस, रक्त, मास और मेदके सम्पूर्ण दोषोंको नष्ट करताहै ॥ १४२ ॥

अनारका गुण ।

अम्लंकपायमधुरंवातघ्नग्राहिदीपनम् ।
स्निग्धोष्णदाडिमहृद्यकफपित्ताविरोधिच ॥ १४३ ॥

अनार-खट्टा, कषाय, मधुर, वातघ्न, ग्राही, दीपन, स्निग्ध उष्ण, हृदयको प्रिय तथा कफ और पित्तसे विरोध नहीं करनेवाला होताहै ॥ १४३ ॥

रुक्षाम्लंदाडिमंयत्तुतत्पित्तानिलकोपनम् ।
मधुरंपित्तनुत्तेषान्तद्धिदाडिममुत्तमम् ॥ १४४ ॥

खट्टा अनार-रूक्ष, पित्तजनक और वातको कुपित करनेवाला होताहै । मीठा अनार-पित्तको नष्ट करताहै । इन दोनों प्रकारके अनारोंमें मीठा अनार उत्तम होताहै ॥ १४४ ॥

वृक्षाम्लके गुण ।

वृक्षाम्लग्राहिरूक्षोष्णवातश्लेष्मणिशस्यते ।
अम्लिकाया फलशुष्कतस्मादल्पान्तरंगुणै. ॥ १४५ ॥

तितिडीक-सग्राही, रूक्ष, गर्म एवम् वात, कफको नाश करनेवाला है । पकाहुआ इमलीका फल तितिडीकसे किंचित् हीनगुण होताहै ॥ १४५ ॥

अमलवेत तथा बिजौरेके गुण ।

गुणैस्तैरेवसयुक्तभेदनन्त्वम्लवेतसम् । शूलेऽरुचौविबन्धेचम-
न्देऽग्नौमद्यविक्षये ॥ १४६ ॥ हिक्काकासेचश्वासेचवम्यावर्चोग
देपुच । वातश्लेष्मसमुत्थेपुसर्वेष्वेतेपुदिश्यते ॥ १४७ ॥
केशरंमातुलुङ्गस्यलघुशीतमतोऽन्यथा । रोचनोदीपनोहृद्य
सुगन्धिस्त्वग्निवर्जित. । कर्चूर कफवातघ्न श्वासहिक्कार्शसां-
हित. ॥ १४८ ॥

अम्लवेत-तितिडीकके समान गुणवाला तथा मलको भेदन करनेवाला होताहै । बिजौरेकी केशर-शूल, अरुचिविबध, मदाग्नि, मदात्यय, हिचकी, श्वास, खासी, वमन, मलरोग तथा वात और कफसे उत्पन्न भये सपूर्णरोग इन सबम हितकारक है तथा शीतल और हल्की होतीहै। बिजौरेकी केशरके सिवाय छिलका आदि अवयवोंमें अन्य गुण होतेहैं । छिला हुआ कचूरका फल, रुचिकारक, अग्निदीपक, हृदयको प्रिय, सुगधित, कफ, वातको नष्ट करनेवाला, हिचकी और हितकारक होताहै ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

नारंगीके गुण ।

मधुरपि[illegible]
दुर्जरवातशमननागरङ्गफ[illegible]

नारंगीका फल-दुर्जर, वातनाशक, भारी, मीठा किंचित् अम्ल, हृदयको प्रिय तथा भोजनमें रुचिका करनेवाला है ॥ १४९ ॥

बादामादिके गुण।

वातामाभिषुकाक्षोटमकूलकनिकोचकाः ॥ १५० ॥ गुरूष्ण-स्निग्धमधुराःसोरुमाणावलप्रदा । वातघ्नाबृंहणावृष्याकफ पित्ताभिवर्द्धना ॥ १५१ ॥

बादाम, पिस्ता, अखरोट, मकूलक (किसीके मतमें यह भी अखरोटकी जाति है) निकोचक (चिलगोजा), उरुमाणफल इन सब फलोंकी मज्जा गुरु, उष्ण, स्निग्ध, मधुर, बलवर्द्धक, वातनाशक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक एवम् कफ और पित्तको बढाने वाली होती है ॥ १५० ॥ १५१ ॥

पियालके गुण।

पियालमेषासदृशविद्यादौष्ण्यविनागुणे ।
श्लेष्मलमधुरशीतश्लेष्मातकफलगुरु ॥ १५२ ॥

चिरौंजी गुणोंमें उपरोक्त फलोंकी मज्जाके समान गुणवाली है परन्तु पित्तको उत्पन्न नहीं करती । लसोढा-कफकारक, मधुर, शीतल और भारी होताहै (शुष्क खासीको निकालनेवाला है) ॥ १५२ ॥

अकोटके गुण।

श्लेष्मलगुरुविष्टम्भिचाङ्कोटफलमग्निजित् ।
गुरूष्णमधुररूक्षकेशघ्नचशमीफलम् ॥ १५३ ॥

अकोटफल-कफकारक, भारी, विष्टम्भी एवम् क्षुधानाशक होताहै । (अकोट नाम ढेराका है) । शमीफल-भारी, गर्म, मधुर, शीतल एवम् केशोंको नष्टकरनेवाला होताहै । (कोई शमीफलका अर्थ सेमलके फल करतेहैं परन्तु शमी नाम छोंकरे वृक्षका है) ॥ १५३ ॥

करजेके गुण।

विष्टम्भयतिकारअपित्तश्लेष्माविरोधिच । आम्रातकदन्तशठ-मम्लसकरमर्दकम् ॥ १५४ ॥ रक्तपित्तकरंविद्यादैरावतकमेव च । वातघ्नदीपनंचैववार्ताकंकटुतिक्तकम् ॥ १५५ ॥

कर्कजफल-विष्टम्भकर्ता और पित्त, कफसे अविरोधी होताहै । पहाडी अम्बाडा, जंभीरी, करौंदा, ये सब अम्ल, रक्तपित्तकारक होतेहैं एवम् पहाडी खट्टे नीबुओंमें भी यही गुण होतेहैं । वार्ताकफल-वातनाशक, दीपन, कटु और तिक्त होताहै । (वार्ताकनाम बैंगनका है परन्तु यह वार्ताक अन्यफल विशेष है) ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

पित्तपापडाका गुण ।

वातलंकफपित्तघ्नंविद्यात्पर्पटकीफलम् ।
पित्तश्लेष्मघ्नमम्लञ्चवातिकञ्चाक्षिकीफलम् ॥ १५६ ॥

पापरका फल-कफ, पित्तनाशक होताहै । अदूका फल (हीहर) पित्त, कफ नाशक, खट्टा एवम् वातकारक होताहै ॥ १५६ ॥

मधुराण्यविपाकीनिवातपित्तहराणिच ।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधानाफलानिच ॥ १५७ ॥

पीपर, गूलर, पिलखन, वड इनके फल मधुर, देरमें परिपक्व होनेवाले तथा वातपित्त हरनेवाले होते हैं ॥ १५७ ॥

भिलावेकी गुठलीके गुण ।

भल्लातकास्थ्यग्निसमंत्वङ्मांसस्वादुशीतलम् ॥ १५८ ॥
पञ्चमःफलवर्गोऽयमुक्तः प्रायोपयोगिकः ॥ १५९ ॥

इति फलवर्गः ।

भिलावेके फलोंकी मज्जा-अग्निके समान गर्म है तथा उसकी छाल और गूदा विपाकमें मधुर तथा शीतल होताहै । (भिलावा बिना युक्तिसे खाया त्वचा और मांसमें सूजन प्रगट करता है, दानोंको गिराटेताहै तथा विषके समान है । यदि उक्तिपूर्वक सेवन कियाजाय तो अमृतके समान रसायन होताहै) इस प्रकार उपयोगी फलोंसे युक्त फलवर्ग नामक यह पञ्चमवर्ग कहागया ॥ १५८ ॥ १६० ॥

अथ हरितवर्गः ।

अदरख-सोंठके ...

रोचनदीपनवृष्यमार्द्र...
वातश्लेष्मविबन्धेषुर...

अदरख और सोंठ-रुचिकारक, ...
कफके विषयमें पाट देताहै ॥ १६०

जमीरीके गुण।

रोचनोदीपनस्तीक्ष्णःसुगन्धिर्मुखबोधन. ।
जम्बीर.कफवातघ्न क्रिमिघ्नोभुक्तपाचन' ॥ १६१ ॥

जमीरी नींबू-रुचिकारक, दीपन, तीक्ष्ण, सुगंधित, मुखको बोधन करनेवाला, कफ और वात तथा कृमियोंको नष्ट करनेवाला और भोजन किये आहारको पचानेवाला होताहै ॥ १६१ ॥

मूलीके गुण।

बालंदोपहरंवृद्धंत्रिदोपमारुतापहम् ।
स्निग्धसिद्धंविशुष्कन्तुमूलककफवातजित ॥ १६२ ॥

कच्चीमूली-त्रिदोपको नष्ट करती है । पकीहुई मूली-त्रिदोपकारक होती है। चिकनाई युक्त सिद्धकिया मूलीका शाक वातनाशक होताहै। सूखी मूली-वात,कफको हरती है ॥ १६२ ॥

तुलसीके गुण।

हिक्काकासविषश्वासपार्श्वशूलविनाशन ।
पित्तकृत्कफवातघ्न.सुरस. पूतिगन्धनुत् ॥ १६३ ॥

तुलसीके पत्र-हिचकी, खासी, विषविकार, श्वास तथा पार्श्वशूलको नष्ट करते हैं। पित्तकारक, कफ, वात नाशक एवम् दुर्गंधनाशक होते हैं ॥ १६३ ॥

अजवायनआदिके गुण।

यवानीचार्जकश्चैवशिग्रुशालेयमृष्टकम् ॥
हृद्यान्यास्वादनीयानिपित्तमुत्क्लेशयन्तिच ॥ १६४ ॥

अजवायन, अर्जक (नाजबू, तुलसीका भेद) सुहाजनेकी फली, सौंफ, काली मिर्च ये सब-हृदयको प्रिय तथा अन्नमें स्वादके बढानेवाले होते हैं । परन्तु पित्तको उत्क्लेशित करते हैं ॥ १६४ ॥

गण्डीरादिके गुण।

गण्डीरोजलपिप्पल्यस्तुम्बुरु शृङ्गवेरिका ।
तीक्ष्णोष्णकटुरूक्षाणिकफवातहराणिच ॥ १६५ ॥

गण्डीर (सुंठियासाग), जलपीपल,काला जीरा,सुंठी ये सब-तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, रूक्ष तथा कफ, वातनाशक होते हैं ॥ १६५ ॥

भूस्तृणके गुण ।

पुंस्त्वघ्न कटुरुक्षोष्णोभूतृणोवक्त्रशोधन ॥
खराश्वाकफवातघ्नीवस्तिरोगरुजापहा ॥ १६६ ॥

भूतृण (शाक विशेष)-पुंस्त्वनाशक, कटु, रूक्ष, उष्ण, और मुखशोधक होताहै । अजमोद कफ, वातनाशक, वस्तिके रोगोंको दूर करनेवाला है ॥ १६६ ॥

धनियेआदिके गुण ।

धान्यकंचाजगन्धाचसुमुखाश्चेतिरोचना ।
सुगन्धानातिकटुकादोषानुत्क्लेशयन्तितु ॥ १६७ ॥

धनिया, अजवायन, तुलसी यह सब-अत्यन्त रुचिकारक, सुगंधित, किंचित् कटु, एवम् त्रिदोषको उखाडनेवाले है ॥ १६७ ॥

गाजरके गुण ।

ग्राहीगृञ्जनकस्तीक्ष्णोवातश्लेष्मार्शसांहित. ॥
स्वेदनेऽभ्यवहार्य्येचयोजयेत्तमपित्तिनाम् ॥ १६८ ॥

गृजन-सग्राही, तीक्ष्ण, वात, कफ एवम् अर्शरोगम हितकारक है । पसीना देनेके लिये और भोजनमे इसका उपयोग करे । पित्तकी प्रकृतिवाले मनुष्योंको नहीं खाना चाहिये ॥ १६८ ॥

प्याजके गुण ।

श्लेष्मलोमारुतघ्नश्चपलाण्डुर्नचपित्तनुत् ।
आहारयोगीबल्यश्चगुरुर्वृष्योऽथरोचन ॥ १६९ ॥

प्याज-कफकर्त्ता, वातनाशक, किंचित् पित्तकर्त्ता, आहारमे उपयोगी, बलकारक, भारी, पुष्टिकारक, और गुरुवृष्य तथा रुचिकारक होता है ॥ १६९ ॥

लहसनके गुण ।

क्रिमिकुष्ठकिलासघ्नोवातघ्नोगुल्मनाशन ।
स्निग्धश्चोष्णश्चवृष्यश्चलशुन.कटुकोगुरु ॥ १७० ॥

लहसुन-कृमि, कुष्ठ, किलास तथा वात और गुल्मको नष्ट करता है एवम् स्निग्ध, उष्ण, वृष्य, कटु और भारी है ॥ १७० ॥

शुष्काणिकफवातघ्नान्येतान्येपाफलानितु ।
हरितानामयचैषाषष्ठोवर्ग समाप्यते ॥ १७१ ॥

इति हरितवर्ग ।

यह सूखेहुए तथा इनके वीज यह सब-कफ और वायुके नष्ट करनेवाले होतेहैं। इस प्रकार हरितवर्गनामक यह छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥ १७१ ॥

॥ इति हरितवर्ग ॥

अथमद्यवर्गः ।

प्रकृत्यामद्यमम्लोष्णमम्लंचोक्तविपाकत ।
सर्वसामान्यतस्तस्यविशेषउपदेक्ष्यते ॥ १७२ ॥

मद्य-प्रायः स्वभावसे ही खट्टा और उष्ण होताहै और विपाकमें भी अम्ल ही होताहै। पहले सामान्यतासे मद्यके गुणोंका वर्णन करचुकेहैं अब विशेषतासे कथन करते है ॥ १७२ ॥

सुराके गुण।

कृशानासक्तमूत्राणाग्रहण्यर्शोविकारिणाम् ।
सुराप्रशस्तावातघ्नीस्तन्यरक्तक्षयेषुच ॥ १७३ ॥

जो मनुष्य-कृश, मूत्ररोगी, अर्शपीडित हों उनको तथा क्षयरोगवालाको, एव जिस स्त्रीके स्तनोंमे दूध सूख गयाहो उसको, और रक्तक्षयवालेको सुरा (शराब) पीना हितकारी है। सुरा-वात नाशक होती है ॥ १७३ ॥

मदिराके गुण।

हिक्काश्वासप्रतिश्यायकासवर्चोग्रहारुचौ ।
वम्यानाहविबन्धेषुवातघ्नीमदिराहिता ॥ १७४ ॥

मद्य-वातनाशक होनेसे हिचकी, श्वास, प्रतिश्याय, खांसी, मलग्रह (कब्जी), अरुचि, वमन, आनाह (अफारा), विबंध इन रोगोंमे हितकारक होतीहै ॥ १७४ ॥

जगलमद्यका गुण।

शूलप्रवाहिकाटोपकफवातार्शसाहित. ।
जगलोग्राहिरूक्षोष्ण शोफघ्नोभुक्तपाचन. ॥ १७५ ॥

जगलनामक मद्य-शूल, प्रवाहिका, पेटका फूलना, कफ, वात और अर्शरोगमे हितकारक होताहै तथा ग्राही, रूक्ष, उष्ण, शोथनाशक और भोजनको पचानेवाला है ॥ १७५ ॥

अरिष्टके गुण।

शोफार्शोग्रहणीदोषपाण्डुरोगान्चिन्नरान् ।
हन्त्यरिष्ट कफकृतान्रोगान्रोचनदीपन ॥ १७६ ॥

अरिष्ट स्तनन, अर्श, पाण्डुरोग, ग्रहणीरोग, अरुचि, ज्वर एवम् कफके रोगोंको नष्ट करताहै तथा रोचन और दीपन है ॥ १७६ ॥

शर्करामद्यके गुण ।

मुखप्रियःसुखमदः सुगन्धिर्वस्तिरोगनुत् ।
जरणीयःपरिणतोहृद्योवर्ण्यश्चशार्करः ॥ १७७ ॥

खाडसे-बना अरिष्ट मुखप्रिय, सुखका देनेवाला, मदकारक, सुगंधित, वस्तिरोग-नाशक, पाचनकर्त्ता यदि पुराना होतो हृदयको प्रिय और वर्णकारक होताहै ॥१७७॥

पक्वरसके गुण ।

रोचनोदीपनोहृद्यः शोषशोफार्शसांहितः ।
स्नेहश्लेष्मविकारघ्नोवर्ण्यःपक्वरसोमतः ॥ १७८ ॥

पक्वरसनामक मद्य-रोचक, दीपन, हृद्य, शोषनाशक, सूजन तथा अर्शरोगमें हितकारी है एवम् स्नेहसे और कफसे उत्पन्न हुए रोगोंको नष्ट करताहै तथा वर्ण कारक है ॥ १७८ ॥

शीतरसिकका गुण ।

जरणीयोविबन्धघ्नः स्वरवर्णविशोधनः ॥
लेखनः शीतरसिकोहितः शोफोदरार्शसाम् ॥ १७९ ॥

शीतरसिकनामक मद्य-भोजनको जीर्ण करनेवाला, विबन्धनाशक स्वर और वर्णको उत्तम बनानेवाला, लेखन, एवम् उदररोग तथा अर्शरोगवालोंको हितकारी है॥१७९॥

गौडके गुण ।

सृष्टोभिन्नशकृद्वातोगौडस्तर्पणदीपनः ।
पाण्डुरोगव्रणहितोदीपनीचाक्षिकीमतः ॥ १८० ॥

गुडसे बना मद्य-स्वच्छ, मल और अधोवायुको निकालनेवाला, तृप्तिकारक और दीपन होताहै । गुडके मद्यसे बना मद्य पाण्डुरोग तथा व्रण विकारमें हितकारी होताहै एवम् अग्निको दीपन करताहै ॥ १८० ॥

सुरासवके गुण ।

सुरासवस्तीव्रमदोवातघ्नोवदनप्रियः ।
छेदीमध्वासवस्तीक्ष्णोमैरेयोमधुरोगुरुः ॥ १८१ ॥

सुरासे दोबारेसे खींचाहुआ मद्य-तीव्रमदको करनेवाला, वातनाशक, और सुखप्रिय होताहै । मध्वासव अर्थात् शहदसे बनाहुआ मद्य-छेदन और तीक्ष्ण होताहै । मैरेयनामक मद्य मधुर और भारी होताहै ॥ १८१ ॥

धातक्यासवके गुण ।

धातक्यभिषुतोहृद्योरूक्षोरोचनदीपनः ।
माध्वीकवन्नचात्युष्णोमृद्वीकेक्षुरसासवः ॥ १८२ ॥

धावेके फूलोंके संयोगसे बना मद्य हृदयको प्रिय, रूक्ष, रुचिकारक और दीपन होताहै । मुनक्का और ईखके रससे बना आसव मध्वासवके समान गुणवाला होताहै किन्तु अधिक गर्म नहीं होता ॥ १८२ ॥

मधुके गुण ।

रोचनदीपनहृद्यंबल्यपित्ताविरोधिच ।
विबन्धघ्नंकफघ्नञ्चमधुलघ्वल्पमारुतम् ॥ १८३ ॥

मधुनामकमद्य रुचिकारक, अग्निदीपक, हृदयको प्रिय, बलकारक, पित्तको उत्पन्न करता, विबंधनाशक, कफनाशक, हलका एवम् किंचित् वायुकारक होताहै ॥ १८३ ॥

जौ गेहूं आदिका मद्य ।

सुरासमण्डारूक्षोष्णायवानावातपित्तला ।
गुर्वीजीर्य्यतिविष्टभ्यश्लेष्मलस्तुमधूलकः ॥ १८४ ॥

जवासे बनाहुआ मद्य-तथा उसका मंड रूक्ष, उष्ण, वात, पित्तकारक, भारी तथा देरमें जीर्ण होनेवाला होताहै । मधूलकनामक मद्य कफकारक होताहै ॥ १८४ ॥

सौवीर-तुषोदकके गुण ।

दीपनजरणीयञ्चहृत्पाण्डुक्रिमिरोगनुत् ।
ग्रहण्यर्शोहितभेदिसौवीरकतुषोदकम् ॥ १८५ ॥

सौवीरक (कांजीका भेद) और तुषोदक यह दोनों दीपन, पाचन, हृद्रोग, पाण्डुरोग एवम् कृमिरोग नाशक, मलभेदक तथा ग्रहणी और अर्शरोगमें हितकारक होतेहैं॥१८५॥

अम्लकांजिकके गुण ।

दाहज्वरापहंस्पर्शात्पानाद्वातकफापहम् ।
विबन्धघ्नमविस्रंसिदीपनञ्चाम्लकाञ्जिकम् ॥ १८६ ॥

खट्टी कांजी-स्पर्शसे दाहज्वरनाशक अर्थात् इसमें कपडा भिगोकर रोगीके शरीरपर लपेटनेसे ज्वरकी दाह शान्तहोतीहै, पीनेसे वात, कफ विबंध, मलबद्ध इनको नष्ट करतीहै तथा अग्निको दीपन करतीहै ॥ १८६ ॥

नवीन और पुराने मद्यके गुण ।

प्रायशोऽभिनवमद्यंगुरुदोषसमीरणम्॥स्रोतसांशोधनंजीर्णंदीपनंलघुरोचनम् ॥ १८७ ॥ हर्षणंप्रीणनंवल्यंभयशोकश्रमापहम् ॥ प्रागल्भ्यवीर्य्यप्रतिभातुष्टिपुष्टिबलप्रदम् ॥ सात्त्विकैर्विधिवद्युक्त्यापीतस्यादमृतंयथा ॥ १८८ ॥ वर्गोऽयंसप्तमोमद्यमधिकृत्यप्रकीर्त्तितः ॥ १८९ ॥

इतिमद्यवर्ग. ॥

प्रायः नवीन मद्य-भारी और दोषकारक होती है । पुरानी मद्य-स्रोतोंको शुद्ध करनेवाली, पाचन, दीपन, हलकी, रुचिकारक, हर्षकर्ता, पुष्टिजनक, बलवर्द्धक, भयनाशक, शोकोत्पादक, भ्रमनाशक, चक्रलादकारक, वीर्यवर्द्धक तथा हृष्टपुष्ट करनेवाली होतीहै । विधिपूर्वक पीनेसे-अमृतके समान होती है । इस प्रकार मद्यवर्ग नामक यह सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ । इति मद्यवर्ग. ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

अथजलवर्ग ॥

जलमेकविधसर्वंपतत्यैन्द्रनभस्तलात् ॥
ततपतत्पतितंचैवदेशकालावपेक्षते ॥ १९० ॥

वर्षाका जल-आकाशसे गिरताहुआ प्रायः सब जगह एकही गुणवाला होताहै परन्तु आकाशसे पृथ्वीमें गिरनेपर देश, कालकी अपेक्षासे भिन्न २ गुणोंवाला होजाताहै ॥ १९० ॥

खात्पतत्सोमवाय्वर्कैः स्पृष्टकालानुवर्त्तिभिः ॥
शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्यथासन्नमहीगुणैः ॥ १९१ ॥

आकाशसे गिरता हुआ जल-शीत, उष्ण, कालानुगामी, चन्द्रमा, वायु, सूर्यके स्पर्शसे तथा शीत उष्ण स्निग्ध रूक्षादि पृथ्वीके गुणोंसे युक्त होजाताहै ॥ १९१ ॥

दिव्यजलके छः गुणाः ।

शीतंशुचिशिवंमृष्टंविमलंलघुषड्गुणम् ॥
प्रकृत्यादि- ...

आकाशका जल-स्वभावसे ही शीतल, स्वच्छ, शुभ, शुद्ध, निर्मल, हलका, मधुरादि षड्गुण सपन्न होताहै । पृथ्वीपर गिरजानेसे जैसे स्थानमें गिरे वैसे गुणशाली होजाताहै ॥ १९२ ॥

पात्रभेदसे जलभेद ।

श्वेतेकषायंभवतिपाण्डुरेचैवातिक्तकम् । कपिलेकटुकतोयमूषरेलवणान्वितम् । कटुपर्वतविस्रावेमधुरंकृष्णमृत्तिके ॥१९३॥ एतत्षाड्गुण्यमाख्यातंमहीस्थस्यजलस्यहि । तथाव्यक्तरसंवि-द्यादैन्द्रंकारंहिमञ्चतत् ॥ १९४ ॥

वह अन्तरिक्षसे गिरा जल, श्वेत भूमिमें गिरनेसे कषाय होताहै । पाडुरभूमिमें तिक्त होताहै । कपिलभूमिमें तिक्त होता है । ऊपरभूमिम लवणान्वित होताहै । पर्वतोंमें गिराहुआ कटु होताहै, काली भूमिम मधुर होताहै ॥ १९३ ॥ इस प्रकार पृथ्वीमें गिरे हुए जलके यह ६ गुण कहे हैं । आकाशसे गिराहुआ जल-अव्यक्त रस, शीतल तथा उत्तम गुणकारी होताहै । आकाशके जलको ऐन्द्रजल कहते है१९४॥

ऐन्द्रजलका गुण ।

यदन्तरिक्षात्पततीन्द्रसृष्टञ्चोक्तश्चपात्रेपरिगृह्यतेऽम्भ ।
तदैन्द्रमित्येववदन्तिधीरानरेन्द्रपेयसलिलप्रधानम् ॥ १९५ ॥

जो जल आकाशसे गिरताहुआ पृथ्वीपर गिरने न पाये और पात्रम ही ग्रहण कियाजाये वह जल राजाओंके पीने योग्य सब जलोंम प्रधान मानाजाताहै ॥१९५॥

ऋतावृताविहाख्याता सर्वएवाम्भसोगुणा । ईषत्कषायमधुर सुसूक्ष्मविशदलघु ॥ १९६ ॥ अरूक्षमनभिष्यन्दिसर्वपानीयमुत्तमम् ॥ गुर्वभिष्यन्दिपानीयवार्षिकमधुरसरम् ॥ १९७ ॥

ऋतु ऋतुके भेदसे जलोंके अलग गुण कहेजातेहैं । प्राय सामान्यतासे जल-किंचित् कसेला, मीठा, सूक्ष्म, विशद, हलका, चिकना, अनभिष्यन्दी इन गुणोंसे युक्त सब प्रकारके जलोंमें उत्तम होताहै । वर्षाऋतुका जल-भारी, क्लेदकारक, मीठा और दस्तावर होताहै ॥ १९६ ॥ १९७ ॥

तनुलघ्वनभिष्यन्दिप्राय शरदिवर्षति ॥ तत्तयेसुकुमारा स्यु. स्निग्धभूयिष्टभोजिन ॥ १९८ ॥ तेषाभक्ष्येचभोज्येचलेह्येपेयेचशस्यते ॥ हेमन्तेसलिलंस्निग्धवृष्यंबलयहितगुरु ॥ १९९ ॥

शरदऋतुका जल-सूक्ष्म, हल्का, और क्लेद रहित होताहै इसलिये यह सुकुमार पुरुषोंको चिकना और अधिक भोजन करनेवालोंको भक्ष्य, भोज्य, पदार्थोंमें तथा पीनेमें उत्तम कहा है । हेमन्त ऋतुका जल-चिकना, वीर्यवर्द्ध बलकारक और भारी होताहै ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

किञ्चित्ततोलघुतरंशिशिरेकफवातजित् ॥ कषायमधुररूक्षंवि द्याद्वासन्तिकजलम् ॥ ग्रैष्मिकंत्वनभिष्यन्दिजलमित्येवनिश्च यः ॥ २०० ॥

शिशिरऋतुका जल-किंचित् हल्का, कफ और वायुको जीतनेवाला होताहै । वसन्त ऋतुका जल-कषाय, मधुर और रूक्ष होताहै । ग्रीष्म ऋतुका जल-क्लेद रहित और स्वच्छ होताहै ॥ २०० ॥

विभ्रान्तेष्वृतुकालेषुयत्प्रयच्छन्तितोयदाः ॥
सलिलंतत्तुदोषाययुज्यतेनात्रसंशयः ॥ २०१ ॥

इस प्रकार ऋतुभेदसे जलका निश्चय कियागयाहै । बिना ऋतुके आगे पीछे बर्षा हुआ जल दोषकारक होताहै इसमें सन्देह नहीं ॥ २०१ ॥

राजभीराजमात्रैश्चसुकुमारैश्चमानवैः ॥
संगृहीताःशरद्याप प्रयोक्तव्याविशेषतः ॥ २०२ ॥

राजालोग, धनाढ्य पुरुष तथा सुकुमार मनुष्य इनको आप शरदऋतुमें संग्रह किया जल पीना चाहिये ॥ २०२ ॥

हिमालयकी नदियोंके गुण ।

नद्यः पाषाणविच्छिन्नविक्षुब्धाविमलोदकाः ॥
हिमवत्प्रभवाः पथ्याःपुण्यादेवर्षिसेविताः ॥ २०३ ॥

हिमालय पर्वतसे निकली भई नदियोंका जल पत्थरोंसे आहत और विक्षोभित होताहै तथा निर्मल पुण्य देवर्षियोंसे सेवित परम पथ्य होता है ॥ २०३ ॥

मलयाचलकी नदियोंका गुण ।

नद्यः पाषाणसिकतावाहिन्योविमलोदकाः ।
मलयप्रभवायाश्चजलंतास्वमृतोपमम् ॥ २०४ ॥

मलयाचलसे निकली हुई नदियोंका जल पत्थर और रेतमें बहता हुआ निर्मल होताहै तथा अमृतके समान होताहै ॥ २०४ ॥

पश्चिमकी ओर बहनेवाली नदियोंका गुण।

पश्चिमाभिमुखायाश्चपथ्यास्तानिर्मलोदका। ।
प्रायोमृदुवहागुर्व्योयाश्चपूर्वसमुद्रगाः ॥ २०५ ॥

पश्चिमके समुद्रमे गिरनेवाली नदियोका जल पथ्य तथा निर्मल होताहै। तथा पूर्वके समुद्रमे गिरनेवाली नदियोका जल मृदुगामी और भारी होताहै ॥ २०५ ॥

अन्य नदियोंका जल।

पारियात्रभवायाश्चविन्ध्यसह्यभवाश्चया ।
शिरोहृद्रोगकुष्ठानांताहेतुःश्लीपदस्यच ॥ २०६ ॥

पारियात्रपर्वत, विंध्याचल तथा सह्याद्रिसे निकली नदियोंका जल-शिरोरोग, हृद्रोग, श्लीपद, तथा कुष्ठोंको करनेवाला होताहै ॥ २०६ ॥

वसुधाकीटसर्पाखुमलसदूषितोदका ।
वर्षाजलवहानद्यःसर्वदोषसमीरणा ॥ २०७ ॥

मट्टी तथा कीट, सर्प, और मूषक आदियोंके मल इनसे दूषित होनेके कारण बरसाती नदियोका जल सब दोषोको कुपित करनेवाला होताहै ॥ २०७ ॥

कूपादि जलके गुण।

वापीकूपतडागोत्थसरःप्रस्रवणादिषु ।
आनूपशैलधन्वानांगुणदोषैर्विभावयेत् ॥ २०८ ॥

वावडी, कूप, तालाव, सहा, निर्झर और सरोवर आदिकोका जल-अनूप शैल और जागल देशके गुणोंके समान जानना। अर्थात् जिस देशमें जो वावडी आदिक होंगे वह उसीके अनुसार होग ॥ २०८ ॥

वर्जित जल।

पिच्छिलंक्रिमिलंक्लिन्नपर्णशैवालकर्दमैः ।
विवर्णंविरससान्द्रंदुर्गन्धिनहितंजलम् ॥ २०९ ॥

जो जल-गाढा, कृमियुक्त, क्लिन्न, पत्र और सिवार तथा कीचडयुक्त, रस और वर्णसे रहित, सान्द्र और दुर्गंधित हो उसका कभी सेवन नहीं करना चाहिये २०९

विस्रंत्रिदोषलवणमम्बुयद्वरुणालयम् ।
इत्यम्बुवर्गःप्रोक्तोऽयमष्टमःसुविनिश्चितः ॥ २१० ॥

इति अम्बुवर्गः ।

समुद्रका जल-विस्रगंधयुक्त, त्रिदोषकारक, लवणयुक्त होता है । इस प्रकार जल वर्गनामक यह अष्टम वर्ग वर्णन किया गया ॥ २१० ॥

इति जलवर्ग ॥

अथ दुग्धवर्ग. ।

गोदुग्धके गुण ।

स्वादुशीतमृदुस्निग्धबहलश्लक्ष्णपिच्छिलम् । गुरुमन्दप्रसन्नञ्चगव्यंदशगुणंपयः ॥ २११ ॥ तदेवंगुणमेवौजः सामान्यादभिवर्द्धयेत् । प्रवरंजीवनीयानांक्षीरमुक्तंरसायनम् ॥ २१२ ॥

गौका दूध-स्वादु, शीतल, मृदु, स्निग्ध, घन, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, गुरु, मंद, प्रसन्न इन १० गुणोंवाला होता है तथा इन गुणोंसे संपन्न होनेसे और ओजधातुके समान होनेसे ओजको बढानेवाला, श्रेष्ठ, जीवनदायक और रसायन होता है ॥२११॥२१२॥

भैंसके दूधके गुण ।

महिषीणांगुरुतरंगव्याच्छीततरंपयः ।
स्नेहान्न्यूनमनिद्रायहितमत्यग्नयेचतत् ॥ २१३ ॥

भैंसका दूध-गौके दूधसे भारी, शीतल, अधिकस्नेहयुक्त, जिनको निद्रा नहीं आती और अत्यन्त अग्निवालोंको परम हितकारक है ॥ २१३ ॥

ऊंटनीके दूधका गुण ।

रूक्षोष्णंक्षीरमुष्ट्रीणामीषत्सलवणंलघु ।
शस्तंवातकफानाहकृमिशोफोदरार्शसाम् ॥ २१४ ॥

ऊंटनीका दूध-रूखा, गर्म, किंचित् नमकीन और हलका होता है एवम् वात, कफ, अफारा, कृमि, सूजन, उदररोग और बवासीरको हितकारी होता है ॥ २१४ ॥

घोडी आदिके दूधका गुण ।

बल्यंस्थैर्यकरंसर्वमुष्णमैकशफंपयः ।
साम्लंसलवणंरूक्षंशाखावातहरंलघु ॥ २१५ ॥

एक खुरवाले जानवरोंका दूध-जैसे, घोडी, गधा आदिकोंका दूध बलकारक, शरीरको दृढ करनेवाला, उष्ण, किंचित् खट्टा और नमकीन, रूखा, शाखावातको नष्ट करता है ॥ २१५ ॥

बकरीके दूधका गुण।

छागकपायमधुरशीतग्राहिपयोलघु।

रक्तपित्तातिसारघ्नंक्षयकासज्वरापहम् ॥ २१६ ॥

बकरीका दूध-कसैला, मधुर, शीतल, ग्राही और हलका है तथा रक्तपित्त और अतिसार, क्षय, काश, ज्वर इनको नष्ट करता है ॥ २१६ ॥

भेड तथा हस्तिनीके दूधका गुण।

हिक्काश्वासकरन्तूष्णपित्तश्लेष्मलमाविकम्।

हस्तिनीनापयोवल्यगुरुस्थैर्यकरपरम् ॥ २१७ ॥

भेडका दूध-गर्म है तथा पित्तकफकारक, हिचकी तथा श्वासको उत्पन्न करनेवाला है।हथिनीका दूध-बलकारक,भारी,शरीरको परमदृढ़ करनेवाला होता है॥२१७॥

स्त्रीके दूधका गुण।

जीवनंबृंहणसात्म्यंस्नेहनमानुषपय।

नावनरक्तपित्तेचतर्पणश्चाक्षिशूलिनाम् ॥ २१८ ॥

स्त्रीका दूध-जीवनदायक, पुष्टिकारक, सात्म्य, स्नेहन, रक्तपित्तम नसवार और नेत्ररोगम नेत्रतर्पणके लिये परमहितकारक है ॥ २१८ ॥

दहींके गुण।

रोचनदीपनवृष्यंस्नेहनबलवर्द्धनम्। पाकेऽम्लमुष्णवातघ्नम-ङ्गल्यंबृंहणदधि ॥ २१९ ॥ पीनसेचातिसारेचशीतकेविषमज्व-रे। अरुचौमूत्रकृच्छ्रेचकार्श्येचदधिशस्यते ॥ २२० ॥

दही-रुचिकारक, दीपन, वीर्यवर्द्धक, स्नेहन, बलवर्द्धक, पाकमें अम्ल, उष्ण, वातनाशक, मंगलकारक, एवम् पुष्टिजनक होताहै। दही-प्रतिश्याय, अतिसार, शीतकरोग, विषमज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और कृशतारोगम परम हितकारक है ॥ २१९ ॥ २२० ॥

दहीका निषेध।

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषुप्रायशोदधिगर्हितम्।

रक्तपित्तकफोत्थेषुविकारेष्वहितंमतम् ॥ २२१ ॥

शरद, ग्रीष्म और वसन्तऋतुमें दही नहीं खाना चाहिये। रक्तपित्त और कफसे उत्पन्नभये रोगोंमें भी दहीका खाना उचित नहीं ॥ २२१ ॥

मन्दकदधिके गुण।

त्रिदोषमन्दकंजातंवातघ्नंदधिशुक्रलम् ॥

सरःश्लेष्मानिलघ्नस्तुमण्डःस्रोतोविशोधनः ॥ २२२ ॥

मदक दही अर्थात् विना जमा दूध-त्रिदोषकारक होताहै। दहीकी मलाई वात नाशक और वीर्यवर्द्धक होतीहै। दहीका तोड-दस्तावर कफवातनाशक एवम् स्रोतमार्गको शुद्ध करनेवाला होताहै ॥ २२२ ॥

तक्रके गुण।

शोफार्शोग्रहणीदोषमूत्रकृच्छ्रोदरारुचि ॥

स्नेहव्यापदिपाण्डुत्वेतक्रंदद्याद्गरेषुच ॥ २२३ ॥

तक्र-सूजन, अर्श, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ, उदररोग, अरुचि स्नेहपानसे उत्पन्न हुआ दोष, पाडुरोग गरदोष इन सबमें सेवन करना योग्य है ॥ २२३ ॥

नवनीतके गुण।

संग्राहिदीपनंहृद्यंनवनीतंनवोद्धृतम् ॥

ग्रहण्यर्शोविकारघ्नमर्दितारुचिनाशनम् ॥ २२४ ॥

ताजामक्खन-संग्राही दीपन, हृदयको हितकारी, ग्रहणीरोगनाशक बवासीरनाशक, अर्दितरोगनाशक एवम् रुचिकारक है ॥ २२४ ॥

घृतका गुण।

स्मृतिबुद्ध्यग्निशुक्रौजःकफमेदोविवर्द्धनम् ॥

वातपित्तविषोन्मादशोषालक्ष्मीज्वरापहम् ॥ २२५ ॥

सर्वस्नेहोत्तमंशीतंमधुरंरसपाकयोः ॥

सहस्रवीर्यंविधिभिर्घृतंकर्मसहस्रकृत् ॥ २२६ ॥

घृत-स्मृति, बुद्धि अग्नि, वीर्य, ओज कफ और मेद इनको बढानेवाला है तथा वात, पित्त, विषविकार उन्माद शोष, अलक्ष्मी, ज्वर इन सबको नष्ट करताहै। संपूर्ण स्नेहोंमे उत्तम है। रस तथा विपाकमें मधुर है। घृत सहस्रों द्रव्योंके संयोगसे [illegible] संस्कार किया सहस्र प्रकारके गुणोंको करताहै ॥ २२ [illegible] ॥ २२६ ॥

पुराने घृतका गुण।

[illegible] ॥

योनिकर्णशिरःशूलं [illegible] ॥

पुराना घी-मदरोग, मृगी, मूर्च्छा, शोष, उन्माद, गर, ज्वर, योनि, कान तथा शिरके शूल इन सबको दूर करताहै ॥ २२७ ॥

सर्पींष्यजाविमहिषीक्षीरवत्स्वानिनिर्दिशेत् ॥ पीयूषोमोरटश्चैवकिलाटाविविधाश्चये ॥ २२८ ॥ दीप्ताग्नीनामनिद्राणासर्वे एतेसुखप्रदा ॥ गुरवस्तर्पणावृष्याबृंहणाःपवनापहा ॥ २२९ ॥

महिषी, भेड, बकरी इनके घृत-इनके दूधके समान गुणवाले जानने । पीयूष (तत्काल निआई-गौका दूध), मोरट (खडी), किलाट (खोआ) ये सब बलवान् अग्निवालेको तथा जिनको निद्रा कम आती हो उनको परम सुखके देनेवाले है तथा भारी, तृप्तिकारक, वीर्यवर्द्धक, पुष्टकारक एवम वातनाशकहोते हैं॥२२८॥२२९॥

तक्रपिण्डिकाके गुण ।

विपदागुरवोरूक्षाग्राहिणस्तक्रपिण्डका ।
गोरसानामयवर्गोनवम परिकीर्त्तित ॥ २३० ॥

इति गोरसवर्ग ।

तक्रपिंड (पनीर)-स्वच्छ, भारी, रूक्ष और ग्राही होता है । इस प्रकार दूधवर्ग नामक यह नवम वर्ग समाप्तहुआ ॥ २३० ॥

अथेक्षुवर्गः ।

ईखके रसका गुण ।

वृष्यःशीत स्थिर स्निग्धोबृहणोमधुरोरस ।
श्लेष्मलोभक्षितस्येक्षोर्यान्त्रिकस्तुविदह्यते ॥ २३१ ॥

दांतासे चूसा हुआ ईखका रस-वीर्यवर्द्धक शीतल, दस्तावर, स्निग्ध, पुष्टिकारक, मधुर और कफकारक होताहै । कोल्हूसे निकाला हुआ ईखका रस-विदाहकारी होता है । तथा उपरोक्त सपूर्ण गुणयुक्त भी होताहै ॥ २३१ ॥

पौंडा-गन्ना तथा गुडके गुण।

शैत्यात्प्रसादान्माधुर्य्यात्पौण्ड्रकाद्वंशकोवर ।
प्रभूतक्रिमिमज्जासृङ्मेदोमांसकरोगुड ॥ २३२ ॥

पौंडा-शीतल, स्वच्छ और मीठा होता है । यह ईख-गुणमे इससे अधिक है । गुड-कृमिकारक, मज्जा, रुधिर, मेद मांस इनको करनेवाला होताहै ॥ २३२ ॥

क्षुद्रोगुडश्चतुर्भागात्रिभागार्द्धशेषित ।
रसोगुरुर्यथापूर्वंधौतस्वल्पमलोगुड. ॥ २३३ ॥

गुड पकाते समय जिसमें चारभाग रस हो उस गुडसे जिसमें तीनभाग रस बाकी रहगया वह गुड उससे दो भाग बाकी रहनेवाला तथा जिसमें आधाभाग रह गया हो यह क्रमपूर्वक पहिलेसे दूसरा भारी होतेहै । शुद्ध कियागुड अल्प मलवाला होताहै ॥ २३३ ॥

मत्स्यण्डिकादिके गुण ।

ततोमत्स्यण्डिकाखण्डशर्कराविमला परम् ।
यथायथैषावैमल्यभवेच्छैत्यंतथातथा ॥ २३४ ॥

गुडकी अपेक्षा राब, राबकी अपेक्षा खाड और खाडकी अपेक्षा बूरा तथा इनमें पूर्वकी अपेक्षा जो जितना निर्मल होगा वह गुणमें उतना ही शीतल होता जाताहै ॥ २३४ ॥

गुडशर्करादिके गुण ।

तृष्णा क्षीणक्षतहिता सस्नेहागुडशर्करा ।
कषायमधुरा शीता सतिक्तायासशर्करा ॥ २३५ ॥

गुड शक्कर (गुडकी शर्करा, भीगविस्त)-पुष्टकारक, क्षीण और क्षतमें हितकारी तथा स्निग्ध एवम् गुडरस रखनेवाला है । यासशर्करा (यवासशर्करा)-कसैली, मधुर, शीतल किंचित् तिक्त तथा भारी और शीतल करनेवाली होतीहै ॥ २३५ ॥

मधुशर्कराके गुण ।

रूक्षावम्यतिसारघ्नीछेदनीमधुशर्करा ।
तृष्णासृक्पित्तदाहेषुप्रशस्ता सर्वशर्करा ॥ २३६ ॥

मधुशर्करा-रूक्ष, वमन और अतिसारनाशक तथा मलको छेदन करनेवाली है सब प्रकारकी खांड प्यास रक्तपित्त और दाह इनको शान्त करनेवाली है ॥ २३६ ॥

शहदके भेद ।

माक्षिकभ्रामरक्षौद्रपौत्तिकमधुजातय. ।
माक्षिकंप्रवरतेषांविशेषाद्भ्रामरगुरु ॥ २३७ ॥

मधु-माक्षिक, भ्रामर, क्षौद्र पौत्तिक इन भेदोंसे चार प्रकारका होताहै । इनमें माक्षिक मधु उत्तम है और भ्रामर मधु भारी अधिक होताहै ॥ २३७ ॥

शहतके रंग ।

माक्षिकंतैलवर्णंस्याच्छ्वेतंभ्रामरमुच्यते ।
क्षौद्रन्तुकपिलंविद्याद्घृतवर्णन्तुपौत्तिकम् ॥ २३८ ॥

माक्षिकमधु तेलके वर्णका होताहै । भ्रामर मधु श्वेत होताहै । क्षौद्रमधु कपिलवर्णका होताहै । पौत्तिकमधु घृतके वर्णका होताहै ॥ २३८ ॥

शहतके गुण ।

वातलंगुरुशीतञ्चरक्तपित्तकफापहम् ।
सन्धातृच्छेदनंरूक्षंकषायंमधुरंमधु ॥ २३९ ॥

मधु-वातकारक भारी, शीतल, रक्तपित्तनाशक, कफनाशक, सधानकारक, छेदक, रूक्ष, कषाय और मधुर होताहै ॥ २३९ ॥

हन्यान्मधूष्णमुष्णार्त्तमथवासविषान्वयात् ।
गुरुरूक्षकषायत्वाच्छैत्याच्चाल्पंहितंमधु ॥ २४० ॥

क्योंकि मक्खियां सब प्रकारके पुष्पोंमसे रस लेतीहैं उनमें कुछ ऐसे पुष्प भी होतेहैं जो विषके समान है इस लिये मधुको विषके सम्पर्क होनेसे गर्म करके गर्म औषधिके साथ गर्मीसे व्याकुल मनुष्योंको नहीं खाना चाहिये क्योंकि ऐसा होनेसे मधु विषके समान प्राणनाशक होताहै । मधु-भारी, रूक्ष, कषाय तथा शीतल होनेसे थोडा खाना हितकारक होताहै ॥ २४० ॥

मधुके गुण ।

नातःकष्टतमंकिञ्चिन्मध्वामात्तद्धिमाधवम् । उपक्रमविरोधित्वात्सद्योहन्याद्यथाविषम् ॥ २४१ ॥ आमेसोष्णाक्रियाकार्य्या सामध्वामेविरुध्यते । मध्वामंदारुणंतस्मात्सद्योहन्याद्यथाविषम् ॥ १४२ ॥

मधुसे अधिक सेवन करनेसे यदि उससे आम प्रगट होजाय तो उसको मध्वाम कहतेहैं । इससे बढकर कष्टदायक दूसरा रोग नहीं है । क्योंकि इसकी चिकित्सामें उपक्रम विरोध होनेसे चिकित्सा करना कठिन पडताहै । साथ आमरोगमें उष्णक्रिया करना आवश्यक होताहै यह उष्णक्रिया मध्वाममें विरोधी पडतीहै अतएव यह रोग दारुण और विषके समान प्राणनाशक होताहै ॥ २४१ ॥ २४२ ॥

मधुका योगवाहित्व ।

नानाद्रव्यात्मकत्वाच्चयोगवाहिहिममधु ।
इतीक्षुविकृतिप्रायोवर्गोऽयंदशमोमत ॥ २४३ ॥

इति इक्षुवर्ग ।

मधु अनेक गुणवाले द्रव्याके संयोगसे समझ कियाजाताहै इसलिये अनेक द्रव्योंके साथ इसका उपयोग करनेमें आताहै । यह योगवाही और शीतल है । इसप्रकार यह इक्षुवर्ग नामक दशमवर्ग समाप्त हुआ ॥ २४३ ॥

अथकृतान्नवर्ग ।

क्षुत्तृष्णाग्लानिदौर्बल्यकुक्षिरोगविनाशिनी ।
स्वेदाग्निजननीपेयावातवर्चोऽनुलोमनी ॥ २४४ ॥

पेया-क्षुधा, तृषा, ग्लानि, दुर्बलता, कुक्षिरोग इन सबको शान्तकर्ताहै । और उत्पादक अग्नि एवम् अधोवात और मलको निकालनेवाली है ॥ २४४ ॥

तर्पणीग्राहिणीलघ्वीहृद्याचापिविलेपिका ॥ २४५ ॥ मण्डस्तु दीपयत्यग्निंवातश्चाप्यनुलोमयेत् ॥ मृदूकरोतिस्रोतांसिस्वेदं सजनयत्यपि ॥ २४६ ॥ लङ्घितानांविरिक्तानांजीर्णेस्नेहेचतृष्य- ताम् ॥ दीपनत्वाल्लघुत्वाच्चमण्ड स्यात्प्राणधारण ॥ २४७ ॥

विलेपी-तर्पिकर्ता, ग्राही, हलकी एवम् हृदयको प्रिय होतीहै । मांड-अग्निदीपक, वायुको अनुलोमनकर्ता, सोतोंको मृदु करनेवाला और स्वेदजनक होताहै । लंघन करनेवाले मनुष्योंको, विरिक्त मनुष्योंको और स्नेहपान होनेपर तृषित और हलका होनेसे मांड बिगाला प्राणधारक होताहै ॥ २४५ ॥ २४६ ॥ २४७ ॥

लाजमण्डके गुण ।

शृत पिप्पलिशुण्ठीभ्यांयुक्तोलाजाम्लदाडिमैः । तृष्णातीसा रशमनोधातुसाम्यकर पिर ॥ लाजमण्डोऽग्निजननो दाहसू- र्च्छानिवारण ॥२४८॥ मन्दाग्निविषमाग्नीनांबालस्थविरयोषि ताम् । देयश्चसुकुमाराणांलाजमण्ड सुसंस्कृत ॥ क्षुत्पिपासा सह पथ्यःशुद्धानान्तुमलापह. ॥ २४९ ॥

धानाकी खीलाका बनायाहुआ माड-पीपर, सोठ और खट्टे अनारोंका रस युक्त कर पीनेसे तृष्णा और अतिसार शान्त करताहै और धातुओंको साम्यावस्थामें लाताहै, शुभ है, अग्निजनक, दाह और मूर्च्छाको निवारण करनेवालाहै। यह अच्छे प्रकार बनायाहुआ लाजामड मन्दाग्नि वालोंको, विषमाग्निवालोंको,बालकोंको, वृद्धोंको, स्त्रियोंको, सुकुमार पुरुषोंको, क्षुधा, पिपासाके शान्तिके लिये देनाचाहिये। यह संशोधित मनुष्योंको पथ्य है एवम मलका निकालनेवाला है ॥ २४८ ॥ २४९ ॥

भातके गुण।

सुधौत प्रस्रुत'स्विन्न सन्तप्तश्चौदनोलघु.। भृष्टतण्डुलमिच्छन्तिगरश्लेष्मामयेष्वपि ॥ २५० ॥ अधौत प्रस्रुतःस्विन्न शीतश्चाप्योदनोगुरु ॥ २५१ ॥

चावलोंको भले प्रकार धोकर सिद्ध करे और उनकी पीछ सरगरह दूरकर उत्तम तैयार होजानेपर इनका गर्मगर्म भोजन करना हलका और उत्तम कहाहै। विषदोष और कफके विकारमें चावलोंको भूनकर भात सिद्ध होनेपर देनाचाहिये। विना धोयेहुए, विना पीछ निकाले सिद्धकिया भात एव शीतलभात भक्षण कियाहुआ भारी तथा गुरुपाकी होताहै ॥ २५० ॥ २५१ ॥

मांसशाकवसातैलघृतमज्जाफलौदनाः।
बल्या सन्तर्पणाहृद्यागुरवोबृंहयन्तिच ॥ २५२ ॥

मांस, शाक, वसा (चर्बी), तैल,घृत, मज्जा एवम फलोंके साथ सिद्ध किया हुआ अन्न बलकारक, तृप्तिकारक, हृद्य, भारी, पुष्टिकारक होताहै ॥ २५२ ॥

कुल्माषके गुण।

तद्वन्मापतिलक्षीरमुद्गसयोगसाधिता।
कुल्मापागुरवोरूक्षावातलाभिन्नवर्चस ॥ २५३ ॥

उसीके समान उडद, तिल, दूध, मूग इनके सयोगसे सिद्धकिया हुआ अन्न भी उपरोक्त गुणवाला होता है। कुल्माष (गहूं और चनेका होरा)-भारी, रूक्ष वातकारक एवम मलभेदक होताहै ॥ २५३ ॥

स्विन्नभक्ष्यास्तुयेकेचित्सौप्यगोधूमयावका।
भिषक्तेषायथाद्रव्यमादिशेद्गुरुलाघवम् ॥ २५४ ॥

दाल, गेहूं, यव-इनसे सिद्धकिये भोजनमें उन पदार्थके अनुसार गुरु और लाघव जानकर वैद्य वर्तन करे ॥ २५४ ॥

कृताकृतयूषके गुण ।

अकृतकृतयूषश्चतनुसंस्कारितरसम् ।

सूपमम्लमनम्लञ्चगुरुविद्याद्यथोत्तरम् ॥ २५५ ॥

बिना घृत, मसालेवाला यूष एवम् घृत मसालायुक्त यूष, पतला तैयार किया हुआ रस, खटाई युक्त दाल, खटाई रहित दाल, यह सब क्रमपूर्वक क्रमसे दूसरा उत्तरोत्तर भारी जानना ॥ २५५ ॥

सत्तूके गुण।

सक्तवोवातलारूक्षाबहुवर्चोऽनुलोमिनः ।

तर्पयन्तिनरंसद्य पीता सद्योबलाश्चते ॥ २५६ ॥

सत्तू जलमें घोलकर पिये हुए-वातकारक, रूक्ष, मलवर्द्धक, अनुलोमन, भूखे मनुष्यको शीघ्र तृप्त करनेवाले तथा शीघ्र बल देनेवाले होते हैं ॥ २५६ ॥

शालिधान्यका सत्तू ।

मधुरालघवः शीताःसक्तवः शालिसम्भवाः ।

ग्राहिणोरक्तपित्तघ्नास्तृपाछर्दिज्वरापहा ॥ २५७॥

शालीनामके सत्तू-मधुर, हलके, शीतल, ग्राही, रक्तपित्तनाशक, तृषानाशक एवम् वमन तथा ज्वरको शान्त करते हैं ॥ २५७ ॥

जौकी गेंहियोंका गुण ।

हन्याद्व्याधीन्यवापूपोयावकोवाटएवच ।

उदावर्त्तप्रतिश्यायकासमेहगलग्रहान् ॥ २५८ ॥

[illegible] पूड और बाटिया-उदावर्त, प्रतिश्याय, खांसी, प्रमेह और गलग्रहको नष्ट करते हैं ॥ २५८ ॥

जौकी धानीके गुण ।

धानासञ्ज्ञास्तुयेभक्ष्याः प्रायस्तेलेखनात्मकाः ।

शुष्कत्वात्तर्पणाश्चैवविष्टम्भित्वाच्चदुर्जराः ॥ २५९ ॥

धाना (भुनहुए जव या गेहूं)-शरीरको हलका करते हैं और शुष्क होनेसे तृप्तिकारक होते हैं तथा विष्टम्भी होनेसे देरसे पचते हैं ॥ २५९ ॥

विरूढधानाके गुण ।

विरूढधाना शष्कुल्योमधुक्रोडाः सपिण्डकाः ।

पूपाःपूपलिकाद्याश्चगुरवः पैष्टिकाःपरम् ॥ २६० ॥

पिष्ट धान्योंकी शष्कुली, मीठी गुझिया, लड्डू, पूडे, पूडियें और कचौरियें ये सब अत्यन्त भारी होते है ॥ २६० ॥

फलादिसस्कृतके गुण ।

फलमासवसाशाकपललक्षौद्रसस्कृता ।
भक्ष्यावृष्याश्चबल्याश्चगुरवोबृहणात्मका: ॥ २६१ ॥

फल, मास, चर्बी, शाक, पल्वल, शहद इन सबके सयोगसे सिद्धकिये भोजनके पदार्थ-वीर्यवर्द्धक, बलकारक, भारी और पुष्टिजनक होते है ॥ २६१ ॥

वेशवारके गुण ।

वेशवारोगुरु स्निग्धोबलोपचयवर्द्धनः ।
गुरवस्तर्पणावृष्या क्षीरेक्षुरससूपका ॥ २६२ ॥

वेसवार (पिष्ठमास)-भारी, स्निग्ध और बलवर्द्धक होताहै । दूध और खाडसे बनाईहुई खीर-भारी, तृप्तिकारक एवम वीर्यवर्द्धक होती है ॥ २६२ ॥

सगुडा सतिलाश्चैवसक्षीरक्षौद्रशर्करा ।
वृष्याबल्याश्चभक्ष्यास्तुतेपरगुरुव स्मृता. ॥ २६३ ॥

गुड, तिल, दूध, शहद, खाड इनसे बने पदार्थ-वीर्यवर्द्धक, बलकारक, एवम्, अत्यन्त भारी होते हैं ॥ २६३ ॥

गेहूके पदार्थके गुण ।

सस्नेहा स्नेहसिद्धाश्चभक्ष्याविविधलक्षणा ।
गुरवस्तर्पणावृष्याहृद्यागोधूमिकामता ॥ २६४ ॥

चिकनाईयुक्त एवम घृतमे सिद्धकिये हुए गेहूके आटेके पदार्थ-भारी, तृप्तिकारक वीर्यवर्द्धक एवम हृदयको प्रिय होते है ॥ २६४ ॥

सस्कारात्लघव सन्तिभक्ष्यागोधूमपोष्टिका ।
धानापर्पटपूपाद्यास्तानबुद्ध्वानिर्दिशेत्तथा ॥ २६५ ॥

सस्कारविशेषसे गेहू के बने पदार्थ हलके भी होते है । जो धानियें, पापड, पूडे आदि पदार्थ है इन सबको सस्कारविशेषसे हलके और भारी कहना चाहिये ॥ २६५ ॥

पृथुकागुरवोभृष्टान्भक्षयेदल्पशस्तुतान् ।
यावानिष्टम्भजीर्यन्तिमनुपानिस्रवर्न्म ॥ २६६ ॥

गूदा-भारी होताहै इनको भूनकर थोडा खाना चाहिये । पकके भूने-विदग्ध करके पाचन होते है। यदि तुषा सहित हों मलके भेदन करनेवाले होते हैं ॥ २६६ ॥

सूप्यान्नविकृताभक्ष्यावातलारूक्षशीतला. ॥
सकटुस्नेहलवणानल्पशोभक्षयेत्तुतान् ॥ २६७ ॥

उडद आदिकी दालसे बने हुए यूष-रूक्ष,शीतल और वायुकारक होते है इस लिये उनको पीपल, मिर्च, सोंठ मिलाकर तथा घृतयुक्त कर थोडा खाना चाहिये ॥२६७॥

पाकके गुण ।

मृदुपाकाश्चयेभक्ष्या.स्थूलाश्चकठिनाश्चये ॥
गुरवस्तेऽप्यतिक्रान्तपाका पुष्टिबलप्रदा' ॥ २६८ ॥

स्थूल और कठिनद्रव्य जो मृदुपाकी होते है वह सब भारी देरमें पचनेवाले, पुष्टिकारक और बलके देनेवाले होतेहै ॥ २६८ ॥

द्रव्यसयोगसस्कारद्रव्यमामपृथक्तथा ।
भक्ष्याणामादिशेद्बुद्ध्वायथास्वगुरुलाघवम् ॥ २६९ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि सपूर्ण भक्षण करनेके पदार्थोंको द्रव्य, सयोग, सस्कार, मान विशेषसे यथोचित रीतिपर जानकर उनके अनुसार गुरु, लघु आदि कथन करे ॥ २६९ ॥

रसालाके गुण ।

रसालाबृहणीवृष्यास्निग्धाबल्यारुचिप्रदा ।
स्नेहनतर्पणहृद्यवातघ्नगुडदधि ॥ २७० ॥

सिखरन-वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, स्निग्ध, बलवर्द्धक परम रुचिकारक होताहै । गुडयुक्त दही-तृप्तिकारक, स्नेहन और वातनाशक होताहै ॥ २७० ॥

पानकके गुण ।

द्राक्षाखर्जूरकोलानागुरुविष्टम्भिपानकम् ।
परूपकाणांक्षौद्रस्ययच्चेक्षुविकृतिप्रति ॥ २७१ ॥
तेषाकट्वम्लसयोगा पानकानापृथक्पृथक् ।
द्रव्यमानचविज्ञायगुणकर्माणिचादिशेत् ॥ २७२ ॥

मुनक्का, छुहारा उन्नाव इनसे बनाया हुआ पानक भारी और विष्टम्भी होताहै । फालसेका रस और शहदसे बनाया हुआ पानक तथा खाड मिश्रीसे बनाया हुआ

पानक उनके चरपरे, खट्टे आदि गुणोंसे तथा संयोग और द्रव्य मानको जानकर गुण कर्मोंको कथन करे। इसी प्रकार प्राय सब फलोंके पानक (शरबत) जानने चाहिये ॥ २७१ ॥ २७२ ॥

रागषाडवके गुण।

कट्वम्लस्वादुलवणालघवोरागषाडवाः ।
मुखप्रियाश्चहृद्याश्चदीपनाभक्तरोचना ॥ २७३ ॥

रागखाडव-चरपरे, अम्ल, मधुर, नमकीन, हल्के, मुखप्रिय, हृद्य, दीपन और भोजनमे रुचि करनेवाले होतेहैं ॥ २७३ ॥

आम और आंवलेका अवलेह।

आम्रामलकलेहाश्चबृंहणाबलवर्द्धनाः ।
रोचनास्तर्पणाश्चोक्तालेहमाधुर्य्यगौरवात् ॥ २७४ ॥

पके हुए आम और आमलेके संयोगसे बनाई हुई चटनी-चिकनी मीठी, भारी, बलवर्द्धक, बृंहण रुचिकारक तथा तृप्तिकारक होतीहै ॥ २७४ ॥

बुद्ध्वासंयोगसस्कारद्रव्यमानश्चतत्स्मृतम् ।
गुणकर्माणिलेहानातेपातेपातथावदेत् ॥ २७५ ॥

जितने प्रकारके लेह पदार्थ है वह सब संयोग, संस्कार द्रव्य परिमाण इनके भेदसे उनके गुण कर्मोंको कथन करे ॥ २७५ ॥

शुक्तके गुण।

रक्तपित्तकफोत्क्लेदिशुक्तवातानुलोमनम् ।
कन्दमूलफलाद्यश्चतद्वद्विद्यात्तदासुतम् ॥ २७६ ॥

कंद, मूल, फल आदिकाका अचार-रक्तपित्त, कफ इनको उत्क्लेश करनेवाला तथा वातको अनुलोम करनेवाला होताहै। सिरकेमे डाला हुआ अचार भी उन्हींके समान गुणवाला होताहै ॥ २७६ ॥

शिण्डाकीका गुण।

शिण्डाकीचासुतश्चान्यत्कालाम्लरोचनलघु ।
विद्याद्वर्गंकृतान्नानामेकादशतमभिषक् ॥ २७७ ॥

इति कृतान्नवर्ग ।

चटनिया, अचार, कांजी आदि सब प्रकारकी खटाई रुचिकारक और हल्की होतीहै। इसप्रकार कृतान्नवर्ग नामक ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥ २७७ ॥

अथाहारयोगवर्ग ।

तैलके गुण ।

कषायानुरसंस्वादुसूक्ष्ममुष्णंव्यवायिच । पित्तलंबद्धविण्मूत्रंनचश्लेष्माभिवर्द्धनम् ॥ २७८ ॥ वातघ्नेषूत्तमंबल्यंत्वच्यमेधाग्निवर्द्धनम् । तैलसंयोगसंस्कारात्सर्वरोगापहंमतम् ॥ २७९ ॥

तिलोंका तेल–कषाय, अनुरस, स्वादु, सूक्ष्म, उष्ण, व्यवायी, पित्तवर्द्धक, मल मूत्रको बांधनेवाला तथा कफवर्द्धक नहीं है। वातनाशकोंमें उत्तम, बलकारक, त्वचाको उत्तम बनानेवाला मेधा और अग्निको बढानेवाला होता है एवम् औषधियोंके संयोगसे सिद्ध किया तेल संपूर्ण रोगोंको नष्ट करता है ॥ २७८ ॥ २७९ ॥

तैलकी उत्कृष्टतामें दृष्टान्त ।

तैलप्रयोगादजरानिर्विकाराजितश्रमाः ।
आसन्नातिबला संख्येदैत्याधिपतयः पुरा ॥ २८० ॥

किसी समयमें दैत्योंके राजा तेलके प्रयोगसे अजर, निर्विकार, श्रमरहित एवम् रणमें अत्यन्त बलवान् हुए थे। (यदि मनुष्यभी विधिपूर्वक तेलका उपयोग करे तो बलवान् तथा उपरोक्त गुणोंवाला होसकता है परन्तु तेल मर्दन करनेसेही अधिक गुण करता है ॥ २८० ॥

अरण्डतैलके गुण ।

ऐरण्डतैलंमधुरंगुरुश्लेष्माभिवर्द्धनम् ।
वातासृग्गुल्महृद्रोगजीर्णज्वरहरंपरम् ॥ २८१ ॥

अरंडीका तेल–मधुर, भारी, कफवर्द्धक तथा वात, रक्त, गुल्म, हृद्रोग, जीर्णज्वर इनको हरनेवाला है ॥ २८१ ॥

सरसोंके तेलके गुण ।

कटूष्णंसार्षपंतैलंरक्तपित्तप्रदूषणम् ।
कफशुक्रानिलहरंकण्डूकोठविनाशनम् ॥ २८२ ॥

सरसोंका तेल–कटु, उष्ण, रक्तपित्तको दूषित करनेवाला कफ, शुक्र तथा वायुको हरनेवाला तथा खुजली कोठ आदि रोगोंको नष्ट करता है ॥ २८२ ॥

पियालके तेलके गुण ।

पियालतैलंमधुरंगुरुश्लेष्माभिवर्द्धनम् ।
हितमिच्छन्तिनात्यग्निंसंयोगेवातपित्तयोः ॥ २८३ ॥

चिरौंजीका तेल-मीठा भारी, कफ वर्द्धक तथा अत्यन्त गर्म न होनेसे द्रव्यके संयोग द्वारा वातपित्तको नष्ट करताहै ॥ २८३ ॥

अलसीके तैलके गुण ।

आतस्यमधुराम्लन्तुविपाकेकटुकंतथा ।
उष्णवीर्य्यंहितवातेरक्तपित्तप्रकोपनम् ॥ २८४ ॥

अलसीका तेल-मीठा, अम्ल, विपाकमें कटु, उष्णवीर्य, वातरोगमें हित एवम् रक्तपित्तको कुपित करनेवाला है ॥ २८४ ॥

कसूमके तैलके गुण ।

कुसुम्भतैलमुष्णञ्चविपाकेकटुकगुरु ।
विदाहिचविशेषेणसर्वरोगप्रकोपनम् ॥ २८५ ॥

कुसुम्भके बीजाका तेल-गर्म, विपाकमें कटु, भारी, विशेषकर विदाही एवम्-सर्व दोषोंको कुपित करनेवाला है ॥ २८५ ॥

फलोंके तैलके गुण ।

फलानायानिचान्यानितैलान्याहारसन्निधौ ।
युज्यन्तेगुणकर्मभ्यातानिब्रूयाद्यथायथम् ॥ २८६ ॥

इसीप्रकार अनेक प्रकारके फलोंके तेलोंको आहारके संयोगमें गुणकर्मों करके उनके गुणोंको कथन करे ॥ २८६ ॥

मज्जावसाके गुण ।

मधुरोबृंहणोवृष्योबल्योमज्जातथावसा ।
यथासत्त्वन्तुशैत्योष्णेवसामज्ज्ञोर्विनिर्दिशेत् ॥ २८७ ॥

मज्जा और चर्बी ये दोनों-मधुर, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, बलकारक होती है। शीतगुणविशिष्ट तेलोंको गर्मीमें तथा उष्णगुणविशिष्ट तेलोंको सर्दीमें उपयोग करे ॥ २८७ ॥

सोंठके गुण ।

सस्नेहदीपनवृष्यमुष्णंवातकफापहम् ।
विपाकमधुरंहृद्यरोचनविश्वभेषजम् ॥ २८८ ॥

सोंठ-चिकनी, दीपन, वृष्य, उष्ण, वातकफनाशक, विपाकमें मधुर, हृद्य और रुची कारक है॥ २८८ ॥

अथाहारयोगवर्ग. ।

तैलके गुण ।

कषायानुरसस्वादुसूक्ष्ममुष्णव्यवायिच । पित्तलंवद्धविण्मूत्रंन चश्लेष्माभिवर्द्धनम् ॥ २७८ ॥ वातघ्नेपूत्तमंवल्यंत्वच्यमेधाग्निवर्द्धनम् । तैलसयोगसस्कारात्सर्वरोगापहमतम् ॥ २७९ ॥

तिलाका तेल–कषाय, अनुरस, स्वादु, सूक्ष्म, उष्ण, व्यवायी, पित्तवर्द्धक, मल मूत्रको बाधनेवाला तथा कफवर्द्धक नहीं है । वातनाशकोमे उत्तम, बलकारक, त्वचाको उत्तम बनानेवाला, मेधा और अग्निको बढानेवाला होता है एवम औषधियोंके सयोगसे सिद्ध किया तेल सपूर्ण रोगोंको नष्ट करताहै ॥ २७८ ॥ २७९ ॥

तैलकी उत्कृष्टतामे दृष्टान्त ।

तैलप्रयोगादजरानिर्विकाराजितश्रमा ।
आसन्नातिबला सख्येदैत्याधिपतय पुरा ॥ २८० ॥

किसी समयमे दैत्योंके राजा तैलके प्रयोगसे अजर, निर्विकार, श्रमरहित एवम लडनेमें अत्यन्त बलवान् हुए थे । (यदि मनुष्यभी विधिवत् तैलका उपयोग करे तो बलवान् तथा उपरोक्त गुणोंवाला होसकताहै परन्तु तेल मर्दन करनेमेही अधिक गुण करताहै ॥ २८० ॥

अरण्डतैलके गुण ।

ऐरण्डतैलमधुरंगुरुश्लेष्माभिवर्द्धनम् ।
वातासृग्गुल्महृद्रोगजीर्णज्वरहरपरम् ॥ २८१ ॥

एरंड तेल–मधुर, भारी, कफवर्द्धक तथा वात, रक्त, गुल्म, हृद्रोग, जीर्णज्वर इनको हरनेवाला है ॥ २८१ ॥

सरसोंके तैलके गुण ।

कटूष्णसार्षपतैलरक्तपित्तप्रदूषणम् ।
कफशुक्रानिलहरकण्डूकोठविनाशनम् ॥ २८२ ॥

सरसोका तेल–कटु उष्ण, रक्तपित्तको दूषित करनेवाला, कफ, शुक्र एवम वायुको हरनेवाला तथा खुजली कोढ आदि त्वचाके रोगोको नष्ट करता है ॥ २८२ ॥

पियालके तैलके गुण ।

पियालतैलमधुरगुरुश्लेष्माभिवर्द्धनम् ।
हितमिच्छन्तिनात्यौष्ण्यात्सयोगेवातपित्तयो. ॥ २८३ ॥

चिरौंजीका तेल-मीठा भारी, कफ वर्द्धक तथा अत्यन्त गर्म न होनेसे द्रव्यके संयोग द्वारा वातपित्तको नष्ट करताहै ॥ २८३ ॥

अलसीके तेलके गुण ।

आतस्यंमधुराम्लन्तुविपाकेकटुकंतथा ।
उष्णवीर्य्यंहितंवातेरक्तपित्तप्रकोपनम् ॥ २८४ ॥

अलसीका तेल-मीठा, अम्ल, विपाकमें कटु, उष्णवीर्य, वातरोगमें हित एवम् रक्तपित्तको कुपित करनेवाला है ॥ २८४ ॥

कसूमके तेलके गुण ।

कुसुम्भतैलमुष्णञ्चविपाकेकटुकंगुरु ।
विदाहिचविशेषेणसर्वरोगप्रकोपनम् ॥ २८५ ॥

कुसुम्भके बीजोंका तेल-गर्म, विपाकमें कटु, भारी, विशेषकर विदाही एवम्-सर्व दोषोंको कुपित करनेवाला है ॥ २८५ ॥

फलोंके तेलके गुण ।

फलानांयानिचान्यानितैलान्याहारसन्निधौ ।
युज्यन्तेगुणकर्मभ्यांतानिब्रूयाद्यथायथम् ॥ २८६ ॥

इसीप्रकार अनेक प्रकारके फलोंके तेलोंको आहारके संयोगमें गुणकर्मों करके उनके गुणोंको कथन करे ॥ २८६ ॥

मज्जावसाके गुण ।

मधुरोबृंहणोवृष्योबल्योमज्जातथावसा ।
यथासत्वन्तुशैत्योष्णेवसामज्ज्ञोर्विनिर्दिशेत् ॥ २८७ ॥

मज्जा और चर्बी ये दोनों-मधुर, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, बलकारक होती हैं। शीतगुणविशिष्ट तेलोंको गर्मीमें तथा उष्णगुणविशिष्ट तेलोंको सर्दीमें उपयोग करे ॥ २८७ ॥

सोंठके गुण ।

सस्नेहंदीपनंवृष्यमुष्णंवातकफापहम् ।
विपाकेमधुरंहृद्यंरोचनंविश्वभेषजम् ॥ २८८ ॥

सोंठ-चिकनी, दीपन, वृष्य, उष्ण, वातकफनाशक, विपाकमें मधुर, हृद्य और रुची कारक है॥ २८८ ॥

पीपलके गुण ।

श्लेष्मलामधुराचार्द्रागुर्वीस्निग्धाचपिप्पली ।
साशुष्काकफवातघ्नीकटुकावृष्यसम्मता ॥ २८९ ॥

कच्ची पीपल-कफकारक, मधुर, भारी, एवम् स्निग्ध होतीहै । सूखी पीपल-कफ-वात नाशक चरपरी एवं वीर्यवर्द्धक होती है ॥ २८९ ॥

मिरचके गुण ।

नात्यर्थमुष्णमरिचमवृष्यलघुरोचनम् ।
छेदित्वाच्छोषणत्वाच्चदीपनंकफवातजित् ॥ २९० ॥

कालीमिर्च-अधिक गर्म नहीं है । अवृष्य, हल्की एवम् रुचिकारक है तथा छेदी होनेसे और शोषण होनेसे दीप्तिकारक एवम् वातकफनाशक है ॥ २९० ॥

हींगके गुण ।

वातश्लेष्मविबन्धघ्नकटुकदीपनलघु ।
हिंगुशूलप्रशमनविद्यात् पाचनरोचनम् ॥ २९१ ॥

हींग-वात, कफ, विबंध इनको नष्ट करनेवाली, कटु, उष्ण, दीपन, लघु, शूलनाशक, पाचन और रुचिकारक है ॥ २९१ ॥

सेन्धानमकके गुण ।

रोचनदीपनहृद्यचक्षुष्यमविदाहिच ।
त्रिदोषघ्नसमधुरंसैन्धवलवणोत्तमम् ॥ २९२ ॥

सेंधानमक-रुचिकारक, दीपन, हृदयको प्रिय, नेत्रोंको हितकारी, अविदाही, त्रिदोषनाशक, एवम् मधुर होताहै ॥ २९२ ॥

सचलनमकके गुण ।

सौक्ष्म्यादौष्ण्याल्लघुत्वाच्चसौगन्ध्याच्चरुचिप्रदम् ।
सौवर्चलविबन्धघ्नहृद्यमुद्गारशोधिच ॥ २९३ ॥

सचर नमक-सूक्ष्म होनेसे तथा उष्ण होनेसे एवम् हलका और सुगंधित होनेसे रुचिकारक, विबंध नाशक हृद्य तथा डकारको शुद्ध करता है ॥ २९३ ॥

विडनमकके गुण ।

तैक्ष्ण्यादौष्ण्याद्व्यवायित्वाद्दीपनशूलनाशनम् ।
ऊर्द्धंश्चाधश्चवातानामानुलोम्यकरविडम् ॥ २९४ ॥

विडनमक-तीक्ष्ण होनेसे, उष्ण होनेसे एवम् व्यवायी होनेसे दीपन, शूलनाशक, ऊपर और नीचेके भागमें होनेवाली वायुको अनुलोमन करताहै ॥ २९४ ॥

उद्भिदनमकके गुण।

सतिक्तकटुसक्षारतीक्ष्णमुत्क्लेदिचौद्भिदम् ॥
नकाललवणेगन्ध सौवर्चलगुणाश्चते ॥ २९५ ॥

उद्भिद नमक (खारी नमक)-किंचित् कडुआ, चरपरा, खारा, तीक्ष्ण तथा उत्क्लेदकारक है। कालानमक-गन्धहीन होताहै और सब गुण सचरनमकके समान होताहै ॥ २९० ॥

समुद्रादिलवणके गुण।

सामुद्रकसमधुरंसतिक्तकटुपाशुजम् ॥
रोचनलवणसर्व्वपाकिस्रस्यनिलापहम् ॥ २९६ ॥

सामुद्रनमक किंचित् मधुर होताहै । पांशुलवण किंचित् तिक्त और कटु होताहै । प्राय सब प्रकारके लवण रुचिकारक, पाचन, दस्तावर, एवम् वातनाशक होतेहै ॥ २९६ ॥

जवाखारके गुण।

हृत्पाण्डुग्रहणीदोषप्लीहानाहगलग्रहान् ।
कासकफजमर्शांसियावशूकोव्यपोहति ॥ २९७ ॥

जवाखार-हृद्रोग, पांडुरोग, ग्रहणी प्लीहा, अफरा, गलग्रह, कफकी खांसी और बवासीरको नष्ट करताहै ॥ २९७ ॥

क्षारोंके गुण।

तीक्ष्णोष्णोलघुरूक्षश्चक्लेदीपाकीविदारण' ।
दहनोदीपनश्छेत्तासर्व क्षारोऽग्निसन्निभ ॥ २९८ ॥

प्राय' सब प्रकारके क्षार-तीक्ष्ण, गर्म, लघु, रूक्ष, क्लेदी, पाचनकर्ता, विदारण, दाहन, दीपन, छेदन और अग्निके समान होते है ॥ २९८ ॥

जीरा और धनियाका गुण।

कारव्य कुञ्चिकाजाजीकवरीधान्यतुम्बुरु ।
रोचनदीपनवातकफदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ २९९ ॥

कलौंजी, कालाजीरा अजवायन, सफेद जीरा, मेंदी, नैपाली धनिया, तुंबरु, ये सब रुचिकारक, दीपन वातकफनाशक एवम् दुर्गंधनाशक होते है ॥ २९९ ॥

आहारयोगिनाभक्तिनिश्चयोनतुविद्यते ।
समासोद्वादशश्चायवर्गआहारयोगिनाम् ॥ ३०० ॥
इत्याहारयोगवर्गः ।

आहारके उपयोगी पदार्थोंमें कहांपर कौन वस्तुएं कितनी डालनी चाहिये इसका कोई यथार्थ नियम नहीं है । इस प्रकार आहारोपयोगी नामक द्वादशवर्ग समाप्त हुआ ॥ ३०० ॥

शूकधान्यशमीधान्यसमातीतप्रशस्यते ।
पुराणप्रायशोरूक्षंप्रायेणाभिनवगुरु ॥ ३०१ ॥

शूकधान्य और शमीधान्य एकवर्षके पुराने होनेसे हितकारी होते है । पुराने धान्य प्रायः रूक्ष होते है और नवीन धान्य भारी होते है ॥ ३०१ ॥

यद्यदागच्छतिक्षिप्रतत्तल्लघुतरंस्मृतम् ॥ ३०२ ॥

जो धान्य शीघ्र परिपाकको प्राप्त होते हैं वह उतने ही हलके होते है ॥ ३०२ ॥

निस्तुपयुक्तिभृष्टन्तुसूप्यलघुविपच्यते ॥ ३०३ ॥

तुपरहित युक्तिपूर्वक भुनीहुई दाल लघुपाकी होती है ॥ ३०३ ॥

वर्जित मांस ।

मृतकेशातिमेध्यश्चवृद्धबालविषैर्हतम् ।
अगोचरभृतव्याडमृदितमासमुत्सृजेत् ॥ ३०४ ॥

अपने आप मराहुआ कृश, सडाहुआ, वृद्ध, बाल, विष आदिसे मराहुआ, अपरोक्ष मराहुआ, व्याघ्र आदिका माराहुआ ऐसे जीवोंका मांस त्यागदेने योग्य है ॥ ३०४ ॥

मांसरसका गुण ।

अतोऽन्यथाहितमासबृंहणनलवर्द्धनम् । प्रीणन सर्वभूतानाहृ-द्यंमासरस परम् ॥ ३०५ ॥ शुष्यताव्याधियुक्तानाकृशानाक्षी-णरेतसाम् ॥ बलवर्णार्थिनाश्चैवरसवियाथामृतम् ॥ ३०६ ॥

इनसे सिवाय मांस संपूर्ण जीवोंका मांस पुष्टिकारक और बलवर्द्धक होता है । मांस रस-सब मनुष्योंके लिये प्रीणन और हृद्य होता है तथा सूखेहुए शरीरवालोंको अथवा शोषरोगवालोंको, कृश मनुष्योंको, क्षीणवीर्यवालोंको, बलवर्णकी इच्छावालोंको मांस-रस अमृतके समान है ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥

सर्वरोगप्रशमनंयथास्त्रविहितरसम् । विद्यात्स्वर्य्यंवलकरव-
योवुद्धीन्द्रियायुपाम् ॥ ३०७ ॥ व्यायामनित्या स्त्रीनित्यामद्य-
नित्याश्चयेनरा । नित्यंमासरसाहारानातुरा स्युर्नदुर्वला ॥३०८॥

मांसरस द्रव्यविशेषके संयोगसे सिद्ध किया जानेपर संपूर्ण रोगोंको नष्ट करता है तथा स्वरकारक, बलवर्द्धक, अवस्था स्थापक, बुद्धिवर्द्धक, इन्द्रियोंका बल तथा आयुको बढानेवाला है। व्यायाम करनेवाले मनुष्योंको, स्त्री सेवन करनेवालोंको, सुरापियोंको नित्य मांसरसका आहार करना चाहिये। मांसरस सेवन करनेसे रोगग्रस्त मनुष्य भी दुर्बल नहीं होते ॥ ३०७ ॥ ३०८ ॥

वर्जित शाक।

क्रिमिवातातपहतंशुष्कंजीर्णमनार्त्तवम् ।
शाकनि स्नेहसिद्धश्चवर्ज्यंयच्चापरिस्रुतम् ॥ ३०९ ॥

कीडेका खाया हुआ, वायुका माराहुआ, सूखा, धूपसे जलाहुआ, पुराना, बेमोसम, विना चिकनाईसे बनाया हुआ, जिस शाकको उबालकर पानी न निकालाहो अथवा जो साफ न कियागयाहो ऐसा शाक खाने योग्य नहीं होता ॥ ३०९ ॥

वर्जित फल।

पुराणमामंसंक्लिष्टंक्रिमिव्यालहिमातपे ।
अदेशाकालजंक्लिन्नंयत्स्यात्फलमसाधुतत् ॥ ३१० ॥

पुराना, कच्चा, सडाहुआ, कीडे सर्प आदिका खाया हुआ, धूपसे मुर्झाया हुआ, सर्दीसे माराहुआ, खराब भूमिमें उत्पन्न भया, बे समय उत्पन्न भया, दुर्गंधयुक्त ऐसे फलको निंदनीय समझ त्याग देवे। अर्थात् कभी न खावे ॥ ३१० ॥

हरितानांयथाशाकंनिर्देशसाधनादने ॥ ३११ ॥

सब प्रकारके सब्जियोंको पत्र शाकोंके समान संस्कार कर खाना चाहिये परन्तु इनको उबालकर शाकोंके समान निचोडना नहीं चाहिये ॥ ३११ ॥

मद्याम्बुगोरसादीनांस्वेस्वेवर्गेविनिश्चय. ॥ ३१२ ॥

मद्य, जल, दूध, आदिकोंके गुणदोष उनके वर्गोंमें कथन कियेगये हैं ॥ ३१२ ॥

अनुपानका वर्णन।

यदाहारगुणे पानंविपरीतंतदिष्यते । अम्लानुपानंधान्नादृष्ट
यन्नविरोधिच॥३१३॥आसवानामसुद्दिष्टाअशीतिश्चतुरुत्तरा ३१४॥

---

१ अन्नादृष्टानां इतिपुस्तकान्तरे ।

जिस गुणवाला आहार हो उससे विपरीत गुणवाला अनुपान करनाचाहिये अर्थात् आहार उष्णता प्रधान हो तो अनुपान शीतल होनाचाहिये, शीतल आहार हो तो अनुपान गर्म होनाचाहिये परन्तु खट्टे पदार्थपरसे मीठा अनुपान नहीं करनाचाहिये क्योंकि तीक्ष्ण खट्टेके ऊपरसे मीठा खाना धातुओंमें विकार उत्पन्न करताहै अथवा अन्नका इस प्रकारका अनुपान करना चाहिये जो धातुओंका विरोधी न हो ॥३१२॥ आसव ८४ प्रकारके होतेहैं उनको हम प्रथमही कथनकर आयेहैं ॥ ३१४ ॥

जलपेयमपेयञ्चपरीक्ष्यानुपिबेद्धितम् ॥ ३१५ ॥

जल परीक्षा करके पीने योग्य है या नहीं ऐसा विचारकर पीनाचाहिये ॥ ३१५ ॥

स्निग्धोष्णमारुतेशस्तपित्तेमधुरशीतलम् ।
कफेऽनुपानरूक्षोष्णक्षयेमासरस परम् ॥ ३१६ ॥

वायुके रोगमें चिकना और गर्म अनुपान करना चाहिये । पित्तजनित रोगमें मधुर और शीतल अनुपान करनाचाहिये । कफजनित रोगमें रूक्ष और गर्म अनुपान करना चाहिये । एवम् सब धातुओंकी क्षीणतामें मांसरसका अनुपान करना चाहिये ॥ ३१६ ॥

दूधका अनुपान ।

उपवासाध्वभारस्त्रीमारुतातपकर्म्मभि ।
क्लान्तानामनुपानार्थंपय पथ्ययथामृतम् ॥ ३१७ ॥

उपवास, मार्गसे थका, बहुत भाषण किया हुआ, स्त्री संभोगके अनन्तर, वायु, धूप तथा अन्य कर्मोंसे थके हुए मनुष्योंको दूधका अनुपान पथ्य और अमृत समान है ॥ ३१७ ॥

सुराकृशानापुष्ट्यर्थमनुपानंप्रशस्यते । कार्श्यार्थस्थूलदेहाना-मनुशस्तमधूदकम् ॥ ३१८ ॥ अल्पाग्नीनामनिद्राणातन्द्राशो-कभयक्लमे । मद्यमासोचितानाञ्चमद्यमेवानुशस्यते ॥ ३१९ ॥

कृश मनुष्योंको पुष्टिके लिये सुराका अनुपान उत्तम है । एवम् स्थूल मनुष्योंको कृश करनेके लिये शहदयुक्त पानीका अनुपान करना चाहिये ॥ ३१८ ॥ मंदाग्निवालोंको—अनिद्रा, तन्द्रा, शोक, भय तथा क्लान्ति युक्त मनुष्योंको और जो मद्यमांसके सेवन करनेवाले हैं उनको मद्यका अनुपान करना उत्तमहै ॥ ३१९ ॥

अनुपानके कर्म ।

अथानुपानकर्मप्रवक्ष्यामि । अनुपानतर्पयतिप्रीणयतिऊर्जय-तिपर्य्याप्तिमभिनिर्वर्त्तयतिभुक्तमवसादयतिअन्नसङ्घातभिन

त्तिमार्दवमापादयतिक्लेदयतिजरयतिसुखपरिणामितामाशुव्य-
वायिताञ्चाहारस्योपजनयतीति ॥ ३२० ॥

अब अनुपानके गुणोंको कहते हैं -अनुपान-तर्पणकारक, प्राणदायक, बलवर्द्धक, भोजनको अवसादनकर्त्ता तथा भोजनके संघातको भेदनकर्त्ता, मृदुताकारक, क्लेदकारक, पाचनकर्त्ता, आहारके परिणामको सुखावह करनेवाला तथा किये हुए भोजनको शीघ्र फल देनेवाला होता है ॥ ३२० ॥

तत्रश्लोका ।

अनुपानंहितंयुक्तंतर्पयत्याशुमानवम् ।
सुखंपचतिचाहारमायुषेचबलायच ॥ ३२१ ॥

यहां कहाजाताहै कि-युक्तिपूर्वक अनुपान किया हुआ मनुष्यको शीघ्र तृप्त करता है तथा हितकारक है एवम् सुखपूर्वक आहारको पचानेवाला, आयुवर्द्धक और बलदायक होता है ॥ ३२१ ॥

जलपानका निषेध ।

नोर्द्ध्वांङ्गमारुताविष्टानहिक्काश्वासकासिनः ।
नगीतभाषाध्ययनप्रसक्तानोरसिक्षताः ॥ ३२२ ॥
पिबेयुरुदकंभुक्त्वातद्धिकण्ठोरसिस्थितम् ।
स्नेहमाहारजंहत्वाभूयोदोषायकल्पते ॥ ३२३ ॥

ऊर्द्ध्वगगत वातवालोंको हिचकी तथा श्वास और खांसीवालोंको एवम् जिनको गायन और भाषण एवम् अध्ययन इनका अधिक काम पडता हो तथा उरःक्षत रोगवालोंको भोजनके अनन्तर पानी नहीं पीनाचाहिये क्योंकि इन पुरुषोंको भोजनके अनन्तर पानी पीनेसे वह पानी कण्ठ और वक्षस्थलमें होकर आहारके स्नेहको नष्ट कर दोषोंको कुपित करता है ॥ ३२२ ॥ ३२३ ॥

अनुपानैकदेशोऽयमुक्तः प्रायोपयोगिकः।द्रव्याणान्तुनहिनिर्देष्टुशक्यं
कृत्स्नेननामभिः ॥ ३२४ ॥ यथानामौषधंकिञ्चिद्देशजानात्
चौयथा ॥ द्रव्यंतत्तत्तथावाच्यमनुक्तमिहयद्भवेत् ॥ ३२५ ॥

इस प्रकार आहार द्रव्य और अनुपान साधारणरूपसे प्रायः उपयोगी पदार्थोंका वर्णन करदिया है। और संपूर्ण द्रव्योंका संपूर्ण नामोंसहित वर्णन होना मुश्किल है क्योंकि जैसे यावन्मात्र संपूर्ण द्रव्य जाने भी नहीं जासक्ते एवम् उन संपूर्ण द्रव्योंको

सपूर्ण भापाआम नाम नहीं जानेजाते इसी मकार सपूर्ण द्रव्योंको इस आहार विपयमें कथन करना कठिन मतीत होताहै क्योंकि देशभेदसे, क्रमभेदसे, सस्कार भेदसे आहारविशेप द्रव्योंकी कल्पना असख्य मकारसे है ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥

चरादिपरीक्षा ।

चराःशरीरावयवा.स्वभावोधातव क्रिया ॥ लिङ्गप्रमाणसस्कारोमात्राचास्मिन्परीक्ष्यते ॥ ३२६ ॥ चरोऽनूपजलाकाशधन्वाद्योभक्ष्यसविधौ ॥ जलजानूपजाश्चैवजलानूपचराश्च ये ॥ ३२७ ॥ गुरुभक्ष्याश्चयेसत्त्वा.सर्वेतेगुरुवःस्मृताः । लघुभक्ष्यास्तुलघवोधन्वजाधन्वचारिण. ॥ ३२८ ॥

आहारविपयक माय. चर और अचर द्रव्योंका कथन करचुकेहै अन यहापर चर जातीय अर्थात आहारमें आनेवाले जीवोंका शरीरके अग, स्वभाव, धातुयें, लक्षण, प्रमाण, मस्कार और मात्रा भी परीक्षा करने योग्य है सो उनका वर्णन करते है। जलचर, अनूपचर, आकाशचर एवम् जंगलमे फिरनेवाले तया जलमे उत्पन्न भये और अनूपदेशके रहनेवाले और जो सपूर्ण जीव गुरुपदार्थोको भक्षण करनेवाले है वे सब सपूर्ण श्रगाम भारी अर्थात् गुरुपाकी होते है। इसी मकार हलके पदार्थोंके खानेवाले और जंगलमें उत्पन्न भये तथा जगलमें फिरनेवाले जानवर हलके अर्थात् लघुपाकी होते है ॥ ३२६ ॥ ३२७ ॥ ३२८ ॥

शरीरावयवका वर्णन ।

शरीरावयवा सक्थिशिर स्कन्धादयस्तथा । सक्थिमासाद्गुरु स्कन्धस्तत क्रोडस्ततश्शिर ॥ ३२९ ॥ वृपणौचर्ममेढ्रश्चश्रोणीवृक्कौयकृद्गुदम्।मासाद्गुरुतरविद्यायथास्वमध्यमस्थिच॥३३०॥

जाघ, मस्तक, कधा आदिक जो शरीरके अवयव है इनमे जघाके मासमे कंधेका मांस और कधेके माससे छातीका मास तथा-छातीके माससे मस्तकका मास और मस्तकके माससे पैरका मास भारी होता है। दोना अण्डकोश,चम, मेढ़ (गुह्यस्थान) पृष्ठस्थान, यकृत् एवम् गुदाका मास मथमकी अपेक्षा दूसरे क्रमपूर्वक भारी होतेहै और अस्थियोंमें लगा हुआ मास इन सबकी अपेक्षा भारी होताहै ॥ ३२९ ॥ ३३० ॥

स्वभावका वर्णन ।

स्वभावाल्लघवोमुद्गास्तथालावकपिंजला. ।
स्वभावाद्गुरवोमापावराहमहिपास्तथा ॥ ३३१ ॥

मूंग, लवा और कपिजल यह स्वभावसे ही हलके होते हैं एवम् उडद, वराह, भैंसा यह स्वभावसे ही भारी होते हैं ॥ ३३१ ॥

धातुओंका लघुगुरुत्व ।

धातूनाशोणितादीनांगुरुविद्यादयथोत्तरम् । अलसेभ्योविशिष्यन्तेप्राणिनोयेबहुक्रियाः ॥ ३३२ ॥ गौरवेलिङ्गसामान्येपुंसांस्त्रीणाञ्चलाघवम् । महाप्रमाणागुरवःस्वजातौलघवोऽन्यथा॥३३३॥

रक्तसे लेकर वीर्यपर्यन्त सब धातुएं प्रथमकी अपेक्षा दूसरी क्रमपूर्वक भारी जाननी। सामान्य जातिके पशुओंमें भी आलसियोंकी अपेक्षा बहुत फिरनेवाले पशु उत्तम होते हैं। इसी प्रकार स्त्री और पुरुषजातिके जीवोंमें-पुरुषजातिके जीव भारी और स्त्रीजातिके हलके होते हैं । एकजातिमें भी बडे शरीरवाला जीव भारी और छोटे शरीरवाला उसकी अपेक्षा हलका होता है ॥ ३३२ ॥ ३३३ ॥

संस्कार और मात्राकृत गुरुलघुत्व ।

गुरूणालाघवंविद्यात्संस्कारात्सविपर्ययम् ।

व्रीहेर्लाजायथाचस्युःसक्तूनांसिद्धपिण्डकाः ॥ ३३४ ॥

संस्कारके भेदसे भारी पदार्थ हलके हो सकते हैं । और हलके भारी हो सकते हैं। जैसे चावलोंकी अपेक्षा खील हलकी होती एवम् सतुओंकी अपेक्षा घृतपक्व मोदक भारी होजाते हैं ॥ ३३४ ॥

अल्पादानेगुरूणाञ्चलघूनाचातिसेवने ।

मात्राकारणमुद्दिष्टंद्रव्याणांगुरुलाघवे ॥ ३३५ ॥

भारी पदार्थ थोडा भक्षण करनेसे लघुपाकी अर्थात् हलका होजाताहै और हलका पदार्थ भी बहुत खायाजानेसे भारी होजाताहै इसलिये द्रव्योंके हलके और भारीपनमें मात्राहीको कारण कहना चाहिये ॥ ३३५ ॥

गुरूणामल्पमादेयंलघूनांतृप्तिरिष्यते ।

मात्रामपेक्षतेद्रव्यंमात्राचाग्निमपेक्षते ॥ ३३६ ॥

जो पदार्थ भारी हैं उनको थोडा खाना चाहिये और हलके पदार्थोंको पेटभरकर खाना चाहिये । आहारकी लघुता और गुरुता मात्राके आधीन है और मात्रा जठराग्निके बलाबलपर निर्भर है ॥ ३३६ ॥

बलमारोग्यमायुश्चप्राणाश्चाग्नौप्रतिष्ठिताः ।

अनुपानेन्धनैश्चाग्निर्दीप्यतेशाम्यतेऽन्यथा ॥ ३३७ ॥

बल, आरोग्यता, आयुकी स्थिरता, प्राण ये सब जठराग्निके ही आश्रयभूत हैं सो यह जठराग्नि अनुपानरूपी इंधनसे चैतन्य रहती है । यदि वह अनुपान अनुचित रीतिपर सेवन कियाजाय तो वही उस अग्निको नष्टकरनेवाला होताहै ॥ ३३७ ॥

गुरुलाघवचिन्तेयप्रायेणाल्पबलान्प्रति ।

मन्दकर्मानिनारोग्यान्सुकुमारान्सुखोचितान् ॥ ३३८ ॥

यह गुरु, लाघवका विचार प्रायः अल्पबलवालोंको, आलसीपुरुषोंको, रोगियोंको, सुकुमारोंको, सुखपूर्वक रहनेवालोंको विशेषतासे रखना चाहिये ॥ ३३८ ॥

दीप्ताग्नय.खराहारा कर्म्मनित्यामहोदरा ।

येनराःप्रतिताश्चिन्त्यनावश्यगुरुलाघवम् ॥ ३३९ ॥

जिनकी अग्नि बहुत बलवान् है जो अटपट, कठोर वस्तुओंके खानेके अभ्यासवाले है जो दिनभर बहुत कामकरनेवाले है तथा जो बहुत आहार करते है उनको गुरु, लाघवका विचार कर आहार करनेकी विशेष आवश्यकता नहीं है ॥ ३३९ ॥

हिताभिर्जुहुयान्नित्यमन्तराग्निसमाहित ।

अनुपानसमिद्भिर्नामात्राकालौविचारयन ॥ ३४० ॥

सपूर्ण मनुष्यमात्रको मात्रा और काल विचारकर हितकारक आहाररूपी ईंधन द्वारा जठराग्निको चैतन्य रखना चाहिये ॥ ३४० ॥

आहिताग्नि सदापथ्यान्यन्तराग्नौजुहोतिय । दिवसेदिवसेन-ह्मजपत्यथददातिच । नरनि श्रेयसेयुक्तसात्म्यज्ञपानभोजने ॥ ॥ ३४१ ॥ भजन्तेनामया केचिद्भाविनोऽप्यन्तरादृते । षट्त्रिंशच्चसहस्राणिरात्रीणाहितभोजन जीवत्यनातुरोजन्तुर्जिता-त्मासस्मत.सतामिति ॥ ३४२ ॥

जो मनुष्य सदैव अन्तराग्निमें पथ्यरूपी आहुती देता है और नित्यप्रति भगवानका भजन कर यथाशक्ति दानदेता है, ऐसे कल्याणमें तत्पर और सात्म्य अन्नपान करने वाले मनुष्यको अवश्यम्भावीके विना कोई रोग या दुःख नहीं सताते अथवा यों कहिये कि रोगोंके कारण न होनेके सबब रोग होते ही नहीं। ऐसे वह जितेन्द्रिय धर्मात्मा, श्रेष्ठ पुरुष रोगरहित, होकर सौवर्षपर्यन्त जीवित रहताहै ॥ ३४१ ॥ ३४२ ॥

तत्र श्लोका ।

अनुपानगुणा'साघ्यावर्गाद्वादशनिश्चिता ।

सगुणान्यन्नपानानिगुरुलाघवसग्रह ॥ ३४३ ॥

अनुपानविधावुक्ततत्परीक्ष्यविशेषत । प्राणाःप्राणभृतामन्नम-न्नलोकोऽभिधावति ॥ ३४४ ॥ वर्णप्रसाद सौस्वर्यंजीवितप्रति-भासुखम् ॥ तुष्टि पुष्टिर्वलमेधासर्वमन्नेप्रष्टितम् ॥ ३४५ ॥ लौकिकंकर्म्मयद्वृत्तौस्वर्गतोयच्चवैदिकम् । कर्मापवर्गेयच्चोक्त तच्चाप्यन्नेप्रतिष्टितम् ॥ ३४६ ॥

इत्यन्नपानचतुष्केऽन्नपानविधिरध्याय ।

यहापर अध्यायके उपसहारमें श्लोक हैः-कि इस अन्नपानविधि नामक अध्यायमें अन्नपानके गुण तथा उसकी सामग्रीके विषयमें वारहवर्ग, अन्नपान गुण और उनका गौरव तथा लाघव अन्नपान विधि नियमकी विशेषरूपसे परीक्षा, अन्नमें प्राणियाके प्राण और अन्नमें ही लोककी प्रतिष्ठा, वर्ण, प्रसन्नता, सुदरता, जीवन, काति, सुख, पुष्टि, तुष्टि, वल, मेधा यह सव अन्नम ही प्रतिष्ठित है । इसीमें लौकिक और पारलौकिक तथा देवलौकिक और मोक्षसाधन यह सपूर्ण अन्नम ही प्रतिष्ठित हैं । इस प्रकार इस अन्नपानविधि नामक अध्यायमें निरूपण किया गया है ॥ ३४३ ॥ ॥ ३४४ ॥ ३४५ ॥ ३४६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायामन्नपानविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्याय ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्याय ।

अथातोविविधाशितपीतीयमध्यायव्याख्यास्यामइति हस्मा-हभगवानात्रेय ।

अव हम विविध अशितपीतीय नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं । ऐसा भग वान आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

हितकर आहारके कर्म ।

विविधमशितपीतलीढखादितजन्तोर्हितमन्नमभिसन्धुक्षितन-लेनयथास्वेनोष्मणासम्यग्विपच्यमानकालवदनवस्थितसर्व-धातुपाकमनुपहतसर्वधातूष्ममारुतस्रोत येनलशरीरमुपचयय लवर्णसुखायुषायोजयतीतिशरीरधातूनूर्जयन्धानर्गोहिधात्वा-हाग प्रकृतिमनुवर्त्तन्ते ॥ १ ॥

अनेक प्रकारके हितकारक भोजन करनेके पदार्थ, पीनेके पदार्थ, चाटनेके पदार्थ, खानेके पदार्थ–अन्तराग्निकी गर्मीसे यथोचित रीतिपर परिपाक होकर यथा समय रस, रक्त, मासादि बनकर सम्पूर्ण धातुओंमें प्राप्त होजाताहै । इसी लिये शरीरके संपूर्ण धातु वायुके निकलनेवाले छिद्रोंम व्यावात न करते हुए शरीरके बल, वर्ण, सुख, पुष्टता तथा आयुकी वृद्धि करते है । आहारसे बलप्राप्तहुए धातु धातुरूप होते अपनी २ प्रकृतिमें आहारको प्राप्त कर स्वभावानुकूल रहतेहैं ॥ १ ॥

परिपक्व आहारके भेद ।

तत्राहारप्रसादाख्योरसःकिट्टश्चमलाख्यमभिनिर्वर्त्ततेकिट्टात्मू त्रस्वेदपुरीषवातपित्तश्लेष्माण कर्णाक्षिनासिकास्यलोमकूपप्रजननमलकेशश्मश्रुलोमनखादयश्चावयवा ॥ २ ॥

किये हुए आहारका परिपाक होनेपर उसके दो विभाग होजातेहैं । उनम जो उत्तम सार होताहै–उसको रस कहतेहैं और जो फोकट बचता है उसको किट्ट अथवा मल कहते है उस किट्टसे मूत्र, स्वेद, विष्ठा, वायु, पित्त तथा कफ ये उत्पन्न होतेहैं एवम् कान, नेत्र, नाक, मुख, रोमकूप इन सबका मल तथा बाल, श्मश्रु, रोम और नख यह सपूर्ण उस किट्टके अशसे बनतेहैं ॥ २ ॥

प्रसादाख्यरसके गुण ।

पुष्यन्तित्वाहाररसात्रसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रौजांसि पञ्चेन्द्रियद्रव्याणिधातुप्रसादसंज्ञकानिशरीरसन्धिबन्धपिच्छादयश्चावयवा तेसर्वेएवधातवोमलाख्याःप्रसादाख्याश्चरसमलाभ्यांपुष्यन्त स्वमानमनुवर्त्तन्ते ॥ ३ ॥

उस आहारका जो उत्तम भाग रस है वह शरीरको पुष्ट करताहै तथा उस रससे रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र एवम् ओज बनते है एवम् इसी रससे पंचेन्द्रियोंम पुष्टि, प्रसन्नता, धातुओंमें बल, शरीरके संधियन्धनोंका प्रसाद और दृढता आदिक उत्पन्न होतेहैं । यह सपूर्ण धातुए दो भागोंम विभक्तहैं–एक प्रसाद सज्ञक, दूसरी मलसज्ञक यह दोनों साररूप रसोंसे और शरीर रक्षक मलसे पुष्ट होती हुई अपने परिमाणोंकी रक्षा करतीहै ॥ ३ ॥

यथावय शरीरमेवरसमलौस्वप्रमाणावस्थितौआश्रयस्यसम धातोर्धातुसाम्यमनुवर्त्तयतोनिमित्ततस्तुक्षीणातिवृद्धानाप्रसा-

रस्यानाधातूनावृद्धिक्षयाभ्यामाहारमूलाभ्यारस साम्यमुत्पादय-
तेआरोग्याय ॥ ४ ॥

इस प्रकार अवस्था तथा शरीरके अनुसार अपने २ प्रमाणमें स्थित हुए रस और मल अपने आश्रित शरीर के धातुओंको साम्यावस्थामें रखते हुए रक्षा करतेहैं एवम् कारण विशेपसे प्रसाद सज्ञक जो धातुए है उनकी आहार मूलक वृद्धि क्षीणताको रस साम्यावस्थामे लाताहै और यह रस ही मनुष्योंकी आरोग्यताको रखता है ॥ ४ ॥

किट्टश्चमलानामेवमेव ॥ स्वमानातिरिक्ता पुनरुत्सर्गिण शीतो-
ष्णपर्य्यायगुणैश्चोपचर्य्यमाणामला शरीरधातुसाम्यकरा समु-
पलभ्यन्ते ॥ ५ ॥

जिस प्रकार रस सपूर्ण धातुओंको साम्यावस्थामे रखताहै उसी प्रकार किट्ट भी सपूर्णमलोंको साम्यावस्थामे रखता है । अपने ठीक परिमाणपूर्वक निकलतेहुए मल (तथा वात, पित्त, कफ भी) शीत, उष्ण आदि गुणासे परिवर्तित होते हुए धातुओंको साम्यावस्थामे करनेवाले होतेहै अथवा यों कहिये कि अपने मानमे क्षीणता और वृद्धिको प्राप्त हुए मल शीत, उष्ण द्रव्योंद्वारा चिकित्सित होकर साम्यावस्थाको प्राप्त हो धातुओंको साम्यावस्थामे करनेवाले होतेहै ॥ ५ ॥

तेपान्तुमलप्रसादाख्यानाधातूनास्रोतास्ययनमुखानितानिय-
थाविभागेनयथास्वधातूनापूरयन्त्येवमिदशरीरमशितपीतली-
ढखादितप्रभवम् । अशितलीढखादितप्रभवाश्चास्मिञ्शरी-
रेव्याधयोभवन्ति ॥ ६ ॥ हिताहितोपयोगविशेषास्त्वत्रशुभा-
शुभविशेपकराभवन्ति, इति ॥ ७ ॥

इन मल और प्रसाद सज्ञक धातुओंके स्रोतस्थान तथा मार्ग अपने उपयोगी धातुओं द्वारा पूर्णताको और पुष्टताको प्राप्त होतेहै । इस प्रकार यह शरीर अशित (भोज्य), पीत, आलीढ और खाद्य पदार्थों द्वारा पुष्टि सपन्न होता है इसी प्रकार शारीरिक व्याधियां भी खानेपीने, चूसने और चाटनेके आहारों द्वारा ही उत्पन्न होती है । इस प्रकार हित आहारसे शरीरकी उत्पत्ति तथा पुष्टि उत्पन्न होतीहै अर्थात् हित आहारका सेवन करना सुखकारक होता एवम् अहित आहारका करना दुःखदायक होताहै ॥ ६ ॥ ७ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एववादिनभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच।दृश्यन्ते हिभगवन् ।
हितसमाख्यातमप्याहारमुपयुञ्जानाव्याधिमन्तश्चागदाश्चतथे-
वाहितसमाख्यातमेवदृष्टेकथहिताहितोपयोगविशेषात्मकशु
भाशुभविशेषमुपलभेमहीति ॥ ८ ॥

इस प्रकार कहते हुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहने लगे कि हे भगवन्! आपने कथन कियाहै कि हित आहारका सेवन करनेसे रोगी पुरुष भी निरोग हो जातेहैं और निरोग मनुष्योंके शरीर स्वस्थ और बलिष्ठ होतेहैं उसी प्रकार अहित आहारके सेवनसे व्याधिया उत्पन्न होतीहैं । सो हे गुरो! ससारमें ऐसा भी देखनेमे आताहै कि अहित आहारके सेवन करनेवाले पुरुष नीरोग रहते हैं और हित आहार सेवन करने वालोंको अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होजातेहैं । इस लिये हित और अहित आहार विशेषात्मक शुभ और अशुभका किस प्रकार हमको ज्ञान होसकताहै सो कृपाकर कथन कीजिये ॥ ८ ॥

आत्रेयका उत्तर ।

तमुवाचभगवानात्रेय. । नहिताहारोपयोगिनामग्निवेश तन्नि
मित्ताव्याधयोजायन्ते । नचकेवलहिताहारोपयोगादेवसर्वं
व्याधिभयमतिक्रान्तभवति । सन्तिह्यृतेऽपिहिताहारोपयो-
गादन्यरोगप्रकृतय । तद्यथा—कालविपर्य्यय प्रज्ञापराध.
परिणामश्चशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाश्चासात्म्याइति।ताश्चरोगप्रकृ
तयोरसान्सम्यगुपयुञ्जानंपुरुषमशुभेनोपपादयन्ति। तस्माद्धि
ताहारोपयोगिनोऽपिदृश्यन्तेव्याधिमन्त । अहिताहारोपयो
गिनापुन कारणतोनसद्योदोषवान्भवत्यपचारोनहिसर्वाण्य-
पथ्यानितुल्यदोषकराणि । नचसर्वेदोषास्तुल्यबला । नच
सर्वाणिशरीराणिव्याधिक्षमत्वेसमर्थानि । तदेवह्यपथ्यदेशका-
लसयोग-वीर्य्यप्रमाणातियोगाद्भूयस्तरमपथ्यसम्पद्यते। सए-
वदोष ससृष्टयोनिर्विरुद्धोपक्रमोगम्भीरानुगत प्राणायतनस
मुत्थोमर्मोपघातीवाभूयान्कष्टतम क्षिप्रकारितमश्चसम्पद्यते ॥९॥

यह सुनकर आत्रेय भगवान कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! आहारसे उत्पन्न होनेवाले जो रोगहै, हित आहारके सेवन करनेवाले मनुष्यके शरीरमें कभी उत्पन्न नहीं होते परन्तु सपूर्ण व्याधिया हित आहार करनेसेही नहीं होतीं यह बात नहीं है । क्योंकि हित आहारकी उपयोगी आरोग्यताके सिवाय और भी ऐसे कारण है जो रोगोंको उत्पन्न करते है । जैसे-कालविपर्यय (कालकी विपरीतता) और प्रज्ञापराध और परिणाम एवम् असात्म्य-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध, ये सब हित आहार सेवन करनेवाले मनुष्योंको भी अशुभके करनेवाले होते है अर्थात रोग उत्पन्न करनेके हेतु होतेहै । इसलिये ही हित और पथ्य भोजन करनेवाले मनुष्यभी व्याधियुक्त दिखाई देतेहै । और अहित आहारके सेवन करनेवाले मनुष्योंको भी तत्काल रोग ग्रसित नहीं देखा जाता क्योंकि सपूर्ण कुपथ्यही सब दोषोंके तुल्य नहीं होते एवम् सब दोष भी समान बलवाले नहीं होते और व्याधि सहन शक्तिके स्वभावसे सब शरीर भी एकसे नहीं होते । इस प्रकार अपथ्य भोजन-देश, काल,सयोग, वीर्य, प्रमाण इनके अतियोगसे और भी अधिक कुपथ्य होजाताहै और दोषोंको कुपित करदेता है । एक दोष भी अनेक रोगोंको उत्पन्न करनेवाला चिकित्सा विरोधी, गभीरानुगत,प्राण स्थान तथा मर्मस्थानका उपघाती होता हुआ अत्यन्त कष्टको उत्पन्न करनेवाला और शीघ्रकारी होजाताहै ॥ ९ ॥

शरीराणिचातिस्थूलानिअतिकृशानिअनिविष्टमांसशोणिता-स्थीनिदुर्बलानिअसात्म्याहारोपचितान्यल्पाहाराणिअल्पस-त्त्वानिवाभवन्तिअव्याधिसहानि॥१०॥विपरीतानिपुनर्व्याधि-सहानिएभ्यश्चैवापथ्याहारदोषशरीरविशेषेभ्योव्याधयोमृदवो दारुणाःक्षिप्रसमुत्थाश्चिरकारिणश्चभवन्ति ॥ ११ ॥

स्वभावसेही अतिस्थूल और अतिकृश शरीरवाले जिनके शरीरमे रक्त तथ मास आदि क्षीण होगयाहो, दुर्बल मनुष्य असात्म्य आहारके कारण अल्पभोजन करनेवाले तथा कमजोर मनुष्य व्याधियोंके सहन करनेमे असमर्थ होतेहै । इनसे विपरीत व्याधिसहनकर्त्ता होतेहै । इन अपथ्य आहार, दोष, शरीर विशेषसे समासे व्याधियें भी मृदु, दारुण, शीघ्रकारी और चिरकारी भी होती है ॥ १० ॥ ११ ॥

अतएवचवातपित्तश्लेष्माण स्थानविशेषेणप्रकुपिताव्याधिविशे पानभिनिर्वर्त्तयन्तिअग्निवेश । तत्ररसादिषुस्थानेषुप्रकुपितानां दोषाणांयस्मिन्स्थानेयेयेव्याधय सम्भवन्तितांस्तान्यथावद नुव्याख्यास्याम' ॥ १२ ॥

इसलिये हे अग्निवेश ! वात, पित्त, कफ-स्थानविशेषमें कुपित होकर रोग विशेषको करतेहैं सो उन रसादि स्थानोंमें कुपित हुए दोष जिस जिस स्थानमें जिस जिस प्रकार जिन जिन रोगोंको उत्पन्न करते है उन उन सबको यथा क्रम वर्णन करतेहैं ॥ १२ ॥

रसदोषसे उत्पन्न रोग।

अश्रद्धाचारुचिश्चास्यवैरस्यमरसज्ञता । हृल्लासोगौरवतन्द्रा साङ्गमर्दोज्वरस्तम ॥ १३ ॥ पाण्डुत्वस्रोतसारोध.क्लैब्यसाद. कृशाङ्गता । नाशोऽग्नेरयथाकालवलय पलितानिच । रसप्र दोषजारोगावक्ष्यन्तेरक्तदोषजा ॥ १४ ॥

दोषों करके रसके दूषित होनेसे भोजनमें अश्रद्धा, अरुचि, मुखकी विरसता, रसका अज्ञान, हृल्लास, गुरुता, तन्द्रा, अगमर्द, ज्वर, आखके आगे अन्धकार, पाडुपन, स्रोतोंका अवरोध, क्लीनता, अगोंका अवसाद,कृशता, मदाग्नि,विनाही समयके बालोंका सफेद होजाना, शरीरमें, सलवट पडना, यह रोग होतेहैं । अब आगे रक्त दूषित होनेसे जो रोग उत्पन्न होतेहै उनको कहतेहैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

रक्तदोषजरोग।

कुष्ठवीसर्पपिडकारक्तपित्तमसृग्दर । गुदमेढास्यपाकश्चप्लीहा गुल्मोऽथविद्रधी ॥ १५ ॥ नीलिकाकामलाव्यङ्गपिप्लवास्तिल- कालका । दद्रुश्चर्म्मदलश्वित्र पामाकोठास्त्रमण्डलम् । रक्त- प्रदोषाज्जायन्तेशृणुमांसप्रदोषजान् ॥ १६ ॥

कुष्ठ, विसर्प, पिडका, रक्तपित्त प्रदर, गुदा, लिंग तथा मुखका पकना, प्लीहा, गुल्म, विद्रधी, नीलिका, कामला, व्यग, पिप्लव, तिल कालक, दाद, चर्मदल, श्वेतकुष्ठ, पामा, कोठरोग, रक्तमडल तथा अन्यरक्तके विकार उत्पन्न होतेहैं। यह रक्त दूषित होनेके दोष कहे गये । अब आगे मलदूषित होनेसे जो रोग होतेहैं उनको वर्णन करतेहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

मांसदोषजरोग।

अधिमांसार्बुदकीलगलशालूकशुण्डिका । पूतिमांसालजी- गण्डगण्डमालोपजिह्विका ॥ १७ ॥ विद्यान्मांसाश्रयान्मेद संश्रयांस्तुप्रवक्ष्यमथ॥निदानानिप्रमेहाणापूर्वरूपाणियानिच॥१८॥

मांसदूषित होनेसे अधिमांस अर्बुद, कीलक, गलसारूक, गलशुंडी, पूतिमांस, अलजी, गलगड, गण्डमाला और उपजिह्विका यह मांसाश्रित रोग होतेहै । अब मेद दूषित होनेसे जो रोग होतेहैं उनका कथन करतेहैं कि अष्टौनिंदनीय अध्यायमें तथा प्रमेहरोगके पूर्वरूपमें दूषित मेदरोगोंका वर्णन कियागयाहै ॥ १७ ॥ १८ ॥

अस्थिदोषज रोग ।

अध्यस्थिदन्तदन्तास्थिभेद शूलविवर्णता ।
केशलोमनखश्मश्रुदोषाश्चास्थिप्रकोपजा. ॥ १९ ॥

अस्थि दूषित होनेसे अध्यस्थि, अधिदन्त, दन्तभेद, अस्थिभेद, दन्तशूल, अस्थि-शूल और विवर्णता होतेहै तथा केश, लोम, नख और श्मश्रु इनमें भी अस्थि दूषित होनेसे विकार उत्पन्न होते है ॥ १९ ॥

मज्जादोषज रोग।

रुक्पर्वणाभ्रमोमूर्च्छादर्शनतमसोमता. ।
अरुपास्थूलमूलानापर्वजानाञ्चदर्शनम् ॥ २० ॥

मज्जा दूषित होनेसे पर्वभेद, भ्रम, मूर्च्छा, अन्धकार बडी २ मोटी तथा जडयुक्त अरुंषिका नामक फुंसिय पर्वस्थानमें (सधिस्थानमें) उत्पन्न होतीहै ॥ २० ॥

शुक्रदोषज रोग।

मज्जाप्रदोषाच्छुक्रस्यदोषात्क्लैब्यमहर्षणम् । रोगिणक्ली-वमल्पायुर्विरूपवाप्रजायते ॥ २१ ॥ नवासञ्जायतेगर्भ पतति प्रस्रवत्यपि । शुक्र हिदुष्टसापत्यंसदारबाधतेनरम् ॥ २२ ॥

शुक्र (वीर्य) दूषित होनेसे नपुंसकता, हर्षका न होना एवम् बहुत रोगजनक रोगी रहनेके कारण आयुका कम होना, सन्तानका न होना या कुत्सित सन्तान होना अथवा गर्भका पतन या स्राव होजाना ऐसे २ उपद्रव होतेहै । दूषित हुआ शुक्र अपने शरीरके सिवाय स्त्री और सन्तानको भी दुःखदायी होताहै अर्थात् स्त्री पुत्र सहित पुरुषको दुःखित रखताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥

कुपितदोषोंके कर्म।

इन्द्रियाणिसमाश्रित्यप्रकुप्यन्तियदामला ।
उपतापोपघाताभ्या योजयन्तीन्द्रियाणिते ॥ २३ ॥

यदि कुपितहुए दोष इन्द्रियोंमें आश्रित होजांय तो इन्द्रियोंका उपताप तथा उपघात होताहै ॥ २३ ॥

स्नायौशिराकण्डरयोर्दुष्टा क्लिश्यन्तिमानवम् ।
स्तम्भसङ्कोचखल्लीभिर्ग्रन्थिस्फुरणसुप्तिभि ॥ २४ ॥

यदि वातादिदोष-स्नायु, शिरा एवम् कण्डरा आदि नाडियोंमें प्रकुपित होकर व्यापक होजाय तो मनुष्यके शरीरमें स्तम्भ, सकोच, खल्ली, गाठोंका फड़कना तथा अगोंका सोजाना यह उपद्रव होतेहै ॥ २४ ॥

मलानाश्रित्यकुपिताभेददोषप्रदूषणम् ।
दोषामलानाकुर्वन्तिसङ्गोत्सर्गावतीवच ॥ २५ ॥

कुपित हुए वातादि दोष मलस्थानमें व्यापक होनेसे मलोका बिल्कुल रुकजाना या अत्यन्त निकलना आदि उपद्रव होतेहैं ॥ २५ ॥

विविधादशितात्पीतादहिताल्लीढखादितात् ।
भवन्त्येतेमनुष्याणाविकारायउदाहृताः ॥ २६ ॥

इस प्रकार अहित भुक्त, पीत, आलीढ, चर्वित अनेक प्रकारके आहारोंके करनेसे मनुष्योंके शरीरोंमे यह विकार उत्पन्न होतेहै ॥ २६ ॥

तेषामिच्छन्ननुत्पत्तिसेवेतमतिमान्सदा ।
हितान्येवाशितादीनिनस्युस्तज्जास्तथामया ॥ २७ ॥

जो मनुष्य अपने शरीरमे दोषोंके प्रकोपको होने देना नहीं चाहते उन बुद्धिमानोंको हित आहारोंको ही सेवन करना चाहिये क्योंकि हित आहार सेवन करनेसे आहारजनित रोग उत्पन्न ही नहीं होनेपाते ॥ २७ ॥

रसजरोगोंकी चिकित्सा ।

रसजानाविकाराणासर्वलंघनमौषधम् ।
विधिशोणितकेऽध्याये रक्तजानाभिषग्जितम् ॥ २८ ॥

रसजन्य विकारोंमें लंघन करना ही सर्वोत्तम औषधि है । रक्तजनित रोगोंमें विविध शोणितीयाध्यायमें कही हुई चिकित्सा द्वारा रक्त विकारोंको जीतना चाहिये ॥ २८ ॥

मांसजदोषोंकी चिकित्सा ।

मासजानान्तुसंशुद्धि शस्त्रक्षाराग्निकर्म्मच ।
अष्टौनिन्दिनसंख्यातेमेदोजानाचिकित्सितम् ॥ २९ ॥

मांस जनित विकारोंमें शोधन (वमन, विरेचन) क्रिया तथा शस्त्रक्रिया अथवा क्षार या अग्निक्रिया हितकारक होतीहैं। भेदजनित विकारोंकी चिकित्सा अष्टौनिन्दनीय अध्यायमें कथन कर आयेहैं ॥ २९ ॥

अस्थ्याश्रयाणांव्याधीनांपञ्चकर्माणिभेषजम्।
वस्तयः क्षीरसर्पींषितिक्तकोपहितानिच ॥ ३० ॥

अस्थिजनित विकारोंमें-वमन, विरेचनादि पंचकर्म, तिक्तगण तथा दूध, घृतकी वस्तिद्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३० ॥

मज्जाशुक्रदोषोंकी चिकित्सा।

मज्जाशुक्रसमुत्थानामौषधंस्वादुतिक्तकम्।
अन्नंव्यवायव्यायामौ शुद्धिः कालेचमात्रया ॥ ३१ ॥

मज्जा और शुक्रजनित विकारोंमें मधुर और तिक्त औषधियों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये तथा हित अन्न, उचित मैथुन, व्यायाम एवम् यथा समय उचित मात्रासे संशोधन करना चाहिये ॥ ३१ ॥

शान्तिरिन्द्रियजानान्तुत्रिमर्मीयेप्रवक्ष्यते ॥ ३२ ॥

इन्द्रियजनित विकारोंमें आगे त्रिमर्मीय चिकित्सित नामक अध्यायमें चिकित्सा स्थानमें कहेंगे ॥ ३२ ॥

स्नाय्वादिजानांप्रशमोवक्ष्यतेवातरोगिके। नवेगान्धारणेऽध्यायेचिकित्सासंग्रहः कृतः ॥ ३३ ॥ मलजानांविकाराणांसिद्धिश्चोक्ताक्वचित्क्वचित् ॥ ३४ ॥

स्नायु, शिरा, कण्डरा इनके दोष जनित विकारोंमें (वातव्याधि चिकित्सा अध्यायमें कथन करेंगे) वह यत्न करना चाहिये। मलजनित विकारोंकी चिकित्सा न वेगान्धारणीयाध्यायमें कथन कर चुकेहैं तथा अन्य २ स्थानोंमें भी कहीं कहीं कथन कियाजायगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

व्यायामादूष्मणस्तैक्ष्ण्याद्धितस्यानवधारणात्। कोष्ठाच्छाखामलायान्तिद्रुतत्वान्मारुतस्यच ॥ ३५ ॥ तत्रस्थाश्चविलम्बन्ते कदाचिन्नासमीरिताः। नादेशकालेकुप्यन्ति भूयोहेतुप्रतीक्षिणः ॥ ३६ ॥

हितकारक आचरण न करनेसे, व्यायाम न करनेसे अथवा अहित व्यायाम करनेसे, गर्मीकी तीक्ष्णतासे, वायुकी द्रुतगति होनेसे दोष कोष्ठमे शाखा और मर्मस्थानमें गमन करते हैं फिर उन स्थानोंमे पहुंचकर मन्दता पाने पर्यन्त विलम्बित रहतेहै फिर विना समय तथा विना देश इनमें अपने हेतुकी परीक्षा करते हुए कुपित नहीं होते और कारण जनित सहायता प्राप्तकर कुपित हो अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करतेहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

वृद्धयाभिष्यन्दनात्पाकात्स्रोतोमुखविशोधनात् ।
शाखामुक्तामलाःकोष्ठयान्तिवायोश्चनिग्रहात् ॥ ३७ ॥

वृद्धिको प्राप्त हुए वह दोष-अभिष्यदी होजानेसे, अथवा स्रोतोंका मुख शुद्ध होनेसे, या पाचन औषधियों द्वारा दोषोंके परिपाक होनेसे दोष वायुके निग्रह होनेसे शाखाओंको छोडकर कोष्ठमें आकर प्राप्त होजातेहैं ॥ ३७ ॥

अजातानामनुत्पत्तौजातानांविनिवृत्तये ।
रोगाणांयोविधिर्दिष्टः सुखार्थीतंसमाचरेत् ॥ ३८ ॥

जो रोग उत्पन्न नहीं हुएहैं उनको उत्पन्न न होने देना और उत्पन्न हुए दोषोंको नष्ट करदेना इन दोनोंके लिये शास्त्रमें जो प्रकार लिखाहै उसका सेवन करना सुखकी इच्छावाले मनुष्यको अत्यावश्यक है ॥ ३८ ॥

सुखार्थाः सर्वभूतानांमताः सर्वाः प्रवृत्तयः ।
ज्ञानाज्ञानविशेषात्तुमार्गामार्गप्रवृत्तयः ॥ ३९ ॥

संपूर्ण प्राणीमात्र अपने सुखकी इच्छा करते हुए ही सब कार्योंमें प्रवृत्त होतेहै परन्तु वह प्रवृत्ति सुमार्ग और कुमार्गके भेदसे दो प्रकारकी होजातीहै । इस द्विविध प्रवृत्तिका कारण ज्ञान और अज्ञान ही है क्योंकि अज्ञानवश मनुष्य अपने सुखकी इच्छा करता हुआ कुमार्गमे प्रवृत्त होजाताहै और ज्ञानवश सुमार्गमें प्रवृत्त होताहै ॥ ३९ ॥

हितमेवानुरुध्यन्तेप्रसमीक्ष्यपरीक्षकाः ।
रजोमोहावृतात्मानः प्रियमेवतुलौकिकाः ॥ ४० ॥

बुद्धिमान मनुष्य विचारपूर्वक हितकारी वस्तुओंकाही अवलम्बन करतेहै परन्तु रज और मोहसे ढकी हुई आत्मावाले प्यारी वस्तुओंका अवलम्बन करतेहै । प्रायः संसारमें हित और प्रिय भेदसे दो प्रकारके पदार्थ होतेहैं । जो पदार्थ न अच्छा लगनेपर भी हितकारी होताहै उसको हित कहतेहै जैसे उत्तम निम्बादिचूर्ण । इसी

प्रकार जो पदार्थ अहितकारी होनेपर भी प्रिय मालुम होताहै उसको प्रिय कहतेहैं जैसे कफ प्रधान ज्वरमें दही बडे ॥ ४० ॥

श्रुतबुद्धि स्मृतिदार्ढ्यधृतिर्हितनिषेवणम् । वाक्प्रशुद्धि शमो धैर्य्यमाश्रयन्तिपरीक्षकम्॥४१॥लौकिकंनाश्रयन्त्येतेगुणामोह-तमाश्रितम् । तन्मूलाबहुलाश्चैवरोगा शारीरमानसा ॥ ४२ ॥

बुद्धिमान् परीक्षक शास्त्र, बुद्धि, स्मृति, दृढता, धृति, हितसेवन, वाणीकी शुद्धि, शान्ति और धैर्य इनका आश्रय लेकर कार्यमें प्रवृत्त होताहै ॥ ४१ ॥ और लौकिक मनुष्य इन गुणोंका आश्रय न लेकर मोह और तम आदिके वश हो कार्योंमें प्रवृत्त होताहै । सो मोह और तममूलकही संपूर्ण शारीरिक और मानसिक रोग होतेहैं ॥ ४२ ॥

प्रज्ञापराधाद्ध्यहितानर्थान्पञ्चनिषेवते । सन्धारयतिवेगांश्च सेवतेसाहसानिच ॥४३॥ तदात्वसुखसञ्ज्ञेषुभावेष्वज्ञोऽनुरज्यते । रज्यतेनतुविज्ञाताविज्ञानेह्यमलीकृते ॥ ४४ ॥ नरोगानाप्यविज्ञानादाहारमुपयोजयेत् । परीक्ष्यहितमश्नीयाद्देहोह्याहारसम्भव. ॥ ४५ ॥

मनुष्य बुद्धिके अपराधसे ही पांच प्रकारके अहित विषयोंका सेवन करताहै । अज्ञानता वशही मल आदिके वेगोंको धारण करताहै तथा अनुचित साहसको करताहै इसी लिये वह अज्ञानी मनुष्य परिणामको न समझता हुआ असुखकारक अर्थात दुःखदायी भावोंमें आसक्त होजाताहै । परन्तु ज्ञानी मनुष्य निर्मल ज्ञानके प्रभावसे असुखकारी विषयोंमें प्रवृत्त नहीं होता और रोगसे तथा अज्ञानसे अहित आहारका सेवन नहीं करता इसलिये हित और अहितका विचार कर हित आहारकाही सेवन करना चाहिये क्योंकि यह शरीर आहारसे ही उत्पन्न होताहै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

आहारस्यविधावष्टौविशेषाहेतुसञ्ज्ञका । शुभाशुभसमुत्पत्तौतान्परीक्ष्योपयोजयेत् ॥ ४६ ॥ परिहार्य्याण्यपथ्यानिसदापरिहरन्नर । भवत्यनृणताप्राप्त साधूनामिहपण्डित ॥ ४७ ॥

आहारके सम्बन्धमें हेतुसंज्ञक आठ प्रकारका विधान किया गयाहै (विमानस्थान देखो)। मनुष्यको उचितहै कि शुभ और अशुभकी उत्पत्तिके विषयमें पूर्णरूपसे परीक्षा

एकोनत्रिंशोऽध्याय ।

अथातोदशप्राणायतनीयमध्यायंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेय ।

अब हम दशप्राणायतनीय अध्यायकी व्याख्या करतेहैं ऐसे भगवान आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

प्राणस्थान तथा प्राणाभिसर ।

दशैवायतनान्याहुःप्राणायेषुप्रतिष्ठिताः । शङ्खोमर्म्मत्रयकण्ठोरक्तशुक्रौजसीगुदम् ॥ १ ॥ तानीन्द्रियाणिविज्ञानंचेतनाहेतुमामयम् । जानीतेय सविद्वान् वैप्राणाभिसरउच्यते इति ॥ २ ॥

जिनमें प्राण आश्रयभूत रहतेहैं वह दश स्थान है अथवा या कहिये कि शरीरमें प्राणोंके रहनेके दश स्थान है । जैसे दोनो कनपटी, मस्तक, हृदय, वस्ती, कोष्ठगत्त, शुक्र, ओज और गुदा, जिस वैद्यको यह दश प्राणायतन और इन्द्रियें इनका विज्ञान, चेतना, हेतु तथा समस्त रोग इन सबका यथोचित ज्ञान है वह ही प्राणाभिसर अर्थात् प्राणोंका रक्षक वैद्य कहाजाताहै ॥ १ ॥ २ ॥

वैद्योंके भेद ।

द्विविधास्तुखलुभिषजोभवन्तिअग्निवेश ! प्राणानामेकेऽभिसराहन्तारोरोगाणां, रोगाणामेकेऽभिसराहन्तारःप्राणानामिति ॥ ३ ॥

संसारमें दो प्रकारके वैद्य होतेहैं । हे अग्निवेश ! एक वैद्य तो रोगोंको नष्ट करनेवाले और प्राणोंकी रक्षाकरनेवाले होतेहैं, दूसरे रोगोंको बढानेवाले और प्राणोंको हनन करनेवाले होतेहैं ॥ ३ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाचभगवन् ! तेकथमस्माभिर्वेदितव्याभवेयुरिति ॥ ४ ॥

इस प्रकार कहतेहुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन् हम इन दोनोंको किस प्रकार जानसकतेहैं अर्थात् इन दोनोंके जाननेका क्या उपाय है ॥ ४ ॥

सद्वैद्यके लक्षण ।

भगवानुवाचयइमेकुलीना पर्य्यवदातश्रुता. परिदृष्टकर्माणो दक्षा' शुचयोजितहस्ताजितात्मान'सर्वोपकरणवन्त सर्वेन्द्रियोपपन्ना प्रकृतिज्ञा प्रतिपत्तिज्ञास्ते प्राणिनामभिसराहन्तारो रोगाणातथाविधाहिकेवलेशरीरज्ञानेशरीराभिनिवृत्तिज्ञानेप्रकृतिविकारज्ञानेच नि संशया सुखसाध्यकृच्छ्रसाध्ययाप्यप्रत्याख्येयानाञ्चरोगाणासमुत्थानपूर्वरूपलिङ्गवेदनोपशयविशेषविज्ञानेव्यपगतसन्देहा त्रिविधस्यायुर्वेदसूत्रस्यससंग्रहव्याकरणस्यसत्रिविधौपधग्रामस्यप्रवक्तारः ॥ ५ ॥

यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि जो वैद्य कुलीन अनुभवसम्पन्न,शास्त्रज्ञ, दृष्टकर्मा, चतुर,पवित्र,सिद्धहस्त,जितात्मा औषधादि सब उपकरण सयुक्त सर्वेन्द्रिय सम्पन्न तथा प्रकृतिका जाननेवाला होताहै उसको प्राणाभिसर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य कहतेहैं तथा शारीरिक सम्बन्धमे पूर्णज्ञानी शरीरनाशक रोग तथा द्रव्योंका जाननेवाला, शरीरके उत्पत्तिकारक पदार्थोंको जाननेवाला प्रकृतिके ज्ञानके विषयमें नि संशय हो तथा सुखसाध्य कष्टसाध्य, याप्यसाध्य और असाध्य रोगोंके कारण, पूर्वरूप, रूप, वेदना और उपशय इनके ज्ञानविशेषमे सदेहरहित एवम् हेतु, लक्षण, औषधि इस त्रिविध आयुर्वेदसूत्रके समह और व्युत्पत्ति एवम् त्रिविध औषधोंके जाननेमे यथार्थज्ञानी हो उसको प्राणाभिसर, रोगहन्ता वैद्य कहतेहै ॥ ५ ॥

पञ्चत्रिंशतश्चमूलफलानाचतुर्णांमहास्नेहानापञ्चानांलवणाना मष्टानाञ्चमूत्राणामष्टानाञ्चक्षीराणाक्षीरत्वक्वृक्षाणाञ्चपण्णाशिरोविरोचनादेश्चपञ्चकर्माश्रयस्यौपधगण स्याष्टाविंशतेश्चयवागूनाञ्चत्रिंशतश्चचूर्णप्रदेहानापण्णांविरेचनशताना पञ्चानाञ्चकषायशतानामितिस्वस्थवृत्तौचभोजनपान नियमस्थानचङ्क्रमणशय्यासन—मात्रा—द्रव्याञ्जनधूमनावनाभ्यञ्जन—परिमार्जनवेगविधारणाविधारण—व्यायामसात्म्येन्द्रियपरीक्षोपक्रमसद्वृत्तकुशला ॥ ६ ॥

तथा पैंतीसमचारके मूल और फल, चार महास्नेह, पञ्चलवण, अष्टमूत्र, आठ प्रकारके दूध, क्षीरप्रधान तथा त्वचाप्रधान वृक्षोंके फल्क ([illegible]) शिरोवि-

चनादि पचकर्माश्रित औषधिगण, अट्ठाइसमकारकी यवागू, बत्तीसप्रकारके चूर्ण और प्रलेप, छःसौ विरेचन, पाचसौ कषाय, स्वास्थ्यरक्षाके लिये भोजन पानके नियम, स्थान, भ्रमण, शय्या, आसन, मात्रा, द्रव्य, अजन, धूम्रपान, नस्य, अभ्यजन, परिमार्जन, वेगोका धारण, और वेगोंका अविधारण, व्यायाम, इन्द्रिय, सात्म्य और पदार्थोंकी परीक्षा, एवम रोगोंका निवृत्तिकारक यत्न आदि श्रेष्ठवृत्तमें कुशल हो उसको ही प्राणाभिसरवैद्य कहतेहैं ॥ ६ ॥ (प्रथमाध्यायमे नवमतकका कथन इसम कियागया)

चतुष्पादोपगृहीतेचभेषजेषोडशकलेसविनिश्चयेसात्रिपर्य्येपणे सवातकलाकलज्ञानेव्यपगतसन्देहा । चतुर्विधस्यचस्नेहस्यच- तुर्विंशत्यपनयनस्यउपकल्पनीयोक्तचतु पष्टिपर्य्यन्तस्यव्यव स्थापयितारोवहुविधविधान-युक्तानाश्चस्नेहस्वेदवम्यविरेच्यो- पधोपचाराणाकुशला । शिरोरोगादेश्चदोषांशविकल्पजस्यव्या- धिसग्रहस्यसक्षयपिडकाविद्रधे त्रयाणाश्चशोफानाबहुविधशो- फानुबन्धानामष्टाचत्वारिंशतश्चरोगाधिकारिणाचत्वारिंशद धिकस्यचनानात्मजस्यव्याधिशतस्य । तथाविगर्हितातिस्थूलातिकृशानासहेतुलक्षणोपक्रमाणास्वप्नस्यचहिताहितस्याम्वप्नातिम्वप्नस्यच सहेतूपक्रमस्यषण्णाश्चलघनादीना- मुपक्रमाणासन्तर्पणापतर्पणजानारोगाणास्वरूपप्रशमनाना शोणितजानाश्चव्याधीनामदमूर्च्छायसन्यासानाश्चसकारणरू- पौषधानाकुशला । कुशलाश्चाहारविधिविनिश्चयस्यप्रकृत्याहित- तमानामाहारविकाराणामग्र्यसग्रहस्यासवानाश्चचतुरशीते द्रव्यगुणविनिश्चयस्यरसानुरससश्रयस्यसविकल्पकवैरोधिकस्य द्वादशवर्गाश्रयस्यचान्नपानस्यसगुणप्रभावस्यसानुपानगुणस्य विविधस्यान्नसग्रहस्यआहारगतेश्चहिताहितोपयोगविशेषात्म कस्यचशुभाशुभविशेषस्यधात्वाश्रयाणाश्चरोगाणामौषधसग् ह्याणाश्चदशानाश्चप्राणायतनानायवक्ष्याम्यर्थेदशमहामूली

सद्वैद्यके लक्षण ।

भगवानुवाचयइमेकुलीना पर्य्यवदातश्रुता परिदृष्टकर्माणो दक्षा शुचयोजितहस्ताजितात्मान'सर्वोपकरणवन्त सर्वेन्द्रियोपपन्ना प्रकृतिज्ञा'प्रतिपत्तिज्ञास्ते प्राणिनामभिसराहन्तारो रोगाणातथाविधाहिकेवलेशरीरज्ञानेशरीराभिनिवृत्तिज्ञानेप्रकृतिविकारज्ञानेच नि संशया सुखसाध्यकृच्छ्रसाध्ययाप्यप्रत्याख्येयानाश्चरोगाणासमुत्थानपूर्वरूपलिङ्गवेदनोपशयविशेषविज्ञानेव्यपगतसन्देहा त्रिविधस्यायुर्वेदसूत्रस्यससग्रहव्याकरणस्यसत्रिविधौपधग्रामस्यप्रवक्तार ॥ ५ ॥

यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि जो वैद्य कुलीन अनुभवसम्पन्न,शास्त्रज्ञ, दृष्टकर्मा, चतुर,पवित्र,सिद्धहस्त,जितात्मा औषधादि सब उपकरण संयुक्त सर्वेन्द्रिय सम्पन्न तथा प्रकृतिका जाननेवाला होताहै उसको प्राणाभिसर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य कहतेहैं तथा शारीरिक सम्बन्धमे पूर्णज्ञानी शरीरनाशक रोग तथा द्रव्योंका जाननेवाला, शरीरके उत्पत्तिकारक पदार्थोंको जाननेवाला, प्रकृतिके ज्ञानके विषयमें निःसंशय हो तथा सुखसाध्य कष्टसाध्य, याप्यसाध्य और असाध्य रोगोंके कारण, पूर्वरूप रूप, वेदना और उपशय इनके ज्ञानविशेषमें संदेहरहित एवम् हेतु, लक्षण, औषधि इस त्रिविध आयुर्वेदसूत्रके समह और व्युत्पत्ति एवम् त्रिविध औषधके जाननेमें यथार्थज्ञानी हो उसको प्राणाभिसर, रोगहन्ता वैद्य कहतेहैं ॥ ५ ॥

पञ्चत्रिंशतश्चमूलफलानाचतुर्णांमहास्नेहानापञ्चानालवणानामष्टानाञ्चसूत्राणामष्टानाञ्चमूत्राणामष्टानाञ्चक्षीराणाक्षीरत्वग्वृक्षाणाञ्चपण्णाशिरोविरोचनादेश्चपञ्चकर्माश्रयस्यौपधगणस्याष्टाविंशतेश्चयवागूनाद्वात्रिंशतश्चचूर्णप्रदेहानापण्णाविरेचनशतानापञ्चानाञ्चकपायशतानामिनिस्वस्थवृत्तौचभोजनपाननियमस्थानचङ्क्रमणशय्यासन–मात्रा–द्रव्याञ्जनधूमनावनाभ्यञ्जन–परिमार्जनवेगविधारणाविधारण–व्यायामसात्म्येन्द्रियपरीक्षोपक्रमसद्वृत्तकुशला ॥ ६ ॥

तथा वैद्यगणको ३५ मूल और फल, चार महास्नेह, पञ्चलवण, अष्टमूत्र, आठ-प्रकारके दूध, क्षीरप्रधान तथा त्वचाप्रधान वृक्षोंके षट् (छःप्रकार) शिरोवि-

चनादि पचकर्माश्रित औपधिगण, अट्ठाइसप्रकारकी यवागू, बत्तीसप्रकारके चूर्ण और प्रलेप, ऊःसी सिंचन, पांचसौ कपाय, स्वास्थ्यरक्षाके लिये भोजन पानके नियम, स्थान, भ्रमण, शय्या, आसन, मात्रा, द्रव्य, अजन, धूम्रपान, नस्य, अभ्यजन, परिमार्जन, वेगाका धारण, और वेगोका अविधारण, व्यायाम, इंद्रिय, सात्म्य और पदार्थोकी परीक्षा, एवम रोगोका निवृत्तिकारक यत्न आदि श्रेष्ठवृत्तम कुशल हो उसको ही प्राणाभिसर्वैद्य कहतेहै ॥ ६ ॥ (प्रथमाध्यायसे नवमतकका कथन इसम कियागया)

चतुष्पादोपगृहीतेचभेपजेषोडशकलेसविनिश्चयेसात्रिपर्य्येपणे सनातकलाकलज्ञानेव्यपगतसन्देहा । चतुर्विधस्यचस्नेहस्यच- तुर्विंशत्यपनयनस्यउपकल्पनीयोक्तचतु पष्टिपर्य्यन्तस्यव्यव स्थापयितारोवहुविधविधान–युक्तानाञ्चस्नेहस्वेदवम्यविरेच्यो- पधोपचाराणाकुशला ।शिरोरोगादेश्चदोपाशविकल्पजस्यव्या- धिसग्रहस्यसक्षयपिडकविद्रधे त्रयाणाञ्चशोफानावहुविधशो- फानुवन्धानामष्टाचत्वारिंशतश्चरोगाधिकारिणाचत्वारिंशद- धिकस्यचनानात्मजस्यव्याधिशतस्य । तथाविगर्हितातिस्थूलातिकृशानासहेतुलक्षणोपक्रमाणास्वप्नस्यचहिताहित- स्यास्वप्नातिस्वप्नस्यच सहेतूपक्रमस्यपण्णाञ्चलघनादीना- मुपक्रमाणासन्तर्पणापतर्पणजानारोगाणास्वरूपप्रशमनाना शोणितजानाञ्चव्याधीनामदमूर्च्छायसन्यासानाञ्चसकारणरू- पौपधानाकुशला । कुशलाश्चाहारविधिनिश्चयस्यप्रकृत्याहित- तमानामाहारविकाराणामग्र्यसग्रहस्यासवानाञ्चचतुरशीते द्रव्यगुणविनिश्चयस्यरसानुरससंश्रयस्यसविकल्पस्यवैरोधिकस्य द्वादशवर्गाश्रयस्यचान्नपानस्यसगुणप्रभावस्यसानुपानगुणस्य निविधस्याक्षसग्रहस्यआहारगतेश्चहिताहितोपयोगविशेपात्म कस्यचशुभाशुभविशेषस्यधात्वाश्रयाणाञ्चरोगाणामौषधसग्- हाणाञ्चदशानाञ्चप्राणायतनानांयञ्चवक्ष्याम्यर्थेदशमहामूली-

येत्रिंशच्चमाध्यायेतत्रचकृत्स्नस्यतन्त्रोद्देशलक्षणस्यतन्त्रस्यच ग्रहणधारणविज्ञानप्रयोगकर्मकार्य्यकालकर्तृकरणकुशला ॥ ७ ॥

षोडशकलायुक्त चतुष्पाद औषधका ज्ञान, त्रिविध एषणा, वातकलाकल ज्ञानमें नि:सन्देह, चतुर्विध स्नेह, चौबीस प्रकार स्नेहकी विचारणा, उपकल्पनीय अध्यायमें कहीहुई चौसठ प्रकारकी व्यवस्थापयिता हो एवम् अनेक प्रकारके विधानसे स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचनके योग्य प्रयोग, औषध, उपचार इनमें कुशल हो उसको ही प्राणाभिसर वैद्य कहना चाहिये। शिरोरोगादि रोगोंके दोषोंका अंशांश कल्पनाजन्य विकल्प, व्याधिसंग्रह, दोष और धातुओंका क्षय, पिडका, विद्रधी, त्रिविध शोथ, शोथके अनेक प्रकारके अनुबंध, अडतालीस रोगाधिकरण चालीस पित्तरोग, बीस कफरोग, अस्सी वातरोग, अतिस्थूल और अतिकृश शरीरोंकी निंदा और उनके कारण तथा लक्षण एवम् चिकित्सा। निद्रा, अनिद्रा, अतिनिद्राका हित और अहित, कारण, यत्न। ८ घन आदि छ प्रकारकी चिकित्सा, सन्तर्पण और अपतर्पण जन्य रोगोंके स्वरूप और उपाय, रक्त रोग, मद, मूर्छा, सन्यास इनके हेतु रूप और चिकित्सा इन सबमें कुशल हो। एवम् आहार विधिके विनिश्चयमें पुरुष स्वभावसे ही हितकारक आहार तथा आहारजन्य विकार और आहारजनित विकारसे सिवाय अन्य विकारोंके कारण चौरासी प्रकारके आसव द्रव्योंके गुणोंका विनिश्चय रस तथा अनुरसोंका विनिश्चय तथा उनके भेद विरोधकारक आहारोंका वर्णन अन्नपान विषयक द्वादश वर्गोंका निश्चय अन्नपान और गुणके प्रकार तथा उनके अनुपानोंके गुण तथा उनकी विधि अनेक प्रकारके द्रव्योंकी गुरुता और लघुताका संग्रह आहार सम्बन्धी हित और अहित पदार्थोंका उपयोग तथा उनसे होनेवाले शुभ अशुभ रसादि धातु ओंके आश्रितरोग और उनके उपाय प्राणोंके दश स्थान और जो कुछ दशमूलीय नामक तीसरे अध्यायमें कथन करेंगे वह सम्पूर्ण तथा इस प्रकार शास्त्रका उद्देश, लक्षण, ग्रहण धारणका अनेक प्रकारका ज्ञान एवम् प्रयोगज्ञान, कर्म, कार्य, काल, कर्ता, और करण इन सम्पूर्ण विषयोंमें कुशल हो। (तीसरे ऐसा तीसरे अध्यायनकी भी इसमें देदीह ॥ ७ ॥

कुशलाश्चस्मृतिमतिशास्त्रयुक्तिज्ञानस्यात्मन शीलगुणैरविसं-वादनेनसम्पादनेनसर्वप्राणिषुचेतसोमैत्रस्यमातृपितृभ्रातृ-बन्धुवदेवंयुक्ताभवन्त्यग्निवेश। प्राणानामभिसराहन्तारोरो गाणामिति ॥ ८ ॥

इस प्रकार सूत्रस्थानोक्त तीस अध्यायके विषयोंका यथोचित ज्ञान रखता हुआ स्मृति, मति, शास्त्र युक्ति तथा ज्ञान सम्पन्न हो एवम् आत्माके शील आदि गुणोंसे सब मनुष्याम मैत्री भाव रखता हुआ तथा निर्विवाद होकर सपूर्ण मनुष्योंका माता, पिता, भाई और बधुवर्गके समान हितकरनेवाला हो। इन उपरोक्त सपूर्ण गुणोंवाला जो वैद्य होताहै हे अग्निवेश! उसको ही प्राणाभिसर और रोगोंका नाश करनेवाला वैद्य कहना चाहिये ॥ ८ ॥

रोगाभिसरके लक्षण।

अतोविपरीतारोगाणामभिसराहन्तार प्राणिनामिति। भिषक्छद्मप्रतिच्छन्ना कण्टकभतालोकस्यप्रतिरूपिकसहधर्म्माणो राज्ञाप्रसादाच्चरन्तिराष्ट्राणि। तेषामिदविशेषविज्ञानमत्यर्थंवैद्यवेशेनश्लाघमानाविशिखान्तरमनुचरन्तिकर्म्मलोभात्।श्रुत्वाचकस्यचिदातुर्य्यमभित परिपतन्तिसश्रवणेचास्यात्मनोवैद्यगुणानुच्चैर्वदन्तियच्चास्यवैद्य प्रतिकर्म्मकरोतितस्यचदोषान्मुहुर्मुहुरुदाहरन्तिआतुरमित्राणिचप्रहर्षणोपजापोपसेवाभिरिच्छन्तिआत्मीकर्त्तुमल्पेच्छताश्चात्मन ख्यापयन्तिकर्म्मचासाद्यमुहुर्मुहुरवलोकयन्तिदक्ष्येणाज्ञानमात्मन छादयितुकामाव्याधिश्चापवर्त्तयितुमशक्नुवन्तोव्याधितमेवानुपकरणमपचारिकमनात्मवन्तमुद्दिश्यन्तिअन्तर्गतश्चाभिसमीक्ष्यान्धमाश्रयन्तिदेशमादेशमात्मन कृत्वा। प्राकृतजनसन्निपातेचात्मन कौशलमकुशलवद्वर्णयन्तिअधीरवद्धैर्य्यमपवदन्तिधीराणाम्। विद्वज्जनसन्निपातश्चाभिसमीक्ष्यप्रतिभयमिवकान्तारमध्वगा परिहरन्तिदूरात् ॥ ९ ॥

इन उपरोक्त सपूर्ण लक्षणोंसे विपरीत गुणवालेको रोगाभिसर और प्राणनाशक कहनाचाहिये। जो लोग वैद्यका वेश धारण किये, नामसे कण्टकरूप वैद्यके रूप धारण कियेहुए राजाओंकी असावधानीसे राज्यमें भ्रमण किरतेहैं उन मूर्खोंकी यही पहिचान है कि वह वैद्यका वेश धारण कियेहुए अपने मुखसे अपनी बडी बडाई करतेहुए गलीमें तथा निज मार्गपर बहुत आदमी फिरतेहैं उन स्थानोंमें कर्म लाभसे फिरा करते हैं और किसी मनुष्यकी बीमार सुनकर उस रोगी पास जा

पहुँचते हैं और उसके कानके समीप विना ही पूछे अपने बडेभारी वैद्य होनेके गुण वर्णन करने लगजाते हैं। और जो वैद्य पहिले उपाय कर रहाहो उसके दोषोंको वारवार अपने मुखसे कथन करतेहुए अपनी प्रशंसा करतेहैं तथा रोगीके मित्रोंकी किसी प्रकारकी सेवा आदिसे या अन्य किसी लोभसे प्रसन्न कर अपना बनानेकी इच्छा करतेहैं और अपने आपको निर्लोभ जताते हुए रोगीके सम्बन्धियोंसे अपने लेनेके विषयमें बडी युक्तिके साथ थोडीसी इच्छा जतातेहैं। तथा चिकित्सा करतेहुए पाखण्डसे रोगी और औषधीको वारवार देखतेहुए अपनी औषधीकी तारीफ करतेहैं और चतुराईपूर्वक अपनी मूर्खताको छिपाते जाते हैं। जब रोग बढने लगता है तो रोगीको कुपथ्य करनेवाला और अजितात्मा बताकर अपनेको निर्दोष ठहरा अपने अवगुणको छिपाना चाहते हैं। रोगीकी अवस्था बिगडत देख उसके मकानको छोड दूसरे स्थानमें चलेजातेहैं। और हमको यहाँ अत्यावश्यक कार्य है ऐसा कहकर अन्यस्थानमें चले जातेहैं। यह दुष्ट साधारण मनुष्योंके समूहमें उन लोगोंको मूर्ख बनातेहुए अपनी इतनी चतुराई दिखाते हैं और अभिरिव समान ऐसी बातें बनातेहैं कि जिनको सुनकर धीरपुरुषोंका भी धैर्य जातारहे। जब किसी विद्वान्को आते देखते हैं तो मारे भयके दूरसे ही उनको देखकर छिपोंके आने जानेके रास्तेसे झट इधर उधर छिपजाते हैं ॥ ९ ॥

यश्चैषांकश्चित्सूत्रावयवउपयुक्तस्तंप्रकृतेप्रकृतान्तरेवासततमुदाहरन्तिनचानुयोगमिच्छन्तिअनुयोक्तुंवामृत्योरिवचानुयोगादुद्विजन्ते । नचैषामाचार्य्यंशिष्योसब्रह्मचारीवैवादिकोवाकश्चित्प्रज्ञायते इति ॥ १० ॥

यह दुष्ट किसी एकाध वैद्यके ग्रन्थके वचनको अस्तव्यस्त याद करलेतेहैं उसीका सब लोगोंमें वारम्वार उच्चारण करतेहुए अहंकारपूर्वक कहा करतेहैं कि हमारा किसीसे शास्त्रार्थ कराओ जिस प्रकार मेहनतसे हमने वैद्यकशास्त्र पढाहै और कौन परिश्रम करसकताहै यदि दैवयोगसे इनको कोई बुद्धिमान शास्त्री पारदर्शी वर्तमान मिलजाय तो उससे बात करतेहुए भी घबराते हैं। यदि कोई इनसे शास्त्रार्थ करनेकी इच्छा करे तो मृत्युके समान डरतेहैं। न तो यही इनके गुरुका पता होताहै न इनके शिष्य आदिक यहाँ होतेहैं न कोई इनका स्वाध्यायी दिखाई पडताहै न किसी ऐसे वैद्यका पता लगताहै कि जिससे इन्होंने यथार्थ शास्त्रका अभ्यास की हो ॥ १० ॥

भिषक्छद्मप्रविश्यैवव्याधितास्तर्कयन्तिये । वसतमिवसञ्छि त्यवनेशाकुन्तिकोद्विजान् । श्रुतदृष्टक्रियाकालमात्रास्थान-बहिष्कृता । वर्ज्जनीयाहितेमृत्योश्चरन्त्यनुचराभुवि ॥ ११ ॥

जैसे शिकारी पक्षियोंको जालमें फसानेके लिये वनमें छिपे हुए रहते हैं उसीप्रकार यह दुष्ट भी वैद्याका स्वरूप बनाये हुए रोगियोंको अपने जालमें फसानेकी कोशिशमें रहते हैं। शास्त्र, अनुभव, क्रिया, काल, मात्रा, स्थान, इन सबके ज्ञानसे रहित, मृत्युके अनुचररूप जो वैद्यका वेश धारण किये फिरते हैं उनको वैद्यकीय क्रियामें दृष्टिमात्रसे ही त्याग देना चाहिये ॥ ११ ॥

वृत्तिहेतोर्भिषङ्मानपूर्णान्मूर्खविशारदान् ।
वर्ज्जयेदातुरोविद्वान् सर्पास्तेपीतमारुता ॥ १२ ॥

जो मनुष्य सामान्य आजीवनके निमित्त वैद्यवेश धारण किये हुए हैं ऐसे धूर्तोंक गुरुओंको बुद्धिमान् रोगी दूरसे ही त्याग देवे क्योंकि यह दुष्ट पवन पिये हुए सर्पोंके समान जानने चाहिये ॥ १२ ॥

येतुशास्त्रविदोदक्षा शुचय कर्मकोविदा ।
जितहस्ताजितात्मानस्तेभ्योनित्यकृतनम. ॥ १३ ॥

जो वैद्य शास्त्रके जाननेवाले हैं तथा आयुर्वेदके सब विषयोंमें चतुर हैं, शुद्धचित्त हैं, वैद्यकर्ममें विशारद हैं, जिन्होंने हस्तक्रियाको भले प्रकार सीखा है उन जितात्मा वैद्योंको नित्यप्रति नमस्कार है ॥ १३ ॥

तत्र श्लोक ।

दशप्राणायतनिकेश्लोकस्थानार्थसंग्रह ।
द्विविधाभिषजश्चोक्ता प्राणस्यायतनानिच ॥ १४ ॥

इति दशप्राणायतनीयोनामोनत्रिंशो-
ऽध्याय समाप्त ।

अध्यायकी पूर्तिमें यह एक श्लोक है-इस दश प्राणायतनीयनामक अध्यायमें संपूर्ण सूत्रस्थानके विषयोंका संग्रह दो प्रकारके वैद्य और प्राणोंके दश स्थान वर्णन किये गये हैं ॥ १४ ॥

इति श्रीमन्[illegible] सूत्रस्थाने दशप्राणायतनीयो नामैकोनत्रिंशोऽध्याय ॥ २९ ॥

त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातोऽर्थेदशमूलीयमध्यायं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम अर्थेदशमूलीय नामक अध्यायका वर्णन करतेहैं ऐसा आत्रेय भगवान् कहने लगे ।

अर्थेदशमहामूलाः समासक्ता महाफलाः ।
महच्चार्थश्च हृदयपर्य्यायैरुच्यते बुधैः ॥ १ ॥

महत्, हृदय और अर्थ यह तीनो शब्द हृदयके वाचक है । हृदयसे दश धमनी नामक नाडी लगी हुई है यह नाडिया महामूला और महाफला कही जातीहैं ॥ १ ॥

हृदयाधीन अङ्गावयव ।

षडङ्गमङ्गविज्ञानमिन्द्रियाण्यर्थपञ्चकम् । आत्माच सगुणश्चेतश्चिन्त्यञ्च हृदिसंश्रितम् ॥ २ ॥ प्रतिष्ठार्थं हि भावानामेषां हृदयमिष्यते । गोपानसीनामागारकर्णिकेवार्थचिन्तकैः ॥३॥

दो हाथ, दो पाव, मस्तक और देहका मध्यभाग यह शरीरके ६ अंग कहेजातेहै । कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका यह ५ इन्द्रियें कही जातीहै । शब्द, स्पर्श रूप, रस, गंध यह ५ इन्द्रियोंके विषय होतेहै । सगुण आत्मा और चेतना शक्ति यह चिन्तनके योग्य हृदयके आश्रित है । संपूर्ण शारीरिक भावोंके आश्रयके लिये शरीरमें हृदयरूप खंभा है जैसे-शालामे छप्परके नीचे संपूर्ण छप्परके अवयवोंके टिकानेके लिये एक स्तम्भ रहताहै उसी प्रकार शरीरके संपूर्ण भावोंको टिकानेके लिये हृदयके जाननेवालेने हृदय कहाहै ॥ २ ॥ ३ ॥

महामूलादिनामका कारण ।

तस्योपघातान्मूर्च्छायं भेदान्मरणमृच्छति ।
यद्धितत्स्पर्शविज्ञानधारितत्तत्र संश्रितम् ॥ ४ ॥

हृदयमें चोट आदि किसी प्रकारका उपघात होनेसे संपूर्ण शरीरमे मूर्छा आजाती है एवम् हृदयके फटजानेसे मत्यु होजातीहै । जो स्पर्शेन्द्रिय आदि इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुई ज्ञानको धारण करनेवाली जीवनी शक्ति है यह हृदयके ही आश्रयीभूत है ॥ ४ ॥

तत्परस्यौजसः स्थानं तत्र चैतन्यसंग्रहः ।
हृदयं महदर्थश्च तस्मादुक्तं चिकित्सकैः ॥ ५ ॥

चैतन्यशक्तिका धारण करनेवाला जो ओजधातु है यह ओज और चैतन्य भी हृदयके ही आश्रय है इस लिये चिकित्सकोंने हृदयको महत् और अर्थ कहाहै ॥ ५ ॥

ओजोधातुका गुणकर्म ।

तेनमूलेनमहतामहामूलामतादश । ओजोवहा शरीरेवाविध-म्यन्तेसमन्तत ॥ ६ ॥ येनौजसावर्त्तयन्तिप्रीणिता सर्वदेहि-न ॥ यद्दतेसर्वभूतानांजीवितनावतिष्टते ॥ ७ ॥

यह हृदय ही उन बडी बडी दश धमनियोंका मूल होनेसे यह नाडियों महामूला कहीजातीहै । यह दश धमनियें शरीरमें ओजको वहन करती हुई सपूर्ण शरीरमें धमायमान होतीहै इसलिये इनको धमनी कहतेहै । उस ओजके द्वारा ही सपूर्ण शरीरको पालन करती हुई देहको जीवित रखतीहै जिस ओजके विना सपूर्ण मनुष्यांका जीवन नहीं रहसकता ॥ ६ ॥ ७ ॥

यत्सारमादौगर्भस्ययोऽसौगर्भरसाद्रस । संवर्द्धमानहृदयम माविशतियत्पुरा ॥ ८ ॥ यस्यनाशान्ननाशोऽस्तिधारियद्धृद-याश्रितम् ॥ य शरीररस स्नेह प्राणायत्रप्रतिष्ठिता ॥ ९ ॥

ओज ही आदिम गर्भका सारभूत है तथा गर्भके उत्पन्न करनेवाले रसका भी सार है। यह ओज ही शरीरको उत्पन्न करनेके लिये हृदयमें प्रथम प्रवेश होताहै जिस ओजके नष्ट होनेसे शरीर भी नष्ट होजाताहै वह ओजही हृदयमें रहकर शरीरको धारण करताहै । यही शरीरका बल है, देह और प्राण इसीके आश्रितहै तथा शरीरके धारण करनेवाले रस और स्नेह यह सब उस ओजके ही आश्रय है और उस ओजका स्थान हृदय है ॥ ८ ॥ ९ ॥

महाफलकी निरुक्ति ।

तत्फलाविविधावाता फलन्तीतिमहाफला ॥ ध्मानाद्धमन्य स्रवणात्स्रोतांसिसरणाच्छिरा ॥ १० ॥ तन्महत्तामहामूला-स्तच्चोज परिरक्षता ॥ परिहार्य्याविशेषेणमनसोदु खहेतव ॥११॥

शरीरको जीवित रखनेवाली अनेक विधकी वायुमें हृदयका फल है उन फलरूपी फलोंको रसपसे लगी हुई धमनियें फलतीहै । इसीलिये इनको महाफला कहाजाताहै शरीरमें धमन (रसका पूर्ण) करतीहै इसलिये धमनी कहीजातीहै । स्रवण (पोषणरूपी रसका स्राव करनेसे) कहेजातेहै । सरणरूप गमन करनेसे इनका नाम सिराहै ॥ १० ॥ उस हृदय तथा उन धमनियों द्वारा उस ओजकी रक्षा करते हुए मनुष्यको मान-

नियमप्रायश्चित्तोपवासमन्त्रादिपरिग्रहाच्चिकित्सांप्राह । चि-
कित्साचायुषोहितायोपदिश्यतेवेदश्चोपदिश्यआयुर्वाच्यम् ।
तत्र आयुश्चेतनाप्रवृत्तिर्जीवितमनुबन्धोधारिचेत्येकोऽर्थ तत्र
आयुर्वेदयतीत्यायुर्वेद कथमित्युच्यतेस्वलक्षणत सुखासुख-
तोहिताहितत प्रमाणाप्रमाणतश्च । यतश्चायुष्यानायुष्याणि
चद्रव्यगुणकर्माणिवेदयत्यतोऽप्यायुर्वेद ।तत्रआयुष्याण्यनायु-
ष्याणिचद्रव्यगुणकर्माणिकेवलेनोपदेक्ष्यन्ते ॥ १६ ॥

वैद्यके इस प्रकार प्रश्न करनेपर कहना चाहिये कि ऐसे मत कहो । ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद इन चारोंमेंसे अथर्ववेद ही आयुर्वेदकी आत्मा कहना चाहिये क्योंकि अथर्ववेदमें कहेहुए, स्वस्त्ययन, बलिदान, मङ्गलकर्म, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास और मन्त्र आदिकोंसे ही चिकित्साका निर्देश कियागयाहै । और आयुके हितके लिये ही चिकित्साका उपदेश कियागयाहै । इसप्रकार आयुर्वेदका कथनकर अब आयुका कथन करतेहैं कि आयु, चेतना प्रवृत्ति, जीवित, अनुबंध यह सब आयुके पर्यायवाचक शब्द हैं इन सब शब्दोंमें आयुशब्द प्रसिद्ध होनेसे मुख्य रक्खा गयाहै सो आयुको विदित करानेवाला अर्थात् आयुसम्बन्धी ज्ञान करानेवाले शास्त्रको आयुर्वेद कहतेहैं । आयुर्वेद आयुका परिज्ञान किस प्रकार कराता है सो कहते हैं । जैसे—आयुके लक्षण सुखायु, दुःखायु, हितआयु तथा अहितआयु, आयुका प्रमाण और अप्रमाण, जिसप्रकार आयुके बढानेवाले पदार्थ आयुको बढातेहैं एवम् क्षय करतेहैं और द्रव्य, गुण, कर्म इन सबका यथार्थ ज्ञान करानेवाला आयु० कहा जाताहै । इस आयुर्वेदमें—आयुके बढानेवाले और आयुके नष्ट करनेवाले द्रव्य, गुण, कर्मोंका ही कथन किया जाताहै ॥ १६ ॥

लक्षणसे आयुका ज्ञान ।

तत्रेणतत्रायुरुक्तस्वलक्षणतोयथावद्विहितनम्रशारीरमानसा
भ्यारोगाभ्यामनभिद्रुतस्यविशेषेण यौवनवत समर्थानुगत
बलवीर्ययौरुषपराक्रमस्यज्ञानविज्ञानेन्द्रियेन्द्रियार्थबलसमु
दायेवर्त्तमानस्यपरमर्द्धिरुचिरविविधोपभोगस्यसमृद्धसर्वा-
रम्भस्ययथेष्टविचारणात्सुखमायुरुच्यते असुखमतोविपर्य्य
येण ॥ १७ ॥

आयुर्वेद शास्त्र करके आयुर्वेद और आयुका कथन किया जाचुकाहै अब सुखायु और असुखायुका लक्षण कहतेहैं। जो मनुष्य शारीरिक और मानसिक व्याधियोंसे व्यथित नहीं है और पूर्णरूपसे युवावस्थावाला है, जिसके शरीरमें भले प्रकार-बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम प्राप्त है और ज्ञान, विज्ञान, इन्द्रिय और इन्द्रियार्थ इन सबके समुदायसे सम्पन्न है एवम परम ऋद्धि सम्पन्न सुन्दर शोभायुक्त अनेक प्रकारके उपयोगयुक्त जिसके सब आरम्भ यथोचित समृद्ध हैं तथा वह मनुष्य स्वाधीन तथा सुन्दर विचारयुक्त हो उसके जीवितको सुखायु कहतेहैं। इससे विपरीत असुखायु (दुःखायु) जानना चाहिये ॥ १७ ॥

हिताहितआयुका वर्णन ।

हितैषिण पुनर्भूतानापरस्वातुउपरतस्यसत्यवादिन शमपरस्य परीक्ष्यकारिणोऽप्रमत्तस्यत्रिवर्गपरस्परेणानुपहतमुपसेवमान-स्यपूजार्हसम्पूजकस्यज्ञानविज्ञानोपशमशीलवृद्धस्योपसेविन- सुनियतरागेर्ष्यामदमानवेगस्यसततंविविधप्रदानपरस्यतपो-ज्ञानप्रशमनित्यस्यअध्यात्मविदस्तत्परस्यलोकमिमञ्चामुञ्चा-वेक्ष्यमाणस्यस्मृतिमतिमतोहितमायुरुच्यते । अहितमतो विपर्ययेण ॥ १८ ॥

जो मनुष्य संपूर्ण प्राणियोंका हित चाहनेवाला, परधनकी इच्छा न रखनेवाला, सत्यवादी, शान्तचित्त, विचारकर करनेवाला, अप्रमत्त, धर्म, अर्थ, काम इन सबको परस्पर अनुपहत विधिसे सेवन करनेवाला, पूज्यजन गुरुजन आदिकोंकी सेवा करनेवाला, ज्ञान, विज्ञान और उपशमशील, वृद्धजनोंकी सेवा करनेवाला, राग, द्वेष, मद और मनके वेगको वशमें रखनेवाला, नित्य प्रति यथाशक्ति दान देनेवाला, तप, ज्ञान, और इन्द्रियोंका सहन इनका अभ्यास करनेवाला, अध्यात्म विद्यायुक्त, ईश्वरपरायण इस लोक और परलोकमें हितका चाहनेवाला तथा स्मृतिसम्पन्न-इन सब गुणोंयुक्त मनुष्यकी आयु हितआयु कही जातीहै और इससे विपरीत गुणोंवालेकी अहित आयु कही जातीहै ॥ १८ ॥

आयुका प्रमाण ।

प्रमाणमायुषस्त्वर्थेन्द्रियमनोबुद्धिचेष्टादीनांविकृतिलक्षणैरुपलभ्यतेऽनिमित्तैरिदमस्मात्क्षणान्मुहूर्ताद्दि-

वसात्त्रिपञ्चदशसप्तदशद्वादशाहात्पक्षात् मासात्षण्मासात्सं-
वत्सराद्वास्वभावमापत्स्यतेइति । तत्रस्वभाव.प्रवृत्तेरुपरमो
मरणमनित्यतानिरोधइत्येकोऽर्थः । इत्यायुष प्रमाणमतोविप
रीतमप्रमाणम् ॥ २९ ॥

अथ आयुके प्रमाणको कथन करतेहैं । इन्द्रियोंके अर्थ यथा शब्द, स्पर्श आदि इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चेष्टा आदिकोंकी विकृति आदिके लक्षणोंसे आयुका प्रमाण जाना जाताहै यदि इनमें अकस्मात् विकृति होजाय तो क्षणभरमें या मुहूर्तमें एक दिनमें अथवा तीन दिन, पाँच दिन, सात दिन, दशदिन एवम् बारहदिनमें तथा पक्षमें या महीनेमें अथवा छः महीनेमें या एक वर्षमें मनुष्य स्वभावमें स्थित होजाताहै । यहांपर स्वभाव, प्रवृत्तिका उपराम, मरण, अनित्यता, निरोध यह सब एक ही अर्थवाले शब्द हैं । अर्थात् मरणके वाचक हैं बस यही आयुके प्रमाण हैं । इससे विपरीत आयुका अप्रमाण जानना ॥ २९ ॥

आयुर्वेदका नित्यत्व प्रतिपादन ।

अरिष्टाधिकारेदेहप्रकृतिलक्षणमधिकृत्यचोपदिष्टमायुष प्रमा-
णमायुर्वेदे । प्रयोजनञ्चास्यस्वस्थस्यस्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य
विकारप्रशमनम्। सोऽयमायुर्वेद शाश्वतोनिर्दिश्यतेऽनादित्वा-
त्स्वभावसंसिद्धस्वलक्षणत्वाद्भावस्वभावनित्यत्वाच्च । नहि
नाभूत्कदाचिदायुष सन्तानोबुद्धिसन्तानोवाशाश्वतश्चायुषोवे
दिताअनादिमच्चसुखदुःखसद्रव्यहेतुलक्षणमपरापरयोगादेष
चार्थसग्रहोविभाव्यते । आयुर्वेदलक्षणमितियत्पुन गुरुलघु
शीतोष्णस्निग्धरूक्षादीनाद्रव्याणासामान्यविशेषाभ्यांवृद्धि-
ह्रासौयथोक्तगुरुभिरभ्यस्यमानैर्गुरूणामुपचयोभवत्यपचयोल-
घूनामेवमेवेतरेषामित्येषभावस्वभावोनित्य । स्वस्वलक्षणञ्च
द्रव्याणांपृथिव्यादीनासन्तितुद्रव्याणिगुणाश्चनित्यानित्या ॥३०

इन्द्रिय स्थानके अरिष्टाधिकारमें [illegible] इनका वर्णन करके आयुका प्रमाण कथन किया गयाहै, [illegible] आयुर्वेदका [illegible] स्वस्थ (तन्दुरुस्त) मनुष्यकी [illegible]

रोगसे छोडाना अर्थात् रोगीके रोगका शान्तकरनाही है। सो यह आयुर्वेद अनादि होनेसे और स्वभाव संसिद्ध लक्षण होनेसे अर्थात् आयुर्वेद अपने संपूर्ण लक्षणोंद्वारा स्वभावके अनुकूल और स्वतःसिद्ध होनेसे एवम भावोंका स्वभावके नित्य होनेसे आयुर्वेद नित्य है। आयुकी जो सतान है और वृद्धि सतान यह नित्य नहीं है ऐसा नहीं होसकता अर्थात् आयुक्रम और भावोंकी वृद्धि संतति भी अनादि है इसलिये नित्य है और आयुर्वेदका ज्ञाता भी नित्य है अर्थात् आयु आयुर्वेद और इनका ज्ञान और ज्ञानवाला यह सदासेही नित्य है क्योंकि सुख और दुःखके सर्व भावका लक्षण परम्परासे सम्बन्ध रखता चला आता है इससे इस समहकी स्पष्ट नित्यता प्रतीति होतीहै। आयुर्वेदके नित्य होनेमें और भी लक्षण कथन करते हैं कि द्रव्योंका जो स्वभाव है यह भी नित्य है क्योंकि गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, और रूक्ष आदि-कोंके सामान्य विशेष योगसे वृद्धि और ह्रास होताहै (प्रथमाध्यायमें कथन कर चुकेहैं सब भावोंकी सामान्यतासे प्रवृत्ति वृद्धिका कारण और असामान्यतासे प्रवृत्ति ह्रासका कारण होताहै, जैसे कि–गुरु वस्तुओंका अभ्यास करनेसे गुरुताका उपचय और लघुताका अपचय होताहै इसी प्रकार रूक्ष, स्निग्ध आदि भावोंको भी जानना चाहिये। इससे स्पष्ट जाना जाताहै कि द्रव्योंके भावोंका स्वभाव नित्य है। पृथ्वी आदिक पचमहाभूतोंके गुणविशिष्ट जो द्रव्य हैं उनमें भी अपने २ लक्षणोंसे पृथि-व्यादि महाभूतोंके गुण नित्य प्रतीति होवेहैं यद्यपि द्रव्योंमें रसादिगुण अनित्य होतेहैं परन्तु जिस द्रव्यमें जो आग्नेय या जलीयगुण प्रधान होताहै यह कभी नष्ट नहीं होता। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि भावोंकी स्वभावकी नित्यता होनेसे भी आयुर्वेद नित्य ही है ॥ २० ॥

नहिआयुर्वेदस्याभूत्वोत्पत्तिरुपलभ्यते। अन्यत्राववोधोपदेशा-भ्यामेतद्वैद्वयमधिकृत्यउत्पत्तिमुपदिशन्त्येकेस्वाभाविकश्चास्य लक्षणमधिकृत्ययदुक्तमिहचाद्येअध्यायेयथाग्नेरौष्ण्यमपांद्रवत्वं भावस्वभावनित्यत्वमपिचास्ययथोक्तगुरुभिरभ्यस्यमानैर्गुरू-णामुपचयोभवत्यपचयोलघूनामित्येवमादि ॥ २१ ॥

आयुर्वेद उत्पन्न हुआहै ऐसा भी नहीं कहसकते क्योंकि ब्रह्माको आयुर्वेदका ज्ञान हुआ और इन्द्रने आयुर्वेदका उपदेश किया यह दो प्रकारसे आयुर्वेद उत्पन्न हुआ इस कथनसे भी आयुर्वेद अनित्य नहीं होसकता क्योंकि ब्रह्माको ज्ञान होनेसे प्रथम भी आयुर्वेद था यह स्पष्ट प्रतीत होताहै। कोई कहते हैं कि आयुर्वेदका नित्य होना स्वभावसे ही सिद्ध है। जैसे प्रथमाध्यायमें कहआयेहैं कि अग्निमें उष्णता और जलमें

द्रवता उनका स्वाभाविक और नित्यधर्म है उसी प्रकार गुरु द्रव्योंके सेवनसे गुरुताका उपचय होना और लघुताका अपचय होना आदि भी स्वभावसिद्ध है । सो इन सब प्रमाणोंसे आयुर्वेद स्वभावसिद्ध और नित्य सिद्ध होचुका ॥ २१ ॥

आयुर्वेदके आठ अङ्ग तथा उनसे धर्मप्राप्ति ।

तस्यायुर्वेदस्य अङ्गानि अष्टौ । तद्यथा । कायचिकित्साशालाक्यशल्यापहर्तृकविषगरवैरोधिकप्रशमनभूतविद्याकौमारभृत्यकरसायनानिवाजीकरणमिति । सचाध्येतव्योब्राह्मणराजन्यवैश्यैः । तत्रानुग्रहार्थंप्राणिनाब्राह्मणैरात्मरक्षार्थंराजन्यैर्वृत्त्यर्थं वैश्यैः सामान्यतोवाधर्मार्थकामपरिग्रहार्थंसर्वैः । तत्रचयदध्यात्मविदाधर्मपथस्थानाधर्मप्रकाशानांवामातृपितृभ्रातृबन्धुगुरुजनस्यवाविकारप्रशमनेप्रयत्नवान्भवति। यश्चायुर्वेदोक्तमध्यात्ममनुध्यायत्यवेत्यधीतेवासोऽप्यस्यपरोधर्मः ॥ २२ ॥

इस आयुर्वेदके आठ अंग हैं जैसे काय चिकित्सा, शालाक्यतन्त्र, शल्यापहर्तृतन्त्र, विषगरवैरोधिकतन्त्र, भूतविद्या, कौमारभृत्यक, रसायनतन्त्र और वाजीकरणतन्त्र इन आठ तन्त्रोंसे युक्त आयुर्वेद ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंको पढनाचाहिये । सामान्यतासे उनमें ब्राह्मणोंको सम्पूर्ण जीवोंपर दया करनेके लिये, क्षत्रियोंको अपनी आत्मरक्षाके लिये और वैश्योंको अपनी वृत्तिके लिये अध्ययन करना चाहिये । अथवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सबको इनके साधनेके लिये आयुर्वेदका अध्ययन करना चाहिये । उन आत्मज्ञानी, धर्मपरायण, धर्मके प्रचार करनेवालोंके माता, पिता, भाई, बन्धु और गुरुजनोंके विकार शान्तिके लिये यत्नवान रहनाचाहिये । जो मनुष्य आयुर्वेदोक्त अध्यात्म विषयोंको अनुध्यापन करतेहैं अर्थात् जानतेहैं अथवा आयुर्वेदीय विषयोंको जानना, मनन करना और सम्पूर्ण आयुर्वेदके जाननेमें यत्नवान् रहना यह इसका परमधर्म है ॥ २२ ॥

आयुर्वेदसे अर्थप्राप्ति ।

यापुनरीश्वराणामसुमतांवासकाशात्सुखोपहारनिमित्ताभवत्यर्थावाप्तिरवेक्षणश्चयाचस्वपरि[illegible] ।[illegible]

[illegible] समानशुश्रूषा [illegible] ॥ [illegible] ॥ २३ ॥

आयुर्वेद पढनेसे धनिक पुरुषोंसे अथवा राजाओंसे सुखपूर्वक आहार आदिके लिये द्रव्यकी प्राप्ति होना और अपने परिवारकी रोगसे रक्षा करना तथा जो मनुष्य इसके आश्रयीभूत हों उनको रोगसे बचाना यह उसका परमअर्थलाभ है। जो आयुर्वेदीय चिकित्साद्वारा विद्वानोंमें यशका फैलना तथा बडे २ योग्य पुरुषोंको अपने वशीभूत करलेना, अपने समान मनुष्योंमें बडाईका पाना एवम् अपने प्रियपात्रोंको आरोग्यकर चित्तमें आनन्दलाभ करना यह परम कामनाकी प्राप्ति है । इस प्रकार आयुर्वेदके अध्ययनसे धर्म, अर्थ, और काम इन सबकी सिद्धि होतीहै ॥ २३ ॥

शास्त्रविषयक आठ प्रश्न ।

यथाप्रश्नमुक्तमशेषेण । अथभिषगादितएवभिषजाप्रष्टव्यइति अष्टविधम् । तद्यथा-तन्त्रतन्त्रार्थस्थानानिस्थानार्थानध्यायानध्यायार्थान्प्रश्नान्प्रश्नार्थाश्चेति ॥ २४ ॥ पृष्टेनचैतद्वक्तव्यमशेषेणवाक्यशोवाक्यार्थशोऽर्थावयवशश्चेति ॥ २५ ॥

इस प्रकार अशेषरूपसे सपूर्ण प्रश्नोंका उत्तर कहा गया । अब कहतेहैं कि वैद्यको वैद्यके ऊपर प्रथम ही यह आठप्रकारके प्रश्न करना चाहिये । जैसे तन्त्र क्या है, तन्त्रार्थ किसे कहतेहैं, स्थान क्या है, स्थानार्थ किसको कहतेहैं एवम् अध्याय अध्यायार्थ प्रश्न, और प्रश्नार्थ किसको कहतेहैं इन आठ प्रकारके प्रश्नोंको करना चाहिये ॥ २४ ॥ यदि कोई अपने ऊपर इन आठ प्रश्नोंको करे तो वाक्यसे, वाक्यार्थसे एवम् अर्थावयवसे भलेप्रकार वर्णन करदेनाचाहिये ॥ २५ ॥

आयुर्वेदके पर्यायवाची शब्द ।

तत्रायुर्वेद शाखाविद्यासूत्रज्ञानंशास्त्रंलक्षणतन्त्रमित्यनर्थान्तरम् । तन्त्रार्थ पुन स्वलक्षणेनोपदिष्ट सचार्थ प्रकरणैर्विभाव्यमानोभूयएवशरीरवृत्तिहेतुव्याधिकर्मकार्य्यकालकर्तृकरणविधिविनिश्चयोदेशप्रकरणा तानिचप्रकरणानिकेवलेनोपदेक्ष्यन्ते तन्त्रेण ॥ २६ ॥

शाखा, विद्या, सूत्र, ज्ञान, शास्त्र, तन्त्र आयुर्वेद यह सब शब्द पर्यायवाचक हैं अर्थात् इन सबमें किसी एकके पढनेसे आयुर्वेदका ही नाम जानना । यह सब शब्द तन्त्रके वाचक हुए । तन्त्रार्थ उसके स्थानोंके व्याख्यान करने किया गया है और फिर भी तन्त्रका भाव अर्थात् विषय इसके प्रकरणोंमें जानाजाता है । जैसे

शरीरवृत्ति, हेतु, व्याधि, कर्म, कार्य, काल, कर्ता, करण, विधि, विनिश्चय और कल्पना यह सब तन्त्र अर्थात् आयुर्वेदके प्रकरण हैं इनके देखनेसे तन्त्रार्थ अर्थात् तंत्रका विषय जानाजाताहै ॥ २६ ॥

आठ स्थानोंके नाम

तन्त्रमष्टौस्थानानि । तद्यथा—श्लोक—निदान—विमान शारीरे न्द्रिय—चिकित्सित—कल्प—सिद्धिस्थानानि । तत्रत्रिंशदध्यायकश्श्लोकस्थानम् । अष्टाध्यायकानिनिदानविमानशरीरस्थानानि । द्वादशकमिन्द्रियाणाम् । त्रिंशकंचिकित्सितानाम् । द्वादशकेकल्पसिद्धिस्थानेइति ॥ २७ ॥

तन्त्रके आठ स्थान हैं। जैसे श्लोक (सूत्र) स्थान, निदानस्थान, विमानस्थान, शारीरस्थान, इन्द्रियस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान, और सिद्धिस्थान इन आठोंमें तीस अध्यायोंका सूत्रस्थान है, निदानस्थान, विमानस्थान और शारीरस्थान इन सबमें आठआठ अध्याय हैं। इन्द्रियस्थानमें बारह अध्याय हैं। चिकित्सास्थानमें तीस अध्याय है। कल्पस्थानमें बारह अध्याय है एवम् सिद्धिस्थानमें बारह अध्याय हैं ॥ २७ ॥

भवतिचात्र ।

द्वात्रिंशकेद्वादशकत्रयत्रीण्यष्टकान्येषुसमाप्तिरुक्ता ॥ श्लो कौपधारिष्टविकल्पसिद्धिनिदानमानाश्रयसंज्ञकेषु ॥ २८ ॥

बराबर क्रमसे दो स्थान तीस तीस अध्यायोंके हुए और तीन बारह अध्यायोंके हुए एवम् तीन आठ आठ अध्यायोंमें समाप्त किये गये हैं। इनमें सूत्रस्थान और चिकित्सास्थान तीस तीस अध्यायोंमें, इन्द्रियस्थान और कल्पस्थान एवम् सिद्धिस्थान बारह बारह अध्यायोंमें तथा निदानस्थान और विमानस्थान एवम् शारीरस्थान आठ आठ अध्यायोंमें वर्णन किये गये हैं ॥ २८ ॥

स्वेस्वेस्थानेयथास्वंचस्थानार्थउपदेक्ष्यते ।
सविंशमध्यायशतंशृणुनामक्रमागतम् ॥ २९ ॥

सूत्रादिस्थानोंमें उन स्थानोंके स्थानार्थ अर्थात् स्थानोंके विषय कथन किये हैं। इन सब स्थानोंमें १२० अध्याय हुए। उन सब [illegible] क्रमपूर्वक नाम श्रवण करो ॥ २९

भेषजाश्रय अध्यायोंके नाम।

दीर्घञ्जीवोऽप्यपामार्गतण्डुलारग्वधादिकौ।
षड्विरेकाश्रयश्चेतिचतुष्कोभेषजाश्रयः ॥ ३० ॥

जैसे-दीर्घंजीवितीय, अपामार्गतण्डुलीय, आरग्वधादि, और षड्विरेचन शताश्रितीय-इन चार अध्यायोंमें औषधियोंका विषय वर्णन कियागयाहै ॥ ३० ॥

स्वास्थ्यवृत्तिक अध्यायोंके नाम।

मात्रातस्याशितीयौचनवेगान्धारणतथा।
इन्द्रियोपक्रमश्चेतिचत्वार स्वास्थ्यवृत्तिका ॥ ३१ ॥

मात्राशितीय, तस्याशितीय, नवेगान्धारणीय और इन्द्रियोपक्रमणीय-ये चार अध्याय स्वास्थ्यरक्षाके विषयमें कथन कियेगयेहै ॥ ३१ ॥

नैर्देशिक अध्यायोंके नाम।

खुड्डाकश्चचतुष्पादोमहांस्त्रिस्त्रैषणस्तथा।
सहवातकलाख्येनविद्यान्नैर्देशिकान्बुध ॥ ३२ ॥

खुड्डाकचतुष्पाद, महाचतुष्पाद, त्रिस्रैषणीय और वातकलाकलीय-ये चार अध्याय कर्तव्य और अकर्तव्यके विषयमें कथन कियेगयेहै ॥ ३२॥

उपकल्पना विषयक अध्यायोंके नाम।

स्नेहनस्वेदनाध्यायावुभौयश्चोपकल्पनः।
चिकित्साप्रभृतश्चैवसर्वोप्यत्रोपकल्पना ॥ ३३ ॥

स्नेहाध्याय, स्वेदाध्याय, उपकल्पनीयाध्याय और चिकित्साप्रभृतीय-ये चार अध्याय उपकल्पनाके विषयमें कथन कियेगयेहै ॥ ३३ ॥

रोगाध्यायोंके नाम।

कियन्त शिरसीयश्चत्रिशोफाष्टोदरादिकौ।
रोगाध्यायोमहांश्चैवरोगाध्यायचतुष्टयम् ॥ ३४ ॥

कियन्त शिरसीय, त्रिशोफीय, अष्टोदरीय और महारोगाध्याय-इन चार अध्यायोंमें रोगोंका विषय है ॥ ३४ ॥

योजनाचतुष्क अध्यायोंके नाम।

अष्टौनिन्दितसंख्यातस्तथालघ्वनतर्पणौ।
विधिशोणितकश्चेतिव्याख्यातास्तथयोजना ॥ ३५ ॥

शरीरवृत्ति, हेतु, व्याधि, कर्म, कार्य, काल, कर्त्ता, करण, विधि, विनिश्चय और कल्पना यह सब तन्त्र अर्थात् आयुर्वेदके प्रकरण हैं इनके देखनेसे तयार्थ अर्थात् तन्त्रका विषय जानाजाताहै ॥ २६ ॥

आठ स्थानोंके नाम

तन्त्रमष्टौस्थानानि । तद्यथा—श्लोक—निदान—विमान शारीरे-न्द्रिय—चिकित्सित—कल्प—सिद्धिस्थानानि । तत्रत्रिंशदध्या-यकश्लोकस्थानम् । अष्टाध्यायकानिनिदानविमानशरीरस्था-नानि । द्वादशकमिन्द्रियाणाम् । त्रिंशकंचिकित्सितानाम् । द्वादशकेकल्पसिद्धिस्थानेइति ॥ २७ ॥

तन्त्रके आठ स्थान हैं। जैसे श्लोक (सूत्र) स्थान, निदानस्थान, विमानस्थान, शारीरस्थान, इन्द्रियस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान, और सिद्धिस्थान इन आठोंमें तीस अध्यायोंका सूत्रस्थान है, निदानस्थान, विमानस्थान और शारीरस्थान इन सबमें आठआठ अध्याय हैं। इन्द्रियस्थानमें बारह अध्याय हैं। चिकित्सास्थानमें तीस अध्याय हैं । कल्पस्थानमें बारह अध्याय हैं एवम् सिद्धिस्थानमें बारह अध्याय हैं ॥ २७ ॥

भवतिचात्र ।

द्वात्रिंशकेद्वादशकत्रयत्रत्रीण्यष्टकान्येषुसमासिरुक्ता ॥ श्लो कौषधारिष्टविकल्पसिद्धिनिदानमानाश्रयसंज्ञकेषु ॥ २८ ॥

यहांपर कहाहै कि दो स्थान तीस तीस अध्यायोंके हुए और तीन बारह अध्या यके हुए एवम् तीन आठ आठ अध्यायोंमें समाप्त किये गये हैं। इनमें सूत्रस्थान और चिकित्सास्थान तीस तीस अध्यायोंमें, इन्द्रियस्थान और कल्पस्थान एवम् सिद्धि-स्थान बारह बारह अध्यायोंमें तथा निदानस्थान और विमानस्थान एवम् शारीर स्थान आठ आठ अध्यायोंमें वर्णन कियेगयेहैं ॥ २८ ॥

स्वेस्वेस्थानेयथास्वश्चस्थानार्थउपदेक्ष्यते ।
सविंशमध्यायशतंशृणुनामक्रमागतम् ॥ २९ ॥

सूत्रादिस्थानोंमें उन स्थानोंके स्थानार्थ अर्थात् स्थानोंके विषय वर्णन कियेहैं । इन सब स्थानोंके १२० अध्याय हुए। उन सब अध्यायोंके क्रमपूर्वक नाम सुनाते हैं ॥ २९ ॥

भेषजाश्रय अध्यायोंके नाम ।

दीर्घंजीवोऽप्यपामार्गतण्डुलारग्वधादिकौ ।
षड्विरेकाश्रयश्चेतिचतुष्कोभेषजाश्रयः ॥ ३० ॥

जैसे–दीर्घंजीवितीय, अपामार्गतण्डुलीय, आरग्वधादि, और षड्विरेचन शताश्रितीय–इन चार अध्यायोंमें औषधियोंका विषय वर्णन कियागयाहै ॥ ३० ॥

स्वास्थ्यवृत्तिक अध्यायोंके नाम ।

मात्रातस्याशितीयौचनवेगान्धारणतथा ।
इन्द्रियोपक्रमश्चेतिचत्वार स्वास्थ्यवृत्तिका ॥ ३१ ॥

मात्राशितीय, तस्याशितीय, नवेगान्धारणीय और इन्द्रियोपक्रमणीय–ये चार अध्याय स्वास्थ्यरक्षाके विषयमें कथन कियेगयेहै ॥ ३१ ॥

नैर्देशिक अध्यायोंके नाम ।

खुड्डाकश्चचतुष्पादोमहांस्त्रिस्रैषणस्तथा ।
सहवातकलाख्येनविद्यान्नैर्देशिकान्बुध ॥ ३२ ॥

खुड्डाकचतुष्पाद, महाचतुष्पाद, त्रिस्रैषणीय और वातकलाकलीय–ये चार अध्याय कर्तव्य और अकर्तव्यके विषयमें कथन कियेगयेहै ॥ ३२ ॥

उपकल्पना विषयक अध्यायोंके नाम ।

स्नेहनस्वेदनाध्यायावुभौयश्चोपकल्पन ।
चिकित्साप्राभृतश्चैवसर्वाण्वोकल्पना ॥ ३३ ॥

स्नेहाध्याय, स्वेदाध्याय, उपकल्पनीयाध्याय और चिकित्साप्राभृतीय–ये चार अध्याय उपकल्पनाके विषयमें कथन कियेगयेहै ॥ ३३ ॥

रोगाध्यायोंके नाम ।

कियन्त शिरसीयश्चत्रिशोफाष्टोदरादिकौ ।
रोगाध्यायोमहांश्चैवरोगाध्यायचतुष्टयम् ॥ ३४ ॥

कियन्त शिरसीय, त्रिशोफीय, अष्टोदरीय और महारोगाध्याय–इन चार अध्यायोंमें रोगोंका विषय है ॥ ३४ ॥

योजनाचतुष्क अध्यायोंके नाम ।

अष्टौनिन्दितसन्ख्यातम्नथालंघनतर्पणौ ।
विधिशोणितकश्चेतिव्याख्यानास्त्रयोजना ॥ ३५ ॥

अष्टौनिन्दनीय, लङ्घनबृंहणीय, सन्तर्पणीय और विधिशोणितीय—ये चार अध्याय औषधोंके प्रयोग विषयमें कथन किये गये हैं ॥ ३५ ॥

अन्नपानचतुष्कअध्यायोंके नाम ।

यज्ज पुरुषक स्यातोभद्रकाप्योऽन्नपानिको ।
विविधाशितपीतश्चचत्वारोऽन्नविनिश्चये ॥ ३६ ॥

यज्जःपुरुषीय, आत्रेयभद्रकाप्यीय, अन्नपानविधि और विविधाशितपीतीय—इन चार अध्यायोंमें आहार द्रव्योंका वर्णन किया गया है ॥ ३६ ॥

वैद्यगुणागुणविषयक अध्यायोंके नाम ।

दशप्राणायतनिकस्तथार्थेदशमूलिकः ।
द्वावेतौप्राणदेहार्थौप्रोक्तौवैद्यगुणाश्रयौ ॥ ३७ ॥

दशप्राणायतनीय, अर्थेदशमूलीय—ये दो अध्याय वैद्यके गुणोंके विषयमें कथन किये गये हैं ॥ ३७ ॥

सूत्रस्थानके अध्यायोंका संक्षिप्त वर्णन ।

औषधस्वस्थनिर्देशकल्पनारोगयोजनाः ।
चतुष्काः षट्क्रमेणोक्ताः सप्तमश्चान्नपानिकः ॥ ३८ ॥

औषध, स्वस्थ, निर्देश, कल्पना, रोग और योजना—यह छः चतुष्क कथन किये गये और सातवां क्रमपूर्वक अन्नपानचतुष्क हुआ ॥ ३८ ॥

द्वौचान्त्यौसंग्रहाध्यायाविति त्रिंशकमर्थवत् ।
श्लोकस्थानमनुद्दिष्टंतन्त्रस्यास्यशिरः शुभम् ॥ ३९ ॥

आखिरी दो अध्याय—संग्रह अर्थात् सम्पूर्ण तन्त्रके संग्रहके विषयमें कथन किये गये हैं । सम्पूर्ण तन्त्रका शिरोभूत यह सूत्रस्थान इस प्रकार तीस अध्यायोंमें सम्पूर्ण हुआ ॥ ३९ ॥

चतुष्काणांमहार्थानांस्थानेऽस्मिन्संग्रहः कृतः ।
श्लोकार्थः संग्रहार्थश्चश्लोकस्थानमतः स्मृतम् ॥ ४० ॥

इस प्रकार इस सूत्रस्थानमें बड़े योग्य विषयवाले चतुष्कोंका संग्रह किया गया है । इसमें समस्त विषयोंका अथ सूत्ररूपसे संग्रह किया गया है इसीलिये इसको श्लोकस्थान कहते हैं ॥ ४० ॥

इति सूत्रस्थानोपनिबन्धनम् ।

निदान स्थानके अध्यायोंके नाम।

ज्वराणारक्तपित्तस्यगुल्मानामेहकुष्ठयो । शोषोन्मादनिदाने चस्यादपस्मारणश्चयत् । इत्यध्यायाष्टकमिदंनिदानस्थानमुच्यते ॥ ४१ ॥

निदानस्थानम-ज्वरनिदान, रक्तपित्त निदान, गुल्म निदान, प्रमेहनिदान, कुष्ठ निदान, शोषनिदान, उन्मादनिदान एवम् अपस्मारनिदान विषयक आठ अध्याय वर्णन कियेगयेहैं ॥ ४१ ॥

इति निदानस्थानोक्ताष्टकम्।

विमानस्थानके अध्यायोंके नाम।

रसेषुत्रिविधेकुक्षौध्वंसेजनपदस्यच ॥ ४२ ॥ त्रिविधेरोगविज्ञानेस्रोत स्वपिचवर्त्तते। रोगानीकेव्याधिरूपेरोगाणाश्चभिषग्जिते । अष्टौविमानान्युक्तानिमानार्थानि महर्षिणा ॥ ४३ ॥

विमानस्थानम-रसविमानाध्याय, त्रिविधकुक्षीय, जनपदोध्वंसनीय, त्रिविधरोग विशेष विज्ञानीय, स्रोतोविमान, रोगानीकविमान, व्याधिरूपीय विमान एवम् रोगभिषग्जितीय विमान ये आठ अध्याय महर्षि आत्रेयजीने वर्णन कियेहैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

इति विमानाष्टकम्।

शारीरस्थानके अध्यायोंके नाम।

कतिधापुरुषीयश्चगोत्रेणातुल्यमेवच ॥ ४४ ॥ खुड्डीकामहती चैवगर्भावक्रान्तिरुच्यते । पुरुषस्यशरीरस्यविचयौद्वौविनिश्चितौ ॥ ४५ ॥ शरीरसंख्यासूत्रश्चजातेरष्टमउच्यते । इत्युद्दिष्टानिमुनिनाशारीराण्यत्रिसूनुना ॥ ४६ ॥

शारीरस्थानमें-कतिधापुरुषीय, तुल्यगोत्रीय, खुड्डीका गर्भावक्रान्ती, महती गर्भावक्रान्ती, पुरुषविचय, शरीरविचय, शरीरसंख्या और जातिसूत्रीय यह आठ अध्याय भगवान् आत्रेयजीने वर्णन कियेहैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

इति शारीरस्थानोक्ताष्टकम्।

इन्द्रियस्थानके अध्यायोंके नाम।

वर्णस्वरीयपुष्पाख्यस्तथैवपारिमर्षण । तथैवचेन्द्रियानीक पौर्वरूपकमेवच ॥ ४७ ॥ यन्नमानिशरीरीय पन्नरूपोऽप्यवाय्-

शिरा । यस्यश्यावनिमित्तश्चसद्योमरणएवच ॥ ४८ ॥ अणु-ज्योतिरितिख्यातस्तथागोमयचूर्णवान् । द्वादशाध्यायकंस्था-नमिन्द्रियाणांप्रकीर्त्तितम् ॥ ४९ ॥

इन्द्रियस्थानमें-वर्णस्वरीय और पुष्पाख्य, परिमर्षण, इन्द्रियानीक, पौर्वरूपिक, कतमानिशरीरीय, पन्नरूपीय, अवाक् शिरसीय, यस्यश्यावनिमित्तीय, सद्योमरणीय, अणुज्योतीय और गोमयचूर्णीय-ये बारह अध्याय इन्द्रियस्थानमें वर्णन किये गये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

इतीन्द्रियस्थानोक्तद्वादशकम् ।

चिकित्सास्थानके अध्यायोंके नाम ।

अभयामलकीयश्चप्राणकामीयमेवच ।
करप्रचितिकन्वेदसमुत्थानरसायनम् ॥ ५० ॥

चिकित्सास्थानमें-अभयामलकीय, प्राणकामीय, करप्रचितिक, आयुर्वेदसमुत्था-नीय-यह चार रसायनपाद हैं ॥ ५० ॥

सयोगशरमूलीयमासक्तक्षीरकतथा ।
मापपर्णतृतीयश्चपुमान्जातबलादिकम् ॥ ५१ ॥

सयोगशरमूलीय, आसक्तक्षीरीय, मापपर्णतृतीय, पुमान् जातबलादिक-यह चार पाद वाजीकरण पादके हुए ॥ ५१ ॥

चतुष्कद्वयमप्येतदध्यायद्वयमुच्यते ।
रसायनमितिज्ञेयवाजीकरणमेवच ॥ ५२ ॥

यह दो चतुष्क-रसायनपाद और वाजीकरण पाद इन नामोंसे दो अध्याय माने जातेहैं (इन दोनोंके आठ विभाग करनेसे चिकित्सास्थानके छत्तीस अध्याय होजातेहैं इसलिये इन दो चतुष्कोको दो अध्यायोंमें माना है) ॥ ५२ ॥

ज्वराणांरक्तपित्तस्यगुल्मानांमेहकुष्टयो । शोपेऽर्शसमतीसारे वीसर्पेचमदात्यये ॥ ५३ ॥ द्विव्रणीयेतथोन्मादेस्यादपस्मारएव च ।क्षतशोथोदरेचैवग्रहणीपाण्डुरोगयो. ॥ ५४ ॥ हिक्काश्वासे चकासेचछर्दितृष्णाविषेषु च । मर्मत्रयेचोरुस्तम्भेसवातेवातशो णिते ॥ ५५ ॥ त्रिंशच्चिकित्सितान्येवयोनीनांव्यापदासह ॥५६॥

ज्वरचिकित्सित, रक्तपित्त चिकित्सित, गुल्मचिकित्सित, प्रमेह चिकित्सित, कुष्ठचिकित्सित, शोषचिकित्सित, अर्शचिकित्सित, अतिसार चिकित्सित, विसर्प चिकित्सित, मदात्ययचिकित्सित, द्विव्रणीय चिकित्सित, उन्मादचिकित्सित, अपस्मार चिकित्सित, क्षतक्षीण चिकित्सित, शोथचिकित्सित, उदररोग चिकित्सित, ग्रहणीरोग चिकित्सित, पाण्डुचिकित्सित, हिक्काश्वास चिकित्सित, काशचिकित्सित, छर्दीचिकित्सित, तृष्णाचिकित्सित, विषचिकित्सित, त्रिमर्मीय चिकित्सित, उरुस्तम्भ चिकित्सित, वातव्याधिचिकित्सित और वातरक्तचिकित्सित एवम् योनिव्यापदचिकित्सित—यह सब मिलाकर चिकित्सास्थानोक्त तीस अध्याय् हुए अर्थात् इन तीस अध्यायोंसे चिकित्सास्थान पूर्ण है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

इति चिकित्सास्थानोक्तत्रिंशकम् ।

कल्पस्थानके अध्यायोंके नाम ।

फलजीमूतकेक्ष्वाकुकल्पोधामार्गवस्यच। पञ्चमोवत्सकस्योक्त पष्ठश्चकृतवेधने ॥ ५७ ॥ श्यामात्रिवृतयोऽकल्पस्तथैवचतुरंगुले । तिल्वकस्यसुधायाश्चससलाशङ्खिनीष्वपि । दन्तीद्रवन्त्यो कल्पश्चद्वादशोऽयसमाप्यते ॥ ५८ ॥

कल्पस्थानमें—मदनकल्प, जीमूतकल्प इक्ष्वाकु कल्प, धामार्गव कल्प, वत्सक कल्प, कृतवेधन कल्प, श्यामात्रिवृत् कल्प, चतुरंगुल कल्प, तिल्वक कल्प, महावृक्ष कल्प, समला शङ्खिनी कल्प और दन्ती द्रवन्तीकल्प—यह बारह कल्पस्थानोक्त अध्याय समाप्त हुए ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

इति कल्पस्थानोक्तद्वादशकम् ।

सिद्धिस्थानके अध्यायोंके नाम ।

कल्पनापञ्चकर्मीयावस्तिमूत्रातथैवच । स्नेहव्यापादिकासिद्धिर्नेत्रव्यापादिकातथा ॥ ५९ ॥ सिद्धि शोधनयोश्चैवबस्तिसिद्धिस्तथैवच॥प्रासृतीमर्मसख्यातासिद्धिर्वस्तयाश्रयाचया॥६०॥ फलमात्रातथासिद्धि सिद्धिश्चोत्तरसज्ञिता ॥ सिद्धयोद्वादशैवेतास्तन्त्रश्चासुसमाप्यते ॥ ६१ ॥

सिद्धिस्थानमें—कल्पनासिद्धि, पञ्चकर्मीयसिद्धि, बस्तिसूत्रीयसिद्धि स्नेहव्यापादिका सिद्धि, नेत्रव्यापादिकासिद्धि, वमन विरेचन व्यापत्सिद्धि, बस्तिव्यापत्सिद्धि

सिद्धि, मारुत योगिका सिद्धि, त्रिमर्मीयसिद्धि, वस्तिसिद्धि, फलमात्रासिद्धि और उत्तर सिद्धि इन बारह अध्यायोंसे सिद्धिस्थान समाप्त कियाहै ॥५९॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति सिद्धिस्थानोक्तद्वादशकम् ।

प्रश्नका लक्षण ।

स्वेस्वेस्थानेतथाध्यायेचाध्यायार्थ प्रवक्ष्यते ॥
तन्नूयात्सर्वतःसर्वयथास्वंह्यर्थसंग्रहात् ॥ ६२ ॥
पृच्छातन्त्राद्यथाम्नायंविधिनाप्रश्नउच्यते ।

हरएक स्थानमें तथा अध्यायमें स्थानार्थ (स्थानका विषय) और अध्यायका विषय वर्णन कियागयाहै सो उसको उसीउसी अध्याय और उसीउसी स्थानके विषयके अनुसार स्थानार्थ और अध्यायार्थ कथन करना चाहिये । यदि कहीं किसी अध्यायके विषयमें कुछ आगे पीछे हो अथवा नामानुरूप विषयमें कुछ न्यूनता आतीहो तो बुद्धिमान् वैद्यको बुद्धि अनुसार विचारकर स्थानार्थ अथवा अध्यायार्थ कहना चाहिये वेदानुसार प्रसगक्रमसे तन्त्रमें पूछनेको प्रश्न कहतेहैं ॥६२॥

उत्तरका लक्षण ।

प्रश्नार्थोयुक्तिमास्तस्यतन्त्रेणैवार्थनिश्चय ॥ ६३ ॥

युक्तियुक्त तन्त्रद्वारा ही उस प्रश्नकी मीमासा किये जानेको प्रश्नार्थ कहतेहैं ॥६३॥

तन्त्रादिकी निरुक्ति ।

निरुक्तंतन्त्रणात्तन्त्रंस्थानमर्थप्रतिष्ठया ।
अधिकृत्यार्थमध्यायनामसंज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६४ ॥

सब विषयोको इसमें तन्त्रण कियागया इसलिये इसको तन्त्र कहतेहैं । अर्थ (विषय) प्रतिष्ठित अर्थात् स्थित होनेसे स्थान कहा जाताहै (जैसे सूत्रस्थानादि) ॥ ६४ ॥

इतिसर्वंयथाप्रश्नमष्टकंसम्प्रकाशितम् ।
कार्त्स्न्येनचोक्तस्तन्त्रस्यसंग्रह सुविनिश्चित ॥ ६५ ॥

इस प्रकार यह प्रश्नाष्टक कहागया अर्थात् जो पहिले आठ प्रश्नोंको कथन कियाथा उनके उत्तर रूपमें यह प्रश्नाष्टककी मीमासा कीगई सो सपूर्णरूपसे यथावत् तन्त्रके सग्रहको कथन कियागयाहै ॥ ६५ ॥

सन्तिपाल्लविकोत्पाता सक्षोभजनयन्तिये । वर्त्तकानामिवोत्पा ता. सहसैवविभाविता ।तस्मात्तान्पूर्वसजल्पेसर्वंत्राष्टकमादि-

शेत् ॥ ६६ ॥ परस्परपरीक्षार्थंनात्रशास्त्रविदांवलम् । शब्दमा-
त्रेणतन्त्रस्यकेवलस्यैकदेशिकाः । भ्रमन्त्यल्पबलास्तन्त्रेज्या-
शब्देनैववर्त्तका. ॥ ६७ ॥

बहुतसेलोग इधरउधरसे एकाधा बात सीखकर इस प्रकार अभिमान और क्रोध दिखातेहैं जैसे-बटेरपक्षी अपने चोंचसे एक पत्रको उठाकर इधरउधर उलटा और सीधा नाच करताहै ठीक उसी प्रकार यह लोग भी किसी ग्रथकी एकाधामूलबातको याद कर घमण्डी वैद्यराज बन बैठेहैं । इसलिये उनसे बात करतेही प्रथम प्रश्नाष्टक (पूर्वोक्त आठ प्रश्न) कर देनाचाहिये । इसपर यथार्थ और अयथार्थ कथन करनेमें अथवा पर अपरकी परीक्षाके लिये प्रश्नाष्टक कियेजानेपर आयुर्वेदके न जाननेवाले मनुष्यका बल स्पष्टरूपसे दिखाई देजाताहै । तात्पर्य यह हुआ कि आयुर्वेदका ज्ञाता ही प्रश्नाष्टकका यथोचित उत्तर देसकताहै। जो मनुष्य केवल एकदेशका जाननेवाला है वह इस प्रश्नाष्टकको सुनकर इस प्रकार घबराजाताहै जैसे-धनुषकी टकारको सुनकर बटेर उडजायाकरतेहैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

पशु पशूनांदौर्वल्यात्कश्चिन्मध्येवृकायते । समत्वंवृकमासाद्य
प्रकृतिंभजतेपशु. ॥ ६८ ॥ तद्वदज्ञोऽज्ञमध्यस्थ कश्चिन्मौख-
र्य्यसाधन. । स्थापयत्याप्तमात्मानमाप्तन्त्वासाद्याभिद्यते ॥ ६९ ॥

जैसे-दुर्बल पशुओंमें बलवान् पशु भेडियेका आकार बनाकर अपने आपको महा पराक्रमी जताता है परन्तु असली भेडियेके आजानेपर जैसा वह पशु होताहै वैसा ही होकर भागना पडताहै । ठीक उसी प्रकार मूर्खोंके बीचमें बकवाद करनेवाला चपल मनुष्यभी अपने आपको बडाभारी योग्य और प्रमाणिक जताताहै और किसी योग्य पंडितके आजानेपर पूर्वोक्त पशुके समान पूछको छिपाता फिरताहै ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

बभ्रुर्गूढइवोर्णाभिरबुद्धिरबहुश्रुत ।
किंवैवक्ष्यतिसंजल्पेकुण्डभेदीजडोयथा ॥ ७० ॥

जैसे-भूरा मकडीके तारोंसे जकडा जानेपर कुछ नहीं बोल सकता और जैसे नीच जातिका मनुष्य अपने आपको ब्राह्मण बताकर फिर बहुतसे लोगोंमें नीच जाति प्रगट होजानेपर कुछ नहीं कहसकता परन्तु जैसे-घुघ्घुनेवाला रस्सियोंसे जकडा जानेपर चुपका बैठारहताहै उसी प्रकार ढोंग मारनेवाला मूर्ख वैद्य भी विद्वान् वैद्यको देखकर अपने छलके प्रगट होनेके भयसे मौन हुआ मूढ बनाबैठा रहताहै ॥ ७० ॥

सद्वृत्तैर्नविगृह्णीयाद्भिषगल्पश्रुतैरपि । हन्यात्प्रश्नाष्टकेनादावितरांस्त्वात्ममानिन ॥ ७१ ॥ दम्भिनोमुखराह्यज्ञा प्रभूताबद्धभाषिण ॥ ७२ ॥

यदि थोडा पढा हुआ वैद्य भी शुद्ध और पवित्र आचरणवाला हो तो बुद्धिमान्को चाहिये, प्रश्नाष्टक द्वारा हरानेका यत्न न करे । परन्तु मूर्ख, पाखण्डी, बकवादी, चपल और अभिमानी इनको तो प्रथम ही प्रश्नाष्टकद्वारा हतबुद्धि बनादेनाचाहिये ७१-७२॥

प्राय प्रायेणसुमुखा सन्तोयुक्ताल्पभाषिण । तत्त्वज्ञानप्रकाशार्थमहंकारमनाश्रिता ॥ ७३ ॥ स्वल्पाधाराज्ञमुखरान्दर्शेयुर्नेविवादिन ॥ परोभूतेष्वनुक्रोशस्तत्त्वज्ञानेपरादया । येषा तेषामसद्वादनिग्रहेनिरतामति. ॥ ७४ ॥

प्रायः श्रेष्ठ मनुष्य विनयको ग्रहण करके युक्तियुक्त बहुत थोडा और मीठा बोलनेवाले होतेहैं । वह एकावानातर्क जाननेवाले मूर्खोंसे विवाद करके अपने आपको बडा दिखाना नहीं चाहते क्योंकि वह महात्मा अहंकाररहित होकर तत्त्वज्ञानके प्राप्त करनेके लिये अथवा तत्त्वज्ञानका प्रकाश करनेके लिये सद्वृत्तिका अवलम्बन करतेहै । सपूर्ण जीवोंपर परमदया करनेमें तथा तत्त्वज्ञानमें जिनकी बुद्धि लगीहुई है वह लोग झूठे बकवादको खण्डन करने या उससे अलग रहनेमें दत्तचित्त रहतेहैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

असत्पक्षाक्षणिकवार्त्तिदम्भपारुष्यसाधना ॥ ७५ ॥ भवन्त्यनासा.स्वेतन्त्रेप्राय परविकत्थना ॥ तत्कालपाशसदृशान्वर्जयेच्छास्त्रदूषकान् ॥ ७६ ॥

झूठे पक्षका अवलम्बन करनेवाले पाखण्डी, कठोर प्रकृतिवाले, पराई निंदा करनेवाले इस शास्त्रसे कुछ भी लाभ नहीं उठासकते । अर्थात् ऐसे दुष्टोंको यह शास्त्र नहीं आता और जिनको शास्त्र आता है उनमें यह दुष्टभाव नहीं होते । इस लिये उन शास्त्रनिंदकोंको कालकी फांसके समान दूरसे ही त्याग देनाचाहिये ॥ ७५॥७६ ॥

प्रशमज्ञानविज्ञानपूर्णा.सेव्याभिषक्तमा ॥ ७७ ॥ समग्रदुःखमायातमविज्ञानेद्वयाश्रयम् । सुखसमग्रविज्ञानेविमलेचप्रतिष्ठितम् ॥ ७८ ॥

जो वैद्य प्रशम अर्थात् रोगनाशक शास्त्रके ज्ञानी है एवम् चिकित्सा सम्बन्धी सपूर्ण विषयोंके विज्ञानसे पूर्ण है ऐसे योग्य पुरुषोंका नित्य सेवन करनाचाहिये। क्योंकि संसारमें सपूर्ण दुःख अज्ञानसे और सपूर्ण सुख निर्मल ज्ञानसे प्राप्त होते है। तात्पर्य यह हुआ कि अज्ञानमें सपूर्ण दुःख प्रतिष्ठित रहतेहै और निर्मल ज्ञानमे सपूर्ण सुख प्रतिष्ठित रहतेहै ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

इदमेवसुदारार्थमज्ञानार्थप्रकाशकम्।
शास्त्रदृष्टिप्रणष्टानायथैवादित्यमण्डलमिति ॥ ७९ ॥

जैसे नष्टदृष्टि अर्थात् चक्षुहीन मनुष्योंको सूर्यके प्रकाशमे कुछ लाभ नहीं पहुच सकता उसी प्रकार मूर्खोंको इस वहुमूल्य आयुर्वेदशास्त्रसे कुछ लाभ नहीं पहुचसकता अथवा जैसे योगदृष्टिहीन मनुष्योंके लिये और धर्मदृष्टिहीन मनुष्योंके लिये सूर्यका प्रकाश उनके कार्यकी सहायताका कारण होता है उसी प्रकार यथार्थ ज्ञानहीन मनुष्योंको आयुर्वेदकी एकाधाबात सीखलेना लोगोंकोठगनेमें सहायताकारक होताहै॥७९॥

तत्रश्लोका ।

अर्थेदशमहामूला. सज्ञास्तेषायथाकृता. । अयनान्ताः षड-
ग्र्याश्चरूपवेदविदाश्चयत् ॥ ८० ॥ सप्तकश्चाष्टकश्चैवपरिप्रश्न.
सनिर्णय । यथावाच्यंयदर्थश्चषड्विधाश्चैकदेशिका ॥ ८१ ॥
अर्थेदशमहामूलेसर्वमेतत्प्रकाशितम् । सग्रहश्चैवमध्यायस्त-
न्त्रस्यास्यैवकेवल ॥ ८२ ॥

यहापर अध्यायकी पूर्तिमे श्लोक है.—इस अर्थेदशमूलीय अध्यायमें महादशमूलोंकी सज्ञा, स्थान, छःअग, आयुर्वेदके जाननेवालाका स्वरूप, सप्तक तथा अष्टक प्रश्नावलीकी मीमासा कथन करनेका निर्देश और अर्थ षड्विध तथा एकदेशिक विद्वान् और अध्यायोंका सग्रह तथा स्थानसग्रह एवम् इस तन्त्रका विषय वर्णन कियागयाहै ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

सूत्रस्थानकी निरुक्ति।

यथासुमनसासूत्रसग्रहार्थविधीयते ।
सग्रहार्थेयथार्थानामृषिणासग्रह कृत ॥ ८३ ॥
इति अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते सूत्रस्थाने
अर्थे महादशमूलीयो नाम त्रिंशत्तमोऽध्याय ॥ ३० ॥

जिस प्रकार फूलोंको गठन करनेकेलिये धागा होताहै अर्थात् जिस प्रकार धागेमें फूल गूथे जातेहैं उसी प्रकार संपूर्ण संग्रहको इस सूत्रस्थानमें भगवान् आत्रेयजीने गठन कियाहै ॥ ८३ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायामन्नपानविधिर्नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृते।
इयतावधिनासर्वंसूत्रस्थानं समाप्यते॥

महर्षि अग्निवेशके रचेहुए तथा महात्मा चरकद्वारा प्रतिसंस्कार कियेहुए इस आयुर्वेद तन्त्रमें यह सूत्रस्थान इन तीस अध्यायोंमें समाप्त हुआ॥

दोहा।

इह विधि सूत्रस्थान यह, सूत्रित तन्त्र महान।
सो प्रसादनीयुत भयो, लघुमति जेंहे जान॥ १॥

अथ निदानस्थानम्।

प्रथमोऽध्यायः।

अथातोज्वरनिदानव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम ज्वरनिदानकी व्याख्या करतेहैं, इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे।

निदानके पर्यायवाची शब्द।

इहखलुहेतुर्निमित्तमायतनकर्त्ताकारणप्रत्यय समुत्थाननिदानमित्यनर्थान्तरम्॥ १॥

इस शास्त्रमें-हेतु, निमित्त, कर्त्ता, कारण, प्रत्यय, समुत्थान, निदान इन सब शब्दोंका एक ही अर्थ है अर्थात् यह सब शब्द निदानके वाचक हैं॥ १॥

निदानके कारण।

तत्त्रिविधम् असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग प्रज्ञापराध.परिणामश्चेति॥ २॥

वह निदान तीन प्रकारका है-१ असात्म्येन्द्रियार्थ, २ प्रज्ञापराध, ३ परिणाम॥२॥

व्याधियोंके भेद।

अतस्त्रिविधविकल्पाव्याधय प्रादुर्भवन्त्याग्नेयसौम्यवायव्या द्विविधाश्चापरेराजसास्तामसाश्च॥ ३॥

निदान-तीन प्रकारका होनेसे व्याधिया भी तीन प्रकारकी ही होतीहैं। उन तीनोंमें शारीरिक व्याधि-वात, पित्त, कफजनित होनेसे तीन प्रकारकी होतीहैं। मानसिक व्याधि-राजस और तामस भेदसे दो प्रकारकी हैं॥ ३॥

व्याधिके पर्याय शब्द।

तत्रव्याधिरामयोगदआतङ्कोयक्ष्माज्वरोविकारइत्यनर्थान्तरम्॥४॥

व्याधि, आमय, गद, आतङ्क, यक्ष्मा, ज्वर, विकार, और रोग यह सब शब्द एक ही अर्थवाले हैं। अर्थात् रोगके वाचक हैं॥ ४॥

रोगकी उपलब्धिके विषय।

तस्योपलब्धिर्निदानपूर्वरूपलिङ्गोपशयसम्प्राप्तितश्च॥ ५॥

वह, रोग, निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय, संप्राप्ति इन पाच प्रकारोंसे जाना जा सकताहै । अर्थात् रोगके बतलानेवाले यह पाच प्रकार है ॥ ५ ॥

निदानका लक्षण ।

तत्रनिदानंकारणमित्युक्तमग्रे ॥ ६ ॥

उनमें निदान कारण को कहतेहैं—यह पहिले (सूत्रस्थानमें) कथन कर आयेहैं । (निदान रोगके उत्पन्न करनेवाले कारण को कहतेहै) ॥ ६ ॥

पूर्वरूपके लक्षण ।

रूपंप्रागुत्पत्तिर्लक्षणंव्याधे ॥ ७ ॥

रोग उत्पन्न होनेसे प्रथम होनेवाले लक्षणोंको पूर्वरूप कहतेहैं ॥ ७ ॥

लिङ्गके लक्षण ।

प्रादुर्भूतलक्षणपुनर्लिङ्गतत्रलिङ्गमाकृतिर्लक्षणचिह्नंसंस्थानव्यञ्जनरूपमित्यनर्थान्तरम् ॥ ८ ॥

व्याधिके प्रगट हो जानेको रूप अथवा लक्षण कहते है । या यों कहिये कि, व्याधिके प्रगट होजाने पर व्याधिके जो लक्षण होते है उनको रूप कहते हैं लिंग, आकृति, लक्षण, चिह्न, संस्थान, व्यजन और रूप यह सब शब्द एकही अर्थके वाचक है ॥ ८ ॥

उपशयके लक्षण ।

उपशय पुनर्हेतुव्याधिविपरीताना विपरीतार्थकारिणाश्चौपधाहारविहाराणा उपयोग सुखानुबन्ध ॥ ९ ॥

हेतुसे विपरीत, व्याधिसे विपरीत और विपरीत अर्थके करनेवाले औषधि आहार विहारका उपयोग करना सुखकारक अर्थात् आरोग्यकारी होताहै उसीको उपशय कहतेहैं । और उसीको सात्म्य कहतेहै । तात्पर्य यह हुआ कि रोगोत्पादक हेतुसे विपरीत और व्याधिसे विपरीत तथा हेतु और व्याधि इन दोनोंसे विपरीत अर्थ करनेवाला अर्थात् व्याधि और व्याधिके कारणको हटानेवाला औषध, अन्न और विहार सुखको देनेवाला होताहै उसीको सात्म्य (शरीरके अनुकूल) और उपशय कहते है॥ ९ ॥

संप्राप्तिके पर्याय ।

सम्प्राप्तिर्जातिरागतिरित्यनर्थान्तरव्याधे ॥ १० ॥

रोगकी उत्पत्तिको अर्थात् जिस प्रकार जितने अंगोंमें जिनजिन दोषोको लेकर व्याधि उत्पन्न होताहै उसको संप्राप्ति कहतेहै । संप्राप्ति, जाति, आगति ये सब एक ही अर्थके वाचक शब्द हैं ॥ १० ॥

सम्प्राप्तिके भेद।

सासख्याप्राधान्यविधिविकल्पबलकालविशेषैर्भिद्यते ॥ ११ ॥

सख्या, प्राधान्य, विधि, विकल्प एवम् बल, कालके भेदसे सम्प्राप्तिके विभाग कियेगयेहै अर्थात् सख्यादि सम्प्राप्तिके भेद है ॥ ११ ॥

सख्यासम्प्राप्तिके लक्षण।

सख्या यथाष्टोज्वरा पञ्चगुल्मा. सप्तकुष्ठान्येवमादि ॥ १२ ॥

अब सख्याके लक्षणको कहतेहै-जैसे, आठ प्रकारके ज्वर, पाच प्रकारके गुल्म, सात प्रकारके कुष्ठ इत्यादिक जो गणना है उसको सख्या कहते है ॥ १२ ॥

प्राधान्यसम्प्राप्तिके लक्षण।

प्राधान्यपुनर्दोषाणातरतमयोगेनोपलभ्यते तत्र द्वयोस्तरस्त्रिपु तमइति ॥ १३ ॥

वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोंमें-वात और पित्त अल्प होनेसे अप्रधान और कफ अधिक होनेसे प्रधान माना जाता है। इस प्रकार दोषके न्यूनाधिक योग द्वारा प्राधान्य जानना चाहिये। जैसे-त्रिदोषज्वरमें वात अल्प हो पित्त मध्य हो और कफ अधिक हो तो उस सन्निपातको अल्पवात, मध्य पित्त, और कफ प्रधान, कहाजाताहै। अथवा ज्वरातिसारम ज्वर प्रधान है कि अतिसार प्रधान है इस तरह पर एक कालम एक पुरुषको दो तीन व्याधियोंमसे जो व्याधि स्वतत्र हो उसको प्रधान कहते है और जो परतत्र हो उसको अप्रधान कहते है। इस प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये ॥१३॥

विधिसम्प्राप्तिके लक्षण।

विधिर्नामद्विविधाव्याधयोनिजागन्तुभेदेनत्रिविधास्त्रिदोषभेदेनचतुर्विधा साध्यासाध्यमृदुदारुणभेदेनपृथक् ॥ १४ ॥

अब विधिके लक्षणा को कहते है। यथा-व्याधि दो प्रकार की होती है, एक निज, दूसरी आगन्तुक, फिर वह वात, पित्त, कफ भेद से तीन प्रकार की है। साध्य, असाध्य, मृदु और दारुण, इन भेदोंसे चार प्रकार की होती है इस प्रकार रोगोंके भेदके क्रमको विधि कहते है ॥ १४ ॥

विकल्पसम्प्राप्तिके लक्षण।

विकल्पोनामसमवेतानापुनर्दोषाणामशाशबलविकल्पोऽस्मिन्नर्थे ॥ १५ ॥

मिले हुए दोषों के अंशांश कल्पना को विकल्प कहते है। जैसे-सन्निपात बावन प्रकार का विकल्प है ॥ १५ ॥

बलकालका लक्षण ।

बलकालविशेष पुनर्व्याधीनामृत्वहोरात्राहारकालविधिनियतो भवति ॥ १६ ॥

व्याधियोंका ऋतु, दिन, रात्रि, आहार, काल और विधि भेदसे बल और कालका जानना बलकाल विशेष समाप्ति कहा जाता है। जैसे-वसन्त ऋतुमें कफका-काल कृत बल होता है एवम् रात्रिके प्रथम भागमें कफका बल होता है, दिनके प्रथम भागमें कफका बल होता है और भोजनके प्रथम भागमें कफका बल होता है एवम् शरद ऋतुमें, मध्य रात्रिमें, मध्य दिनमें भोजनके मध्यमें अथवा भोजनकी परिपाकावस्थामें पित्तका बल होता है। इसी प्रकार वर्षा ऋतुमें, रात्रिके अंतमें दिनके अंतमें, भोजनके अंतमें वातका बल होता है। इस प्रकार बल, काल, विशेष, समाप्ति जानना ॥ १६ ॥

ग्रन्थकारकी प्रतिज्ञा ।

तस्माद्व्याधीन्भिषगनुपहतसत्त्वबुद्धिर्हेत्वादिभिर्भावैर्यथावदनुबुध्येत् ॥ १७ ॥

इस लिये बुद्धियुक्त वैद्य हेतु आदिक भावोंमे अर्थात् निदानादिकों द्वारा रोगकी यथार्थ परीक्षा करे ॥ १७ ॥

इत्यर्थसंग्रहोनिदानस्थानस्योद्दिष्ट भवतितविस्तरेणभूय परमतोऽनुव्याख्यास्याम ॥ १८ ॥

इस प्रकार संक्षेपसे संपूर्ण निदानको कथन कियाहै। अब फिर विशेष रूपसे कथन करते हैं ॥ १८ ॥

तत्रप्रथमएवतावदाद्याल्लोभाभिद्रोहकोपप्रभवानष्टौव्याधीन्निदानपूर्वेणक्रमेणअनुव्याख्यास्याम ॥ १९ ॥

अब क्रमपूर्वक लोभ और अभिद्रोह अथवा मिथ्याआहार और अनाचारसे उत्पन्न हुई आठ प्रकारकी व्याधियोंको निदानादि क्रमसे कथन करते हैं ॥ १९ ॥

तथासूत्रसंग्रहमात्रंचिकित्साया चिकित्सितेषुचोत्तरकालयथोद्दिष्टविकारानुव्याख्याम ॥ २० ॥

और चिकित्साको भी सूत्रसंग्रह मात्रसे अर्थात् संक्षेपरूपसे कथन करते हैं विशेषरूपसे तो संपूर्ण रोगोंका निदान और उपाय यथाक्रम चिकित्सा स्थानमें कथन करेंगे ॥ २० ॥

ज्वरके भेद ।

इहखलुज्वरएवादौविकाराणामुपदिश्यते ।
तत्प्रथमत्वाच्छारीराणाम् ॥ २१ ॥

क्योंकि सपूर्ण शारीरिक विकारोंमे ज्वरही प्रधान माना गया है अथवा सपूर्ण विकारोमें प्रथम ज्वरकी उत्पत्ति हुई है इसलिये इस निदानस्थानमें प्रथम ज्वरकाही कथन करते है ॥ २१ ॥

अथखल्वष्टाभ्यःकारणेभ्योज्वर सञ्जायतेमनुष्याणातद्यथावा-
तात् पित्तात्कफाद्वातपित्ताभ्यापित्तश्लेष्मभ्यावातश्लेष्मभ्यां
वातपित्तश्लेष्मभ्य'आगन्तोरष्टमात्कारणात् ॥ तस्यनिदान
पूर्वरूपलिङ्गोपचयविशेषानुपदेक्ष्याम ॥ २२ ॥

अब कहते है कि ज्वर आठ कारणोंसे मनुष्योंके शरीरमें उत्पन्न होता है । वह आठ कारण इस प्रकार है। जैसे—वातसे, पित्तसे, कफसे, वातपित्तसे, पित्तकफसे वातकफसे एवम् वातपित्तकफसे अथवा आगन्तुक कारणसे सो उन आठ प्रकार के ज्वरको निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति विशेषसे कथन करते है ॥२२॥

वायुकोपका कारण।

तद्यथारूक्षलघुशीतव्यायामवमनविरेचनास्थापनशिरोविरेच-
नातियोगवेगसन्धारणानशनाभिघातव्यवायोद्वेगशोकशोणि-
तातिसेकजागरणविषमशरीरन्यासेभ्योऽतिसेवितेभ्योवायु प्र-
कोपमापद्यते ॥ २३ ॥

वह इस प्रकार है । रूक्ष, लघु, शीतल पदार्थोंके सेवनसे । परिश्रम करनेसे, वमन, विरेचन, और आस्थापनके अतियोगसे । मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे उपवास करनेसे, चोट लगनेसे, मैथुन करनेसे, उद्वेग और शोच होनेसे, रक्तके अत्यन्त निकलनेसे, रात्रिम जागनेसे, शरीरको ऊंचा नीचा विगड़ा आदि करनेसे इन सब कारणोंसे अधिक सेवनसे शरीरमें वायुका कोप होता है ॥ २३ ॥

अतिकुपितवायुका कर्म ।

सयदाप्रकुपित प्रविश्यामाशयमुष्मण स्थानमुष्मणासहमिश्री-
भूतआद्यमाहारपरिणामधातुंरसनामानमन्वेत्यरसस्वेदवहा-

निचस्रोतांसिचपिधायाग्निमुपहत्यपक्तिस्थानादुष्माणवाहिं नि रस्यकेवलंशरीरमनुपद्यतेतदाज्वरमभिनिर्वर्त्तयतितस्येमानि लिङ्गानिभवन्ति ॥ २४ ॥

वह कुपित हुई वायु-आमाशयमें प्रवेश करके आमाशयकी गर्माईमें मिल जाती है। फिर वह आहारके सारभूत रस नामक धातु का आश्रय लेकर रस और स्वेदके वहने वाले छिद्रोंको रोक देती है। फिर पाचकाग्निको हनन करके पक्ति स्थानकी गर्माईको वाहर निकाल देती है। फिर वह वायु शरीरको यथोचित अग्निवलहीन देखकर वल पा जाती है। वह वल पाया हुआ वात वातज्वरको उत्पन्न करता है ॥ २४ ॥

वातज्वरके लिंग व अगविशेषोंमे वेदना विशेष।

तद्यथाविषमारम्भविसर्गित्वमूष्मणोवैषम्यतीव्रतनुभावानव- स्थानानिज्वरस्यजरणान्तेदिवसान्तेघर्मान्तेवाज्वराभ्यागमन मभिवृद्धिर्वाज्वरस्यविशेषेणपरुषारुणवर्णत्वनखनयनवदनमू- त्रपुरीषत्वचामत्यर्थंक्लिसीभावश्चानेकविधोपमाश्चचलाचलाश्च वेदनास्तेपातेषामङ्गावयवानाम् । तद्यथापादयोः सुप्ततापिण्डि- कयोरुद्वेष्टनंजानुनो केवलानाश्चसन्धीनांविश्लेषणमूर्वो सादः कटीपार्श्वपृष्ठस्कन्धवाहंसोरसाश्चभग्नरुग्णमृदितमथितचटि- तावपीडितावतुन्नत्वमिवहन्वोरप्रसिद्धिः स्वनश्चकर्णयोः शख- योर्निस्तोदः कषायास्यत्वमास्यवैरस्यवामुखतालुकण्ठशोष पिपासाहृदयग्रहःशुष्कच्छर्दि शुष्ककास क्षवथूद्गारविनिग्रहोऽ- न्नरसखेद प्रसेकारोचकाविपाका विषादविजृम्भाविनामवेपथु- श्रमभ्रम-प्रलापजागरणलोमहर्षदन्तहर्षास्तथोष्माभिप्रायता- निदानाक्तानामनुपचयोविपरीतोपचयश्चेतिवातज्वरलिङ्गा- निस्यु ॥ २५ ॥

उस ज्वरके यह लक्षण होते है। जैसे-ज्वरके चढनेके समय और उतरनेके समय शरीरके तापमें विषमता, कभी शरीरका अधिक तपना और कभी थोडा तपना, ज्वरका एकसा न रहना, कभी ज्वर तीक्ष्ण और कभी मद होना, तथा भोजनके

पचजानेके अनन्तर सायंकालमें एवम् वर्षा ऋतुमें उत्पत्ति अथवा वृद्धि होना एवम् नख, नेत्र, मुख, मूत्र, मल और त्वचा इन सबका कठोर और शुष्क होजाना तथा लाल वर्णके दिखाई देना, शरीरका वर्ण विकटा सा हो जाना, शरीरके अंगोंमें क्षणक्ष णमें इधर उधर चलने वाली तथा स्थिर रहने वाली वायुकी पीडा होना जैसे पैरोंका सोजाना, पिण्डलियोंमें उद्वेष्टन (लपेटनेकीसी पीडा) होना, जानुओंका तथा अन्य सन्धियोंका ढीले ढीलेसे पड जाना, दोनों जांघोंका रहसा जाना, कटि, पार्श्व, पीठ, कंधे, भुजा और कंधेके ऊपरके भागमें एवम् वक्षस्थलमें तोडनेकीसी पीडा तथा मर्दन करनेकीसी पीडा एवम् मथनेकीसी पीडा होना तथा चटकाने कीसी पीडा मींडनेकीसी पीडा और सूई चुभानेसी पीडा होना, ठोडीका जकडना, कानोंमें शब्द होना, कनपटियोंमें सूई चुभनेकीसी पीडा होना, मुखका कसैला होना एवम् विरस होना। मुख, तालु, और कण्ठका सूखना, तृषा, छातीमें दर्द, सूखी छर्दी, सूखी खांसी और छींक इनका होना, डकार न आना, अन्नके रसयुक्त थूकना, अरुचि, अन्नका न पचना, चित्तमें विषाद रहना, जभाई अधिक आना, शरीरका नमजाना, कंप होना, थकावट मालूम देना, भ्रम होना, बकना, निद्रा न आना, रोमाञ्च होना, दंतहर्ष होना, गर्मीकी इच्छा होना, वातनाशक, उष्ण स्निग्ध आदि पदार्थोंसे रोगकी शान्ति होना, एवम् रूक्ष, शीत आदिकोंसे रोगका बढना यह सब लक्षण वातज्वरके होतेहैं ॥ २५ ॥

पित्तकोपका कारण।

उष्णाम्ललवणक्षारकटुकाजीर्णभोजनेभ्योऽतिसेवितेभ्यस्त-थातितीक्ष्णातपाग्निसन्तापश्रमक्रोधविषमाहारेभ्यः पित्तप्रको-पमापद्यते ॥ २६ ॥

अब पित्तकोपके कारणोंको कहतेहैं। जैसे उष्ण, अम्ल, लवण, क्षार, चरपरे पदार्थोंके सेवनसे एवम् अजीर्णकर्ता भोजनके अधिक सेवनसे तथा अतितीक्ष्ण, धूप, अग्नि और संतापके सेवनसे, परिश्रम करनेसे तथा विषम भोजन करनेसे इन सब कारणोंसे पित्तका प्रकोप होताहै ॥ २६ ॥

प्रकुपितपित्तका कर्म।

तद्यथाप्रकुपितमामाशयादेवोष्माणमुपसंसृज्याद्यमाहारपरि-णामधातुरसनामानमन्वावेद्यरसस्वेदवहानिचस्रोतांसिपिधा-यद्रवत्वादग्निमुपहत्यपक्तिस्थानादूष्माणमबहिर्द्वारनिरस्यप्रपीड-यन्केवलशरीरमुपपद्यतेतदाज्वरमभिनिर्वर्त्तयति ॥ २७ ॥

फिर वह पित्त कुपित होकर आमाशयसे गर्मीको उत्तेजन करताहुआ आहारका परिणामरूप जो रसनामक धातु है उसमें मिलकर स्वेद और रसके बहानेवाले छिद्रोंको रोक देताहै। फिर अपने द्रवसे जठराग्निको हनन कर पाचकस्थानकी गर्मीको बाहर निकाल देताहै। तब अपना अधिकार पाकर शरीरको पीडन करताहुआ पित्तज्वरको उत्पन्न करताहै ॥ २७ ॥

पित्तज्वरके लक्षण ।

तस्येमानिलिङ्गानिभवन्ति । तद्यथायुगपदेवकेवलेशरीरेज्वराभ्यागमनमभिवृद्धिर्वा । भुक्तस्यविदाहकालेमध्यन्दिनेऽर्द्धरात्रेशरदिवाविशेषेणकटुकास्यताघ्राणमुखकण्ठोष्टतालुपाकस्तृष्णाभ्रमोमदोमूर्च्छापित्तच्छर्दनमतीसारोऽन्नद्वेष सदनस्वेदःप्रलापोरक्तकोठाभिनिर्वृत्ति शरीरेहरितहारिद्रत्वंनखनयनवदनमूत्रपुरीषत्वचामत्वचामत्यर्थमुष्मणस्तीव्रभावोऽतिमात्रदाहःशीताभिप्रायतानिदानोक्तानामनुपचयोविपरीतोपचयश्चेतिपित्तज्वरलिङ्गानिभवन्ति ॥ २८ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं । शरीरमें एकदम ज्वरका वेग होना, भोजनके पाकके समय दिनके मध्यमें, अर्धरात्रिमें, शरदऋतुमें विशेष करके ज्वरकी वृद्धि होना या उत्पन्न होना, मुखमें कटुता, नाक, मुख, कण्ठ, ओष्ठ और तालुका पकना, तृषा, भ्रम मोह, मूर्च्छा, मुखसे पित्तका निकलना, पतला दस्त होना, आहारमें अरुचि, स्वेद, प्रलाप, शरीरमें लाल वर्णके चकत्ते प्रगट होना, नेत्र, नख, मुख, मूत्र, पुरीष, त्वचा इनका हल्दीके समान पीलावर्ण होना, गर्मी अधिक प्रतीत होना, अधिक दाह होना शीतल वस्तुकी इच्छा होना एवम् उष्ण वस्तुओंसे रोगका बढना, शीतल वस्तुओंसे शान्त होना यह पित्तज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ २८ ॥

कफप्रकोपका कारण ।

स्निग्धमधुरगुरुशीतपिच्छिलाम्ल–लवण–दिवास्वप्नहर्षव्यायामेभ्योऽतिसेवितेभ्यःश्लेष्माप्रकोपमापद्यते ॥ २९ ॥

चिकने, मधुर, भारी, शीतल, पिच्छिल, अम्ल, एवम् लवण पदार्थोंके खानेसे, दिनमें सोनेसे, हर्षसे, परिश्रम न करनेसे इत्यादि कफवर्द्धक पदार्थोंके अधिक सेवनसे कफका कोप होताहै ॥ २९ ॥

प्रकुपितकफका कर्म ।

सयदाप्रकुपित प्रविश्यामाशयमूष्मणासहमिश्रीभूतमाद्यमाहारपरिणामधातुरसनामानमन्ववेत्यरसस्वेदवहानिचस्रोतासिपिधायाग्निमुपहत्यपक्तिस्थानादूष्माणवावहि निरस्यप्रपीडयन्केवलशरीरमुपपद्यतेतदाज्वरमभिनिर्वर्त्तयति ॥ ३० ॥

वह कुपित हुआ कफ आमाशयमें प्रवेश करके जठराग्निकी गर्मीके साथ मिलकर आहारके परिणामरूप रस नामक धातुके साथ जाकर रस और स्वेदके वहनेवाले छिद्रोंको रोक देताहै । तब जठराग्निको हनन करके पाचकाग्निकी गर्मीको बाहर निकाल देताहै । फिर अपना अधिकार पाकर शरीरको पीडित करताहुआ कफज्वर उत्पन्न करताहै ॥ ३० ॥

कफज्वरके लक्षण ।

तस्येमानिलिङ्गानिभवन्ति । तद्यथायुगपदेवकेवलेशरीरेज्वराभ्यागमनमभिवृद्धिर्वाभुक्तमात्रेपूर्वाह्लेपूर्वरात्रेवसन्तकालेवाविशेषेणगुरुगात्रत्वमनन्नाभिलाप. श्लेष्मप्रसेकोमुखस्यचमाधुर्य्यंहृल्लासोहृदयोपलेप स्तिमिरत्वछर्दिर्मृद्वग्नितानिद्रायाआधिक्यस्तम्भ तन्द्राश्वास कास प्रतिश्याय शैत्यश्वैत्यञ्चनयननखवदनमूत्रपुरीपत्वचामत्यर्थंशीतपिडकाभृशमङ्गेभ्यउत्तिष्ठति उष्णाभिप्रायतानिदानोक्तानामनुपचयोविपरीतोपचयश्चेतिश्लेष्मज्वरलिङ्गानिभवन्ति ॥ ३१ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं शरीरमें एकदम ज्वरका प्रगट होना, भोजन करतेही पूर्वाह्नमें, रात्रिके प्रथमभागमें एवम् वसन्तऋतुमें ज्वरका अधिक होना अथवा उत्पन्न होना एवम् शरीरमें भारीपन, अन्नमें अरुचि, मुखसे कफका गिरना, मुखका स्वाद मीठा होना, कफकी छर्दी होना, हृदय कफसे लिपासा प्रतीत होना, देहमें गीलापन प्रतीत होना, अग्निकी मन्दता, अधिक निद्रा, स्तम्भ, तन्द्रा, श्वास, काम, प्रतिश्याय, शीतता, नेत्र, नख, मुख, मूत्र, पुरीप, त्वचा इनका श्वेत होना, देहमें श्वेतगर्की पिडकाका होना गर्मीकी इच्छा होना, चिकने एवम् मधुरादि पदार्थोंसे रोगका बढना, रूक्ष, उष्ण आदि पदार्थोंसे शान्त होना यह सब कफज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ ३१ ॥

द्वन्द्वजादिज्वरोंका निदान ।

विषमाशनादनशनादन्नस्यअपरिवर्त्तादृतुव्यापत्ते असात्म्याग-न्धोपघ्राणाद्विपोपहतस्योदकस्यउपयोगाद्गरेभ्योगिरीणामुप-श्लेपात्स्नेहस्वेदवमनविरेचनास्थापनानुवासनशिरोविरेचनाना-मयथावत्प्रयोगात्स्त्रीणाञ्चविषमप्रजननात्प्रजातानाञ्चमिथ्यो-पचाराद्यथोक्तानाञ्चहेतूनामिश्रीभावाद्यथानिदानद्वन्द्वानामन्य-तम·सर्वेवात्रयोदोपायुगपत्प्रकोपमापद्यन्ते ॥ ३२ ॥

विषम भोजन करनेसे ऋतुओंके परिवर्त्तनसे, ऋतुओंके विगडनेसे, असात्म्य गंधके सूघनेसे, विपैले जलके पीनेसे,गर (गर सरव्यक विप) विकारसे, पहाडोंके समीपतासे, स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन और शिरोविरेचन इन सबके मिथ्यायोग होनेसे, स्त्रियोंके बेसमय प्रसव होनेसे अथवा प्रसवके समय कुपथ्य होजानेसे एवम् ऊपर कहेहुए वात, पित्त, कफ इनमेंसे दो दोपोंके कारणोंके मिलनेसे दो दोप कुपित होतेहं और तीनों दोपोंके कोप कारक कारणोंके मिलजानेसे तीनों दोप एकही कालमें कुपित होतेहै ॥ ३२ ॥

द्वन्द्वजादिज्वरोंके लक्षण ।

तेप्रकुपितास्तयेवानुपूर्व्याज्वरमभिनिर्वर्त्तयन्तितत्रयथोक्तानां ज्वरलिङ्गानामिश्रीभावविशेपदर्शनाद्वान्द्विकमन्यतमंज्वरंसा-न्निपातिकंवाविद्यात् ॥ ३३ ॥

वे कुपित हुए दोप क्रमपूर्वक द्वन्द्वजज्वरको अथवा सन्निपातज्वरको उत्पन्न करतेहं । दो दोप कुपितहुए द्वन्द्वजज्वरको उत्पन्न करतेहं । तीनों दोप कुपित होनेसे सन्निपात ज्वर उत्पन्न होताहै । दो दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्वन्द्वज (द्विदोपज) ज्वर जानना और तीनो दोपोंके लक्षण मिलनेसे त्रिदोपज्वर जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

आगन्तुज्वरका कारण व उसमें दोपोत्पत्ति ।

अभिघाताभिषङ्गाभिचाराभिशापेभ्यआगन्तुर्व्यथापूर्वोज्वरोऽ-ष्टमोभवति।सकञ्चित्कालमागन्तु.केवलोभूत्वापश्चाद्दोपैरनुबध्यते। अभिघातजोवायुनादुष्टशोणिताधिष्ठानेनअभिषङ्गज·पुनर्वात

'पित्ताभ्याम्‌अभिचाराभिशापजौतुसन्निपातेनउपनिबध्येते।सप्त-विधाज्ज्वराद्विशिष्टलिङ्गोपक्रमसमुत्थितत्वाद्विशिष्टोवेदितव्य। कर्मणासाधारणेनचोपक्रम्योतिअष्टविधाज्वरप्रकृतिरुक्ता॥३४॥

चोट आदिके लगनेसे, काम क्रोधादि अभिष्यदसे, अविचार तथा अभिशापसे आगन्तुकज्वर उत्पन्न होताहै। आगन्तुक ज्वरके मिलानेसे ज्वर आठ प्रकारके होतेहैं। आगन्तुकज्वर पहिले स्वय प्रगट होकर पीछे वात, पित्त, कफकी सहायताको प्राप्त होताहै अर्थात् आगन्तुज व्याधिमे पहिले व्याधि उत्पन्न होकर पीछे वातादि दोष कुपित होतेहै। (और निज व्याधिमे पहिले वातादि दोष कुपित होकर पीछे रोग उत्पन्न होताहै) । अभिघात निमित्तक आगन्तुजज्वरमे वायुदूषित रुधिरका आश्रय लेकर अभिघातज्वरका सहायक बनताहै। अभिष्यदजनित ज्वरमे वात और पित्तका अनुबध होताहै। अविचार और अभिशापजनित ज्वरमे तीनो दोषोका अनुबध होताहै। आगन्तुजज्वर पूर्वोक्त सात प्रकारके ज्वरोमे लक्षण, उपाय कारणों द्वारा अलग जानना चाहिये अर्थात् वातादि सात प्रकारके ज्वरोंमे आगन्तुजज्वरके कारण, लक्षण उपाय और प्रकारके होतेहै। कि आगन्तुजज्वर उसके साधारण कारण की चिकित्सामात्रसे शान्त होजाताहै। इस प्रकार ज्वरोंकी आठ प्रकारकी प्रकृति कहीहै॥३४॥

ज्वरको एकत्व और पूर्वरूप।

ज्वरस्त्वेकएवसन्तापलक्षणस्तमेवाभिप्रायविशेषाद्विविधमाच-क्षतेनिजागन्तुविशेषाच्चतत्रनिजाद्विविधस्त्रिविधचतुर्विधसप्तवि-धश्चाहुर्वातादिविकल्पात् ॥३५॥ तस्येमानिपूर्वरूपाणि।तद्यथा-मुखवैरस्यगुरुगात्रत्वमनन्नाभिलापश्चक्षुपोराकुलत्वमस्रागमन निद्रायाआधिक्यमरतिर्जृम्भाविनामोवेपथुश्रमभ्रमप्रलापजा-गरणलोमहर्षशब्दशीतवातातपासहत्वमरोचकाविपाकोदौर्ब-ल्यमङ्गमर्द सदनमल्पप्राणतादीर्घसूत्रताआलस्यमुपचितस्य कर्मणोहानि प्रतीपतास्वकार्य्येषुगुरूणावाक्येषुअभ्यसूयाबाले-षुप्रद्वेष'स्वधर्मेषुअचिन्तामाल्यानुलेपभोजनक्लेशनमधुरेषुभ-क्ष्येषुप्रद्वेषोऽम्ललवणकटुकप्रियताचेतिज्वरपूर्वरूपाणि ॥ ३६ ॥

यद्यपि सतापमात्र लक्षणसे अर्थात शरीरके तपायमान होनेसे ज्वर (ताप) एकही प्रकारका होताहै परन्तु शरीरके निज और आगन्तुभेदसे दो प्रका-

द्वन्द्वजादिज्वरोंका निदान ।

विषमाशनादनशनादन्नस्यअपरिवर्तादृतुव्यापत्ते असात्म्याग-न्धोपघ्राणाद्विषोपहतस्योदकस्यउपयोगाद्गरेभ्योगिरीणामुप श्लेषात्स्नेहस्वेदवमनविरेचनास्थापनानुवासनशिरोविरेचनाना-मयथावत्प्रयोगात्स्त्रीणाञ्चविषमप्रजननात्प्रजातानाञ्चमिथ्यो-पचाराद्यथोक्तानाञ्चहेतूनामिश्रीभावाद्यथानिदानद्वन्द्वानामन्य-तम सर्वेवात्रयोदोषायुगपत्प्रकोपमापद्यन्ते ॥ ३२ ॥

विषम भोजन करनेसे ऋतुओंके परिवर्त्तनसे, ऋतुओंके बिगडनेसे, असात्म्य गंधके सूघनेसे, विषैले जलके पीनेसे, गर (गर सरयक विष) विकारसे, पहाडाके समीपतासे, स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन और शिरोविरेचन इन सबके मिथ्यायोग होनेसे, स्त्रियोंके बेसमय प्रसव होनेसे अथवा प्रसवके समय कुपथ्य होजानेसे एवम् ऊपर कहेहुए वात, पित्त, कफ, इनमेंसे दो दोषोंके कारणोंके मिलनेसे दो दोष कुपित होतेहैं और तीनों दोषोंके कोप कारक कारणोंके मिलजानेसे तीनों दोष एकही कालमें कुपित होतेहै ॥ ३२ ॥

द्वन्द्वजादिज्वरोंके लक्षण ।

तेप्रकुपितास्तयैवानुपूर्व्याज्वरमभिनिर्वर्त्तयन्तितत्रयथोक्तानां ज्वरलिङ्गानामिश्रीभावविशेषदर्शनाद्द्वान्द्विकमन्यतमज्वरसा-न्निपातिकंवाविद्यात् ॥ ३३ ॥

वे कुपित हुए दोष क्रमपूर्वक द्वन्द्वजज्वरको अथवा सन्निपातज्वरको उत्पन्न करतेहैं । दो दोष कुपितहुए द्वन्द्वजज्वरको उत्पन्न करतेहैं । तीनों दोष कुपित होनेसे सन्निपात ज्वर उत्पन्न होताहै । दो दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्वन्द्वज (द्विदोषज) ज्वर जानना और तीनो दोषोंके लक्षण मिलनेसे त्रिदोषज्वर जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

आगन्तुज्वरका कारण व उसमें दोषोत्पत्ति ।

अभिघाताभिषङ्गाभिचाराभिशापेभ्यआगन्तुर्व्यथापूर्वोज्वरोऽ-ष्टमोभवतिसकञ्चित्कालमागन्तुःकेवलोभूत्वापश्चाद्दोषैरनुबध्यते। अभिघातजोवायुनादुष्टशोणिताधिष्ठानेनअभिषङ्गज:पुनर्वात

'पित्ताभ्याम्‌अभिचाराभिशापजौतुसन्निपातेनउपनिवध्येते।सप्त-
विधाज्ज्वराद्विशिष्टलिङ्गोपक्रमसमुत्थितत्वाद्विशिष्टोवेदितव्य।
कर्मणासाधारणेनचोपक्रम्येतिअष्टविधाज्वरप्रकृतिरुक्ता॥३४॥

चोट आदिके लगनेसे, काम क्रोधादि अभिष्यदसे, अविचार तथा अभिशापसे आगन्तुकज्वर उत्पन्न होताहै। आगन्तुक ज्वरके मिलानेसे ज्वर आठ प्रकारके होतेहैं। आगन्तुकज्वर पहिले स्वय प्रगट होकर पीछे वात, पित्त, कफकी सहायताको प्राप्त होताहै अर्थात् आगन्तुज व्याधिमें पहिले व्याधि उत्पन्न होकर पीछे वातादि दोष कुपित होतेहैं। (और निज व्याधिमें पहिले वातादि दोष कुपित होकर पीछे रोग उत्पन्न होताहै)। अभिघात निमित्तक आगन्तुजज्वरमें वायुदूषित रुधिरका आश्रय लेकर अभिघातज्वरका सहायक बनताहै। अभिष्यदजनित ज्वरमें वात और पित्तका अनुबंध होताहै। अविचार और अभिशापजनित ज्वरमें तीनों दोषोंका अनुबंध होताहै। आगन्तुजज्वर पूर्वोक्त सात प्रकारके ज्वरोंसे लक्षण, उपाय कारणों द्वारा अलग जानना चाहिये अर्थात् वातादि सात प्रकारके ज्वरोंसे आगन्तुजज्वरके कारण, लक्षण उपाय और प्रकारके होतेहैं। कि आगन्तुजज्वर उसके साधारण कारण की चिकित्सामात्रसे शान्त होजाताहै। इस प्रकार ज्वरोंकी आठ प्रकारकी प्रकृति कहीहै॥३४॥

ज्वरको एकत्व और पूर्वरूप।

ज्वरस्त्वेकएवसन्तापलक्षणस्तमेवाभिप्रायविशेषाद्द्विविधमाच-
क्षतेनिजागन्तुविशेषाच्चतत्रनिजद्विविधस्त्रिविधचतुर्विधसप्तवि-
धश्चाहुर्वातादिविकल्पात्॥३५॥ तस्येमानिपूर्वरूपाणि।तद्यथा-
मुखवैरस्यगुरुगात्रत्वमनन्नाभिलापश्चक्षुषोराकुलत्वमस्त्रागमन
निद्रायाआधिक्यमरतिर्जम्भाविनामोवेपथुश्रमभ्रमप्रलापजा-
गरणलोमहर्षशब्दशीतवातातपासहत्वमरोचकाविपाकोदौर्व-
ल्यमङ्गमर्द सदनमल्पप्राणतादीर्घसूत्रताआलस्यमुपचितस्य
कर्मणोहानि प्रतीपतास्वकार्येषुगुरूणांवाक्येषुअभ्यसूयाबाले
षुप्रद्वेष स्वधर्मेषुअचिन्तामाल्यानुलेपभोजनक्लेशनमधुरेषुभ-
क्ष्येषुप्रद्वेषोऽम्ललवणकटुकप्रियताचेतिज्वरपूर्वरूपाणि ॥ ३६ ॥

यद्यपि सतापमात्र लक्षणसे अर्थात् शरीरके तपायमान होनेसे ज्वर (ताप) एकही प्रकारका होताहै परन्तु उसीको निज और आगन्तुकभेदोंसे दो प्रका-

रका कथन करतेहै । उनमें निजज्वर एक प्रकारका तथा दो प्रकारका एवम् तीन प्रकारका और चार प्रकारका अथवा सात प्रकारका वात आदिके विकल्पसे मानाहै उस सामान्य ज्वरके यह पूर्वरूप होतेहैं–जैसे मुखकी विरसता, अगोंका भारीपन, अन्नमें अरुचि, आखोंमें दाह अथवा स्राव होना एवम् आखोंका लाल होना अधिक निद्रा आना, चित्त न लगना तथा जमाई आना, शरीरका ऐंठना एवम् कम्प, श्रम, भ्रम, प्रलाप, जागरण, रोमहर्ष, दन्तहर्ष, इन सबका होना तथा शब्द, शीत, पवन, धूप इनकी इच्छा होना और क्षणमात्रमें इनसे द्वेष होना तथा अरुचि, अविपाक, दुर्बलता, अगमर्द, अवसाद, प्राणोंका क्षीण होना, कामको बहुत देरमे करना, आलस्य उपस्थित कामको छोडदेना, अपने कार्यमें बेपरवाही करना, गुरुजनोंके वाक्योंको न मानना, बालकोंकी बोलचाल बुरी मालूम होना, अपने धर्मका चिन्तन न करना, पुष्पमाला चन्दनादिका लेप और भोजन इनसे भी क्लेश प्रतीत होना, मधुर पदार्थोंसे भी द्वेष होना, खट्टे, नमकीन, चरपरे पदार्थोंकी इच्छा होना यह सब लक्षण ज्वरके पूर्वरूपमें होतेहैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

प्राक्सन्तापादपिचैनसन्तापार्त्तमनुबध्नन्तीत्येतानिएकैकज्वर-
लिङ्गानिविस्तरसमासाभ्याम् ॥ ३७ ॥

संताप होनेसे अर्थात् ज्वरसे पहिले प्रगट होनेसे इसको ज्वरका पूर्वरूप कहतेहैं । और यह लक्षण ज्वर प्रगट होनेके अनन्तर होनेसे ज्वरके रूपमें गिने जातेहैं अर्थात् पूर्वरूपावस्थामें जो संताप प्रगट नहीं था वह प्रगट होजानेपर रूप कहा जाताहै । सो यह लक्षण हरएक ज्वरमें संक्षेप और विस्तारसे जान लेना चाहिये ॥ ३७ ॥

ज्वरस्तुखलुमहेश्वरकोपप्रभव सर्वप्राणिनाप्राणहरोदेहेन्द्रियम-
नस्तापकरःप्रज्ञाबलवर्णहर्षोत्साहसादनार्तिश्रमक्लमसोहाहारो-
परोधसञ्जननोज्वरयतिशरीराणिइतिज्वर । नान्येव्याधय
तथादारुणाबहूपद्रवादुश्चिकित्स्यायथायमिति । सर्वरोगाधिप-
तिर्ज्वर नानातिर्य्यग्योनिषुबहुविधै शब्दैरभिधीयतेसर्वप्राण
भृतश्चसज्वराएवजायन्तेसज्वराएवम्रियन्तेसमहामोहा तेना-
भिभूता प्राग्दैहिकदेहिन.कर्मकिञ्चिन्नस्मरन्तिसर्वप्राणिभ्यश्च
ज्वरएवप्राणानादत्ते ॥ ३८ ॥

अब ज्वरकी उत्पत्ति और उसके नामादिकोंका वर्णन करतेहैं । ज्वर महादेवके कोपसे उत्पन्न हुआ है । और सब प्राणियोंके प्राणोंको हरनेवाला देह, इन्द्रिय, मन

इनको तपायमान करनेवाला बुद्धि, बल, वर्ण, हर्ष, उत्साह इनको नष्ट करनेवालाहै। पीडा, थकावट, बबराहट, मोह इनको करनेवाला है तथा आहारका उपरोध करने वाला है। शरीरको जर्जर करदेताहै इसलिये इसको ज्वर कहतेहैं। अन्य व्याधिया इस प्रकार दारुण और बहुतसे उपद्रवोंवाली एवम् दुश्चिकित्स्य नहीं होतीं जिस प्रकार यह ज्वर है। ज्वर सब रोगोंका राजा है और अनेक प्रकारकी पशु आदि योनियोंमे अनेक नामोंसे कहा जाताहै। सपूर्ण जीवमात्र ज्वरसहित जन्म लेतेहैं और मरनेके समय भी ज्वरसहित प्राणोंको त्यागतेहैं ज्वररूप महामोहसे व्याप्त हुआ मनुष्य जन्मके समय पूर्वजन्मकी किसी बातको भी स्मरण नहीं कर सकता यह ज्वरही सपूर्ण प्राणियोके प्राणोंको आकर्षण करताहै अर्थात् ग्रहण करताहै ॥ ३८ ॥

ज्वरके पूर्वमें कर्तव्य कर्म।

तत्रास्यपूर्वरूपदर्शनेज्वरादौवाहितलघ्वशनमतर्पणवाज्वरस्या-माशयसमुत्थत्वात् ॥ ३९ ॥

क्योंकि ज्वर आमाशयसे,उत्पन्न होताहै इसलिये ज्वरके पूर्वरूप दिखाई देते ही अथवा ज्वरके आदिमें हित और हलके भोजन अथवा अतर्पण (लघन) करना चाहिये ॥ ३९ ॥

तत कषायपानाभ्यङ्गस्वेदप्रदेहपरिषेकानुलेपनवमनविरेचना-स्थापनानुवासनोपशमननस्त.कर्मधूपधूमपानाञ्जनक्षीरभोज नविधानम् ॥ ४० ॥

ज्वर उत्पन्न होनेपर क्वाथ पीना ज्वरनाशक तेलका मलना, पसीना देना एवम् लेप, परिषेक, अनुलेपन, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, उपशमन, नस्य, धूम्रपान, अजन, दूधपान इन सबको जिस जगह जिस विधिमे जिसका प्रयोग करना उचित हो उस प्रकार प्रयोग करे ॥ ४० ॥

ज्वरमें घृतपान।

यथास्वयुक्त्याजीर्णज्वरेषुसर्वेष्वेवसर्पिष.पानप्रशस्यते। यथा स्वमौषधसिद्धस्यसर्पिर्हिस्नेहाद्वातशमयतिसंस्कारात्कफशैत्या त्पित्तमुष्माणञ्चतस्माज्जीर्णज्वरेषुतुसर्वेष्वेवसर्पिर्हितमुदकमि वाग्निप्लुष्टेषुद्रव्येष्विति ॥ ४१ ॥

सब प्रकारके जीर्णज्वरोंमें उनके लक्षणोंके अनुसार युक्ति पूर्वक ज्वरनाशक द्रव्यों द्वारा सिद्ध किये हुए घृतोंका पान करना परमोत्तम कहाहै। यथा लक्षणपुन.

औषधियोंसे सिद्धकिया घृत अपने स्नेहके योगमे वायुको शान्त करताहै । कफनाशक द्रव्योंके संयोगसे कफको शान्त करताहै एवम् शीतल होनेसे पित्तको शान्त करताहै । इसलिये संपूर्ण जीर्णज्वरोंमें घृतका पान करना इस प्रकार शान्तिकारक है जैसे अग्नि लगे पदार्थोंपर जलका डालदेना शान्तिकारक होताहै ॥ ८१ ॥

तत्र श्लोकाः ।

यथाप्रज्वलितवेश्मपरिषेचनशान्तिवारिणा ।
नराःशान्तिमभिप्रेत्यतथाजीर्णज्वरेघृतम् ॥ ४२ ॥

यहांपर श्लोक है-कि जैसे, अग्निसे जलते हुए घरको मनुष्य जलसे सींचता है और वह जल शान्तिकारक होताहै उसी प्रकार जीर्णज्वरमें घृत भी शान्तिकारक होताहै ॥ ४२ ॥

स्नेहाद्वातंशमयतिशैत्यात्पित्तंनियच्छति ।
घृततुल्यगुणदोषसंस्कारात्तुजयेत्कफम् ॥ ४३ ॥

घृत-स्नेहसे वायुको शान्त करताहै और शीतनासे पित्तको शान्त करताहै । घृत-कफके तुल्यगुण होनेसे औषधियोंके संस्कार द्वारा कफको जीत लेताहै ॥ ४३॥

घृतको उत्कृष्टत्व ।

नान्यः स्नेहस्तथाकश्चित्संस्कारमनुवर्त्तते ।
यथासर्पिरतः सर्पिः सर्वस्नेहोत्तमंपरम् ॥ ४४ ॥

और स्नेह अर्थात् तैल आदिक द्रव्यान्तरसे संस्कार कियाहुआ द्रव्योंके गुणोंको ग्रहण नहीं करते । जिस प्रकार संस्कार द्वारा घृत औषधियोंके गुणको ग्रहण करलेता है । इसलिये सब प्रकारके स्नेहोंमें घृत परमोत्तम माना जाताहै ॥ ४४ ॥

गद्योक्तोयः पुनः श्लोकैरर्थः समनुगीयते ।
तद्व्यक्तिव्यवसायार्थंद्विरुक्तं नतगर्ह्यते ॥ ४५ ॥

गद्योंमें कहाहुआ विषय यदि श्लोकों द्वारा फिर कथन करदियाजाय तो उसमें पुनरुक्ति दोष नहीं मानना चाहिये क्योंकि वह श्लोकोंमें मनुष्योंको याद रहसकताहै और प्रिय मालूम होताहै इसलिये कथन कियाजाताहै ॥ ४५ ॥

त्रिविधनामपर्यायैर्हेतुंपञ्चविधान्गदान् । गदलक्षणपर्याया-
यान् व्याधेः पञ्चविधंग्रहम् ॥ ४६ ॥ ज्वरमष्टविधंतस्यप्रकृष्टास-
न्नकारणम् । पूर्वरूपंचरूपञ्चसंग्रहेभेषजंपरम् ॥ ४७ ॥

व्याख्यानवाञ्ज्वरस्याग्रेनिदानेविगतज्वर । भगवानग्निवेशायप्रणतायपुनर्वसु ॥ ४८ ॥

इतिचरकप्रतिसंस्कृतेतन्त्रेज्वरनिदानो नामप्रथमोऽध्याय. ॥ १ ॥

अब अध्यायका उपसहार करते है। कि इस ज्वरनिदाननामक अध्यायमें तीन प्रकारका कारण, पाच प्रकारका रोग विज्ञान, पाच प्रकारके रोगोके लक्षणोका पर्याय तथा उनका सग्रह, आठ प्रकारके ज्वर, उस ज्वरके विप्रकृष्ट और सनिकृष्ट कारण, पूर्वरूप, रूप, सक्षेपसे औपाधिसग्रह, सतापरहित भगवान् पुनर्वसुजीने इस ज्वरनिदानम कथन कियेहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसहितायां निदानस्थाने टकसालनिवासि प० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां ज्वरनिदान नाम प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्याय ।

रक्तपित्तनिदानम् ।

अथातोरक्तपित्तनिदानव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेय. ।

अब हम रक्तपित्तके निदानका कथन करतेहै। इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

रक्तपित्तका कारण ।

पित्तयथाभूतलोहितपित्तमितिसंज्ञालभतेतत्तथानुव्याख्यास्याम । यदायस्तुजन्तुर्यवकोद्दालकोरदूषकप्रायाणिअन्नानिनित्यभुङ्क्तेभृशोष्णतीक्ष्णमपिचान्यदन्नजातंनिष्पावमाषकुलत्थक्षारसूपोहितदधिमण्डोदश्वित्कट्वम्लकाञ्जिकोपहितवाराहमाहिषाविकमत्स्यगव्यपिशितपिण्याकपिण्डालुकशाकोपहितमूलकसर्षपलशुनकरञ्जशिग्रुकखडयूषभूस्तृणसुमुखसुरसकुठेरगण्डीरकालमालकपर्णासक्षवकफणिज्जकोपदंशसुरासौवीरतुषोदकमैरेयमेदकमधूलकशुक्तकुवलबदराम्लप्रायानुपानपिष्टान्नोत्तरभयिष्ठमुष्णाभितप्तोऽतिमात्रमतिवेलमामपयसामभ्या-

तिरोहिणीकालकपोतमांसवासर्षपतैलक्षारसिद्धकुलत्थमाष-
पिण्याकजाम्बलकुचपक्वैः शौक्तिकैर्वासहक्षीरमामसतिमात्रम-
थवापिबत्युष्णाभितप्तस्तस्यैवमाचरत पित्तंप्रकोपमापद्यते ।
लोहितञ्चस्वप्रमाणमतिवर्त्तते ॥ १ ॥

पित्त जिस प्रकार रक्तपित्त संज्ञाको प्राप्त होताहै उस प्रकारकी उसकी व्याख्या करतेहैं। जब मनुष्य-जौ, उद्दालक, कोद्रव आदिक द्रव्योंका निरन्तर सेवन करताहै एवम् अत्यन्त उष्ण और तीक्ष्ण अन्नोंको सेवन करताहै अथवा निष्पाव उडद, कुल्थी दाल आदिमें दहीका मण्ड उदश्वित् मिलाकर खाताहै अथवा चरपरे, खट्टे, कांजी आदिक पदार्थोंको अधिक सेवन करताहै तथा सूअर, भैंसा मेंढा,मछली,गौ आदिकाके मांसको खाताहै। तिलोंकी खली, पिंडालुका शाक एवम् पकी मूली, सरसों, लहसुन, करंजा, सुहाँजना, पड्यूप, सूरण, शाक, पर्णाश सुमुख, सुरस (तुलसीके भेद) कुठेर गण्डीरशाक कालमालकशाक, पर्णाशक (मरुआ), उपदंशक (चर्बीमांसविशेषका बना पदार्थ) सुरा, सौवीर, तुषोदक, मरेय, भेदक, मधूलक, बेर तथा अन्य खट्टे पदार्थोंका अत्यन्त सेवन करताहै। मिष्टान्नका अधिक सेवन करताहै। गर्माईसे तप्त मनुष्य बहुत भोजन करे एवम् भोजनका समय लंघनकर भोजन करे अथवा रोहिणी नामक मछली वा कालकपोतके मांसको दूधके साथ कालकपोतके मांसको सरसोंके तेल और क्षारके साथ सिद्ध कर खाताहै एवम् कुल्थी, उडद, तिलकल्क, आमुन, बडहरके साथ पकायेहुए दूधको अथवा इन सब वस्तुओंको कच्चे दूधके साथ वा कांजीके साथ पित्त प्रकृतिवाला मनुष्य निरन्तर सेवन करताहै उसके शरीरमें पित्त कोपको प्राप्त होजाताहै। एवम् रक्त अपने प्रमाणको छोडकर बढजाताहै ॥ १ ॥

रक्तके दूषित होनेका कारण।

तस्मिन्प्रमाणातिप्रवृत्तेपित्तप्रकुपितशरीरमनुसर्पद्यदेवयकृत्प्ली-
हप्रभावाणांलोहितवहानांस्रोतसांलोहिताभिष्यन्दगुरूणिसु-
खान्यासाद्यप्रतिपद्यतेतदेवलोहितंदूषयति ॥ २ ॥

रक्त अपने प्रमाणसे अधिक होकर और पित्त कुपित होकर शरीरमें अनुसरण (विचरण) करतेहैं फिर यकृत और प्लीहामें प्रगट हुई रक्तकी बहानेवाली नाडियोंका रक्त संचित होकर उन नाडियोंके मुख भारी होकर रुधिरके जमनेसे गिरनेवाला हो जाताहै तब वह कुपित हुआ पित्त रक्तको भी दूषित करदेताहै ॥ २ ॥

रक्तपित्तनामका कारण।

संसर्गान्तलोहितप्रदूषणाल्लोहितगन्धवर्णानुविधानाच्चपित्तंलो-
हितमित्याचक्षते ॥ ३ ॥

रक्तके साथ पित्तका संसर्ग होनेसे और दूषित रक्तसे रक्तकी गंध और वर्ण होनेके कारण वह रक्तयुक्त पित्त- रक्तपित्त ऐसा कहाजाताहै ॥ ३ ॥

रक्तपित्तके पूर्वरूप।

तस्येमानिपूर्वरूपाणि। तद्यथा। अनन्नाभिलाषोभुक्तस्यविदा-
हःशुक्ताम्लरसगन्धस्योद्गारश्छर्देःअभीक्ष्णागमनंछर्दितस्यबी-
भत्सतास्वरभेदोगात्राणांसदनपरिदाहश्चमुखाद्धूमागमइवलोह-
लोहितमत्स्यामगन्धित्वमपिचास्यस्यरक्तहरितहारिद्रवत्वमङ्गाव-
यवशकृन्मूत्र-स्वेदलालाशिंघानकास्यकर्णमल-पिडकानाम-
ङ्गसवेदनालोहितनीलपीतश्यावानामर्चिष्मताश्चरूपाणांस्वप्न-
दर्शनमभीक्ष्णमितिलोहितपित्तपूर्वरूपाणि ॥ ४ ॥

उस रक्तपित्तके यह पूर्वरूप होतेहैं। जैसे- अन्नमें अरुचि, भोजनका विदाही परिपाक, काजी और खट्टेरसकी गंधयुक्त छर्दी तथा डकार आना, सदा छर्दका होना, बीभत्सता, स्वरभेद, अंगोंका सूजना, छातीमें दाहजैसा होना, मुखसे धूआसा निकलना और उसके मुखसे लोहा, रुधिर, आम, मछलीकीसी दुर्गंध आना, हल्दीके रंगके समान अंगोंके अवयव, मल, मूत्र, पसीना, नाकका मैल, मुखकी लार, कानका मैल और पिडकाओंका वर्ण पीला होना अथवा लाल होना और अंगोंमें पीडा होना तथा स्वप्नमें नित्य लाल, नीले, पीले, काले प्रकाशवाले रूपोंको देखना यह सब रक्तपित्त रोग प्रगट होनेसे प्रथम प्रगट (पूर्वरूप) होतेहैं ॥ ४ ॥

रक्तपित्तके उपद्रव।

उपद्रवास्तुखलुदौर्बल्यारोचकाविपाकश्वासकासज्वरातीसार-
शोफशोषपाण्डुरोगस्वरभेदाः ॥ ५ ॥

दुर्बलता, अरुचि, अन्नका न पचना, श्वास, कास, ज्वर, अतिसार, शोथ, शोष, पाण्डु, स्वरभङ्ग यह रक्तपित्तके उपद्रव होते है ॥ ५ ॥

रक्तपित्तके मार्ग।

मार्गौपुनरस्यद्वौऊर्द्ध्वञ्चाधश्चतद्बहुश्लेष्मणिशरीरेश्लेष्मसंसर्गा-

ह्रुर्द्धंप्रपद्यमानकर्णनासिकानेत्रास्येभ्य' प्रच्यवते । बहुवा-तेतुशरीरेवातसंसर्गादध प्रपद्यमानमूत्रपुरीषमार्गाभ्याप्रच्य-वते । बहुवातश्लेष्मणितुशरीरेश्लेष्मवातसंसर्गाद्वावपिमार्गौ-प्रपद्यते । तौमार्गौप्रपद्यमानसर्वेभ्यएवयथोक्तेभ्य'खेभ्य प्रच्य-वतेशरीरस्य ॥ ६ ॥

रक्तपित्तके दो मार्ग है एक ऊर्द्ध्वमार्ग दूसरा अधःमार्ग। यह रक्तपित्त-कफ-प्रधान शरीरमें कफके संसर्गसे ऊपरको गमन करताहुआ-कान, नेत्र, नासिका और मुख द्वारा निकलताहै। वातप्रधान शरीरमें वायुके संसर्गसे नीचेको गमन करता हुआ मूत्र और मलके द्वारोंसे निकलताहै। जिसके शरीरमें वायु और कफ इन दोनों-की अधिकता होतीहै उसके शरीरमें वात और कफके संसर्गसे दोनों (ऊपरके और नीचेके) मार्गों द्वारा निकलताहै। जब दोनों मार्गोंसे प्रवृत्त होताहै तो शरीरके संपूर्ण द्वारोंसे अर्थात् मुख, नासिका, नेत्र, गुदा, लिंग इन सब मार्गोंसे निकलताहै ॥ ६ ॥

रक्तपित्तका साध्यासाध्यत्व।

तत्रयदूर्द्ध्वभागंतत्साध्यंविरेचनोपक्रमणीयत्वाद्बहौषधत्वाच्च ॥ ७॥

उनसे ऊपरके मार्गसे प्रवृत्त होनेवाला रक्तपित्त विरेचन द्वारा शांत होनेसे, एवम् बहुतसी औषधियें ऊर्द्ध्वगत रक्तपित्त नाशक होनेसे ऊर्द्ध्वगत रक्तपित्त साध्य हैं ॥ ७ ॥

यदधोभागंतद्याप्यंवमनोपक्रमणीयत्वादल्पौषधत्वाच्च ॥ ८ ॥

अधोमार्गगामी-रक्तपित्त-याप्य साध्य होताहै क्योंकि उसकी शांति करनेवाली औषधियें बहुत थोड़ी हैं और उसमें वमन द्वारा शांति होतीहै ॥ ८ ॥

यदुभयभागंतदसाध्यंवमनविरेचनायोगित्वादनौषधत्वाच्च ॥ ९ ॥

जो दोनों मार्गोंसे गमन करताहै वह असाध्य है क्योंकि न तो उसमें वमन विरेचन करासक्तेहैं न उभयत' शांत करनेमें औषधी यथोचित क्रिया कर सकती ॥ ९

रक्तपित्तकी उत्पत्ति आदि।

रक्तपित्तप्रकोपस्तुखलुपुरादक्षयज्ञध्वंसेरुद्रकोपामर्षाग्निनाप्राणि-नापरिगतशरीरप्राणानामनुज्वरमभवत् ॥ १० ॥

पहले दक्षप्रजापतिका यज्ञ विध्वंस होनेके समय महादेवके कोपरूप अग्निद्वारा ज्वर उत्पन्न होनेके उपरांत रक्तपित्त उत्पन्न हुआ यह रक्तपित्त प्राणिमात्रके प्राणोंको दावाग्निके समान सर्वत्र प्रवेश करताहुआ शीघ्र नष्ट करदेताहै। इसलिये इस शीघ्रकारी रोगकी शांतिका उपाय भी शीघ्रही करना चाहिए ॥ १० ॥

तस्याशुकारिणोदावाग्नेरिवापतितस्यात्ययिकस्याशुप्रशान्तौय-
तितव्यमात्रादेशकालश्चाभिसमीक्ष्यसन्तर्पणेनापतर्पणेनवामृ-
दुमधुरशिशिरतिक्तकषायैरभ्यवहार्य्यैः प्रदेहपरिषेकावगाहसं-
स्पर्शनैर्वमनाद्यैर्वातत्रावहितेनेति ॥ ११ ॥

मात्रा, देश, काल इन सबको विचारकर सतर्पण अथवा अपतर्पण क्रियाद्वारा एवम् मृदु, मधुर, शीतल, कडुए, कसैले आदि योगोंसे रक्तपित्तको शान्त करे। अथवा लेप, परिशेक, अवगाहन, रत्नआदिका धारण, एवम् वमनआदिकोंसे अथवा अन्य जो क्रिया उचित हो उसके द्वारा रक्तपित्तको शान्त करे ॥ ११ ॥

तत्र श्लोका ।

साध्यलोहितपित्तंतद्यदूर्द्धंप्रतिपद्यते ।
विरेचनस्ययोगित्वाद्बहुत्वाद्भेषजस्यच ॥ १२ ॥

इसी विषयमें यहांपर श्लोक हैं:-ऊर्द्धगामी रक्तपित्त विरेचनके योगसे एवम् उसके नाश करनेवाली बहुतसी औषधिया होनेके कारण साध्य होताहै ॥ १२ ॥

वमनंनहिपित्तस्यहरणेश्रेष्ठमुच्यते । यश्चतत्रानुगोवायुस्तच्छा-
न्तौचावरमतम् ॥ १३ ॥ स्याच्चयोगावहंतत्रकषायतिक्तकानि-
च । तस्माद्याप्यसमाख्यातं यद्रक्तमनुलोमगम् ॥ १४ ॥
रक्तन्तुयदधोभागतद्याप्यमितिनिश्चय । वमनस्याल्पयोगित्वा
दल्पत्वाद्भेषजस्यच ॥ १५ ॥

क्योंकि पित्तको हरण करनेकेलिये वमन कराना श्रेष्ठ नहीं होता और अधोमार्ग-गामी रक्तपित्तमें वायुका ससर्ग होनेसे उसकी शान्तिके लिये वमन कराना उचित होताहै । एवम् तिक्त, कषाय पदार्थोद्वारा पित्त शान्त होताहै परन्तु वायु शान्त नहीं होता इसलिये अधोगामी रक्तपित्त चिकित्सामें कठिनाई पडनेसे याप्यसाध्य होताहै । क्योंकि अधोगामी रक्तपित्तमें यथोचित रीतिपर वमन भी नहीं करा सक्ते। और तिक्त, कषाय द्रव्योंद्वारा भी यथोचित रीतिपर शान्त नहीं करसकते । इसलिये इसको याप्यसाध्य मानतेहैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

संसृष्टदोषोंकी चिकित्सा ।

रक्तपित्तन्तुयन्मार्गौद्वावपिप्रतिपद्यते । असाध्यमपितज्ज्ञेयपू-
र्वोक्तादपिकारणात् ॥ १६ ॥ नहिसंशोधनंकिंचिदस्त्यस्यप्रति-

मार्गगम् । प्रतिमार्गश्चहरणंरक्तपित्तेविधीयते । एवमेवोपशमनंसर्वशोनास्यविद्यते ॥ १७॥ संसृष्टेषुचदोषेषुसर्वजिच्छमनमतम् ॥ १८ ॥

जो रक्तपित्त दोनो मार्गोसे प्रवृत्त होताहै वह ऊपर कहेहुए कारणोंसे असाध्य होताहै । क्योंकि उर्द्धगामी होनेमें इसमें वमन नहीं करासकते और अधःगामी होनेके कारण विरेचन नहीं करासकते इसलिये दोना मार्गोंद्वारा उभयगामी रक्तपित्तमें शोधनक्रिया नहीं होसकती अतएव सर्वथा इसका कोई उपाय शान्तिकारक नहीं होता । सब दोषोंसे मिलेहुए रक्तपित्तमें सर्वत शान्ति कारक औषधियोंका सेवन हितकर होताहै एवम् सब प्रकारसे उभयगामी रक्तपित्तको जीतनेकेलिये औषधियें भी अपना काम नहीं करसकतीं इसलिये इसको असाध्य मानाहै ॥१६॥१७॥१८॥

इत्युक्तत्रिविधोदर्करक्तमार्गविशेषत ॥ १९ ॥

इस प्रकार मार्ग विशेषसे रक्तपित्तके तीन भेद कथन कियेहैं ॥ १९ ॥

साध्यरोगको असाध्य होनेका कारण ।

एभ्यस्तुखलुहेतुभ्य किञ्चित्साध्यंनसिध्यति । प्रेष्योपकरणाभावाद्दौरात्म्याद्वैद्यदोषत । अकर्म्मतश्चसाध्यत्वकश्चिद्रोगोऽति वर्त्तते ॥ २० ॥

चार हेतुओंके अच्छा न होनेसे कोई भी रोग साध्य नहीं रहता वह चार हेतु यह हैं । परिचारक अच्छा न होनेसे, औषधी आदि उपकरण अच्छा न होनेसे, रोगीका स्वभाव अथवा, आचार अच्छा न होनेसे, एवम् वैद्यके दोषसे साध्य रोग भी असाध्य होजाताहै । तथा यत्न न करनेसे भी साध्यरोग कोई ही शान्त होताहै अर्थात् साध्यरोग भी विना उपाय किये शान्त होना कठिन होताहै ॥ २० ॥

तत्रासाध्यत्वमेकस्यात्साध्ययाप्यपरिक्रमात् ।
रक्तपित्तस्यविज्ञानमिदतस्योपदेक्ष्यते ॥ २१ ॥

साध्य, याप्यसाध्य, और असाध्य इन तीनोंमें असाध्यता सिर्फ एक प्रकारकी होतीहै अर्थात् असाध्यरोगका यत्न नहीं होसकता । साध्य और याप्यसाध्यकी क्रमपूर्वक चिकित्सा हो सकतीहै । इसलिये रक्तपित्तकी असाध्यताके लक्षण कथन करतेहैं ॥ २१ ॥

असाध्यके विशेष लक्षण ।

यत्कृष्णमथवानीलंयद्वाशक्रधनुष्प्रभम् ।
रक्तपित्तमसाध्यंतद्वासस्तोरञ्जनञ्चयत् ॥ २२ ॥

जो रक्तपित्त काला, नीला, इन्द्रधनुषके समानवर्णवाला, होताहै वह असाध्य जानना। एवम् जिसमें रगाहुआ कपडा फिर स्वच्छ न होसके उसको भी असाध्य जानना ॥ २२ ॥

भृशपूत्यतिमात्रश्चसर्वोपद्रववच्चयत्।
बलमांसक्षयेयच्चतच्चरक्तमसिद्धिमत् ॥ २३ ॥

जिस रक्तपित्तमे अत्यन्त दुर्गंध आवे, तथा सपूर्ण उपद्रवों सहित हो एवम् रोगीका बल और मास क्षीण हो वह रक्तपित्त भी असाध्य होताहै ॥ २३ ॥

येनचोपहतोरक्तरक्तपित्तेनमानव ।
पश्येदृदृश्यवियच्चैवतच्चासाध्यमसशयम् ॥ २४ ॥

जिस रक्तपित्तके होनेसे मनुष्य आकाश और सपूर्ण पदार्थोको लालवर्णका देखे वह भी असाध्य जानना ॥ २४ ॥

रक्तपित्तमे कर्तव्यता ।

तत्रसाध्यपरित्याज्ययाप्ययत्नेनयापयेत्।
साध्यश्चावहित सिद्धैर्भेपजै.साधयेद्भिषक् ॥ २५ ॥

इनम असाध्यको त्यागकर याप्यसाध्यकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करनीचाहिये। और साध्यरक्तपित्तको सिद्ध औषधिया द्वारा जीत लेनाचाहिये ॥ २५ ॥

तत्रश्लोकौ ।

कारणंनामनिर्वृत्तिपूर्वरूपाण्युपद्रवान् । मार्गौदोषानुबन्धश्चसाध्यत्वनचहेतुमत् ॥ २६ ॥ निदानेरक्तपित्तस्यव्याजहारपुनर्वसु• । वीतमोहरजोदोषलोभमानमदस्पृह• ॥ २७ ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेरक्तपित्तनिदाननामद्वितीयोऽध्याय ।

अब अध्यायका उपसहार करतेहैं। इस रक्तपित्त निदाननामक अध्यायमें रक्तपित्तके कारण, उत्पत्ति, पूर्वरूप, उपद्रव, ऊर्द्ध और अध गमन, वातादि दोषोंका अनुबन्ध, साध्य और असाध्य तथा उनके कारण यह सब मोह, रजोदोष, लोभ, मान, मद और स्पृहारहित भगवान् पुनर्वसुजीने कथन कियेहैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

इति श्रीचरकसं० नि० स्था० पं०रामप्रसादवैद्य०भाषाटीकायां रक्तपित्तनिदानं नाम द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः।

अथातोगुल्मनिदानं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम गुल्मनिदानकी व्याख्या करतेहैं—इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे।

गुल्मोंके भेद।

इहखलुपञ्चगुल्माभवन्ति। तद्यथा—वातगुल्म पित्तगुल्म श्लेष्मगुल्मोनिचयगुल्मःशोणितगुल्मइति॥ १॥

गुल्मरोग पांच प्रकारका होता है—जैसे, वातगुल्म, पित्तगुल्म, कफगुल्म और सन्निपातगुल्म तथा रक्तजगुल्म॥ १॥

अग्निवेशका प्रश्न।

एवंवादिनभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाचकथमिहभगवन्! पञ्चानांगुल्मानांविशेषमभिजानीमहे। न ह्यविशेषविद्रोगाणा-मौषधविदपिभिषक्प्रशमनसमर्थइति॥ २॥

इस प्रकार कथन करते हुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहने लगे कि हे भगवन्! इन पांच प्रकारके गुल्मोंको हम यथोचित रीतिपर कैसे जान सकतेहैं अर्थात् इनके जाननेका प्रकार कथन कीजिये क्योंकि रोगके निदानको यथोचित रीतिपर विना जाने अर्थात् रोगके विना समझे औषध क्रियामें कुशल वैद्य भी रोग शान्ति नहीं कर सकता॥ २॥

आत्रेयका उत्तर।

तमुवाचभगवानात्रेयः। समुत्थानपूर्वरूपलिङ्गवेदनोपशयवि-शेषेभ्योविशेषविज्ञानंगुल्मानांभवत्यन्येषाञ्चरोगाणामग्निवेश! तत्तुखलुगुल्मेपूच्यमाननिबोध॥ ३॥

यह सुनकर आत्रेय भगवान् कहनेलगे कि हे अग्निवेश! कारण, पूर्वरूप, रूप, वेदना और उपशयके भेदसे गुल्मोंका विशेषरूपसे अलग २ ज्ञान होसकता है। इसी प्रकार कारणादि द्वारा अन्य रोगोंका भी ज्ञान हो सकताहै। सो यहांपर गुल्मरोगके कारण आदिकोंका श्रवण करो॥ ३॥

वातगुल्म होनेका कारण।

यदापुरुषोवातलोविशेषेणज्वरवमनविरेचनातीसाराणामन्यत मेनकर्शनेनकर्शितोवातलमाहारमाहरतिशीतंवाविशेषेणाति

मात्रस्नेहपूर्वे वा वमनविरेचनेपिवत्यनुदीर्णान्वातमूत्रपुरीषवेगा-
न्विरुणद्धिअत्यशितोवापिवतिनवोदकमतिमात्रसंक्षोभिणावा-
यानेनयातिअतिव्यवायव्यायाममद्यरुच्विर्वाभिघातमिच्छतिवा-
विपमाशनशयनस्थानचंक्रमणसेवीवाभवतिअन्यद्वाकिञ्चिदे-
वंविधंवाअतिमात्रव्यायामजातंवाआरभतेतस्यापचाराद्वातः
प्रकोपमापद्यते ॥ ४ ॥

जब वातप्रधान मनुष्य-- ज्वर, वमन, विरेचन, अतिसार अथवा अन्य कर्षणद्वारा विशेषरूपसे कृश होजाताहै फिर यह वातकारक और शीतल द्रव्योंको विशेषरूपसे सेवन करे अथवा विना स्नेहन कियेही वमन, विरेचनादिकोंका उपयोग करे अथवा विनाही वेगके वमन आदिकोंको करे एवम् मल, मूत्रके वेगोंको रोके अथवा नवीन अन्नोंको और नवीन जलको अधिक मात्रासे सेवन करे या बहुत सक्षोभ (हिलाना) करनेवाली सवारीमें बैठे एवम् मैथुन व्यायाम, मद्य, इनका अधिक सेवन करे एवम् चोट लगनेसे विपम भोजन और विपम शयन करनेसे ऊचे नाच स्थानमें अधिक फिरनेसे अथवा इस प्रकारके अन्य थकावट आदि पैदा करनेवाले कारणोंसे तथा वातकारक कारणोंके उपस्थित होनेसे एवम् उपरोक्त वमन, विरेचनादिकोंमें किसीप्रकारका अपचार होनेसे वायुका कोप होताहै ॥ ४ ॥

प्रकुपित वातसे गुल्मकी उत्पत्ति ।

सप्रकुपितोमहास्रोतोऽनुप्रविश्यरौक्ष्यात्काठिनीकृत्यात्युत्यपि
ण्डितोऽवस्थानकरोति । हृदिवस्तौपार्श्वयोर्नाभ्यावासशूलमुप-
जनयति । सवातजन्याननेकविधान्वेदनाविशेषाञ्जनयति·
ग्रन्थींश्चानेकविधान् । पिण्डितश्चावतिष्ठतेसपिण्डितत्वाद्गु-
ल्मइत्युपचर्यते ॥ ५ ॥

फिर वह कुपित हुई वायु महास्रोतोंमें अर्थात् आमाशय और पक्वाशय आदिमें प्रवेश करके अपने रूक्षतादि गुणोंसे कठोरताको प्राप्तहो चक्कर खाकर एक गोलमोल गोलेको उत्पन्नकर देताहै वह गोला- वस्ती अथवा दोनों पसवाडे तथा नाभिमें पीडाको उत्पन करताहै । तथा वातजनित और भी अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करताहै तथा अनेक प्रकारकी ग्रन्थियें गोलेकी समान बनकर रहतीहैं वह ग्रन्थियें भी गुल्म-नामसे ही उच्चारण कीजातीहै ॥ ५ ॥

वातगुल्ममें उपक्रम ।

समुहुरादधातिमुहुरल्पत्वमापद्यतेअनियतवेदनाश्चलत्वाद्वायो·

पिपीलिकासंप्रकीर्णइवतोदस्फुरणायामसङ्कोचहर्षप्रलयोदय-
बहुलस्तदातुरश्चसूच्येवशकुनेवचातिविद्धमात्मानमन्यतेऽपि-
चदिवसान्तेज्वर्य्यतेशुष्यतिचास्यास्यमुच्छ्वासश्चोपरुध्यतेहृष्य-
न्तिरोमाणिवेदनाया प्रादुर्भावेप्लीहाटोपान्त्रकूजविपाकोदाव-
र्ताङ्गमर्दमन्यादिर. शखशूलब्रध्नरोगाश्चैनमुपद्रवन्तिकृष्णारु-
णपरुषत्वङ्नखनयनवदनमूत्रपुरीषश्चभवतिनिदानोक्तानिचा-
स्यनोपशेरतेविपरीतानिचोपशेरतइतिवातगुल्म ॥ ६ ॥

यह गोला वायुकी चलगति होनेसे कभी बडा, कभी छोटा प्रतीत होताहै । इसमें पीडा भी कभी अधिक और कभी कम होतीहै । और चींटिओंके काटनेके समान तोद होताहै और स्फुरण एवम् फैलाव तथा संकोच और प्रकटता तथा कभी नष्टप्रायसा हो जाना एव फिर प्रकट रूपसे दीखना यह लक्षण होतेहैं । पीडा होनेके समय रोगीको सूई चुभने एवम् शूल चुभनेके समान प्रतीत होना सायकालमें ज्वर चढना, मुखका सूखजाना, श्वास रुकरुककर आना, रोमोंका खडा होना पीडाका प्रगट होना प्लीहा, अफरा, आंतोंका बोलना, अन्नका न पचना, उदावर्त्त, अगमर्द तथा गर्दन शिर, कनपटी इनमें पीडा होना, वद निकलना आदि उपद्रवोंसे रोगीका पीडित होना एवम् त्वचा, नख, नेत्र, मुख, मूत्र, मल ये सब कालेरग तथा लालरग एवम् कठोर होजाना तथा निदानमें कहे हुए कारणोंसे रोगका बढना उसके विपरीत द्रव्योंके सेवनसे रोगका शान्त होना यह सब लक्षण वातगुल्मके होतेहैं ॥ ६ ॥

वायुपित्तप्रकोपका कारण ।

तैरेवतुकर्षणे कर्षितस्याम्ललवणकटुकक्षारोष्णतीक्ष्णशुष्क-
व्यापन्नमद्यहरितकफलाम्लानांविदाहिनाञ्चशाकमांसानामुप-
योगादजीर्णाध्यशनाद्रौक्ष्यानुगतेचामाशयेवमनविरेचनमति-
वेलसन्धारणंवातातपौचातिसेवमानस्यपित्तंसहमारुतेनप्रकोप-
मापद्यते ॥ ७ ॥

पूर्वोक्त वमन, विरेचन आदि कर्षणा द्वारा कर्षित हुआ मनुष्य यदि खट्टे, नमकीन, चरपरे, खारे, उष्ण, तीक्ष्ण और शुष्क पदार्थोंको खाताहै अथवा सडेहुए मद्य तथा दूषित शाक आदि एवम् खट्टेफल, विदाहकारी पदार्थ, शाक, मांस इनका उपयोग करताहै तथा अजीर्णकारी पदार्थ अध्यशन (अधिक भोजन या विषम भोजन) तथा

रूक्षता आदि कारणोंसे एवम् वमन, विरेचनके अतियोगसे मल मूत्र आदि वेगोंको रोकनेसे, पवन और धूपके अत्यन्त सेवनसे पित्त-वायुके साथ कुपितहो जाताहै ॥७॥

पित्तप्रकोपसे गुल्म ।

तत्प्रकुपितमारुतआमाशयैकदेशेसंवर्त्यतानेववेदनाप्रकारानुपजनयतियेउक्तावात्तगुल्मेपिततेनविदहतिकुक्षौहृद्युरसिकण्ठेवासविदह्यमान'सधूममिवोद्गारमुद्गिरत्यम्लान्वितंगुल्मावकाशश्चास्यदह्यतेदूयतेधूप्यतेउष्मायतेस्विद्यतिक्लिद्यतिमृदुशिथिलइवचास्पर्शासहोऽल्परोमाञ्चोभवतिज्वरभ्रमदवथुपिपासागलवदनतालुशोषप्रमोहविड्भेदाश्चभवन्ति।हारितहारिद्रत्वङ्नखनयनवदनमूत्रपुरीषश्चभवतिनिदानोक्तानिचास्यनोपशेरते विपरीतानिचास्यचोपशेरतइतिपित्तगुल्म. ॥ ८ ॥

उस कुपितहुए पित्तको वायु आमाशयके एकदेशमें अर्थात् ग्रहणीविभागमें प्राप्त कर वातगुल्ममें कही हुई सपूर्ण पीडाओंको प्रकट करताहै । और पूर्वोक्त प्रकारसे गुल्मको उत्पन्न करदेताहै । फिर वह पित्तगुल्म- कुक्षि, हृदय, छाती, कण्ठ इन सबमें दाहको उत्पन्न करताहै वह गुल्म दाहयुक्त होकर धूएकीसी तथा खटाईयुक्त डकारको उत्पन्न करताहै और गुल्म स्थानमें दाह तथा पीडा होतीहै एवम् धूआसा निकलता हुआ प्रतीत होताहै, पसीने आतेहैं शरीरमें गीलापनसा उत्पन्न होजाताहै । वह गीला नरम और शिथिलसा प्रतीत होताहै स्पर्शको सह नहीं सकता, थोडाथोडा रोमाञ्च होताहै एवम् ज्वर, भ्रम, दाह, प्यास, मुख, गल, तालू इनका सूखना, मोह तथा दस्तका लगना और त्वचा, नख, नेत्र, मुख, मूत्र, पुरीष इन सबका हल्दीके समान रंग होना, पित्तकारक पदार्थोंसे बढना और उसके विपरीतोंसे शान्त होना यह पित्तगुल्मके लक्षण होतेहैं ॥ ८ ॥

कफके प्रकुपित होनेका कारण ।

तैरेवतुकर्पणै कर्षितस्यात्यशनात्स्निग्धगुरुमधुरशीताशनात्पि ष्टेक्षुक्षीरमाषतिलगुडविकृतिसेवनमद्यपानाद्धरितकातिप्रीणनयादानूपोदकग्राम्यमांसातिभक्षणात्सन्धारणादातिसुहितस्य चातिप्रगाढमुदकपानात्संक्षोभणाद्वाशरीरस्यश्लेष्मासहमारुतेनप्रकोपमापद्यते ॥ ९ ॥

उसी प्रकार वमन, विरेचनादि कारणोंसे कोपित हुए मनुष्यके अधिक भोजन करनेसे तथा स्निग्ध, गुरु, मधुर, शीतल पदार्थोंके खानेसे, मैदा आदि पिष्ट पदार्थ, गुड, दूध, उड़द, तिल, मिठाई आदि पदार्थोंके अधिक सेवनसे, गदके तथा सड़ी हुई मद्यके पीनेसे, अधिक सब्जियोंके खानेसे, अनूपसचारी तथा ग्राम्यजीवोंका मांस अधिक खानेसे, मल, मूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, प्यारे पदार्थोंको बहुत ज्यादे खानेसे, अधिक जलपीनेसे शरीरके अधिक हलचल होनेसे, कफ-वायुके साथ कोपको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥

प्रकुपितकफसे गुल्मकी उत्पत्ति ।

तत्प्रकुपितमारुतआमाशयेकदेशेसंवर्त्यतानेववेदनाप्रकारानुप-जनयतियउक्तावातगुल्मे । श्लेष्मात्वस्यशीतज्वरारोचकावि पाकाङ्गमर्दहर्षहृद्रोगच्छर्दिनिद्रालस्यस्तैमित्यगौरवशिरोऽभि-तापानुपजनयाति अपिच गुल्मस्यस्थैर्य्यगौरवकाठिन्यावगाढसु सता तथाकासश्वासप्रतिश्यायानूराजयक्ष्माणश्चातिप्रवृद्ध-श्वै त्यत्वङ्नखनयनवदनसूत्रपुरीषेषुउपजनयाति। निदानोक्तानि-चास्यनोपशेरतेतद्विपरीतानिचोपशेरतइतिश्लेष्मगुल्मः ॥ १० ॥

उस कुपित हुए कफको वायु, आमाशयमें ले जाकर चक्कर देकर गोलाकार बना देतीहै और वातगुल्ममें कहेहुए पीड़ाके प्रकारोंको उत्पन्न करतीहै । फिर यह कफसे बना हुआ गुल्म-शीतज्वर, अरुचि, अजरा, अविपाक, अंगमर्द, रोमहर्ष, हृद्रोग, वमन, निद्रा, आलस्य, शरीरका गीलासा होना, गुरुता और शिरमें शूल इन सबको प्रगट करता है तथा वह गुल्म-स्थिर, भारी, कठिन, गाढतायुक्त तथा सुनता होताहै । उस गुल्मके बढ़नेसे-कास, श्वास, प्रतिश्याय, राजयक्ष्मा यह उत्पन्न होतेहैं तथा त्वचा, नख, नेत्र, मुख, मूत्र, मल, ये सब सफेद वर्णके होवेहैं । और निदानमें कहे हुए कारणोंसे रोगका बढ़ना तथा तद्विपरीत कारणोंसे शान्त होना यह सब कफजन्य गुल्मके लक्षण होवेहैं ॥ १० ॥

निचयगुल्मका वर्णन ।

त्रिदोषहेतुलिङ्गसन्निपातात्तुसान्निपातिकगुल्ममुपदिशन्तिकुश-लाः । सप्रतिपिद्धोपक्रमत्वादसाध्योनिचयगुल्मः ॥ ११ ॥

जिस गुल्ममें गुल्मदोषोंके कारण और लक्षण मिलतेहों उस गुल्मको बुद्धिमान् वैद्य सन्निपातसे उत्पन्न हुआ मानते हैं। सन्निपातके गुल्ममें चिकित्साकी विरोधता पडनेसे इसको असाध्य गुल्म जानना ॥ ११ ॥

रक्तगुल्म।

शोणितगुल्मस्तुखलुस्त्रियाएवभवतिनपुरुषस्य।
गर्भकोष्ठार्त्तवागमनवैशेष्यात् ॥ १२ ॥

रक्तजनित गुल्म केवल स्त्रियोंकोही होताहै। पुरुषोंको नहीं होता क्योंकि गर्भकोष्ठ और मासिक ऋतुका वहाव स्त्रियोंके ही होनेसे रक्तगुल्म भी स्त्रियोंके ही होताहै ॥१२॥

रक्तगुल्माकी उत्पत्तिके कारण।

पारतन्त्र्यादवैशारद्यात्सततमुपचारानुरोधाद्वेगानुदीर्णानुपरुन्धन्त्याआमगर्भेवापिअचिरात्पतितेतथाप्यचिरप्रजातायाऋतौवावातप्रकोपनान्यासेवमानायावातप्रकोपमापद्यते ॥ १३ ॥

स्त्रियें परतंत्र होनेसे और शारीरिक विषयमें मूर्ख होनेसे निरन्तर अपने घर अथवा संतान आदिके काममें लगी हुई रहतीहै और मल मूत्रादिके आये हुए वेगोंको रोकलेतीहैं अतएव वेग आदिकोंके रोकनेसे, कच्चे गर्भके पात होजानेसे अथवा प्रसूत कालमही या ऋतुकालमें वात-प्रकोप कारक पदार्थके सेवनसे उस स्त्रीके शरीरमें वायु कोपको प्राप्त होजाताहै ॥ १३ ॥

सप्रकुपितोयोन्यामुखमनुप्रविश्यार्त्तवमुपरुणद्धिमासिमासितदार्त्तवमुपरुध्यमानकुक्षिमभिवर्द्धयति ॥ १४ ॥

फिर वह कुपित हुआ वायु योनिके मुखमें प्रवेश करके स्त्रीके मासिक ऋतुको बन्द कर देता है फिर महीने २ ऋतुके रजको रोकता हुआ कूखमें वृद्धिको प्राप्त होताहै अर्थात् रक्तका गोलासा बना २ कर कूखमें बढताजाताहै ॥ १४ ॥

तस्याः शूलकासातीसारच्छर्द्यरोचकाविपाकाङ्गमर्दनिद्रालस्यकफप्रसेकाःसमुपजायन्तेस्तनयोश्चस्तन्यमोष्ठयोस्तनमण्डलयोश्चकार्ष्ण्यंग्लानिश्चक्षुषोर्मूर्च्छाहृल्लासोदोहदःश्वयथुःपादयोरीषच्चोद्गमोरोमराज्यायोन्याश्चाजननत्वमपिचयोन्यादौर्गन्ध्यमास्रावश्चोपजायते ॥ १५ ॥ केवलश्चास्यागुल्मःस्पन्दतेतामगर्भांगर्भिणीमित्याहुर्मूढाः ॥ १६ ॥

इसके होनेसे उस स्त्रीके–शूल, खासी, अतिसार, वमन, अरुचि, अन्नका न पचना, अंगमर्द, निद्रा, आलस्य, कफका थूकना ये उत्पन्न होतेहैं तथा स्त्रीना स्तनोंमें दूध उत्पन्न होजाताहै । ओष्ठ और स्तनोंके अग्रभाग काले होजातेहैं एवम् ग्लानी नेत्रोंका निकलसाजाना, मूर्च्छा, उल्लास तथा सब गर्भकेसे लक्षण होना, पावोंपर किंचित सूजन, रोमाञ्च होना, योनिका गर्भ प्रगट करनेकेसे लक्षण दीखना, योनिका दुर्गंधित तथा स्रावित होना और वह गोला किंचित् फडकताहै । उस गुल्मयुक्त स्त्रीको मूर्खलोग गर्भवती समझने लगजातेहैं । ये रक्तजगुल्मके लक्षण हैं ॥ १५॥ १६ ॥

गुल्ममें रूप ।

एषांतुखलुपञ्चानांगुल्मानांप्रागभिनिर्वृत्तेरिमानिपूर्वरूपाणि । तद्यथा–अनन्नाभिलषणमरोचकाविपाकावग्निवैषम्यंविदाहोभुक्तस्यपाककालेचायुक्त्याछर्दिरुद्गारोवातमूत्रपुरीषवेगाणामप्रादुर्भाव.प्रादुर्भूतानाञ्चाप्रवृत्ति सङ्ग॰ ईषदागमनंवावातशूलाटोपान्त्रकूजनपरिहर्षणाभिवृत्तपुरीषताअनुबुभुक्षादौर्बल्यंसौहित्यस्यचासहत्वमितिगुल्मपूर्वरूपाणि ॥ १७ ॥

इन पाच प्रकारके ही गुल्मोंके प्रगट होनेसे पहिले यह पूर्वरूप होतेहैं । जैसे अन्नकी अभिलाषा न होना, अरोचक, अन्नका न पचना, अग्निकी विषमता, भोजन कियेहुएका विदाही विपाक, भोजन पचनेके समय विनाही कारणसे छर्दि होजाना, डकारोंका आना, अधोवायु, मूत्र, मल इनके वेगोंका न होना, अथिहुए वेगोंका यथोचित निसर्ग न होना अथवा वेगोंका निवृत्त होजाना या किंचित् किंचित् आना, शूल, पेटमें वायुका फिरना, अफारा आंतोंका बोलना, रोमहर्ष, मलका गाढ्दार होना, भूख थोडी लगना, शरीर दुर्बल होजाना, पेटभरके भोजन न करसकना यह गुल्म रोगके पूर्वरूप होतेहैं ॥ १७ ॥

सर्वेष्वपिचगुल्मेषुनकश्चिद्वाताद्दतेसम्भवति । गुल्मस्तेषांसन्निपातजमसाध्यंज्ञात्वानोपक्रमेत । एकदोषजेतुयथास्वमारम्भं प्रणयेत्संसृष्टास्तुसाधारणेनकर्मणोपचरेत् ॥ १८ ॥

संपूर्ण गुल्मवायुके विना नहीं होसकते अर्थात् वायु ही स्वयम् या अन्यदोषोंसे मिश्रित होकर उत्पन्न करताहै । इन पांच प्रकारके गुल्मोंमें सन्निपात जनित गुल्मवाले रोगीको असाध्य समझकर त्याग देनाचाहिये । एक दोषसे उत्पन्न हुए गुल्मको अर्थात् वातजगुल्मको उसके कारण और लक्षणोंद्वारा जानकर चिकित्सा करे और अन्य तीन प्रकारके गुल्मोंमें यथोचित रीतिसे चिकित्सा करे ॥ १८ ॥

यद्वाअन्यदप्यविरुद्धमन्येत तदवचारयेद्विभज्यगुरुलाघवमुप
द्रवाणासमीक्ष्यगुरूपद्रवास्त्वरमाण चिकित्सेजघन्यमितरा-
स्त्वरमाणस्तुविशेषमुपलभ्यगुल्मेष्वात्ययिकेकर्मणिवातचिकि-
त्सितंप्रणयेत् ॥ १९ ॥

यदि सन्निपातज गुल्मको भी चिकित्सा योग्य समझे तो उसमे दोष और उपद्रवाकी गुरुता और लघुता विचारकर पहिले भारी उपद्रवोंको शीघ्र जीत लेवे फिर मध्यम उपद्रवोंको शान्त करे तदनन्तर बाकीके अशाको छाटते हुए अधिक समय व्यतीत होगा ऐसा विचारकर वायुकी चिकित्सा करे क्योंकि भारी उपद्रवोंके नष्ट होनेपर केवलवातमात्रकी चिकित्सा करनेसे रोगीको परमलाभ पहुच सकता है ॥१९॥

स्नेहस्वेदौवातहरौस्नेहोपसहितश्चमृदुविरेचनवस्तीनम्ललवण-
मधुराश्चरसान्युक्तितोऽवचारयेत्मारुतेह्युपशान्तेस्वल्पेनापिप्र
यत्नेनशक्यमन्योऽपिदोषोनियन्तुगुल्मेष्विति ॥ २० ॥

स्नेहन करना, सेदन करना, एवम् स्नेहयुक्त मृदु विरेचन करना तथा अम्ल-लवण और मधुर रसयुक्त, युक्तिपूर्वक वस्तीकर्म करना इनसे गुल्मरोगमें वायुकी शान्ति होर्वाह । इस प्रकार वायुके शान्त होनेपर अथवा अल्प रहजानेपर यत्नपूर्वक अन्य दोषोंको भी शान्त करनेका प्रयत्न करनाचाहिये । यह सामान्यरूपसे गुल्मोंकी चिकित्साका क्रम है ॥ २० ॥

तत्र श्लोकौ ।

गुल्मिनामनिलशान्तिरुपाये सर्वशोविधिवदाचरितव्या । मा-
रुतेह्यवजितेऽन्यमुदीर्णंदोषमल्पमपिकर्मनिहन्यात् ॥ २१ ॥

उसीको यहा कहतेहै कि गुल्मरोगमें सब तरहसे विधिपूर्वक उपायों द्वारा वायुको शान्त करे । उस वायुके शान्त होनेपर बाकी रहे दोष साधारण क्रियाद्वारा भी शान्त हो जातेहैं ॥ २१ ॥

संख्यानिमित्तरूपाणिपूर्वरूपमथापिच ।
दृष्टनिदानेगुल्मानामुपदेशश्चकर्मणाम् ॥ २२ ॥

इति अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते गुल्मनिदान नाम
तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

विलेपी, शक्कर, गुड आदि ईखके विकार दूध, मदक, दही एवम् पतले पदार्थ, नवीन पदार्थ इन सबका अधिक सेवन करना तथा देहको सुखी रखना, कसरत न करना, बहुत सोना, सुन्दर नर्म शय्या और आसन उपयोग करना इनके सिवाय अन्य भी जो आहार और विहार कफ मेद को बढानेवाले है वह सब कफजनित प्रमेहोंके निदान (कारण) होतेहैं ॥ ४ कारण कहेगये)

दोषदूष्यका वर्णन ।

बहुद्रवश्लेष्मादोषविशेषःबहुवद्धमेदोमांसश्चशरीरक्लेद शुक्र शोणितश्चवसामज्जालसीकारसश्चौज संख्याताइतिदूष्यविशेषाः ॥ ५ ॥

अब दोष और दूष्योंको कहतेहैं । कफजनित प्रमेहोंमें बहुतसे पतले कफ जो है उसको दोष कहतेहैं । बहुत और बधीहुई मेद, मास, शरीरका क्लेद रक्त, चर्बी, मज्जा, लसीका रस और ओज यह सब प्रमेहरोगमें दूष्य होते दोषको उपरोक्त कारणोंका सेवन, करनेसे कुपित करताहै इसलिये उन कफके कोपका निदान अर्थात् हेतु मानागयाहै । अपने कारणोंसे बढाहुआ आदि धातुओंको दूषित करताहै इसलिये उसको दोष कहतेहैं । उस दोष आदि धातुए दूषित होती हैं इसलिये उनको दूष्य कहाजाताहै ॥ ५ ॥

प्रकुपित कफके कर्म ।

त्रयाणामेषानिदानादिविशेषाणासन्निपातेक्षिप्रंश्लेष्माप्रकोपमापद्यतेप्रागतिभूयस्त्वात् । सप्रकुपित क्षिप्रमेव विसृर्तिलभते । शरीरशैथिल्यात्सविसर्पन् मेदसैवादितोमिश्रीभावंगच्छति । मेदसश्चैवबहुबद्धत्वात्मश्चगुणानागुणै समानगुणभूयिष्ठत्वातसमेदसामिश्रीभवन्दूषयत्येतद्विकृतत्वात्सविकृतोदुष्टेनमेदसोपहित.ऽ दमांसाभ्यासंसर्गगच्छति । क्लेदमानयोरतिप्रमाणाभित्वात्समांसमासप्रदोषात्पूतिमांसपिडका शराविकाकच्छपिका संजनयतिअप्रकृतिभूतत्वाच्छरीरक्लेदपुनर्दूषयन्परिणमयति । मूत्रवहाणांस्रोतसानद्वंणमभिप्रप

क्लेदोपहितानिगुरूणिमुखान्यासाद्यप्रतिरुध्यते । तत स्थैर्य्य-साध्यतावाजनयतिप्रकृतिविकृतिभूतत्वात् ॥ ६ ॥ शरीरक्लेद-स्तुश्लेष्ममेदोमिश्र प्रविशन्मूत्राशयेमूत्रत्वमापद्यमान श्लैष्मिकैरेभिर्दशभिर्गुणैरुपसृज्यतेवैषम्यहानिवृद्धियुक्तै । तद्यथा—श्वेतशीतमूर्त्तपिच्छिलाच्छस्निग्धगुरुमधुरसान्द्रप्रसादगन्धैस्तत्रयेनगुणेनैकेनानेकेनवाभूयस्तरमुपसृज्यतेतत्समाख्यंगौण नामविशेषप्राप्नोति ॥ ७ ॥

इन निदान और दोष तथा दूष्योंके सयोगसे कफ कुपित होताहै क्योंकि वह प्रथम ही अधिकतायुक्त होताहै । वह कुपित हुआ कफ सपूर्ण शरीरमें झट फैल जाताहै । शरीरकी शिथिलतासे इधर ऊधर फिरता हुआ वही कफ पहिले मेदमें मिलजाताहै फिर मेदके बहुत और बध्यहोनेके कारण तथा मेदके समान गुणवाला होनेसे वह कफ मेदमें मिलकर मेदको बिगाड देताहै । फिर विकृत हुए मेदके सयोगसे शरीरके क्लेद और मासमें मिलजाताहै । उस क्लेद और मासके अत्यन्त बढनानेसे मासमें—मासके दोषसे दुर्गंधित मासकी शराविका, कच्छपिका आदि पीडका उत्पन्न होजातीहै । फिर वह दूषित कफ मेदादिकासे मिलाहुआ मूत्रको दूषित करके प्रकृतिस्थमूत्रको बिगाड देताहै । तब मूत्रवाही स्रोतोंके मुख मेद और क्लेदके द्वारा भारी कर देता है और रोक देता है । तथा वक्षण और बस्तीके मुखोंको भी भारी कर देताहै । फिर उन छिद्राके मुख दृढ होजाते है अतएव जिर्णी प्रकार प्रकृतिस्थ होनेसे साध्य भी होजातेहै । कफ और मेदसे मिश्रित हुआ शरीरका क्लेद—मूत्राशयमें प्राप्त होकर मूत्ररूप होजाताहै फिर वह कफजनित दश प्रकारके विषमता न्यूनता एवम अधिकता युक्त गुणोंको उत्पन्न करताहै । जैसे—श्वेतता, शीतलता, मूर्तता, पिच्छलता अच्छता, स्निग्धता, गुरुता, मधुरता, सान्द्रता एवम् गधता इन दश गुणोंको उत्पन्न करताहै । इनमे यदि वह क्लेद एक गुणयुक्त हो तो उस कहा जाताहै और बहुतसे गुणयुक्त होनेसे गौण कहा जाता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

प्रमेहोंके नाम ।

तेतुखल्विमेदशप्रमेहानामविशेषेणभवन्ति। तथाउदकमेहश्चे-क्षुमेहश्चसान्द्रमेहश्चसान्द्रप्रसादमेहश्चशुक्लमेहश्चशुक्रमेहश्च शी-तमेहश्चसिकतामेहश्चशनैर्मेहश्चलालामेहश्चेति ॥ ८ ॥

फिर उन दश गुणयुक्त होनेसे दश प्रकारके प्रमेहोंको उत्पन्न करताहै। वह दश प्रमेह यह हैं-उदकमेह, इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सान्द्रप्रसादमेह, शुक्लमेह, शुक्रमेह, शीतमेह, सिकतामेह, शनैर्मेह और लालामेह ॥ ८ ॥

कफप्रमेहका साध्यत्व ।

तेदशप्रमेहा साध्या समानगुणमेदः स्थानत्वात्कफस्यप्राधान्यात्समानक्रियत्वाच्च ॥ ९ ॥

वह दश प्रकारके प्रमेह साध्य होतेहैं क्योंकि मेदके समान गुण होनेसे, मेदमें कफके प्रधान होनेसे तथा कफ और मेदकी समान चिकित्सा होनेसे साध्य होतेहैं। अर्थात् जो चिकित्सा कफनाशक की जायेगी वह मेदके विकारोंको भी शान्त करती है। इसलिये चिकित्सामें विरोध न पडनेसे कफजनित प्रमेह साध्य होतेहैं ॥ ९ ॥

उदकमेहका लक्षण ।

तत्र श्लोका ।

श्लेष्मप्रमेहविज्ञानार्थां । अच्छबहुसितशीतनिर्गन्धमुदकोपमम् । श्लेष्मकोपान्नरोमूत्रमुदमेहीप्रमेहति ॥ १० ॥

उन कफके प्रमेहोंके जाननेके लिये यहांपर श्लोक कहे जातेहैं।

उदकमेही मनुष्य-कफके कोपसे स्वच्छ बहुत, सफेद, शीतल, निर्गंध, जलके समान मूत्रको मूतता है ॥ १० ॥

इक्षुमेहके लक्षण ।

अत्यर्थमधुरशीतमीषत्पिच्छिलमाविलम् ।
काण्डेक्षुरससङ्काशश्लेष्मकोपात्प्रमेहति ॥ ११ ॥

इक्षुमेही मनुष्य-अधिक मधुर, शीतल, किंचित् पिच्छल, गदला, काण्डेक्षुके रसके समान मूतता है ॥ ११ ॥

सान्द्रमेहके लक्षण ।

यस्यपर्युषितमूत्रसान्द्रीभवति भाजने ।
पुरुषकफकोपेनतमाहुः सान्द्रमेहिणम् ॥ १२ ॥

सान्द्रमेही मनुष्यका मूत्र-रातभर रक्खा रहनेसे गाढा और सान्द्रयुक्त होजाता है इसलिये इस मनुष्यको [illegible] ॥ १२ ॥

सान्द्रप्रसादमेहके लक्षण ।

यस्यसहन्यतेमूत्रकिञ्चित्किञ्चित्प्रसीदति ।
सान्द्रप्रसादमेहीतितमाहु श्लेष्मकोपत ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-देरतक रक्खा रहनेसे नीचेसे जमजाय और ऊपरसे हिलानेसे कुछ कुछ फैलावयुक्तसा होजाय उसको सान्द्रप्रसादमेही कहतेहैं ॥ १३ ॥

शुक्लमेहके लक्षण ।

शुक्लपिष्टनिभमूत्रमभीक्ष्णय प्रमेहति ।
पुरुपकफकोपेनतमाहु शुक्लमेहिनम् ॥ १४ ॥

जो मनुष्य-श्वेत और पिट्ठीके धोवनके समान मूत्र करता है उसको शुक्लमेही कहतेहैं ॥ १४ ॥

शुक्रमेहके लक्षण ।

शुक्राभशुक्रमिश्रवामुहुर्मेहतियोनर ।
शुक्रमेहिणमेवाहु पुरुपश्लेष्मकोपत ॥ १५ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-शुक्रयुक्त अथवा शुक्रके समान हो तथा वह वारवार थोडा थोडा मूतता हो उसको कफजनित शुक्रमेह कहतेहैं ॥ १५ ॥

शीतमेहके लक्षण ।

अत्यर्थशीतमधुरमूत्रक्षरतियोभृशम् ।
शीतमेहिनमाहुस्तपुरुपश्लेष्मकोपत ॥ १६ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-अधिक, शीतल एवम् मधुर उतरता है उनको कफजनित शीतमेही कहतेहैं ॥ १६ ॥

सिकतामेहके लक्षण ।

मूर्त्तान्मूत्रगतान्दोपानणून्मेहतियोनर ।
सिकतामेहिनविद्यात्तरतश्लेष्मकोपत ॥ १७ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-कठिन स्पर्शवाले रेतकेसे कणकोंयुक्त हो उसको सिकतामेही कहतेहैं ॥ १७ ॥

शनैर्मेहके लक्षण ।

मन्दंमन्दमवेगन्तुकृच्छ्रंयोमूत्रयेच्छनै ।
शनैर्मेहिनमाहुस्तपुरुपश्लेष्मकोपत ॥ १८ ॥

फिर उन दश गुणयुक्त होनेसे दश प्रकारके प्रमेहोंको उत्पन्न करताहै। वह दश प्रमेह यह है-उदकमेह, इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सान्द्रप्रसादमेह, शुक्लमेह, शुक्रमेह, शीतमेह, सिकतामेह, शनैर्मेह और लालामेह ॥ ८ ॥

कफप्रमेहका साध्यत्व ।

तेदशप्रमेहा साध्या समानगुणमेद स्थानत्वात्कफस्यप्राधान्यात्समानक्रियत्वाच्च ॥ ९ ॥

वह दश प्रकारके प्रमेह साध्य होतेहै क्योंकि मेदके समान गुण होनेसे, मेदमें कफके प्रधान होनेसे तथा कफ और मेदकी समान चिकित्सा होनेसे साध्य होतेहै। अर्थात् जो चिकित्सा कफनाशक की जायेगी वह मेदके विकारोंको भी शान्त करती है। इसलिये चिकित्सामें विरोध न पडनेसे कफजनित प्रमेह साध्य होतेहैं ॥ ९ ॥

उदकमेहका लक्षण ।

तत्र श्लोका ।

श्लेष्मप्रमेहविज्ञानार्थो । अच्छबहुसितशीतनिर्गन्धमुदकोपमम् । श्लेष्मकोपान्नरोमूत्रमुदमेहीप्रमेहति ॥ १० ॥

उन कफके प्रमेहोंके विज्ञानके लिये यहापर श्लोक कहे जातेहै।

उदकमेही मनुष्य-कफके कोपसे स्वच्छ बहुत, सफेद, शीतल, निर्गंध, जलके समान मूत्रको मूतता है ॥ १० ॥

इक्षुमेहके लक्षण ।

अत्यर्थमधुरशीतमीषत्पिच्छिलमाविलम् ।
काण्डेक्षुरससङ्काशश्लेष्मकोपात्प्रमेहति ॥ ११ ॥

इक्षुमेही मनुष्य-अधिक मधुर, शीतल, किंचित् पिच्छल, गदला, काण्डेक्षुके रसके समान मूतता है ॥ ११ ॥

सान्द्रमेहके लक्षण ।

यस्यपर्य्युषितमूत्रंसान्द्रीभवति भाजने ।
पुरुषकफकोपेनतमाहु सान्द्रमेहिणम् ॥ १२ ॥

सान्द्रमेही मनुष्यका मूत्र-देरतक रक्खा रहनेसे गाढा और आतयुक्तसा होजाता है इसीलिये इस कफजनित प्रमेहको सान्द्रमेह कहतेहैं ॥ १२ ॥

सान्द्रप्रसादमेहके लक्षण ।

यस्यसहन्यतेमूत्रंकिञ्चित्किञ्चित्प्रसीदति ।
सान्द्रप्रसादमेहीतितमाहुःश्लेष्मकोपतः ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-देरतक रक्खा रहनेसे नीचेसे जमजाय और उपरसे हिलानेसे कुछ कुछ फलावयुक्तसा होजाय उसको सान्द्रप्रसादमेही कहतेहैं ॥ १३ ॥

शुक्लमेहके लक्षण ।

शुक्लपिष्टनिभमूत्रमभीक्ष्णंय प्रमेहति ।
पुरुषकफकोपेनतमाहु शुक्लमेहिनम् ॥ १४ ॥

जो मनुष्य-श्वेत और पिट्ठीके धोवनके समान मूत्र करता है उसको शुक्लमेही कहतेहै ॥ १४ ॥

शुक्रमेहके लक्षण ।

शुक्राभशुक्रमिश्रवामुहुर्मेहतियोनरः ।
शुक्रमेहिणमेवाहु पुरुषश्लेष्मकोपतः ॥ १५ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-शुक्रयुक्त अथवा शुक्रके समान हो तथा वह वारम्बार थोडा थोडा मूतता हो उसको कफजनित शुक्रमेह कहतेहैं ॥ १५ ॥

शीतमेहके लक्षण ।

अत्यर्थशीतमधुरमूत्रक्षरतियोभृशम् ।
शीतमेहिनमाहुस्तपुरुषश्लेष्मकोपतः ॥ १६ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-अधिक, शीतल एवम मधुर उतरता है उसको कफजनित शीतमेही कहतेहैं ॥ १६ ॥

सिकतामेहके लक्षण ।

मूर्त्तान्मूत्रगतान्दोषानणून्मेहतियोनरः ।
सिकतामेहिनंविद्यात्तरंश्लेष्मकोपतः ॥ १७ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-कठिन स्पर्शवाले रेतसे कणकोंयुक्त हो उसको सिकतामेही कहतेहैं ॥ १७ ॥

शनैर्मेहके लक्षण ।

मन्दंमन्दमवेगन्तुकृच्छ्रंयोमूत्रयेच्छनैः ।
शनैर्मेहिनमाहुस्तंपुरुषश्लेष्मकोपतः ॥ १८ ॥

फिर उन दश गुणयुक्त होनेसे दश प्रकारके प्रमेहोंको उत्पन्न करताहै। वह दश प्रमेह यह हैं-उदकमेह, इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सान्द्रप्रसादमेह, शुक्लमेह, शुक्रमेह, शीतमेह, सिकतामेह, शनैर्मेह और लालामेह ॥ ८ ॥

कफप्रमेहका साध्यत्व ।

तेदशप्रमेहाःसाध्या.समानगुणमेदःस्थानत्वातूकफस्यप्राधा-न्यातूसमानक्रियत्वाच्च ॥ ९ ॥

वह दश प्रकारके प्रमेह साध्य होतेहैं क्योंकि मेदके समान गुण होनेसे, मेदमें कफके प्रधान होनेसे तथा कफ और मेदकी समान चिकित्सा होनेसे साध्य होतहैं। अर्थात् जो चिकित्सा कफनाशक की जायेगी वह मेदके विकारोंको भी शान्त करती है। इसलिये चिकित्सामें विरोध न पडनेसे कफजनित प्रमेह साध्य होतेहैं ॥ ९ ॥

उदकमेहका लक्षण ।

तत्र श्लोकाः ।

श्लेष्मप्रमेहविज्ञानार्थां । अच्छबहुसितशीतनिर्गन्धमुदकोप-मम् । श्लेष्मकोपान्नरोमूत्रमुदमेहीप्रमेहति ॥ १० ॥

उन कफके प्रमेहोंके विज्ञानके लिये यहांपर श्लोक कहे जातेहैं ।

उदकमेही मनुष्य-कफके कोपसे स्वच्छ बहुत, सफेद, शीतल, निर्गंध, जलके समान मूत्रको मूतता है ॥ १० ॥

इक्षुमेहके लक्षण ।

अत्यर्थमधुरशीतमीषत्पिच्छिलमाविलम् ।
काण्डेक्षुरससङ्काशश्लेष्मकोपात्प्रमेहति ॥ ११ ॥

इक्षुमेही मनुष्य-अधिक मधुर, शीतल, किंचित् पिच्छल, गदला, काण्डेक्षुके रसके समान मूतता है ॥ ११ ॥

सान्द्रमेहके लक्षण ।

यस्यपर्य्युषितमूत्रसान्द्रीभवति भाजने ।
पुरुषकफकोपेन्नतमाहु सान्द्रमेहिणम् ॥ १२ ॥

सान्द्रमेही मनुष्यका मूत्र-देरतक रक्खा रहनेसे गाढा और आन्तयुक्तसा होजाता है इसीलिये इस कफजनित प्रमेहको सान्द्रमेह कहतेहैं ॥ १२ ॥

सान्द्रप्रसादमेहके लक्षण ।

यस्यसहन्यतेमूत्रंकिञ्चित्किंचित्प्रसीदति ।
सान्द्रप्रसादमेहीतितमाहु श्लेष्मकोपत ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-देरतक रक्खा रहनेसे नीचेसे जमजाय और ऊपरसे हिला-नेमें कुछ कुछ फलावयुक्तसा होजाय उसको सान्द्रप्रसादमेही कहतेहैं ॥ १३ ॥

शुक्लमेहके लक्षण ।

शुक्लपिष्टनिभमूत्रमभीक्ष्णय.प्रमेहति ।
पुरुषकफकोपेनतमाहु शुक्लमेहिनम् ॥ १४ ॥

जो मनुष्य-श्वेत और पिट्ठीके धोवनके समान मूत्र करता है उसको शुक्लमेही कहतेहैं ॥ १४ ॥

शुक्रमेहके लक्षण ।

शुक्राभशुक्रमिश्रवामुहुर्मेहतियोनर ।
शुक्रमेहिणमेवाहु पुरुषश्लेष्मकोपत ॥ १५ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-शुक्रयुक्त अथवा शुक्रके समान हो तथा वह वारंवार थोडा थोडा मूतता हो उसको कफजनित शुक्रमेह कहतेहैं ॥ १५ ॥

शीतमेहके लक्षण ।

अत्यर्थशीतमधुरमूत्रक्षरतियोभृशम् ।
शीतमेहिनमाहुस्तपुरुषश्लेष्मकोपत ॥ १६ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-अधिक, शीतल एवम मधुर उतरता है उसको कफजनित शीतमेही कहतेहैं ॥ १६ ॥

सिकतामेहके लक्षण ।

मूर्त्तान्मूत्रगतान्दोषानणून्मेहतियोनर ।
सिकतामेहिनविद्यात्तरतश्लेष्मकोपत ॥ १७ ॥

जिस मनुष्यका मूत्र-कठिन स्पर्शवाले रेतकेसे कणकोंयुक्त होउसको सिकतामेही कहतेहैं ॥ १७ ॥

शनैर्मेहके लक्षण ।

मन्दंमन्दमवेगन्तुकृच्छ्रंयोमूत्रयेच्छनै ।
शनैर्मेहिनमाहुस्तपुरुषश्लेष्मकोपत ॥ १८ ॥

जिस मनुष्यके कफ कोपके कारण–वेगरहित थोडा २ एवम् शनै' शनै' मूत्र आता हो उसको शनैर्मेही कहते है ॥ १८ ॥

आलालमेहके लक्षण ।

तन्तुबद्धमिवालालपिच्छिलय.प्रमेहति। आलालमेहिनंविद्यात्त नरश्लेष्मकोपत ॥ इत्येते दश प्रमेहा. श्लेष्मप्रकोपनिमित्ता व्याख्याता ॥ १९ ॥

जिस मनुष्यको–ततुओंके समान, पिच्छिल, लारयुक्त मूत्र आता हो उसको लालामेही कहतेहै । इस प्रकार कफकोपसे उत्पन्न हुए दश प्रकारके प्रमेहोंका कथन कियागयाहै । इति कफजनित दशमेह ॥ १९ ॥

पित्तप्रमेहका लक्षण ।

उष्णाम्ललवणक्षारकटुकाजीर्णभोजनोपसेविनस्तथातितीक्ष्णातपाग्निसन्तापश्रमक्रोधविषमाहारोपसेविनश्चतथात्म कशरीरस्यैवक्षिप्रंपित्तप्रकोपमापद्यते ॥ २० ॥

अब पित्तके प्रमेहोंके कारणोंको कहतेहै । गर्म, खट्टे, नमकीन चरपरे एवम् अजीर्णकर्त्ता पदार्थोंके सेवनसे तथा अजीर्णमें भोजनके करनेसे एवम् अत्यन्त तीक्ष्ण, धूप, अग्नि, सताप, श्रम, क्रोध और विषम आहारके सेवनसे पित्तप्रकृति मनुष्यके शरीरमें पित्तका शीघ्र प्रकोप होजाताहै ॥ २० ॥

तत्प्रकुपितंतथैवानुपूर्व्याप्रमेहानिमान्षट्क्षिप्रमभिनिर्वर्त्तयति ॥ २१ ॥

वह कुपित हुआ पित्त पूर्वोक्त क्रमसे मेदादिकोंको दूषित करता हुआ छःप्रकारके प्रमेहोंको उत्पन्न करताहै ॥ २१ ॥

छः प्रमेहोंके नाम ।

तेषामपिचपित्तगुणविशेषेणनामविशेषा । तद्यथा–क्षारप्रमेहश्चकालमेहश्चनीलमेहश्चलोहितमेहश्चमञ्जिष्ठामेहश्चहरिद्रामेहश्चेतितेषड्भिरेवक्षाराम्ललवणकटुकाविस्त्रोष्णै [illegible] पूर्वव त्समन्विता । सर्वएवते [illegible] पक्रमत्वाच्चेति ॥ २२ ॥

उन छ ओंके पित्तगुणके भेदसे छ प्रकारके नाम होतेहैं । जैसे-क्षारमेह, कालमेह, नीलमेह, लोहितमेह, मजिष्ठामेह, हरिद्रामेह, यह छः प्रकारके ही प्रमेह-क्षार, अम्ल, लवण, कटु, विस्र, ऊष्ण इन पित्तके गुणोंसे युक्त होतेहैं । यह पित्तके छःप्रकारके प्रमेह-मेदके गुणोंसे विरुद्ध क्रिया द्वारा शान्त होनेवाले होनेसे याप्य साध्य होतेहै अर्थात् इन पित्तजनित विकारोंको शान्त करनेवाली क्रिया मेदके विकारोंको शमन करनेवाली नहीं होसकती इसलिये चिकित्सामें विषमता पडनेसे इन प्रमेहोंको याप्य साध्य कहाहै ॥ २२ ॥

क्षारमेहीके लक्षण ।

तत्र श्लोका ।

पित्तप्रमेहविज्ञानार्था । गन्धवर्णरसस्पर्शैर्यथाक्षारस्तथात्म कम् । पित्तकोपान्नरोमूत्रक्षारमेहीप्रमेहाति ॥ २३ ॥

उन पित्तके प्रमेहोंके विज्ञानके लिये यहांपर श्लोक कहतेहै । क्षारप्रमेहमें-पित्तके कोपसे गंध, वर्ण, रस, और स्पर्श यह सब क्षारके समान गुणोंसे युक्त मूत्र होताहै ॥ २३ ॥

कालमेहीके लक्षण ।

मसीवर्णमजस्रयोमूत्रमुष्णप्रमेहति ।
पित्तस्यपरिकोपेनतंविद्यात्कालमेहिनम् ॥ २४ ॥

पित्तके कोपसे स्याहीके समान काला और गर्म मूत्र जिसको नित्य आताहै उसको कालमेही कहते है ॥ २४ ॥

नीलमेहीके लक्षण ।

चाषपक्षनिभमूत्रमम्लमेहतियोनरः ।
पित्तस्यपरिकोपेनतंविद्यान्नीलमेहिनम् ॥ २५ ॥

जिसको नीलकण्ठके परके समान-नीलवर्णका मूत्र थोडा थोडा आताहै उसको नीलमेही कहतेहैं ॥ २५ ॥

रक्तमेहीके लक्षण ।

विस्रलवणमुष्णञ्चरक्तंमेहतियोनरः ।
पित्तस्यपरिकोपेनतंविद्याद्रक्तमेहिनम् ॥ २६ ॥

रक्तमेही मनुष्यको-आमकीसी गन्धयुक्त, नमकीन, गर्म तथा रक्तके समान मूत्र आताहै-उसको रक्तमेही कहतेहैं ॥ २६ ॥

मञ्जिष्ठमेहीके लक्षण ।

मञ्जिष्ठारूपियोऽजस्त्रभृशंविस्त्रप्रमेहति ।
पित्तस्यपरिकोपात्तंविद्यान्माञ्जिष्ठमेहिनम् ॥ २७ ॥

जिस मनुष्यको मजीठके समान बहुत गन्धवाला नित्य मूत्र आताहै उसको मञ्जिष्ठामेही कहतेहैं ॥ २७ ॥

हरिद्रामेहीके लक्षण ।

हरिद्रोदकसङ्काशकटुकंय प्रमेहति । पित्तस्यपरिकोपात्तुविद्याद्धारिद्रमेहिनम् ॥ इतिषट्प्रमेहाःपित्तप्रकोपनिमित्ताव्याख्याता ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यको हल्दीके समान वर्णवाला और कटुमूत्र आताहै उसको हरिद्रामेही कहतेहैं । इस प्रकार पित्तके कोपसे उत्पन्नहुए छःप्रमेहोंका कथन कियागयाहै । इति पित्तजनितषट्प्रमेहा ॥ २८ ॥

वातप्रमेहहोनेका कारण ।

कटुककषायतिक्तरूक्षलघुशीतव्यवायव्यायामवमनविरेचनास्थापनशिरोविरेचनातियोगसन्धारणानशनाभिघातातपोद्वेगशोकशोणिताभिषेकजागरणविषमशरीरन्यासानभ्युपसेवमानस्यतथात्मकशरीरस्यैवक्षिप्रवायु प्रकोपमापद्यते । सप्रकुपितस्तथात्मकेशरीरेविसर्पन्यदावसामादायमूत्रवहानिस्त्रोतांसिप्रतिपद्यतेतदावसामेहमभिनिर्वर्त्तयति ॥ २९ ॥

अब वातके प्रमेहोंका कथन करतेहैं । कडुए, कसैले, चरपरे रूखे, हलके शीतल पदार्थोंके सेवनसे, मैथुन और अधिक परिश्रमके करनेसे, वमन, विरेचन, आस्थापन, शिरोविरेचन इनके अति योगसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, लङ्घन करनेसे, चोट लगनेसे, तप, उद्वेग और शोकके होनेसे रक्तके निकलनेसे अधिक जागनेसे, शरीरको विषमावस्थामें रखनेसे तथा अन्य वातकोपकारक कारणोंसे वातप्रधान मनुष्यके शरीरमें शीघ्र वायु कोपको प्राप्तहोताहै । वह कुपित हुआ वातात्मक शरीरमें इधर

उधर भ्रमण करताहुआ वसाधातु (चर्बी) से मिलकर मूत्रवाहिनी स्रोतोंमें प्रवेशकर वसामेहको उत्पन्नकरताहै ॥ २९ ॥

मज्जामेहका कारण।

यदापुनर्मज्जानमूत्रवस्तावाकर्षतितदामज्जामेहमभिनिर्वर्त्त यति ॥ ३० ॥

फिर वह जब मज्जाको आकर्षण करताहुआ मूत्रवस्तीमें प्राप्त होताहै तो मज्जामेहको उत्पन्न करताहै ॥ ३० ॥

हस्तिमेहका कारण।

यदालसीकामूत्राशयेऽभिवहन्मूत्रमनुबन्धश्च्योतयतिलसीका तिवहुत्वाद्विक्षेपणाच्चवायो खल्वस्यातिमूत्रप्रवृत्तिसङ्गंकरोति, तदा समत्तइवगज क्षरत्यजस्रमूत्रमवेगतहस्तिमेहिनमाचक्षते ॥ ३१ ॥

जब वह (कुपितवायु) लसीकामें मिलकर मूत्राशयमें प्रवेश करताहै तब लसीकाकी अधिकता होनेसे और वायुका विक्षेपण होनेसे लसीकायुक्त मूत्रकी अधिक प्रवृत्ति होतीहै। फिर वह मनुष्य मत्तहस्तीके समान निरन्तर विना वेग मूत्रको मूतता रहताहै उसको हस्तीमेह कहतेहैं ॥ ३१ ॥

मधुमेहका कारण।

ओज पुनर्मधुरस्वभावतद्रौक्ष्याद्वायु कषायत्वेनाभिससृज्य मूत्राशयेऽभिवहतितदामधुमेहिन करोति ॥ ३२ ॥

ओजधातु स्वभावसे मधुर है। उसको जब वायु रूक्षतासे तथा कषाय स्वभावसे आकर्षण करलेती है और मूत्राशयमें लेजाकर मधुरस्वभाववाले ओजसे प्रमेहको उत्पन्न करताहै उसको मधुमेह कहतहैं ॥ ३२ ॥

वातप्रमेहोंको असाध्यत्व।

तानिमाश्चतुर प्रमेहान्वातजानसाध्यानाचक्षते। महात्ययिकद्विप्रतिपिद्धोपक्रमत्वात्तेपामपि चपूर्ववदगुणविशेषेणनामविशेषा ॥ ३३ ॥

इन वातसे उत्पन्न हुए चार प्रमेहोंको असाध्य कहतेहैं क्योंकि यह प्रमेह विरुद्धतामें विशेष पड़नेसे और अयत्न साध्यरूप होनेसे असाध्य होतेहैं। और इनमें वसा और मज्जा आदि गुणयुक्त मूत्रके आनेसे उन्हींके समान नाम रक्खेगयेहैं॥३३॥

रक्तमेही मनुष्यको-आमकीसी गधयुक्त, नमकीन, गर्म तथा रक्तके समान मूत्र आताहै-उसको रक्तमेही कहतेहैं ॥ २६ ॥

मञ्जिष्ठमेहीके लक्षण ।

मञ्जिष्ठारूपियोऽजस्त्रभृशाविस्त्रप्रमेहति ।
पित्तस्यपरिकोपात्तंविद्यान्माञ्जिष्ठमेहिनम् ॥ २७ ॥

जिस मनुष्यको मजीठके समान बहुत गधवाला नित्य मूत्र आताहै उसको मञ्जिष्ठामेही कहतेहैं ॥ २७ ॥

हरिद्रामेहीके लक्षण ।

हरिद्रोदकसङ्काशकटुकय प्रमेहति । पित्तस्यपरिकोपात्तुविद्याद्धारिद्रमेहिनम् ॥ इतिपट्प्रमेहाःपित्तप्रकोपनिमित्ताव्याख्याता ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यको हल्दीके समान वर्णवाला और कटुमूत्र आताहै उसको हरिद्रामेही कहतेहैं । इस प्रकार पित्तके कोपसे उत्पन्नहुए छःप्रमेहियोंका कथन कियागयाहै । इति पित्तजनितपट्प्रमेहाः ॥ २८ ॥

वातप्रमेहहोनेका कारण ।

कटुककपायतिक्तरूक्षलघुशीतव्यवायव्यायामवमनविरेचनास्थापनशिरोविरेचनातियोगसन्धारणानशनाभिघातातपोद्वेगशोकशोणिताभिषेकजागरणविषमशरीरन्यासानभ्युपसेनमानस्यतथात्मकशरीरस्यैवक्षिप्रवायु प्रकोपमापद्यते । सप्रकुपितस्तथात्मकेशरीरेविसर्पन्यदावसामादायमूत्रवहानिस्रोतांसिप्रतिपद्यतेतदानसामेहमभिनिर्वर्त्तयति ॥ २९ ॥

अथ वातके प्रमेहोंका कथन करतेहैं । कड़ुए, कसैले, चरपरे रूखे, हल्के शीतल पदार्थोंके सेवनसे, मैथुन और अधिक परिश्रमके करनेसे, वमन, विरेचन, आस्थापन, शिरोविरेचन इनके अति योगसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, लंघन करनेसे, चोट लगनेसे, तप, उद्वेग और शोकके होनेसे रक्तके निकलनेसे अधिक जागनेसे, शरीरको विषमावस्थामें रखनेसे तथा अन्य वातकोपकारक कारणोंसे वातप्रधान मनुष्यके शरीरमें शीघ्र वायु कोपको प्राप्तहोताहै । वह कुपित हुआ वातात्मक शरीरमें इधर

इधर भ्रमण करताहुआ वसाधातु (चर्बी) से मिलकर मूत्रवाहिनी स्रोतोंमें प्रवेशकर वसामेहको उत्पन्नकरताहै ॥ २९ ॥

मज्जामेहका कारण।

यदापुनर्मज्जानमूत्रवस्तावाकर्षतितदामज्जामेहमभिनिर्वर्त्त यति ॥ ३० ॥

फिर वह जब मज्जाको आकर्षण करताहुआ मूत्रवस्तीमें प्राप्त होताहै तो मज्जा मेहको उत्पन्न करताहै ॥ ३० ॥

हस्तिमेहका कारण।

यदालसीकामूत्राशयेऽभिवहन्मूत्रमनुबन्धश्च्योतयतिलसीकातिबहुत्वाद्विक्षेपणाच्चवायो खल्वस्यातिमूत्रप्रवृत्तिसङ्गंकरोति, तदा समत्तइवगज क्षरत्यजस्त्रमूत्रमवेगतहस्तिमेहिनमाचक्षते ॥ ३१ ॥

जब वह (कुपितवायु) लसीकामें मिलकर मूत्राशयमें प्रवेश करताहै तब लसीकाकी अधिकता होनेसे और वायुका विक्षेपण होनेसे लसिकायुक्त मूत्रकी अधिक प्रवृत्ति होतीहै। फिर वह मनुष्य मत्तहस्तीके समान निरन्तर विना वेग मूत्रको मूतता रहताहै उसको हस्तीमेह कहतेहैं ॥ ३१ ॥

मधुमेहका कारण।

ओज.पुनर्मधुरस्वभावतद्रौक्ष्याद्वायु कषायत्वेनाभिसृज्य मूत्राशयेऽभिवहतितदामधुमेहिनं करोति ॥ ३२ ॥

ओजधातु स्वभावसे मधुर है। उसको जब वायु रूक्षतासे तथा कषाय स्वभावसे आकर्षण करलेती है और मूत्राशयमें लेजाकर मधुरस्वभाववाले ओजसे प्रमेहको उत्पन्न करताहै उसको मधुमेह कहतेहैं ॥ ३२ ॥

वातप्रमेहोंको असाध्यत्व।

तानिमाश्चतुर प्रमेहान्वातजानसाध्यानाचक्षते। महात्ययिकद्विप्रतिपिद्धोपक्रमत्वात्तेपामपि चपुर्वंवदगुणविशेषेणनामविशेषा ॥ ३३ ॥

इन वातसे उत्पन्न हुए चारों प्रमेहोंको असाध्य कहतेहैं क्योंकि यह प्रमेह चिकित्सामें विरोध पडनेसे और अत्यन्त मारात्मक होनेसे असाध्य होतेहैं। और इनमें वसा और मज्जा आदि गुणयुक्त मूत्रके आनेसे उन्हींके समान नाम रक्खेगयेहैं॥३३॥

तद्यथा ।

वसामेहश्चमज्जमेहश्चहस्तिमेहश्चमधुमेहश्चेति ॥ ३४ ॥

जैसे वसामेह, मज्जामेह, हस्तीमेह और मधुमेह यह चार प्रकारके नाम हैं॥३४॥

तत्र श्लोकाः ।

वसामेहीके लक्षण ।

वातप्रमेहविशेषविज्ञानार्थाः । वसामिश्रवसाभश्चमूत्रमेहति योनरः । वसामेहिनमाहुस्तमसाध्यवातकोपतः ॥ ३५ ॥

उन वातजनित प्रमेहोंके विशेष ज्ञानके लिये यहांपर श्लोक कहेजातेहैं । जिस मनुष्यको वसा (चर्बी) युक्त तथा वसाके वर्णवाला मूत्र आताहै उसको वातके कोपसे उत्पन्न हुआ वसामेह कहतेहैं । यह वसामेह असाध्य होताहै ॥ ३५ ॥

मज्जामेहीके लक्षण ।

मज्जानंसहमूत्रेणमुहुर्मेहतियोनरः । मज्जामेहिनमाहुस्तमसाध्यवातकोपतः ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य मज्जायुक्त मूत्रको वारवार मूतता है उसको मज्जामेही कहतेहैं । यह वात कोपजनित मज्जामेह भी असाध्य होताहै ॥ ३६ ॥

हस्तिमेहीका लक्षण ।

हस्तीमत्तइवाजस्रमूत्रंक्षरतियोभृशम् । हस्तिमेहिनमाहुस्तमसाध्यंवातकोपतः ॥ ३७ ॥

जो मनुष्य मत्तहस्तीके समान निरन्तर बहुत मूता करताहै उसको हस्तिमेही कहतेहैं । यह वातजनित हस्तिमेह भी असाध्य होताहै ॥ ३७ ॥

मधुमेहीके लक्षण ।

कषायमधुरपाण्डुरूक्षमेहतियोनरः । वातकोपादसाध्यतंप्रतीयान्मधुमेहिनम् ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य कषाय, मधुर, रूक्ष एवम् पाण्डुवर्णका मूत्र मूतता है उसको वातके कोपसे उत्पन्नहुआ असाध्य मधुमेह जानना ॥ ३८ ॥

इतिचत्वारः प्रमेहावातप्रकोपनिमित्ताः । तएवंत्रिदोषप्रकोपनिमित्ताविंशतिप्रमेहाव्याख्याताः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार वायुके कोपसे उत्पन्नहुए चार प्रकारके प्रमेहोंका वर्णन कियाहै। यह सब मिलकर तीनों दोषोंके कोपसे उत्पन्न हुए बीस प्रकारके प्रमेहोंका कथन कियाहै ॥ ३९ ॥

त्रिदोषजन्य प्रमेहके पूर्वरूप।

त्रयस्तुदोषा प्रकुपिता प्रमेहानभिनिवर्त्तयिष्यन्तइमानिपूर्व-रूपाणिदर्शयन्ति ॥

तद्यथा।

जटिलीभावकेशेषुमाधुर्यमास्येकरपादयो सुप्तता दाहमुखतालु-कण्ठशोषपिपासामालस्यमलश्चकायेकायाच्छिद्रेषूपदेहंपरिदाह सुप्तताचाङ्गेषुषट्पदपिपीलिकाभि शरीरमूत्राभिसरणमूत्रेचमू-त्रदोषान्वितशरीरगन्धंनिद्रातन्द्राश्चसर्वकालमिति ॥ ४० ॥

यह तीन वातादि दोष ही कुपित होकर प्रमेहोंको उत्पन्न करतेहुए इन पूर्व-रूपोंको करतेहैं। उन रूपोंको दिखातेहैं। जैसे बालोंकी जटे बधना, मुखमें मीठापन, हाथपैरोंका सोना, दाह, मुख, तालु और कण्ठका सूखना, प्यास, आलस्य, शरीरमें मैलका बहुत बढना, रोममार्गोंका बन्द होना, शरीरमें दाह होना, अंगोंका सोनाना, मक्खियें और चींटियोंका शरीरपर बहुत आना तथा मूत्रमें लगना, शरीरसे मूत्रकीसी गंध आना, सब कालमें निद्रा तथा तन्द्राकी अधिकता रहना यह सब प्रमेहके पूर्वरूप होतेहैं ॥ ४० ॥

प्रमेहके उपद्रव।

उपद्रवास्तुखलुप्रमेहिणांतृष्णातीसारज्वरदाहदौर्बल्यारोचका-विपाका पूतिमांसपिडकाअलजीविद्रध्यादयश्चतत्प्रसङ्गाद्भ-वन्ति ॥ ४१ ॥

अब प्रमेहके उपद्रवोंको कथन करतेहैं। प्यास, अतिसार, ज्वर, दाह, दुर्बलता, अरुचि, अन्नका न पचना, मांसमसे दुर्गंध आना, शरीरमें पीडका होना तथा अलजी विद्रधी आदिक प्रमेह पिडकाओंका होना यह प्रमेहके उपद्रव होतेहैं ॥ ४१ ॥

साध्यप्रमेहोंकी चिकित्साविधि।

तत्रसाध्यान्प्रमेहान्संशोधनोपशमनैर्यथार्हमुपपादयेश्चिकि-त्सेदिति ॥ ४२ ॥

इनमें साध्य प्रमेहोंमें संशोधन और उपशमन द्रव्योंद्वारा यथोचित रीतिपर चिकित्सा करे ॥ ४२ ॥

तत्र श्लोकाः ।

गृध्रमभ्यवहार्य्येषु स्नानचंक्रमणद्विषम् ।
प्रमेहः क्षिप्रमभ्येति नीडद्रुममिवाण्डजः ॥ ४३ ॥

यहां कहते हैं कि जिस प्रकार साधारण वृक्षोंपर उडता हुआ पक्षी विना ही प्रयासके झट आन बैठता है उसी प्रकार जो मनुष्य नित्य प्रति आहारके लोभमें फसे रहतेहैं और नित्य स्नान तथा भ्रमण आदि नहीं करते उनके शरीरमें प्रमेह भी झट अधिकार जमा बैठता है ॥ ४३ ॥

मन्दोत्साहमतिस्थूलमतिस्निग्धमहाशनम् ।
मृत्युः प्रमेहरूपेण क्षिप्रमादाय गच्छति ॥ ४४ ॥

आलस्ययुक्त तथा अत्यन्त स्थूल और अधिकस्निग्ध शरीरवाले एवम् बहुत खानेवाले मनुष्यके शरीरमें प्रमेहके रूपको धारण करके मृत्यु झट प्रवेशकर लेताहै ४४

यस्त्वाहारशरीरस्यधातुसाम्यकरो नरः ।
सेवते विविधाश्चान्याश्चेष्टा स सुखमश्नुते ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य शरीरकी धातुओंको साम्यावस्थामें रखनेवाले आहार विहारोंका सेवन करताहै वही मनुष्य परमसुखको भोग करताहै ॥ ४५ ॥

तत्र श्लोकाः ।

हेतुर्व्याधिविशेषाणांप्रमेहाणांश्चकारणम् । दोषधातुसमायोगो रूपंविविधमेवच ॥४६॥ दशश्लेष्मकृतायस्मात्प्रमेहाः षट्चपित्तजाः । यथाकरोतिवायुश्चप्रमेहांश्चतुरोनली ॥४७॥ साध्यासाध्यविशेषाश्चपूर्वरूपाण्युपद्रवाः । प्रमेहाणांनिदानेऽस्मिन्क्रियासूत्रंचभाषितम् ॥ ४८ ॥

इतिअग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेप्रमेहनिदानंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करतेहैं । इस प्रमेह निदान नामक अध्यायमें-हेतु और व्याधिविशेषोंको तथा प्रमेहके कारणको दोष, धातुके गुणोंसहित तथा उनके अनेक

प्रकारके रूपोंको कथन किया है। और दश प्रकारके कफजनित प्रमेह, छः प्रकारके पित्तजनित प्रमेह और जिस प्रकार बलवान वायु चार प्रकारके प्रमेहोंको उत्पन्न करताहै। एवम् प्रमेहोंको साध्य, असाध्यता तथा उनके पूर्वरूप, उपद्रव एवम् चिकित्साका क्रम यह सब कथन कियाहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० निदान० पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां प्रमेहनिदान नाम चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्याय ।

अथात कुष्ठनिदानव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेय ।

अब हम कुष्ठके निदानकी व्याख्या करतेहैं। इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे।

कुष्ठोत्पत्तिका कारण।

सप्तद्रव्याणिकुष्ठानाप्रकृतिर्विकृतिमापन्नानिभवन्ति । तद्यथा-त्रयोदोपावातपित्तश्लेष्माण प्रकोपणविकृतादूष्याश्चशरीरधात-वस्त्वङ्मांसशोणितलसीकाश्चतुर्द्धादोपोपघातविकृताइतिएत-त्सप्तानासप्तधातुकमेवगतमाजननकुष्ठानामत प्रभवाण्यभि-निर्वर्त्यमानानिकेवलशरीरमुपतपन्ति । नचकिंचिदस्तिकुष्ठमे-कदोपप्रकोपानिमित्तम् ॥ १ ॥

विकारको प्राप्तहुए सातद्रव्य कुष्ठके प्रकृति अर्थात् कारण होतेहैं। यह सात इस प्रकार है। वात, पित्त, कफ यह तीन दोष अपने कुपितकारी कारणोंसे बिगडते हैं और त्वचा, मांस, रक्त एवं लसीका यह चार वातादि दोषों द्वारा बिगडजातेहैं। बस इन सात प्रकारके द्रव्योंके विकृत होनेसे ही कुष्ठकी उत्पत्ति होतीहै। ऐसा कोई भी कुष्ठ नहीं होता जो केवल एक ही दोषके कोप होनेसे उत्पन्न हो जाताहो ॥१॥

अस्तितुखलुसमानप्रकृतीनामपिसप्तानाकुष्ठानादोषांशबलविक-ल्पानुबन्धस्थानविभागेनवेदनावर्णसंस्थानप्रभावनामचिकि-त्सितविशेष ॥ २ ॥

सात प्रकारके ही कुष्ठ समान प्रकृति और समान कारणोंसे उत्पन्न होनेपर भी दोष, अंश बल इनके विकल्पसे और स्थानके विभागसे वेदना, वर्ण, संस्थान और नामके प्रभावसे सबकी अलग २ प्रकारकी चिकित्सा की जातीहै ॥ २ ॥

उससे विदग्धकारी आहारके सेवनसे अथवा विदग्धहुए आहारको खाकरके विदाही पदार्थोंका सेवन करनेसे एवम् आये हुए वमनके वेगको रोकनेसे, शरीरको अत्यन्त स्नेहन करनेसे वातादि तीनों दोष एकसाथ कुपित होजातेहैं। फिर वह कुपित होकर त्वचा आदि चारों धातुओंको शिथिल करदेतेहैं। उन शिथिल हुई धातुओंमें कुपित हुए दोष प्रवेश करके उनके स्थान विशेषोंमें प्राप्त होकर रहतेहुए उन त्वचा, मांस आदिकोंको विगाडते हुए कुष्ठोंको उत्पन्न करतेहैं ॥ ८ ॥

कुष्ठके पूर्वरूप।

तत्रेमानिपूर्वरूपाणि ॥ तद्यथाअस्वेदनमतिस्वेदनपारुष्यमतिश्लक्ष्णतावैवर्ण्यकण्डूर्निस्तोदःसुप्ततापरिदाह परिहर्षोलोमहर्षोखरत्वमुष्मायणगौरवश्वयथुर्वीसर्पागमनमभीक्ष्णकायच्छिद्रेषूपदाह पक्वदग्धदष्टक्षतोपस्खलितेष्वतिमात्रवेदनास्वल्पानामपिच व्रणानादुष्टिरसंरोहणश्चेतितेभ्योऽनन्तरकुष्ठानिजायन्ते ॥ ९ ॥

उन कुष्ठोंके पूर्वरूप यह हैं। जैसे पसीनेका न आना अथवा अधिक आना, त्वचाका अत्यन्त कठोर होना या अधिक नरम होजाना, एवम् त्वचाका रंग बिगड जाना, खाज, पीडा, शून्यता, दाह और हर्षण इन सबका शरीरमें होना, रोमहर्ष शरीरका खरदरापन, त्वचामें गर्मीकी अधिकता, शरीरमें भारीपन, सूजन, विसर्परोगका होना, शरीरके रोम मार्गोंमें तथा अन्य छिद्रोंमें निरन्तर दाहका होना और शरीरमें यदि कोई नरम या आगसे दग्ध अथवा किसी जानवरके काटनेसे जखम होजाय तो उसमें अत्यन्त पीडा होना और छोटी २ फुंसियें होकर उनमें भी काटने तथा दागनेकीभी दाह और पीडा होना और उन छोटे २ व्रणोंका भी दूषित होजाना और फिर नहीं भरना ऐसे २ उपद्रव होनेके अनन्तर कुष्ठ उत्पन्न होतेहैं अर्थात् यह कुष्ठोंके पूर्व रूप हैं ॥ ९ ॥

कपालकुष्ठके लक्षण।

तेषामिदंवेदनावर्णसंस्थानप्रभावनामविशेषविज्ञानम्।तद्यथा। रूक्षारुणपरुषाणिविषमविसृतानिखरपर्य्यन्तानितनून्युद्वृत्तबहिस्तनूनिसुप्तसुप्तानिहृषितलोमाचितानिनिस्तोदबहुलानिअ

रूपकण्डूदाहपूयलसीकान्याशुगतिसमुत्थानानिआशुभेदीनि जन्तुमन्तिकृष्णारुणकपालवर्णानिकपालकुष्टानीतिविद्यात् ॥१०॥

उन सात प्रकारके कुष्ठाकी वेदना, वर्ण, स्थान और प्रभावाके ज्ञानको यथोचित रीतिपर वर्णन करतेहै । जैसे रूक्ष, अरुण, कठोर, विषम गतिवाले जिसका अंतका भाग खरदरा हो तथा थोडे २ ऊंचे हो, बाहरके भागमें किंचित् ऊंच हो, छोटे २ हो, शून्यसे हो, जिनके ऊपर रोम खडे हों, प्राय अधिक पीडा होतीहो, किंचित खाजयुक्त एवम् दाह, पूय (राध) और लसीका (मासकासा धोवन) ये उन जखमोंसे निकलतेहो तथा झटपट फलजानेवाले झट अपनी पीडाको उत्पन्न करनेवाले, कृमियुक्त काले और लालवर्णके तथा कपालके समान वर्ण युक्त इन सब लक्षणावाले कुष्ठको कपालकुष्ठ कहतेहैं ॥ १० ॥

उदुम्बरकुष्टके लक्षण ।

ताम्राणिताम्ररोमराजीभिरवनद्धानिबहुलानिबहुबहलरक्तपूयलसीकानिकण्डूक्लेदकोथदाहपाकवन्त्याशुगतिसमुत्थानभेदीनिससन्तापक्रिमीण्युदुम्बरफलपक्वपर्णान्युदुम्बरकुष्टानीति विद्यात् ॥ ११ ॥

तांबेके समान वर्णवाला तथा ताम्रवर्णके रोमयुक्त, सघन और बहुत तथा गाढी राध तथा लसीका युक्त एवम् खाज, क्लेद, सडन, जलन, पाक, इनसे युक्त शीघ्र फलनेवाला, झट प्रगट हो जानेवाला, एवम् शीघ्र फटजानेवाला संताप और कृमियुक्त और पके हुए गूलरके समान वर्णवाला हो इन सब लक्षणोंवाले कुष्ठको उदुम्बर कुष्ठ कहते है ॥११॥

मण्डलकुष्टके लक्षण ।

स्निग्धानिगुरूण्युत्सेधवन्तिश्लक्ष्णास्थिरपीनपर्यन्तानिशुक्लरक्तावभासानिबहुलबहलशुक्लपिच्छिलस्त्रावीणिशुक्लरोमराजीसन्तानानिबहुकण्डूक्रिमीणिसक्तगतिसमुत्थानभेदीनिपरिमण्डलानिमण्डलकुष्टानीतिविद्यात ॥ १२ ॥

चिकना, भारी, ऊंचा, मृदु, दृढ तथा किनारोंपर्यंत मोटा, श्वेत और लालवर्णवाला बहुत स्राव करनेवाला और वह स्राव श्वेत तथा पिच्छिलवर्णवाला भयता हो श्वेत रोमोंसे युक्त हो तथा उसमें उत्पन्न राम होतेहो और कृमि पड हो एवम् उसमें

न्यल्पभेद-क्रिमीण्यलावु-पुष्पसङ्काशानिसिध्म-कुष्ठानीति-विद्यात् ॥ १५ ॥

जो कुष्ठ बाहरके भागम कठोर, लाल, और फला हुआसा हो और भीतर हल्का हो, तथा चिकना, सुफेद और लालवर्णयुक्त हो और बहुतही थोडी पीडावाला हो, जिसमें अल्पखुजली उठती हो एवम् दाह, राध और लसीका इन करके युक्त हो और बहुत छोटेपनसे प्रगट होना और फटना यह लक्षण हो, कृमियुक्त हो घीयाके फूलके समान वर्णवाला हो उसको सिध्मकुष्ठ कहतेहैं ॥ १५ ॥

काकणक कुष्ठके लक्षण।

काकणन्तिकावर्णान्यादौपश्चात्सर्वकुष्ठलिङ्गसमन्वितानिपापीयसांसर्वकुष्ठलिङ्गसम्भवेनानेकवर्णानिकाकणकानीतिविद्यात् १६॥

काकणनामक कुष्ठ-पीहिले रक्तकके समान वर्णवाले होतेहैं फिर सपूर्ण कुष्ठोंके लक्षणोंसे युक्त होजातेहैं। पापीजनोंके शरीरमें यह कुष्ठ होकर सब कुष्ठोंके लक्षणोंको धारण करतेहैं तथा अनेक वर्णके होतेहैं। इन अनेक लक्षणवाले कुष्ठोंके वर्ण, वेदनादियुक्त कुष्ठको काकणकुष्ठ कहतेहैं ॥ १६ ॥

कुष्ठोंका साध्यासाध्य वर्णन।

तान्यसाध्यानिसाध्यानिपुनरितराणि। तत्रयदसाध्यतदसाध्यतानातिवर्त्तते। साध्यपुनःकिञ्चित्साध्यतामतिवर्त्ततेकदाचिदपचारात् ॥ १७ ॥

वह सब कुष्ठ साध्य और असाध्यक भेदसे दो प्रकारके होतेहैं। उनमें काकण असाध्य है और बाकी साध्य है। इनमें जो असाध्य है वह अपनी असाध्यताको नहीं छोडता जो साध्य है वह किसी प्रकारके कुपथ्यके होजानेसे असाध्यताको प्राप्त होजातेहैं ॥ १७ ॥

साध्यानीहषट्काकणकवर्ज्यानिअचिकित्स्यमानानिअपचारतोवादोषैरभिष्यन्दमानानिअसाध्यतामुपयान्ति ॥ १८ ॥

इनमें यापणीक कुष्ठके सिवाय बाकी छः कुष्ठ साध्य मानेगयेहैं। परन्तु चिकित्साके दोषसे अथवा चिकित्सा न करनेसे या किसी अपचारके होजानेसे वृद्धिको प्राप्त होकर फैलते हुए असाध्यताको प्राप्त हो जातेहैं ॥ १८ ॥

उपेक्षितकुष्ठका फल।

साध्यानामपिह्युपेक्षमाणानामेषांत्वङ्मासशोणितलसीकाकोथक्लेदसस्वेदजा क्रिमयोऽभिमूर्च्छन्ति। तेभक्षयन्तोत्वगादीन्दोषान्पुनर्दूषयन्त इमानुपद्रवान्पृथक्पृथगुत्थापयन्ति॥१९॥

साध्य कुष्ठमें भी शीघ्र यत्न न करनेसे त्वचा, मांस, रुधिर और लसीका इन सबके सडने और क्लेद तथा पसीने आदिसे कृमि उत्पन्न होजातेहैं। वह कृमि कुष्ठीको हुए फिर त्वचा आदिकोंको दूषित करतेहैं और नीचे लिखे हुए इन उपद्रवोंको अलग२ उत्पन्न करते हैं ॥ १९ ॥

प्रकुपितदोषोंके उपद्रव।

ततोवात श्यावारुणपरुषवर्णतामपिचरौक्ष्यशूलशोयतोदवेपथुहर्षसङ्कोचायासस्तम्भसुप्तिभेदभङ्गान्। पित्तपुनर्दाहस्वेदक्लेदकोथकण्डूस्रावपाकरागान्। श्लेष्मात्वस्यश्वैत्यशैत्यस्थैर्य्यकण्डूगौरवोत्सेधोपस्नेहोपलेपान्। क्रिमयस्त्वगादींश्चतुर शिरास्नायून्यस्थीन्यपिचतरुणानिखादन्ति ॥ २० ॥

इन कृमियोंसे दूषित हुए त्वचा आदिकोंमें वायु कुपित होकर, कृष्णता, अरुणता, कठोरता, रूक्षता एवम् शूल, शोथ, तोद, कम्प, रोमहर्ष, सकोच, आयास, स्तब्धता-शून्यता और भेदनकीसी पीडा तथा भग्नता इनको उत्पन्न करताहै। कुपित हुआ पित्त-दाह, स्वेद, क्लेद, सडन, खुजली, स्राव, पाक और लालवर्णता इनको उत्पन्न करताहै एवम् कफ कुपित होकर शीतता, स्थिरता, खाज, भारीपन कुष्ठमें ऊँचापन, चिकनाहट, उपलेप इनको प्रगट करताहै। और वह बढे हुए कृमि-त्वचा, मांस, रुधिर, लसीका, शिरा, स्नायु और कुरकरी हड्डियोंको भी खाना आरम्भ करदेतेहैं ॥ २० ॥

कुपितदोषोंमें उपद्रव।

अस्यामवस्थायामुपद्रवा कुष्ठिनंस्पृशन्ति। तद्यथा-प्रस्रवणमङ्गभेद पतनान्यङ्गावयवानातृष्णाज्वरातीसारदाहदौर्बल्यारोचकाविपाकाश्चतद्विधमसाध्यंविद्यादिति ॥ २१ ॥

ऐसी अवस्थामें कुष्ठीको ये उपद्रव दुःख देतेहैं। जैसे राधका स्राव अंगोंका भेदन, ऊंगुली आदि अंगोंका गिरना, प्यास, ज्वर, अतिसार, दाह, दुर्बलता, अरुचि और अन्नका न पचना इत्यादि असाध्य उपद्रव होजातेहैं ॥ २१ ॥

तत्रश्लोका. ।

साध्योऽयमितिय पूर्वंनरोरोगमुपेक्षते ।
सकिञ्चित्कालमासाद्यमृतएवावबुध्यते ॥ २२ ॥

यहापर श्लोककहे । कि जो मनुष्य रोगको साध्य समझकर उसका यत्न नहीं करते और यह कहतेहै कि अभी क्या है जब अवकाश मिलेगा तब यत्न कर लेंगे । ऐसे मनुष्य कुछ कालके अनन्तर मरे हुए ही दिखाई पडतेहैं ॥ २२ ॥

यस्तुप्रागेवरोगेभ्योरोगेषुतरुणेषुच ।
भेषजकुरुतेसम्यक्साचिरंसुखमश्नुते ॥ २३ ॥

जो मनुष्य रोगासे प्रथम ही अथवा रोग होनेपर भी शीघ्र यत्न कर लेतेहै वह शरीरके सुखको सुखपूर्वक भोगते है ॥ २३ ॥

यथास्वल्पेनयत्नेनच्छिद्यतेतरुणस्तरुः ।
सएवातिप्रवृद्धस्तुनसुच्छेद्यतमोभवेत् ॥ २४ ॥
एवमेवविकारोऽपितरुण साध्यतेसुखम् ।
विवृद्धःसाध्यतेकृच्छ्रादसाध्योवापिजायते ॥ २५ ॥

जैसे छोटासा वृक्ष साधारण यत्न करनेसे झट उखड सकताहै और अधिक बडा होजानेसे उखाडना कठिन होजाताहै । उसी प्रकार रोग भी बल पानेके पहिले सुखपूर्वक निवृत्त होजाताहै । वही रोग वृद्धिको प्राप्त होनेसे कष्टसाध्य अथवा असाध्य होजाताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

सङ्ख्याद्रव्याणिदोषाश्चहेतवः पूर्वलक्षणम् ।
रूपाण्युपद्रवाश्चोक्ता कुष्ठानामिहपृथक् ॥ २६ ॥

इति अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते कुष्ठनिदानं-
नाम पञ्चमोऽध्याय ॥ ५ ॥

अब अध्यायका उपसहार करतेहै । कि, इस कुष्ठनिदान नामक अध्यायमें कुष्ठोंकी सख्या, द्रव्य, दूष्यधातु, दोष, हेतु, पूर्वरूप, रूप, उपद्रव यह सब पृथक् २ वर्णन कियेहै ॥ २६ ॥

इति श्रीमदग्निवेशकृ० नि० पं० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीका०
कुष्ठनिदान नाम पञ्चमोऽध्याय ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः।

शोषनिदानम्।

अथातः शोषनिदानं व्याख्यास्यामः इति हस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम शोषके निदानकी व्याख्या करतेहैं ऐसे भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे।

शोषोंके आयतनोंकी संख्या।

इहखलुचत्वारिशोषस्यायतनानि। तद्यथा—
साहससन्धारण क्षयोविषमाशनमिति॥ १॥

इस शरीरमें शोषरोग होनेके चार कारण होतेहैं। जैसे अपनी ताकतसे बढ़कर साहस करना सधारण (मलमूत्रादि वेगोंको रोकना) धातुओंका क्षय होना और विषमभोजन करना॥ १॥

साहसका वर्णन।

तत्रयदुक्तंसाहसंशोषस्यायतनमितितदनुव्याख्यास्यामः। यदापुरुषोदुर्बलोहिसन्बलवतासहविगृह्णातिअतिमहतावाधनुषाव्यायच्छतिजल्पतिवातिमात्रमतिमात्रवाभारमुद्वहतिअप्सुवाप्लवतेचातिदूरमुत्सादनपदाघातनेवातिप्रगाढमासेवतेअतिप्रकृष्टवाध्वानद्रुतमभिपततिअभिहन्यतेवान्यद्वाकिंचिदेवंविधंविषममतिमात्रंवाव्यायामजातमारभतेतस्यातिमात्रेणकर्मणाउरः क्षण्यतेतस्यउरः क्षतमुपप्लवतेवायुः। सतत्रावस्थितः श्लेष्माणमुरःस्थमुपसंगृह्यशोषयन्विहरत्यूर्द्धमधस्तिर्यक्च॥२॥

उनमें प्रथम साहस जो शोषका कारण कथन किया है उसकी व्याख्या करतेहैं। जब दुर्बल मनुष्य बलवान् मनुष्यसे मल्लयुद्ध करताहै अथवा बड़े भारी धनुषको अधिक बलसे खींचता है एवम् बहुत जोरसे बहुत बोलताहै और अपनी ताकतसे अधिक भारको उठाताहै एवम् जलमें अधिक तैरताहै। अथवा बलपूर्वक अति छातीमें तैल आदिका मालिश कराताहै अथवा लात आदिकी बलवान् चोट लगानेसे या बहुत ज्यादे पैरोंसे दिगता है अथवा अत्यन्त कठिन मार्गमें बहुत भागताहै।

इन कारणोंसे अथवा गिरपडनेसे, चोट आदि लगनेसे, विषम या अत्यन्त व्यायाम करनेसे एवम् अपनी शक्तिसे बढकर काम करनेसे, मनुष्यकी छाती (फुप्फुस हृदय आदिमें) घाव अथवा क्षीणता उत्पन्न होजातीहै तब वायु कुपित होकर उस मनुष्यके शरीरमें उरःक्षतरोगको उत्पन्न करताहै । फिर वही वायु उर अर्थात् छातीमें स्थित होकर छातीके कफको ग्रहण करके शोष रोगको प्रगट करताहै । और ऊपर, नीचे तथा तिरछा गमन करताहुआ शरीरकी धातुओंको सुखा डालताहै ॥ २ ॥

वायुके कर्म ।

योंऽशस्तस्यशरीरसन्धीनाविशातितेनजृम्भाङ्गमर्दोज्वरश्चोपजायते । यस्त्वामाशयमुपैतितेनरोगाभवन्तिउरस्याअरोचकश्च । य कण्ठंप्रपद्यतेकण्ठस्वनमुद्धूसतेस्वरश्चावसीदतिय.प्राणवहानिस्रोतास्येतितेनश्वास.प्रतिश्यायश्चोपजायते । य.शिरस्यवतिष्ठतेशिरस्तेनोपहन्यते ॥ ३ ॥

उसी वायुके जो अंश शरीरकी संधियोंमें प्रवेश करतेहैं वह जभाई, अंगमर्द और ज्वर इनको उत्पन्न करतेहैं । जो अंश आमाशयमें प्राप्त होताहै वह छातीके रोगोंको तथा अरुचिको प्रगट करताहै । जो अंश कण्ठमें प्रवेश करताहै वह कण्ठके शब्दको तथा स्वरको विगाड देताहै । जो अंश प्राणवाहक सोतोंमें प्रवेश करताहै उससे श्वास और प्रतिश्यायको उत्पन्न करताहै । जो अंश शिरमें प्रवेश करताहै उससे शिरमें दर्द उत्पन्न होताहै ॥ ३ ॥

तत.क्षणनाच्चैवोरसोविषमगतित्वाच्चवायो कण्ठस्योद्धूसनात् कास.सजायते । कासप्रसङ्गादुरसिक्षतेसशोणितष्ठीवतिशोणितागमाच्चास्यदौर्गन्ध्यमुपजायतेएवमेतेसाहसप्रभवाःसाहसिकमुपद्रवा स्पृशन्ति ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर छातीके क्षरण होनेसे तथा वायुकी विषमगति होनेसे एवम् वायु द्वारा कण्ठके रुकजानेसे खासी, उत्पन्न होजातीहै उस खासीके सबवसे छातीके घावोंका रक्त थूकमें आनेलगजाताहै । उस रक्तके निकलनेसे मुखमें दुर्गंध आने लगजातीहै । इस प्रकार यह साहससे उत्पन्न हुए उपद्रव अधिक साहस करनेवाले मनुष्यको घर लेतेहैं ॥ ४ ॥

शोषमें उपदेश ।

तत.सोऽप्युपशोषणैरेतैरुपद्रवैरुपद्रुत शनै.शनैरुपशुष्यति । त

स्मात्पुरुषोमतिमान्वलमात्मन समीक्ष्यतदनुरूपाणिकर्माण्या रभेतकर्त्तुम् । वलसमाधानहिशरीरंशरीरमूलश्चपुरुषइति ॥ ५ ॥

फिर वह मनुष्य इन शोषणकर्त्ता उपद्रवों द्वारा पीडित हुआ धीरे धीरे मर जाताहै । इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको अपने वलकी परीक्षा करके उसके अनुरूप कर्मोंको ही आरम्भ करना चाहिये । क्योंकि वल ही शरीरका आश्रय है और मनुष्यका जीवन शरीरके आधीन होताहै ॥ ५ ॥

तत्रश्लोक ।

साहसवर्जयेत्कर्मरक्षन्जीवितमात्मन. ।
जीवन्हिपुरुषास्त्विष्टंकर्मण फलमश्नुते ॥ ६ ॥

यहा एक श्लोक है कि बुद्धिमान् मनुष्य अपने जीवनकी रक्षा करताहुआ बहुत साहसके कर्मको त्याग देवे क्योंकि पुरुषोंके वाछित कर्मोंका फल जीवन ही होताहै अर्थात् सपूर्ण सुखोंका मूल जीवन है उस जीवनके रहनेपर ही मनुष्य अपने शुभकर्मोंका फल भोग सकताहै ॥ ६ ॥

दूसरा कारण सधारण-शोषका कारण कथन कियाहै सो उसकी व्याख्या करतेहैं ।

सन्धारणजन्य शोषका वर्णन ।

सन्धारणशोषस्यायतनमितियदुक्तंतदनुव्याख्यास्याम । यदा-पुरुषोराजसमीपेभर्तृसमीपेवागुरोर्वापादमूलेद्यूतसभासभाज यन्त्रीमध्यंवानुप्रविश्ययानैर्वाप्युच्चावचैर्गच्छन्भयात्प्रसंगाद्द्री-मत्वाद्घृणित्वाद्वानिरुणद्ध्यागतानिवातमूत्रपुरीषाणितस्यस-सन्धारणाद्वायुप्रकोपमापद्यते ॥ ७ ॥

जब पुरुष राजाके समीप अथवा स्वामीके समीप या गुरु आदिकोंके चरणोंके समीप अथवा जुआ आदि किसी खेलमें बैठे हुए या किसी सभाम स्त्रियोंमें बैठकर या किसी ऊंची नीची सवारी आदिमें चलते हुए अथवा भयसे या किसी और प्रसगसे या उपरोक्त सभी आदिकोंमें लज्जाके मारे अथवा घृणासे वात, मूत्र, पुरीष आदिक वेगोंको रोक लेताहै तो उसके शरीरमें वायु कोपको प्राप्त होजाताहै ॥ ७ ॥

सप्रकुपितःपित्तश्लेष्माणौसमुदीर्य्यो [illegible]
नतश्चाशविशेषेणपूर्यन्च्छरीरात्रयन् [illegible]

भिनत्तिपुरीषमुच्छोषयतिवा, पार्श्वेचाभिरुजतिगृह्णात्यसौक-
ण्ठमुरश्चावधमतिशिरश्चोपहन्ति, कासंश्वासंज्वरस्वरभेदप्रति
श्यायश्चोपजनयति ॥ ८ ॥

फिर वह कुपित हुआ वायु पित्त और कफको उठाकर पूर्वोक्त क्रमसे ऊपर, नीचे, तिरछा तथा भिन्न २ अशोंसे शरीरके भिन्न २ भागोंमें प्रवेश करके पीडाको उत्पन्न करताहै। और मलको पतला करके निकालता है अथवा सुखादेताहै। दोनों पार्श्व भागोंमें शूलको करताहै एवम् अगनामक कथासे ऊपरके स्थानमें (हसलीमें) पीडाको करताहै एवम् छातीमें पीडा उत्पन्न करताहै। शिरमें दर्दको करताहै और कण्ठको पीडायुक्त बनाताहै तथा खासी, श्वास, ज्वर, स्वरभेद, प्रतिश्याय इनको उत्पन्न कर देताहै ॥ ८ ॥

तत सोऽप्युपशोषणैरेतैरुपद्रवैरुपद्रुत शनै शनैरुपशुष्यति ।
तस्मात्पुरुषोमतिमानात्मन शरीरेष्वेवयोगक्षेमकरेषुप्रयतेतवि-
शेषेणशरीरह्यस्यमूलंशरीरमूलश्चपुरुषइति ॥ ९ ॥

फिर वह इन शोषणकर्त्ता उपद्रवोंद्वारा धीरे धीरे शरीरकी सब धातुओंको सुखा डालताहै। इस लिये बुद्धिमान मनुष्यको अपने शरीरके योग और क्षेमकी इच्छा करते हुए मल मूत्रादि वेगोंको नहीं रोकना चाहिये। क्योंकि शरीरके आधार ही पुरुषका जीवन है इसलिये शरीरकी रक्षा करना सबसे मुख्य धर्म है ॥ ९ ॥

तत्रश्लोक ।

सर्वमन्यत्परित्यज्यशरीरमनुपालयेत् ।
तदभावेहिभावानासर्वाभाव शरीरिणामिति ॥ १० ॥

यहापर एक श्लोक कहा है–कि अन्य सब आडम्बरोंको छोडकर शरीरको ही पालन करना चाहिये क्योंकि शरीरके नष्ट होनेसे सपूर्ण सम्पत्तियोंका भी अभाव होजाताहै ॥ १० ॥

क्षयशोषका वर्णन ।

क्षय शोषस्यायतनमितियदुक्ततदनुव्याख्यास्याम । यदापु-
रुषोतिमात्रशोकचिन्तापरीतहृदयोभवति, ईर्ष्योत्कण्ठाभय-
क्रोधादिभिर्वासमाविश्यते,कृशोवासन्रूक्षान्नपानसेवीभवति,
दुर्बलप्रकृतिरनाहारोऽल्पाहारोवाआस्तेतदानस्यहृदयस्थायी-

स्मात्पुरुषोमतिमान्बलमात्मन.समीक्ष्यतदनुरूपाणिकर्माण्या रभेतकर्त्तुम् । बलसमाधानंहिशरीरंशरीरमूलश्चपुरुषइति ॥ ५ ॥

फिर वह मनुष्य इन शोषणकर्त्ता उपद्रवों द्वारा पीडित हुआ धीरे धीरे क्षय जाताहै । इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको अपने बलकी परीक्षा करके उसके अनुरूप कर्मोंको ही आरम्भ करना चाहिये । क्योंकि बल ही शरीरका आश्रय है और मनुष्यका जीवन शरीरके आधीन होताहै ॥ ५ ॥

तत्रश्लोकः ।

साहसंवर्जयेत्कर्मरक्षन्जीवितमात्मन ।
जीवन्हिपुरुषस्त्विष्टंकर्मण फलमश्नुते ॥ ६ ॥

यहां एक श्लोक है कि बुद्धिमान् मनुष्य अपने जीवनकी रक्षा करताहुआ बहुत साहसके कर्मको त्याग देवे क्योंकि पुरुषोंके वाञ्छित कर्मोंका फल जीवन ही होताहै अर्थात् सम्पूर्ण सुखोंका मूल जीवन है उस जीवनके रहनेपर ही मनुष्य अपने शुभकर्मोंका फल भोग सकताहै ॥ ६ ॥

दूसरा कारण सधारण-शोषका कारण कथन कियाहै सो उसकी व्याख्या करतेहैं ।

सन्धारणजन्य शोषका वर्णन ।

सन्धारणंशोषस्यायतनमितियदुक्तंतदनुव्याख्यास्याम । यदा-पुरुषोराजसमीपेभर्तृसमीपेवागुरोर्वापादमूलेद्यूतसभासभाज यन्त्रीमध्यवानुप्रविश्ययानैर्वाप्युच्चावचैर्गच्छन्भयात्प्रसगाद्ध्री-मत्वाद्घृणित्वाद्वानिरुणद्ध्यागतानिवातमूत्रपुरीषाणितस्यस-सन्धारणाद्वायुप्रकोपमापद्यते ॥ ७ ॥

जब पुरुष राजाके समीप अथवा मालिकके समीप या गुरु आदिकोंके चरणोंके समीप अथवा जूआ आदि किसी खेलमें बैठे हुए या किसी सभामें तथा स्त्रियोंमें बैठा या किसी ऊंची नीची सवारी आदिमें चढते हुए अथवा भयसे या किसी और प्रसंगसे या उपरोक्त सभा आदिकोंमें लज्जाके मारे अथवा घृणासे वात, मूत्र, पुरीष आदिक वेगोंको रोक लेता है तो उसके शरीरमें वायु कोपको प्राप्त होजाताहै ॥ ७ ॥

सप्रकुपितःपित्तश्लेष्माणौसमुदीर्य्योर्द्ध्वमधस्तिर्य्यक्चानिहगति तनश्चाशनिशेषेणपूर्वंतच्छरीरानयवविशेषंप्रविश्यशूलंजनयति

भिनत्तिपुरीपमुच्छोपयतिवा, पार्श्वेचाभिरुजतिगृह्णात्यसौकण्ठमुरश्चावधमतिशिरश्चोपहन्ति, कासश्वासज्वरस्वरभेदप्रतिश्यायश्चोपजनयति ॥ ८ ॥

फिर वह कुपित हुआ वायु पित्त और कफको उठाकर पूर्वोक्त क्रमसे ऊपर, नीचे, तिरछा तथा भिन्न २ अंशोंसे शरीरके भिन्न २ भागोंमें प्रवेश करके पीडाको उत्पन्न करताहै। और मलको पतला करके निकालता है अथवा सुखादेताहै। दोनों पार्श्व भागोंम शूलको करताहै एवम् अंशनामक कंधोंसे ऊपरके स्थानमें (हसलीमें) पीडाको करताहै एवम् छातीमें पीडा उत्पन्न करताहै। शिरमें दर्दको करताहै और कण्ठको पीडायुक्त बनाताहै तथा खासी, श्वास, ज्वर, स्वरभेद, प्रतिश्याय इनको उत्पन्न कर देताहै ॥ ८ ॥

ततःसोऽप्युपशोषणैरेतैरुपद्रवैरुपद्रुत शनैः शनैरुपशुष्यति । तस्मात्पुरुषोमतिमानात्मनःशरीरेष्वेवयोगक्षेमकरेषुप्रयतेतविशेषेणशरीरह्यस्यमूलंशरीरमूलश्चपुरुषइति ॥ ९ ॥

फिर वह इन शोषणकर्त्ता उपद्रवोंद्वारा धीरे धीरे शरीरकी सब धातुओंको सुखा डालताहै। इस लिये बुद्धिमान् मनुष्यको अपने शरीरके योग और क्षेमकी इच्छा करते हुए मल मूत्रादि वेगोंको नहीं रोकना चाहिये। क्योंकि शरीरके आधार ही पुरुषका जीवन है इसलिये शरीरकी रक्षा करना सबसे मुख्य धर्म है ॥ ९ ॥

तत्रश्लोकः ।

सर्वमन्यत्परित्यज्यशरीरमनुपालयेत् ।
तदभावेहिभावानासर्वाभाव शरीरिणामिति ॥ १० ॥

यहांपर एक श्लोक कहा है-कि अन्य सब आडम्बरोंको छोडकर शरीरको ही पालन करना चाहिये क्योंकि शरीरके नष्ट होनेसे सपूर्ण सम्पत्तियोंका भी अभाव होजाताहै ॥ १० ॥

क्षयशोषका वर्णन ।

क्षय शोपस्यायतनमितियदुक्ततदनुव्याख्यास्याम ! यदापुरुषोतिमात्रंशोकचिन्तापरीतहृदयोभवति, ईर्ष्योत्कण्ठाभयक्रोधादिभिर्वासमाविश्यते,कृशोवासन्रूक्षान्नपानसेवीभवति, दुर्बलप्रकृतिरनाहारोऽल्पाहारोवाआम्नेनदानस्यहृदयस्थायी-

रस क्षयमुपैति। सततस्योपक्षयात्संशोषंप्राप्नोतिअप्रतीकाराञ्चा-नुबध्यतेयक्ष्मणायथोपदेक्ष्यमाणरूपेण ॥ ११ ॥

तीसरा जो शोषरोगका कारण क्षय कथन कियाहै अब उसकी व्याख्या करतेहैं। जब मनुष्यके हृदयको अत्यन्त शोक एवम् चिंता घेर लेतेहैं अथवा ईर्षा, उत्कंठा, भय, क्रोध इनकी अत्यन्तताले घिर जाता है अथवा अत्यन्त कृश होनेपर भी रूक्ष अन्नपानोंका सेवन करताहै एवम् दुर्बल शरीरवाला एकन अथवा बहुत थोडा आहार करताहै तब इसके हृदयमें रहनेवाला रस क्षय होजाताहै। उसके क्षय होनेसे मनुष्यके सब धातु सूख जाते हैं। इसका शीघ्र यत्न न करनेसे आगे कहा हुआ यक्ष्मारोग उत्पन्न होजाता है ॥ ११ ॥

यक्ष्माहोनेकी रीति।

यदापुरुषोऽतिहर्षात्प्रसक्तभाव स्त्रीषुअतिप्रसङ्गमारभतेतस्याति प्रसङ्गाद्रेत:क्षयमुपैतिक्षयमपिचोपगच्छतिरेतसियदिमन स्त्री-भ्योनेवास्यनिवर्त्ततेअतिप्रवर्त्ततेएवतस्यातिप्रणीतसङ्कल्पस्य-मैथुनमापद्यमानस्यशुक्रंनप्रवर्त्ततेअतिमात्रोपक्षीणत्वात् । अथास्यवायुर्व्यायच्छमानस्यैवधमनीरनुप्रविश्यशोणितवाहि-नीस्ताभ्य शोणितप्रच्यावयतितच्छुक्रक्षयाच्छुक्रमार्गेणशोणि-तंप्रवर्त्ततेवातानुसृतलिंगम् ॥ १२ ॥

जब मनुष्य अत्यन्त हर्षसे आसक्त होकर अधिक मैथुन करताहै। उस अधिक मैथुन करनेसे उसका वीर्य क्षय होजाताहै। वीर्यके क्षय होनेपर भी स्त्रियोंसे चित्त भी मनसे निवृत्त नहीं होता बल्कि और भी अधिक प्रवृत्ति होती जातीहै। इस प्रकार की आसक्तिमें अधिक प्रवृत्ति होनेसे वीर्यका क्षय होकर पुन मैथुन करनेपर भी वीर्यके न रहनेसे वीर्यकी प्रवृत्ति नहीं होती क्योंकि वह अत्यन्त क्षीणताको प्राप्त हो लेताहै ऐसा करनेसे फिर उसके शरीरमें वायु प्रवेश हो धमनीरूप नसोंके भीतरमें प्रवेश करके रक्तवाहिनी नसोंमेसे रक्तको लेकर वीर्यके मार्गसे वीर्यके क्षय होनेके अनन्तर उस रक्तको निकालता है। और वायु उस रक्तके साथ मिलजाताहै ॥ १२ ॥

अथास्यशुक्रक्षयाच्छोणितप्रवर्तनाच्चसन्धय शिथिलीभवन्ति। रौक्ष्यमुपजायते। भूय शरीरेदौर्बल्यमाविशतिवायु प्रकोपमाप-द्यते। स प्रकुपितो यथाकृशशरीरमनुसर्पन्परिशोषयतिमांसशोणि

तेप्रच्यावयतिश्लेष्मपित्तेसरुजतिपार्श्वेचावगृह्णात्यसौकण्ठमु-
द्धूसयतिशिरश्लेष्माणमुपक्लिश्यप्रतिपूरयतिश्लेष्मणासन्धीं-
श्चप्रपीडयन्करोत्यङ्गमर्दमरोचकाविपाकौचपित्तश्लेष्मोत्क्लेशा-
त्प्रतिलोमगत्वाच्चवायुर्ज्वरकासंस्वरभेदप्रतिश्यायश्चोपजनय-
ति ॥ १३ ॥

फिर उस मनुष्यके वीर्यके क्षीण होनेसे और रक्तकी प्रवृत्ति होनेसे सधिय शिथिल होजातीहै तथा शरीरमे रूक्षता उत्पन्न होजातीहै । और शरीर दुर्बलताको प्राप्त होजाताहै । शरीरमें वायुका कोप होजाताहै । वह कुपित हुआ वायु उस दुर्बल शरीरमें इधर उधर फिरता हुआ मास और रुधिरको सुखा देताहै एवम् कफ और पित्तको निकालता है । दोना पसवाडोंमे तथा दोनों अशोंमें और कण्ठमें पीडाको उत्पन्न करताहै । एवम् शिरको पीडन करताहै और कफको विगाडकर मस्तकमें पूरित करताहै । सधियोमें पीडा उत्पन्न करताहै एवम् अरोचकता, अगमर्द, अविपाक इनको उत्पन्न करताहै । पित्त और कफके उत्क्लेशसे वायुकी गति प्रतिलोम होनेसे ज्वर, खासी, स्वरभग, प्रतिश्याय इनको प्रगट करताहै ॥ १३ ॥

वीर्यकी रक्षामें उपदेश ।

तत सोऽप्युपशोपणैरेतैरुपद्रवैरुपद्रुत शनै शनैरपशुष्यति । त-
स्मात्पुरुषोमतिमानात्मन शरीरमनुरक्षञ्शुक्रमनुरक्षेत् । परा-
ह्येषाफलनिर्वृत्तिराहारस्येति ॥ १४ ॥

फिर वह मनुष्य इन शोषणकारक उपद्रवो द्वारा पीडित हुआ धीरेधीरे सूख जाताहै । इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको शरीरकी रक्षाके लिये वीर्यकी भी रक्षा करनी चाहिये । क्योकि वीर्य शरीरमे आहार द्रव्योका सर्वोत्तम और अन्तिम फल होताहै १४

तत्रश्लोक ।

आहारस्यपरंधामशुक्रंतद्रक्ष्यमात्मन ।
क्षयेह्यस्यबहून्रोगान्मरणंवानियच्छति ॥ १५ ॥

यहापर एक श्लोक कहाहै कि भोजनका परमधाम शुक्र है इसलिये उस शुक्र (वीर्य) की रक्षा करनी चाहिये । क्योंकि उसके क्षय होनेसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होतेहै अथवा मनुष्य मृत्युको प्राप्त होजाताहै ॥ १५ ॥

विषमाशनका वर्णन।

विषमाशनशोपस्यायतनमितियदुक्तं तदनुव्याख्यास्याम । य दापुरुष पानाशनभक्ष्यलेह्योपयोगान्प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेश-कालोपयोगसंस्थोपशयविषमानासेवतेतदातस्यवातपित्तश्ले-ष्माणोवैषम्यमापद्यन्ते । तेविषमाःशरीरमनुपसृत्यसयदास्रोत-सामुखानिप्रतिवार्य्यैवतिष्ठन्तेतदाजन्तुर्यदाहारजातमाहराति तदस्यमूत्रपुरीषमेवोपचीयतेभूयिष्ठम्, नान्यस्तथाशरीरधातु सपुरीषोपष्टम्भाद्वर्त्तयति ॥ १६ ॥

विषमाशन जो चौथा कारण कहाहै। अब उसकी व्याख्या करतेहैं। जब मनुष्य पान, अशन, भक्ष्य, लेह्य इन चार प्रकारके पदार्थोंका कारण, करण, संयोग, राशि, देश, काल, भोजन प्रकार, एवम् सात्म्य इन आठ प्रकारके भोजनके स्थानों अर्थात् विधानोंको त्यागकर विपरीतीसे सेवन करताहै तब उसके शरीरमें वात, पित्त, कफ यह तीनो दोष विषमताको प्राप्त होजातेहैं। वह तीनो दोष विषमताको प्राप्त हुए शरीरके आश्रयभूत स्रोतोके मुखोको ढककर स्थित होतेहैं। फिर यह मनुष्य जो २ पदार्थ खाताहै उससे मल और मूत्रकी ही वृद्धि होतीहै और अन्य शरीर धातुओंकी वृद्धि नहीं होती और धातुएं क्षीण होकर केवल मलही और फिर निकलना जाताहै ॥ १६ ॥

तस्मात्कृष्यतोविशेषेणपुरीषमनुरक्ष्यम्,तथासर्वेषामत्यर्थकृशा-दुर्बलानाम् । तस्यानाप्याय्यमानस्यविषमाशनोपचिनादोषा पृथक्पृथगुपद्रवैर्युञ्जतोभूय शरीरमुपशोषयन्ति ॥ १७ ॥

क्योंकि मलकी अधिक प्रवृत्ति होनेसे शरीर स्थिर नहीं रह सकता। इसलिये रायपूर्ण कृश और दुर्बल मनुष्यके मलकी रक्षा करनी चाहिये। उस विषमाशन करनेवाले मनुष्यके शरीरमें मलकी रक्षा न करनेसे और अन्य धातुओंको पुष्ट करनेका उपाय न करनेसे वह वातादि दोष फिर अनेक उपद्रवोंको करतेहुए शरीर में शोषरोग उत्पन्न करतेहैं ॥ १७ ॥

तत्रवात शूलमङ्गमर्दंकण्ठोद्ध्वंसनपार्श्वसंरोजनमसावमर्दनम्-स्वरभेदप्रतिश्यायश्चोपजनयति । पित्तंपुनर्ज्वरमतीसारमन्तर्दा-हंच । श्लेष्माप्रतिश्यायशिरसोगुरुत्वकासमरोचकञ्च ॥ १८ ॥

उनमें वायु कोपको प्राप्त होकर शूल, अंगमर्द, कण्ठका बैठना, दोनो पार्श्वोंमें पीडा, मासका क्षय होना, स्वरभङ्ग और प्रतिश्यायको उत्पन्न करताहै। एवम् पित्त कुपित होकर ज्वर, अतिसार और देहमें अंतर्दाह इनको उत्पन्न करताहै तथा कफ कुपित होकर प्रतिश्याय,शिरका भारीपन,खासी और अरुचिको उत्पन्न करताहै॥१८॥

स कासप्रसङ्गादुरसि क्षते शोणित ष्ठीवति। शोणितगमनाच्चास्य दौर्वल्यमुपजायते। एवमेते विषमाशनोपचिता दोषा राजयक्ष्माणमभिनिर्वर्त्तयन्ति ॥ १९ ॥

फिर खासी होनेके कारण छातीमें घाव उत्पन्न होकर रक्त थूकमें आनेलगताहै। उस रक्तके निकलनेसे मनुष्यके शरीरमें दुर्वलता उत्पन्न होजातीहै। इस प्रकार विषमाशनसे सचित हुए दोष राजयक्ष्माको प्रकटकरतेहै ॥ १९ ॥

विषमाशनशोषमे कर्तव्यता।

सतेरुपशोषणैरुपद्रवैरुपद्रुत शनै शनैरुपशुष्यति। तस्मात् पुरुषोमतिमान्प्रकृतिकरणसयोगराशिदेशकालोपयोगसस्थोपशयादविषमाहारमाहरेदिति ॥ २० ॥

फिर वह मनुष्य उन शोषणकर्त्ता उपद्रवो द्वारा धीरे २ सूख जाताहै। इसलिये बुद्धिमान मनुष्यको प्रकृति, करण, सयोग, राशि, देश, काल, उपयोग सस्था, एवम उपशय इनसे अविपरीत अर्थात् इनके अनुकूल भोजन करनाचाहिये ॥ २० ॥

तत्र श्लोक।

हिताशी स्यान्मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रिय। पश्य न्रोगान् वहून् कष्टान् बुद्धिमान् विषमाशनादिति ॥ २१ ॥

यहापर एक श्लोक है कि बुद्धिमान् मनुष्यको हितभोजी, मितभोजी, कालभोजी एवम जितेन्द्रिय होनाचाहिये। क्योंकि विषमाशनसे अनेक प्रकारके कष्ट उत्पन्न होतेहै ॥ २१ ॥

राजयक्ष्मानामका कारण।

एतेश्चतुर्भि शोषस्यायतनैरभ्युपसेवितैर्वातापित्तश्लेष्माण एव प्रकोपमापद्यन्ते। ते प्रकुपितानानाविधैरुपद्रवै शरीरमुपशोषयन्ति। त सर्वरोगाणा कष्टतमंमत्वा राजयक्ष्माणमा

क्षते भिषजः । यस्माद्वा पूर्वमासीद्भगवतः सोमस्योडुराजस्य तस्माद्राजयक्ष्मेति ॥ २२ ॥

इस प्रकार इन चार शोषरोगके कारणोंको सेवन करनेसे वात, पित्त, कफ यह तीनों कोपको प्राप्त होतेहैं। यह कोपको प्राप्त हुए अनेक प्रकारके उपद्रवों द्वारा शरीरको सुखा देतेहैं। इसलिये सब रोगोंमें कष्टतम इस रोगको जानकर वैद्यलोग राजयक्ष्मा कहतेहैं। अथवा तारागणोंके पति भगवान् चन्द्रमाके शरीरमें यह रोग पहिले हुआ था इसलिये भी इस शोषरोगको राजयक्ष्मा कहते हैं ॥ २२ ॥

राजयक्ष्माके पूर्वरूप।

तस्येमानिपूर्वरूपाणि । तद्यथा–प्रतिश्याय क्षवथुरभीक्ष्णश्लेष्मप्रसेकोमुखमाधुर्य्यमनन्नाभिलापोऽन्नकालेचायासोदोषदर्शनमदोषदर्शनमदोषेष्वल्पदोषेषुवाभावेषुपात्रोदकान्नसूपापूपोपदंशापरिवेशकेषुभुक्तवतोहृल्लासस्तथोल्लेखनमाहारस्यान्तरान्तरामुखपादस्यशोफ पाण्योरवेक्षणमत्यर्थमक्ष्णो श्वेतताचातिप्रमाणाजिज्ञासास्त्रीकामतातिघृणित्वंबीभत्सदर्शनताचकायेस्वप्नेहिअभीक्ष्णंदर्शनमनुदकानामुदकस्थानानांशून्यानांग्रामनगरनिगमजनपदानांशुष्कदग्धभग्नानांचवनानांकृकलासमयूरवानरशुकसर्पकाकोलूकादिभिः सम्पर्शनमधिरोहणंयानंश्वोष्ट्रखरवराहैर्यानश्चकेशास्थिभस्मतुषाङ्गारराशीनामाधिरोहणमितिशोषपूर्वरूपाणिभवन्ति ॥ २३ ॥

उस राजयक्ष्माके यह पूर्वरूप होतेहैं जैसे प्रतिश्याय छींक आना, निरन्तर कफ गिरना, मुखमें मीठापन, अन्नकी इच्छा न होना, अन्नके समय थकावटसी मालूम देना, दोषरहित वस्तुओंमें भी दोषोंका दिखाई देना अथवा थोडे दोषवाली वस्तुओंमें भी अधिक दोष दिखाना और उनके सेवनमें अनिच्छा परम पात्र, जल, अन्न, दाल सिद्ध पदार्थ, चरनी एवम् मसाले आदि युक्त पदार्थ इन सबमें अनिच्छा, भोजनके पश्चात् सूखी छर्द होना और जो भोजन किया है उसका वमनमें निकलना, मुखकी चर्म मुख और पैरोंका सूजना, हाथोंको निरन्तर देखनेकी इच्छा होना, नेत्र सफेद होना, दोनों पावोंके प्रमाण जाननेकी इच्छा होना एवम् स्त्रीकी कामना होना तथा अत्यन्त घृणा, देहमें भयरप्नाका होना स्वप्नमें तालाब, सरोवर, नदी आदि जला-

शय्याका जलरहित और सूखा हुआ देखना एवम् ग्राम नगर, रास्ता, देश इन सबका सूखे हुए अथवा दग्ध होते हुए एवम् टूटे फूटे दीखना तथा वनोंको कटा हुआ देखना एवम् त्रिफला, मोर, वदर, तोता, साप, कौआ, उल्लू इनका स्वप्नमें स्पर्श करना और घोडा, ऊट, गधा, तथा सूअर युक्त सवारीमें बैठना और केश, अस्थि, भस्म, तुष, अगार इनकी ढेरोंपर चढना ऐसा स्वप्नमें दीखना । यह सब शोषरोगके पूर्वरूप है ॥ २३ ॥

राजयक्ष्माके रूप।

अतऊर्द्ध्वमेकादशरूपाणि । तद्यथा–शिरसःप्रतिपूरण कास श्वास स्वरभेदःश्लेष्मणश्छर्दनं शोणितष्ठीवन पार्श्वसंरोजन अंसावमर्दोज्वर अतीसारस्तथा अरोचक इति ॥ २४ ॥

अब शोषरोगके ग्यारह प्रकारके रूपोंका कथन करते है । जैसे, मस्तकका बहुत भारी होना अथवा पीडायुक्त होना । खासी, स्वरभेद, कफका गिरना, श्वास, थूकमें रुधिरका आना, पसलियोंम पीडा तथा कधोंम पीडा, ज्वर, अतिसार और अरुचि ॥ २४ ॥

तत्रापरिक्षीणमासशोणितोबलवानजातारिष्ट सर्वैरपि शोषलिङ्गैरुपद्रुत साध्यो ज्ञेयः ॥ २५ ॥

अब साध्य असाध्यको कहते है । जिस मनुष्यके शरीरमें मास और रक्त क्षीण न हुए हों और स्वय बलवान् हो तथा मरणव्यापक लक्षण न हों वह शोषरोगी शापरोगके लक्षणयुक्त होनेपर भी साध्य होता है ॥ २५ ॥

बलवर्णोपचयोपचितो हि सहिष्णुत्वाद्व्याध्योपधवलस्य काम बहुलिङ्गोऽप्यल्पलिङ्ग एवमन्तव्य ॥ २६ ॥

जो मनुष्य बल और वर्णसे युक्त हो एवम् व्याधि तथा औषधोंके बलको सहन करसकता हो ऐसे मनुष्यके शरीरमें राजयक्ष्माके सपूर्ण लक्षण मिलनेपर भी वह साध्य होताहै ॥ २६ ॥

दुर्वलन्त्वतिक्षीणमासशोणितमल्पलिंगमप्यजातारिष्टमपिबहुलिङ्गमेवविद्यादसहत्वाद्व्याध्योपधवलस्य त परिवर्जयेत् ॥२७॥

यदि रोगी दुर्बल हो तथा उसके रक्त और मांस क्षीण होगये हो वह मनुष्य अरिष्टकारक सब लक्षण न होनेपर भी असाध्य जानना चाहिये । उसको व्याधि और औषधीका बल न सहन करनेवाला देखकर त्याग देना चाहिये ॥ २७ ॥

क्षणेनहिप्रादुर्भवन्त्यरिष्टानि । अन्यनिमित्तश्चारिष्टप्रादुर्भाव इति ॥ २८ ॥

इस प्रकार राजरोगमें क्षणमात्रमें अरिष्टकारक सब लक्षण प्रगट होजाते हैं तथा अन्य कारणोंसे भी अरिष्टकारक लक्षण उत्पन्न होते हैं ॥ २८ ॥

तत्र श्लोक ।

समुत्थानञ्च लिङ्गञ्च य शोषस्यावबुध्यते ।
पूर्वरूपञ्च तत्त्वेन सराज्ञ कर्त्तुमर्हति ॥ २९ ॥

इति चरकसहितायां निदानस्थाने शोषनिदान समाप्तम् ॥ ६ ॥

अब यहां अध्यायकी पूर्तिमें एक श्लोक है । शोषरोगके कारण, लक्षण और पूर्वरूप इन सबको जो वैद्य विधिपूर्वक जानता है वही राजाओंकी (राजयक्ष्माकी) चिकित्सा करनेयोग्य है ॥ २९ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० निदान० पं० रामप्रसाद०वैद्योपाध्यायकृता शोषनिदान नाम षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्याय ।

अथोन्मादनिदानव्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम उन्मादके निदानकी व्याख्या करतेहैं । इस प्रकार भगवान आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

उन्मादके भेद ।

इह खलु पञ्च उन्मादाभवन्ति । तद्यथा-वातपित्तकफसन्निपातागन्तुनिमित्तास्तत्र दोषनिमित्ताश्चत्वार ॥ १ ॥

मनुष्यके शरीरमें उन्माद रोग पांच प्रकारसे होताहै । वातसे, पित्तसे, कफसे, सन्निपातसे और आगन्तुक कारणोंसे ॥ १ ॥

उन्मादरोगी पुरुष ।

पुरुषाणामेवंविधाना क्षिप्रमभिनिर्वर्त्तन्ते । तद्यथा-भीरूणामुपक्लिष्टसत्त्वानामुत्सन्नदोषाणाञ्चमलाविकृतोपहितान्यनुचितानि आहारजातानि वैषम्ययुक्तेनोपयोगविधिनोपयुञ्जा-

नानातन्त्रप्रयोगवा विपममाचरतामन्यां वा चेष्टांविपमांस-
माचरतामत्युपक्षीणदेहानाञ्चव्याधिवेगसमुद्भ्रमितानामुपह-
तमनसावाकामक्रोधलोभहर्पभयशोकचिन्तोद्वेगादिभि पुनर-
भिघाताभ्याहतानावामनसिउपहतेवुद्धौचप्रचलितायामभ्यु-
दीर्णादोपा प्रकुपिताहृदयमुपसृत्यमनोवहानिस्रोतासिआवृ-
त्यजनयतिउन्मादम् । उन्मादपुनर्मनोवुद्धिसज्ञाज्ञानस्मृतिभ-
क्तिशीलचेष्टाचारविभ्रमंविद्यात् ॥ २ ॥

वह उन्माद रोग इस प्रकारके पुरुषाके शरीरम शीघ्र उत्पन्न होतेहै। जो मनुष्य अधिक डरपोक है जिनका सत्वगुण विगड गया हो, जिनके शरीरमें वात, पित्त, कफ यह अत्यन्त वढे हो। जिनके मल विगडे हुए हो जिनके अनुचित आहारके करनेसे एवम विपमभोजनके करनेसे तथा पूर्वोक्त विधिसे विपरीत रीतिपर भोजन करनेसे अथवा विपम चेष्टाओंके करनेसे शरीरमें दोप कुपित हुए हों। जिस मनुष्यका शरीर क्षीण होगया हो अथवा व्याधिके वेगसे व्याकुल हो, जिसका चित्त काम, क्रोध, लोभ, हर्प, भय शोक, चिन्ता और उद्वेग अन्य मद आदिसे व्याकुल हो अथवा दिमाग आदि स्थानमे चोट लगी हो। ऐसे ऐसे कारणोंसे मनुष्यका मन उपहत होकर बुद्धि चलायमान होजातीहै। उस समय वढे हुए दोप कुपित होकर हृदयमें प्रवेशकर मनके वहनेवाले छिद्रोंको रोककर उन्मादरोगको उत्पन्न करतेहैं। उस उन्मादके होनेसे-मन, बुद्धि, सज्ञा ज्ञान, स्मृति भक्ति, शील, चेष्टा तथा आहार इन सवमें विभ्रम होजाताहै ॥ २ ॥

उन्मादके पूर्वरूप।

तस्येमानिपूर्वरूपाणि। तद्यथाशिरस शून्यभाव चक्षुपोराकु-
लतास्वन कर्णयोरुच्छ्वासस्याधिक्यमास्यसंस्रवणमनन्नाभिला-
पोऽरोचकाविपाकौहृदयग्रहोध्यानायासस्सम्मोहोद्वेगाश्चास्थाने
सततलोमहर्पोज्वरश्चाभीक्ष्णमुन्मत्तचित्तत्वमुदर्दितत्वमर्दिता-
कृतिकरणञ्चव्याधे । स्वप्नेचदर्शनमभीक्ष्णभ्रान्तचलितान-
स्थितानवस्थितानाञ्चरूपाणामप्रशस्तानाञ्चतिलपीडकचक्रा-
धिरोहणवातकुण्डलिकाभिश्चोन्मथननिमज्जनकलुपाणामम्भ

त्रिदोषलिङ्गसन्निपातेतसान्निपातिकंविद्यात् ।
तमसाध्यमित्याचक्षतेकुशलाः ॥ ७ ॥

वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंके लक्षण एकसाथ मिलनेसे सन्निपातजानित उन्माद जानना । इस उन्मादको वैद्यलोग असाध्य कथन करतेहैं ॥ ७ ॥

साध्योंकी उपक्रमणविधि ।

साध्यानान्तुत्रयाणांसाधनानिभवन्ति । तद्यथा—स्नेहस्वेदवमनविरेचनास्थापनानुवासनोपशमननस्तःकर्मधूपधूमपानाञ्जनावपीडप्रधमनाभ्यङ्गप्रदेहपरिषेकानुलेपनवधबन्धनावरोधनवित्रासनविस्मापनविस्मारणापतर्पणशिराव्यधनानि ॥ ८ ॥

सन्निपातके सिवाय और वातादि दोषोंसे उत्पन्न हुए तीन प्रकारके उन्माद साध्य होतेहैं । सो उनके यत्नोंको कथन करतेहैं । उनका क्रम यह है कि उन्माद रोगमें वातादि दोष भेद विचारकर स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, उपशमन नस्यकर्म, धूपन, धूम्रपान, अंजन और पीडन प्रधमन, अभ्यंग, प्रदेह-परिषेक, अनुलेपन, प्रहार, बंधन अवरोधन, वित्रासन विस्मयोत्पादन, विस्मारण, अपतर्पण, शिरावेधन यह सब उचित रीतिपर यत्न करना चाहिये ॥ ८ ॥

भोजनविधानञ्चयथास्वंयुक्त्यायच्चान्यदपिकिञ्चिन्निदानविपरीतमौषधकार्य्यंतत्स्यादिति ॥ ९ ॥

तथा दोषके अनुसार युक्तिपूर्वक आहार विधिसे भोजन कराना एवम् अन्य भी दोषको शान्त करनेवाले जो उपाय प्रतीत हों उनको करना चाहिये ॥ ९ ॥

तत्र श्लोक ।

उन्मादान्दोषजान्साध्यान्साधयेद्भिषगुत्तम ।
अनेनविधियुक्तेनकर्मणायत्प्रकीर्तितं ॥ १० ॥

यहां एक श्लोक है—कि वात, पित्त, कफसे उत्पन्न हुए उ[illegible] वैद्य उक्तोक्त विधि और क्रियाके अनुसार साधन करे अर्थात् शान्त करे ॥ १० ॥

[illegible]के लक्षण ।

यस्तुदोषनिमित्तेभ्यः[illegible]
द्रायविदोषसमन्वितो[illegible]

जिस उन्माद रोगमें वातादि दोषोंके लक्षणोंसे अन्य प्रकारके कारण, पूर्वरूप और रूप मिलने हों उसको आगन्तुज उन्मादरोग जानना ॥ ११ ॥

आगन्तुउन्मादकी उत्पत्तिमें भिन्नमत।

केचित्पुन पूर्वकृतंकर्माप्रशस्तमिच्छन्ति । तस्यनिमित्तप्रज्ञापराधएवेतिभगवान्पुनर्वसुरात्रेयउवाच ॥ १२ ॥ प्रज्ञापराधाद्धिअयदेवर्षिपितृगन्धर्वयक्षराक्षसपिशाचगुरुवृद्धसिद्धाचार्य्यपूज्यानवमत्याहितानिआचरतिअन्यद्वाकिञ्चित् कर्माप्रशस्तमारभते ॥ १३ ॥

कोई कहतेहैं कि पूर्वजन्मके कियेहुए पापही मनुष्यक उन्मादरोगके कारण होतेहैं। भगवान् अत्रियजी कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! उन्मादरोगके उत्पन्न होनेमें बुद्धिका ही दोष है क्योंकि बुद्धिका दोष ही समागम देवता, ऋषि, पितर, गधर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच गुरु, वृद्ध, सिद्ध, आचार्य और पूज्योंका अपमान कराकर उनसे अहित आचरण करातीहै तथा अन्य भी जो कुछ निंदनीय कर्म हैं उनके करनेवाला होताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

आगन्तुउन्मादके पूर्वरूप।

तमात्मनोपहतमुपघ्नन्तोदेवा कुर्वन्त्युन्मत्तम्। तत्रदेवादिप्रकोपनिमित्तेनागन्तुकोन्मादेनपुरस्कृतस्यइमानिपूर्वरूपाणि । तद्यथादेवगोब्राह्मणतपस्विनांहिंसारुचित्वकोपनत्वनृशंसाभिप्रायताअरतिरोजोवर्णच्छायानलवपुपाश्चोपतप्ति । स्वप्नेचदेवादिभिरभिभर्त्सनप्रवर्त्तनश्चेतिआगन्तुनिमित्तस्यउन्मादस्यपूर्वरूपाणिभवन्तिततोऽनन्तरमुन्मादाभिनिर्वृत्ति ॥ १४ ॥

इसलिये क्रोधितहुए देवता उस हतबुद्धि मनुष्यके शरीरमें उन्मादरोगको उत्पन्न करते हैं। सो उस देवादि प्रकोपसे उत्पन्न हुए उन्माद रोगके यह पूर्वरूप होतेहैं। जैसे देवता, गौ, ब्राह्मण, तपस्वी इनको मारनेकी इच्छा होना तथा इनमें अरुचि होना एवम इनपर क्रोध होना और निर्दनीय लज्जारहित कर्मोंके करनेकी इच्छा होना चित्त कहीं न लगना, ओज, वर्ण, कांति, बल इन सबका नष्ट होना, शरीरका संतापमान रहना, स्वप्नमें देवता आदि उनको पकड लावें और घोर २ शब्द कहें। यह आगन्तुज उन्मादरोगके पूर्वरूप हैं। इसके उपरान्त उन्मादरोगके लक्षण प्रगट होजाते हैं ॥ १४ ॥

त्रिदोषलिङ्गसन्निपातेतंसान्निपातिकंविद्यात् ।
तमसाध्यमित्याचक्षतेकुशलाः ॥ ७ ॥

वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंके लक्षण एकसाथ मिलनेसे सन्निपातजनित उन्माद जानना । इस उन्मादको वैद्यलोग असाध्य कथन करतेहैं ॥ ७ ॥

साध्योंकी उपक्रमणविधि ।

साध्यानान्तुत्रयाणांसाधनानिभवन्ति । तद्यथा—स्नेहस्वेदवमनविरेचनास्थापनानुवासनोपशमननस्तःकर्मधूपधूमपानाञ्जनावपीडप्रधमनाभ्यङ्गप्रदेहपरिषेकानुलेपनवधबन्धनावरोधनवित्रासनविस्मापनविस्मारणापतर्पणशिराव्यधनानि ॥ ८ ॥

सन्निपातके सिवाय और वातादि दोषोंसे उत्पन्न हुए तीन प्रकारके उन्माद साध्य होतेहैं । सो उनके यत्नोंको कथन करतेहैं । उनका क्रम यह है कि उन्माद रोगमें वातादि दोष भेद विचारकर स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, उपशमन नस्यकर्म, धूपन, धूम्रपान, अंजन और पीडन प्रधमन, अभ्यंग, प्रदेह परिषेक, अनुलेपन, प्रहार, बंधन अवरोधन, वित्रासन विस्मयोत्पादन, विस्मारण, अपतर्पण, शिरावेधन यह सब उचित रीतिपर यत्न करना चाहिये ॥ ८ ॥

भोजनविधानञ्चयथास्वंयुक्त्यायच्चान्यदपिकिञ्चिन्निदानविपरीतमौषधंकार्य्यंतस्यादिति ॥ ९ ॥

तथा दोषके अनुसार युक्तिपूर्वक आहार विधिका सेवन कराना एवम् अन्य भी दोषको शान्त करनेवाले जो उपाय प्रतीत हों उनको करना चाहिये ॥ ९ ॥

तत्र श्लोक ।

उन्मादान्दोषजान्साध्यान्साधयेद्भिषगुत्तम ।
अनेनविधियुक्तेनकर्मणायत्प्रकीर्त्तितमिति ॥ १० ॥

यहां पर श्लोक है—कि वात, पित्त, कफसे उत्पन्न हुए उन्माद रोगोंको बुद्धिमान वैद्य उक्तोक्तविधि और क्रियाके अनुसार साधन करे अर्थात् साध्य उन्मादरोगोंको शान्त करे ॥ १० ॥

आगन्तुक उन्मादके लक्षण ।

यस्तुदोषनिमित्तेभ्यउन्मादेभ्यः समुत्थानपूर्वरूपलिङ्गवेदनोपशयविशेषसमन्वितोभवतिउन्मादस्तमागन्तुमाचक्षते ॥ ११ ॥

जिस उन्माद रोगमें वातादि दोषोंके लक्षणोंसे अन्य प्रकारके कारण, पूर्वरूप और रूप मिलते हों उसको आगन्तुज उन्मादरोग जानना ॥ ११ ॥

आगन्तुउन्मादकी उत्पत्तिमें भिन्नमत ।

केचित्पुन पूर्वकृतकर्माप्रशस्तामिच्छन्ति । तस्यनिमित्तप्रज्ञापराधएवेतिभगवान्पुनर्वसुरात्रेयउवाच ॥ १२ ॥ प्रज्ञापराधाद्धिअयदेवर्षिपितृगन्धर्वयक्षराक्षसपिशाचगुरुवृद्धसिद्धाचार्य्यपूज्यानवमत्याहितानिआचरतिअन्यद्वाकिञ्चित् कर्माप्रशस्तमारभते ॥ १३ ॥

कोइ कहतेहं कि पूर्वजन्मके कियेहुए पापही मनुष्यके उन्मादरोगके कारण होतेहं । भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! उन्मादरोगके उत्पन्न होनेमें बुद्धिका ही दोष है क्योंकि बुद्धिका दोष ही संसारमें देवता, ऋषि, पितर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच गुरु, वृद्ध, सिद्ध, आचार्य और पूज्योंका अपमान करकर उनसे अहित आचरण करताहै तथा अन्य भी जो कुछ निंदनीय कर्म हैं उनके करनेवाला होताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

आगन्तुउन्मादके पूर्वरूप ।

तमात्मनोपहतमुपघ्नन्तोदेवा कुर्वन्त्युन्मत्तम् । तत्रदेवादिप्रकोपनिमित्तेनागन्तुकोन्मादेनपुरस्कृतस्यइमानिपूर्वरूपाणि । तद्यथादेवगोब्राह्मणतपस्विनांहिंसारुचित्वकोपनत्वनृशंसाभिप्रायताअरतिरोजोवर्णच्छायाबलवपुषाञ्चोपतप्तिः । स्वप्नेचदेवादिभिरभिभर्त्सनप्रवर्त्तनञ्चेतिआगन्तुनिमित्तस्यउन्मादस्यपूर्वरूपाणिभवन्तिततोऽनन्तरमुन्मादाभिनिर्वृत्ति ॥ १४ ॥

इसलिये क्रोधितहुए देवता उस हतबुद्धि मनुष्यके शरीरमें उन्मादरोगको उत्पन्न करते हैं । सो उस देवादि प्रकोपसे उत्पन्न हुए उन्माद रोगके यह पूर्वरूप होतेहैं । जैसे देवता, गौ, ब्राह्मण, तपस्वी इनको मारनेकी इच्छा होना तथा इनमें अरुचि होना तथा इनपर क्रोध होना और निंदनीय लज्जारहित कर्मोंके करनेकी इच्छा होना चित्तका कहीं न लगना, ओज, वर्ण, कांति, बल इन सबका नष्ट होना, शरीरका तपायमान रहना, स्वप्नमें देवता आदि उसको पकड लगें और बुरे शब्द कहें । यह आगन्तुज उन्मादरोगके पूर्वरूप हैं । इसके उपरान्त उन्मादरोगके लक्षण प्रगट होजातेहैं ॥ १४ ॥

उन्मादोत्पत्तिसे पूर्वचेष्टा ।

तत्रायमुन्मादकराणांभूतानामुन्मादयिष्यतामारम्भविशेषस्त यथा–अवलोकयन्तोदेवाजनयन्तिउन्मादम् । गुरुवृद्धसिद्ध र्षयोऽभिशपन्त पितरोधर्षयन्त । स्पृशन्तोगन्धर्वा । समाविशन्तोयक्षराक्षसास्त्वामगन्धमाघ्रापयन्त पिशाचा पुनरधिरुह्य वाहयन्त ॥ १५ ॥

आगन्तुक उन्माद प्रगट होनेके समय उन्मादकारक देवादिकोंके अलग २ प्रकार भेदसे उन्मादरोगका आरम्भ होताहै । जैसे–देवता दर्शनमात्रसेही उन्माद रोगको उत्पन्न करतेहैं । गुरु, वृद्ध, सिद्ध और ऋषि इनके शाप देनेसे उन्माद रोग होताहै । पितरोंके र्धगनेसे उन्माद रोग होताहै । गंधर्व शरीरको स्पर्शकर उन्मादको उत्पन्न करतेहैं । यक्ष, राक्षस शरीरमें प्रवेश होकर उन्मादको उत्पन्न करतेहैं । पिशाच देहमें आमगंधको सुंघकर और शरीरके ऊपर चढकर उन्माद रोगको उत्पन्न करते हैं ॥ १५ ॥

उन्मादके रूप ।

तस्येमानिरूपाणि । तद्यथा– अमर्त्यबलवीर्य्यपौरुषपराक्रम ग्रहणधारणस्मरणज्ञानवचनविज्ञानानिअनियतश्चोन्मादकाल ॥ १६ ॥

उस उन्माद रोगके यह लक्षण होतेहैं । जो मनुष्योंमें न हों उस प्रकारके अर्थात् अमानुषीय–बल, वीर्य, पराक्रम, पौरुष, ज्ञान, और विज्ञान यह सब उस मनुष्यके शरीरमें उन्मादके समय उत्पन्न हों। और तथा उस उन्मादके होनेका कोई नियत समय न हो ॥ १६ ॥

आघातकाल ।

उन्मादयिष्यतामपिखलुदेवर्षिपितृगन्धर्वयक्षराक्षसपिशाचानां गुरुवृद्धसिद्धानाथाप्यन्तरेष्वभिगमनीया पुरुषाभवन्ति तद्यथा– पापस्यकर्मण समारम्भेपूर्वकृतस्यवाकर्मण परिणा मकालेएकस्यवाशून्यगृहवासेचतुष्पथाधिष्ठानेवासन्ध्यावेला यामप्रयतभावेवापर्वसन्धिषुवामिथुनभावेरजस्वलाभिगमने वाविगुणेवाध्ययनबलिमङ्गलहोमप्रयोगेनियमव्रतब्रह्मचर्य्यभ-

ऽवामहाहवेवादेशकुलपुरविनाशेवामहाग्रहोपगमनेवास्त्रिया प्रजननकालेविविधभुताशुभाशुचिस्पर्शनेवावमनविरेचनरुधिरस्रावेवाशुचेरप्रयतस्यवाचैत्यदेवायतनाभिगमनेवामासमधुतिलगुडमद्योच्छिष्टेवादिग्वाससिवानिशिनगरनिगमचतुष्पथोपवनश्मशानायतनाभिगमनेवाद्विजगुरुसुरपूज्याभिधर्षणेवाधर्माख्यानव्यतिक्रमेवाअन्यस्यकर्मणोऽप्रशस्तस्यारम्भेवाऽत्याघातकाला॰ ॥ १७ ॥

उन्मादके करनेवाले देवता, ऋषि, पितृगण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच इनका तथा गुरु, वृद्ध, सिद्ध इनका भी उन्मादके उत्पन्न करनेका समय होताहै अर्थात् यह सब भी मनुष्यमें किसी प्रकारका छिद्र पाकर ही उन्माद रोगको उत्पन्न करतेहैं। इनके कुपित होनेके यह समय होतेहै। पापकर्मके करनेसे अथवा पूर्वजन्मके किये पापोंके फलसे–शून्य घरमें अकेला देखकर, चौराहेमें दोनों सध्याओंके समय, विना काम कहीं खाली बैठे हुए, पर्वके समय, अपवित्र समय, मैथुनके समय अथवा रजस्वलासे गमन करनेके समय, या पर्वसंधियोंमें स्त्रीगमनके समय, अथवा पढने, बलिदान करने एवम् मंगल तथा होम कर्म करनेके समय किसी प्रकारका उपद्रव कर लेनेसे। नियम, व्रत और ब्रह्मचर्य इनमें किसी प्रकारकी विगुणता होजानेके समय, घोर युद्धमें अथवा देश, कुल और नगरके विनाशके समय या किसी ग्रहण आदि महा ग्रहके आगमनके समय, स्त्रियोंके प्रसनकालके समय एवम् अनेक प्रकारके भूत तथा अपवित्र स्पर्शके समय अथवा वमन, तथा रुधिरके स्रावके समय एवम् अपवित्रावस्थामें तथा वेसमय पीपल आदि देवताके वृक्ष तथा देवमंदिरमें प्रवेश करनेसे अथवा उच्छिष्ट मांस, मधु, तिल, गुड, मद्य इनके सेवनसे बिलकुल नंगा रहनेके समय, रात्रिमें, रास्तेमें, चौराहेमें, बागीमें एवम् श्मशानमें अकेला होनेके समय धर्मकी मर्यादाके विगाडनेसे अथवा अन्य कोई निंदितकर्म करनेके समय उपरोक्त देवतादि आघात पाकर उन्माद रोगको उत्पन्न करतेहैं ॥ १७ ॥

उन्मत्तताके तीन प्रयोजन।

त्रिविधन्तुखलुउन्मादकराणाभूतानामुन्मादनेप्रयोजनभवति। तद्यथा– हिंसारतिरभ्यर्चनञ्चेति। तेषातत्प्रयोजनमुन्मत्ताचरणविशेषलक्षणैर्विद्यात्। तत्रहिंसार्थमुन्माद्यमानोऽ

भिप्रविशतिअप्सुवानिमज्जतिस्थलात्श्वभ्रेवानिपतति । शस्त्र कशाकाष्ठलोष्टमुष्टिभिर्हन्त्यात्मानमन्यच्चप्राणवधार्थमारभते। हिंसार्थिनमुन्मत्तमसाध्यंवियात् । साध्यौपुनर्द्वावितरौ॥ १८ ॥

उन्मादकारक देवताओंका उन्मादरोग उत्पन्न करनेमें तीन प्रकारका प्रयोजनहै । १ हिंसा २ अरति ३ अभ्यर्चन । इन तीनों प्रयोजनोंको उन्मत्त मनुष्यके आचरणोंसे जाना जासकताहै उनमें हिंसा अर्थात् मनुष्यके पापकर्मसे कुपित हुए देवादि जब उसके (हिंसा-मारने) के लिये उन्मादरोगको उत्पन्न करतेहैं तब वह मनुष्य अग्निमें प्रवेश करे अथवा जलमें डूब मरे या ऊंचे स्थानसे नीचे गिर पडे अथवा किसी गढे आदिमें गिरे एवम् शस्त्र, कशा, काष्ठ, पत्थर मुक्का, आदिसे अपने प्राणोंको नष्ट करनेमें लगे । इस प्रकार देवादिकोंसे हिंसाके लिये उन्मादित कियाहुआ मनुष्य असाध्य होताहै । अरति और अभ्यर्चनाके लिये जो दो प्रकारके उन्मादरोग हैं उनको साध्य जानना ॥ १८ ॥

साध्योंका वर्णन ।

तयो साधनानि ।मन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमव्रतप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादीनिइतिएवमेतेपञ्चोन्मादाव्याख्याताभवन्ति ॥ १९ ॥

उन साध्य उन्मादोंको साधन करनेके यह उपाय हैं । जैसे-मन्त्र औषध, मणि मंगलकर्म, बलिदान, उपहार (भोजनादि देना) हवन, नियम, व्रत, प्रायश्चित्त, उपवास, स्वस्त्ययन (शान्तिपाठ आदि अथवा शान्तिकारक कर्म) प्रणिपातन (वंदना) एवम् देवयात्रादि यह आगन्तुज उन्माद रोगकी शान्तिके लिये करना चाहिये । इस प्रकार पांच प्रकारके उन्मादका वर्णन कियागयाहै ॥ १९ ॥

उन्मादका द्विविधत्व ।

ते तु खलु निजागन्तुविशेषेणसाध्यासाध्यविशेषेण च प्रविभज्यमाना,पञ्च सन्तो द्वौ एव भवत ॥ २० ॥

वह उन्मादरोग निज और आगन्तुज भेदसे पांच प्रकारके और साध्य असाध्यके भेदसे दो प्रकारके होतेहैं ॥ २० ॥

तौ परस्परमनुबध्नीत, । कदाचिद्यथोक्तहेतुसंसर्गाद्ध यस्मात् संसृष्टमेव पूर्वरूपं भवति संसृष्टमेवलिङ्गञ्च । तत्र असाध्य-

संयोगसाध्यासाध्यसयोगंवाअसाध्यंविद्यात्। साध्यन्तुसाध्य-सयोग तस्य साधनं साधनसयोगमेवविद्यादिति ॥ २१ ॥

उन आगन्तुज और निज अर्थात् दोपज उन्मादोंका भी आपसमें सम्बन्ध होताहै। निज और आगन्तुज कारणोंका समर्ग होनेसे पूर्वरूपमें तथा लक्षणोंमें भी संसर्ग होजाताहै। वह इस प्रकार निज और आगन्तुज उन्मादोंका संसर्ग हुआ असाध्यताको प्राप्त होजाताहै एवम् साध्य और असाध्योंका संसर्ग होना भी असाध्य ही जानना चाहिये। इस प्रकार मिलेजुले निज और आगन्तुज उन्मादोंमें तथा साध्य और असाध्योंमें चिकित्सा भी मिलीजुली करनी चाहिये ॥ २१ ॥

तत्र श्लोका ।

नैव देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसा ।

न चान्ये स्वयमक्लिष्टमुपक्लिश्यन्ति मानवम् ॥ २२ ॥

जो मनुष्य अपने पाप तथा दोषोंसे रहित होताहै उसके शरीरमें कोई देवता, गंधर्व, पिशाच, राक्षस, आदि तथा अन्य भी कोई किसी प्रकारका उपद्रव नहीं करते ॥ २२ ॥

ये त्वेनमनुवर्त्तन्ते क्लिश्यमान स्वकर्मणा ।

न तन्निमित्त क्लेशोऽसौ न ह्यस्तिकृतकृत्यता ॥ २३ ॥

जो मनुष्य अपने पापकर्मोंसे कष्टको भोगते हुए देवता आदिको दोष देतेहैं और अपने किये पापोंको अपने दुःखका कारण नहीं समझते वह संपूर्णरूपसे झूठेहैं और अपने कार्यकी कृतकृत्यताको प्राप्त नहीं होते ॥ २३ ॥

प्रज्ञापराधात् सम्प्राप्ते व्याधौ कर्मजआत्मन । नाभिशंसेद्बुधोदेवान् न पितॄन् नापि राक्षसान् ॥ २४ ॥

अपनी बुद्धिसे अपराधसे किये हुए कुकर्मोंके फलसे संकट प्राप्त होनेपर बुद्धिमान् मनुष्य देवता तथा पितृगण एवम् राक्षसादिकोंको दोष न देवे ॥ २४ ॥

आत्मानमेव मन्येत कर्त्तार सुखदुःखयो ।

तस्माच्छ्रेयस्कर मार्ग प्रतिपद्येत नोत्रसेत् ॥ २५ ॥

बुद्धिमान्को उचित है कि अपनेको ही सुखदुःखका कारण माने। इसलिये कल्याण के करनेवाले मार्गपर चलता रहे। ऐसा करनेसे मनुष्य भयको प्राप्त नहीं होता ॥ २५ ॥

ग्निप्रविशतिअप्सुवानिमज्जतिस्थलात्श्वभ्रेवानिपतति । शस्त्र कशाकाष्ठलोष्टमुष्टिभिर्हन्त्यात्मानमन्यञ्चप्राणवधार्थमारभते। हिंसार्थिनमुन्मत्तमसाध्यंविद्यात् । साध्योपुनर्द्वावितरौ॥ १८ ॥

उन्मादकारक देवताओंका उन्मादरोग उत्पन्न करनेमें तीन प्रकारका प्रयोजनहै । १ हिंसा २ अरति ३ अभ्यर्चन । इन तीनों प्रयोजनोंको उन्मत्त मनुष्यके आचरणोंसे जाना जासकताहै उनमें हिंसा अर्थात् मनुष्यके पापकर्मसे कुपित हुए देवादि जब उसके (हिंसा—मारने) के लिये उन्मादरोगको उत्पन्न करतेहैं तब वह मनुष्य अग्निमें प्रवेश करे अथवा जलमें डूब मरे या ऊचे स्थानसे नीचे गिर पडे अथवा किसी गढे आदिमें गिरे एवम् शस्त्र, कशा, काष्ठ, पत्थर मुक्का, आदिसे अपने प्राणोंको नष्ट करनेमें लगे । इस प्रकार देवादिकोंसे हिंसाके लिये उन्मादित कियाहुआ मनुष्य असाध्य होताहै । अरति और अभ्यर्चनाके लिये जो दो प्रकारके उन्मादरोग है उनको साध्य जानना ॥ १८ ॥

साध्योंका वर्णन।

तयो साधनानि। मन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमव्रतप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादीनिइतिएवमेतेपञ्चोन्मादाव्याख्याताभवन्ति ॥ १९ ॥

उन साध्य उन्मादोंको साधन करनेके यह उपाय हैं । जैसे—मन्त्र औषध, मणि मगलकर्म, बलिदान, उपहार (भोजनादि देना) हवन, नियम, व्रत, प्रायश्चित्त, उपवास, स्वस्त्ययन (स्वस्तिवाचन आदि अथवा शान्तिकारक कर्म) प्रणिपातन (वदना) एवम् देवयात्रादि कर्म आगन्तुज उन्माद रोगकी शान्तिके लिये करना चाहिये । इस प्रकार पाच प्रकारके उन्मादका वर्णन कियागयाहै ॥ १९ ॥

उन्मादका द्विविधत्व ।

ते तु खलु निजागन्तुविशेषेणसाध्यासाध्यविशेषेण च प्रविभज्यमाना.पञ्च सन्तो द्वौ एव भवत ॥ २० ॥

वह उन्मादरोग निज और आगन्तुज भेदसे पाच प्रकारके और साध्य असाध्यके भेदसे दो प्रकारके होतेहैं ॥ २० ॥

तौ परस्परमनुबध्नीत । कदाचिद्यथोक्तहेतुससर्गाच्च तयो संसृष्टमेव पूर्वरूपं भवति संसृष्टमेवलिङ्गञ्च । तत्र असाध्य-

संयोगसाध्यासाध्यसयोगंवाअसाध्यंविद्यात्। साध्यन्तुसाध्य-
सयोग तस्य साधन साधनसयोगमेवविद्यादिति ॥ २१ ॥

उन आगन्तुज और निज अर्थात् दोषज उन्मादाका भी आपसमें सबन्ध होताहै। निज और आगन्तुज कारणोंका समर्ग होनेसे पूर्वरूपमें तथा लक्षणोंमें भी ससर्ग होनाताहै। वह इस प्रकार निज और आगन्तुज उन्मादोका ससर्ग हुआ असाध्यताको प्राप्त होजाताहै एवम् साध्य और असाध्योंका ससर्ग होना भी असाध्य ही जानना चाहिये। इस प्रकार मिलेजुले निज और आगन्तुज उन्मादोंमें तथा साध्य और असाध्योंमें चिकित्सा भी मिलीजुली करनी चाहिये ॥ २१ ॥

तत्र श्लोका ।

नैव देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसा ।
न चान्ये स्वयमक्लिष्टमुपक्लिश्यन्ति मानवम् ॥ २२ ॥

जो मनुष्य अपने पाप तथा दोषोंसे रहित होताहै उसके शरीरमें कोई देवता, गधर्व, पिशाच, राक्षस, आदि तथा अन्य भी कोई किसी प्रकारका उपद्रव नहीं करते ॥ २२ ॥

ये त्वेनमनुवर्त्तन्ते क्लिश्यमान स्वकर्मणा ।
न तन्निमित्त क्लेशोऽसौ न ह्यस्तिकृतकृत्यता ॥ २३ ॥

जो मनुष्य अपने पापकर्मोंसे कष्टको भोगते हुए देवता आदिको दोष देतेहैं और अपने किये पापाको अपने दु खका कारण नहीं समझने वह सपूर्णरूपसे मूढेहैं और अपने कार्यकी कृतकृत्यताको प्राप्त नहीं होते ॥ २३ ॥

प्रज्ञापराधात् सम्प्राप्ते व्याधौ कर्मजआत्मन । नाभिशसेद्बुधोदेवान् न पितॄन् नापि राक्षसान् ॥ २४ ॥

अपनी बुद्धिसे अपराधसे किये हुए कुकर्मोंके फलसे सकट प्राप्त होनेपर बुद्धिमान् मनुष्य देवता तथा पितृगण एवम् राक्षसादिकोंको दोष न देवे ॥ २४ ॥

आत्मानमेव मन्येत कर्त्तार सुखदु खयो ।
तस्माच्छ्रेयस्कर मार्ग प्रतिपद्येत नोत्रसेत् ॥ २५ ॥

बुद्धिमानको उचित है कि अपनेको ही सुखदु खका कारण माने। इसलिये कल्याण के करनेवाले मार्गपर चलता रहे। ऐसा करनेसे मनुष्य त्रासको प्राप्त नहीं होता ॥ २५ ॥

देवादीनामुपचितिर्हितानामुपसेवनम् ।
न च तेभ्यो विरोधश्चसर्वमायत्तमात्मनि ॥ २६ ॥

हित वस्तुओंका सेवन करना एवम् हित आचरण रखना यही देवतादिकोंका पूजन है क्योंकि देवताओंको प्रसन्न रखना तथा उनसे विरोध उत्पन्न करना यह सब अपनेही आधीन होताहै ॥ २६ ॥

संख्यानिमित्त द्विविध लक्षण साध्यता न च । उन्मादाना निदानेऽस्मिन् क्रियासूत्रञ्च भाषितम् ॥ २७ ॥

इस उन्मादरोग निदान नामक अध्यायमें उन्मादरोगकी संख्या, कारण, उनके दोनों प्रकारोंके लक्षण, साध्यता और असाध्यता तथा संक्षेपसे उनकी चिकित्साके क्रमका वर्णन कियाहै ॥ २७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासि वैद्यपञ्चानन प० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्यायभाषाटीकायां मुन्मादरोगनिदान नाम सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्याय ।

अथापस्मारनिदान व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेय ।

अब हम अपस्मार रोगके निदानको कथन करतेहैं । इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

अपस्मारके भेद ।

इह खलु चत्वारोऽपस्मारा वातपित्तकफसन्निपातनिमित्ता ॥ १ ॥

इस शरीरमें अपस्माररोग चारप्रकारसे उत्पन्न होवाहै । जैसे वातसे, पित्तसे, कफसे एवम् सन्निपातसे ॥ १ ॥

अपस्मारके योग्यपुरुष ।

त्ते एवंविधानां प्राणभृतां क्षिप्रमभिनिर्वर्त्तन्ते । तद्यथा । रजस्तमोभ्यामुपहतचेतसामुद्भ्रान्तविषमबहुदोषाणां समलविकृतोपहितानि अशुचीनि अभ्यवहारजातानि वैषम्ययुक्तेन उपयोगविधिनोपयुञ्जानानातन्त्रप्रयोगमपिचविषममाचरता-

मन्याश्चशरीरचेष्टाविषमा समाचरतामत्युपक्षीणदेहानावादो
षा प्रकुपितारजस्तमोभ्यामुपहतचेतसामन्तरात्मन श्रेष्ठतम-
मायतनहृदयमुपसगृह्यपर्य्यवतिष्ठन्तेतथाइन्द्रियायतनानितत्र
चावस्थिता सन्तोयदाहृदयमिन्द्रियायतनानिचेरिता कामक्रो-
धभयलोभमोहहर्षशोकचिन्तोद्वेगादिभि'भूय सहसाअभिपूर-
यन्तितदाजन्तुरपस्मरति ॥ २ ॥

वह अपस्मार (मृगी) रोग ऐसे मनुष्योंके शरीरमे शीघ्र होताहै जिनका नीचे कथन करतेहैं। जैसे रजोगुण और तमोगुणसे ढकेहुए चित्तवाले । जिनके शरीरमें वातादिदोष उद्भ्रान्त अथवा विषम, या बढेहुए हों। जो मनुष्य आहार विधिको त्याग कर मलीन, बिगडाहुवा, गतरस, अपवित्र, ऐसे २ आहारको करताहै । अथवा विषमभोजनको करताहै । जो शास्त्रीयविधिके प्रतिकूल अन्यान्य आहारविहारोंको करताहै । तथा अनेकप्रकारकी विषमचेष्टा करनेवाले एवम् क्षीणदेहवाले । ऐसे२ मनुष्योंके शरीरमें वातादि दोष कुपितहो अतरात्माके श्रेष्ठस्थानरूप चित्तमें प्रवेश करतेहैं और उस चित्तको रजोगुण और तमोगुणसे उपहत (बिगाड) कर स्थितरहतेहैं। फिर उस मनुष्यके काम, क्रोध, भय, लोभ, मोह, हर्ष, शोक, चिंता, और उद्वेग आदिसे सहायता पाकर हृदय और इंद्रियोंके स्थानोंको सहसा पूरणकर अपस्मार-रोगको उत्पन्न करतेहैं ॥ २ ॥

अपस्मारके लक्षण ।

अपस्मारपुन स्मृतिबुद्धिसत्त्वसम्प्लवाद्बीभत्सचेष्टमावस्थिकतम.
प्रवेशमाचक्षते ॥ ३ ॥

स्मरणशक्ति बुद्धि, सत्व, यह सब नष्ट होकर भयानक चेष्टाकी अवस्थारूप अंधकारमें प्रवेश होनेको अपस्मार (मृगी) रोग कहतेहैं ॥ ३ ॥

अपस्मारके पूर्वरूप ।

तस्येमानिपूर्वरूपाणिभवन्ति । तद्यथा— भ्रूव्युदास सततम-
क्ष्णोर्वैकृतमशब्दश्रवणलालाशिंघाणकप्रस्रवणमनन्नाभ्यशन
मरोचकाविपाकौहृदयग्रह कुक्षेराटोपोदौर्बल्यमङ्गमर्दोमोहस्त-
मसोदर्शनमूर्च्छाभ्रमश्चाभीक्ष्णंस्वप्नेमदनर्त्तनपीडनवेपनव्य-

पतनादीनिअपस्मारपूर्वरूपाणिभवन्तिततोऽनन्तरमपस्मा भिनिर्वृत्तिः ॥ ४ ॥

इस अपस्माररोगके यह पूर्वरूप होतेहै । जैसे—दोनों भ्रुकुटियोंका सकोच, नेत्रोंकी निरतर विकृति (टेढेसे रहना) कानोंमें शब्दसा सुनना, अथवा श्रवणशक्ति नष्ट होजाना, मुखसे लार वहना, नाकसे मैल गिरना, अन्नका न खाना, अरुचि, अविपाक, हृदयका रुकजाना, कूखका फूलना, दुर्बलता, अगमर्द मोह अधकार दर्शन, मूर्च्छा, भ्रम, सोते हुए मस्त होजाना, नाचना, दोनों हाथोंको मींजना, कापना, व्यथाका प्राप्तहोना, और गिर पडना, यह अपस्माररोगके पूर्वरूप है । यह अपस्मार रोगके पूर्व- रूप हैं । इसके अनतर अपस्माररोग प्रगट होजाताहै ॥ ४ ॥

वातज अपस्मारके लक्षण ।

तत्रेदमपस्मारविशेषविज्ञानभवति । तद्यथा—अभीक्ष्णमपस्म- रन्त क्षणे क्षणे सज्ञां प्रतिलभमानमुत्पिण्डिताक्षमसाम्ना वा विलपन्तमुद्वमन्त फेनमतीवाध्मातग्रीवमाविद्धशिरस्क विपम विनतागुलिमनवस्थितसक्थिपाणिपादमरुणपरुपश्यावनखन- यनवदनत्वचमनवस्थितचपलपरुपरूक्षरूपदर्शिनवातलानुप शय विपरीतोपशय वातेनापस्मारवन्तविद्यात् ॥ ५ ॥

अब अपस्मारके भेदोंके ज्ञानको कथन करतेहैं वह इस प्रकार है । जिस मनुष्यको अपस्माररोग होताहो अथवा स्मरणशक्ति नष्ट होजाय और अपस्मार होनेके समय थोडी थोडी देरमें होश आजाताहो जिसके नेत्रकी पुतली सिकुडगईहो जो मनुष्य वकवाद करताहो एवम् मुखसे झाग निकालताहो तथा गर्दन फूली हुईसी हो, मस्तक रुका हुआसा हो हाथोंकी अगुलियें टेढी होगईहों तथा हाथपैर अनवस्थित हों एवम् नख, नेत्र, मुख और त्वचा यह सब लाल कठोर और काले होगयेहो, मन चलाय- मान हो सब वस्तुयें चपल, कठोर और रूक्ष दिखाई देय तथा वातकारक पदार्थोंसे रोगकी वृद्धि हो और वातनाशक पदार्थोंके सेवनसे शान्ति हो । यह सब लक्षण वात जनित अपस्मारमें होतेहै ॥ ५ ॥

पित्तजअपस्मारके लक्षण ।

अभीक्ष्णमपस्मरन्तं क्षणे क्षणे सज्ञां प्रतिलभमानमनुकूजन्त मास्फालयन्त च भूमिंहारितहारिद्रताम्रनखनयनवदनत्वचं

रुधिरोक्षितोग्रभैरवप्रदीप्तरुपितरूपदर्शिनं पित्तलानुपशयंविप रीतोपशय पित्तेनापस्मारितविद्यात्॥ ६ ॥

पित्तके अपस्मारमें निरन्तर अपस्मार रोगका होना क्षण २ परहोश आजाना, कण्ठस कीलहनेकासा शब्द करना, हाथपैरोंको इधर ऊधर भूमिमें पटकना, नेत्र, नख, मुख, त्वचा इन सबका वर्ण हरा, पीला तथा ताम्रवर्णका होना और उस मनुष्यको स्वप्नम अथवा अपस्मार रोग होनेके समय रक्तसे भरेहुए उग्र, भयानक प्रकाशयुक्त, क्रोधित रूपोंका देखना तथा पित्तकारक द्रव्योंसे रोगका बढना एवम् पित्तनाशक द्रव्योंसे शान्त होना। यह सब लक्षण पित्तजनित अपस्मारमें होतेहै ॥६॥

कफज अपस्मारके लक्षण।

चिरादपस्मरन्तचिराच्चसञ्ज्ञाप्रतिलभमानपतन्तमनातिविकृत-चेष्टलालामुद्वमन्तशुक्लनखनयनवदनत्वचशुक्लगुरुस्निग्धरूप-दर्शिनश्लेष्मलानुपशयविपरीतोपशयश्लेष्मणापस्मारितविद्या त् ॥ ७ ॥

जिस अपस्माररोगमे देरदेरमें बेहोशी हो और देरमें ही सज्ञा आतहो पृथ्वीपर गिरते ही अत्यन्त विकृत चेष्टा न हो, मुखमे लार गिरतीहो, नख, नेत्र, मुख, त्वचा यह सब सफेद हो, रोगके समय श्वेत और भारीरूप दिखाई देतेहो अथवा सब वस्तुयें सफेद और भारी दीखती हों कफकारक वस्तुओंसे, रोगकी वृद्धि हो और कफनाशक पदार्थोंसे शान्ति होतीहो। इन लक्षणोंसे युक्त अपस्मारको कफजनित अपस्मार जानना ॥ ७ ॥

सान्निपातिक अपस्मारके लक्षण।

समवेतसर्वलिंगमपस्मारसान्निपातिकविद्यात् । तमसाध्यमा-चक्षते। इतिचत्वारोऽपस्मारा। तेषामागन्तुरनुबन्धोभवत्येव। कदाचितृसउत्तरकालमुपदेक्ष्यते। तस्याविशेषविज्ञानंयथोक्त लिङ्गैर्लिङ्गाधिक्यमदोषलिंगानुरूपकिंचिद्धिनतत्तुअपस्मारेभ्य-स्तीक्ष्णानिचैवसशोधनानिउपशमनानियथास्वमन्त्रादीनिचा-गन्तुसयोगे ॥ ८ ॥

तीनो दोषोंके लक्षणोंयुक्त अपस्मारको सान्निपातिक जानना। सन्निपातके अपस्मारको असाध्य कथन करतेहैं। इस प्रकार अपस्मारके चार भेद होतेहैं। इन चारों प्रकारके अपस्मार

पतनादीनिअपस्मारपूर्वरूपाणिभवन्तिततोऽनन्तरमपस्मा भिनिर्वृत्तिः ॥ ४ ॥

उस अपस्माररोगके यह पूर्वरूप होतेहैं । जैसे-दोनो भृकुटियोंका संकोच, नेत्रोंकी निरंतर विकृति (टेढेसे रहना) कानोंमें शब्दसा सुनना, अथवा श्रवणशक्ति नष्ट होजाना, मुखसे लार बहना, नाकसे मैल गिरना, अन्नका न खाना, अरुचि, अविपाक, हृदयका रुकजाना, कूखका फूलना, दुर्बलता, अंगमर्द मोह अंधकार दर्शन, मूर्च्छा, भ्रम, सोते हुए मस्त होजाना, नाचना, दोनों हाथोंको मीजना, कांपना, व्यथाका प्राप्तहोना, और गिर पडना, यह अपस्माररोगके पूर्वरूप है। यह अपस्मार रोगके पूर्व रूप हैं। इसके अनंतर अपस्माररोग प्रगट होजाताहै ॥ ४ ॥

वातज अपस्मारके लक्षण ।

तत्रेदमपस्मारविशेषविज्ञानभवति । तद्यथा-अभीक्ष्णमपस्मरन्तं क्षणे क्षणे संज्ञां प्रतिलभमानमुत्पिण्डिताक्षमसाम्ना वा विलपन्तमुद्वमन्तं फेनमतीवाध्मातग्रीवमाविद्धशिरस्कं विषमविनतांगुलिमनवस्थितसक्थिपाणिपादमरुणपरुषश्यावनखनयनवदनत्वचमनवस्थितचपलपरुषरूक्षरूपदर्शिनंवातलानुपशयं विपरीतोपशयं वातेनापस्मारवन्तंविद्यात् ॥ ५ ॥

अब अपस्मारके भेदोंके ज्ञानको कथन करतेहैं वह इस प्रकार है। जिस मनुष्यको अपस्माररोग होताहो अथवा स्मरणशक्ति नष्ट होजाय और अपस्मार होनेके समय थोडी थोडी देरमें होश आजाताहो जिसके नेत्रकी पुतली सिकुडगईहो जो मनुष्य बकवाद करताहो एवम् मुखमें झाग निकालताहो तथा गर्दन फूली हुईसी हो, मस्तक रुका हुआसा हो हाथोंकी अंगुलियें टेढी होगईहों तथा हाथपैर अनवस्थित हों एवम् नख, नेत्र, मुख और त्वचा यह सब लाल कठोर और काले होगयेहों, मन चलायमान हो सब वस्तुयें चपल, कठोर और रूक्ष दिखाई देवें तथा वातकारक पदार्थोंसे रोगकी वृद्धि हो और वातनाशक पदार्थोंके सेवनसे शान्ति हो। यह सब लक्षण वात जनित अपस्मारमें होतेहैं ॥ ५ ॥

पित्तजअपस्मारके लक्षण ।

अभीक्ष्णमपस्मरन्तं क्षणे क्षणे संज्ञां प्रतिलभमानमनुकूजन्तमास्फालयन्तं च भूमिंहरितहारिद्रताम्रनखनयनवदनत्वच

रुधिरोक्षितोग्रभैरवप्रदीप्तरुपितरूपदर्शिनं पित्तलानुपशयंविप रीतोपशय पित्तेनापस्मारितांविद्यात्॥ ६ ॥

पित्तके अपस्मारमें निरन्तर अपस्मार रोगका होना क्षण २ परहोश आजाना, कण्ठसे कीलहनेकासा शब्द करना, हाथपैरोको इधर ऊधर भूमिमें पटकना, नेत्र, नख, मुख, त्वचा इन सबका वर्ण हरा, पीला तथा ताम्रवर्णका होना और उस मनुष्यको स्वप्नमे अथवा अपस्मार रोग होनेके समय रक्तसे भरेहुए उग्र, भयानक प्रकाशयुक्त, क्रोधित रूपोका देखना तथा पित्तकारक द्रव्योंसे रोगका बढना एवम् पित्तनाशक द्रव्योंसे शान्त होना। यह सब लक्षण पित्तजनित अपस्मारमें होतेहै ॥६॥

कफज अपस्मारके लक्षण।

चिरादपस्मरन्तंचिराच्चसञ्ज्ञाप्रतिलभमानंपतन्तमनातिविकृत- चेष्टंलालामुद्वमन्तंशुक्लनखनयनवदनत्वचंशुक्लगुरुस्निग्धरूप- दर्शिनंश्लेष्मलानुपशयंविपरीतोपशयंश्लेष्मणापस्मारितंविद्या त् ॥ ७ ॥

जिस अपस्माररोगमे देरदेरमें बेहोशी हो और देरमे ही सञ्ज्ञा प्राप्तहो पृथ्वीपर गिरते ही अत्यन्त विकृत चेष्टा न हो, मुखमे लार गिरतीहो, नख, नेत्र, मुख, त्वचा यह सब सफेद हो, रोगके समय श्वेत और भारीरूप दिखाई देतेहो अथवा सब वस्तुयें सफेद और भारी दीखती हों कफकारक वस्तुओंसे, रोगकी वृद्धि हो और कफनाशक पदार्थोंसे शान्ति होतीहो। इन लक्षणोंसे युक्त अपस्मारको कफजनित अपस्मार जानना ॥ ७ ॥

सान्निपातिक अपस्मारके लक्षण।

समवेतसर्वलिंगमपस्मारंसान्निपातिकंविद्यात् । तमसाध्यमा- चक्षते। इतिचत्वारोऽपस्माराः। तेषामागन्तुरनुबन्धोभवत्येव। कदाचित्सउत्तरकालमुपदेक्ष्यते। तस्यविशेषविज्ञानंयथोक्तं लिङ्गैर्लिङ्गाधिक्यमदोषलिंगानुरूपंकिञ्चिद्धितंतत्तुअपस्मारिभ्य- स्तीक्ष्णानिचैवसंशोधनानिउपशमनानियथास्वंमन्त्रादीनिचा- गन्तुसंयोगे ॥ ८ ॥

तीनों दोषोंके लक्षणोंयुक्त अपस्मारको सान्निपातिक जानना। सन्निपातके अपस्मारको असाध्य कथन करतेहैं। इस प्रकार अपस्मारके चार भेद होतेहै। इन चारों प्रकारके अपस्मार

है भी आगन्तुक कारण अवश्य होताहै । जिसका विषय चिकित्सा स्थानमें कथा जायगा । उस आगन्तुज अपस्मारको अन्य अपस्मारोंके कथन किये हुए से विशेष लक्षणोंवाला तथा विशेषरूपसे प्रगट होनेवाला और दोषोंके लक्षणोंसे विचित्र लक्षणोंवाला होनेसे जान लेना चाहिये । कि यह आगन्तुज अपस्मारहै । इस प्रकार अपस्मारोंके लक्षणोंको जानकर उनमें हित तथा तीक्ष्ण उपशमनों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये । आगन्तुज लक्षणके अनुबंध होनेपर मन्त्रादिकोंसे शान्ति करनी चाहिये ॥ ८ ॥

रोगोंकी उत्पत्ति।

तस्मिन्हिदक्षाध्वरोद्ध्वंसेदेहिनांनानादिक्षुविद्रवतामतिसरणप्लवनलङ्घनाद्यैर्देहविक्षोभणे पुरागुल्मोत्पत्तिरभूद्धविष्प्राशान्मेहकुष्ठानां भयत्रासशोकैरुन्मादानांविविधभूताशुचिसंस्पर्शादपस्माराणाम् ॥ ९ ॥ ज्वरस्तुमहेश्वरललाटप्रभवः । तत्सन्तापाद्रक्तपित्तमतिव्यवायात् पुनर्नक्षत्रराजस्यराजयक्ष्मेति ॥ १० ॥

उस दक्षयज्ञकेही नष्ट होनेके समय जब महादेवके भयसे दशोंदिशाओंमें यज्ञस्थ मनुष्य भागने लगे और इधर उधर उछलना, कूदना आदि देहका विक्षेप करते हुए भागने लगे तब उनके शरीरमें पहिले गुल्म रोग उत्पन्न हुआ और उसी यज्ञमें अत्यन्त घृतके खानेसे प्रमेह और कुष्ठ रोगकी उत्पत्ति हुई तथा तप और उपवास एवम् शोकसे उन्मादोंकी उत्पत्ति हुई । उसी यज्ञके नष्ट होते समय भूत गणादिकोंके स्पर्शसे अपस्माररोग पैदा हुआ । और महादेवके मस्तकसे ज्वर उत्पन्न हुआ । उसके संतापसे रक्तपित्त उत्पन्न हुआ । एवम् मैथुनके प्रभावसे चन्द्रमाके शरीरमें राजयक्ष्मा पैदा हुआ ॥ ९ ॥ १० ॥

तत्रश्लोकाः ।

अपस्मरतिवातेनपित्तेनचकफेनच ।
चतुर्थःसन्निपातेनप्रत्याख्येयस्तथाविधः ॥ ११ ॥

यहांपर श्लोक कहतेहैं-कि अपस्माररोग वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे इन चार भेदोंसे कहा गयाहै । इन अपस्मारोंमें सन्निपात जनित अपस्मार असाध्य है तथा अन्य तीन प्रकारके अपस्मार साध्य हैं ॥ ११ ॥

साध्यास्तुभिषजःप्राज्ञा साधयन्तिसमाहिता । तीक्ष्णैःसशोधनैश्चैवयथास्वशमनैरपि ॥ १२ ॥ यदादोषनिमित्तस्यभवत्यागन्तुरन्वयः । तदासाधारणकर्मप्रवदन्तिभिषग्वराः ॥ १३ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि साध्य अपस्माराको सावधान होकर तीक्ष्ण संशोधनों द्वारा तथा उनमें जैसे उचित हो वैसे संशमनों द्वारा चिकित्सा करे। यदि उन दोषजनित अपस्मारोंमें आगन्तुज कारणोंका संबंध हो तो उस समय मंत्रादि साधारण कर्मोंद्वारा शान्तिकरे ॥ १२ ॥ १३ ॥

सर्वरोगविशेषज्ञ सर्वौषधविशेषवित् । भिषक्सर्वामयान्हन्ति नचमोहंनियच्छति । इत्येतदखिलेनोक्तनिदानस्थानमुत्तमम्१४॥

जो वैद्य संपूर्ण रोगोंको जानताहै तथा संपूर्ण औषधियोंके परिज्ञानयुक्त है वह वैद्य संपूर्ण रोगोंको नष्ट करताहै और मोहको प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार संपूर्णतासे इस उत्तम निदानस्थानको कथन कियाहै ॥ १४ ॥

एकरोगसे अनेकरोगोंकी उत्पत्ति ।

निदानार्थकरोरोगोरोगस्याप्युपलभ्यते । तद्यथाज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीर्य्यते ॥ १५ ॥ रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्याशोषश्चाप्युपजायते । प्लीहाभिवृद्ध्याजठरजठराच्छोफएवच ॥ १६ ॥

कोई रोग भी रोगके उत्पन्न करनेका हेतु होताहै अर्थात् जैसे कारण रोगको उत्पन्न करताहै उसी प्रकार कोई रोग भी रोगको उत्पन्न करनेवाला होताहै। उसमें दृष्टान्त देतेहैं। जैसे-ज्वरके अत्यन्त संतापसे रक्तपित्त उत्पन्न होजाताहै। रक्तपित्त और ज्वर-इन दोनोंके होनेसे श्वास उत्पन्न होजाताहै। एवम् प्लीहाके बढनेसे-उदररोग उत्पन्न होताहै। उदररोगसे सूजन उत्पन्न होजातीहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

अर्शोभ्योजठरदुःखगुल्मश्चाप्युपजायते । प्रतिश्यायादथोकासः कासात्संजायतेक्षय । क्षयोरोगस्यहेतुत्वेशोषश्चाप्युपजायते ॥ १७ ॥

बवासीरसे-उदररोगकी तथा गुल्मरोगकी उत्पत्ति होतीहै। प्रतिश्यायसे-खांसी उत्पन्न होजातीहै। खांसीके होनेसे क्षयरोग उत्पन्न होजाताहै। क्षयरोगके कारण शोष रोग उत्पन्न होजाताहै ॥ १७ ॥

केचित्तुरोगाःपश्चाद्धेत्वर्थकारिणः।उभयार्थकरादृष्टास्तथै-वैकार्थकारिणः॥१८॥कश्चिद्धिरोगोरोगस्यहेतुर्भूत्वाप्रशाम्यति। नप्रशाम्यतिचाप्यन्योहेतुत्वंकुरुतेऽपिच॥ १९॥

कई रोग पहिले तो स्वयं रोग होतेहैं फिर दूसरे रोगोंको उत्पन्न करनेके कारण बनतेहैं। कोई रोग आप भी रहताहै तथा दूसरे रोगको भी उत्पन्न कर देताहै। कोई रोग एक ही अर्थके करनेवाला रहताहै। जैसे-कोई रोग दूसरे रोगको उत्पन्न करके स्वयम् शान्त होजाताहै और कोई रोग स्वयं भी रहताहै तथा दूसरेको भी उत्पन्न कर लेता है॥ १८॥ १९॥

एवंकृच्छ्रतमानॄणादृश्यन्तेव्याधिसंकराः। प्रयोगापरिशुद्धत्वात् तथाचानोन्यसम्भवात्॥ २०॥ प्रयोग शमयेद्व्याधियोऽन्यमन्यमुदीरयेत्। नासौविशुद्धःशुद्धस्तुशमयेद्योनकोपयेत्॥ २१॥

इस प्रकार मनुष्योंको कष्ट देनेवाले रोगोंका व्याधिसंकर अर्थात् व्याधियोंका मिलना जुलना होनेसे व्याधियें कष्टसाध्य होजातीहैं। एक रोगकी चिकित्सा करते समय दूसरे रोगका उत्पन्न होजाना इसमें चिकित्साके प्रयोगकी अविशुद्धता रोगका कारण होतीहै। जो औषधी प्रयोग एक रोगको शान्त करे और दूसरेको उत्पन्न करे उसको विशुद्धचिकित्सा नहीं कहते। जो चिकित्सा रोगको शान्त करे तथा अन्य व्याधियोंको भी होने न देवे उसको शुद्ध चिकित्सा कहतेहैं॥ २०॥ २१॥

रोगोंके हेतुओंका वर्णन।

एकोहेतुरनेकस्यतथैकस्यैकएवहि।
व्याधेरेकस्यचानेकोबहूनांबहवोऽपिच॥ २२॥

कहीं कहीं एकही कारण बहुतसे रोगोंको उत्पन्न करताहै। कहीं एक कारण एकहीको उत्पन्न करताहै। कहीं एक व्याधिके अनेक कारण होतेहैं और कहीं बहुतसी व्याधियोंके बहुतसे कारण भी होतेहैं॥ २२॥

ज्वरभ्रमप्रलापाद्यादृश्यन्तेरूक्षहेतुजाः।
रूक्षेणैकेनचाप्येकोज्वरएवोपजायते॥ २३॥

जैसे ज्वर, भ्रम, प्रलाप आदिक यह सब रूक्षतासे उत्पन्न होतेहैं। कहीं अकेली रूक्षतासे केवल ज्वर ही उत्पन्न होताहै॥ २३॥

हेतुभिर्बहुभिश्चैकोज्वरोरूक्षादिभिर्भवेत् ।
रूक्षादिभिर्ज्वराद्याश्चव्याधय सम्भवन्तिहि ॥ २४ ॥

कहीं रूक्ष आदिक बहुतसे हेतुओंसे केवल एक ज्वर ही उत्पन्न होताहै । कहीं उन्हीं रूक्ष आदि बहुतसे हेतुओंसे ज्वर आदिक बहुतसे रोग भी उत्पन्न होजातेहैं ॥ २८ ॥

रोगोंके लक्षणोंका वर्णन ।

लिङ्गञ्चैकमनेकस्यतथैकस्यैकमुच्यते ।
बहून्येकस्यचव्याधेर्बहूनास्युर्बहूनिच ॥ २५ ॥

कहीं बहुतसे रोगोंका एक ही लक्षण होताहै । कहीं एक रोगका एकही लक्षण होताहै । कहीं एक व्याधिके बहुतसे लक्षण होतेहैं कहीं बहुतसी व्याधियोंके बहुतसे लक्षण होते हैं ॥ २५ ॥

विषमारम्भमूलानालिङ्गमेकज्वरोमत । ज्वरस्यैकस्यचाप्येक सन्तापोलिङ्गमुच्यते ॥ २६ ॥ विषमारम्भमूलैश्चज्वरएकोनिरुच्यते । लिङ्गैरेतैर्ज्वरश्वासाहिक्काद्या सन्तिचामया ॥ २७ ॥

जैसे बहुतसे विषमारम्भ रोगोंका केवल एक ज्वर ही चिह्न दिखाई देताहै । कहीं केवल ज्वरका एक संतापमात्र लक्षण दिखाई देताहै । कहीं बहुतसे विषमारम्भ मूलक लक्षणोंसे केवल ज्वरमात्र दिखाई देताहै । कहीं उन्हीं लक्षणोंसे ज्वर, श्वास, हिचकी आदिरोग दिखाई देते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

रोगोंकी शान्तिका वर्णन ।

एकाशान्तिरनेकस्यतथैवैकस्यलक्ष्यते ।
व्याधेरेकस्यचानेकोबहूनाबहुयएवच ॥ २८ ॥

कहीं अनेक प्रकारके रोगोंकी एक ही प्रकारकी चिकित्साद्वारा शान्ति होजातीहै । कहीं एक प्रकारके रोगमें एक ही प्रकारकी चिकित्सा करनी पड़ती है ॥ २८ ॥

शान्तिरामाशयोत्थानाव्याधीनांलघनक्रिया ।
ज्वरस्यैकस्यचाप्येकाशान्तिर्लंघनमुच्यते ॥ २९ ॥

जैसे आमाशयकी खराबीसे उत्पन्नहुए बहुतसे रोगोंकी शान्तिके लिये सबसे लंघन करनाही इन सब विकारोंकी शान्तिका एक ही उपाय है । इसी प्रकार ज्वररूप एक व्याधिकी शान्तिके लिये केवल लंघन शान्ति कारक होताहै ॥ २९ ॥

तथाऽल्पशनाद्यैश्चज्वरस्यैकस्यशान्तयः ।
एताश्चैवज्वरश्वासहिक्कादीनांप्रशान्तयः ॥ ३० ॥

जैसे हल्का भोजन आदि एकज्वरकी शान्तिके लिये अनेक उपाय शान्तिकारक होतेहैं । वैसे ही ज्वर, श्वास, हिचकी आदि अनेक रोगोंमें भी हल्का भोजन आदि अनेक क्रियाद्वारा शान्ति होती है ॥ ३० ॥

सुखसाध्यःसुखोपायःकालेनाल्पेनसाध्यते । साध्यतेकृच्छ्रसाध्यस्तुयत्नेनमहताचिरात् ॥ ३१ ॥ यातिनाशेषतांव्याधिरसाध्योयाप्यसंज्ञितः । परोऽसाध्यःक्रियाः सर्वाःप्रत्याख्येयोऽतिवर्त्तते ॥ ३२ ॥

सुखसाध्यरोग साधारण उपाय करनेसे थोडे ही कालमें शान्त होजातेहैं । कष्टसाध्य रोग अत्यन्त यत्न करनेपर बहुत कालमें शान्त होतेहैं । याप्यसाध्यरोग यद्यपि उत्तम वैद्यके द्वारा चिकित्सा की जानेपर कुछ कालके लिये थोडी शान्ति रहतीहै । परन्तु वह रोग समूलनष्ट नहीं होता । असाध्यरोग सब प्रकारके चिकित्साओं द्वारा शान्त नहीं होसकता । इस लिये वह प्रत्याख्येय अर्थात् त्यागदेने योग्य होताहै । चिकित्सा करने योग्य नही होता ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

नासाध्यः साध्यतांयातिसाध्योयातित्वसाध्यताम् ।
पादापचारादैवाद्वायान्तिभावान्तरंगदाः ॥ ३३ ॥

असाध्यरोग साध्य नहीं होसकते परन्तु साध्यरोगभी चिकित्सामें किसी प्रकारका अन्तर पडनेसे असाध्य होजाते है । चिकित्साके पादचतुष्टयका अपचार होनेसे अथवा दैवयोगसे व्याधियां भावान्तरको प्राप्त हो जातीहैं अर्थात् साध्य भी असाध्य होजाती हैं । (दैवयोगसे तो असाध्यका भी साध्य होना सम्भव है) ॥ ३३ ॥

वैद्यको उपदेश ।

वृद्धिस्थानक्षयावस्थादोषाणामुपलक्षयेत् ।
ज्ञोदेहाग्निबलचेतसाम् ॥३४॥
ज्ञात्वाविचक्षणः । तस्यातस्य

वैद्यको उचित है कि दोषोंकी वृद्धि
और वह बुद्धिमान् वैद्य देह, अग्नि, बल,
द्वारा परीक्षा करे । एवम् व्याधिकी अवस्था
वैसी वैसी चिकित्सा करनेसे चतुर्वेद्य कल्याण

चिकित्साकी विधि।

प्रायस्तिर्य्यग्गतादोषा क्लेशयन्त्यातुरांश्चिरम् । तेपुनस्त्वरया-कुर्य्याद्देहाग्निबलवित्क्रियाम् ॥ ३६ ॥ प्रयोगै क्षपयेद्वातान्सुख-वाकोष्टमानयेत्।ज्ञात्वाकोष्टप्रपन्नास्तान्यथास्वंतंहरेद्बुध ॥ ३७ ॥

दोष प्राय तिर्यक्गामी होनेसे मनुष्यको बहुत कालतक कष्ट देतेह उनमें देह, अग्नि और बलकी परीक्षा करनेवाला वैद्य शीघ्रता न करे। ऐसे समयमें जब कि दोष तिर्यक्गामी हो गये हो औषधी प्रयोगद्वारा उनको धीरे २ पकाकर कोष्टमें ले आवे। फिर जब वह कोष्टम आजाय तब उनको जो २ जिस प्रकार निकालने योग्य हों उस प्रकार निकाल डाले ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

ज्ञानार्थयानिचोक्तानिव्याधिलिङ्गानिसंग्रहे । व्याधयस्तेतदा स्वेतुलिङ्गानीष्टानिनामया ॥ ३८ ॥ विकारा प्रकृतिश्चैवद्वयंस र्वंसमासत । तद्धेतुवशगहेतोरभावान्नानुवर्त्तते ॥ ३९ ॥

रोगके परिज्ञानके लिये संग्रहम जो लक्षण कथन कियेहै उनको भी अलग२होनेपर रोग ही जानना चाहिये जैसे-किसी रोगके लक्षणमें श्वासका होना कथन कियाहै अथवा अतिसारका होना कथन कियाहै यदि यह रोगके बिना शरीरमें प्रगट हों तो यही रोग होते है। परन्तु ज्वरादिकोंके समय ज्वरके वेगसे इनका होना रोग न कहा जाकर ज्वररोगका उपद्रव माना जायगा। रोग और प्रकृति यह दोनो ही संक्षेपमें सब रोगोंम कथन करनेम आतेहै। सो वह प्रकृति अर्थात रोग जनक कारण और रोग यह दोनाही अपने हेतुके वश है अर्थात् अनुचित आहार विहारके होनानेसेही वश्मे प्राप्त होतेहै। यदि अहित आहार आदि रोग और रोगकी प्रकृतिका कारण न होने पावें तो कारणके अभावसे यह दोनों उत्पन्न नहीं हो सकते ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

तत्र श्लोका ।

हेतव पूर्वरूपाणिरूपाण्युपशयस्तथा । सम्प्राप्ति पूर्वमुत्पत्ति सूत्रमात्रचिकित्सितम् ॥ ४० ॥ ज्वरादीनांविकाराणामष्टानांमा ध्यतानच । पृथगेकैकशश्चोक्ताहेतुलिङ्गोपशान्तय ॥ ४१ ॥ हेतुपर्य्यायनामानिव्याधीनालक्षणस्यच । निदानस्थानमेता वत्संग्रहेणोपदिश्यते ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतसंहितायानिदानस्थान सम्पूर्णम् ।

अब निदानस्थानका उपसंहार करतेहैं। इस निदानस्थानमें-हेतु, पूर्वरूप, रूप, उपशय, समाप्ति, पूर्व उत्पत्ति तथा चिकित्साका सनपात एवम् ज्वरादिक आठ विकारोंकी साध्यता और असाध्यता इन सबका कथन कियागयाहै तथा इन सबको अलग २ एकएक करके इनके हेतु, चिह्न तथा उपशान्तिकारक उपाय एवम् हेतुके पर्यायवाचक नाम एवम् व्याधिके पर्याय वाचकनाम तथा लक्षणके पर्यायवाचक नाम यह सब इस निदानस्थानके सग्रहमें कथन कियेगयेहैं अर्थात् इन सब विषयो करके युक्त यह निदानस्थान समाप्त हुआ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

दोहा।

हेतु रूप आदिक सब, विधिवत् व्याधिज्ञान ॥
सो प्रसादनीयुक्त यह, भयो निदान स्थान ॥ १ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां निदानस्थाने प०रामप्रसादवैद्यविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायामपस्मारनिदानं नामाष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

समाप्तमिदं निदानस्थानम्।

अथविमानस्थानम्।

प्रथमोऽध्यायः।

अथातोरसविमानव्याख्यास्यामइति हस्माह भगवानात्रेयः। इहखलुव्याधीनानिमित्तपूर्वरूपरूपोपशयसंख्याप्राधान्यविधि विकल्पबलकालविशेषाननुप्रविश्यानन्तररसद्रव्यदोषविकार भेषजदेशकालबलशरीराहारसारसात्म्यसत्त्वप्रकृतिवयसा- मानमवहितमनसायथावज्ज्ञेयभवतिभिषजारसादिमानज्ञाना यत्तत्वात्क्रियाया. । नहिअमानज्ञोरसादीनाभिषक्व्याधिनि- ग्रहसमर्थोभवति । तस्माद्रसादिमानज्ञानार्थंविमानस्थान- मुपदेक्ष्यामोऽग्निवेश ! तत्रादोरसद्रव्यदोषविकारप्रभावानूव- क्ष्याम. ॥ १ ॥

अब हम इस विमानस्थानकी व्याख्या करतेहैं, इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे। प्रथम वैद्यको चाहिये कि व्याधियोंके-निमित्त, पूर्वरूप, रूप, उपशय, संख्या, प्राधान्य, अनेक प्रकारका विकल्प, विधि, बल और कालविशेषको यथोचित रीतिसे जानलेवे, तदनन्तर, दोष, औषध, देश, काल, बल, शरीर, आहार, सार सात्म्य, सत्त्व, और प्रकृति तथा अवस्थाके मानको सावधानतासे यथोचित रीतिपर जानना चाहिये । क्योंकि जबतक इन दोष आदिकोंका यथोचित ज्ञान न होगा तबतक वैद्यकी क्रियाका आरंभ नहीं होसकता। इन सबके प्रमाणको न जाननेवाला वैद्य व्याधिको दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। हे अग्निवेश! इस लिये दोष आदिकोंके यथोचित प्रमाण जाननेके अर्थ विमानस्थानका कथनकरतेहैं। इनमें प्रथम रस और द्रव्य तथा दोष और विकार इनके विमान (प्रमाण) का कथन करते है ॥ १ ॥

रसोंका वर्णन ।

रसास्तावत्षट्मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायास्तेसम्यगुपयुज्य माना शरीरयापयन्ति। मिथ्योपयुज्यमानास्तुखलुदोषप्रकोपना- योपकल्पयन्ति ॥ २ ॥

रस छः प्रकारके होतेहैं । जैसे-मीठा, खट्टा, नमकीन, चरपरा, कड़ुआ, और कसैला । यह छः रस उत्तम रीतिसे सेवन किये जानेपर शरीरको पालन करतेहैं। और यही छः रस अनुचित रीतिसे उपयोग किये हुए दोषोके प्रकोपके कारण है ॥ २ ॥

दोषोका वर्णन ।

दोषाः पुनस्त्रयोवातपित्तश्लेष्माणः तेप्रकृतिभूताःशरीरोपकारकाभवन्ति । विकृतिमापन्नाः खलुनानाविधैर्विकारैः शरीरमुपतापयन्ति ॥ ३ ॥

दोष-तीन प्रकारके होतेहैं। वात, पित्त और कफ। वह तीनो दोष परिमाणसे ठीक रहनेपर शरीरको पुष्ट करते हैं और विकृत होनेसे शरीरको अनेक प्रकारके रोगों द्वारा तपायमान करतेहैं ॥ ३ ॥

तत्रदोषमेकैकंत्रयस्त्रयोरसाजनयन्ति, त्रयस्त्रयश्चोपशमयन्ति।

तद्यथा-

कटुतिक्तकषाया वातं जनयन्ति, मधुराम्ललवणास्त्वेनं शमयन्ति । कटुकाम्ललवणा पित्तं जनयन्ति, मधुरतिक्तकषाया पुनरेनं शमयन्ति । मधुराम्ललवणाः श्लेष्माणं जनयन्ति, कटुतिक्तकषायास्त्वेनं शमयन्ति ॥ ४ ॥

उनमें एक एक दोषको तीनतीन रस उत्पन्न करते है । उसी प्रकार तीनतीन शान्तिको करते है अर्थात् दोषोंको शमन करते है । तात्पर्य यह हुआ कि तीनरस [illegible] दोषको बढाते है और अन्य तीन रस उसी दोषको शान्त करते हैं । जैसे-चरप[illegible] कड़ुआ, कसैला यह तीन रस वायुको उत्पन्न करते है । उसी प्रकार मीठा, ख[illegible] और नमकीन यह तीन रस वायुको शान्त करते है । चरपरा, [illegible] और नमकीन [illegible] तीन रस पित्तको उत्पन्न करते है और [illegible] कसै[illegible] रस पित्त[illegible] शान्त करते हैं । मीठा, खट्टा, नमकीन [illegible] कफ[illegible] है [illegible] चरपरा, कड़ुआ, कसैला यह तीन रस [illegible] करते

रस [illegible] तु ये रसा [illegible]

भूयिष्ठ [illegible] ते

विपरीतगु[illegible]

हेतोः षट्त्वमुपदिश्यते रसानां परस्परेणासंसृष्टानाम् । त्रित्वञ्च दोषाणाम् । संसर्गविकल्पविस्तारोह्येषामपरिसंख्येयो भवति विकल्पभेदापरिसंख्येयत्वात् ॥ ५ ॥

शरीरमें कई एक रसों तथा दोषोंका मिलाप होनेपर जो रस जिस दोषके समान गुणवाले हों उस दोषको बढ़ाते हैं तथा समान गुणवालोंमें भी जिस दोषके बढ़ानेवालोंकी अधिकता हो वह उसकोही वृद्धि करते हैं । इसी प्रकार विपरीत गुणवाले रस दोषोंको शान्त करते हैं । उनमें भी विशेषतासे विपरीत गुणवाले जिस दोषसे विपरीत गुणवाले हों उसकोही शमन करते हैं । इस प्रकार व्यवस्था स्थापन करनेके लिये अलग अलग छः रसोंका कथन किया है और तीन दोषोंका कथन किया है । रसोंके संसर्ग जनित विकल्पोंसे इनकी संख्या परिमाणसे बढजातीहै अर्थात् असंख्य होजातेहैं । क्योंकि विकल्प द्वारा अगाध कल्पनाकर भेद विशेषसे असंख्य होजाते हैं ॥ ५ ॥

तत्र खलु अनेकरसेषु द्रव्येष्वनेकदोषात्मकेषु च विकारेषु रसदोषप्रभावमेकैकत्वेनाभिसमीक्ष्य ततो द्रव्यविकारप्रभावतत्त्वं व्यवस्येत् । नत्वेवं खलु सर्वत्र । न हि विकृतिविषमसमवेतानां नानात्मकानां द्रव्याणां परस्परेण चोपहतानामन्यैश्च विकल्पनैर्विकल्पितानामनवयवप्रभावानुमानेन समुदायप्रभावतत्त्वमध्यवसितुमशक्यम् ॥६॥

उन अनेक रसोंवाले अनेक द्रव्योंमें अनेक रस मिले हुए होनेपर उनके एकएक रसको अलग अलग जानकर द्रव्य प्रभाव जान लेना चाहिये । इसी प्रकार अनेक दोषोंके मिले हुए विकारोंमें कौन २ दोष कितने २ अंशसे मिला हुआ है इसको अलग अलग जानकर दोषप्रभाव जानलेना चाहिये । परन्तु सब जगह यही क्रम नहीं होता क्योंकि विकृत भाव तथा विषमभावसे मिले हुए अनेक आत्मक द्रव्योंका एकके रससे दूसरेके रसका तथा आपसमें स्वभाव तत्त्वका परस्पर हनन होनेसे रसके समुदाय प्रभावका तत्त्व पृथक् पृथक् नहीं जाना जा सकता । इसी प्रकार विकृत और विषमभावसे मिले हुए दोषोंका आपसमें परस्पर हनन भाव होनेसे विकल्प जनित सूक्ष्म अंशोंका पृथक् पृथक् जान लेना भी कठिन होता है ॥ ६ ॥

तथायुक्ते हि समुदाये समुदायप्रभावतत्त्वमेवोपलभ्य ततो रसद्रव्यविकारप्रभावतत्त्वं व्यवस्येत् तस्माद्रसप्रभावतश्च द्रव्य

प्रभावतश्चदोषप्रभावतश्चविकारप्रभावतश्चतत्त्वमुपदेक्ष्यामः । तत्रैपरसद्रव्यदोषविकारप्रभावउपदिष्टो भवति ॥ ७ ॥

इसलिये बहुतसे द्रव्य समुदायके मिलनेसे उस समुदायके प्रभावको जानकर फिर रस तथा द्रव्य एवम् विकार इनके प्रभावोंके जाननेका यत्न किया जासक्ताहै। इसलिये रसप्रभावसे, द्रव्यप्रभावसे, दोषप्रभावसे और विकारप्रभावसे तत्वको कथन करतेहैं । सो यहापर रस,द्रव्य,दोष,विकार इनके प्रभावोंका कथन कियाजाताहै ॥७॥

द्रव्यप्रभावका वर्णन ।

द्रव्यप्रभावपुनरुपदेक्ष्यामः । तैलसर्पिर्मधुनिवातपित्तश्लेष्मप्रशमनानिद्रव्याणिभवन्ति । तत्रतैलंस्नेहौष्ण्याद्गौरवोपपन्नत्वाद्वातंजयतिसततमभ्यस्यमानम् । वातोहिरौक्ष्यशैत्यलाघवोपपन्नोविरुद्धगुणोभवति । विरुद्धगुणसन्निपातेहिभूयसाल्पमवजीयतेतस्मात्तैलंवातंजयतिसततमभ्यस्यमानम् ॥ ८ ॥

रसके प्रभावको प्रथम कथन करचुके अब यहापर द्रव्यके प्रभावको कहते हैं । जैसे तैल, घृत, शहद यह वात, पित्त, कफको शमन करनेवाले द्रव्य होतेहैं । इनमें तैल चिकना और गरम होनेसे, एवम् गौरवगुण विशिष्ट होनेसे, निरन्तर मालिश किया हुआ अथवा विधिपूर्वक खाया हुआ वायुको शान्त करताहै । क्योंकि वायु तैलके गुणसे विरुद्ध गुणवाला रूक्ष, शीतल और हलकापन युक्त होताहै । दो प्रकारके विरुद्धगुण आपसमें मिलनेसे भारी गुण अल्प गुणको जीत लेतेहैं । इसीलिये अभ्यास कियाहुआ तैल अपने स्निग्धादि गुणोंद्वारा वायुको जीतलेताहै ॥ ८ ॥

सर्पिःखलुएवमेवपित्तंजयतिमाधुर्य्याच्छैत्यात्मन्दवीर्यत्वाच्चपित्तंह्यमधुरमुष्णतीक्ष्णम् ॥ ९ ॥

इसी प्रकार सेवन किया हुआ घृत भी पित्तको जीतलेताहै । घृत मीठा, शीतल, और मंद होनेसे मधुरतारहित उष्ण और तीक्ष्ण इन विपरीत गुणोंवाले पित्तको जीतलेताहै ॥ ९ ॥

मधु च श्लेष्माणं जयति रौक्ष्यात् तैक्ष्ण्यात् कषायत्वाच्च श्लेष्मा हि स्निग्धो मन्दो मधुरश्च ॥ १० ॥

शहद रूक्ष, कषाय और तीक्ष्ण होनेसे स्निग्ध, मंद, मधुर इन विपरीत गुणोंवाले ... जीतलेताहै ॥ १० ॥

यच्चान्यदपि किञ्चिद्द्रव्यमेवंवातपित्तकफेभ्यो गुणतो विपरीतं तच्चैताञ्जयत्यभ्यस्यमानम् ॥ ११ ॥

इसी प्रकार अन्य भी जोद्रव्य वात, पित्त, कफसे गुणोंमें विपरीत हो वह भी विधिवत् सेवन किये हुए इनको जीतलेतेहैं ॥ ११ ॥

अथ खलु त्रीणि द्रव्याणि नात्युपयुञ्जीताधिकमन्येभ्यो द्रव्येभ्य तद्यथा-पिप्पली क्षार लवणमिति पिप्पल्यो हि कटुकाः सत्योमधुरविपाका गुर्व्यो नात्यर्थम् । स्निग्धोष्णा प्रक्लेदिन्यो भेषजाभिमताश्च । ता सद्य शुभाशुभकारिण्यो भवन्त्यापातभद्रा प्रयोगसमसाद्गुण्याद्दोषसञ्चयानुबन्धा सततमुपयुज्यमानाहिगुरुप्रक्लेदित्वात् श्लेष्माणमुत्क्लेशयन्ति । औष्ण्यात् पित्तम् । न च वातप्रशमनायोपकल्पन्ते अल्पस्नेहोष्णभावात्। योगवाहिन्यस्तु खलु भवन्ति। तस्मात् पिप्पलीर्नात्युपयुञ्जीत ॥ १२ ॥

किसी योगमें भी और द्रव्योंसे इन तीन द्रव्योंको अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिये । जैसे पिप्पली, क्षार और लवण । क्योंकि पीपल चरपरी है और शीघ्र मधुर विपाक होजातीहै, अत्यन्त भारी नहीं है एवम् स्निग्ध, उष्ण, क्लेदकर्त्ता तथा औषधियोंमें मुख्य है । सो वह पीपली प्रयोग करनेसे शीघ्र ही अपने शुभ और अशुभ गुणोंको करतीहै । किसी रोगमें देते ही हितकारक होजातीहै । इसका निरन्तर प्रयोग करनेसे दोषोंका सचय होताहै । क्योंकि यह भारी और क्लेदी होनेसे कफको उठाती है । गर्म होनेसे पित्तको प्रबल करतीहै । इसम स्नेह और उष्णता अधिक न रहनेसे वायुको भी शान्त नहीं करती परन्तु किसी योगमें मिलाकर दीहुई योगवाही होनेसे उस योगके समान गुण करनेवाली अवश्य होतीहै । इसलिये पिप्पलीका अधिक और निरन्तर सेवन नहीं करना चाहिये ॥ १२ ॥

क्षारसेवनका निषेध ।

क्षारः पुनरौष्ण्यतैक्ष्ण्यलाघवोपपन्नः क्लेदयत्यादौ पश्चात् विशोधयति । स पचनदहनभेदनार्थमुपयुज्यते । सोऽतिप्रयुज्यमानः केशाक्षिहृदयपुंस्त्वोपघातकरः सम्पद्यते । ये ह्येन

प्रभावतश्चदोषप्रभावतश्चविकारप्रभावतश्चतत्त्वमुपदेक्ष्यामः ।
तत्रैपरसद्रव्यदोषविकारप्रभावउपदिष्टो भवति ॥ ७ ॥

इसलिये बहुतसे द्रव्य समुदायके मिलनेसे उस समुदायके प्रभावको जानकर फिर रस तथा द्रव्य एवम् विकार इनके प्रभावोंके जाननेका यत्न किया जासकताहै। इसलिये रसप्रभावसे, द्रव्यप्रभावसे, दोषप्रभावसे और विकारप्रभावसे तत्वको कथन करतेहैं। सो यहापर रस,द्रव्य,दोष,विकार इनके प्रभावोंका कथन कियाजाताहै ॥७॥

द्रव्यप्रभावका वर्णन ।

द्रव्यप्रभावपुनरुपदेक्ष्याम. । तैलसर्पिर्मधूनिवातपित्तश्लेष्मप्रशमनानिद्रव्याणिभवन्ति । तत्रतैलंस्नेहौष्ण्याद्गौरवोपपन्नत्वाद्वातजयतिसततमभ्यस्यमानम् । वातोहिरौक्ष्यशैत्यलाघवोपपन्नोविरुद्धगुणोभवति । विरुद्धगुणसन्निपातेहिभूयसाल्पमवजीयतेतस्मात्तैलवातजयतिसततमभ्यस्यमानम् ॥ ८ ॥

रसके प्रभावको प्रथम कथन करचुके अब यहापर द्रव्यके प्रभावको कहते है । जैसे तेल, घृत, शहद यह वात, पित्त, कफको शमन करनेवाले द्रव्य होतेहै । इनमें तेल चिकना और गरम होनेसे, एवम् गौरवगुण विशिष्ट होनेसे, निरन्तर मालिश किया हुआ अथवा विधिपूर्वक खाया हुआ वायुको शान्त करताहै । क्योंकि वायु तेलके गुणसे विरुद्ध गुणवाला रूक्ष, शीतल और हलकापन युक्त होताहै । दो प्रकारके विरुद्धगुण आपसम मिलनेसे भारी गुण अल्प गुणको जीत लेतेहैं । इसीलिये अभ्यास कियाहुआ तेल अपने स्निग्धादि गुणोंद्वारा वायुको जीतलेताहै ॥ ८ ॥

सर्पि खलुएवमेवपित्तंजयतिमाधुर्याच्छैत्यात्सन्दवीर्यत्वाच्च-पित्तंह्यमधुरमुष्णतीक्ष्णम् ॥ ९ ॥

इसी प्रकार सेवन किया हुआ घृत भी पित्तको जीतलेताहै । घृत मीठा, शीतल, और मद होनेसे मधुरतारहित उष्ण और तीक्ष्ण इन विपरीत गुणोंवाले पित्तको जीतलेताहै ॥ ९ ॥

मधु च श्लेष्माणं जयति रौक्ष्यात् तैक्ष्ण्यात् कषायत्वाच्च श्लेष्मा हि स्निग्धो मन्दो मधुरश्च ॥ १० ॥

शहद रूक्ष, कषाय और तीक्ष्ण होनेसे स्निग्ध, मद, मधुर इन विपरीत गुणोंवाले कफको जीतलेताहै ॥ १० ॥

यच्चान्यदपि किञ्चिद्द्रव्यमेववातपित्तकफेभ्यो गुणतो विपरीतं तच्चैताञ्जयत्यभ्यस्यमानम् ॥ ११ ॥

इसी प्रकार अन्य भी जोद्रव्य वात, पित्त, कफसे गुणोंमे विपरीत हो वह भी विधिवत् सेवन किये हुए इनको जीतलेतेहै ॥ ११ ॥

अथ खलु त्रीणि द्रव्याणि नात्युपयुञ्जीताधिकमन्येभ्यो द्रव्येभ्य तद्यथा-पिप्पली क्षार लवणमिति पिप्पल्यो हि कटुका सद्योमधुरविपाका गुर्व्यो नात्यर्थम् । स्निग्धोष्णा॰ प्रक्लेदिन्यो भेषजाभिमताश्च । ता सद्य शुभाशुभकारिण्यो भवन्त्यापातभद्रा प्रयोगसमसाद्गुण्याद्दोषसञ्चयानुवन्धा॰ सततमुपयुज्यमानाहिगुरुप्रक्लेदित्वात् श्लेष्माणमुत्क्लेशयन्ति । औष्ण्यात् पित्तम् । न च वातप्रशमनायोपकल्पन्ते अल्पस्नेहोष्णभावात् । योगवाहिन्यस्तु खलु भवन्ति । तस्मात् पिप्पलीर्नात्युपयुञ्जीत ॥ १२ ॥

किसी योगमे भी और द्रव्यासे इन तीन द्रव्योंको अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिये । जैसे पिप्पली, क्षार और लवण । क्योंकि पीपल चरपरी है और शीघ्र मधुर विपाक होजातीहै, अत्यन्त भारी नहीं है एवम् स्निग्ध, उष्ण, क्लेदकर्त्ता तथा औषधियामे मुख्य है । सो वह पीपली प्रयोग करनेसे शीघ्र ही अपने शुभ और अशुभगुणोंको करतीहै । किसी रोगमे देते ही हितकारक होजातीहै । इसका निरन्तर प्रयोग करनेसे दोषाका सचय होताहै । क्योंकि यह भारी और क्लेदी होनेसे कफको उठाती है । गर्म होनेसे पित्तको प्रगट करतीहै । इसमें स्नेह और उष्णता अधिक न रहनेसे वायुको भी शान्त नहीं करती परन्तु किसी योगमे मिलाकर दीहुई योगवाही होनेसे उस योगके समान गुण करनेवाली अवश्य होतीहै । इसलिये पिप्पलीका अधिक और निरन्तर सेवन नहीं करना चाहिये ॥ १२ ॥

क्षारसेवनका निषेध ।

क्षार पुनरौष्ण्यतैक्ष्ण्यलाघवोपपन्न क्लेदयत्यादौ पश्चात् विशोधयति । स पचनदहनभेदनार्थमुपयुज्यते । सोऽतिप्रयुज्यमान केशाक्षिहृदयपुंस्त्वोपघातकर सम्पद्यते । ये ह्येन

ग्रामनगरनिगमजनपदा: सततमुपयुञ्जते तेह्यान्ध्यपाण्ड्या-खालित्यपालित्यभाजो हृदयोपकर्तिनश्च भवन्ति तद्यथा-प्राच्याश्चीनाश्च तस्मात् क्षारं नात्युपयुञ्जीत ॥ १३ ॥

क्षार उष्ण, तीक्ष्ण और हलका होताहै। प्रथम गीलापन उत्पन्नकर फिर शोषण करदेताहै। पाचन, दहन एवम् भेदन करनेके लिये क्षारका प्रयोग कियाजाताहै। वह क्षार अत्यन्त सेवन किया जानेसे केश, नेत्र, हृदय और पुंस्त्वशक्तिको नष्ट करनेवाला होताहै। ग्राम, नगर, प्रान्त, देशमें रहनेवाले जो लोग क्षारका अधिक सेवन करतेहैं। वह लोग अंधे, नपुंसक, गंजे, सफेदबालावाले एवम् हृदयके रोगयुक्त होतेहैं। प्रायः ऐसे लोग पहिले पूर्व और चीनमें होतेथे। इसलिये क्षारका अधिक प्रयोग नहीं करनाचाहिये ॥ १३ ॥

लवण सेवनका निषेध।

लवणपुनरौष्ण्यतैक्ष्ण्योपपन्नमनतिगुरुअनतिस्निग्धमुपक्लेदि-विस्रंसनसमर्थमन्नद्रव्यरुचिकरमापातभद्रम्। प्रयोगातिरेका द्दोपसञ्जयानुबन्धम्। तद्रोचनपाचनोपक्लेदनविस्रंसनार्थमुपयुज्यते। तदत्यर्थमुपयुज्यमानग्लानिशैथिल्यदौर्बल्याभिनिर्वृत्तिकरशरीरस्यभवति। येह्येतद्ग्रामनगरनिगमजनपदा:सततमुपयुञ्जते, तेभूयिष्ठग्लास्नव शिथिलमांसशोणिताभवन्तिअपरिक्लेशसहाश्च। तद्यथा-बाह्लीकसौराष्ट्रिकसैन्धवसौवीरका। तेहिपयसापिसदालवणमश्नन्ति। येऽपीहभूमेरत्यूषरादेशास्तेषुओषधिवीरुद्वनस्पतिवानस्पत्यानजायन्ते। अल्पतेजसोवाभवन्तिलवणोपहतत्वात्। तस्माल्लवणनात्युपयुञ्जीत। ये ह्यतिलवणसात्म्या पुरुषास्तेषामपिखालित्येन्द्रलुप्तपालित्यानितथावलयश्चाकालेभवन्ति। तस्मात्तेषां [illegible] क्रमेणापगमनश्रेयः ॥ १४ ॥

लवण गर्म, तीक्ष्ण, किंचित् भारी, [illegible] ,[illegible] [illegible] द्रव्योंमें रुचिकारक, किसी द्रव्यमें [illegible] होते [illegible] अत्यन्त सेवन क[illegible] [illegible]ो सचित [illegible]

करनेके लिये, पाचनके लिये तथा क्लेदन और स्रसन होनेसे इसका उचित रीतिपर प्रयोग कियाजाताहै । इसके अधिक सेवन करनेसे शरीरमें ग्लानि, शिथिलता, दुर्बलता यह उत्पन्न होतेहैं । ग्राम, नगर, प्रान्त तथा देशोंमें जो लोग लवणका अधिक सेवन करतेहैं उनके शरीरमें ग्लानि, मांस और रुधिरमें शिथिलता होतीहै तथा वह सामान्य क्लेशको भी सहन नहीं करसकते । जैसे बाह्लीक, सौराष्ट्र, सिन्ध, सौवीर देशोंके रहनेवाले मनुष्य दूधके साथमें भी लवणको भक्षण करतेहैं । जिन देशोंमें अत्यन्त ऊषर भूमि है उनमें क्षारकी अधिकता होनेसे ओषधी, वीरुध, और वानस्पति इन चार प्रकारकी औषधियोंमेंसे कोई भी उत्पन्न नहीं होती । यदि कोई हो भी जाय तो उस पृथ्वीके लवणके बलसे उन औषधियोंका तेज मारजाताहै । इसलिये लवणका अधिक उपयोग नहीं करना चाहिये । जिन मनुष्योंको लवण सात्म्य है उनको भी अधिक सेवन करनेसे गंजापन, बालोंका सफेद होना, बालोंका उखडना, शरीरमें छोटी उमरमें सलवट पडना यह विकार होते हैं । इसलिये लवण जितना रुचि आदिके लिये सेवन करना उचित हो उससे अधिक नहीं खाना चाहिये ॥ १८ ॥

सात्म्यके लक्षण ।

सात्म्यमपिहिक्रमेणोपनिवर्त्त्यमानमदोषमल्पदोषंवाभवति । सात्म्यनामतद्यदात्मनिउपशेते । सात्म्यार्थोह्युपशयार्थ । तत् त्रिविधप्रवरावरमध्यविभागेन,सप्तविधश्चरसैकैकत्वेनसर्वरसो-पयोगाच्च । तत्रसर्वरसप्रवरमवरमेकरसमध्यमन्तुप्रवरावरम-ध्यस्थम् । तत्रावरमध्याभ्यासात्म्याभ्याक्रमेणप्रवरमुपपादये त्सात्म्यम् । सर्वरसमपिचद्रव्यसात्म्यमुपपन्नसर्वाणि आहार-विधिविशेषायतनानिअभिसमीक्ष्यहितमेवानुरुध्यते ॥ १५ ॥

यदि किसी हानिकारक वस्तुके सेवनका अभ्यास होगया हो (जैसे अफीम गांजेका आदि) तो उसको धीरेधीरे क्रमपूर्वक छोडदेना चाहिये । ऐसा करनेसे अल्पदोष अथवा निर्दोष होजाताहै । जो पदार्थ अपने शरीरको हितकारी हो उसको सात्म्य कहते हैं । सात्म्यका जो अर्थ है उपशयका भी वही अर्थ है । यह सात्म्य-उत्तम मध्यम और कनिष्ठ इन भेदोंसे तीन प्रकारका है । फिर वह मधुर आदि पृथक् रसोंके योगसे तथा एकसाथ संपूर्ण रसोंके योग भेदसे सात प्रकारका होताहै । इनमें सब रसोंका अभ्यास उत्तम होताहै । एक रसका उपयोग कनिष्ठ माना जाता है

कनिष्ठ और उत्तमके मिलनेसे मध्यम सात्म्य होताहै। उनमें कनिष्ठ और मध्यम सात्म्योंसे क्रमपूर्वक उत्तम सात्म्यका अभ्यास करना चाहिये। संपूर्ण रसोंको तथा संपूर्ण द्रव्योंको सात्म्य होनेपर एवम् आहार विधिके विशेष आयतनोंको विचारकर अहित पदार्थोंको त्याग देवे एवम् हितोंका सेवन करे ॥ १५ ॥

आहारके आयतन ।

तत्रखल्विमानिअष्टावाहारविधिविशेषायतनानिभवन्ति । तद्यथा-प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थोपयोक्ताष्टे-मानिभवन्ति ॥ १६ ॥

उनमें आहार विधिके यह अष्टविध आयतन कथन किये हैं। जैसे-प्रकृति, करण, संयोग, राशि, देश, काल, उपयोग, संख्या तथा उपयोगको करनेवाला। यह आठ आयतन हैं ॥ १६ ॥

प्रकृतिका वर्णन ।

तत्रप्रकृतिरुच्यतेस्वभावोयः सपुनराहारौषधद्रव्याणांस्वाभाविकोगुर्वादिगुणयोगः । तद्यथा—माषमुद्गयोः शूकरैणयोश्च ॥ १७ ॥

इनमें प्रकृति-स्वभावको कहतेहैं। आहार और औषध द्रव्योंका जो स्वाभाविक गुरु, आदि गुणका योग है उसको प्रकृति कहतेहैं। जैसे-उड़द स्वभावसे ही भारी है और मूंग स्वभावसे ही हल्के गुणवाला है। सूअरका मांस-स्वभावसे ही भारी गुण-वाला है और हिरनका मांस स्वभावसे ही हल्का होताहै ॥ १७ ॥

करणका वर्णन ।

करणंपुनःस्वाभाविकानांद्रव्याणामभिसंस्कारः । संस्कारोहि गुणान्तराधानमुच्यते। तेगुणाश्चतोयाग्निसन्निकर्षशौचमन्थन-देशकालवशेनभावनादिभिः कालप्रकर्षभाजनादिभिश्चाभि धीयन्ते ॥ १८ ॥

स्वाभाविक द्रव्योंके संस्कारको करण कहते हैं। संस्कारका अर्थ गुणान्तरको प्राप्त करना है वह गुण-जल और अग्निके सन्निकर्षसे एवम् शौच, मन्थन, देश, काल, वश, भावना आदिसे तथा समयके उत्कर्षसे एवम् पात्रादिकोंके संसर्गसे गुणान्तरको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥

सयोगका वर्णन ।

सयोगस्तुद्वयोर्बहूनावाद्रव्याणांसहतीभाव सविशेषमारभतेय त्रैकशोद्रव्याणिआरभन्ते । यथामधुसर्पिषोमधुमत्स्यपयसा-श्चसयोग॰ ॥ १९ ॥

दो अथवा बहुतसे द्रव्योंका ससर्ग होना सयोग कहाताहै । द्रव्योंका सयोग विशेष होनेसे गुण उत्पन्न होताहै । जैसे-शहद और घृतको समान भागसे लानेसे एवम् शहद मछली और दूधके मिलानेसे विषके समान गुण उत्पन्न होजाताहै ॥ १९ ॥

राशिका वर्णन ।

राशिस्तुसर्वग्रहपरिग्रहौमात्राऽमात्राफलविनिश्चायार्थ॰प्रकृत॰ । तत्रसर्वस्याहारस्यप्रमाणग्रहणमेकपिण्डेनसर्वग्रह । परि-ग्रहश्चपुन॰ प्रमाणग्रहणमेकैकत्वेनाहारद्रव्याणाम् । सर्वस्य हिग्रह सर्वग्रह सर्वतश्चग्रह परिग्रह उच्यते ॥ २० ॥

राशि-सब द्रव्योंके सर्वग्रह और परिग्रहको कहते हैं । इनका वर्णन मात्रा और अमात्राके फलनिश्चयार्थ किया है इनमें सब प्रकारके भोजन सामग्रीका गोलासा बनाकर खाना सर्वग्रह कहा जाताहै । व्यजन आदि आहार द्रव्योंको अलग अलग भक्षण करनेको परिग्रह कहते हैं । सब द्रव्योंको मिला एकसाथ ग्रहण करनेको सर्वग्रह कहते है और सबमेंसे थोडाथोडा खानेको परिग्रह कहतेहैं ॥ २० ॥

देशका वर्णन ।

देश पुन॰स्थानद्रव्याणामुत्पत्तिप्रचारौदेशसात्म्यश्चाचष्टे॥२१॥

द्रव्यके उत्पन्न होनेके स्थानको तथा प्रचार (फिरना घूमना आदि) आदिके स्थानको देश कहते हैं ॥ २१ ॥

कालका वर्णन ।

कालोहिनित्यगश्चावस्थिकश्च । तत्रावस्थिकोविकारमपेक्ष्यते । नित्यगस्तुखल्वृतुसात्म्यापेक्ष ॥ २२ ॥

काल दो प्रकारका होता है । नित्यग । आवस्थिक । इनमें आवस्थिक काल विकारकी अपेक्षा करताहै अर्थात् बाल्यावस्थामें विकृति मात्र होकर वृद्धावस्थामें प्राप्त होना आवस्थिक काल कहा जाता है । नित्यगकाल ऋतु और सात्म्यकी अपेक्षा करताहै । अर्थात् नित्यगकाल रात्रि, दिवस, मास, ऋतु आदिके वर्णसे कहते हैं ॥ २२ ॥

कनिष्ठ और उत्तमके मिलनेसे मध्यम सात्म्य होताहै। उनमें कनिष्ठ और मध्यम सात्म्यांसे क्रमपूर्वक उत्तम सात्म्यका अभ्यास करना चाहिये। संपूर्ण रसोंको तथा संपूर्ण द्रव्योंको सात्म्य होनेपर एवम् आहार विधिके विशेष आयतनोंको विचारकर अहित पदार्थोंको त्याग देवे एवम् हितोंका सेवन करे ॥ १५ ॥

आहारके आयतन।

तत्रखल्विमानिअष्टावाहारविधिविशेषायतनानिभवन्ति। तद्यथा-प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थोपयोक्ताष्ट-मानिभवन्ति ॥ १६ ॥

उनमें आहार विधिके यह अष्टविध आयतन कथन किये हैं। जैसे-प्रकृति, करण, संयोग, राशि, देश, काल, उपयोग, संख्या तथा उपयोगको करनेवाला। यह आठ आयतन हैं ॥ १६ ॥

प्रकृतिका वर्णन।

तत्रप्रकृतिरुच्यतेस्वभावोयः सपुनराहारौषधद्रव्याणांस्वाभावि-कोगुर्वादिगुणयोगः। तद्यथा—माषमुद्गयोः शूकरैणयोश्च ॥ १७ ॥

इनमें प्रकृति-स्वभावको कहतेहैं। आहार और औषध द्रव्योंका जो स्वाभाविक गुरु, आदि गुणका योग है उसको प्रकृति कहतेहैं। जैसे-उडद स्वभावसे ही भारी है और मूंग स्वभावसे ही हलके गुणवाला है। सूअरका मांस-स्वभावसे ही भारी गुण-वाला है और हिरनका मांस स्वभावसे ही हल्का होताहै ॥ १७ ॥

करणका वर्णन।

करणंपुनः स्वाभाविकानांद्रव्याणामभिसंस्कारः। संस्कारोहि गुणान्तराधानमुच्यते। तेगुणाश्चतोयाग्निसन्निकर्षशौचमन्थन-देशकालवशेनभावनादिभिः कालप्रकर्षभाजनादिभिश्चाभि-धीयन्ते ॥ १८ ॥

स्वाभाविक द्रव्योंके संस्कारको करण कहते हैं। संस्कारका अर्थ गुणान्तरको प्राप्त करना है वह गुण-जल और अग्निके सन्निकर्षसे एवम् शौच, मन्थन, देश, काल, घर, भावना आदिसे तथा समयके उत्कर्षसे एवम् पात्रादिकोंके संसर्गसे गुणान्तरको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥

संयोगका वर्णन ।

संयोगस्तुद्वयोर्बहूनांवाद्रव्याणांसंहतीभाव.सविशेषमारभतेय नैकशोद्रव्याणिआरभन्ते । यथामधुसर्पिषोमधुमत्स्यपयसा-श्चसंयोग ॥ १९ ॥

दो अथवा बहुतसे द्रव्योंका संसर्ग होना संयोग कहाताहै । द्रव्योंका संयोग विशेष होनेसे गुण उत्पन्न होताहै । जैसे-शहद और घृतको समान भागमें लानेसे एवम् शहद मछली और दूधके मिलानेसे विषके समान गुण उत्पन्न होजाताहै ॥ १९ ॥

राशिका वर्णन ।

राशिस्तुसर्वग्रहपरिग्रहौमात्राऽमात्राफलविनिश्चायार्थ प्रकृत । तत्रसर्वस्याहारस्यप्रमाणग्रहणमेकपिण्डेनसर्वग्रह । परि-ग्रहश्चपुन॰ प्रमाणग्रहणमेकैकत्वेनाहारद्रव्याणाम् । सर्वस्य हिग्रह सर्वग्रह सर्वतश्चग्रह परिग्रह उच्यते ॥ २० ॥

राशि-सब द्रव्याके सर्वग्रह और परिग्रहको कहते हैं । इनका वर्णन मात्रा और अमात्राके फलनिश्चयार्थ किया है उनमें सब प्रकारके भोजन सामग्रीका गोलासा बनाकर खाना सर्वग्रह कहा जाताहै । व्यंजन आदि आहार द्रव्योंको अलग अलग भक्षण करनेको परिग्रह कहते हैं । सब द्रव्योंको मिला एकसाथ ग्रहण करनेको सर्वग्रह कहते है और सबमेंसे थोडाथोडा खानेको परिग्रह कहतेहै ॥ २० ॥

देशका वर्णन ।

देश पुन स्थानद्रव्याणामुत्पत्तिप्रचारौदेशसात्म्यश्चाचष्टे॥२१॥

द्रव्यके उत्पन्न होनेके स्थानको तथा प्रचार (फिरना चुगना आदि) आदिके स्थानको देश कहते है ॥ २१ ॥

कालका वर्णन ।

कालोहिनित्यगश्चावस्थिकश्च । तत्रावस्थिकोविकारमपेक्ष्यते । नित्यगस्तुखलुऋतुसात्म्यापेक्ष ॥ २२ ॥

काल दो प्रकारका होता है । नित्यग । आवस्थिक । इनमें आवस्थिक काल विकारकी अपेक्षा करताहै अर्थात् बाल्यावस्थामें विकृति मात्र होकर तरुणावस्थामें मात्र होना आवस्थिक काल कहा जाता है । नित्यगकाल ऋतु और सात्म्यकी परीक्षा करताहै । अर्थात् नित्यगकाल क्षण दिवस, मास, ऋतु आदिमें वर्तमान रहता है ॥ २२ ॥

उपयोगसस्थाका वर्णन ।

उपयोगसंस्थातूपयोगनियम' सजीर्णलक्षणापेक्ष ॥ २३ ॥

भोजन आदिके उपयोगके नियमको उपयोग कहते है । यह उपयोग विधिवत होनेसे यथोचित रीतिपर भोजनादि जीर्ण होजाते है ॥ २३ ॥

उपयोक्ताका वर्णन ।

उपयोक्तापुनर्यस्तमाहारमुपयुक्ते । यदायत्तमोकसात्म्यम् ॥ २४ ॥

उपयोक्ता भोजनके उपयोग करनेवालेको कहते है । भोक्ता मनुष्य अपने आधीन भोजनको करके यथोचित रीतिपर पचावे उसको ओकसात्म्य कहते है॥२४॥

इत्यष्टावाहारविधिविशेपायतनानिभवन्ति । एपाविशेपा शुभाशुभफलप्रदा.परस्परोपकारकाभवन्ति । तान्बुभुत्सेत । बुद्धाचहितेप्सुरेवस्यान्नचमोहात्प्रमादाद्वाप्रियमहितमसुखोदर्कमुपसेव्यमाहारजातमन्यद्वा ॥ २५ ॥

इस प्रकार आहारविधिके आठ आयतन विशेपाका कथन कियाहै । यह आहारका अष्टविध भेद शुभ और अशुभ फलको देनेवाएहै एवम परस्पर उपकारकारक है । इसलिये आहारविधिको यथोचित रीतिपर जानकर हितकी इच्छावाला मनुष्य मोहसे और प्रमादसे भी अपने अहित और सुखके नष्ट करनेवाले पदार्थोको सेवन न करे ॥ २५ ॥

आहार विधि ।

तत्रेदमाहारविधिविधानमरोगाणामपिचातुराणाहितम् । केपाञ्चित्कालेप्रकृत्यैवहिततमभुञ्जानानांभवति । उष्णस्निग्धंमात्रावज्जीर्णेवीर्याविरुद्धइष्टेदेशेइष्टसर्वोपकरणनातिद्रुतनातिविलम्बितनजल्पन्नहसस्तन्मनाभुञ्जीतआत्मानमभिसमीक्ष्यसम्यक् ॥ २६ ॥

यह आहार विधिसे सेवन करना आरोग्य मनुष्योंके लिये तथा रोगियोंके लिये हितकर होताहै । और समयपर भोजन करना स्वभावसे ही भोजनकर्त्ताको हितकारक होता है । तथा किसी २ के लिये कोई नियत समय हितकर होताहै । अब आहारकी विधिको कथन करते है । गर्म, चिकना, और परिमाणका भोजन-प्रथम भोजनके पाचन होनेपर खाना चाहिये । यह भोजन-अविरुद्धवीर्य होना चाहिये तथा

पवित्रस्थानमें बैठकर वाञ्छित सब पदार्थोंसे युक्त हो, भोजनको न बहुत जल्दी न बहुत देरमें करना चाहिये। और भोजन करते हुए बहुतबोलना और हसना त्यागकर भोजनमें मन लगाकर अपने शरीरके बलाबलको देखकर भोजन करे ॥ २६ ॥

उष्णभोजनके गुण।

तस्यसाद्गुण्यमुपदेक्ष्याम । उष्णमश्नीयादुष्णंहिभुज्यमानस्व दतेभुक्तश्चाग्निमुदीर्य्यमुदीरयति । क्षिप्रञ्चजरागच्छति, वात श्चानुलोमयति, श्लेष्माणश्चपरिशोषयतितस्मादुष्णमश्नी-यात् ॥ २७ ॥

उस भोजनके विधिवत् किये जानेसे जो उत्तम गुण होते हैं उनका वर्णन करते हैं। भोजन सदैव ताजा और गर्म करना चाहिये। क्योंकि उस आहारमें स्वादुशक्ति उत्तम रहती है एवम् उससे अग्नि चैतन्य होकर आहारको पाचन करती है। और वह आहार शीघ्र जीर्ण होजाताहै। गर्म आहारके भोजन करनेसे वायुका अनुलोम होताहै और कफका परिशोषण होताहै। इसलिये गर्म आहारका ही सेवन करना चाहिये ॥ २७ ॥

स्निग्धभोजनके गुण।

स्निग्धमश्नीयात् । स्निग्धंहिभुज्यमानस्वदते । भुक्तश्चाग्निमुदी-रयतिक्षिप्रंजरागच्छतिवातमनुलोमयतिदृढीकरोति । शरीरो-पचय बलाभिवृद्धिश्चोपजनयति, वर्णप्रसादमपिचाभिनिर्वर्त्त यति । तस्मात् स्निग्धमश्नीयात् ॥ २८ ॥

भोजन सदैव चिकना करना चाहिये। चिकने पदार्थोंका स्वादु उत्तम होताहै। और भोजन कियेजानेपर अग्निको बलवान् करताहै। तथा वायुको अनुलोमन करताहै। एवम् शरीरको दृढ तथा पुष्ट करताहै और वर्णकी वृद्धिको उत्पन्न करताहै। वर्णको प्रसन्न करताहै। इसलिये आहारका स्नेहयुक्त कर खाना चाहिये ॥ २८ ॥

मात्रावतभोजनका गुण।

मात्रावदश्नीयात् । मात्रावद्धिभुक्तं वातपित्तकफानप्रपीडय दायुरेवविवर्द्धयतिकेवलंसुखंसम्यक्‌पक्वमिद्धभूतगदमनुपर्य्येति नचोष्माणमुपहन्तिअव्यथश्चपरिपाकमेति । तस्मान्मात्रावद-श्नीयात् ॥ २९ ॥

भोजन सदैव परिमाणसे करना चाहिये । परिमाणसे कियाहुआ भोजन वात पित्त, कफको साम्यावस्थामें रखताहुआ आयुको बढाता है । और सुखपूर्वक पाचन होजाताहै । इसका मलभाग मलस्थान द्वारा यथोचित रीतिसे निकल जाताहै । जठराग्निकी गर्मीमें किसी प्रकारका विघ्न न करके परिपाकको प्राप्त होजाताहै । इसलिये भोजन उचित मात्रासे करना चाहिये ॥ २९ ॥

जीर्णभोजनमें भोजनके गुण ।

जीर्णेऽश्नीयात् । अजीर्णेहिभुञ्जानस्यपूर्वस्याहारस्यरसमपरिणतमुत्तरेणाहाररसेनोपसृजन्सर्वान्दोषान्प्रकोपयत्याशु । जीर्णेतुभुञ्जानस्यस्वस्थानस्थेषुदोषेषुअग्नौचोदीर्णेजातायाञ्चबुभुक्षायांविवृतेषुचस्रोतसामुखेषुचोद्गारेविशुद्धेहृदयेविशुद्धेवातानुलोम्येविसृष्टेषुचवातमूत्रपुरीषवेगेषुजीर्णमभ्यवहृतमाहारजातसर्वशरीरधातूनप्रदूषयदायुरेवाभिवर्द्धयतिकेवलम् । तस्माजीर्णेऽश्नीयात् ॥ ३० ॥

प्रथम लिका आहार जीर्ण होजानेपर तब भोजन करना चाहिये । अजीर्णमें भोजन करनेसे अर्थात् पहिले कियेहुए आहारका रस शरीरमें यथोचित रीतिपर पचजानेके विना भोजन करनेसे उस दूसरे आहारके साथ मिलकर दोषोंको कुपित करताहै । और पहिला भोजन पचजानेपर फिर भोजन कियाजाय तो दोष अपने २ स्थानोंमें स्थित रहतेहैं । अग्नि चैतन्य होकर भूख लगातीहै और नाडियोंके मुख शुद्ध होकर डकार शुद्ध आतीहै । हृदय शुद्ध रहताहै । वायुका अनुलोम होताहै । वात, मूत्र, मल ये अपने समयपर ठीक निकलतेहैं । यह आहार यथोचित रीतिपर जीर्ण होकर धातुओंको दूषित न करता हुआ केवल आयुको बढाताहै ॥ ३० ॥

वीर्य्याविरुद्धभोजनके गुण ।

वीर्य्याविरुद्धमश्नीयात् । अविरुद्धवीर्य्यमश्नन्हिनविरुद्धवीर्य्याहारजैर्विकारैरयमुपसृज्यते तस्माद्वीर्य्याविरुद्धमश्नीयात् ॥ ३१ ॥

अविरुद्ध वीर्यवाले पदार्थोंका सेवन करना चाहिये । अविरुद्ध वीर्यवाले पदार्थोंके खानेसे जो विकार विरुद्धवीर्य आहारसे उत्पन्न होतेहैं वह नहीं होते।इसलिये विरुद्धवीर्य पदार्थोंको न खाना चाहिये ॥ ३१ ॥

इष्टदेशमे भोजनका गुण ।

इष्टेदेशेऽश्नीयात् । इष्टेहि देशेभुञ्जानोनानिष्टदेशजैर्मनोवि-
घातकैर्भावैर्मनोविघातंप्राप्नोतितथेष्टे सर्वोपकरणैस्तस्मादिष्टे
देशेतथेष्टसर्वोपकरणश्चाश्नीयात् ॥ ३२ ॥

इष्ट अर्थात् पवित्रस्थानमें भोजन करना चाहिये । पवित्रस्थानमे भोजन करनेवाले मनुष्यको दुष्टस्थानजनित मनमें ग्लानि आदि उत्पन्न नहीं होती । इसलिये पवित्र स्थानमे मनको प्यारे लगनेवाले, उत्तम उपकरणोंके सहित भोजनकरे ॥ ३२ ॥

नातिद्रुतभोजनके गुण ।

नातिद्रुतमश्नीयात् । अतिद्रुतं हि भुञ्जानस्यउत्स्नेहनमवसद-
नभोजनस्याप्रतिष्ठानम् । भोज्यदोषसाद्गुण्योपलब्धिश्च न
नियता । तस्मान्नातिद्रुतमश्नीयात् ॥ ३३ ॥

अत्यन्त जल्दी भोजन नहीं करना चाहिये । अत्यन्त जल्दी भोजन करनेसे शरीरके स्नेहकी ऊर्द्धगति, देहका रहजाना एवम् किया हुआ आहार यथो-चित रीतिपर अपने स्थानमें नहीं पहुंच सकता और जो भोजन किया जाय उसका यथोचित दोष, गुण प्रतीति नहीं होसकता इसलिये भोजनको अत्यन्त शीघ्र नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ॥

नातिविलम्बित भोजनके गुण ।

नातिविलम्बितमश्नीयात् । अतिविलम्बितंहिभुञ्जानोनतृप्ति-
मधिगच्छतिबहुभुङ्क्तेशीतीभवतिचाहारजातंविषमपाकश्चभव-
ति तस्मान्नातिविलम्बितमश्नीयात् ॥ ३४ ॥

बहुत देरमें भी भोजन नहीं करना चाहिये । बहुत देरमें भोजन करनेसे मनुष्य तृप्तिको प्राप्त नहीं होता । और बहुत भोजन करता है एवम् भोजनसे पदार्थ शीतल होजाते है तथा आहारका विषम परिपाक होताहै इसलिये अधिक देरमें भोजन नहीं करना चाहिये ॥ ३४ ॥

मौनसे भोजनके गुण ।

अजल्पन्नहसन्तन्मनाभुञ्जीत । जल्पतोहसतोऽन्यमनसोवाभु-
ञ्जानस्यतएवहिदोषाभवन्तियएवातिद्रुतमश्नत । तस्मादज-
ल्पन्नहसंस्तन्मनाभुञ्जीत ॥ ३५ ॥

भोजन करते हुए-हसना और बहुत बोलना नहीं चाहिये । तथा भोजनमें चित्त लगाकर भोजन करना चाहिये । हसते हुए और बोलते हुए तथा दूसरी जगह चित्त लगाकर भोजन करनेमें जो अवगुण बहुत शीघ्र भोजन करनेसे होतेहैं सोई इनमें भी होतेहैं । इसलिये चुपचाप हास्य रहित भोजनमें चित्त लगा भोजन करना चाहिये ॥ ३५ ॥

आत्माको देखकर भोजनके गुण ।

आत्मानमभिसमीक्ष्यभुञ्जीतसम्यक् । इदममोपशेतेइदनोपशेतेइति । विदितहिअस्यआत्मनआत्मसात्म्यभवति । तस्मादात्मनात्मानमभिसमीक्ष्यभुञ्जीतसम्यगिति ॥ ३६ ॥

अपने शरीरके बलाबलको विचार कर ही विधिवत् भोजन करना चाहिये कि यह पदार्थ मुझे सात्म्य है और यह असात्म्य है । इस प्रकार विचारकर भोजन किया हुआ अन्न शरीरके सात्म्य अर्थात अनुकूल होता है । इस लिये अपनी अग्निका बलाबल विचारकर जो पदार्थ अपने शरीरका हितकर हो वह खाना चाहिये ॥ ३६ ॥

तत्र श्लोका ।

रसान्द्रव्याणिदोषाश्चविकाराश्चप्रभावत । वेदयोदेशकालौच शरीरञ्चसनाभिषक् ॥ ३७ ॥ विमानार्थोरसद्रव्यदोषरोगाःप्रभावत- । द्रव्याणिनातिसेव्यानित्रिविधंसात्म्यमेवच ॥३८॥ आहारायतनान्यष्टौभोज्यसाद्गुण्यमेवच । विमानेरससंख्याते सर्वमेतत्प्रकाशितम् ॥ ३९ ॥

इति अग्निवेशकृते तन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृते विमानस्थाने रसविमाननामप्रथमोध्याय ॥ १ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करतेहैं । यहांपर श्लोक हैं-कि जो मनुष्य रस, द्रव्य, दोष, और रोगोंके प्रभावको जानता है और देश काल, तथा शारीरिक अवस्थाको जानताहै उसीको वैद्य कहना चाहिये ॥३७॥ इस विमाननामक अध्यायमें विमानका अर्थ, रसोंके प्रभाव द्रव्यके प्रभाव, दोषोंके प्रभाव एवम रोगोंके प्रभाव तथा आहार विधि और अत्यन्त सेवन न करनेयोग्य द्रव्य, तीन प्रकारका सात्म्य, आठ प्रकारके आहारके आयतन, आहारके गुण ये सब वर्णन किये हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

इति श्रीचरकसंहिताया० ... ... रसविमान...

द्वितीयोऽध्याय ।

अथातस्त्रिविधकुक्षीयविमानंव्याख्यास्यामइतिहस्माह भगवानात्रेय ।

अब हम त्रिविध कुक्षीय विमानका कथन करते हैं । इस प्रकार भगवान आत्रेयजी कहनेलगे ।

त्रिविधकुक्षीयका वर्णन ।

त्रिविधकुक्षौस्थापयेदवकाशांशमाहारस्याहारमुपयुञ्जान. । तद्यथैकमवकाशांशमूर्त्तानामाहारविकाराणामेकद्रवाणामेकपुनर्वातपित्तश्लेष्मणाम् ॥ १ ॥

भोजन करते समय-उदरमें तीन विभाग करने चाहिये । उनमें उदरके एक भागको पेड़ा, पूड़ी, पकवान आदि गरिष्ठ पदार्थोंसे पूरित करना चाहिये । और एक भागको खीर, दूध आदि पतले पदार्थोंसे पूरित करना चाहिये । तीसरा भाग वात, पित्त, कफके सचारके लिये खाली रखना चाहिये ॥ १ ॥

एतावतींह्याहारमात्रामुपयुञ्जानोनामात्राहारजंकिञ्चिदशुभंप्राप्नोति । नचकेवलमात्रावत्त्वादेवाहारस्यकृत्स्नमाहारफलसौष्ठवमवाप्तुशक्यम् । प्रकृत्यादीनामष्टानामाहारविधिविशेषायतनानांप्रविभक्तफलत्वात् । तत्रतावदाहारराशिमधिकृत्यमात्रामात्राफलविनिश्चयार्थं प्रकृत । एतावानेवह्याहारराशिविधिविकल्पोयावन्मात्रावत्त्वममात्रावत्त्वंचतत्रमात्रावत्त्वंपूर्वमुपदिष्टंकुक्ष्यंशविभागेन । तद्भूयोविस्तरेणानुव्याख्यास्याम ॥२॥

यही आहारकी मात्रा है । इस प्रकार मात्रासे भोजन करनेवाला मनुष्य आहारजनित विकारसे बचा रहता है अर्थात् उसको आहारजनित कोई रोग नहीं होता और पर्याप्त मात्रामें भोजन करनेके कारण आहार करनेके जो उत्तम फल होते हैं और शरीरको पुष्टता आदि उत्तम गुण प्राप्त होते हैं । सम्पूर्ण आहार द्रव्योंके आठ आयतन,इन विचारकर फिर मात्रानुसार भोजन करना चाहिये । आहारके गुरु इसमें इतनी ही विधि और विकल्प है कि उसकी मात्रा और अमात्रता । [illegible]

भोजन करते हुए-हसना और बहुत बोलना नही चाहिये । तथा भोजनमे चित्त लगाकर भोजन करना चाहिये । हसते हुए और बोलते हुए तथा दूसरी जगह चित्त लगाकर भोजन करनेमे जो अवगुण बहुत शीघ्र भोजन करनेसे होतेहै सोई इनमें भी होतेहै । इसलिये चुपचाप हास्य रहित भोजनमें चित्त लगा भोजन करना चाहिये ॥ ३८ ॥

आत्माको देखकर भोजनके गुण ।

आत्मानमभिसमीक्ष्यभुञ्जीतसम्यक् । इदममोपशेतेइदनोपशेतेइति । विदितहिअस्यआत्मनआत्मसात्म्यभवति । तस्मादात्मनात्मानमभिसमीक्ष्यभुञ्जीतसम्यगिति ॥ ३६ ॥

अपने शरीरके बलाबलको विचार कर ही विधिवत् भोजन करना चाहिये कि यह पदार्थ मुझे सात्म्य है और यह असात्म्य है । इस प्रकार विचारकर भोजन किया हुआ अन्न शरीरके सात्म्य अर्थात् अनुकूल होता है । इस लिये अपनी अग्निका बलाबल विचारकर जो पदार्थ अपने शरीरको हितकर हो वह खाना चाहिये ॥ ३६ ॥

तत्र श्लोका ।

रसान्द्रव्याणिदोषांश्चविकारांश्चप्रभावत । वेदयोदेशकालौच शरीरञ्चसनाभिपक् ॥ ३७ ॥ विमानार्थोरसद्रव्यदोषरोगा प्रभावतः । द्रव्याणिनातिसेव्यानित्रिविधसात्म्यमेवच ॥३८॥ आहारायतनान्यष्टौभोज्यसाद्गुण्यमेवच । विमानेरससख्याते सर्वमेतत्प्रकाशितम् ॥ ३९ ॥

इति अग्निवेशकृते तन्त्रेचरकप्रतिसस्कृते विमानस्थाने रसविमाननामप्रथमोध्याय. ॥ १ ॥

अब अध्यायका उपसहार करतेहै । यहांपर श्लोक है-कि जो मनुष्य रस, द्रव्य, दोष, और रोगाके प्रभावको जानता है और देश काल, तथा शारीरिक अवस्थाको जानताहै उसीको वैद्य कहना चाहिये ॥३७॥ इस विमाननामक अध्यायमे विमानका अर्थ, रसके प्रभाव द्रव्यके प्रभाव, दोषोके प्रभाव एवम् रोगोके प्रभाव तथा आहार विधि और अत्यन्त सेवन करनेयोग्य द्रव्य, तीन प्रकारका सात्म्य, आठ प्रकारके आहारके आयतन, आहारके गुण ये सब वर्णन किये गये है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

इति श्रीचरकसं० विमानस्थान प० रामप्रसादवै० भाषाटीकायां रसविमान नामप्रथमोध्याय ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्याय.।

अथातस्त्रिविधकुक्षीयविमानव्याख्यास्यामइतिहस्माह भगवानात्रेय.।

अब हम त्रिविध कुक्षीय विमानका कथन करते हैं । इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

त्रिविधकुक्षीयका वर्णन ।

त्रिविधकुक्षौस्थापयेदवकाशांशमाहारस्याहारमुपयुञ्जान.। तद्यथैकमवकाशांशमूर्त्तानामाहारविकाराणामेकद्रवाणामेकपुनर्वातपित्तश्लेष्मणाम् ॥ १ ॥

भोजन करते समय-उदरमें तीन विभाग करने चाहिये । उनमें उदरके एक भागको पेड़ा, पूड़ी, पकवान आदि गरिष्ठ पदार्थोंसे पूरित करना चाहिये । और एक भागको खीर, दूध आदि पतले पदार्थोंसे पूरित करना चाहिये । तीसरा भाग वात, पित्त, कफके सचारके लिये खाली रखना चाहिये ॥ १ ॥

एतावतींह्याहारमात्रामुपयुञ्जानोनामात्राहारजंकिञ्चिदशुभंप्राप्नोति । नचकेवलमात्रावत्त्वादेवाहारस्यकृत्स्नमाहारफलसौष्ठवमवाप्तुशक्यम् । प्रकृत्यादीनामष्टानामाहारविधिविशेषायतनानांप्रविभक्तफलत्वात् । तत्रतावदाहारराशिमधिकृत्यमात्रामात्राफलविनिश्चयार्थं प्रकृत. । एतावानेवह्याहारराशिविधिविकल्पोयावन्मात्रावत्त्वममात्रावत्त्वञ्च । तत्रमात्रावत्त्वंपूर्वमुपदिष्टंकुक्ष्यंशविभागेन । तद्भूयोविस्तरेणानुव्याख्यास्याम ॥२॥

यही आहारकी मात्रा है । इस प्रकार मात्रासे भोजन करनेवाला मनुष्य आहारजनित विकारोंसे बचा रहता है अर्थात् उसको आहारजनित कोई रोग नहीं होता और यथोचित रीतिसे भोजन करनेके कारण आहार करनेके जो उत्तम फल होते हैं और शरीरमें पुष्टता आदि उत्तम गुण प्राप्त होते हैं । उन्हें आहार प्रकृति आदि आठ आयतनोंको विचारकर फिर मात्रानुसार भोजन करना चाहिये । आहारके समूहमें इतना ही विधि और विकल्प है कि उसको मात्रा और अमात्रासे विचारकर

भोजन करे । मात्रानुसार भोजन करना उदकके अग्र विभागसे प्रथम कथन कर चुके हैं । अब उसका विस्तारपूर्वक फिर वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

तद्यथा–कुक्षेरप्रपीडनमाहारेणहृदयस्यानवरोधः पार्श्वयोरविपाटनमनतिगौरवमुदरस्यप्रीणनमिन्द्रियाणांक्षुत्पिपासोपरमः स्थानासनशयनगमनप्रश्वासोच्छ्वासहास्यसंकथासुचसुखानुवृत्तिः सायंप्रातश्चसुखेनपरिणमनम् । बलवर्णोपचयकरत्वञ्चेति मात्रावतोलक्षणमाहारस्यभवति ॥ ३ ॥

आहारको इस प्रकार करना चाहिये जिसमें कोखमें पीडा न हो और हृदयका अवरोध न हो । दोनों तरफके पार्श्वभाग फटें नहीं, पेटमें अधिक भारीपन न हो । इस प्रकार मात्रानुसार भोजन करनेसे–इंद्रियें पुष्ट होती हैं । क्षुधा और प्यास शान्त होती है । बैठने, सोने, चलने, श्वास प्रतिश्वास लेनेमें तथा हसने और बोलने आदिमें सुख प्राप्त होताहै । सायंकाल और प्रातःकाल दोनों समय आहार पाचन हुआ प्रतीत होताहै तथा मलादि वेग ठीक परिमाणसे ही निकलते हैं । बल और वर्णकी वृद्धि होती है । ठीक मात्रापूर्वक आहार करनेके यह लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

अमात्राके भेद ।

अमात्रावत्त्वंपुनर्द्विविधमाचक्षते । हीनमधिकञ्च । तत्रहीनमात्राहारराशिर्बलवर्णोपचयक्षयकरमतृप्तिकरमुदावर्तकरमवृष्यमनायुष्यमनौजस्यमनोबुद्धीन्द्रियोपघातकरसारविधमनमलक्ष्म्यावहमशीतेश्चवातविकाराणामायतनमाचक्षते ॥ ४ ॥

अमात्राके दो भेद हैं । १ हीनमात्रा । २ अधिकमात्रा । हीनमात्रासे भोजन किया जाय तो–बल, वर्ण और पुष्टिकी क्षीणता, पेटका नहीं भरना, उदावर्त रोग तथा अवृष्यता होती है । यह आयुको नहीं बढाता, ओज, मन, बुद्धि, इन्द्रिय इन सबकी शक्ति हीन होती है । सारका मथमन, (इसी विमानस्थानके आठवें अध्यायमें आठ प्रकारके सारोंका कथन किया जायगा) अलक्ष्मी तथा अस्सी प्रकारकी वातव्याधियें उत्पन्न होती हैं ॥ ४ ॥

अतिमात्रंपुनः सर्वदोषप्रकोपनमिच्छन्तिसर्वकुशलाः ॥ ५ ॥

अब अधिकमात्रासे भोजनके अवगुणोंको कथन करते हैं । सब रोगोंको जानने वाले बुद्धिमान् कथन करते हैं कि अधिक मात्रासे भोजन किया हुआ आहार संपूर्ण दोषोंको कुपित करताहै ॥ ५ ॥

दोषोंके कुपितहोनेका कारण।

योहिमूर्त्तानामाहारविकाराणासौहित्यगत्वापश्चाद्द्रवैस्तृप्तिमापद्यतेभूयस्तस्यामाशयगतावातपित्तश्लेष्माणोऽभ्यवहारेणअतिमात्रेणातिप्रपीड्यमाना सर्वेयुगपत्प्रकोपमापद्यन्ते ॥ ६ ॥

जो मनुष्य पूडी आदि कडे पदार्थोंमे पेट भरकर फिर दूध, जल आदिसे पेटको पूर्णकर लेताहै उस मनुष्यके आमाशयमें प्राप्तहुए वात, पित्त, कफ अधिक भोजन करनेसे पीडित हुए एककालमें ही सब कोपको प्राप्त होतेहै ॥ ६ ॥

पृथक् २ दोषोंके उपद्रव।

तेप्रकुपितास्तमेवाहारराशिमपरिणतमाविश्यकुक्ष्येकदेशमाश्रिताविष्टम्भयन्तःसहसावापिउत्तराधराभ्यामार्गाभ्याप्रच्यावयन्त पृथक्पृथग्विकारानभिनिर्वर्त्तयन्तिअतिमात्रभोक्तु ॥ ७ ॥

फिर वह कुपित हुए दोष उसी आहारसमूहमें मिलकर कोखके एक देशमें स्थित होजातेहै। तब वह विष्टम्भको करते हुए सहसा ऊपरको या नीचेको निकलने आरम्भ होतेहैं। तब वह दोष अत्यन्त भोजन करनेवाले मनुष्यके शरीरमे अपने अलग २ विकारोंको करते है ॥ ७ ॥

कुपितवातके उपद्रव।

तत्रवात शूलानाहाङ्गमर्दमुखशोपमूर्च्छाभ्रमाग्निवैषम्यशिरासङ्कोचनसंस्तम्भनानिकरोति ॥ ८ ॥

इनमें कुपित हुआ वायु-शूल, अफारा, अंगमर्द, मुखशोष, मूर्च्छा, भ्रम, अग्निकी विषमता, शिराओंका संकोच और अंगोंका स्तम्भ आदि उपद्रवोंको करता है ॥ ८ ॥

पित्तपुनर्ज्वरमतीसारमन्तर्दाहतृष्णामदभ्रमप्रलपनानि ॥ ९ ॥

बहुत आहारसे कुपित हुआ पित्त-ज्वर, अतिसार, अन्तर्दाह, तृषा, मद, भ्रम और प्रलापको उत्पन्न करताहै ॥ ९ ॥

श्लेष्मातुच्छर्दरोचकाविपाकशीतज्वरालस्यगात्रगौरवाभिनिर्वृत्तिकर सम्पद्यते ॥ १० ॥

इसी प्रकार कुपित हुआ कफ-छर्दी, अरुचि, अविपाक, शीतज्वर, आलस्य, देहमें भारीपन इनको उत्पन्न करता है ॥ १० ॥

आम कुपितहोनेका कारण।

नखलुकेवलमतिमात्रमेवाहारराशिमामप्रदोषकारणमिच्छन्ति

अपितुखलुगुरुरूक्षशीतशुष्कद्विष्टविष्टम्भिविदाह्यशुचिविरुद्धा नामकालेअन्नपानानामुपसेवनम् । कामक्रोधलोभमोहेर्ष्याह्री शोकलोभोद्वेगभयोपततेनमनसावायदन्नपानमुपयुज्यतेतद- पिआममेवप्रदूषयति ॥ ११ ॥

केवल अधिक मात्रासे आहार करनाही भुक्ताहारको आमदोषादि युक्त करताहै यही नहीं किन्तु भारी, रूक्ष, शीतल, सूखे, द्वेषी, विष्टम्भकारक, विदाही, अपवित्र और विरुद्ध अन्नपानोंका विना समय सेवन करना भी आमदोषको कुपित करताहै । इसी प्रकार-काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, लज्जा, शोक, लोभका उद्वेग, भय इनसे उपतप्त मन होनेपर जो अन्न पान कियाजाताहै वह सब आमकोही दूषित करताहै ॥ ११ ॥

भवति चात्र ।

मात्रयाप्यभ्यवहृतपथ्यञ्चान्नंनजीर्य्यति ।
चिन्ताशोकभयक्रोधदुःखशय्याप्रजागरैः ॥ १२ ॥

सो यहापर कहतेहैं कि, जो आहार मात्रापूर्वक पथ्य ही कियाजाय वह भी चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, दुःख, सोना और जागना इन कारणोंसे यथोचित परिपाकको प्राप्त नहीं होता ॥ १२ ॥

आमके भेद ।

तंद्विविधमामप्रदोषमाचक्षतेभिषजः । विसूचिकामलसकञ्च । त त्रविसूचिकामूर्द्ध्वञ्चाधश्चप्रवृत्तामदोषांयथोक्तरूपांविद्यात् ॥ १३ ॥

उक्त आमदोषको वैद्यलोग दो प्रकारका कथन करतेहैं । १ विसूचिका । २ अलसक । इनमें विसूचिका रोग-उदद्वारा उपरके मार्गसे, दस्तद्वारा नीचेके मार्गसे होना ओरसे प्रवृत्त होता है । तथा शरीरमें सुई चुभनेका तोद और उद्वेग होताहै । इसको लोकमें हैजा और कोलरा कहते हैं ॥ १३ ॥

अलसकके लक्षण ।

अलसकमुपदेक्ष्यामः । दुर्बलस्याल्पाग्नेर्बहुश्लेष्मणोवातमूत्रपु पुरीषवेगविधारिणः स्थिरगुरुबहुरूक्षशीतशुष्कान्नसेविनस्त- दन्नपानमनिलप्रपीडितंश्लेष्मणाचविबद्धमार्गमतिमात्रप्रलीन- मलसत्वान्नबहिर्मुखीभवति । ततश्छर्दतीसारवर्ज्यानिआम- प्रदोषलिङ्गानिअभिदर्शयतिअतिमात्राणि । अतिमात्रप्रदुष्टा-

श्वदोषाःप्रदुष्टाबद्धमार्गास्तिर्य्यग्गच्छन्त कदाचित्केवलमेवा स्यशरीरदण्डवत्स्तम्भयन्ति । ततस्तमलसकमसाध्यम्ब्रुवते॥१४॥

अब अलसकका वर्णन करते है–अल्प अग्निवाला और बढेहुए कफवाला दुर्बल मनुष्य जब मल आदि वेगोंको रोकता है तथा कठोर, भारी, अधिक, रूक्ष, शीतल एवम् शुष्क अन्नपानका सेवन करताहै तो उस मनुष्यके शरीरमें वह अन्नपान–वायुसे पीडित होकर कफसे विबद्धमार्ग होकर रुकजाता है और मूर्च्छित तथा अलसीभूत होकर देहसे बाहर नहीं निकल सकता । वह छर्दी और दस्तके सिवाय और सपूर्ण आमके दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होताहै । फिर अत्यन्त कोपको प्राप्तहुए दोष दुष्टहुए तथा बद्धमार्ग हुए तिरछा गमन करते है । कभी उसके शरीरको दण्डके समान स्तम्भनकर देते है । इस रोगको अलसकरोग कहतेहै । यह रोग असाध्य है ॥ १४ ॥

विरुद्धाध्यशनाजीर्णाशनशीलिन पुनरेवदोषमामविषमित्या-चक्षतेभिषजोविषसदृशलिङ्गत्वात्, तत्परमसाध्यमाशुकारि-त्वात्, विरुद्धोपक्रमत्वाच्चेति ॥ १५ ॥

विरुद्ध भोजन करनेवाले और अधिक भोजन करनेवाले तथा अजीर्णमें भोजन करनेवाले मनुष्योंके शरीरमें जो आमदोष होताहै वैद्यलोग उसको आमविष कहते है । क्योंकि यह आमविषके समान शीघ्र मारकलक्षणवाला होताहै । यह रोग शीघ्र नाशकरनेवाला होनेसे तथा चिकित्सामें विरोध पडनेसे यह विषके समान असाध्य होताहै ॥ १५ ॥

साध्यआमकी चिकित्सा ।

तत्रसाध्यमामप्रदुष्टमलसीभूतमुल्लेखयेदादौपाययित्वालवणमु-ष्णञ्चवारि । ततः स्वेदनवर्त्तिप्रणिधानाभ्यामुपाचरेदुपवासयेच्चैनम् ॥ १६ ॥

यदि उस अलसक रोगमें वह दुष्ट आम अलसीभूत हुई हुई साध्य प्रतीत हो तो उस आमको नमक और गरमजल पिलाकर वमनद्वारा शोधन करे । उसके अनन्तर स्वेदन तथा वस्ति प्रयोगद्वारा चिकित्सा करे और लंघन करावे ॥ १६ ॥

विसूचिकामें चिकित्सा ।

विसूचिकायान्तु लङ्घनमेवाग्रे विरिक्तवच्चानुपूर्वी ॥ १७ ॥

विसूचिकामें तो प्रथम लंघन कराना चाहिये और पश्चात् जैसा विरेचन होनानन्तर विरिक्त मनुष्यकी क्रिया की जाती है उसी प्रकार क्रमपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

आमप्रदोषेषुत्वन्नकालेजीर्णाहारंपुनर्दोषावलिप्तामाशयस्तिमि-
तगुरुकोष्ठमनन्नाभिलाषिणमभिसमीक्ष्यपाययेद्दोषशेषपाचना
र्थमौषधमग्निसन्धुक्षणार्थञ्चनत्वजीर्णाशनम् । आमप्रदोषदुर्ब-
लोह्यग्निर्युगपद्दोषमौषधमाहारजातञ्चाशक्तःपक्तुम् ॥ १८ ॥

आमके दूषित होनेपर प्रथम लंघन कराना चाहिये । लंघनद्वारा अन्न जीर्ण होनेपर यदि फिर भी ऐसा देखे कि आमाशयमें दोष लिपायमान है तथा कोष्ठ हैड्युक्त है एवम् भारी है तथा अन्नमें रुचि भी नहीं है तो शेष दोषोंके पाचन करनेके लिये तथा अग्निको चैतन्य करनेके लिये पाचन औषधी देवे । परन्तु आमयुक्त अजीर्णमें पाचन औषध देनेकी आवश्यकता नहीं है । क्योंकि आमदोष बलवान् होताहै । उस बढेहुए आमदोषको दुर्बल अग्नि तथा औषधी पाचन नहीं करसकती ॥ १८ ॥

अपिचामप्रदोषाहारौषधविभ्रमोऽतिवलत्वादुपरतकायाग्नि-
हसैवातुरमवलमभिपातयेत् ॥ १९ ॥

आम, दोष, आहार, औषध, इनका विभ्रम बलवान् होनेसे क्षीणाग्नि वह मनुष्यको शीघ्र नष्ट करडालतेहैं इसलिये अजीर्णमें अग्निकी चैतन्यता करनी चाहिये केवल पाचन औषध न देवे ॥ १९ ॥

आमप्रदोषजानांपुनर्विकाराणामपतर्पणेनैवोपरमोभवति ।
सतित्वनुबन्धेकृतापतर्पणानांव्याधीनांनिग्रहेनिमित्तविपरीत-
मपास्यौषधमातङ्कविपरीतमेवावचारयेत् । यथास्वंसर्वविका-
राणामपिचनिग्रहेहेतुव्याधिविपरीतमौषधमिच्छन्तिकुशलाः ॥ २० ॥

आमदोषसे उत्पन्नहुए रोग अपतर्पण क्रिया द्वारा शान्त होतेहैं । यदि अपतर्पण करनेपर भी आमदोषजनित विकार वाकी रहजाय तो रोगके नाश करनेवाले यत्न करने चाहिये । अर्थात् अपतर्पण करना आमदोषकी चिकित्सा है । यदि अपतर्पण करनेपर भी आमसे उत्पन्नहुए रोग शेष रहजाय तो उन रोगोंके नाश करनेवाली औषधी करनी चाहिये । जैसे सपूर्ण विकारोंकी शान्तिके लिये वचनेगा हेतु व्याधिके विपरीत अर्थकारी चिकित्सा करतेहैं वैसे ही यहांपर भी करनी चाहिये ॥ २० ॥

तदर्थकारिविपक्वभुक्तामप्रदोषस्यपुनःपरिपक्वदोषस्यदीप्तेचा
ग्नौअभ्यङ्गास्थापनानुवासनविधिवत्स्नेहपानंयुक्त्याप्रयोज्य-

मू, प्रसमीक्ष्यदोपभेपजदेशकालबलशरीराहारसात्म्यसत्त्वप्रकृतिवयसामवस्थान्तराणिविकारांश्चसम्यगिति ॥ २१ ॥

फिर हेतु और व्याधिके विपरीत अर्थकारी चिकित्सा करनेसे जब आमदोष पचजाय और दोषके पचनसे जठराग्नि चैतन्य होजाय फिर विधिपूर्वक अभ्यंजन, अनुवासन और आस्थापन तथा स्नेहपान यह युक्तिपूर्वक करानेचाहिये। तथा दोष, औषधी, देश, काल, बल, शरीर, आहार, सात्म्य, सत्त्व, प्रकृति और अवस्था इन सबको भलीप्रकार विचारकर तथा विकारोंको देखकर विधिवत् चिकित्सा करे॥२१॥

भवति चात्र।

अशितखादितपीतलीढश्चक्वविपच्यते । एतत्त्वाधीर ' पृच्छामस्तन्नआचक्ष्वबुद्धिमन् ॥ २२ ॥ इत्यग्निवेशप्रमुखे शिष्ये पृष्ट पुनर्वसु । आचचक्षेततस्तेभ्योयत्राहारोविपच्यते ॥ २३ ॥

महाराज कहाहै कि खानेके चाबनेके, पीनेके, चाटनेके योग्य जो पदार्थ है वह शरीरके किस स्थानमें प्राप्त होते हैं यह है धीर ! हम आपसे पूंछते हैं कृपाकर आप कथन कीजिये। इस प्रकार अग्निवेश आदि शिष्योंके पूंछनेपर भगवान पुनर्वसुजी कथन करनेलगे कि जिस जगह आहार परिपाकको प्राप्त होताहै वह तुम सबसे कथन करता हूं ॥ २२ ॥ २३ ॥

आहारपचनेका स्थान।

नाभिस्तनान्तरजन्तोरामाशयइतिस्मृत । अशितखादितपीतलीढंचात्रविपच्यते ॥ २४ ॥ आमाशयगत पाकमाहार प्राप्यकेवलम्। पक्व सर्वाशय पश्चाद्धमनीभि प्रपद्यते ॥ २५ ॥

मनुष्यके नाभि और स्तनके बीचमें अर्थात् नाभिसे ऊपर और छातीसे नीचे आमाशय है उस आमाशयमें ही-भक्ष्य,भोज्य,चोष्य लेह्य, यह सब पदार्थ परिपाकको प्राप्त होते हैं। आमाशयमें आहार पीछे परिपाकको प्राप्त होकर फिर धमनियोंद्वारा सब शरीरमें पहुंच जाता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

तस्यमात्रावतोलिङ्गंफलंचोक्तंयथायथम्। अमात्रस्यतथालिङ्गंफलंचोक्तंविभागश ॥ २६ ॥ आहारविध्यायतनानिचाष्टौस-

म्यक्परीक्ष्यात्महितंविदध्यात् । अन्यश्चय कश्चिंदिहास्तिमा-
र्गोहितोपयोगेषुभजेततश्च ॥ २७ ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेविमानस्थानेत्रिविध-
कुक्षीय विमाननामद्वितीयोऽध्याय. ॥ २ ॥

इस प्रकार मात्रासे भोजन करनेवालोंके लक्षण और फल कथन करदिये गयेहैं । इसीप्रकार विना मात्राके भोजन कियेके लक्षण और फल भी यथाक्रम कथन किये गये हैं ॥ २६ ॥ सो बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि, आहारविधिके आठ आय-तनोंको भले प्रकार परीक्षा करके अपनी आत्माके हितके लिये साधन करना चाहिये। इसके सिवाय अपनी आत्माके हित करनेवाले अन्य भी जो हितकारक मार्ग हों उनका सेवन करना चाहिये ॥ २७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० प० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां त्रिविधकुक्षीयो नाम द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्याय ।

अथ जनपदोद्ध्वंसनीयमध्यायंव्याख्यास्यामइति हस्माह
भगवानात्रेय ।

अब हम जनपदोद्ध्वंसनीय विमानाध्यायका कथन करते हैं ऐसे भगवान् आत्रे-यजी कहनेलगे ।

पुनर्वसुका प्रस्ताव ।

जनपदमण्डलेपाञ्चालक्षेत्रेद्विजातिवराध्युषितायाकाम्पिल्यराज-
धान्याभगवान्पुनर्वसुरात्रेयोऽन्तेवासिगणपरिवृत पश्चिमेघर्म्म
मासेगङ्गातीरेवनविचारमनुविचरञ्छिष्यमग्निवेशमब्रवीत् ॥ १ ॥

पाञ्चालदेशमें द्विजवरोंसे शोभायमान काम्पिल्य राजधानीमें भगवान् पुनर्वसु आत्रे-यजी अपने शिष्यगणोंसे परिवृत हुए ग्रीष्मऋतुके अन्तमें गङ्गाके किनारे वनमें विचरते हुए अपने शिष्य अग्निवेशसे कहनेलगे ॥ १ ॥

दृश्यन्तेहिखलुसौम्य ! नक्षत्रग्रहचन्द्रसूर्यानिलानलानादि-
शाम्प्रकृतिभूताऋतुवैकारिकाभावाअचिरादितोभूरपिचनय-

यावद्रसवीर्य्यविपाकप्रभावमोषधीनां प्रतिविधास्यति । तद्वियोगाच्चातङ्कप्रायता नियता । तस्मात् प्रागुद्ध्वंसात् प्राक् च भूमेर्विरसीभावादुद्धरध्वं सौम्य ! भैषज्यानि, यावन्नोपहतरसवीर्य्यविपाकप्रभावाणि । वयं चैषां रसवीर्य्यविपाकप्रभावानुपदेक्ष्यामहे, ये चास्माननुकाङ्क्षन्ति, यांश्च वयमनुकाङ्क्षाम ॥ २ ॥

हे सौम्य ! ऐसा दिखाई देता है कि नक्षत्र, ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, पवन, अग्नि तथा दिशाओंके स्वभाव विकारको प्राप्त होगये हैं और ऋतुएं भी अपने स्वभावोंसे विपरीत प्रतीत होती हैं और पृथ्वीके भी ऐसे लक्षण देख पडते हैं कि, यह भी औषधियोंके यथोचित रस, वीर्य, विपाक और प्रभावोंको नष्ट करडालेगी अर्थात् अब पृथ्वीमें जो औषधिये उत्पन्न होंगी वह अपने गुणोंको नहीं करेंगी । जब औषधिये अपने गुणोंको न करेंगी तो मनुष्यभी नित्यप्रति रोगी होंगे और ऋतुआदिकोंके विकारसे रोग उत्पन्न हो देशको नष्ट करडालेंगे । इसलिये उद्ध्वंसकारक रोग उत्पन्न होनेसे पहिले तथा पृथ्वीका स्वभाव विगडजानेसे पहिले ही हे सौम्य ! औषधियोंका संग्रह करलो जबतक इन औषधियोंके रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव नष्ट न हो उससे प्रथम ही इनको संग्रह कर लेना चाहिये । जो मनुष्य हमारेपर विश्वास रख हमारे पास आवेंगे तथा जिनके हितके लिये हम इच्छा करते हैं उन सबको रस, वीर्य, विपाक,प्रभावयुक्त औषधियोंके उपयोग द्वारा आरोग्य रक्खेंगे ॥ २ ॥

न हि सम्यगुद्धृतेषु भैषज्येषु सम्यग्विहितेषु सम्यग्विचारितेषु जनपदोद्ध्वंसकराणां विकाराणां किञ्चित्प्रतीकारगौरवं भवति ॥३॥

भले प्रकार उखाडी हुई औषधियोंको उत्तम विधिसे बनाकर यथोचित विचारपूर्वक प्रयोग करनेसे देशके नष्ट करनेवाले रोग अपना जोर न पासकेंगे । यदि बिना विचारे और बिना ही समय उखाडे तथा भले प्रकार संस्कार किये बिना औषधियोंका प्रयोग किया जायगा तो वह जनपदोद्ध्वंसके समय विकारोंमें अपना कुछ भी गुण न दिखा सकेगी ॥ ३ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

एवंवादिनं भगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच । उद्धृतानि खलु भगवन् ! भैषज्यानि सम्यग्विहितानि सम्यग्विचारितानि च । अपि तु खलु जनपदोद्ध्वंसनमेकेन व्याधिना युगपदसमानप्रकृत्या-हारदेहबलसात्म्यसत्त्ववयसां मनुष्याणां कस्माद्भवतीति ॥ ४

इस प्रकार कथन करते हुए भगवान आत्रेयजीसे अग्निवेश कहनेलगे कि हे भग-वन ! औषधियोंको भले प्रकार उखाड लिया है और विधिपूर्वक संस्कार किया हुआ है तथा उनके प्रयोगके विधानको विचार हुआ है अथवा या औषधियोंको भले प्रकार उखाडना तथा संस्कार करना एवम् विधिवत् प्रयोग करना यह आपका उपदेश रोगोंका हितकारक होना बहुत ठीक है परन्तु मनुष्योंकी प्रकृति, आहार, देह, बल, सात्म्य, सत्त्व और अवस्था यह सब अलग २ होतेहुए एक रोग एक समयमें जनपद (देश) को कैसे उध्वंसन (नष्ट) कर सकताहै । सो हमारी समझमें नहीं आया कृपया उसका कथन कीजिये ॥ ४ ॥

आत्रेयका उत्तर ।

तमुवाचभगवानात्रेयः । एवमसामान्यानामेभिरप्यग्निवेश !
प्रकृत्यादिभिर्भावैर्मनुष्याणांयेऽन्येभावाः सामान्यास्तद्वैगुण्या-
त्समानकालाःसमानलिंगाश्चव्याधयोभिनिर्वर्त्तमानाजनपद
मुद्ध्वंसयन्ति । तेतुखल्विमेभावाः सामान्याजनपदेषुभवन्ति ।
तद्यथा-वायुरुदकंदेशः कालइति ॥ ५ ॥

यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! यद्यपि सब मनुष्योंके प्रकृति आदि भाव समान नहीं होते अर्थात् एकसे दूसरे मनुष्यके स्वभाव आदिक अलग २ होतेहैं । जैसे-कोई मनुष्य शीत प्रकृतिवाला, कोई उष्ण प्रकृतिवाला । पर मनुष्योंके प्रकृति आदि भाव समान न होनेपर भी इनसे पृथक् जो अन्य सामान्य भाव हैं उनकी विगुणतासे अर्थात् उनके बिगडजानेसे समानकालमें समानलक्षणोंवाली व्याधियें प्रगट होकर देशको नष्ट कर डालती हैं । वह समानभाव देशमें ये होते हैं जैसे वायु, जल, देश और काल ॥ ५ ॥

वातको अनारोग्यत्व ।

तत्रवातमेवंविधमनारोग्यकरंविद्यात् । तद्यथा-ऋतुविषमम
तिस्तिमितमतिचलमतिपरुषमतिशीतमत्युष्णमतिरूक्षमत्य
भिष्यन्दिनमतिभैरवारावमतिप्रतिहतपरस्परगतिमतिकुण्डलि-
नमसात्म्यगन्धबाष्पसिकतापांशुधूमोपहतमिति ॥ ६ ॥

उनमें इस प्रकारका वायु होनेसे व्याधियोंका उत्पन्न करनेवाला जानना । जैसे ऋतुके गुणोंसे विपरीत हुवा, अत्यन्त ठहरा [illegible] करने,
[illegible]

अत्यन्त शीतल, अधिक गर्म, अत्यन्त रूक्ष क्लेदकारक, अतिभयङ्करशब्दयुक्त, दो तीन तरफसे वायु मिलकर टक्कर खानेवाला, अत्यन्त चक्कर खानेवाला, जिसकी गन्धसे लोगोंके शरीरमें विकार उत्पन्न हों एवम् भाफ, सिकता, धूल, गर्दा, धूआं आदिसे मिलाहुआ वायु विकारयुक्त होताहै ॥ ६ ॥

जलको अनारोग्यत्व ।

उदकन्तुखलुअत्यर्थविकृतगन्धवर्णरसस्पर्शवत्क्लेदबहुलमपक्रा
न्तजलचरविहङ्गमुपक्षीणजलाशयमप्रीतिकरमपगतगुणंवि
द्यात् ॥ ७ ॥

जल इस प्रकारका रोगकारक होताहै। जैसे दुर्गंधयुक्त विकृतवर्णवाला और जिसका रस तथा स्पर्श बुरा हो, गिलगिला जिसको जलचर पक्षियोंने त्याग दियाहो तथा जिसका जल सूख गयाहो, एवम् जिसका जल हानिकारक हो अथवा जिसके समीप जानेसे चित्त खराब होजाय और जलके गुणोंसे रहित हो ऐसे जलको रोगकारक जानना चाहिये ॥ ७ ॥

देशको अनारोग्यत्व ।

देशपुनःविकृतप्रकृतिवर्णगन्धरसस्पर्शक्लेदबहुलमुपसृष्टसरी-
सृपव्यालमशकशलभमक्षिकामूषकोलूकश्माशानिकशकुनिज
म्बुकादिभिस्तृणोलूपोपवनवन्तंप्रतानादिबहुलमपूर्ववदवपति
तंशुष्कनष्टशस्यधूम्रपवनप्रध्मातपतत्रिगणमुत्क्रुष्टश्वगणमुद्भ्रा
न्तव्यथितविविधमृगपक्षिसंघमुत्सृष्टनष्टधर्मसत्यलज्जाचारगु-
णजनपदशश्वत्क्षुभितोदीर्णसलिलाशयप्रततोल्कापातनिर्घात-
भूमिकम्पमतिभयारावरूपरूक्षताम्रारुणसिताभ्रजालसंवृतार्क
चन्द्रतारकमभीक्ष्णमसम्भ्रमोद्वेगमिवसत्रासरुदितमिवसतम-
स्कमिवगुह्यकाचरितमिवाक्रन्दितशब्दबहुलञ्चाहितंविद्यात् ॥ ८ ॥

देशको ऐसे लक्षण होने पर रोगकारक जानना चाहिये। जिस देशके स्वभाव वर्ण रस गन्ध स्पर्श यह सब बिगड़गयेहों तथा सम्पूर्ण भूमिमें गीलागीलापन हो। बहुत सांप, व्याल मच्छर, टिड्डी, मक्खी मूषक उल्लू, गिद्ध आदि श्मशानमें रहनेवाले जानवर गीदड़ आदि बहुत हों। बहुतसी घास और बेल इनका विस्तार हो। बहुत घने वन [illegible] उत्पन्न हों। [illegible] जिस [illegible] नष्ट [illegible] हो [illegible]

चौपे हुए अटसट अनेक प्रकारके घास उत्पन्न हुए हों, खेती सूख या नष्ट होगई हो, पवन धूएसे युक्त हो पक्षीगण आकाशमें इधर उधर बहुत उडते हों गीदड और कुत्ते रोने हों, अनेक प्रकारके मृग और पक्षी व्याकुल हुए इधर उधर फिरते हों । एवम् उस देशमें धर्म, सत्य, लज्जा, आचार, शुभगुण यह सब नष्ट होगये हों तथा जलाशय सहसा क्षुभित हुए हों । और उस देशमें उल्कापात हो अर्थात् तारे टूटें, बिजली गिरे । भूकम्प हो, भारी आंधी आवे तथा देशका भयंकर रूप होजाय । चन्द्रमा, सूर्य और तारागण कभी रूखे, कभी लाल, कभी सफेद एवम् मेघजालसे ढकेहुए निरन्तर ऐसे २ रूपमें दिखाई दियाकरें और उस देशमें सभ्रम, उद्वेग, त्रास और रोनेकेसे लक्षण दिखाई दियाकरें निरन्तर अंधकारसा छाया रहे तथा भूत, प्रेतोंका घूमना और शब्द करना प्रतीत हुआकरे ऐसे लक्षणवालादेश भयानक रोगोंको उत्पन्न करनेवाला होताहै ॥ ८ ॥

कालको अनारोग्यत्व ।

कालन्तुखलुयथर्त्तुलिङ्गाद्विपरीतलिङ्गमतिलिङ्गहीनलिङ्गञ्चाहि- तंव्यवस्येत् ॥ ९ ॥

अब काल अर्थात् समयके रोगोत्पादक होनेके लक्षण कहतेहैं । जैसे ऋतुओंका अपने लक्षणोंसे विपरीत होना । जैसे जिस ऋतुमें जो लक्षण होनेचाहिये उससे अत्यन्त अधिक होना, बहुत कम होना, या न होना अथवा आगे पीछे होना । इसप्रकारके लक्षणवाला समय रोगोंको उत्पन्न करनेवाला होताहै ॥ ९ ॥

इमानेवदोषयुक्तांश्चतुरोभावानजनपदोद्ध्वंसकरान्वदन्तिकुश ला । अतोऽन्यथाभूतास्तुहितानाचक्षते ॥ १० ॥

इस प्रकार वायु, जल, देश और काल इन चारोंके विकृतगुण होनेसे जनपदका उध्वंस होता है । अर्थात् जिस प्रान्त अथवा जिस देश या जिस द्वीपमें उपरोक्त चारों भावोंकी विकृतावस्था होजाती है वह देश, वह प्रान्त, वह द्वीप भयानक रोगयुक्त होकर नष्ट हो जाता है । इनसे विपरीत अर्थात् अपने ठीक स्वभाववाले-वायु, जल, पृथ्वी, समय होनेसे सब मनुष्योंके लिये हितकारी [illegible] ॥ १० ॥

विगुणेष्वपितुखल्वेतेषुजनपदे [illegible] धमानानांनभयंभवतिरोगेभ्यइ [illegible]

अब यह चारों भाव [illegible]
है उस समय भी हि[illegible] [illegible]
दियाजाताहै उन म[illegible] [illegible]

भवन्तिचात्र । वैगुण्यमुपपन्नानादेशकालानिलाम्भसाम् ।
गरीयस्त्वविशेषेणहेतुमत्सम्प्रवक्ष्यते ॥ १२ ॥

यहांपर कहाहै कि देश, काल, वायु, जल इनका विकृत होजाना रोगोंके उत्पन्न करनेके लिये एक बडा भारी कारण होताहै ॥ १२ ॥

वाताज्जलजलाद्देशदेशात्कालस्वभावत. ।
विद्याद्दुष्परिहार्य्यत्वाद्गरीयस्तरमर्थवित् ॥ १३ ॥

वायुसे जल, जलसे देश और देशसे काल स्वभावसे ही दुर्निवार और अधिक रोगोत्पादक होते हैं ॥ १३ ॥

वाय्वादिषुयथोक्तानादोषाणान्तुविशेषवित् ।
प्रतीकारस्यसौकर्य्येविद्याल्लाघवलक्षणम् ॥ १४ ॥

वायु आदिक चारों भावोंके दोषोंकी विशेषताको जाननेवाला और वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंकी विशेषताको जाननेवाला वैद्य इन रोगोंका प्रतिकार करते हुए उनके लक्षणोंके हल्केपन आदिको जाने । अथवा यों कहिये कि इन चारों भावोंमें जलसे वायु, देशसे जल और कालसे देश रोगोत्पादक हेतुओंमें हल्के मानना चाहिये ॥ १४ ॥

चतुर्ष्वपितुदुष्टेषुकालान्तेषुयदानरा. ।
भेषजेनोपपाद्यन्तेनभवन्त्यातुरास्तदा ॥ १५ ॥

जब चारों भाव बिगडकर देशको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त होतेहैं अर्थात् वायु, जल, देश और काल यह चारों बिगडकर जब देशको नष्ट करते हैं तब जिनमनुष्यों को विधिवत् औषधियोंका प्रयोग करा दियागया है अथवा कराया जाता है वह मनुष्य व्याधियोंसे पीडित नहीं होते ॥ १५ ॥

येषामनियतोमृत्युसामान्यसामान्यनचकर्मणाम् ।
कर्मपञ्चविधंतेषांभेषजंपरमुच्यते ॥ १६ ॥

जिन मनुष्योंके मृत्युकाल (पूर्णआयु होकर आनेवाली मृत्यु काल) नहीं है एवम् जिन्होंने मारक विष आदिका प्रयोग आदि कोई मारक कर्म उपस्थित नहीं है उनको रोगशान्तिके लिये पंचकर्म द्वारा चिकित्सा करना परम उत्तम औषध कहा है ॥ १६ ॥

वर्षति । विकृतंवावर्षतिवातानसम्यगभियान्तिक्षितिर्व्याप-
द्यतेसलिलानिउपशुष्यन्ति । ओषधयः स्वभावंपरिहायापद्य-
न्तेविकृतिम् । ततउद्ध्वंसन्तेजनपदाः स्पर्शाभ्यवहार्य्यदो-
षात् ॥ २५ ॥

वह वृद्धिको प्राप्तहुआ तथा सर्वत्र फैलाहुआ अधर्म, धर्मको छिपादेताहै अर्थात् नष्टप्राय बनादेताहै । तब उन लोगोंको धर्मरहित जानकर और अधर्म प्रधान होनेसे उस देशके रक्षक देवतागण उस देशको त्याग जातेहैं । फिर उन धर्मरहित और अधर्मप्रधान तथा देवताओंसे त्यागेहुए देशोंमें ऋतुएं विकृत होजातीहैं । तब ऋतुओंके विकृत होनेसे इन्द्रदेव समयपर वृष्टि नहीं करते अथवा वर्षाकालसे आगे पीछे या विकृतरूपसे वृष्टि होतीहै और वायु भी हितकारक शुभगतिवाला नहीं रहता । पृथ्वी दोषयुक्त होजातीहै, जलाशय सूख जातेहैं जडी बूटी आदि अपने स्वभावको छोडकर विकारयुक्त होजातीहैं । तब इन सबके विकृत होनेसे मनुष्योंमें रोग उत्पन्न होतेहैं और परस्पर संसर्ग और अन्नपान आदि संसर्गोंसे वह रोग देशमें फैलकर समस्त लोगोंको नष्ट करतेहैं ॥ २५ ॥

युद्धका कारण ।

तथाशस्त्रप्रभवस्यअपिजनपदोद्ध्वंसस्यअधर्मएवहेतुर्भवति ।
येऽतिप्रवृद्धलोभक्रोधरोपमानास्तेदुर्बलानवमत्यआत्मस्वजनपरो-
पघातायशस्त्रेणपरस्परमभिक्रामन्तिपरान्वाभिक्रामन्तिपरैर्वा-
भिक्राम्यन्तेरक्षोगणादिभिर्वाविविधैर्भूतसङ्घैस्तमधर्ममन्य-
द्वाप्यपचारान्तरमुपलभ्याभिहन्यन्ते ॥ २६ ॥

तथा राजाओंमें परस्पर शस्त्रयुद्ध होना भी जनपदोध्वंसन कहलाताहै उसका कारण भी अधर्म ही होताहै । जब मनुष्योंमें लोभ, क्रोध राग और अभिमान बहुत, बढजाताहै तब वह दुर्बल मनुष्योंका, गरीबोंका, निरपराधोंका अपमान करनेलगते हैं फिर वह अधर्मी लोग अपने और परायेको कुछ न समझकर लोभ और अहंकारसे अन्धे बनेहुए शस्त्रास्त्रोंसे उनको मारनेके लिये परस्पर आक्रमण करतेहैं और दूसरोंको मारनेके लिये आक्रमण करतेहैं । तथा उनसे उधर अन्य मनुष्य भी, उसी प्रकार आक्रमण करतेहैं । ऐसे समय अनेक राक्षस भूत, प्रेत, पिशाच आदि भी उन अधर्मके आचरण करनेवालोंको जहां पाते नष्टभ्रष्ट कर डालतेहैं ॥ २६ ॥

अभिशापका हेतु।

तथाभिशापस्याप्यधर्म एव हेतुर्भवति येलुप्तधर्माणोधर्माद्पेता तेगुरुवृद्धसिद्धर्षिपूज्यानवमत्य अहितानि आचरन्ति। ततस्ता प्रजा गुर्वादिभिरभिशप्ता भस्मतामुपयान्ति । प्रागप्यभूदने- कपुरुषकुलविनाशाय॥ २७॥

तथा अभिशापका भी अधर्म ही कारण होताहै। जब धर्मरहित मनुष्य अधर्मसे गुरुजन, वृद्धजन, सिद्ध, ऋषि तथा अन्य पूज्य महात्माओंका अपमान करतेहैं और अहितकर्मका आचरण करतेहैं तब उन गुरुजन आदिकोंके अभिशापसे अधर्मी प्रजा नष्टताको प्राप्त होजातीहै। ऐसे गुरुजनोंके अभिशापसे पहिलेके युगमें अनेक पुरुषोंके वंश नष्ट होगयेहैं॥ २७॥

नियतप्रत्ययोपलम्भान्नियताश्चपरे।
अनियतप्रत्ययोपलम्भादनियताश्चापरे॥ २८॥

बहुतसे मनुष्य आयुके नियत होनेसे पूर्णआयुको भोगतेहैं। बहुतसे आयुके अनिश्चित होनेसे अकालमें ही अर्थात् बाल्य अथवा युवावस्थामें ही मृत्युको प्राप्त होतेहैं। (तात्पर्य यह है कि अधर्मकी वृद्धिसे आयु नियत न रहकर अकालमें मृत्यु होतीहै और धर्मके रहनेसे मनुष्य पूर्णआयु भोगतेहैं। जब अधर्म नहीं होताथा तब वर्तमान समयके अनुसार अनियत मृत्युयें भी नहीं होतीथीं।)॥ २८॥

प्रागपिचाधर्म्माद्दतेनाशुभोत्पत्तिरन्यतोऽभूत्। आदिकालेहि- अदितिसुतसमौजसोऽतिविमलविपुलप्रभावा प्रत्यक्षदेवदेवर्षि- धर्म्मयज्ञविधिविधाना शैलेन्द्रसारसंहतस्थिरशरीरा प्रसन्नव- र्णेन्द्रिया पवनसमबलजवपराक्रमाश्चारुस्फिचोऽभिरूपप्रमाणा- कृतिप्रसादोपचयवन्त सत्यार्जवानृशंस्यदानदमनियमतपउप वासब्रह्मचर्य्यव्रतपराव्यपगतभयरागद्वेषमोहलोभक्रोधशोक- मानरोगनिद्रातन्द्राश्रमक्लमालस्यपरिग्रहाश्चपुरुषाबभूवुरमि- तायुष॥ २९॥

पूर्वकाल (सत्ययुग) में भी अधर्मके बिना कभी किसी अशुभकी उत्पत्ति नहीं होतीथी। देखिये पहिले समयमें मनुष्य अदितिके पुत्रोंके समान बलवान् होतेथे अत्यन्त विमल

लोभसे मान, मानसे द्वेष, द्वेषसे कठोरपन, कठोरपनसे अभिघात, अभिघातसे भय, ताप, शोक, चित्तमें उद्वेग आदिक उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥

ततस्त्रेतायाधर्म्मपादोऽन्तर्द्धानमगमत् । तस्यान्तर्द्धानात्पृथिव्यादीनागुणपादप्रणाशोऽभूत् । तत्प्रणाशकृतश्चशस्यानास्नेहवैमल्यरसवीर्य्यविपाकप्रभावगुणपादभ्रंश ॥ ३२ ॥

ऐसा होनेसे त्रेतायुगमें धर्मका एकपाद अन्तर्धान होगया। उसके अन्तर्धानसे पृथ्वी आदिके गुणोंमें भी एक पादकी न्यूनता उत्पन्न होगई है। पृथ्वी आदिके गुणोंके एकपाद नष्ट होनेसे औषधी, अन्न आदिकोंके स्नेह, विमलता, रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव आदि गुणोंका एकपाद नष्ट होगया ॥ ३२ ॥

ततस्तानिप्रजाशरीराणिहीनगुणपादैर्हीयमानगुणैश्चाहारविहारैरयथापूर्वमुपष्टभ्यमानानिअग्निमारुतपरीतानिप्राग्व्याधिभिर्ज्वरादिभिराक्रान्तानि अत प्राणिनोह्रासमवापुरायुष क्रमश इति ॥ ३३ ॥

जब द्रव्योंके गुणोंका एकपाद नष्ट होगया तो इन द्रव्यादिकोंके और पृथिव्यादिकोंके एकपाद गुणहीन होनेसे सम्पूर्ण मनुष्योंके शरीरोंमें भी एकपाद गुणकी हीनता होगई। तब एकपाद गुणसे हीन शरीर होनेसे आहार विहारादिकोंमें भी यथाक्रम न्यूनता प्राप्त होगई। तथा अग्नि और वायुके व्याप्तिमत्ते पहिले ज्वरादिरोगोंसे शरीर आक्रान्त हुआ फिर क्रमपूर्वक मनुष्योंकी आयुका भी ह्रास होने लगा ॥ ३३ ॥

भवति चात्र ।

युगेयुगेधर्म्मपाद क्रमेणानेनहीयते ।
गुणपादश्चभूतानामेवलोक प्रलीयते ॥ ३४ ॥

यहांपर कहा है कि युगयुगमें धर्मका एक एक पाद इसी क्रमसे क्षीण होता रहा और उसके क्षीण होनेसे पृथिव्यादिके गुणोंमें इसीप्रकार सब लोकोंमें फल मनुष्योंके शरीरमें क्रमसे क्षीणता होती रही ॥ ३४ ॥

संवत्सरशतेपूर्णेयातिसंवत्सर क्षयम् ।
देहिनामायुष कालेयत्रयन्मानमिष्यते ॥ ३५ ॥

सौवर्ष व्यतीत होनेसे एक शताब्दी क्षय होजाती है इसी प्रकार मनुष्योंकी आयु भी सौवर्ष व्यतीत होनेसे क्षीण होजाती है कलियुगमें आयुका सौवर्षपर्यन्त ही प्रमाण है ॥ ३५ ॥

इतिविकाराणांप्रागुत्पत्तिहेतुरुक्तो भवति ॥ ३६ ॥

इस प्रकार रोगोंकी प्रथम उत्पत्तिके कारणको कथन कियागया है ॥ ३६ ॥

एवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच । किन्नुखलुभगवन् ! नियतकालप्रमाणमायुः सर्वंनवेति भगवानुवाच । इहअग्निवेश ! भूतानामायुर्युक्तिमपेक्षते ॥ ३७ ॥

इस प्रकार कथन करते हुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहने लगे कि हे भगवन्! क्या आयुका प्रमाण जीवोंका निश्चयात्मक है या नहीं? अर्थात् सब मनुष्योंकी आयु सौवर्षकी नियत है या नहीं। यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहने लगे कि, हे अग्निवेश! संपूर्ण मनुष्योंकी आयु युक्तिकी अपेक्षा करती है (प्रारब्ध और पुरुषार्थके योगाधीन आयुका प्रमाण है)॥ ३७ ॥

कर्मोंका वर्णन ।

दैवेपुरुषकारेचस्थितंह्यस्यबलाबलम् ।
दैवमात्मकृतंविद्यात्कर्मयत्पौर्वदेहिकम् ॥ ३८ ॥
स्मृतःपुरुषकारस्तुक्रियतेयदिहापरम् ।
बलाबलविशेषोऽस्तितयोरपिचकर्म्मणोः ॥ ३९ ॥

आयुका बलाबल दैव और पुरुषकारके आधीन है। मनुष्यके पूर्वजन्मके किये हुए कर्मको दैव कहते हैं और इस जन्मके किये हुए कर्मको पुरुषकार कहते है। इन दोनों प्रकारके कर्मोंमें भी बलाबलकी विशेषता होती है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

कर्मके भेद ।

दृष्टंहित्रिविधंकर्म्महीनंमध्यममुत्तमम् ।
तयोरुदारयोर्युक्तिर्दीर्घस्यचसुखस्यच ॥ ४० ॥

यह त्रिविध कर्म तीन प्रकारका होता है हीन, मध्यम और उत्तम। इनमें दैव और पुरुषार्थ दोनों उत्तम होनेसे मनुष्यकी सुख और आयुकी नियत प्रमाण होती है अर्थात् जिस मनुष्यका दैव और पुरुषार्थ यह दोनों उत्तम होते हैं वह सुखपूर्वक सौवर्ष जीता रहता है ॥ ४० ॥

नियतस्यायुषोहेतुर्विपरीतस्यचेतरा ।
मध्यमामध्यमस्येष्टाकारणंशृणुचापरम् ॥ ४१ ॥

यह तो हुआ आयुके गौवर्षका प्रमाण। और इससे विपरीत अर्थात् दैव और पुरुषकारके हीनतर होनेसे मनुष्योंकी आयु भी अल्प होती है। दैव और पुरुषकार मध्यम होनेसे आयु भी मध्यम होतीहै। अब दैव और पुरुषकारमें भी विशेषताको श्रवण करो ॥ ४१ ॥

अन्य कारण।

दैवपुरुषकारेणदुर्बलह्युपहन्यते। दैवेनचेतरत्कर्मविशिष्टेनोपहन्यते ॥ ४२ ॥ दृष्ट्वायदेकेमन्यन्तेनियतमानमायुष । कर्म किञ्चित्क्वचित्कालेविपाकेनियतमहत् । किञ्चित्त्वकालनियत प्रत्ययै प्रतिबोध्यते इति ॥ ४३ ॥

यदि दैव दुर्बल हो और मनुष्यका कियाहुआ यह लौकिककर्म (पुरुषकार) बलवान् हो तो पुरुषकार दैवको नष्ट कर देता है। यदि दैव बलवान् हो और पुरुषकार दुर्बल हो तो दैव (प्रारब्धकर्म) पुरुषकारको नष्ट कर देता है ॥ ४२ ॥ यह देखकर कोई कहते हैं कि आयुका प्रमाण विधाताने जिसका जैसा नियतकर दियाहै वही आयुका प्रमाण है। कोई कहते हैं कि आयुका प्रमाण कर्माधीन है। जब किसी महान् कर्मका विपाकका समय आता है वही आयुका नियत प्रमाण है कोई कहते हैं कि आयुका नियत समय नहीं होता क्योंकि कोई किसी अवस्थामें और किसी अवस्थामें मृत्युको प्राप्त होता है। कोई भी नहीं इस प्रकारका महान् कर्मही आयुका कारण प्रतीत होताहै ॥ ४३ ॥

तस्मादुभयदृष्टत्वादेकान्तग्रहणमसाधुनिदर्शनमपिचात्रउदाहरिष्याम । यदिहिनियतकालप्रमाणमायु सर्वस्यात्तदायुष्कामाणानमन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनाद्या क्रियाइष्टयश्चप्रयुज्येरन् ४४

इसलिये इन सब पक्षोंको केवल बिना प्रमाण किसी एकको मानना अन्याय है सो सब प्रमाण निश्चयात्मक आयुके विषयका उदाहरण देकर कथन करते हैं। यदि विधाताका रचाहुआ ही प्रत्येक व्यक्तिकी आयुका प्रमाण नियत है तो सदैव आयुकी कामनावाले मनुष्यको मंत्र, औषधी, मणि, मङ्गल, बलिदान, उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित, उपवास, स्वस्त्ययन, नमस्कार गुरु आचरण आदि कर्मकी कोई आवश्यकता न होती। अर्थात् दीर्घायुकी कामनावाले इन सब शुभकर्मोंको सदा पालनादिकोंको कोई भी नहीं किया करता। क्योंकि आयुका प्रमाण तो नियत ही है। फिर शुभकर्मोंकी क्या आवश्यकता थी ॥ ४४ ॥

इतिविकाराणांप्रागुत्पत्तिहेतुरुक्तो भवति ॥ ३६ ॥

इस प्रकार रोगोंकी प्रथम उत्पत्तिके कारणको कथन कियागया है ॥ ३६ ॥

एववादिनभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच । किन्नुखलुभगवन् ! नियतकालप्रमाणमायु सर्वनवेति भगवानुवाच । इहअग्नि वेश ! भूतानामायुर्युक्तिमपेक्षते ॥ ३७ ॥

इस प्रकार कथन करते हुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहने लगे कि हे भगवन्! क्या आयुका प्रमाण सबोंका निश्चयात्मक है या नहीं? अर्थात् सब मनुष्योंकी आयु सौवर्षकी नियत है या नहीं। यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहने लगे कि, हे अग्नि वेश! संपूर्ण मनुष्योंकी आयु युक्तिकी अपेक्षा करती है (प्रारब्ध और पुरुषार्थके योगाधीन आयुका प्रमाण है)॥ ३७ ॥

कर्मोंका वर्णन ।

दैवेपुरुषकारेचस्थितह्यस्यबलाबलम् ।
दैवमात्मकृतविद्यात्कर्मयत्पौर्वदेहिकम् ॥ ३८ ॥
स्मृत पुरुषकारस्तुक्रियतेयदिहापरम् ।
बलाबलविशेषोऽस्तितयोरपिचकर्म्मणो ॥ ३९ ॥

आयुका बलाबल दैव और पुरुषकारके आधीन है। मनुष्यके पूर्वजन्मके कियेहुए कर्मोंको दैव कहते हैं और इस जन्मके कियेहुए कर्मोंको पुरुषकार कहते हैं। इन दोनों प्रकारके कर्मोंमें भी बलाबलकी विशेषता होतीहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

कर्मके भेद ।

दृष्टंहित्रिविधकर्म्महीनमध्यममुत्तमम् ।
तयोरुदारयोर्युक्तिर्दीर्घस्यसुखस्यच ॥ ४० ॥

यह त्रिविध कर्म हीन मध्यम और उत्तम । तीनोंहि हीन, मध्यम और उत्तम । इनमें दैव और पुरुषार्थ दोनों उत्तम होनेसे मनुष्यके सुख और आयुकी नियम करनेवाला होताहै अर्थात् जिस मनुष्यका दैव और पुरुषकार यह दोनों उत्तम होतेहैं वह सुखपूर्वक सौवर्ष जीता रहता है ॥ ४० ॥

नियतस्यायुषोहेतुर्विपरीतस्यचेतरा ।
मध्यमामध्यमस्येष्टाकारणंशृणुचापरम् ॥ ४१ ॥

ही वृथा जाती और ऋषिलोग तपके प्रभावसे दीर्घायुको प्राप्त न होते। तथा प्रत्यक्षदर्शी महर्षिगण और इन्द्र भूत, भविष्य वर्तमानको जानते हुए आयु-र्वेदके और हितकारक आयुर्वेदका उपदेश न करते। एवम् स्वय भी यज्ञादिक न किया करते ॥ ४७ ॥

अपिचसर्वचक्षुषामेतत्परयदैन्द्रचक्षुरिदञ्चास्माकनेनप्रत्यक्षय-
थापुरुषसहस्राणामुत्थायोत्थायाहवकुर्वतामकुर्वताञ्चातुल्यायुष्ट्व
तथाजातमात्राणामप्रतीकारात्प्रतीकाराच्चअविषाविषप्राशि-
नाञ्चापिअतुल्यायुष्ट्वनचतुल्योयोगक्षेमउदपानघटानाचित्रघटा-
नाञ्चोत्सीदताम् ॥ ४८ ॥

सर्वज्ञ महर्षिया तथा प्रत्यक्षदर्शी इन्द्रका तो कहना ही क्या है परन्तु हम लोग भी प्रत्यक्ष देखते हैं कि सहस्रो मनुष्योंमे जो मनुष्य लडाई युद्ध आदिमे जाते हैं और जो कभी किसी लडाई, दंगेमे शामिल न होते उनकी आयुमे भी तुल्यता नहीं है अर्थात् संग्राम आदिमे जानेवाले शीघ्र मृत्युको प्राप्त होते हैं और जो संग्राममे नहीं जाते वह उस तात्कालिक मृत्युसे बचे रहते हैं। इसीप्रकार जो मनुष्य जन्म लेते ही औषधादि द्वारा रक्षित रहते हैं और जो नहीं रहते उनकी आयुमें भी तुल्यता नहीं होती। जिन मनुष्योंने प्राणनाशक विष खाया है और जिन्होंने नहीं खाया उनकी आयु भी तुल्य नहीं होती। जो जल पीनेके पात्र नित्यप्रति बर्तनमें आते हैं और जो चित्रयुक्त पात्र बिना बर्ते रक्खे रहते हैं उनकी आयुमें तुल्यता नहीं है अर्थात् नित्य बर्ते हुए पात्र शीघ्र घिसकर टूट जाते हैं और जो रक्खे रहते हैं वह चिरकालतक वैसे ही पड़े रहते हैं ॥ ४८ ॥

तस्माद्धितोपचारमूलंजीवितमतोविपर्य्ययान्मृत्यु ॥ अपिच
देशकालात्मगुणविपरीतानांकर्मणामाहारविकाराणाञ्चक्रियो
पयोग ॥ ४९ ॥

इसलिये मनुष्यका जीना हित उपचारके आश्रित है। इससे विपरीत अर्थात् अहित सेवनसे आयु नष्ट होती है। तथा देश, काल और आत्माके विपरीत कर्मोंके करनेसे एवम् आहारविहारके अनुचित उपयोगसे भी मनुष्यकी आयु नष्ट होती है ॥ ४९ ॥

सम्यक्सर्वातियोगसन्धारणमसन्धारणमुदीर्णानांचगतिमता
साहसानाञ्चवर्जनमारोग्यानुवृत्तावुपलभामहेहेतुमुपदिशाम
सम्यक्चापश्यामेति ॥ ५० ॥

नउद्भ्रान्तचण्डचपलगोगजोष्ट्रखरतुरगमहिषादय.पवनादय-श्चदुष्टा.परिहार्य्या स्यु नप्रपातगिरिविषमदुर्गाम्बुवेगाः। तथा नप्रमत्तोन्मत्तोद्भ्रान्तचण्डचपलमोहलोभाकुलमतयोनारयोन प्रवृद्धोऽग्निर्नचविविधविषाश्रया सरीसृपोरगादय । नसाहस नदेशकालचर्य्याननरेन्द्रप्रकोपइत्येवमादयोभावानाभावकरा· स्युः आयुष.सर्वस्यनियतकालप्रमाणत्वात्॥ ४५ ॥

तथा उद्भ्रांत, चंड, चपल दुष्ट गौ, हाथी, ऊंट, गधा, घोड़ा, भैंसा तथा दुष्ट पवन आदि आदिसे बचनेकी कोई आवश्यकता न होती। एवम् पहाड़ आदिसे गिरनेका, विषमस्थानोंमें जानेका, वेगवान नदी आदिमें बहनेका भी कोई भय न होता और न उपरोक्त कारणोंसे आयु नष्ट हुआ करती। इसीप्रकार प्रमत्त, उन्मत्त, उद्भ्रांत, चंड, चपल, मोह तथा लोभसे व्याकुल मतिवाले शत्रुओंसे भी कोई भय न होता। और प्रबल अग्नि, अनेक प्रकारके विषभरे सर्प आदिकोंसे बचनेकी भी कोई आवश्यकता न होती और साहस तथा देश, कालका विचार राजाओंके कोपका भय आदिक मनुष्योंकी आयुमें हानिकारक न होते। यदि सब मनुष्योंकी आयु नियत समयपर निश्चित होती। इसलिये आयुका नियत मानना ठीक नहीं है॥ ४५ ॥

नचानभ्यस्ताकालमरणभयनिवारकाणामकालमरणभयमा-गच्छेत् प्राणिनाम्। व्यर्थोवारम्भकथाप्रयोगबुद्धय स्युर्महर्षी णांरसायनाधिकारी ॥ ४६ ॥

और भी कहते हैं। यदि अकालमृत्युका अभाव है तो मनुष्योंको इसप्रकार अकाल मृत्युका भय भी नहीं होनाचाहियेथा और आयुके बढानेवाले रसायनप्रयोग जो रसायनाधिकारमें महर्षियोंने कथन किये हैं वह सब भी वृथा और इन्हें माननाचाहिये ४६

नापीन्द्रोनियतायुषशत्रुवज्रेणाभिहन्यात्। नाश्विनावार्त्तंभेष जेनोपपादयेताम्। नर्षयोयथेष्टमायुस्तपसाप्राप्नुयुर्नचविदि तवेदितव्यामहर्षयः ससुरेशा सम्यक्पश्येयुरुपदिशेयुराचरे-युर्वा ॥ ४७ ॥

तथा इन्द्र नियत आयुवाले शत्रु मनुष्योंको वज्रसे नहीं मारसकता और न अश्विनीकुमार औषधियों द्वारा किसी रोगीको आरोग्य कर सकते अर्थात् उनकी चिकित्सा

ही वृथा जाती और ऋषिलोग तपके प्रभावसे दीर्घायुको प्राप्त न होते। तथा प्रत्यक्षदर्शी महर्षिगण और इन्द्र भूत, भविष्य वर्तमानको जानते हुए आयुवर्द्धक और हितकारक आयुर्वेदका उपदेश न करते। एवम् स्वयं भी यज्ञादिक न किया करते॥ ४७॥

अपिचसर्वचक्षुपामेतत्परयदेन्द्रचक्षुरिदश्चास्माकतेनप्रत्यक्षय-थापुरुषसहस्राणामुत्थायोत्थायाहवकुर्वतामकुर्वताश्चातुल्यायुष्ट्व तथाजातमात्राणामप्रतीकारात्प्रतीकाराच्चअविपाविषप्राशि-नाचापिअतुल्यायुष्ट्वनचतुल्योयोगक्षेमउदपानघटानाचित्रघटा-नाश्चोत्सीदताम्॥ ४८॥

एवम् महर्षियों तथा प्रत्यक्षदर्शी इन्द्रका तो कहना ही क्या है परन्तु हम लोग भी प्रत्यक्ष देखते हैं कि सहस्रों मनुष्योंमें जो मनुष्य-लडाई युद्ध आदिमें जाते हैं और जो कभी किसी लडाई, दंगेमें शामिल न होते उनकी आयुमें भी तुल्यता नहीं है अर्थात् संग्राम आदिमें जानेवाले शीघ्र मृत्युको प्राप्त होते हैं और जो संग्राममें नहीं जाते वह उस तात्कालिक मृत्युसे बचे रहते हैं। इसीप्रकार जो मनुष्य जन्म लेते ही औषधादि द्वारा रक्षित रहते हैं और जो नहीं रहते उनकी आयुमें भी तुल्यता नहीं होती। जिन मनुष्योंने प्राणनाशक विष खाया है और जिन्होंने नहीं खाया उनकी आयु भी तुल्य नहीं होती। जो जल पीनेके पात्र नित्यप्रति वर्तनेमें आते हैं और जो चित्रयुक्त पात्र बिना वर्ते रक्खे रहते हैं उनकी आयुमें तुल्यता नहीं है अर्थात् नित्य वर्ते हुए पात्र शीघ्र घिसकर टूट जाते हैं और जो रक्खे रहते हैं वह चिरकालतक वैसे ही पडे रहते हैं॥ ४८॥

तस्माद्धितोपचारमूलजीवितमतोविपर्ययान्मृत्यु.॥ अपिच देशकालात्मगुणविपरीतानाकर्मणामाहारविकाराणाश्चाक्रियो पयोग॥ ४९॥

इसलिये मनुष्यका जीवन हित उपचारके आश्रित है। इससे विपरीत अर्थात् अहित सेवनसे आयु नष्ट होता है। तथा देश, काल और सात्म्यके विपरीत कर्मोंके करनेसे एवम् आहारविहारके अनुचित उपयोगसे भी अकालमें आयु नष्ट होता है॥ ४९॥

सम्यक्प्रयोगनातियोगसन्धारणमसन्धारणमुदीर्णानाश्चगतिमता सदसानाश्चवर्जनमारोग्यानुवृत्तौउपलभामहेहेतुमुपदिशाम सम्यक्पश्यामश्चेति॥ ५०॥

ही वृथा जाती और ऋषिलोग तपके प्रभावसे दीर्घायुको प्राप्त न होते। तथा प्रत्यक्षदर्शी महर्षिगण और इन्द्र भूत, भविष्य वर्तमानको जानते हुए आयुर्वर्द्धक और हितकारक आयुर्वेदका उपदेश न करते। एवम् स्वप भी यज्ञादिक न किया करते॥ ४७॥

अपिचसर्वचक्षुपामेतत्परयंदेन्द्रचक्षुरिदश्चास्माकतेनप्रत्यक्षय-थापुरुपसहस्राणामुत्थायोत्थायाहवकुर्वतामकुर्वताश्चातुल्यायुष्ट्व तथाजातमात्राणामप्रतीकारात्प्रतीकाराच्चअविपाविपप्राशि-नाचापिअतुल्यायुष्ट्वनचतुल्योयोगक्षेमउदपानघटानाचित्रघटा-नाश्चोत्सीदताम्॥ ४८॥

सर्वज्ञ महर्षियों तथा प्रत्यक्षदर्शी इन्द्रका तो कहना ही क्या है परन्तु हम लोग भी प्रत्यक्ष देखते हैं कि सहस्रो मनुष्योंमें जो मनुष्य-लडाई युद्ध आदिमें जाते हैं और जो कभी किसी लडाई, दंगेमें शामिल न होते उनकी आयुमें भी तुल्यता नहीं है अर्थात् संग्राम आदिमें जानेवाले शीघ्र मृत्युको प्राप्त होते हैं और जो संग्राममें नहीं जाते वह उस तात्कालिक मृत्युसे बचे रहते हैं। इसीप्रकार जो मनुष्य जन्म लेते ही औषधादि द्वारा रक्षित रहते हैं और जो नहीं रहते उनकी आयुमें भी तुल्यता नहीं होती। जिन मनुष्योंने प्राणनाशक विष खाया है और जिन्होंने नहीं खाया उनकी आयु भी तुल्य नहीं होती। जो जल पीनेके पात्र नित्यप्रति वर्तनेमें आते हैं और जो चित्रयुक्त पात्र बिना वर्ते रक्खे रहते हैं उनकी आयुमें तुल्यता नहीं है अर्थात् नित्य वर्ते हुए पात्र शीघ्र घिसकर टूट जाते हैं और जो रक्खे रहते हैं वह चिरकालतक वैसे ही पड़े रहते हैं॥ ४८॥

तस्माद्धितोपचारमूलजीवितमतोविपर्य्ययान्मृत्यु ॥ अपिच देशकालात्मगुणविपरीतानांकर्मणामाहारविकाराणाश्चक्रियो पयोग ॥ ४९॥

इसलिये मनुष्यका जीवन हित उपचारके आश्रित है। इससे विपरीत अर्थात् अहित सेवनसे आयु नष्ट होती है। तथा देश, काल और सात्म्यके विपरीत कर्मोंके करनेसे एवम् आहारविहारके अनुचित उपयोगसे भी अकाल्म आयु नष्ट होती है ॥ ४९॥

सम्यकूसर्वातियोगसन्धारणमसन्धारणमुदीर्णानाश्चगतिमता साध्यानाश्चवर्जनमारोग्यानुवृत्तौउपलभामहेहेतुमुपदिशाम्य सम्यक्प्रशामयेति ॥ ५०॥

सब प्रकारके अतियोगोंको न करना तथा मलमूत्रादि वेगोंको न रोकना और उत्तम रीतिपर नित्य भ्रमण करना, खोटे कामोंको त्याग देना यह सब मनुष्योंको आरोग्य करनेवाले कारण हैं। यह हमको निश्चय है और ऐसा ही हम देखते भी हैं तथा ऐसा ही कथन करते हैं ॥ ५० ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

अत परमग्निवेशउवाच । एवंसतिअनियतकालप्रमाणायुषांभगवन् ! कथंकालमृत्युरकालमृत्युर्भवतीति ॥ ५१ ॥

इसके उपरान्त अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन् ! यदि आयुका प्रमाण निश्चित नहीं है तो कालमृत्यु और अकालमृत्यु कैसे होती है अर्थात् कालमृत्यु और अकालमृत्युमें क्या भेद है ॥ ५१ ॥

कालमृत्युका वर्णन ।

तमुवाचभगवानात्रेय । श्रूयतामग्निवेश ! यथायानसमायुक्तोऽक्ष.प्रकृत्यैवाक्षगुणैरुपेत स्यात् । सचसर्वगुणोपपन्नोवाह्यमानोयथाकालस्वप्रमाणक्षयादेवावसानंगच्छेत्तथायु शरीरोपगतंबलवत् प्रकृत्यायथावदुपचर्यमाणस्वप्रमाणक्षयादेवावसानगच्छति ॥ ५२ ॥ समृत्यु कालेयथाचसएवाक्षोऽतिभाराधिष्ठितत्वाद्विषमपथादपथादक्षचक्रभङ्गाद्वाह्यवाहकदोषादणिमोक्षादनुपाङ्गात्पर्यसनाच्चान्तराऽवसानमापद्यते ॥ ५३ ॥ तथायुरप्ययथाबलमारम्भादयथाग्न्यभ्यवहरणाद्विषमाभ्यवहरणाद्विषमशरीरन्यासादतिमैथुनादसत्संश्रयादुदीर्णवेगविनिग्रहात् । विधार्यवेगाविधारणाद्भूतविषवाय्वग्न्युपतापादभिघातादाहारप्रतीकारविवर्जनाच्चान्तराऽवसानमापद्यते । स मृत्युरकाले ॥ ५४ ॥

यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! सुनो जैसे रथमें लगा हुआ रथका अक्षभाग (धुरी) अपने स्वाभाविक गुणोंसे युक्त हुआ सर्वगुणसम्पन्न होनेपर भी चलते चलते और होते होते यथासमय अपने प्रमाणके क्षय होनेसे आप नाशको प्राप्त होजाती है ऐसे ही इस शरीरकी आयु भी बलवान् मनुष्यकी प्रकृतिके अनुसार यथायोग्य सेवित होनेपर अपने प्रमाणके क्षय होनेसे नाशको

प्राप्त होजाताहै। यही इसका मृत्युकाल है अर्थात् उसको कालमृत्यु कहतेहै और जैसे उस रथचक्रका अक्ष अत्यन्त भार लादनेसे अथवा ऊचेनीचे विषम रास्तेपर चलानेसे, कुमार्ग लेजानेसे अथवा, चक्रके कोई अग भग होजानेसे या चलानेवाले वाहक आदिके दोषसे तथा उसकी कील आदि नखडजानेसे वह चक्रमण्डल नष्टभ्रष्ट होजाताहै यही उसकी अकालमृत्यु है। उसी प्रकार आयु और बलसे विपरीत शरीरकी चेष्टाओंको करनेसे अग्निके बलसे अधिक भोजन करनेसे, विषम आहारके शरीरकी विषमावस्था होनेसे अधिक मैथुन करनेसे दुष्टोके सगसे आयेहुए मलादि वेगोको रोकनेसे, काम, क्रोधादि वेगोको न रोकनेसे, भूत, विष, अग्नि, उपताप, चोट इनके सयोगसे, आहारके न करनेसे मनुष्य पूर्णआयुको प्राप्त न होकर बीचमेंही मृत्युको प्राप्त होजाताहै। इसीको अकालमृत्यु कहते है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

तथाज्वरादीनप्यातङ्कान्मिथ्योपचरितानकालमृत्यून्पश्याम इति ॥ ५५ ॥

तथा ज्वरादिरोगोंका मिथ्या उपचार करनेसे भी अकालमृत्यु देखनेमे आती है ॥ ५५ ॥

अग्निवेशका प्रश्न।

अथाग्निवेश.पप्रच्छकिंनुखलुभगवन्! ज्वरितेभ्य पानीयमुष्ण भूयिष्ठप्रयच्छन्तिभिषजोननथाशीतम्। अस्तिचशीतसाध्यो धातुर्ज्वरकरइति ॥ ५६ ॥

इसके उपरान्त अग्निवेश कहने लगे कि हे भगवन्! प्रायः ऐसा देखनेमे आता है कि इसमे ज्वरान्वित मनुष्योको प्रायः गरम जल पीनेके लिये दियाजाताहै वैसे शीतल जल नहीं दियाजाता। और शीतक्रिया साध्य धातु भी ज्वरको उत्पन्न करनेवाली होती है इसलिये उन ज्वरोंमे शीतलजल क्यों नहीं दियाजाता ॥ ५६ ॥

ज्वरमे उष्णजलका विधान।

तमुवाचभगवानात्रेयोज्वरितेभ्यकारणमुत्थानदेशकालानभि-समीक्ष्यपाचनार्थंपानीयमुष्णप्रयच्छन्तिभिषज। ज्वरोह्यामाशयसमुत्थ,प्रायोभेषजानिचामाशयसमुत्थानाविकाराणापाचनवमनापतर्पणानिशमनानिभवन्तिपाचनार्थंचपानीयमुष्णम्तस्मादेतज्ज्वरितेभ्य प्रयच्छन्तिभिषजोभूयिष्ठम् ॥ ५७ ॥

जैसे अपतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंकी तर्पणके बिना शान्ति नहीं हो सकती। तर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंकी अपतर्पणके बिना शान्ति नहीं होसकती ॥ ६१ ॥

अपतर्पणके भेद ।

अपतर्पणमपिचत्रिविधलङ्घनलङ्घनपाचनदोषावसेचनञ्चेति । तत्रलङ्घनमल्पदोषाणाम् । लङ्घनेनह्यग्निमारुतवृद्ध्यावातातप-परीतमिवाल्पमुदकमल्पदोषःप्रशोषमापद्यते ॥ ६२ ॥

तर्पणके तीन भेद हैं– लङ्घन और लङ्घन पाचन तथा दोषावसेचन इनमें अल्प-दोषवाले मनुष्यको लङ्घन कराना चाहिये। लङ्घनके करनेसे जठराग्नि और वायुकी वृद्धि होकर जैसे–पवन और धूपके योगसे अल्पजल सूख जाता है उसीप्रकार अल्पदोष शोषणको प्राप्त होजाते हैं। अर्थात् नष्ट होजाते हैं ॥ ६२ ॥

लङ्घनपाचनके गुण ।

लंघनपाचनाभ्यामध्यबल.सूर्य्यसन्तापमारुताभ्यापांशुभस्माव-किरणैरिवचानतिमहूदकमध्यदोषःप्रशोषमापद्यते ॥ ६३ ॥

यदि दोष मध्यबल हो तो उसको लङ्घन पाचन कराना चाहिये। जैसे सूर्यके सन्तापसे और वायुके वेगसे तथा गर्द, मिट्टी आदि डालनेसे मध्यमजल सूखजाता है वैसेही लङ्घन और पाचन द्वारा मध्यम दोष भी शोषण होजाते हैं ॥ ६३ ॥

दोषावसेचनके गुण ।

बहुदोषाणांपुनर्दोषावसेचनमेवकार्य्यम् । नह्यभिन्नेकेदारसेतौ पल्वलप्रसेकोऽस्ति । तद्वद्दोषावसेचनम् । दोषावसेचनन्तुखलु अन्यद्वाभेषजप्राप्तकालमप्यातुरस्यनैवंविधस्यकुर्य्यात् ॥ ६४ ॥

बढ़े हुए दोषोंका दोषावसेचन अर्थात् वमनादि द्वारा विधिपूर्वक दोषोंको निकाल देना चाहिये। जैसे किसी खेतमें बहुतसा जल इकट्ठा हो [illegible] [illegible] डोर (सीमा) तोड़ देनेसे वह जल सब बाहर निकलजाता है। उसी प्रकार दोषा-वसेचन द्वारा दोषोंको निकाल डालना चाहिये। परन्तु यह दोषावसेचन वा अन्य प्रकार औषधियोंका प्रयोग एवम् शीघ्रकारी औषधी [illegible] [illegible] किये हुए रोगिया-को नहीं देना चाहिये ॥ ६४ ॥

असाध्यरोगीके लक्षण ।

अनपवादप्रतीकारस्याधनस्यापरिचारकस्यवैद्यमानिनश्चण्डस्या-सूयकस्यतीवाधर्म्मरुचेरतिक्षीणबलमांसशोणितस्यरोगार्त्तस्य-

तब भगवान् आत्रेयजी अग्निवेशसे कहनेलगे कि ज्वरवाले मनुष्यके शरीर, कारण, देश, काल इन सबको विचारकर आमदोषको पचानेके लिये वैद्यलोग गर्मजल पीनेको देते हैं। इसका कारण यह है कि ज्वर- आमाशयसे उत्पन्न होताहै और प्रायः आमाशयमें प्रगट होनेवाले रोगमात्रको पाचन, वमन, लंघन आदिकोंसे शान्त करते हैं। और आमके पचानेके लिये गर्म जलका देना उत्तम मानाहै। इसलिये वैद्यलोग ज्वरवाले मनुष्यको अधिकतर गर्मजल ही पिलाते हैं॥ ५७॥

उष्णजलके गुण।

तद्धयेपांपीतवातमनुलोमयतिअग्निमुदर्य्यमुदीरयाति। क्षिप्र जरां गच्छतिश्लेष्माणञ्चपरिशोपयतिस्वल्पमपिचपीतंतृष्णा-प्रशमनायोपपद्यतेतथायुक्तमपिचैतन्नात्यर्थोत्सन्नपित्तेज्वरेसदा-हभ्रमप्रलापातिसारेवाप्रदेयमुष्णेनहिदाहभ्रमप्रलापातिसारा-भूयोऽभिवर्द्धन्तेशीतेनोपशाम्यन्तीति॥ ५८॥

ज्वरादित मनुष्योंको गर्मजल पिलानेसे उनके शरीरमें वह जल- वायुको अनुलोमन, करताहै अग्निको दीपन, शीघ्र पाचन होजाताहै, कफको परिशोषण करताहै तथा थोडाही पीनेसे तृषा शान्त होजातीहै। परन्तु यह गर्मजल- इसप्रकार युक्ति सम्पन्न और गुणकारी होनेपर भी अत्यन्त बढेहुए पित्तके कोपवालेको तथा दाह, भ्रम और प्रलाप एवम् अतिसारयुक्त ज्वरोंमें देना उचित नहीं। क्योंकि ऐसे ज्वरोंमें गरमजल देनेसे-दाह, भ्रम, प्रलाप और अतिसार अधिक बढजातेहैं। और शीतल क्रिया करनेसे तथा शीतलजल देनेसे शान्तिको प्राप्त होते हैं॥ ५८॥

भवतिचात्र।

शीतेनोष्णकृतान्रोगान्शमयन्तिभिषग्विदः।
येतुशीतकृतारोगास्तेषांचोष्णभिषग्जितम्॥ ५९॥

यहांपर कहाहै कि चिकित्साके जाननेवाले वैद्य- गर्मीसे रोगोंको शीतलक्रिया द्वारा और शीतसे उत्पन्न हुए रोगोंको उष्ण क्रिया द्वारा शान्त करते हैं॥ ५९॥

एवमितरेषामपिव्याधीनानिदानविपरीतमौषधकार्य्यम्॥ ६०॥

इसीप्रकार अन्य व्याधियोंमें भी कारणसे विपरीत औषधादि द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये॥ ६०॥

तथातर्पणनिमित्तानामपिव्याधीनानान्तरेणपूरणमग्निशान्ति-स्तथापूरणनिमित्तानानान्तरेणापतर्पणम्॥ ६१॥

जैसे अपतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंकी तर्पणके विना शान्ति नहीं हो सकती। तर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंकी अपतर्पणके विना शान्ति नहीं होसकती ॥ ६१ ॥

अपतर्पणके भेद।

अपतर्पणमपिचत्रिविधलंघनलंघनपाचनदोषावसेचनञ्चेति। तत्रलंघनमल्पदोषाणाम्। लंघनेनह्यग्निमारुतवृद्ध्यावातातपपरीतमिवाल्पमुदकमल्पदोषं प्रशोषमापद्यते ॥ ६२ ॥

अपतर्पणके तीन भेद हैं– लंघन और लंघन पाचन तथा दोषावसेचन इनमें अल्पदोषवाले मनुष्यको लंघन कराना चाहिये। लंघनके करनेसे जठराग्नि और वायुकी वृद्धि होकर जैसे-पवन और धूपके योगसे अल्पजल सूख जाता है उसीप्रकार अल्पदोष शोषणको प्राप्त होजाते हैं। अर्थात् नष्ट होजाते हैं ॥ ६२ ॥

लंघनपाचनके गुण।

लंघनपाचनाभ्यामध्यबलं सूर्य्यसन्तापमारुताभ्यांपांशुभस्माव-किरणैरिवचानतिबहूदकमध्यदोषं प्रशोषमापद्यते ॥ ६३ ॥

यदि दोष मध्यबल हो तो उसको लंघन पाचन कराना चाहिये। जैसे सूर्यके संतापसे और वायुके वेगसे तथा गर्दा, मिट्टी आदि डालनेसे मध्यमजल सूखजाता है वैसेही लंघन और पाचन द्वारा मध्यम दोष भी शोषण होजाते हैं ॥ ६३ ॥

दोषावसेचनके गुण।

बहुदोषाणांपुनर्दोषावसेचनमेवकार्य्यम्। नह्यभिन्नेकेदारसेतौ पल्वलप्रसेकोऽस्ति। तद्वद्दोषावसेचनम्। दोषावसेचनन्तुखलु अन्यद्वाभेषजप्राप्तकालमप्यातुरस्यनैवंविधस्यकुर्य्यात् ॥ ६४ ॥

बढे हुए दोषोंमें दोषावसेचन अर्थात् वमनादि द्वारा विधिपूर्वक दोषोंको निकाल देना चाहिये। जैसे किसी खेतमें बहुतसा जल इकट्ठा हो पर तालाबकी मेंड (सीमा) तोड देनेसे वह जल सब बाहर निकलजाता है। इसी प्रकार दोषावसेचन द्वारा दोषोंको निकाल डालना चाहिये। परन्तु यह दोषावसेचन वा अन्य उत्कट औषधियोंका प्रयोग परम शीघ्रताकी ओषधी आगे कथन किये हुए रोगियोंको नहीं करना चाहिये ॥ ६४ ॥

अयोग्यरोगीके लक्षण।

अनपवादप्रतीकारस्याधनस्यापरिचारकस्यवैद्यमानिनश्चण्डस्या सूयकस्यतीव्राधर्मारुचेरतिक्षीणबलमांसशोणितस्यासाध्यरोगो

तब भगवान् आत्रेयजी अग्निवेशसे कहनेलगे कि ज्वरवाले मनुष्यके शरीर, कारण, देश, काल इन सबको विचारकर आमदोषको पचानेके लिये वैद्यलोग गर्मजल पीनेको देते है । इसका कारण यह है कि ज्वर- आमाशयसे उत्पन्न होताहै और प्रायः आमाशयसे प्रगट होनेवाले रोगमात्रको पाचन, वमन, लघन आदिकोंसे शान्त करते है । और आमके पचानेके लिये गर्म जलका देना उत्तम मानाहै । इसलिये वैद्यलोग ज्वरवाले मनुष्यको अधिकतर गर्मजल ही पिलाते हैं ॥ ५७ ॥

उष्णजलके गुण ।

तच्चेपापीतवातमनुलोमयतिअग्निमुदर्य्यमुदीरयति । क्षिप्र जरा गच्छतिश्लेष्माणञ्चपरिशोषयतिस्वल्पमपिचपीतंतृष्णा-प्रशमनायोपपद्यतेतथायुक्तमपिचैतन्नात्यर्थोत्सन्नपित्तेज्वरेसदा-हभ्रमप्रलापातिसारेवाप्रदेयमुष्णेनहिदाहभ्रमप्रलापातिसारा-भूयोऽभिवर्द्धन्तेशीतेनोपशाम्यन्तीति ॥ ५८ ॥

ज्वरादित मनुष्याको गर्मजल पिलानेसे उनके शरीरमें वह जल- वायुको अनु लोमन, करताहै अग्निको दीपन, शीघ्र पाचन होजाताहै, कफको परिशोषण करताहै तथा थोडाही पीनेसे तृषा शान्त होजातीहै । परन्तु यह गर्मजल- इसप्रकार युक्ति सम्पन्न और गुणकारी होनेपर भी अत्यन्त बढेहुए पित्तके कोपवालेको तथा दाह, भ्रम और प्रलाप एवम् अतिसारयुक्त ज्वरोंम देना उचित नहीं । क्योंकि ऐसे ज्वरोंमे गरमजल देनेसे-दाह, भ्रम, प्रलाप और अतिसार अधिक बढजातेहैं । और शीतल क्रिया करनेसे तथा शीतलजल देनेसे शान्तिको प्राप्त होते है ॥ ५८ ॥

भवतिचात्र ।

शीतेनोष्णकृतान्रोगान्शमयन्तिभिषग्विद । येतुशीतकृतारोगास्तेषाञ्चोष्णभिषग्जिनम् ॥ ५९ ॥

यहापर कहाहै कि चिकित्साके जाननेवाले वैद्य- गर्मीके रोगोंको शीतलक्रिया द्वारा और शीतसे उत्पन्न हुए रोगोंको उष्ण क्रिया द्वारा शान्त करते हैं ॥ ५९ ॥

एवमितरेषामपिव्याधीनानिदानविपरीतमौषधकार्य्यम् ॥ ६० ॥

इसीप्रकार अन्य व्याधियोंमें भी कारणसे विपरीत औषधोंके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६० ॥

तथातर्पणनिमित्तानामपिव्याधीनानान्तरेणपूरणमस्तिशान्ति-स्तथापूरणनिमित्तानानान्तरेणापतर्पणम् ॥ ६१ ॥

जैसे अपतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंकी तर्पणके विना शान्ति नहीं हो सकती । तर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंकी अपतर्पणके विना शान्ति नहीं होसकती ॥ ६१ ॥

अपतर्पणके भेद ।

अपतर्पणमपिचत्रिविधलघनलघनपाचनदोषावसेचनञ्चेति । तत्रलघनमल्पदोषाणाम् । लघनेनह्यग्निमारुतवृद्ध्यावातातपपरीतमिवाल्पमुदकमल्पदोष प्रशोषमापद्यते ॥ ६२ ॥

तर्पणके तीन भेद है– लघन और लघन पाचन तथा दोषावसेचन इनमें अल्पदोषवाले मनुष्यको लघन कराना चाहिये । लघनके करनेसे जठराग्नि और वायुकी वृद्धि होकर जैसे–पवन और धूपके योगसे अल्पजल सूख जाता है उसीप्रकार अल्पदोष शोषणको प्राप्त होजाते है । अर्थात् नष्ट होजाते है ॥ ६२ ॥

लघनपाचनके गुण ।

लघनपाचनाभ्यामध्यवल सूर्य्यसन्तापमारुताभ्यापांशुभस्मावकिरणैरिवचानतिवहूदकमध्यदोष प्रशोपमापद्यते ॥ ६३ ॥

यदि दोष मध्यबल हो तो उसको लघन पाचन कराना चाहिये । जैसे सूर्यके संतापसे और वायुके वेगसे तथा गर्दा, मिट्टी आदि डालनेसे मध्यमजल सूखजाता है वैसेही लघन और पाचन द्वारा मध्यम दोष भी शोषण होजाते है ॥ ६३ ॥

दोषावसेचनके गुण ।

वहुदोषाणापुनर्दोषावसेचनमेवकार्य्यम् । नह्यभिन्नेकेदारसेतौ पल्वलप्रसेकोऽस्ति । तद्वद्दोषावसेचनम् । दोषावसेचनन्तुखलु अन्यद्वाभेपजप्राप्तकालमप्यातुरस्यनैवविधस्यकुर्य्यात् ॥ ६४ ॥

बढे हुए दोषोंमें दोषावसेचन अर्थात् वमनादि द्वारा विधिपूर्वक दोषोंको निकाल देना चाहिये । जैसे किसी खेतमें बहुतसा जल इकट्ठा हो एक तरफसे खेतकी डोल (सीमा) तोड़ देनेसे वह जल सब बाहर निकलजाता है । उसी प्रकार दोषावसेचन द्वारा दोषोंको निकाल डालना चाहिये । परन्तु यह दोषावसेचन वा अन्य उत्कट औषधियोंका प्रयोग परम शीघ्रकारी औषधी आगे कथन किये हुए रोगियों को नहीं देना चाहिये ॥ ६४ ॥

अयोग्यरोगीके लक्षण ।

अनपवादप्रतीकारस्याधनस्यापरिचारस्यस्वैवद्यमानिनश्चण्डस्या सूयकस्यतीव्राधर्म्मरुचेरतिक्षीणवलमांसशोणितस्यअसाध्यरो-

गोपहतस्यमुमूर्षुलिंगान्वितस्यचेति । एवंविधंह्यातुरमुपचरन्भिषक्पापीयसाअयशसायोगंगच्छतीति ॥ ६५ ॥

जैसे–जिस रोगीको अपने अपयशका भय न हो, जो निर्धन हो, जिसकी कोइ सेवा करनेवाला न हो, जो अपने आपको वैद्य मान रहाहो जो कठोर स्वभाववाला हो, जो निंदक हो, जो अत्यत पापी हो, जो अतिक्षीण होगयाहो जो स्वयम् मरनेकी इच्छा रखता हो । इतने प्रकारके रोगियोंकी चिकित्सा करनेसे वैद्य पाप और अपयश अर्थात् बदनामीको प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥

तत्र श्लोका ।

अल्पोदकद्रुमोयस्तुप्रवात प्रचुरातप ।
ज्ञेय सजाङ्गलोदेश स्वल्परोगतमोऽपिच ॥ ६६ ॥

यहापर श्लोक है–जिन देशोंमे जल और वृक्ष थोडे होतेहै, वायु बडे वेगसे चलती है, धूप अधिक पडती है उस देशको जागल देश कहते है। ऐसे देशोंमें रोग बहुत कम होतेहै ॥ ६६ ॥

प्रचुरोदकवृक्षोयोनिवातोदुर्लभातप ।
अनूपोऽवहुदोपश्चसम साधारणोमतः ॥ ६७ ॥

जिस देशम जल और वृक्ष बहुत होते है, वायु और धूप बहुत कम लगती है उस देशको आनूप देश कहते हैं । इस देशम रोग अधिक होतेहैं । जिस देशमें यह दोनों बातें सामान्य हो उसको साधारण देश कहतेहै ॥ ६७ ॥

तदात्वेचानुवन्धेवायस्यस्यादशुभफलम् ।
कर्म्मणस्तन्नकर्त्तव्यमेतद्बुद्धिमतामतम् ॥ ६८ ॥

जिस कर्मके करनेमे उसी समय अथवा कुछ काल पाकर अशुभफल हो वह कर्म कभी भी न करना चाहिये । यह बुद्धिमानोंका मतव्य है ॥ ६८ ॥

पूर्वरूपाणिसामान्याहेतव स्वस्वलक्षणा । देशोद्ध्वंसस्यभैषज्यहेतूनामूलमेवच ॥ ६९ ॥ प्राग्विकारसमुत्पत्तिरायुपश्चक्षयक्रम । मरणप्रतिभूतानाकालाकालविनिश्चय ॥ ७० ॥ यथा चाकालमरणयथायुक्तश्चभेपजम्।सिद्धियात्यौषधयेपानकुर्य्याद्येनहेतुना ॥ ७१ ॥ तदग्निवेशायात्रेयोनिखिलसर्वमुक्तवान् । देशोद्ध्वंसनिमित्तीयेविमानेमुनिसत्तम ॥ ७२ ॥

इति च०स० जनपदोद्ध्वंसनीयविमान समाप्तम् ॥ ३ ॥

इस जनपदोद्ध्वंसनीय विमान नामक अध्यायमें जनपद उध्वंसनके पूर्वरूप, सामान्य हेतु, और उन सब भावोंके अलग २ लक्षण देशोध्वंसकी चिकित्सा, उसके कारण तथा पूर्वक्रमसे विकारकी उत्पत्ति, आयुके क्षय होनेका क्रम तथा मनुष्योंकी काल और अकाल मृत्युका निश्चय, जैसे अकाल मरण होताहै जैसे उनकी औषधी करना चाहिये, जिनको औषधी फलदायक होतीहै, जिनको जिन हेतुआस औषधी लाभदायक नहीं होती यह सब भगवान पुनर्वसु आत्रेयजीने अग्निवेशसे प्रति कथन किया है ॥ ६० ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० विमानस्थान ५० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां जनोपदोद्ध्वंसनीय विमान तृतीयोध्याय ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्याय ।

अथातस्त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीयविमानंव्याख्यास्यामइति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम त्रिविध रोग विशेष विज्ञानीय विमान नामक अध्यायका कथन करतेहैं इस प्रकार भगवान आत्रेयजी कथन करने लगे ।

रोगविशेषज्ञानके भेद ।

त्रिविधंखलुरोगविशेषज्ञानंभवति ।
तद्यथा—आप्तोपदेशः, प्रत्यक्षमनुमानञ्चेति ॥ १ ॥

आप्तोपदेश प्रत्यक्ष अनुमान इन तीन प्रमाणों द्वारा ही सम्पूर्ण रोगोंका [illegible] ज्ञान होताहै ॥ १ ॥

उपदेशका लक्षण ।

तत्राप्तोपदेशोनामआप्तवचनम् । आप्ताह्यवितर्कस्मृतिविभागविदोनिष्प्रीत्युपतापदर्शिनश्च । तेषामेवंगुणयोगाद्यद्वचनं तत्प्रमाणम् । अप्रमाणंपुनर्मत्तोन्मत्तमूर्खरक्तदुष्टान्यवचनमिति ॥ २ ॥

इनमें आप्तोपदेश-आप्त पुरुषके वचनको कहतेहैं । जिन महर्षियोंने [illegible] विषयोंमें तर्करहित [illegible] [illegible] है । [illegible] [illegible], भविष्यत् वर्तमानके

गोपहतस्यमुमूर्षुलिंगान्वितस्यचेति । एवंविधंह्यातुरमुपचरन्भिषक्पापीयसाअयशसायोगगच्छतीति ॥ ६५ ॥

जैसे-जिस रोगीको अपने अपयशका भय न हो, जो निर्धन हो, जिसकी कोई सेवा करनेवाला न हो, जो अपने आपको वैद्य मान रहाहो जो कठोर स्वभाववाला हो, जो निंदक हो, जो अत्यंत पापी हो, जो अतिक्षीण होगयाहो जो स्वयम् मरनेकी इच्छा रखता हो । इतने प्रकारके रोगियोंकी चिकित्सा करनेसे वैद्य पाप और अपयश अर्थात् बदनामीको प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥

तत्र श्लोकाः ।

अल्पोदकद्रुमोयस्तुप्रवातःप्रचुरातपः ।
ज्ञेयः सजाङ्गलोदेशः स्वल्परोगतमोऽपिच ॥ ६६ ॥

यहांपर श्लोक है-जिन देशोंमें जल और वृक्ष थोडे होतेहैं, वायु बडे वेगसे चलती है, धूप अधिक पडती है उस देशको जांगल देश कहते हैं । ऐसे देशोंमें रोग बहुत कम होतेहैं ॥ ६६ ॥

प्रचुरोदकवृक्षोयोनिवातोदुर्लभातपः ।
अनूपोऽबहुदोषश्चसमः साधारणोमतः ॥ ६७ ॥

जिस देशमें जल और वृक्ष बहुत होते हैं, वायु और धूप बहुत कम लगती है उस देशको आनूप देश कहते हैं । इस देशमें रोग अधिक होतेहैं । जिस देशमें यह दोनों बात सामान्य हों उसको साधारण देश कहतेहैं ॥ ६७ ॥

तदात्वेचानुबन्धोवायस्यस्यादशुभफलम् ।
कर्म्मणस्तन्नकर्त्तव्यमेतद्बुद्धिमतांमतम् ॥ ६८ ॥

जिस कर्मके करनेमें उसी समय अयश। कुछ काल पाकर अशुभफल हो वह कर्म कभी भी न करना चाहिये । यह बुद्धिमानोंका मतव्य है ॥ ६८ ॥

पूर्वरूपाणिसामान्याहेतवःस्वस्वलक्षणाः । देशोद्ध्वंसस्यभेषज्यहेतूनामूलमेवच ॥ ६९ ॥ प्राग्विकारसमुत्पत्तिरायुषश्चक्षयक्रमः । मरणप्रनिभूतानांकालाकालविनिश्चयः ॥ ७० ॥ यथाचाकालमरणंयथायुक्तञ्चभेषजम्।सिद्धियात्योपधंयेपानकुर्याद्येनहेतुना ॥ ७१ ॥ तदग्निवेशायात्रेयोनिखिलमवेमुक्तवान् । देशोद्ध्वंसनिमित्तीयेविमानेमुनिसत्तमः ॥ ७२ ॥

इति च०सं० जनपदोद्ध्वंसनीयविमानं समाप्तम् ॥ ३ ॥

इस जनपदोद्ध्वसनीय विमान नामक अध्यायमें जनपद् उध्वसनके पूर्वरूप, सामान्य हेतु, और उन सब भावोंके अलग २ लक्षण देशोध्वसकी चिकित्सा, उसके कारण तथा पूर्वक्रमसे विकारोंकी उत्पत्ति, आयुके क्षय होनेका क्रम तथा मनुष्योंकी काल और अकाल मृत्युका निश्चय, जैसे अकाल मरण होताहै जैसे उनकी औषधी करना चाहिये, जिनको औषधी फलदायक होतीहै, जिनको जिन हेतुओंसे औषधी लाभ दायक नहीं होती यह सब भगवान पुनर्वसु आत्रेयजीने अग्निवेशके प्रति कथन किया है ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० विमानस्थाने प० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां जनोपदोद्ध्वसनीय विमान तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्याय. ।

अथातस्त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीयविमानंव्याख्यास्यामइति ह्स्माहभगवानात्रेय ॥

अब हम त्रिविध रोग विशेष विज्ञानीय विमान नामक अध्यायका कथन करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

रोगविशेषज्ञानके भेद ।

त्रिविधखलुरोगविशेषज्ञानभवति ।
तद्यथा—आप्तोपदेश , प्रत्यक्षमनुमानश्चेति ॥ १ ॥

आप्तोपदेश प्रत्यक्ष अनुमान इन तीन प्रमाणों द्वारा ही सपूर्ण रोगोंका विशेष ज्ञान होता है ॥ १ ॥

उपदेशका लक्षण ।

तत्राप्तोपदेशोनामआप्तवचनम् । आप्ताह्यवितर्कस्मृतिविभाग-विदोनिष्प्रीत्युपतापदर्शिनश्च । तेपामेवगुणयोगाद्यद्वचनतत्प्र माणम् । अप्रमाणपुनर्मत्तोन्मत्तमूर्खरक्तदुष्टान्त करणवच-नमिति ॥ २ ॥

इनमें आप्तोपदेश—आप्त पुरुषोंके वचनको कहतेहैं। जिन महर्षियोंको सपूर्ण विषयोंमे तर्करहित यथार्थ निश्चयात्मकज्ञान हो। जो भूत, भविष्यत्, वर्तमानके

गोपहतस्यमुमूर्पुलिंगान्वितस्यचेति । एवंविधमातुरमुपचर-
न्भिषक्पापीयसाअयशसायोगगच्छतीति ॥ ६५ ॥

जैसे-जिस रोगीको अपने अपयशका भय न हो, जो निर्धन हो, जिसकी कोइ सेवा करनेवाला न हो, जो अपने आपको वैद्य मान रहाहो जो कठोर स्वभाववाला हो, जो निंदक हो, जो अत्यंत पापी हो, जो अतिक्षीण होगयाहो जो स्वयम् मरनेकी इच्छा रखता हो । इतने प्रकारके रोगियोंकी चिकित्सा करनेसे वैद्य पाप और अपयश अर्थात् बदनामीको प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥

तत्र श्लोकाः ।

अल्पोदकद्रुमोयस्तुप्रवातः प्रचुरातपः ।
ज्ञेयः सजाङ्गलोदेशः स्वल्परोगतमोऽपिच ॥ ६६ ॥

यहांपर श्लोक हैं-जिस देशमें जल और वृक्ष थोडे होतेहैं, वायु बडे वेगसे चलती है, धूप अधिक पडती है उस देशको जांगल देश कहते हैं । ऐसे देशोंमें रोग बहुत कम होतेहैं ॥ ६६ ॥

प्रचुरोदकवृक्षोयोनिवातोदुर्लभातपः ।
अनूपोऽबहुदोषश्चसमः साधारणोमतः ॥ ६७ ॥

जिस देशमें जल और वृक्ष बहुत होते हैं, वायु और धूप बहुत कम लगती है उस देशको आनूप देश कहते हैं । इस देशमें रोग अधिक होतेहैं । जिस देशमें यह तीनों बातें सामान्य हों उसको साधारण देश कहतेहैं ॥ ६७ ॥

तदात्वेचानुबन्धोवायस्यस्यादशुभफलम् ।
कर्म्मणस्तन्नकर्त्तव्यमेतद्बुद्धिमतामतम् ॥ ६८ ॥

जिस कर्मके करनेसे उसी समय अथवा कुछ काल पाकर अशुभफल हो वह कर्म कभी भी न करना चाहिये । यह बुद्धिमानोंका मतव्य है ॥ ६८ ॥

पूर्वरूपाणिसामान्याहेतवःस्वस्वलक्षणाः । देशोद्ध्वंसस्यभैष-
ज्यहेतूनामूलमेवच ॥ ६९ ॥ प्राग्विकारसमुत्पत्तिरायुषश्चक्षय-
क्रमः । मरणप्रतिभूतानाकालाकालविनिश्चयः ॥ ७० ॥ यथा
चाकालमरणयथायुक्तञ्चभेपजम् ।सिद्धियात्यौपधयेषांनकुर्य्या-
द्येनहेतुना ॥ ७१ ॥ तदग्निवेशायात्रेयोनिखिलसर्वमुक्तवान् ।
देशोद्ध्वंसनिमित्तीयेविमानेमुनिसत्तमः ॥ ७२ ॥
इति च०सं० जनपदोद्ध्वंसनीयविमानं समाप्तम् ॥ ३ ॥

इस जनपदोद्ध्वंसनीय विमान नामक अध्यायमें जनपद उध्वंसनके पूर्वरूप, सामान्य हेतु, और उन सब भावोंके अलग २ लक्षण देशोध्वंसकी चिकित्सा, उसके कारण तथा पूर्वक्रमसे विकारोंकी उत्पत्ति, आयुके क्षय होनेका क्रम तथा मनुष्योंकी काल और अकाल मृत्युका निश्चय, जैसे अकाल मरण होताहै जैसे उनकी औषधी करना चाहिये, जिनको औषधी फलदायक होतीहै, जिनको जिन हेतुआसे औषधी लाभदायक नहीं होती यह सब भगवान पुनर्वसु आत्रेयजीने अग्निवेशके प्रति कथन किया है ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० विमानस्थाने प० रामप्रसादवैद्य० भाषाटीकायां जनोपदोद्ध्वंसनीय विमान तृतीयोध्याय ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्याय ।

अथातस्त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीयविमानव्यारयास्यामइति हस्माहभगवानात्रेय ॥

अब हम त्रिविध रोग विशेष विज्ञानीय विमान नामक अध्यायका कथन करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

रोगविशेषज्ञानके भेद ।

त्रिविधखलुरोगविशेषज्ञानभवति।
तद्यथा—आप्तोपदेशः, प्रत्यक्षमनुमानश्चेति ॥ १ ॥

आप्तोपदेश प्रत्यक्ष अनुमान इन तीन प्रमाणों द्वारा ही सपूर्ण रोगोंका विशेष ज्ञान होता है ॥ १ ॥

उपदेशका लक्षण ।

तत्राप्तोपदेशोनामआप्तवचनम् । आप्ताह्यवितर्कस्मृतिविभागविदोनिष्प्रीत्युपतापदर्शिनश्च । तेषामेवगुणयोगाद्यद्वचनतत्प्रमाणम् । अप्रमाणपुनर्मत्तोन्मत्तमूर्खरक्तदुष्टान्त करणवचनमिति ॥ २ ॥

इनमें आप्तोपदेश—आप्त पुरुषोंके वचनको कहतेहैं । जिन महर्षियोंको सपूर्ण विषयोंमें तर्करहित यथार्थ निश्चयात्मकज्ञान हो । जो भूत, भविष्यत्, वर्तमानके

ज्ञानको जाननेवाले है । जिनकी स्मरणशक्ति कभी नष्ट नहीं होती । जिनको किसीमें राग, द्वेष नहीं है तथा पक्षपात रहित हैं । उन ऋषियोंको आप्त कहते हैं । इस प्रकारके गुणवाले ऋषियोंके वचनको आप्तोपदेश कहते हैं और वह आप्तोपदेश वितर्करहित प्रमाण होता है जो मनुष्य-मत्त, उन्मत्त, मूर्ख और पक्षपाती हैं तथा जिनका अन्तःकरण दुष्ट है उनका वचन अप्रमाणिक होताहै ॥ २ ॥

प्रत्यक्ष और अनुमान ।

प्रत्यक्षन्तुखलुतद्यत्स्वयमिन्द्रियैर्मनसाचोपलभ्यते ।
अनुमानखलुतर्कोयुक्त्यपेक्षः ॥ ३ ॥

इन्द्रिय और मनके संयोगसे जो अस्मदादिकोंका यह घट है, यह पट है, यह स्थाणु है, यह पुरुष है इस प्रकारका जो निश्चयात्मक ज्ञान होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं । तर्क और युक्तिसे जो ज्ञान होता है उसको अनुमान कहतेहैं ॥ ३ ॥

त्रिविधेनखल्वनेनज्ञानसमुदयेनपूर्वंपरीक्ष्यरोगसर्वथासर्वमेवो-
त्तरकालमध्यवसानमदोषभवति ॥ ४ ॥

इन तीन प्रकारके प्रमाणों द्वारा अर्थात् ज्ञान समुदाय द्वारा रोगोंकी परीक्षा करके तदनन्तर उनकी चिकित्सा करनी चाहिये । इस प्रकार करनेसे प्रथम, मध्यम और उत्तरकाल पर्यन्त सब प्रकार वैद्य निर्दोषी रहताहै ॥ ४ ॥

नह्येकज्ञानावयवेनकृत्स्नेज्ञेयेज्ञानमुत्पद्यते । त्रिविधेत्वस्मिन्ज्ञा-
नसमुदायेपूर्वमाप्तोपदेशाज्ज्ञानततःप्रत्यक्षानुमानाभ्यापरीक्षो-
पपद्यते । किंह्यनुपदिष्टपूर्वंप्रत्यक्षानुमानाभ्यापरीक्ष्यमाणोवि-
द्यात् । तस्माद्द्विविधापरीक्षाज्ञानवताप्रत्यक्षमनुमानञ्चेति ।
त्रिविधावासहोपदेशेन । तत्रेदमुपदिशन्तिबुद्धिमन्तोरोगमेके-
कमेवप्रकोपमेवयोनिमेवात्मानमेवमधिष्ठानमेववेदनमेवसंस्था-
नमेवशब्दस्पर्शरूपरसगन्धमेवमुपद्रवमेववृद्धिस्थानक्षयसम-
न्वितमेवमुदर्कमेवनामानमेवयोगविद्यात् । तस्मिन्निदंप्रतीका-
रप्रवृत्तिरथवानिवृत्तिरित्युपदेशाज्ज्ञायते ॥ ५ ॥

उपरोक्त तीनों प्रमाणोंमसे एकही प्रमाण द्वारा संपूर्ण रोगोंका ज्ञान नहीं हो सकता इसलिये इन तीन प्रकारके ज्ञानसमुदायमें व्याधिको प्रथम आप्तोपदेश द्वारा जानना चाहिये । उसके अनन्तर प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा परीक्षा होतीहै । तात्पर्य यह हुआ कि, वैद्यको परीक्षा क्रमसे पहिले आप्तोपदेश द्वारा व्याधि तथा

द्रव्योंके प्रभावको जानकर पीछे प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा निश्चय करना चाहिये। यदि मानुषी बुद्धिके कारण प्रथम ही प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा द्रव्योंकी तथा व्याधियोंकी परीक्षा कीजायगी तो अनेक मनुष्योंके प्राणोंका घात होना सम्भव है जैसे कोई तत्काल प्राणहारक विषोंके लेकर उससे प्रत्यक्षानुमानकी सिद्धि करना चाहे तो जिस प्राणीपर उसकी परीक्षा कीजायगी उसकी हिंसाका भार वैद्यपरही होगा। इसलिये वैद्यक शास्त्रमें प्रथम आप्तोपदेश द्वारा ज्ञेय विषयको जानकर तदनन्तर प्रत्यक्ष और अनुमानसे जानलेना चाहिये। अब शंका करते हैं कि जिस विषयको प्रथम आप्तोपदेश द्वारा नहीं जाना है उसको प्रत्यक्ष और अनुमानसे भी जानसकतेहैं कि नहीं सो कहतेहैं कि जिस पदार्थके ज्ञानके लिये प्रथम आप्तोपदेश नहीं हुआहै उसको प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा जानना चाहिये। इसलिये बुद्धिमान मनुष्योंने प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रकारकी परीक्षा मानीहै। उन दोनोंमें आप्तोपदेश मिलादेनेसे परीक्षा तीन प्रकारकी होतीहै परन्तु वैद्यक शास्त्रमें प्रत्यक्ष और अनुमान, आप्तोपदेशका आश्रय लेकर ही प्रवृत्त होताहै। सो बुद्धिमान् यहां इसप्रकार उपदेश करतेहैं कि प्रत्येक रोग इस प्रकार होताहै उनके यह २ लक्षण होते हैं। दोषोंका प्रकोपन इस प्रकार होताहै। रोगोंके कारण इस प्रकार होतेहैं। वातादिकोंके तथा ज्वरादिकोंके स्वरूप इसप्रकारके होते हैं। अधिष्ठान इसको कहते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इस प्रकारके होते हैं। उपद्रव इनको कहतेहैं। दोषोंकी तथा रोगोंकी वृद्धि इसप्रकार होतीहै। दोष साम्यावस्थामें इसप्रकार रहतेहैं। धातु आदि क्षीण इसप्रकार होते हैं। रोगोंका उत्तरकाल इस प्रकार जानना रोगोंका नाम इस प्रकार जानाजाताहै। रोगके जाननेका यह प्रकार है ऐसे स्थानमें चिकित्सा करनी चाहिये अथवा नहीं करनी इत्यादि सब ज्ञान आप्तोपदेशसेही होतेहैं। इसलिये वैद्यकमें प्रत्यक्ष और अनुमान आप्तोपदेशको पूर्व लिये विना चलही नहीं सकता ॥ ५ ॥

प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण।

प्रत्यक्षतस्तुखलुरोगतत्त्वबुभुत्सुःसर्वैरिन्द्रियैः सर्वानिन्द्रियार्थानातुरशरीरगतान्परीक्षेतान्यत्ररसज्ञानात्। तद्यथा,अन्त्रकूजनं सन्धिस्फोटनमङ्गुलीपर्वणाञ्चस्वरविशेषाश्चयेचान्येऽपिकेचिच्छरीरोपगता शब्दा स्युस्तान्श्रोत्रेणपरीक्षेत। वर्णसंस्थानप्रमाणच्छायाशरीरप्रकृतिविकारौचक्षुर्वैषयिकाणिचान्यानिकानिचतानिचक्षुषापरीक्षेत ॥ ६ ॥

प्रत्यक्ष द्वारा रोगके तत्त्वको जाननेकी इच्छावाला वैद्य रसज्ञानके विना सब इन्द्रियों द्वारा रोगीके शरीरगत इन्द्रियार्थोंकी परीक्षा करे उसीको दिखाते हैं । जैसे- आंतोंका गूंजना, सन्धियोंका स्फोटन, अंगुलियोंका तथा पर्वोंका मटकना, स्वरभंग होना इनके सिवाय अन्यभी रोगीके शरीरमें होनेवाले जितने प्रकारके शब्द हों उनको वैद्य अपनी कर्णेन्द्रिय द्वारा परीक्षा करे तथा हृदय और धमनी आदिकोंकी गति तथा शब्दज्ञानकारक यन्त्रद्वारा परीक्षा करे । शरीर तथा नेत्र जिह्वा, नख आदिकोंका वर्ण, मूत्र आकार, प्रमाण, कांति, शरीरकी प्रकृति और विकृति आदिकोंका वर्ण तथा अन्यभी देखने योग्य जो विषय हों उनकी चक्षुरिन्द्रियद्वारा परीक्षा करे ॥ ६ ॥

अनुमानज्ञानका लक्षण ।

रसन्तुखलुआतुरशरीरगतमिन्द्रियवैषयिकमप्यनुमानादवगच्छेत् । नह्यस्यप्रत्यक्षेणग्रहणमुपपद्यते । तस्मादातुरपरिप्रश्नेनैवातुरमुखरसविद्यात् । यूकापसर्पणेनत्वस्यशरीरवैरस्यंमक्षिकोपदर्शनेनशरीरमाधुर्य्यम् । लोहितपित्तसन्देहेतुकिन्धारिलोहितलोहितपित्तवेतिश्वकाकभक्षणात्धारिलोहितमभक्षणाल्लोहितमित्यनुमातव्यम्एवमन्यानप्यातुरशरीरगतान्रसाननुमिमीत । गन्धास्तुखलुसर्वशरीरगतानातुरस्यप्रकृतिवैकारिकान्घ्राणेनपरीक्षेतस्पर्शञ्चपाणिनाप्रकृतियुक्तमितिप्रत्यक्षतोऽनुमानैकदेशतश्चपरीक्षणमुक्तम् ॥ ७ ॥

परन्तु रोगीके शरीरगत रसनेंद्रियका विषय होनेपरभी अनुमान द्वारा जानना चाहिये । क्योंकि रसका नेत्रोंद्वारा प्रत्यक्ष हो नहीं सकता और जिह्वाद्वारा उसको कोई जान नहीं सकता इसलिये रोगीसे प्रश्नद्वारा उसके मुखके रसादिकोंको जानना चाहिये । शरीरपर यूका आदिके चलनेसे शरीरकी विरसताको जानना चाहिये मक्खियोंके शरीरपर पडनेसे शरीरके मीठेपनका अनुमान होसकता है । रक्तपित्त रोगवालेका रक्त तथा विना रक्तपित्तवालेके रक्तमें सन्देह हो तो कुत्ते और कागको भक्षण करानेसे जान सकते हैं यदि उसको श्वान आदि भक्षण करें तो आरोग्य पुरुषका रक्त समझना चाहिये और यदि वह श्वान आदिक उस रक्तको न छूवें तो रक्तपित्त है ऐसा जानना चाहिये इसी प्रकार रोगीके शरीरगत अन्य रसोंका भी अनुमान करे रोगीके शरीरगत गन्धोंको स्वाभाविक प्रकृतिसे विकारसे प्राण

हुए गधको घ्राणेन्द्रियद्वारा परीक्षा करे। शरीरकी प्रकृति, विकृति, उष्णता, शीतता आदि एवम् धमनीकी गति आदि–हाथके स्पर्शद्वारा परीक्षा करे इस प्रकार प्रत्यक्षसे तथा अनुमानसे एकदेशसे परीक्षाका कथन किया गया है ॥ ७ ॥

अन्य अनुमान ज्ञेय भावोंका वर्णन।

इमेतुखलुअन्येप्येवमेवभूयोऽनुमानज्ञेयाभवन्तिभावा । तद्यथा–अग्निंजरणशक्त्या, बलव्यायामशक्त्या, श्रोत्रादीञ्छब्दादिग्रहणेन, मनोऽर्थाव्यभिचारेण, विज्ञानव्यवसायेन, रज. संङ्गेन, मोहमविज्ञानेन, क्रोधमभिद्रोहेण, शोक दैन्येन, हर्षमामोदेन, प्रीतिं तोषेण, भयंविषादेन, धैर्य्यमविषादेन, वीर्य्यमुत्साहेन, स्थानमविभ्रमेण, श्रद्धामभिप्रायेण, मेधा ग्रहणेन, सञ्ज्ञानामग्रहणेन, स्मृतिं स्मरणेन, ह्रियमपत्रपेण, शीलमनुशीलनेन, द्वेषप्रतिषेधेन, उपाधिमनुबन्धेन, धृतिमलौल्येन, वश्यताविधेयतया, वयोभक्तिसात्म्यव्याधिसमुत्थानानिकालदेशोपशयवेदनाविशेषेणगूढलिङ्गव्याधिमुपशयानुपशयाभ्या दोषप्रमाणविशेषमपचारविशेषेणआयुष.क्षयमरिष्टैरुपस्थितश्रेयस्त्वकल्याणाभिनिवेशेनअमलसत्त्वमविकारेणेति । ग्रहण्यास्तुमृदुदारुणत्वदु स्वप्नदर्शनमभिप्रायद्विष्टेष्टसुखदु.खानि चातुरपरिप्रश्नेनैवविद्यादिति ॥ ८ ॥

यह आग कथन किये हुए विषयों तथा उनके सिवाय और भी जो भाव हैं उनकी अनुमान द्वारा परीक्षा करनी चाहिये। जैसे भोजनके परिपाक द्वारा जठराग्निकी परीक्षा, परिश्रम आदिसे बलकी परीक्षा, शब्दादिकसे कर्णादिकोंकी परीक्षा, मनके विषयोंके अव्यभिचारसे मनकी परीक्षा, व्यवसाय–अर्थात् बुद्धिके कार्योंसे विज्ञानकी परीक्षा, सगद्वारा रजोगुणकी परीक्षा, नष्टज्ञानद्वारा मोहकी परीक्षा, अभिद्रोह द्वारा क्रोधकी परीक्षा, दीनताद्वारा शोककी परीक्षा प्रसन्नतासे हर्षकी परीक्षा, संतोपसे प्रीतिकी परीक्षा, विषादसे भयकी परीक्षा, अविषादसे धैर्यकी परीक्षा, उत्साहसे पराक्रमकी परीक्षा, अभ्रान्तिसे स्थिरताकी परीक्षाका अनुमान करना

चाहिये एवम् मनके अभिमायसे श्रद्धा, धारणासे मेधा, नाम लेनेसे संज्ञा, स्मरणसे स्मृति, सकोचसे लज्जा, शीलतासे स्वभाव, त्यागसे द्वेष, अनुबधसे उपाधि, चपलता न होनेसे धृति और विधेयतासे वशीभूतकी परीक्षाका अनुमान किया जाता है। इसी प्रकार-काल, देश, उपशय और विशेपसे पयाक्रम, अवस्था, भक्ति, सात्म्य, व्याधि तथा निदानका अनुमान किया जाता है। उपशय और अनुपशय द्वारा गूढ लक्षणवाली व्याधियोंका अनुमान किया जाता है। अपचार विशेपसे दोषका प्रमाण विशेप जाना जाताहै अरिष्टद्वारा आयुके क्षयका अनुमान कियाजाताहै। कल्याणकारक योगोंमें चित्तके लगनेसे शुभका अनुमान कियाजाताहै और विकाररहित होनेसे विमल सतोगुणका अनुमान कियाजाताहै। ग्रहणीकी नम्रता और कठोरता दु स्वम, दर्शन, अभिमाय, द्वेष, इष्ट, सुख, दु.ख यह सब विषय रोगीसे प्रश्नद्वारा जानने चाहिये ॥ ८ ॥

भवन्तिचात्र ।

आप्ततश्चोपदेशेनप्रत्यक्षकरणेनच ।
अनुमानेनचव्याधीन्सम्यग्विद्याद्विचक्षण. ॥ ९ ॥

यहापर कहा है कि, चतुर वैद्य आप्तोंके उपदेशसे, प्रत्यक्ष करणसे एवम् अनुमानसे व्याधियोंको भली प्रकार जाने ॥ ९ ॥

सर्वथासर्वमालोच्ययथासम्भवमर्थवित् ।
अथाध्यवस्येत्तत्त्वेचकार्य्येचतदनन्तरम् ॥ १० ॥

अर्थको जाननेवाला वैद्य सब प्रकारसे सब विषयोंको विचारकर यथा सम्भव कारण और कार्यको जान लेवे । जब सपूर्ण कारणादिका निश्चय करलेवे तदनन्तर कार्यके विषयमें निश्चय करे ॥ १० ॥

कार्य्यतत्त्वविशेपज्ञ प्रतिपत्तौनमुह्यति ।
अमूढ फलमाप्नोतियदमोहनिमित्तजम् ॥ ११ ॥

कार्यके तत्त्वके निश्चयज्ञानवाला वैद्य समय प्राप्त होनेपर मोहको प्राप्त नहीं होता मोहको प्राप्त न होनेसे यथार्थ फलको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥

ज्ञानबुद्धिप्रदीपेनयोनाविशतितत्त्ववित् ।
आतुरस्यान्तरात्मानंनसरोगाश्चिकित्सति ॥ १२ ॥

जिस वैद्यने कारणादि ज्ञान तथा बुद्धिरूप दीपकसे रोगीके शरीरमें प्रवेश नहीं किया है वह वैद्य रोगोंकी चिकित्सा नहीं कर सकता ॥ १२ ॥

सर्वरोगविशेषाणात्रिविधज्ञानसंग्रहम् ।
यथाचोपदिशन्त्याप्ता प्रत्यक्षगृह्यतेयथा ॥ १३ ॥
येयथाचानुमानेनज्ञेयास्ताश्चात्युदारधी. ।
भावास्त्रिरोगविज्ञानेविमानेमुनिरुक्तवान् ॥ १४ ॥
इतिश्रीमच्चरकसहिताया त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीय
नामचतुर्थोऽध्याय. ॥ ४ ॥

अन अध्यायका उपसहार करते है कि त्रिविध रोगविशेषविज्ञानीयअध्यायम सपूर्ण रोगविशेषको जाननेके लिये तीन प्रकारके ज्ञानका सग्रह जैसे आप्त पुरुप उपदेश करतेहै । जैसे प्रत्यक्षका ग्रहण होता है, जो विपय अनुमान द्वारा जैसे जानेजाते है । इन सन भावोंको उदार बुद्धि भगवान् आत्रेयजीने वर्णन किया है ॥ १३ ॥ १४ ॥

इति श्रीमहर्षिचर० वि० स्था० भा० टी० त्रिविधरोग विशेषविज्ञानीयविमान
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पचमोऽध्याय. ।

अथात स्रोतोविमाननामाध्याय व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेय ।

अन हम स्रोतोविमाननामकअध्यायकी व्याख्या करते है। इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

यावन्त पुरुपेमूर्त्तिमन्तोभावविशेषास्तावन्तएवास्मिन्स्रोतसा प्रकारविशेषाः, सर्वेभावाहिपुरुपेनान्तरेणस्रोतास्यभिनिवर्तन्ते क्षयवानगच्छन्ति। स्रोतासिखलुपरिणाममापद्यमानानाधातू-नामभिवाहीनिभवन्तिअयनार्थेनापिचैकेमहर्पय स्रोतसामे-वसमुदयपुरुपमिच्छन्तिसर्वगतत्वात्सर्वसरत्वाच्चदोषप्रकोपण प्रशमनानानत्वेतदेवयस्यसहिपुरुष स्रोतासिपच्चवहन्तियच्चा-वहन्तियत्रचावस्थितानिसर्वतदन्यत्तेभ्य ॥ १ ॥

पुरुषके शरीरमें शिरा, कोष्ठ आदि स्थूल पदार्थ हैं वह सब स्रोतोंके ही प्रकारान्तर हैं क्योंकि पुरुषके शरीरमें सम्पूर्णभाव स्रोतोंद्वाराही उत्पन्न होतेहैं और क्षय नहीं होते। स्रोत ही परिणामको प्राप्तहुए सम्पूर्ण धातुओंके वहन करते हैं अर्थात् यथास्थानमें पहुंचा देते हैं। स्रोत ही अयनार्थ होते हैं क्योंकि सम्पूर्ण शरीरमें सर्वगामी होनेसे तथा दोषोंके प्रकोपनाशक अथवा शमनकारक किये हुए आहारादिकोंको सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक करदेतेहैं। इसलिये कोई २ स्रोतोंके समुदायको ही पुरुष मानते हैं। परन्तु स्रोतोंका समुदाय पुरुष नहीं होता। स्रोतोंके समुदायका जो अधिष्ठाता है स्रोत जिसके आश्रित हैं, जिसके लिये स्रोत रसादिकोंको वहन करतेहैं वह पुरुष है तथा स्रोत जिसको वहन करतेहैं और जिसका आवहन करते हैं वह स्रोतोंसे पृथक् पुरुषहै ॥ १ ॥

अतिबहुत्वात्तुखलुकेचिदपरिसंख्येयानिआचक्षतेस्रोतांसि,परिसंख्येयानिपुनरन्ये, तेषांस्रोतसांयथास्थानंकतिचित्प्रकारान्मूलतश्चप्रकोपविज्ञानतश्चानुव्याख्यास्याम । येभविष्यन्त्यलमनुक्तार्थज्ञानवतेविज्ञानायचाज्ञानाय, तद्यथा, प्राणोदकान्नरसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रमूत्रपुरीषस्वेदवहानिवातपित्तश्लेष्मणांपुन सर्वशरीरचराणांसर्वस्रोतांसिअयनभूतानि॥२॥

अत्यन्त अधिक होनेसे कोई २ स्रोतोंको असंख्य कहते हैं। कोई कहते हैं कि स्रोतोंकी संख्या होसकतीहै। उन स्रोतोंका प्रकार भेदसे तथा मूलभेदसे और उनके प्रकोप विज्ञानके यथा स्थानमें आगे कथन करेंगे। क्योंकि सम्पूर्ण स्रोतोंका विषय जानलेनेसे जिन स्रोतोंका कथन नहीं भी कियागया उनको भी ज्ञानवान् मनुष्य जान सकताहै। तथा यथोचित उपदेश द्वारा अज्ञानी भी जानसकेंगे। वह इस प्रकार है प्राणवाही, उदकवाही अन्नवाही, रसवाही, रक्त[illegible] [illegible], [illegible] अस्थि, मज्जा, शुक्र, मूत्र, मल, स्वेद इनके वहन कर[illegible] [illegible] वात,पित्त और कफ सम्पूर्ण शरीरमें गमन करनेवाले मा[illegible] [illegible] स्रोतही सम्पूर्ण रस, धातु, वायु आदिके अयन अर्थात् [illegible] ॥२॥

तत्र [illegible] सत्त्वादीनां
भूतमधिष्ठा[illegible] [illegible]तत्र[illegible]
पसृज्यते श[illegible] [illegible]
तत्र, [illegible] [illegible]

वन्धमल्पाल्पमभीक्ष्णंवासशब्दशूलमुच्छ्वसन्तंदृष्ट्वाप्राणवहा न्यस्यस्रोतांसिप्रदुष्टानीतिविद्यात् ॥ ३ ॥

उसी प्रकार चेतनायुक्त केवल शरीर-इन्द्रियांका तथा मन आदिकोंका गतिस्थान मार्गरूप एवम् अधिष्ठान होता है। यही कारण है कि सपूर्ण स्रोत प्रकृतिभूत होनेसे शरीरमें विकारको नही होनेदेते। इनमें प्राणोंके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल हृदय है और उसको महास्रोत भी कहते हैं। यह स्रोत जब दूषित होतेहैं तब इनमें यह विशेपता होती है कि उच्छ्वासको अधिक छोडे, बहुत तेज या रुककर थोडा २ अथवा शब्दयुक्त शूलके साथ श्वास आवे। इन लक्षणोंसे प्राणवाहक स्रोतोंको दूषित हुआ जाने ॥ ३ ॥

दूषित उदकवाही स्रोतके लक्षण।

उदकवहानांस्रोतसांतालुमूलंक्लोमच प्रदुष्टानामिदंविज्ञानं,तद्यथाजिह्वाताल्वोष्ठकण्ठक्लोमशोषंपिपासांचातिप्रवृद्धांदृष्ट्वोदकवहान्यस्यस्रोतांसिप्रदुष्टानीतिविद्यात् ॥ ४ ॥

जलके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल तालु और क्लोम होता है। यदि यह स्रोत दूषित होजाय तो इनके ये लक्षण होते हैं। जैसे-जिह्वा, तालु, ओष्ठ और क्लोम (प्यास लगानेवाली कारणभूत स्थान) ये सूखने लगें प्यास अधिक लगे। इन लक्षणोंसे जलके वहन करनेवाले स्रोतोंको दूषित हुआ जाने ॥ ४ ॥

दूषितअन्नवाही स्रोतके लक्षण।

अन्नवहानांस्रोतसामामाशयोमूलंवामञ्चपार्श्वम्, प्रदुष्टानान्तु खल्वेपामिदंविशेपविज्ञानंभवति, तद्यथाअनन्नाभिलपणमरोचकाविपाकौछर्दिञ्चदृष्ट्वाअन्नवहानिस्रोतांसिप्रदुष्टानीतिविद्यात्५॥

अन्नके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल-आमाशय और वामपार्श्वभाग है। इन स्रोतोंके दूषित होनेसे यह लक्षण होते हैं। जैसे-अन्नकी अभिलाषा न होना अरुचि होना, अन्नका परिपाक न होना, छर्दि होना इन लक्षणोंसे अन्नके वहन करनेवाले स्रोतोंको दूषित हुवा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

रसवहादिस्रोतोंका वर्णन।

रसवहानांस्रोतसांहृदयंमूलंदशचधमन्य ,शोणितवहानांस्रोतसांयकृन्मूलंप्लीहाच, मांसवहानाञ्चस्रोतसांस्नायुर्मूलंत्वक्च,

मज्जावहानास्त्रोतसामस्थीनिमूलसक्थ्ययश्च, शुक्रवहानास्त्रोतसावृषणौमूलशेफश्च । प्रदुष्टानान्तुरसादिस्रोतसांखलुएषानिज्ञानान्युक्तानिविविधाशितीयेअध्यायेयान्येवहिधातूनाप्रदोषविज्ञानानितान्येवयथास्वधातुस्रोतसाम् ॥ ६ ॥

रसके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल हृदय और दश धमनियें हैं। रक्तवाहक स्रोतोंका मूल-यकृत (जिगर) और प्लीहा (तिल्ली) होते हैं। मांसके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल स्नायु नसें और त्वचा हैं। मज्जाके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल अस्थियें और सक्थि हैं। वीर्यके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल दोनों वृषण और लिंग है। इन रसादिके वहन करनेवाले स्रोतोंके बिगड़नेसे जो लक्षण होते हैं वह विविधाशित पीतीय अध्यायमें वर्णन किया गया है ॥ ६ ॥

मूत्रवाहीस्रोतोंके लक्षण ।

मूत्रवहाणांस्रोतसांवस्तिर्मूलंवक्षणौच, खल्वेषामिदंप्रदुष्टानां विज्ञानमतिसृष्टंप्रतिबद्धंकुपितमल्पाल्पमभीक्ष्णंवासशूलमूत्रं मूत्रयन्तंदृष्ट्वामूत्रवहाण्यस्यस्रोतांसिप्रदुष्टानीतिविद्यात् ॥ ७ ॥

मूत्रको वाहन करनेवाले स्रोतोंका मूल-वस्ति और वक्षण है। इनको दूषित हुए जाननेके ये लक्षण होतेहैं। जैसे-मूत्रका अधिक आना अथवा मूत्रका बंद होजाना मूत्रका बिगड़ा हुआ होना, मूत्रका लगकर आना थोड़ा २ आना या दर्दके साथ आना इस प्रकारके मूत्रके लक्षणोंको देखकर मूत्रवाहक स्रोतोंको दूषित जानना ॥७॥

पुरीषवाहीस्रोतोंके लक्षण ।

पुरीषवहाणांस्रोतसांपक्वाशयोमूलंस्थूलगुदश्च, प्रदुष्टानांखलु एषामिदंविज्ञानं, कृच्छ्रेणअल्पाल्पंसशूलमतिद्रवंकुपितमति बहुंचोपविशन्तंदृष्ट्वापुरीषवहाण्यस्यस्रोतांसिप्रदुष्टानीतिविद्यात् ॥ ८ ॥

पुरीष (मल) के वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल-पक्वाशय, स्थूल अंतड़ी और गुदा है। उनके दूषित होनेसे यह लक्षण होते हैं। जैसे-कष्टके साथ थोड़ा २ मल उतरना, दर्दके साथ मल उतरना, बहुत पतला मल आना, तेजगर्मीके साथ मल आना, गरकर अत्यन्त एगा मल आना। इन लक्षणोंको देखकर मलके वहन करनेवाले स्रोतोंको दूषित जानना ॥ ८ ॥

स्वेदवाही स्रोतोंके लक्षण।

स्वेदवहानास्रोतसामेदोमूलरोमकूपाश्च प्रदुष्टानाखल्वेषामि दविज्ञानमस्वेदनमतिस्वेदनंपारुष्यमतिश्लक्ष्णतापरिदाहलोम-हर्षश्चदृष्ट्वास्वेदवहान्यस्यस्रोतांसिप्रदुष्टानीतिविद्यात् ॥ ९ ॥

स्वेदके वहन करनेवाले स्रोताका मूल भेद तथा रोमकूप हैं । इनको दूषित हुए जाननेके ये लक्षण है। पसीना न आना अथवा अधिक आना, रोमकूपोंका कठोर होना या अत्यत नरम होना, शरीरमें दाह होना, रोमोंका खडाहोना इन लक्षणोंको देखकर स्वेदवाहके स्रोताका दूषित हुआजानना ॥ ९ ॥

शरीरधात्ववकाशोंके नाम।

स्रोतांसिशिराधमन्योरसवाहिन्योनाड्य.पन्थानोमार्गा.शरी-रच्छिद्राणिसंवृतासंवृतानिस्थानानिआशयाःआलया निकेता-श्चेतिशरीरधात्ववकाशानालक्ष्यालक्ष्याणांनामानि ॥ १० ॥

स्रोत, शिरा, धमनियें, रसवाहनी, नाडियें, पथसमूह, मार्ग, शरीरछिद्र, सवृतस्थान, असवृतस्थान, आशय, निकेतन, आलय, यह सब नाम- शरीरके धातुओंके लक्ष तथा अलक्ष्य स्थानोंके हैं ॥ १० ॥

तेषाप्रकोपात्स्थानस्थाश्चैवमार्गगाश्चैवशरीरधातवःप्रकोपमाप-द्यन्ते ॥ ११ ॥

उनके कुपित होनेसे स्थानमे स्थित तथा मार्गमें गमन करनेवाली शारीरिक धातुयेंभी कोपको प्राप्त होजाती है ॥ ११ ॥

इतरेषांवाप्रकोपादितराणि ॥ १२ ॥

अन्य स्रोतोंके कोपसे अन्य स्रोत भी कुपित होजातेहै ॥ १२ ॥

स्रोतांसिस्रोतांस्येवधातवश्चधातून्प्रदूषयन्ति ॥ १३ ॥

एकधातु दूषित होकर दूसरी धातु दूषित करदेतीहै स्रोत दूषित होकर अन्य स्रोतोंको भी दूषित कर देते हैं ॥ १३ ॥

प्रदुष्टास्त्वेषांसर्वेषामेववातपित्तश्लेष्माणोदुष्टादूषयितारोभव न्तिदोषस्वभावादिति ॥ १४ ॥

वात, पित्त कफ दूषित होकर इन सन स्रोतोंको अपने दोष स्वभावसे दूषित करदेते है ॥ १४ ॥

मज्जावहानास्रोतसामस्थीनिमूलंसक्थयश्च, शुक्रवहानास्रोतसावृषणौमूलंशेफश्च। प्रदुष्टानान्तुरसादिस्रोतसाखल्वेषानिज्ञानान्युक्तानिविविधाशितीयेअध्यायेयान्येवहिधातूनाप्रदोषविज्ञानानितान्येवयथास्वधातुस्रोतसाम्॥ ६॥

रसके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल हृदय और दश धमनियें हैं। रक्तवाहक स्रोतोंका मूल-यकृत (जिगर) और प्लीहा (तिल्ली) होते हैं। मांसके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल स्नायु नसें और त्वचा है। मज्जाके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल अस्थियें और सक्थि हैं। वीर्यके वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल दोनों वृषण और लिंग हैं। इन रसादिक वहन करनेवाले स्रोतोंके बिगड़नेसे जो लक्षण होते हैं वह विविधाशित पीतीय अध्यायमें वर्णन किया गया है॥ ६॥

मूत्रवाहीस्रोतोंके लक्षण।

मूत्रवहाणास्रोतसावस्तिर्मूलवंक्षणौच, स्खल्वेषामिदप्रदुष्टाना विज्ञानमतिसृष्टप्रतिबद्धकुपितमल्पाल्पमभीक्ष्णवासशूलमूत्र मूत्रयन्तदृष्ट्वामूत्रवहाण्यस्यस्रोतासिप्रदुष्टानीतिविद्यात्॥ ७॥

मूत्रको वाहन करनेवाले स्रोतोंका मूल-वस्ति और वंक्षण है। इनको दूषित हुए जाननेके ये लक्षण होतेहैं। जैसे-मूत्रका अधिक आना अथवा मूत्रका बद्ध होजाना मूत्रका बिगड़ा हुआ होना, मूत्रका रुककर आना थोड़ा २ आना या दर्दके साथ आना इस प्रकारके मूत्रके लक्षणोंको देखकर मूत्रवाहक स्रोतोंको दूषित जानना॥ ७॥

पुरीषवाहीस्रोतोंके लक्षण।

पुरीषवहाणास्रोतसापक्वाशयोमूलस्थूलगुदश्च, प्रदुष्टानाखल्वेषामिदविज्ञान, कृच्छ्रेणअल्पाल्पसशूलमतिद्रवकुपितमाति बहुंचोपविशन्तंदृष्ट्वापुरीषवहाण्यस्यस्रोतासिप्रदुष्टानीतिविद्यात्॥ ८॥

पुरीष (मल) के वहन करनेवाले स्रोतोंका मूल-पक्वाशय, स्थूल अंतड़ी और गुदा है। इनके दूषित होनेसे यह लक्षण होते हैं। जैसे-कष्टके साथ थोड़ा २ मल उतरना, दर्दके साथ मल उतरना, पतला पतला मल आना, गांठगठीले साथ मल आना, रुककर अत्यन्त घना मल आना। इन लक्षणोंको देखकर मलके वहन करनेवाले स्रोतोंको दूषित जानना॥ ८॥

स्वेदवाही स्रोतोंके लक्षण ।

स्वेदवहानास्रोतसांमेदोमूलरोमकूपाश्च प्रदुष्टानाखल्वेपामि- दविज्ञानमस्वेदनमतिस्वेदनपारुष्यमतिश्लक्ष्णतापरिदाहलोम- हर्पश्चदष्ट्वास्वेदवहान्यस्यस्रोतांसिप्रदुष्टानीतिविद्यात् ॥ ९ ॥

स्वेदके वहन करनेवाले स्रोताका मूल भेद तथा रोमकूप है । इनको दूपित हुए जाननेके ये लक्षण है। पसीना न आना अथवा अधिक आना, रोमकूपोंका कठोर होना या अत्यत नरम होना, शरीरमें दाह होना, रोमोंका खडाहोना इन लक्षणोंको देखकर स्वेदवाहके स्रोताका दूपित हुआजानना ॥ ९ ॥

शरीरधात्ववकाशोंके नाम ।

स्रोतासिशिराधमन्योरसवाहिन्योनाड्य.पन्थानोमार्गा.शरी- रच्छिद्राणिसवृतासवृतानिस्थानानिआशयाःआलया निकेता श्चेतिशरीरधात्ववकाशानालक्ष्यालक्ष्याणांनामानि ॥ १० ॥

स्रोत, शिरा, धमनिये, रसवाहनी, नाडियें, पथसमूह, मार्ग, शरीरछिद्र, सवृतस्थान, असवृतस्थान, आशय, निकेतन, आलय, यह सब नाम– शरीरके धातुओंके लक्ष तथा अलक्ष्य स्थानोंके हैं ॥ १० ॥

तेपाप्रकोपात्स्थानस्थाश्चैवमार्गगाश्चैवशरीरधातवःप्रकोपमाप- द्यन्ते ॥ ११ ॥

उनके कुपित होनेसे स्थानमें स्थित तथा मार्गमें गमन करनेवाली शारीरिक धातु- येंभी कोपको प्राप्त होजाती है ॥ ११ ॥

इतरेपावाप्रकोपादितराणि ॥ १२ ॥

अन्य स्रोताके कोपसे अन्य स्रोत भी कुपित होजातेहैं ॥ १२ ॥

स्रोतासिस्रोतास्येवधातवश्चधातून्प्रदूपयन्ति ॥ १३ ॥

एकधातु दूपित होकर दूसरी धातु दूपित करदेतीहै स्रोत दूपित होकर अन्य स्रोतोंको भी दूपित कर देते हैं ॥ १३ ॥

प्रदुष्टास्त्वेपासर्वेपामेववातपित्तश्लेष्माणोदुष्टादूपयितारोभव न्तिदोपस्वभावादिति ॥ १४ ॥

वात, पित्त कफ दूपित होकर इन सब स्रोतोंको अपने दोप स्वभावसे दूपित करदेते है ॥ १४ ॥

प्राणवाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण ।

भवतिचात्र ।

क्षयात्सन्धारणाद्रौक्ष्याद्व्यायामात्क्षुधितस्यच ।
प्राणवाहीनिदुष्यन्तिस्रोतास्यन्यैश्चदारुणैः ॥ १५ ॥

सोई कहतेहैं । प्राणोंको वहन करनेवाले स्रोत-धातुओंके क्षीण होनेसे, वेगोंको धारण करनेसे रूक्षतासे अधिक परिश्रम करनेसे, बहुत क्षुधा लगनेसे तथा अन्य दुष्ट कारणोंसे दूषित होतेहैं ॥ १५ ॥

उदकवाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण ।

औष्ण्यादामाद्भयात्पानादतिशुष्कान्नसेवनात् ।
अम्बुवाहीनिदुष्यन्तितृष्णायाश्चातिपीडनात् ॥ १६ ॥

उष्णतासे, आमदोषसे, भयसे, मद्य आदि पीनेसे, अधिक शुष्क अन्न सेवनसे, अत्यन्त प्यास लगनेसे जलके वहन करनेवाले स्रोत दूषित होते हैं ॥ १६ ॥

अन्नवाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण ।

अतिमात्रस्यचाकालेचाहितस्यचभोजनात् ।
अन्नवाहीनिदुष्यन्तिवैगुण्यात्पावकस्यच ॥ १७ ॥

अधिक भोजनकरनेसे, बेसमय भोजन करनेसे, विषमभोजन करनेसे, अहित भोजन करनेसे, जठराग्निकी विगुणतासे अन्नके वहन करनेवाले स्रोत दूषित होते हैं ॥ १७ ॥

रसवाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण ।

गुरुशीतमतिस्निग्धमतिमात्रंनिषेवणात् ।
रसवाहीनिदुष्यन्तिचिन्त्यानांचातिचिन्तनात् ॥ १८ ॥

भारी, शीतल और अत्यन्त स्निग्ध पदार्थोंके अधिक सेवनसे, बहुत चिन्ताके करनेसे रसके वहन करनेवाले स्रोत दूषित होते हैं ॥ १८ ॥

रक्तवाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण ।

विदाहीन्यन्नपानानिस्निग्धोष्णानिद्रवाणिच ।
रक्तवाहीनिदुष्यन्तिभजतांचातपानलौ ॥ १९ ॥

विदाही अन्नपानके सेवनसे तथा स्निग्ध, उष्ण और द्रव पदार्थोंके सेवनसे धूप, अग्नि इनके सेवनसे रक्तवाही स्रोत दूषित होते हैं ॥ १९ ॥

मांसवाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण।

अभिष्यन्दीनिभोज्यानिस्थूलानिचगुरूणिच।
मांसवाहीनिदुष्यन्तिभुक्त्वाचस्वपतोदिवा ॥ २० ॥

अभिष्यन्दी, स्थूल और भारी पदार्थोंके भोजन करनेसे, भोजनकर दिनमें सोजानेसे मांसवाही स्रोत दूषित होतेहैं ॥ २० ॥

मेदोवाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण।

अव्यायामाद्दिवास्वप्नान्मेध्यानाञ्चातिभक्षणात्।
मेदोवाहीनिदुष्यन्तिवारुण्याश्चातिसेवनात् ॥ २१ ॥

व्यायाम न करनेसे दिनमें सोनेसे, चिकने पदार्थोंके अधिक खानेसे और मद्यके अधिक पीनेसे, मेदको वहन करनेवाले स्रोत दूषित होते है ॥ २१ ॥

अस्थिवाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण।

व्यायामादतिसंक्षोभादस्थ्नामतिचभक्षणात्।
अस्थिवाहीनिदुष्यन्तिवातलानाञ्चसेवनात् ॥ २२ ॥

अधिक व्यायामके करनेसे, अत्यंत संक्षेपणसे, अस्थियोंके चबानेसे तथा वातवर्द्धक पदार्थोंके सेवनसे अस्थिवाही स्रोत दूषित होजातेहै ॥ २२ ॥

मज्जावाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण।

उत्पेषादत्यभिष्यन्दादभिघातात् प्रपीडनात्।
मज्जावाहीनिदुष्यन्तिविरुद्धानाञ्चसेवनात् ॥ २३ ॥

किसी वस्तुके नीचे दबजानेसे, अभिष्यंदीपदार्थोंके सेवनसे, चोटके लगनेसे, शरीरके प्रपीडनसे, एवम् विरुद्ध पदार्थोंके सेवनसे मज्जाके वहन करनेवाले स्रोत दूषित होतेहै ॥ २३ ॥

शुक्रवाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण।

अकालायोनिगमनान्निग्रहादतिमैथुनात्।
शुक्रवाहीणिदुष्यन्तिशस्त्रक्षाराग्निभिस्तथा ॥ २४ ॥

विना समय मैथुन करनेसे, अयोग्य मैथुन करनेसे, निल्कुल मैथुन न करनेसे, अधिक मैथुन करनेसे, शस्त्र, क्षार तथा अग्निके संयोगसे वीर्यवाही स्रोत दूषित होतेहै ॥ २४ ॥

मूत्रवाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण ।

मूत्रितोदकभक्षस्त्रीसेवनान्मूत्रनिग्रहात् ।
मूत्रवाहीणिदुष्यन्तिक्षीणस्याथकृशस्यच ॥ २५ ॥

मूत्रके वेग आये हुए पर मूत्रको रोककर पानी पीनेसे एवम् मूत्रके वेगको रोककर स्त्री गमन करनेसे, मूत्रको रोकनसे तथा क्षीणता और कृशता होनेसे मूत्रवाही स्रोत दूषित होजाते है ॥ २५ ॥

वर्चोंके स्रोतोंके दूषितहोनेका कारण ।

विधारणादत्यशनादजीर्णाध्यशनात्तथा ।
वर्चोवहीनिदुष्यन्तिदुर्बलाग्नेःकृशस्यच ॥ २६ ॥

मलके वेगको रोकनेसे, अधिक भोजन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, दुर्बल अग्निके होनेसे तथा कृशताके कारण मलवाही स्रोत दूषित होतेहै ॥ २६ ॥

स्वेदवाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण ।

व्यायामादतिसन्तापाच्छीतोष्णाक्रमसेवनात् ।
स्वेदवाहीनिदुष्यन्तिक्रोधशोकभयैस्तथा ॥ २७ ॥

अधिक व्यायाम करनेसे, अधिक धूप, तथा तापके सहनेसे, विक्रमभावसे सर्दी गर्मीके सेवनसे, क्रोध तथा भयसे, स्वेदके वहन करनेवाले स्रोत दूषित होजातेहै ॥२७॥

अन्यकारण ।

आहारश्चविहारश्चय स्याद्दोषगुणै सम ।
धातुभिर्विगुणश्चापिस्रोतसासप्रदूषक ॥ २८ ॥

जो आहार विहार-वात, पित्त कफके साम्यगुणवाले है वह स्रोतोंको दूषित करते है जो आहार विहार धातुओंके असमान गुण करनेवाले है वह भी स्रोतोंको दूषित करते है ॥ २८ ॥

अतिप्रवृत्ति सङ्गोवासिराणामन्ययोऽपिवा ।
विमार्गगमनचापिस्रोतसादुष्टलक्षणम् ॥ २९ ॥

स्रोतोंकी अधिक वृद्धि नसोंका विशेष होना तथा नसोंमें गांठोंका पडना और मलोंका अपने मार्ग त्यागकर दूसरे मार्गदारा निकलना यह दूषितहुए स्रोतोंके लक्षण होतेहै ॥ २९ ॥

स्रोतोकी आकृति।

स्वधातुसमवर्णानिवृत्तस्थूलान्यणूनिच ।
स्रोतांसिदीर्घाण्याकृत्याप्रतानसदृशानिच ॥ ३० ॥

सपूर्ण स्रोत अपने २ धातुके समान वर्णवाले गोलाकार मुखवाले, स्थूल अथवा सूक्ष्म आकारके होतेहैं ॥ ३० ॥

दूषितस्रोतोकी चिकित्साका विधान।

प्राणोदकान्नवाहानादुष्टानाश्वासिकीक्रिया ।
कार्य्यातृष्णोपशमनीतथैवामप्रदोषिकी ॥ ३१ ॥

प्राणवाही स्रोत, जलवाही स्रोत, और अन्नवाही स्रोताके दूषित होनेपर श्वास रोगके समान चिकित्सा करनी चाहिये तथा तृषानाशक और आमनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। अर्थात् प्राणवाही स्रोतोंके दूषित होनेसे श्वास चिकित्सा, जलवाही स्रोतोंके दूषित होनेसे तृषानाशक चिकित्सा, अन्नवाही स्रोतोंके दूषित होनेसे आमदोष नाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

विविधाशितपीतीयेरसादीनायदौषधम् ।
दूषितस्रोतसाकुर्य्यात्तद्यथास्वमुपक्रमम् ॥ ३२ ॥

रस आदि धातुओंके वहन करनेवाले स्रोतोंके दूषित होनेपर विविधाशित पीतीय अध्यायमें कथन की हुई रस रक्तादिकोंकी चिकित्सा क्रमपूर्वक करनी चाहिये॥३२॥

मूत्रविट्स्वेदवाहानाचिकित्सामौत्रकृच्छ्रिकी । तथातिसारिकी
कार्य्यातथाज्वरचिकित्सिकी इति ॥ ३३ ॥

मूत्रवाही स्रोतोंके दूषित होनेपर मूत्रकृच्छ्रमें कही चिकित्सा करनी चाहिये । मलवाही स्रोतोंके दूषित होनेपर अतिसार रोगके समान चिकित्सा करनी चाहिये । स्वेदवाही स्रोतोंके दूषित होनेपर ज्वरके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

तत्र श्लोका ।

त्रयोदशानामूलानिस्रोतसादुष्टलक्षणम् ।
सामान्यनामपर्य्याया कोपनानिपरस्परम् ॥ ३४ ॥
दोषहेतु पृथक्त्वेनभेषजोद्देशएव च ।
स्रोतोविमानेनिर्दिष्टस्तथाचादौविनिश्चय ॥ ३५ ॥

मूत्रवाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण ।

मूत्रितोदकभक्षस्त्रीसेवनान्मूत्रनिग्रहात् ।
मूत्रवाहीणिदुष्यन्तिक्षीणस्याथकृशस्यच ॥ २५ ॥

मूत्रके वेग आये हुए पर मूत्रको रोककर पानी पीनेसे एवम् मूत्रके वेगको रोककर स्त्री गमन करनेसे, मूत्रको रुकनेसे तथा क्षीणता और कृशता होनेसे मूत्रवाही स्रोत दूषित होजाते हैं ॥ २५ ॥

मलोंके स्रोतोंके दूषितहोनेका कारण ।

विधारणादत्यशनादजीर्णाध्यशनात्तथा ।
वर्चोवहीनिदुष्यन्तिदुर्बलाग्ने कृशस्यच ॥ २६ ॥

मलके वेगको रोकनेसे, अधिक भोजन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, दुर्बल अग्निके होनेसे तथा कृशताके कारण मलवाही स्रोत दूषित होतेहैं ॥ २६ ॥

स्वेदवाहीस्रोतोंके दूषितहोनेका कारण ।

व्यायामादतिसन्तापाच्छीतोष्णाक्रमसेवनात् ।
स्वेदवाहीनिदुष्यन्तिक्रोधशोकभयैस्तथा ॥ २७ ॥

अधिक व्यायाम करनेसे, अधिक धूप, तथा तापके सहनेसे, विकृतभावसे सर्दी गर्मीके सेवनसे, शोक तथा भयसे, स्वेदके वहन करनेवाले स्रोत दूषित होजातेहैं ॥२७॥

अन्यकारण ।

आहारश्चविहारश्चय स्याद्दोषगुणै सम ।
धातुभिर्विगुणश्चापिस्रोतसांसप्रदूषक ॥ २८ ॥

जो आहार विहार-वात, पित्त, कफके साम्यगुणवाले हैं वह स्रोतोंको दूषित करते हैं जो आहार विहार धातुओंके असमान गुण करनेवाले हैं वह भी स्रोतोंको दूषित करते हैं ॥ २८ ॥

अतिप्रवृत्ति सङ्गोवासिराणाग्रन्थयोऽपिवा ।
विमार्गगमनयापिस्रोतसांदुष्टलक्षणम् ॥ २९ ॥

मलादिकोंकी अधिक प्रवृत्ति अथवा विरोध होना तथा नसोंमें गांठोंका पड़ना और पदार्थोंका अपने मार्गको त्यागकर दूसरे मार्गद्वारा निकलना यह दूषितहुए स्रोतोंके लक्षण होतेहैं ॥ २९ ॥

रोगोको सख्यासख्येयत्व ।

एवमेतत्प्रभाववलाधिष्ठाननिमित्ताशयद्वैधसमुच्छेदप्रकृत्यन्तरे-
णभिद्यमानमथवासन्धीयमानस्यादेकत्त्ववावहुत्त्ववा, एकत्वं
तावदेकमेवरोगानीकदु.खसामान्यात्, वहुत्वन्तुदशरोगानी-
कानिप्रभावभेदादीनि, वहुत्वमपिसंख्येयवास्यादसख्येय,
संख्येययथोक्तम्–अष्टोदरीये, असख्येययथामहतिरोगाध्याये
रुग्वर्णसमुत्थानादीनामसख्येयत्वात् ॥ २ ॥

इस प्रकार प्रभाव, मल, अधिष्ठान, निमित्त, और आशयभेदसे दो दो प्रकारके होतेहुए भी निदान और प्रकृतिके भेदसे सब रोग पृथक २ अथवा मिले हुए होते है इस प्रकार सपूर्ण रोगोको एकत्व अथवा बहुत्व कथन किया है। जैसे–सपूर्णरोग दु ख देनेवाले होनेसे अर्थात् दु खदायित्व होनेसे सपूर्ण रोगसमूहको एकत्व कथन कियाहै अब बहुत्वको कथन करते है। प्रभाव भेदादिकोंसे रोगसमूह दश भेदमे विभक्त है। रोगोंके बहुत्वकी सख्या हो भी सकती है और सूक्ष्म अशाश विकल्पना द्वारा इनकी सख्या नहीं होसकती। जैसे–अष्टोदरीयाध्यायमें रोगोंकी सख्या और महारोगाध्यायमे असख्यता वर्णन की है। सपूर्ण रोगसमूह पीडा, वर्ण, कारण आदि भेदोंसे कल्पना किये जानेपर असख्यताको प्राप्त होतेहैं ॥ २ ॥

नचसख्येयाग्रेपुभेदप्रकृत्यन्तरीयेष्वविगीतिरित्यतोनदोपवती-
स्यादत्रकाचित्प्रतिज्ञानचाविगीतिरित्यत स्याददोपवच्छेत्ताहि
भेद्यमन्यथाभिनत्त्यन्यथापुरस्ताद्भिन्न भेदप्रकृत्यन्तरेणभिन्द
न्भेदसख्याविशेषमापादयत्यनेकधानचपूर्वभेदाग्रमुपहन्ति ॥ ३ ॥

सपूर्ण रोगोंके एक ही समय सख्येय और असख्येय होनेसे कोई विरोध उत्पन्न नहीं हो सकता क्योकि जिस प्रकार रोग सख्येय और असख्येय होते हैं उनका वर्णन प्रथम करचुके है। इसलिये इसस्थानमें कोई विरोधी दोप उत्पन्न नहीं होसकता भेद करनेवाला अपनी इच्छासे एक वस्तुको एक प्रकारका कथन कर दूसरे समय उसी वस्तुके अनेक भेद दिखा सकता है। और प्रकारान्तरसे भेद सख्याको अनेक प्रकारकी करते हुए प्रथम कथन किये हुए एक प्रकारके भेदमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं होने देता ॥ ३ ॥

अब अध्यायकी पूर्तिमें श्लोक कहते हैं कि इस स्रोतोविमान नामक अध्यायमें-तेरह स्रोतोंके मूल, उनके दूषित होनेके लक्षण, सामान्यनाम, पर्यायवाचक शब्द, परस्पर कोपक्रम, पृथक् २ दोषोंके हेतु और औषध उद्देश तथा स्रोतोंका निश्चय इनका वर्णन कियागया है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

केवलंविदितंयस्यशरीरंसर्वभावतः ।
शारीराःसर्वरोगाश्चसकर्म्मसुनमुह्यति ॥ ३६ ॥

इति चरकसंहितायां विमानस्थाने स्रोतोविमानम् ।

जिस वैद्यको संपूर्ण भावोंसे शरीरका ज्ञान है तथा शरीरके संपूर्ण रोगोंको जानता है वह वैद्य चिकित्सा कर्ममें मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० विमानस्थान भाषाटीकायां स्रोतोविमान नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातो रोगानीकं विमानंव्याख्यास्याम इति ह स्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम रोगानीक विमानकी व्याख्या करते हैं । इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

रोगोंके विभाग ।

द्वेरोगानीकेभवतः प्रभावभेदेनसाध्यंचासाध्यंच, द्वेरोगानीके बलभेदेनमृदुचदारुणञ्च, द्वेरोगानीके अधिष्ठानभेदेनमनोऽधिष्ठानंशरीराधिष्ठानञ्च, रोगानीकेद्वेनिमित्तभेदेनस्वधातुवैषम्य-निमित्तञ्चागन्तुनिमित्तञ्च, द्वेरोगानीकेआशयभेदेनआमाशय-समुत्थञ्चपक्वाशयसमुत्थञ्च ॥ १ ॥

रोगोंके प्रभावसे भेदसे दो प्रकारके होते हैं । प्रथम साध्य । द्वितीय असाध्य । रोग समूहके बलके भेदसे दो भेद होते हैं मृदु और दारुण । अधिष्ठान भेदसे दो प्रकारके हैं । मनोधिष्ठान और शरीराधिष्ठान । निमित्त भेदसे भी दो प्रकारके हैं निजधातुवैषम्यनिमित्तक और आगन्तुक निमित्तक । आशय भेदसे भी दो प्रकारके हैं आमाशयमें उत्पन्न होनेवाले और पक्वाशयमें उत्पन्न होनेवाले ॥ १ ॥

रोगोंको सख्यासख्येयत्व ।

एवमेतत्प्रभाववलाधिष्ठाननिमित्ताशयद्वैधसमुच्छेदप्रकृत्यन्तरे-
णभिद्यमानमथवासन्धीयमानस्यादेकत्ववावहुत्ववा, एकत्व
तावदेकमेवरोगानीकदु.खसामान्यात्, वहुत्वन्तुदशरोगानी-
कानिप्रभावभेदादीनि, वहुत्वमपिसंख्येयवास्यादसख्येय,
सख्येययथोक्तम्-अष्टोदरीये, असख्येययथामहतिरोगाध्याये
रुग्वर्णसमुत्थानादीनामसख्येयत्वात् ॥ २ ॥

इस प्रकार प्रभाव, वल, अधिष्ठान, निमित्त, और आशयभेदसे दो दो प्रकारके होतेहुए भी निदान और प्रकृतिके भेदसे सब रोग पृथक २ अथवा मिले हुए होते हैं इस प्रकार सपूर्ण रोगोंको एकत्व अथवा वहुत्व कथन किया है। जैसे-सपूर्णरोग दु.ख देनेवाले होनेसे अर्थात् दु खदायित्व होनेसे सपूर्ण रोगसमूहको एकत्व कथन कियाहै अब वहुत्वको कथन करते है। प्रभाव भेदादिकोंसे रोगसमूह दश भेदमे विभक्त है। रोगोंके वहुत्वकी सख्या हो भी सकती है और सूक्ष्म अशाश विकल्पना द्वारा इनकी सख्या नहीं होसकती। जैसे-अष्टोदरीयाध्यायमे रोगाकी सख्या और महारोगाध्यायमें असख्यता वणन की है। सपूर्ण रोगसमूह पीडा, वर्ण, कारण आदि भेदोंसे कल्पना किये जानेपर असख्यताको प्राप्त होतेहैं ॥ २ ॥

नचसख्येयाग्रेपुभेदप्रकृत्यन्तरीयेष्वविगीतिरित्यतोनदोपवती-
स्यादत्रकाचित्प्रतिज्ञानचाविगीतिरित्यत स्याददोपवच्छेत्ताहि-
भेद्यमन्यथाभिनत्त्यन्यथापुरस्ताद्भिन्न भेदप्रकृत्यन्तरेणभिन्द-
न्भेदसख्याविशेपमापादयत्यनेकधानचपूर्वभेदाग्रमुपहन्ति ॥ ३ ॥

संपूर्ण रोगोंके एक ही समय सख्येय और असख्येय होनेसे कोई विरोध उत्पन्न नहीं हो सकता क्योंकि जिस प्रकार रोग सख्येय और असख्येय होते हैं उनका वर्णन प्रथम करचुके ह। इसलिये इसस्थानमें कोई विरोधी दोप उत्पन्न नहीं होसकता भेद करनेवाला अपनी इच्छासे एक वस्तुको एक प्रकारका कथन कर दूसरे समय उसी वस्तुके अनेक भेद दिखा सकता है। और प्रकारान्तरसे भेद सख्याको अनेक प्रकारकी करते हुए प्रथम कथन किये हुए एक प्रकारके भेदमें किसीप्रकारकी आपत्ति नहीं होने देता ॥ ३ ॥

समानायामपिखलुभेदप्रकृतौप्रकृतानुपयोगान्तरमपेक्ष्यसन्ति अर्थान्तराणिसमानशब्दाभिहितानि । समानोहिरोगशब्दो दोषेषुव्याधिषुचवर्त्तते। दोषाअपिरोगशब्दमातङ्कशब्दयक्ष्मशब्ददोषप्रकृतिशब्दविकारशब्दञ्चलभन्ते । तत्रदोषेषुचैवव्याधिषुचरोगशब्द.समान शेषेषुतुविशेषवान् ॥ ४ ॥

भेदक कारणके समान होनेपर भी कहीं कहीं प्रयोगान्तरकी अपेक्षा करते हुए समान शब्दसे कहे हुए शब्दोंके अर्थ अलग २ ग्रहण किये जाते हैं। जैसे-रोग शब्दसे दोष और व्याधि इन दोनोंकाही बोध होता है अर्थात् रोगशब्द दोषों और व्याधि याम सामान्यरूपसे व्यापक है। दोषभी रोगशब्द, आतङ्कशब्द, यक्ष्मशब्द, दोष तथा प्रकृति शब्द या दोष प्रकृति शब्द एवम् विकार शब्दसे ग्रहण किये जाते हैं। इनमें रोगशब्द दोषोंमें तथा व्याधियोंमें समान है और अन्य स्थलोंमें विशेष अर्थात् अलग होता है ॥ ४ ॥

तत्रव्याधयोऽपरिसंख्येयाभवन्त्यतिबहुत्वाद्दोषास्तुपरिसंख्येया अनतिबहुत्वात्तस्माद्यथोचितविकाराउदाहरणार्थमनवशेषेणच दोषाव्याख्यास्यन्ते ॥ ५ ॥

इनमें व्याधियें अपरिसंख्येय अर्थात् अगण्य होती हैं क्योंकि वह बहुत सख्या अथवा कल्पना द्वारा अत्यन्त ही बहुत हैं। परन्तु दोष संख्यावाले हैं क्योंकि वह बहुत नहीं हैं। इसलिये उदाहरणके लिये विकारोंको तथा दोषोंको विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

दोषोंका वर्णन ।

रजस्तमश्चमानसौदोषौ, तयोर्विकाराः कामक्रोधलोभमोहेर्ष्यामानमदशोकचित्तोद्वेगभयहर्षादयः ॥ ६ ॥

रजोगुण और तमोगुण मनके दोष हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, अभिमान, मद, शोक, चिन्ता उद्वेग, भय और हर्ष आदिक इन मनके दोषोंके विकार हैं। अर्थात् मनके रोग हैं ॥ ६ ॥

वातपित्तश्लेष्माणस्तुशारीरादोषास्तेषामपिचविकाराज्वरातीसारशोफशोषश्वासमेहकुष्ठादयइति ॥ ७ ॥

वात, पित्त और कफ यह शरीरमें रहनेवाले दोष है । ज्वर, अतिसार, शोथ, शोष प्रमेह, कुष्ठ आदिक उन दोषोंके विकार है ॥ ७ ॥

दोषाश्चकेवलाव्याख्याताः, विकारैकदेशश्च ॥ ८ ॥

यहापर केवल दोषोंका कथन कियाहै और विकारोंके एकदेशका कथन कियाहै८

दोषोंका त्रिविधकोप ।

तत्रतुखल्वेषाद्वयानामपिदोषाणांत्रिविधंप्रकोपणमसात्म्येन्द्रियार्थसयोगःप्रज्ञापराधःपरिणामश्चेति । प्रकुपितास्तुप्रकोपण विशेषात् । द्रव्यविशेषाच्चविकारविशेषानभिनिर्वर्त्तयन्तिअपरिसख्येयास्ते विकाराःपरस्परमनुवर्त्तमाना । कदाचिदनुवध्नन्तिकामादयोज्वरादयश्चानियतस्त्वनुवन्धोरजस्तमसोःपरस्परंनह्यरजस्कन्तमः ॥ ९ ॥

इन शारीरिक और मानसिक दोना प्रकारके दोषोंके ही कुपित करनेवाले तीन प्रकारके कारण होतेहै । जैसे असात्म्य विषयोंका सेवन, प्रज्ञापराध और परिणाम (समय) इनमे पृथक् २ प्रकोपके कारणोंसे तथा द्रव्यविशेष वलसे कुपितहुए दोष अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न करतेहै । यह विकार असख्य होतेहैं । कामादिक मानसिक विकार, ज्वरादिक शारीरिक विकार कभी २ आपसमे एक दूसरेके आश्रयीभूत होजातेहै अर्थात् एक दूसरेके सहायक होजातेहै या आपसमे मिलजातेहै क्योंकि रजोगुण और तमोगुणका आपसमें परस्पर अनुवध है । तमोगुण रजोगुणके विना रह नहीं सकता ॥ ९ ॥

प्राय शरीरदोषाणामेकाधिष्ठियमानानासन्निपात ससर्गोवास मानगुणत्वाद्दोषाहिदूषणे समाना ॥ १० ॥

शारीरिक दोषोंका एक ही अधिष्ठान (रहनेका स्थान) होता है अर्थात् वात, पित्त और कफका अधिष्ठान शरीर है । इसलिये प्राय उनका ससर्ग और सन्निपात होजाताहै । क्योंकि उष्ण शीत आदि तथा रूक्ष, स्निग्ध आदि दोषोंके पृथक्पृथक् गुण होनेपर भी दूषण करनेवाला गुण तीना दोषोंमे समान होनेसे एक दोष दूसरेको भी दूषित करलेताहै । अर्थात् दूषण स्वभाववाले होनेसे दोष एक दूसरेके सहायक होजातेहै और दूषण स्वभावसे समानगुणवाले होजातेहै ॥ १० ॥

अनुबन्ध्यानुबन्ध भेद ।

तत्रानुबन्ध्यानुबन्धकृतो विशेषः स्वतन्त्रो व्यक्तलिङ्गो यथोक्त-
समुत्थानप्रशमो भवत्यनुबन्ध्यस्तद्विपरीतलक्षणोऽनुबन्धः ॥ ११ ॥

उनमें अनुबन्ध्य और अनुबन्धकी विशेषता यह है कि अनुबन्ध्य स्वतन्त्र और प्रकट लक्षणवाला होता है और उसका प्रकट होना तथा, शमन होना भी यथोक्त प्रकारसे होता है अर्थात् स्वतन्त्र होता है । और अनुबन्ध परतन्त्र तथा विपरीत लक्षण वाला होता है । इसके समुत्थान और प्रशमन भी पूर्वोक्त क्रमसे नहीं होते । तात्पर्य यह हुआ कि दूषित हुए वायुने अपने साथमें पित्तको भी दूषित करलिया । इस जगह वायु अनुबन्ध्य और पित्त अनुबन्ध होता है । इसलिये वायु स्वतन्त्र और प्रकट-लक्षणवाला तथा अपने कारणोंसे कुपित हुआ और शमनात्मक द्रव्योंद्वारा शान्त होनेवाला होता है । पित्त अनुबन्ध होनेसे परतन्त्रादि गुणवाला जानना ॥ ११ ॥

सन्निपातादि दोष भेद ।

अनुबन्ध्यानुबन्धलक्षणसमन्वितास्तत्र यदि दोषा भवन्ति तत्त्रि
कं सन्निपातमाचक्षते द्वयं वा संसर्गम् । अनुबन्ध्यानुबन्धविशेष
कृतस्तु बहुविधो दोषभेदः । एवमेष संज्ञाप्रकृतो भिषजां दोषेषु
च व्याधिषु च नानाप्रकृतिविशेषव्यूहः ॥ १२ ॥

यदि किसी रोगमें-वात, पित्त, कफ अनुबन्ध्य तथा स्वतन्त्र और प्रकट लक्षण-वाले हों तो उन तीनों दोषोंके मिलापको सन्निपात कहा जाता है । यदि दो दोष स्वतन्त्र होकर और प्रकट लक्षणोंद्वारा मिले हुए हों तो उनको संसर्ग कहते हैं । इसप्रकार अनुबन्ध्य और अनुबन्ध विशेषसे किये हुए रोगोंके बहुत प्रकारसे भेद होजाते हैं । इस तरह वैद्योंके कथन किये हुए संज्ञा और प्रकृति भेदसे दोषोंमें तथा व्याधियोंमें अनेक प्रकारके भेद होजाते हैं ॥ १२ ॥

अग्निभेद ।

अग्निषु तु शारीरेषु चतुर्विधो विशेषो बलभेदेन । तद्यथा—तीक्ष्णो
मन्दः समो विषमश्चेति । तत्र तीक्ष्णोऽग्निः सर्वापचारसहस्तद्विप-
रीतलक्षणो मन्दः । समस्तु खल्वपचारतो विकृतिमापद्यते
अनपचारतः प्रकृतावतिष्ठते । समलक्षणविपरीतलक्ष-
णस्तु विषमः इत्येते चतुर्विधा भवन्त्यग्नयश्चतुर्विधानामेव पुरुषाणाम् ॥ १३ ॥

शारीरिक अग्निके बल भेदसे चार प्रकार होतेहै । जैसे-तीक्ष्णाग्नि, मदाग्नि, समाग्नि और विपमाग्नि । इनमें तीक्ष्णाग्नि सब प्रकारके कुपथ्योंको सहन करसकती है । और मदाग्नि तीक्ष्णाग्निसे विपरीत लक्षणवाली होतीहै अर्थात् यह किंचित् कुपथ्यको भी सहन नहीं कर सकती । जो अग्नि कुपथ्यादि अपचार करनेसे विकृत होजाय और कुपथ्य न करनेसे अपनी ठीक अवस्थामें रहे उसको समाग्नि कहतेहै । एवम् समाग्निसे विपरीत लक्षणवालीको विपमाग्नि कहतेहैं । इस प्रकार चार प्रकारके पुरुषोंकी चार प्रकारकी अग्नि होतीहै ॥ १३ ॥

चारप्रकारके पुरुष ।

तत्रसमवातपित्तश्लेष्मणाप्रकृतिस्थानांसमाभवन्तिअग्नय. । वातलानान्तुवाताभिभूतेऽग्न्यधिष्ठानेविपमाभवन्तिअग्नय । पित्तलानान्तुपित्ताभिभूतेऽग्न्यधिष्ठानेतीक्ष्णाभवन्तिअग्नय श्लेष्मलानान्तुश्लेष्माभिभूतेह्यग्न्यधिष्ठानेमन्दाभवन्तिअग्नयः । तत्रकेचिदाहुर्नसमवातपित्तश्लेष्माणोजन्तव.सन्तिविपमाहारोपयोगित्वान्मनुष्याणाम्, तस्माच्चकेचिद्वातप्रकृतय केचित् पित्तप्रकृतय केचित्पुन श्लेष्मप्रकृतयोभवन्तीति । तच्चानुपपन्नकस्मात् कारणात्समवातपित्तश्लेष्माणह्यरोगमिच्छन्तिभिपज प्रकृतिश्चारोग्यम्, आरोग्यार्थाचभेपजप्रवृत्ति'साचेष्टारूपा, तस्माद्भवन्तिसमवातपित्तश्लेष्माण. । नतुखलुसन्ति वातप्रकृतय.पित्तप्रकृतयः श्लेष्मप्रकृतयोवातस्यतस्याकिलदोपस्यहिअधिकभावात्सासादोपप्रकृतिरुच्यतेमनुष्याणाम् ॥ १४

इनमें वात, पित्त, कफकी साम्यावस्था रहनेसे अर्थात् अपने २ स्वभावमें स्थित रहनेसे अग्नि सम रहतीहै । वातप्रधान मनुष्योंके वायुद्वारा अग्निस्थान व्याप्त होनेसे अग्नि विपम होती है ॥ यहापर कोई कहते हैं कि वात, पित्त, कफ किसी मनुष्यके शरीरमें साम्यावस्थामें नहीं रहते क्योंकि सब मनुष्योंका आहार एक प्रकारका और वात, पित्त, कफको समान रखनेवाला नहीं होता । इसीलिये कोई मनुष्य वातप्रकृति कोई पित्तप्रकृति और कोई कफप्रकृतिवाले होतेहैं । सो यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि जिसके शरीरमें वात, पित्त और कफ साम्यावस्थामें हैं अर्थात् अपने२ परिमाणमें स्थित है उन्हीं मनुष्योंको वैद्य आरोग्य अर्थात् निरोगी कहतेहैं ।

आरोग्यतारी मनुष्योंकी प्रकृति है । आरोग्यताके लियेही औषध आदिकोंका प्रयोग किया जाता है इसीलिये वात, पित्त कफकी साम्यावस्थावाले मनुष्य ही आरोग्य कहे जाते हैं और उनको वातप्रकृति पित्तप्रकृति अथवा कफप्रकृति नहीं कहा जाता । जिस जिस दोषकी अधिकता जिस मनुष्यमें होती है उसको उसी दोषकी प्रकृतिवाला कहा जायगा ॥ १४ ॥

नचविकृतेषुदोषेषुप्रकृतिस्थत्वमुपपद्यतेतस्मान्नैता· प्रकृतयः सन्तिसन्तितुखलुवातला पित्तला श्लेष्मलाश्चाप्रकृतिस्थास्तु तेज्ञेया ॥ १५ ॥

अब कहतेहैं कि यदि किसी मनुष्यके शरीरमें वायु अधिक हो तो उसको वात प्रकृति नहीं कहना चाहिये क्योंकि प्रकृतिनाम अपने ठीक स्वभावमें स्थित रहनेका है । वायुकी अधिकता होनेसे वायुकी विकृति माननी चाहिये । इसलिये विकृत हुए दोषोंको प्रकृति नहीं कहना चाहिये । सो वातल, पित्तल, श्लेष्मल अर्थात् वातप्रधान कफप्रधान और पित्तप्रधान मनुष्य प्रकृतिस्थ नहीं होते ॥ १० ॥

चार अन्नप्रणिधान ।

तेषान्तुखलुचतुर्विधानापुरुषाणांचत्वार्यन्नप्रणिधानानिश्रेय- स्कराणि । तत्रसमसर्वधातूनासर्वाकारसममधिकदोषाणान्तु त्रयाणांयथास्वदोषाधिक्यमभिसमीक्ष्यदोषप्रतिकूलयोगीनि त्रीणिअन्नप्रणिधानानिश्रेयस्कराणियावदग्नेःसमीभावात्,समे तुसममेवतुकार्य्यमेवचेष्टाभेषजप्रयोगाश्चापरे, तद्विस्तरेणातु व्याख्यास्यन्ते । त्रयस्तुपुरुषाभवन्त्यातुरास्तेअनातुरास्तन्त्रा- न्तरीयाणाभिषजाम् । तद्यथा–वातलः श्लेष्मल पित्तल इति ॥ १६ ॥

इन चार प्रकारके पुरुषोंके लिये अग्निके अनुसार चार प्रकारके ही आहार विधान होते हैं उनमें जिस मनुष्यकी जाठराग्नि सब धातुएं साम्यावस्थामें हों तथा तीनों दोष पृथक्‌रूपसे बढे हुए हों उनमें तीनों दोषोंके अनुसार ही अग्निकारोंके विकार होतेहैं प्रतिकूल भावसे समझाने अर्थात् दोषोंकी साम्य रखनेमें उपयोगी औषध अन्नपानादिकोंसे अन्य भी कहिये कि जिस मनुष्यके शरीरमें वातादिकोंमें दोष बढा हुआ हो उसको उसके विरुद्ध गुणवाले अन्नपानादि दे । अब इन मनुष्योंकी अग्नि

दोषोकी साम्यावस्था होनेसे समअवस्थामें आजाय तब उसको त्रिविध आहारोंको समरीतिपर उपयोग करावे। जिस प्रकार अन्नपान तथा अन्यान्य क्रिया और औषधादिक प्रयोग दोषोंको तथा अग्निको साम्यावस्थामें करनेके लिये किये जाने चाहिये उनका विस्तारपूर्वक आगे वर्णन करते है। तीन प्रकारके पुरुष-रोगी होते है परन्तु अन्य शास्त्रोंके माननेवाले वैद्य उनको रोगी नहीं मानते। वह तीन प्रकारके पुरुष यह है। जैसे-वातप्रधान, पित्तप्रधान और कफप्रधान ॥ १६ ॥

तेषांविशेषविज्ञानंवातलस्यवातनिमित्ता पित्तलस्यपित्तनिमित्ता श्लेष्मलस्यश्लेष्मनिमित्ताव्याधयः प्रायेणबलवन्तश्च ॥१७॥

उनका विशेष विज्ञान इस प्रकार है कि वातप्रधान मनुष्यको वातके रोग अधिक होतेहै। पित्तप्रधान मनुष्यको पित्तके रोग अधिक होते है। तथा कफप्रधान मनुष्यको कफके रोग प्रायः अधिक होतेहै ॥ १७ ॥

वातप्रकृतिके रोग।

तत्रवातलस्यप्रकोपणोक्तान्यासेवमानस्याक्षिप्रवातःप्रकोपमापद्यतेनतथेतरौ ॥ १८ ॥

इनमें वातप्रधान मनुष्यके शरीरमें वातकारक पदार्थोंको खानेसे वायु शीघ्र कोपको प्राप्त होता है। इस प्रकार पित्तकारक और कफकारक पदार्थोंको अधिक खानेसे वातप्रधान मनुष्यके शरीरमें पित्त और कफका कोप नहीं होता ॥ १८ ॥

सतस्यप्रकोपमापन्नोयथोक्तैर्विकारैःशरीरमुपतपतिबलवर्णसुखायुषामुपघाताय ॥ १९ ॥

वातप्रधान मनुष्यके शरीरमे वायुका कोप होनेसे-वायुके रोग उत्पन्न होकर शरीरको दुःखित कर देते हैं तथा बल, वर्ण, सुख और आयुको भी नष्ट कर डालते है ॥ १९ ॥

वायुके जीतनेका उपाय।

तस्यावजयनस्नेहस्वेदौविधियुक्तौमृदूनिचसंशोधनानिस्नेहोष्णमधुराम्ललवणयुक्तानितद्वदभ्यवहार्य्याण्युपनाहनोपवेष्टनोन्मर्दनपरिषेकावगाहनसंवाहनावपीडनवित्रासनविस्मापनविस्मारणानिसुरासवविधानस्नेहाश्चअनेकयोनयोदीपनीयपाच-

नीयावातहरविरेचनीयोपहिता शतपाका सहस्रपाका सर्वश-
प्रयोगार्थावस्तयोबस्तिनियमःसुखशीलताचेति ॥ २० ॥

उस मनुष्यके शरीरमें—वायुको जीतनेवाली स्नेहन और स्वेदन क्रिया विधिपूर्वक करे । एवम् चिकने, गरम, मधुर, खट्टे लवणयुक्त पदार्थोंद्वारा मृदु संशोधन करे । तथा चिकने, गर्म आदि आहार करावे और वातनाशक, लेप, मथन, मर्दन, परिषेक, अवगाहन, संवाहन और पीडन, वित्रासन, विस्मापन, विस्मारण, मद्य और आसव आदिकोंका तथा अनेक वातनाशक द्रव्योंका उपयोग करना चाहिये । एवम् वातनाशक स्वेद और दीपन तथा पाचन एवम् वायुके हरनेवाले शतपाकी तथा सहस्रपाकी घृत और तैलका सेवन करावे । अथवा वातनाशक द्रव्यों द्वारा सौवार अथवा सहस्रवार पकाये हुए घृत तथा तैलों द्वारा वस्तिकर्म या अन्य प्रकारसे सुखदायक प्रयोग कर वायुको जीतना चाहिये ॥ २० ॥

पित्तके जयका यत्न ।

पित्तलस्यापिपित्तप्रकोपणान्यासेवमानस्याक्षिप्रपित्तप्रकोप-
मापद्यते, तथानेतरौ ॥ २१ ॥

पित्तप्रधान मनुष्योंके शरीरमें पित्तकारक पदार्थोंके सेवनसे पित्तका शीघ्र कोप होजाताहै तथा वात और कफका कोप इसप्रकार नहीं होता ॥ २१ ॥

तदस्यप्रकोपमापन्नंयथोक्तैर्विकारैःशरीरमुपतपतिबलवर्णसुखा-
युषामुपघाताय ॥ २२ ॥

तब पित्तप्रधान मनुष्यके शरीरमें कोपको प्राप्त हुआ पित्त शरीरको पित्तके विकारोंसे तपायमान करताहै तथा बल, वर्ण सुख और आयुको भी नष्ट कर डालता है ॥ २२ ॥

तस्यावजयनंसर्पिष्पानंसर्पिषाचस्नेहनमधश्चदोषहरणंमधुरति-
क्तकषायशीतानांचौषधानामभ्यवहार्याणामुपयोगोमृदुमधु-
रसुरभिशीतहृद्यानांगन्धानांचोपसेवामुक्तामणिहारावलीनां
चपरमशिशिरवारिसंस्थितानांधारणमुरसाक्षणेक्षणेऽग्र्यचन्द-
नप्रियङ्गुकालीयमृणालशीतवातवारिभिरुत्पलकुमुदकोकनदसौ-
गन्धिकपद्मानुगतैश्चवारिभिरभिप्रोक्षणंश्रुतिसुखमृदुमधुरमनो-
नुगानांचगीतवादित्राणांश्रवणमभ्युदयानांसुहृद्भिःसंयोगःस-

योगश्चइष्टाभिःस्त्रीभिःशीतोपहिताशुकस्त्रग्धारिणीभिर्निशाकराशुशीतप्रवातहर्म्यवास शैलान्तरपुलिनशिशिरसदनवसनव्यजनपवनानासेवारम्याणाञ्चोपवनानासुखशिशिरसुरभिमारुतोपवातानामुपसेवनसेवनञ्चनलिनोत्पलपद्मकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रहस्तानासौम्यानाञ्चसर्वभावानामिति २३॥

उस पित्तको जीतनेके लिये पित्तनाशक घृतका पीना तथा पित्तनाशक घृतोंद्वारा स्नेहन करना, विरेचन कराना एवम् मधुर, तिक्त, कपाय, शीतल औषधियोंका सेवन करना तथा मृदु, मधुर, सुगंधित, शीतल, हृदयको प्रिय ऐसे आहारोंका सेवन करना, सुगंधीका लेप तथा चंदन आदि शीतल गंधोंका लगाना, मोती और मणियोंकी माला पहिनना, शीतल पवन तथा शीतल जलके छींटे छातीपर लेना, क्षणक्षणमें चंदन, अगर, प्रियगु, कमलकी डण्डी, शीतल और सुगंधित कमल कुमोदनी, कोकनद, कल्हार, आदिक कमलोंको शीतल जल और पवनसे ठण्डे करके उनसे शीतल जल अपने शरीरपर छिडकना, कानोंको सुखदायक मृदु मधुर, मनोहर गीत और बाजोंका सुनना, उत्तम शब्दोंको सुनना, अपने प्यारे मित्रोंसे मिलना शीतल, सुगंधित पुष्पमाला आदि धारण कियेहुए सुशोभित स्त्रियोंसे सहवास करना शीतल वायुयुक्त चंद्रमाकी चांदनीको महलकी छतपर लेटकर सेवन करना, पहाडमें बहनेवाली नदियोंके किनारे तथा ठण्डे मकानोंमें रहना, शीतल वस्त्र धारण करना शीतल पंखेकी पवन लेना, रमणीय सुगंधित शीतल बागोंमें शीतल सुगंधित पवनका सेवन करना, नलिनी, उत्पल, पद्म, कुमुद, कह्लार, पुण्डरीक शतपत्र आदि पुष्पोंको धारण किये सब प्रकारके सौम्यभावोंका सेवन करना पित्तके कोपको शान्त करता है ॥ २३ ॥

कफके जयका उपाय ।

श्लेष्मलस्यापिश्लेष्मप्रकोपणोक्तान्यासेवमानस्यक्षिप्रश्लेष्मा प्रकोपमापद्यते, नतथेतरौदोषौ ॥ २४ ॥ तदस्यप्रकोपमापन्नो यथोक्तैर्विकारै शरीरमुपतपतिबलवर्णसुखायुपामुपघाताय ॥२५॥

कफप्रधान मनुष्योंके शरीरमें-कफकोपकारक पदार्थोंके सेवनसे कफ शीघ्र प्रकोपको प्राप्त होजाताहै । उस प्रकार वात, पित्त नहीं होते । फिर इसके शरीरमें यह कोपको प्राप्त हुआ कफ अपने विकारों द्वारा शरीरको कष्ट देता है तथा बल, वर्ण सुख और आयुको भी नष्ट कर डालता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

तस्यावजयनं विधियुक्तानि तीक्ष्णोष्णानि संशोधनानि रूक्षप्रायाणि चाभ्यवहार्य्याणि कटुतिक्तकषायोपहितानि तथैव धावनलङ्घनप्लवनपरिसरणजागरणनियुद्धव्यवायव्यायामोन्मर्दनस्नानोत्सादनानि विशेषतस्तीक्ष्णानां दीर्घकालस्थितानां मद्यानामुपयोग सर्वशश्चोपवासस्तथोष्णवास सधूमपानं सुखप्रतिषेधश्च सुखार्थमेवेति ॥ २६ ॥

उस कफके जीतनेके लिये अनेक प्रकारके विधिपूर्वक तीक्ष्ण और उष्ण संशोधनोंको करे और प्राय रूक्ष, पदार्थोंका भक्षण कटु, तिक्त, कषाय रसवाले द्रव्योंका सेवन करे। तथा भागना, लंघन करना उछलना कूदना, परिसर्पण करना जागना तथा कुश्ती, मैथुन, व्यायाम, मर्दन, स्नान और उत्सादन आदिका उपयोग करना विशेषतासे तीक्ष्ण और पुराने मद्यका सेवन करना, सब प्रकारसे उपवास करना गरम स्थानोंमें रहना, गर्म वस्त्र पहनना धूमपान, करना आरामके नष्ट करनेवाले पदार्थोंका उपयोग करना चाहिये इनके करनेसे कफके विकार नष्ट होजाते हैं ॥ २६ ॥

अध्यायका उपसंहार।

भवन्ति चात्र। सर्वरोगविशेषज्ञः सर्वकार्य्यविशेषवित्।
सर्वभेषजतत्त्वज्ञो राज्ञः प्राणपतिर्भवेत् ॥ २७ ॥

महर्षि कहते हैं कि सम्पूर्ण रोगविशेषका जाननेवाला तथा संपूर्ण कार्य विशेषोंको समझनेवाला तथा सम्पूर्ण औषधियोंके तत्त्वको जाननेवाला वैद्य राजाओंका प्राणपति होता है ॥ २७ ॥

अध्यायका संक्षेप।

तत्रश्लोकाः।

प्रकृत्यन्तरभेदेन रोगानीकविकल्पनम्। परस्परविरोधश्च सामान्यं रोगदोषयोः ॥ २८ ॥ दोषसंख्याविकाराणामेकदोषप्रकोपनम्। जठरं प्रति चिन्ता च श्रयाश्चाप्रेक्षणानि च ॥ २९ ॥ नराणामनलादीनां प्रकृतिस्थापनानि च। रोगानीके विमानेऽस्मिन् व्याहृतानि महर्षिणा ॥ ३० ॥

इति श्रीचरकसंहितायां विमानस्थाने रोगानीकं विमानम्।

अध्यायके उपसंहारमें यहांपर श्लोक हैं। इस रोगानीक विमाननामक प्रकृतिके भेद, रोगसमूहोंके विभाग, रोगोंका परस्पर अविरोध, रोगसामान्य दोषसामान्यता एवम् दोषों और विकारोंकी संख्या एक २ दोषका प्रकोपन, भे.अनको पचनेकी अवस्था, जठराग्निकी चैतन्यता, वातप्रधान आदि मनुष्योंका प्रकृतिस्थ करना यह सब महर्षि आत्रेयजीने कथन कियाहै ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० वि० स्था० भाषाटीकायां रोगानीक नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातो व्याधितरूपीयविमानं व्याख्यास्यामः इति ह स्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम व्याधितरूपीय विमानकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे।

रोगीके भेद।

द्वौपुरुषौव्याधितरूपौभवतः, तद्यथा–गुरुव्याधितएकः सत्त्व-बलशरीरसम्पदुपेतत्वाल्लघुव्याधितइवदृश्यते। लघुव्याधितोऽपरःसत्त्वादीनामधमत्वाद्गुरुव्याधितइवदृश्यते ॥ १ ॥

दो प्रकारके पुरुष व्याधितरूप अर्थात् रोगी देखनेमें आतेहैं। उनमे एक तो इस प्रकारके होतेहैं कि अत्यन्त व्याधियुक्त होनेपर भी सत्त्व, बल और शारीरिक सम्पत्तिके सामर्थ्ययुक्त होनेसे थोडी व्याधिवाले दिखाई देतेहैं दूसरे इस प्रकारके होतेहैं कि जो थोडी व्याधियुक्त होनेपर भी सत्त्व, बलादिकोंकी हीनतासे भारी व्याधिवाले दिखाई देतेहैं ॥ १ ॥

अज्ञानियोंका भ्रम।

तयोरकुशलाः केवलचक्षुषैवरूपं दृष्ट्वाव्यवस्यन्तोव्याधिगुरुलाघवेविप्रतिपद्यन्ते। नहिज्ञानावयवेनकृत्स्नेज्ञेयेज्ञानमुत्पद्यते ॥२॥

इन दोनों प्रकारके पुरुषोंकी चिकित्सा करते समय अनभिज्ञ वैद्य केवल नेत्रोंसे रोगीकी आकृतिको देखकर ही व्याधिके गौरव और लाघवका निश्चय मान लेतेहैं। पर वह रोगके यथार्थ ज्ञानको संपूर्ण रूपसे नहीं जान शकते ॥ २ ॥

विप्रतिपन्नास्तुखलुरोगज्ञानेउपक्रमयुक्तिज्ञानेचअपिविप्रतिपद्यन्ते। तेयदागुरुव्याधितलघुव्याधितरूपमासादयन्तितदात-

तस्यावजयनविधियुक्तानितीक्ष्णोष्णानिसंशोधनानिरूक्षप्राया-णिचाभ्यवहार्य्याणिकटुतिक्तकषायोपहितानितथैवधावनलघन-प्लवनपरिसरणजागरणानियुद्धव्यवायव्यायामोन्मर्दनस्नानो-त्सादनानिविशेषतस्तीक्ष्णानादीर्घकालस्थितानामद्यानामुपयो-ग'सर्वशश्चोपवासस्तथोष्णवास सधूमपान सुखप्रतिषेधश्चसु-खार्थमेवेति ॥ २६ ॥

उस कफके जीतनेके लिये अनेक प्रकारके विधिपूर्वक तीक्ष्ण और उष्ण सशो धनोंको करे और प्राय रूक्ष, पदार्थोंका एवम् कटु, तिक्त, कषाय रसवाले द्रव्योंका सेवन करे । एवम् भागना, लघन करना, उछलना, कूदना, परिसर्पण करना जागना तथा कुश्ती, मैथुन, व्यायाम, मर्दन, स्नान और उत्सादन आदिका उपयोग करना विशेषतासे तीक्ष्ण और पुराने मद्यका सेवन करना, सब प्रकारसे उपवास करना गर्म स्थानामे रहना, गर्म वस्त्र पहनना धूम्रपान, करना, आलस्यके नष्ट करनेवाले पदार्थोंका उपयोग करना चाहिये इनके करनेसे कफके विकार नष्ट होतेहैं ॥ २६ ॥

अध्यायका उपसहार ।

भवतिचात्र । सर्वरोगविशेषज्ञ सर्वकार्य्यविशेषवित् ।
सर्वभेषजतत्त्वज्ञोराज्ञ प्राणपतिर्भवेत् ॥ २७ ॥

यहापर कहतेहै कि, सपूर्ण रोगविशेषको जाननेवाला तथा सपूर्ण कार्य विशेषको समझनेवाला एवम सपूर्ण औषधियोके तत्वको जाननेवाला वैद्य राजाओका प्राणपति होताहै ॥ २७ ॥

अध्यायका सक्षेप ।

तत्रश्लोका ।

प्रकृत्यन्तरभेदेनरोगानीकविकल्पनम् । परस्परविरोधश्चसा मान्यरोगदोषयो ॥ २८ ॥ दोषसख्याविकाराणामेकदोषप्रकोप नम् । जरणप्रतिचिन्ताचकायाग्नेर्धुक्षणानिच ॥ २९ ॥ नरा णावातलादीनाप्रकृतिस्थापनानिच । रोगानीकेविमानेऽस्मिन् व्याहृतानिमहर्षिणा ॥ ३० ॥

इति श्रीचरकसहिताया विमानखण्डे रोगानीक विमानम् ।

अध्यायके उपसंहारमें यहांपर श्लोक है। इस रोगानीक विमाननामके, प्रकृतिके भेद, रोगसमूहोंके विभाग, रोगोंका परस्पर अविरोध, रोगसामान्य दोषसामान्यता एवम् दोषों और विकारोंकी संख्या एक २ दोषका प्रकोपन, भे अनको पचनेकी अवस्था, जठराग्निकी चैतन्यता, वातप्रधान आदि मनुष्योंका प्रकृतिस्थ करना यह सब महर्षि आत्रेयजीने कथन कियाहै ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० वि० स्था० भाषाटीकायां रोगानीक नाम षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्याय.।

अथातो व्याधितरूपीयविमान व्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेय ।

अब हम व्याधितरूपीय विमानकी व्याख्या करतेहै इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे।

रोगीके भेद।

द्वौपुरुषौव्याधितरूपौभवत., तद्यथा–गुरुव्याधितएक सत्त्व-बलशरीरसम्पदुपेतत्वाल्लघुव्याधितइवदृश्यते। लघुव्याधितोऽपर सत्त्वादीनामधमत्वाद्गुरुव्याधितइवदृश्यते ॥ १ ॥

दो प्रकारके पुरुष व्याधितरूप अर्थात् रोगी देखनेमें आतेहै। उनमे एक तो इस प्रकारके होतेहैं कि अत्यन्त व्याधियुक्त होनेपर भी सत्त्व, बल और शारीरिक सम्पत्तिके सामर्थ्ययुक्त होनेसे थोडी व्याधिवाले दिखाई देतेहै दूसरे इस प्रकारके होतेहै कि जो थोडी व्याधियुक्त होनेपर भी सत्त्व, बलादिकोंकी हीनतासे भारी व्याधिवाले दिखाई देतेहै ॥ १ ॥

अज्ञानियोका भ्रम।

तयोरकुशला केवलचक्षुषैवरूप दृष्ट्वाव्यवस्यन्तोव्याधिगुरुलाघवेविप्रतिपद्यन्ते। नहिज्ञानावयवेनकृत्स्नेज्ञेयेज्ञानमुत्पद्यते ॥२॥

इन दोनों प्रकारके पुरुषोकी चिकित्सा करते समय अनभिज्ञ वैद्य केवल नेत्रोसे रोगीकी आकृतिको देखकर ही व्याधिके गौरव और लाघवका निश्चय मान लेतेहैं। पर वह रोगके यथार्थ ज्ञानको संपूर्ण रूपसे नहीं जान सकते ॥ २ ॥

विप्रतिपन्नास्तुखलुरोगज्ञानेउपक्रमयुक्तिज्ञानेचअपिविप्रतिपद्यन्ते। तेयदागुरुव्याधितलघुव्याधितरूपमासादयन्तितदात-

मल्पदोषमत्वासंशोधनकालेऽस्मैमृदुसंशोधनंप्रयच्छन्तोभूयए-
वास्यदोषमुदीरयन्ति। यदातुलघुव्याधितगुरुव्याधितरूपमा-
सादयन्तितंमहादोषंमत्वासंशोधनकालेऽस्मैतीक्ष्णसंशोधनप्र-
यच्छन्तोदोषानतिनिर्हृत्यशरीरमस्यक्षिण्वन्ति ॥ ३ ॥

रोगका यथार्थ ज्ञान न होनेसे उस रोगकी चिकित्सा करना भी मूर्खता करने लगतेहैं । जब वह किसी भारी व्याधिवाले मनुष्यके सत्त्व, बल शरीर आदिको देखकर व्याधिको लघु मान लेतेहैं तब रोगीको अल्प दोषवाला समझकर बहुत नर्मशोधन आदि करते हैं । ऐसा करनेसे दोषोंको उलट उत्तेजित कर देते हैं । जब यह अनभिज्ञ किसी लघु व्याधिवाले मनुष्यका उसका रूपादि देखकर भारी व्याधिवाला मान-लेतेहैं तो उसको तीक्ष्ण संशोधनादि प्रयोग करतेहैं जिससे दोषोंको अत्यन्त हरण करके शरीरको क्षीण कर देतेहैं ॥ ३ ॥

एवमवयवेनज्ञानस्यकृत्स्नेज्ञेयेज्ञानमितिमन्यमानाःस्खलन्ति,
विदितवेदितव्यास्तुभिषजः सर्वंसर्वथायथासम्भवपरीक्ष्यपरी-
क्ष्याध्यवस्यन्तोनक्कचनविप्रतिपद्यन्ते, यथेष्टमर्थमभिनिर्वर्त्त-
यन्तिचेति ॥ ४ ॥

केवल दृष्टीमात्रसेही हमने संपूर्ण रोगकी यथार्थताको समझ लिया है ऐसा माननेवाले मूर्ख वैद्य चिकित्साके मार्गसे पतित होजाते हैं । परन्तु वैद्य तो ज्ञातव्य विषयको यथोचित रीतिपर जानकर संपूर्ण भागोंमें सर्वथा उचित रीतिपर परीक्षा करके व्याधिका यथार्थ निश्चय कर लेतेहैं । तब उचित रीतिसे चिकित्सा करनेमें प्रवृत्त होतेहैं । इसी प्रकार चिकित्सा करते हुए किसी स्थानमें भी नाकामयाब नहीं होते अर्थात् अपने कार्यमें कहीं भी निष्फलताको प्राप्त नहीं होते किन्तु अपने अभीष्ट कार्यको साधन कर लेते हैं ॥ ४ ॥

तत्रश्लोकाः ।

सत्त्वादीनांविकल्पेनव्याधितरूपमातुरे । दृष्ट्वाविप्रतिपद्यन्ते
बालाव्याधिबलाबले ॥ ५ ॥ तेभेषजमयोगेनकुर्वन्त्यज्ञानमो-
हिताः । व्याधितानांविनाशायक्लेशायमहतेऽपिवा ॥ ६ ॥

यहांपर श्लोक हैं—जो मूर्ख वैद्य सत्त्वादिकोंके भेदसे रोगीके रूपको देखकर व्याधिका बलाबल समझ लिया मान लेते हैं और उसीप्रकार चिकित्सा करने लग

जाते हे वह अज्ञानसे मोहित हुए वैद्य औषधियाके प्रयोगद्वारा रोगी मनुष्योंको महान कष्ट देते हैं अथवा मृत्युको प्राप्त कर देते हे ॥ ५ ॥ ६ ॥

प्राज्ञास्तुसर्वमाज्ञायपरीक्ष्यमिहसर्वथा ।
नस्खलन्तिप्रयोगेषुभेषजानाकदाचन ॥ ७ ॥

बुद्धिमान् वैद्य तो संपूर्ण विषयोंको जानकर तथा सर्वथा संपूर्णरूपसे परीक्षा करके तदनन्तर औषधियोंका यथोचितरूपसे प्रयोग करतेहे इसीलिये कभी भी चिकित्साक्रममें धोखा नहीं खाते ॥ ७ ॥

इतिव्याधिनरूपाधिकारेश्रुत्वाव्याधितरूपसख्याग्रसम्भवव्याधितरूपहेतुविप्रतिपत्तौचकारणसापवादसम्प्रतिपत्तिकारणश्चानपवादंनिशम्यभगवन्तमात्रेयमग्निवेशोऽत परसर्वक्रिमीणापुरुपसश्रयाणांसमुत्थानस्थानसस्थानवर्णनामप्रभावचिकित्सितविशेपान्पप्रच्छोपसंगृह्यपादावथास्मैप्रोवाचभगवानात्रेय· । इहखलुअग्निवेश ! विंशतिविधा क्रिमय पूर्वमुक्तानानाविधेनप्रविभागेनान्यत्रसहजेभ्य ॥ ८ ॥

इसप्रकार व्याधितरूपीय अधिकारमें व्याधिके दो प्रकारके रूपोंकी सख्या, उनमें होनेवाला विषय, व्याधितरूपके कारण उनम वैद्यके विप्रतिपन्न अर्थात् न समझनेके कारण साथ अपवादके स्खलित होनेके कारण एवम् योग्य वैद्यद्वारा निरपवाद चिकित्सा होनेके कारणोंको सुनकर अग्निवेश आत्रेय भगवान्के दोनो चरणोंको पकडकर पूछनेलगे कि हे भगवन् ! शरीरम होनेवाले सब प्रकारके कृमियोंके निदान, स्थान, आकृति, वर्ण नाम और प्रभाव तथा चिकित्साका वर्णन कीजिये । यह सुनकर अग्निवेशके प्रति आत्रेय भगवान् कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! सहज कृमियोंके सिवाय अन्य वीस प्रकारके कृमियाका विभागपूर्वक अलग २ पहिले कथन करचुकेहैं ॥ ८ ॥

४ प्रकारके सहजकृमि ।

तेपुन·प्रकृतिभिर्भिद्यमानाश्चतुर्विधास्तद्यथा—पुरीपजा·श्लेष्मजा शोणितजामलजाश्चेति । तत्रमलोवाह्यश्चाभ्यन्तरश्च, तत्र वाह्येमलेजातान्मलजान्सचक्ष्महे, तेपासमुत्थानमृजावर्जन, स्थानकेशश्मश्रुलोमपक्ष्मवासासि, सस्थानमणवस्तिलाकृत-

योबहुपादावर्णस्तुकृष्ण शुक्लश्च,नामानिचैषायूका.पिपीलिकाश्चेति, प्रभाव.कण्डूजननकोठपिडकाभिनिर्वर्त्तनञ्चचिकित्सितन्त्वेषामपकर्षण मलोपघातोमलकराणाञ्चभावानामनुपसेवनमिति ॥ ९ ॥

उनमे सहज कृमि प्रकृतिभेदसे चार प्रकारके होतेहै । जैसे पुरीषज, श्लेष्मज, शोणितज और मलज । उनमे मल दो प्रकारका होताहै । एक बाह्यमल और द्वितीय भीतरीमल उनमे बाहरके मलमे उत्पन्न होनेवाले कृमियोका वर्णन करतेहै । बाहिरके कृमि उत्पन्न होनेका कारण शरीरका शुद्ध न रखनाहै अर्थात् शरीरका शुद्ध न रखनेसे बाह्यकृमि उत्पन्न होतेहै । केश, श्मश्रु, लोम, पक्ष्म और वस्त्र यह बाह्य कृमियोके स्थान है । इनका आकार और स्वरूप बहुत छोटा और तिलके समान होताहै तथा बहुतसे पावयुक्त और काले तथा सफेद वर्णके होतेहै । नाम इनके यूका और पिपीलिका होतेहै । यह कृमि खुजली, चकत्ते और फुंसियाको उत्पन्न करतेहै यही इनका प्रभाव है । यत्न इनका कंघी आदिसे खींचकर निकालदेना, शारीरिक मलको दूर करना मलके उत्पन्न करनेवाले उपयोगोंको नही करना यही इनकी चिकित्सा है आमलोग इनको जूआ और लीख कहते है ॥ ९ ॥

रुधिरजकृमि ।

शोणितजानान्तुकुष्ठै समानसमुत्थान,स्थानरक्तवाहिन्योधमन्य , स्स्थानमणवोवृत्ताश्चापादाश्चसूक्ष्मत्वाच्चैकेभवन्त्यदृश्या वर्णस्ताम्र. नामानिकेशादालोमादालोमद्वीपा सौरसाऔदुम्बराजन्तुमातरश्चेति । प्रभाव.केशश्मश्रुनखलोमपक्ष्मापध्वसोन्नणगतानाञ्चहर्षकण्डूतोदसमर्पणानिअतिवृद्धानाञ्चत्वक्शिरास्नायुमासतरुणास्थिभक्षणमिति चिकित्सितमप्येषाकुष्ठै समानतदुत्तरकालमुपदेक्ष्याम' ॥ १० ॥

शोणितज अर्थात् रक्तसे उत्पन्न होनेवाले कृमियोका समुत्थान कुष्ठके समान जानना रक्तवाहिनी धमनियोमे इनके रहनेका स्थान है । पावरहित और बहुत बारीक होतेहै । अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण दिखाई नही देते । तांबेके समान इनका वर्ण होताहै । केशाद, लोमाद, लोमद्वीप सौरस, औदुम्बर और जन्तुमाता ये इनके नाम है । केश, मांछ, दाढी, नाखुन रोम इनका नष्ट करना इनका प्रभाव है । जब यह किसी

जखम (व्रण) म पड जातेहै तो उस व्रणमे हर्ष, खुजली, तोद और इधरउधर चलनेमे सरसराहट उत्पन्न होतेहैं । जब यह अत्यन्त बढजातेहै तो त्वचा, शिरा, स्नायु, मास और नरम हड्डिये इनको खातेहै । चिकित्सा इनकी कुष्ठरोगके समान करनीचाहिये उसको आगे कथन भी करेगे ॥ १० ॥

कफजकृमि ।

श्लेष्मजा क्षीरगुडतिलमत्स्यानूपमासपिष्टान्नपरमान्नकुसुम्भस्ने-हाजीर्णपूतिक्लिन्नसकीर्णविरुद्धासात्म्यभोजनसमुत्थाना । तेषामामाशय स्थान, प्रभावस्तुतेप्रवर्द्धमानास्तूर्द्ध्वमधोवाविसर्पन्ति, उभयतोवा । सस्थानवर्णविशेषास्तु श्वेता.पृथुब्रध्नसस्थाना'केचित्, केचिद्वृत्तपरिणाहा गण्डूपदाकृतयश्च श्वेता । श्वेतास्ताम्रावभासा, केचिदणवोदीर्घास्तन्त्वाकृतय श्वेता । तेषात्रिविधानाश्लेष्मनिमित्तानाक्रिमीणानामानिअन्त्रादा., उदरादा, हृदयादाश्चरवो, दर्भपुष्पा, सौगन्धिका, महागुदाश्चइति । प्रभावोहृल्लासास्यसस्रवणमरोचकाविपाकोज्वरोमूर्च्छाजृम्भाक्षवथुरानाहोऽङ्गमर्द छर्दि कार्श्यपारुष्यमिति॥११॥

श्लेष्मज कफजनित कृमियोंके निदानको कहतहै । दूध, गुड, तिल, मछली, अनूपदेशके जीवाका मास, पीठी अथवा मैदा आदि पिसेहुए अन्न, खीर आदि उत्तम पकवान कुसुम्भका तेल, अजीर्णके करनेवाले सडेबुसे क्लेदकारक, सकीर्ण तथा विरुद्ध पदार्थोंके सेवन करनेमे एवम् असात्म्य पदार्थोंके सेवन करनेसे श्लेष्मज कृमि उत्पन्न होतेहै । आमाशय इनके रहनेका स्थान है । जब यह वढजातेहै तो ऊपर अथवा नीचे या दोनो तरफ फिरते हैं । वर्ण विशेष इनका सफेद होताहै । आकारम गोल, लम्बे होतेहै । कोई केचुएक समान आकारवाले होतेहैं । कोई श्वेत, कोई ताम्रवर्णके, कोई बहुत छोटे, कोई बहुत लम्बे धागेके आकारके होतेहै । उन तीन मकारके कफजनित कृमियोंके नाम यह होतेहै । जैसे अंत्राद, उदराद, हृदयाद, चुरू, दर्भपुष्प, सौगधिक, महागुद । प्रभाव इनका जी मचलाना, मुखसे पानी बहना, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, ज्वर, मूर्च्छा, जभाई, छींक, अफारा, अगमर्द, छर्दि, शरीरका कृश होना एवम् शरीर अथवा कोष्ठका कठोर होनाहै । यह कफजनित कृमियोंका कार्य वर्णन कियागया ॥ ११ ॥

इस प्रकार कफजनित और पुरीषजनित कृमियोंके निदान आदिकोंको कथन कियागयाहै। इनकी संक्षेपसे चिकित्साका कथन करके फिर विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे। सब प्रकारके कृमियोंमें कृमियोंको निकाल डालना मुख्य कार्य है। फिर कृमियोंको नाश करनेवाले द्रव्यों द्वारा कृमियोंका प्रकृति विघात अर्थात् कृमीनाशक द्रव्योंद्वारा उनको नष्ट कर तदनन्तर कृमियोंको उत्पन्न करनेवाले कारणोंको त्याग देना चाहिये ॥ १३ ॥

क्रिमिचिकित्सा ।

तत्रापकर्षणहस्तेनाभिमृश्यापनयनमुपकरणवतामुपकरणेन वा। स्थानगतानान्तुक्रिमीणाभेषजेनापकर्षणन्यायतश्चतुर्विधम्। तद्यथा, शिरोविरेचनवमनविरेचनमास्थापनमित्यपकर्षणविधि. ॥ १४ ॥

अब कृमियोंके अपकर्षण अर्थात् निकालनेका क्रम कथन करतेहैं। कृमियोंको हाथसे मसलकर अथवा पकडकर या किसी यन्त्रद्वारा दबाकर निकाल देना अथवा चूर देनाचाहिये। जो कृमि आमाशय आदि तथा अन्य किसी भीतरी स्थानमें हो उनको औषधी द्वारा निकाल देनाचाहिये। औषधी द्वारा कृमियोंको निकालनेकी चार विधि है। जैसे शिरोविरेचन, वमन, विरेचन और आस्थापन इसप्रकार कृमियोंका अपकर्षण अर्थात् निकालनेकी विधिका कथन कियागया ॥ १४ ॥

प्रकृतिविघातस्त्वेषांकटुतिक्तकषायक्षारोष्णानाद्रव्याणामुपयोगोयच्चान्यदपिकिञ्चिच्छ्लेष्मपुरीषप्रत्यनीकभूततत्स्यादितिप्रकृतिविघात ॥ १५॥

अब प्रकृतिविघातको कहतेहै कटु, तिक्त, कषाय, क्षार तथा उष्ण द्रव्योंका उपयोग करना और इनके सिवाय अन्य भी जो द्रव्य कफ और मलके विरोधी हो अथवा शुद्ध करनेवाले हो उनका सेवन करना एवम् कृमियोंके उत्पन्न करनेवाले कारणोंको नष्ट करनेवाले द्रव्योंका सेवन करना कृमियोंका प्रकृतिविघात कहाजाताहै ॥ १५ ॥

अनन्तरनिदानोक्तानाभावानामनुपसेवनयदुक्तनिदानविधौ तस्यवर्जनतथाविधप्रायाणाश्चापरेषाद्रव्याणामितिलक्षणतश्चिकित्सितमनुव्याख्यातमेतदेवपुनर्विस्तरेणोपदेक्ष्यते ॥ १६ ॥

विष्ठाके कृमि ।

पुरीषजास्तुल्यसमुत्थाना श्लेष्मजैस्तेषांसंस्थानपक्वाशय । प्रभावास्तुतेप्रवर्द्धमानास्त्वधोविसर्पन्ति । यस्यपुनरामाशयाभिमुखास्युस्तदनन्तरतस्योद्गारनिश्वासा पुरीषगन्धिन स्यु । संस्थानवर्णविशेषास्तुसूक्ष्मवृत्तपरीणाहा श्वेतादीर्घाऊर्णांशुकसङ्काशा' केचित्केचित्पुन स्थूलवृत्तपरीणाहा श्यावनीलहरितपीता । तेषानामानिककेरुकामकेरुकालेलिहा शालूनका सौसुरादाश्चेति । प्रभाव पुरीषभेद.कार्श्यपारुष्यलोमहर्षाभिनिर्वर्त्तनञ्च । तत्रवास्यगुदमुखपरितुदन्तःकण्डूश्चोपजनयन्तोगुदमुखपर्य्यासते । सजातहर्षोगुदान्निष्क्रमणमतिवेलं करोति ॥ १२ ॥

पुरीष अर्थात् मलजनित कृमियोंका निदान कफके कृमियोंके सदृश जानना । इनके रहनेका स्थान पक्वाशय (मलाशय) है । जब यह मलके कृमि अत्यन्त बढ़जातेहैं तो नीचेकी ओर गमन करतेहैं तथा आमाशयकी ओर उपरको गमन करतेहैं। इनके उपरको गमन करनेमें डकार और श्वासमें विष्ठाकीसी गंध आनेलगतीहै । इनका आकार और वर्ण विशेष सूक्ष्म गोल तथा श्वेत, लम्बा, ऊनके धागेके समान होताहै। इनमें कोई बडे स्थूल, कोई वर्त्तीके समान आकारवाले तथा काले, पीले, नीले एवम् हरेवर्णके होतेहैं, नाम इनके इस प्रकार है ककेरुक, मकेरुक, लेलिह, शालूनक और सौसुराद । प्रभाव अर्थात् कार्य इनका इस प्रकार है । मलका पतला होना, शरीरका कृश होना, कोठका कठोर होना और रोमहर्ष होना तथा जब यह गुदाके मुखपर आते हैं तो गुदामें सूई चुभनेकीसी पीडा और खुजलीको उत्पन्न करतेहुए गुदाके मुखमें व्यापक रहतेहैं । गुदासे बाहर निकलने समय गुदगुदाहटसी उत्पन्न करतेहैं । यह पुरीषज कृमियोंके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

इत्येषश्लेष्मजानापुरीषजानाञ्चक्रिमीणासमुत्थानादिविशेष । चिकित्सितन्तुखल्वेषांसमासेनोपदिश्यपश्चाद्विस्तरेणोपदेक्ष्यते तत्रसर्वंक्रिमीणामपकर्षणमेवादित.कार्य्यम् । ततः प्रकृतिविघातोऽनन्तरं निदानोक्तानाभावानामनुपसेवनमिति ॥ १३ ॥

इस प्रकार कफजनित और पुरीषजनित कृमियोंके निदान आदिकोंको कथन कियागयाहै। इनकी सक्षेपसे चिकित्साका कथन करके फिर विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे। सब प्रकारके कृमियोंमें कृमियोंको निकाल डालना मुख्य कार्य है। फिर कृमियोंको नाश करनेवाले द्रव्यों द्वारा कृमियोंका प्रकृति विघात अर्थात् कृमीनाशक द्रव्योंद्वारा उनको नष्ट कर तदनन्तर कृमियोंको उत्पन्न करनेवाले कारणोंको त्याग देना चाहिये ॥ १३ ॥

क्रिमिचिकित्सा ।

तत्रापकर्षणहस्तेनाभिमृश्यापनयनमुपकरणवतामुपकरणेन वा । स्थानगतानान्तुक्रिमीणाभेषजेनापकर्षणन्यायतश्चतुर्विधम् । तद्यथा, शिरोविरेचनवमनविरेचनमास्थापनमित्यपकर्षणविधि. ॥ १४ ॥

अब कृमियोंके अपकर्षण अर्थात् निकालनेका क्रम कथन करतेहैं। कृमियोंको हाथसे मसलकर अथवा पकडकर या किसी यन्त्रद्वारा दबाकर निकाल देना अथवा चूर देनाचाहिये। जो क्रमि आमाशय आदि तथा अन्य किसी भीतरी स्थानमें हो उनको औषधी द्वारा निकाल देनाचाहिये। औषधी द्वारा कृमियोंको निकालनेकी चार विधि है। जैसे शिरोविरेचन, वमन, विरेचन और आस्थापन इसप्रकार कृमियोंका अपकर्षण अर्थात् निकालनेकी विधिका कथन कियागया ॥ १४ ॥

प्रकृतिविघातस्त्वेषाकटुतिक्तकषायक्षारोष्णानाद्रव्याणामुपयोगोयच्चान्यदपिकिञ्चिच्छ्लेष्मपुरीषप्रत्यनीकभूततत्स्यादितिप्रकृतिविघात ॥ १५॥

अब प्रकृतिविघातको कहतेहैं कटु, तिक्त, कषाय, क्षार तथा उष्ण द्रव्योंका उपयोग करना और इनके सिवाय अन्य भी जो द्रव्य कफ और मलके विरोधी हो अथवा शुद्ध करनेवाले हो उनका सेवन करना एवम् कृमियोंके उत्पन्न करनेवाले कारणोंको नष्ट करनेवाले द्रव्योंका सेवन करना कृमियोंका प्रकृतिविघात कहाजाताहै ॥ १५ ॥

अनन्तरनिदानोक्तानाभावानामनुपसेवनयदुक्तनिदानविधौ तस्यवर्जनतथाविधप्रायाणाश्चापरेषाद्रव्याणामितिलक्षणतश्चिकित्सितमनुव्याख्यातमेतदेवपुनर्विस्तरेणोपदेक्ष्यते ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर निदानमें कहेहुए भावोंका अर्थात् कृमियोंके उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंका सेवन नहीं करना और इनके उत्पन्न करनेवाले भावोंको त्याग देना निदानमें कथन कियेहुए भावोंके सिवाय और भी जो कृमियोंके उत्पन्न करनेके कारण हों उनको त्याग देनाचाहिये। यह कृमियोंकी संक्षेपसे चिकित्सा कथन कीगई है अब विस्तारसे कथन करतेहैं ॥ १६ ॥

पेटके कीडोंकी चिकित्सा ।

अथैनंक्रिमिकोष्ठमातुरमग्रेपड्रात्रंसप्तरात्रंवास्नेहस्वेदाभ्यामुपपाद्यश्वोभूतेएनंसंशोधनंपाययितास्मीति, क्षीरदधिगुडतिलमत्स्यानूपमांसपिष्टान्नपरमान्नकुसुम्भस्नेहसम्प्रयुक्तैर्भोज्यैः सायं प्रातरुपपादयेत्समुदीरणार्थञ्चैवंक्रिमीणांकोष्ठाभिसरणार्थञ्च॥१७॥ भिषगथव्युष्टायांरजन्यांसुखोषितंसुप्रजीर्णभक्तञ्चविज्ञायास्थापनवमनविरेचनैस्तदहरेवोपपादयेत् ॥ १८ ॥

जिस मनुष्यके कोठेमें कृमि हों उसको पहिले छः दिन या सात दिन स्नेहन और स्वेदन करना चाहिये। फिर स्नेहन, स्वेदन करके जब देखे कि कल प्रातःकाल संशोधन करावेंगे तो प्रथम दिन रात्रिके समय दूध, दही, गुड, तिल, मछली, अनूपदेशके जीवोंका मांस, पिष्टान्न, खीर आदि पकवान कसूमेकी चिकनाई आदि युक्त पेटभर खिला देनाचाहिये ऐसा करनेसे सब कृमि इधर उधरसे आकर अपने स्थानोंको छोडकर कोठेमें आजाते हैं और आहार द्रव्यके साथ मिलकर कुलबुलाने लगते हैं फिर रात्रि बीतजानेपर प्रातःकाल ही अन्नको पाचन हुआ जान योग्य वैद्य आस्थापन, वमन, तथा विरेचन द्वारा कृमियोंको निकाल डाले ॥ १७ ॥ १८ ॥

उपपादनीयश्चेत्स्यात्सर्वान्परीक्ष्यविशेषान् समीक्ष्यसम्यक् । अथाहरेतिव्रयान्मूलकसर्षपलशुनकरञ्जशिग्रुमधुशिग्रुखरपुष्पभूस्तृणसुमुखसुरसकुठेरक 'गण्डीर' कण्डीरकालमालकपर्णासक्षवकफणिज्झकानि । सर्वाणिअथवायथालाभम् । तानि आहृत्यानिअभिसमीक्ष्यखण्डशश्छेदयित्वाप्रक्षाल्यपानीयेनसुप्रक्षालितायांस्थाल्यांसमावाप्यगोमूत्रेणार्द्धोदकेनाभ्यासिच्य साधयेत् । सततमवघट्टयंस्तदर्व्यांतस्मिन्नीतीभूतेतुउपयुक्तभूयिष्ठेम्भसिगतरसेष्वौषधेषुस्थालीमवतार्यसुपरिपूतकषा-

यसुखोष्णमदनफलपिप्पलीविडङ्गकल्कतैलोपहितसर्जिकाल-
वणमभ्यासिच्यवस्तौविधिवदास्थापयेदेनम् ॥ १९ ॥

यदि वह रोगी फिर भी ऐसा करनेके योग्य हो तो सब प्रकारसे उसकी परीक्षा करके तथा सपूर्ण विशेषरूपसे जानकर उचित रीतिपर फिर सशोधन करे । अब सशोधन द्रव्योंको कथन करते हैं—मूली, सरसा, लहसुन, करज, सहजना, अजवायन, भूतृण, सुमुख, (तुलसीका भेद) सुफेद तुलसी, वनतुलसी, गण्डीर, कालमालक, पार्णास, क्षवक, ओर फणिज्झक (मरुएके भेद) इन सबको अथवा जो मिलसके उनको विधिवत् परीक्षा कर छोटे २ टुकडेकर डाले फिर पानीके साथ धोकर शुद्ध बर्तनमें डाल दे और उस बर्तनमें गोमूत्र और गोमूत्रसे आधा पानी मिलाकर पकावे और कडछीसे बराबर हिलाता जावे । जब सब पानी सूखकर गोमूत्र भी चतुर्थभाग रहजाय तब उसको उतारकर कपडेमे छान डाले फिर उस शुद्ध स्वच्छ काढेमें मैन-फल, पीपल और वायविडग इनका कल्क मिला दे तथा सज्जीखार और सेधानम-कको थोडा डाले फिर उसमें तेल और उचित समझे तो थोडा गर्मजल मिलाकर सहती २ आस्थापन, वस्तिकर्म करे ॥ १९ ॥

सशोधन औषधकी विधि ।

तथार्कालर्ककुटजाढकीकुष्ठकैटर्यकषायेणतथाशिग्रुपीलुकुस्तु-
म्बुरुकटुकसर्षपकषायेणतथामलकशृङ्गवेरदारुहरिद्रापिचुमर्द-
कषायेणमदनफलसयोगसयोजितेनत्रिरात्रसप्तरात्रवास्थाप-
येत् ॥ २० ॥

अथवा इसी प्रकार लाल तथा सफेद आक, कुडा, अरहर, कूठ और कायफल इनके क्वाथमें मैनफलका कल्क मिलाकर आस्थापन वस्तिकर्म करे । अथवा सह-जना, पीलु, धनिया, कुटकी और सरसोके काढेमें अथवा इसीप्रकार आमले सोंठ, दारुहल्दी, नीमकी छालके काढेमें मैनफलका कल्क मिलाकर तीन रात्रि अथवा सात रात्रि आस्थापन वस्तिकर्म करे ॥ २० ॥

प्रत्यागतेचपश्चिमेवस्तौप्रत्याश्वस्ततदहरेवोभयतोभागहरणं-
सशोधनपाययेत्युक्त्या, तस्यविधिरुपदेक्ष्यते ॥ २१ ॥

जब पिछली वस्ति गुदाद्वारा उलटकर बाहर निकलजाय तब उससे दूसरे दिन प्रात.काल शोधनकर्त्ता द्रव्योंद्वारा विधिपूर्वक वमन विरेचन करावे । उसकी विधिको कथन करतेहैं ॥ २१ ॥

मदनफलपिप्पलीकषायेषुअञ्जलिमात्रेणत्रिवृत्कल्काक्षमात्रमा-
लोड्यपातुमस्मैप्रयच्छेत् । तदस्यदोषमुभयतोनिर्हरतिसाधु॥२२॥

मैनफल और पीपलके सोलह तोला क्वाथमें एक तोला निशोथका कल्क मिलाकर रोगीको पिलावे । इसके पीनेसे वमन और विरेचन द्वारा ऊपर और नीचेके दोष भली प्रकार निकल जातेहैं ॥ २२ ॥

एवमेवकल्पोक्तानिवमनविरेचनानिसंसृज्यपाययेदेनंबुद्ध्यास-
र्वविशेषानवेक्षमाण ॥ २३ ॥

इसीप्रकार कल्पस्थानमें कहेहुए वमन विरेचन द्रव्योंको विधिवत् सम्पादनकर यथोचित रीतिसे दोषादिकोंको तथा बलादि व्यवस्था देखकर रोगीको पिलावे॥२३॥

विरेचन होजानेपर कर्म ।

अथैनंसम्यग्विरिक्तविज्ञायापराह्णेशेखरिककषायेणसुखोष्णेन
परिषेचयेत् । तेनैवचकषायेणबाह्याभ्यन्तरान्सर्वोदकार्थान्कार-
येत्शश्वत् । तदभावेवाकटुतिक्तकषायाणामौषधानांक्वाथै-
र्मूत्रक्षारैर्वा परिषेचयेत् । परिषिक्तश्चएनंनिवातमागारमनुप्र-
वेश्यपिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरसिद्धेनयवाग्वादि-
नाक्रमेणउपक्रामयेत ॥ २४ ॥

जब देखे कि यह रोगी यथोचित विरिक्त (वमन विरेचन द्वारा शुद्ध) होगया तब दिनके पिछले पहरमें अपामार्गके सुखोष्ण क्वाथ द्वारा परिसेचन करे । और उसी क्वाथ द्वारा बाह्य और आभ्यन्तर संपूर्ण जलके कार्योंको साधन करे अर्थात अपामार्गके क्वाथसे ही हाथ, पाव धोना, कुल्ला स्नान आदि सब काम करे। यदि उस समय अपामार्गका क्वाथ न मिलसके तो कटु, तिक्त द्रव्योंके कषायमें अथवा गोमूत्र और क्षार मिलेहुए सुखोष्ण जलसे स्नान आदि करावे । स्नान करनेके अनन्तर निवात स्थानमें रक्खे और पिप्पली, पिपलामूल, चव्य, चित्रक और अदरख इनके संयोगसे सिद्ध कीहुई यवागू पीनेको देवे । तथा विधिवत् सब उपचार करे ॥ २४ ॥

विलेपीक्रमागतश्चैनमनुवासयेद्विड्ङ्गतैलेनैकान्तरद्विस्त्रिर्वा यदि
पुनरस्यानिप्रवृद्धाञ्छीर्षादीन्क्रिमीन्मन्येत,शिरस्येवअभिसर्प-

त कदाचित्तत.स्नेहस्वेदाभ्यामस्यशिरउपपाद्यविरेचयेदपामार्ग-
तण्डुलादिनाशिरोविरेचनेन ॥ २५ ॥

उस यवागु पीनेके अनन्तर क्रमपूर्वक विलपी सेवन करावे । फिर दो तीन दिनके अनन्तर वायविडगके तेलसे अनुवासन कर्म करे । यदि फिर भी देखे कि इसके शिर आदि अगामें कृमि बढ़े हुएहै तो शिरोविरेचन करानेके लिये पहिले सिरको स्नेहन और स्वेदन करके फिर अपामार्ग तण्डुल आदि शिरोविरेचन द्रव्योद्वारा शिरका विरेचन करे ॥ २८ ॥

कृमिनाशक औषधि ।

यस्त्वभ्याहार्य्योविधि प्रकृतिविघातायोक्त क्रिमीणा, सोऽनुव्या-
ख्यास्यते । मूषिकपर्णींसमूलाग्रप्रतानामपहृत्यखण्डशश्छेद
यित्वाउलूखलेक्षोदयित्वापाणिभ्यापीडयित्वाचरसग्रह्णीयात् ।
तेनरसेनलोहितशालितण्डुलपिष्टसमलोड्यपूपलिकाकृत्वावि-
धूमेपुअङ्गारेपुविपाच्यविडङ्गतैललवणोपहिताक्रिमिकोष्ठायभक्ष-
यितुप्रयच्छेत् । तदनन्तरचअम्लकाञ्जिकमुदश्विद्वापिप्पल्या-
दिपञ्चवर्गससृष्टसलवणमनुपाययेत् ॥ २६ ॥

जो कृमिनाशक पथ्यादि कृमियोके प्रकृति विघातक कथन करआयेहै अव उनकी व्याख्या करतेहै । जैसे मूपिकपर्णीको जडसहित तथा अग्रभागसहित लेकर उसके छोटे २ टुकडेकर डाले फिर उसको उखलीम कूटकर दोनों हाथोंसे दबा उसका रस निचोड ले । उस रसमें लाल्चावलोंके आटेको मिलाकर विधिवत् पूडियें बनाले इन पूडियोंको निर्धूम अग्निपर पका विडगका तैल और सेंधानमक मिलाकर जिस मनुष्यके कोष्ठमें कृमि हो उसको यह खानेको देवे । इसके ऊपर खट्टी काजीका जल अथवा दहीका पानी सेंधे नमकयुक्त पचकोलका चूर्ण मिलाकर पीनेके लिये देवे ॥ २६ ॥

अनेनकल्पेनमार्कवार्कसहचरनीपनिर्गुण्डीसुमुखसुरसकुठेरक-
कण्डीरकालमालकपर्णासक्षवकफणिज्झकवकुलकुटजसुवर्ण-
क्षीरीसुरसानामन्यतमस्मिन्कारयेत्पूपलिकानितथाकिलिही-
किराततिक्तकसुवहामलकहरीतकीविभीतकस्वरसेपुकारयेत्

पूपलिकाः । स्वरसांश्चैतानेकैकशोदन्तश सर्वशोवामधुवि-
लुलितान्प्रातरनन्नायपातुंप्रयच्छेत् ॥ २७ ॥

इसी प्रकारसे मागर, आक, कठूमरइया, कदंब, निर्गुण्डी और सुमुख, सुरस यह तुलसीकी जातियें, वनतुलसी, काण्डीर, कालमालक, पर्णास क्षवक और फणिज्झक यह मरुएकी जातियें। मौलसरी, कुड़ा, सत्यानाशी, तुलसी इनमेंसे किसी एकके स्वरसको पूर्वोक्त रीतिपर निकालकर उस रसमें लालचावलोंके आटेको माडकर पूड़ियें बनावे उन पूड़ियोंको जगली उपलोंकी निर्धूम अग्निपर पकाकर पूर्वोक्त रीतिसे कृमि कोष्ठवाले मनुष्यको खिलावे अथवा अपामार्ग, चिरायता, सुवहा, हरड, बहेडे आमले इन सबमेंसे किसी एकके स्वरसमें तथा दोनोंके स्वरसको मिलाकर अथवा सबके रसमें लालचावलके आटेकी पूड़ियें बनावे उनको शहद लपेटकर प्रातःकाल कृमियावाले रोगीको खिलावे अथवा उपरोक्त सब औषधियोंके रसमें या किसी एकके स्वरसमें शहद मिलाकर भोजनसे प्रथम प्रातःकाल पीनेके लिये देवे ॥ २७ ॥

अथाश्वशकृदाहृत्यमहतिकिलिञ्जेप्रस्तीर्य्यातपेशोषयित्वोलूख-
लेक्षोदयित्वादृषदिपुनः सूक्ष्माणिचूर्णानिकारयित्वाविडङ्गक-
षायेणत्रिफलाकषायेणवाअष्टकृत्वोदशकृत्वोवाआतपेसुपरिभा-
वितानिभावयित्वादृषदिपुनःसूक्ष्माणिचूर्णानिकारयित्वानवेक-
लशेसमवाप्यानुगुप्तंनिधापयेत्। तेषान्तुखलुचूर्णानापाणितलं
चूर्णयावद्वासाधुमन्येतक्षौद्रेणससृज्यकिमिकोष्ठायलेढुंयच्छेत् २८

अथवा घोड़ेकी ताजी लीद लेकर किसीबड़े टाट या चटाईपर डाल धूपमें सुखा लेवे फिर उस सूखी लीदको उखलीमें डालकर बारीक चूर्ण करे फिर उसको सिलपर पीसकर अत्यन्त महीन बनावे इसके अनन्तर बायबिडंगके काथकी आठ भावना अथवा त्रिफलेके क्वाथकी दश भावना या दोनोंकी भावना देवे और प्रत्यक भावनोंके अनन्तर धूपमें सुखाता जावे फिर इसको सुखाकर कपड़छानकर लेवे और एक नये मट्टीके पात्रमें भरकर अच्छा रख देवे और इसका किसीसे भेद न बतावे। इसमेंसे एक तोलाभर चूर्ण अथवा दो या तीन तोलाभर जितना उचित समझे शहदमें मिलाकर जिस मनुष्यके कोष्ठमें कृमि हों उसको चटानी चाहिये ॥ २८ ॥

तथाभल्लातकास्थीन्याहार्य्यकलशप्रमाणेनसम्पोथ्यस्नेहभावि-
तेकुम्भेकलशेसूक्ष्मानेकच्छिद्रब्रध्नेभूमावलिखेसमवाप्योडुपेनपि-
धायभूमौआकण्ठनिखातस्यस्नेहभाविनस्यैवअन्यस्यदृढस्यकु-

म्भस्यउपरिसमारोप्यसमन्तात्गोमयैरुपचित्यदाहयेत् । सय-
दाजानीयात्साधुदग्धानिगोमयानिगलितस्नेहानिभल्लातकास्थी-
निततस्तकुम्भमुद्धारयेत् । अथतस्माद्द्वितीयात् कुम्भात्स्नेहमा-
दायविडङ्गतण्डुलचूर्णे स्नेहार्द्धमात्रे प्रतिसंसृज्यातपेसर्वमहः
स्थापयित्वाततोऽस्मैमात्राप्रयच्छेत्पानाय । तेनसाधुविरिच्यते
विरिक्तस्यचानुपूर्वीयथोक्ता ॥ २९ ॥

अथवा भेलावेकी १६ सेर गुठलियोंको लेकर थोडा कूट लेवे फिर किसी पके चिकने घडेमें भरदेवे और उस घडेके नीचे बारीक बारीक छिद्र रहने देवे तथा उसके मुखको सरावसे ढककर कपडमट्टी करदेवे और उस घडेके नीचे जिस जगह छिद्र हो एक खुले मुखका चिकना पात्र रखदेवे अर्थात् नीचेके खाली चिकने पात्रके मुखपर औषधी वाले घडेके छिद्रोंको टिका कपडमिट्टीसे बद करदेवे फिर जमीनमें एक गडा खोदकर उसम नीचेके सपूर्ण पात्रको दवा देवे और थोडासा हिस्सा उपरले घडेका भी मट्टीमें आजाना चाहिये । फिर इस घडेके चारोंतरफसे मट्टीको दवा इसके ऊपर चारोंओर सूखे जगली उपले लगाकर आग लगादेवे । जब जाने कि उपरले घडेके भेलावोंका आगकी गर्मीसे सब तेल नीचेके पात्रमें टपक चुकाहै तो शीतल होजानेपर घडेके ऊपरकी राख मट्टी सावधानीसे हटाकर नीचेके पात्रमें आये हुए तेलको निकाल लेवे । और किसी दूसरे उत्तम पात्रमें भरकर रक्खे । फिर इसमेंसे थोडा तेल लेकर उसम तेलसे आधा वायविडगका चूर्ण मिला देवे और उसको धूपमें रखदेवे । तमाम दिन धूपमें रखकर इसमेंसे यथोचित मात्रा खिलाकर ऊपरसे गर्मपानी पिलावे । जब इससे ठीक विरेचन होचुके तब सशोधन किये मनुष्यका जिसप्रकार उपचार करना-चाहिये उस विधिसे इसकी रक्षा करे । (भेलावेके फलका तेल लगजानेसे मनुष्यके शरीरमें खुजली, सूजन, घाव आदि अनेक उपद्रव होजातेहै । विना विधिसे भेलावेका सेवन करना विषके समान होताहै । परन्तु यह विकार भेलावेके फलके रसमे होतेहै । फलोके गुठलियोंमेंसे निकाले तेलमें नहीं होते । तौ भी भेलावेका तथा अन्य किसी विषैले पदार्थका उपयोग सुयोग्य वैद्यके ही हाथसे करनाचाहिये विना जाने स्वयं करनेसे मनुष्य अपने शरीरको भी नष्ट कर बैठताहै ।) ॥ २९ ॥

एवमेवभद्रदारुसरलकाष्ठस्नेहानुपकल्प्यपातुंप्रयच्छेत् ।
अनुवासयेच्चैनमनुवासनकाले ॥ ३० ॥

इसीप्रकार देवदारु तथा सरलकाष्ठका तेल निकालकर उसमें वायविडगका चूर्ण मिलाकर १ दिन धूपमें रक्खे और दूसरे दिन गर्मजलके योगमे पिलावे । देवदारु

और सरलके तेल द्वारा अनुवासनके समय अनुवासनबस्ति करना हितकर होता है । (परन्तु भेलावेके तेलसे अनुवासनवस्ति नहीं करना) ॥ ३० ॥

यिडगतैलम् ।

अथाहरेतित्र्याच्छारदान्नवास्तिलान्सम्पदुपेतानाढ्यसुनिष्पूतान्निष्पूयसुशुद्धाञ्छोधयित्वाविडङ्गकषायेसुखोष्णेप्रक्षिप्यसुनिर्वापितान्निर्वापयेदादोषगमनात् । गतदोषानभिसमीक्ष्यसुप्रलूनान् प्रलुच्यपुनरेवसुनिष्पूतान्निष्पूयसुशुद्धाञ्छोषयित्वाविडङ्गकषायेणत्रिःसप्तकृत्व सुपरिभावितान् भावयित्वाऽऽनपेशोषयित्वोलूखलेसक्षुद्यदृषदिपुन श्लक्ष्णपिष्टान्कारयित्वाद्रोण्यामभ्यवधायविडङ्गकषायेणमुहुर्मुहुरवसिञ्चन्पाणिमर्दंमर्दयेत् । तस्मिन्खलुप्रपीड्यमानेयत् तैलमुदियात्तत्पाणिभ्यापर्य्यादायशुचौदृढेकलशेसमासिच्यानुगुप्तंनिधापयेत् ।अथाहरेतित्र्याचिल्वकोद्दालकयोर्द्वौविल्वमात्रौपिण्डौश्लक्ष्णपिष्टौविडङ्गकषायेण, ततोऽर्द्धमात्रौव्यमात्रिवृतयोरर्द्धमात्रौदन्तीद्रवन्त्योस्ततोऽर्द्धमात्रौचव्यचित्रकयोरित्येतत्सम्भारंविडङ्गकषायस्यार्द्धाढकमात्रेणप्रतिसंसृज्यतन्मतैलप्रस्थमावाप्यसर्वमालोड्यमहतिउपयोगेसमासिच्याप्रावधिश्रित्यमहत्यासनेसुखोपविष्टः सर्वत स्नेहमवलोकयन्अजस्रंमृद्वग्निना साधयेद्दर्व्यासततमवघट्टयन् । सयदाजानीयाद्विरमतिशब्द: प्रशाम्यति चफेन , प्रसादमापद्यते स्नेहोयथास्वगन्धवर्णरसोत्पत्ति सवर्त्तनेच, भेषजमङ्गुलिभ्यांमृद्यमानमनतिमृदुमनतिदारुणमनङ्गुलिग्राहिचेति । सकालस्तस्यावतारणाय । ततस्तमवतीर्णंदन्तशीर्नाभूतमहतेनवास सापरिपूयशुचौदृढेकलशेसमासिच्यपिधानेनपिधायशुक्लेनपत्रपट्टेनआच्छाद्यसूत्रेणसुपरुत्संमृनिगुप्तंनिधापयेत् । ततोऽस्यमात्रां प्रयच्छेत्पानाय ॥ ३१ ॥

अब विडगतेलकी विधि कथन करतेहै । पहिले रोगीसे कहे कि तू शरदऋतुके अर्थात् नवीन और उत्तम तिलोंको इकट्ठे कर जब वह तिलोंको इकट्ठे करलेवे तो उन तिलोंको फटक तथा सवार कर एवम् उनमें मट्टी पत्थर आदि चुनकर स्वच्छ बनावे फिर उनको सुन्दर रीतिसे धोकर धूपम सुखा लेवे । जब सूख जाय फिर उन तिलोंको वायविडगके क्वाथकी भावना देकर धूपम सुखाता जावे । इसी प्रकार बायविडङ्गके क्वाथकी इक्कीस भावना देवे । जब सूख जाय तो उखलीम कूटकर फिर सिलपर वारीक पीस डाले । फिर उस वारीक तिलोंके चूर्णको किसी चिकनेपात्रमें भरकर उसमे वायविडगका गर्मगर्म क्वाथ छिडकता जाय और हाथोंसे उन तिलोको मीडता-जाय जो उनमसे तेल हाथोको लगे अथवा पात्रम निकले उस तेलको हाथसे किसी स्वच्छ पात्रमें पोछता जाय जब सब तेल निकल आवे तो उस तेलको किसी स्वच्छ पात्रम भरकर रखदेवे । फिर पठानी लोद कोद्रव (कोदाअन्न) यह दोनो चार चार तोला लेवे। इनको वायविडगके क्वाथके साथ पीसकर दो पिंड बनालेवे।इसके अनन्तर दो दो तोला दक्षिणी और पहाडी निशोथ दो दो तोला दोना प्रकारकी दती एक एक तोला चव्य और चित्रक इन सबको चार सेर वायविडगके क्वाथमें मिलाकर पूर्वोक्त चार सेर तेलमे मिलादेवे । फिर सब औषधियोंको एक बडी कढाहीमें चढाकर भट्टीपर रक्खे । स्वय एक ऊचे आसनपर बैठकर उस कढाडीमें तेलको सब तरहसे देखताहुआ मदमद अग्निसे पकावे । जब देखे कि पानी जलचुकाहै और ओषधियोंके पकनेका शब्द शान्त होगया । फेन भी जाता रहा । तेल स्वच्छ होगया । जैसे-द्रव्यादिक उसमें डाले है उन सबका गध, रस, वर्ण तेलमे आगया तब उस तेलमें पडी औषधियोंके कल्कको निकालकर अगुलियोंसे मसलताहुआ बत्ती बनाकर देखे । यदि उस कल्कद्रव्यकी बत्ती बनजाय और तेलको छोडने लगजाय और अगुलियोंसे न चिपटे तो जाने कि तेल अब सिद्ध होगया और यह समय उस तेलके उतारनेका है । फिर उसको उतारकर जब वह ठडा होजाय किसी अच्छे वस्तुसे विधिपूर्वक छानकर शुद्ध और दृढ कलशमे भरकर ऊपरसे किसी पात्रद्वारा ढकदेवे तथा श्वेत और नये वस्त्रसे उसके मुखको बाधकर किसी उत्तम स्थानम रख देवे फिर जब आवश्यकता हो तो इस तैलमेंसे रोगीको यथोचित मात्रा पान करावे ॥ ३१ ॥

तेनसाधुविरिच्यते। सम्यगपहृतदोषस्यचास्यानुपूर्वीयथोक्ता। ततश्चैनमनुवासयेदनुवासनकाले ॥ ३२ ॥

इस तेलके उपयोगसे उत्तम विरेचन होता है । जब उत्तम विरेचन होकर दोष निकलनेसे मनुष्य शुद्धदेह होजाय तब इसको विधिवत् यवागू आदि पथ्य सेवन करावे। और अनुवासनके समय अनुवासन कर्म करे ॥ ३२ ॥

एतेनैवचपाकविधिनासर्षपकरञ्जकोपातकीस्नेहानुपकल्प्यपा-
ययेत्सर्वविशेषानवेक्ष्यमाणस्तेनागदोभवति ॥ ३३ ॥

इसी तैलपाकविधिसे—सरसों, करंज और कडवी तोरीके बीजोंका भी तेल बनाना चाहिये । फिर विचार पूर्वक कृमिनाश करनेके लिये इन तेलोंका उपयोग करे । ऐसा करनेसे मनुष्य कृमिरोगसे छूटकर नीरोग होजाताहै ॥ ३३ ॥

इत्येतद्द्वयानांश्लेष्मपुरीषसम्भवानांक्रिमीणांसमुत्थानस्थानस
स्थानवर्णनामप्रभावचिकित्सितविशेषाव्याख्याताः सामा-
न्यत ॥ ३४ ॥

इसप्रकार—कफजन्य और पुरीषजन्य कृमियोंके निदान, लक्षण, वर्ण, प्रभाव नाम और चिकित्साविशेषका सामान्यरूपसे कथन कियागया है ॥ ३४ ॥

विशेषतस्तुअल्पमात्रमास्थापनानुवासनानुलोमहरणभूयिष्ठते-
ष्वौषधिपुरीषजानांक्रिमीणांचिकित्सितकार्य्यंमात्राधिकम्पुन॰
शिरोविरेचनवमनोपशमनभूयिष्ठतेष्वौषधेषुश्लेष्मजानांक्रि-
मीणांचिकित्सितंकार्य्यम् । इत्येषंक्रिमिघ्नोभेषजविधिरनुव्या
ख्यातोभवति ॥ ३५ ॥

विशेषतासे ध्यान देने योग्य यह बात है कि पुरीषजन्य कृमियोंकी चिकित्सा प्रायः यही है कि स्वल्पमात्रामें आस्थापन तथा अनुवासनबस्ति करना और अनुलोमताके हरण करनेवाली औषधियोंका प्रयोग करना । यह पुरीषज कृमियोंकी चिकित्सा है । कफजन्य कृमियोंमें अधिक मात्रामें वमन, शिरोविरेचन तथा उपशमन औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये । यह कफजनित कृमियोंकी चिकित्साका वर्णन कियागया । इसप्रकार कृमिनाशक औषधियोंका वर्णन कियागयाहै ॥ ३५ ॥

तमनुतिष्ठतायथास्वंहेतुवर्जनेप्रयतितव्यम् । यथोद्देशमेवमि
दंक्रिमिकोष्ठचिकित्सितंयथावदनुव्याख्यातंभवतीति ॥ ३६ ॥

कृमिनाशक औषधियोंका सेवन करनेवाले मनुष्य कृमियोंके उत्पन्न करनेवाले कारणोंको त्यागनेमें विशेष यत्नवान रहे । इसप्रकार यथा उद्देश कृमिकोष्ठकी चिकित्साका यथार्थरूपसे वर्णन कियागया ॥ ३६ ॥

तत्र श्लोकाः ।

अपकर्षणमेवादौक्रिमीणांभेषजम्मृतम् ।ततोविघात प्रकृतेर्नि

दानस्यचवर्जनम् ॥ ३७॥ एतावद्भिषजाकार्य्यंरोगेरोगेयथा-
विधि। अयमेवविकाराणासर्वेषामपिनिग्रहे ॥ ३८ ॥

यहापर श्लोक है कि पहिले कृमियोंका आकर्षण करनाही उत्तम चिकित्सा है । उसके अनन्तर कृमियोंकी प्रकृतिका नाश करना तथा कृमिकारक पदार्थोंका त्याग देना । इसप्रकार वैद्यको प्रत्येक रोगमें विधिपूर्वक करना चाहिये । सपूर्ण विकारोंके शान्त करनेका यही क्रम है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

विधिर्दृष्टस्त्रिधायोऽयक्रिमीनुद्दिश्यकीर्त्तित.।
संशोधनंसशमननिदानस्यचवर्जनम् ॥ ३९ ॥

कृमियोंके उद्देशसे सशोधन, सशमन और निदानका परिवर्जन इस तीन प्रकारकी विधिका कथन किया है ॥ ३९ ॥

अध्यायका सक्षेप ।

व्याधितौपुरुषौज्ञाज्ञौभिषजौसप्रयोजनौ। विंशति.क्रिमयस्त्वेषाहेत्वादि सप्तकोगण. ॥ ४० ॥ उक्तोव्याधितरूपीयेविमाने परमर्षिणा । शिष्यसबोधनार्थश्चव्याधिप्रशमनायच ॥ ४१ ॥

इति व्याधितरूपीयविमान समाप्तम् ॥ ७ ॥

इस व्याधितरूपीय विमानमें शिष्यके सम्बोधनके लिये और व्याधिकी शान्तिके लिये दो प्रकारके व्याधितपुरुष, सुज्ञ और अज्ञ दो प्रकारके वैद्य और उनके प्रयोगके भेद, बीस प्रकारके कृमि और उनके कारण आदि सातगण, महर्षि आत्रेयजीने कथन किये है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० विमानस्थाने भाषा० व्याधीतरूपीयविमान नाम सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्याय. ।

अथातो रोगभिषग्जितीयमध्यायव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेय ।

अब हम रोगभिषग्जितीय अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

शास्त्रपरीक्षा ।

बुद्धिमानात्मनःकार्य्यगुरुलाघवंकर्मफलमनुबन्धदेशकालौच विदित्वायुक्तिदर्शनाद्भिषग्बुभूषु शास्त्रमेवादितःपरीक्षेत । विविधानिहिशास्त्राणिभिषजाप्रचरन्तिलोके । तत्रयन्मन्येत महद्यशस्विधीरपुरुषासेवितमर्थबहुलमाप्तजनपूजितत्रिविधशिष्यबुद्धिहितमपगतपुनरुक्तदोषमार्षंसुप्रणीतसूत्रभाष्यसंग्रहक्रमस्वाधारमनवपतितशब्दमकष्टशब्दपुष्कलाभिधानक्रमागतार्थमर्थतत्त्वविनिश्चयप्रधानसङ्गतार्थमसंकुलप्रकरणमाशुप्रबोधकलक्षणवच्चोदाहरणवच्चतदभिप्रपद्येतशास्त्रम्।शास्त्रह्येवंविधममलइवादित्यस्तमोविधूयप्रकाशयतिसर्वम् ॥ ३ ॥

वैद्य बननेकी इच्छावाला बुद्धिमान् मनुष्य प्रथम अपनी कार्यकी गुरुता, लघुता, कर्म, उसका फल तथा सहायता आदि संयोग, देश और कालको विचारकर एवम् युक्ति अर्थात् अनुमानसे अपने पूर्वापरको विचारता हुआ इन सम्पूर्ण भावोंपर दृष्टि देकर जिस शास्त्रको पढ़ना हो पहिले उसकी परीक्षा करे अर्थात् यह देखे कि यह ग्रंथ पढ़नेयोग्य है या नहीं क्योंकि वैद्यकके अनेक ग्रंथ वैद्यलोगोंके रचेहुए लोकमें प्रचलित हैं । उन सबमें जिस ग्रंथका लोकमें यश छाया हुआहो और योग्य पुरुष उसकी प्रशंसा करतेहों । जिसके पढ़नेसे वैद्यका यथोचित ज्ञान प्राप्त होता हो, जिसमें अर्थ बहुत हों जो प्रामाणिक पुरुषोंका मानाहुआ हो, उत्तम, मध्यम, अधम इन तीनों प्रकारके शिष्योंकी बुद्धिमें आसकता हो । पुनरुक्त दोषसे रहित हो, ऋषि, प्रणीत हो, सूत्र, भाष्य, संग्रहक्रम विधिवत् बना हुआहो, अपने आधार हो अर्थात् उसमें ऐसी बात न हो जिनको जाननेके लिये अन्य ग्रंथोंके देखनेकी आवश्यकता होतीहो, जिसमें अपशब्द न हों तथा कठिन शब्द न हों, जिसका कथन स्पष्ट, और बहुत अर्थको बतानेवाला हो, जिसमें क्रमपूर्वक विषय चलताहो और अर्थ, तत्त्वका निश्चय हो मुख्य सा[illegible], सब विषय संगत हों, शीघ्र बोधका करानेवाला हो एवम् लक्षण और उदाहरण देकर विषयको स्पष्टरूपसे वर्णन करता हो ऐसे ग्रंथको पढ़नेके लिये ग्रहण करना चाहिये । ऐसा शास्त्र सूर्यके समान अंधकारको दूरकर सब जगतको अर्थात् अर्थ, धर्म, यश आदिकोंको प्रकाश करता है ॥ ३ ॥

आचार्यकी परीक्षा ।

ततोऽनन्तरमाचार्य्यंपरीक्षेत । तद्यथा-पर्य्यवदातश्रुतंपरिदृष्ट-

कर्माणदक्षदक्षिणशुचिंजितहस्तसुपकरणवन्तसर्वेन्द्रियोपपन्न प्रकृतिज्ञंप्रतिपत्तिज्ञमनुपस्कृतविद्यमनहकृतमनसूयकमकोपनं क्लेशक्षमंशिष्यवत्सलमध्यापकंज्ञापनासमर्थश्चइत्येवंगुणोह्या- चार्य्य सुक्षेत्रमार्त्तवोमेघइवशस्यगुणैःसुशिष्यमाशुवैद्यगुणे.स- म्पादयति । तमुपसृत्यारिराधयिपुरुपचरेदग्निवच्चदेववच्चराजव- च्चपितृवच्चभर्तृवच्चाप्रमत्तस्ततस्तत्प्रसादात्कृत्स्नशास्त्रमधिगम्य शास्त्रस्यदृढतायामभिधानसौष्ठवस्यार्थस्यविज्ञानेवचनशक्तौ चभूय प्रयतेतसम्यक् ॥ २ ॥

इसके अनन्तर पढानेवाले आचार्यकी परीक्षा करना चाहिये। वह इस प्रकार है, जो वेदोंके अथवा आयुर्वेदके सपूर्ण रूपसे सर्वांशको जाननेवाला हो, जिसने आयु-र्वेद सबधी सपूर्ण कर्मोंको गुरूसे सीखाहो और स्वय भी यथोचित रीतिपर सपूर्ण कर्मोंको अनेक वार किया हुआ हो। सब कामोंम चतुर हो, सपूर्ण आयुर्वेद विद्याको जाननेवाला हो पवित्र हो, जिसका हाथ हरएक कार्यके करनेमें हल्का और स्पष्ट हो जो आयुर्वेदीय यन्त्र, शस्त्र, क्षार, औषध आदि सपूर्ण सामग्री रखता हो, सर्वेन्द्रिय सम्पन्न हो, जिसके शरीरके सपूण अग उत्तम हो। सब मनुष्योंकी प्रकृति तथा भेदको जाननेवाला हो आयुर्वेदके सपूण सिद्धान्तोंको ठीक जाननेवाला हो, जिसने सपूर्ण शास्त्र पढे हों और वह याद हों, अहकार रहित हो, निंदक और क्रोधी न हो, क्लेशोंको सहन करनेवाला हो, शिष्यपर प्रेम करनेवाला हो और प्रेमपूर्वक पढानेवाला हो, जिस विषयको पढावे उसको उदाहरण आदि द्वारा स्पष्टरूपसे समझानेवाला हो। इसप्रकार आचार्य-जैसे ऋतुकालम अच्छी भूमिम मेघ बरसकर उत्तम खेतीको उत्पन्न करता है उसीप्रकार अपन शिष्य को शीघ्र वैद्यकके गुणासे सम्पन्न कर देता है। वैद्य होनेकी इच्छावाले शिष्यको उचित है कि ऐसे गुरुके समीप जाकर उसको अग्निके समान, देवताके समान, राजाके समान, पिताके समान तथा स्वामीके समान जानकर अप्रमत्त होकर सेवा करे। ऐसे गुरुकी कृपासे सपूर्ण शास्त्रको पढकर शास्त्रम दृढता उत्पन्न करनेके लिये तथा कथन करनेमें चतुराइ उत्पन्न करनेके लिये शास्त्रीय विषयका यथोचित ज्ञान प्राप्त करनेके लिये और जाने हुए विषयको वर्णन करनेके लिये उत्तम शक्ति उत्पन्न करनेका यत्नवान् रहे ॥ २ ॥

तत्रोपायाव्याख्यास्यन्ते । अध्ययनमध्यापनतद्विद्यासम्भाषे- त्युपाया ॥ ३ ॥

शास्त्रपरीक्षा ।

बुद्धिमानात्मनःकार्य्यगुरुलाघवेकर्मफलमनुबन्धदेशकालौच विदित्वायुक्तिदर्शनाद्भिषगबुभूषु शास्त्रमेवादित परीक्षेत । विविधानिहिशास्त्राणिभिषजाप्रचरन्तिलोके । तत्रयन्मन्येत महद्यशस्विधीरपुरुषानुसेवितमर्थबहुलमाप्तजनपूजितत्रिवि धशिष्यबुद्धिहितमपगतपुनरुक्तदोषमार्षसुप्रणीतसूत्रभाष्यस ग्रहक्रमस्वाधारमनवपतितशब्दमकष्टशब्दपुष्कलाभिधानक्र- मागतार्थमर्थतत्त्वनिश्चयप्रधानसङ्गतार्थमसकुलप्रकरणमाशु प्रबोधकलक्षणवच्चोदाहरणवच्चतदभिप्रपद्येतशास्त्रम्।शास्त्रंह्ये- वविधममलइवादित्यस्तमोविधूयप्रकाशयतिसर्वम् ॥ १ ॥

वैद्य होनेकी इच्छावाला बुद्धिमान मनुष्य प्रथम अपनी कार्यकी गुरुता, लघुता, कर्म, उसका फल तथा सहायता आदि संयोग, देश और कालको विचारकर एवम् युक्ति अर्थात् अनुमानसे अपने पूर्वापरको विचारता हुआ इन सम्पूर्ण भावोंपर दृष्टि देकर जिस शास्त्रको पढ़ना हो पहिले उसकी परीक्षा करे अर्थात् यह देखे कि यह ग्रन्थ पढ़नेयोग्य है या नहीं क्योंकि वैद्यकके अनेक ग्रन्थ वैद्यलोगोंके रचेहुए लोकमें प्रचलित हैं । उन सबमें जिस ग्रन्थका लोकमें यश छाया हुआहो और योग्य पुरुष उसकी प्रशंसा करतेहों । जिसके पढ़नेसे वैद्यका यथोचित ज्ञान प्राप्त होता हो, जिसमें अर्थ बहुत हों जो साधारण पुरुषोंका माननीय हो, उत्तम, मध्यम, अधम इन तीनों प्रकारके शिष्योंकी बुद्धिमें आसकता हो । पुनरुक्त दोषसे रहित हो, ऋषि-प्रणीत हो, सूत्र, भाष्य, संग्रहक्रम विधिवत् बना हुआहो, अच्छे आधार हो अर्थात् उसमें ऐसी बात न हो जिनको जाननेके लिये अन्य ग्रन्थोंके देखनेकी आवश्यकता होतीहो, जिसमें अपशब्द न हों तथा कठिन शब्द न हो, जिसका कथन स्पष्ट, और बहुत अर्थको बतानेवाला हो, जिसमें क्रमपूर्वक विषय वर्णन कियाहो और अर्थ, तत्त्वका निश्चय हो मुख्य बातोंका, सब विषय संगत हों, शीघ्र बोधको करनेवाला हो एवम् लक्षण और उदाहरण देकर विषयको स्पष्टरूपसे वर्णन करता हो ऐसे ग्रन्थको पढ़नेके लिये ग्रहण करना चाहिये । ऐसा शास्त्र सूर्यके समान अंधकारको दूरकर सब अर्थोंका अर्थात् अर्थ, धर्म, यश आदिका प्रकाश करता है ॥ १ ॥

आचार्यकी परीक्षा ।

ततोऽनन्तरमाचार्य्यंपरीक्षेत । तद्यथा—पर्य्यवदातश्रुतपरिदृष्ट-

कर्माणदक्षदक्षिणशुचिंजितहस्तमुपकरणवन्तसर्वेन्द्रियोपपन्नं प्रकृतिज्ञंप्रतिपत्तिज्ञमनुपस्कृतविधमनहङ्कृतमनसूयकमकोपनं क्लेशक्षमंशिष्यवत्सलमध्यापकंज्ञापनासमर्थञ्चइत्येवंगुणोह्या-चार्य्यं सुक्षेत्रमार्त्तवोमेघइवशस्यगुणैःसुशिष्यमाशुवैद्यगुणै स-म्पादयति । तमुपसृत्यारिराधयिपुरुपचरेदग्निवच्चदेववच्चराजव-च्चपितृवच्चभर्तृवच्चाप्रमत्तस्ततस्तत्प्रसादात्कृत्स्नशास्त्रमधिगम्य शास्त्रस्यदृढतायामभिधानसौष्ठवस्यार्थस्यविज्ञानेवचनशक्तौ चभूय प्रयतेतसम्यक् ॥ २ ॥

इसके अनन्तर पढानेवाले आचार्यकी परीक्षा करना चाहिये। वह इस प्रकार है, जो वेदोंके अथवा आयुर्वेदके सपूर्ण रूपसे सर्वांगको जाननेवाला हो, जिसने आयुर्वेद सबधी सपूर्ण कर्मोको गुरूसे सीखाहो और स्वय भी यथोचित रीतिपर सपूर्ण कर्मोको अनेक वार किया हुआ हो। सब कामोंम चतुर हो, सपूर्ण आयुर्वेद विद्याको जाननेवाला हो पवित्र हो, जिसका हाथ हरएक कार्यके करनेमें हल्का और स्पष्ट हो जो आयुर्वेदीय यत्र, शस्त्र, क्षार, औषध आदि सपूर्ण सामग्री रखता हो, सर्वेन्द्रिय सम्पन्न हो, जिसके शरीरके सपूण अग उत्तम हो। सब मनुष्योंकी प्रकृति तथा भेदको जाननेवाला हो आयुर्वेदके सपूण सिद्धान्तोको ठीक जाननेवाला हो, जिसने सपूर्ण शास्त्र पढे हों और वह याद हों, अहकार रहित हो, निंदक और क्रोधी न हो, क्लेशोंको सहन करनेवाला हो, शिष्यपर प्रेम करनेवाला हो और प्रेमपूर्वक पढानेवाला हो, जिस विपयको पढावे उसको उदाहरण आदि द्वारा स्पष्टरूपसे समझानेवाला हो। इसप्रकार आचार्य-जैसे ऋतुकालम अच्छी भूमिमें मेघ वरसकर उत्तम खेतीको उत्पन्न करता है उसीप्रकार अपने शिष्य को शीघ्र वैद्यकके गुणोंसे सम्पन्न कर देता है। वैद्य होनेकी इच्छावाले शिष्यको उचित है कि ऐसे गुरूके समीप जाकर उसको अग्निके समान, देवताके समान, राजाके समान, पिताके समान तथा स्वामीके समान जानकर अप्रमत्त होकर सेवा करे। ऐसे गुरुकी कृपासे सपूर्ण शास्त्रको पढकर शास्त्रमें दृढता उत्पन्न करनेके लिये तथा कथन करनेमें चतुराई उत्पन्न करनेके लिये शास्त्रीय विपयका यथोचित ज्ञान प्राप्त करनेके लिये और जाने हुए विपयको वर्णन करनेके लिये उत्तम शक्ति उत्पन्न करनेका यत्नवान् रहे ॥ २ ॥

तत्रोपायाव्याख्यास्यन्ते । अध्ययनमध्यापनतद्विद्यासम्भाषे-त्युपाया ॥ ३ ॥

अथ उन उपायोंका अर्थात् योग्य वैद्य बननेके उपायोंका वर्णन करते हैं। जैसे पढ़ना (अध्ययन करना) पढ़ाना और उसी शास्त्रमें शास्त्रार्थ आदि सम्भाषण करना यह तीन उपाय शास्त्रमें व्युत्पन्न होनेके हैं ॥ ३ ॥

अध्ययनकी विधि।

तत्रायमध्ययनविधिः कल्यः कृतक्षणः प्रातरुत्थायोपव्युषं वा कृत्वा- वश्यकमुपस्पृश्योदकं देवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धाचार्य्येभ्यो नम- स्कृत्य समे शुचौ देशे सुखोपविष्टो मनःपुरःसराभिर्वाग्भिः सूत्रमनुक्रा- मन्पुनः पुनरावर्त्तयेद्बुद्ध्या सम्यगनुप्रविश्यार्थतत्त्वं स्वदोषपरि- हारपरदोषप्रमाणार्थमेवमध्यन्दिनेऽपराह्ने रात्रौ च शश्वदपरिहा- पयन्नध्ययनमभ्यसेदित्यध्ययनविधिः ॥ ४ ॥

अब प्रथम अध्ययन विधि अर्थात् पढ़नेके क्रमको कथन करते हैं। पढ़नेकी इच्छावाला आरोग्य ब्रह्मचारी नियत समयपर प्रातःकाल अथवा सूर्य उदय होनेके चार घड़ी प्रथम उठकर परमेश्वरका स्मरण करे और मलमूत्रादि त्यागन करनेके अनन्तर स्नान आदि कर पवित्र हो देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध और आचार्य आदिकोंको प्रणामकर शुद्ध, समान, पवित्र स्थानमें सुखपूर्वक बैठाहुआ शास्त्रमें मन लगाये हुए जिन सूत्रोंको पढ़ाहो उन सूत्रोंमें चित्त लगाकर स्पष्ट स्वरसे उनको उच्चारण करताहुआ वारवार पाठ करता जाय फिर उन सब पाठको अपनी बुद्धिमें जमाकर उस पाठमें अथवा उस विषयमें जो दोष अथवा अदोष एवं तर्क वितर्क जो कुछ उत्पन्न हो। उसका निश्चय करनेके लिये मध्यदिनमें अथवा अपराह्नमें या रात्रिके समय अथवा उसी समय गुरुके समीप जा अपनी शंकाओंको निर्मूल कर लेवे। और इसी विधिसे नित्य पढ़ता रहे। यह अध्ययनकी विधि है ॥ ४ ॥

अथाध्यापनविधिः अध्यापने कृतबुद्धिराचार्य्यः शिष्यमादितः प रीक्षेत तद्यथा—प्रशान्तमार्य्यप्रकृतिकमक्षुद्रकर्माणमृजुचक्षुर्मु- खनासावंशं तनुरक्तविशदजिह्वमविकृतदन्तौष्ठममिन्मिनं धृतिमन्तमनहंकृतं मेधाविनं वितर्कस्मृतिसम्पन्नमुदारसत्त्वं तद्विद्यकुलजमथवा तद्विद्यवृत्तं तत्त्वाभिनिवेशिनमव्यङ्गमव्यापन्नेन्द्रि- यं निभृतमनुद्धतमव्यसनिनं शीलशौचाचारानुरागदाक्ष्यप्राद- क्षिण्योपपन्नमध्ययनाभिकाममत्यर्थं विज्ञाने कर्मदर्शने चानन्य-

कार्य्यगलुब्धमनलससर्वभूतहितैषिणमाचार्य्यसर्वानुशिष्टिप्र तिकरमनुरक्तमेवंगुणसमुदितमध्याप्यमेवमाहु'। एवचिरमा- चार्य्यश्चाध्ययनार्थमुपस्थितमारिराधयिषुमनुभाषेत ॥ ५ ॥

अब अध्यापन (पढाने) की विधिका कथन करते है। पढानेकी इच्छावाला वैद्य प्रथम शिष्यकी परीक्षा करे शिष्य ऐसा होना चाहिये। जो शान्तचित्त और श्रेष्ठ स्वभाववाला हो, नीच कर्मोंको करनेवाला तथा नीच आशयवाला न हो, जिसके नेत्र, मुख, नासिका यह सब सुन्दर और सुडौल हो, जिसकी पतली, लाल, सुन्दर जीभ हो, दंतपंक्ति और ओष्ठ उत्तम हों तथा धारण शक्तिवाला हो, अहकार रहित हो मेधायुक्त हो,तक शक्ति और स्मरण शक्तिवाला हो, उदार स्वभाववाला हो और उनके कुलमें परम्परासे विद्या पढने, पढानेकी प्रथा चली आती हो अथवा उस विद्याको पढना चाहताहो। उस विद्यासे अपने लाभकी इच्छा करता हो, जो विद्याके तत्त्वको जाननेमें चित्त लगाये हुए हो, जिसके शरीरके सपूर्ण अग उत्तम हों, सर्वेन्द्रिय सम्पन्न हो, विनीत हो, अकड रहित हो, दुर्व्यसन रहित हो, सुशील हो, पवित्र हो, अनुरागी हो, चतुर हो, हरएक कार्य बुद्धिमत्तासे करनेवाला हो, पढनेमें चित्त लगाये हुए हो, अर्थके जानने और वैद्यकर्म सीखनेमें तथा देखनेमे चित्त लगाये हुए हो, गुरुकी आज्ञा, पालन करनेवाला हो और गुरुमें प्रेमभाव रखनेवाला हो। इस प्रकारके गुणासे सम्पन्न शिष्य पढाने योग्य होता है। इन सपूर्ण गुणायुक्त शिष्य बहुत कालतक पढनेकी इच्छासे आवे तो ऐसे शिष्यको गुरु विधिवत् शास्त्रका उपदेश कर देवे ॥ ९ ॥

उपदेश।

उदगयनेशुक्लपक्षेप्रशस्तेऽहनिपुष्यहस्तश्रवणाश्वयुजामन्यतमे- ननक्षत्रेणयोगमुपगतेभगवतिशशिनिकल्याणेमुहूर्त्तेस्नातःकृ- तोपवासोमुण्ड.कषायवस्त्रसवीत समिधोऽग्निमाज्यमुपलेपन मुदककुम्भाश्चसुगन्धिहस्तमाल्यदामहिरण्यान्हेमरजतमणि- मुक्ताविद्रुमक्षौमपरिधींश्चकुशलाजसर्षपाक्षताश्चशुक्लाश्चसुमन- सोग्रथिताग्रथिताश्चमेध्याश्चभक्ष्यानगन्धाश्चपिष्टापिष्टानादायो पतिष्ठस्वेति। सतथाकुर्य्यात् ॥ ६ ॥

जब शिष्यको अध्ययन करानाहो तो आचार्य कहे कि तुम उत्तरायणमे, शुक्ल पक्षमे और शुभदिनमे पुष्य, हस्त, श्रवण, अश्विनी इन नक्षत्रोंमसे किसी नक्षत्रयुक्त

चन्द्रमा होनेपर शुभमुहूर्त्त और शुभलग्नमें स्नान और उपवास करके मुंडन करा, कषाय वस्त्रोंको धारणकर पलाशकी समिधा, अग्नि, घृत, उपलेपन द्रव्य, जल, घट, सुगंधित द्रव्य गुरु, माला, नेती मृगछाला, सुवर्ण, रजत, मणि, मुक्ता, मूंगा, रेशमी धोती, कुशा, लावा, सरसों, अक्षत, श्वेतपुष्प, और पुष्पोंकी माला, पवित्र भक्ष्य पदार्थ, केशर चन्दनादि उत्तम गंध पिसे हुए और बिना पिसे हुए लेकर हमारे पास आवो। शिष्य उसीप्रकार करे ॥ ६ ॥

तमुपस्थितमाज्ञायसमेशुचौदेशेप्राक्प्रवणेवाचतुष्किष्कुमात्र
चतुरस्रस्थण्डिलगोमयोदकेनोपलिप्तकुशास्तीर्णंसुपरिहितप
रिधिभिश्चतुर्दिशयथोक्तचन्दनोदककुम्भक्षौमहेमहिरण्यरजत-
मणिमुक्ताविद्रुमालङ्कृतमेध्य-भक्ष्य-गन्धशुक्लपुष्पलाजासर्ष-
पाक्षतोपशोभितंकृत्वातत्रपालाशीभिरैङ्गुदीभिरौदुम्बरीभिर्मा-
धुकीभिर्वासमिद्भिरग्निमुपसमाधायप्राङ्मुखःशुचिरध्ययनवि-
धिमनुविधायमधुसर्पिर्भ्यांत्रिस्त्रिर्जुहुयादग्निम्। आशीःसम्प्रयु-
क्तैर्मन्त्रैर्ब्रह्माणमग्निंधन्वन्तरिंप्रजापतिमश्विनाविन्द्रमृषींश्चसूत्र-
कारानभिमन्त्रयमाण । पूर्वंस्वाहेतिशिष्यश्चैनमन्वारभेत हु-
त्वाचप्रदक्षिणमग्निमनुपरिक्रामेत्। ततोऽनुपरिक्राम्यब्राह्मणा-
न्स्वस्तिवाचयेत। भिषजश्चाभिपूजयेत् ॥ ७ ॥

जब इन संपूर्ण वस्तुओंको लेकर शिष्य गुरुके पास आवे तब गुरु उस आये हुएको देखकर सम और पवित्र भूमिमें पूर्व अथवा उत्तरकी ओर चार हाथकी चौकोनी वेदी बनावे उसको गोबर और जलसे लिपाकर उसके ऊपर विधिवत् कुशाओंको बिछावे और वेदीके चारों ओर यथाविधि बनावे फिर चारोंओर गंधोदक जल, जलके कुम्भ, रेशमी वस्त्र, सुवर्णकी वस्तु, हिरण्य, रजत, मणि, मोती, मूंगा इनसे यथाविधि स्थानको विभूषित करे फिर पवित्र, भक्ष्य पदार्थ, कपूर, केशर चन्दनादि गंधद्रव्य, श्वेतपुष्प लावा (धानकी खील) सरसों अक्षत आदिको यथाक्रम स्थापन करे तथा पलाश, हिंगोट, गूलर, महुआ इनकी समिधाओंसे अग्निको विधिवत् प्रज्वलित करे फिर पूर्वाभिमुख होकर शिष्यको शुद्धभावसे अध्ययन विधिके अनुसार बिठाकर शहद और घीसे मंत्रसहित आहुतियें अग्निमें हवन करे। फिर वेदोक्त आशीर्वादोंके मंत्रोंद्वारा ब्रह्मा, अग्नि, धन्वन्तरि, प्रजापति, अश्विनीकुमार, इन्द्र, ऋषिगण तथा सूत्र-

कारोंको आवाहन करताहुआ पहिले आप स्वाहा कहकर आहुती देवे फिर शिष्य भी उसीप्रकार हवन करे। हवन करनेके अनन्तर अग्निकी प्रदक्षिणा करे और ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करावे तथा वैद्योंका पूजन करे ॥ ७ ॥

अथैनमग्निसकाशेब्राह्मणसकाशेभिषक्सकाशेचानुशिष्यात् । ब्रह्मचारिणाश्मश्रुधारिणासत्यवादिनाअमासादेनमेध्यसेविना निर्मत्सरेणशास्त्रधारिणाभवितव्यम् । नचतेमद्वचनात्किञ्चिदकार्य्यस्यादन्यत्रराजद्विष्टात्प्राणहराद्विपुलादधर्म्यादनर्थसम्प्रयुक्ताद्वाप्यर्थात् । मदर्पणेनमत्प्रधानेनमदधीनेनमत्प्रियहितानुवर्त्तिनाचशश्वद्भवितव्यम् । पुत्रवद्दासवदर्थिवच्चोपचरतानुसर्त्तव्योऽहम् । अनुत्सुकेनावहितेनअनन्यमनसाविनीतेनावेक्ष्यावेक्ष्यकारिणाअनसूयकेनचाभ्यनुज्ञातेनप्रविचरितव्यम् अनुज्ञातेनचप्रविचरता ॥ ८ ॥

फिर शिष्यको अग्निके समीप, ब्राह्मणोंके समीप और वैद्योंके समीप बिठाकर इसप्रकार शिक्षा देवे । कि हे शिष्य ! तुमको ब्रह्मचारी बनकर श्मश्रु धारणकर, सत्यवादी रहना होगा तथा, निरामिषभोजी और पवित्रभोजन करना मत्सर (ईर्षा, द्वेष) रहित और शास्त्रोंको धारण करना होगा, मेरी आज्ञासे बाहर किंचित् काम भी नहीं करना, राजाका द्वेष, हिंसा, अधर्म, अनर्थ, अनर्थसे धन प्राप्त करना इनका छोडकर और सपूर्ण काम मेरी आज्ञानुसार करना, मेरे आगे नम्रतापूर्वक हरएक काममें मुझे प्रधान मानताहुआ मेरे आधीन, और मेरी प्रियता, मेरा हित तथा मेरा अनुवर्त्ती बनकर निरन्तर रहनाचाहिये । जैसे, पिताकी सेवा पुत्र करताहै, मालिककी सेवा नौकर करताहै, जैसे अर्थकी इच्छासे अर्थीपुरुष धनिककी आज्ञा पालन करताहै उसी प्रकार सब स्थानमें तुमको मेरा अनुसरण करनाहोगा । उत्सुकतारहित होकर सावधानीसे अनन्यमन होकर विनीतभावसे हरएक कामको विचार विचारकर करतेहुए ईर्षा अभिमान, निंदा आदिको त्यागकर मेरी आज्ञाके अनुसार सब काम करने होंगे । मेरी आज्ञा लेकर इधरउधर जानाहोगा ॥ ८ ॥

वैद्यको उपदेश ।

पूर्वंगुर्वर्थोपाहरणेयथाशक्तिप्रयतितव्यम् । कर्मसिद्धिमर्थसिद्धिं यशोलाभञ्चप्रेत्यचसर्वमिच्छताभिषजा । गोब्राह्मणमादौ-

कृत्वासर्वप्राणभृतांशर्मण्याशासितव्यम् । अहरहरुत्तिष्ठताचोपविशताचसर्वात्मनाचातुराणामारोग्येप्रयतितव्यम् । जीवितहेतोरपिचातुरेभ्योनाभिद्रोग्धव्यम् । मनसापिचपरस्त्रियोनाभिगमनीया । तथासर्वमेवपरस्वम् । निभृतवेशपरिच्छेदेनचभवितव्यम् । अशौण्डेनअपापेनअपापसहायेनचश्लक्ष्णशुक्लधर्म्यशर्म्यधन्यसत्यहितमितवचसादेशकालविचारिणास्मृतिमताज्ञानोत्थानोपकरणसम्पत्सुनित्ययत्नवता । नचकदाचिद्राजद्विष्टानाराजद्वेषिणांवामहाजनद्विष्टानामहाजनद्वेषिणांवाऔषधमनुविधातव्यम् । एवंसर्वेषामत्यर्थविकृतदुष्टदुःखशीलाचारोपचाराणामनपवादप्रतिकाराणांमुमूर्षूणाञ्चनथैवासन्निहितेश्वराणांस्त्रीणामनध्यक्षाणांवा ॥ ९ ॥

पहिले गुरुकेलिये धन इकट्ठा करनेमें यत्न करना होगा । धर्मसिद्धिके लिये, अर्थसिद्धिके लिये, यशप्राप्त करनेके लिये, मरकर मोक्ष प्राप्तिके लिये इच्छा करनेवाला वैद्य पहिले गौ ब्राह्मणोंको आदि लेकर संपूर्ण प्राणियोंके कल्याण करनेमें यत्नवान् रहे । नित्यप्रति उठता बैठता संपूर्णरूपसे रोगियोंके आरोग्य करनेमें यत्नवान् रहना । अपने आजीविकाके लिये भी रोगियोंको द्रोह न करना । मनसे भी परस्त्रीकी इच्छा न करना तथा किसी भी पराई वस्तुके लेनेकी इच्छा न करना । स्वच्छ, साधारण, उत्तम वेश धारण करना, मद्य न पीना, पापी न बनना, पापरहित मनुष्योंके साथ रहना, पवित्र, उत्तम, धर्मात्माओंकी संगति करना, श्लक्ष्ण आपपूर्णकी रक्षा करना, धन्य, सत्य, हित और देश, काल विचार कर मितभाषण करना, देशकालमें विचारवान् रहना, स्मृतिवान् होकर ज्ञान साधनकी सामग्रीका नित्य संग्रह करना । और राजद्रोही तथा जिनसे राजा द्वेष करता हो, जो बड़े पुरुषोंके द्वेषी हों अथवा जिनसे बड़े पुरुष द्वेष रखते हों ऐसे पुरुषोंको औषधी नहीं देना । इसी प्रकार सबका बुरा करनेवाले दुष्ट तथा खोटे आचारवाले पुरुषोंको भी औषधी न देना चाहिये तथा जो स्वयं मरना चाहता है, जिसके अपने मरनेका भय नहीं, जो कुरूपकारी है उनकी तथा जिन स्त्रियोंके पति, पुत्र आदि कोई समीप न हों ऐसी अकेली स्त्रियोंकी चिकित्सा नहीं करना ॥ ९ ॥

नचकदाचित्स्त्रीदत्तमामिषमादातव्यमननुज्ञातभर्त्राअथवाअ-
ध्यक्षेण।आतुरकुलञ्चानुप्रविशतात्वयाविदितेनानुमतप्रवेशि-
नासार्द्धंपुरुषेणसुसंवीतेनावाक्शिरसास्मृतिमतास्तिमितेनअ
वेक्ष्यावेक्ष्यवुद्ध्यामनसासर्वमाचरतासम्यगनुप्रवेष्टव्यम्।अनु-
प्रविश्यचवाङ्मनोवुद्धीन्द्रियाणिन कचित्प्रणिधातव्यानिअ-
न्यत्रातुरोपकारार्थावाआतुरगतेष्वन्येषुवाभावेषु। नचातुरकु-
लप्रवृत्तयोवहिर्निश्चारयितव्या. । ह्रासितश्चायुष प्रमाणमातु-
रस्यनवर्णयितव्यजानतापिच। तत्रयत्रोच्यमानमातुरस्यअन्य-
स्यवाप्युपघातायसम्पद्यते । ज्ञानवतापिचनात्यर्थमात्मनो-
ज्ञानेनविकत्थितव्यम् । आप्तादपिहि । आप्तादपिविकत्थ-
मानादत्यर्थमुद्विजन्तिअनेके ॥ १० ॥

यदि कोई स्त्री अपने पति अथवा अध्यक्षकी आज्ञा विना आमिष अथवा कोई अन्य वस्तुए देवे तो नहीं लेना चाहिये। जब किसी रोगीको देखनेके लिये जावे तो जो मनुष्य उनके घरमें आनेजानेवाला हो उसके सगम अथवा पहिले खबर वैद्यके आनेकी देकर जानकार पुरुपके साथ स्वच्छ वस्त्राको पहिनेहुए, सिरको नीचा किये हुए, विना कुछ वोले स्मृतिवान् होकर सावधानीसे पूर्वापरको विचारते हुए बुद्धि और मनसे उत्तम विधिका विचार करते हुए रोगीके घरमें प्रवेश करना। फिर घरमें जाकरभी अपने मन, वाणी, बुद्धि और इन्द्रियाको रोगीके उपकार तथा उसके निदान, कारणादि द्वारा रोगके सपूर्ण भावोंको जाननेमें लगावे। किन्तु अन्य उनके घरकी किसी वस्तु तथा स्त्री आदिकोंपर न तो दृष्टि डाले और न उनका विचारतक करे। रोगीके कुलके योग्य पुरुषोंको उसके समीपसे वाहर न निकाले। यदि देखे कि रोगीकी आयु वहुत कम शेष हे अर्थात् मरजानेवाला है तव भी अपने मुखसे न कहे क्योंकि इधर उधरसे अपने मरनेकी वात सुनकर रोगी शीघ्र घवडाकर मृत्युके वश होजाताहै एवम् उनके कटुम्वी आदि सुनकर भी वडा भारी दु'ख मानतेहैं। स्वयं बुद्धिमान् होते हुए भी और वैद्यकका योग्य ज्ञानी होते हुए भी अपने मुखसे अपनी प्रशसा न करे। यदि योग्य वुद्धिमान् भी अपने मुखसे अपनी वडाई करने लगजाता हैं तो उसको सुनकर बहुतसे लोगोंको उसमें अश्रद्धा उत्पन्न होजातीहै ॥ १० ॥

नचैवहिअस्तिआयुर्वेदस्यपार, तस्मादप्रमत्त शश्वदभियोग-
मस्मिन् गच्छेत्। तदेवंकार्य्यमेवभूयश्चप्रवृत्तस्यसौष्ठवमनुसृ-

क्रुत्वासर्वप्राणभृताशर्मण्याशासितव्यम्। अहिरहरुत्तिष्ठताचोपविशताचसर्वात्मनाचातुराणामारोग्येप्रयतितव्यम्। जीवितहेतोरपिचातुरेभ्योनातिद्रोग्धव्यम्। मनसापिचपरस्त्रियोनाभिगमनीया.। तथासर्वमेवपरस्वम्। निभृतवेशपरिच्छेदेनचभवितव्यम्। अशौण्डेनअपापेनअपापसहायेनचश्लक्ष्णशुक्लधर्म्यशर्म्यधन्यसत्यहितमितवचसादेशकालविचारिणास्मृतिमताज्ञानोस्थानोपकरणसम्पत्सुनित्ययत्नवता। नचकदाचिद्राजद्विष्टानाराजद्वेषिणावामहाजनद्विष्टानामहाजनद्वेषिणावाऔषधमनुविधातव्यम्। एवसर्वेषामत्यर्थविकृतदुष्टदुःखशीलाचारोपचाराणामनपवादप्रतिकरादीनामुमूर्षुताश्चतथैवासन्निहितेश्वराणास्त्रीणामनध्यक्षाणावा ॥ ९ ॥

पहिले गुरुकेलिये धन इकठा करनेमें यत्न करनाहोगा। कर्मसिद्धिके लिये, अर्थसिद्धिके लिये, यशप्राप्त करनेके लिये, मरकर मोक्ष प्राप्तिके लिये इच्छा करनेवाला वैद्य पहिले गौ ब्राह्मणोंको आदि लेकर सपूर्ण प्राणियोंके कल्याण करनेमें यत्नवान् रहे। नित्यम्प्रति उठता वैठता सपूर्णरूपसे रोगियोंके आरोग्य करनेमें यत्नवान् रहना। अपने आजीवनके लिये भी रोगियोंको दिक न करना। मनसे भी परस्त्रीकी इच्छा न करना तथा किसी भी पराई वस्तुके लेनेकी इच्छा न करना। स्वच्छ, साधारण, उत्तम वेश धारण रखना, मद्य न पीना, पापी न बनना, पापरहित मनुष्योंके साथ रहना, पवित्र, उत्तम, धर्मात्माओंकी सगति करना, शरण आयेहुएकी रक्षा करना, धन्य, सत्य, हित और देश, काल विचार कर मितभाषण करना, देशकालमें विचारवान् रहना, स्मृतिवान् होकर ज्ञान साधनकी सामग्रीको नित्य सग्रह करना। और राजद्रोही तथा जिनसे राजा द्वेष करताहो, जो वडे पुरुषोंके द्वेषी हों अथवा जिनसे वडे पुरुष द्वेष रखतेहों ऐसे पुरुषोंको औषधी नहीं देना। इसी प्रकार सबका बुरा करनेवाले दुष्ट तथा खोटे आचारवाले पुरुषोंको भी औषधी न देना एवम् जो स्वय मरना चाहताहै, जिसको अपने अपवादका भय नहीं, जो कुपथ्यकारी है उनकी तथा जिन स्त्रियोंके पति, पुत्र आदि कोई समीप न हो ऐसी अकेली स्त्रियोंकी चिकित्सा नहीं करना ॥ ९ ॥

नचकदाचित्स्त्रीदत्तमामिषमादातव्यमननुज्ञातभर्त्राअथवाअ-ध्यक्षेण।आतुरकुलश्चानुप्रविशतात्वयाविदितेनानुमतप्रवेशिनासार्द्धंपुरुषेणसुसवीतेनावाक्शिरसास्मृतिमतास्तिमितेनअवेक्ष्यावेक्ष्यबुद्ध्यामनसासर्वमाचरतासम्यगनुप्रवेष्टव्यम्। अनुप्रविश्यचवाङ्मनोबुद्धीन्द्रियाणिनक्वचित्प्रणिधातव्यानिअन्यत्रातुरोपकारार्थावाआतुरगतेष्वन्येषुवाभावेषु। नचातुरकुलप्रवृत्तयोवहिर्निश्चारयितव्या.। ह्रासितश्चायुष प्रमाणमातुरस्यनवर्णयितव्यजानतापिच। तत्रयत्रोच्यमानमातुरस्यअन्यस्यवाप्युपघातायसम्पद्यते। ज्ञानवतापिचनात्यर्थमात्मनोज्ञानेनविकत्थितव्यम्। आप्तादपिहि। आप्तादपिविकत्थमानादत्यर्थमुद्विजन्तिअनेके॥ १०॥

यदि कोई स्त्री अपने पति अथवा अध्यक्षकी आज्ञा विना आमिष अथवा कोई अन्य वस्तुए देवे तो नहीं लेना चाहिये। जब किसी रोगीको देखनेके लिये जावे तो जो मनुष्य उनके घरमें आनेजानेवाला हो उसके सगम अथवा पहिले खबर वैद्यके आनेकी देकर जानकार पुरुषके साथ स्वच्छ वस्त्रोंको पहिनेहुए, सिरको नीचा किये हुए, विना कुछ बोले स्मृतिवान् होकर सावधानीसे पूर्वापरको विचारते हुए बुद्धि और मनसे उत्तम विधिका विचार करते हुए रोगीके घरमे प्रवेश करना। फिर घरमे जाकरभी अपने मन, वाणी, बुद्धि और इन्द्रियोको रोगीके उपकार तथा उसके निदान, कारणादि द्वारा रोगके सपूर्ण भावोंको जाननेमें लगावे। किन्तु अन्य उनके घरकी किसी वस्तु तथा स्त्री आदिकोंपर न तो दृष्टि डाले और न उनका विचारतक करे। रोगीके कुलके योग्य पुरुषोंको उसके समीपसे वाहर न निकाले। यदि देखे कि रोगीकी आयु बहुत कम शेष है अर्थात् मरजानेवाला है तब भी अपने मुखसे न कहे क्योंकि इधर उधरसे अपने मरनेकी वात सुनकर रोगी शीघ्र घवडाकर मृत्युके वश होजाताहै एवम् उनके कटुम्बी आदि सुनकर भी वडा भारी दुःख मानतेहै। स्वयं बुद्धिमान् होते हुए भी और वैद्यकका योग्य ज्ञानी होते हुए भी अपने मुखसे अपनी प्रशसा न करे। यदि योग्य बुद्धिमान् भी अपने मुखसे अपनी वडाई करने लगजाता है तो उसको सुनकर वहुतसे लोगोंको उसमें अश्रद्धा उत्पन्न होजातीहै॥ १०॥

नचैवहिअस्तिआयुर्वेदस्यपार, तस्मादप्रमत्त.शश्वदभियोगमस्मिन् गच्छेत्। तदेवंकार्य्यमेवभूयश्चप्रवृत्तस्यसौष्ठवमनुसू-

यतापरेभ्योऽप्यगमयितव्यम् । कृत्स्नोहिलोकोबुद्धिमतामाचार्य्यःशत्रुश्चाबुद्धिमतामेतच्चाभिसमीक्ष्यबुद्धिमताअमित्रस्यापि धन्ययशस्यमायुष्यपौष्टिकलौकिकमभ्युपदिशतोवचःश्रोतव्यमनुविधातव्यञ्चेति ॥ ११ ॥

आयुर्वेद शास्त्रका पार नहीं है । इसलिये सदैव अप्रमत्त होकर इसमें चित्त लगा योग्यता प्राप्त करे । और यह जानकर कि अमुकस्थलमें अमुकप्रकारसे रोग शान्ति करनाचाहिये इत्यादि वैद्यकशास्त्रके प्रकाशको अपने गुरूके सिवाय और योग्य वैद्योंसे भी सीखतारहे तथा निंदा आदिको त्याग देवे । बुद्धिमान् मनुष्यके लिये संपूर्ण संसार ही शिक्षा देनेवाला गुरु है और मूर्खोंके लिये शत्रु है । ऐसा विचारकर बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि शत्रुका कहाहुआ भी वाक्य सुनना यदि प्रशंसाके योग्य हो हितकारी हो और यशको बढानेवाला हो तथा आयुवर्द्धक हो तो उसको विचार कर मान लेना और उसके अनुकूल आचरण करना चाहिये ॥ ११ ॥

अतःपरमिदंब्रूयाद्देवताग्निद्विजातिगुरुवृद्धसिद्धाचार्य्येषुतेसम्यग्वर्त्तितव्यम् । तेषुतेसम्यग्वर्त्तमानस्यायमग्निःसर्वेगन्धरसरत्नबीजानियथेरिताश्चदेवता शिवायस्युःअतोऽन्यथाचावर्त्तमानस्याशिवायेति । एवंब्रुवतिचाचार्य्येशिष्यस्तथेतिब्रूयात् । यथोपदेशञ्चकुर्वन्नध्याप्योज्ञेयेअत अन्यथातुअनध्याप्य अध्याप्यमध्यापयन्हिआचार्य्योयथोक्तैश्चाध्यापनफलैर्योगमाप्नोतिअन्यैश्चानुक्तै श्रेयस्करैर्गुणे शिष्यमात्मानञ्चयुनक्ति । इतिअध्यापनविधिरुक्त ॥ १२ ॥

इसके अनन्तर आचार्य शिष्यसे यह और कहे कि देवता, अग्नि, ब्राह्मण, गुरु वृद्धजन, सिद्ध और आचार्य इनसे सदैव भले प्रकार विनीतभावसे वर्ताव रखना । इन सबके साथ विनयपूर्वक उत्तम वर्ताव करनेसे यह सब तथा अग्नि और सब प्रकारके गंध, रस, रत्नादिक और देवता तथा वृद्ध, सिद्ध, आचार्य आदिक तेरे कल्याणको करेंगे । इसके विपरीत करनेसे तुम्हारा अमंगल होगा । शिष्य यह सुनकर हाथ जोडकर कहे बहुत अच्छा महाराज ऐसा ही करूंगा तथा जैसे गुरुने उपदेश किया है उसीके अनुसार संपूर्ण कार्योंको करे । ऐसा शिष्य पढानेके योग्य है इससे विपरीत पढानेके योग्य नहीं है । पढानेके योग्य शिष्यको पढाताहुआ आचार्य अध्यापनके

सपूर्ण फलोंको प्राप्त होताहै। शिष्यको चाहिये कि इनके सिवाय अन्य भी जो हितकर कल्याणकारी गुण हों उनको ग्रहण करे। इसप्रकार अध्यापन विधिका कथन कियागया ॥ १२ ॥

सम्भाषणविधि।

अध्ययनाध्यापनविधिवत्सम्भाषाविधिमतऊर्द्धंव्याख्यास्याम। भिषग्भिषजासहसम्भाषेत। तद्विद्यसम्भाषाहिज्ञानाभियोगसहर्षकरीभवति। वैशारद्यमपिचाभिनिर्वर्त्तयतिवचनशक्तिमपिचाधत्तेयशश्चाभिदीपयति। पूर्वश्रुतेचसन्देहवत.पुन.श्रवणाच्छ्रुतसंशयमपकर्षति। श्रुतेचासन्देहवतोभूयोऽध्यवसायमभिनिर्वर्तयति। अश्रुतमपिचकश्चिदर्थंश्रोत्रविषयमापादयति। यच्चाचार्य्यं शिष्यायशुश्रूषवेप्रसन्नक्रमेणोपदिशतिगुह्याभिमतमर्थजातम्, तत्परस्परेणसहजल्पन्पिण्डेनविजिगीषुराहसहर्षात्तस्मात्तद्विद्यसम्भाषामभिप्रशसन्तिकुशला ॥ १३ ॥

इसके उपरान्त अध्ययन और अध्यापन विधिके समान अब सभाषण विधिका कथन करते हैं। वैद्यको वैद्यसे सभाषण करना चाहिये क्योंकि वैद्यसे वैद्य सभाषण करता हुआ आयुर्वेदके सवधमें तर्क वितर्ककी सामर्थ्यवाला होजाता है और उसकी ज्ञान शक्ति तथा कथनशक्ति बढजाती है एवम् बोलनेकी चतुराई उत्पन्न होजातीहै। यश बढता है, पहिले सुने हुए विषय जिनमें सदेह होगया हो वह परस्पर शास्त्रार्थ द्वारा सुननेसे उनका सशय दूर होजाताहै और सदेह रहित वाक्य भी बोले और सुने जानेसे निश्चयात्मक और याद होजाते हैं। जो विषय कभी सुननेमें नहीं भी आये वह भी शास्त्रार्थमे श्रवणगोचर होजाते हैं। जिन गुह्य विषयोंको आचार्य शिष्यसे प्रसन्न होकर भी क्रमपूर्वक कथन करते हुए इस विचारमें रहता है कि किसी समय योग्य शिष्यको बतलावेंगे या बडे प्रेमी शिष्यको और अत्यन्त सुश्रूषा करनेवालेको क्रमसे बतलाताहै वह गुह्य विषय भी शास्त्रार्थके समय एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा करता हुआ और अपने पक्षको पुष्ट करनेके लिये तथा अपने पांडित्यको दिखाता हुआ झट आवेशमे आ प्रगट करदेता है। इसलिये तद्विद्य सभाषा अर्थात् वैद्यको वैद्यमे वैद्यक विषयम सभाषण करनेकी बुद्धिमान् परीक्षा करते हैं ॥ १३ ॥

द्विविधातुखलुतद्विद्यसम्भाषाभवतिसन्धायसम्भाषाविगृह्यसम्भाषाच। तत्रज्ञानविज्ञानवचनप्रतिवचनशक्तिसम्पन्नेनाको-

पनेनअनुपस्कृतविद्येनानसूयकेनअनुनयकोविदेनक्लेशक्षमेण प्रियसम्भापणेनचसहसन्धायसम्भाषाविधीयते । तथाविधे· नसहकथयन्विश्रब्ध कथयेत् पृच्छेदपिचविश्रब्ध पृच्छतेचा- स्मैविश्रब्धायविशदमर्थंब्रूयात् । नचनिग्रहभयादुद्विजेत । निगृह्यचैनननहृष्येत्, नचपरेषुविकत्थेत । नचमोहादेकान्तग्रा- हीस्यात्, नचाप्रस्तुतमर्थमनुवर्णयेत् । सम्यक् चानुनयेना- नुनीयेत, अनुनयाच्चपरतन्त्रचावहित·स्यादित्यनुलोमसम्भाषा- विधि· ॥ १४ ॥

वह तद्विद्य सभापा दो प्रकारकी होतीहै । १ सधायसभाषा । २ विगृह्य सभाषा उत्तम ज्ञान और विज्ञानयुक्त वचन और प्रतिवचनमें सम्पन्न क्रोधरहित, बहुत विद्या जाननेवाला, निंदा रहित, नम्रतायुक्त, कष्टको सहनेवाला, एवम् प्रियभाषण करनेवाल जो विद्वान् हो उसके साथ ऐसे ही गुणोंवाला योग्य वैद्य मिलकर मित्रताके भाव प्रीतिपूर्वक सभाषण करे । ऐसे वैद्यके साथ शास्त्रार्थ करते हुए शान्तिपूर्वक भाष करे और शान्तस्वभावसे उसके प्रश्नोंका उत्तर देवे तथा स्पष्ट अर्थोवाले शब्दोंक उच्चारण करे और हारनेके भयसे उद्विग्न न होवे एवम् उसको जीतकर मनमें प्रस भी न होवे तथा दूसरोंके पास कथन न करे और तर्क वितर्कके समय मोह उन्मत्त न होजाय अर्थात् एकान्तग्राही न बने एवम् झूठे तथा जिनकी आवश्य कता न हो ऐसे शब्दोंको उच्चारण न करे और दोनों आपसमें नम्रतापूर्वक प्रेमसं भाषण करें । इस प्रकारकी प्रेममयी सभाषाको अनुलोम (सधाय) सभाष कहतेहैं ॥ १४ ॥

वादविधि ।

अतऊर्द्ध्वमितरेणसहविगृह्यसम्भाषेतश्रेयसायोगमात्मनःपश्य- न् । प्रागेवचजल्पाजल्पान्तरपरावरान्तरपरिषद्विशेषाश्च- सम्यक्परीक्षेतसम्यक्परीक्षाहिबुद्धिमताकार्य्यप्रवृत्तिनिवृत्ति- कालौचशसति । तस्मात्परीक्षामतिप्रशसन्तिकुशला । परीक्षमाणस्तुखलुपरावरान्तरमिमाञ्जल्पकगुणाञ्छ्रेयस्कराश्च दोषवतश्चपरीक्षेतसम्यक् । तद्यथा—श्रुतविज्ञानधारणंप्रति- भानंवचनशक्तिरित्येतान्गुणाञ्छ्रेयस्करानाहु । इमान्पुनर्दो-

पवत कोपनत्वमवैशारद्यभीरुत्वमनवहितत्वमिति । एतान्द्व-
यानपिगुणान्गुरुलाघववत.परस्यचैवात्मनश्चतोलयेत् ॥ १५॥

इसके उपरान्त विगृह्य सभाषाका कथन करतेहैं । जब वैद्य दूसरे वैद्योसे अपने कल्याण अर्थात् जीतनेकी इच्छासे एवम् दूसरे वैद्यको पराजय करनेकी इच्छासे शास्त्रार्थ करना चाहे तो प्रथम सभापण करनेसे पहिले ही परावरान्तर (अपना और दूसरे वैद्यका शास्त्रमे बल) तथा परिपद (सभा) विशेषको उचित रीतिपर परीक्षा कर लेवै । प्रथम भले प्रकार परीक्षा करलेनाही बुद्धिमानोको कार्यम प्रवृत्त होनेका तथा निवृत्त होनेका समय दिखादेताहै । इसलिये प्रथम परीक्षा करलेनेकी प्रशसा करतेहै । परीक्षा करतेहुए अपने और दूसरेके शास्त्रबलमें अन्तरको तथा जल्प (जीतनेकी इच्छासे शास्त्रार्थ) करनेवालेके गुणोंको उसके और अपने कल्याणकारी भावोको एवम् दोषोंको भलेप्रकार परीक्षा करे । वह गुण और दोप इस प्रकार होतेहै । जैसे श्रुत, विज्ञान, धारणा, स्फुरणा, तेजस्विता वाक्यशक्ति यह शास्त्रार्थ करनेवालेके श्रेयस्कर अर्थात कल्याणकारी गुण कहेजाते है । क्रोधित होना, बोलनेमे चतुराई न होना, डरना, असावधान रहना यह शास्त्रार्थ करनेवालेके दोष होतेहै । प्रथम अपने ओर दूसरेके इन दोना प्रकारके गुणदोषोंको बुद्धिम तौल लेवे ॥ १५ ॥

प्रतिवादीके भेद ।

तत्रत्रिविध पर सम्पद्यते,प्रवर.प्रत्यवर समोवागुणविनिक्षेपतो-
नत्वेवकार्त्स्न्येन ॥ १६ ॥

प्रतिवादी तीन प्रकारका होता है । १ अपनेसे उत्तम गुणवाला । २ अपनेसे हीन गुणवाला । ३ अपनेसे समान गुणवाला । यह तीन प्रकारका भेद केवल गुण-निक्षेपसे ही कहा है सपूर्ण विषयोंमें नहीं ॥ १६ ॥

सभाके भेद ।

परिषचखलुद्विविधा,ज्ञानवतीमूढपरिषच्च, सैवद्विविधासतीत्रि-
विधापुनरनेनकारणविभागेनसुहृत्परिषत्, उदासीनपरिषत्प्र-
तिनिविष्टपरिषच्चेति ॥ १७ ॥

परिषद अर्थात् सभा दो प्रकारकी होती है । १ ज्ञानवती सभा । २ मूढसभा । यह दो प्रकारकी होतीहुई भी इस प्रकार कारणभेदसे प्रत्येक सभा तीनतीन प्रकारकी होती है । जैसे-सुहृद परिषद (अपने मित्रोंकी सभा) उदासीन परिषद् (सामान्य पुरुषोंकी सभा) और प्रतिनिविष्ट (पडितों अथवा बडे पुरुषोंकी) परिषद् ॥ १७ ॥

करनेका किसी २ आचार्यका मत है। हमारे मतमें यह अन्याय है। बुद्धिमान्को इस प्रकारका शास्त्रार्थ पंडितोंके समुख और किसी योग्य पुरुषसे नहीं करना चाहिये ऐसा बुद्धिमानोंका मत है ॥ १८ ॥

प्रत्यवरेणतुससमानाभिमतेनवाविगृह्यजल्पतासुहृत्परिषदिकथयितव्यम् । अथवाप्युदासीनपारिषदिअनवधानश्रवणज्ञानविज्ञानोपधारणवचनशक्तिसम्पन्नायाकथयताचावहितेनपरस्यसाद्गुण्यदोषवलमवेक्षितव्यम् । समवेक्ष्यचयत्रैनश्रेष्ठमन्येतनास्यतत्रजल्पयोजयेतअनाविष्कृतमयोगकुर्वन् । यत्रत्वेनमवरमन्येततत्रैवैनमाशुनिगृह्णीयात् ॥ १९ ॥

सुहृद् सभामें हीन समान और उत्तम गुणोंवालेसे अर्थात् तीनों प्रकारके पुरुषोंमें शास्त्रार्थ कर लेना अनुचित नहीं। अथवा उदासीन सभामें अर्थात् जिस सभामें अप्रमत्त,श्रवण,ज्ञान,विज्ञान,उपधारण और वचन शक्ति सम्पन्न पुरुष बैठे हुए हो ऐसी सभामें प्रतिवादीके सद्गुणों और दोषोंको सावधानीसे परीक्षा कर लेवे। यदि प्रतिवादी गुणोंमें अपनेसे बलवान् हो तो उससे शास्त्रार्थ न करे और एकाध शास्त्रकी बात इसप्रकार कहकर चुपहोजावे जिससे सभाके मनुष्य इसको प्रतिवादीसे हीन न समझें यदि प्रतिवादी गुणोंमें अपनेसेहीन प्रतीत हो तो उसको झट शास्त्रार्थमें दबालेवे।१९॥

तत्रनुखल्विमेप्रत्यवराणामाशुनिग्रहेभवन्तिउपाया । तद्यथा, श्रुतहीनमहतासूत्रपाठेनाभिभवेत्विज्ञानहीनपुन कष्टशब्देन वाक्येन, वाक्यधारणाहीनमाविद्धदीर्घसकुलैर्वाक्यदण्डकैः, प्रतिभाहीनपुनर्वचनेनानेकविधानानेकार्थवाचिना, वचनशक्तिहीनमर्द्धोक्तस्यवाक्यस्याक्षेपेण, अविशारदमपत्रपणेन, कोपनमायासनेन,भीरुवित्रासनेन, अनवहितनियमनेनइत्येवमेतैरुपायैरवरमभिभवेत् ॥ २० ॥ विगृह्यकथयेद्युक्त्यायुक्तञ्चन निवारयन् । विगृह्यभाषातीव्रहिकेपाञ्चिद्विग्रहमावहेत् ॥ २१ ॥ नाकार्य्यमस्तिक्रुद्धस्यनावाच्यमपिविद्यते। कुशलानाभिनन्दन्तिकलहसमितौसताम् ॥ २२ ॥

उसको शास्त्रार्थमें पराजय करनेके लिये ये उपाय है। जैसे यदि वह शास्त्रमें हीन है तो उसके आगे बडे २ सूत्र और बहुतसा संस्कृतका पाठ उच्चारण करे। यदि वह

विज्ञान शक्तिमें हीन हो तो कठिन शब्दोंसे उसको जीते। यदि उसमें वाक्यधारण करनेकी शक्ति न हो तो बंधेहुए सकुलीदार बहुत लम्बे २ दण्डकवाक्यों द्वारा शास्त्रार्थ करे। यदि वह तेजहीन और स्फुरणाहीन हो तो अनेक प्रकारसे अनेकार्थ शब्दों द्वारा पराजय करे। और वक्तृताशक्तिहीनको उपरोक्त वाक्योंके आक्षेपद्वारा अर्थात् एक पंक्तिपर दूसरी पंक्ति बोलबोलकर मुग्ध बनादेवे। चातुर्य रहितको लज्जित करनेवाले वाक्यों द्वारा पराजित करे। यदि वह क्रोधी हो तो उसके आगे इसप्रकारके कटाक्ष करे जिससे वह बोलना ही छोड देवे। घरनेवालेको शास्त्रीय घषणाद्वारा परास्त करे। असावधानको नियममें फसाकर परास्त करे। इन उपायों द्वारा प्रतिवादीको पराजय करनाचाहिये ॥ २० ॥ शास्त्रार्थ करते समय युक्तियुक्त वाक्योंको बोलना चाहिये अर्थात् अन्टसन्ट झूठा पक्ष न लेवे और प्रतिपक्षीके कहे हुएयुक्तिसमत सच्चे वाक्यको भी न माननेका झगडा न करे क्योंकि परस्पर जीतनेकी इच्छासे शास्त्रार्थ करते समय बहुतसे पुरुषोंके चित्तमें तीव्र द्रोह उत्पन्न होजाताहै। क्रोधित मनुष्यके लिये कुछ भी, अवाच्य और अकार्य नहीं होता अर्थात् क्रोधमें भराहुआ मनुष्य जो कुछ आगे आये सो उचितानुचित बक देता है और लडाई आदि वृथा उपद्रव उत्पन्न होजाता है। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य कलहको अच्छा नहीं समझते क्योंकि कलह करना सज्जन पुरुषोंका काम नहीं है ॥ २१ ॥ २२ ॥

एवंप्रवृत्तेतुवादेप्रागेववादात्तावदिदंकर्त्तुंयतेत । सन्धायप रिषदाऽयनभूतमात्मनः प्रकरणमादेशयितव्यम् । यद्वाप रस्यभृशदुर्गंस्यात्। पक्षमथवापरस्यभृशंविमुखमानयेत्। प- रिषदिचोपसंहितायामशक्यमस्माभिर्वक्तुमितितूष्णीमासीदंपे वचतेपारिषद्यथेष्टंयथायोग्ययथाभिप्रायंवादवादमर्य्यादांस्था- पयिष्यतीत्युक्त्वा ॥ २३ ॥

जब प्रतिवादीसे शास्त्रार्थ करनेके लिये प्रवृत्त हो तो शास्त्र करनेसे प्रथम ही सभामें जो सभासद बैठे हो उनकी अनुमतिसे जिस विषयमें उनकी इच्छा हो उस विषयमें शास्त्रार्थ करना प्रारम्भ करना चाहिये अर्थात् सभासदोंकी अनुमतिसे अपना पूर्व- पक्ष करना चाहिये अथवा ऐसे पक्षको छेडे जो प्रतिवादीको अत्यन्त कठिन प्रतीत हो अथवा पूर्वपक्ष द्वारा प्रतिवादीको अत्यन्त विमुख बनादेवे। जब देखे कि यह सभामें विमुख है अथवा सभा उससे विमुख हो तब सभामें इस प्रकार प्रतिवाद उठावे कि मैं आपसे बोलनेकी ताकत नहीं रखता यह सज्जनपुरुषोंकी सभा ही तुम्हारे अभिप्रायके

अनुसार अथवा जैसा उचित समझेगी वैसा हमारे तुम्हारे वादके मर्यादाको स्थापनकर देगी । यह कहकर चुप हो जाय ॥ २३ ॥

वादमर्यादाके लक्षण ।

तत्रेदवादमर्य्यादालक्षणभवतिइदवाच्यमिदमवाच्यमेवसतिप-राजितोभवतीति इमानिखलुपदानिभिषग्वादमार्गज्ञानार्थम धिगम्यानिभवन्ति । तद्यथावादो, द्रव्यं, गुणाः, कर्म्म, सा-मान्य, विशेष', समवाय , प्रतिज्ञा, स्थापना, प्रतिष्ठापना, हेतु , उपनय , निगमनम् , उत्तर, दृष्टान्त , सिद्धान्त., शब्द , प्रत्यक्षम् , अनुमानम् , औपम्यम् , ऐतिह्य, सशय , प्रयोजन, सव्यभिचार, जिज्ञासा, व्यवसाय', अर्थप्राप्ति., सम्भव', अनुयोज्यम् , अननुयोज्यम् , अनुयोग , प्रत्यनु-योग., वाक्यदोष , वाक्यप्रशसा, छलम् , अहेतु , अतीतका-लम् , उपालम्भ , परिहार , प्रतिज्ञाहानि', अभ्यनुज्ञा, हे-त्वन्तरम् , अर्थान्तर, निग्रहस्थानमिति ॥ २४ ॥

वाद प्रतिवादमें अर्थात् शास्त्रार्थ करते समय प्रथम शास्त्रार्थकी मर्यादाको स्थापितकर लेना चाहिये कि यह वात कहना और यह नहीं कहना । इसप्रकार मर्यादामे बाध लेनेसे प्रतिवादी परास्त हो जाताहै । वैद्यको शास्त्रार्थका मार्ग जाननेके लिये इन आगे कहेहुए वाक्योंको भलीप्रकार याद करलेना चाहिये । जैसे-वाद, द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, प्रतिज्ञा, स्थापना, प्रतिष्ठापना, हेतु, उपनय, निगमन, उत्तर, दृष्टात, सिद्धात, शब्द, प्रत्यक्ष, अनुमान, औपम्य, ऐतिह्य, सशय, प्रयोजन, सव्यभिचार, जिज्ञासा, व्यवसाय, अर्थप्राप्ति, सभव, अनुयोज्य, अननुयोज्य, अनुयोग, प्रत्यनुयोग, वाक्यदोष, वाक्यप्रशसा, छल, अहेतु, अतिकाल, उपालभ, परिहार, प्रतिज्ञाहानि, अभ्यनुज्ञा, हेत्वतर, अर्थातर, निग्रहस्थान। इन सब शब्दार्थोंको यथोचित रीतिपर जानलेना चाहिये। आगे इन प्रत्येकका कथन करते है ॥ २४ ॥

वादका लक्षण ।

तत्र वादोनामयत्परस्परेणसहशास्त्रपूर्वक विगृह्यकथयति । स-वादोद्विविध.सग्रहेण, जल्पोवितण्डाच । तत्रपक्षाश्रितयोर्वच

विज्ञान शक्तिमें हीन हो तो कठिन शब्दोंसे उसको जीते। यदि उसमें वाक्यधारण करनेकी शक्ति न हो तो बंधेहुए सकुलीदार बहुत लम्बे २ दण्डकवाक्यों द्वारा शास्त्रार्थ करे। यदि वह तेजहीन और स्फुरणाहीन हो तो अनेक प्रकारसे अनेकार्थ शब्दों द्वारा पराजय करे। और वक्तृताशक्तिहीनको उपरोक्त वाक्योंके आक्षेपद्वारा अर्थात् एक पंक्तिपर दूसरी पंक्ति बोलबोलकर मुग्ध बनादेवे। चातुर्य रहितको लज्जित करनेवाले वाक्यों द्वारा पराजित करे। यदि वह क्रोधी हो तो उसके आगे इसप्रकारके कटाक्ष करे जिससे वह बोलना ही छोड देवे। डरनेवालेको शास्त्रीय धर्षणाद्वारा परास्त करे। असावधानको नियममें फसाकर परास्त करे। इन उपायों द्वारा प्रतिवादीको पराजय करनाचाहिये ॥ २० ॥ शास्त्रार्थ करते समय युक्तियुक्त वाक्योंको बोलना चाहिये अर्थात् अन्टसन्ट झूठा पक्ष न लेवे और प्रतिपक्षीके कहे हुएयुक्तिसमत सच्चे वाक्यको भी न माननेका झगडा न करे क्योंकि परस्पर जीतनेकी इच्छासे शास्त्रार्थ करते समय बहुतसे पुरुषोंके चित्तमें तीव्र द्रोह उत्पन्न होजाताहै। क्रोधित मनुष्यके लिये कुछ भी, अवाच्य और अकार्य नहीं होता अर्थात् क्रोधमें भराहुआ मनुष्य जो कुछ आगे आये सो उचितानुचित बक देता है और लडाई आदि वृथा उपद्रव उत्पन्न होजाता है। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य कलहको अच्छा नहीं समझते क्योंकि कलह करना सज्जन पुरुषोंका काम नहीं है ॥ २१ ॥ २२ ॥

एवंप्रवृत्तेतुवादेप्रागेववादात्तावदिदंकर्त्तुंयतेत । सन्धायपरिषदाऽयनभूतमात्मनः प्रकरणमादेशयितव्यम् । यद्वापरस्यभृशंदुर्गंस्यात् । पक्षमथवापरस्यभृशंविमुखमानयेत् । परिषदिचोपसंहितायामशक्यमस्माभिर्वक्तुमितितूष्णीमासीत् । ब्रूयात्परिषदेवास्यथायोग्यंयथाभिप्रायंवादंवादमर्य्यादांचस्थापयिष्यतीत्युक्त्वा ॥ २३ ॥

जब प्रतिवादीसे शास्त्रार्थ करनेके लिये प्रवृत्त हो तो शास्त्र करनेमें प्रथम ही सभामें जो सभासद बैठे हों उनकी अनुमतिसे जिस विषयमें उनकी इच्छा हो उस विषयमें शास्त्रार्थ करना प्रारम्भ करना चाहिये अर्थात् सभासदोंकी अनुमतिसे अपना पूर्वपक्ष करना चाहिये अथवा ऐसे पक्षको छेडे जो प्रतिवादीको अत्यन्त कठिन प्रतीत हो अथवा पूर्वपक्ष द्वारा प्रतिवादीको अत्यन्त विमुख बनादेवे। जब देखे कि यह सभासे विमुख है अथवा सभा उससे विमुख हो तब सभामें इस प्रकार प्रतिवाद उठावे कि मैं आपसे बोलनेकी ताकत नहीं रखता यह सज्जनपुरुषोंकी सभा ही तुम्हारे अभिप्रायके

अनुसार अथवा जैसा उचित समझेगी वैसा हमारे तुम्हारे वादके मर्यादाको स्थापनकर देगी । यह कहकर चुप हो जाय ॥ २३ ॥

वादमर्यादाके लक्षण ।

तत्रेदंवादमर्य्यादालक्षणंभवतिइदंवाच्यमिदमवाच्यमेवसतिपराजितोभवतीति इमानिखलुपदानिभिषग्वादमार्गज्ञानार्थमधिगम्यानिभवन्ति । तद्यथावादो, द्रव्यं, गुणाः, कर्म्म, सामान्य, विशेष, समवाय, प्रतिज्ञा, स्थापना, प्रतिष्ठापना, हेतुः, उपनय, निगमनम्, उत्तर, दृष्टान्त, सिद्धान्तः, शब्द, प्रत्यक्षम्, अनुमानम्, औपम्यम्, ऐतिह्य, संशय, प्रयोजन, सव्यभिचार, जिज्ञासा, व्यवसाय, अर्थप्राप्ति, सम्भव., अनुयोज्यम्, अननुयोज्यम्, अनुयोग, प्रत्यनुयोग', वाक्यदोष, वाक्यप्रशंसा, छलम्, अहेतुः, अतीतकालम्, उपालम्भ, परिहार, प्रतिज्ञाहानि', अभ्यनुज्ञा, हेत्वन्तरम्, अर्थान्तरं, निग्रहस्थानमिति ॥ २४ ॥

वाद प्रतिवादमें अर्थात् शास्त्रार्थ करते समय प्रथम शास्त्रार्थकी मर्यादाको स्थापितकर लेना चाहिये कि यह बात कहना और यह नहीं कहना । इसप्रकार मर्यादामें बाध लेनेसे प्रतिवादी परास्त हो जाताहै । वैद्यको शास्त्रार्थका मार्ग जाननेके लिये इन आगे कहेहुए वाक्योंको भलीप्रकार याद करलेना चाहिये । जैसे–वाद, द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, प्रतिज्ञा, स्थापना, प्रतिष्ठापना, हेतु, उपनय, निगमन, उत्तर, दृष्टांत, सिद्धांत, शब्द, प्रत्यक्ष, अनुमान, औपम्य, ऐतिह्य, संशय, प्रयोजन, सव्यभिचार, जिज्ञासा, व्यवसाय, अर्थप्राप्ति, संभव, अनुयोज्य, अननुयोज्य, अनुयोग, प्रत्यनुयोग, वाक्यदोष, वाक्यप्रशंसा, छल, अहेतु, अतिकाल, उपालंभ, परिहार, प्रतिज्ञाहानि, अभ्यनुज्ञा, हेत्वंतर, अर्थांतर, निग्रहस्थान। इन सब शब्दार्थोंको यथोचित रीतिपर जानलेना चाहिये। आगे इन प्रत्येकका कथन करते हैं ॥ २४ ॥

वादका लक्षण ।

तत्र वादोनामयत्परस्परेणसहशास्त्रपूर्वकं विगृह्यकथयति । सवादोद्विविधःसंग्रहेण, जल्पोवितण्डाच । तत्रपक्षाश्रितयोर्वच

नजल्प. । जल्पविपर्य्ययोवितण्डा । यथैकस्यपक्ष पुनर्भवोऽस्तीतिनास्तीत्यपरस्य । तौच स्वपक्षस्वहेतुभि.स्वस्वपक्षं स्थापयतःपरपक्षमुद्भावयतःएप जल्पोजल्पविपर्य्ययोवितण्डा। वितण्डानामपरपक्षेदोषवचनमात्रमेवमेव ॥ २५ ॥

शास्त्रार्थमें क्रमपूर्वक परस्पर तर्क वितर्क करनेको वाद कहते हैं । उस-वादके संग्रहक्रमसे दो भेद हैं । १ जल्प । २ वितण्डा । उनमें अपने पक्षको लेकर शास्त्रसम्मत उक्तिद्वारा अपने २ पक्षके जयकी इच्छासे सभाषण करना जल्प कहाता है जल्पसे विपरीत अर्थात् अपने पक्षको स्थापन न करके दूसरेके पक्षमें दोष देते जानेको वितण्डा कहते हैं । जैसे-एकका पक्ष है कि पुनर्जन्म होता है। दूसरेका पक्ष है कि पुनर्जन्म नहीं होता । यह दोनों अपने २ पक्षको स्थापन करतेहुए और हेतुओं द्वारा पुष्ट करते हुए परस्पर दूसरेके पक्षमें दोष दिखातेहुए जो शास्त्रार्थ होता है उसको जल्प कहते हैं । इससे विपरीत वितण्डा होती है । वितण्डा केवल दूसरेके पक्षमें दोष निकालनेका ही नाम है अर्थात् दूसरेमें दोष निकालनेके सिवाय अपना कोई खास पक्ष न रखना वितण्डा कहाती है ॥ २५ ॥

द्रव्यादि लक्षण ।

द्रव्यगुणकर्म्मसामान्यविशेषसमवायाःस्वलक्षणै.श्लोकस्थाने पूर्वमुक्ता' ॥ २६ ॥

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन सबको इनके लक्षणोंके द्वारा पहिले सूत्रस्थानमें कथन कर चुके हैं ॥ २६ ॥

अथ प्रतिज्ञा ।

प्रतिज्ञानामसाध्यवचनयथानित्यःपुरुषइति ॥ २७ ॥

अथ प्रतिज्ञादिकोंका कथन करते हैं । साध्यवचनका कथन करना प्रतिज्ञा कहा जाता है । जैसे-पुरुष नित्य है इस जगह किसी हेतु आदिसे प्रथम जिस बातको सिद्धकरनाहो उसको दृढतासे कथन करना प्रतिज्ञा कहाता है । इस स्थानमें "पुरुष नित्य है" । इस वाक्यके कथन करनेको प्रतिज्ञा कहते हैं ॥ २७ ॥

अथ स्थापना ।

स्थापनानामतस्योपवप्रतिज्ञायाहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमै.स्थापना, पूर्वंहिप्रतिज्ञा, पश्चात्स्थापनाकिंह्यप्रतिज्ञानस्थापयिष्य-

तियथानित्य.पुरुषइतिप्रतिज्ञाहेतुरकृतकत्वादिति । दृष्टान्तोय-थाकाशंतच्चनित्यम् । उपनयोयथाचाकृतकमाकाशतथापुरुष'। निगमनतस्मान्नित्य इति ॥ २८ ॥

पहिले कीहुई प्रतिज्ञाको–हेतु, दृष्टात, उपमा और निगमन द्वारा सिद्ध करना स्थापना कहाता है।पहिले प्रतिज्ञा कहकर पीछे उसको स्थापना किया जाता है क्योंकि प्रतिज्ञा किये विना स्थापना होही नही सकती । जैसे पुरुष नित्य है यह प्रतिज्ञाकी अकृत होनेसे अर्थात् किसीका वनायाहुआ न होनेसे यह हेतु हुआ । जैसे–आकाश अकृत होनेसे अर्थात् किसीका वनाया हुआ न होनेसे, नित्य है यह दृष्टान्त हुआ। जैसे–आकाश किसीका वनाया न होनेसे नित्य है उसी प्रकार पुरुष भी किसीका वनाया न होनेसे नित्य है यह दृष्टात इसलिये पुरुष नित्यहै यह निगमन हुआ ॥२८॥

अथ प्रतिष्ठापना ।

प्रतिष्ठापनानामयापरप्रतिज्ञाया'प्रतिविपरीतार्थस्थापना । य-थाअनित्यःपुरुषइतिप्रतिज्ञाहेतुरैन्द्रियकत्वात् । दृष्टान्तोयथा घटऐन्द्रियक.सचानित्य. । उपनयोयथाघटस्तथापुरुष.तस्मा-दनित्यइति ॥ २९ ॥

जो पर प्रतिज्ञासे विपरीत अर्थवाली प्रतिज्ञाका स्थापन करना है उसको प्रति-ष्ठापना कहते हैं ।जैसे–पुरुष नित्य नहीं अनित्य है यह प्रतिज्ञा हुई। इसके अनित्य होनेमें हेतु यह है कि यह इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष होता है। दृष्टान्त यह है कि जैसे–इन्द्रियों द्वारा घटका ज्ञान होताहै सो घट अनित्य है। जैसे घट अनित्य है वैसेही पुरुष भी अनित्य है यह उपमान हुआ। इसलिये पुरुष अनित्य है यह निगमन हुआ ॥ २९ ॥

अथ हेतुः ।

हेतुर्नामोपलब्धिकारणतत्प्रत्यक्षमनुमानमैतिह्यमौपम्यमित्ये-भिर्हेतुभिर्यदुपलभ्यतेतत्तत्त्वम् ॥ ३० ॥

जिसके द्वारा उपलब्धि हो उसको हेतु कहते हैं। हेतु द्वारा जो प्राप्त हो वह हेतुका तत्त्व है। वह तत्त्व–प्रत्यक्ष, अनुमान, ऐतिह्य और उपमान द्वारा प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥

नंजल्प । जल्पविपर्य्ययोवितण्डा । यथैकस्वपक्ष पुनर्भवोऽस्तीतिनास्तीत्यपरस्य । तौच स्वपक्षंस्वहेतुभि स्वस्वपक्षं स्थापयतःपरपक्षमुद्भावयत एप जल्पोजल्पविपर्य्ययोवितण्डा। वितण्डानामपरपक्षेदोपवचनमात्रमेवमेव ॥ २५ ॥

शास्त्रार्थमें क्रमपूर्वक परस्पर तर्क वितर्क करनेको वाद कहते हैं । उसवादके सग्रहक्रमसे दो भेद हैं । १ जल्प । २ वितण्डा । उनमें अपने पक्षको लेकर शास्त्रसम्मत उक्तिद्वारा अपने २ पक्षके जयकी इच्छासे सभापण करना जल्प कहाता है जल्पसे विपरीत अर्थात् अपने पक्षको स्थापन न करके दूसरेके पक्षमें दोष देते जानेको वितण्डा कहते हैं । जैसे-एकका पक्ष है कि पुनर्जन्म होता है । दूसरेका पक्ष है कि पुनर्जन्म नहीं होता । यह दोनों अपने २ पक्षको स्थापन करतेहुए और हेतुओं द्वारा पुष्ट करते हुए परस्पर दूसरेके पक्षमें दोष दिखातेहुए जो शास्त्रार्थ होता है उसको जल्प कहते हैं । इससे विपरीत वितण्डा होती है । वितण्डा केवल दूसरेके पक्षमें दोष निकालनेका ही नाम है अर्थात् दूसरेमें दोष निकालनेके सिवाय अपना कोई खास पक्ष न रखना वितण्डा कहाती है ॥ २५ ॥

द्रव्यादि लक्षण ।

द्रव्यगुणकर्म्मसामान्यविशेपसमवाया.स्वलक्षणै.श्लोकस्थाने पूर्वमुक्ता' ॥ २६ ॥

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन सबको इनके लक्षणोके द्वारा पहिले सूत्रस्थानमें कथन कर चुके हैं ॥ २६ ॥

अथ प्रतिज्ञा ।

प्रतिज्ञानामसाध्यवचनयथानित्यःपुरुपइति ॥ २७ ॥

अथ प्रतिज्ञादिकोंका कथन करते हैं । साध्यवचनका कथन करना प्रतिज्ञा कहा जाता है । जैसे-पुरुष नित्य है इस जगह किसी हेतु आदिसे प्रथम जिस बातको सिद्धकरनाहो उसको दृढतासे कथन करना प्रतिज्ञा कहाता है । इस स्थानमें "पुरुष नित्य है" । इस वाक्यके कथन करनेको प्रतिज्ञा कहते हैं ॥ २७ ॥

अथ स्थापना ।

स्थापनानामतस्योएवप्रतिज्ञायाहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमै स्थापना, पूर्वंहिप्रतिज्ञा, पश्चात्स्थापनाकिंह्यप्रतिज्ञातस्थापयिष्य-

तियथानित्य पुरुषइतिप्रतिज्ञाहेतुरकृतकत्वादिति । दृष्टान्तोय-थाकाशतच्चनित्यम् । उपनयोयथाचाकृतकमाकाशतथापुरुषः। निगमनतस्मान्नित्य इति ॥ २८ ॥

पहिले कीहुई प्रतिज्ञाको–हेतु, दृष्टात, उपमा और निगमन द्वारा सिद्ध करना स्थापना कहाता है।पहिले प्रतिज्ञा कहकर पीछे उसको स्थापना किया जाता है क्योंकि प्रतिज्ञा किये विना स्थापना होही नहीं सकती । जैसे पुरुष नित्य है यह प्रतिज्ञाकी अकृत होनेसे अर्थात् किसीका वनायाहुआ न होनेसे यह हेतु हुआ । जैसे-आकाश अकृत होनेसे अर्थात् किसीका वनाया हुआ न होनेसे, नित्य है यह दृष्टान्त हुआ। जैसे–आकाश किसीका वनाया न होनेसे नित्य है उसी प्रकार पुरुष भी किसीका वनाया न होनेसे नित्य है यह दृष्टात इसलिये पुरुष नित्यहै यह निगमन हुआ ॥२८॥

अथ प्रतिष्ठापना ।

प्रतिष्ठापनानामयापरप्रतिज्ञाया'प्रतिविपरीतार्थस्थापना । य-थाअनित्यःपुरुषइतिप्रतिज्ञाहेतुरैन्द्रियकत्वात् । दृष्टान्तोयथा घटऐन्द्रियक.सचानित्य । उपनयोयथाघटस्तथापुरुष तस्मा-दनित्यइति ॥ २९ ॥

जो पर प्रतिज्ञासे विपरीत अर्थवाली प्रतिज्ञाका स्थापन करना है उसको प्रति-ष्ठापना कहते हैं । जैसे–पुरुष नित्य नहीं अनित्य है यह प्रतिज्ञा हुई । इसके अनित्य होनेमें हेतु यह है कि यह इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष होता है । दृष्टान्त यह है कि जैसे–इन्द्रियों द्वारा घटका ज्ञान होताहै सो घट अनित्य है। जैसे घट अनित्य है वैसेही पुरुष भी अनित्य है यह उपमान हुआ। इसलिये पुरुष अनित्य है यह निगमन हुआ ॥ २९ ॥

अथ हेतुः ।

हेतुर्नामोपलब्धिकारणतत्प्रत्यक्षमनुमानमैतिह्यमौपम्यमित्ये-भिर्हेतुभिर्यदुपलभ्यतेतत्तत्त्वम् ॥ ३० ॥

जिसके द्वारा उपलब्धि हो उसको हेतु कहते हैं । हेतु द्वारा जो प्राप्त हो वह हेतुका तत्त्व है। वह तत्त्व–प्रत्यक्ष, अनुमान, ऐतिह्य और उपमान द्वारा प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥

उपनयोनिगमनञ्चोक्तस्थापनाप्रतिष्ठापनाव्याख्यायाम् ॥ ३१ ॥

उपनय अर्थात् उपमान और निगमनको स्थापनाकी व्याख्यामें कथनकर चुके है ॥ ३१ ॥

अथ उत्तरम् ।

उत्तरंनामसाधर्म्म्योपदिष्टेवाहेतौवैधर्म्यवचनंवैधर्म्योपदिष्टेवा-साधर्म्यवचनंयथाहेतुसधर्म्माणोविकारा शीतकस्यहिव्याधेर्हे-तुसाधर्म्यवचनंहिमशिशिरवातसस्पर्शाइतिब्रुवत परोब्रूयाद्धे-तुविधर्म्माणोविकारायथाशरीरावयवानादाहौष्णकोथप्रपच-नेहेतुवैधर्म्यहिमशिशिरवातसस्पर्शाइति । एतत्सविपर्य्ययमु त्तरम् ॥ ३२ ॥

साधर्ममें कहे हुए हेतुसे विपरीत हेतुको दिखाना अर्थात् उससे विपरीत वचनको कहना वैधर्मसे कहे हुए हेतुओंके विपरीत साधर्म वचनको कथन करना उत्तर कहा जाता है । जैसे-किसीने कहा कि जो धर्म हेतुके होते हैं व्याधिके भी वही धर्म होते है । जैसे-शीतसे उत्पन्न हुई वातव्याधिके जो धर्म होतेहैं उसके हेतुभूत हिम, शिशिर और वायुके सस्पर्शके भी वही धर्म होते है । इसप्रकार कहतेहुएको प्रतिवादी कहे कि जिस हेतुसे व्याधि उत्पन्न होती है उस हेतुके जो धर्म होते है वह व्याधिके नहीं होते क्योंकि देखनेमे आता है कि दाह, उष्णता, कोथ (सड़न) शीतके धर्म न होनेपर भी शरीरके अवयवोंमे दाह, उष्णता आदि उत्पन्न करते है । और उन दाह उष्णतादिकोंके हिम शिशिर आदि विधर्मी गुणवाले कारण होतेहै । इसलिये हेतु और व्याधिके गुणोंमें साधर्म्यता नहीं होती। इस प्रकार विपरीतवाक्यके कथन करनेको "उत्तर कहते है" ॥ ३२ ॥

अथ दृष्टान्त ।

दृष्टान्तोनामयत्रमूर्खविदुषाबुद्धिसाम्ययोवर्ण्यंवर्णयति । यथा ग्निरुष्णोद्रवमुदकस्थिरापृथिवीआदित्य प्रकाशक इतियथावा दित्य‘प्रकाशकस्तथासाङ्ख्यवचनप्रकाशकमिति ॥ ३३ ॥

जिस कहनेमें मूर्ख और विद्वानोंकी बुद्धिकी साम्यता हो अर्थात् जिसको मूर्ख और पंडित दोनों एकरूपसे मानजाय इस प्रकारके कथनको दृष्टान्त कहते है । जैसे-

अग्नि उष्ण है जल पतला है, पृथ्वी स्थिर होती है, आदित्य प्रकाशमान है अथवा यों कहिये जैसे आदित्य प्रकाशमान है वैसे ही साख्यके वचन भी प्रकाशको करनेवाले हैं। इसको दृष्टान्त कहते है ॥ ३३ ॥

अथ सिद्धान्त ।

सिद्धान्तोनामयःपरीक्षकैर्बहुविधंपरीक्ष्यहेतुभि.साधयित्वास्थाप्यतेनिर्णय.ससिद्धान्त'। सचोक्तश्चतुर्विध'। सर्वतन्त्रसिद्धान्त.। प्रतितन्त्रसिद्धान्तोऽधिकरणसिद्धान्तोऽभ्युपगमसिद्धान्त इति ॥ ३४ ॥

जो परीक्षकोंने अनेक प्रकारसे परीक्षाकर हेतुओंद्वारा साधन करके स्थापन किया हो अर्थात् निर्णय किया हो उसको सिद्धान्त कहते है।वह सिद्धान्त—सर्वतंत्र सिद्धान्त, प्रतितन्त्र सिद्धान्त, अधिकरण सिद्धान्त और अभ्युपगमसिद्धान्त इन भेदोंसे चार प्रकारका कहा है ॥ ३४ ॥

सर्वतन्त्रसिद्धान्त' ।

तत्रसर्वतन्त्रसिद्धान्तोनामतस्मिंस्तस्मिन्सर्वस्मिंस्तन्त्रेतत्प्रसिद्धसन्तिनिदानानिसन्तिव्याधय.सन्तिसिद्ध्युपाया साध्यानामिति ॥ ३५ ॥

उनमें जो सिद्धान्त सपूर्ण तन्त्रों (ग्रंथों) में एक समान हो और उसको सब मानते हों उसको सर्वतन्त्र सिद्धान्त कहते है। जैसे—व्याधिका कारण और व्याधि तथा साध्यव्याधिकी चिकित्सा इसको सब तन्त्रोंमे कहा है और सब मानते है। इसलिये यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त हे॥ ३५ ॥

प्रतितन्त्रसिद्धान्त ।

प्रतितन्त्रसिद्धान्तोनामतस्मिंस्तस्मिंस्तन्त्रेतत्तत्प्रसिद्धंयथान्यत्राष्टौरसा. षडन्यत्र । पञ्चेन्द्रियाणियथान्यत्रषडिन्द्रियाणि । वातादिकृता सर्वविकारायथान्यत्रवातादिकृताभूतकृताश्चप्रसिद्धाः ॥ ३६ ॥

प्रतितन्त्र सिद्धान्त उसको कहते हैं जो एक २ तन्त्रम अपने अपने रूपसे प्रसिद्ध हो और उसको वही वही तन्त्रकार मानते हों।जैसे—किसीके मतमें रस आठ प्रकारके है और कोई रसको छ प्रकारका कहते हे एवम् कोई कहते हे कि इन्द्रियें पाच हैं

और किसी तन्त्रमें इन्द्रियोंको ७' माना है । कोई मानता है कि संपूर्ण व्याधियें वातादिकोंसे उत्पन्न होती हैं और किसीके मतमें संपूर्ण रोग भूत प्रेत आदिकोंके किये होते हैं । इस प्रकार अपने २ तन्त्रमें माने हुए सिद्धान्तको प्रतितन्त्र सिद्धान्त कहते हैं ॥ ३६ ॥

अधिकरणसिद्धान्त ।

अधिकरणसिद्धान्तोनामसयस्मिन्नधिकरणेसंस्तूयमानेसिद्धा न्यन्यान्यपिअधिकरणानिभवन्ति । यथानमुक्त कर्म्मानुब- न्धिककुरुतेनिस्पृहत्वादितिप्रस्तुतेसिद्धा कर्म्मफलमोक्षपुरुष- प्रेत्यभावाभवन्ति ॥ ३७ ॥

किसी एकपक्षको लेकर निर्णय करते करते बीचमें किसी अन्य विषयका निश्चय होजाना अधिकरण सिद्धान्त कहाताहै । जैसे-जिन मनुष्योंकी मोक्ष हो चुकी है । वह निस्पृही मनुष्य आगेको होनेवाले जन्मके अनुबंध करनेवाले कर्मको नहीं करते क्योंकि वह आगेके लिये अपने किसी कर्मके फलकी इच्छा नहीं रखते । इस प्रकारके प्रस्तावमें कर्मका फल मोक्ष, पुरुष और उसके होनेवाले जन्मादिकोंका निश्चय होजाना यह अधिकरण सिद्धान्त कहा जाता है ॥ ३७ ॥

अभ्युपगमसिद्धान्त ।

अभ्युपगमसिद्धान्तोनामयमर्थमसिद्धमपरीक्षितमनुपदिष्टम- हेतुकंवावादकालेऽभ्युपगच्छन्तिभिषज । तद्यथा-द्रव्यंनप्र धानमितिकृत्वावक्ष्याम । गुण प्रधानमइति कृत्वावक्ष्यामड- त्येवमादिश्चतुर्विध सिद्धान्त. ॥ ३८ ॥

शास्त्रार्थके समय किसी असिद्ध विना परीक्षा किये तथा आप्तजनोंके विना उप देश किये अर्थको विना ही हेतुसे थोडी देरके लिये मानलेना अभ्युपगम सिद्धान्त कहा जाता है । जैसे-द्रव्य प्रधान नहीं है इसका कथन करते हुए गुण प्रधान है यह मानकर फिर अपने असली कथनपर आजाना अभ्युपगम सिद्धान्त कहाता है । इस प्रकार चतुर्विध सिद्धान्त होते हैं ॥ ३८ ॥

शब्द ।

शब्दोनामवर्णसमाम्नाय सचतुर्विध दृष्टार्थश्चादृष्टार्थश्चसत्य- श्चानृतश्चेति । तत्रदृष्टार्थस्त्रिभिर्हेतुभिर्दोषा प्रकुप्यन्तिषड्भि-

रुपक्रमैश्चप्रशाम्यन्ति । श्रोत्रादिसद्भावेशब्दादिग्रहणमिति अदृष्टार्थ पुनरस्तिप्रेत्यभावोऽस्तिमोक्षइति सत्योनामयथार्थ-भूत.। सन्त्यायुर्वेदोपदेशा'। सन्त्युपाया.साध्यानाम्। सन्त्या-रम्भफलानीति । सत्यविपर्य्ययाच्चानृतम् ॥ ३९ ॥

शब्द-इस स्थानमे वर्णके उच्चारणको कहते है। वह शब्द दृष्टार्थक, अदृष्टार्थक, सत्य और अनृत इन भेदोंसे चार प्रकारका है। दृष्टार्थक-उस शब्दको कहते है जो स्पष्ट और प्रत्यक्ष अर्थको बोध करे जैसे-तीन हेतुओसे तीन दोप कुपित होते हैं। ७. प्रकारके उपक्रमोंसे शान्त होते हैं। कर्णादि द्वारा शब्दादिका ग्रहण होना अदृष्टा-र्थक शब्द कहाजाताहै। जैसे-फिर जन्म होता है, ज्ञानसे मोक्ष होजाताहै यह अदृ-ष्टार्थक शब्द है। यथार्थ शब्दको सत्य शब्द कहते हैं। जैसे-आयुर्वेदके उपदेश सत्य है। साध्य रोग उपाय द्वारा शान्त हो सकते है। आरम्भका फल अवश्य होताहै। इन सबको सत्य शब्द कहते हैं। सत्यसे विपरीत अर्थात् मिथ्या शब्दको अनृत शब्द कहते है ॥ ३९ ॥

अथ प्रत्यक्षम्।

प्रत्यक्षनामतयदात्मनापञ्चेन्द्रियैश्चस्वयमुपलभ्यते । तत्रात्म प्रत्यक्षा सुखदु.खेच्छाद्वेपादय । शब्दादयस्त्विन्द्रियप्रत्यक्षा.॥४०॥

जो विपय आत्मद्वारा अथवा पचेन्द्रिय द्वारा निश्चयात्मकरूपसे जाना जाय उसको प्रत्यक्ष कहते है। सुख, दु ख, इच्छा, द्वेप, आदिक आत्माके प्रत्यक्ष है और शब्दा-दिक इन्द्रियोंके प्रत्यक्ष है ॥ ४० ॥

अनुमानम्।

अनुमाननामतर्कोयुक्त्यपेक्षोयथोक्तमग्निंजरणशक्त्याबलव्या-यामशक्त्याश्रोत्रादीनिशब्दादिग्रहणेनेन्द्रियाणीत्येवमादि. ॥४१॥

युक्ति युक्त तर्कको अनुमान कहते है। जैसे-पाचनशक्तिसे जठराग्नीका अनुमान करना व्यायामकी शक्तिसे बलका अनुभव करना शब्दादिक ग्रहणसे श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका अनुमान करना ॥ ४१ ॥

अथ औपम्यम्।

औपम्यनामयदन्येनान्यस्यसादृश्यमधिकृत्यप्रकाशनयथाद-ण्डेनदण्डकस्यधनुपाधनुष्टम्भस्यइष्वसिनाआरोग्यदस्येति ॥४२॥

जो विषय दूसरेमें दूसरेकी सादृश्यताको प्रकाश करता है उपमान कहा जाता है । जैसे-दण्डक रोग-डण्डेके समान होता है । धनुष्टम्भ रोगमें मनुष्य धनुषके आकार टेढा होजाता है । जो औषधी रोगको शीघ्र नष्ट कर डाले उसको तीरकी उपमा दी जाती है । इसको उपमान कहते हैं ॥ ४२ ॥

अथ ऐतिह्यम् ।

ऐतिह्यनामआप्तोपदेशोवेदादिः ॥ ४३ ॥

ऐतिह्य-इतिहासको ऐतिह्य कहते हैं ॥ ४३ ॥

अथ संशय ।

संशयोनामसन्दिग्धेष्वर्थेष्वनिश्चयः ।
यथाकिमकालमृत्युरस्तिनास्तीति ॥ ४४ ॥

सन्दिग्ध अर्थोंके अनिश्चयको संशय कहते हैं । जैसे-अकालमृत्यु है या नहीं । इस संशयात्मक अनिश्चित ज्ञानको संशय कहते हैं ॥ ४४ ॥

अथ प्रयोजनम् ।

प्रयोजननामयदर्थमारभ्यन्तआरम्भाः । यथायद्यकालमृत्यु-स्तिततोऽहमात्मानमायुष्यैरुपचरिष्यामिअनायुष्याणिचपरिह-रिष्यामिकथंमामकालमृत्यु प्रसहेतेति ॥ ४५ ॥

जिस अर्थके लिये आरम्भ कियाजाताहै उस अर्थको प्रयोजन कहते हैं । जैसे-यदि अकालमृत्यु है तो मैं अपनेको आयुवर्द्धक उपचारों द्वारा रक्षित रक्खूंगा और आयुनाशक पदार्थोंका त्याग करूंगा । क्योंकि मैं अकालमृत्युको सहन करना नहीं चाहता । इस स्थानमें दीर्घायु होनेके लिये प्रयत्न करना "प्रयोजन" कहाताहै ॥ ४५ ॥

अथ सव्यभिचारम् ।

सव्यभिचारनामयद्व्यभिचरणयथाभवेदिदमौषधतस्मिन्व्या
धौयौगिकमथवानेति ॥ ४६ ॥

किसी विषयका एक जगहसे दूसरी जगह भी व्यापक होजाना सव्यभिचार कहाता है । जैसे-यह औषधी इस रोगमें हितकारक है और नहीं भी है ॥ ४६ ॥

अथ जिज्ञासा ।

जिज्ञासानामपरीक्षायथाभेषजपरीक्षोत्तरकालमुपदेक्ष्यते ॥ ४७ ॥

किसी विषयकी परीक्षा करना अर्थात् उसके जाननेका यत्न करना जिज्ञासा कहाती है। जैसे-औषधकी परीक्षा आगे कथन करेंगे ॥ ४७ ॥

अथ व्यवसायः।

व्यवसायोनामनिश्चयःयथावातिकएवायव्याधिरिदमेवास्यभेषजमिति ॥ ४८ ॥

निश्चयात्मक अर्थका कथन करना अथवा निश्चय कर लेना व्यवसाय कहा जाता है। जैसे-यह व्याधी वायुसेही उत्पन्न हुई है और इसकी यही औषधी है ॥ ४८ ॥

अथार्थप्राप्तिः।

अर्थप्राप्तिर्नामयत्रैकेनार्थेनोक्तेनापरस्यार्थस्यानुक्तस्यसिद्धि । यथानायसतर्पणसाध्योव्याधिरित्युक्तेभवत्यर्थप्राप्तिरतर्पणसाध्योऽयमिति। नानेनदिवाभोक्तव्यमित्युक्तेभवत्यर्थप्राप्तिर्निशि भोक्तव्यमिति ॥ ४९ ॥

कहे हुए अर्थसे विना कहे हुए दूसरे अर्थकी सिद्धि होजाना अर्थ प्राप्ति कहाजाताहै। जैसे यह व्याधि सतर्पणद्वारा साध्य नहीं हो सकती इससे यह अर्थ निकल आया कि अपतर्पणद्वारा साध्य होसकतीहै। इस मनुष्यको दिनमें भोजन नहीं करनाचाहिये इससे यह अर्थ निकल आया कि रात्रिको करनाचाहिये इसको अर्थप्राप्ति कहतेहै ॥ ४९ ॥

अथ सम्भव.।

सम्भवोनामयोयतःसम्भवतिसतस्यसम्भव॰ । यथापड्धातवोगर्भस्यव्याधेरहित हितमारोग्यस्येति ॥ ५० ॥

जो जिससे होसकताहो उसको सभव कहतेहै। जैसे पड्धातु गर्भका सभव अर्थात् गर्भहोनेका कारण है। तात्पर्य यह हुआ कि छ' धातुओंसे गर्भ हो सकता है। अहितसेवनसे व्याधिका होना सभव है और हितपदार्थके सेवनसे आरोग्य रहना सभव है ॥ ५० ॥

अथानुयोज्यम्।

अनुयोज्यंनामयद्वाक्यंवाक्यदोषयुक्तंतदनुयोज्यमुच्यते। सामान्योदाहृतेष्वर्थेषुवाविशेषग्रहणार्थंतद्वाक्यमनुयोज्यम्। यथा-

संशोधनसाध्योऽयंव्याधिरित्युक्तेकिंवमनासाध्यःकिंविरेचनसा-
ध्यइत्यनुयुज्यते ॥ ५१ ॥

जो वाक्य दोषयुक्त हो उसको अनुयोज्य कहतेहैं । जहा सामान्यतासे थोडासा कहना उचित हो उस स्थानमें वडी लम्बी कथाको छेडदेना अनुयोज्य कहाताहै । जैसे किसीको कहागया कि यह रोगी संशोधन द्वारा साध्य होसकताहै उसमें यह पूछना क्या इसको वमन और विरेचन भी कराना होगा इत्यादि वाक्योंको पूछना अनुयोज्य कहाताहै ॥ ५१ ॥

अथाननुयोज्यम् ।

अननुयोज्यनामातोविपर्य्ययेणयथायमसाध्य ॥ ५२ ॥

अनुयोज्यसे विपरीतको अननुयोज्य कहतेहैं । जैसे यह मनुष्य असाध्य है॥५२॥

अथाऽनुयोग ।

अनुयोगोनामयत्तद्विद्यानातद्विद्यैरेवसार्द्धंतन्त्रेतन्त्रैकदेशेवा
प्रश्न प्रश्नैकदेशोवाज्ञानविज्ञानवचनपरीक्षार्थमादिश्यते । अ-
थवानित्य पुरुषइतिप्रतिज्ञातेयत्पर कोहेतुरित्याहसोऽनुयोग ५३॥

वैद्य वैद्यके साथ परस्पर वैद्यक शास्त्रमें अथवा वैद्यकशास्त्रके एक अंशमें प्रश्न करे अथवा प्रश्नके एक देशको करता हुआ ज्ञान, विज्ञान, वचन इनकी परीक्षाके लिये बराबरीवालेसे जो प्रवृत्ति करे उसको अनुयोग कहते हैं । अथवा एकने कहा कि पुरुष नित्य है उसमें यह कहना कि पुरुषके नित्य होनेमें हेतु क्या है अनुयोग कहाताहै ॥ ५३ ॥

अथ प्रत्यनुयोग. ।

प्रत्यनुयोगोनामानुयोगस्यानुयोग' । यथाऽनुयोगस्यपुन.
कोहेतुरिति ॥ ५४ ॥

अनुयोगमें अनुयोग करनेको प्रत्यनुयोग कहतेहैं । जैसे आप ऐसा प्रश्न हमारे ऊपर कैसे करसक्तेहैं यह कहना प्रत्यनुयोग कहाजाताहै ॥ ५४ ॥

अथ वाक्यदोष. ।

वाक्यदोषोनामयथाखल्वस्मिन्नर्थेन्यूनमधिकमनर्थकमपार्थक

जिस विषयमें कथन करनेलगे उसमें न्यून, अधिक, अनर्थक, अपार्थक और विरुद्धताका कथन करना वाक्यदोष कहाताहै ॥ ५५ ॥

वाक्यन्यूनता।

अत्रहेतूदाहरणोपनयनिगमनानामन्यतमेनापिन्यूनन्न्यूनभव-तियद्वाबहूपदिष्टहेतुकमेकेनसाध्यतेहेतुनातच्चन्यूनम् एतानिह्य-न्तरेणप्रकृतोप्यर्थःप्रणश्येत् ॥ ५६ ॥

उदाहरण, उपमा, निगमन इनमेंसे किसी एकका अभाव होना न्यून कहाताहै। अथवा जिस विषयको बहुतसे हेतुओंसे पुष्ट करना उचित हो उसको अल्पहेतु द्वारा कथन करना न्यून कहाताहै। न्यूनतासे अर्थका कथन करना प्रकृत अर्थको भी नष्ट करदेताहै ॥ ५६ ॥

अथाधिक्यम्।

आधिक्यनामयदायुर्वेदेभाष्यमाणेबार्हस्पत्यमौशनसमन्यद्वाप्र-तिसम्बद्धार्थमुच्यतेयद्वापुन प्रतिसम्बद्धार्थमपिद्विरभिधीय-ते, तत्पुनरुक्तत्वादधिकं, तच्चपुनरुक्तंद्विविधमर्थपुनरुक्तश-ब्दपुनरुक्तञ्च। तत्रार्थपुनरुक्तनामयथाभेषजमौषधसाधनमि-ति, शब्दपुनरुक्तञ्चभेषजभेषजमिति ॥ ५७ ॥

आयुर्वेदम संभाषण करते हुए बार्हस्पत्य तथा औशनस अथवा अन्य प्रासंगिक इधर उधरकी कथा कहानियोंका छेड देना तथा एक वाक्यको अनेक प्रकारसे कई वार उच्चारण करना अथवा एक वाक्यको दोहराकर कहना वाक्यकी अधिकता कही जाती है उनमें एक बातको दोहराकर कहना पुनरुक्त कहाता है। उसके दो भेद हैं। १ अर्थसे पुनरुक्त। २ शब्दपुरुक्त। जैसे-औषधको-, भेषज औषध, साधन इन तीन नामोंसे उच्चारण करना यह अर्थपुनरुक्त कहा जाता है। तथा भेषज भेषज वारवार कहना शब्दपुनरुक्त कहा जाता है ॥ ५७ ॥

अनर्थक।

अनर्थकनामयद्वचनमक्षरग्राममात्रमेवस्यात्पञ्चवर्गवन्नचार्थ-तोगृह्यते ॥ ५८ ॥

जिस वचनसे किसी भी अर्थकी प्राप्ति न हो केवल जिह्वासे उच्चारण तो किया जाय परन्तु उसमेंसे अर्थ कुछ न निकले उसको अनर्थक कहते हैं । जैसे, क, च, ट, आदि वर्णोंका उच्चारण करना कुछ भी अर्थवाला नहीं होता ॥ ५८ ॥

अपार्थक ।

अपार्थकनामयदर्थवच्चपरस्परेणचायुज्यमानार्थंयथातक्रनक्र-वशवज्रनिशाकराइति ॥ ५९ ॥

पृथक् २ अर्थोवाले शब्दोंको वाक्यक्रमसे न मिलते हुए भी उच्चारण कर देना अपार्थक कहाता है । जैसे-तक्र, नक्र, वश, वज्र, निशाकर आदि ॥ ५९ ॥

विरुद्ध ।

विरुद्धनामयद्दृष्टान्तसिद्धान्तसमयैर्विरुद्धतत्रपूर्वंदृष्टान्तसिद्धा-न्तावुक्तौ । समयःपुनस्त्रिधाभवतियथायुर्वेदिकसमयोयाज्ञि-यसमयोमोक्षशास्त्रिकसमयइति । तत्रायुर्वेदिकसमयश्चतुष्पा-दसिद्धिः । आलभ्यायजमानैःपशवइतियाज्ञियसमयः । सर्व-भूतेष्वहिंसेतिमोक्षशास्त्रिकसमयस्तत्रस्वसमयविपरीतमुच्य-मानविरुद्धमितिवाक्यदोषः ॥ ६० ॥

जो वाक्य दृष्टान्त और सिद्धान्त तथा समयसे विरुद्ध हो उसको विरुद्ध अथवा विरुद्धता दोषयुक्त कहते हैं इनमें दृष्टान्त और सिद्धान्तको पहिले कथन कर चुके हैं समय-तीन प्रकारका होता है । जैसे-आयुर्वेदिक समय, याज्ञीय समय और मोक्ष शास्त्रिक समय। आयुर्वेदिक समयकी चार पदोंसे सिद्धि है । जस-वैद्य, रोगी, परि-चारक और औषधी। यजमानों द्वारा पशु आलम्भनीय है यह याज्ञिकसमय है। है । संपूर्ण जीवमात्रकी हिंसा नहीं करना यह मोक्षशास्त्रिक समय अपने समयमें दूसरेके समयका उच्चारण कर देना अर्थात् आयुर्वेदिक चतुष्पाद सिद्धिमें याज्ञीय, यजमान, पशु आदिकोंका प्रयोग करना समयविरुद्ध वाक्यदोष कहलाता है ॥ ६० ॥

वाक्यप्रशंसा ।

वाक्यप्रशंसानामयथाऽन्यूनमनधिकमर्थवदनपार्थकमविरुद्धम-धिगतपदार्थंश्चतद्वाक्यमननयोज्यमि[illegible] ॥ ६१ ॥

जो न्यूनतारहित, अनधिक अथवाला अनपार्थक, अविरुद्ध पदार्थके अर्थको यथार्थ कथन करनेवाला वाक्य हो उसको वाक्यप्रशंसा अर्थात् प्रशंसनीय वाक्य कहते हैं ॥ ६१ ॥

वाक्छल ।

छलंनामपरिशठमर्थाभासमनर्थकवाग्वस्तुमात्रमेव । तद्द्विविधंवाक्छलंसामान्यछलश्च । वाक्छलनामयथाकश्चिद्ब्रूयात्नवतन्त्रोऽयभिषगिति,भिषग्ब्रूयान्नाहनवतन्त्रएकतन्त्रोऽहमिति । परोब्रूयान्नाहंब्रवीमिनवतन्त्राणितवेति, अथतुनवाभ्यस्तंतेतन्त्रमिति, भिषक्ब्रूयान्नमयानवाभ्यस्तंतन्त्रमनेकशताभ्यस्तं मयातन्त्रमितिवाक्छलम् ॥ ६२ ॥

किसी अर्थको शठतासे दूसरे रूपमें प्रकाश करके वादीके लक्ष्य विषयको दूसरी ओर अर्थ लेजाना छल कहाता है । छल वाणीके फेर मानको कहते है । वह छल दो प्रकारका है । १ वाक् छल । २ सामान्य छल । वाक्छल जैसे–कोई कहे कि यह वैद्य नवतंत्र है अर्थात् नवीन शास्त्रका जाननेवाला है इस जगह नवशब्दका अर्थ छलपूर्वक नौ संख्याका वाचक बनाकर कहे कि मैं नौ तंत्र नहीं केवल एकही तंत्र हू अर्थात् नौ तंत्रोंको नहीं जानता, एक ही तंत्रको जानता हू । फिर पूर्वपक्षवाला कहे कि मैंने यह नहीं कहा कि आप नौ तंत्रोंको जानते है मैंने तो यही कहा है कि आपने नया शास्त्र पढा है अर्थात् आपके नवीन अभ्यास किया है उसपर वैद्य फिर कहे कि मैंने शास्त्रको नौवार अभ्यास नहीं किया किन्तु अनेक सौवार अभ्यास किया है। इस प्रकार दूसरेके लक्ष्यको छलसे दूसरी ओर डाल देना वाक्छल कहाजाताहै ॥ ६२ ॥

सामान्यछल ।

सामान्यच्छलनामयथाव्याधिप्रशमनायौषधमित्युक्तेपरोब्रूयात्सत्सत्प्रशमनायेतिकिन्नुभवानाहसद्रोग सदौषधंयदिचसत्सत्प्रशमनायभवतितत्रसत्कास सत्क्षय सत्सामान्यात्कासः क्षयप्रशमनायभविष्यतीतिएतत्सामान्यच्छलम् ॥ ६३ ॥

जैसे किसी वैद्यने कहा कि व्याधीकी शान्तिके लिये औषध होती है अर्थात् औषधसे रोगनाश होता है । इसपर प्रतिवादी मनुष्य कहे कि क्या सत्–सत्को शान्त करता है आप ऐसा कहते हैं ? यदि सत्को सत् शान्त करताहै अर्थात् सत् वस्तुद्वारा सत्की

शान्ति होती है तो रोग भी सत् है और औषधी भी सत् है सो सत्रोगको सत् औषधी शान्त करती है ऐसा आप कहते है तो खासी भी सत् है और क्षयरोग भी सत है। वस सत् सामान्य खासी सत् क्षयरोगको शान्त करनेवाली आपके मतसे सिद्ध होगई। इस प्रकारके कथनको सामान्यछल कहते है॥ ६३॥

अहेतु।

अहेतुर्नामप्रकरणसम. संशयसमोवर्ण्यसमइति। तत्रप्रकरणसमोनामाहेतुर्यथान्य शरीरादात्मानित्यइतिपक्षेपरोब्रूयाच्छरीरादन्यआत्मातस्मान्नित्य शरीरमनित्यमतोविधर्मिणानेनचभवितव्यम्एषचाहेतुर्नहियएवपक्ष.सएवहेतु ॥ ६४॥

प्रकरणसम, संशयसम, वर्ण्यसम, इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है। प्रकरणसम अहेतु-जैसे-किसीने कहा कि आत्मा शरीरसे भिन्न है और नित्य है। उस पर प्रतिवादी यह कहे कि-आत्मा शरीरसे भिन्न है इसलिये नित्य है और शरीर अनित्य है तो आत्मा विधर्मी होनेसे अर्थात् शरीरसे विरुद्धधर्मवाला होनेसे शरीर तो अनित्य होना ही चाहिये। इस प्रकारका कथन अहेतु कहाता है। क्योंकि जो पक्ष है वही हेतु नहीं होसकता॥ ६४॥

संशयसमोनामाहेतुर्यएवसंशयहेतु सएवसंशयच्छेदहेतुर्यथा अयमायुर्वेदैकदेशमाहकिन्नयचिकित्सक स्यान्नवेतिसंशयेपरो ब्रूयाद्यस्मादयमायुर्वेदैकदेशमाहतस्माच्चिकित्सकोऽयमिति। नचसंशयच्छेदहेतुविशेषयत्येषचाहेतु.नहियएवसंशयहेतु.सएव संशयच्छेदहेतु ॥ ६५॥

संशयके हेतुको संशयके छेदनका हेतु कर लेना संशय सम अहेतु कहाता है। जैसे-यह आयुर्वेदका एक देश कथन कर रहा है इसलिये यह वैद्य है कि, नहीं ऐसा संशय, उत्पन्न होनेपर कोई कहे कि जिससे यह आयुर्वेदका एक देश कथन करता है इसीसे यह सिद्ध होगया कि यह वैद्य है। इस स्थानमें संशयमें जो हेतु था उसीको ही संशय छेद करनेमें हेतु बनाया गया। जो संशयमें हेतु होताहै वह संशयके छेद करनेमें हेतु नहीं होसकता इसलिये यह संशय सम अहेतु हुआ॥ ६५॥

वर्ण्यसमोनामाहेतुर्योहेतुर्वर्ण्याविशिष्ट यथापरोब्रूयादस्पर्शत्वाद्बुद्धिरनित्याशब्दवदितितत्रवर्ण्य शब्दोबुद्धिरपिवर्ण्यातदुभयवर्ण्याविशिष्टत्वाद्वर्ण्यसमोऽप्यहेतु. ॥ ६६॥

दो वस्तुओंको समानरूपसे वर्णन किया गया फिर उनमें अभेद दिखाया जाय उसको वर्ण्यसम अहेतु कहते है। जैसे कोई कहे कि स्पर्श न होनेसे बुद्धि अनित्य है क्योंकि शब्दका भी स्पर्श नहीं कियाजाता वह स्पर्शवाला न होनेसे अनित्य है उसी प्रकार बुद्धि भी स्पर्शवाली न होनेसे अनित्य है । इस प्रकार कथन करना वर्ण्यसम अहेतु होता है ॥ ६६ ॥

अतीतकालम्।

अतीतकालनामयत्पूर्ववाच्यंतत्पश्चादुच्यतेतत्कालातीतत्वाद-ग्राह्यंभवतिपरंवानिग्रहप्राप्तमनिगृह्यपरिगृह्यपक्षान्तरितपश्चा-न्निगृहीतेतत्तस्यातीतकालत्वान्निग्रहवचनसमर्थंभवतीति ॥६७॥

जिस विषयको पहिले कथन करना हो उसका पीछे कथन किया जाना अतीतकाल होता है । अतीतकाल होनेसे वह वचन अग्राह्य होजाता है । अथवा निग्रहस्थानको प्राप्त होकर दूसरे पक्षको मान लेना फिर अपने पहिले पक्षकी पुष्टिके लिये कथन करना कालातीत होताहै । इसलिये वह निग्रहमें ही गिना-जाताहै ॥ ६७ ॥

उपालम्भ।

उपालम्भोनामहेतोर्दोषवचनंयथापूर्वमहेतवोहेत्वाभासाव्या-ख्याता ॥ ६८ ॥

हेतुमें दोष वर्णन करना उपालंभ कहाताहै । यह अहेतुमें वर्णन कियाजाचुकाहै । इसको हेत्वाभास भी कहतेहैं ॥ ६८ ॥

परिहार।

परिहारोनामतस्यैवदोषवचनस्यपरिहरणंयथानित्यमात्मनिश-रीरस्थेजीवलिङ्गान्युपलभ्यन्तेतस्यचापगमान्नोपलभ्यन्तेतस्मा-दन्य.शरीरादात्मानित्य शरीराच्चेति ॥ ६९ ॥

प्रतिवादीके दोषयुक्त वाक्यको परिहरण करतेहुए जो सत्यताका प्रतिपादन कियाजाय उसको परिहार कहतेहैं । जैसे कहाजाय कि शरीरमें स्थित हुआ आत्मा जीवके लक्षणोंसे उपलब्ध होताहै, जब आत्मा शरीरको त्यागकर अलग होजाताहै तब जीवन लक्षण नहीं दिखाई देते । इससे सिद्धहै कि आत्मा नित्य है और शरीरसे भिन्न है । इसप्रकार प्रतिवादीके वाक्यदोषका परिहार कियाजाताहै ॥ ६९ ॥

शान्ति होती है तो रोग भी सत् है और ओषधी भी सत् है सो सद्रोग ओषधी शान्त करती है ऐसा आप कहते है तो खासी भी सत् है और क्षय सत् है। वस सत् सामान्य खासी सत् क्षयरोगको शान्त करनेवाली आपके सिद्ध होगई। इस प्रकारके कथनको सामान्यछल कहते है ॥ ६३ ॥

अहेतु ।

अहेतुर्नामप्रकरणसम. संशयसमोवर्ण्यसमइति ।
समोनामाहेतुर्यथान्य [illegible] इतिप [illegible]
रादन्यआत्मातस्मान्नित्य [illegible] नेनच
वितव्यम्एषचाहेतुर्नहियएवपक्ष सएवहेतु ॥ ६४ ॥

प्रकरणसम, संशयसम, वर्ण्यसम, इन भेदोंमे तीन प्रकारका होता है । रणसम अहेतु-जैसे-किसीने कहा कि आत्मा शरीरसे भिन्न है और नित्य है। पर प्रतिवादी यह कहे कि-आत्मा शरीरसे भिन्न है इसलिये नित्य है और अनित्य है तो आत्मा विधर्मा होनेसे अर्थात् शरीरसे विरुद्धधर्मवाला होनेसे तो अनित्य होना ही चाहिये। इस प्रकारका कथन अहेतु कहाता है। क्योंकि है वही हेतु नहीं होसकता ॥ ६४ ॥

[illegible] हेतुर्य. संशयहेतु [illegible] च्छेदहेतुर्य ।
अयमायुर्वेदैकदेशमाहाकिं [illegible]
[illegible] आयुर्वेद [illegible]
नचसंशयस्यहेतु [illegible] चाहे [illegible]
संशयच्छेदहेतु ॥ ६५ ॥

संशयके हेतुको संशयके छेदनका हेतु कर लेना संशय सम अहेतु है जैसे-यह आयुर्वेदका एक देश कथन कर रहा है इसलिये यह वैद्य है कि, संशय, उत्पन्न होनेपर कोई कहे कि जिससे यह आयुर्वेदका एक देश [illegible] इसीसे यह सिद्ध होगया कि यह वैद्य है। इस स्थानमें संशयम जो हेतु वही संशय छेद करनेमें हेतु बनाया गया। जो संशयम हेतु होता है [illegible] करनेमें हेतु नहीं होसकता इसलिये यह संशय सम अहेतु हुआ ॥ ६[illegible]

वर्ण्यसमोनामाहेतुर्योहेतुर्वर्ण्याविशिष्ट [illegible]
द्बुद्धिरनित्याशब्दवदितितत्रवर्ण्य [illegible]
यत्रवर्ण्याविशिष्टत्वाद्वर्ण्यसमोऽप्यहेतु. ॥ ६६

प्रतिज्ञाहानि ।

प्रतिज्ञाहानिरभ्यनुज्ञाकालातीतवचनमहेतुःन्यूनमतिरिक्तव्य
र्थमनर्थकंपुनरुक्तविरुद्धहेत्वन्तरमर्थान्तर निग्रहस्थानमितिवा-
दमर्य्यादापदानियथोदेशमभिनिर्दिष्टानि ॥ ७५ ॥

प्रतिज्ञाहानि, अभ्यनुज्ञा, कालातीत, वचन, अहेतु, न्यूनता, अधिकता, व्यर्थ, अपार्थक, पुनरुक्त, विरुद्ध, हेत्वन्तर, अर्थान्तर और निग्रहस्थान यह सब वादमार्गके पदोको यथोद्देश निदिष्ट करचुकेहै अर्थात् निर्देश करचुकेहैं ॥ ७५ ॥

वाद ।

वादस्तुखलुभिषजावर्त्तमानोवर्त्तेतायुर्वेदएवनान्यत्र ॥ ७६ ॥

वादानुवाद वैद्योंको आयुर्वेद शास्त्रमें ही करना चाहिये । अन्यशास्त्रोंमें नहीं॥७६॥

तत्रहिवाक्यप्रतिवाक्यविस्तारा.केवलाश्चोपपत्तयश्चसर्वाधिक-
रणेषुता.सर्वा सम्यगवेक्ष्यावेक्ष्यसर्वंवाक्यंब्रूयान्नाप्रकृतिकम-
शास्त्रमपरीक्षितमसाधकमाकुलप्रज्ञापकवासर्वंश्चहेतुमद्ब्रूया
द्धेतुमन्तोह्यकलुषा·सर्वएववादविग्रहाश्चिकिरिसतेकारणभूता·।
प्रशस्तबुद्धिवर्द्धकत्वात्सर्वारम्भासिद्धिह्यावहतिअनुपहताबुद्धि·७७

इस स्थानमें वाक्य प्रतिवाक्यका ही विस्तार कियागयाहै । इनके सिवाय शास्त्रमे जो २ उपपत्तियें है उन सबको अच्छीतरह विचारकर वादानुवाद करनाचाहिये। अर्थात् सब उपपत्तियोंको भले प्रकार विचारकर ही सभामें बोलना चाहिये । तथ अप्रकृत, अशास्त्र, अपरीक्षित, अप्रमाण, आकुल और अज्ञापक शब्दोंको कभी उच्चारण करना नहीं चाहिये । सब शब्द हेतुमान् बोलना चाहिये । हेतुयुक्त शब्दोंका बोलना, निर्दोष शब्दोंका उच्चारण करना शास्त्रार्थ करना यह सब वैद्यकी बुद्धिके बढानेवाले होतेहै। बुद्धि निर्मल तथा अनुपहत एव स्वच्छ होनेसे सपूर्ण कार्योंकी सिद्धि होतीहै ॥ ७७ ॥

इमानिखलुतावदिहकानिचित्प्रकरणानिब्रूम· ।
ज्ञानपूर्वककर्मणासमारम्भप्रशसन्तिकुशला· ॥ ७८ ॥

यहापर हम इन और प्रकरणोंका कथन करतेहैं । क्योंकि बुद्धिमान् सब कर्मोंके आरम्भको ज्ञानपूर्वक करनेकी ही प्रशसा करते है ॥ ७८ ॥

ज्ञात्वाहिकारणकरणकार्य्ययोनिकार्य्यकार्य्यफलानुबन्धदेशकालप्रवृत्त्युपायान्सम्यगभिनिर्वर्त्यमानः कार्य्याभिनिर्वृत्ताविष्टफलानुबन्धककार्य्यमभिनिर्वर्त्तयत्यनतिमहताप्रयत्नेनकर्त्ता॥७९॥

कारण, करण, कार्ययोनि, कार्य, कार्यफल, अनुबंध, देश, काल, प्रवृत्ति और उपाय इन सबको भले प्रकार जानकर कार्यके करनेमे प्रवृत्त होनेसे इष्टफलकी प्राप्ति होतीहै और कर्त्ता थोडा ही यत्न करनेपर कार्यकी सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ७९ ॥

कारण ।

तत्रकारणनामतद्यत्करोतिसएवहेतु कर्त्तास ॥ ८० ॥

कार्यके करनेवालेको कारण कहतेहै । और उसीको हेतु तथा कर्त्ता भी कहते है ॥ ८० ॥

करण ।

करणपुनस्तद्यदुपकरणायोपकल्पतेकर्त्तु कार्य्याभिनिर्वृत्तौप्रयतमानस्य ॥ ८१ ॥

कार्यसिद्धिमे कर्त्ता जिस उपकरण द्वारा कार्यको करे उसको करण कहतेहै । अर्थात् कर्त्ता जिस सामग्रीको लेकर कार्यसिद्धिमे प्रवृत्त हो उस सामग्रीका नाम करण है ॥ ८१ ॥

कार्ययोनि ।

कार्य्ययोनिस्तुसायाविक्रियमाणाकार्य्यत्वमापद्यते ॥ ८२ ॥

जो पदार्थ विकृत होकर कार्यरूपसे परिणत हो जाय उसको कार्ययोनि कहतेहै ॥ ८२ ॥

कार्य ।

कार्य्यन्तुतद्यस्याभिनिर्वृत्तिमभिसन्धायप्रवर्त्ततेकर्त्ता ॥ ८३ ॥

जिसकी उत्पत्तिको लक्ष्यकर कर्त्ता प्रवृत्त होताहै उसको कार्य कहतेहै ॥ ८३ ॥

कार्यफलम् ।

कार्यफलपुनस्तद्यत्प्रयोजनाकार्य्याभिनिर्वृत्तिरिष्यते ॥ ८४ ॥

जिस प्रयोजनसे कार्य किया जाय उसी प्रयोजनकी सिद्धिको कार्यफल कहतेहै ८४

अनुबन्ध ।

अनुबन्धस्तुखल्वत्तोरमवश्यमनुबध्नातिकार्य्यादुत्तरकालकार्य्यनिमित्त शुभोवाप्यशुभोवाभाव. ॥ ८५ ॥

कार्यके अंतमें होनेवाला अवश्यभावी शुभाशुभभाव अनुबंध कहाजाताहै ॥ ८५ ॥

देश ।

देशस्त्वधिष्ठानम् ॥ ८६ ॥

अधिष्ठानको देश कहतेहैं ॥ ८६ ॥

काल ।

कालःपुनःपरिणामः ॥ ८७ ॥

और काल परिणामको कहतेहैं ॥ ८७ ॥

प्रवृत्ति ।

प्रवृत्तिस्तुखलुचेष्टाकार्य्यार्थासैवक्रियाकर्मयत्नःकार्य्यसमारम्भश्च ॥ ८८ ॥

कार्यके सम्पादन करनेके लिये जो कर्त्ताकी चेष्टा है उसको प्रवृत्ति कहतेहैं । वही क्रिया, कर्म, यत्न और कार्यसमारम्भ भी कहीजाती है ॥ ८८ ॥

उपाय ।

उपाया पुन कारणादीनासौष्ठवमभिसन्धानश्चसम्यक्कार्य्यफलानुबन्धोपायवर्ज्यानाकार्य्याणामभिनिर्वर्त्तकइत्यतोऽभ्युपायःकृतेनोपायार्थोऽस्तिनचविद्यतेतदात्वेकृताच्चोत्तरकालफलंफलञ्चानुबन्धइतिव्याख्यातदशविधम् ॥ ८९ ॥

कार्यके उत्पादन करनेमें कारण, करण, समवायिकारण, देश, काल और प्रवृत्ति आदिकोंकी कार्यफल उत्पन्न करनेमें जिसकी जिस प्रकार जिससे अनुकूलता हो उसको उपाय कहते है । और कारणादिकोंको भी उपाय कहते है क्योंकि कारणादिक न होनेसे भी कार्यसिद्धि नहीं होती । फल और अनुबंध उपाय कहे नहीं जा सकते क्योंकि यह कार्य होजानेपर उत्पन्न होते हे । इस दशप्रकारके कारणादिकोंकी वर्णन कियागया ॥ ८९ ॥

अग्रेपरीक्ष्यततोऽनन्तरकार्य्यार्थाप्रवृत्तिरिष्टातस्माद्भिषक्कार्य्यचिकीर्षु प्राक्कार्य्यसमारम्भात्परीक्षयाकेवलपरीक्ष्यपरीक्ष्यार्थकर्मसमारभेतकर्त्तुम् ॥ ९० ॥

पहिले परीक्षा करके तदनन्तर कार्यार्थके लिये प्रवृत्ति करना चाहिये। इसलिये चिकित्सा करनेकी इच्छावाला वैद्य चिकित्सा आरम्भ करनेसे प्रथम परीक्ष्य विषयको परीक्षा करके फिर चिकित्सा करनेमें प्रवृत्त हो ॥ ९० ॥

तत्रचेद्भिषगभिषग्वाभिषजंकश्चित्पृच्छेद्वमनविरेचनास्थाप नानुवासनशिरोविरेचनानिप्रयोक्तुकामेनभिषजाकतिविधया परीक्षयाकतिविधमेवपरीक्ष्यंकश्चात्रपरीक्ष्यविशेषःकथञ्चपरीक्षि- तव्यंकिंप्रयोजनाचपरीक्षाक्वचवमनादीनाप्रवृत्तिःक्वचनिवृत्ति प्रवृत्तिनिवृत्तिसंयोगेचकिंनैष्ठिककानिचवमनादीनाभेषजद्र- व्याणिउपयोगंगच्छन्तीति । सएवंपृष्टोयदिमोहयितुमिच्छेद्- ब्रूयादेनबहुविधाहिपरीक्षातथापरीक्ष्यविधिभेदः । कतमेनवि- धिभेदप्रकृत्यन्तरेणपरीक्ष्यस्यभिन्नस्यभेदाग्रंभवान्पृच्छतिआ- ख्यायमानंनेदानींभवतोऽन्येनविधिभेदप्रकृत्यन्तरेणभिन्नया- परीक्षयाअन्येनवाविधिभेदप्रकृत्यन्तरेणपरीक्ष्यस्यभिन्नस्या भिलपितमर्थंश्रोतुमहमन्येनपरीक्षाविधिभेदेनअन्येनवाविधि भेदप्रकृत्यन्तरेणपरीक्ष्यभित्त्वार्थमाचक्षाणइच्छाप्रपूरयेयमि ति ॥ ९१ ॥

यदि वैद्य अथवा कोई अन्य मनुष्य प्रश्न करे कि-वमन, विरेचन, आस्थापन अनुवासन और शिरोविरेचन इनका प्रयोग करनेकी इच्छावाले वैद्यको कितने प्रकारकी परीक्षासे कितने प्रकारके परीक्ष्य विषय परीक्षा करने चाहिये। और इस स्थानमें परीक्ष्य विशेष क्या है कैसे परीक्षा करनी चाहिये परीक्षाका प्रयोजन क्या है और वमनादिकोंकी कहा २ प्रवृत्ति और निवृत्ति है। प्रवृत्ति और निवृत्तिके लक्षण दिखाइ देनेपर क्या करना चाहिये, वमन, विरेचनादिकोंमें कौन २ द्रव्य उपयोगी होते हैं। इस प्रकार प्रश्न करनेपर यदि देखे कि प्रश्नकर्त्ताको परास्त करदेना और मुग्ध कर देना उचित है तो उससे कहे कि परीक्षा बहुत प्रकारकी होती है और परीक्षणीय विषय भी अनेक प्रकारके होते हैं। आप किस प्रकारकी परीक्षाके भेदको पूछना चाहते हैं और परीक्षाके पृथक् परीक्षणीय विषयके किन २ भेदोंको जानना चाहते हैं। क्योंकि यदि आप जिस परीक्ष्य विषयको जिस प्रकार जानना चाहते हैं हम उस विधि भेद प्रकारसे कथन न करके यदि अन्य प्रकारसे कथन करनेलगेंगे तो आपकी इच्छा परिपूर्ण न होगी ॥ ९१ ॥

सयदुत्तरंब्रूयात्तत्परीक्ष्योत्तरंवाच्यस्याथयथोक्तंप्रतिवचनमवेक्ष्य सम्यग्यदितुब्रूयान्नचैनंमोहयितुमिच्छेत्प्राप्तन्तुवचनकालमन्ये-तकाममस्मैब्रूयादाप्तमेवनिखिलेन ॥ ९२ ॥

इस प्रकार कथन करनेसे वह जो कुछ उत्तर देवै उसकी परीक्षाकर लेना चाहिये। यदि वह पराजय करनेकी इच्छासे उत्तर देवे तो पूर्वोक्त विधानसे निरुत्तर कर डाले यदि यह यथार्थ भलाईके साथ उत्तर देवे तो उसको मुग्ध न करके उससे यथार्थ विधिवत् प्रमाणिक रीतिसे सपूर्ण कथनको करे ॥ ९२ ॥

परीक्षाके भेद ।

द्विविधोपरीक्षाज्ञानवताप्रत्यक्षमनुमानञ्च, एतत्तुद्वयमुपदेशश्च परीक्षात्रयमेवमेषाद्विविधापरीक्षात्रिविधावासहोपदेशेन ॥९३॥

परीक्षा दो प्रकारकी होतीहै । १ प्रत्यक्ष । २ अनुमान और आप्तोपदेशके मिला देनेसे तीन प्रकारकी होजाती है ॥ ९३ ॥

दशविधन्तुपरीक्ष्यकारणादियदुक्तमग्रेतदिहभिषगादिपुससार्य्यसन्दर्शयिष्याम, इहकार्य्यप्राप्तौकारणभिषक्, करणपुन र्भेषज, कार्य्ययोनिर्धातुवैषम्य, कार्यधातुसाम्य, कार्य्यफलसुखावाप्ति, अनुबन्धआयु, देशोभूमिरातुरश्च, काल·संवत्सरश्चातुरावस्थाच, प्रवृत्ति·प्रतिकर्मसमारम्भ·,उपायोभिषगादीनासौष्ठवमभिसन्धानञ्चसम्यगिहापिअस्योपायस्यविषय पूर्वेणैवोपायविशेषेणव्याख्यातइतिकारणादीनिदश । दशसुभिषगादिपुससार्य्यसन्दर्शितानि, तथैवानुपूर्व्याएतद्दशविधपरीक्ष्यमुक्तञ्च ॥ ९४ ॥

परीक्ष्य विषय दश प्रकारके होतेहैं । उन दश प्रकारके कारणादिकोंको पहिले कथन कर चुकेहैं । अब उन्हींको विस्तारपूर्वक वैद्य आदिकोंमें दिखातेहै । वैद्यक शास्त्रमें चिकित्सारूपी कार्यका कारण अथवा कर्त्ता वैद्य और औषधी करण है। धातुओंकी विषमता कार्ययोनि कहाती हैं। धातुओंकी साम्यावस्था कार्य है । आरोग्यताके सुखकी प्राप्ति होना कार्यफल है । आयु अनुबध है । देश भूमि और रोगीका शरीर है । काल सवत्सर और अवस्थाको कहतेहैं । प्रत्येक कर्मके आरभको प्रवृत्ति

कहतेहैं । कार्य करनेकी इच्छासे वैद्यादिकोंका उचित भावसे योग होना उपाय कहाजाताहै । तथा औषधादिकोंका प्रयोग करना भी उपाय कहाजाताहै । विषय पहिले उपाय विशेषसे कथन करचुकेहैं । इस प्रकार यह करणादिक दश परीक्षणीय विषय वैद्यादिकोंमें सभार करके दिखादिये गये हैं । इसप्रकार आनुपूर्व्यो दशविध परीक्षणीय विषयोंका कथन कियागयाहै ॥ ९४ ॥

तस्ययोयोपरीक्ष्यविशेषोयथायथाचपरीक्षितव्य ससतथातथा व्याख्यास्यते । कारणभिषगित्युक्तमग्रेतस्यपरीक्षाभिषङ्नामसयोभिषतिय.सूत्रार्थप्रयोगकुशल.यस्यचायु सर्वथाविदितम् ॥ ९५ ॥

उन परीक्ष्य विषयोंमें जो २ परीक्षणीय विषय जैसे २ परीक्षा करनी चाहिये उसका वैसा २ वर्णन करतेहैं । उनमें कारण वैद्य कहा गयाहै । सो उस वैद्यकी परीक्षा यह है कि जो भेषज अर्थात् औषध क्रिया करताहै उसको भिषक् अर्थात् वैद्य कहतेहैं । वह वैद्य सूत्र, अर्थ और प्रयोगमें कुशल तथा आयुका सम्पूर्णरूपसे ज्ञाता होनाचाहिये ॥ ९५ ॥

धातुसाम्यकारक वैद्यगुण ।

यथावत्सर्वधातुसाम्यचिकीर्षन्नात्मानमेवादित.परीक्षेत । गुणिषुगुणत कार्य्याभिनिर्वृत्तिपश्यन्काचिदहमस्यकार्य्यस्यअभिनिर्वर्त्तनेसमर्थोनवेति ॥ ९६ ॥

वैद्यको चाहिये कि संपूर्ण धातुओंको साम्यावस्थामें करनेकी इच्छा करताहुआ प्रथम अपनी परीक्षा करे । गुणोंमें गुणसे कार्यकी सफलता देखताहुआ यह विचार करे कि मैं इस कार्यको समर्थन करनेके योग्य हूं या नहीं ॥ ९६ ॥

तत्रेमेभिषग्गुणायैरुपपन्नोभिषग्धातुसाम्याभिनिर्वर्त्तनेसमर्थो भवतिलयथापर्य्यवदातश्रुततापरिदृष्टकर्मतादाक्ष्यशौचजितहस्तताउपकरणवत्तासर्वेन्द्रियोपपन्नताप्रकृतिज्ञताप्रतिपत्तिज्ञता चेति ॥ ९७ ॥

जिस वैद्यमें यह आगे कहेहुए संपूर्ण गुण विद्यमान हों वह ही धातुओंको साम्यावस्थामें लानेके लिये समर्थ होता है । वह गुण इस प्रकार हैं । जैसे-शास्त्रमें पारगत होना, बहुश्रुत होना आयुर्वेदीय कर्मोंमें चतुर होना, बहुदर्शी होना, पवित्र

होना जितहस्त होना, औषधादि संपूर्ण उपकरणयुक्त (सामग्रीयुक्त) होना। सर्वेन्द्रियसम्पन्न होना प्रकृति विशेषका ज्ञाता होना। चिकित्सा कर्मके फल विशेष जाननेमें तथा चिकित्सा क्रमके जाननेमें चतुर होना इन गुणोंसे युक्त वैद्य उत्तम होता है ॥ ९७ ॥

भेषजपरीक्षा ।

करणपुनर्भेषजम् । भेषजनामतद्यदुपकरणायोपकल्प्यते, भिषजोधातुसाम्याभिनिर्वृत्तौप्रयतमानस्य, विशेषतश्चोपायान्तरेभ्यः तद्द्विविधव्यपाश्रयभेदाद्दैवव्यपाश्रययुक्तिव्यपाश्रयश्च । तत्रदैवव्यपाश्रयमन्त्रौषधिमणिमङ्गलवल्युपहारहोम नियमप्रायश्चित्तोपवासदानस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि । युक्तिव्यपाश्रयसंशोधनोपशमनेचेष्टाश्चदृष्टफला एतच्चैवभेषजमङ्गभेदादपिद्विविधद्रव्यभूतमद्रव्यभूतश्चतत्रयदद्रव्यभूततदुपायाभिप्लुतम् । उपायोनामभयदर्शनविस्मापनक्षोभणहर्षणभर्त्सनवधबन्धस्वप्नसंवाहनादिरमूर्त्तोभावोयथोक्ता सिद्ध्युपायाश्च । यत्तुद्रव्यभूततद्वमनादिपुयोगमुपैति ॥ ९८ ॥

करण औषधिका नाम है । औषध चिकित्सा कार्यका उपकरण होता है । इस लिये औषधकी परीक्षा करनी चाहिये । जब वैद्य धातुसाम्य करनेके लिये प्रवृत्त हो तो विशेषतासे औषधकी परीक्षा करे । वह औषध दो प्रकारके होतेंहै । १ दैवव्यपाश्रय । २ युक्तिव्यपाश्रय उनमें-मणि, मंत्र, औषध, मंगलक्रिया, बलिदान, उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित्त उपवास, स्वस्त्ययन, प्रणिपातन और देवयात्रा आदि दैव व्यपाश्रय औषध कहा जाता है । और संशोधन, संशमन तथा दृष्टफलकी चेष्टा आदिको युक्तिव्यपाश्रय औषध कहते हैं । वह औषध अंगभेदसे भी दो प्रकारकी होतीहै १ द्रव्यभूत । २ अद्रव्यभूत (उपायभूत) उनमें-जो अद्रव्यभूत औषधी है वह उपाययुक्त होती है । जैसे-भय दिखाना विस्मापन, क्षोभण, हर्षण, भर्त्सन, प्रहार, बंधन, निद्रा और संवाहन आदि । यह सब प्रत्यक्षरूपसे चिकित्साकी सिद्धिके उपाय है । जो द्रव्यभूत हैं उनका वमनादि कार्योंमें उपयोग किया जाता है ॥ ९८ ॥

औषधपरीक्षा ।

तस्यापिइयपरीक्षाइदमेवप्रकृत्याएवंगुणमेवंप्रभावमस्मिन्देशे जातमस्मिन्नृतौएवंगृहीतमेवनिहितमेवमुपस्कृतमनयामात्रयायुक्तमस्मिन् रोगेएवंविधस्यपुरुषस्यैतावन्तंदोषमपकर्षयति उपशमयतिवाअन्यदपिचैवंविधभेषजभवेत्तच्चानेनान्येनवाविशेषेणयुक्तमिति ॥ ९९ ॥

उसकी इस प्रकार परीक्षा करनी चाहिये । जैसे-इस द्रव्यकी प्रकृति ऐसी है इसमें यह गुण होतेहैं और इसका यह प्रभाव है इसके उत्पन्न होनेका यह स्थान है, इस ऋतुमें यह उत्पन्न होती तथा उसके उखाडनेका समय यह है । संयोग विशेषसे ऐसा गुण करती है, मात्रा इतनी है, ऐसे रोगोंमें ऐसे समयमें एवम् ऐसे पुरुषके लिये तथा ऐसे दोषोंको अपकर्षण करनेके लिये एवम् ऐसे दोषोंको शान्त करनेके लिये इसका उपयोग कियाजाता है । इत्यादिक और भी औषध सम्बन्धी जो विचार हैं अथवा इस प्रकारके अन्य द्रव्य इसके समान हैं अथवा इससे गुणोंमें न्यून और अधिक हैं इत्यादिक विषयोंकी समालोचना करतेहुए द्रव्यकी परीक्षा करनी चाहिये ॥ ९९ ॥

कार्य्ययोनिपरीक्षा ।

कार्य्ययोनिर्धातुवैषम्यनस्यलक्षणविकारागम परीक्षात्वस्यविकारप्रकृतेश्चैवोनातिरिक्तलिङ्गविशेषावेक्षणविकारस्यचसाध्यासाध्यमृदुदारुणलिङ्गविशेषावेक्षणमिति ॥ १०० ॥

कार्य्ययोनि-धातुओंकी विषमताको कहते हैं । रोगोंका प्रगट होना धातुओंकी विषमताका लक्षण है । विकार प्रकृति अर्थात् विकारोंके कारणीभूत वात, पित्त, कफ जो हैं उनकी हीनता और अधिकताकी परीक्षा द्वारा इनकी परीक्षा होती है । एवम् विकारोंकी साध्यता, असाध्यता, मृदुता और दारुणताको भी लक्षण विशेषसे परीक्षा करनी चाहिये ॥ १०० ॥

कार्यपरीक्षा ।

कार्य्यंधातुसाम्य, तस्यलक्षणविकारोपशम , परीक्षात्वस्यरुगपशमनंस्वरवर्णयोग शरीरोपचय बलवृद्धिरभ्यवहार्य्याभिलाषोरुचिराहारकालेभ्यवहृतस्यचाहृतस्यचाहारस्यसम्यग्जरणं

निद्रालाभोयथाकालवैकारिकाणास्वप्नानामदर्शनसुखेनचप्र-
तिवोधनवातमूत्रपुरीपरेतसामुक्तिः । सर्वाकारैर्मनोवुद्धीन्द्रि-
याणाश्चाव्यापत्तिरिति ॥ १०१ ॥

धातुओंकी साम्यावस्था रखना या होना अथवा साम्यावस्था उत्पन्न करना चिकित्साका कार्य है । तथा विकारोंकी शान्ति होना उसका लक्षण है । पीडा आदि का शान्त होना, स्वर, वर्णका पूर्ववत् उत्तम होना, शरीरका पुष्ट होना एवम् वलकी वृद्धि, आहारकी अभिलापा, आहारकी रुचि, भोजनका समयपर पचजाना, समय पर क्षुधा लगना, सुखपूर्वक निद्रा आना, बुरे स्वप्नोंका न दीखना, सुखपूर्वक इच्छा नुसार जागृत होना समयपर सुखपूर्वक वात, मूत्र, पुरीप और वीर्यका मुक्त उचित रीतिपर होना । सपूर्ण आकारोंसे मन, बुद्धि और इन्द्रियोंका स्वास्थ्य अर्थात् विकार रहित होना यह सब विकार शान्तिके लक्षण होते है ॥ १०१ ॥

कार्यफलपरीक्षा ।

कार्य्यफलसुखावाप्तिस्तस्यलक्षणमनोवुद्धीन्द्रियशरीरतुष्टिः १०२

चिकित्सा कार्यका फल-सुख अर्थात आरोग्यताकी माप्ति हे । मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरकी तुष्टि ही उसका लक्षण है ॥ १०२ ॥

अनुवन्धस्तुखल्वायुस्तस्यलक्षणप्राणै सयोग ॥ १०३ ॥

अनुवध-अर्थात आरोग्यताका फल दीर्घायु होना है । माणोंका शरीरके साथ सयोग रहना आयुका लक्षण है ॥ १०३ ॥

देशलक्षण ।

देशस्तुभूमिरातुरश्चतत्रभूमिपरीक्षाआतुरस्यपरिज्ञानहेतोर्वा-
स्यादौषधपरिज्ञानहेतोर्वा । तत्रतावदियमातुरपरिज्ञानहेतो ।
तद्यथा- अयकस्मिन्भूमिदेशेजात संवृद्धोव्याधितोवेतितस्मि
श्चभूमिदेशेमनुष्याणामिदमाहारजातमिदविहारजातमेतद्वल-
मेवविधसत्त्वमेवविधसात्म्यमेवविधोदोपोभक्तिरियमिमेव्याध-
योहितमिदमहितमिदमितिप्रायोग्रहणेन ॥ १०४ ॥

देश-भूमिको और रोगीके शरीरको कहतेहैं । उनमें भूमिकी परीक्षा करना आतुरके परिज्ञानके लिये और औपधके परिज्ञानके लिये होताहै । उनमें भूमिकी परीक्षा और रोगीकी परिक्षा इस मकार करना । जैसे-यह किसी भूमि अर्थात किस

देशमें उत्पन्न हुआ, किस देशमें वृद्धिको प्राप्त हुआ, किस देशमें रोगग्रस्त हुआ, जिस देशमें यह उत्पन्न हुआ और पला है उस देशके मनुष्योंका आहार विहार और बल तथा सत्त्व एवम् सात्म्य किस प्रकारके होतेहै । उस देशमें दोष भेद इस प्रकार होतेहैं । इस प्रकारके पदार्थ इनको हितकर होतेहैं, व्याधियें इस प्रकारकी होती हैं ये पदार्थ हितकर और अहितकर होते है । इसप्रकार रोग परिज्ञानके लिये भूमिकी परीक्षा करना चाहिये ॥ १०४ ॥

औषधपरिज्ञानहेतोस्तुकल्पेषुभूमिपरीक्षावक्ष्यते ॥ १०५ ॥

औषध परिज्ञानके लिये भूमिकी परीक्षा करना चाहिये सो कल्पस्थानमें कथन करेंगे ॥ १०५ ॥

रोगिपरीक्षा ।

आतुरस्तुखलुकार्य्यदेशस्तस्यपरीक्षाआयुषःप्रमाणज्ञानहेतोर्वा स्याद्बलदोषप्रमाणज्ञानहेतोर्वा ॥ १०६ ॥

चिकित्साका देश- अर्थात् चिकित्सा कार्यकी भूमि रोगी कथन कियाहै सो उस रोगीकी आयु, बल, दोषोंका प्रमाण आदिकी परीक्षा करना आतुरपरीक्षा है ॥१०६॥

तत्रतावद्बलदोषविशेषप्रमाणापेक्षासहसाहिअतिबलमौषधमपरीक्षकप्रयुक्तमल्पबलमातुरमभिघातयेत्, नह्यतिबलान्याग्नेयसौम्यवायवीयान्यौषधान्यग्निक्षारशस्त्रकर्माणि वा शक्यन्तेऽल्पबलै सोढुमविषह्यातितीक्ष्णवेगत्वाद्धिसद्य प्राणहराणिस्यु ॥ १०७ ॥

चिकित्सा-रोगीके बल तथा दोष विशेषके प्रमाणकी अपेक्षा रखतीहै । जब वैद्य अल्प बलवाले रोगीको बिनाही परीक्षा किये बलवान औषधीका प्रयोग करताहै तो उसके प्राणोंको नष्ट करदेताहै । बलहीन रोगीको अतिबलवान अत्यन्त उष्ण, अत्यन्तशीतल तथा अत्यन्तवातप्रधान औषध प्रयोग करना तथा जो रोगी सहन नहीं करसकता उसको दागना, शस्त्रकर्म करना और क्षारकर्म (तेजाब आदिसे दग्ध करना) आदि तीक्ष्णकर्म और तीक्ष्ण औषध असह्य और तीक्ष्ण होनेसे उसके प्राणोंको शीघ्र नष्ट करदेतीहैं ॥ १०७ ॥

दुर्बलरोगीकी औषध ।

एतच्चैवकारणमवेक्ष्यमाणाहीनबलमातुरमविषादकरैर्मृदुसुकुमारप्रायैरुत्तरोत्तरगुरुभिरविभ्रमैरनात्ययिकैश्चौषधैरन्यौष

घे.विशेषतश्चनारीस्ताह्यनवस्थितमृदुविक्लतविक्लवहृदयाःप्रा-
यःसुकुमारानार्य्योऽवलाःपरमसंस्तभ्याश्च ॥ १०८ ॥

इसलिये इन सब कारणोंकी अपेक्षा करताहुआ वैद्य हीनवल रोगीको कष्ट न देने वाली मृदु तथा सुकुमार औषधों द्वारा साधन करे। यदि प्रवल औषधीकी भी आवश्यकता हो तो उसको क्रमपूर्वक जैसे वह सहन करसके वैसे उपयोग करे। जिससे वह कोई उपद्रव न करसके विशेषतासे स्त्रियोंकी नर्म औषधीद्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। क्योंकि उनका हृदय अस्थिर, नर्म, विवृत्त, विकल (डरपोक) होताहै। प्रायः सुकुमार स्त्रियें निर्वल होती हैं और परकृत सांत्वनाकी अपेक्षा रखती है। ॥ १०८ ॥

अल्पबल औषधकी व्यर्थता।

तथावलवतिवलवद्व्याधिपरिगतेस्वल्पवलमौषधमपरीक्षकप्र-
युक्तमसाधक भवतितस्मादातुरंपरीक्षेतप्रकृतितश्चविकृतित
श्चसारतश्चसहननतश्चप्रमाणतश्चसात्म्यतश्चसत्त्वतश्चाहारश-
क्तितश्चव्यायामशक्तितश्चवयस्तश्चेति ॥ १०९ ॥

इसीप्रकार वलवान् व्याधिमें एवम् वलवान् रोगीको विना परीक्षा किये अल्पवल औषधीका प्रयोग हानिकारक होताहै। इसलिये रोगीकी प्रकृतिसे, विकृतिसे, सारसे, शरीरसे सवप्रकार परीक्षा करे एवम् सात्म्य, सत्त्व, आहारशक्ति, परिश्रम शक्ति और अवस्था इन सवकी परीक्षा करनी चाहिये ॥ १०९ ॥

बलप्रमाण ग्रहणके कारण।

वलप्रमाणविशेषग्रहणहेतो तत्रामीप्रकृत्यादयोभावा । तद्य-
था- शुक्रशोणितप्रकृतिंकालगर्भाशयप्रकृतिमातुराहारविहा
रप्रकृतिंमहा-भूतविकारप्रकृतिञ्चगर्भशरीरमपेक्षते । ए-
ताहियेनयेनदोषेणाधिकतमेनैकेनानेकतमेनवासमनुवध्यन्ते
तेन तेन दोषेणगर्भोऽनुवध्यते । ततःसासादोषप्रकृतिरुच्यते
मनुष्याणांगर्भादिप्रवृत्ता । तस्माद्वातलाःप्रकृत्याकेचित्पित्त-
लाःकेचिच्छ्लेष्मला केचित्संसृष्टा समधातव प्रकृत्याकेचिद्भव-
न्ति । तेषाहिलक्षणानिव्याख्यास्याम ॥ ११० ॥

वलका प्रमाण जाननेके लिये प्रकृति आदि भावोंकी इस प्रकार परीक्षा करे। जैसे शुक्र और शोणितकी प्रकृति कालप्रकृति, गर्भाशयकी प्रकृति, रोगीके आहार विहारकी प्रकृति, पचमहाभूतोंके विकारकी प्रकृतिकी परीक्षा करे। यह सब प्रकृति गर्भशरीरकी अपेक्षा करतीहै। जैसे- पिताके शुक्र और माताके रुधिरमें गर्भाधानके समय जिस जिस दोषकी अधिकता होतीहै गर्भमें भी उन्हीं उन्हीं दोषोंकी अधिकता अर्थात् अनुबंध होताहै। इसीलिये गर्भसे ही लेकर अर्थात् जन्मकालसे ही किसी २ की वातप्रकृति, कीसीकी पित्तप्रकृति और किसीकी कफ प्रकृति, किसीकी मिली हुई प्रकृति एवम् किसी २ की समधातु प्रकृति होतीहै। उन सब वातादि प्रकृतिवाले मनुष्योंके लक्षणोंको कथन करतेहैं ॥ ११० ॥

कफप्रकृति ।

श्लेष्माहि स्निग्धश्लक्ष्णमृदुमधुरसारसान्द्रमंदस्तिमितगुरुशीतविज्जलाच्छः। अस्यस्नेहाच्छ्लेष्मला स्निग्धाङ्गा, श्लक्ष्णत्वाच्छ्लक्ष्णाङ्गा, मृदुत्वाद्दृष्टिसुखसुकुमारावदातशरीरा माधुर्यात्प्रभूतशुक्रव्यवायापत्या, सारत्वात् सारसंहतस्थिरशरीरा, सान्द्रत्वादुपचितपरिपूर्णसर्वगात्रा, मन्दत्वान्मन्दचेष्टाहारविहारा, स्तैमित्यादशीघ्रारम्भक्षोभविकाराः, गुरुत्वात्साराधिष्ठितगतय शैत्यादल्पक्षुत्तृष्णासन्तापस्वेददोषा, विज्जलत्वात्सुश्लिष्टसारबन्धसन्धाना तथाच्छत्वात्प्रसन्नदर्शनाननाः प्रसन्नस्निग्धवर्णस्वराश्चभवन्ति। तएवगुणयोगाच्छ्लेष्मलाबलवन्तोवसुमन्तोविद्यावन्तओजस्विन शान्ताआयुष्मन्तश्चभवन्ति ॥ १११ ॥

कफप्रकृति- कफ-चिकना, श्लक्ष्ण, मधुर, मृदु, सार, सांद्र, मंद, स्तिमित, भारी, शीतल, पिच्छल और स्वच्छ गुणवाला होताहै। प्रकृति मनुष्यका शरीर कफके चिकने गुणसे चिकना होताहै, श्लक्ष्णसे गठनदार होताहै, मृदु होनेसे नम्र होताहै और सुन्दर तथा सुकुमार और खूबसूरत होताहै। सार होनेसे- मदत और स्थिर होताहै सान्द्र होनेसे सर्वांग परिपूर्ण और पुष्ट होताहै। कफके मंद स्वभावसे मंद चेष्टा और आहार विहार मंद होतेहैं। स्तैमित्य होनेसे-उद्योग, क्षोभ और विकार यह सब चिरसे होतेहैं। भारी होनेसे सारवान् और स्थिरगति होताहै। शीत होनेसे-

क्षुधा, तृषा, संताप, स्वेद और दोष यह अल्प होते हैं। पिच्छलगुण होनेसे-शरीरके सब बंधन दृढ होतेहैं एवम् कफका स्वच्छ गुण होनेसे दर्शन, मुख यह प्रसन्न होतेहैं। और स्निग्ध होतेहैं। इस प्रकार इन गुणोंके वर्णकारण कफप्रकृति मनुष्य-बलवान्, विद्यावाला, ओजस्वी, शान्तस्वभाव तथा दीर्घायु होतेहैं ॥ १११ ॥

पित्तप्रकृतिके लक्षण।

पित्तमुष्णंतीक्ष्णद्रवविस्रमम्लकटुकञ्च। तस्यौष्ण्यात्पित्तला भवन्तिउष्णासहा.शुष्कसुकुमारावदातगात्रा. प्रभूतपिप्लुव्यङ्ग-तिलकपिडका क्षुत्पिपासावन्तःक्षिप्रवलीपलितखालित्यदोषा। प्रायोमृद्वल्पकपिलश्मश्रुलोमकेशाःतैक्ष्ण्यात्तीक्ष्णपराक्रमाःती-क्ष्णाग्नय'प्रभूताशनपानाःक्लेशासहिष्णवोदन्दशूका.द्रवत्वाच्छि-थिलमृदुसान्धिबन्धमांसाःप्रभूतसृष्टस्वेदमूत्रपुरीषाश्चविस्र-त्वात्। प्रभूतपूतिवक्ष कक्षास्कन्धास्यशिर.शरीरगन्धा. कट्वम्लत्वादल्पशुक्रव्यवायापत्या'। तएवगुणयोगात्पित्तला-मध्यबलामध्यायुषोमध्यज्ञानविज्ञानवित्तोपकरणवन्तश्चभ-वन्ति ॥ ११२ ॥

पित्तप्रकृति- पित्तका स्वभाव गर्म, तीक्ष्ण, द्रव, विस्र, अम्ल और चरपरे गुण-वाला होताहै। पित्तप्रकृति मनुष्य-पित्तके उष्णगुण होनेसे गर्मी सहन नहीं करस-कता और उनका शरीर कोमल और स्वच्छ होताहै। शरीरमे पिपलू, झाईं, तिल तथा खुजली आदि अधिक होतेहैं। क्षुधा, प्यास अधिक लगतीहै। शरीरमें सलवट पडना, बालोंका सफेद होजाना, सिरमे गंज होजाना यह सब छोटी ही अवस्थामें होजातेहै। डाढी, मूछ, रोम और केश प्रायः नरम, छोटे २ और भूरेरंगके होते, पित्तके तीक्ष्ण गुण होनेसे पित्तप्रकृति मनुष्य तीक्ष्ण 'पराक्रमवाले' तीक्ष्ण अग्निवाले अन्नज-लको शीघ्र पचाजानेवाले या अधिक खानेवाले, क्लेश सहन करनेकी सामर्थ्यवाले तथा दंदशूक अर्थात् खानेके लोभी होतेहैं। पित्तके पतले स्वभाववाले होनेसे उनके संधि और मांस नरम तथा शिथिल होतेहैं और, मल, मूत्र तथा पसीना अधिक आतेहैं पित्तके विस्र अर्थात् दुर्गंधयुक्त होनेसे उनके वक्षस्थल,कांच,मुख,मस्तक और शरीरसे दुर्गंध आतीहै। पित्तके चरपरे गुणसे और अम्लताके कारण अल्पशुक्र और अल्प मैथुन एवम् अल्प संतान होतीहै। इसप्रकार इन गुणोंवाले होनेसे पित्तप्रकृति मनुष्य मध्य आयु तथा मध्यम बलवाले और ज्ञान, विज्ञान तथा धनसामग्रीवाले होवे हैं ॥११२॥

वातप्रकृतिके लक्षण।

वातस्तुरूक्षलघुचलबहुशीघ्रशीतपरुषविशदस्तस्यरौक्ष्याद्वा-
तलारूक्षापचितात्पशरीरा.प्रततरूक्षक्षामभिन्नसक्तजर्जरस्व-
राजागरूकाश्चभवन्तिलघुत्वाच्चलघुचपलगतिचेष्टाहारविहाराः
चलत्वादनवस्थितसन्ध्यक्षिभ्रूहन्वोष्ठजिह्वाशिरःस्कन्धपाणि-
पादा बहुत्वाद्बहुप्रलापकण्डराशिराप्रताना.शीघ्रत्वाच्छीघ्रसमा-
रम्भक्षोभविकारा.शीघ्रोत्रासरागविरागाःश्रुतग्राहिणःअल्पस्मृ-
तयश्चशैत्याच्छीतासहिष्णव प्रततशीतकोद्वेपकस्तम्भा पारु-
ष्यात्परुषकेशश्मश्रुरोमनखदशनवदनपाणिपादाङ्गावैशद्या-
त्स्फुटिताङ्गावयवा.सततसन्धिशब्दगामिनश्चभवन्ति। तएवं
गुणयोगाद्वातला प्रायेणाल्पबलाश्चाल्पायुषश्चाल्पापत्याश्चाल्प-
साधनाश्चाधन्याश्च ॥ ११३ ॥

वातप्रकृति– वायुका स्वभाव रूक्ष, हलका, चल, बहुल, शीघ्र, शीत, परुष और विशद गुणवाला होताहै। वातप्रकृति मनुष्यका शरीर वायुके रूक्षगुण होनेसे रूखा गिरगुआसा और कृश होताहै। स्वर अत्यंत रूक्ष, क्षीण, सक्त भिन्न और जर्जरता होताहै। निद्रा कम आतीहै। वायुका हलकागुण होनेसे उनकी गति, चेष्टा, आहार और व्यवहार लघु तथा चपल होते हैं। वायुके चलगुण होनेसे उनकी संधि, अस्थि, भौंह, ठोडी, होठ, जिह्वा, शिर, कंधे, हाथ, पाव यह अस्थिर अर्थात् ठिकानेपर नहीं होते तथा कभी भी फडकते हैं। वायुके बहुतर गुण होनेसे बहुत बोलनेवाला होताहै तथा कंडरा और नसोंके जालसे संपूर्ण शरीर व्याप्त होताहै। वायुकी शीघ्र गति होनेसे आरम्भ, क्षोभ, विकार यह जिसमें शीघ्र उत्पन्न होतेहैं एवम् त्रास, रोग, वैराग्य यह शीघ्र उत्पन्न होतेहैं। तथा शीघ्र सुनकर शीघ्र ग्रहण करलेना और भूलजाना यह गुण होतेहैं। वायुके शीतगुण होनेसे शीतको सहन न करसकें तथा उनके शरीरमें शीत, कम्प और जड़ता अधिक होतेहैं। वायुके परुष अर्थात् कठोर गुण होनेसे केश, श्मश्रु, रोम, नख, दांत, मुख, हाथ, पाव अंग यह सब कठोर होतेहैं। तथा वायुके विशद गुणसे अंगावयव फटेहुए होतेहैं। एवम् नित्य संधियोंमें शब्द करतीहैं। यह सब गुण होनेसे वातप्रधान मनुष्य अल्पायु अल्पबलवाले और अल्पसाधन वाले तथा निर्धन होतेहैं ॥ ११३ ॥

सकीर्णप्रकृतिं ।

संसर्गात्संसृष्टलक्षणा सर्वगुणसमुदितास्तुसमधातवः इत्येवप्र-
कृतित परीक्षेत ॥ ११४ ॥

दो दोषोंके संसर्गसे दो दोषोंके मिले जुले लक्षण होतेंहै । संपूर्ण दोषोंके समान होनेसे मनुष्य समधातु अर्थात् सम प्रकृतिवाला कहा जाताहै । इसप्रकार पुरुषकी प्रकृतिकी परीक्षा करनी चाहिये ॥ ११४ ॥

विकृतिपरीक्षा ।

विकृतितश्चेति । विकृतिरुच्यते विकारः । तत्रविकारहेतुदोष
दूष्यप्रकृतिदेशकालबलविशेषैर्लिङ्गतश्चपरीक्षेत । नह्यन्तरेण
हेत्वादीनाबलविशेषव्याधिबलविशेषोपलब्धि । यस्यहि-
व्याधेर्दूष्यदोषप्रकृतिदेशकालसाम्यभवातिमहच्चहेतुलिङ्गबलंस
व्याधिर्बलवान्तद्विपर्य्ययाच्चाल्पबल । मध्यबलस्तुदूष्यादीना-
मन्यतमसामान्याद्धेतुलिङ्गमध्यबलत्वाच्चउपलभ्यते ॥ ११५ ॥

अब विकृतिकी परीक्षाको कथन करतेंहै । विकृति विकारको कहतेंहै सो विकारको हेतु, दूष्य, दोष, प्रकृति, देश और काल तथा बल इनसे एवम् लक्षणसे परीक्षा करे । क्योंकि हेतु आदिकाके बल विशेषको विनाजाने व्याधिके बलविशेषकी उपलब्धि नहीं होसकती । इनमे जिस व्याधिके दूष्य, दोष, प्रकृति, देश और काल समान हों अर्थात् एकही स्वभाववाले हों तथा हेतु आदिकोंके लक्षण बलवान् हों तो उस व्याधिको बलवान् व्याधि जानना । इससे विपरीत लक्षण होनेसे अल्पबल जानना । हेतु और दूष्य आदिकोंकी तुल्यता न होनेसे अन्य दोषोंकी किंचित् साम्यता होतेहुए भी हेतुओंके लक्षण, मध्यबल होनेसे व्याधिको मध्यबल जानना चाहिये ॥ ११५ ॥

सारद्वारा परीक्षा ।

सारतश्चेतिसाराण्यष्टौपुरुषाणाबलमानविशेषज्ञानार्थमुपदि-
श्यन्ते । तद्यथा–त्वग्रक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रसत्त्वानि ।
तत्रस्निग्धश्लक्ष्णमृदुप्रसन्नसूक्ष्माल्पगम्भीरसुकुमारलोमास-
प्रभाचत्वक्साराणाम् । सासारतासुखसौभाग्यैश्वर्य्योपभोग-
बुद्धिविद्यारोग्यप्रहर्षणान्यायुष्यत्वञ्चाचष्टे ॥ ११६ ॥

अब सारसे परीक्षा कहतेहैं । मनुष्योंका सार आठ प्रकारका होताहै । पुरुषके बलविशेषको जाननेके लिये आठप्रकारके सारोंकी परीक्षा करे । वह इसप्रकार है । जैसे त्वचा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और सत्व यह आठ प्रकारके सार हैं । इनमें त्वचासारवाले पुरुषकी त्वचा चिकनी, श्लक्ष्ण, मृदु, प्रसन्न, सूक्ष्म, किंचित् गंभीर, सुकुमार, रोम तथा कांतियुक्त होतीहै । इस सारताके होनेसे मनुष्य सुखी, सौभाग्ययुक्त ऐश्वर्य तथा भोग और बुद्धियुक्त होताहै । एवम् विद्वान् निरोग, हर्षयुक्त और दीर्घायु होताहै ॥ ११६ ॥

रक्तसार ।

कर्णाक्षि-मुखजिह्वानासौष्ठपाणिपादतल-नख-ललाटमेहनानिस्निग्धरक्तानिश्रीमन्तिभ्राजिष्णूनिरक्तसाराणाम् । सा-सारतासुखमुदग्रतामेधामनस्वित्वंसौकुमार्य्यमनतिबलमक्लेश-सहिष्णुत्वञ्चाचष्टे ॥ ११७ ॥

रक्तमें सारता होनेसे मनुष्योंके कान, नेत्र, मुख, जीभ, नाक, ओठ, हाथ पांव नख, मस्तक, लिंग ये सब चिकने और लालवर्णके होतेहैं तथा शोभा और कांति युक्त होतेहैं । रक्तमें सारता होनेसे मनुष्य सुख, उन्नति और मेधायुक्त तथा मनस्वी, सुकुमार, साधारण बलवाला और क्लेशकों न सहनेवाला होताहै ॥ ११७ ॥

मांससार ।

शंख-ललाट-कृकाटिकाक्षिगण्डहनुग्रीवास्कन्धोरकक्षवक्ष-पाणिपादसन्धयःस्थिरगुरुशुभमांसोपचितामांससाराणाम् । सासारताक्षमांधृतिमलौल्यवित्तविद्यांसुखमार्जवमारोग्यंबल-मायुश्चदीर्घमाचष्टे ॥ ११८ ॥

मांसमें सारता होनेसे मनुष्योंके कनपटी, मस्तक, गर्दनका पिछलाभाग नेत्र, कपोल, ठोडी, गर्दन, कंधे, छाती, वक्षस्थल, कांख, हाथ, पांव और सन्धि यह तथा मांसयुक्त पुष्ट होतीहैं । और मांससार होनेसे मनुष्य क्षमा, धृति, निर्लोभ, धन, विद्या, सुख, नम्रता, आरोग्यता और बल तथा दीर्घायुवाला होताहै ॥ ११८ ॥

मेदसार ।

वर्णस्वरनेत्रकेशलोमनखदन्तौष्ठमूत्रपुरीषेषुविशेषतःस्नेहोमेद साराणाम् । सासारतावित्तैश्वर्य्यसुखोपभोगप्रदानान्यार्जवं सुकुमारोपचारतामाचष्टे ॥ ११९ ॥

मेदसार मनुष्योंके वर्ण, स्वर, नेत्र, केश, लोम, नख, दत, होठ, मूत्र और मल ये सब विशेष चिकने होतेहै और यह पुरुष धन, ऐश्वर्य, सुख, भोग, दातृभाववाला होताहै तथा सरलतायुक्त, सुकुमार और उपकरणयुक्त होताहै ॥ ११९ ॥

अस्थिसार।

पार्ष्णिगुल्फजान्वरत्निजत्रुचिबुकशिर·पर्वस्थूलाःस्थूलास्थिनखदन्ताश्चास्थिसारास्तेमहोत्साहाःक्रियावन्तश्चक्लेशसहाःसारस्थिरशरीराभवन्तिआयुष्मन्तश्च ॥ १२० ॥

अस्थिसार मनुष्योंके गुल्फ, जानु, अरत्नी (कलाई) अश, चिबुक, मस्तक और सपूर्ण, सधियं तथा अस्थि, नख और दात यह सब स्थूल होतेहै। वह मनुष्य महोत्साही क्रियावान, क्लेश सहन करनेवाला, सारयुक्त तथा दृढ शरीरवाला और दीर्घायु होताहै ॥ १२० ॥

मज्जासार।

तन्वङ्गावलवन्त.स्निग्धवर्णस्वरास्थूलदीर्घवृत्तसन्धयश्चमज्जासारास्तेदीर्घायुषोवलवन्त· ॥ १२१ ॥

मज्जासार मनुष्य पतली देहवाले, वलवान् चिकनेवर्ण और स्वरवाले होतेहै। इनकी सपूर्ण सधियें दृढ, स्थूल, लम्वी और गोल होती हे। यह मनुष्य दीर्घायु और वलवान् होतेहै ॥ १२१ ॥

शुक्रसार।

श्रुतविज्ञानवित्तापत्यसम्मानभाजश्चसौम्याःसौम्यप्रेक्षिणश्च क्षीरपूर्णलोचनाइवप्रहर्षवहुला स्निग्धवृत्तसारसमसंहतशिखरिदशना·प्रसन्नस्निग्धवर्णस्वराभ्राजिष्णवोमहास्फिजश्चशुक्रसाराःतेस्त्रीप्रिया प्रियोपभोगावलवन्त ॥ १२२ ॥

शुक्रसार मनुष्य शास्त्र, ज्ञान, धन, सतानयुक्त और सन्मानके योग्य होताहै। तथा सौम्य, सुन्दरस्वरूप, दूधकीसी कातिवाला, पूर्ण और प्रसन्न नेत्रोंवाला होताहै। चिकने शरीरवाला, धनयुक्त, सुन्दर, सुडौल, शरीर, तथा खूबसूरत दंतपक्तीवाला होताहै। एवम् स्वर, वर्ण, उत्तम, चिकने होताहै तथा यह कातिवान् और वडे नितम्बोंवाला अधिक वीर्ययुक्त स्त्रियोंका प्यारा, कामी तथा वलवान् होताहै॥१२२॥

सत्त्वसार।

सुखैश्वर्य्यारोग्यवित्तसम्मानापत्यभाज स्मृतिमन्तोभक्तिम

अब सारसे परीक्षा कहतेहैं। मनुष्योंका सार आठ प्रकारका होताहै। पुरुषके बलविशेषका जाननेके लिये आठप्रकारके सारोंकी परीक्षा करे। वह इसप्रकार है। जैसे त्वचा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और सत्व यह आठ प्रकारके सार हैं। इनमें त्वचासारवाले पुरुषकी त्वचा चिकनी, श्लक्ष्ण, मृदु, प्रसन्न, सूक्ष्म, किंचित गंभीर, सुकुमार, रोम तथा कांतियुक्त होतीहै। इस सारताके होनेसे मनुष्य सुखी, सौभाग्ययुक्त ऐश्वर्य तथा भोग और बुद्धियुक्त होताहै। एवम् विद्वान्, निरोग, हर्षयुक्त और दीर्घायु होताहै ॥ ११६ ॥

रक्तसार।

कर्णाक्षि-मुखजिह्वानासौष्ठपाणिपादतल-नख-ललाटमेहनानिस्निग्धरक्तानिश्रीमन्तिभ्राजिष्णूनिरक्तसाराणाम्। सा-सारतासुखमुद्धततामेधांमनस्वित्वंसौकुमार्य्यमनतिबलमक्लेशसहिष्णुत्वञ्चाचष्टे ॥ ११७ ॥

रक्तमें सारता होनेसे मनुष्योंके कान, नेत्र, मुख जीभ, नाक, ओठ, हाथ, पाव, नख, मस्तक, लिंग ये सब चिकने और लालवर्णके होतेहैं तथा शोभा और कांति युक्त होतेहैं। रक्तमें सारता होनेसे मनुष्य सुख, उन्नति और मेधायुक्त तथा मनस्वी, सुकुमार, साधारण बलवाला और क्लेशके न सहनेवाला होताहै ॥ ११७ ॥

मांससार।

शंख-ललाट-कृकाटिकाक्षिगण्डहनुग्रीवास्कन्धोरकक्षवक्षःपाणिपादसन्धयःस्थिरगुरुशुभमांसोपचितामांससाराणाम्। सासारताक्षमांधृतिमलौल्यवित्तंविद्यांसुखमार्जवमारोग्यंबलमायुश्चदीर्घमाचष्टे ॥ ११८ ॥

मांसमें सारता होनेसे मनुष्योंके कनपटी, मस्तक, गर्दनका पिछलाभाग नेत्र, कपोल, ठोडी, गर्दन, कंधे, छाती, पसलियां, बगल, हाथ, पांव और सन्धि दृढ तथा मांसयुक्त पुष्ट होतीहैं। और मांससार होनेसे मनुष्य क्षमा, धृति, निर्लोभ, धन, विद्या, सुख, नम्रता, आरोग्यता और बल तथा दीर्घायुवाला होताहै ॥ ११८ ॥

मेदसार।

वर्णस्वरनेत्रकेशलोमनखदन्तौष्ठमूत्रपुरीषेषुविशेषतःस्नेहोमेदसाराणाम्। सासारतावित्तैश्वर्य्यसुखोपभोगप्रदानान्यार्जवसुकुमारोपचारतामाचष्टे ॥ ११९ ॥

मेदसार मनुष्योंके वर्ण, स्वर, नेत्र, केश, लोम, नख, दत, होठ, मूत्र और मल ये सब विशेष चिकने होतेहै और यह पुरुष धन, ऐश्वर्य, सुख, भोग, दातृभाववाला होताहै तथा सरलतायुक्त, सुकुमार और उपकरणयुक्त होताहै ॥ ११९ ॥

अस्थिसार ।

पार्ष्णिगुल्फजान्वरत्निजत्रुचिबुकशिरःपर्वस्थूलाःस्थूलास्थिनखदन्ताश्चास्थिसारास्तेमहोत्साहा क्रियावन्तश्चक्लेशसहाःसारस्थिरशरीराभवन्तिआयुष्मन्तश्च ॥ १२० ॥

अस्थिसार मनुष्योंके गुल्फ, जानु, अरत्नी (कलाई) अश, चिबुक, मस्तक और सपूर्ण, सधियें तथा अस्थि, नख और दात यह सब स्थूल होतेहै । वह मनुष्य महोत्साही क्रियावान्, क्लेश सहन करनेवाला, सारयुक्त तथा दृढ शरीरवाला और दीर्घायु होताहै ॥ १२० ॥

मज्जासार ।

तन्वङ्गावलवन्तःस्निग्धवर्णस्वरास्थूलदीर्घवृत्तसन्धयश्चमज्जासारास्तेदीर्घायुषोवलवन्त' ॥ १२१ ॥

मज्जासार मनुष्य पतली देहवाले, वलवान् चिकनेवर्ण और स्वरवाले होतेंहै । इनकी सपूर्ण सधियें दृढ, स्थूल, लम्बी और गोल होती है । यह मनुष्य दीर्घायु और वलवान् होतेहै ॥ १२१ ॥

शुक्रसार ।

श्रुतविज्ञानवित्तापत्यसम्मानभाजश्चसौम्याःसौम्यप्रेक्षिणश्च क्षीरपूर्णलोचनाइवप्रहर्षवहुला स्निग्धवृत्तसारसमसंहतशिखरिदशना'प्रसन्नस्निग्धवर्णस्वराभ्राजिष्णवोमहास्फिजश्चशुक्रसाराःतेस्त्रीप्रिया प्रियोपभोगावलवन्त ॥ १२२ ॥

शुक्रसार मनुष्य शास्त्र, ज्ञान, धन, सतानयुक्त और सन्मानके योग्य होताहै । तथा सौम्य, सुन्दरस्वरूप, दूधकीसी कातिवाला, पूर्ण और प्रसन्न नेत्रोंवाला होताहै । चिकने शरीरवाला, धनयुक्त, सुन्दर, सुडौल, शरीर, तथा खूबसूरत दंतपक्तीवाला होताहै । एवम् स्वर, वर्ण, उत्तम, चिकने होताहै तथा यह कातिवान् और वडे नितम्बोंवाला अधिक वीर्ययुक्त स्त्रियोंका प्यारा, कामी तथा वलवान् होताहै॥१२२॥

सत्त्वसार ।

सुखैश्वर्य्यारोग्यवित्तसम्मानापत्यभाज स्मृतिमन्तोभक्तिम

न्त. कृतज्ञा प्राज्ञा.शुचयोमहोत्साहादक्षाधीरा समरविक्रान्त-
योधिन.त्यक्तविपादाःसुव्यवस्थितागम्भीरबुद्धिचेतसःकल्या-
णाभिनिवेशिनश्चसत्त्वसारा ॥ १२३ ॥

सत्त्वसार मनुष्य सुख, ऐश्वर्य, आरोग्यता, वित्त, सन्मान और रातानवान् होतेहैं तथा स्मृतिवान, भक्तिमान, कृतज्ञ, बुद्धिमान, शुद्ध, महोत्साही, चतुर और धीर होतेहैं । एवम युद्धके समय पराक्रमके साथ युद्ध करनेवाले, विषादरहित, स्थिर-स्वभाव, गंभीरबुद्धि और गभीरचित्त तथा कल्याणकी इच्छावाले होतेहैं ॥ १२३ ॥

तेषांखलक्षणैरेवगुणाव्याख्याता. ॥ १२४ ॥

इसप्रकार लक्षणों सहित त्वक, सार आदि आठ प्रकारके सारवाले पुरुषोंके लक्षण और गुणोंका वर्णन कर दिया गयाहै ॥ १२४ ॥

सर्वसार ।

तत्रसर्वे सारैरुपेता पुरुषाभवन्त्यतिबलाःपरगौरवयुक्ता क्लेश-
सहा सर्वारम्भेष्वात्मनिजातप्रत्यया कल्याणाभिनिवेशिनः
स्थिरसमाहितशरीरा सुसमाहितगतय.सानुनादस्निग्धगम्भी
रमहास्वराःसुखैश्वर्य्यवित्तोपभोगसम्मानभाजोमन्दजरसोम-
न्दविकारा प्रायस्तुल्यगुणविस्तीर्णापत्याःचिरजीविनश्च ॥ १२५॥

जो मनुष्य इन सपूर्ण सारोंसे युक्त होते हैं वह अत्यन्त बलवान् गौरवयुक्त, क्लेश सहन करनेकी सामर्थ्यवाले, सपूर्ण कामोंको अपने आप करनेकी इच्छावाले, कल्याण करनेकी इच्छावाले, स्थिर और दृढशरीरवाले सुसमाहित गतिवाले, अनुनादसहित स्निग्ध, गंभीर और महास्वरवाले, सुख, ऐश्वर्य, वित्त, उपभोगवाले, सम्मान पात्र और उनको बुढापा शीघ्र नहीं आता, विकार शीघ्र उत्पन्न नहीं होते, उनकी सतान उन्हींके समान गुणवाली, वंशके विस्तार करनेवाली और चिरजीवी होती है ॥ १२५ ॥

अतोविपरीतास्त्वसारा ॥ १२६ ॥

इससे विपरीत गुणवाले मनुष्य असार अर्थात् साररहित होतेहैं ॥ १२६ ॥

मध्यानामध्ये सारविशेषैर्गुणविशेषाव्याख्याता । इतिसारा-
ण्यष्टौपुरुषाणांबलप्रमाणविशेषज्ञानार्थानि ॥ १२७ ॥

मध्यमसार मनुष्यके शरीरमें संपूर्ण लक्षण मध्यम होते हैं । इस प्रकार मनुष्योंके बल, प्रमाण, विशेषके ज्ञानके लिय आठ प्रकारके सारोंका वर्णन किया गया॥१२७॥

कथंनुशरीरमात्रदर्शनादेवभिषक्मुह्येदयमुपचितत्वाद्बलवान-यमल्पवल.कृशत्वान्महाबलवानयंमहाशरीरत्वादयमल्पशरी-रत्वादल्पबलइति । दृश्यन्तेह्यल्पशरीरा'कृशाश्चैकेबलवन्तः-तत्रपिपीलिकाभारहरणवत्सिद्धि.। अतश्चसारत परीक्षेतइत्यु-क्तम् ॥ १२८ ॥

वैद्य रोगीके शरीरमात्रकोही देखकर मोहित न होजाय । जैसे-हृष्टपुष्ट शरीरको देखकर यह बलवान् है । कृश शरीरको देखकर यह दुर्बल है । बडे शरीरको देखकर बडा शरीर होनेसे बलवान् समझ लेना, छोटा शरीर देखकर निर्बल समझ लेना इत्यादि मोहको न प्राप्त होजाय । क्योंकि छोटे शरीरवाले और कृश शरीरवाले भी बहुतसे बलवान् देखनेमे आतेहै । जैसे-पिपीलिका (चींटी विशेष) बहुत छोटी और कृश शरीर होते हुए भी अपनेसे अधिक भारको उठालेती है । इसी प्रकार सारवान् मनुष्य भी जानना । इसलिये सारद्वारा मनुष्यकी परीक्षा करनी चाहिये । यह वर्णन कियागया है ॥ १२८ ॥

समुदायद्वारा परीक्षा ।

सहननतश्चेतिसहननसघात सयोजनमित्येकोऽर्थ ॥ १२९ ॥

वैद्यको चाहिये कि शरीरकी सहननतासे भी परीक्षा करे । सहनन-सघातक और सयोजन इन तीनों शब्दोंका एक ही अर्थ है । यह शब्द शरीरके सगठनके वाचक है ॥ १२९ ॥

तत्रसमसुविभक्तास्थिसुबद्धसन्धिसुनिविष्टमांसशोणितसुसं-हतशरीरमित्युच्यते । तत्रसुसंहतशरीराः पुरुपाबलवन्तोविप-र्य्ययेणाल्पबला.प्रवरावरमध्यत्वात् संहननस्यमध्यबलाभ-वन्ति ॥ १३० ॥

जिसके शरीरमें हड्डियें सब बराबर और सुविभक्त और सधियोंमें भले प्रकार सुबन्ध हो और मास तथा रुधिर शरीरमें सुडौल और उचित रीतिपर पूरित हो उस शरीरको सुसंगत कहते है । यह सुसगत शरीरवाले पुरुप बलवान होते हैं । इससे विपरीत गुणवाले दुर्बल होते हैं । मध्यम लक्षणवाले मध्य बल होते है ॥ १३० ॥

प्रमाणसे परीक्षा ।

प्रमाणतश्चेतिशरीरप्रमाणंपुनर्यथास्वेनागुलिप्रमाणेनोपदेक्ष्य-ते । उत्सेधविस्तारायामैर्यथाक्रमम् ॥ १३१ ॥

न्तः कृतज्ञाःप्राज्ञाःशुचयोमहोत्साहादक्षाधीरा.समरविक्रान्त-योधिनःत्यक्तविषादाःसुव्यवस्थितागम्भीरबुद्धिचेतस'कल्याणाभिनिवेशिनश्चसत्त्वसाराः ॥ १२३ ॥

सत्त्वसार मनुष्य सुख, ऐश्वर्य, आरोग्यता, वित्त, सन्मान और शतानशाला होताहै तथा स्मृतिवान्, भक्तिवान्, कृतज्ञ, बुद्धिमान्, शुद्ध, महोत्साही, चतुर और धीर होतेहैं। एवम् युद्धके समय पराक्रमके साथ युद्ध करनेवाले, विषादरहित, स्थिरस्वभाव, गभीरबुद्धि और गभीरचित्त तथा कल्याणकी इच्छावाले होतेहै ॥ १२३ ॥

तेषास्वलक्षणैरेवगुणाव्याख्याता. ॥ १२४ ॥

इसप्रकार लक्षणों सहित त्वक्, सार आदि आठ प्रकारके सारवाले पुरुषोंके लक्षण और गुणोंका वर्णन कर दिया गयाहै ॥ १२४ ॥

सर्वसार ।

तत्रसर्वैं सारैरुपेता'पुरुषाभवन्त्यतिबलाःपरंगौरवयुक्ता क्लेशसहाःसर्वारंभेष्वात्मनिजातप्रत्ययाः कल्याणाभिनिवेशिनः स्थिरसमाहितशरीरा.सुसमाहितगतय.सानुनादस्निग्धगम्भीरमहास्वरा.सुखैश्वर्य्यवित्तोपभोगसम्मानभाजोमन्दजरसोमन्दविकाराःप्रायस्तुल्यगुणविस्तीर्णापत्या.चिरजीविनश्च ॥ १२५॥

जो मनुष्य इन सपूर्ण सारोंसे युक्त होते है वह अत्यन्त बलवान् गौरवयुक्त, क्लेश सहन करनेकी सामर्थ्यवाले, सपूर्ण कार्मोको अपने आप करनेकी इच्छावाले, कल्याण करनेकी इच्छावाले, स्थिर और दृढशरीरवाले सुसमाहित गतिवाले, अनुनादसहित स्निग्ध, गभीर और महास्वरवाले, सुख, ऐश्वर्य, वित्त, उपभोगवाले, सम्मान पात्र और उनको बुढापा शीघ्र नहीं आता, विकार शीघ्र उत्पन्न नहीं होते, उनकी संतान उन्हींके समान गुणवाली, वशके विस्तार करनेवाली और चिरजीवी होती है ॥ १२५ ॥

अतोविपरीतास्त्वसारा ॥ १२६ ॥

इससे विपरीत गुणोंवाले मनुष्य असार अर्थात् सारहीन होतेहै ॥ १२६ ॥

मध्यानांमध्यै सारविशेषैर्गुणविशेषाव्याख्याता' । इतिसाराण्यष्टौपुरुषाणांबलप्रमाणविशेषज्ञानार्थानि ॥ १२७ ॥

मध्यमसार मनुष्यके शरीरमें सपूर्ण लक्षण मध्यम होते है । इस प्रकार मनुष्योंके बल, प्रमाण, विशेषके ज्ञानके लिये आठ प्रकारके सारोंका वर्णन कियागया॥१२७॥

कथंनुशरीरमात्रदर्शनादेवभिषक्मुह्येदयमुपचितत्वाद्बलवान-यमल्पबलःकृशत्वान्महाबलवानयमहाशरीरत्वादयमल्पशरी-रत्वादल्पबलइति । दृश्यन्तेह्यल्पशरीराःकृशाश्चैकेबलवन्तः-तत्रपिपीलिकाभारहरणवत्सिद्धिः । अतश्चसारतःपरीक्षेतइत्यु-क्तम् ॥ १२८ ॥

वैद्य रोगीके शरीरमात्रकोही देखकर मोहित न होजाय । जैसे—हृष्टपुष्ट शरीरको देखकर यह बलवान् है । कृश शरीरको देखकर यह दुर्बल है । बडे शरीरको देखकर बडा शरीर होनेसे बलवान् समझ लेना, छोटा शरीर देखकर निर्बल समझ लेना इत्यादि मोहको न प्राप्त होजाय । क्योंकि छोटे शरीरवाले और कृश शरीरवाले भी बहुतसे बलवान् देखनेमें आतेहैं । जैसे—पिपीलिका (चींटी विशेष) बहुत छोटी और कृश शरीर होते हुए भी अपनेसे अधिक भारको उठालेती है । इसी प्रकार सारवान् मनुष्य भी जानना । इसलिये सारद्वारा मनुष्यकी परीक्षा करनी चाहिये । यह वर्णन कियागया है ॥ १२८ ॥

समुदायद्वारा परीक्षा ।

संहननतश्चेतिसंहननंसंघातःसंयोजनमित्येकोऽर्थः ॥ १२९ ॥

वैद्यको चाहिये कि शरीरकी संहननतासे भी परीक्षा करे । संहनन-संघातक और संयोजन इन तीनों शब्दोंका एक ही अर्थ है । यह शब्द शरीरके संगठनके वाचक हैं ॥ १२९ ॥

तत्रसमसुविभक्तास्थिसुबद्धसन्धिसुनिविष्टमांसशोणितंसुसं-हतशरीरमित्युच्यते । तत्रसुसंहतशरीराः पुरुषाबलवन्तोविप-र्य्ययेणाल्पबला प्रवरावरमध्यत्वात् संहननस्यमध्यबलाभ-वन्ति ॥ १३० ॥

जिसके शरीरमें हड्डियें सब बराबर और सुविभक्त और संधियोंमें भले प्रकार सुबन्ध हो और मांस तथा रुधिर शरीरमें सुडौल और उचित रीतिपर पूरित हो उस शरीरको सुसंगत कहते है । वह सुसंगत शरीरवाले पुरुष बलवान होते हैं । इससे विपरीत गुणवाले दुर्बल होते हैं । मध्यम लक्षणवाले मध्य बल होते हैं ॥ १३० ॥

प्रमाणसे परीक्षा ।

प्रमाणतश्चेतिशरीरप्रमाणंपुनर्यथास्वेनांगुलिप्रमाणेनोपदेक्ष्य ते । उत्सेधविस्तारायामैर्यथाक्रमम् ॥ १३१ ॥

शरीरके प्रमाणके अनुसार भी परीक्षा करनी चाहिये । प्रत्येक मनुष्यका प्रमाण उसकी अगुलियों द्वारा प्रमाण कियाजाता है । अर्थात् प्रत्येक मनुष्यकी लवाई, चौडाई और ऊचाईको उसकी अंगुलियों द्वारा प्रमाणित जानना । उसको यथाक्रम वर्णन करते है ॥ १३१ ॥

तत्रपादौचत्वारिषट्चतुर्दशचाङ्गुलानि, जघेत्वष्टादशागुले-षोडशांगुलिपरिक्षेपे, जानुनीचतुरंगुलेषोडशागुलिपरिक्षेपे, त्रिंशदगुलपरिक्षेपावष्टादशांगुलावूरू, वृषणौषडंगुलदीर्घा-वष्टागुलपरिणाहौ शेफ षडगुलदीर्घंपश्चागुलपरिणाह, द्वाद-शांगुलपरिणाहोभगः,षोडशागुलविस्ताराकटी,दशागुलवस्ति-शिरः, दशागुलविस्तारद्वादशागुलमुदर, दशागुलविस्तीर्णेद्वा-दशांगुलायामेपार्श्वेद्वादशागुलविस्तारंस्तनान्तरद्व्यगुलस्तनप-र्य्यन्त, चतुर्विंशत्यगुलविशालंद्वादशागुलोत्सेधमुर द्व्यगुलं-हृदयम्, अष्टागुलौस्कन्धौ, षडगुलावसौ, षोडशागुलौबाहू, पञ्चदशांगुलौपाणी, हस्तौद्वादशागुलौ, कक्षावष्टागुलौ, त्रिकं द्वादशागुलोत्सेधम्, अष्टादशांगुलोत्सेधंपृष्ठ, चतुरगुलोत्सेधा द्वाविंशत्यगुलपरिणाहाशिरोधरा, द्वादशांगुलोत्सेधचतुर्विंशत्यं-गुलपरिणाहमाननं, पञ्चांगुलमास्य, चिबुकौष्ठकर्णाक्षिमध्यना-सिकाललाटानि, चतुरगुलानि, षोडशांगुलोत्सेधद्वात्रिंश-दगुलपरिणाहंशिरइतिपृथक्त्वेनाङ्गावयवानांमानमुक्तकेवल पुन शरीरमगुलिपर्वाणिचतुरशीतिस्तदायामविस्तारसमसमु-च्यते ॥ १३२ ॥

पैरांकी-ऊचाई चार अंगुल, चौडाई छ अगुल और लवाई चौदह अगुल होतीहै घुटनेसे नीचे-टागो (पिंडलियों) की लवाई-अठारह अगुल और घेर सोलह अगुल होता है । जानुकी लवाई-चार अगुल और वेष्टन सोलह अगुल होता है । जानुसे ऊपर उरूस्थल अर्थात् मोटी जाघकी लवाई तीस अगुल, और घेर अठारह अंगुल होताहै । वृषण अर्थात् फोतेके नसोंकी लवाई छः अगुल और वेष्टन आठ अगुलका होताहै । शिश्न इन्द्रियकी लवाई छः अंगुल और वेष्टन पाच अंगुलका होताहै ।

भगकी गहराई-वारह अगुल होतीहै। कमर सोलह अगुल चौडी होतीहै । मूत्रबस्ती दश अगुलके विस्तारवाली होतीहै उदरका वारह अगुल विस्तार है। दोनों पार्श्वोंका दशदश अगुल विस्तार, और वारह वारहअगुल लवाई है दोनों स्तनोंका वारह अगुलका अतर और दोदो अगुलकी सीमा होती है। छाती-- चौवीस अगुल चौडी और वारह अगुल लम्वी होतीहै। हृदय- दो अगुल कधे-आठ २ अंगुल। दोनों अश- छः अगुल होतेहैं। सोलह अगुल वाहोंका ऊपरका भाग । पद्रह अंगुल कोहनीसे नीचेका भाग। दश अगुल हाथ और आठ अगुल काख होतीहै । त्रिकस्थान-वारह अगुल ऊचा । पृष्ठस्थान-आठ अगुल ऊचा । गर्दन चार अगुल ऊची और वारह अगुल घेरमे होती है। वारह अगुल ऊचा और चौवीस अगुलमें चेहरा होताहै । पाच अगुलका मुख। चिबुक ओष्ठ, दोनों कान दोनों नेत्र, नाक और मस्तक चार २ अगुल विस्तारमे होतेहैं। शिरका लवाव सोलह अगुल और घेर बत्तीस अगुल होताहै । इस प्रकार शरीरके पृथक २ अवयवोंका परिमाण वर्णन किया गयाहै। सपूर्ण शरीरकी उचाई चौरासी अगुल होतीहै । शरीरकी उचाई और घेर प्रायः वरावर होताहै। यह लक्षण समान्यतासे कथन किया गयाहै ॥ १३२ ॥

तत्रायुर्वलमोजःसुखमैश्वर्य्यंवित्तमिष्टाश्चापरेभावाभवन्त्यायत्ता. प्रमाणवतिशरीरेविपर्य्ययस्तुहीनेऽधिकेवा ॥ १३३ ॥

जो शरीर प्रमाणयुक्त यथार्थ होताहै उस शरीरवाले मनुष्यकी, आयु, वल, ओज, सुख, ऐश्वर्य, वित्त और अन्य भी सपूर्ण भाव स्वाधीन होते है। हीन वा अधिक होनेसे विपरीत होते है ॥ १३३ ॥

सात्म्यद्वारा परीक्षा।

सात्म्यतश्चेति । सात्म्यंनामतद्यत्सातत्येनोपयुज्यमानमुपशेतेतत्रयेघृतक्षीरतैलमासरससात्म्याः सर्वरससात्म्याश्चतेवलवन्त.क्लेशसहाश्चिरजीविनश्चभवन्ति । रूक्षनित्या' पुनरेकरससात्म्याश्चयेते प्रायेणाल्पवलाश्चाक्लेशसहाअल्पायुषोऽल्पसाधनाश्चभवन्ति ॥ १३४ ॥

मनुष्योंके सात्म्यकी भी परीक्षा करनी चाहिये । जो पदार्थ निरन्तर सेवन किया जानेपरभी शरीरके अनुकूल अर्थात् हितकारी प्रतीति हो उसको सात्म्य कहते है। जिन मनुष्योंको- घृत, दूध, तैल, मासरस तथा मधुर आदि सपूर्ण रस सात्म्य होते हैं वह मनुष्य वलवान् और क्लेश सहन करनेमें समर्थ तथा दीर्घजीवी होतेहैं । जो

मनुष्य निरन्तर रुक्ष पदार्थोंको सेवन करते है तथा जिनको एक रस ही सात्म्य है वह मनुष्य प्राय' अल्पवलवाले क्लेश सहन करनेमें असमर्थ, अल्पायु और अल्पसाधनवाले होते हैं ॥ १३४ ॥

व्यामिश्रसात्म्यास्तुयेतेमध्यवलाःसात्म्यनिमित्तत' ॥ १३५ ॥

जिन मनुष्योंको मिले जुले रस सात्म्य हों और पृथक् २ सात्म्य न हों अथवा उपरोक्त दोनों प्रकारके मनुष्यके कुछ २ लक्षण मिलते हों। वह मनुष्य मध्यवल सात्म्यके निमित्तसे मध्यमबलवाले होतेहै ॥ १३५ ॥

सत्त्वसे परीक्षा।

सत्त्वतश्चेति। सत्त्वमुच्यतेमनस्तच्छरीरस्यतन्त्रकमात्मयोगात्त्रिविधंवलभेदेनप्रवरंमध्यमवरमिति। अतश्चप्रवरमध्यावरसत्त्वाश्चपुरुषाभवन्ति। तत्रप्रवरसत्त्वाः सत्त्वसाराःसारेपुउपदिष्टाः स्वल्पशरीराह्यपि ते निजागन्तुनिमित्तासुमहतीष्वपि पीडास्वव्यथाद्दश्यन्तेसत्त्वगुणवैशेष्यात् ॥ १३६ ॥

मनुष्यके सत्वकी भी परीक्षा करनी चाहिये। सत्वनाम मनका है। वह मन आत्माके संयोगसे शरीरका तन्त्रक है। अथात् शरीरको पालन पोषण आदि करनेवाला होताहै। वह बलके भेदसे उत्तम मध्यम और कनिष्ठ इन तीन प्रकारका होताहै इसीलिये मनुष्य उत्तम सत्त्व, मध्यमसत्त्व और अधमसत्त्व होतेहै उनमें उत्तमसत्त्व पुरुष सत्वसारोंमें कथन कर चुकेहै। वह उत्तमसारमनुष्य अल्प शरीर होनेपरभी निज और आगन्तुक महाकष्ट उपस्थित होनेपर भी व्यग्रचित्त नहीं होते क्योंकि इनमें सत्त्वगुणकी विशेषता होती है ॥ १३६ ॥

मध्यसत्त्वादिपुरुष।

मध्यसत्त्वास्तुपरानात्मन्युपनिधायसंस्तम्भयन्त्यात्मनात्मान परैर्वापिसंस्तम्भ्यन्तेहीनसत्त्वास्तुनात्मनानचपरैःसत्त्ववलंशक्यन्ते उपस्तम्भयितुंमहाशरीराह्यपिते स्वल्पानामपिवेदनानामसहादृश्यन्ते। सन्निहितभयशोकलोभमोहमाना रौद्रभैरवद्विष्टवीभत्सविकृतसंकथास्वपिचपशुपुरुषमांसशोणितानिचावेक्ष्य विषादवैवर्ण्यमूर्च्छोन्मादभ्रमप्रपतनानामन्यतममाप्नुवन्त्यथवामरणमिति ॥ १३७॥

मध्यमसत्त्ववाले मनुष्य– अन्य मनुष्योंको कष्ट सहते देखकर स्वय भी उनके सहारेसे अथवा दूसरोंकी सहायतासे या दूसरोंके धैर्य देने आदिपर किसी प्रकार कष्ट सहन कर सकतेहै । हीनसत्त्व पुरुष–न तो स्वय कष्ट सहन करसकते है और न दूसरेकी सहायता देनेपर भी धैर्य धारण करते है । यह मनुष्य वडे भारी शरीरवाले अल्पकष्टको सहन नहीं कर सकते । और सदैव इनके चित्तमें भय, शोक, लोभ, मोह स्थित रहते है । एवम् लडाई अथवा डरावनी वात एव भयानक वात और द्वेषकारक बातोंको सुनकर तथा पशु, पुरुषादिकोंके मास रक्त आदि देखकर ही विषाद, विवर्णता, मूर्च्छता, उन्माद, गिरजाना अथवा अन्य किसी प्रकारका विकार होना या मृत्युतकको प्राप्त होना ऐसे उपद्रव होते है ॥ १३७ ॥

भोजनशक्तिद्वारा परीक्षा ।

आहारशक्तितश्चेति । आहारशक्तिरभ्यवहरणशक्त्याजरणश-क्त्याचपरीक्ष्यवलायुषीह्याहारायत्ते ॥ १३८ ॥

मनुष्यकी आहारशक्ति भी परीक्षा करनी चाहिये । भोजन करनेकी शक्तिसे, आहारके परिमाणसे, आहारकी परिपाक शक्तिसे आहार शक्तिकी परीक्षा की जाती है । मनुष्योंका वल और आयु आहारके ही आधीन है ॥ १३८ ॥

व्यायामशक्तिद्वारा परीक्षा ।

व्यायामशक्तितश्चेति । व्यायामशक्तिमपिकर्मशक्त्यापरीक्ष्या कर्मशक्त्याह्यनुमीयतेवल त्रिविधम् ॥ १३९ ॥

व्यायाम शक्तिद्वारा भी परीक्षा करनी चाहिये । कर्मशक्तिसे व्यायाम शक्तिकी परीक्षा हो सकती है । कर्मशक्तिसे ही मनुष्यके उत्तम मध्यम और हीनवलकी परीक्षा कीजासकती है ॥ १३९ ॥

अवस्थासे परीक्षा ।

वयस्तश्चेति । कालप्रमाणविशेषापेक्षिणीहिशरीरावस्थाव-योऽभिधीयते । तद्वयोयथावस्थानभेदेनत्रिविधंवालमध्यंजी-र्णमिति ॥ १४० ॥

वय अर्थात् अवस्था विशेषकी भी परीक्षा करनी चाहिये । कालप्रमाणकी अपेक्षा करनेवाली जो शरीरकी अवस्था है उसको वय कहते है । वह वय स्थूल भेदसे वाल, मध्य और जीर्ण अर्थात् वाल्यावस्था, तरुणावस्था और वृद्धावस्था इन तीन भेदों-वाली होती है ॥ १४० ॥

बाल आदि अवस्था ।

तत्रबालमपरिपक्कधातुगुणमजातव्यञ्जनसुकुमारमक्लेशसहम-सम्पूर्णबल श्लेष्मधातुप्रायमाषोडशवर्षम् । विवर्द्धमानधातु-गुणंपुनःप्रायेणानवस्थितसत्त्वमात्रिंशद्वर्षमुपदिष्टम् । मध्यंपुनः समत्वागतबलवीर्य्यपौरुषपराक्रमग्रहणधारणस्मरणवचनवि-ज्ञानसर्वधातुगुणं बलस्थितमवस्थितसत्त्वमविशीर्य्यमाणधा-तुगुणं पित्तधातुप्रायमाषष्टिवर्षमुद्दिष्टम् । अतःपरं परिहीयमा-णधात्विन्द्रियबलपौरुषपराक्रमग्रहणधारणस्मरणवचनविज्ञा-नंभ्रश्यमानधातुगुणंवातधातुप्रायंक्रमेणजीर्णमुच्यते आव-र्षशतम् ॥ १४१ ॥

उनमें बाल्यावस्थामें सब धातु विना पकी होतीहैं और मोछ,दाढी, आदि धातुओंके गुण प्रगट नहीं होते । शरीर सुकुमार, कष्ट सहनेके अयोग्य असपूर्ण बल और,कफ प्रधान होताहै । सोलह वर्ष पर्यन्त बाल्यावस्था होतीहै । सोलह वर्षसे तीसवर्ष पर्यन्त सपूर्ण धातुओंके बल और गुण बढते हैं और मन प्रायः अनवस्थित होताहै (इस अवस्थाको युवावस्था तथा किसीके मतमें बाल, वृद्धि सपूर्णता और हानि यह चार अवस्थाहैं) । तीसवर्षके उपरान्त साठवर्षकी अवस्थातक मध्यअवस्था होतीहै । इस अवस्थामें बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम, ग्रहणशक्ति, धारणा, स्मरणशक्ति, वचन-शक्ति और विज्ञान परिपूर्ण होतेहैं तथा सपूर्ण धातुओंके गुण भी पूर्णतायुक्त होतेहैं । यह अवस्था पित्तप्रधान होतीहै । इसके उपरान्त मनुष्यकी धातु, इन्द्रिय बल, पुरुषार्थ, पराक्रम, ग्रहणशक्ति, स्मरणशक्ति, वचनशक्ति और विज्ञानशक्ति घटने लगजातीहै । सपूर्ण धातुयें अपने गुणोंसे भ्रश्यमान होजाती है । इस अवस्थाको वृद्धावस्था कहतेहैं । इसमें वायुकी प्रधानता होतीहै । साठसे सौवर्षतक वृद्धावस्था कहीजातीहै ॥ १४१ ॥

वयःक्रमसे औषधप्रयोग ।

वर्षशतंखल्वायुषःप्रमाणमस्मिन्काले । सन्तिपुनरधिकोनवर्ष-शतजीविनोमनुष्याः । तेषाविकृतिवर्ज्यैःप्रकृत्यादिबलविशेषै-रायुषोलक्षणतश्चप्रमाणमुपलभ्यवयसस्त्रित्वंविभजेत । एवंप्र-कृत्यादीनाविकृतिवर्ज्यानाभावाना प्रवरमध्यावरविभागेनब-

लविशेषंविभजेत् । विकृतिबलत्रैविध्येनतु दोषबलंत्रिविधमनुमीयते । ततोभैषज्यस्यतीक्ष्णमृदुमध्यविभागेनत्रित्वंविभज्ययथादोषभैषज्यमवचारयेदिति ॥ १४२ ॥

आयुका प्रमाण इस कालमें प्रायः सौवर्षका होताहै । किन्तु बहुतसे मनुष्य सत्वादि गुणविशेषसे और पुण्यशाली होनेसे सौवर्षसे अधिक भी जीतेहैं। परन्तु आयुका प्रमाण सौवर्षसे अधिक नहीं है । मनुष्यके जीवनकी विकृतिको त्यागकर प्रकृति आदिके बल विशेषसे और आयुके लक्षणोंसे आयुके प्रमाणको जानकर अवस्थाके तीन भेद करनेचाहिये । इसीप्रकार विकृतिको त्यागकर प्रकृत्यादिक भावोंका उत्तम,मध्यम और अधम विभाग करनेसे तीन प्रकारका बलविशेष जानना चाहिये । विकृतिके तीन प्रकारके बलसे दोषोंके बलका तीनप्रकारका अनुमान कियाजाताहै । इसीप्रकार इन सबका विचार करनेके अनन्तर औषधीको तीक्ष्ण, मध्यम और मृदु विभागकर बलवान् दोषमें तीक्ष्ण औषधी, मध्यम दोषमें मध्य औषधी और थोडे दोषमें मृदु औषधीका उपयोग करनाचाहिये ॥ १४२ ॥

आयुषःप्रमाणज्ञानहेतोःपुनरिन्द्रियेषुजातिसूत्रीयेचलक्षणान्युपदेक्ष्यन्ते ॥ १४३ ॥

आयुका प्रमाण जाननेके लिये, इन्द्रिय स्थानके जातिसूत्रीयाध्यायम लक्षणोंको कथन करेंगे ॥ १४३ ॥

कालभेद।

कालःपुनःसंवत्सरश्चातुरावस्थाच । तत्रसंवत्सरोद्विधात्रिधा षोढाद्वादशधाभूयश्चातः प्रविभज्यते तत्तत्कार्य्यमभिसमीक्ष्य ॥ १४४ ॥

काल, सम्वत्सर और आतुरकी अवस्थाको कहतेहैं । इनमें सम्वत्सर काल अयन विभागसे दो प्रकारका और सर्दी, गर्मी, वर्षा इन भेदोंसे तीन प्रकारका ऋतुभेदसे छः प्रकारका महीनोंके विभागसे बारह भागोंमें विभक्त होताहै । इसके उपरान्त कार्य-विभागसे और भी विभागोंमें विभक्त होता जाताहै ॥ १४४ ॥

षड्ऋतुविभाग ।

तत्रखलुतावत्षोढाप्रविभज्यकार्य्यमुपदेक्ष्यते । हेमन्तोग्रीष्मोवर्षाश्चेतिशीतोष्णवर्षलक्षणास्त्रयःऋतवोभवन्ति । तेषामन्तरेष्वितरेसाधारणलक्षणास्त्रयःऋतवःप्रावृट्शरद्वसन्ताइति ।

प्रावृट्इतिप्रथमःप्रवृष्टेःकालस्तस्यानुवन्धोवर्षाएवमेतेसशोध-
नमधिकृत्यषड्विभज्यन्तेऋतवः ॥ १४५ ॥

उस सम्वत्सर कालके छः विभागकर कार्योंको कथन करतेहैं । उन छः ऋतुओंमे हेमन्त, ग्रीष्म और वर्षा यह तीन सर्दी, गर्मी और वर्षात इन तीन लक्षणोंवाली तीन ऋतुये होती हैं । इनके अन्तरमें प्रावृट्, शरद् और वसन्त यह तीन ऋतुयें साधारण लक्षणोंवाली होती है । प्रावृट् ऋतु ग्रीष्म और वर्षाऋतुके साधारण लक्षणवाली होती है । शरदऋतु वर्षा और सर्दीके साधारण लक्षणवाली होतीहै । वसन्तऋतु– सर्दी और गर्मीके लक्षणवाली होतीहै । सशोधन क्रिया करनेके लिये उन छः ऋतुओंके विधानका कथन कियाहै ॥ १४५ ॥

तत्रसाधारणलक्षणेष्वृतुषुवमनादीनाप्रवृत्तिर्विधीयतेनिवृत्ति-
रितरेषु । साधारणलक्षणाहिमन्दशीतोष्णवर्षत्वात्सुखतमा-
श्चभवन्त्यविकल्पकाश्चशरीरौषधानामितरेपुनरत्यर्थशीतोष्ण-
वर्षत्वाद्दुःखतमाश्चभवन्तिविकल्पाश्चशरीरौषधानाम् ॥ १४६ ॥

इन छः ऋतुओंमें साधारण लक्षणोंवाली तीन ऋतुओंमें वमनादि सशोधन क्रियाँ करनी चाहिये । साधारणसे विपरीत तीन ऋतुओंमें वमनादि नहीं करने चाहिये साधारण लक्षणावाली ऋतुयें– अल्प शीतगुणवाली, अल्प गर्मीवाली और अल्पवर्षागुणवाली होनेसे सुखदायी होती हे । इन प्रावृट् और शरद तथा वसन्त ऋतुमें औषधियें सब कार्य सिद्ध करनेवाली होती है तथा शरीर भी शोधनके योग्य होते हैं । इनसे विपरीत ऋतुओंमें अधिक सर्दी, अधिक गर्मी और अधिक वर्षा होनेसे ये ऋतुयें दुःखदायक होती है। उस समय शरीरसशोधन करनेके योग्य नहीं होते और औषधियें अपना यथोचित कार्य नहीं कर सकतीं ॥ १४६ ॥

शीतमे संशोधननिषेध ।

तत्रहेमन्तेह्यतिमात्रशीतोपहतत्वाच्छरीरमसुखोपपन्नंभवति ।
अतिशीतवाताध्मातमतिदारुणीभूतमवनद्धदोषम् । भेषज
पुनः सशोधनार्थमुष्णस्वभावमन्तेशीतोपहतत्वान्मन्दवीर्य्य-
त्वमापद्यते । तस्मात्तयोः संयोगेसशोधनमयोगायोपप-
द्यतेशरीरस्यचवातोपद्रवाय ॥ १४७ ॥

हेमन्त ऋतुमें–शीतके अत्यन्त पडनेसे शरीरको दुःख प्राप्त होता है । शीतल पवनके लगनेसे शरीर अत्यन्त रूक्ष होजाता है रोम मार्गके सकुचित होजानेसे पसीना

नहीं आता और दोष अत्यन्त वधा हुआ होता है। उस समय उष्ण स्वभाववाली संशोधन औषधी दी जानेपर शीतसे उपहत होकर मदवीर्य होजातीहै। इसलिये उस समय शरीर और औषधीका सयोग होनेसे संशोधनका अयोग होजाताहै और शरीरमें वायुके उपद्रव होनेलगजातेहैं ॥ १४७ ॥

ग्रीष्ममे निषेध।

ग्रीष्मेपुनर्भृशोष्णोपहतत्वाच्छरीरमसुखोपपन्नभवति । उष्ण-वातातपाध्मातमतिशिथिलमत्यन्तप्रविलीनदोषभेषजपुन.स शोधनार्थमुष्णस्वभावमेवात्युष्णानुगमनात्तीक्ष्णतरत्वमाप-द्यते । तस्मात्तयो.सयोगेसशोधनमतियोगायोपपद्यतेशरीरम पिपिपासोपद्रवाय ॥ १४८ ॥

ग्रीष्मऋतुमें अत्यन्त गर्मीके पडनेसे शरीर दु.खित होजाताहै । गर्म वायुके लगनेसे शरीर शिथिल होजाता है। दोष सब विलीन होजातेहैं। उस समय संशोधन-कर्त्ता औषधी उष्णवीर्य होनेसे गर्मीकी सहायता पाकर और भी अधिक तीक्ष्ण होजातीहै। उस समय दोषोके अत्यन्त नर्म होनेसे और औषधका तीक्ष्ण स्वभाव होजानेसे तथा शरीरके मृदु होनेसे संशोधनका अतियोग होजाताहै। शरीरमें भी पिपासा आदि उपद्रव उत्पन्न होजातेहैं ॥ १४८ ॥

वर्षामे निषेध।

वर्षासुतुमेघजालावततेगूढार्कचन्द्रतारेधाराकुलेवियतिभूमौ पङ्कजलपटलसंवृतायामत्यर्थोपक्लिन्नशरीरेषुभूतेषुविहतस्वभा वेषुचकेवलेष्वौषधग्रामेषुतोयदानुगतमारुतसंसर्गोपहतेषुगुरु-प्रवृत्तीनिवमनादीनिभवन्ति । गुरुसमुत्थानानिशरीराणि । तस्माद्वमनादीनानिवृत्तिर्विधीयतेवर्षान्तेषुऋतुपुनचेदात्ययि-केकर्म ॥ १४९ ॥

वर्षाऋतुमें आकाश मेघजालसे सदैव आच्छादित रहताहै, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण मेघोंसे ढके रहतेहै। पृथ्वी कीचड और जलसे संवृत होती है, उस समय मनुष्योंके शरीर अत्यन्त आर्द्रता युक्त होते है तथा औषधियोंके स्वभाव विहत होजातेहैं तथा वर्षाके जल और वायुसे उपहत स्वभाव होजाती है उससमय वमना-दिक कर्मके करनेसे उनकी अधिक प्रवृत्ति होती है। इस लिये वर्षाऋतुमें किसी अत्यावश्यकताके विना वमन आदि कर्म नहीं करने चाहिये ॥ १४९ ॥

आत्ययिकेपुन कर्म्मणिकाममृतुविकल्पयकृत्रिमगुणोपधानेन यथर्त्तुगुणविपरीतेनभैषज्यंसयोगसंस्कारप्रमाणविकल्पेनोपपाद्यप्रमाणवीर्य्यसमकृत्वाततःप्रयोजयेदुत्तमेनयत्नेनावहित १५०

यदि ऐसी ऋतुओंम शोधन करानेकी किसीप्रकार आवश्यकता पडजाय तो युक्तिपूर्वक उस ऋतुके गुणोंके विपरीत भाव उत्पन्नकर संयोग, सस्कार और प्रमाण विकल्पसे औषध कल्पनाकर सब भावोंको समान बना सावधानीसे औषध प्रयोग करनाचाहिये ॥ १५० ॥

कार्यकालनिर्णय ।

आतुरावस्थास्वपितुकार्य्याकार्य्यप्रतिकालाकालसंज्ञातद्यथा अस्यामवस्थायामस्यभेषजस्यकालोऽकालःपुनरस्येति ॥१५१॥

रोगीकी अवस्थामेंभी कार्य, अकार्य, काल और अकालकी सज्ञा जाननी चाहिये जैसे इस अवस्थामें इस औषधका समय है अथवा नहीं है ॥ १५१ ॥

एतदपिभवत्यवस्थाविशेषेणतस्मादातुरावस्थास्वपिहिकालाकालसंज्ञा।तस्यपरीक्षामुहुर्मुहुरातुरस्यसर्वावस्थाविशेषावेक्षणं यथावत्भेषजप्रयोगार्थम्। नह्यतिपतितकालमप्राप्तकालवाभेषजमुपयुज्यमानयौगिकभवति। कालोहिभैषज्यप्रयोगपर्य्याप्तिमभिनिर्वर्त्तयति ॥ १५२ ॥

इसप्रकार विचारपूर्वक कार्य करना अथवा न करना चाहिये इस प्रकारकी परीक्षा रोगीके अवस्था विशेषसे होतीहै । इसलिये रोगीकी अवस्थामें भी समय और असमयकी सज्ञा होतीहै उसकी परीक्षा वारम्वार रोगीकी सपूर्ण अवस्थाविशेषकी अपेक्षा करतीहै । जैसे औषधप्रयोगके लिये भी अवस्थाविशेष विचारनेकी आवश्यकता पडतीहै । जिस समय औषधका काल न हो अर्थात् औषध देनेका समय व्यतीत होचुकाहो और उस औषधीके लिये दूसरा समय कुसमय हो या औषध देनेका समय न आया हो तो औषधका प्रयोग नहीं करना चाहिये । ठीक समयपर औषधका प्रयोग करनाही उत्तम योग कहाजाताहै । काल ही औषधके योगकी परिपूर्णता करताहै ॥ १५२ ॥

प्रवृत्ति ।

प्रवृत्तिस्तुप्रतिकर्म्मसमारंभः। तस्यलक्षणभिषगातुरौषधपरिचारकाणाक्रियासमायोगः ॥ १५३ ॥

प्रवृत्ति प्रत्येक कर्मके समारंभको कहतेह । वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक इनकी क्रियाका समायोग होना प्रवृत्तिका लक्षण है ॥ १५३ ॥

उपाय।

उपाय. पुनर्भिषगादीनांसौष्ठवमभिसन्धानञ्चसम्यक् । तस्यलक्षणंभिषगादीनांयथोक्तगुणसंपद्देशकालप्रमाणसात्म्यक्रियादिभिश्चसिद्धिकारणैः सम्यगुपपादितस्यौषधस्यावचारणमिति । एवमेतद्दशपरीक्ष्यविशेषाः पृथक्पृथक्परीक्षितव्याभवन्ति । परीक्षायास्तुखलुप्रयोजनंप्रतिपत्तिज्ञानम् ॥ १५४ ॥

वैद्यादिकोंका चिकित्साके उद्देश्यमें अनुकूल रीतिपर उपस्थित होना उपाय कहाजाताहै। वैद्य आदिक चिकित्साके चारों पादोंका यथोचित गुणसम्पन्न होकर देश, काल, प्रमाण, सात्म्य और क्रिया सिद्धि आदि कारणोंसे उत्तम रीतिपर औषधका आचरण करना उपायका लक्षण होताहै । इन दश प्रकारके लक्षणोंकी परीक्षा करनेका प्रयोजन प्रतिपत्तिज्ञान है ॥ १५४ ॥

प्रतिपत्ति।

प्रतिपत्तिर्नामसयस्तुविकारःयथाप्रतिपत्तव्यस्तस्यतथानुष्ठानज्ञानम् ॥ १५५ ॥

जो विकार जिस प्रकार जिस स्थानमें प्राप्त हो उसका उसी प्रकार ठीक समझकर यत्न करनेके लिये प्रवृत्त होना प्रतिपत्ति कहाजाताहै ॥ १५५ ॥

यत्रतुखलुवमनादीनांप्रवृत्तिर्यत्रचनिवृत्तिस्तद्यथासत. सिद्धिपूत्तरकालमुपदेक्ष्यते । प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणसंयोगेतुखलुगुरुलाघवंसंप्रधार्य्यसम्यगध्यवस्येदन्यतरनिष्ठायाम् । सन्तिहि व्याधयःशास्त्रेपूत्सर्गापवादैरुपक्रमंप्रतिनिर्दिष्टाः । तस्माद्गुरुलाघवसम्प्रधार्यसम्यगध्यवस्येदित्युक्तम् ॥ १५६ ॥

जिस जिस स्थानमें वमन विरेचनका प्रयोग करना चाहिये और जिस स्थानमें नहीं करनाचाहिये उन सबका वर्णन सिद्धिस्थानमें कथन करेंगे । वमन विरेचनादिकोंकी प्रवृत्ति (प्रयोग करना) और निवृत्ति (प्रयोग न करने) के लक्षणके विषयमें गुरु और लाघवको विचारकर जिस जगह जिसकी आवश्यकता हो अर्थात् जिस स्थानमें कराने हों और जिसमें न कराने हों या उनमेंसे केवल वमन

ही या केवल विरेचन ही कराना हो और उनके करानेमें लाभ है या हानि है उनको भले प्रकार विचार लेना चाहिये। क्योंकि शास्त्रमे व्याधियोंकी सामान्य चिकित्सा और विशेष चिकित्सा इन दोनों प्रकारका वर्णन कियागया है । इसलिये उनके गुरु और लाघवको विचारकर और भले प्रकार निश्चय करके तब उनमें प्रवृत्त होना चाहिये ॥ १५६ ॥

वमनद्रव्य ।

यानितुखलुवमनादिषुभेषजद्रव्याण्युपयोगगच्छन्तितान्यनुव्याख्यास्यन्ते । तद्यथा–फलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकुटजकाण्डिकाकृतवेधनफलानि । जीमूतकेक्ष्वाकुकुटजकृतवेधनपत्रपुष्पाणि।आरग्वधवृक्षकमदनस्वादुकण्टकपाठापाटलाशार्ङ्गेष्टामूर्वासप्तपर्णनक्तमाल-पिचुमर्दपटोलसुषवी-गुडूचीसोमवल्कचित्रकद्वीपिशिग्रुमूलकषायैश्च । मधुमधूककोविदारकर्बुदारनीपनिचुलविम्बीशणपुष्पीसदापुष्पीप्रत्यक्पुष्पीकषायैश्चैलाहरेणुप्रियङ्गु-पृथ्वीका-कुस्तुम्बुरुतगरनलदह्रीवेरतालीशोशीरकषायैश्चाइक्षुकाण्डेक्ष्विक्षुवालिकादर्भपोटगलकालङ्कतकषायैश्च । सुमना सौमनसायिनीहरिद्रादारुहरिद्रावृश्चीरपुनर्नवामहासहाक्षुद्रसहाकषायैश्चशाल्मलिशाल्मकभद्रपर्ण्येलापर्ण्युपोदिकोद्दालकधन्वनराजादनोपचित्रागोपीशृङ्गाटिकाकपिकच्छुकषायैश्च । पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरसर्षपफाणितक्षीरक्षारलवणोदकैश्चयथोपलाभयथेष्टवाप्युपसंस्कृत्यवर्तिक्रियाचूर्णावलेहस्नेहकषायमांसरसयवागूयूपकाम्बलिकक्षीरोपधेयान्मोदकानन्याश्चयोगान्विविधाननुविधाययथार्हं वमनार्हायदद्याद्विधिवद्वमनमितिकल्पसंग्रहोवमनद्रव्याणांकल्प स्त्वेषांविस्तरेणोत्तरकालमुपदेक्ष्यते ॥ १५७ ॥

जो औषध द्रव्य वमन आदिकोंमें उपयोग किये जाते है उनका वर्णन करते है। जैसे–मैनफल, देवदाली, कडवीघीआ, कडवी तोरी, इन्द्रयव, कृतवेधन-तोरी इनके फल वमनकारक होतेहै । देवदालीके फूल । पत्र,

फूल । कुडाके पत्र, फूल । कडवी तोरीके पत्र, फूल वमनकारक होते हैं । अमलतास, कुडाकी छाल, मैनफल, स्वादुकण्टक, पाठा, पाढ, घुघुची (रक्तक) मुरवा, तप्तपर्ण, करज, नीम, पटोलपत्र, सुखवि, गिलोय इनके क्वाथ, सोमनलकल्ट, चित्रक, एरंड, सतावर, सहाजनेकी जड, मुलठी, महुआ, कचनार, सफेद कचनार, कदव, निचुल, तदूरी, शणपुष्पी,आक, अपामार्ग इन सबके क्वाथ वमनके उपयोगमें आते हैं । बडी इलायची, रेणुका, प्रियगु, छोटी इलायची, कुस्तुम्बरी, जटामासी, नेत्रवाला, तालीसपत्र और खस इनके क्वाथ भी वमनके उपयोगमें आते है । ईख, तालमखाना, रामसर, कुशा, कास, कसौंदी इन सबका रस और क्वाथ वमनम उपयोग किया जाता है । जायफल, जावित्री, हल्दी, दारुहल्दी, दोनों पुनर्नवा, मापपर्णी, मुग्धपर्णी इनका क्वाथ वमनमे उपयोग कियेजाते है । सेमल, रोहीतृण, मसारणी, रासना, उद्दालक, धान्य, ढामणवृक्ष, खिरनी, मूसाकर्णी, सारिवा, अतीस, कौंच इनका कल्क अथवा क्वाथ वमनमें उपयोग कियाजाता है । पिप्पली, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, अदरख, सर्सो, फाणित, दूध, क्षार और लवणयुक्त जल । इनमेंसे जिस समय जो मिलसके और जिसप्रकार प्रयोग करनेसे हितकर होसके उस प्रकार इनका उपयोग करे । इनमें कोई वर्त्ति बनाकर उपयोग करनेमे काम आतेहैं । कोई चूर्ण, कोई अवलेह, कोई स्नेह, कोई क्वाथ, कोई मास रसमें, कोई यवागूमे, कोई यूपमें, काव लिक, तथा क्षीरके सयोगसे काममें आतेहं कोई सूवनेके पदार्थमे, कोई मोदकमें, कोई अन्य उपयोगी द्रव्यके सयोगसे वमनसबधी कार्योमें प्रयोग की जाती हे । इनमेंसे जो औषधी जिस समय जिसप्रकार जिस वमन योग्य मनुष्यको देना हो उसको विधिपूर्वक प्रयोग करे । यह वमनोपयोगी द्रव्योंका कल्प सग्रह कियागया है इसको विस्तार पूर्वक कल्पस्थानमें कथन करेंगे ॥ १५७ ॥

विरेचके द्रव्य ।

विरेचनद्रव्याणितुश्यामात्रिवृच्चतुरंगुलतिल्वकमहावृक्षसप्तला-शखिनीदन्तीद्रवन्तीनाक्षीरमूलत्वक्पत्रपुष्पफलानियथायो-गमेतैश्चैवक्षीरमूलत्वक्पत्रफलपुष्पफलैर्विकृताविकृतैरग-न्धाश्वगन्धजशृङ्गीक्षीरिणीनीलिनीक्लीतककपायैश्चप्रकीर्योदकीर्य्यामसूरविदलाकम्पिल्लकविडङ्गगवाक्षीकपायैश्चपीलु-प्रियालमृद्वीकाकाश्मर्य्यपरूपकवदरदाडिमामलकहरीतकीबि-भीतकवृश्चीरपुनर्नवाविदारिगन्धादिकपायैश्चशीधुसुरासौवीर-कतुपोदकमैरेयमेदकमदिरामधुमधूलकधान्याम्लकुवलवदर-

येद्रव्यांसततमुपघट्टयन्तद्रुपयुक्तभूयिष्ठेऽम्भसिगतरसेष्वौषधेषु पयसिचानुपदग्धेस्थालीमुपहृत्यपरिस्नुतेंपूतपय सुखोष्णंघृततैलवसामज्जालवणफाणितोपहितंवस्तिवातविकारिणेविधिज्ञो विधिवद्दद्यात्। शीतन्तुमधुसर्पिर्भ्यामुपसंसृज्यपित्तविकारिणे दद्यादितिमधुरस्कन्ध ॥ १६० ॥

रसोंके ससर्ग और विकल्पसे अलग अलग वर्णन कर तो रस असख्य होजातेहै क्योंकि मिलेहुए रसोंके अशाश बल और विकल्प बहुत होतेहै । इसलिये एकदेशी उदाहरणके लिये सपूर्ण द्रव्योको छ' रसोंमे विभागकर रसके एक २ देशसे नाम और लक्षणोंको वर्णन करनेके लिये रसके छ. आस्यापनस्कन्धोंको विभागपूर्वक वर्णन करतेहै । जो छ' प्रकारका आस्थापन कथन कियाहै । वैद्यलोग उसको यथोचित रीतिपर नहीं जान सकते क्योंकि बहुतसे द्रव्य ऐसे है जिनमे कई एक रसोका ससर्ग पायाजाताहै । इसलिये मधुर और मधुर प्राय: तथा मधुरप्रभाव एवम् मधुरप्रभाव प्राय. द्रव्य मधुर मान करके मधुर स्कधमें कथन कियेजातेहै । उसी प्रकार और द्रव्योंको भी जानना । अब मधुर स्कन्धका वर्णन करतेहै । जैसे जीवक, ऋषभक, जीवन्ती, शतावर, भूईआमला, काकोली, क्षीरकाकोली, मापपर्णी, मुग्धपर्णी, शालिपर्णी, पृष्णपर्णी, सणपर्णी, मेदा, मेदामदा, काकडासिंगी, सिंघाडा, गिलोय, धनिया, बडीधनिया, मुण्डी, महामुण्डी, सहदेवी, विश्वदेवा, मिश्री, खरहटी अतिबला, विदारीकद, वाराहीकद, क्षुद्रसहा, महासहा, विधायरा, दोनों प्रकारकी पुनर्नवा, अश्वगधा, दोनों कटेली, लाल और सफेद एरड, गोखरू, बडा, शतावरी, सोंफ, सोय, मुलहठी, गेहू, किसमिस, छोहारा, फालसा, कौंचके बीज, कमलगट्टे-कसेरू, राजकसेरू, काल्कत, काश्मरीफल, शीतपाकी, नीले रगकी कठगरैया, ताल खजूर, खजूर, ईख, इक्षुवालिका, दर्भ, कुशा, कास, शालिचावल, गुद्रपटेर, सर्पता, सरमुल, सरसा गगेरन, पाल्क, वनकपास, सीरा, महाशतावरी, हसपदी, काकजघा, कुलिंगा, क्षीरविदारी, कपोतवल्ली, सारिवा, मधुवल्ली, सोमलता और भी अन्यान्य मधुवर्गमें कहेहुए द्रव्योंको लेकर पहिले शुद्धजलसे धोडाले फिर टुकडे करके बारीक कूट दूधमें मिलाकर किसी पात्रमें डाल अग्निपर पकावे तथा मंदमद आचसे पकाता जावे । जब देखे कि औषधियोंका रस दूधमे आगया है तो उस दूधको उतारकर सुखोष्ण होनेपर उस दूधमें घी, तेल, चर्बी, मज्जा, लवण, फाणित इनमेंसे सब अथवा जो उचित हो वह मिलाकर वस्तिकर्मको जाननेवाला वैद्य वात विकारवाले मनुष्यको वस्तिकर्म करे । यदि पित्तविकारवालेको वस्तिकर्म करना हो तो शीतल होनेपर शह-

और घृत मिलाकर वस्तिकर्म करे। वस्तिकर्मके लिये उपरोक्त सपूर्ण द्रव्योंको एकही समय एकत्रित करनेकी आवश्यकता नहीं उनमेंसे जिस समय जिसको वैद्य जिसप्रकार उपयोग करना चाहे वैसे-उचित रीतिपर करे। इतिमधुरस्कधः ॥ १६० ॥

अम्लस्कन्ध।

आम्राम्रातकलकुचकरमर्दवृक्षाम्लाम्लवेतसकुवलबदरदाडिममातुलुङ्गकण्डीरामलकनन्दीतकलालतिकाशीतदन्तशठैरावतककोषाम्रधन्वनाना फलानि पत्राणिचाश्मन्तकचाङ्गेरीणाचतुर्विधानाचाम्लिकानाद्वयो कोलयोर्द्वयोश्चामशुष्कयोर्द्वयोश्चशुष्काम्लिकयोर्ग्राम्यारण्ययोश्चासवद्रव्याणिचसुरासौवीरतुषोदकमैरेयमेदकमदिरामधुशीधुशक्तिदधिदधिमण्डोदश्वि द्धान्याम्लादीन्येषामेवविधानाश्चान्येषाश्चाम्लवर्गपरिसंख्यातानामौषधद्रव्याणाछेद्यानिखण्डशच्छेदयित्वाभेद्यानिंचाणुशोभेदयित्वाद्रवे स्थितान्यवसिच्यसाधयित्वोपसस्कृत्ययथावत्तैलवसामधुमज्जालवणफाणितोपहितसुखोष्णवस्तिवातविकारिणेविधिवद्दद्यादित्यम्लस्कधः ॥ १६१ ॥

अब अम्लस्कधका कथन करते है। जैसे-आम, आंवाडा, बडहर, करौंदा, अम्लवेत, अम्लवेद, दोनो प्रकारके बेर, अनार, बिजौरा, कण्डीर, आमले, नन्दीतक, इमली, शीतक, जभीरी नीबू, सतरा, कोशाम, धन्वन इनके फल और पत्र तथा असमतक, चागेरी, चार प्रकारके अमली, दो प्रकारके जामुन, तथा सूखी हुइ अमली एवम् ग्रामके और जगलके सब आसव द्रव्य, सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, मदिरा, मधु सीधू, सुक्तीमधू, दही, दहीका मड, दहीका तोड, काजी अथवा अन्य अम्लवर्गमें कहे हुए द्रव्योंके टुकडेकर, कूटकर, साफजलसे धो, किसी उचित पतले पदार्थमें सिद्ध कर छान लेवे। फिर उसमें तेल, वसा, शहद, मज्जा और फाणित मिलाकर वातवाले मनुष्यके विधिपूर्वक आस्थापन वस्ति करे। इति अम्लस्कध ॥ १६१ ॥

लवण स्कध।

सैन्धवसौवर्चलकालविडपाक्यानूपकूप्यवालकैलमूलकसामुद्ररोमकौद्भिदौषरपाटेयकपाशजानीतिएवप्रकाराणिचान्यानि

लवणवर्गपरिसख्यातानिएतानिअम्लोपहितानिउष्णोदकोप-हितानिवास्नेहवन्तिसुखोष्णवस्तिवातविकारिणेविधिज्ञोविधि-वद्दद्यादितिलवणस्कन्धः ॥ १६२ ॥

अब लवणस्कन्धको कहते हे । जैसे-सेंधानमक, सचरनमक, कालनमक, विडनमक, तथा पाक्य, आनूप, कूप्य, वालुक, एलमूलक, सामुद्र, रोमक, उद्भिद, औपर, पाटेयक, पांसुज यह सब मकारके लवण तथा अन्य लवण वर्गोक्त द्रव्य, कांजी अथवा गर्मजलमें मिलाकर घृत, तैलादि चिकनाईके सयोगसे सुखोष्ण वस्तिकी विधिको जाननेवाला वैद्य विधिपूर्वक वातविकारी मनुष्यको देनी चाहिये ॥ इति लवणस्कध ॥ १६२ ॥

कटुकस्कन्ध ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचव्यचित्रकशृङ्गवेरमरिचाज मोदार्द्रकविडङ्गकुस्तुम्बुरुपीलुतेजोवत्यैलाकुष्ठभल्लातकास्थि-हिंगुकिलिममूलकसर्षप–लशुन–करञ्जशिग्रुकमधुशिग्रुक खरपुष्पाभूस्तृणसुमखसुरस–कुठेरक–काण्डीरकालमालक-पर्णासक्षवकफणिज्जकक्षारमूत्रपित्तानामेपामेवविधानाश्चा-न्येषाकटुकवर्गपरिसख्यातानामौषधद्रव्याणाछेद्यानिखण्डश-श्छेदयित्वाभेद्यानिचाणुशोभेदयित्वागोमूत्रेणसहसाधयित्वो-पसस्कृत्ययथावन्मधुतैललवणोपहितसुखोष्णवस्तिश्लेष्मावि कारिणेविधिज्ञोविधिवद्दद्यात्, इतिकटुकस्कन्ध ॥ १६३ ॥

अब कटुस्कधको कहतेहै पीपल, पिपलामूल, गजपीपल, चव्य, चित्ता, सोंठ, मिच, अजमोद, वायविडग, नेपालीधनिया, अखरोट, तेजबल, इलायची, कूठ, भेलावेकी गुठली, हींग, देवदार, मूली, सरसों, लहसुन, करज, सोंहाजना, मीठा सोंहाजना, वनतुलसी, गधतृण, सुमुखतुलसी, सुरस, कुठेरक, काण्डीर, कालमालक, पर्णास, क्षवक यह सब तुलसीकी जातियें, और मरुआ, क्षार, मूत्र, पित्त एवम् अन्य कटुवर्गमें कहे द्रव्य लेकर छोटे २ टुकडेकर शुद्धजलसे धो बारीक करलेवे । फिर गोमूत्रमें पकाकर शुद्धवस्त्रद्वारा छान लेवे । सुखोष्ण रहनेपर मधु, तेल और लवण मिलाकर कफविकारी मनुष्यके आस्थापन वस्ति करे । इति कटु (चरपरा) स्कध' ॥ १६३ ॥

तिक्तस्कन्ध ।

चन्दननलदकृतमालनक्तमालनिम्बतुम्बुरुकुटजहरिद्रादारुहरिद्रामुस्तमूर्वाकिराततिक्तककटुरोहिणीत्रायमाणाकरवीरकेबुककटिल्लकवृषमण्डूकपर्णीकर्कोटकवार्त्ताकुकर्कशकाकमाचीकारवेल्लकाकोदुम्बरिकासुपव्यतिविषापटोलकुणकपाठागुडूचीवेत्राग्रवेतसविकंकतवकुलसोमवल्कसप्तपर्णसुमनोऽर्कावल्गुजवचातगरागुरुवालकोशीराणाम् ॥ एषामेवविधानाश्चान्येषा तिक्तवर्गपरिसख्यातानामौषधद्रव्याणाछेद्यानिखण्डशश्छेदयित्वाभेद्यानिचाणुशोभेदयित्वाप्रक्षाल्यपानीयेनाभ्यासिच्य साधयित्वोपसंस्कृत्ययथावन्मधुतैललवणोपहितसुखोष्णवस्तिं श्लेष्मविकारिणेविधिज्ञोविधिवद्दद्यात् । शीतन्तुमधुसर्पिर्भ्यामुपसस्कृत्यपित्तविकारिणेदद्यादितितिक्तस्कन्ध ॥ १६४ ॥

अब तिक्तस्कधको कहतेहे चदन, खस, अमल्तास, करजुवा, नीम, नैपाटीधनिया, कुडा, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथे, मुर्वा, चिरायता, कुटकी, त्रायमाण, कनेर, केतुक, करेला, अडूसा, मण्डूकपर्णी, ककोडा, बैगन, कमीला, मकोह, छोटा करैला, कठूमर, कालाजीरा, अतीस, पटोलपत्र, परवल, पाढ, गिलोय, वेतकी कोपल, वेतस मजन्र, विककत, मौलसरी, सफेदकत्था, सतवन, धतूरा, आक, वावची, वच, तगर, अगर, नेत्रवाला और खस, तथा तिक्तवर्गमें कहेहुए सब द्रव्याको जलसे धोकर तथा कूटछानकर जलमे पकावे । फिर छानकर जब सुखोष्ण रहे तो सधानमक और शहद मिलाकर कफरोगीको आस्थापन वस्ति करना चाहिये । यदि पित्तरोगीको आस्थापनवस्ति करना हो तो शीतल होनेपर शहद और घृत मिला आस्थापनवस्ति करे ॥ इतितिक्तस्कध ॥ १६४ ॥

कषायस्कन्ध ।

प्रियङ्ग्वनन्ताम्रास्थ्यम्बष्ठकीकट्वङ्गलोध्रमोचरससमङ्गाधातकीपुष्पपद्मापद्मकेशरजम्ब्वाम्रप्लक्षवटकपीतनोदुम्बराश्वत्थभल्लातकाश्मन्तकाशिरीपशिंशपासोमवल्कतिन्दुकपियालवदरखदिरसप्तपर्णाश्वकर्णस्यन्दवार्जुनासनारिमेदैलवालुकपरिपे-

लवकदम्बशल्लकीजिङ्गिनीकाशकशेरुकाराजकशेरुकाकट्फलव-
शपद्मकाशोकशालधवसर्जभूर्जशणपुष्पीशमीमाचीकवरकतु-
ङ्गाजकर्णाश्वकर्णस्फुर्जकविभीतककुम्भीकपुष्करबीजविसमृ
णाल-तालखर्जूरतरुणीनामेषामेवविधानाञ्चान्येषाकषायवर्ग-
परिसख्यातानामौषधद्रव्याणाछेद्यानिखण्डशश्छेदयित्वाभेद्या-
निचाणुशोभेदयित्वाप्रक्षाल्यपानीयेनसहसाधयित्वोपसस्कृत्य
यथावन्मधुतैललवणोपहितसुखोष्णवस्तिंश्लेष्मविकारिणेद-
द्यादिति। शीतन्तुमधुसर्पिर्भ्यामुपसंस्कृत्यपित्तविकारिणेदद्या
दितिकषायस्कन्ध· ॥ १६५ ॥

अब कषायस्कधको कथन करते है मियगु, शारिवा, आमकी गुठली, पाटला, टाटमढगा, लोध्र, मोचरस, मजीठ, धायेके फूल, कमलकी केशर, भारङ्गी, जामुन, आमकी छाल, पाखर, कपीतन, गूलर, पीपल, भेलावेकी वृक्षकी छाल, अश्मतक, सिरस, सीसम, सफेदकत्था, तेदु चिरौजी और वेर इन सब वृक्षोकी छाल इसीमकार खदिर, सतवन, तिनस, स्यदन अर्जुन, विजयसार, अरिमेद, एलवालु, केवटीमोथा, कदव, शल्लकी, जींगन, कास, कसेरू, राजकसेरू, कायफल, वास, पद्माख, अशोक, शाल, धाषी, भोजपत्र, खरपुष्प, जण्डीवृक्ष, माचिका, उन्नाव, अजकर्ण, अश्वकर्ण, स्फूरजत, वहेडा, कुम्भीक, कमलगट्टे, विस (कमलकी जड) मृणाल, तालखजूर, टिकवार, इन सबको अथवा अन्य कषायवर्गमें कहेहुए औषधद्रव्योंको कूट छानकर पानीसे धोकर पानीमें थोडासा पकाकर और वस्त्रसे छानकर इसमें शहद और घृत मिला पित्तज रोगीको आस्थापनवस्ति देवे। इति कषायस्कन्ध ॥ १६५ ॥

तत्र श्लोका ।

षड्वर्गा परिसख्यातायएतेरसभेदत। आस्थापनमभिप्रेत्यता-
न् विद्यात्सार्वयोगिकान् ॥ १६६ ॥ सर्वतोहिप्रणिहिता-
सर्वरोगेषुजानता । सर्वान्रोगान्नियच्छन्तियेभ्यआस्थापन
हितम् ॥ १६७ ॥

यहा पर श्लोक है रस भेदसे जो उपरोक्त छ' वर्गोका कथन कियाहै । यह आस्थापनवस्तिकर्ममें सब मकार हितकारी होतेहै । यदि आस्थापनवस्तिके ,प्रमको

जाननेवाला वैद्य जिनके लिये आस्थापनवस्ति हितकारी हो इन सार्वयोगिक द्रव्यो-द्वारा वस्तिकर्म करनेसे रोगियोंके सपूर्ण रोगोंको नाश करदेताहै ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

येषायेषाप्रशान्त्यर्थंयेयेनपरिकीर्त्तिता ।
द्रव्यवर्गाविकाराणातेपातेपरिकोपकाः ॥ १६८ ॥

परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि जो जो द्रव्य जिस २ विकारको शान्त नहीं करता उसके द्वारा आस्थापन किया करना विकारोंको उलटा कुपित करताहै । जैसे वातप्रधान मनुष्यको रूक्ष पदार्थों द्वारा बस्तिकर्म करना हानिकारक होताहै । और कफप्रधान मनुष्यको रूक्ष पदार्थों द्वारा बस्ति कर्म हितकर होताहै ॥ १६८ ॥

इत्येतेषडास्थापनस्कन्धारसतोऽनुविभज्यव्याख्याता । ते-भ्योभिषग्बुद्धिमान्परिसख्यातमपियद्द्रव्यमयौगिकंमन्येततदपकर्षयेत् । यद्यच्चानुक्तमपियौगिकंत्वामन्येतलद्दद्यात् । वर्गम पिवर्गेणउपसमृजेदेकमेकेनअनेकेनवायुक्तिप्रमाणीकृत्य । प्रचरणमिवभिक्षुकस्यवीजमिवकर्षकस्यसूत्रबुद्धिमतामल्पमपि अनल्पज्ञानायभवति ॥ १६९ ॥

इस प्रकार रसभेदसे छः प्रकारके आस्थापनके स्कधोंको कथन कियाहै । इन ऊपर कहेहुए छ प्रकारके स्कधोंमें जो द्रव्य कथन किये भी हों परतु आस्थापनयोगमे हानिकारक समझ उनको बुद्धिमान् वैद्य निकालडाले और जो कथन नहीं भी कियेगये उनको यदि उचित समझे तो प्रयोग करे । बुद्धिपूर्वक विचार एकवर्गके द्रव्योंको यदि उचित समझे तो उनमेंसे एक अथवा अनेक द्रव्य दूसरे द्रव्यमें भी मिला सकताहै । जैसे भिक्षा मागनेवालेको एकमुट्ठी चावलोंकी और वगीचेके मालीको एक वीज भी उसके काममें वडा भारी लाभदायक होताहै उसी प्रकार युक्ति और प्रमाणके आश्रित बुद्धिमान् वैद्यको वैद्यकका एक छोटासा सूत्र भी वडे ज्ञानको करनेवाला होता है ॥ १६९ ॥

तस्माद्बुद्धिमतामूहापोहवितर्कामन्दबुद्धेस्तुयथोक्तानुगमनमेव श्रेय ॥ १७० ॥

इसलिये बुद्धिमान् वैद्यको विचारपूर्वक द्रव्य ग्रहण करना चाहिये । और मूर्ख वैद्य जितनी बातें सीखी हुई है उसके सिवाय अन्य किसी पदार्थसे कुछ लाभ नहीं उठा सकता ॥ १७० ॥

यथोक्तंहिमार्गमनुगच्छन्भिषक्संसाधयतिवाकार्य्यमनतिमह
त्त्वादनतिह्रस्वत्वादुदाहरणस्येति ॥ १७१ ॥

जिस प्रकार यहांपर कथन कियाहै यह न बहुत विस्तारसे है और न अधिक संक्षेपसे कथन किया गयाहै। इसको उदाहरण मात्र जानकर बुद्धिमान् वैद्य कार्यको सिद्ध करसकताहै ॥ १७१ ॥

अत.परमनुवासनद्रव्याणिअनुव्याख्यास्यन्ते । अनुवासनन्तु
स्नेहएव । स्नेहस्तुद्विविध । स्थावरोजङ्गमात्मकश्चतत्रस्थाव
रात्मक.स्नेह तैलमतैलञ्च । तत्रतैलमेवकृत्वोपदिश्यतेसर्वत-
स्तैलंप्राधान्यात् । जङ्गमात्मकस्तुवसामज्जासर्पिरिति ॥ १७२ ॥

अब अनुवासन द्रव्योंका वर्णन करतेहै। अनुवासन स्नेह द्रव्य ही होताहै। वह स्नेह दो प्रकारका है। १ स्थावर। २ जंगम। स्थावर स्नेहोंमे तिलोंका तेल अन्य सरसो आदि स्थावर द्रव्योंके तेल ग्रहण किये जातेहै । सपूर्ण स्थावर स्नेहोंमें तिलोंका तेल प्रधान होनेसे सबको तेल ही कहाजाताहै। वसा, मज्जा और घृतको जंगमस्नेह कहतेहैं ॥ १७२ ॥

तेषांतैलवसामज्जासर्पिषांतुयथापूर्वंश्रेष्ठम् । वातश्लेष्मविका-
रेषुअनुवासनीयेषुयथोत्तरपित्तविकारेषुसर्वएववासर्वेषुयोगमा-
यान्तिसंस्कारविधिविशेषादिति ॥ १७३ ॥

वात और कफके विकारोंमें अनुवासन करनेके लिये-तेल, वसा, मज्जा और घृत इन चतुर्विध स्नेहोंमें क्रमपूर्वक परकी अपेक्षा पूर्ववाला श्रेष्ठ मानाजाता है । जैसे-वात और कफके विकारोंमे घृतकी अपेक्षा मज्जा मज्जाकी अपेक्षा वसा और वसाकी अपेक्षा तैल श्रेष्ठ होता है । एवम् पित्तके विकारोंमें-तैलसे वसा, वसासे मज्जा, मज्जासे घृत अनुवासन कर्म करनेके लिये श्रेष्ठ माना जाताहै। अथवा संस्कार विधि विशेषसे सब दोषोंके विकारोंमें सब प्रकार स्नेह हितकारक होतेहैं। जैसे-वातनाशक द्रव्यों द्वारा सिद्ध किये वातविकारमें तथा पित्तकारक द्रव्योंद्वारा सिद्ध किये पित्त विकारोंमें एवम् कफनाशक द्रव्योंद्वारा सिद्ध किये कफ विकारमें सब प्रकारके हितकर होते हैं ॥ १७३ ॥

शिरोविरेचनद्रव्य ।

शिरोविरेचनद्रव्याणिपुन'अपामार्गपिप्पलीमरिचविडङ्गशिग्रु-
शिरीषकुस्तुम्बुरु-बिल्वाजाज्याजमोदावार्ताकीपृथ्वीकैलाह-

रेणुफलानिच। सुमुखसुरसकुठेरकगण्डीरककालमालकपर्णासक्षवकफणिज्जकहरिद्राशृङ्गवेरमूलकलशुनतर्कारीसर्षपपत्राणिच। अर्कालर्ककुष्ठनागदन्तीवचाभार्गीश्वेताज्योतिष्मतीगवाक्षीगण्डीरावाक्पुष्पीवृश्चिकालीवयस्थातिविषामूलानिच। हरिद्राशृङ्गवेरमूलकलशुनकन्दाश्चलोध्रमदनसप्तपर्णनिम्बार्कपुष्पाणिच। देवदार्वगुरुसरलशल्लकीजिङ्गिन्यसनाहिंगुनिर्य्यासाश्चतेजोवराङ्गेगुदीशोभाञ्जनबृहतीकण्टकारिकात्वगिति। शिरोविरेचनंसप्तविधफलपत्रमूलकन्दपुष्पनिर्य्यासत्वगाश्रयभेदात्॥ १७४॥

अत्र शिरोविरेचन द्रव्योंको कथन करते है। जैसे—अपामार्ग, पीपर, मिर्च, वायविडग, सोहाजना, सिरस, धनिया, बिल्वफल, कालाजीरा, अजमोद, बडी कटेरीके फल, काश्मीरी जीरा, इलायची, रेणुका बीज और सुमुख, कुठेरक, सुरस, गण्डीर, कालमालक, पर्णाश तथा क्षवक यह तुलसीकी जातियें, मरुआ, हल्दी, अदरख, मूली, लहसुन, अर्णी, सरसों इनके पत्र तथा आक, कूट, नागदंती, वच, भारंगी, अपराजिता, मालकांगुनी, इन्द्रायण, गण्डीर, अवाक्पुष्पी, वृश्चिका, वयस्या, अतीस, इन सबके मूल और हल्दी, अदरख, मूली इनके कंद। लोध, मैनफल, सतवन, नीम और आक इनके फूल एवम् देवदारु, अगर, सरल, शल्लकी, जीगन पीनमाला ओर हींग इनका गोंद लेना चाहिये। इसी प्रकार चव्य, दालचीनी, गोंदनी, सोहाजना, दोनों कटेरी इनकी छाल लेना चाहिये। इस प्रकार फल, पत्र, मूल, कंद, फूल, गोंद और त्वचाके भेदसे शिरोविरेचन (नस्य) सात प्रकारके होतेहै॥ १७४॥

लवणकटुतिक्तकषायाणिचइन्द्रियोपशयानितथापराण्यनुक्तान्यपिद्रव्याणियथायोगविहितानिशिरोविरेचनार्थमुपदिश्यन्ते इति॥ १७५॥

लवण, कटु, तिक्त तथा कषाय रसवाले द्रव्य और जो इन्द्रियोंको उपशय अर्थात हितकारक हों उन द्रव्योंके प्रयोगको शिरोविरेचनके अर्थ कथन किया है॥ १७५॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन।

लक्षणाचार्य्यशिष्याणापरीक्षाकारणञ्चयत्। अध्येयाध्यापनविधिःसम्भाषाविधिरेवच॥ १७६॥ षड्भिर्न्यूनानिपञ्चाश-

द्वादशाथपदानिच । पदानिदशचान्यानिकारणादीनितत्त्वत.
॥ १७७ ॥ सम्प्रश्नश्चपरीक्षादेर्नवकोवमनादिपु। भिषग्जितीयेरोगाणांविमानेसम्प्रदर्शितः ॥ १७८ ॥

यहांपर अध्यायके उपसंहारमें श्लोक हैं–गुरु और शिष्योंके लक्षण, परीक्षा, कारण पढने और पढानेकी विधि, सम्भाषण विधि, छिआलीस और बारह अर्थपद, इनके सिवाय तत्त्वसे दश प्रकारके अन्य कारणादि, कथन और दश प्रकारके परीक्ष्य विषयोंमें प्रश्न, वमनादि विषयमें नौ प्रकारकी परीक्षाको रोगभिषग्जितीय अध्यायमें कथन किया गया है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

अनुवासन द्रव्य ।

वहुविधमिदमुक्तमर्थजातवहुविधवाक्यविचित्रमर्थजातम् ।
वहुविधशुभशब्दसन्धियुक्तवहुविधवादनिषूदनपरेयाम् ॥ १७९ ॥

अनेक प्रकारके अर्थोंका समूह और अनेक अर्थोंवाले विचित्र वाक्य तथा अर्थजात, सुन्दर शब्द, संधियुक्त अर्थ, अनेक प्रकारके वाद और प्रतिपक्षीके पक्षका खण्डनका वर्णन कियागयाहै ॥ १७९ ॥

इमामतिंवहुविधहेतुसश्रयाविजज्ञिवान्परमतवादसूदनीम् ।
निलीयतेपरवचनावमर्देनेनशक्यतेपरवचनैश्चमर्दितुम् ॥ १८० ॥

जो वैद्य इन बहु प्रकारके हेतुओंसे युक्त तथा प्रतिपक्षीके मत और वादके खण्डन करनेवाली इस मतिको जान लेता है। वह प्रतिपक्षीके संपूर्ण वचनोंको मर्दन करनेको समर्थ होताहै और प्रतिपक्षीके वचनोंसे अपने पक्षको कभी खण्डन होने नहीं देता १८०

दोषादीनांतुभावानांसर्वेषामेवहेतुना ।
मानात्समस्तमानानिनिरुक्तानिविभागश. ॥ १८१ ॥

इत्यग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते विमानस्थान समाप्तम् ।

इस प्रकार इस विमानस्थानमें वात, पित्त, कफ आदिक दोषोंका और संपूर्ण भावोंका हेतु विशेषसे तथा परिमाण विशेषसे विभागपूर्वक संपूर्ण मान (परिमाणका कथन कियागयाहै ॥ १८१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां विमानस्थाने प० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचित भाषाटीकायां रोगभिषग्विज्ञानीयविमान नामाष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

साहित चरक विमान, जानहि विधिवत जे भिषक् ।
सदसि पावहीं मान, विजय होहि वैद्यनविषे ॥

इति विमानस्थानम् ।

शारीरस्थानम्।

प्रथमोऽध्यायः।

अथात कतिधापुरुषीयव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेय ।

अब हम कतिधापुरुषीय शारीरकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

अग्निवेश उवाच ।

कतिधापुरुषोधीमन् धातुभेदेनभिद्यते । पुरुषःकारणकस्मा-
त्प्रभवःपुरुषस्यकः ॥ १ ॥ किमज्ञोऽज्ञ सनित्य किंकिसनित्यो
निदर्शित । प्रकृति काविकारा केकिंलिङ्गपुरुषस्यच ॥ २ ॥

अग्निवेश बोले कि हे धीमन्! धातुभेदसे पुरुष कितने प्रकारके होतेहैं। पुरुषको कारण किसलिये कहाजाता है। पुरुषके कारण कौन है। पुरुष अज्ञ है अथवा ज्ञाता है। नित्य है अथवा अनित्य है। प्रकृति क्या है। विकार क्या है। पुरुषके क्या लक्षण है॥ १ ॥ २ ॥

निष्क्रियञ्चस्वतन्त्रञ्चवशिनसर्वगविभुम् । वदन्त्यात्मानमा-
त्मज्ञा क्षेत्रज्ञसाक्षिणतथा ॥ ३ ॥ निष्क्रियस्यक्रियातस्यभग-
वन् ! विद्यतेकथम्। स्वतन्त्रश्चेदनिष्टासुकथयोनिषुजायते ॥
॥ ४ ॥ वशीयद्यसुखै.कस्माद्भावैराक्रम्यतेबलात्। सर्वा सर्व-
गतत्वाच्चवेदना.किंनवेत्तिसः ॥ ५ ॥

आत्माके जाननेवाले पुरुष आत्माको क्रिया रहित, स्वतन, वशी, सर्वग, विभु, क्षेत्रज्ञ और साक्षी कहते है सो हे भगवन्! क्रिया रहित पुरुषमे क्रिया किसप्रकार है। विना इच्छासे अनिष्ट योनियाको किसप्रकार धारण करता है। वशी पुरुष इन्द्रियोंके सुखके वशमें बलात्कार क्यों फसजाताहै। सर्वज्ञ होनेसे संपूर्ण विकारोंको, क्या नहीं जानसकता ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

नपश्यतिविभु कस्माच्छैलकुड्यतिरस्कृतम्। क्षेत्रज्ञ क्षेत्रमथ-
वाकिंपूर्वमितिसशय ॥ ६ ॥ ज्ञेयक्षेत्रविनापूर्वक्षेत्रज्ञोहिनयु-
ज्यते। क्षेत्रश्चयदिपूर्वस्यात्क्षेत्रज्ञ.स्याद्शाश्वत. ॥ ७ ॥

बुद्धिकी प्रवृत्ति।

इन्द्रियाभिग्रहःकर्म्ममनसस्त्वस्यनिग्रहः।

ऊहोविचारश्चततः परंबुद्धिःप्रवर्त्तते ॥ १९ ॥

इन्द्रियोंकी गति कराना और स्वयम गमनशील रहना यह मनके दो कर्म होतेहैं। तर्क और विचार उत्पन्न होनेके अनन्तर बुद्धिकी प्रवृत्ति होती है ॥ १९ ॥

इन्द्रियेणेन्द्रियार्थोहिसमनस्केनगृह्यते।

कल्प्यतेमनसाप्यूर्द्धंगुणतोदोषतोयथा ॥ २० ॥

इन्द्रियें अपने अर्थको मनकी सहायतासे ही ग्रहण करती हैं। और इन्द्रियों द्वारा अर्थज्ञान होनेके अनन्तर भी उसके गुण दोषको मनही कल्पना करताहै ॥ २० ॥

जायतेविषयेतत्रयाबुद्धिर्निश्चयात्मिका।

व्यवस्यतेतयावक्तुकर्त्तुंवाबुद्धिपूर्वकम् ॥ २१ ॥

फिर उस विषयमें जिस प्रकारकी निश्चयात्मिका बुद्धि होतीहै उसको उस निश्चयात्मिका बुद्धिद्वारा कहनेको अथवा बुद्धिपूर्वक करनेको निश्चय करताहै ॥ २१ ॥

ज्ञानेन्द्रिय।

एकैकाधिकयुक्तानिखादीनामिन्द्रियाणितु।

पञ्चकर्म्मानुमेयानियेभ्योबुद्धि प्रवर्त्तते ॥ २२ ॥

शब्दगुणवाला आकाश शब्द और स्पर्श गुणवाला वायु, शब्द, स्पर्श और रूप गुणवाला अग्नि। शब्द, स्पर्श, रूप और रस गुणवाला जल। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध गुणवाली पृथ्वी होती है। इसप्रकार एकएक महाभूत एकएक गुण पूर्ववाले महाभूतका लेताजाताहै। यद्यपि आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इनके शब्द, स्पर्श, रस और गंध यह क्रमसे एकएकका एकएक गुण है परन्तु यह एकएक गुण क्रमपूर्वक दूसरेका लेते जातेहै। इन पंचमहाभूतोंकी श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन और घ्राण ये पांच इन्द्रियें है। सुनना, छूना, देखना, स्वादलेना और सूंघना ये इनपांचोंके कर्म हैं। इन पांच कर्मोंसे ही इनका अनुमान कियाजाताहै। इन इन्द्रियों द्वारा ही बुद्धिकी प्रवृत्ति होतीहै ॥ २२ ॥

कर्मेन्द्रिय।

हस्तपादगुदोपस्थजिह्वेन्द्रियमथापिवा। कर्मेन्द्रियाणिपञ्चैवपा

दौगमनकर्मणि ॥२३॥ पायूपस्थौविसर्गार्थेहस्तौग्रहणधारणे।

जिह्वावागिन्द्रियंवाक्चसत्याज्योतिस्तमोऽनृता ॥ २४ ॥

हाथ, पाव, गुदा, गुह्य और जिह्वा ये पाच कर्मेन्द्रिय हैं । पावोंका चलना, गुदाका मलत्याग, गुह्यका मूत्रत्याग, और हाथोंका ग्रहण करना कर्म है एव जिह्वाका उच्चारण करना कार्यहै । वह उच्चारण करना दो प्रकारका है । १ सत्य । २ असत्य । सत्य ज्योति.स्वरूप है और असत्य तम.स्वरूप है ॥ २३ ॥ २४ ॥

पञ्चमहाभूत ।

महाभूतानिखंवायुरग्निराप क्षितिस्तथा । शब्द.स्पर्शश्चरूप-श्चरसोगन्धश्चतद्गुणा ॥ २५ ॥ तेषामेकोगुण.पूर्वोगुणवृद्धि. परेपरे । पूर्व.पूर्वोगुणश्चैवक्रमशोगुणिपुस्मृत ॥ २६ ॥

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पाच महाभूत हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गध ये इनके पाच गुण हैं । इनम पहिलेमें एक, दूसरेमें दो तीसरेमें तीन, चौथेमे चार और पाचवेंमें पाच ये गुण है । (इनको २२ के श्लोककी व्याख्यामें लिख चुके है) ॥ २५ ॥ २६ ॥

पृथ्वीआदिके गुण ।

खरद्रवचलोष्णत्वभूजलानिलतेजसाम् । आकाशस्याप्रतीघा-तोदृष्टलिङ्गयथाक्रमम् ॥ २७ ॥ लक्षणसर्वमेवैतत्स्पर्शने-न्द्रियगोचरः । स्पर्शनेन्द्रियविज्ञेय.स्पर्शोहिसविपर्य्यय. ॥२८॥

पृथ्वीका खर, जलका द्रव, वायुका चल और अग्निका ऊष्ण लक्षण होता है । इसी प्रकार आकाशका प्रतिघात लक्षण है । यह सपूर्ण लक्षण स्पर्शनेन्द्रियके गोचर हैं । स्पर्शनेन्द्रियसे ही स्पर्श और स्पर्शाभावका ज्ञान होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

गुणादिवर्णन ।

गुणा शरीरेगुणिनानिर्दिष्टाश्चिह्नमेवच ।
अर्थाशब्दादयोज्ञेयागोचराविषयागुणा ॥ २९ ॥

जिसमे गुण होते है उसको गुणी कहते हे अथवा शरीरमे गुण जो है वह गुणीके चिह्न हैं अर्थात लक्षण हैं । और शब्दादिक इन्द्रियोंके विषय हैं ॥ २९ ॥

यायदिन्द्रियमाश्रित्यजन्तोर्बुद्धि प्रवर्त्तते ।
यातिसातेननिर्देशमनसाचमनोभवा ॥ ३० ॥

जिस इन्द्रियके आश्रयसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसको उस इन्द्रियकी बुद्धि कहते है । जो मनसे ज्ञान उत्पन्न होता है उसे मनोभव बुद्धि अथवा मानसिक ज्ञान कहते है ॥ ३० ॥

ज्ञानोंकी अनेकता।

भेदात्कार्य्येन्द्रियार्थानांबह्व्योवैबुद्धयःस्मृता । आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानामेकैकासन्निकर्षजा ॥ ३१ ॥ अगुल्यंगुष्ठतलजस्तन्त्रीवीणानखोद्भव । दृष्ट शब्दोयथाबुद्धिर्दृष्टासयोगजा तथा ॥ ३२ ॥

कार्यभेदसे और इन्द्रियाके विषयभेदसे अनेक प्रकारकी बुद्धियें प्राप्त होती है। आत्मा इन्द्रिय, मन और अर्थके सन्निकर्षसे पृथक् २ बुद्धि उत्पन्न होती है। जैसे-अगुली, अगूठा, हथेली, तन्त्री, वीणा नख इनके सयोगसे पृथक् २ शब्द उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार जैसे जैसे अर्थसे सयोग होता है वैसे वैसे सयोगभेदसे पृथक् २ बुद्धि उत्पन्न होतीहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

बुद्धीन्द्रियमनोऽर्थानांविद्याद्योगधरंपरम् ।
चतुर्विंशकइत्येषराशिःपुरुषसञ्ज्ञकः ॥ ३३ ॥

बुद्धि, इन्द्रिय, मन और इनके विषयोंके योगको धारण करनेवाला चौवीस तत्त्वकी राशिवाला पुरुष कहा जाताहै ॥ ३३ ॥

रजस्तमोभ्यायुक्तस्यसंयोगोऽयमनन्तवान् ।
ताभ्यानिराकृताभ्यान्तुसत्त्ववृद्ध्यानिवर्त्तते ॥ ३४ ॥

यह अनन्त पुरुष रजोगुण और तमोगुणके सयोगसे अनादि कालसे बधा है परन्तु सत्वगुणकी वृद्धिसे रज और तमका सयोग भी निवृत्त होजाताहै अर्थात् सत्वगुणका प्रकाश होनेसे शुद्ध ज्ञान होकर मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥

पुरुषकी प्रधानता।

अत्रकर्म्मफलञ्चात्रज्ञानञ्चात्रप्रतिष्ठितम् ।
अत्रमोह सुखदु खजीवितमरणस्वत ॥ ३५ ॥

इस पुरुषमें कर्मफल तथा ज्ञान यह दोनो प्रतिष्ठित है और मोह सुख, दुःख, जीवन और मरण यह चतुर्विंशति तत्त्वात्मक पुरुषके आश्रित है ॥ ३- ॥

एवयोवेदतत्त्वेनसवेदप्रलयोदयौ ॥ ३६ ॥

जिस पुरुषको इस प्रकार तत्त्वका ज्ञान है वह उत्पत्ति और प्रलयको जानताहै ३६॥

पुरुषकी कारणता।

पारम्पर्य्यंचिकित्साञ्चज्ञातव्ययच्चकिञ्चन ॥ ३७ ॥ भास्तम

सत्यमनृतवेद.कर्म्मशुभाशुभम् । नस्यात्कर्त्तावेदिताचपुरुषो नभवेद्यदि ॥ ३८ ॥

यदि पुरुषज्ञाता न होता तो लोक परम्परा चिकित्सा, जानने योग्य विषय, तम, ज्योतिः, सत्य, अनृत, वेद, कर्म, शुभ, अशुभ, कर्त्ता और ज्ञाता, यह कुछ भी न होते ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

नाश्रयोनसुखनार्त्तिर्नगतिर्नागतिर्नवाक् । नविज्ञानंनशास्त्राणि नजन्ममरणनच ॥ ३९ ॥ नवन्धोनचमोक्ष स्यात्पुरुषोनभवेद्यदि । कारणपुरुषस्तस्मात्कारणज्ञैरुदाहृत' ॥ ४० ॥

एवम आश्रय, सुख, रोग, गति, अगति, वाणी, विज्ञान, शास्त्र, जन्म, मरण, वध और मोक्ष यह भी न होते । इसलिये कारणके जाननेवाले बुद्धिमानोंने पुरुषको कहा है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

नचकारणमात्मास्यात्खादय स्युरहेतुकाः ।
नचैपुसम्भवेज्ज्ञाननचतै.स्यात्प्रयोजनम् ॥ ४१ ॥

यदि आतमा कारण न हो तो आकाश आदि अहेतुक हो जायगे । आकाशादिकोंमे जडत्व होनेमे ज्ञान तो होताही नहीं । इसलिये उन जडोंसे चैतन्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । अथवा यों कहिये कि वह जड होनेसे चैतन्य पुरुषको अथवा जगतको वना नहीं सकने ॥ ४१ ॥

पुरुषकी कारणताका दृष्टान्त ।

मृद्दण्डचक्रैश्चकृतकुम्भकारादृतेघटम् । कृतमृत्तृणकाष्ठैश्चगृहकाराद्विनागृहम् ॥ ४२ ॥ योवदेत्सवदेद्देहसम्भूयकरणै.कृतम् । विनाकर्त्तारमज्ञानाद्युक्त्यागमबहिष्कृत । कारणपुरुष सर्वै प्रमाणैरुपलभ्यते ॥ ४३ ॥

जैसे मट्टी, दड, चक्र यह सब उपस्थित होते हुए भी घट कुम्हारके विना उत्पन्न नहीं होसकता। इसी प्रकार मट्टी, पत्थर, लकडी आदि सब सामान होनेपर भी विना वनानेवालेके घर स्वय तय्यार नहीं होसकता । जो मनुष्य यह कहे कि विना कुम्हारके घट उत्पन्न होसकता है और विना वनानेवालेके घर स्वय वन सकता है । वह अज्ञानी मनुष्य युक्ती और शास्त्रसे विरुद्ध यह भी कह सकता है कि आकाशादि जड पदार्थोंने ही इस देहको रचा है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

येभ्य.प्रमेयसर्वेभ्यआगमेभ्य.प्रतीयते ॥ ४४ ॥

इसलिये सब प्रमाणोंसे पुरुषही कारण प्रतीत होता है । जिन सब प्रकारके शास्त्रीय प्रमाणोंसे प्रमेयकी उपलब्धि होतीहै, उन सबसे सिद्ध है कि कारण पुरुषही है ॥ ४४ ॥

अनीश्वरवादीके मतका खण्डन ।

नतेतत्सदृशास्त्वन्येपारम्पर्य्येसमुत्थिता. । सारूप्याद्येतएवेतिनिर्दिश्यन्तेनरान्नरा ॥ ४५ ॥ भावास्त्वेषासमुदयोनिरीशसत्त्वसज्ञक । कर्त्ताभोक्तानसपुमानितिकेचिद्व्यवस्थिता ॥ ॥४६॥ तेषामन्यै कृतस्यान्येभावाभावैर्नरा फलम्। भुञ्जतेसदृशा प्रातयैरात्मानोपदिश्यते ॥ ४७ ॥

कोई कहतेहैं कि इसका कर्त्ता कोई नहींहै यह परम्परासे ऐसाही चलाआताहै मनुष्यसे मनुष्य, पशुसे पशु सानुरूप होता चलाआताहै । यह ईश्वरने उत्पन्न नहीं कियाहै । सपूर्णभाव पृथ्वी, आकाश, अप, तेज, वायुके समानही शरीरकी सादृश्यताहै । उस ईश्वरके समान सृष्टि दिखाई नहीं देती । इसलिये ईश्वरने इसको नहीं बनाया यह निरीश्वरवादियोंका पक्ष है । अनात्मवादी कहतेहैं कि पुरुष न कर्त्ता है न भोक्ता है, यह स्वय ऐसाही चलाआताहै । उनके मतमें करनेवाला और होताहै,फल और भोगताहै । देखिये खानेकेलिये दूसरा पुरुष बनाता, खाता दूसरा है । इसलिये न कोई करताहै और न कोई फल भोगताहै और न कोई आत्माहै ॥ ४५ ॥४६॥४७॥

कारणानन्यतादृष्टाकर्त्तु कर्त्तासएवतु । कर्त्ताहिकरणैर्युक्तकारणसर्वकर्मणाम् ॥ ४८ ॥ निमेषकालाद्भावानाकालशीघ्रतरोऽत्यये । भग्नानान्नपुनर्भाव कृतनान्यमुपैतिच ॥ ४९ ॥

आत्मवादी कहतेहैं कि कर्त्ताही कारणोंकी सहायतासे कर्मको करताहै क्योंकि शरीरके कियेहुए कर्मोंका फल केवल अर्थात् आत्माही भोगताहै । देखनेमें भी आताहै कि परोपकारतादि जितने काम किये जातेहैं सबको आत्माही भोगताहै । जिस शरीरसे जो कार्य कियाजाताहै वह शरीर विनाशको प्राप्त होता तथा होमकताहै परन्तु करनेवाला आत्मा वही रहताहै । यह कर्त्ताही अपने करणोंसे युक्तहुआ सपूर्ण कार्योंको करताहै । निमिषमात्रमें शरीरादि सपूर्ण भाव शीघ्र नष्ट होजातेहैं और उन नष्टहुए शरीर आदि भावोंका पुनर्भाव नहीं होता । जो कर्म किया जाताहै उसका फल दूसरा नहीं भोगसकता वह कर्त्ताही कर्मोंके फलको भोगनेवाला है । क्योंकि यदि

ऐसा न हो तो जिस शरीरसे यज्ञादि किये जातेहैं वह तो इसी लोकमें नष्ट होजाताहै फिर उसके किये कर्मोको भोगनेवाला कौन मानाजायगा । इसलिये आत्माकोही कर्त्ता और कर्मका फल भोगनेवाला मानना चाहिये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

मततत्त्वविदामेतद्यस्मात्कर्त्तासकारणम् । क्रियोपभोगेभूतानानित्य.पुरुषसंज्ञकः ॥ ५० ॥ अहङ्कार फलंकर्मदेहान्तरगति' स्मृति । विद्यतेसतिभूतानाकारणेदेहमन्तरा ॥ ५१ ॥

तत्त्वके जाननेवाले इसप्रकार कहते हैं कि जिसलिये आत्मा कर्त्ता है इसीलिये इसको कारण कहतेहैं । वह कारण आत्माही मनुष्योंके कियेहुए कर्मोको भोगनेवाला है, और नित्य है तथा उसीको पुरुष कहतेहैं । अहंकार, कर्मफल, पुनर्जन्म और स्मृति तथा अन्य धर्माधर्म यह सब मनुष्योंके उस कारणरूप अन्तरात्मामही अवस्थित है देहम नहीं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

प्रभवोनह्यनादित्वाद्विद्यतेपरमात्मन ।
पुरुषोराशिसज्ञस्तुमोहेच्छाद्वेषकर्मजः ॥ ५२ ॥

वह परमआत्मा अनादि है इसलिये उसको करनेवाला कारण कोई नहीं । परन्तु चौबीस तत्त्वकी राशिभूत जो पुरुष है वह मोह, इच्छा और द्वेषजनित कर्मोसे उत्पन्न होताहै ॥ ५२ ॥

आत्मज्ञ.करणैर्योगाज्ज्ञानतस्यप्रवर्त्तते । करणानामवैमल्यादयोगाद्वानवर्त्तते ॥ ५३ ॥ पश्यतोऽपियथादर्शेसंक्लिष्टेनास्तिदर्शनम् । तद्वज्जलेवाकलुषेचेतस्युपहतेतथा ॥ ५४ ॥

आत्मा अज्ञ नहीं है अर्थात् ज्ञानवान् है । करणोंके सयोगसे इसको ज्ञान उत्पन्न होताहै । यह (करण, मन, बुद्धि और ज्ञानेंद्रियोंको कहतेहैं) । इनकरणोंके निर्मल न होनेसे तथा अयोगी होनेसे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता । जमे दर्पणमे धूल जमीरहनेसे प्रतिबिंब दिखाई नहीं देता, काई आदि जमीरहनेसे जलमें कुछ दिखाई नहीं देता । उसी प्रकार मन आदि करणोंके मलयुक्तहोनेसे ज्ञान उत्पन्न नहीहोता ॥५३॥५४॥

करणोंके नाम और कर्म ।

करणानिमनोबुद्धिर्बुद्धिकर्मेन्द्रियाणिच ।
कर्त्तुःसयोगजकर्मवेदनाबुद्धिरेवच ॥ ५५ ॥

मन, बुद्धि और बुद्धीन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय इनसबको करण कहतेहैं । कर्त्ताके साथ करणका सयोग होनेसे कर्म, दु ख और ज्ञान आदि उत्पन्न होते हैं ॥ ५५ ॥

नैकः प्रवर्त्ततेकर्त्तुंभूतात्मानाश्नुतेफलम् । संयोगाद्वर्त्ततेसर्वंत-मृतेनास्तिकिंचन ॥ ५६ ॥ नह्येकोवर्त्ततेभावोवर्त्ततेनाप्यहेतुकः । शीघ्रगत्वात्स्वभावात्तुभावोनव्यतिवर्त्तते ॥ ५७ ॥

आत्मा अकेलाही किसी कर्ममें प्रवृत्त नहीं होता और न अकेला होनेपर फल भोगता है । सबका संयोग होनेसेही सब कुछ करताहै और करणादिकोंका संयोग न होनेसे कुछ नहीं करता । इसी प्रकार पंचभूतादिभाव भी अकेले कुछ नहीं करते और न विना हेतु कुछ कर सकतेहैं अथवा यों कहिये कि आकाशादिभाव अकेले होनेमें कुछ कर नहीं सकते और कार्य विना हेतुके नहीं होता । भाव शीघ्रगामी स्वभाववाला होनेसे अपने क्रमका उल्लंघन नहीं कर सकता ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

अनादिः पुरुषोनित्योविपरीतस्तुहेतुजः । सदाकारणवन्नित्यंदृष्टं हेतुमदन्यथा ॥ ५८ ॥ तदेवभावादग्राह्यंनित्यत्वान्नकुतश्चन । भावाज्ज्ञेयंतदव्यक्तमचिन्त्यंव्यक्तमन्यथा ॥ ५९ ॥

अनादि पुरुष नित्य है जो किसी हेतुसे उत्पन्न होताहै वह अनित्य होताहै । और कारणरहित पदार्थ नित्य देखनेमें आताहै । हेतुओंसे उत्पन्न हुआ अनित्य होताहै । इसीलिये जिसका कारण नहीं उसको अनित्य मानना सर्वथा भूल है । नित्य पदार्थ किसी अन्य पदार्थसे उत्पन्न नहीं होता । वह नित्य आत्मा अव्यक्त और अचिंत्य है । उससे अन्यथा अर्थात् राशिरूप पुरुष अनित्य और प्रगटहै ५८।५९

आत्माका वर्णन ।

अव्यक्तमात्माक्षेत्रज्ञःशाश्वतोविभुरव्ययः । तस्माद्यदन्यत्त द्व्यक्तंवक्ष्यतेचापरद्वयम् ॥ ६० ॥ व्यक्तश्चेन्द्रियकश्चैवगृह्यते तद्यदिन्द्रियैः । अतोऽन्यत्पुनरव्यक्तंलिङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥६१॥

आत्मा अव्यक्त, क्षेत्रज्ञ, नित्य, विभु और अव्यय है । उससे विपरीत जो है वह व्यक्त प्रकट कहाजाताहै । व्यक्त पदार्थ इन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया जाताहै तथा अव्यक्त अतीन्द्रिय है अर्थात् इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं होसक्ता । तात्पर्य यह हुआ कि जो पदार्थ इन्द्रियों द्वारा ग्रहण न किया जाकर केवल लक्षणों द्वारा जाना जाय उसको अतीन्द्रिय तथा अव्यक्त कहतेहैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

प्रकृतियोंका वर्णन ।

खादीनिबुद्धिरव्यक्तमहङ्कारस्तथाष्टमः । भूतप्रकृतिरुद्दिष्टाविकाराश्चैवषोडश ॥ ६२ ॥ बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैवपञ्चकर्मेन्द्रिया-

णिच । समनस्काश्चपञ्चार्थाविकाराइतिसञ्जिताः ॥ ६३ ॥
इतिक्षेत्रसमुद्दिष्टसर्वमव्यक्तवर्जितम् । अव्यक्तमस्यक्षेत्रस्यक्षे-
त्रज्ञमृपयोविदु' ॥ ६४ ॥

आकाशादि पचतन्मात्रा (परमाणुरूप महाभूत) महत् तत्त्व, बुद्धि, मूल प्रकृति और अहकार यह आठ भूत प्रकृति कहेजातेहै । मन पाच ज्ञानेन्द्रिय, पाच कर्मेन्द्रिय और पाचमहाभूत इनको सोलह विकार कहतेहै । क्योंकि यह आठप्रकृतिके कार्य हैं उनसे विकार भावको प्राप्त होकर उत्पन्न हुए हैं इसलिये उनको विकार कहते हैं । अव्यक्तको छोडकर अन्य सबको क्षेत्र कहते है । और ऋषिलोग अव्यक्तआत्माको इस क्षेत्रको जाननेवाला (क्षेत्रज्ञ) कहते है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

पुरुषकी उत्पत्ति ।

जायतेबुद्धिरव्यक्ताद्बुद्ध्याहमितिमन्यते । परखादीन्यहङ्कार-
उपादत्तेयथाक्रमम् ॥ ६५ ॥ तत सम्पूर्णसर्वाङ्गोजातोऽभ्युदि-
तउच्यते । पुरुप प्रलयेचेष्टै पुनर्भावैर्नियुज्यते ॥ ६६ ॥ अव्य
क्ताद्व्यक्ततायातिव्यक्तादव्यक्ततापुन । रजस्तमोभ्यामाविष्ट-
श्चक्रवत्परिवर्त्तते ॥ ६७ ॥

अव्यक्त प्रकृतिसे बुद्धि बुद्धिसे अहकार, अहकारसे पच तन्मात्रा, और मन तथा इन्द्रियोंकी क्रमपूर्वक उत्पत्ति होतीहै । उसके उपरान्त सपूर्ण सर्वांग पुरुष राशि उत्पन्न होती है । इस चतुर्विंशति तत्त्वोंके पुतलेसे कर्माधीन अनादि कालसे मिलाहुआ चैतन्य आत्मा पुरुष कहाजाता है । यह पुरुष प्रलय समयमें इच्छित वस्तुओंसे पृथक् होजाता है । फिर इसी प्रकार अव्यक्तसे व्यक्तभावको, और व्यक्तसे अव्यक्तताको पुन पुन प्राप्त होता रहता है । यह पुरुष रजोगुण और तमोगुणमे आवेष्टित हुआ चक्रके समान घूमता रहता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

येपाद्वन्द्वेपरासक्तिरहङ्कारपराश्चये ।
उदयप्रलयौतेपानतेपायेत्वतोऽन्यथा ॥ ६८ ॥

जिन मनुष्योंकी द्वन्द्वमे परम शक्ति है अर्थात् रजोगुण और तमोगुणसे आवेष्टित होकर-द्वेष, काम, अहकार आदिमें चित्तवृत्ति लगी रहती है वह मनुष्य वारवार जन्म लेतेहै और मरते है । परन्तु इनसे विपरीत अर्थात् सतोगुणवाले मनुष्योंको ज्ञान प्राप्त होनेसे इस जन्म मरणके चक्रमें नहीं आना पडता ॥ ६८ ॥

जीवनमरणके लक्षण।

प्राणापानौनिमेषाद्याजीवनमनसोगतिः। इन्द्रियान्तरसञ्चाराप्रेरणंधारणञ्चयत् ॥ ६९ ॥ देशान्तरगतिः स्वप्नेपञ्चत्वग्रहणं तथा। दृष्टस्यदक्षिणेनाक्ष्णासव्येनापगमस्तथा ॥ ७० ॥ इच्छाद्वेषः सुखदुःखंप्रयत्नश्चेतनाधृतिः। बुद्धिःस्मृतिरहङ्कारो लिङ्गानिपरमात्मनः ॥ ७१ ॥ यस्मात्समुपलभ्यन्तेलिंगान्येतानिजीवतः। नमृतस्यात्मलिगानितस्मादाहुर्महर्षयः ॥७२॥ शरीरंहिगतेतस्मिञ्छून्यागारमचेतनम्। पञ्चभूतावशेषत्वात्पञ्चत्वंगतमुच्यते ॥ ७३ ॥

श्वासलेना और छोड़ना, आखका झपकना, जीवन, मनकीगती, एक इन्द्रियसे दूसरी इन्द्रियमें सञ्चारकरना इन्द्रियोंका इधरउधर प्रेरण करना, देशांतर आदिकमें गमनकरना, स्वप्नमें अनेक प्रकारका ज्ञान होना, पंचभूतोंके तत्त्वोंको जानना। दक्षिण नेत्रसे देखेहुए पदार्थको वामनेत्रसे पहिचानलेना इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न, चेतना, धृति, बुद्धि, स्मृति और अहंकार यह सब लक्षण जीवित मनुष्यके हैं। मृत मनुष्यमें यह लक्षण नहीं होते। इसीलिये आत्माके जाननेवाले महर्षि इन सबको आत्माके लक्षण कथन करतेहैं। इन लक्षणोंवाली आत्माके निकलजानेसे शरीर भयानक, चेतनारहित, शून्य घरके समान दिखाई देने लगताहै। आत्माके निकल जानेपर केवल पंचभूतमात्रका पुतला पड़ा रहताहै। इसीलिये इसको पंचत्व (मरण) को प्राप्त होगया ऐसा कहतेहैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

आत्माको कर्तृत्व।

अचेतनंक्रियावच्चमनश्चेतयितापरः। युक्तस्यमनसातस्यनिर्दिश्यतेविभोः क्रिया ॥ ७४ ॥ चेतनावान्यतश्चात्मातनः कर्त्तानिरुच्यते। अचेतनत्वाच्चमनः क्रियावदपिनोच्यते ॥७५॥

मन अचेतन है और आत्मा चैतन्य है। यह आत्माही मनको चैतन्य करनेवाला है। आत्माके आश्रयही मनकी संपूर्ण क्रियायें होती हैं। क्योंकि आत्मा चेतनावान् है इसलिये मनकी क्रियाओंका वही कर्ता माना जाताहै। मन अचेतन होनेसे क्रिया करता हुआ भी कर्त्ता नहीं कहा जाता ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

यथास्वेनात्मनः सर्वमनः सर्वासुयोनिषु।
प्राणैस्तन्त्रयतेप्राणीनह्यन्योऽन्यस्यतन्त्रकः ॥ ७६ ॥

जो जिस प्रकारका कर्म करताहै वह अपनी इच्छा न होनेपर भी अपने किये हुए कर्मके आधीन होकर सबप्रकारकी योनियोंमें प्राप्त होताहै। मनुष्य अपने कर्मों-द्वाराही अपनी आत्माको अनेक प्रकारकी योनियोमे लेजाताहै इसको और कोई किसी योनिमे प्राप्त नहीं करता ॥ ७६ ॥

आत्माका जितेन्द्रियत्व।

वशीतत्कुरुतेकर्मयत्कृत्वाफलमश्नुते।
वशीचेत समाधत्तेवशीसर्वनिरस्यति ॥ ७७ ॥

अपनी इच्छाके अनुसार प्रवृत्त होनेवाला आत्मा शुभाशुभ कर्मको करताहै ओर उस कर्मके करनेसे शुभ और अशुभ फलोंको भोगताहै। और अपने आधीनही होकर योग, समाधि आदिमे प्रवृत्त हो सपूर्ण जालको छोडकर मोक्षको प्राप्त होजाताहै उसको वशी कहते हैं ॥ ७७ ॥

देहीसर्वगतोह्यात्मास्वेस्वेसस्पर्शनेन्द्रिये।
सर्वा सर्वाश्रयस्थास्तुनात्मातोवेत्तिवेदना ॥ ७८ ॥

देहको धारणकरनेवाला आत्मा सपूर्ण शरीरमे गमनकरनेवाला होनेसे- स्पर्शयुक्त शरीरकेही सुख दुःखको जानताहै। केश, नख आदि जो स्पर्शयुक्त नहीं हैं अर्थात् मनुष्यके शरीरकी स्पर्शनेन्द्रिय जिस स्थानमे प्राप्त नहीं है उसके सुख दुःखको नहीं जानसकता ॥ ७८ ॥

आत्माकी व्यापकता।

विभुत्वमतएवास्ययस्मात्सर्वगतोमहान्। मनसश्चसमाधाना त्पश्यत्यात्मातिरस्कृतम् ॥ ७९ ॥ नित्यानुबन्धमनसादेहक-र्मानुपातिना। सर्वयोनिगतविद्यादेकयोनावपिस्थितम् ॥८०॥

क्योंकि आत्मा सर्वगत है और महान है इसलिये इसको विभु कहते है। यह आत्मा योग, समाधीके बलसे दीवार और पर्वतसे छिपी हुई वस्तुको भी देखसकता है। कर्म देहका अनुवर्त्ती होनेसे देहान्तरमे गमन कर सकताहै। मनके साथ आत्माका नित्य सबध होनेसे वह नाना योनियामें गमन करता हुआ भी एक योनिमे रहनेके समान होताहै ॥ ७९ ॥ ८० ॥

आत्माका अनादित्व।

आदिर्नास्त्यात्मन क्षेत्रपारम्पर्य्यमनादिकम्।
अतस्तयोरनादित्वात्किंपूर्वमितिनोच्यते ॥ ८१ ॥

आत्मा अनादि है और क्षेत्र परम्परा भी अनादि है । जब दोनो अनादि है फिर उनमें पहिले और पीछेका प्रश्नही नहीं होसकता ॥ ८१ ॥

आत्माका सर्वसाक्षित्व ।

ज्ञ.साक्षीत्युच्यतेनाज्ञ साक्षीह्यात्माह्यत.स्मृत. ।
सर्वभावाहिसर्वेपाभूतानामात्मसाक्षिका ॥ ८२ ॥

आत्मा ज्ञाता होनेसे साक्षी कहा जाताहै क्योकि अज्ञ साक्षी नहीं होसकता । मनुष्यके संपूर्ण भावोंका साक्षी आत्माही है ॥ ८२ ॥

नैक.कदाचिद्भूतात्मालक्षणैरुपलभ्यते। विशेषोऽनुपलभ्यस्यतस्यनैकस्यविद्यते ॥ ८३ ॥ संयोगःपुरुपस्येष्टोविशेपोवेदनाकृतः । वेदनायत्रनियताविशेपस्तत्रतत्कृत ॥ ८४ ॥

पुरुष (आत्मा) एकही है यह किसी लक्षणद्वारा सिद्ध नहीं होसकता अर्थात् पुरुष अनेक है । तात्पर्य यह हुआ कि चैतन्य आत्मा संपूर्ण संसारमे एकही है ऐसा नहीं, किन्तु अनन्त और अनेक आत्मा हैं । इसीलिये दूसरे आत्माके सुखदुःखादिकोंको अथवा पीडाको दूसरा आत्मा नहीं जानसकता । पुरुष (आत्मा) का जिस स्थानतक संयोग होताहै वहांतककी पीडाका ज्ञान सकताहै । इसलिये शरीरमें होनेवाली पीडाको तथा ज्ञानद्वारा जहांतक गतिहै वहांतक जानसकताहै ॥८३॥८४॥

अतीतरोगकी चिकित्सा ।

चिकित्सतिभिपक्सर्वास्त्रिकालात्वेदनाइति ।
यथायुक्त्यावदन्त्येकेसायुक्तिरुपधार्य्यताम् ॥ ८५ ॥

चिकित्सक भूत,भविष्य और वर्तमान इन तीनो प्रकारकी व्याधियोंकी चिकित्सा कर सकताहै । इनकी चिकित्सा करनेकी जिस युक्तिको आचार्योंने कथन कियाहै उसको तुम श्रवण करो ॥ ८५ ॥

पुनस्तच्छिरस.शूलज्वर सपुनरागत । पुन सकालोनलनाश्छर्दि.सापुनरागता ॥ ८६ ॥ एभि प्रसन्नैर्वचनैरतीतागमनमनम्। कालश्चायमतीतानामार्त्तीनापुनरागत ॥ ८७ ॥ तमर्त्तिकालमुद्दिश्यभेपजयत्प्रयुज्यते । अतीतानाप्रशमनंवेदनानानदुच्यते ॥ ८८ ॥

सिरकी पीडाका एकवार शान्तहोकर फिर प्रगटहोजाना तथा ज्वर, खांसी और वमनका एकवार शान्तहोकर फिर प्रगटहोजाना अतीतागमन कहाजाताहै । अतीत

(भूतकाल) व्याधियें फिर पहिलेकी समान आकर उपस्थित होजातीहै । इसलिये उनका दौरा होनेसे प्रथम उनके अतीतकालके लक्षणोंको विचारकर औषधीका प्रयोगकरना अतीतव्याधियोंकी चिकित्सा कही जातीहै । जैसे नित्य दोपहरके समय किसीके शिरमें पीडा होतीहो और सायकालम शान्त होजाय उस शान्तावस्थामें चिकित्सा करते समय जो पीडा व्यतीत होचुकीहै उसकाही लक्ष्य रखकर औषध प्रयोग कियाजाताहै । इसीप्रकार चातुर्थिकज्वर आदिमें जाननाचाहिये इसको अतीतव्याधीकी चिकित्सा कहतेहैं ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

भविष्यत्रोगकी चिकित्सा ।

आपस्ता पुनरागुर्यायाभिःशस्यपुराहतम् । तथाप्रक्रियतेसेतु - प्रतिकर्मतथाश्रयेत् ॥ ८९ ॥ पूर्वरूपविकाराणाद्दृष्ट्वाप्रादुर्भविष्यताम् । याक्रियाक्रियतेसाचवेदनाहन्त्यनागताम् ॥ ९० ॥

जिस जलकी बाढने पहिले खेतीको नष्टकर डालाथा वह फिर आकर खेतीको नष्ट न करदेवे उसके बचावके लिये खेतकी रक्षाकारक सेतु आदि बना रखना अथवा नदीके वेगको देखकर खेतीके नष्टताका अनुमान करके बाढआनेसे पहिले रक्षाका प्रबन्ध करलेना, जिसप्रकार भविष्यत् हानिकी रक्षाका उपाय है उसीप्रकार विकारोंके पूर्वरूपको देखकर उनके प्रकटहोनेके पहिले क्रिया करना अनागतव्याधी अर्थात् भविष्यव्याधीकी चिकित्सा कहीजातीहै ॥ ८९ ॥ ९० ॥

पारम्पर्य्यानुबन्धस्तुदु खानाविनिवर्त्तते । सुखहेतूपचारेणसुखञ्चापिप्रवर्त्तते ॥ ९१ ॥ नसमायान्तिवैषम्यविषमाःसमतां नच । हेतुभिःसदृशानित्यजायन्तेदेहधातवः ॥ ९२ ॥

वर्तमान व्याधीकी चिकित्सामें कोई आक्षेप नहीं होसकता क्योंकि रोगका परम्परासे जो अनुबन्ध चलाआताहै अर्थात् क्रमपूर्वक क्षणक्षणमें रोग जो कष्ट आदि देरहाहै वह चिकित्साद्वारा निवृत्त होनेसे रोगीको सुख प्राप्त होताहै और सुखके लियेही चिकित्साकी प्रवृत्ति है तथा समधातुएं विषमताको प्राप्त नहीं होतीं और सपूर्ण धातुयें सम भी नहीं होतीं क्योंकि जैसे हेतुओंका सयोग होताहै वैसी शरीरकी धातुएं होतीजातीहैं । इसलिये धातुओंकी अवस्थाका ध्यान रखतेहुए सपूर्ण औषधी तथा आहारादिकोंका प्रयोग वर्तमान व्याधीकी चिकित्सा कहीजातीहै ॥९१॥९२॥

युक्तिमेतापुरस्कृत्यत्रिकालावेदनाभिपक् ।
हन्तीत्युक्ताचिकित्सासानैष्टिकीयाविनोपधाम् ॥ ९३ ॥

वैद्य इस युक्तिका आश्रय लेकर तीनोकालकी व्याधियोंको नष्ट कर सक्ताहै। इस चिकित्साकोही नैष्ठिकी अर्थात् रोगनाशनी चिकित्सा कहतेहै ॥ ९३ ॥

उपधाहिपरोहेतुर्दुःखदुःखाश्रयप्रद । त्याग सर्वोपधानाञ्चस र्वदुःखव्यपोहक ॥ ९४ ॥ कोपकारोयथाह्यंशूनुपादत्तेवधप्रदान् । उपादत्तेतथार्थेभ्यस्तृष्णामज्ञ'सदातुरः ॥ ९५ ॥ यस्त्वग्निकल्पानर्थाञ्ज्ञोज्ञात्वातेभ्योनिवर्त्तते । अनारम्भादसंयोगात्तंदुःखंनोपतिष्ठते ॥ ९६ ॥

जिस चिकित्सामे किसीप्रकारका लोभ, आदिक उपाधि न हो वह चिकित्सा सुखदायक होतीहै । क्योंकि उपाधिही दु खका कारण है । सबप्रकारकी उपाधियोंको त्यागदेनाही परमसुखका अवलम्बन है । जसे कोषकार (मकडी) अपने सूत्रमे बधकर आपही प्राणोंको त्यागदेतीहै वैसेही मूर्ख मनुष्य भी अतिलाभ आदि उपाधिसे भ्रमितहो अपनेको आपही नष्टकर डालताहै । जो मनुष्य काम, लोभादिक विषयोको अग्निके समान समझकर उनसे निवृत्त रहतेहै अर्थात् विषयोंकी उपाधियोंमे नहीं फसते वह रागद्वेषमे किसी काममें प्रवृत्त न होकर दु.खके सयोगसे बचे रहतेहै ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

धीधृतिस्मृतिविभ्रंश सम्प्राप्ति कालकर्मणाम् । असात्म्यार्थागमश्चेतिज्ञातव्यादु खहेतव ॥ ९७ ॥ विषमाभिनिवेशोयोनित्यानित्येहिताहिते । ज्ञेय'सबुद्धिविभ्रंश समबुद्धिर्हिपश्यति ॥ ॥ ९८ ॥ विषयप्रवणचित्तधृतिभ्रंशान्नशक्यते । नियन्तुमहितादर्थाद्धृतिर्हिनियमात्मिका ॥ ९९ ॥ तत्त्वज्ञानेस्मृतिर्यस्यरजोमोहावृतात्मन । भ्रश्यतेसस्मृतिभ्रंश स्मर्त्तव्यहिस्मृतौ स्थितम् ॥ १०० ॥

बुद्धि, धृति और स्मृति इनका नष्टहोना अयोग्य काल और अयोग्य कर्मोका सयोग होना तथा असात्म्य पदार्थोंका सयोग होना यह सब दु खके हेतु है । नित्य और अनित्य, हित और अहित इनको उल्टी रीतिसे देखना अर्थात् हितको अहित जानना और अहितको हित जानना, नित्यको अनित्य, अनित्यको नित्य जानना इत्यादि सब बुद्धिका विभ्रंश कहलाताहै । यथोचित रीतिपर जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसाही जानना उसको सद्बुद्धि कहते है । विषयोंमें चित्तको लगाना अप-

नेको विषयोंसे न हटासकना धृतिभ्रंश कहाजाताहै । क्योंकि धृतिही महत् अर्थोंको नियममें लानेवाली होनेसे नियमात्मिका कहीजातीहै । रजोगुणसे और मोहसे आवृत हुए मनुष्यकी स्मरणशक्तिका नष्टहोजाना स्मृतिभ्रंश कहाजाताहै । ज्ञानका स्मरण रहनाही स्मर्त्तव्य विषय है और उस स्मर्त्तव्य विषयके धारण करनेवाली स्मृति होतीहै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

प्रज्ञापराध ।

धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टःकर्मयत्कुरुतेऽशुभम्।प्रज्ञापराधतंवियात्स र्वदोषप्रकोपणम्॥१०१॥उदीरणगतिमतामुदीर्णानाञ्चनिग्रहः । सेवनसाहसानाञ्चनारीणाञ्चातिसेवनम् ॥ १०२ ॥ कर्मकाला- तिपातश्चमिथ्यारम्भश्चकर्मणाम् । विनयाचारलोपश्चपूज्या- नाञ्चाभिधर्षणम् ॥ १०३ ॥ ज्ञातानास्वयमर्थानामहितानानि षेवणम् । परमौन्मादिकानाञ्चप्रत्ययानानिषेवणम् ॥ १०४ ॥ अकालादेशसञ्चारौमैत्रीसंक्लिष्टकर्मभि । इन्द्रियोपक्रमोक्त- स्यसद्वृत्तस्यचवर्जनम् ॥ १०५ ॥ ईर्ष्यामानमदक्रोधलोभमो- हमदभ्रमाः । तज्जवाकर्मयत्क्लिष्टंक्लिष्टयद्देहकर्मच ॥ १०६ ॥ यच्चान्यदीदृशंकर्मरजोमोहसमुत्थितम् । प्रज्ञापराधतंशिष्टाब्रु- वतेव्याधिकारणम् ॥ १०७ ॥ बुद्ध्याविषमविज्ञानविषमञ्चप्रव र्त्तनम् । प्रज्ञापराधजानीयान्मनसोगोचरहितत् ॥ १०८ ॥

बुद्धि, धृति और स्मृतिके नष्टहोनेसे यह मनुष्य जिन अशुभ कर्मोंको करताहै उसको प्रज्ञापराध अर्थात् बुद्धिका दोष कहते हैं । और वह बुद्धिका दोष सब दोषोंको कुपितकरनेवाला होताहै । जैसे—काम, क्रोधादि वेगोंको न रोकना और मल मूत्रादि वेगोंको रोकलेना अयोग्य साहस करना, अति स्त्रीसंग करना, सपूर्ण कर्मोंको यथा- समय न करना, कर्मोंका मिथ्यारंभ करना, विनय और आचार त्यागदेना माता पिता गुरुजन आदिकोंका अपमान करना जानबूझकर बुरे कर्मोंका सेवनकरना परम उन्मादकेसे कर्मोंका करना, वेसमय निंदित स्थानमें डोलना, फिरना, खोटे कर्मोंमें प्रेम रखना, इन्द्रियोपक्रम अर्थात् इन्द्रियोपयोगी श्रेष्ठ आचरणका त्यागदेना, ईर्षा, मान, मद, क्रोध, लोभ, मोह और भ्रम उनका धारण करना और इनमें उत्पन्न होनेवाले निंदित कर्मोंका सेवन करना,एवम् देहजनित और मनके सब खोटे कर्मोंका

वैद्य इस युक्तीका आश्रय लेकर तीनोकालकी व्याधियोको नष्ट कर सकताहै। इस चिकित्साकोही नैष्ठिकी अर्थात् रोगनाशनी चिकित्सा कहतेहैं ॥ ९३ ॥

उपधाहिपरोहेतुर्दुःखदुःखाश्रयप्रदः । त्यागः सर्वोपधानाश्चसर्वदुःखव्यपोहकः ॥ ९४ ॥ कोपकारोयथाह्यंशूनुपादत्तेवधप्रदान् । उपादत्तेतथार्थेभ्यस्तृष्णामज्ञः सदातुरः ॥ ९५ ॥ यस्त्वग्निकल्पानर्थाञ्ज्ञोज्ञात्वातेभ्योनिवर्त्तते । अनारम्भादसंयोगात्तंदुःखनोपतिष्ठते ॥ ९६ ॥

जिस चिकित्सामें किसीप्रकारका लोभ, आदिक उपाधि न हो वह चिकित्सा सुखदायक होतीहै । क्योंकि उपाधिही दुःखका कारण है । सबप्रकारकी उपाधियोंको त्यागदेनाही परमसुखका अवलम्बन है । जैसे कोपकार (मकडी) अपने सूत्रसे वधकर आपही प्राणोको त्यागदेतीहै वैसेही मूर्ख मनुष्य भी अतिलोभ आदि उपाधिसे ग्रसितहो अपनेको आपही नष्टकर डालताहै । जो मनुष्य काम, लोभादिक विषयोंको अग्निके समान समझकर उनसे निवृत्त रहतेहैं अर्थात् विषयोंकी उपाधियोंमें नहीं फसते वह रागद्वेषसे किसी काममें प्रवृत्त न होकर दुःखके संयोगसे बचे रहतेहैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

धीधृतिस्मृतिविभ्रंशः सम्प्राप्तिःकालकर्मणाम् । असात्म्यार्थागमश्चेतिज्ञातव्यादुःखहेतवः ॥ ९७ ॥ विषमाभिनिवेशोयोनित्यानित्येहिताहिते । ज्ञेयःसबुद्धिविभ्रंशः समबुद्धिर्हिपश्यति ॥ ॥ ९८ ॥ विषयप्रवणंचित्तंधृतिभ्रंशान्नशक्यते । नियन्तुमहितादर्थाद्धृतिर्हिनियमात्मिका ॥ ९९ ॥ तत्त्वज्ञानेस्मृतिर्यस्यरजोमोहावृतात्मनः । भ्रश्यतेसस्मृतिभ्रंशः स्मर्त्तव्यंहिस्मृतौस्थितम् ॥ १०० ॥

बुद्धि, धृति और स्मृति इनका नष्टहोना अयोग्य काल और अयोग्य कर्मोका संयोग होना तथा असात्म्य पदार्थोंका संयोग होना यह सब दुःखके हेतु हैं । नित्य और अनित्य, हित और अहित इनको उल्टी रीतिसे देखना अर्थात् हितको अहित जानना और अहितको हित जानना, नित्यको अनित्य, अनित्यको नित्य जानना इत्यादि सब बुद्धिका विभ्रंश कहाजाताहै । यथोचित रीतिपर जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसाही जानना उसको सद्बुद्धि कहते हैं । विषयोंमें चित्तको लगाना अप-

नेको विषयोंसे न हटासकना धृतिभ्रंश कहाजाताहै। क्योंकि धृतिही महत् अर्थोंको नियममें लानेवाली होनेसे नियमात्मिका कहीजातीहै। रजोगुणसे और मोहसे आवृत हुए मनुष्यकी स्मरणशक्तिका नष्टहोजाना स्मृतिभ्रंश कहाजाताहै। ज्ञानका स्मरण रहनाही स्मर्त्तव्य विषय है और उस स्मर्त्तव्य विषयके धारण करनेवाली स्मृति होतीहै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

प्रज्ञापराध।

धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टःकर्मयत्कुरुतेऽशुभम्।प्रज्ञापराधतंविद्यात्स र्वदोषप्रकोपणम्॥१०१॥उदीरणगतिमतामुदीर्णानाञ्चनिग्रहः। सेवनसाहसानाञ्चनारीणाञ्चातिसेवनम् ॥ १०२ ॥ कर्मकाला- तिपातश्चमिथ्यारम्भश्चकर्मणाम् । विनयाचारलोपश्चपूज्या- नाञ्चाभिधर्षणम् ॥ १०३ ॥ ज्ञातानास्वयमर्थानामहितानानि- षेवणम्। परमोन्मादिकानाञ्चप्रत्ययानानिषेवणम् ॥ १०४ ॥ अकालादेशसञ्चारौमैत्रीसङ्क्लिष्टकर्मभिः । इन्द्रियोपक्रमोक्त- स्यसद्वृत्तस्यचवर्जनम् ॥ १०५ ॥ ईर्ष्यामानमदक्रोधलोभमो- हमदभ्रमाः । तज्जवाकर्मयत्क्लिष्टंक्लिष्टंयद्देहकर्मच ॥ १०६ ॥ यच्चान्यदीदृशंकर्मरजोमोहसमुत्थितम्। प्रज्ञापराधतंशिष्टाब्रु- वतेव्याधिकारणम् ॥ १०७ ॥ बुद्ध्याविषमविज्ञानविषमञ्चप्रव- र्त्तनम्। प्रज्ञापराधजानीयान्मनसोगोचरहितत् ॥ १०८ ॥

बुद्धि, धृति और स्मृतिके नष्टहोनेसे यह मनुष्य जिन अशुभ कर्मोंको करताहै उसको प्रज्ञापराध अर्थात् बुद्धिका दोष कहते हैं। और वह बुद्धिका दोष सब दोषोंको कुपितकरनेवाला होताहै। जैसे–काम, क्रोधादि वेगोंको न रोकना और मल मूत्रादि वेगोंको रोकलेना अयोग्य साहस करना, अति स्त्रीसंग करना, संपूर्ण कर्मोंको यथा- समय न करना, कर्मोंका मिथ्यारंभ करना, विनय और आचार त्यागदेना माता पिता गुरुजन आदिकोंका अपमान करना जानबूझकर बुरे कर्मोंका सेवनकरना परम उन्मादकेसे कर्मोंका करना, बेसमय निंदित स्थानमें डोलना, फिरना, खोटे कर्मोंमें प्रेम रखना, इन्द्रियोपक्रम अर्थात् इन्द्रियोपयोगी श्रेष्ठ आचरणका त्यागदेना, ईर्षा, मान, मद, क्रोध, लोभ, मोह और भ्रम उनका धारण करना और इनसे उत्पन्न होनेवाले निंदित कर्मोंका सेवन करना,एवम् देहजनित और मनके सब खोटे कर्मोंका

सेवन तथा इसी प्रकारके अन्य कर्म जो रजोगुण और तमोगुणसे उत्पन्न होते है उनका सेवन करना भद्रपुरुष इन सब कर्मोंको प्रज्ञापराध कहते हैं प्रज्ञापराधही व्याधियोंके उत्पन्न करनेका हेतु है । योग्य विषयको विपरीत भावसे समझना और अयोग्यको योग्य समझना इस प्रकार जो बुद्धिका दोष है उसीको प्रज्ञापराध कहतेहै । वह प्रज्ञापराध मनके आधीन है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

निर्दिष्टाकालसम्प्राप्तिर्व्याधीनाहेतुसग्रहे । चयप्रकोपप्रशमा. पित्तादीनायथापुरा ॥ १०९ ॥ मिथ्यातिहीनलिंगाश्चवर्षान्ता रोगहेतव.।जीर्णभुक्तप्रजीर्णान्नकालाकालस्थितिश्चया॥११०॥ पूर्वमध्यापराह्णाश्चरात्र्यायामास्त्रयश्चये। येपुकालेपुनियतायेरोगास्ते च कालजा· ॥ १११ ॥ अन्येद्युष्कोद्व्यहग्राहीतृतीयकचतुर्थको । स्वेस्वेकालेप्रवर्त्तन्तेकाले ह्येपाबलागम ॥ ११२ ॥ एतेचान्येचयेकेचित्कालजाविविधागदा । अनागते चिकित्स्यास्तेबलकालौविजानता ॥ ११३ ॥

जिसप्रकार काल सम्प्राप्ति तथा व्याधियोंके हेतु सग्रह (कियतः शिरशीय अध्याय) में पित्त आदिकोंका चय, प्रकोप और प्रशमन पहिले कथनकर आये हैं तथा शीत आदिक वर्षापर्यन्त ऋतुओंका मिथ्यायोग, अतियोग हीनयोग होनेसे रोग उत्पन्न होतेहैं । भोजनके जीर्ण होनेपर भोजनके समय, भोजनके पाककालमें दोषोंकी जिसप्रकार स्थिति होतीहै, पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्नमें इसीप्रकार रात्रिके तीनोभागोंमे और जिनकालोंमें जो रोग जिसप्रकार नियत हैं तथा जो जिसकालमें उत्पन्न होतेहैं एवम् इकतरा, द्व्याहिक, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर जिसप्रकार अपने २ कालमें आकर स्थित होतेहैं इन सबको कालज्य व्याधियें कहतेहैं । बुद्धिमान् वैद्य इन व्याधियोंके प्रगट होनेके कालसे पहिलेही चिकित्साद्वारा बल काल विचारकर उसका उपाय करे ॥ १०९ ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

स्वाभाविकरोगोंका वर्णन ।

कालस्यपरिणामेनजरामृत्युनिमित्तजा ।
रोगा.स्वाभाविकादृष्टा स्वभावोनिष्प्रतिक्रिय ॥ ११४ ॥

कालके परिणामसे वुढापे और मृत्युके निमित्तमे जो रोग उत्पन्न होतेहैं उनको स्वाभाविकरोग कहतेहैं । स्वाभाविकरोगोंकी कोई चिकित्सा नहीं है ॥ ११४ ॥

निर्दिष्टदैवशब्देनकर्मयत्पौर्वदैहिकम् ।
हेतुस्तदपिकालेनरोगाणामुपलभ्यते ॥ ११५ ॥

पूर्वजन्मके कियेहुए कर्मोको दैव अथवा प्रारब्ध कहतेहै । यह दैव भी काल पाकर रोगाका कारण प्रतीत होताहै ॥ ११९ ॥

कर्मरोगोकी शान्ति ।

नहिकर्ममहत्किञ्चित्फलयस्यनभुज्यते ।
क्रियाघ्नाःकर्मजारोगाःप्रशमयान्तिततक्षयात् ॥ ११६ ॥

ऐसा कोईभी सूक्ष्मसे सूक्ष्म और महान्से महान् कर्म नहीं है जिसका फल न भोगना पडता हो । यह कर्मसे उत्पन्न हुए रोग क्रिया अथवा प्रायश्चित्त करनेसे शान्त होजातेहै ॥ ११६ ॥

श्रवणसयोगादिवर्णन ।

अत्युग्रशब्दश्रवणाच्छ्रवणात्सर्वशोनच । शब्दानाश्चातिहीना नाभवन्तिश्रवणाज्जडा ॥११७॥ परुषोद्भीषणप्रशस्ताप्रियव्यसनसूचके ।शब्दैःश्रवणसयोगोमिथ्यायोग सउच्यते ॥ ११८ ॥

अत्यन्त उग्र शब्द सुनना और बहुत कालपर्यन्त तीक्ष्ण अवाजका सुनतेरहना श्रवणेन्द्रियका अतियोग है । सर्वथा न सुनना अथवा अत्यन्त हीन शब्दोंका सुनना यह श्रवणेन्द्रियका अयोग है । कठोर शब्द, निंदित शब्द, अप्रिय शब्द और विपत्तिके याद दिलानेवाले शब्दोंका सुनना श्रवणेन्द्रियका मिथ्यायोग है । इन तीनों योगोंके प्रयोगसे श्रवणेन्द्रियमे जडता उत्पन्न होती है ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

त्वगिन्द्रियसयोगाद्दिव० ।

असस्पर्शोऽतिसस्पर्शोहीनसस्पर्शएवच । स्पृश्यानासग्रहेणोक्त स्पर्शनेन्द्रियबाधक. ॥ ११९ ॥ योभूतविषवातानामकालेनागतश्चय । स्नेहशीतोष्णसस्पर्शोमिथ्यायोग सउच्यते ॥ १२० ॥

किसी वस्तुका भी स्पर्श न करना, अत्यत स्पर्श करना, बहुत हीन स्पर्श करना, भूतसस्पर्श होना, विषसस्पर्श, तीक्ष्णवायुका सस्पर्श, बेसमयके स्नेह, शीत और ऊष्णका सस्पर्श मिथ्यायोग कहाजाताहै । स्पर्शनेन्द्रियका मिथ्यायोग होनेसे स्पर्शशक्ति हीन होजातीहै ॥ ११९ ॥ १२० ॥

दर्शनेन्द्रियस० व० ।

रूपाणाभास्वतादृष्टिर्विनश्यतिचदर्शनात् ॥ १२१॥ दर्शनाच्चातिसूक्ष्माणासर्वशश्चाप्यदर्शनात् । द्विष्टभैरववीभत्सदूरातिश्लिष्टदर्शनात् । तामसानाञ्चरूपाणामिथ्यासंयोगउच्यते ॥ १२२ ॥

अत्यन्त प्रकाशवान वस्तुओंको देखना अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थोंको देखना सर्वथा किसी वस्तुको भी न देखना, द्वेषयुक्त, भयानक बीभत्स पदार्थोंका देखना बहुत दूरसे बडी देरतक देखना और जिसके देखनेसे कष्ट हो उसको देखना, तथा तामसरूपोंका देखना यह सब दृष्टिका मिथ्यायोग कहाजाताहै ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

रसनेन्द्रियस० व० ।

अत्यादानमनादानमोकसात्म्यादिभिश्चयत् ।
रसानांविषमादानमल्पादानञ्चदूषणम् ॥ १२३ ॥

रसविशेषोंको अत्यन्त ग्रहण करना, अथवा कोइ रस भी बिलकुल ग्रहण न करना, विपरीततासे ग्रहणकरना, या अत्यन्तही हीनतासे ग्रहणकरना अत्यत तीक्ष्णरसोंका ग्रहणकरना रसनेन्द्रियका मिथ्यायोग कहाताहै । रसनेन्द्रियका मिथ्यायोग होनेसे जिह्वाकी शक्ति हीन होजातीहै ॥ १२३ ॥

घ्राणेन्द्रिय स० व० ।

अतिमृद्वतितीक्ष्णानागन्धानासुपसेवनम् ॥ १२४ ॥ असेवनं सर्वशश्चघ्राणेन्द्रियविनाशनम् । पूतिभूतविषद्विष्टागन्धाये चाप्यनार्त्तवा. ॥ १२५ ॥ तैर्गन्धैर्घ्राणसयोगोमिथ्यायोग स उच्यते ॥ १२६ ॥

अति मृदु और अत्यन्त तीक्ष्ण गधके सूघनेसे या सर्वथा किसी गधके न सूघनेसे और दुर्गंध तथा विषदूषित अथवा जो बुरी प्रतीत हो उस गधके सूघनेसे, और अकालमें प्रगटहुई गधके सूघनेसे घ्राणेन्द्रियका मिथ्यायोग होनेसे घ्राणशक्ती हीन होजातीहै ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

असात्म्यलक्षण ।

इत्यसात्म्यार्थसयोगस्त्रिविधोदोषकोपनः ।
असात्म्यमितितद्विद्याद्यन्नयातिसहात्मताम् ॥ १२७ ॥

इसप्रकार इन्द्रियोंका अयोग, अतियोग और मिथ्यायोग यह तीन प्रकारका असात्म्य सयोग होनेसे दोष कुपित होकर इन्द्रियोंको नष्ट करदेतेहै । जो पदार्थ

अथवा जो विषय आत्माके साथ न मिले अर्थात् अपने स्वभावके अनुकूल न हो उसको असात्म्य कहतेहै ॥ १२७ ॥

मिथ्यातिहीनयोगेभ्योयोव्याधिरुपजायते ।
शब्दादीनासविज्ञेयोव्याधिरैन्द्रियकोवुधै. ॥ १२८ ॥

शब्दादिक विषयोका श्रवणादि इन्द्रियोसे मिथ्यायोग, अतियोग और हीनयोग होनेसे जो व्याधिय उत्पन्न होतीहै उनको बुद्धिमान् लोग ऐन्द्रियकव्याधि कहतेहै ॥ १२८ ॥

वेदनानामशातानामित्येतेहेतव स्मृता ।
सुखहेतुर्मतस्त्वेकःसमयोग सुदुर्लभ. ॥ १२९ ॥

इसप्रकार असात्म्य पदार्थोका सेवन अथवा मिथ्यायोगसे सेवन व्याधि उत्पन्न करनेका कारण होताहै । और विधिवत् समानयोगसे सेवन करना सुखका हेतु होताहै परन्तु सपूर्ण पदार्थोका समयोगसे सेवन करना भी दुर्लभहै ॥ १२९ ॥

सुखदु'खोके प्रधानहेतु ।

नेन्द्रियाणिनचैवार्था सुखदु.खस्यहेतव । हेतुस्तुसुखदु खस्य योगोदृष्टश्चतुर्विध ॥ १३० ॥ सन्तीन्द्रियाणिसन्त्यर्थायोगोन चनचास्तिरुक् । नसुखकारण तस्माद्योगएवचतुर्विध' ॥ १३१ ॥

सुख और दु खके हेतु न तो सपूर्ण इन्द्रिय हैं और न अर्थही (इन्द्रियोके विषय) है । किन्तु चतुर्विध योगका होनाही सुखदु खका हेतु होताहै । अर्थात् तीन प्रकारके असात्म्य योगोंका होना दु'खका कारण होताहै और केवल समयोगका होनाही सुखका कारण होताहै सपूर्ण इन्द्रियें भी हो और इन्द्रियोके विषय भी हो परन्तु पूर्वोक्त चारप्रकारका योग न होनेसे न सुख होताहै और न व्याधीही होसक्ती है ॥ १३० ॥ १३१ ॥

नात्मेन्द्रियमनोबुद्धिगोचरकर्मवाविना ।
सुखदु खयथायच्चवोद्भ्यतत्तथोच्यते ॥ १३२ ॥

यद्यपि सुख और दु'ख आत्मा, इन्द्रिय, मन और बुद्धिके गोचरहै परन्तु कर्मके सयोग विना वह नहीं होसक्ते कर्मही सुख और दु खका इनके साथ सयोग करताहै । जिसप्रकार कर्म सुखदु खके सयोगको करताहै उसका कथन करतेहै ॥ १३२ ॥

स्पर्शनेन्द्रियसस्पर्श'स्पर्शोमानसएवच । द्विविध सुखदु खाना वेदनानाप्रवर्त्तकः ॥ १३३ ॥ इच्छाद्वेषात्मिकातृष्णासुखदु खा-

त्प्रवर्त्तते । तृष्णाचसुखदुःखानाकारणंपुनरुच्यते ॥ १३४ ॥ उपादत्तेहिसाभावान्वेदनाश्रयसञ्ज्ञकान् । स्पृश्यतेनानुपादानोनास्पृष्टोवेत्तिवेदनाः ॥ १३५ ॥

जैसे– स्पर्शनेन्द्रिय सस्पर्श और मानससस्पर्श यह दो प्रकारके सस्पर्शरूपी जो कर्म हैं यही सुखदुःखके ज्ञानके प्रवर्त्तक हैं। फिर सुखदुःखसे इच्छा द्वेषमयी तृष्णा उत्पन्न होतीहै । वह तृष्णाही सुखदुःखका कारण कहीजातीहै । क्योकि वह तृष्णाही वेदनाश्रय भावोंको ग्रहण करती है । जिसका ग्रहण नहीं किया जाता उसका स्पर्शभी नहीं होता किसीप्रकारका भी स्पर्श न होनेसे पीडाकी उत्पत्ति नहीं होती ॥ १३३ ॥ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

वेदनाके स्थान ।

वेदनानामधिष्ठानमनोदेहश्चसेन्द्रियः ।
केशलोमनखाग्रान्नमलद्रवगुणैर्विना ॥ १३६ ॥

मन और इन्द्रिययुक्त शरीर पीडका अधिष्ठान है । स्पर्शइन्द्रियरहित केश, रोम, नख, मल, मूत्र और शरीरमें होनेवाले शब्द आदिक यह कोई भी वेदनाके अधिष्ठान नहीं है ॥ १३६ ॥

योग और मोक्ष ।

योगेमोक्षेचसर्वासावेदनानामवर्त्तनम् । मोक्षोनिवृत्तिर्नि शेपायोगोमोक्षप्रवर्त्तक ॥ १३७ ॥ आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानासन्निकर्षात्प्रवर्त्तते । सुखदुःखमनारम्भादात्मस्थेमनसिस्थिते ॥ ॥ १३८ ॥ निवर्त्ततेतदुभयवशित्वञ्चोपजायते । सशरीरस्ययोगज्ञास्तयोगमृषयोविदु ॥ १३९ ॥

योग और मोक्षमें किसी प्रकारके दुःखादिक उत्पन्न नहीं होते । और मोक्षम तो निःशेपरूपसे दुःखकी निवृत्तिही होतीहै और योगद्वाराही मोक्षकी प्राप्ति होतीहै । आत्मा, इन्द्रिय मन और इन्द्रियोंके विषय इनका सयोग होनेसेही सुखदुःखकी प्रवृत्तिहै। योगावस्थामें मन निष्क्रिय होकर आत्मामें स्थित होजाताहै । इसलिये उस अवस्थामें सुखदुःखकी निवृत्ति होजातीहै और वशित्व उत्पन्न होजाताहै । सब इन्द्रियोंको तथा मनको वशमें करलेनाही ऋषिलोग योग कथन करते है ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

अष्टविध योगबल ।

आवेशश्चेतसोज्ञानमर्थानाछन्दत क्रिया । दृष्टि:श्रोत्रस्मृति कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम् ॥ १४० ॥ इत्यष्टविधमाख्यात योगिनाबलमैश्वरम् । शुद्धसत्त्वसमाधानात्तत्सर्वमुपजायते१४१॥

सत्त्वगुणके प्रगट होनेसे योगियोंके शरीरमें आठ प्रकारका ईश्वरीयबल आजाता है। जैसे- चित्तको एकाग्र करलेना, सपूर्ण विषयोंको जानलेना, इच्छानुसार क्रिया करना, योगदृष्टिसे सपूर्ण पदार्थोंको देखलेना, दूरकी वार्तोंको श्रवण करलेना, पूर्वजन्मके विषयोंको स्मरण करलेना, प्रकट होना और अन्तर्धान हो जाना । यह ईश्वरीयबल योगाभ्याससे शुद्धसत्त्वगुणके प्रकट होजाने पर उत्पन्न हो जाते है ॥ १४० ॥ १४१ ॥

मोक्षप्राप्तिकी रीति ।

मोक्षोरजस्तमोऽभावाद्बलवत्कर्मसक्षयात् ।
वियोग कर्मसयोगैरपुनर्भावउच्यते ॥ १४२ ॥

रजोगुण और तमोगुणका एकदम अभाव होनेसे और योगद्वारा बलवान् कर्मके क्षय होनेसे तथा कर्मके सयोगोंसे वियोग होनेसे जो पुनर्भाव होताहै अर्थात् फिर जन्मलेनेका अभाव होजाता है उसको मोक्ष कहते है ॥ १४२ ॥

दु खोंसे निवृत्तिके उपाय ।

सतामुपासनसम्यगसतापरिवर्जनम् ।
व्रतचर्य्योपवासश्चनियमाश्चपृथग्विधा ॥ १४३ ॥

श्रेष्ठ पुरुषोंका सेवन, दुर्जनोंके सगका त्याग, ब्रह्मचर्यपालन और उपवास इन सबको धारणकरना नियम कहाजाताहै ॥ १४३ ॥

धारणधर्मशास्त्राणाविज्ञानविजनेरति ।
विषयेष्वरतिर्मोक्षेव्यवसाय पराधृति ॥ १४४ ॥

यमका धारणकरना, विज्ञान, निर्जनस्थानमें रति (प्रीति), विषयोंम वैराग्य, मोक्षसाधनमें तत्परता यह सब धृतिके लक्षण है ॥ १४४ ॥

कर्मणामसमारभ कृतानाश्चपरिक्षय । नैष्कर्म्यमनहकारःसयोगेभयदर्शनम् ॥ १४५ ॥ मनोबुद्धिसमाधानमर्थतत्त्वपरीक्षणम् । तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात्सर्वमेतत्प्रवर्त्तते ॥ १४६ ॥

त्प्रवर्त्तते । तृष्णाचसुखदु:खानाकारणंपुनरुच्यते ॥ १३४ ॥ उपादत्तेहिसाभावान्वेदनाश्रयसंज्ञकान् । स्पृश्यतेनानुपादानोनास्पृष्टोवेत्तिवेदना' ॥ १३५ ॥

जैसे- स्पर्शनेन्द्रिय सस्पर्श और मानससस्पर्श यह दो प्रकारके सस्पर्शरूपी जो कर्म है यही सुखदुःखके ज्ञानके प्रवर्त्तक है । फिर सुखदु'खसे इच्छा द्वेषमयी तृष्णा उत्पन्न होतीहै । वह तृष्णाही सुखदु'खका कारण कहीजातीहे । क्योकि वह तृष्णाही वेदनाश्रय भावोंको ग्रहण करती है । जिसका ग्रहण नहीं किया जाता उसका स्पर्शभी नहीं होता किसीप्रकारका भी स्पर्श न होनेसे पीडाकी उत्पत्ति नही होती ॥ १३३ ॥ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

वेदनाके स्थान ।

वेदनानामधिष्ठानमनोदेहश्चसेन्द्रिय. ।
केशलोमनखाग्रान्नमलद्रवगुणैर्विना ॥ १३६ ॥

मन और इन्द्रिययुक्त शरीर पीडका अधिष्ठान है । स्पर्शइन्द्रियरहित केश, रोम, नख, मल, मूत्र और शरीरमें होनेवाले शब्द आदिक यह कोई भी वेदनाके अधिष्ठान नहीं है ॥ १३६ ॥

योग और मोक्ष ।

योगेमोक्षेचसर्वासांवेदनानामवर्त्तनम् । मोक्षोनिवृत्तिर्नि शेषायोगोमोक्षप्रवर्त्तक ॥ १३७ ॥ आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानासन्निकर्षात्प्रवर्त्तते । सुखदु खमनारम्भादात्मस्थेमनसिस्थिते ॥ ॥ १३८ ॥ निवर्त्ततेतदुभयंवशित्वञ्चोपजायते । सशरीरस्ययोगज्ञास्तयोगमृषयोविदु ॥ १३९ ॥

योग और मोक्षमे किसी प्रकारके दु खादिक उत्पन्न नहीं होते । और मोक्षम तो नि'शेषरूपसे दु खकी निवृत्तिही होतीहै और योगद्वाराही मोक्षकी प्राप्ति होतीहै । आत्मा, इद्रिय मन और इन्द्रियोंके विषय इनका सयोग होनेसेही सुखदु खकी प्रवृत्तिहै । योगावस्थामें मन निष्क्रिय होकर आत्मामें स्थित होजाताहै । इसलिये उस अवस्थाम सुखदु:खकी निवृत्ति होजातीहै और वशित्व उत्पन्न होजाताहै । सब इन्द्रियोको तथा मनको वशमें करलेनाही ऋषिलोग योग कथन करते है ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

अहंबुद्धि आदि नष्ट नहीं होते । जब सात्विकी बुद्धि उत्पन्न होनेसे यह मेरा नहीं, मैं इनसबसे अलग हू इत्यादि यथावत विज्ञान प्राप्त होजाताहै तब यह आत्मा ज्ञानी होनेसे सपूर्णका त्यागकर देताहै ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

मोक्षका रूप।

तस्मिंश्चरमसन्यासेसमूला सर्ववेदना॰ । समज्ञाज्ञानविज्ञाना-न्निवृत्तियान्त्यशेपत॰ ॥ १५४ ॥ अत॰परंब्रह्मभूतोभूतात्मानो-पलभ्यते । नि॰सृत॰सर्वभावेभ्यश्चिह्नयस्यनविद्यते ॥ १५५ ॥ गतिर्ब्रह्मविदाम्ब्रह्मतच्चाक्षरमलक्षणम् । ज्ञानब्रह्मविदाश्चात्रना-ज्ञस्तज्ज्ञातुमर्हति ॥ १५६ ॥

जब आत्मामें इसप्रकार यथावत् ज्ञान होनेसे सन्यास उत्पन्न होजाता है तब सपूर्ण कामादिकवेदना अज्ञता, ज्ञान, विज्ञान यह सब नि॰शेपतासे निवृत्त होजातेहैं । फिर यह परब्रह्मभावको प्राप्त होकर शरीरआदिकोंको प्राप्त नहीं होता । इसप्रकार सपूर्ण भावोंसे मुक्त होनेपर इस पुरुपका कोई चिह्न बाकी नहीं रहता । वह ब्रह्म ब्रह्मके जाननेवालोंकी गतिहै अर्थात् ब्रह्मके जाननेवालेही उस अवस्थाको जान सकतेहै और प्राप्त होसकतेहै । वह अक्षरहै और लक्षणरहित है । ब्रह्मज्ञानरहित मनुष्य उसको किसी प्रकार भी नहीं जान सकते ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

अध्यायका सक्षिप्त वर्णन ।

प्रश्ना॰पुरुपमाश्रित्यत्रयोविंशतिरुत्तमा॰ ।
कतिधापुरुपीयेऽस्मिन्निर्णीतास्तत्त्वदर्शिना ॥ १५७ ॥

इत्यग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसस्कृतेकतिधापुरुपीयशारीरसमाप्तम् १॥

यहा अध्यायकी पूर्त्तिमें कहतेहैं कि इस कतिधापुरुपीय अध्यायम तत्त्वज्ञाता महर्षि आत्रेयजीने पुरुपका आश्रय लेकर तेईसप्रकारके उत्तम प्रश्नोंके उत्तररूप निर्णयको विधिपूर्वक कथन कियाहै ॥ १५७ ॥

इति श्रीमहर्पिचर॰ त्रि॰ स्था॰ भा॰ टी॰ कतिधापुरुपीयशारीर नाम प्रथमोऽध्याय. ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्याय ।

अथातोऽतुल्यगोत्रीय शारीर व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानेत्रय ।

अब हम अतुल्यगोत्रीय शारीरनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

कर्मका अनारम्भ, किये हुए कर्मोंका क्षय, गृहादिकोंका त्याग, निरहंकार, विषयोंमें भयदर्शन, मन और बुद्धिका समाधान, अर्थतत्त्वकी परीक्षा यह सब आत्मतत्त्वकी उत्कर्षतामें उत्पन्न होतेहैं । अर्थात् यह यौगिक स्मृतिके लक्षण हैं ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

स्मृतिः सत्सेवनाद्यैश्च धृत्यन्तैरुपलभ्यते ।
स्मृत्वा स्वभावं भावानां स्मरन्दुःखात्प्रमुच्यते ॥ १४७ ॥

महात्मादिकोंके सेवन आदि नियमोंसे, और सम्पूर्ण धृतिके गुणोंके उत्कर्षसे स्मृतिकी उपलब्धी होतीहै । उसी यौगिकस्मृतिद्वारा सम्पूर्ण भावोंका स्मरण होनेसे मनुष्य दुःखसुखसे छूट मोक्षका अधिकारी होजाताहै ॥ १४७ ॥

स्मृतिकी प्राप्तिके कारण ।

वक्ष्यन्ते कारणान्यष्टौ स्मृतिर्यैरुपजायते । निमित्तरूपग्रहणात्सादृश्यात्सविपर्ययात् ॥ १४८ ॥ सत्त्वानुबन्धादभ्यासाज्ज्ञानयोगात्पुनःश्रुतात् । दृष्टश्रुतानुभूतानां स्मरणात्स्मृतिरुच्यते ॥ १४९ ॥

जिन आठकारणोंसे स्मृतिकी उत्पत्ति होतीहै उन आठ कारणोंका कथन करतेहैं । जैसे–निमित्त, रूपग्रहण, सादृश्य, विपर्यय, सत्त्वानुबंध, अभ्यास, ज्ञानयोग और पुनःश्रवण करना यह स्मृतिके उत्पन्न होनेके कारण हैं । देखेहुए, सुनेहुए, अनुभव कियेहुए भूतोंको स्मरणकरनेसे इसको स्मृति कहतेहैं ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

एतत्तदेकमयनं मुक्तैर्मोक्षस्य दर्शितम् । तत्त्वस्मृतिबलं येन गता न पुनरागताः ॥ १५० ॥ अयनं पुनराख्यातमेतद्योगस्य योगिभिः । संख्यातधर्मैः सांख्यैश्च मुक्तैर्मोक्षस्य चायनम् ॥ १५१ ॥

योगीजनोंने यही मोक्षसाधनका एकमात्र मार्ग दिखायाहै । जो महात्मा तत्त्वस्मृतिके बलसे मोक्षको प्राप्त हुए हैं वह फिर कभी जन्मको धारण नहीं करते । इसीको योगियोंने योगका स्थान कथन किया है और विख्यातयशा सांख्यवादियोंने इसीको मोक्षका मार्ग कथन कियाहै ॥ १५० ॥ १५१ ॥

सर्वं कारणवद्दुःखमस्वं चानित्यमेव च । न चात्मकृतकं तद्धि तत्र चोत्पद्यते स्वता ॥ १५२ ॥ यावन्नोत्पद्यते सत्या बुद्धिर्नैतदहं यया । नैतन्मम च विज्ञाय ज्ञः सर्वमतिवर्त्तते ॥ १५३ ॥

यह जो सम्पूर्ण भाव हैं यह सब दुःखके कारण हैं । अपना कुछ नहीं है यह सब अनित्य है । आत्मा उदासीन है इसलिये यह आत्माका कियाहुआ नहीं है । शरीरादिकोंमें ममता होना वृथा है इत्यादिक सत्या बुद्धिकी जबतक उत्पत्ति नहीं होती तबतक

(उत्तर) शुद्ध शुक्र और शुद्ध रक्त, आत्मा, जरायु और काल इन सबके उत्तम होनेसे तथा हितकारक पदार्थोंके सेवनसे एवम् हितकारक भावोंके होनेसे अपने समयपर संपूर्णदेह हुआ वह सुखी गर्भ सुखपूर्वक उत्पन्न होताहै ॥ ४ ॥

योनिप्रदोषान्मनसोऽभितापाच्छुक्रासृगाहारविहारदोषात् ।
अकालयोगाद्बलसंक्षयाच्चगर्भंचिराद्विन्दतिसप्रजापि ॥ ५ ॥

योनिके दोषसे और मनके अभितापसे शुक्र और रजके दोषसे, अहित आहार विहारके सेवनसे, अकालका योग होनेसे और बलके क्षीण होनेसे इत्यादि कारणोंसे जो स्त्रियें वंध्या नहीं भी है वह भी गर्भको बहुत विलंबसे धारण करतीहै ॥ ५ ॥

असृङ्निरुद्धपवनेननार्य्यागर्भंव्यवस्यन्त्यबुधा कदाचित् ।
गर्भस्यरूपंहिकरोतितस्यास्तदासृगस्राविविवर्द्धमानम् ॥ ६ ॥
तदग्निसूर्य्यश्रमशोकरोगैरुष्णान्नपानैरथवाप्रवृत्तम् ।
दृष्ट्वासृगेकेनचगर्भमज्ञाः केचिन्नराभूतहृतंवदन्ति ॥ ७ ॥

जब गुल्म आदिका योग होनेसे वायु स्त्रीके रजोधर्मको रोकदेताहै तब बहुतसे मूर्खलोग यह समझ लेतेहैं कि यह गर्भ है और वह मासिकऋतुके स्राव नँ होनेसे वृद्धिको प्राप्तहो गर्भकेसे रूपोंको धारणकर लेताहै । जब कभी अचानक अग्नि अथवा सूर्यके संतापसे वा किसी शोक या रोगसे अथवा गर्मअन्नपानके सेवनसे स्राव होने लगताहै तो उस रुधिरको देखकर और शरीरमें पहिलेके समान गर्भकेसे चिह्न न पाकर कोई २ कहनेलगतीहै कि इस गर्भको भूतान नष्टकर डालाहै ॥ ६ ॥ ७ ॥

ओजोऽशनानारजनीचराणामाहारहेतोर्नशरीरमिष्टम् ।
गर्भंहरेयुर्यदितेनमातुर्लब्धावकाशनहरेयुरोज ॥ ८ ॥

परन्तु यह सब विश्वास उनका मूर्खताका होताहै क्योंकि भूत, प्रेत केवल ओजकोही अशन करनेवाले है । शरीरको वह नहीं खाते यदि वह स्त्रीके शरीरमें प्रवेश, होकर गर्भको नष्ट करते तो माताके ओजको पीकर उसको नष्ट क्यों न कर डालते । इस लिये यह सब उनका विश्वास मूर्खताका जानना ॥ ८ ॥

सन्तानका प्रश्न ।

कन्यासुतवासहितौपृथग्वासुतौसुतेवातनयान्बहून्वा ।
कस्मात्प्रसूतेसुचिरेणगर्भमेकोऽभिवृद्धिञ्चयमेऽभ्युपैति ॥ ९ ॥

(प्रश्न) गर्भसे कन्या किस प्रकार उत्पन्न होती है । पुत्र कैसे होताहै । दो पुत्र या दो कन्या किस तरह होतेहै । अथवा कन्या और पुत्र मिलकर दो कैसे होतेहै । उस

गर्भके चतुष्पादमे प्रश्न ।

अतुल्यगोत्रस्यरजःक्षयान्तेरहोविसृष्टंमिथुनीकृतस्य । किंस्या च्चतुष्पात्प्रभवश्चषड्भ्योयत्स्त्रीषुगर्भत्वमुपैतिपुंसः ॥ १ ॥

जब स्त्री रजोधर्मसे शुद्ध हो लेवे अर्थात् रजोदर्शनके चार दिन उपरात अपनेसे अन्य गोत्रवाले पुरुषके सयोगसे रात्रिके समय गर्भाधान करे तब उस ऋतुसे शुद्ध-हुई स्त्रीके गर्भाशयम जो शारीरिक द्रव्य गिरताहै तथा चतुष्पाद और छ' रसोसे प्रगट होनेवाला जो जो द्रव्य है अर्थात् जो चतुष्पाद गर्भ कहाजाताहै और गर्भत्वको प्राप्तहोताहै वह क्या पदार्थ है ॥ १ ॥

उत्तर।

शुक्रतदस्यप्रवदन्तिधीरायद्धीयते गर्भसमुद्भवाय। वाय्वग्निभू-म्यब्गुणपादवत्तषड्भ्योरसेभ्य'प्रभवश्चतस्य ॥ २ ॥

इसप्रकार अग्निवेशके प्रश्नको सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहतेहै कि, छ. रसाका अन्तिम परिणामभृत जो वीर्य है उसको बुद्धिमान् शुक्र कहतेहै । वह पुरुषका शुक्रही स्त्रीकी योनिमे प्राप्तहो शुद्ध आर्तवसे मिलकर गर्भको प्रगट करताहै क्योंकि छ. रसोंसे इसकी उत्पत्ति होतीहै इसलिये इसकी छ रसोसे उत्पत्ति मानते हैं। वह वायु, अग्नि, पृथ्वी और जल इनके गुणोंसे युक्त होताहै इसलिये इसको चतुष्पाद कहते है ॥ २ ॥

गर्भके विषयमे प्रश्न ।

सम्पूर्णदेह.समयेसुखश्चगर्भ कथकेनचजायतेस्त्री। गर्भचिरा-द्विन्दतिसप्रजापिभूत्वाथवानश्यतिकेनगर्भ ॥ ३ ॥

(प्रश्न) वह वायु, अग्नि, पृथ्वी और जलसे युक्तहुआ गर्भ किससमय सपूर्ण देहको प्राप्त होताहै ? और स्त्री किसप्रकार कैसे सुखपूर्वक प्रगट करतीहै । और जो स्त्रियें वध्या दोषयुक्त नहीं भी है वह भी कभी कभी बहुत समयमे अर्थात् विलम्बसे गर्भको क्या धारण करती है । बहुतसी स्त्रियोको गर्भ होकर फिर वह नष्ट क्यों हो जाता है ॥ ३ ॥

यथाक्रम उत्तर ।

शुक्रासृगात्माशयकालसम्पयस्योपचाराश्चहितैस्तथार्थे । गर्भश्चकालेचसुखीसुखश्चसञ्जायतेसम्परिपूर्णदेह ॥ ४ ॥

कस्माद्द्विरेताःपवनेन्द्रियोवासस्कारवाहीनरनारिपण्ड‌ः ।
वक्रीतथेर्ष्याभिरतिःकथंवासञ्जायतेवातिकपण्डकोवा ॥ १५॥

(प्रश्न) द्विरेता– द्विरेता किसप्रकार होताहै । पवनेन्द्रिय कैसे होताहै । और सस्कारवाही किस कारणसे होताहै । नरखण्ड किस कारणसे होताहै । नारीखण्ड किस कारणसे होताहै । नारीखण्ड कैसे होताहै । वक्री कैसे होताहै । ईर्षक किसप्रकार होताहै । वातिकखण्ड होनेके क्या कारण हैं ॥ १५ ॥

बीजात्समाशादुपतप्तबीजात्स्त्रीपुसलिङ्गीभवतिद्विरेता । शुक्राशयगर्भगतस्यहत्वाकरोतिवायु पवनेन्द्रियत्वम् ॥ १६ ॥
शुक्राशयद्वारविघट्टनेनसस्कारवाहहिकरोतिवायुः। मन्दाल्पबीजावबलावहर्षौक्लीबौचहेतुर्विकृतिद्वयस्य ॥ १७ ॥ मातुर्व्यवायप्रतिघेनवक्रीस्याद्बीजदौर्बल्यतयापितुश्च । ईर्ष्याभिभूतावपि मन्दहर्षावीर्य्यारतेरेववदन्तिहेतुम् ॥ १८ ॥ वाय्वग्निदोषाद्वृषणौतुयस्यनाशगतौवातिकपण्डक सः। इत्येवमष्टौविकृतिप्रकारा कर्मात्मकानामुपलक्षणीया ॥ १९ ॥

(उत्तर) गर्भाधानके समय रज और वीर्य दोनो समाश अर्थात् बराबर होनेसे गर्भ हो जो सतान होतीहै उसको द्विरेता नपुसक कहतेहैं । यह स्त्री और पुरुषकेसे लक्षणवाला होताहै । जब वायु गर्भके शुक्राशयको नष्ट करदेताहै उससे जो बालक प्रगट होताहै उसको पवनेंद्रिय (नपुसक) कहते है इसको वीर्य नहीं होता । यदि वायु गर्भमें शुक्राशयके द्वारको रोक देवे तो उस गर्भसे उत्पन्नहुए सतानको शुक्रवाह कहते है । इस पुरुषके शरीरम वीर्याश होतेहुए भी वीर्य निकल नही सकता । माता पिताके अत्यन्त अल्प और दुबल वीर्य होनेसे तथा अप्रसन्न होकर मैथुन करनेसे जो गर्भ होताहै उससे यदि पुरुषकेसे लक्षणवाला उत्पन्नहो तो नरपण्ड कहते है और स्त्रीके लक्षणवाला हो तो नारीपण्ड कहतेहै । स्त्री पुरुपके समान ऊपर हो और पुरुष स्त्रीके समान नीचे हो उस अवस्थाम गर्भरहनेसे और पुरुषका वीर्य कम होनेसे जो सतान होतीहै उसको वक्री कहतेहैं । यदि वह पुरुष हो तो स्त्रीके लक्षणवाला होताहै और स्त्री हो तो पुरुषके लक्षणवाली होतीहै । गर्भाधानके समयमें मातापिताके ईर्षायुक्त तथा मदहर्ष होनेसे जो सतान होती है उसको ईर्षक कहतेहैं । वायु और अग्निके दोपसे जिसके दोनो फोते नष्ट होगयेहो उसको वातिकपण्ड कहते है । इसप्रकार अपने कर्मदोपसे यह आठ प्रकारके गर्भकी विकृतियोंसे उत्पन्न होनेवाले नपुसक कहेजाते हैं ॥ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

एकही गर्भसे बहुतसे पुत्र कैसे प्रगट होते है । प्रसूत होनेमें अधिक विलंब किसप्रकार होताहै और एक गर्भमे यदि दो बालक उत्पन्न हो तो उनमे एक हृष्टपुष्ट और एकके कृश होनेका क्या कारण है ॥ ९ ॥

उत्तर ।

रक्तेनकन्यामधिकेनपुत्रशुक्रेणतेनद्विविधीकृतेन ।
वीजेनकन्याश्चसुतश्चसूतेयथास्ववीजान्यतराधिकेन ॥ १० ॥
शुक्राधिकंद्वैधमुपैतिवीजयस्यासुतौसासहितौप्रसूते ।
रक्ताधिकवायदिभेदमेतिद्विधासुतेसासहितेप्रसूते ॥ ११ ॥

(उत्तर) गर्भाधानके समय स्त्रीके रक्तकी अधिकता होनेसे कन्या उत्पन्न होती है, और पुरुषके शुक्रकी अधिकता होनेसे पुत्र उत्पन्न होता है । यदि वह दोनों मिलते समय गर्भाशयकी वायुसे दो विभागको प्राप्त होजाय तो उनमें एक भागमें रक्तकी अधिकता एकम वीर्यकी अधिकता होनेसे एक कन्या और एक पुत्र उत्पन्न होताहै । यदि उस समय शुक्रकी अधिकता हो फिर शुक्र और रज मिलकर दो विभाग होजाय तो दो पुत्र उत्पन्न होतेहै । इसी प्रकार रजकी आधिकता होनसे दो कन्याये उत्पन्न होती ह ॥ १० ॥ ११ ॥

भिनत्तियावद्बहुधाप्रपन्नःशुक्रार्त्तववायुरतिप्रवृद्धः ।
तावन्त्यपत्यानियथाविभागकर्मात्मकान्यस्ववशात्प्रसूते ॥१२॥

यदि गर्भाशयमें अत्यन्त बढा हुआ वायु उस रज वीर्यके पाच चार विभाग बना देवे तो कर्माधीन उतने बालक गर्भसे प्रगट होते है ॥ १२ ॥

आहारमाप्नोतियदानगर्भः शोषसमाप्नोतिपरिसृतिंवा ।
तस्त्रीप्रसृतेसुचिरेणगर्भपुष्टोयदावर्षगणैरपिस्यात् ॥ १३ ॥

जब गर्भको आहार नहीं मिलता या गर्भवती स्त्री अत्यन्त हानिकारक रूक्ष आदि पदार्थोंका सेवन करतीह तब गर्भ सूखजाताहै अथवा गिर भी जाताहै । यदि वह गर्भ सूखजाताहै तो बहुत कालमें पुष्ट होता और बहुत विलंबसे उत्पन्न होताहै । कभी २ उस गर्भके प्रगट होनेमें एकवर्षसे भी अधिक समय लगजाताहै ॥ १३ ॥

कर्मात्मकत्वाद्विषमांशभेदाच्छुक्रासृजंवृद्धिमुपैतिकुक्षौ ।
एकोधिकोन्यूनतरोद्वितीयएवंयमेऽप्यभ्यधिकोविशेष ॥ १४ ॥

कर्माधीन रज और वीर्यके बडे छोटे दो अंश होजानेसे वह दोनों भाग कुक्षीमें वृद्धिको प्राप्त होकर जब समयपर उत्पन्न होतेहै तो उनमें एक बडा और एक छोटा होताहै ॥ १४ ॥

तेषाविशेषाद्बलवन्तियानिभवन्तिमातापितृकर्मजानि । तानि
व्यवस्येत्सदृशत्वलिङ्गसत्त्वयथानुक्रमपिव्यवस्येत् ॥ २५ ॥

आत्मा और इन चार महाभूतोंसे गर्भ प्रगट होताहै । वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी यह गर्भके चारों महाभूत मातापिताके चारमहाभूतोंसेही उत्पन्न होते है फिर वह गर्भशरीर माताके आहारसे पुष्ट होताहै । उस गर्भशरीरके स्वरूप आदि कल्पनामें उसके किये शुभाशुभ कर्मोंकोही कारण मानना चाहिये । उपरोक्त चारमहाभूत सपूर्ण देहधारियोंके शरीरमें मातापिताकी सादृश्यता आदि होनेके कारण होते हैं । उन चार महाभूतोंमे पिताके अश बलवान् होनेसे पिताके समान, माताके अश बलवान् होनेसे माताके समान अथवा इन चारोंमें भी जो बलवान् हो उस गुणवाली सतान होतीहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

कस्मात्प्रजास्त्रीविकृताप्रसूतेहीनाधिकाङ्गीविकलेन्द्रियाश्च ।
देहात्कथदेहमुपैतिचान्यमात्मासदाकैरनुबध्यतेच ॥ २६ ॥

(प्रश्न) विकृत सतान होनेमे क्या कारणहै । हीनाग तथा अधिकाग सतान किस कारणसे प्रगट होतीहै, विकलेन्द्रिय सतान क्यों होतीहै । एक देहसे दूसरी देहमें आत्मा कैसे पहुच सकतीहै । और आत्मा किन बधनासे बधीहुई दूसरे शरीरमे प्रवेश करती है ॥ २६ ॥

गर्भकी विकृतिका कारण ।

बीजात्मकर्म्माशयकालदोषैर्मातुस्तदाहारविहारदोषै । कुर्व-
न्तिदोषाविविधानिदुष्टाःसस्थानवर्णेन्द्रियवैकृतानि ॥ २७ ॥
वर्षासुकाष्ठाश्मघनाम्बुवेगास्तरो.सरित्स्रोतसिसस्थितस्य ।
यथैवकुर्य्युर्विकृतिंतथैवगर्भस्यकुक्षौनियतस्यदोषा ॥ २८ ॥

(उत्तर) बीजके विकारसे अथवा अपने किये हुये कर्मोंके दोषसे माताके किये अहित आहार विहारके दोषसे कुपितहुए वातादि दोष गर्भके आकार, वर्ण, तथा इन्द्रियोंको विगाड देतेहै । फिर वह दोष शरीरके अग और वर्ण, तथा इन्द्रियोंको न्यून अधिक, कुरूप तथा विकलकर देतेहैं । जैसे-वर्षांतमें, काष्ठ, पत्थर, मेघ और जल इकठे होकर नदीके किनारेके वृक्षोंको टेढे कुरूपादि कर देतेहै उसीप्रकार दोष कुपित होकर कुक्षीमे स्थित हो गर्भको विगाड देतेहै । २७ ॥ २८ ॥

आत्माके देहभरमे प्राप्त होनेका कारण ।

भूतैश्चतुर्भि सहित सुसूक्ष्मैर्मनोजवोदेहमुपैतिदेहात् । कर्म्मा-
त्मकत्वान्नतुतस्यदृश्यदिव्यविनादर्शनमस्तिरूपम् ॥ २९ ॥

गर्भस्यसद्योऽनुगतस्यकुक्षौस्त्रीपुंनपुंसामुदरस्थितानाम् ।
किंलक्षणकारणमिष्यतेकिंसरूपतायेनचयात्यपत्यम् ॥ २० ॥

(प्रश्न) तत्काल हुए गर्भके क्या लक्षण होते हैं गर्भमें कन्या है अथवा पुरुषहै या नपुंसक है इनके पृथक् २ जाननेके क्या लक्षण होते हैं । सब संतानोंका एकसा स्वरूप न होनेमें क्या कारण है ॥ २० ॥

सद्योगर्भके लक्षण ।

निष्ठीविकागौरवमङ्गसादस्तन्द्राप्रहर्षौहृदयव्यथाच ।
तृप्तिश्चबीजग्रहणञ्चयोन्यागर्भस्यसद्योऽनुगतस्यलिंगम् ॥ २१ ॥

(उत्तर) सद्योगृहीतगर्भाके लक्षण ये है जैसे- मुखसे थूकका आना, शरीर भारी होना, जांघोंका रहसा जाना ग्लानि, तंद्रा,अप्रहर्ष,हृदयमें व्यथा, विनाही भोजन तृप्ति, योनिका फडकना यह सब योनिद्वारा बीज ग्रहणकरनेके अर्थात् तत्काल गर्भ होनेके लक्षण हैं ॥ २१ ॥

गर्भस्थबालकादिका परिचय ।

सव्याङ्गचेष्टापुरुषार्थिनीस्त्रीस्त्रीस्वप्नपानाशनशीलचेष्टा । सव्याङ्गगर्भानचवृत्तगर्भासव्यप्रदुग्धास्त्रियमेवसूते ॥ २२ ॥ पुत्रन्त्स्वतोलिङ्गविपर्ययेण व्यामिश्रलिङ्गाप्रकृतिंतृतीयाम् । गर्भोपपत्तौतुमनःस्त्रियायंजन्तुंव्रजेत्तत्सदृशंप्रसूते ॥ २३ ॥

गर्भधारण होजानेके अनन्तर जो स्त्री वामअंगसे अधिक वर्ताव करे अथवा जिसका वामअंग भारी हो जिसको पुरुषसंगकी इच्छाहो, निद्रा अधिक आतीहो, खानेपीनेकी अधिक इच्छा हो, अधिक चेष्टा करतीहो, जिसके वामभागमें गर्भके लक्षण हों और गर्भ लंबासा प्रतीत होताहो, वामस्तनमें प्रथम दूधका संचारहो उस स्त्रीके गर्भसे कन्या उत्पन्न होतीहै । इससे विपरीत अर्थात् दहिनाअंग भारीहो, दहिने स्तनमें दूधकी प्रवृत्तिहो, दहिनी ओर गर्भस्थित प्रतीतहो इत्यादि लक्षणोंसे पुत्रवाला गर्भ जानना चाहिये । जिस गर्भमें दोनोंके लक्षण बराबरहो उसमें नपुंसक जानना चाहिये। गर्भाधानके समय स्त्रीका मन जैसे पुरुषमें होताहै वैसी स्वरूपवाली संतान उत्पन्न होती है ॥ २२ ॥ २३ ॥

गर्भस्यचत्वारिचतुर्विधानिभूतानिमातापितृसम्भवानि । आहारजन्यात्मकृतानिचैवसर्वस्यसर्वाणिभवन्तिदेहे ॥ २४ ॥

तेषांविशेषाद्बलवन्तियानिभवन्तिमातापितृकर्मजानि । तानि
व्यवस्येत्सदृशत्वलिङ्गंसत्त्वयथानुक्रमपिव्यवस्येत् ॥ २५ ॥

आत्मा और इन चार महाभूतोंसे गर्भ प्रगट होताहै । वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी यह गर्भके चारों महाभूत मातापिताके चारमहाभूतोंसेही उत्पन्न होते हैं फिर वह गर्भशरीर माताके आहारसे पुष्ट होताहै । उस गर्भशरीरके स्वरूप आदि कल्पनाम उसके किये शुभाशुभ कर्मोंकोही कारण मानना चाहिये । उपरोक्त चारमहाभूत संपूर्ण देहधारियोंके शरीरमें मातापिताकी सादृश्यता आदि होनेके कारण होते हैं । उन चार महाभूतोंमें पिताके अंश बलवान् होनेसे पिताके समान, माताके अंश बलवान् होनेसे माताके समान अथवा इन चारोंमें भी जो बलवान् हो उस गुणशाली संतान होतीहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

कस्मात्प्रजास्त्रीविकृताप्रसूतेहीनाधिकाङ्गींविकलेन्द्रियाश्च ।
देहात्कथंदेहमुपैतिचान्यमात्मासदाकैरनुबध्यतेच ॥ २६ ॥

(प्रश्न) विकृत संतान होनेमें क्या कारणहै । हीनांग तथा अधिकांग संतान किस कारणसे प्रगट होतीहै, विकलेन्द्रिय संतान क्यों होतीहै । एक देहसे दूसरी देहमें आत्मा कैसे पहुंच सकतीहै । और आत्मा किन बंधनोंसे बंधीहुई दूसरे शरीरमें प्रवेश करती है ॥ २६ ॥

गर्भकी विकृतिका कारण ।

बीजात्मकर्म्माशयकालदोषैर्मातुस्तदाहारविहारदोषैः । कुर्व-
न्तिदोषाविविधानिदुष्टाःसंस्थानवर्णेन्द्रियवैकृतानि ॥ २७ ॥
वर्षासुकाष्ठाश्मघनाम्बुवेगास्तरो.सरित्स्रोतसिसंस्थितस्य ।
यथैवकुर्य्युर्विकृतिंतथैवगर्भस्यकुक्षौनियतस्यदोषाः ॥ २८ ॥

(उत्तर) बीजके विकारसे अथवा अपने किये हुये कर्मोंके दोषसे माताके किये अहित आहार विहारके दोषसे कुपितहुए वातादि दोष गर्भके आकार, वर्ण, तथा इन्द्रियोंको बिगाड देतेहै । फिर वह दोष शरीरके अंग और वर्ण, तथा इन्द्रियोंको न्यून अधिक, कुरूप तथा विकलकर देतेहैं । जैसे-वर्षातमें, काष्ठ, पत्थर, मेघ और जल इकट्ठे होकर नदीके किनारेके वृक्षाको टेढे कुरूपादि कर देतेहै उसीप्रकार दोष कुपित होकर कुक्षीमें स्थित हो गर्भको बिगाड देतेहै । २७ ॥ २८ ॥

आत्माके देहान्तरमें प्राप्त होनेका कारण ।

भूतैश्चतुर्भिःसहितःसुसूक्ष्मैर्मनोजवोदेहमुपैतिदेहात् । कर्म्मा-
त्मकत्वान्नतुतस्यदृश्यंदिव्यंविनादर्शनमस्तिरूपम् ॥ २९ ॥

ससर्वग सर्वशरीरभृच्चसविश्वकर्म्मासचविश्वरूप । सचेत-
नाधातुरतीन्द्रियश्चसनित्ययुक्सानुशयःसएव ॥ ३० ॥

प्रथम देह त्याग देनेके अनन्तर सूक्ष्मरूपसे चारों भूतोंके साथ सयुक्त हुआ आत्मा अपने कियेहुए कर्मोंके आधीन होकर मनके वेगके समान शीघ्र गर्भमें प्राप्त होजाताहै । जिस समय सूक्ष्म अंशोंसहित आत्मा गर्भमे आकर प्रवेश करताहै उसको प्राणी दिव्यदृष्टिके विना नहीं देख सकताहै । वह आत्माही सर्वगामी, सर्वशरीरभृत, विश्वकर्म एव विश्वरूप है । वही आत्मा शरीरमें चेतनारूप धातु है । अतीन्द्रिय है, शरीरसे नित्य संबध रखनेवाला है । (मोक्ष होनेपर शरीरसे सबध छोडदेताहै) सुखदु'खको जाननेवाला है ॥ २९ ॥ ३० ॥

रसात्ममातापितृसम्भवानिभूतानिविद्यादृशषट्चदेहे । चत्वा-
रितत्रात्मनिसंश्रितानिस्थितस्तथात्माचचतुर्षुतेषु ॥ ३१ ॥

रस, आत्मा, मातापितासे प्राप्त चारभूत, दश इन्द्रिय तथा छ धातुयें यह सब तत्त्व देहमे स्थित रहतेहै । इनमे सूक्ष्म चतुर्भूत आत्माके आश्रितहै और आत्मा उन चतुर्भूतोंके आश्रितहै । इस प्रकार इनका परस्पर मोक्षपर्यन्त नित्य सबध रहताहै३१॥

भूतानिमातापितृसम्भवानिरजश्चशुक्रञ्चवदन्तिगर्भे । आप्या-
य्यतेशुक्रमसृक्चभूतैर्यैस्तानिभूतानिरसोद्भवानि ॥ ३२ ॥
भूतानिचत्वारितुकर्मजानियान्यात्मलीनानिविशन्तिगर्भम् ।
सद्बीजधर्माह्यपरापराणिदेहान्तराण्यात्मनियान्तियानि ॥३३॥

गर्भमे माताका रज और पिताका वीर्य जो है इन्हीं दोनोको मातापितासे उत्पन्न हुए चतुर्भूत कहतेहैं । यह सब भूत उस रक्त शुक्रकाही पालन करतेहै । यद्यपि यह चारों भूत छ' रसोंसे मातापिताके शरीरमें उत्पन्न होतेहै । परन्तु यह चतुर्भूत अपने पूर्वजन्मके किये कर्मके आधीनही होकर आत्मसंसत हुए गर्भमें प्रवेश करतेहै । यह आत्मायुक्त भूत समुदाय अपने किये कर्मके आधीन बीजस्वरूप होतेहुए वारवार अच्छे और बुरे शरीरोंको धारण करतेहैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

रूपाद्धिरूपप्रभव.प्रसिद्ध.कर्म्मात्मकानामनसोमनस्त ।
भवन्तियेत्वाकृतिबुद्धिभेदारजस्तमस्तत्रचकर्म्महेतुः ॥ ३४ ॥
अतीन्द्रियैस्तैरतिसूक्ष्मरूपैरात्माकदाचिन्नवियुक्तरूपः । नक-
र्म्मणानैवमनोमतिभ्यानचाप्यहंकारविकारदोषै. ॥ ३५ ॥

रजस्तमोभ्यान्तुमनोऽनुबद्धज्ञानविनातत्रहिसर्वदोषाः । गति
प्रवृत्योस्तुनिमित्तमुक्तमन.सदोषवलवच्चकर्म्म ॥ ३६ ॥

जैसे बीज अपने समानही अकुरको उत्पन्न करनेवाला होताहै । उसीप्रकार गर्भका स्वरूप भी उसके बीजके समान होताहै । पूर्वजन्मके कियेहुए कर्मके आधीन मनसेही गर्भका मन उत्पन्न होताहै । आकृतिका भेद और बुद्धिकी विशेपता तथा कर्मादिकोंकी विशेपतामें भी रजोगुण और तमोगुण कारण होतेहै। उन अतीन्द्रिय तथा अत्यत सूक्ष्मभूत समूहसे आत्मा कभी पृथक् नहीं होसकता और वह भूतगण कर्म, मन, बुद्धि और अहकारसे अलग नहीं होसकते । मनका रजोगुण और तमोगुणसे नित्यसबंध है इसीलिये ज्ञानके विना अन्य इसमें सपूर्ण दोपही दोप होतेहै । दोपयुक्त मन और बलवान् कर्म मनुष्यकी गति और प्रवृत्तिके निमित्त होतेहैं॥३४॥३५॥३६॥

रोगा कुत संशमनकिमेपाहर्षस्यशोकस्यचाकिंनिमित्तम्। शरीर-
सत्त्वप्रभवाविकारा कथनशान्ता पुनरापतेयुः ॥ ३७॥

(प्रश्न) रोग किसप्रकार कहासे उत्पन्न होतेहै । उनका शान्तकरता उपाय क्या है । आनन्द और शोक होनेका कारण क्या है । शारीरिक तथा मानसिक सपूर्ण विकार कैसे शान्तहोकर फिर उत्पन्न नहीं होते ॥ ३७ ॥

प्रज्ञापराधोविषमास्तदर्थाहेतुस्तृतीय.परिणामकालः । सर्वा-
मयानात्रिविधाचशान्तिर्ज्ञानार्थकालाःसमयोगयुक्ताः ॥ ३८॥
धर्म्याःक्रियाहर्षनिमित्तमुक्तास्ततोऽन्यथाशोकवशानयन्ति ।
शरीरसत्त्वप्रभवास्तुदोपास्तयोरवृत्त्यानभवन्तिभूय ॥ ३९ ॥
रूपस्यसत्त्वस्यचसन्ततिर्यानोक्तस्तदादिर्नहिसोऽस्तिकश्चित् ।
तयोरवृत्ति.क्रियतेपराभ्याधृतिस्मृतिभ्यापरयाधियाच ॥ ४० ॥

(उत्तर) रोग तीनप्रकारके कारणोंसे उत्पन्न होताहै जैसे प्रज्ञापराध और असात्म्य इन्द्रियार्थसयोग तथा परिणाम काल । यह तीन रोगके उत्पत्तिके कारण है । इसीप्रकार सपूर्ण रोगोंकी शान्तीके भी तीनही उपाय हैं । जैसे ज्ञान सात्म्य इन्द्रियार्थसयोग, और कालका उचितयोग । धर्मके काम करना आनन्दके हेतुहै । और यावन्मात्र पापकर्म दु.खके कारण हैं शारीरिक और मानसिक रोग एकबार शान्तहोकर फिर उत्पन्न नहीं होते क्योंकि शरीर और मनकी जो धारावाही सतति है वह कहासे हुई और कब उत्पन्न हुई इसप्रकार उसका कोई आदि क्रम नहीं है ।

अनुपहत अर्थात् पुष्ट और शुद्धवीर्यवाले पुरुपका ऋतुसे शुद्धहुई शुद्धयोनि, शुद्ध-रज और दोपरहित गर्भाशयवाली स्त्रीसे संयोगहोनेसे पुरुपका वीर्य और स्त्रीका रज यह दोनों मिलकर जब गर्भाशयमें पहुचतेहै उसीसमय जीवात्मा भी मनोवेगसे झट उस शुक्रशोणितके साथही गर्भाशयमे प्रवेश करजाता है फिर वह गर्भ कहा जाताहै॥१॥

ससात्म्यरसोपयोगादरोगोऽभिसवर्द्धतेसम्यगुपचारैश्चोपचर्य्य-माण. । तत.प्राप्तकालःसर्वेन्द्रियोपपन्न.परिपूर्णसर्वशरीरोबल-वर्णसत्त्वसहननसम्पदुपेतःसुखेनजायतेसमुदायादेषाभावा-नाम् ॥ २ ॥

वह गर्भ माताके सात्म्यरसके सेवनकरनेसे और उत्तम हितकर उपचारके आच-रणसे वृद्धिको प्राप्त होताजाताहै । फिर इसप्रकार सपूर्ण इन्द्रियोंसे सम्पन्न सर्वांग संपूर्ण वल, वर्ण, और सत्त्वयुक्त होकर गठनको प्राप्तहुआ अपने ठीकसमयपर इन सब भावोंके पूर्णहोनेसे सुखपूर्वक जन्म लेताहै ॥ २ ॥

गर्भोंके भेद ।

मातृजश्चायगर्भ.पितृजश्चात्मजश्चसात्म्यजश्चरसजश्चास्तिच सत्त्वसज्ञमौपपादिकमितिहोवाचभगवानात्रेय' ॥ ३ ॥

इसके उपरान्त भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि यह गर्भ मातृजहै और पितृजहै तथा आत्मज और सात्म्यज एवम् रसजहै और सत्त्वसज्ञकमन इस गठनके संबंधको उत्पन्न करताहै ॥ ३ ॥

नेतिभरद्वाज । किंकारणंहिनमातानपितानात्मानसात्म्यनपा-नाशनभक्ष्यलेह्योपयोगागर्भंजनयन्तिनचपरलोकादेत्यगर्भंस-त्त्वसज्ञकमवक्रामति । यदिहिमातापितरौगर्भंजनयेतांभूयस्य श्चस्त्रिय पुमासश्चभूयास्त पुत्रकामा , तेसर्वेपुत्रजन्माभिसन्धा-यमैथुनधर्ममापद्यमाना पुत्रानेवजनयेयुर्दुहितृर्वादुहितृकामा । नचकाश्चित्स्त्रिय केचिद्वापुरुषानिरपत्या स्यु.अपत्यकामाश्चप-रिदेवेरन् । नचात्मात्मानजनयति । यदिह्यात्मात्मानंजनये-ज्जातोवाजनयेदात्मानमजातोवाजनयाति । तच्च उभयथाप्ययु-क्तम् । नहिजातोजनयतिसत्त्वान्नचैववाजातोजनयेत्सत्त्वा-त्तस्मादुभयथाप्यनुपपत्तिस्तिष्ठतु । अथतावदेतद्यदिअयमा-

स्मानशक्तोजनयितुस्यान्नतुएनमिष्टास्वेवकथयोनिपुजनयेद्व-
शिनमप्रतिहतगतिकामरूपिणतेजोवलजववर्णसत्त्वसहनन-
समुदितमजरमरुजममरमेव विधंहिआत्मात्मानमिच्छन्नित्य-
तोवाभूयः ॥ ४ ॥

भरद्वाज कहनेलगे कि ऐसा नहीं होता । गर्भके कारण माता, पिता, आत्मा ओर सात्म्य इनमेंसे कोई नही तथा न पान, अशन, भक्ष, लेह्य पदार्थही गर्भको उत्पन्नकर सकतेहै। एवम् परलोकसे आकर सत्त्वसज्ञक मन भी गर्भको उत्पन्न नही करसकता। यदि मातापिताही गर्भको उत्पन्नकर सकते तो वहुतसे सतानकी इच्छावाले स्त्री पुरुप पुत्रकी कामनासे मैथुन धर्मको प्रवृत्त होकर वहुतसे पुत्र उत्पन्न करलेते और कन्याकी इच्छावाले कन्या उत्पन्न करलेते । और जगतमे कोई स्त्री और कोई पुरुप भी सतान रहित न रहता सतानके लिये उनको किसी प्रकारके देव आदिके मनाने अथवा व्याकुलरहनेकी आवश्यकता न पडती । सपूर्ण जगतही अपनी इच्छानुसार सतानवाला होजाता । आत्मा भी आत्माको उत्पन्न नही करसकता और न स्वय उत्पन्न होताहै । यदि आत्मा आत्माको उत्पन्न करे तो जन्म किसका हुआ । वह आतमा आत्माको प्रगट करताहै जिसका जन्म होचुका । अथवा जिस आतमाका जन्म नहीं हुआ वह आतमाको प्रगट करताहै । यदि कहो कि आतमा स्वय अपने आपको प्रगट करताहै तो जो आतमा एकवार जन्म लेचुकाहै वह फिर किसप्रकार अपनेको प्रगटकर सक्ताहै अर्थात् नहीं प्रगटकर सकता और अजात आतमा भी आतमाको प्रगट नहीं करसकता क्योंकि वह अजातहै । अजात होनेसे वह अपनेको जन्मदेही नहीं सकता । यदि उसमें स्वय यह शक्ति होती तो अपनी इच्छानुसार श्रेष्ठ २ शरीरोंमें प्रवेश करता । इसलिये दोनों प्रकार होना अयुक्त है अर्थात नहीं होसकता । यदि ऐसा होता तो सत्तावान् आतमा वशी, अप्रतिहतगती कामरूपी तेजसम्पन्न और वल, वेग, वर्ण तथा सत्त्व एव दृढतासम्पन्न होनेसे तथा अजर, अमर, रोगरहित एव इससेभी अधिक २ उत्तम २ गुणोंकी इच्छा करताहुआ आतमाको कहीं वहुतही उत्तम शरीरोंमे प्रगट करता ॥ ४ ॥

गर्भकी असात्म्यजता ।

असात्म्यजश्चायगर्भोयदिहिसात्म्यजःस्यात्तर्हिसात्म्यसेविना-
मेवैकान्तेनव्यक्तप्रजास्यात् । असात्म्यसेविनश्चनिखिलेनान
पत्या स्युस्तच्चोभयमुभयत्रैवदृश्यते ॥ ५ ॥

सात्म्यसे भी गर्भकी उत्पत्ति नहीं होती यदि सात्म्य पदार्थोंके सेवनसेही गर्भ उत्पन्न होता तो जो मनुष्य सात्म्य पदार्थोंका सेवन करते है केवल उन्हींके सतान

हुआ करती और असात्म्य पदार्थोंके सेवन करनेवाले सपूर्ण मनुष्योंके वशही न चलते अर्थात् उनकी सतान ही न हुआ करती। परन्तु देखनेमें ऐसा आता है कि सात्म्य पदार्थोंके सेवन करनेवालोंमें भी सतान बहुतोंको नहीं होती और असात्म्य सेवन करनेवालोंको सतान होतीहै।इसलिये सात्म्यसेवनसे गर्भ उत्पन्न होताहै यह कहना वृथाहै॥५॥

गर्भका रससे उत्पन्न न होना।

अरसजश्चायंगर्भोयदिहिरसजः स्यान्नकेचित्स्त्रीपुरुषेपुअनपत्या. स्युर्नहिकश्चिदस्त्येषायोरसान्नोपयुङ्क्ते । श्रेष्ठरसोपयोगिनाचेद्गर्भाजायन्तेइत्यतोऽभिप्रेतमित्येव सति, आजोरभ्रमार्गमायूरगोक्षीर-दधि घृत-मधु-तैल सैन्धवेक्षुरसमुद्गशालिभृतानामेवएकान्तेनप्रजास्यात् । श्यामाकवरकोद्दालककोरदूषककन्दमूलभक्ष्याश्चानिखिलेनानपत्या स्यु तत्त्रोभयमुभयत्रैवदृश्यते ॥ ६ ॥

रससे भी गर्भकी उत्पत्ति नहीं होती है । यदि रसजगर्भ होता तो भी यावन्मात्र प्राणियोंमे कोई भी सतानरहित देखनेमें नहीं आता । क्योंकि ऐसा कोई भी पुरुष और स्त्री नहीं है जो रसोंका सेवन न करता हो। यदि कहें कि उत्तम रस सेवनसे सतान होती है तो जो मनुष्य निरतर बकरा, मेंढा, मृग और मोर आदिका मासरस खाते है तथा गौओंका दूध, दही, घृत एव मधु, तैल, लवण, इक्षुरस, (खाड, मिसरी) मूग, चावल आदिका उत्तम भोजन करतेहैं और हृष्टपुष्ट शरीर है उन्हींको सतान होनी चाहिये थी और जो मनुष्य श्यामाक, क्षुद्र जव, कोदो,कोर्दुसक, कद, मूल तथा अन्य रूक्ष भोजन करते हैं वह सब सतानरहित होने। परन्तु दोनो प्रकार देखनेमे नहीं आता । जो मनुष्य उत्तम रसोंका भोजन करते है और जो रूक्ष भोजन करतेहैं इन दोनोकाही सतानयुक्त होना और नि.सतान होना बराबर दिखाई देता है । इसलिये गर्भ रसज होता है यह भी सिद्ध नहीं होता ॥ ६ ॥

गर्भका सत्त्वगुणी न होना।

नखलुअपिपरलोकादेत्यसत्त्वगर्भमवक्रामति । यदिह्येनमवक्रामेन्नास्यकिञ्चिदेवपौर्वदेहिकंस्यादविदितमश्रुतमदृष्टं वा । सचकिञ्चिदपिनस्मरतितस्मादेतद्ब्रूमहे अमातृजश्चायगर्भ पितृजश्चानात्मजश्चासात्म्यजश्चारसजश्चनचास्तिसत्त्वमौपपादिकमितिहोवाच भरद्वाज ॥ ७॥

परलोकसे आकर सत्त्वसंज्ञकमन भी गर्भके संबंधको उत्पन्न नहीं करता। यदि वह परलोकसे आकर गर्भमें मिलजाता तो उसको पहिले देहके संपूर्ण व्यापार जाने सुने और देखे याद रहने चाहिये थे। परन्तु वह किसीको भी स्मरण नहीं करता। इसलिये सत्त्व संज्ञक मन भी गर्भसे संबंध नहीं रखता। इस कारणसेही हम कहते हैं कि गर्भ न मातृज है, न पितृज है न आत्मज है न सात्म्यज है और न रसज है तथा सत्त्व संज्ञक मन भी उसके संबंधका उत्पादक नहीं है। जब इसप्रकार कुमारशिरा भरद्वाजने कहा ॥ ७ ॥

अत्रेयका मत।

नेतिभगवानात्रेयः। सर्वेभ्यएभ्यो भावेभ्यःसमुदितेभ्योगर्भोऽभिनिर्वर्त्तते। मातृजश्चायगर्भोनहि मातुर्विनागर्भोपपत्ति स्यान्नचजन्मजरायुजानाम्। यानिखलुअस्यगर्भस्य मातृजानियानिचास्य मातृत सम्भवत सम्भवन्तितानि अनुव्याख्यास्याम। तद्यथा— त्वकूचलोहितश्चमांसश्चमेदश्चनाभिश्चहृदयश्चक्लोमचयकृच्चप्लीहा चवृक्कौचवस्तिश्चपुरीषाधानश्चामाशयश्चपक्वाशयश्चोत्तरगुदश्चाधरगुदश्चक्षुद्रान्त्रश्च स्थूलान्त्रश्च वपाचवपावहनश्चेतिमातृजानि ॥ ८ ॥

तब भगवान् आत्रेयजीने कहा कि ऐसा नहीं होता। गर्भ इन संपूर्ण भावोंके होनेसेही प्रगट होता है। यह गर्भ मातासे भी उत्पन्न होता है क्योंकि माताके विना गर्भ उत्पन्न होही नहीं सकता और जितने जरायुज प्राणी हैं वह विना माताके जन्म लेही नहीं सकते और इस गर्भमें मातासे जो २ अवयव उत्पन्न होतेहै उनको वर्णन करतेहै। जैसे—त्वचा, रक्त, मांस, मेद, नाभि, हृदय, क्लोम, प्लीहा, यकृत, दोनों वृक्क, वस्ती, आमाशय, मलाशय, पक्वाशय, उत्तरगुद, अधःगुद, क्षुद्रअंतडियें, वसा, वसाके वहनस्थान, यह सब मातासे उत्पन्न होते हैं तथा इनको मातृज अवयव कहते हैं। इसलिये गर्भको मातृज कहना चाहिये ॥ ८ ॥

पितासे होनेवाले अवयव।

पितृजश्चायगर्भोनहिपितुर्ऋतेगर्भोत्पत्ति स्यान्नचजन्मजरायुजानाम्। यानिखलुअस्यगर्भस्यपितृजानियानिचास्यपितृत सम्भवत सम्भवन्तितानिअनुव्याख्यास्याम। तद्यथा—केशश्मश्रुनखलोमदन्तास्थिशिरास्नायुधमन्य शुक्रमितिपितृजानि ९॥

गर्भ पितृजभी है। क्योंकि पिताके विना गर्भकी उत्पत्तिही नहीं होती। विना पिताके जरायुजोंका जन्मही नहीं होसकता। अब गर्भके जो जो अंग गर्भमें पितासे उत्पन्न होते हैं उनका कथन करते हैं। जैसे—केश, श्मश्रु, नख, रोम, दांत, अस्थियां शिरा और स्नायु तथा धमनियें एवम् शुक्र पितासे उत्पन्न होतेहैं। इसलिये गर्भको पितृज भी कहना चाहिये ॥ ९ ॥

आत्मासे उत्पन्नहुए गर्भावयव।

आत्मजश्चायंगर्भोगर्भात्माह्यन्तरात्मायस्तमेनंजीवइत्याचक्ष तेशाश्वतमरुजमजरममरमक्षयमभेद्यमच्छेद्यमलेद्यंविश्वरूपं विश्वकर्माणमव्यक्तमनादिमनिधनमक्षरमपि । सगर्भाशय-मनुप्रविश्यशुक्रशोणिताभ्यांसंयोगमेत्यगर्भत्वेनजनयत्यात्म-नात्मानमात्मसंज्ञाहिगर्भेतस्यपुनरात्मनोजन्मादिमत्त्वान्नो-पपद्यतेतस्मादजातएवायंजातगर्भंजनयतिजातोऽप्यजातश्चग-र्भंजनयति। सचैवगर्भःकालान्तरेणबाल्ययुवस्थविरभावानवा-प्नोति ॥ १० ॥

यह गर्भ आत्मज भी है क्योंकि गर्भात्माही अन्तरात्मा और जीवके नामसे उच्चारण किया जाताहै। यह अन्तरात्मा नित्य, निरोग, अजर, अमर, अक्षय, अभेद्य, अच्छेद्य, अलेद्य, विश्वरूप, विश्वकर्मा, अव्यक्त, अनादि, मृत्युरहित, अक्षर कहा जाताहै। यह गर्भाशयमें अनुप्रवेशकर शुक्रशोणितके साथ मिलजाताहै तबही गर्भ उत्पन्न होजाताहै। आत्माही आत्माको उत्पन्न करताहै। गर्भमेंही इसकी आत्मासंज्ञा होतीहै यदि अजात आत्माही स्वयं अपनेको गर्भमें प्रगट न करता तो अनादि और नित्य होनेसे इसका जन्मलेना किसीप्रकार सिद्ध नहीं होसकता। इसलिये यह अजात होताहुआ भी जातगर्भको उत्पन्नकरताहै। और जात होकर भी अजात रहताहै। यह गर्भ समय-पाकर प्रगटहोनसे बाल्यावस्था, यौवनावस्था और वृद्धावस्थाको प्राप्तहोता है ॥ १० ॥

सयस्यांयस्यामवस्थायां वर्त्तते तस्यांतस्यांजातोभवतियात्व स्यपुरस्कृतातस्यांजनिष्यमाणश्चतस्मात्सएवजातश्चाजातश्च युगपद्भवतितस्मिंश्चैतदुभयसम्भवतिजातत्वंचैवजनिष्यमा-णत्वञ्च। सजातोजन्यतेसचैवानागतेष्ववस्थान्तरेषुअजातो जनयत्यात्मनात्मानम्। सतोह्यवस्थानुगमनमात्रमेवनहिजन्म

चोच्यतेतत्रनत्रवयसितस्यांतस्यामवस्थायाम् । यथासतामेव-
शुक्रशोणितजीवानाप्राक्संयोगाद्गर्भत्वनभवतिनचसंयोगाद्भ-
वति । यथासतस्तस्यैवपुरुषस्यप्रागपत्यात्पितृत्वंनभवतितच्चा
पत्याद्भवति । तथासतस्तस्यैवगर्भस्यतस्यांतस्यामवस्थायांजा-
तत्वमजातत्वञ्चोच्यते ॥ ११ ॥

वह गर्भ जिस २ अवस्थामें जैसे २ रहताहै उसीउसी अवस्थाम जात मानाजाताहै । जो अवस्था इसकी आनेवाली है उस अवस्थाको जनिष्यमाण कहते हैं । इसलिये एककालमेही इसमें जात और अजात दोनो धर्म रहतेहै । अतएव इसमें जातत्व और जनिष्यमाणत्व दोनोही है । वह गर्भात्मा जात होकरभी अर्थात् गर्भावस्थामें उत्पन्न होकर भी गर्भको उत्पन्न करताहै और वही अपनी आनेवाली अवस्थान्तरको भी उत्पन्न करताहै । नित्य पदार्थका अवस्यान्तरही जन्म कहाजाताहै । वह जिसजिस अवस्थाम पहुचताहै वही उसका जन्म है । जैसे-शुक्र, शोणित और जीवके पृथक् २ रहतेहुए भी सयोग होने विना जीवच उत्पन्न नहीं होता । और जैसे पुत्र उत्पन्नहोनेसे पहिले पिता रहतेहुए भी उसमें पितृत्वधर्म नहीं आता उसीप्रकार आत्मा भी उसउस अव स्थामें रहताहुआ जातत्व और अजातत्वको प्राप्त नहीं होता ॥ ११ ॥

नतुखलुगर्भस्यमातुर्नपितुर्नात्मिन सर्वभावेषुयथेष्टकारित्वम-
स्ति । तेकिञ्चित्स्ववशात्कुर्वन्तिकिञ्चित्कर्मवशात्कचिच्चैषाकर-
णशक्तेर्भवतिकचिन्नभवति। यत्रसत्त्वादिकरणसम्पत्तत्रयथाव-
लमेवयथेष्टकारित्वमतोऽन्यथाविपर्य्यय । नचकरणदोषादका-
रणमात्मागर्भजननेसम्भवति ॥ १२ ॥

माता पिता और आतमा इन सबमेसे कोई एक सपूर्णभावमे गर्भको उत्पन्न करनेम यथेष्टकारी नहीं होसकता । अर्थात् अपने आधीन होकर (अपनेवशसे) माता या पिता या आत्मा अकेला कोई गर्भको प्रगट नहीं करसकता । इनमे कोई अपने वशसे गर्भम इष्टकारी होतेहैं, कोई कर्मवशमे इष्टकारी होतेहै । कहीं इनकी करणशक्ति कार्यकरनेमें सामर्थ्यवान् होती है और कहीं नहीं भी होती । इसलिये जिस जगह सत्त्वादि करणशक्तिकी उत्कृष्टता होतीहै उसजगह यथावल यथेष्टकारिता होजातीहै । जिसजगह सत्त्वादि करणशक्तिकी उत्कृष्टता नहीं होती वहापर कार्यसिद्धि नहीं होसकती । करणके दोषसे आत्मा गर्भोत्पन्न करनेमे कारण नहीं होता, ऐसा नहीं अर्थात् आत्मा सपूर्णसयोग मिलनेसे गर्भको उत्पन्नकरनेमें कारण होताहै ॥ १२ ॥

दृष्टश्चचेष्टायोनिरैश्वर्य्यमोक्षश्चात्मविद्भिरात्मायत्तम् । नह्यन्य सुखदु.खयो.कर्त्तानचान्यतोगर्भोजायतेजायमानोनचअंकुरो- त्पत्तिरवीजात् ॥ १३ ॥

आत्मज्ञानी महात्मा चेष्टा, योनि, ऐश्वर्य और मोक्ष इनसबको अपने आधीन रखतेहैं ऐसा देखनेमें आताहै । आत्माके सिवाय सुखदुःखका और कोई कर्त्ता नहीं है । आत्माके सिवाय और कोई गर्भको उत्पन्न नहीं कर सकता । आत्मासेही गर्भकी उत्पत्ति है । कारणके समानही कार्यकी उत्पत्ति देखनेमें आतीहै । ऐसा नहीं होता कि विना वीजके अकुर पैदाहो ॥ १३ ॥

आत्मासे हुए द्रव्य ।

यानितुखलुअस्यगर्भस्यात्मजानियानिचअस्यात्मत सम्भवत' सम्भवन्तितानिअनुव्याख्यास्यामः । तद्यथा–तासुतासुयो- निपुउत्पत्तिरायुरात्मज्ञानमनइन्द्रियाणिप्राणापानौप्रेरणंधार- णमाकृतिस्वरवर्णविशेपा.सुखदुःखेइच्छाद्वेपौचेतनाधृतिवुद्धि- स्मृतिरहकारःयत्नश्चेत्यात्मजानि ॥ १४ ॥

गर्भमे जो जो भाव आत्मासे उत्पन्न होतेहैं उनउन आत्मजभावोंको वर्णन करतेहैं। यह आत्मा जिसजिस समय जिसजिस योनिमे जन्मधारण करताहै उससमय उसी योनिमें इसका जन्म, आयु, आत्मज्ञान, मन, सपूर्ण इन्द्रिये, प्राण, अपान, प्रेरणा शक्ति धारणा, आकृति, स्वर, वर्ण, सुख, दु'ख, इच्छा, द्वेप, चेतना, धृति, वुद्धि, स्मृति, अहकार, प्रयत्न, यह सव उत्पन्न होतेहैं । यह सव आत्माकेही लक्षण है इसलिये गर्भ आत्मज होताहै ॥ १४ ॥

सात्म्यजश्चायगर्भ नहिअसात्म्यसेवित्वमन्तरेणस्त्रीपुरुपयोर्व- न्ध्यत्वमस्तिगर्भेपुवाअनिष्टोभाव । यावत्खलुअसात्म्यसेवि- नास्त्रीपुरुपाणात्रयोदोपा प्रकुपिता.शरीरमुपसर्पन्तोनशुक्रशो- णितगर्भाशयोपघातायोपपद्यन्तेतावत्समर्थागर्भजननायभव- न्ति । सात्म्यसेविनापुन स्त्रीपुरुपाणामनुपहतशुक्रशोणितग- र्भाशयानामृतुकालेसन्निपातितानाजीवस्यानवक्रमणाद्गर्भान प्रादुर्भवन्ति । नहिकेवलसात्म्यजएवायगर्भ समुदायोऽत्रका- रणमुच्यते ॥ १५ ॥

यह गर्भ सात्मज भी है। यदि स्त्री पुरुष असात्म्यपदार्थोंको सेवन न करें तो उनमें वध्यादोष तथा गर्भमें अनिष्टभाव कभी उत्पन्न न होवें। जबतक असात्म्यसेवनसे दोष कुपितहोकर स्त्रीपुरुषोंके शरीरमें उपसर्पण करतेहुए और शुक्रशोणितसे मिलकर गर्भाशयमें उपघात नहीं करते तभीतक गर्भाधान होसकताहै। तथा असात्म्यसेवनसे दोष कुपित होजानेपर गर्भाधान नहीं होने देते। सात्म्यसेवन करनेवाले स्त्रीपुरुषोंका रज और वीर्य शुद्ध होताहुआ ऋतुकालमें मिलापद्वारा गर्भाशयमें प्रवेश करनेपर भी यदि जीवात्मा अणु प्रवेश न करे तो गर्भ नहीं रहता। केवल सात्म्यसेवनसेही गर्भ उत्पन्न होताहै यह बात नहीं है। किन्तु गर्भके उत्पन्नकरनेवाले सम्पूर्ण भावोंमें सात्म्यसेवन भी एक कारण मानाजाताहै ॥ १५ ॥

सात्म्यसे हुए गर्भके अवयव।

यानितुखल्वस्यगर्भस्यसात्म्यजानियानिचअस्यसात्म्यत'सम्भवत सम्भवन्तितानिअनुव्याख्यास्यामः। तद्यथा—आरोग्यमनालस्यमलोलुपत्वमिन्द्रियप्रसाद स्वरवर्णबीजसम्पत्प्रहर्षभूयस्त्वञ्चेतिसात्म्यजानि ॥ १६ ॥

सात्म्यसेवनसे गर्भमें जो भाव पैदा होतेहैं उनका वर्णन करतेहै। जैसे आरोग्यता, अनालस्य, निर्लोभता, इन्द्रियोंका प्रसाद, स्वर, वर्ण और वीर्यका उत्तम होना, चित्त प्रसन्न रहना यह सब सात्म्यसेवनके फल है। इसलिये गर्भकी उत्पत्तिमें सात्म्यको भी कारण मानाजाताहै ॥ १६ ॥

गर्भकी रसज उत्पत्ति।

रसजश्चायगर्भोनहिरसादृतेमातु प्राणयात्रापिस्यात्किंपुनर्गर्भजन्म,नचैवास्यसम्यगुपयुज्यमानारसागर्भमभिनिर्वर्त्तयन्ति। नचकेवलसम्यगुपयोगादेवरसानागर्भाभिनिर्वृत्तिर्भवतिसमुदायोऽप्यत्रकारणमुच्यते ॥ १७ ॥

यह गर्भ रसज भी है। यदि रसोंका सेवन न कियाजाय तो माताके प्राण भी नहीं रहसकते और गर्भके उत्पन्न होनेको तो कहनाही क्या है। रसही उत्तमरूपसे सेवन किये जानेपर गर्भको उत्पन्न करतेहैं। यद्यपि केवल रसोंकाही उत्तमरीतिसे प्रयोग कियाजाना गर्भको उत्पन्न नहीं कर सकता परन्तु गर्भके उत्पन्नकरनेवाले कारणोंमें रस भी एक कारण होताहै ॥ १७ ॥

गर्भके रसज अवयव ।

यानितुखल्वस्यगर्भस्यरसजानियानिचास्यरसत सम्भवतः सम्भवन्तितान्यनुव्याख्यास्यामः । तद्यथा-शरीरस्याभि निर्वृत्तिरभिवृद्धि प्राणानुबन्धस्तृप्तिःपुष्टिरुत्साहश्चेतिरसजानि१८॥

इस गर्भके जो जो भाव रससे उत्पन्न होतेहै उनका वर्णन करतेहैं । जैसे शरीरका उत्पन्न होना और वढना, प्राणोंका अनुबंध तृप्ति और पुष्टि तथा उत्साह यह सब रससेही होतेहै । इसलिये गर्भके प्रगटहोनेमें रसको भी कारण मानाजाताहै ॥ १८ ॥

सत्त्वका उत्पादकत्व ।

अस्तिखल्वपिसत्त्वमौपपादिक यज्जीवस्पृक्शरीरेणाभिसम्बध्नाति । यस्मिन्नपगमनपुरस्कृतेशीलमस्यव्यावर्त्ततेभक्तिर्विपर्य्यस्यतेसर्वेन्द्रियाण्युपतप्यन्तेबलहीयतेव्याधयआप्यायन्ते । यस्माद्धीनःप्राणाञ्जहातियदिन्द्रियाणामभिग्राहकञ्चमनइत्यभिधीयतेतत्त्रिविधमाख्यायतेशुद्धराजसतामसञ्चइति ॥ १९ ॥

सत्त्व भी गर्भके संबधको उत्पन्नकरनेवाला होताहै । यही सूक्ष्मभावासहित आत्माका स्थूलशरीरके साथ संबध कराताहै । जब यह सत्त्व शरीरसे अलग होनेलगताहै तो इसके अलगहोनेसे प्रथमही शरीरका स्वभाव भी बदलजाताहै । इच्छा विपरीत होजातीहै, इन्द्रियें क्लेशित होजाती हैं, शरीरमेंसे बल क्षय होजाताहैं, रोग बढने लगतेहै । जब यह सत्त्वसंज्ञक मन शरीरको त्यागताहै उसी समय प्राणोंका परित्याग होजाताहै । यह सत्त्वही इन्द्रियोंका अभिग्राहक मन कहाजाताहै । यह सत्त्व, रज, और तमके भेदसे तीनप्रकारका होता है ॥ १९ ॥

येनास्यखलुप्रयतोभूयिष्टतेनद्वितीयायामाजातौसम्प्रयोगोभवति । यदातुतेनैवशुद्धेनसयुज्यतेतदाजातेरतिक्रान्तायाश्च स्मरति । स्मार्त्तंहिज्ञानमात्मनस्तस्यैवमनसोऽनुबन्धादनुवर्त्तते यस्यानुवृत्तिंपुरस्कृत्यपुरुषोजातिस्मरइत्युच्यतेइतिसत्त्वमुक्तम् ॥२०॥

मनमें सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीनो गुणोंमेसे जो गुण अधिक होता है उसका दूसरे जन्मतक संयोग रहताहै । यदि सतोगुणके साथ संयोग होताहै तो इसको पूर्वजन्मका भी स्मरण आताहै । स्मार्त्तज्ञानयुक्त मनके साथ जब आत्माका संयोग होताहै तब आत्माको अपने जन्मांतरका भी स्मरण आने लगताहै । उस पुरुषको जातिस्मर कहतेहै । यह गुण सतोगुण प्रधान मनोंके संयोगसे होताहै ॥२०॥

यानिखल्वस्यगर्भस्यसत्त्वजानियानिचअस्यसत्त्वत सम्भवतः सम्भवन्तितानिअनुव्याख्यास्याम । तद्यथा—भक्तिःशीलशौचद्वेषःस्मृतिर्मोहस्त्यागोमात्सर्य्यंशौर्य्यंभयंक्रोधस्तन्द्राउत्साहस्तैक्ष्ण्यमार्दवगाम्भीर्य्यमनवस्थितत्वमित्येवमादयश्चान्येते-सत्त्वजाविकारायानुत्तरकालंसत्त्वभेदमधिकृत्यउपदेक्ष्यामइति सत्त्वजानि । नानाविधानितुखलुसत्त्वानितानिसर्वाणिएक-पुरुषेभवन्तिनचभवन्तिएककालम्, एकन्तुप्रायोऽनुवृत्त्याह । एवमयनानाविधानामेषागर्भकराणाभावानासमुदायादभिनिर्वर्त्ततेगर्भ ॥ २१ ॥

गर्भके बीचमें सत्त्वसे उत्पन्न होनेवाले जो भाव होतेहैं उनको वर्णन करतेहै । भक्ति, सुशीलता, शौच, द्वेष, स्मृति, मोह, त्याग, मात्सर्य, शूरता, भय, क्रोध, तद्रा, उत्साह, क्षीणता, मृदुता, गभीरता, चचलता तथा अन्य भी इसीमकारके गुण, सात्त्विक, राजस और तामस मनके भेदसे अनेक प्रकारके उत्पन्न होतेहैं । इनसबको आगे वर्णन करेंगे । सत्त्वसे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके गुण होतेहैं । वह सब गुण एकही मनुष्यमें पायेजातेहैं परन्तु एककालमे सतोगुण तमोगुण और रजोगुण एकही पुरुषमें नहीं होसकते । यद्यपि सब मनुष्योंमें प्राय. तीनगुणका सयोग होताही है परन्तु जिसमें जिसगुणकी अधिकता होती है उसको उसी गुणसे प्रधान मानाजाताहै । (सतोगुणके केवल प्रकाश होनेसे रजोगुण और तमोगुण नष्ट होकर मोक्ष होजाताहै ।) इसप्रकार गर्भकर्त्ता भावोंके समुदायसेही गर्भकी उत्पत्ति होतीहै ॥ २१ ॥

यथाकूटागारनानाद्रव्यसमुदयाद्यथावारथोनानारथाङ्गसमुदायात्तस्मादेतदवोचाममातृजश्चायगर्भ पितृजश्चात्मजश्चसात्म्यजश्चरसजश्च । अस्तिसत्त्वमौपपादिकमितिहोवाचभगवानात्रेय ॥ २२ ॥

जैसे—कूटागार (घर विशेष) अनेक द्रव्याके होनेसे बनाया जाताहै और रथ अनेक अगोंके समुदायसे बनताहै उसीमकार गर्भभी गर्भोत्पादकसपूर्णभावोंके सबधसेही उत्पन्न होताहै इसलिये कहते है कि गर्भ मातृज, पितृज, आत्मज, सात्म्यज, तथा रसज होताहै । एवम् सत्त्वसज्ञक मन उसके सबधको उत्पन्न करनेवाला होताहै । इसप्रकार भगवान् आत्रेयजीने कथन कियाहै ॥ २२ ॥

भरद्वाजका प्रस्ताव ।

भरद्वाजउवाच । यद्ययमेषांनानाविधानांगर्भकराणांभावाना समुदायादभिनिर्वर्त्ततेगर्भःकथमयंसन्धीयते । यदिचापिस न्धीयतेकस्मात्समुदायप्रभवःसन्गर्भोमनुष्यविग्रहेणजायतेम- नुष्यश्चमनुष्यप्रभवउच्यते । तत्रचेदिष्टमेतद्यस्मान्मनुष्योम- नुष्यप्रभवस्तस्मान्मनुष्यविग्रहेणजायते । यथागौर्गोप्रभव यथावाश्वोऽश्वप्रभवइत्येवंयदुक्तमग्रेसमुदायात्मकइतितदयु- क्तंयदिचमनुष्योमनुष्यप्रभवःकस्माज्जडान्धकुब्जमूकवामन- मिन्मिनव्यङ्गोन्मत्तकुष्ठकिलासिभ्योजाताःपितृसदृशरूपानभ- वन्ति । अथात्रापिबुद्धिरेवंस्यात्स्वेनैवायमात्माचक्षुषारूपाणि वेत्तिश्रोत्रेणशब्दान्घ्राणेनगन्धान्रसनेनरसान्स्पर्शनेनस्पर्शान् बुद्ध्याबोद्धव्यमित्यनेनहेतुनाजडादिभ्योजाताः पितृसदृशा भवन्ति । अत्रापिप्रतिज्ञाहानिदोषः स्यादेवमुक्तेह्यात्मासत्स्वि- न्द्रियेषुज्ञः स्यादसत्स्वज्ञोयत्रचैतदुभयसम्भवतिज्ञत्वमज्ञत्वञ्च- सविकारप्रकृतिकश्चात्मानिर्विकारोज्ञश्च । यदिचदर्शनादिभि- रात्माविषयान्वेत्तिनिरिन्द्रियोदर्शनादिविरहादज्ञः स्यादज्ञत्वा- च्चकारणमकारणत्वाच्चानात्मेतिवाग्वस्तुमात्रमेतद्वचनमनर्थ- कस्यादितिहोवाचभरद्वाज ॥ २३ ॥

यह सुनकर भरद्वाज कहनेलगे कि यदि अनेक प्रकारके गर्भकारक भावोंके समुदा यसेही गर्भकी उत्पत्ति होतीहै तो यह गर्भ सबमें मिलाहुआ किसप्रकार होताहै । अर्थात् यह सब भाव गर्भमें किसप्रकार मिलजाते हैं । और मिलजानेपर भी इनके समुदायसे मनुष्यके आकारका किस प्रकार होजाताहै अर्थात् वह गर्भ मनुष्यरूपमें किसप्रकार प्रगट होताहै । और इन संपूर्णभावोंसे उत्पन्नहुआ गर्भ मनुष्यसे मनुष्य हुआ कैसे कहाजाताहै । यदि आप ऐसा मानतेहैं कि मनुष्यसे मनुष्य प्रगट होताहै यह मनुष्य विग्रहसे अर्थात् जैसे-गौसे गौ, घोडेसे घोडा, पशु जगत्में उत्पन्न होताहै । इसीप्रकार मनुष्यसे मनुष्यके आकारवाला गर्भ होताहै । तो जो पहिले आत्मादिक समुदायसे गर्भकी उत्पत्ति कहआयेहै वह अयुक्त होजायगा और

मनुष्यसे मनुष्य- मनुष्यके आकारही पैदा होताहै तो क्या कारण है कि माता पिता उस प्रकारके न होतेहुए भी संतान उनके आकारकी नहीं होती। जैसे-जड, अंधा, कुबडा, गूगा, बवना, मिनमिनाहा, व्यग, उन्मत्त, कुष्ठी और किलास आदि रोमवाले मनुष्योंकी संतान अपने माता पिताके समान अधी, कुबडी आदि क्यों नहीं होती यदि इनमें भी आपका ऐसा भाव हो कि मातापिताके किसी इन्द्रियहीन होनेसे संतानके मनुष्यत्वमें फर्क नहीं पडता आत्मा अपने नेत्रोंद्वारा रूपको देखता है, कानसे शब्द सुनताहै, नासिकासे गधको सूघताहै, जिह्वासे रसको लेताहै, स्पर्शनेन्द्रियसे स्पर्शका ज्ञान करताहै, बुद्धिसे बोध करताहै अर्थात् जानताहै इसलिये जडआदिकोंकी संतान मातापिताके समान जडत्वादि दोषोंवाली नहीं होती तो इस तरह कहनेसे भी आपके पक्षकी हानि होतीहै। और प्रतिज्ञाहानिका दोष आताहै क्योंकि ऐसा कहनेसे यह सिद्ध होजायगा कि इन्द्रियें होनेसे आत्मज्ञानी है तथा किसी इन्द्रियके नष्ट होनेसे आत्मा मूर्ख होजायगा। जिसमें ज्ञान उत्पन्न होना और ज्ञान नष्ट होना यह दो भाव आजायेंगे तो आत्मा निर्विकार न कहा जाकर विकार प्रकृति अथवा प्रकृतिका विकार सिद्ध होजायगा। क्योंकि ज्ञानी आत्माही निर्विकार होताहै। यदि ऐसा कहो कि, दर्शन आदि इन्द्रियों द्वारा आत्मा विषयोंका ग्रहण करताहै अर्थात् उनको इन्द्रियोंद्वारा जानताहै तो इन्द्रियोंके विना दर्शनादि ज्ञान न होनेसे आत्माको अज्ञ मानना होगा। आत्मा अज्ञ सिद्ध होजानेसे कारण न माना जायगा। कारण न माना जानेसे अनात्मा सिद्ध होजायगा। फिर आपका यह जितना कथन है सब बकवादमात्र और अनर्थक सिद्ध होजायगा। इसप्रकार कुमारशिरा भरद्वाजने कहा ॥ २३ ॥

आत्रेयजीका उत्तर।

आत्रेयउवाच। पुरस्तादेतत्प्रतिज्ञातसत्त्वजीवस्पृक्शरीरेणाभिसम्बध्नातीति। यस्मात्तुसमुदायप्रभव सन्गर्भोमनुष्यविग्रहेणजायतेमनुष्यश्चमनुष्यप्रभवइत्युच्यतेतद्वक्ष्याम ॥ २४ ॥

यह सुनकर आत्रेय भगवान् कहने लगे कि यह तो हम प्रथम ही कथनकर चुके है कि सत्त्वसंज्ञक मन-अनेक द्रव्योंके समूहरूप शरीरसे जीवका संबंध उत्पन्नकर देताहै अर्थात् सत्त्व-सब भावोंको आत्मासे मिलादेताहै और जिस प्रकार द्रव्योंके समूहसे बने हुए गर्भका मनुष्य देहके साथ जन्म लेता है तथा जिसप्रकार मनुष्यसे मनुष्य उत्पन्न होताहै उसका वर्णन अब करतेहै ॥ २४ ॥

भूतानाचतुर्विधायोनिर्भवतिजराय्वण्डस्वेदोद्भिद। तासाखलुचतसृणामपियोनीनामेकैकायोनिरपरिसंख्येयभेदाभवतिभू-

तानामाकृतिविशेषापरिसंख्येयत्वात् तत्रजरायुजानामण्डजाना प्राणिनामेतेगर्भकराभावायांयायोनिमापद्यन्तेतस्यातस्यायोनौ-तथातथारूपाभवन्ति । तद्यथा कनकरजतताम्रत्रपुसीसाआसिच्यमानास्तेपुतेषुमधूच्छिष्टविम्वेपुतेयदामनुष्यविम्बमापयन्तेतदामनुष्यविग्रहेणजायन्ते । तस्मात्समुदायात्मक सन्गर्भोमनुष्यविग्रहेणजायतेमनुष्योमनुष्यप्रभवइत्युच्यतेतद्योनित्वात् ॥ २५ ॥

संपूर्ण प्राणीमात्रकी जरायुज, अण्डज, स्वेदज और औद्भिद यह चार प्रकारकी योनि हैं इन चारप्रकारकी योनियोंके अनेक और असंख्य भेद होतेहैं । क्योंकि प्राणियोंके आकार विशेषभी असंख्य होते हैं । उन चारोंमें जरायुज और अण्डज प्राणियोंके यह गर्भकारक भाव जिस जिस योनिमें प्राप्त होतेहैं उसीउसी योनिके अनुरूप अपने अपने गठनको प्राप्त होतेहुए उनके अनुसार बनावटके होजातेहैं । जैसे-एक मनुष्यके अनुरूप सांचेमें सोना, चांदी, तांबा, रांगा, सीशा अथवा मोम गलाकर ढालदेनेसे मनुष्यके आकारकी प्रतिमाको प्राप्त होजातेहैं । उसीप्रकार गर्भकारक संपूर्ण भावोंका समुदाय-मनुष्य आकारके रचनेवाली योनिमें पडजानेसे मनुष्यसे मनुष्य उत्पन्न होताहै क्योंकि वह मनुष्ययोनि होनेसे मनुष्यही होसकताहै ॥ २५ ॥

यच्चोक्तयदिचमनुष्योमनुष्यप्रभव कस्मान्नजडादिभ्योजाता पितृसदृशरूपाभवन्तीतितत्रउच्यते यस्ययस्यहिअङ्गावयवस्यबीजेबीजभावउपतप्तोभवतितस्यतस्याङ्गावयवस्यविकृतिरुपजायतेनउपजायतेचअनुतापात्तस्मादुभयोपपत्तिरपिअत्रसर्वस्यचात्मजानिइन्द्रियाणितेषाभावाभावहेतुर्दैवतस्मान्नैकान्ततोजडादिभ्योजाता पितृसदृशरूपाभावन्ति ॥ २६ ॥

और यह जो आपने कहाहै कि जब मनुष्यसे मनुष्य प्रगट होताहै तो जडादिकोंकी संतान उनके समान जड, अंधी, कुबडी, आदि क्यों नहीं होतीं तो उसका यह स्पष्ट उत्तर है कि बीजके संपूर्ण अंगोंमें बीजकी शक्ति है उस बीजके जो अंश, अवयव खराब होजातेहैं संतानके भी उन्हीं अंश या अवयवोंमें विकार उत्पन्न होजातेहैं यदि बीजमें किसीप्रकारका कोई विकार नहीं है तो उससे उत्पन्न होनेवाली संतानमें भी कोइ विकार नहीं होते । क्योंकि जड आदिकोंके

वीर्यमे विकार न होनेसे उस वीर्यसे उत्पन्न होनेवाली सतानमे भी कोई विकार उत्पन्न नहीं होते। उस वीर्यमही प्रमेहादि दोष होनेसे सतानकोभी प्रमेहादि दोष होतेहै। इससे आपके कहेहुए दोनों प्रश्नाका उत्तर दिया जाचुका। सबकी सब इन्द्रियें आत्मज होतीहै और उनके साथ पूर्वजन्मके कर्मका सबध होताहै। वह पूर्वजन्मका कर्महीं इन्द्रियोंके भावाभावका कारण है। अर्थात् किसी पूर्वजन्मके पापकर्मके प्रभावसे वैसाही सयोग मिलकर इन्द्रियोका विघात होताहै पूर्वजन्मकृत कोई उस प्रकारका पापकर्म न होनेसे इन्द्रियोंमे कोइ विकार नहीं होसकता। इसीलिये जडादिकोंसे उत्पन्न हुई सतानके रूप पितामाताके समान नहीं होते ॥ २६ ॥

नचात्मासत्स्विन्द्रियेषुअज्ञोऽसत्सुवाभवत्यज्ञोनह्यसत्त्वंकदाचिदात्मासत्त्वविशेषाच्चउपलभ्यतेज्ञानविशेषइति ॥ २७ ॥

आत्मा इन्द्रियोंके होनेसे ज्ञाता और इन्द्रियोंके न होनेसे अज्ञाता नहीं होसकता क्योंकि आत्मा मनसे रहित कभी नहीं होता। इसलिये बाह्य इन्द्रियके नष्ट होनेपर भी मनयुक्त आत्माको ज्ञानकी उपलब्धी होती रहती है ॥ २७ ॥

भवतिचात्र।

नकर्त्तुरिन्द्रियाभावात्कार्य्यज्ञानप्रवर्त्तते। यैः क्रियावर्त्तलेयातु साविनातैर्नवर्त्तते ॥ २८ ॥ जानन्नपिमृदोभावात्कुम्भकृन्नप्रवर्त्तते। श्रूयताश्चेदमध्यात्ममात्मज्ञानबलमहत् ॥ २९ ॥

यहा कहाहै कि इन्द्रियोंका अभाव होनेसे कर्त्ताकी कार्यज्ञानमे प्रवृत्ति नहीं होती। क्योंकि जो क्रिया जिसके द्वारा होसकती है वह उसके बिना हो ही नहीं सकती जैसे—कुम्हार घटके बनानेकी क्रियाको जानता हुआ भी मट्टीके बिना उसके बनाने के लिये प्रवृत्त नहीं होता। सो तुम इस महत् अध्यात्म ज्ञानके बलको श्रवण करो ॥ २८ ॥ २९ ॥

देहेन्द्रियाणिसक्षिप्यमन सगृह्यचञ्चलम्। प्रविश्याध्यात्ममात्मज्ञ स्वेज्ञानेपर्य्यवस्थित ॥ ३० ॥ सर्वत्र विहितज्ञान.सर्वभावान्परीक्षते। गृह्णीष्वचेदमपरभरद्वाजविनिर्णयम् ॥ ३१ ॥

आत्माको जाननेवाला बुद्धिमान् देह और इन्द्रियोंको वशमे करके मनकी चचलताको रोककर अध्यात्म तत्त्वोंम प्रवेश करके अपने ज्ञानको अर्थात् आत्मज्ञानको प्राप्त होजाताहै।फिर वह सर्वज्ञ सबका पूर्णज्ञान रखतेहुए अद्वतज्ञान द्वारा सपूर्ण भावोंकी परीक्षा करता है। हे भरद्वाज! एक और विनिर्णयको श्रवण करो ॥ ३० ॥ ३१ ॥

निवृत्तेन्द्रियवाक्चेष्टःसुप्तः स्वप्नगतोयदा । विषयान्सुखदुःखेच वेत्तिनाज्ञोऽप्यतःस्मृतः ॥ ३२ ॥ नात्मज्ञानादृतेचैकज्ञानंकिञ्चित्प्रवर्त्तते । नह्येकोवर्त्ततेभावोवर्त्ततेनाप्यहेतुकः ॥ ३३ ॥

जब मनुष्यकी इन्द्रिय तथा वाक्चेष्टा निवृत्त होजातीहैं और मनुष्य सोजाता उस अवस्थामें भी सुखदुःखको ग्रहण करताहै अर्थात् सोजानेपर इन्द्रिय आदिकार्य चेष्टा बंद होजातीहै उस समय भी यह सुखदुःखका स्वप्नावस्थामें अनुभव करता इसलिये इसको अज्ञ नहीं कहना चाहिये । आत्मज्ञानके विना कोइ भी ज्ञान स्वतः नहीं है और कोई भाव विना किसी हेतुके स्वय अकेला प्रवृत्त नहीं होता । तात्पर्य यह हुआ कि इन्द्रिय आदि व्यापार और चचलताको वशमें करलेनेसे मनुष्यको साक्षात्कार ज्ञानका प्रकाश होजाताहै । और इन्द्रियोंके रुक जानेपर भी यह मनुष्य स्वप्नावस्थामें अनेक प्रकारके ज्ञानका अनुभव करता रहताहै । इसलिये आत्मा कभी भी अज्ञानी नहीं कहा जासकता ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

तस्माज्ज्ञः प्रकृतिश्चात्माद्रष्टाकारणमेवच ।
सर्वमेतद्भरद्वाज ! निर्णीतजहिसंशयमिति ॥ ३४ ॥

सो इसप्रकार ज्ञेय, प्रकृति, आत्मा, द्रष्टा और कारण इन सबके समुदायका वर्णन कियागयाहै । अब तुम संशयको त्यागदो ॥ ३४ ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

हेतुर्गर्भस्यनिर्वृत्तौवृद्धौजन्मनिचैव य । पुनर्वसुमतिर्याचभरद्वाजमतिश्चया ॥ ३५ ॥ प्रतिज्ञाप्रतिषेधश्चविशदश्चात्मनिर्णय । गर्भावक्रान्तिसुद्दिश्यखुड्डीकसम्प्रकाशितम् ॥ ३६ ॥

इतिखुड्डीकागर्भावक्रान्ति शारीरं समाप्तः ॥ ३ ॥

यहां अध्यायकी पूर्तिमें दो श्लोक हैं-कि इस खुड्डीका गर्भावक्रान्ति शारीर नामक अध्यायमें गर्भकी उत्पत्ति, कारण, वृद्धि और जन्म इन सबके हेतु, आत्रेय भगवान्का मत और भरद्वाजका प्रस्ताव, प्रतिज्ञा, प्रतिषेध, स्पष्ट, निर्णय यह सब विधिवत् वर्णन कियेगयेहैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक०शारीरस्थाने भाषाटीकायां खुड्डीकागर्भावक्रान्तिशारीरंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्याय. ।

अथातो महतींगर्भावक्रांतिंशारीरव्याख्यास्याम इति हस्मा-
हभगवानात्रेय. ।

अब हम महती गर्भावक्रान्ती शारीरकी व्याख्या करतेहे इसप्रकार भगवान आत्रे-
यजी कथन करनेलगे ।

आत्रेयजीकी प्रतिज्ञा ।

यतश्चगर्भ'सम्भवतियस्मिश्चगर्भसञ्ज्ञायद्विकारश्चगर्भोयथाचा-
नुपूर्व्याभिनिर्वर्त्ततेकुक्षौयश्चास्यवृद्धिहेतुर्यतश्चास्यावृद्धिर्भव
तियतश्चजायमान:कुक्षौविनाशप्राप्नोतियतश्चकात्स्न्र्येनाविन-
श्यन्विकृतिमापद्यतेतदनुव्याख्यास्याम' ॥ १ ॥

जिससे गर्भ उत्पन्न होताहै जिसलिये उसकी गर्भसञ्ज्ञा है, जिन द्रव्योंके रूपान्तर होनेको गर्भ कहतेहें, जिस प्रकार कुक्षीमें गर्भ प्राप्त होताहै, जो उसके वढनेके हेतु है जिसप्रकार वह वृद्धिको प्राप्त नही होता, जिनकारणोंसे गर्भ उत्पन्न होकर भी कुक्षीमें ही नष्ट होजाताहै, जिनकारणोंसे सपूर्ण नष्ट न होकर विकृत होजाताहै इनसबको हम क्रमपूर्वक वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥

गर्भकी उत्पत्तिका कारण ।

मातृत.पितृतआत्मत सात्म्यतो रसत सत्त्वतइत्येतेभ्योभावे-
भ्य:समुदितेभ्योगर्भ.सम्भवति । तस्ययेयेऽवयवायतोयत:
सम्भवत:सम्भवन्तितान्विभज्यमातृजादीनवयवान्पृथक्पृथ
गुक्तमग्रे । शुक्रशोणितजीवसयोगेतुखलुकुक्षिगतेगर्भसञ्ज्ञा-
भवति ॥ २ ॥

यह गर्भ माता, पिता, आत्मा, सात्म्य और रस तथा सत्त्व इन सब भावोंसेही उत्पन्न होताहै । उसगर्भके जो२ अवयव जिसजिस प्रकार जैसेजैसे उत्पन्न होतेहैं उनसबके मातृज आदि अवयवोंको विभागपूर्वक अलग अलग प्रथम कथन करचुकेहैं । वीर्य और रजके तथा जीवका सयोग होकर कुक्षीमे प्राप्त होनेका नामही गर्भ है ॥२॥

गर्भके वैकारिक द्रव्य ।

गर्भस्तुखलुअन्तरिक्षवाय्वग्नितोयभूमिविकारश्चेतनाधिष्ठान-

भूतएवमनयैवयुक्त्यापञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मकोगर्भ-
श्चेतनाधात्वधिष्ठानभूत'सह्यस्यषष्ठोधातुरुक्त ॥ ३ ॥

वह गर्भ—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और चेतनाका अधिष्ठानभूत है । इस लिये गर्भ—पंचमहाभूतोंके विकारोंका समुदायात्मक है और चेतनाधातुका अधिष्ठानभूत है । वह चेतनाही गर्भकी छठी धातु मानीजातीहै ॥ ३ ॥

गर्भकी आनुपूर्विक उत्पत्ति ।

यथास्वानुपूर्व्याभिनिर्वर्त्ततेकुक्षौतदनुव्याख्यास्याम. । गते
पुराणेरजसिनवेचअवस्थितेपुन.शुद्धस्नातांस्त्रियमव्यापन्नयोनि-
शोणितगर्भाशयामृतुमतीमाचक्ष्महेतयासहतथाभूतयायदा पु-
मानव्यापन्नवीजोमिश्रीभावगच्छतितस्यहर्षोदीरित. पर शरी-
रधात्वात्माशुक्रभूतोऽङ्गादङ्गात्सम्भवति । स तथाहर्षभूतेना
त्मनोदीरितश्चअधिष्ठितवीजधातु पुरुषशरीरादभिनिष्पद्योदि-
तेनहितेनपथागर्भाशयमनुप्रविश्यार्त्तवेनाभिससर्गमेति । तत्र
पूर्वचेतनाधातुःसत्त्वकरणोगुणग्रहणायपुन.प्रवर्त्तते । सहि-
हेतु. कारणनिमित्तमक्षरंकर्त्तामन्तावेदितावोद्धाद्रष्टाधाताब्र-
ह्माविश्वकर्माविश्वरूप पुरुष प्रभवोऽव्ययोनित्य गुणीग्रहणप्रा-
धान्यमव्यक्तजीवोज्ञ प्रकुलश्चेतनावान्विभुर्भूतात्माचेन्द्रिया-
त्माचान्तरात्माचेति ॥ ४ ॥

जिसप्रकार आनुपूर्विक क्रमसे कुक्षीमें गर्भ उत्पन्नहोकर परिणत होताहुआ वृद्धिको प्राप्त होताहै अब उसका वर्णन करतेहैं । जब स्त्री प्राचीन रजके निवृत्त होनेसे नवीन रजोदर्शन होनेके अनन्तर शुद्धस्नान करलेती है और रजके साफ होजानेसे उसकी योनिस्थान, गर्भाशय शुद्ध होताहै । उससमय वह स्त्री गमनीया अर्थात् पुरुषके सहवासयोग्य होतीहै । उस स्त्रीके साथ शुद्धवीर्यवाले पुरुषका संयोग होकर शरीरकी संपूर्ण धातुओंका सारभूत वीर्य आनन्दके कारण शरीरमेंसे प्रचलित होताहै । यह वीर्य आनन्दरूप आत्मासे उदीरित हुआ जीवधातु पुरुषके शरीरसे निकलकर उसी रास्तेसे गर्भाशयमें प्रवेश हो शुद्धआर्तव (मासिक ऋतुका शुद्धरज) से मिलजाताहै। वह चेतनाधातु सत्त्वग्राहकमनरूप करणसे युक्तहोकर गुणग्रहण करनेमें प्रथम प्रवृत्त होताहै । इसीलिये यह कारण, निमित्त, अक्षर, कर्ता, मंता, वेदिता, बोद्धा, द्रष्टा,

धाता, ब्रह्मा, विश्वकर्मा, विश्वरूप, प्रभव, अव्यय, नित्य, गुणी, ग्रहणकर्त्ता, प्रधान, अव्यक्त, जीव, ज्ञाता, प्रकुल, चेतनावान, विभु, भूतात्मा इन्द्रियात्मा और अन्त रात्मा कहाजाताहै ॥ ४ ॥

सगुणोपादानकालेऽन्तरिक्षपूर्वतरमन्येभ्योगुणेभ्यउपादत्तेयथा प्रलयात्ययेसिसृक्षुर्भूतान्यक्षरभूत सत्त्वोपादानपूर्वतरमाकाशं सृजति । तत क्रमेणव्यक्ततरगुणान्धातून् वाय्वादींश्चतुर । तथादेहग्रहणेऽपिप्रवर्त्तमान पूर्वतरमाकाशमेवोपादत्तेतत क्रमेणव्यक्ततरगुणान्धातून्वाय्वादींश्चतुरः । सर्वमपितुखल्वेतद्गुणोपादानमणुनाकालेनभवति ॥ ५ ॥

वह चेतनाधातु गुणग्रहण करनेके समय और अन्यगुण ग्रहणकरनेसे प्रथम आकाशको ग्रहण करके रहताहै । जैसे–विधाता प्रलयके अनन्तर सृष्टि रचनाकरनेकी इच्छासे सत्त्वोत्पादन करनेसे प्रथम आकाशको रचताहै । फिर उस आकाशमे क्रमपूर्वक वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन व्यक्तगुणोंवाली धातुओंको रचताहै । उसीप्रकार देहको ग्रहणकरनेमे प्रवृत्तहोनेकी इच्छावाला आत्मा पहिले आकाशको ग्रहण करताहै । फिर क्रमसे वायु, आदि चार व्यक्तधातुओंके गुणोंको ग्रहण करताहै । यह सपूर्णही गुणोंका उपादान अर्थात् ग्रहणकरना अणुकाल द्वारा होताहै ॥ ५ ॥

गर्भकी पहिली अवस्था ।

ससर्गगुणवान्गर्भत्वमापन्न प्रथमेमासिसमूर्च्छित.सर्वधातुकलुषीकृत खेटभूतोभवतिअव्यक्तविग्रह सचसदसद्भूताङ्गावयव ॥ ६ ॥

वह चेतनाधातु इसप्रकार गुणोंको ग्रहणकर गर्भत्वको प्राप्त होजाताहै । पहिले महीनेमें सम्मूर्च्छित हुआ सपूर्ण धातुओंसे कलुषित होकर कफके समान गाढासा होताहै । इस अवस्थामे इसका शरीर दिखाई नहीं देता । वह प्रथम महीनेमें कललभूत गाढासा देह अगावयवकी सूक्ष्म सत्तासे युक्त होताहै ॥ ६ ॥

द्वितीयेमासिघन सम्पद्यतेपिण्डपेश्यर्वुदवातत्रघन पुरुष.स्त्रीपेशीअर्बुदनपुसकम् ॥ ७ ॥

दूसरे महीनेमें घनहोकर पिंडके आकारका वनजाताहै । यदि पुरुषका शरीर होना हो तो वह पिंड गोल होजाताहै । और स्त्रीका हो तो लम्बी मासपेशीसी होनाताहै । और नपुसक होना हो तो अर्बुद (बुलबुला) के समान होताहै ॥ ७ ॥

तृतीयेमासिसर्वेन्द्रियाणिसर्वाङ्गावयवाश्चयौगपद्येनअभिनिर्व-
र्त्तन्ते ॥ ८ ॥

तीसरे महीनेमें सम्पूर्ण इन्द्रिया और सर्वांगावयव एककालमें ही प्रगट होजातेहैं ॥ ८ ॥

तत्रास्यकेचिदङ्गावयवामातृजादीनवयवान्विभज्यपूर्वमुक्ताय
थावन्महाभूतविकारप्रविभागेनतुइदानीमस्यताश्चैवअङ्गावय-
वान्कांश्चित्पर्य्यायान्तरेणपरांश्चअनुव्याख्यास्याम ॥ ९ ॥

उनसब अगावयवोंमें जो मातृज आदिक अगावयव होतेहैं उनको तो हम क्रमपूर्वक प्रथमही कथन करचुकेहैं । अब पाचमहाभूतोंके क्रमसे आकाशादिकोंके जो जो अग उत्पन्न होतेहैं तथा अन्य भी जो अग जिसप्रकार उत्पन्न होते हैं उनका वर्णन करतेहैं ॥ ९ ॥

गर्भका आकाशात्मक अवयव ।

मातृजादयोऽप्यस्यमहाभूतविकाराएवतत्रास्याकाशात्मकश-
ब्द श्रोत्रलाघवसौक्ष्म्यविवेकश्च ॥ १० ॥

मातृज आदिक जितने गर्भके अग होतेहैं वह सब पाचमहाभूतोंकेही विकारहैं उनें पाचोंमें शब्द, श्रोत्र, लघुता, सूक्ष्मता और विभाग अथवा छिद्र यह सब आकाशके विकार होतेहैं । अर्थात् आकाशसे उत्पन्न होतेहैं ॥ १० ॥

गर्भका वाय्वात्मक अवयव ।

वाय्वात्मकस्पर्श स्पर्शनश्चरौक्ष्यं प्रेरणंधातुव्यूहनचेष्टाश्चशा-
रीर्य्यः ॥ ११ ॥

स्पर्श, स्पर्शनेंद्रिय, रूक्षता, प्रेरणा, धातुओंकी रचना और शरीरकीचेष्टा यह सब वायुके विकार है ॥ ११ ॥

गर्भका अग्न्यात्मक अवयव ।

अग्न्यात्मकरूपदर्शनप्रकाशःपक्तिरौष्ण्यश्च ॥ १२ ॥

रूप, चक्षुइन्द्रिय, प्रकाश, जठराग्नि और गर्मी यह सब अग्निके विकार हैं॥१२॥

गर्भका जलात्मक अवयव ।

अबात्मकरसोरसनशैत्यमार्दव स्नेह क्लेदश्च ॥ १३ ॥

रस, जिह्वा, शीतलता, मृदुता, चिकनाई और गीलापन यह सब जलके विकार होतेहैं ॥ १३ ॥

गर्भका पृथिव्यात्मक अवयव ।

पृथिव्यात्मकोगन्धःघ्राणगौरवस्थैर्य्यमूर्त्तिश्च ॥ १४ ॥

गंध, घ्राणेन्द्रिय, भारीपन, स्थिरता और मूर्त्तता यह सब पृथिव्यात्मक विकार है ॥ १४ ॥

एवमयलोकसम्मत पुरुषः । यावन्तोहिलोकेभावविशेषाःतावन्त पुरुषेयावन्तः पुरुषेतावन्तोलोकेऽतिबुधास्त्वेवद्रष्टुमिच्छति ॥ १५ ॥

इसप्रकार यावन्मात्र लोकसमित पुरुष है और जितने भाव विशेष जिसजिस प्रकार जिसजिस महाभूतके पूर्वमें होतेहै वह सब बाह्यजगतमें देखेजातेहै । ज्ञानियोंने इस प्रकार पंचभौतिक विकारोंका दृश्य कथन कियाहै ॥ १५ ॥

एवमस्येन्द्रियाणिअङ्गावयवाश्चयौगपद्येनाभिनिर्वर्त्तन्तेअन्यत्र तेभ्योभावेभ्योयेऽस्यजातस्योत्तरकालजायन्तेतद्यथा,दन्तावय्अनानिव्यक्तीभाव तथायुक्तानिचापराणिएषाप्रकृतिविकृति पुनरतोऽन्यथा। सन्तिखलुअस्मिन्गर्भेनित्याभावाःसन्तिचानित्याःतस्ययएवाङ्गावयवाःसन्तिष्ठन्तेतएवस्त्रीलिङ्गपुरुषलिङ्गनपुंसकलिङ्गवाविभ्रति ॥ १६ ॥

इसप्रकार संपूर्ण इन्द्रिया और अंग वयव एकही कालमें उत्पन्न होजातेहै । परन्तु कुछ भाव इसप्रकारके होतेहै जो इसके जन्मलेनेके अनन्तर होतेहै । उन भावोंके सिवाय और संपूर्ण अंगावयव क्रमपूर्वक गर्भमेंही परिपूर्ण होजातेहै । जो जन्म लेने उपरान्त भाव उत्पन्न होतेहै वह इसप्रकार हैं । जैसे—दांत, दाढी, मूछ आदि । इनके सिवाय अन्य भी प्राकृतिकभाव उत्पन्न होतेहै । इससे विपरीत इन्द्रियहानि आदि विकृतभाव उत्पन्न होतेहै । गर्भके बहुतसे भाव नित्य होतेहै । बहुतसे अनित्य होतेहै । जिस अंगावयवोंसे स्त्रीके लक्षण पुरुषके लक्षण और नपुंसकके लक्षण दिखाई देतेहै । वह गर्भके भाव नित्य हैं । और दांत आदि भाव अनित्य होतेहै ॥ १६ ॥

कन्या आदिका विशेषभाव ।

ततःस्त्रीपुरुषयोर्येवैशेषिकाभावाःप्रधानसंश्रयागुणसंश्रयाश्चतेषा यतोभूयस्त्वंततोऽन्यतरभाव ।तद्यथाक्लैब्यभीरुत्वमवैशारद्यंमोहोऽवस्थानमधोगुरुत्वमसहनशैथिल्यमार्दवगर्भाशयबीजभाग-

स्तथायुक्तानिचापराणिस्त्रीकराणि । अतोविपरीतानिपुरुषकराणिउभयभागभावानिनपुंसककराणि । यस्ययत्कालमेवइन्द्रियाणिसन्तिष्ठन्तेतत्कालमेवास्यचेतसिवेदनानिबन्धप्राप्नोति । तस्मात्तदाप्रभृतिगर्भःस्पन्दतेप्रार्थयतेचजन्मान्तरानुभूतामिहयत्किञ्चित्तद्दौहृदय्यमाचक्षतेवृद्धाः । मातृजश्चास्यहृदयमातृहृदयाभिसम्बद्धंरसवाहिनीभि सवाहिनीभिस्तस्मात्तयोस्ताभिर्भक्ति सम्पद्यते । तच्चैवकारणमवेक्षमाणानदौहृदय्यविमानितंगर्भमिच्छन्तिकर्तुंविमानेह्यस्यदृश्यतेविनाशोविकृतिर्वा ॥ १७ ॥

गर्भमें स्त्रीपुरुषके रज और वीर्याश्रित भावोंमें स्त्रीके भावोंकी अधिकता होनेसे कन्या उत्पन्न होतीहै और पुरुषके भावोंकी अधिकता होनेसे पुत्र उत्पन्न होताहै। एवं दोनोंके बराबर होनेसे नपुंसक संतान होतीहै। उनमें कन्याके उत्पन्न करनेवाले ये भाव होतेहैं। जैसे कातरता, भीरुता, अचतुरता, मोह, चंचलता, अधोगुरुता, अदृढता, शिथिलता, मृदुता और रजकी आधिक्यता आदिक भाव कन्याके उत्पन्न करनेवाले होतेहैं। इससे विपरीत सब भाव जैसे शौर्यता, शुक्राधिक्यता, धैर्य, दृढता आदि पुत्र उत्पन्नकरनेवाले भाव होतेहैं। दोनोंके बराबर होनेसे नपुंसक संतान होतीहै। जब गर्भमें इन्द्रियें उत्पन्न होजातीहैं उसी समयमें चित्तमें पीडा आदि जाननेका संबंध उत्पन्न होजाताहै। जबसे इसको गर्भमें पीडा आदि प्रतीत होने लगतीहै और गर्भ फडकने लगजाताहै उसी समयमें यह जन्मांतरमें होनेवाले सुख दुःखोंका अनुभव करने लगजाताहै और जिस २ प्रकारकी इच्छा करताहै यह इच्छा माताके हृदयमें पहुंचकर मातासेही उसी प्रकारकी इच्छाको उत्पन्न करताहै। गर्भका हृदय माताके हृदयके साथ रसवाहिनी नाडियोंद्वारा संबंध रखताहै उन्हीं रसवाहिनी नाडियोंके संयोगसे गर्भके हृदयकी इच्छा माताके हृदयमें पहुंचतीहै। इन भावोंको देखकरही गर्भवती स्त्रीको दौहृद (दोहृदयोंवाली) कहाजाताहै। जिस प्रकारकी गर्भके हृदयमें इच्छा उत्पन्न होतीहै माता उसी प्रकारकी इच्छाको प्रगट करतीहै। इसलिये बुद्धिमान् गर्भकी इच्छाका व्याघात कभी नहीं करते अर्थात् गर्भवती जिस पदार्थको चाहतीहै उसको वही देतेहैं। दौहृदके समय माताके इच्छित पदार्थ न मिलनेसे गर्भमें विकार उत्पन्न होताहै। अथवा गर्भनाश होजाताहै ॥ १७ ॥

समानयोगक्षेमाहिमातातदागर्भेणकेषुचिदर्थेपुतस्मात्प्रियहि-
ताभ्यागर्भिणींविशेषेणोपचरन्तिकुशला. ॥ १८ ॥

माता और गर्भ यह दोनों समान योगक्षेम है अर्थात् माताका हित होनेसे गर्भका भी हित होताहै और माताका अहित होनेसे गर्भमे भी विकार उत्पन्न होजाताहै। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य गर्भवती स्त्रीके प्रियकर्त्ता पदार्थोंमे और हित उपचारसे इच्छा पूर्ण करते रहते हैं ॥ १८ ॥

दौहृदलक्षण ।

तस्याद्दैहृदय्यस्यचविज्ञानार्थलिङ्गानिसमासेनउपदेक्ष्याम ॥ १९॥

उस स्त्रीके दौहृद जाननेके लिये लक्षण और उसकी रक्षाके लिये हितउपायोंका संक्षेपसे वर्णन करतेहै ॥१९ ॥

उपचारसंबोधनह्यस्याज्ञानेव्योपज्ञानश्वलिङ्गतस्तस्मादिष्टोलि-
ङ्गोपदेशस्तद्यथाआर्त्तवादर्शनमास्यसस्रवणमनन्नाभिलापश्छ-
र्दिररोचकोऽम्लकामताचविशेषेण । श्रद्धाप्रणयनश्चोच्चावचेषु
भावेषुगुरुगात्रत्वचक्षुषोर्ग्लानि स्तनयो स्तन्यमोष्ठयो स्तनम-
ण्डलयोश्चकाष्ण्र्यमत्यर्थश्वयथु पादयोरीपल्लोमराज्युद्गमोयो-
न्याश्चाटालत्वमितिगर्भपर्य्यागतेरूपाणिभवति ॥ २० ॥

क्योंकि गर्भवतीके लक्षणोंको न जाननेसे और उपचारको न जाननेसे गर्भमे अनेक प्रकारकी बाधायें होसकतीहैं। इसलिये लक्षणोंसे ज्ञानकी उत्पत्तिके लिये उन लक्षणोंका वर्णन करतेहैं अर्थात् गर्भवती स्त्रीके यह लक्षण होतेहै। जैसे-मासिकऋतुका न दीखना,मुखसे पानीका गिरना,अन्न अच्छा न लगना, छर्दी होना,अरुचि और खट्टे पदार्थोंकी इच्छा होना, ऊंच और नीचभावोंमें श्रद्धा होना और इच्छा होना,शरीरका भारी होना, नेत्रोंमे ग्लानि होना,स्तनोंमें दूधकी प्रवृत्तिहोना,दोनो ओष्ठ और स्तनोंके मुख काले होना, पावोंपर सूजन होना योनिका बड़ होना, किंचित् रोमाच होना यह सब लक्षण पूर्णगर्भवतीके होतेहै ॥ २० ॥

गर्भनाशक भाव ।

सा यद्यदिच्छेत्तत्तदस्यैदद्यादन्यत्र गर्भोपघातकरेभ्योभावे-
भ्य । गर्भोपघातकरास्त्विमे भावा तद्यथासर्वमतिगुरूष्ण-
तीक्ष्णदारुणाश्चचेष्टाइमाश्चान्यानुपदिशन्तिवृद्धा । देवतार-

क्षोऽनुचरपरिरक्षणार्थंनरक्तानिवासासिविभृयान्नमदकराणि चाद्यान्नाभ्यवहरेन्नयानमधिरोहेन्नमासमश्नीयात्सर्वेन्द्रियप्रतिकूलाश्चभावान्दूरत.परिवर्जयेत् ॥ २१ ॥

यह गर्भवती जिनजिन पदार्थोंकी इच्छाकरे उसको वही पदार्थ देने चाहिये। परन्तु जो द्रव्य गर्भको हानि पहुचानेवाले हा वह नहीं देने चाहिये । गर्भको हानि पहुचानेवाले यह भावहैं । जैसे अत्यन्तभारी, तीक्ष्ण और दारुण द्रव्याका सेवन और उलटीपुल्टी चेष्टा करना । इनके सिवाय और भी भावोंको गर्भके हानिकारक कथन कियाहै । जैसे देवता और राक्षस तथा उनके अनुचर भी गर्भमें हानि पहुंचातेहैं । इसलिये वृद्धजनोंने कहाहै कि गर्भवती स्त्रीको रक्तवस्त्र धारण नहीं करने चाहिये और मदकारक द्रव्याका सेवन नहीं करना चाहिये तथा सवारी आदिम चढना अतिवेगसे चलना, मासखाना, एवम् इन्द्रियोंके प्रतिकूल संपूर्ण भावोंको दूरसेही त्याग देना चाहिये ॥ २१ ॥

यच्चान्यदपिकिञ्चित्स्त्रियोविदुस्तीव्रायान्तुखलुप्रार्थनायाकाम-महितमप्यस्यैहितेनोपसहितदद्यात्प्रार्थनाविलयनार्थम् । प्रार्थनासन्धारणाद्धिवायुःकुपितोऽन्त शरीरमनुचरन्गर्भस्यापद्यमानस्यविनाशंवैरूप्यवाकुर्य्यात् ॥ २२ ॥

यदि किसी अहितकारक द्रव्यके ऊपर स्त्रीकी बहुत इच्छा चलती हो तो उसको वह द्रव्य किसी हितकारी द्रव्यके सयोगसे जिसप्रकार वह हानि न करसके दे देना चाहिये । क्योंकि गर्भवतीस्त्रीकी तीव्र इच्छाको रोकनेसे गर्भमें दोष उत्पन्न होताहै और वायु कुपित होकर बिगाड देताहै ॥ २२ ॥

चौथे महीनेमे गर्भके लक्षण ।

चतुर्थेमासिस्थिरत्वमापद्यतेगर्भस्तस्मात्तदागर्भिणीगुरुगात्रत्व-मधिकमापद्यतेविशेषेण ॥ २३ ॥

चौथे महीनेमें यह गर्भ दृढ होजाताहै इसलिये गर्भवती स्त्रीका विशेषरूपसे शरीर भी भारी होजाताहै ॥ २३ ॥

पांचवें महीनेमे गर्भका लक्षण ।

पञ्चमेमासिगर्भस्यमांसशोणितोपचयोभवतिअधिकमन्येभ्योमासेभ्यस्तस्मात्तदागर्भिणीकार्श्यमापद्यतेविशेषेण ॥ २४ ॥

पाचवे महीनेम गर्भके मास और रक्तकी वृद्धि अन्य महीनोंसे अधिक होतीहै। इसलिये गर्भवती स्त्रीका शरीर विशेषतासे कृश होनेलगताहै ॥ २४ ॥

छठे महीनेमे गर्भका लक्षण।

षष्ठेमासिगर्भस्यवलवर्णोपचयोभवतिअधिकमन्येभ्योमासेभ्य-स्तस्मात्तदागर्भिणीवलवर्णहानिमापद्यतेविशेषेण ॥ २५ ॥

छठवे महीनेमें गर्भके बल और वर्णकी अन्य महीनोंसे अधिक वृद्धि होतीहै। इसलिये गर्भवती स्त्रीके बल, और वर्णकी हानि विशेषरूपसे होतीहे ॥ २५ ॥

सातवे महीनेमे गर्भलक्षण।

सप्तमेमासिगर्भःसर्वभावैराप्यायतेऽस्या ।
तस्मात्तदागर्भिणीसर्वाकारैःक्लान्ततमाभवति ॥ २६ ॥

सातवे महीनेमें सपूर्ण भावोसे गर्भ पुष्ट होजाताहै। इसलिये गर्भिणी सवप्रकारसे क्लान्त अर्थात् व्याकुलसी रहतीहे ॥ २६ ॥

आठवें महीनेमे गर्भके लक्षण।

अष्टमेमासिगर्भश्चमातृतोगर्भतश्चमातारसवाहिनीभिःसवाहि-नीभिर्मुहुर्मुहुरोजःपरस्परतआददातिगर्भस्यासम्पूर्णत्वात्तस्मा-त्तदागर्भिणीमुहुर्मुहुःमुदायुक्ताभवतिमुहुर्मुहुश्चग्लानातस्मात्त-दागर्भस्यजन्मव्यापत्तिमद्भवत्योजसोऽनवस्थितत्वात्तश्चैवम-भिसमीक्ष्याष्टममासमगर्भण्यमित्याचक्षतेकुशलाः ॥ २७ ॥

आठवें महीनेमे गभ मातासे और माता गर्भसे रसवहनकरनेवाली नाडियोंद्वारा परस्पर ओजको ग्रहण करतेहै। और गर्भ सपूर्ण होताहै। इसलिये गर्भवती स्त्री वारंवार आनन्दयुक्त और वारवार ग्लानियुक्त होती जातीहे। उससमय गर्भमे ओज स्थिरभावसे नहीं होता। इसीलिये बुद्धिमानोंने अष्टम महीना बालकके उत्पन्न होनेका नहीं मानाहै। क्योंकि आठवे महीनेका उत्पन्नहुआ बालक जीता नहीहै ॥२७॥

प्रसवका समय।

तस्मिन्नेकदिवसातिक्रान्तेऽपिनवममासमुपादायप्रसवकालमि-त्याहुरादशमान्मासादेतावान्कालोवैकारिकम् ॥ २८ ॥

आठवें महीनेके उपरान्त नवम महीनेका एकदिन व्यतीत होनेपर भी नवा महीनाही गिनाजाता है और यह प्रसवका समय मानाजाताहै। नवम मासके

प्रथम दिनसे लेकर दशम महीनेके अततक प्रसूतका प्राकृत (ठीक) अर्थात् योग्य समय मानाजाताहै । फिर दशवके उपरान्त सब दिन वैकारिक समय माना जाता है ॥ २८ ॥

अतःपरकुक्षौस्थानंगर्भस्य । एवमनयानुपूर्व्याभिनिर्वर्तते-कुक्षौ ॥ २९ ॥

गर्भका निवासस्थान कुक्षी है और उस कुक्षीमही इस पूर्वोक्त क्रमसे गर्भ मकट होताहै ॥ २९ ॥

मात्रादीनान्तुखलुगर्भकराणाभावानासम्पदस्तथातिवृत्तस्य सौष्ठवान्मातृतश्चैवोपस्नेहोपस्वेदाभ्याकालपरिणामात्स्वभाव-संसिद्धेश्चकुक्षौवृद्धिंप्राप्नोति । मात्रादीनान्तुखलुगर्भकराणा भावानाव्यापत्तिनिमित्तमस्याजन्मभवति ॥ ३० ॥

माता आदिके गर्भकारक भावोंका सम्पन्न होनेसे तथा हित आचारादिकोंके सेवनसे, उपस्नेह और उपस्वेदके योगसे, तथा काल और स्वभावके प्रभावसे गर्भ कुक्षीमें वृद्धिको प्राप्त होता है । और माता आदिक भावोंकेही सपन्न न होनेसे अथवा अनाचारके होनेसे गर्भका जन्म नहीं होता ॥ ३० ॥

येत्वस्यकुक्षौवृद्धिहेतुसमाख्याताभावास्तेषाविपर्ययादुदरेवि-नाशमापद्यतेऽथवाप्यचिरजात'स्यात् ॥ ३१ ॥

गर्भको बढानेवाले भावोंकी प्राप्ति न होनेसे गर्भ पेटमेही नष्ट होजाताहै । यदि नष्ट न हो तो बहुत विलम्बसे उत्पन्न होताहै ॥ ३१ ॥

यतस्तुकात्स्न्येनाविनश्यन्विकृतिमापद्यतेतदनुव्याख्यास्याम. ३२

जिन कारणोंसे गर्भ सर्वथा नष्ट न होकर विकारको प्राप्त होजाताहै उनको कथन करते हैं ॥ ३२ ॥

दूषितरक्तज य विकृतावयव ।

यदास्त्रियादोषप्रकोपनोक्तान्यासेवमानायादोषा प्रकुपिता.श-रीरमुपसर्पन्त शोणितगर्भाशयौदूषयन्तितदायगर्भलभतेस्त्री-तदागर्भस्यमातृजानामवयवानामन्यतमोऽवयवोविकृतिमापद्य तेएकोथवानेक ॥ ३३ ॥

जब स्त्री दोषोंके कुपित करनेवाले पदार्थोंको सेवन करतीहै तब उसके शरीरमें दोष कुपित होकर रक्तको और गर्भाशयको दूषितकर देतेहैं । फिर जब वह गर्भको धारण करती है तो उस गर्भके मातृज अवयव अथवा अन्य अवयव एक अथवा अनेक अवयव विकृत होजातेहैं ॥ ३३ ॥

यस्ययस्यह्यवयवस्यवीजेवीजभागेवादोषा प्रकोपमापद्यन्तेतत-मवयवविकृतिराविशति ॥ ३४ ॥

गर्भके जिस २ वीजावयवको दोष दूषित करतेहैं वही २ अवयव अर्थात् वही २ हिस्सा बिगड जाताहै ॥ ३४ ॥

यदाह्यस्याःशोणितगर्भाशयवीजभाग.प्रदोषमापद्यतेतदाव-न्ध्याजनयति । यदापुनरस्या शोणितेगर्भाशयवीजभागावय व प्रदोषमापद्यतेतदापूतिप्रजाजनयति ॥ ३५ ॥

जब गर्भमे दोष वीर्यके रजभाग और गर्भाशयकर्ता वीजके भागको दोष दूषितकर देतेहै तो इसको वध्या कन्या उत्पन्न होतीहै । जब स्त्रीके रजमें गर्भाशय वीजभावके अवयवको दूषितकर देताह तब उस स्त्रीको दुर्गंधित सतान उत्पन्न होतीहै अथवा सडी गली होतीहै ॥ ३५ ॥

यदात्वस्या'शोणितगर्भाशयवीजभागावयव'स्त्रीकराणाञ्चशरी रवीजभागानामेकदेश प्रदोषमापद्यतेतदास्त्र्याकृतिभूयिष्ठाम-स्त्रियवार्त्तानामजनयतितास्त्रीव्यापदमाचक्षते ॥ ३६ ॥

जब उसके रजम गर्भाशय बीजभागको दूषितकर स्त्रीके शरीरके एक देश भागको दूषितकर देताह तो योनिरहित स्त्रीके आकारवाली वार्ताक नामकी सतान उत्पन्न होतीहै। इसप्रकार स्त्रीके गर्भाशयम दोष कुपित होकर गर्भको हानि पहुचातेहं ॥३६॥

दूषित शुक्रजन्य विकृतावयव ।

एवमेवपुरुषस्यवीजदोषेपितृजावयवविकृतिंविद्यायदापुनरस्य वीजेवीजभागावयव प्रदोषमापद्यतेतदापूतिप्रजाजनयति ॥३७॥

इसीप्रकार पिताके वीज दोषसे पितृज अवयवोंमें विकृति होती है। जब पुरुषके वीजमें वीजभागके अवयव दूषित होजातेहैं तब दुर्गंधित, सडीहुई अथवा मरीहुई सतान उत्पन्न होतीहै ॥ ३७ ॥

यदात्वस्यवीजेवीजभागावयव'पुरुषकराणाञ्चशरीरवीजभागानामेकदेश.प्रदोषमापद्यतेतदापुरुषाकृतिभूयिष्ठमपुरुषतृणपूलिकनामजनयतितापुरुष०यापदमाचक्षते ॥ ३८ ॥

जब मनुष्यके वीजमें पुरुषकारक शरीरके बीजभागके एक देशको दोष दूषितकर देतेहैं तब इस पुरुषके चिह्नरहित और वीर्यरहित पुरुषके आकारवाला तृणपूलक नामकी संतान उत्पन्न होतीहै ॥ इसप्रकार पुरुषके बीजावयवसे गर्भमें विकार होनेका कथन कियागया । पुरुषके बीजका जो अंश दूषित होताहै, संतानके शरीरमें उसी २ भागमें विकृति होजातीहै ॥ ३८ ॥

एतेनमातृजानापितृजानाञ्चावयवानाविकृतिव्याख्यानेनसात्म्यजानारसजानासत्त्वजानाञ्चावयवानाविकृतिर्व्याख्याता ३९॥

इस कथनसे माता और पिताके बीजमें होनेवाले विकार आदिकाका वर्णन कियागया और सात्म्यज रसज तथा सत्त्वज विकृतियोंका भी निर्देश कियागया॥३९॥

निर्विकार परस्त्वात्मासर्वभूतानानिर्विशेष सत्त्वशरीरयोस्तुविशेषाद्विशेषोपलब्धिः ॥ ४० ॥

परमात्मा निर्विकार है । वह आत्मा सर्वभूतामें समानभावसे वर्तमान है । इस लिये उसमें किसी प्रकारकी विकृति नहीं होती । मन और शरीर सबके एक वरावर नहीं होते इसलिये उनमें दोषादिकाकी उपलब्धि है ॥ ४० ॥

तत्रत्रयस्तुशारीरदोषावातपित्तश्लेष्माणस्तेशरीरदूपयन्ति॥४१॥

द्वौपुन'सत्त्वदोषौरजस्तमश्च । तौसत्त्वदूपयतस्ताभ्याञ्चसत्त्वशरीराभ्यादुष्टाभ्याविकृतिरुपजायतेनोपजायतेचाप्रदुष्टाभ्याम् ४२॥

वात, पित्त और कफ यह तीनों शारीरिक दोष है । यह दोष शारीरिक होनेसे शरीरावयवोंको अथवा शरीरको दूषित करतेहै । रज और तम, यह दो मनके दोष है । यह दोनो मनको दूषित करतेहै । इसप्रकार शारीरिक और मानसिक भेदसे दो प्रकारके दोष होतेहै । यह दोनो प्रकारके दोष दुष्ट होनेसे शरीर और मनको विकृत करदेतेहै । और दुष्ट न होनेसे विकृत नहीं करते । तात्पर्य यह हुआ कि आत्मा तो निर्दोष है इसलिये आत्मामें कोई विकृति भी नहीं होती । परंतु शारीरिक और मानसिक दो प्रकारके दोष होतेहै । सो शरीर और मनको दूषित करतेहै । यदि उनका कोई गर्भमें सम्बंध होजाताहै तो जिसप्रकार जिस अवयव

और जिसअंगमें उनको दुष्टहोकर प्रवेश होताहै उसीको बिगाड देते है (यदि वह कुपित नहीं होते किंवा दुष्ट नहीं होते तो किसी प्रकारके उपद्रवको भी नहीं करते ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

तत्रशरीरयोनिविशेषाच्चतुर्विधमुक्तमग्रेत्रिविधखलुसत्त्वंशुद्ध-राजततामसमिति । तत्रशुद्धमदोषमाख्यातकल्याणांशत्वा-त् । राजससदोषमाख्यातरोषांशत्वात् । तथातामसमपिसदो-षमाख्यातमोहांशत्वात् ॥ ४३ ॥

शरीरकी चार प्रकारकी योनिका पहिले कथन करचुकेहैं । मन तीन प्रकार का होताहै । सात्त्विक, राजस और तामस । इनमें सात्त्विक मन निर्दोष होताहै । इसलिये वह कल्याणयुक्त कहा जाताहै । और यह मोक्षसाधनादि कार्यको करनेवाला होताहै । राजस मन रोषका अंशवाला होनेसे दोषयुक्त कहाजाताहै । तामस मन मोहका अंश अधिक होनेसे अतिदोषयुक्त होताहै ॥ ४३ ॥

सत्त्वके अनेक भेद ।

तेषान्तुत्रयाणामपिसत्त्वानामेकैकस्यभेदाग्रमपरिसंख्येयंतरत-मयोगाच्छरीरयोनिविशेषेभ्यश्चान्योन्यानुविधानत्वाच्च । शरी-रमपिसत्त्वमनुविधीयतेसत्त्वञ्चशरीरंतस्मात्कतिचिच्चसत्त्वभे दाननूकसादृश्याभिनिर्देशेननिदर्शनार्थमनुव्याख्यास्याम. ॥४४॥

इन तीनों प्रकारके मनोंमें एकएकका भेद भी असंख्य होताहै । क्योंकि एकएक की अधिकता और न्यूनता आदि भेदसे और शरीरयोनि विशेषसे तथा इनके परस्पर अनुसंधान विशेषसे असंख्य होजातेहैं । शरीर भी सत्त्वकेही अनुरूप होताहै और सत्त्व शरीरके अनुरूप होताहै । इन दोनोंके सादृश्यके अनुसार कितने प्रकारके पुरुष विशेष होतेहैं उनके निदर्शनके लिये वर्णन करतेहैं ॥ ४४ ॥

ब्राह्मका लक्षण ।

तद्यथाशुचिंसत्याभिसन्धजितात्मानसंविभागिज्ञानविज्ञान-वचनप्रतिवचनशक्तिसम्पन्नस्मृतिमन्तकामक्रोधलोभमानमो-हेर्ष्याहर्षापेतसमन्सर्वभूतेषुब्राह्मंविद्यात् ॥ ४५ ॥

जिस मनुष्यमें पवित्रता, सत्यता, जितात्मता, विचार, ज्ञान, विज्ञान, वचनशक्ती, प्रतिवचनशक्ती, स्मृति यह सब सम्पत्तियें होतीहैं तथा काम, क्रोध, लोभ, मान, मोह,

यदात्वस्यबीजेबीजभागावयवःपुरुषकराणाश्चशरीरबीजभागानामेकदेशःप्रदोषमापद्यतेतदापुरुषाकृतिभूयिष्ठमपुरुषतृणपूलिकनामजनयतितापुरुषव्यापदमाचक्षते ॥ ३८ ॥

जब मनुष्यके बीजमें पुरुषकारक शरीरके बीजभागके एक देशको दोष दूषितकर देतेहै तब इस पुरुषके चिह्नरहित और वीर्यरहित पुरुषके आकारवाला तृणपूलक नामकी संतान उत्पन्न होतीहै ॥ इसप्रकार पुरुषके बीजावयवसे गर्भमें विकार होनेका कथन कियागया । पुरुषके बीजका जो अंश दूषित होताहै, संतानके शरीरमें उसी २ भागमें विकृति होजातीहै ॥ ३८ ॥

एतेनमातृजानांपितृजानांश्चावयवानांविकृतिव्याख्यानेनसात्म्यजानांरसजानांसत्त्वजानांश्चावयवानांविकृतिर्व्याख्याता ३९॥

इस कथनसे माता और पिताके बीजमें होनेवाले विकार आदिकोंका वर्णन कियागया और सात्म्यज रसज तथा सत्त्वज विकृतियोंका भी निर्देश कियागया॥३९॥

निर्विकारःपरस्त्वात्मासर्वभूतानांनिर्विशेषःसत्त्वशरीरयोस्तुविशेषाद्विशेषोपलब्धिः ॥ ४० ॥

परमात्मा निर्विकार है । वह आत्मा सर्वभूतोंमें समानभावसे वर्तमान है । इस लिये उसमें किसी प्रकारकी विकृति नहीं होती । मन और शरीर सबके एक बराबर नहीं होते इसलिये उनमें दोषादिकोंकी उपलब्धि है ॥ ४० ॥

तत्रत्रयस्तुशारीरदोषावातपित्तश्लेष्माणस्तेशरीरंदूषयन्ति॥४१॥
द्वौपुनःसत्त्वदोषौरजस्तमश्च । तौसत्त्वंदूषयतस्ताभ्यांचसत्त्वशरीराभ्यांदुष्टाभ्यांविकृतिरुपजायतेनोपजायतेचाप्रदुष्टाभ्याम् ४२॥

वात, पित्त और कफ यह तीनों शारीरिक दोष हैं । यह दोष शारीरिक होनेसे शरीरावयवोंको अथवा शरीरको दूषित करतेहैं । रज और तम, यह दो मनके दोष हैं । यह दोनो मनको दूषित करतेहैं । इसप्रकार शारीरिक और मानसिक भेदसे दो प्रकारके दोष होतेहै । यह दोनो प्रकारके दोष दुष्ट होनेसे शरीर और मनको विकृत करदेतेहैं । और दुष्ट न होनेसे विकृत नहीं करते । तात्पर्य यह हुआ कि आत्मा तो निर्दोष है इसलिये आत्मामें कोई विकृति भी नहीं होती । परन्तु शारीरिक और मानसिक दो प्रकारके दोष होतेहै । सो शरीर और मनको दूषित करतेहै । यदि उनका कोई गर्भसे संबंध होजाताहै तो जिसप्रकार जिस अवयव

और जिसअंशमें उनको दुष्टहोकर प्रवेश होताहै उसीको बिगाड देते हैं। यदि वह कुपित नहीं होते किंवा दुष्ट नहीं होते तो किसी प्रकारके उपद्रवको भी नहीं करते ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

तत्रशरीरंयोनिविशेषाच्चतुर्विधमुक्तमग्रेत्रिविधखलुसत्त्वशुद्ध-राजसतामसमिति। तत्रशुद्धमदोषमाख्यातकल्याणांशत्वा-त्। राजससदोषमाख्यातरोषांशत्वात्। तथातामसमपिसदो-षमाख्यातमोहांशत्वात् ॥ ४३ ॥

शरीरकी चार प्रकारकी योनिका पहिले कथन करचुकेहैं। मन तीन प्रकारका होताहै। सात्त्विक, राजस और तामस। इनमें सात्त्विक मन निर्दोष होताहै। इसलिये वह कल्याणयुक्त कहा जाताहै। और यह मोक्षसाधनादि कार्यको करनेवाला होताहै। राजस मन रोषका अंशवाला होनेसे दोषयुक्त कहाजाताहै। तामस मन मोहका अंश अधिक होनेसे अतिदोषयुक्त होताहै ॥ ४३ ॥

सत्त्वके अनेक भेद।

तेषान्तुत्रयाणामपिसत्त्वानामेकैकस्यभेदाग्रमपरिसंख्येयतरत-मयोगाच्छरीरयोनिविशेषेभ्यश्चान्योन्यानुविधानत्वाच्च। शरी-रमपिसत्त्वमनुविधीयतेसत्त्वञ्चशरीरतस्मात्कतिचिच्चसत्त्वभे दाननूकसादृश्याभिनिर्देशेननिदर्शनार्थमनुव्याख्यास्याम ॥४४॥

इन तीनों प्रकारके मनोंमें एकएकका भेद भी असंख्य होताहै। क्योंकि एकएककी अधिकता और न्यूनता आदि भेदसे और शरीरयोनि विशेषसे तथा इनके परस्पर अनुसंधान विशेषसे असंख्य होजातेहैं। शरीर भी सत्त्वकेही अनुरूप होताहै और सत्त्व शरीरके अनुरूप होताहै। इन दोनोंके सादृश्यके अनुसार कितने प्रकारके पुरुष विशेष होतेहैं उनके निदर्शनके लिये वर्णन करतेहैं ॥ ४४ ॥

ब्राह्मका लक्षण।

तद्यथाशुचिसत्याभिसन्धजितात्मानसंविभागिज्ञानविज्ञान-वचनप्रतिवचनशक्तिसम्पन्नस्मृतिमन्तकामक्रोधलोभमानमो-हेर्ष्याहर्षापेतसमम्सर्वभूतेषुब्राह्मंविद्यात् ॥ ४५ ॥

जिस मनुष्यमें पवित्रता, सत्यता, जितात्मता, विचार, ज्ञान, विज्ञान, वचनशक्ती, प्रतिवचनशक्ती, स्मृति यह सब सम्पत्तिमें होतीहैं तथा काम, क्रोध, लोभ, मान, मोह,

राग, और द्वेष यह नहीं होते और सपूर्ण जीवमानमें एकसी दृष्टि रखते है उनको ब्राह्म्यमनुष्य कहते है ॥ ४५ ॥

आर्षका लक्षण ।

इज्याध्ययनव्रतहोमब्रह्मचर्य्यमतिथिव्रतमुपशान्तमदमानराग-द्वेषमोहलोभरोषप्रतिभावचनविज्ञानोपधारणशक्तिसम्पन्नमार्षंविद्यात् ॥ ४६ ॥

जो मनुष्य-यजन, अध्ययन, व्रत, होम, ब्रह्मचर्य, अतिथिव्रतका पालन करतेहैं। और मद, मान, द्वेष, राग, मोह, लोभ, रोष, रहितहों तथा प्रतिवचन, विज्ञान, उपधारणशक्तिसंपन्न होतेहैं उनको आर्ष जानना ॥ ४६ ॥

ऐन्द्रका लक्षण ।

ऐश्वर्य्यवन्तमादेयवाक्ययज्वानशूरमोजस्विनतेजसोपेतमक्लिष्टकर्माणदीर्घदर्शिनधर्मार्थकामाभिरतमैन्द्रविद्यात् ॥ ४७ ॥

जो मनुष्य ऐश्वर्ययुक्त हों, जिनकी आज्ञाको लोग मानतेहों, यज्ञ आदि करतेहों, एवम् शूर, ओजस्वी, तेजस्वी, अनिन्दितकर्मा, दीर्घदर्शी, धर्म, अर्थ और काममें प्रवृत्त हों उनको ऐन्द्र जानना ॥ ४७ ॥

याम्यके लक्षण ।

लेखास्थवृत्तप्रासकारिणमसहार्य्यमुत्थानवन्तस्मृतिमन्तमैश्वर्य्यालम्बिनव्यपगतरागद्वेषमोहयाम्यविद्यात् ॥ ४८ ॥

जो मनुष्य शास्त्रके माननेवाले हों, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्यको विचारकर करनेवाले हों समयपर चूकनेवाले न हों, जिनका कार्य अप्रतिहत हो । उत्थानवान् हों, स्मृतियुक्त हों, ऐश्वर्यावलम्बी हों और राग, द्वेष तथा मोहसे रहित हों उनको याम्यशरीर कहतेहैं ॥ ४८ ॥

वारुणके लक्षण ।

शूरधीरशुचिमशुचिद्वेषिणयज्वानमम्भोविहाररतिमक्लिष्टकर्माणस्थानकोपप्रसादवारुणविद्यात् ॥ ४९ ॥

जो मनुष्य, शूरवीर हों, शुद्ध हों, अपवित्रतासे द्वेष करनेवाले हों, यजन करनेवाले हों, जलमें विहार करनेवाले हों, अनिन्दितकर्मा हों, उचित समयपर क्रोध और प्रसन्नता करनेवाले हों उनको वारुणशरीर कहतेहैं ॥ ४९ ॥

कौबेरका लक्षण।

स्थानमानोपभोगपरिवारसम्पन्नंसुखविहारधर्मार्थकामनित्यशुचिंव्यक्तकोपप्रसादंकौबेरविद्यात् ॥ ५० ॥

जो मनुष्य यथास्थानमें मान, और भोगको सेवन करनेवाले हो, परिवारयुक्त हों, सुखपूर्वक विहार करनेवाले हों, धर्म, अर्थ और कामसाधनमें तत्पर हो, पवित्र हों, जिनका क्रोध और प्रसन्नता प्रगट हो उनको कौबेरशरीर जानना ॥ ५० ॥

गाधर्वका लक्षण।

प्रियनृत्यगीतवादित्रोल्लापकश्लोकाख्यायिकेतिहासपुराणेषुकुशलंगन्धमाल्यानुलेपनवसनस्त्रीविहारकामनित्यमनसूयकगान्धर्वंविद्यात् ॥ ५१ ॥

जिन मनुष्योंको नाचना, गाना, बाजाबजाना और स्तुतिकरना यह सब प्यारा लगताहो, जो श्लोक, कहानिया, इतिहास और पुराणमें कुशल हों, गंध, माला, अनुलेपन, वस्त्र, स्त्री इनमें नित्य आसक्त रहतेहों, निन्दारहित हों उनको गाधर्वकाय कहतेहै ॥ ५१ ॥

ब्राह्मकी उत्कृष्टता।

इत्येवशुद्धस्यसत्त्वस्यसप्तविधभेदांशंविद्यात्कल्याणांशत्वात्तत्सयोगात्तुब्राह्ममत्यन्तशुद्धव्यवस्येत् ॥ ५२ ॥

इसप्रकार सतोगुणप्रधान मनके सातभेदके अंशविशेषसे सातप्रकारके मनुष्योंका वर्णन कियाहै। उनमें कल्याणका अंश होनेसे यह सातों सात्त्विक मनुष्य कहेजाते हैं। सतोगुणका अधिक सबंध होनेसे ब्राह्मशरीर सबसे उत्तम है ॥ ५२ ॥

आसुरके लक्षण।

शूरचण्डमसूयकमैश्वर्य्यवन्तमौदरिकरौद्रमननुक्रोशकमात्मपूजकमासुरंविद्यात् ॥ ५३ ॥

शूर, चण्ड, साहसी, निंदक, ऐश्वर्यवान्, पेटपालक, उग्रस्वभाववाला, निर्दयी और अपनेको पूजन करने तथा करानेवाला अर्थात् आत्मश्लाघी, आसुर मनुष्य जानना ॥ ५३ ॥

राक्षसके लक्षण।

अमर्षिणमनुबन्धकोपंछिद्रप्रहारिणंक्रूरमाहारातिमात्ररुचिमामिषप्रियतमस्वप्नायासबहुलमीर्षुंराक्षसंविद्यात् ॥ ५४ ॥

जो मनुष्य अपने अपमानको न सह सके, जिसके शरीरमे बहुत कालतक क्रोध बनारहे, जो छिद्र पाकर प्रहारकरनेवाला हो, क्रूर स्वभाव हो बहुत आहारकरनेवाला हो, मास खानेमें प्रेम रखनेवाला हो, अधिक सोनेवाला हो, अधिक परिश्रमकर सकता हो और ईर्षायुक्त हो उसको राक्षसकाय जानना ॥ ५४ ॥

पिशाच लक्षण।

महालसंस्त्रैणस्त्रीरहस्काममशुचिंशुचिद्वेषिणंभीरुंभीषयितारंविकृतिविहाराहारशीलंपैशाचंविद्यात् ॥ ५५ ॥

जो मनुष्य अत्यन्त आलसी हो, स्त्रियोंमे बैठा रहता हो, स्त्री भोगकी इच्छावाला हो, अपवित्र हो, शुद्धतासे द्वेष रखनेवाला हो, डरनेवालेको डराता हो, विकृत आहार विहारका सेवन करनेवाला हो, उसको पैशाचकाय कहते है ॥ ५५ ॥

सार्पके लक्षण।

क्रुद्धंशूरप्रकुच्छ्रंभीरुंतीक्ष्णमायासबहुलमन्त्रसुगोचरमाहारविहारपरंसार्पंविद्यात् ॥ ५६ ॥

जो मनुष्य क्रोधी, शूर, कठोर, डरपोक, तीक्ष्णस्वभाववाला, अधिक परिश्रम करनेवाला, थोडा कहेको समझ जाननेवाला, आहार और विहारसे युक्त हो उसको सार्पकाय कहते हैं ॥ ५६ ॥

प्रेतके लक्षण।

आहारकाममतिदुःखशीलाचारोपचारमसूयकमसंविभागिनमतिलोलुपमकर्मशीलंप्रेतंविद्यात् ॥ ५७ ॥

जो मनुष्य अत्यन्त भोजनकी इच्छा रखता हो, जिसका स्वभाव, आचार और उपचार यह सब दुःखितसे हो एवम् निन्दक विना विचारे करनेवाला अतिलोलुप और अकर्मोको करनेवाला हो उसको प्रेतकाय जानना ॥ ५७ ॥

शाकुनके लक्षण।

अनुपक्तकाममजस्रमाहारविहारपरमनवस्थितममर्षिणमसञ्चयंशाकुनंविद्यात् ॥ ५८ ॥

जो मनुष्य निरन्तर इच्छावाला हो, कामनामें आसक्त हो, हरसमय अपने खाने कमानेकी चिन्तामें लगा रहताहो, अनवस्थित चित्त हो, क्रोधी हो और सचय न करता हो उसको शाकुन अर्थात् पक्षीकाय कहतेहै ॥ ५८ ॥

इत्येवंखलुराजसस्यसत्त्वस्यषड्विधभेदांशंविद्याद्रोषांशत्वात्॥५९॥

इसप्रकार रोषांशयुक्त होनेसे राजस मनके छः भेद अंशभेदसे जानने ॥ ५९ ॥

पाशवके लक्षण ।

निराकरिष्णुमधमवेषमजुगुप्सितारम् ।
आहारविहारमैथुनपरं स्वप्नशीलपाशवंविद्यात् ॥ ६० ॥

हरएकको तुच्छ समझनेवाला अधमवेष धारण करनेवाला निन्दारहित, आहार विहार और मैथुनमें आसक्त रहनेवाला एवम् अधिक सोनेवाला पाशव शरीर जानना ॥ ६० ॥

मात्स्यके लक्षण ।

भीरुमबुधमाहारलुब्धमनवस्थितमनुपक्तकामक्रोधसरणशी-
लतोयकाममात्स्यंविद्यात् ॥ ६१ ॥

डरपोक, मूर्ख, आहारलोभी, असावधान, कामक्रोधमें आसक्त, इधर उधर फिरनेके स्वभाववाला, जलमें फिरनेकी इच्छावाला मनुष्य मत्स्यकाय जानना ॥६१॥

वानस्पत्यके लक्षण ।

अलसंकेवलमभिनिविष्टमाहारेसर्वबुद्धयङ्गहीनंवानस्पत्यंवि-
द्यात् ॥ ६२ ॥

आलसी, केवल भोजनमें ही चित्त लगानेवाला, सब प्रकारसे बुद्धिहीन मनुष्य वानस्पत्यकाय जानना ॥ ६२ ॥

इत्येवंखलुतामसस्यसत्त्वस्यत्रिविधभेदांशविद्यान्मोहांशत्वात्६३॥

इसप्रकार तामस सत्त्वके विधिभेदसे, और मोहांशयुक्त होनेसे तीन प्रकारके तामसी मनुष्य होते हैं ॥ ६३ ॥

इत्यपरिसंख्येयभेदानांखलुत्रयाणामपिसत्त्वानांभेदैकदेशोव्या-
ख्यातः ॥ ६४ ॥

इसप्रकार तीनो प्रकारके सत्त्वाके अंश भेदसे असंख्य भेद होजातेहैं । इस स्थानमें केवल निदर्शन मात्र कथन कियाहै ॥ ६४ ॥

सत्त्वके भेदोंका संक्षिप्तवर्णन ।

शुद्धस्यसत्त्वस्यसप्तविधोब्रह्मर्षिशक्रवरुणयमकुबेरगन्धर्वसत्त्वा-
नुकारेण । राजसस्यषड्विधोदैत्यराक्षसपिशाचसर्पप्रेतशकुनि-
सत्त्वानुकारेण । तामसस्यत्रिविधं पशुमत्स्यवनस्पतिसत्त्वानु-

कारेण। कथञ्चयथासत्त्वमुपचार स्यादिति । केवलश्चायमुद्देश'यथोद्देशमभिनिर्दिष्टोभवति। गर्भावक्रान्तिसप्रयुक्तस्यार्थस्यविज्ञानेसामर्थ्यंगर्भकराणाञ्चभावानामनुसमाधिर्विघातश्चविघातकराणाभावानामिति ॥ ६५ ॥

शुद्ध सत्त्वके-ब्रह्म, ऋषि, इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर और गधर्व सत्त्वानुक्रमसे सत्त्वके सातभेद कथन कियेहैं । रजोगुण प्रधान दैत्य, राक्षस, पिशाच, सर्प, प्रेत, पक्षी यह छ प्रकारके भेद राजसमनके कथन कियेहैं। तामस सत्त्वके अनुक्रमसे पशु, मत्स्य, वनस्पति यह तीनभेद कथन कियेहै । जिस गर्भम जिस सत्त्वके लक्षण पाये जाय उसका उसी प्रकार पालन पोषण आदि उपचार करना चाहिये । यह उपरोक्त लक्षण यदि दोहदकी समय गर्भवती स्त्रीमें हो तो जिस प्रकारके लक्षण हो उसको उसी प्रकारकी सतान होगी । इस स्थानमें इन तीनप्रकारके सत्त्वोंका इसी उद्देशसे वर्णन कियागया है । इस सपूर्ण विवरणके जानलेनेसे किससमय गर्भमें किस प्रकारके द्रव्योका प्रयोग करना और गर्भमें हितकारक तथा गर्भकारण द्रव्योंका अनुयोजन एवम् गर्भविघातक कारणोंके प्रतिविधानमें योग्यता उत्पन्न होजातीहै ॥ ६५ ॥

अध्यायका उपसहार।

तत्रश्लोकाः।

निमित्तमात्माप्रकृतिर्वृद्धिः कुक्षौक्रमेणच ।
वृद्धिहेतुश्चगर्भस्यपञ्चार्था शुभसज्ञिता• ॥ ६६ ॥

यहापर श्लोक है-कि निमित्त, आत्मा, प्रकृति, गर्भक्रम और गर्भका कुक्षीमें क्रमपूर्वक वढना, उसके वढनेके हेतु, गर्भके उत्पन्न करनेवाले पाच शुभ अर्थ, वर्णन कियेगयेहै ॥ ६६ ॥

यज्जन्मनिचयोहेतुर्विनाशेविकृतावपि ।
इमांस्त्रीनशुभान्भावानाहुर्गर्भविघातकान् ॥ ६७ ॥

तथा जन्मके न होनेमें एवम् गर्भके नाश होजानेमें और विकृत होजानेमे जो हेतु हैं उन गर्भविनाशक तीन प्रकारके अशुभ हेतुओंको वर्णन कियागया ॥ ६७ ॥

शुभाशुभसमाख्यातानष्टौभावानिमान्भिषक् ।
सर्वथावेदय सर्वान्सराज्ञ कर्त्तुमर्हति ॥ ६८ ॥

जो वैद्य इन शुभ और अशुभ आठभावोंको सपूर्णरूपसे जानलेताहै वही राजाओंके चिकित्साकरने योग्य उत्तम वैद्य होताहै ॥ ६८ ॥

अवाप्त्युपायान्गर्भस्यसएवज्ञातुमर्हति ।
येचगर्भविघातोक्ताभावास्ताश्चाप्युदारधी ॥ ६९ ॥

इतिचरकसंहितायांशारीरस्थानेमहतीगर्भावक्रान्ति शारीरसमाप्तम् ४

योग्य वैद्यको चाहिये कि गर्भके उत्पन्न करनेके उपाय तथा गर्भके उत्पन्न करनेवाले भाव एवम् गर्भविघातक भाव इन सबको बुद्धिपूर्वक पूर्णरूपसे जानलेवे ॥६९॥

इति श्रीचरकप्र०भा०वै०स०शारीरस्थाने भाषाटीकायां महतीगर्भाऽवक्रान्ति शारीर नाम चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्याय ।

अथात' पुरुषविचयशारीर व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम पुरुषविचय शारीरकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

पुरुषोऽयलोकसम्मितइत्युवाचभगवान्पुनर्वसुरात्रेयः। यावन्तो हिमूर्त्तिमन्तोलोकेभावविशेषास्तावन्त पुरुषे, यावन्तः पुरुषे, तावन्तोलोके ॥ १ ॥

यह पुरुष लोकसंमित अर्थात् जगत्के समान है । इसप्रकार भगवान् पुनर्वसु आत्रेयजी कथन करनेलगे । यह जितना मूर्त्तिमान् लोकमें भावविशेष हैं वह सब पुरुषमें होताहै और जो पुरुषमें है वह इस मूर्त्तिमान् जगत्में पायाजाताहै ॥ १ ॥

इत्येवंवादिनभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच । नैतावतावाक्येनोक्तवाक्यार्थमवगाहामहे । भगवताबुद्ध्याभूयस्तरमतोऽनुव्याख्यायमानशुश्रूषामहे ॥ २ ॥

इसप्रकार कहतेहुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश बोले कि हे भगवन् ! इतनेही कथनसे आपके वाक्यके अर्थको नहीं जान सकते । इसलिये आप कृपाकरके इस विषयकी विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिये हमको इसके सुननेकी इच्छा है ॥ २ ॥

और जगत् तथा पुरुषकी तुल्यता ।

इति तमुवाचभगवानात्रेय । अपरिसङ्ख्येयालोकावयवविशे-

पाःपुरुषावयवाविशेषाअप्यपरिसंख्येया । यथायथाप्रधानश्चते-पायथास्थूलभावान्सामान्यमभिप्रेत्योदाहरिष्याम'तानेकम नानिवोधसम्यगुपवर्ण्यमानानग्निवेश । षड्धातवःसमुदिता लोकइतिशब्दलभन्ते । तद्यथा–पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाश ब्रह्मचाव्यक्तमित्येतएवचषड्धातवःसमुदिता पुरुषइतिशब्द-लभन्ते । तस्यपुरुषस्यपृथिवीमूर्त्तिराप'क्लेदस्तेजोऽभिसन्तापो-वायु प्राणोवियच्छिद्राणिब्रह्मान्तरात्मा ॥ ३ ॥

यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी बोले कि जगत्के अवयवविशेष और पुरुषके अव-यवविशेष अपरिसंख्येय हैं अर्थात् गणनामें नहीं आसकते। उनमें जो २ जैसे २ प्रधान और स्थूल भाव हैं उनको सामान्यतासे उदाहरणके लिये वर्णन करतेहैं । हे अग्निवेश ! उन भलेप्रकार वर्णन कियेहुए भावोंको एकाग्रचित होकर श्रवणकरो। छः धातुओंसे मिलाहुआ जगत् है ऐसा सुननेमें आताहै । वह छः धातुयें इसप्रकार हैं । जैसे–पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और अव्यक्तब्रह्म इनसे सम्मिलित मूर्त्तिमान्जगत् है इसीप्रकार पुरुष भी यही छः धातुओंसे सम्मिलित है । जैसे–पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तथा आत्मा यह दोनों धारा बराबर देखनेमें आती हैं। जैसे मूर्त्तिमान् जगत्में यह मूर्त्तिमान्पृथ्वी देखनेमें आतीहै उसीप्रकार दूसरीओर पुरुषका शरीर पृथ्वी है । जैसे एकओर जगत्में जलका प्रवाह है वैसेही पुरुषके शरीरमें क्लेदरूप जल है। जैसे जगत्मे एकओर अग्नि है उसीप्रकार दूसरीओर पुरुषमें जठराग्नि है जैसे जगत्में एकओर पूर्वपश्चिमकी वायुका गमन है वैसेही दूसरीओर पुरुषके शरीरमें प्राण और अपानवायुका गमन होताहै । जैसे मूर्तिमान् जगत्में एकओर आकाश है ऐसे ही दूसरीओर शरीरमें छिद्रसमूहरूपी आकाश है । जैसे मूर्त्तिमान्जगत्में एकओर जगत्का प्रकाशक ब्रह्म है उसीप्रकार दूसरीओर शरीररूपी जगत्को प्रकाशकरने वाला आत्मा है । इसप्रकार दोनोंओर दोनों धारा देखनेमें बराबर आतीहैं ॥ ३ ॥

यथाखलुब्राह्मीविभूतिर्लोकेतथापुरुषेऽप्यान्तरात्मिकीविभूति ब्रह्मणोविभूतिर्लोकेप्रजापतिरन्तरात्मनोविभूति.पुरुषेसत्त्वम् । यस्त्विन्द्रोलोकेसपुरुषेऽहङ्कार आदित्यास्तुआदानंरुद्रोरोप सोम प्रसादोवसव सुखमश्विनौकान्तिर्मरुदुत्साहोविश्वेदेवा सर्वेन्द्रियाणिसर्वेन्द्रियार्थाश्चतमोमोहोज्योतिर्ज्ञानम् । यथा लोकस्यस्वर्गादिस्तथापुरुषस्यगर्भाधानयथाकृतयुगमेवबाल्य-

म् । यथात्रेतातथायौवनयथाद्वापरस्तथास्थाविर्य्ययथाकलि रेवमातुर्य्ययथायुगान्तस्तथामरणमित्येवमनुमानेनानुक्ताना-मपिलोकपुरुषयोरवयवविशेषाणामग्निवेश ! सामान्यंविद्यात्॥४॥

जैसे जगत्में ब्राह्मीविभूति है उसीप्रकार पुरुषमें भी आत्मिकीविभूति है। जैसे जगत्में ब्रह्मकी विभूति प्रजापति है उसीप्रकार अन्तरात्माकी विभूति सत्त्व है। जगत्में जैसे इन्द्र है उसीप्रकार पुरुषमें अहकार है। जैसे जगत्में सूर्य है वैसेही पुरुषमें आदान (ग्रहणशक्ति) है। जैसे जगत्में रुद्र है वैसेही पुरुषमें क्रोध है। जैसे जगत्में चन्द्रमा है उसीप्रकार पुरुषमे प्रसन्नता है। जैसे जगत्में वसु है उसीप्रकार पुरुषमें सुख है। जैसे जगत्में अश्विनीकुमार हैं वैसे दूसरीओर पुरुषमें कान्ती है। जैसे एकओर जगत्में वायु है वैसेही दूसरीओर पुरुषमें उत्साह है। जैसे जगत्में देवता है उसीप्रकार पुरुषमें इन्द्रियें हैं। जैसे जगत्में तम है उसीप्रकार पुरुषमें मोह है। जैसे एकओर जगत्में ज्योती है उसीप्रकार दूसरीओर पुरुषमें ज्ञान है। जैसे जगत्में स्वर्गादि है वैसेही पुरुषमें रतिसुख है। जैसे जगत्में सत्ययुग है उसीप्रकार पुरुषमे बाल्यावस्था है। जैसे जगत्मे त्रेतायुग है वैसेही पुरुषमें यौवनावस्था है। जैसे जगत्मे द्वापर है उसीप्रकार पुरुषमें बुढापाहै। जैसे जगत्में कलियुग है उसीप्रकार पुरुषमें रोगग्रस्त अवस्था है। जैसे एकओर जगत्की प्रलय होताहै वैसेही दूसरीओर पुरुषका मरण होताहै। हे अग्निवेश ! यह दोनों धारा पुरुष और जगत्में बराबर देखनेमें आती हैं। इनके सिवाय और भी सपूर्णभावोको इसीप्रकार जगत् और पुरुषमे समान जानलेना चाहिये ॥ ४ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

इत्येववादिनभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच। एवमेतत्सर्वमन-पवादयथोक्तंभगवतालोकपुरुषयो सामान्यकिन्तुअस्यसामा-न्योपदेशस्यप्रयोजनमिति ॥ ५ ॥

इसप्रकार कथन करतेहुए भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन् ! आपने जिसप्रकार जगत् और पुरुषकी समानताको वर्णन कियाहै यह सर्वथा यथार्थ है और निर्विवाद है। परन्तु इन दोनोंकी समानता वर्णन करनेसे क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ सो कृपाकर वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥

आत्रेयजीका उत्तर ।

भगवानुवाच। कथमग्निवेश ! सर्वलोकमात्मन्यात्मानञ्चसर्व-लोकेसमनुपश्यतस्तस्यात्मबुद्धिरुत्पद्यतेइति। सर्वलोकहिआ-

त्मनिपश्यतोभवतिआत्मैवसुखदु.खयो कर्त्तानान्यइतिकर्मा-त्मकत्वाच्च । हेत्वादिभिरयुक्तसर्वलोकोऽहमितिविदित्वाज्ञान पूर्वमुत्थाप्यतेऽपवर्गायेति ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! जो मनुष्य सपूर्ण जगत्के भावोंको अपने शरीरमें देखताहै और अपने शरीरके सपूर्णभावोंको जगत्में देखता है । उस मनुष्यको आत्मबुद्धि उत्पन्न होजातीहै , सपूर्णजगत्को आत्मामे देखताहुआ आत्माही सुखदुःखका कर्त्ताहै और कोई कर्त्ता नहीं है । क्योंकि कर्म आत्माही करताहै । सपूर्ण हेतु आदिकोंसे आत्मा अलग है केवल कर्मवशसे जगत्मे मिलाहुआ है । कर्मक्षय होनेसे आत्मा इन सबभावोंसे अलग होजाताहै । इसप्रकारका ज्ञान उत्पन्न होकर मैं इन सपूर्णभावोंसे अलगहूं यह ज्ञान उत्पन्न होजाताहै । और साक्षात् आत्मज्ञान प्राप्त होजानेसे मोक्षको प्राप्त होजाताहै ॥ ६ ॥

तत्रसंयोगापेक्षीलोकशब्द.षड्धातुसमुदायोहिसामान्यतःस र्वलोकःतस्यहेतुरुत्पत्तिर्वृद्धिरुपप्लवोवियोगश्च । तत्रहेतुरुत्पत्ति-कारणमुत्पत्तिर्जन्मवृद्धिराप्यायनमुपप्लवोदु.खागम षड्धातु-वियोगः । सजीवापगम सप्राणनिरोध सभङ्ग सलोकस्व-भाव. ॥ ७ ॥

इस स्थानमें लोकशब्द सयोगकी अपेक्षा करताहै । सामान्यतासे छ. धातुओंका समुदाय संपूण लोकहै । इसजगह लोकशब्दसे पुरुप और जगत् दोनाका ग्रहण है । उस लोकके हेतु, उत्पत्ति, वृद्धि, उपप्लव और वियोग यह सब होतेहैं । इसजगह हेतुशब्द उत्पत्तिमें कारण जानना । जन्मको उत्पत्ति कहतेहैं । वृद्धिशब्दसे बढना और पुष्ट होना जानना । उपप्लव शब्द दु खकी प्राप्तीका वाचकहै । छ धातुओंका पृथक् २ होजाना वियोग कहाजाताहै । वह वियोग जीवापगम, (जीवनत्याग) प्राणनिरोध, भग, लोकस्वभाव, नामसे उच्चारण कियाजाताहै ॥ ७ ॥

वियोगका कथन ।

तस्यमूलसर्वोपप्लवानाञ्चप्रवृत्तिर्निवृत्तिरुपरमश्चप्रवृत्तिर्दुःखनि-वृत्ति'सुखमितियज्ज्ञानमुत्पद्यतेतत्सत्यम् । तस्यहेतु सर्वलोक-सामान्यज्ञानमेतत्प्रयोजनंसामान्योपदेशस्येति ॥ ८ ॥

इस वियोगका मूल प्रवृत्तिहीहै । प्रवृत्तिही सपूर्ण दु खोंका मूल है और निवृत्ति सपूर्ण सुखोंका मूल है । तव यह सिद्ध हुआ कि प्रवृत्ति दु ख और निवृत्ति सुखहै ।

इसप्रकारका जो ज्ञान उत्पन्न होताहै वह सत्यहै । इस सत्यज्ञानके उत्पन्न होनेका कारण सपूर्णजगत् और पुरुपकी समानताका ज्ञान होनाही है । सो समानतासे जगत् और पुरुपकी तुल्यताके वर्णनका प्रयोजन कथनकर दियाहै ॥ ८ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

अथाग्निवेशउवाच । किंमूलाभगवन् ! प्रवृत्तिर्निवृत्तौवाउपाय इति ॥ ९ ॥

यह सुनकर अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन् ! प्रवृत्तिका क्या कारण है और निवृत्तिका क्या उपायहै ॥ ९ ॥

प्रवृत्तिके मूलका वर्णन ।

भगवानुवाच । मोहेच्छाद्वेपकर्ममूलाप्रवृत्तिस्तज्जाह्यहङ्कारसङ्गसन्देहाभिसप्लवाभ्यवपातविप्रत्ययाविशेषानुपायाः । तरुणमिवद्रुममतिविपुलशाखास्तरवोऽभिभूयपुरुषमवतत्योत्तिष्ठन्ते यैरभिभूतोनसत्तामतिवर्त्तते ॥ १० ॥

यह सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि मोह, इच्छा, द्वेप और कर्महो प्रवृत्तिका मूल अर्थात् कारण है । उस प्रवृत्तिके होनेसे अहकार, सग, सदेह, अभिसप्लव, अभ्यवपात, विप्रत्यय, विशेप और अनुपाय यह उपस्थित होजातेहै । जैसे-तरुण-वृक्षमें शाखा आदि निकलकर वडी २ टहनी वढकर होजातीहै और वृक्षसे सव टहनी व्याप्त रहतीहै उसीप्रकार अहकारादि वढकर पुरुपसे व्याप्त रहतेहै । उन अहकार आदिकोंसे व्याप्तहुआ पुरुप आत्मज्ञानको नहीं जानसकता ॥ १० ॥

अहकारका लक्षण ।

तत्रैवजातिरूपवित्तवृद्धिशीलविद्याभिजनवयोवीर्य्यप्रभावसम्पन्नोऽहमित्यहङ्कार ॥ ११ ॥

मैं अच्छीजातिका हू, मेरा रूप वहुत उत्तम है एवम् मै वुद्धि, शील, विद्या, कुल, यौवन, वीर्य और प्रभाववाला हू इस प्रकार चित्तमे अहभाव आनेका अहकार कहतेहै ॥ ११ ॥

सगलक्षण ।

यन्मनोवाक्कायकर्मनापवर्गायससङ्ग. ॥ १२ ॥

मन, वाणी, देह और कर्म इनका इसप्रकार उपयोग करना जिससे मोक्षको प्राप्त न होसके उसको सग कहतेहैं ॥ १२ ॥

सन्देहका लक्षण ।

कर्मफलमोक्षपुरुषप्रेत्यभावादयःसन्तिवानेतिसंशय ॥ १३ ॥

कर्मका फल और मोक्ष तथा आत्मा एव पुनर्जन्म है या नहीं इसप्रकार बुद्धिहोनेको संशय कहतेहैं ॥ १३ ॥

अभिसंप्लवका लक्षण ।

सर्वास्ववस्थास्वनन्योऽहमहंस्रष्टास्वभावसंसिद्धोऽहमहंशरीरेन्द्रियबुद्धिस्मृतिविशेषराशिरितिग्रहणमभिसंप्लव' ॥ १४ ॥

जो कुछ हू सो मैही हू, सब अवस्थाओंमें मैं अनन्य हू अर्थात् मेरे समान कोई नही मै श्रेष्ठ हू मेरा स्वभाव बहुत अच्छा और ठीक है, मै शरीर, इन्द्रिय, बुद्धि, और स्मृति विशेषका राशि हू, ऐसी बुद्धिहोनेका नाम संप्लवहै ॥ १४ ॥

अभ्यवपातका लक्षण ।

ममामातृपितृभ्रातृदारापत्यबन्धुमित्रभृत्यगणोगणस्यचाहमित्यभ्यवपातः ॥ १५ ॥

माता, पिता, भाई, स्त्री, सतान, बधु, मित्र, नौकर आदि सब मेरे है और मै उनका हू इसप्रकारकी बुद्धिहोनको अभ्यवपात कहतेहै ॥ १५ ॥

विप्रत्ययका लक्षण ।

कार्य्याकार्य्यहिताहितेशुभाशुभेषुविपरीताभिनिवेशोविप्रत्यय १६॥

कार्य और अकार्य, हित और अहित, शुभ और अशुभ, इन सबमें विपरीतभावसे प्रवृत्तहोना । जैसे अकार्यको कार्य, हितको अहित और अहितको हित मानना आदि इस बुद्धिको विप्रत्यय कहतेहैं ॥ १६ ॥

विशेषका लक्षण ।

ज्ञाज्ञयो प्रकृतिविकारयो.प्रवृत्तिनिवृत्त्योश्चासामान्यदर्शनविशेष' ॥ १७ ॥

यह अज्ञ है, यह ज्ञानी है, यह प्रकृति है यह विकार है, यह प्रवृत्ति है, यह निवृत्ति है, इनसबको असामान्यदृष्टिसे देखना विशेष कहाजाताहै ॥ १७ ॥

अनुपायका लक्षण ।

प्रोक्षणानशनाग्निहोत्रत्रिषवणाभ्युक्षणवाहनयजनयाजनयाचनसलिलहुताशनप्रवेशनादय.समारम्भा प्रोच्यन्तेह्यनुपाया. ॥ १८ ॥

प्रोक्षण, उपवास, अग्निहोत्र, त्रिपवण, अभ्युक्षण, आवाहन, यजन, याजन, याचन, इनका करना तथा जल वा अग्निमें प्रवेश आदि यह मोक्षलाभका अनुपायहै । अर्थात् मोक्षकी ओरसे हटकर स्वर्गादिकोंकी कामनासे प्रवृत्तहोना अनुपाय कहाजाताहै १८

एवमयमधीधृतिस्मृतिरहङ्काराभिनिविष्टःसंसक्त.ससंशयोऽभि-संप्लुतबुद्धिरभ्यवपतितोऽन्यथादृष्टिर्विशेषग्राहीविमार्गगतिर्नि-वासवृक्ष.सत्त्वशरीरदोषमूलानामूलंसर्वदु खानांभवति ॥ १९ ॥

यह पुरुष इसप्रकार बुद्धि, धृति और स्मृतिसे रहितहोकर अहकारी, आसक्त, सशयी प्लुतचित्तवृत्ति, अभ्यवपतित, अन्यथादृष्टि, विशेषग्राही कुमार्गगामी होजाता-है । सत्त्वदोष अर्थात् मनके दोष और शरीरके दोषसे बढेहुए दुःखरूपी वृक्षका मूल होजाताहै । इसप्रकार अहकार आदिकोसे दु खोंकी उत्पत्ति होतीहै ॥ १९ ॥

इत्येवमहकारादिभिर्दोषैर्भ्राम्यमाणोनातिवर्त्ततेप्रवृत्ति सामूल मघस्य ॥ २० ॥

इसप्रकार अहकार आदि दोषोंसे भ्रमवाला हुआ मनुष्य निवृत्त नहीं होसकता और प्रवृत्तिमें आकर स्थित होजाताहै । यह प्रवृत्तिही सम्पूर्ण दु'खोंका मूल है ॥२०॥

निवृत्तिरपवर्गस्तत्परप्रशान्ततदक्षरतद्ब्रह्मसमोक्ष' । तत्रमुमुक्षू-णामुदयनानिव्याख्यास्यामः। तत्रलोकदोषदर्शिनोमुमुक्षोरा-दितएवाचार्य्याभिगमनतस्योपदेशानुष्ठानम् ॥ २१ ॥

निवृत्तिही मोक्ष है, निवृत्तिही अपवर्ग और और शान्ती है, और अक्षर है, निवृत्तिही ब्रह्म है । मोक्षके इच्छावालोंके उपयोगी विषयका वर्णन करतेहै । जगत्में दोषदृष्टिसे देखनेवाला मुमुक्षु अर्थात् मोक्षकी इच्छा करताहुआ गुरुके पास जाय और उसके उपदेशको श्रवणकरके तदनुसार वर्तावकरे ॥ २१ ॥

अग्नेरेवोपचर्य्याधर्मशास्त्रानुगमनतदर्थाववोधस्तेनावष्टम्भ त त्रयथोक्ता क्रिया सतामुपासनमसतापरिवर्जननसङ्गतिर्दुर्जने-नसत्यसर्वभूतहितमपरुषमनतिकालेपरीक्ष्यवचनसर्वप्राणिषु आत्मनीवावेक्षासर्वासामस्मरणमसकल्पनमप्रार्थनाअनभिभा-षणश्चस्त्रीणासर्वपरिग्रहत्याग कौपीनप्रच्छादनार्थधातुरागनिव-सनकन्थासीवनहेतो सूचीपिप्पलकशौचाधानहेतो जलकुण्डि कादण्डधारणभैक्ष्यचर्य्यार्थपात्रप्राणधारणार्थमेककालममा-

न्योयथोपपन्नएवाभ्यवहार.। श्रमापनयनार्थशीर्णशुष्कपर्णतृणास्तरणोपधानंध्यानहेतोःकायनिवन्धनवनेषुअनिकेतवासस्तन्द्रानिद्रालस्यादिकर्मवर्जनमिन्द्रियार्थेषुअनुरागोपतापनिग्रहःसुप्तस्थितगतप्रेक्षिताहारविहारप्रत्यङ्गचेष्टादिकेषुआरम्भेषुस्मृतिपूर्विकाप्रवृत्ति सत्कारस्तुतिगर्हावमानक्षमत्वक्षुत्पिपासायासश्रमशीतोष्णवातवर्षासुखदु.खसस्पर्शसहत्वशोकदैन्यद्वेषमदमानलोभरागेर्ष्याभयक्रोधादिभिरसञ्चलनमहङ्कारादिषूपसर्गसज्ञालोकपुरुषयो सर्गादिसामान्यावेक्षणकार्य्यकालात्ययभययोगारम्भेसततमनिर्वेद.सत्त्वोत्साहापवर्गायधीधृतिस्मृतिवलाधाननियमनमिन्द्रियाणाचेतसिचेतसआत्मन्यात्मनश्चधातुभेदेनशरीरावयवसख्यानामभीक्ष्णसर्वकारणवद्दुःखमस्वमनित्यमित्यभ्युपगमः। सर्वप्रवृत्तिषुदु खसज्ञासर्वसन्न्यासेसुखमित्यभिनिवेशएषमार्गोऽपवर्गायअतोऽन्यथावध्यतेइत्युदयनानिव्याख्यातानि ॥ २२ ॥

और अग्निसेवन धर्मशास्त्रका पढना और उसके अर्थको जानना तथा धर्मशास्त्रका आश्रयलेना और जो २ उसमें क्रिया कथन की हों उनको करना। श्रेष्ठ पुरुषोंकी सेवा करना। खोटे पुरुषोंको त्याग देना, दुर्जनोंसे सगति न करना सत्य बोलना, सपूर्ण जीवोंका हित चाहना, विनासमय विनाविचारे तथा कठोर वाक्योंको न बोलना, सव प्राणियोंको अपनी आत्माके समान जानना, विषयोंका स्मरण न करना, विषयोंका सकल्प तथा इच्छा न करना, स्त्रियोंसे भाषण और प्रेम न करना तथा स्त्रियोंसे सव प्रकारके सवधोंको त्यागदेना। गुह्यस्थान, ढकनेके लिये कौपीन, गेरुए कपडे, गुदडी, सूई सीनेके लिये तुवा (जलपात्र) शौचके लिये, दण्डधारण, दातन, भिक्षा मागनेका पात्र, प्राणधारणके लिये एकसमय वनके कद मूलादिक सेवन, यथाप्राप्ति भोजन, थकावट दूर करनेका ऊपरसे सूखकर गिरेहुए पत्तोका आश्रय तथा घासका आसन। ध्यान लगानेके लिये योगपट्ट वनवृक्षोंके नीचे निवास तद्रा, निद्रा और आलस्यादि कर्मोका वर्जन, इन्द्रियोंके विषयासे उपताप रखना तथा इन्द्रियाको वशमें रखना, निद्रा, स्थिति, गति, दृष्टि, आहार, विहार, तथा अगादिकोंकी चेष्टामें विचारपूर्वक प्रवृत्त होना। तथा सत्कार, स्तुति, निन्दा और अपमान आदिकोंमें

प्रसन्न तथा रज न होना । श्रम, सर्दी, गर्मी, पवन, वृष्टि, सुख और दु.खको सहन करना । शोक, दीनता, द्वेष, मद, मान, लोभ, राग, ईर्षा, भय, और क्रोध आदिकोंसे चलायमान न होना । अहकारादिकोंको उपद्रव समझकर त्याग देना । आत्माम और लोकपुरुषमे तुल्य दृष्टिसे देखना, अपने योगादिक या समाधि आदिक किसी कालको विगडने नही देना । योगके आरम्भम सदैव प्रेम लगाये रहे । अपने मनको सदैव सात्त्विक वनाता रहे । मोक्षके लिये वुद्धि, धृति, स्मृति इनके वलको ग्रहण करे । इन्द्रियोंका नियमन करे अर्थात् जीते । अथवा इन्द्रियोंको चित्तमे और चित्तको आत्मामें स्थापन करे । शरीरावयवोंको धातु भेदसे जाने । यह शरीर धातुभेदसे वनाहुआ है और निरन्तर सपूर्ण कार्य, कारण इसीसे होतेहै । यह सयोगही दु'खका कारण है । यह शरीर अनित्य है । सव प्रकारकी प्रवृत्ति दु खको देनेवालीहै और सपूर्ण सुखोंका अभिनिवेश त्यागमें है । इसप्रकारका निश्चयकरै । यही मोक्षका सीधा मार्ग है। इससे विपरीत प्रवृत्तिमार्ग है । उससे मनुष्य दु खसे वधजाता है मोक्षका सुख प्राप्त करनेके लिये इन निवृत्ति मार्गोंका कथन किया है ॥ २२ ॥

भवन्तिचात्र।

एतैरविमलसत्त्वशुद्ध्युपायैर्विशुध्यति । मृज्यमानइवादर्शस्तैलचेलकचादिभि ॥२३॥ग्रहाम्वुदरजोधूमनीहारैरसमावृतम् । यथार्कमण्डलभातिभातिसत्त्वतथामलम्॥२४ ॥ ज्वलत्यात्मनिसंरुद्धतत्सत्त्वसवृतायने । शुद्ध'स्थिर प्रसन्नार्चिर्दीपोदीपाशयेयथा ॥ २५ ॥

इन सव शुद्ध उपायोंद्वारा मन निमल होजाताहै । जैसे-तैल, वस्त्र और वाल आदिकोंसे साफ कियाजानेपर शीशा निर्मल होजाताहै तथा घर, वादल, धूल, धूम, नीहार इनसे ढका हुआ सूर्यमण्डल प्रतीत नहीं होता उसीप्रकार अहकारादिकोंसे व्याप्त हुआ मन होनेपर ज्ञानका प्रकाश नहीं होता । और उन वादलादिकोंके उडजानेमे सूर्यका स्वच्छ प्रकाश दिखाई देने लगताहै उसीप्रकार अहकार आदिकोंके चले जानेसे मन स्वच्छ होजाताहै । जिस प्रकार स्थिर और प्रसन्न दीपककी ज्योति शुद्ध रीतिसे टिकाई जानेपर निर्मल टिका हुआ प्रकाश करतीहै उसीप्रकार शुद्धसत्त्व आत्मामें ज्ञानका प्रकाश करता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

शुद्धसत्त्वबुद्धिका कथन।

शुद्धसत्त्वस्ययाशुद्धासत्याबुद्धि.प्रवर्त्तते। ययाभिनत्यतिबलम हामोहमयतम.॥ २६॥

शुद्ध सत्त्वसे शुद्ध सत्य बुद्धि उत्पन्न होतीहै। वह बुद्धि महामोहरूपी अतिबलवान् अंधकारको दूरकर देतीहै॥ २६॥

सर्वभावस्वभावज्ञोययाभवतिनिस्पृह । योगंययासाधयतेसा- ख्य.सम्पद्यतेयया॥ २७॥ यया नोपैत्यहङ्कारनोपास्तेकारण यया। ययानालम्बतेकिञ्चित्सर्वसन्यस्यतेयया॥ २८॥ यातिब्रह्मययानित्यमजर शान्तमक्षरम्। विद्यासिद्धिर्मतिर्मे धाप्रज्ञाज्ञानमसामता॥ २९॥

जिस बुद्धिके द्वारा मनुष्य सपूर्ण भावोंके स्वभावाको जानताहुआ निष्क्रिय होजाताहै। जिस बुद्धिके द्वारा योग साधन कियाजाता तथा सांख्यके जाननेवाले सांख्यके ज्ञाता होतेहै। जिससे अहकार उत्पन्न नहीं होता और दु खसुखके कारण आकर प्राप्त नहीं होते। जिस बुद्धिके होनेसे अन्य किसी विषयकी इच्छा नहीं रहती है जिस बुद्धिसे मनुष्य सपूर्ण त्याग करताहै और नित्य, अजर, शान्त, अक्षर ब्रह्मको प्राप्त होजाता है। वह बुद्धिही विद्या, सिद्धि, मति, मेधा, प्रज्ञा, ज्ञान, स्वरूप कही जाती है॥ २७॥ २८॥ २९॥

लोकेविततमात्मानलोकश्चात्मनिपश्यत ।
परावरदृशःशान्तिर्ज्ञानमूलाननश्यति॥ ३०॥

जो मनुष्य सपूर्ण जगत्में अपने आपको देखताहै और अपनेमें सपूर्ण जगतको देखता है उस मनुष्यकी परावरदृष्टि और ज्ञानमूला शान्ती कभी नष्ट नहीं होती है॥ ३०॥

पश्यत.सर्वभूतानिसर्वावस्थासुसर्वदा।
ब्रह्मभूतस्यसयोगोनशुद्धस्योपपद्यते॥ ३१॥

सपूर्ण प्राणियोंमे ब्रह्ममयी दृष्टिसे देखताहुआ और सपूर्ण अवस्था तथा सपूर्ण कालोंमें उस ब्रह्मभूत ज्ञानीको पुनर्जन्मके कारण उपस्थित नहीं होतेहै॥ ३१॥

मुक्तका लक्षण।

नात्मन कारणाभावाल्लिङ्गमप्युपलभ्यते। ससर्वकारणत्यागा-

न्मुक्तइत्यभिधीयते ॥ ३२ ॥ विपापंविरजःशान्तंपरमक्षरम-
व्ययम्। अमृतंब्रह्मनिर्वाणपर्य्यायैःशान्तिरुच्यते ॥ ३३ ॥

जब आत्माके कारणभावसे और कोई चिह्न प्रतीत नहीं होता तो वह संपूर्ण कारणोंके त्यागसे मुक्त है ऐसा कहाजाताहै । विपाक, विरज, शान्त, पर अक्षर, अव्यय, अमृत, ब्रह्म और निर्वाण यह सब शान्ती अर्थात् मोक्षके पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

एतत्तत्सौम्यविज्ञानंयज्ज्ञात्वामुक्तसंशयाः। मुनयःप्रशमंजग्मु-
र्वीतमोहरजःस्पृहाः ॥ ३४ ॥

हे सौम्य ! इस विज्ञानके जाननेसे ही मुनीश्वर संशयरहित और मोह, राग तथा स्पृहारहित हुए हैं । और मोक्षको प्राप्त हुएहै ॥ ३४ ॥

अध्यायका उपसंहार।

सप्रयोजनमुद्दिष्टंलोकस्यपुरुषस्य च। सामान्यमूलमुत्पत्तौनि-
वृत्तौमार्गएवच ॥ ३५ ॥ शुद्धसत्त्वसमाधानंसत्याबुद्धिश्चनै-
ष्ठिकी। विचयेपुरुषस्योक्तानिष्ठाचपरमर्षिणा ॥ ३६ ॥

इति चरकसंहितायां शारीरस्थाने पुरुषविचयं शारीरं समाप्तम् ॥५॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें श्लोक हैं-इस पुरुषविचयशारीरनामक अध्यायमें जगत और पुरुषकी सामान्यताका विचार तथा उसका प्रयोजन, दुःखोंकी उत्पत्तिका मूल और निवृत्ति मार्ग, शुद्ध सत्त्वका समाधान, मोक्ष प्राप्त करनेवाली सत्यबुद्धि तथा मोक्ष इन सबका महर्षि आत्रेयजीने वर्णन कियाहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक०शारीरस्थाने भाषाटीकायां पुरुषविचयशारीरनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातः शरीरविचयशारीरंव्याख्यास्यामः इति हस्माह भग-
वानात्रेयः ।

अब हम शरीरविचय नामक शारीरकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

शरीरविचयका प्रयोजन ।

शरीरविचयः शरीरोपकारार्थमिष्यते भिषग्विद्यायाम् । ज्ञात्वा-

हिशरीरतत्त्वंशरीरोपकारकरेषुभावेषुज्ञानमुत्पद्यतेतस्माच्छरीरविचयप्रशंसन्तिकुशला॰ ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! वैद्यक शास्त्रमें शरीरके उपकारके लिये शरीर विचय जानना चाहिये शरीरतत्त्वको जाननेसेही शरीरके उपकारक भावोंमे ज्ञान उत्पन्न हो सकताहै । इसलिये शरीरविचयके जाननेकी विद्वान्‌लोग प्रशंसा करतेहै ॥ १ ॥

शरीरका वर्णन ।

तत्रशरीरंनामचेतनाधिष्ठानभूतपञ्चभूतविकारसमुदायात्मकम् २॥

शरीर चेतनाके अधिष्ठानभूत पाच महाभूतोंके विकारोंका समुदाय है ॥ २ ॥

समयोगवाहिनोयदाह्यस्मिञ्च्छरीरेधातवोवैषम्यमापद्यन्तेतदायक्लेशविनाशवाप्राप्नोतिवैषम्यगमनवापुनर्धातूनांवृद्धिह्रासगमनमकात्स्न्येंन ॥ ३ ॥

शरीरकी संपूर्ण धातुयें समयोगवाहीहै । जब यह धातुयें शरीरमें विषमताको प्राप्त होजातीहै । तब यह मनुष्य कष्टको पाताहै अथवा विनाशको प्राप्त होजाताहै । धातुओंका अपने परिमाणसे बढजाना या कमहोजानाही विषमताको प्राप्त होना कहा जाताहै ॥ ३ ॥

प्रकृत्याचयोगपद्येनतुविरोधिनाधातूनांवृद्धिह्रासौभवत॰ ॥४॥

प्राय॰ यह स्वभावसेही धातुओंका गुण है कि जब एक धातु वृद्धिको प्राप्त होतीहै तो उससे विपरीत दूसरा धातु हीनताको प्राप्त होजाताहै ॥ ४ ॥

यद्धियस्यधातोर्वृद्धिकरतत्ततोविपरीतगुणस्यधातो प्रत्यवायकरन्तुसम्पद्यते । तदेवतस्माद्भेषजसम्यगवधार्य्यमाणयुगपन्न्यूनातिरिक्तानाधातूनांसाम्यकरभवतिअधिकमपकर्षतिन्यूनमाप्याययति।एतावदेवहिभैषज्यप्रयोगेफलमिष्टस्वस्थवृत्तानुष्ठानञ्चयावद्धातूनासाम्यस्यात् ॥ ५ ॥

जो द्रव्य एक धातुको बढानेवाला होताहै वह उससे विपरीत गुणवाली दूसरी धातुको हीन करनेवाला होताहै । इसलिये वह एकही औषधी विधिवत् सेवन की हुई न्यून और अधिकहुई धातुओंको साम्यावस्थामें करदेतीहै । क्योंकि जो धातु बढीहुई होतीहै उसको अपकर्षण करके घटा देतीहै और घटीहुईको बढा देतीहै । इसप्रकार औषधीका प्रयोग करनेका श्रेष्ठ फल है । और स्वस्थवृत्त मनुष्यका अनुष्ठान है । जिसमे संपूर्ण धातुओंकी साम्यता बनीरहे ॥ ५ ॥

धातुसाम्यकी विधि।

स्वस्थस्यापिसमधातूनासाम्यानुग्रहार्थमेवकुशलारसगुणानाहारविकारांश्चपर्य्यायेणेच्छन्तिउपयोक्तुम्। सात्म्यसमाख्यातानेकप्रकारभूयिष्ठाश्चोपयुञ्जानास्तद्विपरीतकरणलक्षणसमाख्यातचेष्टयासममिच्छन्तिकर्त्तुम् ॥ ६ ॥

स्वस्थ मनुष्योंकी भी समधातुओंकी साम्यता रखनेकेलिये रस, गुण आदि आहारके विकारोंको उनके पर्यायक्रमसे निश्चयकर देना उचित समझतेहैं। क्योंकि एक प्रकारका रस सात्म्य होनेपर भी बहुत खाया जाय तो उससे जो धातुओंमें विषमता होनेवाली हो उसके विपरीत कार्यकरनेवाले द्रव्यके उपयोगसे धातुओंमें समता रहतीहै और सात्म्यतामें कोई विघ्न उपस्थित नहीं होता। इसलिये अनेक प्रकारके रसोंका भोजन करतेहुए उनके गुणादिकोंसे उनको धातुसात्म्य बना, सेवन करना अथवा जिसप्रकार सेवनकरनेसे धातुए सात्म्य रहे उसप्रकार साधनकरना उचितहै। तथा जिसके सेवनसे जो धातु अधिक होनेवाली हो उससे विपरीत द्रव्यका सेवनकरना और चेष्टाकरना धातुओंको सात्म्य रखताहै ॥ ६ ॥

स्वस्थके धातुसाम्यरखनेका उपदेश।

देशकालात्मगुणविपरीतानाहिकर्मणामाहारविकाराणाञ्चक्रमेणोपयोग सम्यक्। सर्वाभियोगोनुदीर्णानांसन्धारणमसन्धारणमुदीर्णानाञ्चगतिमतासाहसानाञ्चवर्जनम्। स्वस्थवृत्तमे तावद्धातूनासाम्यानुग्रहार्थमुपदिश्यते ॥ ७ ॥

देश, काल और आत्मगुणसे विपरीत कर्मोंका तथा आहारसमूहोंका क्रमपूर्वक उपयोग करना अर्थात् शीतदेशमें गर्म वस्तुओंका उपयोग और उष्णदेशमें शीत वस्तुओंका उपयोग करना। इसीप्रकार शीतकालमें उष्णपदार्थोंका सेवन और उष्णकालमें शीतपदार्थोंका सेवन एवम् रूक्ष प्रकृतिको स्निग्ध द्रव्योंका सेवनकरना और स्निग्धको रूक्षका सेवनकरना इत्यादि कर्म तथा जो वेग आयेहुए हैं उनको धारण न करना और नहीं आयेहुए वेगोंको धारण करना साहसीकर्मोंको छोडदेना, यह सब स्वस्थ मनुष्योंकी धातुओंको सात्म्य रखनेकेलिये कथन किये गयेहैं ॥ ७ ॥

धातुओंकी वृद्धि और ह्रासका कारण।

धातव पुन शारीरा समानगुणै'समानगुणभूयिष्ठैर्वापिआहार-

हिशरीरतत्त्वशरीरोपकारकरेषुभावेषुज्ञानमुत्पद्यतेतस्माच्छरी
रविचयप्रशंसन्तिकुशलाः ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! वैद्यक शास्त्रमें शरीरके उपकारके लिये शरीर विचय जानना चाहिये शरीरतत्त्वको जाननेसेही शरीरके उपकारक भावोंमें ज्ञान उत्पन्न हो सकताहै । इसलिये शरीरविचयके जाननेकी विद्वान् लोग प्रशंसा करतेहैं ॥ १ ॥

शरीरका वर्णन ।

तत्रशरीरनामचेतनाधिष्टानभूतपञ्चभूतविकारसमुदायात्मकम् ॥२॥

शरीर चेतनाके अधिष्ठानभूत पांच महाभूतोंके विकारोंका समुदाय है ॥ २ ॥

समयोगवाहिनोयदाह्यस्मिञ्छरीरेधातवोवैषम्यमापद्यन्तेत
दायक्लेशविनाशवाप्राप्नोतिवैषम्यगमनवापुनर्धातूनावृद्धिह्रास-
गमनमकार्त्स्न्येन ॥ ३ ॥

शरीरकी संपूर्ण धातुयें समयोगवाहीहैं । जब यह धातुयें शरीरमें विषमताको प्राप्त होजातीहैं । तब यह मनुष्य कष्टको पाताहै अथवा विनाशको प्राप्त होजाताहै । धातुओंका अपने परिमाणसे बढजाना या कमहोजानाही विषमताको प्राप्त होना कहा जाताहै ॥ ३ ॥

प्रकृत्याचयौगपद्येनतुविरोधिनाधातूनावृद्धिह्रासौभवतः ॥४॥

प्रायः यह स्वभावसेही धातुओंका गुण है कि जब एक धातु वृद्धिको प्राप्त होतीहै तो उससे विपरीत दूसरा धातु हीनताको प्राप्त होजाताहै ॥ ४ ॥

यद्धियस्यधातोर्वृद्धिकरतत्ततोविपरीतगुणस्यधातो प्रत्यवायक-
रन्तुसम्पद्यते । तदेवतस्माद्भेषजसम्यगवधार्य्यमाणयुगप-
न्न्यूनातिरिक्तानाधातूनांसाम्यकरभवतिअधिकमपकर्षतिन्यू-
नमाप्याययति।एतावदेवहिभैषज्यप्रयोगेफलमिष्टस्वस्थवृत्ता-
नुष्ठानञ्चयावद्धातूनासाम्यस्यात् ॥ ५ ॥

जो द्रव्य एक धातुको बढानेवाला होताहै वह उससे विपरीत गुणवाली दूसरी धातुको हीन करनेवाला होताहै । इसलिये वह एकही औषधी विधिवत् सेवन की हुई न्यून और अधिकहुई धातुओंको साम्यावस्थामें करदेतीहै । क्योंकि जो धातु बढीहुई होतीहै उसको अपकर्षण करके घटा देतीहै और घटीहुईको बढा देतीहै । इसप्रकार औषधीका प्रयोग करनेका श्रेष्ठ फल है । और स्वस्थवृत्त मनुष्यका अनुष्ठान है । जिससे संपूर्ण धातुओंकी साम्यता बनीरहै ॥ ५ ॥

धातुसाम्यकी विधि ।

स्वस्थस्यापिसमधातूनासाम्यानुग्रहार्थमेवकुशलारसगुणानाहारविकाराश्चपर्य्यायेणेच्छन्तिउपयोक्तुम् । सात्म्यसमाख्यातानेकप्रकारभूयिष्ठाश्चोपयुञ्जानास्तद्विपरीतकरणलक्षणसमाख्यातचेष्टयासममिच्छन्तिकर्त्तुम् ॥ ६ ॥

स्वस्थ मनुष्योंकी भी समधातुओंकी साम्यता रखनेकेलिये रस, गुण आदि आहारके विकारोंको उनके पर्यायक्रमसे निश्चयकर देना उचित समझतेहैं । क्योंकि एक प्रकारका रस सात्म्य होनेपर भी बहुत खाया जाय तो उससे जो धातुओंमे विषमता होनेवाली हो उसके विपरीत कार्यकरनेवाले द्रव्यके उपयोगसे धातुओंमें समता रहतीहै और सात्म्यतामें कोई विघ्न उपस्थित नहीं होता । इसलिये अनेक प्रकारके रसोंका भोजन करतेहुए उनके गुणादिकोंसे उनको धातुसात्म्य बना, सेवन करना अथवा जिसप्रकार सेवनकरनेसे धातुए सात्म्य रहें उसप्रकार साधनकरना उचितहै । तथा जिसके सेवनसे जो धातु अधिक होनेवाली हो उससे विपरीत द्रव्यका सेवनकरना और चेष्टाकरना धातुओंको सात्म्य रखताहै ॥ ६ ॥

स्वस्थके धातुसाम्यरखनेका उपदेश ।

देशकालात्मगुणविपरीतानाहिकर्मणामाहारविकाराणाञ्चक्रमेणोपयोग.सम्यक् । सर्व्वाभियोगोनुदीर्णानासन्धारणमसन्धारणमुदीर्णानाञ्चगतिमतासाहसानाञ्चवर्जनम् । स्वस्थवृत्तमेतावद्धातूनासाम्यानुग्रहार्थमुपदिश्यते ॥ ७ ॥

देश, काल और आत्मगुणसे विपरीत कर्मोंका तथा आहारसमूहोंका क्रमपूर्वक उपयोग करना अर्थात् शीतदेशमें गर्म वस्तुओंका उपयोग और उष्णदेशमें शीत वस्तुओंका उपयोग करना । इसीप्रकार शीतकालमे उष्णपदार्थोंका सेवन और उष्णकालमें शीतपदार्थोंका सेवन एवम् रूक्ष प्रकृतिको स्निग्ध द्रव्योंका सेवनकरना और स्निग्धको रूक्षका सेवनकरना इत्यादि कर्म तथा जो वेग आयेहुए हैं उनको धारण न करना और नहीं आयेहुए वेगोंको धारण करना साहसीकर्मोको छोडदेना, यह सब स्वस्थ मनुष्योंकी धातुओंको सात्म्य रखनेकेलिये कथन किये गयेहैं ॥ ७ ॥

धातुओंकी वृद्धि और ह्रासका कारण ।

धातव:पुन.शारीरा समानगुणे.समानगुणभूयिष्ठैर्वापिआहार-

विहारैरभ्यस्यमानैर्वृद्धिंप्राप्नुवन्तिह्रासन्तुवितरीतगुणैर्विपरीतगुणभूयिष्ठैर्वाप्याहारैरभ्यस्यमानै ॥ ८ ॥

शरीरकी धातुयें अपने समान गुणवाले तथा समानगुणविशेषवाले आहारविहारोंके सेवनसे वृद्धिको प्राप्त होतींहैं । और विपरीतगुणवाले तथा विपरीतप्रभाववाले आहार, विहारसे धातुयें ह्रासको प्राप्त होतींहैं ॥ ८ ॥

धातुओंके गुण ।

तत्रेमेशरीरधातुगुणाःसंख्यासामर्थ्यरूपकरास्तद्यथागुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षमन्दतीक्ष्णस्थिरसरमृदुकठिनविशदपिच्छिलश्लक्ष्णखरसूक्ष्मस्थूलसान्द्रद्रवाः ॥ ९ ॥

उन शारीरिक धातुओंके गुण इस प्रकार है और वह संख्या, सामर्थ्य और रूपके विभागसे जानने चाहिये । जैसे गुरु,लघु,शीत, उष्ण,स्निग्ध,रूक्ष, मंद, तीक्ष्ण, स्थिर, सर, मृदु, कठिन, विशद,पिच्छिल,श्लक्ष्ण, खर, सूक्ष्म, सान्द्र, स्थूल और द्रव ॥ ९ ॥

गुरु और लघुधातुओंका वर्णन ।

तेषुयेगुरवोधातवोगुरुभिराहारविकारगुणैरभ्यस्यमानैराप्याय्यन्तेलघवश्चह्रसन्ति । लघवस्तुलघुभिरेवाप्याय्यन्तेगुरवश्चह्रसन्त्येवमेवमर्वधातुगुणानासामान्ययोगाद्वृद्धिर्विपर्य्ययाद्ध्रास. ॥ १० ॥

उनमें जो गुरु धातु है वह गुरुगुणवाले आहारके सेवनसे बढतेंहैं । और लघु धातुए ह्रास होती हैं । इसप्रकार लघुगुणवाले द्रव्योंके सेवनकरनेसे लघुधातुयें पुष्ट होतींहैं । और गुरुधातुयें ह्रास होतींहैं । इसप्रकार संपूर्ण धातुओंकी समानगुणवाले द्रव्यसे वृद्धि और विपरीत गुणवाले द्रव्योंसे ह्रास होताहै ॥ १० ॥

प्रतिधातुओंकी वृद्धिका हेतु ।

तस्मान्मांसमाप्याय्यतेमांसेनभूयोन्येभ्य शरीरधातुभ्य । तथा लोहितंलोहितेनमेदोमेदसावसावसयाअस्थितरुणास्थ्नामज्जामज्जयाशुक्रंशुक्रेणगर्भस्त्वामगर्भेण ॥ ११ ॥

इसलिये और धातुओंकी अपेक्षा मांसके खानेमे मांस । रुधिरसे रुधिर । चर्बीसे चर्बी । कोमल अस्थियोंसे अस्थियें । मज्जासे मज्जा । वीर्यसे वीर्य बढताहै । इसीप्रकार गर्भ—आमगर्भ (अण्डा) के सेवनसे बढताहै ॥ ११ ॥

समानकी अप्राप्तिमें उपाय ।

यत्रतुएवंलक्षणेनसामान्येनसामान्यवतामाहारविकाराणामसान्निध्यस्यात् । सन्निहितानावापिअयुक्तत्वान्नोपयोगोघृणित्वादन्यस्माद्वाकारणात्सचधातुरभिवर्द्धयितव्यःस्यात् । तस्य येसमानगुणाःस्यु'आहारविकारा असेव्याश्चतत्रसमानगुणभूयिष्ठानामन्यप्रकृतीनामपिआहारविकाराणामुपयोग.स्यात् ॥१२॥

इस स्थानमें इस सामान्य निर्देशसे सपूर्ण आहार आदिकोंका भाव जानना । शरीरके धातुओंके समानगुणवाले मासादिआहारसे मास आदिकोंकाही आवश्यक कथन नहीं है किन्तु मास आदि आहार बढानेवाले जो आहारविशेष है उनका प्रयोजन है । जिनको मास आदिकोंसे घृणा है अथवा न मिलनेसे वा अन्य किसी कारणसे वह असेवनीय है उनको मास आदिके बढानेवाले अन्य दूध आदि पदार्थ सेवनकरने चहिये ॥ १२ ॥

तद्यथा-शुक्रक्षयेक्षीरसर्पिषोरुपयोगोमधुरस्निग्धसमाख्यातानाञ्चापरेषामेवद्रव्याणाम् । मूत्रक्षयेपुनरिक्षुरसवारुणीमण्डद्रवमधुराम्ललवणोपक्लेदिनाम् । पुरीषक्षयेकुल्माषमाषकूष्माण्डाजमध्ययवशाकधान्याम्लानाम् । वातक्षयेकटुतिक्तकषायरूक्षलघुशीतानाञ्च । पित्तक्षयेम्ललवणकटुकक्षारोष्णतीक्ष्णानाम् । श्लेष्मक्षयेस्निग्धगुरुमधुरसान्द्रपिच्छिलानाद्रव्याणाकर्मापिचयद्यद्यस्यधातोर्वृद्धिकरतत्तदनुसेव्यम् ॥ १३ ॥

यह इसप्रकार जानना । जैसे शुक्रके क्षीण होनेपर दूध, घृतका उपयोग करना, मधुर तथा चिकने एवम् अन्य वीर्यवर्द्धक पदार्थोंका सेवनकरना उचितहै । मूत्रक्षय होनेपर ईखका रस, वारुणी, मण्ड तथा पतले और मधुर, अम्ल, लवण, एवम् मूत्रके लानेवाले अन्यपदार्थ सेवनकरने चाहिये । मलके क्षय होनेपर कुल्माप (मटर) उडद, कूष्माण्ड, अजमध्य, यव, शाक, धान्यामल सेवनकरना चाहिये । वातके क्षीण होनेपर कडुए, चरपरे, कसैले, रूक्ष, हलके तथा शीतल द्रव्य सेवनकरना चाहिये । पित्तके क्षय होनेपर खट्टे, नमकीन, चरपरे, क्षार, उष्ण तथा तीक्ष्ण द्रव्योंका सेवनकरना चाहिये । कफके क्षीण होनेपर स्निग्ध, भारी, मधुर, सान्द्र, पिच्छिल द्रव्योंका सेवन करना चाहिये । इसीप्रकार जो कर्म भी जिस २ धातुको बढानेवाला हो उसका सेवनकरना चाहिये ॥ १३ ॥

एवमन्येपामपिशरीरधातूनांसामान्यविपर्य्ययाभ्यांवृद्धिह्रासौ यथाकालकार्य्याविति । सर्वधातूनामेकैकशोऽतिदेशतश्चवृद्धि-ह्रासकराणिव्याख्यातानिभवन्ति ॥ १४ ॥

एवम् अन्य भी जो शरीरकी धातुय है उनके समान और विपर्यय करनेवाले द्रव्योंसे धातुओंकी वृद्धि और ह्रास होताहै । उनसवका धातुओंको साम्य रखनेके लिये यथासमय सेवनकरना चाहिये । इसप्रकार सक्षेपसे सपूर्ण धातुओंके वृद्धि और ह्रास करनेवाले भावोंका एकएक करके वर्णन किया गयाहै ॥ १४ ॥

कृत्स्नशरीरपुष्टिकरास्त्विमेभावा.कालयोग स्वभावसिद्धिराहार-सौष्ठवमविघातश्चेतिवलवृद्धिकरास्त्विमेभावाभवन्ति। तद्यथा— वलवत्पुरुपेदेशेजन्मवलवत्पुरुपेचकाले । सुखश्चकालयोगो वीजक्षेत्रगुणसम्पच्चाहारसम्पच्चशरीरसम्पच्चसात्म्यसपच्चस-त्त्वसम्पच्चस्वभावससिद्धिश्चयौवनश्चकर्मचसंहर्पश्चेति ॥ १५ ॥

सपूर्ण मनुष्योंके सव धातुओंको पुष्ट करनेवाले यह भाव होतेहै । जैसे-समयका उत्तमयोग, स्वभावसिद्धि, आहारकी उत्तमता,किसीप्रकारका विघात न पहुचना यह मनुष्योंके वलके वढानेवाले भाव होतेहै । जैसे—वलवान् पुरुपसे वल्वान् स्त्रीमें और वल्वान् देशमें, तथा वलवान् समयमें जन्म होना । सुखकारक कालका योग, वीज और क्षेत्रकी उत्तमता, सत्त्वकी उत्तमता, व्यायाम आदि वलकारक कर्म, यौवनाव-स्था, अपना किया कर्म और प्रसन्नता यह सव मनुष्याके शरीरको पुष्ट तथा वल और धातुओंकी वृद्धिके करनेवाले भाव है ॥ १५ ॥

आहारपरिणामकरास्तुइमेभावाभवन्ति। तद्यथाउष्मा, वायु, क्लेद., स्नेह , काल., सयोगश्चेति ॥ १६ ॥ तत्रतुखल्वेपामु-ष्मादीनामाहारपरिणामकराणाभावानामिमे कर्मविशेपाभव-न्तितद्यथा । उष्मापचतिवायुरपकर्पतिक्लेद शैथिल्यमापादय-तिस्नेहोमार्दवजनयतिकाल.पर्य्याप्तिमभिनिर्वर्त्तयतिसयोग-स्तुएपांपरिणामधातुसाम्यकर सम्पद्यते ॥ १७ ॥

आहारको पाचन करनेवाले यह भाव होतेहै । जैसे—गर्मी, वायु, क्लेद, स्नेह काल, और सयोग । इन गर्मी आदि आहारके पाचन करनेवाले भावोंके आहारके पाचन करनेमें पृथक् २ कर्म है । जैसे—गर्मी पचानेवाली है । वायु आकर्पण करताहै । क्लेद

आहारको शिथिल करता है। स्नेह मृदु अर्थात् आहारको नरम बनाताहै। काल पर्याप्ति करताहै। अर्थात् ठीक समयपर उचित २ कार्योंको करताहै। समयपर भोजन न होनेसे परिपाकमें भी विघ्न होताहै। सयोग इन सबके परिमाणसे धातुओंको साम्य करताहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

परिणामतस्त्वाहारस्यगुणाःशरीरगुणभावमापद्यन्तेयथास्वम विरुद्धाविरुद्धाश्चविहन्युर्विहताश्चविरोधिभि शरीरम् ॥ १८ ॥

जब आहार पाचन होजाताहै तो उसके गुण शरीरके गुण भावमें प्राप्त होजातेहैं यदि आहार अविरुद्ध गुणवाला हो तो शरीरको पुष्ट करताहै और विरोधी गुणवाला होनेसे शरीरको नष्ट करदेताहै ॥ १८ ॥

शरीरधातुके भेद।

शरीरधातवस्त्वेवंद्विविधा संग्रहेणमलभूता प्रसादभूताश्च। तत्रमलभूतास्तेशरीरस्ययेबाधकरा स्युस्तद्यथाशरीरच्छिद्रेषुउपदेहा.पृथग्जन्मानोबहिर्मुखाःपरिपक्काश्चधातव.। प्रकुपिताश्चवातपित्तश्लेष्माणोयेचान्येऽपिकेचिच्छरीरेतिष्ठन्तिभावा.शरीरस्योपघातायोपपद्यन्तेसर्वांस्तान्मलान्संप्रचक्ष्महे। इतरास्तुप्रसादेगुर्वादींश्चद्रव्यान्तान्गुणभेदेनरसादींश्चशुक्रान्तान्द्रव्यभेदेन ॥ १९ ॥

शारीरिक धातुए सामान्यतासे दो प्रकारकी होतीहैं। १ मलभूत २ प्रसादभूत उनमें जो शरीरको बाधा करनेवाली हैं उनको मलभूत धातु कहतेहैं। वह इस प्रकार हैं। जैसे-शरीरछिद्रोंमें भरा हुआ क्लेद और जो शरीरसे पृथक उत्पन्न होनेवाले हों अर्थात् शरीरमें न मिलकर फोकट रूपसे अलग निकल जानेवाली हो और परिपाकको प्राप्त हो अपने छिद्रोंद्वारा बाहर निकल जानेवाली हों (विष्ठाआदि) इनको मल कहते है तथा कुपित हुए वात, पित्त, कफ और इनके सिवाय भी जो शरीरको बिगाडनेवाले भाव है। उन सबको मलभूत धातु कहते है। इनके सिवाय गुरु आदि गुणसे लेकर द्रव पर्यन्त गुण भेदसे, और रससे लेकर शुक्रपर्यन्त द्रवभेदमें सब धातुयें प्रसाद गहक होतीहै ॥ १९ ॥

तेषासर्वेषामेववातपित्तश्लेष्माणोदुष्टादूषयितारोभवतिदोषत्वाद्वातादीनापुनर्धात्वन्तरेकालान्तरेप्रदुष्टानाविविधाशितपीतीयेऽध्यायेविज्ञानान्युक्तानिएतावत्येवदुष्टदोषगतिर्यावत्तस्पर्शना-

च्छरीरधातूनाम् । प्रकृतिभूतानान्तुखलुवातादीनाफलमारो-ग्यतस्मादेषाप्रकृतिभावेप्रयतितव्यंबुद्धिमद्भिः ॥ २० ॥

उन सब धातुओंकोही दुष्ट हुए वात, पित्त, कफ दूषित करनेवाले होतेहै । दोष होनेसे वातादिकोंद्वारा जो सपूर्ण धातुये दूषित होकर जिन २ लक्षणोंको धारण करतीहैं वह सब विविधाशितपीतीयाध्यायमें विशेषरूपसे कथनकर चुकेहैं । दोष दुष्ट होकर शरीरकी धातुओंको सस्पर्श करतेही दूषित करदेतेहैं । जब यह वातादि दोष अपनी प्रकृतिमे स्थिर रहे तो इनका फल आरोग्यता होताहै । इसलिये बुद्धिमान् दोषोंको प्रकृतिस्थ रखनेमे यत्नवान् रहते है ॥ २० ॥

पूर्णवैद्यके लक्षण ।

सर्वदासर्वथासर्वंशरीरंवेदयोभिषक् ।
आयुर्वेदसकात्स्न्र्येनवेदलोकसुखप्रदम् ॥ २१ ॥

यहापर श्लोक है । जो वैद्य सबप्रकारसे सबकालमे सपूर्ण शरीरके सपूर्णभावोंको यथावत् जानताहै वह लोकको सुख देनेवाले आयुर्वेदको सपूर्णरूपसे जानताहै ॥२१॥

तमेवमुक्तवन्तभगवन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच । श्रुतमेतद्यदु-क्तभगवताशरीराधिकारेवच । किन्नुखलुगर्भस्याङ्गपूर्वमभिनि वर्त्ततेकुक्षौकुतोमुखंकथवाचान्तर्गतस्तिष्ठति । किमाहारश्चव-र्त्तयतिकथभूतश्चनिष्क्रामतिकैश्चायमाहारोपचारैर्जातस्त्वव्या-धिरभिवर्द्धतेसद्योहन्यतेके कथश्चास्यदेवादिप्रकोपनिमित्ताविकाराउपलभ्यन्तेआहोस्विन्नकिश्चास्यकालाकालमृत्योर्भावा भावयोर्भगवानध्यवस्यति । किश्चास्यपरमायु कानिचास्यपर मायुषोनिमित्तानीति ॥ २२ ॥

इसप्रकार कहतेहुए भगवान आत्रेयजीसे अग्निवेश कहनेलगे कि हेभगवन् ! शरीर-संबधी जो विषय आपने कथन कियाहै वह हमने श्रवण किया। अब कृपाकर यह कथन कीजिये कि गर्भका प्रथम कौनसा अग उत्पन्न होताहै और गर्भमे बालक किसओर मुखकरके किस प्रकार गर्भाशयके भीतर रहताहै । और क्या आहारकर जीताहै, किसप्रकार निकलताहै, कैसे आहार और उपचारके होनेसे आरोग्य रहकर वृद्धिको प्राप्त होताहै । किन कारणोंसे शीघ्र नष्ट होजाताहै । देव आदिकोंके कोपसे उत्पन्नहुए विकार कैसे आनेजातेहै । हे भगवन ! आप इसके काल और अकाल-

मृत्युके भाव और अभावका क्या निश्चय करतेहो अर्थात् भावाभावमें कौनसी अकालमृत्यु और कौनसी कालमृत्यु होतीहै तथा उनके कारण क्या हैं। इसकी परमआयु कितनी है और उसके निमित्त क्या है ॥ २२ ॥

तमेवमुक्तवन्तमग्निवेशभगवान्पुनर्वसुरात्रेयउवाच। पूर्वमुक्तमेतद्गर्भावक्रान्तौयथायमभिनिर्वर्त्ततेकुक्षौयच्चास्ययदासन्तिष्ठतेऽङ्गजातम्। विप्रतिपत्तिवादास्त्वत्रबहुविधाःसूत्रकारिणामृषीणासन्तिसर्वेषातानपिनिबोधउच्यमानान्। शिरःपूर्वमभिनिर्वर्त्ततेकुक्षावितिकुमारशिराभरद्वाज पश्यतिसर्वेन्द्रियाणातदधिष्ठानमितिहृदयमितिकाङ्कायनोबाह्लीकभिषक्चेतनाधिष्ठानत्वात्। नाभिरितिभद्रकाप्यआहारागमइतिकृत्वापक्वगुदमितिभद्रशौनकोमारुताधिष्ठानत्वात्। हस्तपादमितिवडिशस्तत्करणत्वात्पुरुषस्यइन्द्रियाणीतिजनकोवैदेहस्तान्यस्यबुद्ध्यधिष्ठानानीतिकृत्वा। बुद्धिपरोक्षत्वादचिन्त्यमितिमारीचिःकश्यप सर्वाङ्गनिर्वृत्तियुगपदितिधन्वन्तरिः। तदुपपन्नसर्वाङ्गानातुल्यकालाभिनिर्वृत्तत्वाद्धृदयप्रभृतीनासर्वाङ्गानामस्यहृदयमूलमधिष्ठानञ्चकेषाञ्चिद्भावानानचतस्मात्पूर्वाभिनिर्वृत्तिरेषान्तस्माद्धृदयपूर्वाणासर्वाङ्गानातुल्यकालाभिनिर्वृत्ति सर्वभावाह्यन्योन्यप्रतिबद्धास्तस्माद्यथाभूतदर्शनम् ॥ २३ ॥

इसप्रकार अग्निवेशके कथनको सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि हे अग्निवेश! जिसप्रकार कुक्षीमें गर्भ उत्पन्न होताहै उसका वर्णन तो हम गर्भावक्रान्ति अध्यायमें करही चुकेहैं। और गर्भका जो अंग जिससमय उत्पन्न होताहै यह भी उसी स्थानमें कहचुकेहैं परन्तु जिसप्रकार बहुतसे सूत्रकार ऋषियोंका इस विषयमें पृथक् २ मत है उनको श्रवणकरो। कुमारशिरा भरद्वाज कहतेहैं कि पहिले गर्भमें मस्तक उत्पन्न होताहै। क्योंकि मस्तक संपूर्ण इन्द्रियोंका निवासस्थान है। काङ्कायण बाह्लीक वैद्यका मत है कि प्रथम हृदय उत्पन्न होताहै क्योंकि चेतनाशक्तीका स्थान हृदयही है। भद्रकाप्य कहतेहैं कि पहले नाभी उत्पन्न होतीहै। क्योंकि गर्भको पालनकरनेके लिये आहार नाभिद्वाराही पहुंचताहै। भद्रशौनक कहनेलगे कि पहले पक्वाशय उत्पन्न हुआ क्योंकि शारीरिकवायुका प्रधानस्थान पक्वाशयही है। वडिश

ऋषिका मत है कि पहिले हाथपैर उत्पन्न होतेहैं क्योंकि हाथपैरही मनुष्यके करण अर्थात् कार्यकरनेवाले हैं । विदेह देशके पति जनकका मत है कि पहिले इन्द्रियें उत्पन्न होतीहैं क्योंकि इन्द्रियेंही बुद्धिके अधिष्ठान है । मारीचि कहते है कि यह सब अपरोक्ष है इसके विषयमें यह जाना नहीं जाता कि कौन पहिले तथा कौन पीछे उत्पन्न होतेहै । कश्यप कहतेहै कि संपूर्ण अंग एकबारही उत्पन्न होतेहै । और यही मत धन्वंतरीजीका भी है कि संपूर्णअंग एकहीसमयमें उत्पन्न होतेहै । सो—हमारे मतमें भी हृदय प्रभृति संपूर्णअंग एकहीसाथ उत्पन्न होतेहै । संपूर्णअंगोंका मूलआधिष्ठान हृदय है । किसी भावकी भी हृदयसे प्रथम उत्पत्ति नहीं होती । संपूर्णभावही आपसमें परस्पर उत्पत्तिके विषयमें अपेक्षा रखतेहै । इसलिये हे अग्निवेश सबअंगोंका एकही कालमें उत्पन्नहोना युक्तिसिद्ध है ॥ २३ ॥

गर्भस्तुखलुमातु पृष्ठाभिमुखऊर्द्धशिरा संकुच्याङ्गान्यास्तेजरा युवृत.कुक्षौ । व्यपगतपिपासाबुभुक्षुस्तुखलुगर्भ परतन्त्रवृत्ति- र्मातरमाश्रित्यवर्त्तयतिउपस्नेहोपस्वेदाभ्याम् । गर्भस्तुसदसद्भू- ताङ्गावयवस्तदन्तरह्यस्यलोमकूपायनैरुपस्नेह कश्चिन्नाभिना- ड्ययनै नाभ्याह्यस्यनाडीप्रसक्तासानाभ्याश्चामराचास्यमातु' प्रसक्ताहृदयेमातृहृदयह्यस्यताममरामभिसप्लवतेशिराभि स्य- न्दमानाभि ॥ २४ ॥

गर्भ माताके पीठकी ओर मुखकरके उपरको सिर कियेहुए सब अंगोंको संकोच- करके जरायुसे लिपटाहुआ कुक्षीमें रहताहै । और यह भूख प्याससे रहित रहताहै । यह गर्भ परतन्त्रवृत्ति है । माताके कियेहुए आहारके उपस्वेद और उपस्नेहसे पलताहै । तथा ईसका—जीवन माताके आहारके आश्रय है । गर्भके अंगावयव जबतक नहीं होते तबतक माताके गर्भाशयके सूक्ष्म रूपसे उपस्नेहको प्राप्त होता रहता है । फिर रोममार्गद्वारा गर्भका उपस्नेह होता है । गर्भकी नाभिसे एक नाडी लगी हुई है जिसको नालवा कहते है । यही नाडी माताकी नाडियासे मिली हुई है । यह गर्भकी नाभिकी नाल माताके हृदय और गर्भके हृदयमे मिलीहुई है । इस नाडीको अमरा कहते है । रसके स्पंदन करनेवाली नाडियासे यह नाभिकी नाडी रस लेकर गर्भको पुष्ट करती रहती है ॥ २४ ॥

सतस्यरसोसर्ववलवर्णकर सम्पद्यतेच । सचसर्वरसवानाहार' स्त्रियाह्यापन्नगर्भायास्त्रिधारस प्रतिपद्यते स्वशरीरपुष्टयेस्त- न्यायगर्भवृद्धयेचसतेनाहारेणोपस्तब्धोवर्त्तयतिअन्तर्गत ॥२५॥

वही रस गर्भको सब प्रकार बल और वर्ण उत्पन्न करताहै। गर्भवती स्त्री सब प्रकारके रस जो आहार करतीहै उसका तीन प्रकारका रस होताहै। इनमेंसे एक रससे गर्भवतीके शरीरकी पुष्टि होतीहै दूसरे प्रकारके रस स्तनोंमें दूध प्रकट करते हैं। तीसरे प्रकारका रस अंतर्गत हो गर्भको पालन करता है ॥ २५ ॥

गर्भके बाहर आनेका वृत्तांत।

सचोपस्थितकालेजन्मनिप्रसूतिमारुतयोगात्परिवृत्त्याऽवाक्शिरानिष्क्रामत्यपत्यपथेन। एषाप्रकृतिर्विकृतिरतोऽन्यथापरन्त्वतएवस्वतन्त्रवृत्तिर्भवति ॥ २६ ॥

फिर वह गर्भ पूर्ण हो सर्वांगसम्पन्न होकर जन्मके समय प्रसूत वायुके वेगसे परिवृत हो नीचेको सिर किये संतानमार्ग द्वारा बाहर गिरजाताहै। यह गर्भकी प्रकृति (स्वाभाविक धर्म) है। इससे अन्यथा विकृति (वैकारिक धर्म) होतीहै। गर्भाशयसे बाहर होकर अर्थात् जन्मलेनेके अनन्तर इस बालककी वृत्ति स्वतन्त्र होजातीहै ॥ २६ ॥

बालकके आहारका संतान।

तस्याहारोपचारौजातिसूत्रीयोपदिष्टौअविकारकरौचाभिवृद्धिकरौभवत । ताभ्यामेवचसेविताभ्याविषमाभ्यांजातसद्यअपहन्यते तरुरिवाचिरव्यपरोपितोवातातपाभ्यामप्रतिष्ठितमूलः ॥ २७ ॥

गर्भका जिसप्रकार आहार और उपचार करना चाहिये उसको आगे जातिसूत्रीय नामक आठवें अध्यायमें कथन करेंगे। किसप्रकारका आहार और आचार करनेसे आहार और उपचार निर्विकार होते हुए गर्भको बढानेवाले होतेहैं। उन्हीं आहार और उपचारोंके विषम होनेसे गर्भ अथवा जन्महुआ बालक इसप्रकार नष्ट होजाताहै जैसे- नया लगाया हुआ छोटासा वृक्ष जिसकी जडोंको पृथ्वीने पकडा न हो वह अधिक वायुके लगनेसे और तेज धूपके पडनेसे जडसे नष्ट होजाताहै ॥ २७ ॥

देवादिकोपनिमित्त विकार।

आप्तोपदेशादद्भुतरूपदर्शनात्समुत्थानलिङ्गचिकित्सितविशेषाच्चदोषप्रकोपानुरूपाश्चदेवादिप्रकोपनिमित्ताश्चविकारा समुपलभ्यन्ते ॥ २८ ॥

आप्तपुरुषोंके रचे हुए शास्त्रोंके उपदेशसे और अद्भुतरूपोंके देखनेसे विचित्र रूपके अर्थात् दैवी कारण और लक्षणोंके देखनेसे, यथोचित रीतिपर निदान, लक्षण और चिकित्साका ज्ञान होनेसे, दोषोंके कोपसे और देवादिकोंके कोपसे उत्पन्न हुए विकार जानेजासक्तेहैं ॥ २८ ॥

कालाकाल मृत्युवर्णन ।

कालाकालमृत्योस्तुखलुभावाभावयोरिदमध्यवसितनः।यःक श्चिन्म्रियतेसर्वःकालएवसम्रियतेनहिकालच्छिद्रमस्तीत्येके भाषन्ते । तच्चासम्यक्नह्यच्छिद्रतासच्छिद्रतावाकालस्योपप- द्यते कालस्वलक्षणभावात् ॥ २९ ॥

कालमृत्यु और अकालमृत्युके होने न होनेमें हमारा मतव्य सुनो कोई कहताहै कि जब मनुष्य मरता है वह किसी प्रकारसे भी कभी मरे परन्तु उसका वही कालहै । कोई कहताहै कि काल छिद्र मात्र होनेसे घात पाकर आक्रमण करताहै । अर्थात् मृत्युके लिये मनुष्यमें जब जो अवकाश होताहै वही उसका मृत्युकाल है । परन्तु यह कथन सत्य नहीं क्योंकि कालके लिये कोई छिद्रता और अच्छिद्रता नहीं है । काल तो स्वयं स्वलक्षण सिद्ध है । उसमें कोई छिद्रता और अच्छिद्रता नहीं होसकती ॥ २९ ॥

तथाहुरपरेयोयदाम्रियतेसतस्यानियतोमृत्युकाल ससर्वभूताना सत्यःसमक्रियत्वादिति । तदपिचान्यथार्थग्रहणनहिकश्चिन्न- म्रियतेइतिसमक्रिय कालःपुनरायुप प्रमाणमधिकृत्योच्यते ॥३०॥

अन्य इसप्रकार कहतेहैं कि जो जब मरताहै उसका वही मृत्युकाल है । क्योंकि काल सत्य है और रागद्वेष रहितहै । सबके लिये एकसी क्रिया करनेवाला है । परन्तु यह भी ठीक नहीं । देखनेमें आताहै कि बहुतसे मरजातेहैं और बहुतसे नहीं मरते इसलिये काल समक्रिय अर्थात् एकसी क्रिया करनेवाला नहीं है । यदि सबके लिये एककाल एकसाही होय तो उस कालमें या तो सबकी मृत्युही होजाती अथवा कोई भी न मरता । यदि आयुके प्रमाणसे काल मानाजाय तो सौवर्षसे पहिले किसीको मरनाही नहीं चाहिये इसलिये कालको आयुके प्रमाणसे भी समक्रिय नहीं कहा जासकता ॥ ३० ॥

यस्यचेष्टंयोयदाम्रियतेतस्यसनियतमृत्युकालइतितस्यसर्वेभा- वायथास्वनियतकालाभविष्यन्ति । तच्चनोपपद्यतेप्रत्यक्षम्

कालाहारवचनकर्मणाफलमनिष्टविपर्य्ययेचेष्टम् । प्रत्यक्षत श्चोपलभ्यतेखल्लुकालाकालयुक्तिस्तासुतासुअवस्थासुतंतमर्थ मभिसमीक्ष्य । तद्यथाकालोऽयमस्यतुव्याधेराहारस्यौषधस्य, प्रतिकर्मणोविसर्गस्यचाकालोवेतिलोकेऽप्येतद्भवति । काले-देवोवर्षत्यकालेदेवोवर्षतिकालेशीतमकालेशीतंकालेतपत्यका-लेतपतिकालेपुष्पफलमकालेपुष्पफलमिति। तस्मादुभयमस्ति कालेमृत्युरकालेचनैकान्तिकमत्र । यदिह्यकालेमृत्युर्नस्यान्नि यतकालप्रमाणमायु सर्वस्यात् ॥ ३१ ॥

यदि कहो कि जो जिससमय मरे उसका वही मृत्युकाल निश्चित है । तो उसके जितने भाव है वह सबही मृत्युके समयमें निश्चित काल मानने पडेंगे सो ऐसा भी नहीं होसकता । क्योंकि प्रत्यक्ष देखनेम आताहै कि काल और अकालकी व्यवस्थामें जिसजिस समय जैसे २ भले या बुरे आहारविहारादि कियेजातहै उनका वैसाही वैसा फल होताहै । जैसे इस व्याधीमें आहार अथवा औषधका यह काल है, चिकित्साका यह समय है, व्याधीका यह समय है अथवा असमय है । इसीप्रकार लोकमें भी देखा जाताहै कि अपने ठीक समयपर ऋतुकालमे वर्षा होना और अकालमे वर्षा होना, शीतकालमे शीतपडना और अकालमे शीत पडना, उष्णकालमे उष्णता होनी तथा अकालमें उष्णता होनी । समयपर फूलफल आना और बेसमय फूलफल आना । इस प्रकार काल और अकाल युक्तिसिद्धहै । इसलिये दोनो होसकतेहै । कालमे भी मृत्यु होतीहै और अकालमृत्यु भी होसकतीहै यह दोनो एक नहीं मानी जासकती । यदि अकालमृत्यु न होती तो सबही मनुष्य आयुके प्रमाणमे निश्चित समयपर मराकरते ॥ ३१ ॥

एवंगतेहिताहितज्ञानमकारणस्यात्प्रत्यक्षानुमानोपदेशाश्चाप्र-माणीस्यु.येप्रमाणभूता सर्वतन्त्रेपुयैरायुष्याण्यनायुष्याणिचो-पलभ्यन्तेवाग्वस्तुमेतद्वादमृषयोमन्यन्तेनाकालमृत्युरस्तीति३२॥

यदि अकालमृत्यु न होती तो हिताहित जाननेकी कोई आवश्यकता न रहती । और प्रत्यक्ष तथा अनुमान एवम् आप्तोपदेश इन तीनो प्रमाणोंकी भी प्रमाणता नहीं रहेगी । तथा ऋषियोके शास्त्रोंमें जो आयुष्य और अनायुष्यकर्त्ता प्रयोग आदि

कथन किये गये है वह सब बकवादमात्र होजायगे । इसलिये कालमृत्यु और अकाल मृत्यु दोनो होतीहै ऐसा निश्चय है ॥ ३२ ॥

आयुका प्रमाण ।

वर्षशतखलुआयुपःप्रमाणमस्मिन्कालेतस्यनिमित्तप्रकृतिगुणात्मसम्पत्सात्म्योपसेवनश्चेति ॥ ३३ ॥

यह कालमृत्यु और अकालमृत्यु इसप्रकार है । कि इससमय आयुका प्रमाण २०० वर्षका है उस सौवर्षकी आयु होनेका कारण मातापिताके रज, वीर्यकी उत्तमता, प्रकृतिके गुण और आत्मकृत कर्मोका उत्तम होना, सात्म्यका सेवन है अर्थात् इन सबके उत्तम होनेमे आयु सौवर्षकी होतीहै । उस सौवर्षकी आयुको भोगकर मरनेको कालमृत्यु कहतेहै । इससे विपरीत अकालमृत्यु होतीहै ॥ ३३ ॥

अध्यायका उपसहार ।

शरीरंयद्यथातच्चवर्त्ततेक्लिष्टमामये । यथाक्लेशंविनाशश्चयातियेचास्यधातव ॥ ३४॥ वृद्धिह्रासौतथाचैषाक्षीणानामौषधश्चयत् । देहवृद्धिकराभावाबलवृद्धिकराश्चये ॥ ३५ ॥ परिणामकराभावायाचतेषापृथक्क्रिया । मलाख्या.सम्प्रसादाख्या धातव प्रश्नएवच ॥ ३६ ॥ नवकोनिर्णयश्चास्यविधिवत्सम्प्रकाशित । तथाशरीरनिचयेशारीरेपरमर्षिणा ॥ ३७ ॥

इतिचरकसंहितायांशारीरस्थानेशरीरविचय'शारीर समाप्त' ॥ ६ ॥

यहापर श्लोक है कि इस शरीरविचयशारीर अध्यायम शरीरका रूप तथा जो गर्भ जिसप्रकार जीताहै जिसप्रकार रोगोंमे क्लेशित होताहै, जिसप्रकार क्लेश तथा विनाशको प्राप्त होताहै और इसके सपूर्णधातुओंकी वृद्धि और ह्रास, क्षीण धातुओंके बढानेकी औषधी, देहवृद्धि करनेवाले भाव तथा बलवृद्धि करनेवाले भाव, भोजनके परिणाम करनेवाले भाव और उनकी भिन्न २ क्रिया मल सज्ञक धातुयें तथा प्रसाद-सज्ञक धातुये, नौप्रश्न, उन प्रश्नोका निर्णय, यह सब महर्षि आत्रेयजीने वर्णन किया है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां शारीरस्थाने प० रामप्रसादवैद्यविरचितप्रसादाख्यभाषाटीकायां शरीरविचय नामषष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्याय.

अथातः शारीरसंख्यानाम शारीराध्यायंव्याख्यास्याम इति ह्स्माह भगवानात्रेय॰ ।

अब हम शरीरसंख्या नामक शारीराध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

शरीरसंख्यामवयवश.कृत्स्नंशरीरप्रविभज्यसर्वशरीरसंख्यान प्रमाणज्ञानहेतोर्भगवन्तमात्रेयमग्निवेश पप्रच्छ ॥ १ ॥

संपूर्ण शरीरके अवयवोंके विभागसे संपूर्ण शरीरके अवयवोंकी संख्याको अग्निवेश आत्रेयजीसे पूछनेलगे ॥ १ ॥

तमुवाचभगवानात्रेय । शृणुमत्तोऽग्निवेश ! सर्वशरीरमभिच-क्षाणाद्यथाप्रश्नमेकमना॰ ॥ २ ॥

भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे कि हे अग्निवेश ! संपूर्ण शरीरके अवयवोंकी व्याख्या एकाग्रचित्त होकर मुझसे यथा प्रश्न श्रवणकरो ॥ २ ॥

त्वचाके भेद ।

यथावच्छरीरेपट्त्वचस्तद्यथा—उदकधरात्वग्बाह्याद्वितीयात्व-गसृग्धरातृतीयासिध्मकिलाससम्भवाधिष्ठानाचतुर्थीकुष्ठसम्भ-वाधिष्ठानापञ्चमीअलजीविद्रधीसम्भवाधिष्ठानापष्ठीतुयस्या छिन्नायातम्यत्यन्धइवचतम.प्रविशतियाचाप्यधिष्ठायारूंषि-जायन्तेपर्वसन्धिपुकृष्णरक्तानिस्थूलमूलानिदुश्चिकित्स्यतमा-नीतिपट्त्वचएता.पडङ्गशरीरमवतत्यतिष्ठन्ति ॥ ३ ॥

यथावत् शरीरमें छ॰ त्वचा होती है । वह इसप्रकार है । जैसे—पहिली उदकधरा त्वचा अर्थात् ऊपरवाली बाहरी त्वचा दूसरी असृग्धरा, तीसरी त्वचा सिध्म (छींम) यह किलास रोगके उत्पन्न होनेका स्थान है, चौथी त्वचामें कुष्ठ आदि रोग उत्पन्न होतेहै, पांचवीं त्वचामें अलजी, विद्रधी आदि रोग उत्पन्न होतेहैं, छ॰टी त्वचा यह है जिसके फटजानेसे मनुष्यको मूर्च्छा उत्पन्न होजातीहै, नेत्रोंमें अंधकार आजाताहै । इसीके आश्रयसे जोडोंकी संधियोंमें काला, तथा लालवर्णके अत्यंत दुश्चिकित्स्य व्रण प्रगट होतेहै । यह त्वचा पडंग शरीरको व्याप्तकर रहतीहै ॥ ३ ॥

शरीरके अंगविभाग ।

तत्रायंशरीरस्याङ्गविभाग.तद्यथा—द्वौवाहूद्वेसक्थिनीशिरोग्रीव-मन्तराधिरितिषडङ्गमङ्गम् ॥ ४ ॥

यह शरीर छ अगोंम विभक्त है । जैसे–दो वाँहे और दो ऊरू (टागें) तथा एक गर्दनसहित शिर एवम् छठा मध्यभाग ॥ ४ ॥

शरीरकी हड्डियोंकी सख्या ।

त्रीणिषष्ट्यधिकानिशतान्यस्थ्नांसहदन्तोलूखलनखैस्तद्यथा—द्वात्रिंशद्दन्तोलूखलानिद्वात्रिंशद्दन्ताविंशतिर्नखाविंशति. पाणिपादशलाकाश्चत्वार्य्यधिष्ठानान्यासांचत्वारिपाणिपादपृष्ठानिषष्टिरङ्गुल्यस्थीनिद्वेपार्ष्ण्योर्द्वेकूर्चाधश्चत्वार.पाण्योर्मणिकाश्चत्वार.पादयोर्गुल्फा.चत्वार्य्यरत्न्योरस्थीनिचत्वारिजङ्घयोर्द्वेजानुनोर्द्वेकूर्परयोर्द्वेऊर्वोर्द्वेवाह्वो सांसयो.द्वावक्षकौद्वेतालूनिद्वेश्रोणिफलकेएकभगास्थिपुंसामेढ्रास्थिएकंत्रिकसंश्रितमेकंगुदास्थिपृष्ठगतानिपञ्चत्रिंशत्पञ्चदशास्थीनिग्रीवायाद्वेजत्रुण्येकंहन्वस्थिद्वेहनुमूलवन्धनेद्वेललाटेद्वेअक्ष्णोर्द्वेगण्डयोर्नासिकायांत्रीणिघोणाख्यानिद्वयो' पार्श्वयोश्चतुर्विंशतिश्चतुर्विंशतिःपञ्जरास्थीनिचपार्श्वकानि । तावन्तिचैपास्थालिकान्यर्वुदाकाराणितानिद्विसप्ततिर्द्वौशंखकौचत्वारिशिर'कपालानिवक्षसिसप्तद-शेतित्रीणिषष्ट्यधिकानिशतान्यस्थ्नामिति ॥ ५ ॥

दाता और उलूखरा (जिसमे दात जडे रहतेहैं) सहित सपूर्ण शरीरमें तीनसौ साठ ३६० हड्डियें है । जैसे–बत्तीस ३२ दात ३२ बत्तीस उलूखल । २० बीस नख २० बीस हाथपावोंकी शलाका । ४ चार उन शलाकाओंके अधिष्ठान । ४ चार हाथ पावोंके पृष्ठस्थान ६० साठ अगुलियोंकी हड्डिय । २ पार्ष्णी । दो २ कूर्चके अधो-भाग । दोनो हाथोंकी ४ चार मानिका । दोनो पैरोंके ४ चार गुल्फ । ४ चार अरत्नी । चार जघाकी हड्डिये । २ दो जानुकी हड्डियें । २ दो कहुनीकी हड्डियें । दो २ ऊरुकी हड्डियें । २ दो बाहुकी हड्डियें । दो २ कधेकी हड्डिय । दो २ दोनों जत्रुसधियोंमें अक्षक (कीलक) । दो २ तालुकी हड्डिय । दो २ श्रोणी फलक (दोनों चूतडोंके ऊपरकी हड्डी) । १ एक भगकी हड्डी १ पुरुषके लिंगकी हड्डी । एक १

त्रिकस्थानकी हड्डी। १ एक गुदाकी हड्डी। ३५ पैंतीस पीठकी हड्डियें। १५ पन्द्रह गर्दनकी हड्डियें। २ दो जत्रुकी हड्डियें। १ एक ठोडीकी हड्डी। २ दो ठोडीके मूलबंधकी। दो २ ललाटकी हड्डियें। दो २ नेत्रोंकी हड्डियें। २ दो गण्डस्थलकी हड्डियें। ३ तीन नासिकाकी हड्डियें। २४ चौवीस दोनों पार्श्वभागकी हड्डियें। २४ चौवीस दोनोतरफ पजरकी हड्डियें। २४ चौवीसही इनके अर्बुदाकार स्थालिक। २ दो दोनो सखोंकी हड्डिया। ४ चार कपालकी हड्डिया। १७ सत्रह वक्षस्थकी हड्डिया। इसप्रकार सब मिलकर संपूर्ण शरीरकी हड्डियें ३६० होती हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रियोंके अधिष्ठान आदि।

पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानानितद्यथा-त्वग्जिह्वानासिकाक्षिणीकर्णौच॥६॥

पाच इन्द्रियोंके अधिष्ठान है। जैसे-त्वचा, जिह्वा, नासिका, आख, कान ॥६॥

पञ्चबुद्धीन्द्रियाणितद्यथा-स्पर्शनरसनंघ्राणंदर्शनश्रोत्रमिति ॥७॥

पाच बुद्धि इन्द्रिय अर्थात् ज्ञान इन्द्रिय होतीहैं। जैसे-स्पर्शन, रसन, घ्राण, दर्शन और श्रोत्र इन्द्रिय ॥ ७ ॥

पञ्चकर्मेन्द्रियाणितद्यथाहस्तौपादौपायुरुपस्थोजिह्वाचेति ॥ ८ ॥

पाच कर्म इन्द्रिय हैं। जैसे हाथ, पाव, पायु (गुदा) उपस्थ (भग या लिंग) और जिह्वा ॥ ८ ॥

हृदयचेतनाधिष्ठानमेकम् ॥ ९ ॥

चेतनाका अधिष्ठान हृदय है ॥ ९ ॥

दशप्राणायतनानितद्यथामूर्द्धाकण्ठोहृदयनाभिर्गुदवस्तिरोज. शुक्रशोणितमासमिति। तेषुषट्पूर्वाणिमर्मसख्यातानि ॥ १० ॥

दश प्राणायतन हैं। जैसे-मस्तक, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुदा, वस्ती, ओज, शुक्र, रुधिर और मास। इन दश स्थानोंमे प्राण रहनेसे इनको प्राणायतन अर्थात् प्राणोंके रहनेके स्थान कहतेहै। इनमें कण्ठ, मस्तक, हृदय, नाभि, गुदा, वस्ती इन छओंको मर्मस्थान भी कहतेहै ॥ १० ॥

पञ्चदशकोष्ठाङ्गानितद्यथानाभिश्चहृदयञ्चक्लोमचयकृच्चप्लीहाच वृक्कौचवस्तिश्चपुरीषाधानञ्चामाशयश्चेतिपक्वाशयश्चोत्तरगुदञ्चा-धरगुदञ्चक्षुद्रान्त्रञ्चस्थूलान्त्रञ्चवपावहनञ्चेति ॥ ११ ॥

कोष्ठाग (कोठे) पन्द्रह हैं। जैसे-नाभि, हृदय, क्लोम, यकृत, प्लीहा, वृक्क, वस्ती, मलाशय, आमाशय पक्वाशय, उत्तरगुद, अधोगुद, क्षुद्रान्त्र, स्थूलान्त्र, वपावहन ॥ ११ ॥

प्रत्यङ्गोंके नाम ।

षट्पञ्चाशत्प्रत्यङ्गानिषट्सुअङ्गेषुउपनिबद्धानियान्यपरिसंख्या-
तानिपूर्वमङ्गेषुपरिसंख्यायमानेषुतान्यन्यैःपर्य्यायैरिहप्रकाश्य
व्याख्यातानिभवन्ति । तद्यथा–द्वेजंघापिण्डिकेद्वेऊरुपिण्डिके
द्वौस्फिचौद्वौवृषणौएकशेफ द्वेउखेद्वौवङ्क्षणौद्वौकुकुन्दरौएकव-
स्तिशीर्षमेकमुदरंद्वौस्तनौद्वौभुजौद्वेबाहुपिण्डिकेचिबुकमेकद्वा-
वोष्ठौद्वेसृक्कण्यौद्वौदन्तवेष्टकौएकतालुएकागलशुण्डिकाद्वेउप-
जिह्विकेएकागोजिह्विकाद्वौगण्डौद्वेकर्णशष्कुलिकेद्वौकर्णपत्रकौ
द्वेअक्षिकूटेचत्वारिअक्षिवर्त्मानिद्वेअक्षिकनीनिकेद्वेभ्रुवौएकम-
वटुचत्वारिपाणिपादहृदयानिनवमहान्तिछिद्राणिसप्तशिरसि-
द्वेचाधः ॥ १२ ॥

छप्पन ५६ प्रत्यग (उपाग) हे । वह पूर्व कहेहुए छ अगोंम बधेहै । जिनका पहिले छ अगोंका कथन करते समय कथन नहीं कियागयाथा । अब उन छप्पन अगोंका कथन करतेहैं । जैसे–२जघाओकी पिंडलियें । २ उरुस्थलकी पिंडलियें । २ स्फिक् २ वृषण । १ लिंग । १ आमाशय । १ ग्रहणी । २ वक्षण । २ कुकुन्दर। १ वस्तिशीर्ष । १ उदर । २ स्तन । २ भुजा । २ कुहुनिया । १ ठोंडी । २ होठ । २ सृक्कणी । २ दतवेष्ट । १ तालु । १ गलशुण्डिक । २ उपजिह्व । १ गोजिह्विका । २ गण्डस्थल । २ कर्णशष्कुलिका । २ कर्णपुत्र । २ अक्षीकूट । ४ अक्षीवर्त्म । २ अक्षीकर्नीनिका । २ भौंह । १ गर्दन । २ अथेली । २ तलवे । ९ महाछिद्र । उन नवोंम सात छिद्र गर्दनसे ऊपर और दो नीचेके भागमें ॥ १२ ॥

अदृश्य अङ्गोंके नाम ।

एतावद्दृश्यशक्यमपिनिर्देष्टुमानिर्देश्यमत परतर्क्यंभवतद्यथा
नवस्नायुशतानिसप्तशिराशतानिद्वेधमनीशतेपञ्चपेशीशतानि
सप्तोत्तरमर्मशतद्वेपुन सन्धिशते ॥ १३ ॥

यह सब अंग दृश्य अर्थात् देखनेमें आतेहै और बहुतसे ऐसे अग भी है जो अदृश्य हैं वह केवल तर्कद्वाराही जाने जासक्तेहै । जैसे–नौसौ ९०० स्नायु । सात सौ ७०० शिरा । दोसौ २०० धमनियां । पाचसौ ५०० पेशिया । एकसौ सात १०७ मर्म । दोसौ २०० संधियां होतीहै ॥ १३ ॥

त्रिंशच्छतसहस्राणिनवचशतानिषट्पञ्चाशत्सहस्राणिशिराध-
मनीनामणुशःप्रविभज्यमानानामुखाग्रपरिमाणम् । तावन्ति
चैवकेशश्मश्रुलोमानीत्येतद्यथावद्यत्संख्यातंत्वक्प्रभृतिदृश्य-
मत.परंतर्क्यम् ॥ १४ ॥

इन शिरा और धमनियोके सूक्ष्म विभाग करनेसे इनके मुखाग्रभागका परिमाण अर्थात् सख्या ३० तीस लाख ५६ छप्पन हजार ९ नोसो होतीहै । उतनेही केश, श्मश्रु और रोम होते हैं । इसप्रकार इनकी यथावत् सख्याका वर्णन किया गयाहै । त्वचा प्रभृति जो दीखनेमें आतेहैं उनको दृश्य कहतेहै तथा अन्यको तर्क्य कहते हैं ॥ १४ ॥

एकेतदुभयमपिनविकल्पयन्तेप्रकृतिभावाच्छरीरस्ययत्त्वञ्जलि-
सख्येयतदुपदेक्ष्याम.तत्परप्रमाणमभिज्ञेयतच्चवृद्धिह्रासयोगि
तर्क्यमेवतद्यथादशोदकस्याञ्जलय शरीरेस्वेनाञ्जलिप्रमाणेय-
त्तुप्रच्यवमानपुरीषमनुवध्नातिअतियोगेन । तथामूत्रंरुधिर-
मन्यांश्चशरीरधातून् यत्तुसर्वशरीरचरवाह्यत्वग्विभर्त्तियत्तुत्व-
गन्तरेव्रणगतलसीकाशब्दलभतेयच्चोष्मणानुवद्धलोमकूपे-
भ्योनिष्पतत्स्वेदशब्दमवाप्नोतितदुदकंदशाञ्जलिप्रमाणम् ॥१५॥
नवाञ्जलय पूर्वस्याहारपरिणामधातोर्यंद्रसमित्याचक्षते । अष्टौ
शोणितस्यसप्तपुरीषस्यषट्श्लेष्मण पञ्चपित्तस्यचत्वारोमूत्रस्य
त्रयोवसायाद्वौमेदस.एकोमज्ज्ञ. । मस्तिष्कस्यअर्द्धाञ्जलि
शुक्रस्यतावदेवप्रमाणतावदेवश्लेष्मणश्चोजसइत्येतच्छरीरत-
त्त्वमुक्तम् ॥ १६ ॥

कोई कहतेहैं कि अगोका विभाग प्रत्यक्ष ओर अनुमानद्वारा दोना प्रकार नहीं होसकता । वह शरीरके स्वभावसेही है । शरीरके धातुओंका अजली द्वारा परिमाण कथन करतेहैं । वह परिमाण प्रत्येक मनुष्यकी अपनी अंजलीपर निर्भर है । अत्यत तीक्ष्ण विरेचन देनेसे जो जल विरेचन द्वारा पुरीषमे मिलकर निकल जाताहै वह दश अंजली प्रमाण होताहै । तथा जो जल मूत्र द्वारा, रुधिर द्वारा निकलताहै एवम

सपूर्ण शरीरमें विचरण करनेवाला त्वचाको पालन करनेवाला, जो त्वचामें व्रण होजानेसे लसीका कहाजाताहै, जो गर्मीके आनेसे रोमकूपों द्वारा निकलताहै। यह सब दश अजली प्रमाण जल होताहै । जो आहार किया जाताहै उसका परिमाण धातु, रस नौ अंजली होताहै । रक्त आठ अजली होताहै । पुरीष सात अजली होताहै । कफ छः अजली होताहै। पित्त पांच अजली होताहै । मूत्र चारअंजली होताहै । वसा तीन अजली होताहै । दोअजली मेद । एक अजली मज्जा । आधी अजली मस्तिष्क । आधी अजली शुक्र । आधी अजली श्लेष्मका ओज । इसप्रकार शरीरमें अजलियोंका प्रमाण जानना ॥ १५ ॥ १६ ॥

पार्थिव द्रव्योंका वर्णन ।

तत्रयद्विशेषतःस्थूलस्थिरमूर्त्तिमद्गुरुखरकठिनमङ्गनखास्थिदन्तमांसचर्मवर्चःकेशश्मश्रुनखलोमकण्डरादितत्पार्थिवंगन्धोघ्राणश्च ॥ १७ ॥

उन सब अगामें जो विशेषकरके स्थूल, स्थिर, मूर्त्तिमान्, भारी, खर, कठोर, अग होताहै तथा दान, नख, हड्डी, मास, चर्म, मल, केश, श्मश्रु, रोम और कण्डरा आदि पार्थिवअंग होतेहैं तथा गध और घ्राणेन्द्रिय भी पार्थिव अर्थात् पृथ्वीके अग है ॥ १७ ॥

आप्यद्रव्योंके नाम ।

यद्द्रवसरमन्दस्निग्धमृदुपिच्छिलरसरुधिरवसाकफपित्तमूत्रस्वेदादितदाप्यरसोरसनञ्च ॥ १८ ॥

जो विशेषरूपसे द्रव, सर, मद, स्निग्ध, मृदु, पिच्छिल, अवयव हैं तथा रस, रुधिर, वसा, कफ, पित्त, मूत्र, स्वेद आदिक जलके अग है । एवम रस और रसना भी जलके अग है ॥ १८ ॥

आग्नेयद्रव्योंके नाम ।

यत्पित्तमुष्माचयोयाचभा शरीरेतत्सर्वमाग्नेयरूपंदर्शनञ्च ॥ १९ ॥

शरीरमें पित्त, उष्णता, प्रकाश, पाचनशक्ति, रूप और दर्शनेन्द्रिय यह सब आग्नेय अर्थात् अग्निके अग है ॥ १९ ॥

वायवीय द्रव्योंके नाम ।

यदुच्छ्वासप्रश्वासोन्मेषनिमेषाकुञ्चनप्रसारणगमनप्रेरणधारणादितद्वायवीयस्पर्शःस्पर्शनञ्च ॥ २० ॥

उच्छ्वास, निःश्वास, प्राण, अपान, उन्मेष, निमष, आकुंचन, प्रसारण, गमन, प्रेरण, धारण और स्पर्श तथा स्पर्शनेन्द्रिय यह सब वायवीय अर्थात् पवनके अंग है ॥२०॥

आन्तरिक्षद्रव्योंके नाम ।

यद्विविक्तमुच्यतेमहान्तिचाणूनिचस्रोतांसितदान्तरिक्षशब्दः श्रोत्रञ्च ॥ २१ ॥

शरीरके बडे छोटे सब छिद्र, स्रोत, शब्द और श्रोत्रइन्द्रिय यह सब आकाशके अंग हैं ॥ २१ ॥

यत्प्रयोक्तृतत्तत्प्रधानंबुद्धिर्मनश्चेतिशरीरावयवसंख्यायथास्थूलभेदेनावयवानांनिर्दिष्टा ॥ २२ ॥

जो प्रयोग करनेवाला है उसको प्रयोक्ता कहतेहैं । मन और बुद्धि प्रयोक्ता है इसलिये प्रधान है । इसप्रकार शरीरके अवयवोंकी संख्याका भेद, अवयवोंका स्थूल भेद वर्णन किया गयाहै ॥ २२ ॥

शरीरावयवास्तुपरमाणुभेदेनापरिसंख्येयाभवन्त्यतिवहुत्वाद्दतिसौक्ष्म्यादतीन्द्रियत्वाच्च । तेषासंयोगविभागेवायु परमाणूनांकारणकर्मस्वभावश्चतदेतच्छरीरसंख्यातमनेकावयवंदृष्टमेकत्वेनसङ्ग संख्यातम् । पृथक्त्वेनापवर्ग तत्रप्रधानमशक्तं सर्वसत्त्वातिवृत्तौनिवर्त्तते इति ॥ २३ ॥

परमाणु भेदसे शरीरके अवयव असंख्य होतेहै क्योंकि वह भेद अत्यंत अधिक, अत्यंत सूक्ष्म और अतीन्द्रिय होतेहै । उन परमाणुओंके संयोग विभागमें वायु कर्म और स्वभावही कारण होताहै । इसप्रकार शरीरकी संख्याका वर्णन कियागया । उन अनेक अवयवोंसे बनाहुआ यह शरीर एक दिखाई देताहै और यह कर्माधीन मोहवश एकत्वके संगको प्राप्त हुआहै । इन सब भावोंके पृथक् २ विचारनेसे और अपवर्गसे मोक्ष प्राप्त होताहै । संपूर्ण अवयवोंमें यथोचित दृष्टि देनेसे ज्ञान उत्पन्न होकर संपूर्ण भावोंकी निवृत्ति होजातीहै ॥ २३ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

शरीरसंख्यायोवेदसर्वावयवशोभिषक् । तदज्ञाननिमित्तेनस मोहेननयुज्यते ॥ २४ ॥ अमूढोमोहमूलैश्चनदोषैरभिभूयते । निर्दोषोनिःस्पृहः शान्तः प्रशाम्यत्यपुनर्भवः ॥ २५ ॥

इति चरकसं० शारीर० शरीरसंख्य शारीरं समाप्तं ॥ ७ ॥

यहांपर अध्यायके उपसंहारमें श्लोक है । जो वैद्य संपूर्ण अवयवोंसे शरीरकी संख्याको जान लेताहै वह अज्ञान निमित्तक मोहसे युक्त नहीं होता । वह बुद्धिमान् मूढतारहित मोहमूलक दोषोंसे दूषित नहीं होसकता तथा निर्दोष, निस्पृह और शान्तिको प्राप्त होकर मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥ २९ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक०शारीरस्थाने भाषाटीकायां शरीरसंख्याशारीरंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातोजातिसूत्रीयंशारीरंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम जातिसूत्रीय शारीरकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

उत्तम संतानहोनेका उपाय ।

स्त्रीपुरुषयोरव्यापन्नशुक्रशोणितयोनिगर्भाशययो श्रेयसींप्रजा-
मिच्छतोस्तन्निर्वृत्तिकरकर्मोपदेक्ष्याम. ॥ १ ॥

स्त्री और पुरुषका रज, वीर्य, योनि और गर्भाशय निर्दोष होनेपर उत्तम संतान उत्पन्न करनेकी इच्छावाले स्त्री पुरुषोंको जो कर्म करना चाहिये उसका वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥

अथाप्येतौस्त्रीपुरुषौस्नेहस्वेदाभ्यामुपपाद्यवमनविरेचनाभ्यांस-
शोध्यक्रमात्प्रकृतिमापादयेत्संशुद्धौचास्थापनानुवासनाभ्यामु-
पाचरेदुपाचरेच्चमधुरौषधसंस्कृताभ्यांघृतक्षीराभ्यांपुरुषंस्त्रिय-
न्तुतैलमाषाभ्याम् ॥ २ ॥

प्रथम स्त्री और पुरुष स्नेहन स्वेदनसे शरीरको नरम बनाकर क्रमपूर्वक वमन,विरेचन द्वारा संशोधनकर शरीरको उत्तम बनावे और दोषादिकोंसे शुद्ध शरीर होनेपर मधुर द्रव्योंसे और घृत दूधसे पुरुषको आस्थापन और अनुवासन करे । स्त्रीको तैल और माषरससे अनुवासन करे ॥ २ ॥

स्त्रीपुरुषका कर्त्तव्य कर्म ।

ततः पुष्पात्प्रभृतित्रिरात्रमासीद्ब्रह्मचारिण्यधःशायिनीपाणि
भ्यामन्नमजर्जरपात्रेभुञ्जानानचकाञ्चिदेवमृजामापद्येत ॥ ३ ॥

इनके अनन्तर जब स्त्री ऋतुमती हो तो जिस समयसे रजोदर्शन हो उसी समयसे तीन रात्रितक ब्रह्मचर्यमें स्थित रहे और पृथ्वीमें शयनकरे, पुराने वर्तन अथवा मट्टीके पात्रमें या हाथोंपर लेकर भोजन किया करे किसीसे स्पर्श न करे और किसी प्रकारका भी अहित कार्य न करे ॥ ३ ॥

ततश्चतुर्थेऽहन्येनामुत्साद्यसशिरस्कस्नापयित्वाशुक्लानिवासां-स्याच्छादयेत्पुरुषश्च ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर चौथे दिन शरीरमें तैलकी मालिशकर उवटन लगा शिरसहित स्नान करे। स्वच्छ सुन्दर वस्त्र तथा फूलमाला आदि धारणकरे। और पुरुषकोभी स्नानकरा गन्धादि लेपनकरा, श्वेत स्वच्छ वस्त्रोंको धारण करावे ॥ ४ ॥

ततःशुक्लवाससौचस्रग्विणौसुमनसावन्योन्यमभिकामौसंवसे तामितिब्रूयात् ॥ ५ ॥

फिर वैद्य इन दोनों शुद्ध पवित्र वस्त्र धारण कियेहुए, फूलमालासे विभूषित शुद्धमनवाले, परस्पर सहवासकी इच्छावाले स्त्री पुरुषोंसे कहे कि तुम दोनों सतानकी कामनासे जाकर सहवास करो ॥ ५ ॥

स्त्रीसहवासकरनेके दिन ।

स्नानात्प्रभृतियुग्मेष्वह सुसंवसेतापुत्रकामौतौचायुग्मेषुदुहि-तृकामौ ॥ ६ ॥

स्नानके दिनसे अर्थात् चौथेदिनके उपरान्त युग्म (६, ८, १२, १४) रात्रियोंमें पुत्रकी कामनासे सहवास करे। अर्थात् इन रात्रियोंमें गमन करनेसे पुत्र उत्पन्न होताहै। और अयुग्म अर्थात् (५, ७, ९, ११, १३, १५,) इन रात्रियोंमें गमन करनेसे कन्या उत्पन्न होतीहै ॥ ६ ॥

सहवासकी विधि ।

नचन्युब्जापार्श्वगतावासंसेवेत। न्युब्जायावातोवलवान्सयो-निंपीडयति। पार्श्वगतायादक्षिणेपार्श्वेश्लेष्मासच्युतोऽपिदधा-तिगर्भाशयम्। वामेपार्श्वेपित्तंतदस्यापीडितंविदहतिरक्तशु-क्रंतस्मादुत्तानासतीवीजंगृह्णीयात्। तस्याहियथास्थानमवति-ष्ठन्तेदोषापर्य्यासेचैनाशीतोदकेनपरिषिञ्चेत् ॥ ७ ॥

स्त्री औंधी लेटकर अथवा वामे दहिने करवट लेकर सहवास न करे। क्योंकि औंधी होनेसे वलवान् वायु योनिको पीडन करताहै। दहिने पसवाड करवटलेकर

सहवास करनेसे कफ टपककर गर्भाशयको आच्छादन कर देताहै । और नार्यी करवट लेकर सहवास करनेसे पीडितहुआ पित्त रज और शुक्रको दूषितकर देताहै इसलिये सीधी उत्तान लेटकर पुरुषके वीर्यको ग्रहण करे । ऐसा होनेसे सपूर्ण दोष अपने २ स्थानोंमे स्थित रहतेहै । गर्भ ग्रहण करनेके एक प्रहर बाद शीतलजलसे अपने नेत्रों, मुख तथा योनिको धोवे ॥ ७ ॥

गर्भधारणके अयोग्य स्त्री ।

तत्रात्यशिताक्षुधितापिपासिताभीताविमनाःशोकार्त्ताक्रुद्धा चान्यञ्चपुमांसमिच्छन्तीमैथुनेचातिकामावानारीगर्भनधत्ते विगुणावाप्रजाजनयति ॥ ८ ॥

गर्भाधानमें इसप्रकारकी स्त्री निषिद्ध होती है । जिसने अधिक भोजन कियाहो अथवा भूखी, तृषातुर, भयभीत, जिसका चित्त मैथुनमें न हो या अन्यप्रकारसे मन बिगडाहो, शोक अथवा क्रोधवाली, दूसरे पुरुषकी इच्छा रखनेवाली एवम् जो मैथुनसे तृप्तही न होतीहो । एसी स्त्रियें गर्भको धारण नहीं करतीं । अर्थात् इनको गर्भ नहीं रहता यदि रहे भी तो कुरूप, और विगुण सतान उत्पन्न होतीहै ॥ ८ ॥

अतिबालामतिवृद्धादीर्घरोगिणीमन्येनवाविकारेणोपसृष्टावर्जयेत् ॥ ९ ॥

अत्यन्त छोटी अवस्थाकी, अत्यन्त वृद्धा, जिसके शरीर और योनिपर अत्यन्त बाल हों अथवा और किसी विकारसे युक्त हो ऐसी स्त्री मैथुनमें त्याज्य है ॥ ९ ॥

पुरुषेऽप्येतएवदोषा ।अतःसर्वदोषवर्जितौस्त्रीपुरुषौसंसृज्येयाताम् ॥ १० ॥

पुरुषमें भी यदि इसीप्रकार कोइ दोष हो तो उसको भी मैथुनमें त्याज्य जानना इसलिये सपूर्ण दोषोंसे रहित स्त्री पुरुषोंको सतानकी कामनासे मैथुन करना चाहिये ॥ १० ॥

स्त्रीगमनविधि ।

सञ्जातहर्षौमैथुनेचानुकूलाविष्टगन्धसास्तीर्णसुखशयनमुपकल्प्यमनोज्ञहितमशनमशित्वादक्षिणपादेनपुमान्वामपादेनस्त्रीचारोहेत्तत्रमन्त्रंप्रयुञ्जीत (अहिरसिआयुरसिसर्वतःप्रतिष्ठासिधातात्वादधातुविधातात्वादधात्ब्रह्मवर्चसाभवेदिति ॥ ब्र

ह्मावृहस्पतिर्विष्णु'सोम.सूर्य्यस्तथाश्विनौ । भगोऽथमित्रावरुणौपुत्रवीरदधातुमे ॥ ११ ॥ १२ ॥) इत्युक्त्वासवसेताम् ॥ १३ ॥

स्त्री और पुरुप हर्षसहित मैथुनाभिलाषी प्रीतिपूर्वक दोनो सुन्दर सुसज्जित ऐसी शय्यापर जिसमें तकिया, स्वच्छ चद्दर, तथा गद्दा बिछाहो मनको प्यारी लगनेवाली हो ऐसी शय्यापर पुरुप दहिने पावसे और स्त्री पहिले वामंपावसे आरोहित होवें । (इन स्त्री पुरुपोंके उसदिन हितभोजन करना चाहिये ।) फिर उस शय्यापर दोनो बैठकर इस मन्त्रको पढे । "अहिरसि आयुरसि सर्वत. प्रतिष्ठासि" आदि "पुत्र वीरं दधातु मे" पर्यन्त। ऊपरके मूलमे लिखेहुए मन्त्रको पढकर शयनकरे ॥ ११॥ १२॥ १३॥

उत्तम पुत्र उत्पन्न करनेकी विधि ।

साचेदेवमासीतबृहन्तमवदातहर्य्यक्षमोजस्विनशुचिसत्त्वसम्पन्नपुत्रमिच्छेयमिति । शुद्धस्नानात् प्रभृत्यस्यैमन्थमवदातयवानांमधुसर्पिर्भ्यांससृज्यश्वेतायागो.सरूपवत्साया पयसालोड्यराजतेकास्येवापात्रेकालेकालेसप्ताहसततप्रयच्छेत्पानायप्रातश्चशालियवान्नविकारान्दधिमधुसर्पिर्भिःपयोभिर्वासंसृज्यभुञ्जीत ॥ १४ ॥

यदि उस स्त्रीको गौरवर्ण, सिंहके समान पराक्रमी, तेजस्वी, पवित्र, सत्त्वसपन्न पुत्र उत्पन्नकरनेकी इच्छा हो तो ऋतुस्नानसे शुद्धहोकर यवके सत्तुओंका मथ बना, मधु घृतयुक्तकर, सफेदरगके बछडेवाली सफेद गौके दूधके साथ चादी या कासेके पात्रमें घोलकर नित्यम्प्रति प्रातःकाल सातरोजतक पीया करे और भोजन भी शालिचावल, यवके मैदेसे बनाहुआ पदार्थ, दही, मधु, घृत, दूध इन सबको मिलाकर खाया करे ॥ १४ ॥

तथासायमवदातशरणशयनासनयानवसनभूपणवेपाचस्यात् १५

फिर सायकालमें सुन्दर सुसज्जित घरमें उत्तम शय्या, आसन आदिपर आराम करे एवम् उत्तम वस्त्र, भूपण और वेपको धारण करे ॥ १५ ॥

सायप्रातश्चशश्वत्श्वेतमहान्तम् ऋपभमआजानेयहरिचन्दनाङ्कितपश्येत् । सौम्याभिश्चैनांकथाभिर्मनोऽनुकूलाभिरुपासीत । सौम्याकृतिवचनोपचारचेष्टाश्चस्त्रीपुरुपानितरानपिचेन्द्रि-

यार्थानवदातान्पश्येत् । सहचर्य्यश्चैनाप्रियहिताभ्यासततमुप चरेयु तथाभर्त्तानचमिश्रीभावमापद्येयाताम् ॥ १६ ॥

तथा सायकाल और प्रातःकाल नित्य सफेदवर्णके बडेभारी बैलको और पीले चदनसे चर्चितहुए उत्तम सुफेद घोडेको देखा करे । और उस स्त्रीके चित्तको सुन्दर, मनोहर, पवित्र वचन, उपचार, चेष्टा आदिसे प्रसन्न रक्खे । तथा पुरुषका भी ऐसाही आचरण रहना चाहिये । एव इन दोनोका सुन्दर देवी वस्तुओंका दर्शन कराना चाहिये । इस स्त्रीके समीप रहनेवाली उत्तम सहचारिणी स्त्रियें उसको हित और प्रिय आचरणसे सेवा करती रहे । और इन सातदिनोंमे उस स्त्रीका पति भी उत्तम आचारोंका सेवनकरे परन्तु यह दोना आपसमे सहवास न करें ॥ १६ ॥

इत्यनेनविधिनासप्तरात्रस्थित्वाष्टमेऽहन्याप्लुत्याद्भि सशिरस्क सहभर्त्राचाहतानिवस्त्राणिआच्छादयेदवदातानिअवदाताश्च स्त्रजोभूषणानिविभृयात् ॥ १७ ॥

इस विधीसे सात रात्रि व्यतीत होनेके अनन्तर आठवे दिन प्रातःकाल शिरसहित स्नानकर यह दोनों स्त्री पुरुष पवित्र सुन्दर नवीन वस्त्रोंको धारणकर उत्तम भूषण और सुन्दर फूलोंकी मालाओंको धारणकरें ॥ १७ ॥

उत्तमपुत्रके लिये हवन विधि ।

ततऋत्विक्प्राग्गुत्तरस्यादिशिअगारस्यप्राक्प्रवणमुदक्प्रवणवा- प्रदेशमभिसमीक्ष्यगोमयोदकाभ्यास्थण्डिलमुपलिप्यप्रोक्ष्य चोदकेनवेदिमस्मिन्स्थापयेत् । तापश्चिमेनानाहतवस्त्रसञ्चये श्वेतार्षभेवाप्यजिन उपविशेद्ब्राह्मणप्रयुक्तोराजन्यप्रयुक्तस्तुवैया घ्रेचर्मण्यानुडुहेवावैश्यप्रयुक्तस्तुरौरवेवास्तेवा । तत्रोपविष्ट. पालाशीभिरैङ्गुदीभिरौदुम्बरीभिर्माधूकीभिर्वासमिद्भिरग्निमु- पसमाधायकुशै परिस्तीर्य्यपरिधिभिश्चपरिधायलाजै शुक्लाभिश्च गन्धवतीभि सुमनोभिरुपकिरेत् ।तत्रप्रणीयोदपात्रपवित्रपूतमु- पसस्कृत्यसर्पिराज्यार्थयथोक्तवर्णानाजानेयादीन्समन्तत स्था पयेत् ॥ १८ ॥

फिर ऋत्विज (यज्ञकरानेवाला पुरोहित) पूर्वकी दिशामें अथवा उत्तरकी दिशामें या घरसे जिस ओर जल पूर्व या उत्तरको ढलताहो उस स्थानमें गोवरसे लीपकर वेदीको बनावे । उस वेदीको जलसे छिडककर ग्रहादिकोंको यथास्थान स्थापित करे । फिर उस स्त्रीको वेदीसे पश्चिमकी ओर शुद्ध बिछेहुए वस्त्रके ऊपर या सफेद वृषभके अजिनके ऊपर अथवा मृगछालापर बिठावे । ब्राह्मण हो तो इस विधिसे बिठावे, क्षत्री हो तो व्याघ्रके चर्मपर, वैश्य होय तो रुरु मृगके चर्मपर अथवा बकरेके चर्मपर बिठावे । फिर पलाश,इंगुदी,औदुम्बर महुआ आदिकी समिधोंसे अग्निको स्थापन करे और कुशकण्डी कर्म विधिसे कुशाको विस्तीर्ण करे । फिर वेदीकी परिधि स्थापन होनेके अनन्तर सफेद धानकी खील, सफेद सुगंधित फूलोंसे स्वस्तिवाचनपूर्वक वेदीको सुशोभित करे एवम् प्रणीता पात्र, उदकपात्र, पवित्रा, पवित्र घृतपात्र, तथा पुत्रेष्टी यज्ञविधिसे वरण आदि संपूर्ण सामग्रीको विधिवत् स्थापन करे ॥ १८ ॥

ततः पुत्रकामा पश्चिमतोऽग्निं दक्षिणतो ब्राह्मणमुपवेश्य अन्वालभेत सह भर्त्रा यथेष्टं पुत्रमाशासाना । ततस्तस्या आशासानाया ऋत्विक् प्रजापतिमभिनिर्दिश्य योनौ तस्याः कामपरिपूरणार्थं काम्यामिष्टिं निर्वपेद्विष्णुर्योनिं कल्पयत्वित्यन्वया र्चा ततश्चैवाज्येन स्थालीपाकमभिसंसार्य्य त्रिर्जुहुयात् । यथाम्नायं चोपमन्त्रितमुदकपात्रं तस्यै दद्यात् सर्वोदकार्थान्कुरुष्वेति ॥ १९ ॥

इसके अनन्तर इस पुत्रकी कामनावाली स्त्रीको अग्निसे पश्चिमकी ओर और ब्रह्माको अग्निसे दक्षिण ओर स्थापन करे । और उस स्त्रीके भर्त्ताको यथेष्ट पुत्रके उत्पन्न होनेकी इच्छासे इसके पास बैठावे । फिर आचार्य प्रजापतिके उद्देशमें अथवा "प्रजापति" आदि मन्त्रका निर्देशकर उस स्त्रीके पतिका हाथ स्त्रीकी योनिसे स्पर्श कराकर "विष्णुर्योनिं कल्पयतु" इसको पढतेहुए पुत्रेष्टी यज्ञ करावे और घृतके साथ चरू मिलाकर स्थालीपाक बनाकर तीनवार हवन करावे । फिर वेदोक्त मन्त्रोंसे उपमन्त्रित किया हुआ जलपूर्ण कलश उस स्त्रीको देवे । और यह कहे कि,संपूर्ण जलके कार्य इस जलसे करना ॥ १९ ॥

यज्ञके अंतमें कर्म ।

ततः समाप्ते कर्मणि पूर्वं दक्षिणपादमभिहरन्ती प्रदक्षिणमग्निमनुपरिक्रामेत्ततो ब्राह्मणान्स्वस्ति वाचयित्वा सह भर्त्राऽऽज्यशेषं प्राश्नीयात् । पूर्वं पुमान्पश्चात्स्त्री न चोच्छिष्टमवशेषयेत्ततस्तौ स-

यार्थानवदातान्पश्येत्। सहचर्य्यश्चैनाप्रियहिताभ्यासततमुप चरेयु तथाभर्त्तानचमिश्रीभावमापद्येयाताम्॥ १६ ॥

तथा सायकाल और मातःकाल नित्य सफेदवर्णके बडेभारी बैलको और पीले चदनसे चर्चितहुए उत्तम सुफेद घोडेको देखा करे । और उस स्त्रीके चित्तको सुन्दर, मनोहर, पवित्र वचन, उपचार, चेष्टा आदिसे प्रसन्न रक्खे । तथा पुरुषका भी ऐसाही आचरण रहना चाहिये । एव इन दोनोंका सुन्दर दैवी वस्तुओंका दर्शन कराना चाहिये । इस स्त्रीके समीप रहनेवाली उत्तम सहचारिणी स्त्रियें उसको हित और प्रिय आचरणमे सेवा करती रहें । और इन सातदिनोंमें उस स्त्रीका पति भी उत्तम आचारोंका सेवनकरे परन्तु यह दोनों आपसमें सहवास न करें ॥ १६ ॥

इत्यनेनविधिनासप्तरात्रस्थित्वाष्टमेऽहन्याप्लुत्याद्भि सशिरस्क सहभर्त्राचाहतानिवस्त्राणिआच्छादयेदवदातानिअवदाताश्च स्रजोभूषणानिविभृयात्॥ १७ ॥

इस विधीसे सात रात्रि व्यतीत होनेके अनन्तर आठवें दिन मातःकाल शिरसहित स्नानकर यह दोनो स्त्री पुरुष पवित्र सुन्दर नवीन वस्त्रोंको धारणकर उत्तम भूषण और सुन्दर फूलोंकी मालाओंको धारणकरें ॥ १७ ॥

उत्तमपुत्रके लिये हवन विधि ।

ततऋत्विक्प्रागुत्तरस्यादिशिअगारस्यप्राक्प्रवणमुदक्प्रवणवा-प्रदेशमभिसमीक्ष्यगोमयोदकाभ्यास्थण्डिलमुपलिप्यप्रोक्ष्य चोदकेनवेदिमस्मिन्स्थापयेत् । तापश्चिमेनानाहतवस्त्रसञ्चये श्वेतार्षभेवाप्यजिन उपविशेद्ब्राह्मणप्रयुक्तोराजन्यप्रयुक्तस्तुवैया-घ्रेचर्मण्यानुडुहेवावैश्यप्रयुक्तस्तुरौरवेवास्तेवा । तत्रोपविष्ट· पालाशीभिरैङ्गुदीभिरौदुम्बरीभिर्माधूकीभिर्वासमिद्भिरग्निमु-पसमाधायकुशैःपरिस्तीर्य्यपरिधिभिश्चपरिधायलाजैःशुक्लाभिश्च गन्धवतीभि·सुमनोभिरुपकिरेत्।तत्रप्रणीयोदपात्रपवित्रपूतमु-पसंस्कृत्यसर्पिराज्यार्थयथोक्तवर्णानाजानेयादीन्समन्तत स्था-पयेत् ॥ १८ ॥

फिर ऋत्विज (यज्ञकरनेवाला पुरोहित) पूर्वकी दिशामें अथवा उत्तरकी दिशामें या घरसे जिस ओर जल पूर्व या उत्तरको ढलताहो उस स्थानमें गोबरसे लीपकर वेदीको बनावे । उस वेदीको जलसे छिडककर ग्रहादिकोंको यथास्थान स्थापित करे । फिर इस स्त्रीको वेदीसे पश्चिमकी ओर शुद्ध बिछेहुए वस्त्रके ऊपर या सफेद वृषभके अजिनके ऊपर अथवा मृगछालापर बिठावे । ब्राह्मण हो तो इस विधिसे बिठावे, क्षत्री हो तो व्याघ्रके चर्मपर, वैश्य होय तो रुरु मृगके चर्मपर अथवा बकरेके चर्मपर बिठावे । फिर पलाश,इगुदी,औदुम्बर महुआ आदिकी समिधोंसे अग्निको स्थापन करे और कुशकण्डी कर्म विधिसे कुशाको विस्तीर्ण करे । फिर वेदीकी परिधि स्थापन होनेके अनन्तर सफेद धानकी खील, सफेद सुगंधित फूलोंसे स्वस्तिवाचनपूर्वक वेदीको सुशोभित करे एवम् प्रणीता पात्र, उदकपात्र, पवित्रा, पवित्र घृतपात्र, तथा पुत्रेष्टी यज्ञविधिसे वरण आदि सपूर्ण सामग्रीको विधिवत् स्थापन करे ॥ १८ ॥

तत.पुत्रकामापश्चिमतोऽग्निंदक्षिणतोब्राह्मणमुपवेश्यअन्वालभेतसहभर्त्रायथेष्टपुत्रमाशासाना । तत तस्याआशासानाया ऋत्विक्प्रजापतिमभिनिर्दिश्ययोनौतस्या'कामपरिपूरणार्थंकाम्यामिष्टिंनिर्वपेद्विष्णुर्योनिंकल्पयत्वित्यन्वयार्चाततश्चैवाज्येनस्थालीपाकमभिसंसार्य्यत्रिर्जुहुयात् । यथाम्नायञ्चोपमन्त्रितमुदकपात्रतस्यैदद्यात् सर्वोदकार्थान्कुरुष्वेति ॥ १९ ॥

इसके अनन्तर इस पुत्रकी कामनावाली स्त्रीको अग्निसे पश्चिमकी ओर और ब्रह्माको अग्निसे दक्षिण ओर स्थापन करे । और उस स्त्रीके भर्त्ताको यथेष्ट पुत्रके उत्पन्न होनेकी इच्छासे इसके पास बैठावे । फिर आचार्य प्रजापतिके उद्देशसे अथवा "प्रजापति" आदि मन्त्रका निर्देशकर उस स्त्रीके पतिका हाथ स्त्रीकी योनिसे स्पर्श कराकर "विष्णुर्योनिं कल्पयतु ' इसको पढतेहुए पुत्रेष्टी यज्ञ करावे और घृतके साथ चरू मिलाकर स्थालीपाक बनाकर तीनबार हवन करावे । फिर वेदोक्त मन्त्रोंसे उपमन्त्रित किया हुआ जलपूर्ण कलश उस स्त्रीको देवे । और यह कहे कि,सपूर्ण जलके कार्य इस जलसे करना ॥ १९ ॥

यज्ञके अतमें कर्म ।

तत समाप्तेकर्मणिपूर्वंदक्षिणपादमभिहरन्तीप्रदक्षिणमग्निमनुपरिक्रामेत्ततोब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयित्वासहभर्त्राऽऽज्यशेषप्राश्नीयात् । पूर्वंपुमान्पश्चात्स्त्रीनचउच्छिष्टमवशेषयेत्तनस्तौस-

यार्थानवदातान्पश्येत् । सहचर्य्यश्चैनाप्रियहिताभ्यासततमुप
चरेयु तथाभर्त्तानचमिश्रीभावमापद्येयाताम् ॥ १६ ॥

तथा सायकाल और प्रातःकाल नित्य सफेदवर्णके बडेभारी बैलको और पीले चदनसे चर्चितहुए उत्तम सुफेद घोडेको देखा करे । और उस स्त्रीके चित्तको सुन्दर, मनोहर, पवित्र वचन, उपचार, चेष्टा आदिसे प्रसन्न रक्खे । तथा पुरुषका भी ऐसाही आचरण रहना चाहिये । एव इन दोनोंका सुन्दर दैवी वस्तुओंका दर्शन कराना चाहिये । इस स्त्रीके समीप रहनेवाली उत्तम सहचारिणी स्त्रियें उसको हित और प्रिय आचरणसे सेवा करती रहे । और इन सातदिनोंमे उस स्त्रीका पति भी उत्तम आचारोंका सेवनकरे परन्तु यह दोना आपसमे सहवास न करें ॥ १६ ॥

इत्यनेनविधिनासप्तरात्रंस्थित्वाष्टमेऽहन्याप्लुत्याद्भि सशिरस्क
सहभर्त्राचाहतानिवस्त्राणिआच्छादयेदवदातानिअवदाताश्च
स्रजोभूषणानिचिभृयात् ॥ १७ ॥

इस विधीसे सात रात्रि व्यतीत होनेके अनन्तर आठवे दिन प्रातःकाल शिरसहित स्नानकर यह दोनों स्त्री पुरुष पवित्र सुन्दर नवीन वस्त्रोंको धारणकर उत्तम भूषण और सुन्दर फूलोंकी मालाओंको धारणकरें ॥ १७ ॥

उत्तमपुत्रके लिये हवन विधि ।

ततस्त्वितप्रागुत्तरस्यादिशिअगारस्यप्राक्प्रवणमुदक्प्रवणवा-
प्रदेशमभिसमीक्ष्यगोमयोदकाभ्यास्थण्डिलमुपसलिप्यप्रोक्ष्य
चोदकेनवेदिमस्मिन्स्थापयेत् । तापश्चिमेनानाहतवस्त्रसञ्चये
श्वेतार्षभेवाप्यजिन उपविशेद्ब्राह्मणप्रयुक्तोराजन्यप्रयुक्तस्तुवैया-
घ्रेचर्मण्यानुडुहेवावैश्यप्रयुक्तस्तुरौरवेवास्तेवा । तत्रोपविष्ट
पालाशीभिरिंगुदीभिरौदुम्बरीभिर्माधूकीभिर्वासमिद्भिरग्निमु-
पसमाधायकुशै.परिस्तीर्य्यपरिधिभिश्चपरिधायलाजैःशुक्लाभिश्च
गन्धवतीभि सुमनोभिरुपकिरेत् ।तत्रप्रणीयोदपात्रपवित्रपूतमु-
पसस्कृत्यसर्पिराज्यार्थयथोक्तवर्णानाजानेयादीन्समन्तत स्था-
पयेत् ॥ १८ ॥

देशके मनुष्योंके जैसे २ पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न करना चाहे वैसे २ देश, आहार विहार उपचर्या वस्त्र शय्या आदिकोंका सेवनकरे । ऐसा करनेसे उनकी इच्छानुसार सतान उत्पन्न होतीहै इसप्रकार इच्छानुरूप पुत्रके उत्पन्न करनेकी शिक्षा और समृद्धिका करनेवाला कर्म कथन कियाजाताहै ॥ २३ ॥

नतुखलुकेवलमेतदेवकर्मवर्णानांवैशेष्यकरमपितुतेजोधातुरप्युदकान्तरिक्षधातुप्रायोऽवदातवर्णकरोभवति । पृथिवीवायुधातुप्रायःकृष्णवर्णकरःसमसर्वधातुप्राय श्यामवर्णकरः ॥२४॥

स्त्रीकी इच्छानुरूप पुत्रका वर्ण रूप होनेमें केवल इतनाही नहीं किन्तु और भी ऐसे भाव होतेहै जो पुत्रके श्याम गौर आदि वर्णको उत्पन्न करते है जैसे-तेजधातु और उदकधातु तथा अतरिक्षधातु अधिक होनेसे गौरवर्ण होताहै । पृथ्वी और वायु धातु अधिक होनेसे कृष्णवर्ण होताहै । सब धातुयें समान होनेसे श्यामवर्ण होताहै ॥ २४ ॥

सत्त्वभेदका कारण ।

सत्त्ववैशेष्यकराणिपुनस्तेषातेषाप्राणिनामातापितृसत्त्वान्यन्तर्वेत्न्याःश्रुतयश्चाभीक्ष्णस्वोचितञ्चकर्मसत्त्वविशेषाभ्यासश्चेति२५॥

अब गर्भके मनके विषयमे श्रवण करो । जैसे माता और पिताका गर्भाधानके समय जैसा मन होताहै वैसाही सतानका भी मन होताहै । तथा गर्भवती स्त्री जिसप्रकारके नित्यम्प्रति कथा आदि श्रवण किया करे और जिसप्रकारके कर्मोंमे चित्त लगाय रक्खे प्राय. गर्भका मन उसीप्रकारका होताहै ॥ २५ ॥

यथोक्तेनविधिनोपसंस्कृतशरीरयो स्त्रीपुरुषयोस्तुमिथीभावमापन्नयो.शुक्रशोणितेनसहसंयोगेसमेत्याव्यापन्नमव्यापन्नेन योनावनुपहतायामप्रदुष्टेगर्भाशयेगर्भमभिनिर्वर्त्तयतिएकान्तेन । यथानिर्मलेवाससीसुपरिकल्पतेरञ्जनसमुदितगुणमुपनिपातादेवरागमभिनिर्वर्त्तयतितद्वत् । यथावाक्षीरदध्नाभियुतमभिपवणाद्विहायस्वभावमापद्यतेदधिभावशुक्रतद्वत् ॥ २६ ॥

पूर्वोक्त विधिसे सस्कार कियेहुए शरीरोंवाले स्त्रीपुरुषोंका जब विधिवत् आपसमे सयोग होताहै तब दोषरहित पुरुषके वीर्य और स्त्रीके रजका सयोग होकर गर्भ उत्पन्न होजाताहै । यदि योनिमें किसीप्रकारका विकार न हो और गर्भाशय शुद्ध हो परम

हसंवसेतामष्टरात्रंतथाविधपरिच्छदावेवचस्यातांतथेष्टपुत्रंज-
नयेताम् ॥ २० ॥

फिर इस कर्मके समाप्त होनेके अनन्तर पहिले दक्षिण पावोंको आगे रखतीहुई अग्निकी क्रमपूर्वक प्रदक्षिणा करे। फिर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर यज्ञसे बचेहुए घृतको और स्थालीपाक चरूको पतिसहित स्त्री भक्षण करे अर्थात् पहिले उसको पति भक्षण करे फिर स्त्री भक्षण करे। परन्तु उसमेंसे बाकी जूठा न छोडे। फिर वह इस आठवीं रात्रिमें पूर्वोक्त उत्तम शय्यापर पूर्वोक्त विधीसे सहवास करावे। इसप्रकार करनेसे इच्छानुरूप पुत्र उत्पन्न होताहै ॥ २० ॥

यातुस्त्रीश्यामंलोहिताक्षंव्यूढोरस्कमहाबाहुंपुत्रमाशासीत ।
यावाकृष्णंकृष्णमृदुदीर्घकेशंशुक्लाक्षंशुक्लदन्तंतेजस्विनमात्म-
वन्तम् एषएवानयोरपिहोमविधिः किन्तुपरिवर्हवर्णवर्ज्यैस्यात्
पुत्रवर्णानुरूपस्तुयथाशीरेवतयो परिवर्होऽन्यः कार्य्यः स्यात् ॥२१॥

जिस स्त्रीको लालनेत्र, श्यामवर्ण, बडे २ कंधे, विशाल छाती और महाबाहु पुत्रके उत्पन्न करनेकी इच्छा हो अथवा कृष्णवर्ण नम्र, दीर्घ कालेकेशवाले श्वेत नेत्रोंवाले, श्वेत दंत पक्तीवाले, तेजस्वी, ज्ञानसंपन्न पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा हो तो इन दोनों स्त्री पुरुषोंको उपरोक्त विधिसे यज्ञ करना चाहिये। परन्तु श्वेतवस्त्र और श्वेतचर्म आदिकोंको त्यागकर जैसा पुत्र उत्पन्न करना हो उसीके अनुरूप भोजन, परिवर्धन होम आदि करना चाहिये ॥ २१ ॥

द्विजेभ्यःशूद्रातुनमस्कारमेवकुर्य्याद्देवगुरुतपस्विसिद्धेभ्यश्च ॥२२॥

शूद्रकी स्त्रीको वेदोक्त मन्त्रोंसे यज्ञ करनेका निषेध है इसलिये वह देवता गुरु तपस्वी सिद्ध और ब्राह्मणोंको नमस्कारपूर्वक पुत्रेष्टिको करे ॥ २२ ॥

यायाचयथाविधंपुत्रमाशासीततस्यास्तस्यास्तातापुत्राशिषम-
नुनिशम्यतांस्ताञ्जनपदानांमनुष्याणामनुरूपंपुत्रमाशाशीत-
सातेपातेषांजनपदानामाहारविहारोपचारपरिच्छदाननुविधी-
यस्वेतिवाच्यास्यात्। इत्येतत्सर्वंपुत्राशिषांसमृद्धिकरंकर्मव्या-
ख्यातंभवति ॥ २३ ॥

जो जो स्त्री पुरुष जैसेजैसे पुत्रोंको उत्पन्न करनेकी इच्छा करतेहों उसी उसी प्रकार ब्राह्मणोंके आशीर्वादोंको श्रवण करें तथा तदनुरूप मनसे स्मरण करें और जिस२

देशके मनुष्योंके जैसे २ पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न करना चाहे वैसे २ देश, आहार विहार उपचर्या वस्त्र शय्या आदिकोंका सेवनकरे। ऐसा करनेसे उनकी इच्छानुसार संतान उत्पन्न होतीहै इसप्रकार इच्छानुरूप पुत्रके उत्पन्न करनेकी शिक्षा और समृद्धिका करनेवाला कर्म कथन कियाजाताहै ॥ २३ ॥

नतुखलुकेवलमेतदेवकर्मवर्णानांवैशेष्यकरमपितुतेजोधातुरप्युदकान्तरिक्षधातुप्रायोऽवदातवर्णकरोभवति । पृथिवीवायुधातुप्रायःकृष्णवर्णकरःसमसर्वधातुप्रायःश्यामवर्णकरः ॥२४॥

स्त्रीकी इच्छानुरूप पुत्रका वर्ण रूप होनेमें केवल इतनाही नहीं किन्तु और भी ऐसे भाव होतेंहै जो पुत्रके श्याम गौर आदि वर्णको उत्पन्न करते है जैसे-तेजधातु और उदकधातु तथा अंतरिक्षधातु अधिक होनेसे गौरवर्ण होताहै । पृथ्वी और वायु धातु अधिक होनेसे कृष्णवर्ण होताहै । सब धातुयें समान होनेसे श्यामवर्ण होताहै ॥ २४ ॥

सत्त्वभेदका कारण ।

सत्त्ववैशेष्यकराणिपुनस्तेषांतेषांप्राणिनांमातापितृसत्त्वान्यन्तर्वेत्न्याःश्रुतयश्चाभीक्ष्णंस्वोचितश्चकर्मसत्त्वविशेषाभ्यासश्चेति२५॥

अब गर्भके मनके विषयमें श्रवण करो। जैसे माता और पिताका गर्भाधानके समय जैसा मन होताहै वैसाही संतानका भी मन होताहै। तथा गर्भवती स्त्री जिसप्रकारके नित्यप्रति कथा आदि श्रवण किया करे और जिसप्रकारके कर्मोंमें चित्त लगाय रक्खे प्रायः गर्भका मन उसीप्रकारका होताहै ॥ २५ ॥

यथोक्तेनविधिनोपसंस्कृतशरीरयोः स्त्रीपुरुषयोस्तुमिथीभावमापन्नयोःशुक्रशोणितेनसहसंयोगेसमेत्याऽव्यापन्नमव्यापन्नेन योनावनुपहतायामप्रदुष्टेगर्भाशयेगर्भमभिनिर्वर्त्तयतिएकान्तेन । यथानिर्मलेवाससीसुपरिकल्पतेरञ्जनसमुदितगुणमुपनिपातादेवरागमभिनिर्वर्त्तयतितद्वत् । यथावाक्षीरंदध्नाभियुतमभिषवणाद्विहायस्वभावमापद्यतेदधिभावंशुक्रंतद्वत् ॥ २६ ॥

पूर्वोक्त विधिसे संस्कार कियेहुए शरीरोंवाले स्त्रीपुरुषोंका जब विधिवत् आपसमें संयोग होताहै तब दोषरहित पुरुषके वीर्य और स्त्रीके रजका संयोग होकर गर्भ उत्पन्न होजाताहै । यदि योनिमें किसीप्रकारका विकार न हो और गर्भाशय शुद्ध हो एवम्

रज वीर्य भी निर्दोष हों तो अवश्यही स्त्री गर्भको धारण कर लेतीहै। जैसे निर्मल वस्तुमें जिसप्रकारका रंग चढाना चाहते हो उसीप्रकारका रंग वस्तुको रंगमें डालतेही चढजाताहै। उसीप्रकार शुद्ध शुक्र और रजके संयोगसे गर्भाशय इष्ट गर्भको धारणकर लेताहै। जैसे दूध दहीके साथ मिलजानेसे अपने स्वभावको छोड दहीके अनुरूप होजाताहै उसी प्रकार वीर्य भी शुद्ध रजके संयोगसे गर्भाशयमें प्राप्त हो गर्भको प्रगट कर देताहै ॥ २६ ॥

एवमभिनिर्वर्त्तमानस्यगर्भस्यतुस्त्रीपुरुषत्वेहेतु पूर्वमुक्तः॥२७॥

इसप्रकार गर्भके उत्पन्न करनेम जिसप्रकारके स्त्रीपुरुष होने चाहिये सो पहिले कथन कर चुकेहैं ॥ २७ ॥

यथाहिबीजमनुपतसमुप्तस्वास्वाप्रकृतिमनुविधीयतेव्रीहिर्वाव्रीहित्वयवोवायवत्वंतथास्त्रीपुरुषावपियथोक्तहेतुविभागमनुविधीयते ॥ २८ ॥

जैसे जो २ बीज बोया जाय वह अपनी अपनी प्रकृतिके अनुरूप उत्पन्न होताहै। जैसे धानका बीज धानको उत्पन्न करताहै। यवसे यव उत्पन्न होताहै और वह भी बीज, पृथ्वी तथा समयके अनुरूप होताहै उसीप्रकार स्त्रीपुरुषोंके बीजके अनुरूप संतान होतीहै ॥ २८ ॥

तयोःकर्मणावेदोक्तेनविवर्त्तनमुपदिश्यतेप्राग्व्यक्तीभावात्॥२९॥

उन स्त्रीपुरुषोंको गर्भके प्रगट होनेसे पहिले जिसप्रकारका वर्त्ताव करना चाहिये उनको वेदोक्तरीतिसे वर्णन करतेहे ॥ २९ ॥

प्रयुक्तेनसम्यक्कर्मणाहिदेशकालसम्पदुपेतानानियतमिष्टफलत्वंतथेतरेषामितरत्वम् । तस्मादापन्नगर्भांस्त्रियमभिसमीक्ष्य प्राग्व्यक्तीभावाद्गर्भस्यपुंसवनमस्यैदद्यात् ॥ ३० ॥

जो कर्म जैसे देश, जैसे समयम जैसी सामग्रीसे विधिवत् किया जाताहै उसका वैसा फल होताहै। इसलिये जोकर्म उत्तम रीतिसे उत्तम सामग्रीद्वारा उत्तम समयपर कियाजाताहै उसका उत्तम फल प्राप्त होताहै तथा इसके विपरीत करनेसे उसका अनिष्ट फल प्राप्त होताहै। अतएव गर्भवती स्त्रीको दूसरे महीनेमें पुंसवन कर्म करना चाहिये ॥ ३० ॥

पुंसवनविधि।

गोष्ठेजातस्यन्यग्रोधस्यप्रागुत्तराभ्यांशाखाभ्यांशुङ्गेऽनुपहते

आदाय द्वाभ्याधान्यमाषाभ्यासम्पदुपेताभ्यागौरसर्षपाभ्या वासहदधिप्रक्षिप्यपुष्येऋक्षेपिबेत् ॥ ३१ ॥

गौओंके विश्राम करनेकी जगहके वट वृक्षोंका जो टहना पूर्व और उत्तरकी ओर हो उसमेंसे निदाप उत्तम दो शृंग (अकुर या कली) तोडलावे और दो स्वच्छ मोटे चावल तथा दो उडद उन दोनो अकुरोंमे मिलाकर अथवा दो सफेद सरसोंके दाने मिलाकर दहीमे मिलाकर वह गर्भवती स्त्री पुष्यनक्षत्रम पीवे ॥ ३१ ॥

तथैवअपराजीवकर्षभकापामार्गसहचरकल्काश्चयुगपदेकैक- शोयथेष्टवाप्युपसस्कृत्यपयसा ॥ ३२ ॥ कुड्यकीटकमत्स्यक- श्चोदकाञ्जलौप्रक्षिप्यपुष्येणपिबेत् ॥ ३३ ॥

अथवा जीवक, ऋषभक, सफेद अपामार्ग, सफेद सहचर, इन सबका कल्क बना अथवा इनमेंसे किसी एकका कल्क बनाकर गौके दूधके सग पुष्यनक्षत्रमें पानकरे अथवा कुड्यकीट (दीवारमें होनेवाला धन्वी कीट विशेष) उसको अथवा छोटीसी मछलीको पुष्यनक्षत्रमे एक अजली जलके साथ पीवे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

तथाकनकमयान्राजतानायसाश्चपुरुषकानग्निवर्णाननुप्रमाणा- न्दधिपयसिउदकाञ्जलौवाप्रक्षिप्यपिबेदनवशेषत पुष्येण ॥ ३४॥

अथवा सुवर्ण, चांदी या लोहेकी उत्तम भस्म लेकर अपने अग्नि, वर्णके समान सूक्ष्म मात्रासे दही अथवा दूध या एक अजली जलके साथ पुष्यनक्षत्रमें पीवे । (वाग्भटने लिखा है कि सोने चादी अथवा लोहेका एक छोटासा पुरुष बना उसको अग्निम तपा एक अजली जलमें अथवा दूध या दहीमें बुझाकर उस जल या दूध दहीको पीवे) ॥ ३४ ॥

पुष्योद्धृतलक्ष्मणामूलस्यपयसापुत्रकामोऽस्यदक्षिणनासापुटे कन्याकामस्य वामनासापुटेसिंचेत् । एव श्वेतकटकार्यारस- सिंचनेनपुत्रावाप्ति. । पुष्येणैवचपिष्टस्यपच्यमानस्योष्माणमु- पघ्रायतस्यैवचपिष्टस्योदकससृष्टस्यरसंदेहलीमुपनिधायदक्षि- णेनासापुटेस्वयमासिञ्चेत्पिचुना ॥ ३५ ॥ इतिपुंसवनानि यच्चान्यदपिब्राह्मणाब्रूयुराप्तावापुंसवनमिष्टनच्चानुष्ठेयम् ॥ ३६ ॥

अथवा पुष्यनक्षत्रमें उखाडीहुई लक्ष्मणाकी जडको दूधमें घोटकर पुत्रकी इच्छा-वाली स्त्री नाकके दहिने नथने और कन्याकी कामनावाली बायें नथने द्वारा पीवे। या नस्यके प्रकारसे टपकावे । इसीप्रकार रविवार पुष्यमें उखाडीहुई सफेद कटेलीका रस भी पुत्रको देनेवाला होताहै । लक्ष्मणाकी पुष्य नक्षत्रमें उखाडी हुई जडको दूधमें पीसकर उसके रसको वा दूधमें पकाकर उसकी भाफको सूर्यके सामने प्रात काल खडे हो नासिकाद्वारा सूंघे अथवा केवल लक्ष्मणाको पीस उसका रस निकाल पूर्वको मुखकर अपने दक्षिण नथनेमें घरकी देहलीपर खडे होकर अपने हाथसेही टपकावे । यह सब कर्म अथवा अन्य पुंसवन कर्म ब्राह्मणोंके और आप्त-पुरुषोंके आज्ञानुसार अनुष्ठान करने चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

गर्भस्थापन औषध ।

अतऊर्द्ध्वंगर्भस्थापनानिव्याख्यास्यामः ॥ ३७ ॥

अब गर्भके स्थापन करनेकी विधिको कथन करते है ॥ ३७ ॥

ऐन्द्रीब्राह्मीशतवीर्य्यासहस्रवीर्य्याअमोघाअव्यथाशिवाबला अरिष्टावाट्यपुष्पीविष्वक्सेनाकान्ताचआसामोषधीनाशिरसा दक्षिणेनपाणिनाधारणमेताभिश्चैवसिद्धस्यपयसःसर्पिषोवापा-नमेताभिश्चैवपुष्येपुष्येस्नानसदाचैताभि समालभेत ॥ ३८ ॥ तथासर्वासाजीवनीयोक्तानामोषधीनासदोपयोगस्तैस्तैरुपयो-गविधिभिरितिगर्भास्थापनानिव्याख्यातानिभवन्ति ॥ ३९ ॥

इन्द्रायण, ब्राह्मी (बाढगी, हुलहुल अथवा ब्राह्मीबूटी) सफेद दूब, काली दूब, अमोघा, अव्यथा (गदा) हरट, बला, नीम, कुटकी, गगेरण, प्रियगु, शतावर इन औषधोंमसे किसी एक औषधीको पुष्यनक्षत्रमें उखाडकर उसके स्वरसको दक्षिण हाथसे दहिनी नासामें टपकावे और शिरको दहिनी और दहिने हाथसे धारणकर रक्खे तथा इन्हीं सब औषधियोंके साथ सिद्ध कियेहुए दूध और घृतको पानकरे। एवम् इन्हींसे औटाये जलसे हरएक पुष्य नक्षत्रमें स्नान किया करे इनके उपयोगसे गर्भस्थापन होताहै । अथवा जीवनीयगणकी संपूर्ण औषधोंके उपयोगसे सिद्धकिये दूध, घृत आदिक और पूर्वोक्त विधानसे पुष्यनक्षत्रमें सब उपयोग करनेसे गर्भस्था-पन होताहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

गर्भनाशक भाव ।

गर्भोपघातकरास्त्विमेभावाभवन्तितद्यथाउत्कटुकविषमस्थान

कठिनासनसेविन्यावातमूत्रपुरीषवेगानुपरुन्धत्यादारुणानुचि-
तव्यायामसेविन्यास्तीक्ष्णोष्णातिमात्रसेविन्या.प्रमिताशनसेवि-
न्यागर्भोम्रियतेऽन्त.कुक्षेरकालेवास्त्रसतेशोषीवाभवति ॥ ४० ॥

गर्भके उपघात करनेवाले यह भाव है । जैसे-गर्भवती स्त्रीका उत्कट रीतिसे बैठना अथवा ऊचेनीचे तथा विषमस्थानम फिरना, कठिन आसन आदिसे बैठना, वात, मूत्र और पुरीषके वेगको रोकना, दारुण और अनुचित परिश्रम आदि करना, तीक्ष्ण तथा ऊष्ण द्रव्योंका अधिक सेवन करना, वहुत भूखे रहना इत्यादि कारणोंसे गर्भ कुक्षीमेंही मरजाताहे अथवा स्राव होजाताहै या सूखजाताहै ॥ ४० ॥

तथाभिघातप्रपीडनैः श्वभ्रकूपप्रपातदेशावलोकनैर्वाभीक्ष्णमा-
तु प्रपतत्यकाले । तथातिमात्रसंक्षोभिभिर्यानैरप्रियातिमात्र-
श्रवणैर्वा । प्रततोत्तानशायिन्या पुनर्गर्भस्यनाभ्याश्रयानाडी
कण्ठमनुवेष्टयति ॥ ४१ ॥

इसप्रकार चोट आदि लगनेसे, किसीप्रकारसे गर्भके दवजानेसे तथा अत्यत भयंकर, गढे, कूप, पहाडके विकट गिरेहुए किनारोंका देखना आदि भयकारक स्थानोंको देखनेसे भी गर्भपात होजाताहै । अथवा गर्भवतीके शरीरमे किसीप्रकार अत्यत हलचल होजानेसे या किसी विकट सवारीपर चढनेसे एव अत्यत भयकर और बहुत ऊचा शब्द सुननेसे भयकर अप्रिय शब्दके सुननेसे भी अकालम गर्भपात होजाता है । और सदैव सीधी उत्तान पडी रहनेसे गर्भकी नाभिसे आश्रित नाडी गर्भके कण्ठमें लिपट जातीहै । इसलिये गर्भका उपघात होताहै ॥ ४१ ॥

विवृतशायिनीनक्तञ्चारिणीचोन्मत्तजनयत्यपस्मारिणंपुन. क-
लिफलहाचारशीला । व्यवायशीलादुर्वपुषमहीकंस्त्रैणंवाशो-
कनित्याभीतमपचितमल्पायुषंवा । अभिध्यात्रीपरोपतापिन-
मीर्ष्युंस्त्रैणंवातेनात्यायासवहुलमतिद्रोहिणमकर्मशीलंवा । अ-
मर्षिणीचण्डमौपाधिकमसूयकंवा । स्वप्ननित्यातन्द्रालुमवुध-
मल्पाग्निंवा । मद्यनित्यापिपासालुमनवस्थितचित्तंवा । गोधा
मांसप्रियाशर्करिणमश्मरिणंशनैर्मेहिनंवा । वराहमांसप्रियार-
क्ताक्षंक्रथनमनतिपरुषरोमाणंवा । मत्स्यमांसनित्याचिरनि-

मिप स्तब्धाक्षवा । मधुरनित्याप्रमेहिणमूकमतिस्थूलवा। अम्लनित्यारक्तपित्तिनत्वगक्षिरोगिणवा । लवणनित्याशीघ्र-वलीपलितखालित्यरोगिणवा कटुकनित्यादुर्बलमल्पशुक्रमन-पत्यवा । तिक्तनित्याशोषिणमबलमपाचितवा । कषायनित्या श्यावमानाहिनमुदावर्त्तिनवा ॥ ४२ ॥

यदि गर्भवती स्त्री नग्न होकर सोया करे अथवा इधर उधर अधिक फिरे तो उसके गर्भसे उन्मत्त (पगली) सतान होती है । गर्भवती स्त्री यदि अधिक कलह और उपद्रव करनेवाली हो तो मृगीरोगवाली सतान होती है। यदि गर्भवती स्त्री अधिक मैथुन करे तो विकल और निर्लज्ज अथवा स्त्रैण (स्त्रियोंकेसे कृत्यवाला) सतान उत्पन्न होती है । यदि गर्भवती निरन्तर शोकसे व्याकुल रहा करे तो उसकी सतान भयातुर, क्षीण और अल्पायु होती है । यदि गर्भके समय स्त्री परधनके लेनेकी इच्छा रखती हो तो उसकी सतान परायी सपत्तिको देखकर जलनेवाली और इर्ष्यायुक्त तथा स्त्रैण सतान होती है । अथवा चोर, आलसी, अतिद्रोही, कुकर्म करनेवाली सतान होती है । गर्भवती स्त्री,अत्यत क्रोध किया करे तो उसकी सतान अत्यत क्रोधी, छली और चुगलखोर उत्पन्न होती है । अत्यत सोनेवाली गर्भवती स्त्रीकी सतान निद्रालु, आलसी, मूर्ख, मदाग्निवाली उत्पन्न होती है। यदि गर्भवती स्त्री मद्य पीये तो तृपार्त और विकलचित्त सतान होतीहै । जो स्त्री गौका मास खाय उसके गर्भसे सर्करा, पथरी और शनैमेहवाली सतान उत्पन्न होती है। वराहका मास खानेवाली गर्भवतीके गर्भसे लालनेत्रोंवाला और हत्यारा तथा कठोर रोमोंवाला पुत्र उत्पन्न होताहै । मछली खानेवाली गर्भवतीकी सतान बहुत देरमें पलक झपकनेवाली तथा टेढे नेत्रों-वाली होती है । गर्भवतीके अत्यन्त मीठा खानेसे प्रमेही, मूगी और अधिक स्थूल सतान उत्पन्न होती है । गर्भवतीके अधिक खट्टा खानेसे रक्तपित्त रोगवाली, त्वचाके रोग तथा नेत्ररोगवाली सतान होती है गर्भवतीके अत्यत लवणरस सेवनसे अकालमें सफेद बाल होजानेवाली, सलवटवाली तथा गजी संतान उत्पन्न होती है । गर्भवतीके चरपरे रसके अत्यत सेवनसे दुर्बल अल्पशुक्र तथा अनपत्य सतान उत्पन्न होती है। गर्भवतीके अत्यत कडुआ रस सेवनसे सूखेहुए शरीरवाला अथवा शोषरोगी, निर्बल और कृश सतान उत्पन्न होती है । गर्भवतीके अत्यत कषायरस सेवनसे काले वर्णकी अफारा रोगवाली और उदावर्त्त रोगवाली सतान उत्पन्न होती है ॥ ४२ ॥

यद्यच्चयस्ययस्यव्याधेर्निदानमुक्ततत्तदासेवमानान्तर्वत्नीतद्वि-कारबहुलमपत्यजनयति ॥ ४३ ॥

गर्भवती स्त्री जो २ द्रव्य जिन २ रोगाके उत्पन्न करनेके कारण कहे गये है उनके अधिक सेवनसे इन २ रोगोसे ग्रसित सतान उत्पन्न करती है ॥ ४३ ॥

पितृजास्तुशुक्रदोषामातृजैरपचारैर्व्याख्याताइतिगर्भोपघात-कराभावाव्याख्याताः ॥ ४४ ॥

पिताके जो शुक्र दोष है माताके अपचारासे उनका भी निर्देश जान लेना । इस प्रकार गर्भ उपघातकारक भावोका वर्णन किया गया ॥ ४४ ॥

गर्भिणीकी उपचारविधि ।

तस्मादहितानाहारविहारान्प्रजासम्पदमिच्छन्तीस्त्रीविशेषेण वर्जयेत्साध्याचाराचात्मानमुपचरेद्धिताभ्यामाहारविहारा-भ्याम् ॥ ४५ ॥

इसलिये सतानके हितकी इच्छा करती हुई गर्भवती स्त्री अहित आहार विहारोको त्याग देवे । तथा श्रेष्ठ आचार और हित आहार विहारसे शरीरकी रक्षा करती रहे ॥ ४५ ॥

व्याधींश्चास्यामृदुमधुरशिशिरसुखसुकुमारप्रायैरौषधाहारोप-चारैरुपचरेत् । नचास्यावमनविरेचनशिरोविरेचनानिप्रयोज-येन्नरक्तमवसेचयेत् । सर्वकालश्चनास्थापनमनुवासनवाकु-र्यादन्यत्रात्ययिकाद्व्याधे । अष्टममासमुपादायवमनादि साध्येषुपुनर्विकारेषुआत्ययिकेषुमृदुभिर्वमनादिभिर्वोपचार स्यात् ॥ ४६ ॥

यदि गर्भवती स्त्रीको किसीप्रकारका रोग उत्पन्न होजाय तो वैद्यको चाहिये कि नरम, मधुर, शीतल, सुखदायक और सुकुमार औषधियोंसे विधिवत् चिकित्सा करे । और गर्भवतीको वमन, विरेचन, शिरोविरेचन तथा रक्तमोक्षण कभी न करावे । और गर्भकी सब अवस्थामें अस्थापन बस्ति तथा अनुवासन बस्ति भी न करावे यदि कोई शीघ्र प्राणनाशक व्याधी उपस्थित न हो । जब गर्भके आठवें महीनेमें प्राप्त होनेपर यदि कोई ऐसा विकार हो कि जिसम वमनादिकोंके विना प्राणही न बच सकतेहों तो युक्तिपूर्वक बहुत नम्र और हितकारी औषधियो द्वारा नरम वमनादि उपचार करे ॥ ४६ ॥

गर्भिणीके उपचारमे मुख्य कर्म ।

पूर्णमिवतैलपात्रमसक्षोभ्याऽन्तर्वत्नीभवत्युपचर्य्या ॥ ४७ ॥

जिसप्रकार तेलसे मुखपर्यन्त पूर्ण भराहुआ पात्र इधर उधर उठाने धरनेमें उसके गिरनेका भय रहताहै उसीप्रकार थोडा भी असावधानी और अहित उपचार होनेसे गर्भके गिरनेका भय रहताहै ॥ ८७ ॥

साचेदपचाराद्वयोस्त्रिषुमासेषुपुष्पपश्येन्नास्यागर्भःस्थास्यतीतिविद्यात् । अजातसाराहितस्मिन्कालेभवन्तिगर्भाः ॥ ४८ ॥

यदि किसी कुपथ्यके करनेसे गर्भवतीको दूसरे या तीसरे महीनेमें मासिकऋतुके समान रक्तस्राव होने लगे तो उसको यह गर्भ नहीं रहसकता । क्योंकि इसकालतक गर्भ साररहित होताहै । इसलिये कुपथ्य आदिसे शीघ्र स्राव होजाता है ॥ ४८ ॥

साचेच्चतुष्प्रभृतिषुमासेषुक्रोधशोकासूयेर्ष्याभयत्रासव्यवायव्यायामसंक्षोभसन्धारणाविषमाशनशयनस्थानक्षुत्पिपासातियोगात्कदाहाराद्वापुष्पंपश्येत्तस्यागर्भस्थापनविधिमुपदेक्ष्यामः ॥ ४९ ॥

यदि गर्भवती स्त्री चौथे आदि महीनोंमें क्रोध, शोक अथवा असूया, ईर्षा, भय, त्रास, मैथुन, परिश्रम, संक्षोभ, वेगावरोध, विषमाशन और विषमरीतिसे शयन तथा विषमभावसे विषम स्थानोंमें रहे एवं अधिक भूख प्यासके समय अधिक भोजन करे अथवा भूखी रहे या दुष्ट आहार व्यवहार करे तो इनसे उसके गर्भके पतन होनेका भय है । इसलिये गर्भवती स्त्रीको हित आहार और हित आचार एवं शुद्ध प्रसन्न मन रहना चाहिये । यदि ऐसे कार्योंसे गर्भका पात या स्राव होनेलगे तो उसमें जो उपाय करने चाहिये उनका वर्णन करते हैं ॥ ४९ ॥

गर्भकी रक्षाविधि ।

पुष्पदर्शनादेवैनाब्रूयाच्छयनंतावन्मृदुसुखशिशिरास्तरणसंस्तीर्णमीषदवनतशिरस्कंप्रतिपद्यस्वेति । ततोयष्टिमधुकसर्पिर्भ्यांपरमशिशिरवारिणिसंस्थिताभ्यांपिचुमाप्लाव्योपस्थसमीपे स्थापयेत् । तस्याः तथाशतधौतसहस्रधौताभ्यांसर्पिर्भ्यामधोनाभेः सर्वतः प्रदिह्यात् । गव्येनचैनापयसासुशीतेनमधुकाम्बुनावान्यग्रोधादिकषायेणवापरिषेचयेदधोनाभेः । उदकंवा सुशीतमवगाहयेत्क्षीरिणांकषायद्रुमाणाञ्चस्वरसपरिपीतानिचेलानिग्राहयेत् । न्यग्रोधादिसिद्धयोर्वाक्षीरसर्पिषोः पिचुंग्राहयेदतश्चैवाक्षमात्रंप्राशयेत्प्राशयेद्वाकेवलंक्षीरसर्पिः ॥ ५० ॥

जिससमय गर्भवतीकी योनिसे रजस्राव होने लगे उसको उसीसमय कहे कि तू नरम सुखकारी शीतल बिछीहुई शय्यापर मस्तकको कुछ नीचाकर लेटजा। इसके अनन्तर मुलहठी और घृतको मिलाकर शीतल पानीके संयोगमे शीतलकर एक रुईका फोहा बना किसी नरमवस्त्रसे भिगोकर और लपेटकर उस फोहेको स्त्रीकी योनिमे रखदे। तथा एकसो वार या हजारवार धोयेहुए मक्खनको नाभिसे नीचे शीतल २ लेपकर देवे। और शीतल गौका दूध अथवा मुलहठीका क्वाथ या न्यग्रोधादिगणका क्वाथ शीतलकरके उससे मदमद तरडे नाभिके नीचे देवे। अथवा शीतल जलकीही धारा डाले। अथवा वड आदि क्षीरी वृक्षोंके कषाय और कसले रसवाले वृक्षोंके स्वरसमे छोटासा नम्रवस्त्रका टुकडा भिगो योनिम रक्खे। अथवा वड आदिके क्वाथसे सिद्धकिये दूध या घृतमे भिगोयाहुआ फोहा योनिम रक्खे और इस घृत और दूधमेसे दो तोला पनिको भी दे देवे। अथवा इन औषधियोंमे सिद्धकिये घृत और दूध पिलाव ॥ ५० ॥

पद्मोत्पलकुमुदकिञ्जल्काश्चास्यैसमधुशर्कराल्लेहार्थंदद्यात्। शृङ्गाटकपुष्करबीजकशेरुकान्भक्षणार्थम्। गन्धप्रियङ्ग्वसितोत्पलशालुकोदुम्बरशलाटुन्यग्रोधशुङ्गानिवापाययेदेनामाजेन पयसा ॥ ५१ ॥

कमल और कमोदनीकी केशर अथवा फूलकी शहद और मिसरीके साथ पीसकर चटावे। और सिंघाडे, कमलगट्टे, तथा कसेरु ये खानेके लिये देवे अथवा गंध प्रियगु, नीलोफर, कमलकी जड, गुलडके कच्चे फल, वडके अकुर इनको वकरीके दूधमें घोटकर पिलावे ॥ ५१ ॥

पयसाचैनावलातिवलाशालिषष्ठिकेक्षुमूलकाकोलीशृतेनसमधुशर्कररक्तशालीनामोदनम्मृदुसुरभिशीतभोजयेत्। लावकपिञ्जलकुरङ्गशम्बरशशहरिणैणकालपुच्छकरसेनवाघृतसलिलसिद्धेनसुखशिशिरोपवातदेशस्थाभोजयेत् ॥ ५२ ॥

अथवा वला, अतिवला, शालीचावल, साठीके चावल, ईखकी जड, काकोली इनमें पचसे सिद्धकिये दूधमें मिसरी मिला सेवन करावे। तथा शालिचावलोंको नर्ममें पकाकर शीतल होनेपर उनमे शहद, मिसरी और दूध मिला भोजनकरनेको देवे। अथवा लवा, कपिजल, कुरंग, साभर, शशा, हरिण, कालपुच्छक इनके मांसरसको घृत और जलसे सिद्धकर सुशीतल हवाके स्थानमें उस रसके सग भातका भोजन करावे ॥ ५२ ॥

तथाक्रोधशोकायासव्यवायव्यायामतश्चाभिरक्षेत्सौम्याभिश्चै नांकथाभिर्मनोऽनुकूलाभिरुपासीततथास्यागर्भस्तिष्ठति ॥ ५३ ॥

और ऐसी अवस्थामें उस गर्भवती स्त्रीको क्रोध, शोक, परिश्रम, मैथुन, देहका हिलाना आदि कर्म नही करना चाहिये । तथा सुन्दर पवित्र मनके हरनेवाली वातोंसे उस गर्भवती स्त्रीके चित्तको प्रसन्न रखना चाहिये । इन उपायोंके करनेसे गर्भ अपने स्थानमें टिका रहताहै ॥ ५३ ॥

आमगर्भमे पुष्पदर्शन ।

यस्या पुनरामान्वयात्पुष्पदर्शनस्यात्प्रायस्तस्यास्तद्गर्भवाधकंभ-वतिविरुद्धोपक्रमत्वात्तयो. ॥ ५४ ॥

जिस गर्भवतीके आमदोषसे रज दिखाईदेने लगजाय उससमय उसकी चिकित्सामे विरोधी औषधियोंका उपयोग होनेसे प्रायः गर्भको हानि होती है । परन्तु विधिवत् समयानुकूल उससमय भी उपचार करना चाहिये ॥ ५४ ॥

यस्या पुनरुष्णतीक्ष्णोपयोगाद्गर्भिण्यामहतिसजातसारेगर्भेपु-ष्पदर्शनस्यादन्योवायोनिप्रस्रावः । तस्यागर्भोवृद्धिंनप्राप्नोति निःस्रुतत्वात्सकालान्तरमवतिष्ठतेऽतिमात्रंतमुपविष्टकमित्या-चक्षतेकेचित् ॥ ५५ ॥

जब गर्भवती स्त्रीके उष्ण, तीक्ष्ण पदार्थोंके सेवनसे मासिकऋतु अथवा अन्य प्रकारसे योनिस्राव होजाय तो उसके होनेसे जातसार गर्भ भी अर्थात् चौथे महीनेका गर्भ भी बढनेसे बद होजाताहै और अपूर्ण रहताहै इसलिये वह बहुतकाल पेटमही रहताहै यदि यह बहुत रोजतक पेटमेही रहे तो इस गर्भको कोई आचार्य उपविष्टक कहतेहैं ॥ ५५ ॥

नागोदरगर्भके लक्षण ।

उपवासव्रतकर्मपराया पुन कदाहाराया स्नेहद्वेषिण्यावातप्रको-पनोक्तान्यासेवमानायागर्भोनवृद्धिंप्राप्नोतिपरिशुष्कत्वात् । सचापिकालान्तरमवतिष्ठतेऽतिमात्रस्पन्दनश्चभवति । तन्तु नागोदरमित्याचक्षते ॥ ५६ ॥

उपवास, व्रत, कर्मपरायण स्त्री जब रूक्ष आदि आहारको करतीहै और चिकनाई नहीं खाती और वायुके कुपित करनेवाले रूक्ष पदार्थोंको सेवन करतीहै तो कुपित हुआ

वायु गर्भको बढने नहीं देता तथा सुखा देताहै। वह सूखाहुआ गर्भ भी बहुतकालतक पेटमें स्थिर रहताहै और अधिक फडकताहै। इस गर्भको नागोदर कहतेहैं ॥ ५६ ॥

नार्य्योस्तयोरुभयोरपिचिकित्सितविशेषमुपदेक्ष्याम ॥ ५७ ॥

अब नागोदर और उपविष्टक गर्भवाली स्त्रियोंकी चिकित्साको कथन करतेहैं ५७॥

उक्तगर्भमें चिकित्सा।

भौतिकजीवनीयबृंहणीयमधुरवातहरसिद्धानासर्पिषामुपयोग । नागोदरेतुयोनिव्यापन्निर्दिष्टपयसामामगर्भाणाञ्चगर्भवृद्धिकराणाञ्चसम्भोजनमेतैरेवसिद्धैश्चघृतादिभिःसुबुभुक्षायामभीक्ष्णयानवाहनापमार्जनावजृम्भणैरुपपादनमिति ॥ ५८ ॥

उपविष्टक गर्भ होनेपर भौतिक अर्थात् गर्भमें पार्थिव आदि गुण बढानेवाले द्रव्य अथवा भूतहर लाक्षादि द्रव्य और जीवनीयगण तथा बृंहणीयगण, मधुरगण और वातहरगणोंसे सिद्धकिया घृत पिलाना चाहिये। नागोदर होजानेपर जिन द्रव्योंसे स्निग्ध होकर वह प्रगट होजाय अर्थात् उस बालकका जन्म होजाय वैसी क्रिया करनी चाहिये। और गर्भके बढानेवाले द्रव्योंसे-सिद्ध कियेहुए दूध तथा घृत हमेशा भूखके समय देने चाहिये। तथा इस नागोदर गर्भवाली स्त्रीको सदैव पालकी आदि सवारीमें बैठाना, स्नानकराना, उत्तम बातोंका सुनाना हितकर होताहै। (जो गर्भ वातकारक कारणोंसे रूक्ष होकर बहुत कालतक अर्थात् ग्यारहव या बारहवें महीनेतक प्रगट न हो उसको नागोदर कहतेहैं) ॥ ५८ ॥

प्रसुप्तगर्भमें चिकित्सा।

यस्या पुनर्गर्भःप्रसुप्तोनस्पन्दतेताञ्श्येनमत्स्यगवयतित्तिरताम्रचूडशिखिनामन्यतमस्यसर्पिष्मतारसेनमाषयूषेणवाप्रभूतसर्पिषामूलकयूषेणवारक्तशालीनामोदनमृदुमधुरशीतंभोजयेत्। तैलाभ्यंगेनास्याश्चाभीक्ष्णमुदरवंक्षणोरुकटिपार्श्वपृष्ठप्रदेशानीषदुष्णेनोपाचरेत् ॥ ५९ ॥

जिस स्त्रीका गर्भ सोयाहुआसा स्थिररहै और फटके नहीं उस स्त्रीको सिकरा-मछरी, रोझ, तीतर, मुर्गा और मोरके मांसरसको घृतयुक्तकर पिलावे अथवा उडदके यूषको घृतयुक्त करके या सलजमका यूष अधिक घीके संयोगसे पिलावे अथवा लाल शालिचावलोंको मिसरीके साथ वा अन्य मधुर शीतल द्रव्योंके साथ भोजनके लिये देवे। तथा किसी उत्तम उष्ण तेलद्वारा पेट, वंक्षण, पसली और पीठको मर्दन करमर्दन मालिश कराया करे ॥ ५९ ॥

उदावर्त्तरुद्धगर्भकी चिकित्सा ।

यस्या.पुनरुदावर्त्तविवन्ध स्यादष्टमेमासेनचानुवासनसाध्यम-न्यतेततस्तस्यास्तद्विकारप्रशमनमुपकल्पयेन्निरूहमुदावर्तोह्युपेक्षित सगर्भसगभागर्भिणीवानिपातयेत् ॥ ६० ॥

यदि आठवें महीनेमें स्त्रीको उदावर्त्तरोगसे बध पडजाय और वह अनुवासनवस्ति द्वारा शान्ति होता न दिखाई दे तो निरूहण वस्ति द्वारा विधिवत् चिकित्साकर्म करे क्योंकि उससमय उदावर्त्तकी चिकित्सा न करनेसे वह उदावर्त्तरोग गर्भको अथवा गर्भसहित गर्भवती स्त्रीको भी नष्टकर डालताहै ॥ ६० ॥

तत्रवीरणशालिषष्टिककुशकाशेक्षुवालिकावेतसपरिव्याधमूला-नांभूतीकानन्ताकाश्मर्य्यपरूपकमधुकमृद्वीकानाञ्चपयसार्द्धो-दकेनोद्गमथ्यरसप्रियालविभीतकमज्जातिलकल्कसम्प्रयुक्तमी-पल्लवणमनत्युष्णनिरूहदद्यात् ॥ ६१ ॥

ऐसे समयमें वीरणतृण, शालि, और षष्टिक चावल, कुशा, काश, इक्षुवालिका, वेतस, व्यूस इन सबकी जड लेकर अथवा अजवायन, सारिवा, कुम्हार वृक्ष, फालसा, मुलहठी, मुनक्का इन सबको बराबरके जलयुक्त दूधमें पकावे फिर उस दूधम चिरोंजी वहेडेकी मज्जा तिलोंका कल्क और वहुत थोडा सवा नमक मिला इससे निरूहण वस्ति देवे ॥ ६१ ॥

व्यपगतविवन्धाश्चैनासुखसलिलपरिषिक्तागीस्थैर्य्यकरमविदा-हिनमाहारभुक्तवतींसायमधुरकसिद्धेनतैलेनानुवासयेन्न्युब्जा-न्त्वेनामास्थापनानुवासनाभ्यामुपचरेत् ॥ ६२ ॥

जब विवध खुलजाय तो उस गर्भवती स्त्रीको सुखोष्ण गर्म जलसे परिसेचनकर शान्तिदायक तथा अविदाही आहारको देवे । और सायकालके समय मधुरगणसे सिद्ध कियेहुए तैलद्वारा अनुवासन कर्म करे । तथा उस गर्भवतीको जब अनुवासन और आस्थापन करे तो औंधे (मूधे) लिटाकर करे। क्योंकि अन्य पुरुषोंके समान सीधी लेटाकर आस्थापनकर्म करनेसे गर्भ हिलजाताहै ॥ ६२ ॥

मृतगर्भका लक्षण ।

यस्या पुनरतिमात्रदोपोपचयाद्वातीक्ष्णोष्णातिमात्रसेवनाद्वा-तमूत्रपुरीषवेगधारणैर्वाविषमाशनशयनस्थानसपीडनैर्वाक्रोध-

शोकेर्ष्यासूयाभयत्रासादिभिर्वापरै कर्मभिरन्त.कुक्षौगभोम्रि-
यते । तस्या.स्तिमितस्तब्धमुदरमाततंशीतमश्मान्तर्गतमि-
वभवत्यस्पन्दनोगर्भ शूलमधिकमुपजायतेनचाव्य.प्रादुर्भव-
न्तियोनिर्नप्रस्रवत्यक्षिणीचास्या.स्रस्तेभवत ताम्यतिव्यथते
भ्रमतेश्वसित्यरतिबहुलाचभवतिनवास्यावेगप्रादुर्भावोयथाय
थावदुपलभ्यतेऽस्येवलक्षणास्त्रियमृतगर्भेयमितिविद्यात् ॥६३॥

गर्भवतीके शरीरमे दोषाका अत्यत सचय होनेसे अथवा अत्यत तीक्ष्ण और गरम द्रव्योंके सेवनसे तथा अधोवात और मलमूत्रके आये वेगाको रोकनेसे एवम् विषम रीतिपर भोजन, शयन और उठने बैठने आदिसे ऊचे नीचे पाव रखनेसे या किसी प्रकार गर्भके सपीडन होनेसे अथवा अत्यत क्रोध, शोक, भय, ईर्षा, असूया और त्रास आदिसे या अन्य किसी दुष्ट कर्मके योगसे गर्भ कुक्षिमेंही मरजाताहै। उसके ये लक्षण है। पेट-स्तिमित, स्तब्ध और विस्तृतसा होजाय और शीतल पडजाय तथा ऐसा प्रतीत हो कि पेटमे पत्थरसा रक्खा है, गर्भ फडके नही अत्यत दर्द हो, पीडा अत्यत हो पर प्रसूत कालसी न हो योनिसे पानीका स्राव हो, दोनों नेत्र शिथिल होजाय गर्भवती स्त्री ग्रस्तसी होजाय, शरीरमें अत्यत व्यथा हो, भ्रांती हो, श्वास अधिक चलनेलगे। व्याकुलता अत्यत वढजाय मल मूत्र आदि वेगके उपस्थित होनेपर भी यथावत् न आसकें। इन लक्षणासे गर्भवतीके गर्भमे बालककी मृत्यु होगई है ऐसा जानना ॥ ६३ ॥

मृतगर्भमे उपाय।

तस्यगर्भशल्यस्यजरायुप्रपातनेकर्मसंशमनमित्याहुरेके । म-
न्त्रादिकमथर्ववेदविहितमित्येके । परिदृष्टकर्मणाशल्यहर्त्रा
हरणमित्येके ॥ ६४ ॥

ऐसे समय किसी २ आचार्यका मत है कि औषधी द्वारा वा अन्य प्रकार जरायुको निकालदेनाही उत्तम उपाय है क्योंकि जरायुके साथही मराहुआ गर्भभी बाहर आजाताहै। कोई आचार्य कहतेहै कि अथर्ववेदके मत्राद्वारा मार्जन करनेमे मराहुआ गर्भ निकलजाता है कोई आचार्य कहतेहैं कि जो वैद्य शस्त्रकर्ममे दृष्टकर्मा (तजुर्बेकार) हो उससे शस्त्रद्वारा जिसप्रकार निकल सके मृतगर्भको शीघ्र निकाल देना चाहिये ॥ ६४ ॥

व्यपगतगर्भशल्यान्तुस्त्रियमामगर्भांसुराशीध्वरिष्टमधुमदिरास-वानामन्यतममग्रेसामर्थ्यत.पाययेत् गर्भकोष्ठविशुद्ध्यर्थमर्त्ति-विस्मरणार्थप्रहर्षणार्थश्च ॥ ६५ ॥

जब उस स्त्रीका मराहुआ गर्भ निकलजाय तो उसको उसी समय सुरा, सीधु, अरिष्ट, मधुनामक मद्य, मदिरा और आसव सामर्थ्यानुसार पिला देवे। उससमय नशेवाली मद्यके पिलादेनेसे उसके गर्भ कोष्ठकी शुद्धि होतीहै और स्त्री दुःखको भूल जातीहै और उसको आनन्द उत्पन्न होजाताहै ॥ ६५ ॥

अत.परबृंहणैर्बलानुरक्षिभिःस्नेहसम्प्रयुक्तैर्यवाग्वादिभिर्विले प्यादिभिर्वातत्कालयोगिभिराहारैरुपाचरेद्दोपधातुक्लेदविशो-पणमात्रतत्कालम् ॥ ६६ ॥

इसके उपरान्त उस स्त्रीको बृंहण बलकी रक्षा करनेवाली स्नेहयुक्त यवागू पिलाना चाहिये। फिर यथाक्रम विलेपी अथवा उस समय जो उचित हो उस रस या आहार-का सेवन कराना चाहिये। जबतक उस स्त्रीके शरीरम दोष और धातुओंके क्लेद उत्पन्न न होजाय तबतक स्निग्ध हलके और बलकारक आहारोंसे उसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ६६ ॥

अतःपरस्नेहपानैर्बस्तिभिराहारविधिभिश्चदीपनीयजीवनीयबृ-हणीयमधुरवातहरसमाख्यातैरुपचारैरुपाचरेत् ॥ ६७ ॥

इसके उपरान्त स्नेहपान द्वारा एव स्नेहनबस्तिद्वारा तथा दीपनीय, जीवनीय, बृंहणीय और मधुर तथा वातनाशक आहार द्वारा उपचार करना चाहिये ॥ ६७ ॥

परिपक्वगर्भशल्याया पुनर्विमुक्तगर्भशल्यायास्तदहरेवस्नेहोप-चार स्यात् ॥ ६८ ॥

यदि गर्भ पूरे दिनोका पूर्णाग होकर मरे तो उस गर्भके निकालनेके अनन्तर उसी दिन स्नेहद्रव्योंसे उपचार करना चाहिये ॥ ६८ ॥

परमतोनिर्विकारमाप्यायमानस्यगर्भस्यमासेमासेकर्मोपदे-क्ष्याम ॥ ६९ ॥

अब इसके उपरात जिसप्रकार गर्भ निर्विकार होकर वृद्धिको प्राप्त हो उस प्रकार प्रथम महीनेमे लेकर महीने ९ जो कर्म करना चाहिये उसकी व्याख्या करतेहै ॥ ६९ ॥

गर्भकी मासपरत्वरक्षणविधि ।

प्रथमेमासेशङ्किताचेद्गर्भमापन्नाक्षीरमनुपस्कृतमात्रावच्छीतं कालेपिबेत्सात्म्यञ्चभोजनंसायप्रातश्चभुञ्जीत ॥ ७० ॥

प्रथम महीनेमें जब स्त्रीको यह प्रतीत होजाय कि गर्भ रहगया तो विना औषधी से केवल दूध मात्र, शीतल उचित मात्रासे पीयाकरे । और प्रातः तथा सायंकाल दोनो समय सात्म्य भोजनको कियाकरे ॥ ७० ॥

द्वितीयेमासेक्षीरमेवचमधुरौषधसिद्धम् । तृतीयेमासेक्षीरमधुसर्पिर्भ्यामुपसंसृज्य । चतुर्थेमासेतुक्षीरनवनीतमक्षमात्रमश्नीयात् । पञ्चमेमासेक्षीरसर्पिः । षष्ठेमासेक्षीरसर्पिर्मधुरौषधसिद्धतदेवसप्तमेमासे ॥ ७१ ॥

दूसरे महीनेमें मधुरगणकी औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीना चाहिये । तीसरे महीनेमें शहद और घृतयुक्त दूध पीना चाहिये । चौथे महीनेमें ताजे दूधमें एकतोला ताजा मक्खन मिला पीना चाहिये । पांचवें महीनेमें घी और दूध मिला पीना चाहिये । छठवें महीनेमें मधुर आदि गणसे सिद्धकिये दूधमें घी मिला पीना चाहिये । और सातवें महीनेमें भी यही करना चाहिये ॥ ७१ ॥

सप्तममासमें अन्य उपचार ।

तत्रगर्भस्यकेशाजायमानामातुर्विदाहजनयन्तीतिस्त्रियोभाषन्ते तन्नेतिभगवानात्रेयः । किन्तुगर्भोत्पीडनाद्वातपित्तश्लेष्माण-उरःप्राप्यविदहन्तिततःकण्डूरुपजायतेकण्डूमूलाचकिक्काशाभिर्भवतितत्रकोलोदकेननवनीतस्यमधुरौषधसिद्धस्यपाणितलमात्रकालेऽस्यैदद्यात । चन्दनमृणालकल्कैश्चास्याःस्तनोदरंविमृद्नीयात । शिरीषधातकीसर्षपमधुकचूर्णैःकुटजार्जकबीजमुस्तहरिद्राकल्कैर्वानिम्बकोलसुरसमञ्जिष्ठाकल्कैर्वा । पृषद्धरिणशशरुधिरयुतयात्रिफलयावाकरवीरकपत्रसिद्धेनवातैलेनाभ्यङ्गः । परिषेकःपुनर्मालतीमधुकसिद्धेनाम्भसाजातकण्डूयाचकण्डूयनवर्जयेत्त्वग्भेदनवैरूप्यपरिहारार्थमशक्यायान्तु कण्डूमुन्मर्दनोद्धर्षणाभ्यापरिहारःस्यात । मधुरमाहारजातंवातहरमल्पमल्पस्नेहलवणमल्पोदकानुपानञ्चभुञ्जीत ॥ ७२ ॥

स्त्रियें कहा करतीहैं कि सातवें महीनेमें गर्भमें बालकको केश उत्पन्न हो जाते है उसके कारण माताके कुक्षिमें दाह उत्पन्न हुआ करताहै । परन्तु भगवान् आत्रेयजी कहतेहैं कि ऐसा नहीं होता । उससमय गर्भके उत्पीडन होनेसे वात, पित्त, कफ वक्षस्थलमें प्राप्त हो दाहको उत्पन्न करतेहैं । इसीलिये उससमय खाजसी भी प्रतीत होतीहै । और उस खाजके होतेही पेटके त्वचाको फाडदेनेवाली किक्कस खाजको अधिकतासे त्वचाका फटना उत्पन्न होताहै । उससमय इस स्त्रीको बेरके क्वाथमें मधुरगणकी औषधियोंको सिद्धकर उन औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ मक्खन दो तोला मात्र समयसमयपर खिलाया करे । चदन और कमलके कल्कको उस स्त्रीके स्तनों तथा पेटपर मालिश करना चाहिये अथवा सिरसका छिलका, धावेके फूल, सरसों और मुलहठीके चूर्णसे सिद्ध किया तैल या कुडा, वनतुलसीके बीज, नागरमोथा और हल्दीके कल्कसे सिद्ध किया हुआ तेल अथवा नीम, बेर, तुलसी और मजीठके कल्कसे सिद्धकिया तैल अथवा पृषतहरिण या खरगोशके रुधिरयुक्त त्रिफलेके कल्कसे या कनेरके पत्तोंसे सिद्ध कियेहुए तेलकी स्तनों और पेटपर मालिश करावे। यदि स्तनोंमें खुजली होय तो उनको खुजलाना नहीं चाहिये । मालतीके फूल और मुलहठीके क्वाथमें स्तनोंको धो डालना चाहिये । उस समय खुजलानेसे पेटकी चमडी फट जाती है तथा त्वचा बिगड जाती है। यदि उस समय खुजलीको सह न सके तो मर्दन और त्वचाको हाथसे घिसे । परन्तु नाखूनोंसे खाज न करे । उस समय मधुर तथा वातनाशक आहारको थोडी चिकनाई मिला खाया करे और नमक बहुत थोडा खावे । तथा जलं भी थोडा २ पीया करे ॥ ७२ ॥

आठवें मासमे गर्भरक्षणविधि ।

अष्टमेतुमासेक्षीरयवागूसर्पिष्मतींकालेकालेपिबेत् । तन्नेतिभद्रकाप्य,पैङ्गल्यावाधोह्यस्यागर्भमागच्छेदिति । अस्त्वत्रपैङ्गल्यावाधइत्याहभगवान्पुनर्वसुरात्रेयोनह्येतदकार्य्यमेवंकुर्वतीह्यारोग्यवलवर्णस्वरसहननसम्पदुपेतंज्ञातीनामपिश्रेष्ठमपत्यं जनयति ॥ ७३ ॥

आठवें महीनेमें दूधमें सिद्धकी हुई यवागूको घृतयुक्तकर समय समयपर पीया करे । इस विषयमें भद्रकाप्य ऋषि कहनेलगे कि यदि गर्भवती स्त्री इस प्रकार पथ्य सेवन करने लगेगी तो उसकी सतान पगुला होगी । यह सुनकर भगवान् पुनर्वसु आत्रेयजी कहनेलगे कि ऐसा नहीं होता बल्कि इसप्रकार पथ्य सेवन करनेसे सतान आरोग्य, बलवर्णयुक्त, स्वरयुक्त, दृढ अंगोंवाली तथा अपने अन्य भाइयोंमें भी श्रेष्ठ सतान उत्पन्न होती है ॥ ७३ ॥

नवममासके गर्भकी रक्षणविधि।

नवमेतुखलुएनामासेमधुरौषधसिद्धेनतैलेनानुवासयेत् । अत-
श्चास्यास्तैलंपिचमिश्रंयोनौप्रणयेद्गर्भस्थानमार्गस्नेहनार्थम् ॥७४॥

नवम महीनेम मधुर द्रव्यासे सिद्धकिये तैल द्वारा इस स्त्रीको अनुवासन करना चाहिये और गर्भमार्गको चिकना करनेके लिये इस तैलका फोहा योनिमे रखना चाहिये ॥ ७४ ॥

यदिदकर्मप्रथममासमुपादायोपदिष्टमानवमान्मासात् । तेन
गर्भिण्यागर्भसमयेगर्भधारणेकुक्षिकटिपार्श्वपृष्ठमृदुभवतिवात
श्चानुलोमः सम्पद्यतेमूत्रपुरीषेचप्रकृतिभूतेसुखेनमार्गमनुपद्ये
तचर्मनखानिचमार्दवमुपयान्तिवलवर्णौचोपचीयेतेपुत्रचेष्टस-
म्पदुपेतसुखिनसुखेनैषाकालेनप्रजायतइति ॥ ७५ ॥

इसप्रकार प्रथम महीनेसे लेकर नवम महीने पर्यन्त जो इस क्रियाका वर्णन किया है इसके करनेसे गर्भवती स्त्रीके कूख, कमर, पसली और पीठ यह नरम रहती है। तथा धारण किया गर्भ सुखपूर्वक पुष्ट होता है । एव वायुका अनुलोम होता है । मल मूत्र-का त्याग ठीक समयपर उचित रीतिसे होजाताहै नख और त्वचा नरम रहती है । बल, वर्णकी वृद्धि होती है । और उत्तम सुन्दर शरीरवाले, बलयुक्त पुत्रको सुखपूर्वक ठीकसमयपर प्रसव करती है ॥ ७५ ॥

सूतिकागारकी विधि।

प्रास्चैवास्यानवमान्मासात्सूतिकागारकारयेदपहृतास्थिशर्करा-
कपालदेशप्रशस्तरूपरसगन्धायाभूमौप्राग्द्वारमुदग्द्वारवा॥७६॥

गर्भको नवम महीना प्रवेश होनेसे प्रथमही सूतिकागार (प्रसूतस्थान) बनाना चाहिये । वह ऐसी उत्तम भूमिम हो जिसम हड्डी, कंकड, ठिकरे आदि न हो तथा रूप, रस, गधयुक्त पवित्र भूमि हो उस भूमिम पूर्व या उत्तरको द्वार रखकर प्रसवके-लिये घर बनावे ॥ ७६ ॥

तत्रबैल्वानांकाष्ठानातिन्दुकेंगुदानाभल्लातकानावारुणानाग्व-
दिराणावा यानिचान्यान्यपिब्राह्मणा शंसेयुरथर्ववेदविदस्त-
द्वसनालेपनाच्छादनापिधानसम्पदुपेतंवास्तुविद्यात्।हृदययो-
गेनाग्निसलिलोलूखलवर्च स्थानस्नानभूमिमहानसमृतुसुखञ्च ७७

उस स्थानमें बिल्व, तेंदु, गोंदनी, भिलावा, वर्णवृक्ष और खैरकी लकडिय तथा अन्य सब प्रकारकी लकडियोंको मगावे । फिर अथर्ववेदको जाननेवाला ब्राह्मण जो २ वस्तुय बतावे उनसबको सचय करे और वस्त्र, आलेपन तथा बिछानेके कपडे और ओढनेके कपडे आदि वस्तुओंको उस घरमें स्थापन करे और जिन २ पदार्थोंकी गर्भवती इच्छा करे अथवा उसके लिये उचित हो उनउनको समयके अनुसार जिस ऋतुमें जैसे द्रव्योंकी आवश्यकता हो वैसे २ द्रव्य, अग्नि, जल, ओखली, मल मूत्रके त्यागनेका स्थान, स्नान करनेका स्थान भोजन बनानेका स्थान इन सबको जिस ऋतुमें जिसप्रकार उचित हो बनावे ॥ ७७ ॥

सूतिकागृहका सामान ।

तत्रसर्पिस्तैलमधुसैन्धवसौवर्चलकाललवणविडङ्गगुडकुष्ठकि-
लिमनागरपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीमण्डूकपर्ण्येलालाङ्गली-
वचाचव्यचित्रकचिरविल्वहिंगुसर्षपलशुनकणकाणिकानीपा-
तसीवल्वजभूर्जा कुलत्थमैरेयसुरासवा सन्निहिता स्यु ॥ ७८ ॥

उस घरमें घी, तेल, शहद, सेंधानमक, सचरनमक, कालानमक, वायविडग, गुड, कुडा, देवदार, साठ पिपलामूल, गजपीपल, मण्डूकपर्णी, इलायची, लागुलीकद, वच, चीता, चव्य, लताकरज, हींग, सरसों, लहसुन, कनकवृक्ष, गहू, कदंब, अलसी, पेठा, भोजपत्र, कुलथी, मरेय सुरा और आसव, इन सबको सग्रहकरके यथास्थान रक्खे ॥ ७८ ॥

तथाश्मानौद्वौद्वेचण्डमुसलेद्वेउलूखलेखरोवृषभश्चद्वौचतीक्ष्णौ
सूचीपिप्पलकौसौवर्णराजतौद्वेशस्त्राणिचतीक्ष्णायसानिद्वौचवि
ल्वमयौपर्य्यङ्कौतैन्दुकैंगुदानिचकाष्ठानिअग्निसन्धुक्षणानिस्त्रि
यश्चबह्व्योबहुश प्रजाता सौहार्दयुक्ता सततमनुरक्ता प्रदक्षि-
णाचारा प्रतिपत्तिकुशला प्रकृतिवत्सलास्त्यक्तविषादा क्लेशस
हिष्णवोऽभिमताब्राह्मणाश्चाथर्ववेदविदोयच्चान्यदपितत्रसमर्थ
मन्येतयच्चब्राह्मणाब्रूयु स्त्रियश्चवृद्धास्ततकार्य्यम् ॥ ७९ ॥

तथा दो पत्थर, दो मूसल, दो उखल, एक गधा एक बैल, दो तीक्ष्ण सुइय, सुवर्ण, चांदीकी, धागेकी गोरी, लोहेके तीक्ष्ण शस्त्र, सोना, चांदी, बिल्वकी लकडीकी बनी चारपाई, तेंदु और इगुदीकी लकडिय आगजगानेके लिये । तिन स्त्रियोंने अनेकवार

प्रसव करायाहो ऐसी हितके रखनेवाली जो गर्भवतीसे अत्यत प्रेम रखतीहो ऐसी स्त्रियें रखनी चाहिये परन्तु वह स्त्रिय बच्चा पैदाकरानेमे अत्यत चतुर, चित्तकी बातको समझलेनेवाली, विषादरहित और स्वभावसेही दयालु, कष्टके सहन करनेवाली होनी चाहिये। तथा अथर्ववेदके जाननेवाले ब्राह्मण तथा अन्य भी जो २ वस्तुयें आवश्यक प्रतीत हो और जिन वस्तुओको वह ब्राह्मण कहे सबको उपस्थित करना चाहिये। जिस २ बातको वृद्धस्त्रिय और वह अथर्ववेदी ब्राह्मण कहे सो उस स्थानमे रखना चाहिये तथा उसीप्रकार करना चाहिये ॥ ७९ ॥

ततःप्रवृत्तेनवमेमासिपुण्येऽहनिप्रशस्तनक्षत्रयोगमुपगतेभगवतिशशिनिकल्याणेकरणेमैत्रेमुहूर्तेशान्तिहुत्वागोब्राह्मणमग्निमुदकश्चादौप्रवेश्यगोभ्यस्तृणोदकमधुलाजाश्चप्रदायब्राह्मणेभ्योऽक्षतान्सुमनसोनान्दीमुखानिचफलानीष्टानिदत्त्वाउदक्पूर्वमासनस्थेभ्योऽभिवाद्यपुनराचम्यस्वस्तिवाचयेत्ततःपुण्याहशब्देनगोब्राह्मणमन्वावर्त्तमानाप्रविशेत्सूतिकागारम् । तत्रस्थाचप्रसवकालप्रतीक्षेत ॥ ८० ॥

फिर नवम महीना प्रवेश होतेही उत्तम, दिन, नक्षत्र, चन्द्रमा और शुभ करण तथा मैत्र मुहूर्तमे शान्तिकर्म कर, गौ, ब्राह्मण, अग्नि और जलके भरेहुए कलशको पहिले प्रवेश कर गौओको घास जल और शहद तथा धानकी खील दे। फिर ब्राह्मणोको चावल और फूल देकर नान्दीमुखके योग्य उत्तम फलोको देकर उत्तर या पूर्वमे आसनोपर बिठाकर प्रणाम करे। और उनके चरणादि प्रक्षालनकर फिर आचमन करे। तदनन्तर स्वस्तिवाचन और पुण्याहवाचनपूर्वक गो ब्राह्मणोको आगेकर सूतिकास्थानमे प्रवेशकरे। फिर उसी स्थानमे रहतीहुई प्रसवकालकी परीक्षा करे ॥ ८० ॥

प्रसवकालके चिह्न।

तस्यास्तुखल्विमानिलिङ्गानिप्रजननकालमभितोभवन्तितद्यथाक्लमोगात्राणाग्लानिराननस्यअक्ष्णोः शैथिल्यविमुक्तबन्धनत्वमिववक्षसःकुक्षेरवस्रंसनमधोगुरुत्ववक्षणवस्तिकटिपार्श्वपृष्ठनिस्तोदोयोनेःप्रस्रवणमनन्नाभिलाषश्चेति । ततोऽनन्तरमावीनाप्रादुर्भावःप्रसेकश्चगर्भोदकस्य ॥ ८१ ॥

प्रसवकालके समय स्त्रीके ये लक्षण होतेहै। जैसे क्लम, अंगोमे ग्लानि, मुख

और नेत्रोंकी शिथिलता, वक्षस्थलके बंधनसे खुलगये प्रतीतहोना, कुक्षिका नीचेकी ओर जाना, नीचेका भाग भारी प्रतीत होना, बिस्ती, वक्षण, कमर, पसवाडे और पीठम चमकके साथ पीडा होना, योनिका स्राव होना, अन्नमें रुचि न होना, इसके अनन्तर प्रसवकी पीडा होना, गर्भका जल निकलने लगना ॥ ८१ ॥

प्रसववेदनामें कर्त्तव्यकर्म ।

आवीप्रादुर्भावेतुभूमौशयनंविदध्यान्मृद्वास्तरणोपपन्नंतदध्यासीनांताततः समन्ततः परिवार्य्ययथोक्तगुणाः स्त्रियःपर्य्युपासीरन्नाश्वासयन्त्योवाग्भिर्ग्राहिणीभिरुपदिष्टवदर्थाभिधायिनीभिः ॥ ८२ ॥

प्रसवकी पीडा उत्पन्न होतेही गर्भवती स्त्रीको पृथ्वीपर नरम बिछीहुई शय्यापर लटजाना चाहिये और योग्य गुणोंवाली जिनका पहिले वर्णन किया जा चुकाहै उन सब स्त्रियोंको उसके चारोंओर बैठकर मीठे १ वाक्योंसे धैर्य देतेहुए उसके चित्तको शान्तकरते रहना चाहिये ॥ ८२ ॥

साचेदावीभिःसंक्लिश्यमानानप्रजायेतार्थैनांब्रूयादुत्तिष्ठमुसलमन्यतरद्गृह्णीष्वानेनैतदुलूखलधान्यपूर्णमुहुर्मुहुरभिजहिमुहुर्मुहुरवजृम्भस्वचंक्रमस्वचान्तरान्तराइत्येवमुपदिशन्त्येके॥८३॥

कोई कहतेहैं कि यदि वह गर्भवती प्रसववेदनासे पीडित होतेहुए भी प्रसव न करे तो उसको कहनाचाहिये कि तू उठकर बैठजा और दो मूसल या एक मूसल लेकर ऊखलीमें भरेहुए धानोंको कूट और वारंवार हाथपावोंको हिला, वारंवार जमाई ले, इधरउधर फिर ॥ ८३ ॥

आत्रेयजीका मत ।

तन्नेत्याहभगवानात्रेयः । दारुणव्यायामवर्जनंहिगर्भिण्याः सततमुपदिश्यते । विशेषतश्चप्रजननकालेप्रचलितसर्वधातुदोषाया सुकुमार्य्यानार्य्यामुसलव्यायामसमीरितोवायुरन्तरं लब्ध्वाप्राणान्हिंस्याद्दुष्प्रतीकारतमाहितस्मिन्कालेविशेषेणभवतिगर्भिणी । तस्मान्मुसलग्रहणपरिहार्य्यमुपयोमन्यन्ते जृम्भणचंक्रमणञ्चपुनरनुष्ठेयमिति ॥ ८४ ॥

इसपर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि ऐसा कभी नहीं करना चाहिये । गर्भवती

स्त्रीको दारुण परिश्रम करना किसीकालमें भी उचित नहीं है- और विशेषकर प्रसवकालमें तो सब धातु और वातादि दोष शीघ्रही प्रचलित होजातेहैं । यदि सुकुमार स्त्री ऊखलमें धान कूटने लगेगी तो इस परिश्रमसे कुपितहुआ वायु छिद्रको प्राप्तहो प्राणोंको नष्टकर देताहै और यह समय भी ऐसा होताहै कि चिकित्सा करनेमें बडीभारी कठिनाई पडतीहै । उससमय किसीप्रकारका उपद्रव होजानेसे उसकी शान्ति नहीं होती । इसलिये ऋषिलोग मूसल लेकर धान कूटना उचित नहीं समझते किन्तु जँभाईलेना और इधर उधर टहलना यह क्रम अच्छा प्रतीत होताहै ॥ ८४ ॥

प्रसवकालमे औषध ।

अथास्यैदद्यात्कुष्ठैलालाङ्गलिकीवचाचित्रकचिरविल्वचूर्णमुपघ्रातुंसातन्मुहुर्मुहुरुपजिघ्रेत् । तथाभूर्जपत्रधूमशिंशपासारधूम तस्याश्चान्तरान्तरा । कटिपार्श्वपृष्ठसक्थिदेशादीषदुष्णेनतैलेनाभ्यज्यानुसुखमत्रमृद्नीयादित्यनेनतुकर्मणागर्भोऽवाक्प्रतिपद्यते । सयदाजानीयाद्विमुच्यहृदयमुदरमस्यास्त्वाविशतिवस्तिशिरोऽवगृह्णातित्वरयन्तिएनामाव्य.परिवर्त्ततेअस्याअवाग्गर्भइत्यस्यामवस्थायापर्य्यङ्कमेनामारोप्यप्रवाहितमुपक्रमेत कर्णेचास्यामन्त्रमिममनुकूलास्त्रीजपेत् ॥ ८५ ॥

ऐसे समय गर्भवती स्त्रीको कूट, इलायची, कलिहारी, वच, चित्रक और करंजेका चूर्णकर वारवार सुघाना चाहिये । तथा भोजपत्रकी और शीशमकी गोंदकी धूनी थोडे थोडे देरके वाद योनिमें देनी चाहिये । तथा कमर दोना पसवाडे, पीठ और नितम्ब आदि स्थानोंको सुखोष्ण तैल लगाकर धीरे २ मालिश करना चाहिये । ऐसा करनेसे गर्भकी नीचेकी ओर प्रवृत्ति होजातीहै । जब ऐसा प्रतीत हो कि गर्भ हृदयकी ओरसे पेटमें आय गयाहै और योनिद्वारमें पहुचनाही चाहताहै और प्रसवकी वेदना अत्यत शीघ्र शीघ्र होने लगतीहै तव जानना कि इसका गर्भ अधोमुख होकर बाहर आनाही चाहताहै तो इसको शय्यापर बिठाकर कहे कि तू अब भीतरसे गर्भको बाहर ढकेलनेका यत्न कर और इधर उधरसे मालिशपूर्वक नरम हाथसे उस गर्भके बाहर निकालनेका यत्न कराना चाहिये । जब देखे कि अब बालक प्रगट होनेही वाला है तो योग्य स्त्री उसके कानमें यह मत्र पढे ॥ ८५ ॥

प्रसवकालका मत्र ।

(क्षितिर्जलवियत्तेजोवायुर्विष्णु प्रजापति. । सगर्भास्त्वासदा

पान्तुवैशल्यञ्चदिशन्तुते ॥ ८६ ॥ प्रसुवत्वमविक्लिष्टमविक्लिष्टा-
शुभानने ।। कार्तिकेयद्युतिंपुत्रकार्त्तिकेयाभिरक्षितमिति)॥८७॥

८६ और ८७ का श्लोक मन्त्र है। इस मन्त्रका यह अर्थ है । पृथ्वी, जल, आकाश, तेज, वायु, विष्णु, और प्रजापति हे गर्भवती स्त्री ! यह तुम्हारी सदा रक्षाकरें। और तुम्हारे गर्भमें किसी प्रकारका उपद्रव न होने देवें। हे शुभानने ! तू क्लेशरहित पुत्रको उत्पन्न कर तथा स्वामी कातिकके समान कान्तिवाला और स्वामीकार्तिकसे अभि रक्षित पुत्रको प्रगट कर ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

ताश्चैनायथोक्तगुणा स्त्रियोऽनुशिष्युरनागतावीर्माप्रवाहिष्ठा
याह्यनागतावी प्रवाहयतेव्यर्थमेवास्यास्तत्कर्मभवति । प्रजा-
चास्याविकृतिमापन्नाचश्वासकासशोपप्लीहप्रसक्तावाभवतिय-
थाहिक्षवथूद्गारवातमूत्रपुरीषवेगान्प्रयतमानोऽप्यप्राप्तकालान्न
लभतेकृच्छ्रेणव्याप्यवाप्नोतितथानागतकालगर्भमपिप्रवाहमा-
णायथाचैषामेवक्षवथ्वादीनासन्धारणमुपघातायोपपद्यतेतथा
प्राप्तकालस्यगर्भस्याप्रवहणमिति । सायथानिर्देशकुरुष्वेतिव-
क्तव्यास्यात् । तथाचकुर्वतीशनैः शनैः पूर्वंप्रवाहेततोऽनन्तर-
बलवत्तरमितितस्याश्चप्रवाहमाणायाःस्त्रियःशब्दकुर्य्युः प्रजाता-
प्रजाताधन्यधन्यपुत्रमितितथास्याहर्षेणाप्यायन्तेप्राणा ॥८८॥

यदि उससमय बालक प्रगट न हो तो यथोक्त गुण सपन्न स्त्रिय इस गर्भवती स्त्रीको कहें कि यदि इससमय तुम्हारे प्रसवकी पीडा न होती हो तो अधिक जोर लगाकर ढकेलनेमें यत्न मत कर । क्योंकि प्रसव वेदनाके विनाही जो स्त्री गर्भको ढकेलनेके लिये यत्न करतीहै तो वह इसका यत्न व्यर्थही जाताहै । और इसकी संतान भी विकृतिको प्राप्त होजातीहै । अथवा उस स्त्रीको विकृति होकर श्वास, खांसी, राजयक्ष्मा और प्लीहा रोग उत्पन्न होजातेहैं । जैसे—छींक, डकार, पात, मूत्र, पुरीष इनका वेग यत्न करनेपर भी विना समय नहीं होसकता अर्थात् विना समय पेटको कितना ही दवा दिया जाये परन्तु कभी मल, मूत्र नहीं आता उसीप्रकार विना प्रसवके समय उपस्थित होनेके कितनेही जोरसे प्रसव होनेका यत्न किया जाय परन्तु वह अपने समयके विना प्रगट नहीं होता । वैसेही आयेहुए छींक आदि वेगोंको रोकनेसे जिस प्रकार रोगादि उत्पन्न होतेहैं उसी प्रकार प्रसवकाल प्राप्त

होनेपर उसको निकालनेका यत्न न करनेसे भयकर परिणाम होताहै। समीपवाली स्त्रियोंको गर्भवतीसे कहना चाहिये कि जिसतरह हम कहें उसीप्रकार तुम करना। और उस गर्भवतीको भी उनकी आज्ञानुसार करना चाहिये। फिर प्रसव वेदना उपस्थित होनेपर उसको धीरे २ बालक बाहरको ढकेलना चाहिये। जब बालक प्रकट होतेहुए उसके शरीरमें बालकके प्रगट होनेकी योनिमें पीडा होनेसे व्याकुलता उत्पन्न होनेलगे तो उससमय उसकी समीपवाली सब स्त्रियें कहें कि धन्य है धन्य है लडका पैदा हुआहै। लडका पैदा हुआहै। ऐसा कहनेसे उस स्त्रीके शरीरमें हर्ष उत्पन्न होकर प्राण प्रफुल्लित होजातेहैं ॥ ८८ ॥

प्रसेक उपरांत कर्म।

यदाचप्रजातास्यात्तदैनामवेक्षेतकाचिदस्याअमराप्रपन्नावाप्रपन्नानेति । तस्याश्चेदमरानप्रपन्नास्यादथैनामन्यतमास्त्रीदक्षिणेनपाणिनानाभेरुपरिष्टाद्बलवन्निपीड्यसव्येनपाणिनापृष्ठतउपसंगृह्यसुनिर्धूतनिर्धूनुयात् । अथास्या पादपार्ष्ण्योश्रोणी माकोटयेदस्याःस्फिचावुपसगृह्यसुपीडितपीडयेत् । अथास्या बालवेण्याकण्ठताल्वपरिमृशेत् ॥ ८९ ॥

बालकका जन्म होनेके अनन्तर देखे कि अमरा अर्थात् जेर निकल गई है कि नहीं यदि अमरा न निकली हो तो एक स्त्री प्रसूताकी नाभिके ऊपर दहिना हाथ रखकर उससे नाभिको दबावे और बायें हाथसे पीठको बलपूर्वक दबावे और हिलावे फिर पावकी एडियोंको नाभिके समीप लेजाकर उसके दोनों नितम्बोंको अच्छी तरहसे पीडन करे। फिर उस वेणीको (गूथको) मुखमें प्रवेशकरके कठ और तालु पर फेरे ॥ ८९ ॥

भूर्जपत्रकाचमणिसर्पनिर्मोकैश्चास्यायोनिंधूपयेत् । कुष्ठतालीसकल्कवल्वजयूपेमैरेयसुरामण्डेवाकौलत्थेवामण्डूकपर्णिपिप्पलीकाथेवासह्लाव्यपाययेदेनाम् ॥ ९० ॥

फिर भोजपत्र, काच, मणि और सापकी काचुलीकी इसकी योनिमें धूनी दव तथा बल्वज घूर्टीके जडका क्वाथ, मैरेय मद्य, सुरामण्ड, कुल्थीका यूष अथवा पीपलके क्वाथके साथ कुष्ठ और तालीशपत्रके कल्कको मिलाकर पीनेके लिये देवे ॥ ९० ॥

अमरानिकालनेकी विधि।

तथासूक्ष्मैलांकिलिमकुष्ठनागरविडङ्गकालविडचव्यपिप्पलीचित्रकोपकुञ्चिकाकल्कखरवृषभस्यजरतोवादक्षिणकर्णमुत्कृत्यदृषदिजर्जरीकृत्यवल्वजयूषादीनामन्यतममस्मिन्प्रक्षिप्यमुहूर्त्तस्थितमुद्धृत्यतदाप्लावनंपाययेदेनाम् ॥ ९१ ॥

तथा छोटी इलायची, देवदारु, कूट, सोंठ ,बायविडग, विडनामक, चव्य, पीपल, चित्रक और कालाजीरा इनके कल्कको विल्वजतृणके क्वाथ आदिमें मिलाकर पिलावे। और वृद्ध खर तथा वृषभके दक्षिण कर्णको जरासा काटकर पत्थरके ऊपर जरजरी वना वल्वज आदि क्वाथमें दो घडी भिगोरक्खे फिर वह क्वाथ छानकर इस प्रसूतस्त्रीको पिलाना चाहिये ॥ ९१ ॥

शतपुष्पाकुष्ठमदनहिंगुसिद्धस्यचैनातैलस्यपिचुंग्राहयेदतश्चैनानुवासयेदेतैरेवचाप्लावनै फलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकुटजकृतवेधनहस्तिपर्ण्युपहितैरास्थापयेत् ॥ ९२ ॥

फिर सौंफ, कूट, मैनफल, हींग इनमे सिद्धकिया तिलोंके तैलका फोहा प्रसूताकी योनिमें रक्खे। इसके उपरात मैनफल, नागरमोथा, कड़ुवी तुवी, कुडा, कडवी तोरी और हस्तिपर्णी इन सवके कल्कको उपरोक्त वल्वज आदिके क्वाथमें मिला आस्थापन बस्ति करे ॥ ९२ ॥

तदास्थापनमस्याहिसहवातमूत्रपुरीषैर्निर्हरत्यमरामासक्तावायोरनुलोमगमनात्। अमराहिवातमूत्रपुरीषाण्यन्यानिचान्तर्वहिर्मुखानिसृजन्ति ॥ ९३ ॥

उस आस्थापन बस्तिके करनेसे वायु अनुलोम होकर वात, मूत्र और मल साफ निकलतेहैं और साथही अमरा भी निकल जातीहै। क्योंकि वात, मूत्र, पुरीष तथा अन्य भी सब अमराके साथही खिंचेहुए होनेसे अन्तर्मुख और वहिर्मुख होतेहैं। आस्थापन द्वारा पुरीष आदिकोंके वहिर्मुख होनेसे अमरा (आवल) भी बाहर निकल आतीहै ॥ ९३ ॥

कुमारके कर्म।

तस्यान्तुखल्वमराया.प्रपतनार्थेखल्वेवमेवकर्माणिक्रियमाणे जातमात्रेऽस्यैवकुमारस्यकार्य्याण्येतानिकर्माणिभवन्तितद्य-

था–अश्मनो संघट्टनंकर्णयोर्मूलेशीतोदकेनोष्णोदकेनवामुख
परिषेकः । तथासंक्लेशविहतान्प्राणान्पुनर्लभेतकृष्णकपालि-
काशूर्पेणचैनमभिनिष्पुणीयाद्यद्येष्टस्याद्यावत्प्राणानांप्रत्याग-
मनात्तत्तत्सर्वमेवकुर्य्युः ॥ ९४ ॥

यह सब कर्म तो अमरा (आवल) गिरानेके लिये किये जातेहैं । अब बालकके सर्वधर्म जो कर्म करने चाहिये उनको वर्णन करतेहैं । जैसे– जब बालक उत्पन्न हो तो उस बालकके कानके समीप दो पत्थरोंको बजाना और शीतल अथवा गरम जलसे धीरेधीरे मुखको धोना और मुखपर छींटे देना जिससे प्रसवसमयके कष्टसे उत्पन्नहुई मूर्च्छा दूर होकर बालकके प्राण प्रफुल्लित हों अर्थात् शरीरमें फिर आजाय । फिर एक काले बडे शरावसे अथवा छाजसे इस बालकको धीरे २ हवा करे तथा बालककी मूर्च्छा दूर करनेके लिये और उनके शरीरमें प्राणोंका आगमन होनेके लिये जो २ उपाय उचित हों करने चाहिये ॥ ९४ ॥

ततःप्रत्यागतप्राणंप्रकृतिभूतमभिसमीक्ष्यस्नानोदकग्रहणाभ्या
मुपपादयेत् । अथास्यताल्वोष्ठकण्ठजिह्वाप्रमार्जनमारभेतअगु-
ल्यासुपरिलिखितनखयासुप्रक्षालितोपधानकार्पासपिचुमत्या
प्रथमप्रमार्जितस्यास्यचशिरस्तालुकार्पासपिचुनास्नेहगर्भेणप्र-
तिच्छादयेत् । ततोऽस्यानन्तरंकार्य्यंसैन्धवोपहितेनसर्पिषा
प्रच्छर्दनम् ॥ ९५ ॥

जब बालक होशमें आकर रोनेलगे और स्वस्थवृत्ति होजाय फिर उसको स्नान करावे तथा हाथ आदिसे स्वच्छ करे । इसके उपरान्त कोई स्त्री हाथकी अंगुलीको साफकरके उस अंगुलीका नख उत्तमतासे कटाहोना चाहिये फिर उस अंगुलीपर उत्तम साफ धुनीहुई रुईके फोहेको लपेट उस बालकके तालू, होठ और कण्ठको साफ करे । फिर रुईके फोहेको तेलमें भिगोकर बालकके तालुवेपर रक्खे । फिर इसके उपरान्त सेंधानमक और घीसे बालकको वमन करावे ॥ ९५ ॥

नालच्छेदन विधि ।

नाड्यास्तस्याः कल्पनविधिमुपदेक्ष्यामः । नाभिबन्धनात्प्रभृ
तिहित्वाष्टाङ्गुलमभिज्ञानंकृत्वाछेदनावकाशस्यद्वयोरन्तरयो
शनैर्गृहीत्वातीक्ष्णेनरौक्मराजतायसानांछेदनानामन्यतमेनो-

द्धधारेणछेदयेत्ता ग्रेसूत्रेणोपनिबध्यकण्ठेचास्यशिथिलमवसृजेत् ॥ ९६ ॥

अब बालककी नाल काटनेकी विधि कथन करतेहैं। नाभिसे आठ अंगुल लम्बी छोडकर जिस स्थानपरसे काटनी हो उसके दोनों ओर ऊपर और नीचेसे धागेके साथ बाधदेना चाहिये। फिर उन दोनों बधनोंके बीचमेंसे सोना,चादी अथवा लोहेकी तीक्ष्ण (पैनी) धारवाली छूरीसे नालको काटदेना चाहिये। फिर जो नाल नाभिसे आठ अगुल लगीहुई है उसको सूतके डोरेसे बाधकर बालकके गलेमें इसप्रकार ढीली बाधदेनी चाहिये जिसस वह खिचे नहीं और डोरा भी ऐसी युक्तिसे और नरम बाधना चाहिये कि जिसमे उस बालकके नरम शरीरमें कहीं अपना असर न दिखावे॥९६॥

नाभिपाकका यत्न।

तस्यचेन्नाभिःपच्येत्तालोध्रमधुकप्रियंगुदारुहरिद्राकल्कसिद्धेन तैलेनाभ्यञ्ज्यादेषामेवतैलौषधानाञ्चूर्णेनावचूर्णयेदेषनाडीकल्पनविधिरुक्त सम्यक् ॥ ९७ ॥

यदि बालककी नाभि पकजाय तो पठानी लोध, मुलहठी, प्रियगु, हल्दी और दारुहल्दी इनके कल्क द्वारा सिद्ध कियाहुआ तैल उस नाभिपर लगाना चाहिये। अथवा इन उपरोक्त औषधियोंके बारीक चूर्णको तैलमें मिलाकर नाभिपर लगादेना चाहिये। इसप्रकार नालका कल्पनविधि कथन की गई है ॥ ९७ ॥

असम्यक्कल्पेनहिनाड्या आयामव्यायामोत्तुण्डितपिण्डालिकाविनामिकाविजृम्भिकाबाधेभ्योभयम् ॥ ९८ ॥ तत्राविदाहिभिर्वातपित्तप्रशमनैरभ्यङ्गोत्सादनपरिषेकैःसर्पिर्भिश्चोपक्रमेतगुरुलाघवमभिसमीक्ष्यकुमारस्य ॥ ९९ ॥

यदि नालवेका उत्तमप्रकारसे छेदन न कियाजायगा तो उस बालकको आयामके व्यायाम उत्तुण्डिका, पिण्डालिका, विनामिका और विजृम्भिका नामक व्याधियोंके उत्पन्न होनेका भय हे ॥ ९८ ॥ इनके उत्पन्न होनेपर इन व्याधियोंकी लघुता, गुरुता आदि देखकर अविदाही वातपित्तनाशक, उत्सादन और परिषेकों द्वारा तथा सिद्ध घृत द्वारा चिकित्सा करना चाहिये। (इसका विशेष वर्णन चिकित्सास्थान १३ वें अध्यायम देखना) ॥ ९९ ॥

जातकर्मविधि।

प्रागतोजातकर्मकार्य्यंततोमधुसर्पिषीमन्त्रोपमन्त्रिते

प्राशितुमस्मैदद्यात् । स्तनमतऊर्द्ध्वमनेनैवविधिनादक्षिणंपातुपु-
रस्तात्प्रयच्छेत् । अथात.शीर्षत स्थापयेदुदकुम्भमन्त्रोपम-
न्त्रितम् ॥ १०० ॥

प्रथम बालकका जातकर्म करना चाहिये । वेदोक्त मत्रोंद्वारा मत्रित किया-
हुआ घृत और मधु विषमभाग मिलाकर बालकको चटाना चाहिये । इसके उपरान्त
इसी विधिसे पहिले दाहिना स्तन पीनेके लिये देना चाहिये । फिर उसके सिरके समीप
मंत्रोंसे मत्रित किया जलका कलश रखना चाहिये ॥ १०० ॥

रक्षाविधि ।

अथास्यरक्षाविदध्यादादानीखदिरकर्कन्धूपीलुपरूपकशाखाभिर-
स्यागृहभिपक्समन्तत.परिवारयेत् । सर्वतश्चसूतिकागारस्यसर्षपा
तसीतण्डुलकणकणिका प्रकिरेत् । तथातण्डुलबलिमङ्गलहोम सत
तमुभयकालक्रियतेप्राङ्नामकर्मणोद्वारेचमुसलमनुतिरश्चीनन्य-
स्तंकुर्य्यात् । वचाकुष्ठक्षौमकहिंगुसर्षपातसीलशुनकणकणिकाना
रक्षोघ्नसमाख्यातानाञ्चऔषधीनापोट्टलिकाबद्धासूतिकागारस्यो-
त्तरदेहल्यामासृजेत् । तथासूतिकाया कण्ठेसपुत्राया स्थाल्युदककु-
म्भपर्य्यङ्केष्वपितथैवचद्वयोर्द्वारपक्षयो.सकणकुम्भकेन्धनाग्निस्ति-
न्दुककाष्ठेन्धनश्चाग्निःसूतिकागारस्याभ्यन्तरतोनित्यस्यात् । स्त्रि
यश्चैनायथोक्तगुणा.सुहृदश्चानुजागृयुर्दशाहद्वादशाहवानुपरतप्र-
दानमङ्गलाशी.स्तुतिगीतवादित्रमन्नपानविशदमनुरक्तप्रहृष्टजन-
सम्पूर्णतद्वेश्मकार्य्यम् । ब्राह्मणश्चाथर्ववेदवित्सततमुभयकालशा-
न्तिजुहुयात्स्वस्त्ययनार्थंसुकुमारस्यतथासूतिकायाइत्येतद्रक्षावि-
धानमुक्तम् ॥ १०१ ॥

इसके उपरात इस बालककी रक्षा करे । उस रक्षाविधिका वर्णन करते हैं । जैसे-
आदानी (घोषकलता) खैर, बेर, पीलू, फालसा इन सब वृक्षोंकी शाखाओंको घरके
चारों ओर लटका देवे । और उस प्रसूत घरमें सफेद सरसों, अलसी और चावलोंके
दाने बखेरदेवे । प्रात.काल और सायकाल दोनों समय चावलोंका बलिदान और
मगलकर्म, हवन, आदि नित्यप्रति करना चाहिये । तथा नामकरण सस्कार होनेसे

प्रथम द्वारमें एक लोहेका मूसल टेढाकर रखदेना चाहिये। और वच, कूट, अजवायन, हींग, सफेद सरसों, अलसी, लहसुन, चावल इनसबकी पोटली बांधकर तथा भूतादिनाशक औषधियोंकी पोटली बांधकर प्रसूतघरके उत्तरके द्वारकी देहलीपर रख देना चाहिये। या चौकठमें बांधकर लटका देना चाहिये। इसीप्रकार इन भूतनाशक द्रव्योंकी छोटी२ पोटली बना प्रसूता स्त्री और बालकके गलेसे बांधदेना चाहिये। एवं प्रसूताके भोजनकरनेके पात्रमें और जलपीनेके घटमें तथा चारपाईमें और दोनों ओरके किवाडोंमें भी बांधनी चाहिये। इस प्रसूताके घरमें सरसों आदिके कणके, चावल, जलका घडा, लकडियें, अग्नि, तेंदुकी लकडीसे प्रज्वलित हुई अग्नि सदैव रखनीचाहिये। और यथोक्तगुणसंपन्न तथा इससे स्नेह रखनेवाली स्त्रियें और सुहृज्जन इसकी सबप्रकारसे सेवामें सावधानीसे लगे रहें। इसप्रकार दश बारह दिन व्यतीत करना चाहिये। इसके अनंतर भी दान देना, मंगलकर्म, आशीर्वाद लेना, वेदध्वनि, गीत और बाजे आदि शुभकर्मोंको करतेरहना चाहिये। अथर्ववेदके जाननेवाले ब्राह्मण दोनों समय इस बालककी रक्षाके लिये और प्रसूताकी रक्षाके लिये दोनों समय कल्याणकारी शान्तिपाठ और होमादिक किया करें। इस प्रकार रक्षाविधिका कथन कियागया ॥ १०१ ॥

प्रसूतिकाका आहारविहार वर्णन।

सूतिकान्तुखलुबुभुक्षितांविदित्वास्नेहंपाययेत्प्रथमंपरमयाशक्त्या सर्पिस्तैलवसामज्ज्ञानंवासात्म्यीभावमभिसमीक्ष्यभिषक्। पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरचूर्णसहितंस्नेहंपीतवत्याश्चसर्पिस्तैलाभ्यामभ्यज्यवेष्टयेदुदरंमहतावाससातथातस्यानवायुरुदरेविविकृतिमुत्पादयत्यनवकाशत्वात्। जीर्णेतुस्नेहेपिप्पल्यादिभिरेव सिद्धांयवागूंसुस्निग्धांद्रवांमात्रशःपाययेतोभयकालञ्चोष्णोदकेनपरिषेचयेत्प्राक्स्नेहयवागूपानाभ्याम्। एवंपञ्चरात्रंसप्तरात्रंवानुपाल्यततःक्रमेणाप्ययेत्स्वस्थवृत्तमेतत्सूतिकायाः ॥ १०२ ॥

प्रसूता स्त्रीको जिससमय क्षुधा लगे तो उसको उसकी सामर्थ्यानुसार उत्तम मात्रासे स्नेहपान करावे। और उसका सात्म्य विचार करके जिस देशमें उसकेलिये जो हितकारी हो सो घृत तेल अथवा वसा या मज्जा पान करावे। तथा पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ इनका चूर्ण मिलाकर स्नेहपान कराना चाहिये। और उस स्त्रीके पेटपर घृत और तैल दोनों मिलाकर चोपड देवे। इसके उपरान्त पेटपर कोई

लम्बा कपडा लपेट देवे। ऐसा करनेसे उसके पेटमें वायु प्रवेश होकर अवकाश न मिलनेसे विकार नहीं करसकता। जब स्नेहपान कियाहुआ जीर्ण होजाय फिर पीपल, पिपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ यह मिलाकर सिद्ध कीहुई चिकनी यवागू पतलीसी बनाकर मात्रानुसार दोनों समय पीनेको देवे। स्नेह और यवागू पान करनेके पहिलेही प्रसूता स्त्रीको गर्मजलसे परिषेक करादेना चाहिये। फिर पाच या सात रात्रिपर्यन्त इसी नियमको पालन करे और फिर क्रमसे इसको पुष्ट करताजाय। यह प्रसूताके स्वास्थ्य अर्थात् तन्दुरुस्त अवस्थाके क्रमका वर्णन कियाहै ॥ १०२ ॥

प्रसूताका रोगावस्थामे उपाय।

तस्यास्तुखलुयोव्याधिरुत्पद्यतेसकृच्छ्रसाध्योभवत्यसाध्योवा। गर्भवृद्धिक्षयितशिथिलसर्वशरीरधातुत्वात्प्रवाहणवेदनाक्लेदनरक्तनि:सृतिविशेषशून्यशरीरत्वाच्चतस्मात्तायथोक्तेनविधिनोपचरेद्भौतिकजीवनीयबृंहणीयमधुरवातहरसिद्धैरभ्यङ्गोत्सादनपरिषेकावगाहनान्नपानविधिभिर्विशेषतश्चोपचरेद्विशेषतोहिशून्यशरीरा:स्त्रिय:प्रजाताभवन्ति ॥ १०३ ॥

यदि प्रसूतास्त्रीको किसीप्रकारकी व्याधि उत्पन्न होजाय तो वह व्याधि कष्ट साध्य अथवा असाध्य होजातीहै। क्योंकि उससमय गर्भके बढनेके कारण स्त्रीका शरीर और सपूर्ण धातुयें क्षीण और शिथिल होतीहै और प्रसवके समय प्रसूतकी पीडा और शरीरसे क्लेद और रक्तके निकलजानेसे शरीर और भी विशेषरूपसे शून्य होजाताहै। इसलिये सावधान होकर प्रसूतके समय पूर्वोक्त विधिका पालन करे। और विशेषकर भूतनाशकगण, जीवनीयगण, बृंहणीयगण और वातनाशक द्रव्योंसे सिद्धकिये तैलकी मालिश, उत्सादन, परिषेचन अवगाहन और अन्नपानोंका उपयोग करे। क्योंकि प्रसवहोनेसे स्त्रियोंका शरीर विशेषरूपसे शून्य (खाली) होताहै ॥ १०३ ॥

बालकहोनेपर दशमदिनकी विधि।

दशम्यांनिश्यतीतायांसपुत्रास्त्रीसर्वगन्धौषधैर्गौरसर्षपलोध्रैश्चस्नातालघ्वहतवस्त्रपरिधायपवित्रेष्टलघुविचित्रभूषणवतीसस्पृश्यमङ्गलान्युचितामर्चयित्वाचदेवतांशिखिन शुक्लवाससोव्यङ्गांश्चब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयित्वाकुमारमहतेनशुचिवाससाच्छादयेत्। प्राक्शिरसमुदक्शिरसंवासवेश्यदेवतापूर्वंद्विजातिभ्य:प्रणमतीत्युक्त्वा

कुमारस्यपिताद्वेनामनीकारयेत्नाक्षत्रिकनामाभिप्रायिकञ्च। तत्रा-भिप्रायिकंनामघोषवदाद्यन्तस्थान्तमूष्मान्तञ्चवृद्धंत्रिपुरुषान्तर-मनवप्रतिष्ठितम्। नाक्षत्रिकन्तुनक्षत्रदेवतासंयुक्तंकृतंद्वयक्षरचतु-रक्षरवा ॥ १०४ ॥

दशरात्रि व्यतीत होनेके अनन्तर ग्यारहवें दिन प्रसूता स्त्री और उस बालकको सर्वौषधी तथा सर्वगंध, सफेद सरसों और पठानी लोध इनसबका कल्कशरीरमें लगा फिर उष्णजलसे स्नान करावे। तदनतर स्वच्छ, हल्के और नये वस्त्रोको धारणकरके मंगलद्रव्योंका स्पर्श करावे। और इष्टदेवताओंका पूजन करावे। फिर शिखासूत्र धारणकिये श्वेत वस्त्रोंवाले सर्वांगसंपन्न योग्य ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करावे तथा उस बालकको निर्मल कोमल नवीन सफेद वस्त्र धारणकरावे। फिर उस बालकको पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुखकर लेटादेवे। फिर उस बालकका पिता प्रथम देवता और ब्राह्मणाको प्रणाम करके उस लडकेके नक्षत्र संबंधी और अपना इच्छित दो नाम रक्खे। उनमें बोलनेका अर्थात् अपनी इच्छानुसार जो नाम रक्खा जाय उस नामके आदि और अन्तमें क्रमसे घोषवान् और अन्तस्थ अक्षर होने चाहिये। अथवा अन्तमें ऊष्मा अक्षर होना चाहिये। पुत्रका नाम रखते समय अपने पिता, पितामह आदि तीन पीढ़ीके नाम बचाकर और अपने गुरु आदिका नाम बचा और कोई नाम रखना चाहिये। वह नाम भी वर्तमान समयका कल्पना किया न होना चाहिये किन्तु पुराने समयके देवता या ऋषियोंकासा नाम होना चाहिये। तथा नाक्षत्रिक अर्थात जन्म नक्षत्रके चरणगत अक्षरसे जो नाम रक्खाजाय वह दो अक्षरोंवाला अथवा चार अक्षरोंवाला होना चाहिये ॥ १०४ ॥

कृतेचनामकर्मणिकुमारपरीक्षितुमुपक्रमेदायुप प्रमाणज्ञानहेतोः। तत्रेमानिआयुष्मताकुमाराणालक्षणानिभवन्ति। तद्यथा—एकैक-जामृदवोऽल्पा स्निग्धा सुबद्धमूला कृष्णा केशा प्रशस्यंते। स्थिरा-बहलात्वक्प्रत्याकृतिसुसम्पन्नमीषत्प्रमाणातिरिक्तमनुरूपमातप-त्रोपमशिर प्रशस्यते। व्यूढदृढंसमसुश्लिष्टशखसन्ध्यर्द्धव्यञ्जनमु-पचितवलिनमर्द्धचन्द्राकृतिललाटबहलौविपुलसमपीठौसमौनी-चौवृद्धौपृष्ठतोऽवनतौसुश्लिष्टकर्णपुटकौमहाच्छिद्रौकर्णौईषत्प्रल-म्बिन्यावसङ्गतेसमेसहतेमहत्योभ्रुवौ। समेसमाहितदर्शनेव्य-क्तभागविभागेवलवतितेजसोपपन्नेस्वाङ्गोपाङ्गेचक्षुषी। ऋज्वीम-

होच्छ्रासावंशसम्पन्नेपदवतताग्रानासिकामहदृजुसुनिविष्टदन्तमास्यमायामविस्तरोपपन्नाश्लक्ष्णातन्वीप्रकृतियुक्तापाटलवर्णाजिह्वा । श्लक्ष्णयुक्तोपचयमूष्मोपपन्नरक्ततालुमहानदीनःस्निग्धोऽनुनादीगम्भीरसमुत्थोधीरःस्वरः । नातिस्थूलौनातिकृशौविस्तारोपपन्नावास्यप्रच्छादनौरक्तावोष्ठौ । महत्यौहनूवृत्तौनातिमहतीग्रीवाव्यूढमुपचितमुरोदृढजत्रुपृष्ठवशश्च । विकृष्टान्तरौस्तनौअसपातिनीस्थिरेपार्श्वेवृत्तपरिपूर्णायतौवाहूसक्थिनीअङ्गुलयश्चमहदुपचितपाणिपादम् । स्थिरावृत्ताः स्निग्धास्ताम्रास्तुङ्गा कूर्माकाराः करजाः । प्रदक्षिणावर्त्तासोत्सङ्गाचनाभिः । नाभ्युरस्त्रिभागहीना समासमुपचितमासाकटीवृत्तौस्थिरोपचितमासौनात्युन्नतौनात्यवनतौस्फिचावनुपूर्ववृत्तौउपचययुक्तावूरू । नात्युपचितेनात्यपचितेएणीपदेप्रगूढशिरास्थिसन्धीजङ्घे । नात्युपचितौनात्यपचितौगुल्फौपूर्वोपदिष्टगुणौपादौकूर्माकारौ । प्रकृतियुक्तानिवातमूत्रपुरीपगुह्यानितथास्वप्नजागरणायासस्मितरुदितस्तनग्रहणानि । यच्चकिञ्चिदन्यदपिअनुक्तमस्तितदपिसर्वप्रकृतिसम्पन्नमिष्टविपरीतपुनरनिष्टमितिदीर्घायुर्लक्षणानि ॥ १०५॥

नामकरण करनेके अनन्तर उस वालककी आयुका प्रमाण जाननेके लिये उसकी परीक्षा करे । उनमें दीर्घजीवी अर्थात् दीर्घायु होनेवाले वालकोंके यह लक्षण होते हैं । जैसे सिरके वाल अलग २ नरम, चिकने, थोडे, काले और दृढ, वद्धमूल, अच्छे होतेहैं । त्वचा स्थिर और पुष्ट उत्तम होती है । सिर स्वभावसेही सुन्दर आकारका प्रमाणसे किंचित् वडा, सुन्दर लक्षणोंवाला, अनुरूप, तथा छत्रके समान उत्तम होताहै । ललाट विशाल, दृढ, सुडौल, सुन्दर, उत्तम कनपटियोंकी संधियुक्त, कुछ ऊंचा और कुछ ढलाहुआसा उत्तम आकारवाला उपचित, वलियुक्त और अर्धचन्द्रके समान आकारवाला होना श्रेष्ठ होताहै । दोनों कान पुष्ट, कानोंके पीछेका भाग विपुल और सुडौल तथा दोना कान ऊंचे नीचे समान और पीछेको नवेहुएसे दोनों कर्णपुट सुश्लिष्ट तथा कानोंके छिद्र अर्थात् फोकल वडे होना श्रेष्ठ मानेजातेहैं । भौंह एकी परस्पर मिलीहुई एकसी घनकी और वडी २ होना उत्तम होताहै । दोनों नेत्र एकसे देखनेवाले, सुडौल, अलग २ सीधे, तजयुक्त, पल्क आदि सुन्दर

उपागयुक्त उत्तम होतेहैं । नाक सुडौल, लम्बी, श्वासयुक्त, लम्बे बांसवाली, कुछ २ आगेको झुकीहुई उत्तम होती है । मुख बडा सुडौल, सुन्दर जिसके दोनों ओर सुन्दरतायुक्त हों तथा दंतपंक्ति सुन्दरतायुक्त हो वह मुख उत्तम होताहै । जिह्वा लंबी, चिकनी, पतली, सुडौल, गुलाबी रंगकी और अपने गुणोंसे संपन्न उत्तम होतीहै । तालु मसृण, पुष्ट, ऊंचा, तथा लालवर्णका उत्तम होताहै । स्वर बडा दीनता रहित, चिकना, प्रतिध्वनियुक्त, गंभीर तथा धीर उत्तम होताहै । होठ न बहुत मोटे न अधिक पतले, विस्तारयुक्त, मुखको ढकेहुए और लालवर्णके उत्तम होतेहैं । ठोडी गोल अधिक लम्बी न होना उत्तम होताहै । गर्दन दृढ और थोडी लम्बी उत्तम होतीहै । दोनो कंधे, व्यूढ और दृढ तथा ऊंचे उत्तम होतेहै । हसुली दृढ और छातीमें मिली हुई उत्तम होतीहै। पीठका बांस मांसमें छिपाहुआ उत्तम होताहै। स्तनोंके बीचका भाग फैलाहुआ चौडा अच्छा होताहै। दोनों पार्श्व दोनों कंधोंकी ओर ढलेहुए और दृढ उत्तम होतेहै । दोनों बाहु, नितम्ब और अंगुलियें लंबी, गोल, परिपूर्ण और दृढ होना उत्तम है । हाथ और पांव-पुष्ट, दृढ, और लम्बे उत्तम होतेहैं । नख चिकने,ताम्रवर्ण,ऊंचे कुछएकी पीठके समान,सुडौल उत्तम होतेहैं । नाभि-दक्षिणावर्त्त और बीचमेंसे गहरी किनारेसे ऊंची उत्तम होतीहै । नाभि और उरुस्थलके बीचमें चौथा भाग प्रमाणसे सुडौल और पुष्ट कमर उत्तम होतीहै । दोनों नितम्ब गोल, दृढ, मांससे पुष्ट न अति ऊंचे और न अधिक नीचे उत्तम होतेहै, दोनों उरुस्थल गोल, पुष्ट और मोटे उत्तम होतेहै । दोनों जानु गोल, और पुष्ट उत्तम होतीहै । दोनों जांघ-हिरणीके पैरके समान और पुष्ट छिपीहुई हड्डियोंवाली जिनमें कोई नाडी दिखाई न देतीहो और उनकी सन्धियें भी छिपीहों ऐसी उत्तम होतीहै । दोनों गुल्फ न बहुत पुष्ट और न अधिक कृश उत्तम होतेहै । दोनों पांव पूर्वोक्त लक्षणवाले कछुएकी पीठके समान सुडौल उत्तम होते है । इनके सिवाय वायु, मूत्र, मल, गुह्यावयव, निद्रा, जागरण, आदि अन्य व्यवहार तथा हास्य और रोदन तथा स्तनोंका पीना स्वाभाविक ठीक होने उत्तम होतेहैं । यह लक्षण दीर्घायु कुमारके होतेहैं इससे विपरीत लक्षण अल्पायु बालकोंके होतेहै । इसप्रकार दीर्घजीवी बालकोंके लक्षण कथन कियेगये ॥ १०५ ॥

धात्रीपरीक्षा ।

अतोधात्रीपरीक्षामुपदेक्ष्यामः ॥ १०६ ॥

अब धात्रिकी परीक्षाका वर्णन करतेहैं ॥ १०६ ॥

अथत्र्या ब्राह्मीमानयेतिसमानवर्णायौवनस्थानिभृतामनातुराम व्यङ्गामव्यसनामविरूपामजुगुप्सितादेशजातीयामक्षुद्रामक्षुद्रक-

र्मिणींकुलेजातांवत्सलामरोगजीवद्वत्सापुवत्सादोग्ध्रीमप्रमत्ताम-शायिनीमनुच्चारशायिनीमनन्तावशायिनींकुशलोपचाराशुचिमशु-चिद्वेषिणींस्तन्यसम्पदुपेतामिति ॥ १०७॥

इसके अनन्तर एक मनुष्यको कहे कि धात्री (धाय) को लावो। वह धात्री अपने समान वर्णकी हो, युवा हो, अयोग्य न हो, रोगरहित हो, सर्वांग सपन्न हो, कुरूप और कुचरित्र न हो निंदनीय न हो, अपने देशकी हो नीच न हो, उत्तम स्वभाव व कर्मवाली हो, अच्छे कुलकी हो, बालकको प्यार करनेवाली हो, जिसको अपने बच्चे जीते हों अर्थात् मृतवत्सा न हो और लडकेवाली हो, जिसके स्तनोंमें बहुतसा दूध हो, असावधान न हो, बहुत सोनेवाली न हो तथा बिना कहे कहीं एकान्तमें सोनेवाली न हो, जातिसे पतित न हो, चतुर उपचार करनेवाली हो, पवित्र हो, अपवित्रतासे द्वेष रखतीहो, जिसका स्तन्य उत्तम हो ऐसे गुणोंवाली धात्री उत्तम होतीहै ॥ १०७ ॥

उत्तम स्तनके लक्षण।

तत्रेयस्तनसम्पन्नात्यूर्द्ध्वौनातिलम्बौअनतिकृशौअनतिपीनौयुक्त-पिप्पलकौसुखप्रपानौचेतिस्तनसम्पत् ॥ १०८ ॥

स्तनोंके यह लक्षण उत्तम होतेहैं। अर्थात् धायके स्तन ऐसे होने चाहिये। अधिक ऊंचे, अधिक लम्बे, अधिक कृश और अधिक मोटे न हों। अनुरूप लक्षणवाले खूबसूरत पीपल्के पत्तेके समान पीछेसे चौंडे और आगेसे नोंकीले जिनमेंसे बालक सूखपूर्वक दूध पी सके ऐसे उत्तम होतेहै॥ १०८ ॥

उत्तमदूधके लक्षण।

स्तन्यसम्पत्तुप्रकृतिवर्णगन्धरसस्पर्शमुदपात्रेचदुह्यमानंदुग्धमुदकं वैतिप्रकृतिभूतत्वात्तत्पुष्टिकरमारोग्यकरश्चेतिस्तन्यसम्पदतोऽन्य-थाव्यापन्नज्ञेयम् ॥ १०९ ॥

अब दूधके लक्षणोंका वर्णन करतेहैं। स्तनोका दूध वर्ण, गध, रस और स्पर्शमें स्वाभाविक गुणोंवाला होना चाहिये। स्वाभाविक गुणके ये लक्षण है कि जो दूध जलके पात्रमें डालनेसे जलके साथही मिलजाय वही दूध पुष्टिकारक, आरोग्य रखनेवाला तथा उत्तम होताहै।इन लक्षणोंसे विपरीत लक्षणोंवाला दूध दूषित जानना॥१०९॥

वातदूषितदूध।

तस्यविशेषा श्यावारुणवर्णकषायानुरसविशदमनतिलक्ष्यगन्धरू-क्षद्रवफेनिललघुअतृप्तिकरकर्षणवातविकाराणाकर्तृवातोपसृष्टक्षी-रमभिज्ञेयम् ॥ ११० ॥

दूषित दूधके ये लक्षण है । जो दूध काले या लालवर्णका हो कसैले रसयुक्त हो जिसमेंसे कुछ २ गंध आतीहो, जो अत्यंत रूखा होय, चंचल तथा झागयुक्त हो, जिसके पीनेमें तृप्ति न होतीहो, बहुत हलका हो, जिसके पीनेसे बालक कृश होजाय तथा वायुके विकारोंको उत्पन्न करताहो वह वातदूषित दूध जानना ॥ ११० ॥

पित्तदूषितदूध ।

कृष्णनीलपीतताम्रावभासतिक्ताम्लकटुकानुरसंकुणपरुधिरगन्धि-भृशोष्णपित्तविकाराणाकर्तृपित्तोपसृष्टंक्षीरमभिज्ञेयम् ॥ १११ ॥

जो दूध कृष्ण तथा नीलवर्णका अथवा पीले या तांबेके वर्णका हो और उस दूधका कडुआ, खट्टा, अथवा चरपरा अनुरस हो, मुर्देकीसी गंध आतीहो, अथवा रुधिरकीसी गंध हो और अत्यंत गरम हो एवम् पित्तके रोगोंको उत्पन्न करनेवाला हो उसको पित्तदूषित जानना ॥ १११ ॥

कफदूषित दूध ।

अत्यर्थशुक्लमतिमाधुर्य्योपपन्नलवणानुरसंघृततैलवसामज्जगन्धि पिच्छिलतन्तुमदुदकपात्रेऽवसीदतिश्लेष्मविकाराणाकर्तृश्लेष्मोप-सृष्टक्षीरमभिज्ञेयम् ॥ ११२ ॥

जो दूध अत्यन्त श्वेतवर्ण हो, अधिक मीठा हो, लवण अनुरसयुक्त हो, घृत तैल वसा मज्जाकीसी गंधवाला हो, गाढा हो, तारयुक्त हो, जलमें डालनेसे डूब जाताहो एवम् कफरोगोंको उत्पन्न करनेवाला हो उसको कफदूषित जानना ॥ ११२ ॥

तेषान्तुत्रयाणामपिक्षीरदोषाणाप्रकृतिविशेषमभिसमीक्ष्ययथास्व यथादोषञ्चवमनविरेचनास्थापनानुवासनानिविभज्यकृतानिप्रश-मनायभवन्ति ॥ ११३ ॥

उन तीनों प्रकारके दूषित दूधोंको शुद्धकरनेके लिये धायको वमन, विरेचन और आस्थापन तथा अनुवासन कर्म यथायोग्य रीतिपर विभागपूर्वक करना चाहिये ॥ ११३ ॥

धात्रीके खानेपीनेकी विधि ।

पानाशनविधिस्तुदुष्टक्षीरायायवगोधूमशालिषष्टिकमुद्गहरेणुकु-लत्थसुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकलशुनकरञ्जप्राय स्यात्॥११४॥

उस दूषित दूधवाली धायको खानेपीनेके लिये प्रायः यव, गेहूं, उत्तम शालिचा

वल, साठीचावल मूग, हरेणु, कुल्थी, सुरा, सौवीर, मैरेय, तुषोदक, मेदक, लहसुन और करज आदि द्रव्योंको देना चाहिये ॥ ११४ ॥

क्षीरदोषविशेषाश्चावेक्ष्यावेक्ष्यतत्तद्विधानकार्य्यंस्यात् ॥ ११५ ॥

क्षीर (दूध) के दोषोंको विशेषरूपसे विचारकर और उनमे वातादि दोषोंकी पृथक् पृथक् परीक्षाकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११५ ॥

दुग्धशोधक उपाय ।

पाठामहौषध–सुरदारु–मुस्तमूर्वागुडूची–वत्सकफल–किराततिक्तकटुकरोहिणीशारिवाकषायाणाश्चपानंप्रशस्यते । तथान्येपातिक्तकषायकटुकमधुराणाद्रव्याणाप्रयोगः । इतिक्षीरशोधनान्युक्तानिभवन्ति । क्षीरविकारविशेषानभिसमीक्ष्यमात्राकालश्चेति क्षीरविशोधनानि ॥ ११६ ॥

धात्रीके दूधको शुद्धकरनेके लिये पाठा, सोंठ, देवदारु, नागरमोथा, मूर्वा, गिलोय, इन्द्रयव, चिरायता, कुटकी और सारिवाका क्वाथ बना पिलाना चाहिये। तथा दोषोंके अनुसार विचारपूर्वक कडुवे, कसैले, चरपरे तथा मधुर द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये। इसप्रकार क्षीरके शोधनके उपाय कहेगये। और क्षीरके विकारोंको पृथक् पृथक् विचारकर मात्रा तथा कालका ध्यान रखकर उचित रीतिसे उचित द्रव्योंद्वारा शोधन करना चाहिये यह दूधशोधनकी विधि कहीगई ॥ ११६ ॥

दुग्धोत्पादकविधि ।

क्षीरजननानितुमद्यानिसीधुवर्ज्यानिग्राम्यानूपोदकानिचशाकधान्यमांसानिद्रवमधुराम्लभूयिष्ठाश्चाहारा क्षीरिण्यश्चौषधय क्षीरपानश्चानायासश्चेतिवीरणषष्टिशालिकेक्षुवालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रोत्कटमूलकषायाणाश्चपानमितिक्षीरजननान्युक्तानि ॥ ११७ ॥

स्तन्य अर्थात् स्तनोंमे दूध बढानेवाले यह द्रव्य है। जैसे शीधुमद्यके सिवाय अन्य सबप्रकारके मद्य, ग्राम्य और अनूप तथा जलमे होनेवाले शाक, धान्य और मांस, पतले पदार्थ, मधुर और खट्टमीठे द्रव्य, गुलड आदि क्षीरीगण, दूधका पीना, परिश्रम न करना, वीरणतृण, साठीचावल, इक्षुवालिका दर्भ, कुशा, काश, गुन्द्रपटेर और उत्कट इन सबकी जडोंका क्वाथ बना मिसरी मिला पीना स्तनोंमें दूधको बढाता है ॥ ११७ ॥

शुद्धदूधवालीका कर्त्तव्यकर्म ।

धात्रीतुयदास्याद्बहुलशुद्धदुग्धाम्यात्तदास्नातानुलिप्ताशुक्लवस्त्रपरि

धायेन्द्रींब्राह्मींशतवीर्य्यांसहस्रवीर्य्यांमोघामव्यथाशिवामरिष्टावाट्यपर्ष्पीविश्वक्सेनकान्तामितिबिभ्रत्योषधीःकुमारप्राङ्मुखप्रथमदक्षिणंस्तनंपाययेदितिधात्रीकर्म ॥ ११८ ॥

जब देखे कि धायका दूध स्वादिष्ट, बहुत और शुद्ध होगयाहै तब इस धायको स्नान कराकर चदनादिसे सुशोभित करा स्वच्छ निर्मल वस्त्र पहिना इन्द्रायण, ब्राह्मी, सफेद और हरी दूब, पाढ, हरड, आमले, नीम,वला, प्रियगु,रेंहुका, इन सब औषधियोंको एक धागेमें मालाके समान बाध गलेमें धारणकरे फिर पूर्वकी ओर मुखकर बालकको पहिले दहिना स्तन पानकरावे ॥ ११८ ॥

कुमारागारविधि ।

अतोऽनन्तरकुमारागारविधिमनुव्याख्यास्याम· । वास्तुविद्याकुशल·प्रशस्तरम्यमतमस्कनिवातप्रवातैकदेशंदृढमपगतश्वापदपशुदंष्ट्रिमूषिकपतंगसुसविभक्तसलिलोलूखलमूत्रवर्चःस्थानस्नानभूमिमहानसमृतुसुखयथर्तुशयनासनास्तरणसम्पन्नंकुर्य्यात् । तथासुविहितरक्षाविधानवलिमंगलहोमप्रायश्चितशुचिवृद्धवैद्यानुरक्तजनसम्पूर्णमिति कुमारागारविधि· ॥ ११९ ॥

इसके उपरात अब बालकके रहनेका स्यान बनानेकी विधिका कथन करतेहैं । उत्तम वास्तुविद्याको जाननेवाला चतुर पुरुष उत्तम इधर उधर फिरने योग्य अधकाररहित, जिसस्थानमें अधिक वायु न आतीहो तथा एक ओर सुन्दर पवन आती भी हो ऐसा दृढ अर्थात् पक्का मकान बनावे । जिस मकानमें कुत्ते, पशु, अन्य दातावाले जानवर तथा हिंसक जीव, मच्छर, मूषक, पतग, आदि न आसकें। और उस घरमे विधिपूर्वक यथास्थान जल, ऊखल, मलमूत्र त्यागनका स्थान, स्नान करनेका स्थान भोजन बनानेका स्थान यथाऋतु शयन, करने और बैठनेके लिये तथा बिछाने और ओढनेके लिये सुखदायी वस्त्र एवं इस घरमे सपूर्ण रक्षाके विधान, बलिदान, मगल कर्म, होम और प्रायश्चित्तकी सामग्री तथा पवित्र वृद्ध, वैद्य और बालकसे प्रीतिरखनेवाले मनुष्य रहने चाहिये । इसप्रकार कुमारागारकी विधि वर्णन कीगई॥११९॥

शयनास्तरणप्रावरणानिकुमारस्यमृदुलघुशुचिसुगन्धीनिस्युःस्वेदमलजन्तुमन्तिमूत्रपुरीषोपसृष्टानिचवर्ज्यानिस्यु ॥ १२० ॥

बालकके सोनेकी शय्या और बिछानेके वस्तु और ओढनेके वस्त्र इनके सुन्दर,

नरम, पवित्र और सुगंधित होने चाहिये । उनमें पसीना, मल, मूत्र, जीवें, विष्ठा आदि किसीसमय भी न रहना चाहिये ॥ १२० ॥

असतिसम्भवेऽन्येषातान्येवचसुप्रक्षालितोपधानानिसुधूपितानि सुशुद्धशुष्काण्युपयोगगच्छेयुः ॥ १२१ ॥

यदि वारवार नये और स्वच्छ वस्त्र प्राप्त न करसकें तो उन्हीं वस्त्रोंको उत्तम रीतिसे धोकर स्वच्छ करे और अच्छीतरह सुखा शुद्ध सूखे होनेपर सुगंधित धूप आदि दे उन्हींका वर्ताव करे । अर्थात् पहिले वदल दिया करे और दूसरे धुलेहुओंको उपयोग किया करे ॥ १२१ ॥

वस्त्रोंमे धूपदेनेवाली औषधी ।

धूपनानिपुनर्वाससाशयनास्तरणप्रावरणानाञ्चयवसर्षपातसीहिंगु-गुग्गुलु-वचाचोरकवय स्थागोलोमीजटिला-पलङ्कपाशोक-रोहिणीसर्पनिर्मोकाणिघृतेसपृक्तानिस्युः ॥ १२२ ॥

धूपनद्रव्य अर्थात् बालकोंके वस्त्रोंको धुनी देनेके यह द्रव्य हैं । जैसे यव, सरसा, अलसी, हींग, गूगल, वच, गठीवन, हरड, वालछडे, जटामासी, लाख, अशोक, कुटकी और सापकी काचुली इनसवके वारीक चूर्णको घृतमें मिला वालकके वस्त्र, शय्या आदि सवको धूनी देनीचाहिये ॥ १२२ ॥

कुमारकी अन्यरक्षा विधि ।

मणयश्चधारणीयाःकुमारस्यखड्गरुरुगवयवृषभाणाजीवतामेवदक्षिणेभ्योविषाणेभ्योऽग्राणिगृहीतानिस्यु । मन्त्राद्याश्चौषधयोजीवकर्षभकौचयान्यपिअन्यानिब्राह्मणा प्रशसेयु' ॥ १२३ ॥

इस वालकको मणि धारण कराना चाहिये । और गैडा, रुरू, गज, अथवा रोझ या वृषभ इन जीतेहुओंमेंसे किसीका दहिनी सींगका अग्रभाग या इनसवकेही दहिनी सींगका अग्रभाग और मत्रादिकोंसे अभिमत्रित औषधियें, जीवक, ऋषभक, अन्य वच, सीप आदि जिन द्रव्योंको ब्राह्मण अच्छा कहतेहों वह सब इस वालकको धारण कराना चाहिये ॥ १२३ ॥

वालकके खिलौने ।

क्रीडनकानिखल्वस्यतुविचित्राणिघोषवन्त्यभिरामाणिअगुरूण्यतीक्ष्णाग्राणिअनास्यप्रवेशीनिअप्राणहराणिअवित्रासनानिस्यु १२४॥

इस वालकके खेलनेके लिये चित्र विचित्र शब्द करनेवाले अर्थात् वजनेवाले सुन्दर खिलौने रखने चाहिये । वह खिलौने हलके, जिनके पावोंपर गिरजानेसे चोट न

लगे तथा आगेसे पैनें न हों एव मुखमें न चुभजाय, ऐसे तीक्ष्ण न हों जो बालकके प्राणोंको ऐंचें या कष्ट देंय । इसप्रकारके हलके खिलौने होने चाहिये ॥ १२४ ॥

नहिअस्यवित्रासनंसाधुतस्मात्तस्मिन्नुदत्यभुञ्जानेवाअन्यत्रविधेयतामगच्छतिराक्षसपिशाचपूतनाद्यानानामान्याह्वयताकुमारस्य वित्रासनार्थंनामग्रहणनकार्य्यंस्यात् ॥ १२५ ॥

बालकको कभी भी डराना नहीं चाहिये । यदि बालक रोता हो और खाता न हो वा अन्य उपद्रव करताहो तौभी उसको भयभीत नहीं करना चाहिये । और उसको डरानेके लिये किसी राक्षस, पिशाच, पूतना आदिका नामतक नहीं लेना चाहिये । तथा उस बालकको डरानेके लिये वह देख ! भूत आया इत्यादि शब्द कभी भी नहीं कहना चाहिये ॥ १२५ ॥

कुमारके रोगोंका उपचार ।

यदितुआतुर्य्यंकिञ्चित्कुमारमागच्छेत्तत्प्रकृतिनिमित्तपूर्वरूपलिङ्गोपशयविशेषैस्तत्त्वतोनुबुध्यसर्वविशेषानातुरौषधदेशकालाश्रयानवेक्षमाणश्चिकित्सितुमारभेतैनमधुरमृदुलघुसुरभिशीतसङ्करकर्मप्रवर्त्तयन्नेवसात्म्याहिकुमाराभवन्तितथातेशर्मलभन्तेअचिरायरोरोगेतुअरोगवृत्तमातिष्ठेद्देशकालात्मगुणविपर्य्ययेणवर्त्तमान ॥१२६॥

यदि बालकको किसिप्रकारकी व्याधि उत्पन्न होजाय तो उस रोगकी प्रकृति निमित्त, पूर्वरूप, रूप, उपशयके भेदसे रोगके तत्त्वको निश्चयकरके फिर रोगी औषधि देश, काल और आश्रय इनको विशेषरूपसे विचारकर मधुर, नरम, लघु, सुगंधित, तथा शीतल द्रव्ययुक्तका विधिपूर्वक चिकित्सा करे । इसप्रकारकी चिकित्सा करना बालकाको सात्म्य होताहै । और इसप्रकारकी चिकित्सासे बालकको शीघ्र आराम होजाताहै । जब बालकको व्याधि हो तो देश, काल और शारीरिक स्वभाव देखकर उनसे विपरीत गुण करनेवाली जैसे शीतकालमें उष्ण, उष्णमें शीतलक्रिया व्याधिको शीघ्र नाश करनेके लिये युक्तिपूर्वक करना चाहिये ॥१२६॥

क्रमेणासात्म्यानिपरिवर्त्त्योपयुञ्जान सर्वाणिअहितानिवर्जयेत्तथाबलवर्णशरीरायुपासम्पदमवाप्नोतीति ॥ १२७ ॥

असात्म्यद्रव्य तथा अहितकर्ता सबपदार्थोंका बालकसे क्रमपूर्वक त्याग करादेना चाहिये । ऐसा करनेसे बालकके बल, वर्ण, शरीर और आयुकी वृद्धि होतीहै ॥ १२७ ॥

एवमेनंकुमारमायौवनप्राप्तेर्धर्मार्थकुशलागमनाचानुपालयेदिति पुत्राशिषांसमृद्धिकरंकर्मव्याख्यातम् । तदाचरन्यथोक्तैर्विधिभिः पूजायथेष्टंलभतेऽनसूयकइति ॥ १२८ ॥

जबतक यह बालक युवा न होजाय तबतक इस बालकको धर्म और अर्थकी योग्यता प्राप्त करने लिये इस विधिसे पालन करना चाहिये। बालकके हित और शुभकी इच्छाके लिये तथा समृद्धिके करनेवाले यह कर्म कहेगयेहैं। जो मनुष्य निन्दा द्वेष आदिको त्यागकर इस कथन कीहुई विधिका पालन करतेहैं वह अपनी इच्छानुरूप प्रतीष्ठाको प्राप्त होतेहैं ॥ १२८ ॥

अध्यायका उपसंहार।

पुत्राशिषाकर्मसमृद्धिकारकंयदुक्तमेतन्महदर्थसहितम् । तदाचरञ्ज्ञोविधिभिर्यथातथपूजायथेष्टलभतेऽनसूयक ॥ १२९ ॥ शरीर चिन्त्यतेसर्वंदैवमानुपसम्पदा। सर्वभावैर्यतस्तस्माच्छारीरंस्थानमुच्यते ॥ १३० ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां शारीरस्थानं समाप्तम् ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि पुत्रके हितके लिये और पुत्रकी समृद्धिके करनेवाला जो यह महान् अर्थका समूह कथन कियाहै इस विधिको ईर्षा, द्वेष तथा निन्दारहित ज्ञानी वैद्यके करनेसे अपनी इच्छानुरूप प्रतिष्ठाको प्राप्त होताहै। शरीरको लक्ष्य रखकर दैवी और मानुषी संपत्तिका संपूर्णभावोंसे इस स्थानमेंही सबप्रकारसे चिन्तन कियागयाहै इसलिये इस स्थानको शारीरस्थान कहतेहैं ॥ १२९ ॥ १३० ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां शारीरस्थाने टकसालनिवासि पं० रामप्रसाद वैद्योपाध्यायविरचितभाषाटीकायां जातिसूत्रीयशारीरं नामाष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

शारीरिक निर्देशसों, मनुज सृष्टि विज्ञान ॥
संख्या नाडी मर्मयुत, यथा शरीर विधान ॥ १ ॥
आतमजगत् अध्यातम यह, द्विविध विश्व सामान ॥
साधन मोक्ष शरीर सन, कथन कियो भगवान ॥ २ ॥
चरकरचित शुभतन्त्रमें, भयो चतुर्थस्थान ॥
सो प्रसादनीयुत कियो, रामप्रसाद सुजान ॥ ३ ॥

॥ समाप्तमिदं शारीरस्थानम् ॥

इन्द्रियस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातोवर्णस्वरीयमिंद्रियव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम वर्णस्वरीय इन्द्रियकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

आयुके प्रमाण जाननेकी रीति ।

इहखलुवर्णश्चस्वरश्चगन्धश्चरसश्चस्पर्शश्चचक्षुश्चश्रोत्रश्चघ्राणश्चरसनञ्चस्पर्शनश्चसत्त्वश्चभक्तिश्चशौचश्चशीलश्चाचारश्चस्मृतिश्चाकृतिश्चयलश्चग्लानिश्चतन्द्राचारम्भश्चगौरवश्चलाघवश्चआहारश्चविहारश्चाहारपरिणामश्चोपायश्चापायश्चव्याधिश्चव्याधिपूर्वरूपश्चवेदनाश्चोपद्रवाश्चछायाचप्रतिच्छायाचस्वप्नदर्शनश्चदूताधिकारश्चपथिचौत्पातिकश्चातुरकुलेभावावस्थान्तराणिचभेषजसंवृत्तिश्चभेषजविकारयुक्तिश्चेतिपरीक्ष्याणिप्रत्यक्षानुमानोपदेशैरायुषःप्रमाणविशेषजिज्ञासमानेनभिषजा ॥ १ ॥

वैद्यको रोगीके वर्ण, स्वर, गंध, स्पर्श, नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा, त्वचा, सत्त्व, इच्छा, शौच, शील, आचार, स्मृति, आकृति, बल, ग्लानि, तन्द्रा, कर्म, शरीरकी गौरवता और लाघवता, आहार, विहार, आहारका परिणाम, रोगकी शान्तिका उपाय, अपाय, व्याधि, व्याधिके पूर्वरूप, वेदना, उपद्रव, छाया, प्रतिच्छाया, स्वप्न देखना, दूतकी योग्यता, रोगीको देखनेके लिये जातेहुए रास्तेमें औत्पातिक भाव, रोगीके घरवालोंकी अवस्था विशेष, तथा अन्य अवस्था, औषधीके गुण विशेष, औषधीके दोष, रोगमें किसप्रकारसे किस औषधका प्रयोग करना इन सबको रोगीके जीवन, मरण तथा आयु विशेषके प्रमाण जाननेकी इच्छा करनेवाले वैद्यको योग्य है कि, प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्तोपदेशके द्वारा परीक्षा करे ॥ १ ॥

परीक्ष्यवस्तुओंके भेद।

तत्रतुखलुएषापरीक्ष्याणाकानिचित्पुरुषमनाश्रितानिकानिचित्पु-

रुषसंश्रयाणि। तत्रयानिपुरुषमनाश्रितानितानिउपदेशतोयुक्तित-श्चपरीक्षेत। पुरुषसंश्रयाणिपुनःप्रकृतितश्चविकृतितश्च ॥ २ ॥

इन सब प्रकारकी परीक्षाओंमें बहुतसी परीक्षा तो पुरुषके आश्रय होती हैं और बहुतसी ऐसी है जो पुरुषाश्रित नहीं है। उनमें जो पुरुषाश्रित नहीं हैं उनकी उपदेश और युक्ति अर्थात् अनुमान और आप्तोपदेशके द्वारा परीक्षा करनी चाहिये। एवम् जो पुरुषाश्रित है उनकी प्रकृति और विकृतिद्वारा परीक्षा करनी चाहिये ॥ २ ॥

प्रकृतिवर्णन।

तत्रप्रकृतिर्जातिप्रसक्ताकुलप्रसक्ताचदेशानुपातिनीचकालानुपा-तिनीचवयोऽनुपातिनीचप्रत्यात्मनियताचेति। एतावज्जातिकुल-देशकालवयःप्रत्यात्मनियताहितेषातेषापुरुषाणातेतेभावविशेषाभ-वन्ति ॥ ३ ॥

प्रकृति (स्वभाव) की परीक्षा इतने प्रकारकी होतीहै। जैसे—जातिगत प्रकृति, कुलगत प्रकृति, देशके अनुरूप प्रकृति, तथा समयानुरूप प्रकृति और प्रतिपुरुषमें उसकी आत्मनियत प्रकृति इसप्रकार पुरुषकी जाति, कुल, देश, काल, अवस्था और शरीरभेदसे प्रकृति अर्थात् स्वभाव प्रत्येक पुरुषका उसके अनुरूप होताहै सो इन भेदोंसे और पुरुषभेदसे मनुष्योंमें भाव विशेष होतेहैं। इन सब भावोंका अपने अपने ठीक स्वभावमें रहना प्रकृति कहाजाताहै ॥ ३ ॥

विकृतिका वर्णन।

विकृतिःपुनर्लक्षणनिमित्ताचलक्ष्यनिमित्ताचनिमित्तानुरूपाच। तत्रलक्षणनिमित्तानामसायस्याःशरीरेलक्षणान्येवहेतुभूतानिभव न्ति। लक्षणानिहिकानिचिच्छरीरोपनिबद्धानिभवन्ति। यानिहित स्मिंस्तस्मिंस्तत्राधिष्ठानमासाद्यतातांविकृतिमुत्पादयन्ति ॥ ४ ॥

और विकृति तीन प्रकारकी होतीहै। जैसे—लक्षणनिमित्ता विकृति, लक्ष्यनिमित्ता विकृति और निमित्तानुरूपा विकृति। शरीरकी आरोग्यताके हेतुभूत जो लक्षण होतेहैं उनके विकृत होजानेसे वह विकृतिके निमित्त मानेजातेहैं उनको लक्षणनिमित्ता विकृति कहतेहैं क्योंकि कोई २ लक्षणही इसप्रकार शरीरसे बंधेहुए है समय समयपर प्रगट होकर जिस २ समयमें जिस २ प्रकारसे शरीरमें वह लक्षण होवेहैं उस उस प्रकारकी विकृति (विकार) को उत्पन्न करतेहै ॥ ४ ॥

लक्ष्यनिमित्तातुसायस्याउपलभ्यतेनिमित्तंयथोक्तंनिदानेषु ॥ ५ ॥

रोगका निदान कथन करनेके समय लक्ष्यनिमित्ता विकृतिका कथन करचुकेहैं अर्थात् रोगोंके निमित्तरूप वातादिकोंकी विकृतिको लक्ष्यनिमित्ता विकृति कहतेहैं ॥ ५ ॥

निमित्तानुरूपाके लक्षण ।

निमित्तानुरूपातुनिमित्तार्थानुकारिणीयातामनिमित्तानिमित्तमायुपःप्रमाणज्ञानस्येच्छन्तिभिपजोभूयश्चायुपःक्षयनिमित्ताप्रेतलिङ्गानुरूपांयामायुपोऽन्तर्गतस्यज्ञानार्थमुपदिशन्तिधीराः ॥ ६ ॥

निमित्तकी अर्थानुरूपा विकृतिको निमित्तानुरूपा विकृति कहतेहैं अर्थात् विनाही कारणके स्वभावादिकोंमें विकृति होजाना निमित्तानुरूपा विकृति कहीजातीहै । इसी विकृतिको वैद्यलोग अनिमित्त होनेसे आयुकी परीक्षाका निमित्त मानते है । बुद्धिमान् इसी विकृतिको आयुके क्षयका निमित्त और प्रेतत्वका चिह्न, मानतेहै । तथा गतायु मनुष्यकी आयुनाशके ज्ञानके लिये इसी विकृतिको कथन करतेहैं ॥ ६ ॥

यामधिकृत्यपुरुपसंश्रियाणिमुमूर्षतांलक्षणानिउपदेक्ष्याम. । इत्युद्देशः । तद्विस्तरेणानुव्याख्यास्यामः ॥ ७ ॥

इस विकृतिके आश्रयसेही मरनेवाले पुरुषके लक्षणोंका उपदेश करेंगे । यह उद्देश है । पुरुषके जिन लक्षणोंको देखकर उसके मरनेका ज्ञान होसकता है उन्हीं विकृति आदिकोंको विशेषरूपसे वर्णन करतेहैं ॥ ७ ॥

प्रकृतिवर्ण ।

तत्रादितएववर्णाधिकारस्तद्यथाकृष्ण.कृष्णश्याम.श्यामावदातो वदातश्चइतिप्रकृतिवर्णाःशरीरस्य ॥ ८ ॥

उनमें पहिले वर्णकी प्रकृति और विकृतिका वर्णन करतेहैं । जैसे-कृष्णवर्ण, कृष्ण श्यामवर्ण, श्याम गौरवर्ण और गौरवर्ण यह शरीरके प्रकृतिवर्ण अर्थात् स्वाभाविकवर्ण होतेहैं ॥ ८ ॥

याश्चापरानुपेक्षमाणोविद्यादनुक्तोऽन्यथावापिनिर्दिश्यमाना स्तज्ज्ञे ॥ ९ ॥

इनके सिवाय और भी जो शरीरके वर्ण (रंग) होतेहैं वह सब इन ऊपर कहेहुए वर्णोंकी न्यूनाधिक्यताने और वर्णविशेषको जानलेना चाहिये । वर्णके जाननेवाले बुद्धिमान् इसप्रकार उपदेश करतेहैं और यह शरीरके स्वाभाविक वर्ण है ॥ ९ ॥

वैकारिकवर्ण।

नीलश्यामताम्रहरितशुक्लाश्चवर्णाःशरीरस्यवैकारिकाभवन्ति । याश्चापरानुपेक्षमाणोविद्यात्प्राग्विकृतानभूत्वोत्पन्नानितिप्रकृतिवि-कृतिवर्णाभवन्त्युक्ताःशरीरस्य ॥ १० ॥

नील, श्याम, ताम्र, हरित और सफेद, यह शरीरके विकृति वर्ण हैं। इनके सिवाय और भी जैसे कि जो वर्ण पहिले देखा न हो अथवा पहिलेसे दूसरे प्रकारका होजाय उसको भी विकृतवर्ण कहतेहैं बुद्धिमानोंको पहिले शरीरको प्रकृतिवर्ण और विकृत वर्णकी परीक्षा करनी चाहिये। इसप्रकार शरीरके वर्णकी प्रकृति और विकृति वर्णन कीगईहै ॥ १० ॥

वर्णजन्यमृत्युलक्षण।

तत्रप्रकृतिवर्णोऽर्द्धशरीरेविकृतिवर्णोऽर्द्धशरीरेद्वावपिवर्णौमर्य्यादा विभक्तौदृश्यायचेनसव्यदक्षिणविभागेनयद्येवंपूर्वपश्चिमविभागेन यद्युत्तराधरविभागेनयद्यन्तर्वहिर्विभागेनआतुरस्यारिष्टमितिवि-द्यात् ॥ ११ ॥

यदि प्रकृतिवर्णवाले मनुष्यके शरीरमें वामभाग अथवा दक्षिण भाग या आगे पीछे दोनों ओर या केवल पीछे तथा केवल आगे या किसी अगमें स्वाभाविक और किसी अगमें वैकारिक वर्ण दिखाई देवे तो उस रोगीको अरिष्ट लक्षण जानना॥११॥

मृत्युके अन्यलक्षण।

एवमेववर्णभेदोमुखेऽप्यन्यतोवर्त्तमानोमरणायभवति ॥ १२ ॥

यदि रोगीके मुखका वर्ण पहिलेसे बिलकुल बदलजाय अथवा और प्रकार स्वाभा-विक वर्ण एकदम पलटजाय तो यह मृत्युका चिह्न जानना ॥ १२ ॥

वर्णभेदेनग्लानिहर्षरौक्ष्यस्नेहाव्याख्याता ॥ १३ ॥

वर्णभेदसे ग्लानि, हर्ष, रूक्षता और स्नेह इनसबका निर्देश कियागयाहै ॥ १३ ॥

तथापिप्लुव्यंगतिलकालकपिडकानामन्यतमस्याननेजन्मातुरस्ये-वमेवअप्रशस्तंविद्यात् ॥ १४ ॥

तथा प्लुव (लहसन) व्यंग, तिल, कालक, पिडका इनका येममय एकाएक रोगीके मुखपर प्रगट होजाना रोगीके लिये अशुभ कहाजाताहै ॥ १४ ॥

नखनयनवदनमूत्रपुरीषहस्तपादौष्ठादिष्वपिचवैकारिकोक्तानांवर्णा-नामन्यतमस्यप्रादुर्भावोहीनबलवर्णेन्द्रियेषुलक्षणमायुषःक्षयस्य

भवति । यच्चान्यदपिकिञ्चिद्वर्णवैकृतमभूतपूर्वंसहसोत्पद्येतानि-मित्तमेवहीयमानस्यातुरस्यतच्चारिष्टमितिवर्णाधिकारः ॥ १५ ॥

रोगीके नख, नेत्र, मुख, मूत्र, मल और हाथ पैरोंके वर्ण एकाएक विकृत होजावें तथा स्वाभाविक नष्ट होकर और प्रकारके वैकारिक वर्ण उत्पन्न होंजायें अथवा बल, वर्ण और इन्द्रियोंमें एकाएक हीनता उत्पन्न होजाय तो यह रोगीके आयुनाशक चिह्न जानने चाहिये इनके सिवाय और भी जो कभी पहिले न-देखाहो उस प्रकारके वर्ण विकारका एकाएक उत्पन्न होजाना भी रोगीकी मृत्युका चिह्न होताहै । इसप्रकार अरिष्टकारक वर्णाधिकारका वर्णन कियागया ॥ १५ ॥

स्वराधिकारः ।

स्वराधिकारस्तुहंसक्रौञ्चनेमिदुन्दुभिकलविंककाककपोतझर्झरानु-करा प्रकृतिस्वरा । याश्चापरानुपेक्षमाणोऽपिविद्यादनूक्तोन्यथा-वापिनिर्दिश्यमानास्तज्ज्ञैः ॥ १६ ॥

अब स्वराधिकार वर्णन करतेहैं । हंस, बगुला, चकवा, नगारा, चिड़ा, कौआ, कबूतर और झींगुर इनके समान स्वर होनेसे प्रकृतिस्वर अर्थात् स्वाभाविक स्वर है इनके सिवाय जिनका कथन यहांपर नहीं किया गयाहै उनको भी जिसप्रकार स्वरके जाननेवालोंने कथन कियाहो उस प्रकारसे जानलेना चाहिये । यह स्वाभाविकस्वर वर्णन कियागया ॥ १६ ॥

वैकृतिकस्वरका लक्षण ।

एडकग्रस्ताव्यक्तगद्गदक्षामदीनानुकीर्णास्तुआतुराणांस्वरावैकारि-का. । याश्चापरानुपेक्षमाणोऽपिविद्यात्प्राग्विकृतानभूतोत्पन्नानइ-तिप्रकृतिविकृतिस्वराव्याख्याता ॥ १७ ॥

यदि रोगियोंका स्वर मेंढ़ेके समान अथवा जो समझा न जाय इसप्रकारका या गद्गद् स्वर अथवा शान्त और हीनशब्द या फटाहुआ हो तो वैकारिकस्वर जानना । इसके सिवाय जो पहिले श्रवण न कियाहो इसप्रकारका अभूतपूर्व स्वर भी वैकारिक होताहै । यह स्वरोंकी प्रकृति और विकृतिका वर्णन कियागया ॥ १७ ॥

आसन्नमृत्युरोगीका लक्षण ।

तत्रप्रकृतिवैकारिकाणांस्वराणामाश्वभिनिर्वृत्ति स्वरानेकत्वमेकस्य चानेकत्वमप्रशस्तमितिस्वराधिकार । इतिवर्णस्वराधिकारो यथा-वदुक्तोमुमूर्षताज्ञानार्थमिति ॥ १८ ॥

रोगियोंके स्वरका एकाएकी बदलजाना और अनेक प्रकारका स्वर होना तथा अनेक प्रकारसे फटाहुआसा होजाना यह रोगियोंके अरिष्टका चिह्न है । इस प्रकार मरनेवाले रोगियोंके स्वर और वर्णका उनके मृत्युज्ञानके लिये वर्णन कियागया॥१८॥

तत्रश्लोकाः ।

यस्यवैकारिकोवर्णःशरीरउपजायते ।
अर्द्धेवायदिवाकृत्स्नेऽनिमित्तंनचनास्तिसः ॥ १९ ॥

यहांपर श्लोक है-जिस मनुष्यके शरीरमें आधेमें वा सपूर्णमें एकाएकी वैकारिक वर्ण प्रगट होजाय वह मनुष्य अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥

नीलवायदिवाश्यावताम्रवायदिवारुणम् ।
मुखार्द्धमन्यथावर्णोमुखार्द्धेऽरिष्टमुच्यते ॥ २० ॥

यदि रोगीके आधेमुखका वर्ण नीला, श्याम, ताम्रवण या लालवर्ण होजाय और आधा अन्य वर्णका हो तो यह अरिष्टकारक लक्षण होतहै ॥ २० ॥

स्नेहोमुखार्द्धेसुव्यक्तोरौक्ष्यमर्द्धमुखेभृशम् ।
ग्लानिरर्द्धेतथाहर्षोमुखार्द्धेप्रेतलक्षणम् ॥ २१ ॥

आधा मुख चिकना हो अर्थात् तेलसे भिगाहुआसा प्रतीत होताहो तथा आधा मुख विलकुल रूक्ष हो तथा आधेचेहरेमें ग्लानि और आधेमें हर्ष प्रतीत होताहो तो यह रोगीकी मृत्यु होनेके लक्षण है ॥ २१ ॥

तिलकापिप्लवोव्यङ्गाराजयश्चपृथग्विधा ।
आतुरस्याशुजायन्तेमुखेप्राणान्मुमुक्षत ॥ २२ ॥

जिस रोगीके मुखपर एकाएकी तिल पिप्लव (लहसुन) व्यंग,(झाई) तथा अनेक प्रकारकी रेखा आदि विचित्ररूपसे प्रगट होजायँ तो उसके मरणव्यापक लक्षण जानना ॥ २२ ॥

पुष्पाणिनखदन्तेपुपङ्कोवादन्तसंस्थित ।
चूर्णकोवापिदन्तेपुलक्षणमरणस्यतत् ॥ २३ ॥

जिस रोगीके नख और दांतोंपर रंगविरंगे फूलसे पडजायँ अथवा दांतोंपर बहुत गाढी मैल जमजाय एवं दांतोंमें चूर्णसा लगाहुआ प्रतीत हो तो उस रोगीके मरणके लक्षण जानना ॥ २३ ॥

ओष्ठयोःपादयो पाण्योरक्ष्णोर्मूत्रपुरीपयो ।
नखेष्वपिचवैवर्ण्यमेतत्क्षीणवलेऽन्तकृत् ॥ २४ ॥

जिस रोगीके दोनों होठ, दोनों पावँ, हाथ, नेत्र, मूत्र, पुरीष और नख इन सबमे एकाएकी विवर्णता उत्पन्न होजाय और वह रोगी क्षीणबल हो तो उसकी मृत्युके लक्षण जानना ॥ २४ ॥

यस्यनीलावुभावोष्ठौपक्वजाम्ववसन्निभौ ।
मुमूर्षुरितितविद्यान्नरोधीरोगतायुषम् ॥ २५ ॥

जिस रोगीके दोनों होठ नीले या पकीहुई जामुनके समान होजायँ तो उस रोगीको बुद्धिमान् मनुष्य गतायु जाने ॥ २५ ॥

एकोवायदिवानेकोयस्यवैकारिकः स्वरः ।
सहसोत्पद्यतेजन्तोर्हीयमानस्यनास्तिसः ॥ २६ ॥

जिस रोगीका स्वर एकाएकी वदलजाय अथवा अनेक प्रकारका वैकारिक होजाय उस नष्ट आयु रोगीको नहीं है ऐसा जानना ॥ २६ ॥

यच्चान्यदपिकिञ्चित्स्याद्वैकृतस्वरवर्णयोः ।
वलमांसविहीनस्यतत्सर्वंमरणोदयम् ॥ २७ ॥

वल और मांसहीन रोगीके स्वर और वर्णमें अन्य किसीप्रकारकी विकृति होना भी उसके मरणका चिह्न जानना ॥ २७ ॥

इतिवर्णस्वरावुक्तौलक्षणार्थंमुमूर्षताम् ।
यस्तुसम्यग्विजानातिनायुर्ज्ञानेसमुह्यति ॥ २८ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रियस्थाने वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ॥ १ ॥

इसप्रकार मरणाभिमुख मनुष्योंके लक्षणोंको जाननेके लिये वर्ण और स्वरका कथन कियाहै । जो वैद्य इनके ज्ञानको भलेप्रकार जानताहै वह आयुके जाननेमें मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ २८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायामिन्द्रियस्थाने टकसालनिवासिरविदत्तात्मजप्रसादीबैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां वर्णस्वरीयमिन्द्रियं नाम प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो पुष्पितमिन्द्रियं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम पुष्पित इन्द्रियकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥

पुष्पका लक्षण।

पुष्पंयथापूर्वरूपफलस्येहभविष्यत॰ ।
तथालिङ्गमरिष्टाख्यंपूर्वरूपमरिष्यत॰ ॥ १ ॥

जैसे-जगत्में होनेवाले फलका पूर्वरूप फूल देखाजाताहै वैसेही मरनेहारे मनुष्यका पूर्वरूप अरिष्टनामक लक्षण भी है ॥ १ ॥

अप्येवन्तुभवेत्पुष्पफलेनाननुवन्धियत्। फलश्चापिभवेत्किञ्चिद्य-स्यपुष्पनपूर्वजम्॥ २॥ नत्वरिष्टस्यजातस्यनाशोऽस्तिमरणादृते। मरणञ्चापितन्नास्तियन्नारिष्टपुरःसरम्॥ ३ ॥

यद्यपि इसप्रकारके भी बहुतसे फूल होतेहैं जिनसे फलकी उत्पत्ति नहीं होती और ऐसे फल भी बहुतसे है जिनके फूल नहीं होते परन्तु ऐसा कोई अरिष्ट नहीं होता जो मृत्युको उत्पन्न न करताहो और ऐसा मृत्यु भी नहीं होता जिससे पहिले अरिष्ट न होताहो॥ २॥ ३॥

मिथ्यादृष्टमरिष्टाभमनरिष्टमजानता ।
अरिष्टञ्चाप्यसम्बुद्धमेतत्प्रज्ञापराधजम्॥ ४॥

प्रायः बहुत स्थानोंमें अरिष्टके न जाननेवाले मनुष्य विनाही अरिष्टके लक्षणोंसे अरिष्ट मानलेतेंहै। और बहुतसी जगह अरिष्टके लक्षण न होतेहुए भी अपनी बुद्धिके दोपसे अरिष्ट मानलेतेहैं ॥ ४॥

ज्ञानसम्बोधनार्थन्तुलिङ्गैर्मरणपूर्वकै ।
पुष्पितानुपदेक्ष्यामोनरान्बहुविधाञ्छृणु॥ ५॥

ऐसे बुद्धिहीन वैद्योंकी बुद्धिको चैतन्य करनेके लिये मृत्युसे प्रथम होनेवाले मरणख्यापक पुष्पितनामक चिह्नोंको कथन करतेहैं उन अनेक प्रकारके लक्षणोंको श्रवणकरो। (निश्चय नियत मरणके बतलानेवाले लक्षणको अरिष्ट कहतेह)॥ ५॥

पुष्पितके लक्षण।

नानापुष्पोपमोगन्धोयस्यवातिदिवानिशम् । पुष्पितस्यवनस्येव नानाद्रुमलतावतः॥ ६॥ तमाहुःपुष्पितधीरानरमरणलक्षणे.। संवैसंवत्सरादेहजहातीतिविनिश्चय ॥ ७॥

जिस शरीरमें अनेक प्रकारके पुष्पित वनके समान अनेक वृक्ष, लताके फूलोंके समान सुगंध दिनरात बराबर आनेलगे उस मनुष्यको बुद्धिमान मनुष्य म

लक्षणोंसे पुष्पित समझे और वह मनुष्य एकवर्षके अन्दर निश्चयही देहको त्याग कर देताहै ॥ ६ ॥ ७ ॥

एवमेकैकशःपुष्पैर्यस्यगन्धःसमोभवेत्। इष्टैर्वायदिवानिष्टैःसचपुष्पितउच्यते ॥ ८ ॥ समासेनाशुभान्गन्धानेकत्वेनाथवापुमान्। आजिघ्रेद्यस्यगात्रेषुतंविद्यात्पुष्पितंभिषक् ॥ ९ ॥ आप्लुतानाप्लुतेकायेयस्यगन्धाःशुभाशुभाः। व्यत्यासेनानिमित्ताःस्युःसचपुष्पितउच्यते ॥ १० ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें किसी एकएक फूलकी गंध आतीहो वह गंध सुगंधित हो अथवा दुर्गंधित हो परन्तु उसको पुष्पित कहते है। अथवा जिस मनुष्यके शरीरमें एक अथवा अनेक प्रकारकी अशुभ गंध आतीहो उसको भी वैद्य पुष्पित जाने। अथवा जिस मनुष्यके स्नान न करनेपर अथवा स्नान करनेपर भी विनाही कारण अशुभगंध आतीहो उसको भी पुष्पित कहतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

तद्यथाचन्दनकुष्ठतगरागुरुणीमधु। माल्यमूत्रपुरीषेवामृतानिकुणपानिवा ॥ ११ ॥ येचान्येविविधात्मानोगन्धाविविधयोनयः। तेऽप्यनेनानुमानेनविज्ञेयाविकृतिंगताः ॥ १२ ॥ इदश्चाप्यतिदेशार्थलक्षणंगन्धसंश्रयम्। वक्ष्यामोयदभिज्ञायभिषङ्मरणमादिशेत् ॥ १३ ॥

जिसके शरीरमें चंदन, कूट, तगर, अगर, शहद, माला, मूत्र, मल और मुर्देकीसी तथा अनेक प्रकारकी अनेक कारणोंवाली गंध आतीहो वह मनुष्य भी विकृतिको प्राप्तहुआ जानलेना चाहिये। इसप्रकार अनुमान द्वारा गंधज्ञानसे मरणके लक्षण जाननेके लिये यह निर्देश किया गयाहै और भी गंधाश्रित लक्षणोंको कथन करतेहैं जिनको जानकर वैद्य मनुष्यके मृत्युका कथनकर सकताहै ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

गंधका ज्ञान।

विनाऽनिमित्तं विदुरोयस्यगन्धोगात्रेषुदृश्यते।
इष्टोवायदिवानिष्टोनसजीवतितांसमाम् ॥ १४ ॥

जिस मनुष्यकी देहमें विनाही कारण पशु पक्षियोंकीसी सुगंधि अथवा दुर्गंधि आनेलगे वह मनुष्य एकवर्षमें मृत्युको प्राप्त होजाताहै ॥ १४ ॥

एतावद्गन्धविज्ञानंरसज्ञानमतःपरम्।
आतुराणांशरीरेषुवक्ष्यामोविधिपूर्वकम् ॥ १५ ॥

इसप्रकार गधके विज्ञानको वर्णन करचुके अब इससे आगे रसके ज्ञानको कथन करतेहै, जिसप्रकार रोगियोंके शरीरमें विधिपूर्वक रस जानना चाहिये ॥ १९ ॥

रसज्ञान।

योरस.प्रकृतिस्थानानराणादेहसम्भवः।
सएषाचरमेकालेविकारान्भजतेद्वयम् ॥ १६ ॥

जो रस प्रकृतिस्थ मनुष्योंकी देहमें उत्पन्न होताहै वह मरनेके समय दो प्रकारकी विकृतिको धारण करताहै ॥ १६ ॥

कश्चिदेवास्यवैरस्यमत्यर्थमुपपद्यते।
स्वादुत्वमपरश्चापिविपुलभजतेरसः ॥ १७ ॥

कोई रस तो अत्यंतही विरसताको प्राप्त होजाताहै और कोई अत्यत भारी स्वादुताको प्राप्त होजाताहै। यह मरणके समय रसके दो भेद होतेहै ॥ १७ ॥

तमनेनानुमानेनविद्याद्विकृतिमागतम्।
मनुष्योहिमनुष्यस्यकथंरसमवाप्नुयात् ॥ १८ ॥

मनुष्य मनुष्यके शरीरके रसको किसप्रकार जान सकताहै सो कहते हैं कि शरीरके विकृतहुए रसको इसप्रकार अनुमानसे जाने कि मनुष्यके मरणासन्न होनेसे जब शरीरका रस विकृत होजाताहै अर्थात् बहुत बदजायका होजाताहै ॥ १८ ॥

विरसताका ज्ञान।

मक्षिकाश्चैवयूकाश्चदशाश्चमशकै सह।
विरसादपसर्पन्तिजन्तो कायान्मुमूर्षत. ॥ १९ ॥

तो उसके शरीरपर मक्खी, जूआँ, दंश, मच्छर आदि कोई भी स्पर्श नहीं करते अर्थात् अलग होजातेहै ॥ १९ ॥

मधुरताका ज्ञान।

अत्यर्थरसिककायकालपक्वस्यमक्षिका।
अपिस्नातानुलिप्तस्यभृशमायान्तिसर्वश ॥ २० ॥

तथा जिसके शरीरमें कालके पकजानेसे अर्थात् मरणासन्न समयमें रस अत्यत सुस्वादु होजाताहै तो वह मनुष्य यदि स्नान आदिकर और चदनका लेपनकरनेसे शुद्ध भी हो तो भी उसके शरीरपर चारों ओरसे बहुतही मक्खियें, मच्छर आ आकर पड़तेहै ॥ २० ॥

लक्षणोंसे पुष्पित समझे और वह मनुष्य एकवर्षके अन्दर निश्चयही देहको त्याग कर देताहै ॥ ६ ॥ ७ ॥

एवमेकैकशः पुष्पैर्यस्यगन्ध समोभवेत् । इष्टैर्वायदिवानिष्टै सचपुष्पितउच्यते ॥ ८ ॥ समासेनाशुभान्गन्धानेकत्वेनाथवापुमान् । आजिघ्रेद्यस्यगात्रेपुतविद्यात्पुष्पितंभिषक् ॥ ९ ॥ आप्लुतानाप्लुतेकायेयस्यगन्धाःशुभाशुभाः । व्यत्यासेनानिमित्ताःस्यु सचपुष्पितउच्यते ॥ १० ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें किसी एकाक फूलकी गध आतीहो वह गध सुगधित हो अथवा दुर्गंधित हो परन्तु उसको पुष्पित कहते हैं । अथवा जिस मनुष्यके शरीरमें एक अथवा अनेक प्रकारकी अशुभ गध आतीहो उसको भी वैद्य पुष्पित जाने । अथवा जिस मनुष्यके स्नान न करनेपर अथवा स्नान करनेपर भी विनाही कारण अशुभगध आतीहो उसको भी पुष्पित कहतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

तद्यथाचन्दनकुष्ठतगरागुरुणीमधु । माल्यमूत्रपुरीषेवामृतानि कुणपानिवा ॥ ११ ॥ येचान्येविविधास्मानोगन्धाविविधयोनय । तेऽप्यनेनानुमानेनविज्ञेयाविकृतिंगता. ॥ १२ ॥ इदश्चाप्यतिदेशार्थलक्षणगन्धसश्रयम् । वक्ष्यामोयदभिज्ञायभिषङ्मरणमादिशेत् ॥ १३ ॥

जिसके शरीरमें चदन, कूट, तगर, अगर, शहद, माला, मूत्र, मल और मुर्देकीसी तथा अनेक प्रकारकी अनेक कारणावाली गंध आतीहो वह मनुष्य भी विकृतिको प्राप्तहुआ जानलेना चाहिये । इसप्रकार अनुमान द्वारा गंधस्थानसे मरणके लक्षण जाननेके लिये यह निरूश किया गयाहै और भी गधाश्रित लक्षणोंको कथन करतेहैं जिनको जानकर वैद्य मनुष्यके मृत्युका कथनकर सकताहै ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

गधका ज्ञान ।

नियोनिर्विद्गुरोयस्यगन्धोगात्रेपुदृश्यते ।
इष्टोवायदिवानिष्टोनसजीवतितासमाम् ॥ १४ ॥

जिस मनुष्यकी देहमें विनाही कारण पशु पक्षियोंकीसी सुगधि अथवा दुर्गंधि आनेलगे वह मनुष्य दर्शवर्षमें मृत्युको प्राप्त होजाताहै ॥ १४ ॥

एतावद्गन्धविज्ञानरसज्ञानमत परम् ।
आतुराणाशरीरेषुवक्ष्यामोविधिपूर्वकम् ॥ १५ ॥

इसप्रकार गधके विज्ञानको वर्णन करचुके अव इससे आगे रसके ज्ञानको कथन करतेहै, जिसप्रकार रोगियोंके शरीरमें विधिपूर्वक रस जानना चाहिये ॥ १५ ॥

रसज्ञान।

योरस.प्रकृतिस्थानानराणादेहसम्भवः ।
सएपाचरमेकालेविकारान्भजतेद्वयम् ॥ १६ ॥

जो रस प्रकृतिस्थ मनुष्योंकी देहमे उत्पन्न होताहै वह मरनेके समय दो प्रकारकी विकृतिको धारण करताहै ॥ १६ ॥

कश्चिदेवास्यवैरस्यमत्यर्थमुपपद्यते ।
स्वादुत्वमपरश्चापिविपुलभजतेरसः ॥ १७ ॥

कोई रस तो अत्यतही विरसताको प्राप्त होजाताहै और कोई अत्यत भारी स्वादुताको प्राप्त होजाताहै । यह मरणके समय रसके दो भेद होतेहै ॥ १७ ॥

तमनेनानुमानेनविद्याद्विकृतिमागतम् ।
मनुष्योहिमनुष्यस्यकथरसमवाप्नुयात् ॥ १८ ॥

मनुष्य मनुष्यके शरीरके रसको किसप्रकार जान सकताहै सो कहते हैं कि शरीरके विकृतहुए रसको इसप्रकार अनुमानसे जाने कि मनुष्यके मरणासन्न होनेसे जब शरीरका रस विकृत होजाताहै अर्थात् वहुत वदजायका होजाताहै ॥ १८ ॥

विरसताका ज्ञान।

मक्षिकाश्चैवयूकाश्चदशाश्चमशकै सह ।
विरसादपसर्पन्तिजन्तो कायान्मुमूर्पत ॥ १९ ॥

तो उसके शरीरपर मक्खी, जूआँ, दश, मच्छर आदि कोई भी स्पर्श नहीं करते अर्थात् अलग होजातेहै ॥ १९ ॥

मधुरताका ज्ञान।

अत्यर्थरसिकंकायकालपक्वस्यमक्षिका ।
अपिस्नातानुलिप्तस्यभृशमायान्तिसर्वश ॥ २० ॥

तथा जिसके शरीरमें कालके पकजानेसे अर्थात् मरणासन्न समयमे रस अत्यत गुरुस्वादु होजाताहै तो वह मनुष्य यदि स्नान आदिकर और चदनका लेपनकरनेसे शुद्ध भी हो तो भी उसके शरीरपर चारों ओरसे बहुतसी मक्खियें, मच्छर आ आकर पडतेहै ॥ २० ॥

तत्रश्लोकः ।

यान्येतानिमयोक्तानिलिङ्गानिरसगन्धयोः ।
पुष्पितस्यनरस्यैते फलंमरणमादिशेत् ॥ २१ ॥
इति चरकसं० इन्द्रि० पुष्पितकमिंद्रियं समाप्तम् ॥ २ ॥

यहापर श्लोक है-कि जो वैद्य इन हमारे कहेहुए रस और गधके लक्षणोंसे पुष्पित (मरणासन्न) मनुष्यके लक्षणोंको जानलेताहै वह मृत्युके लक्षणोंको कथन कर सकताहै ॥ २१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० इन्द्रियस्थाने भाषाटीकायां पुष्पितमिन्द्रियनाम द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्याय ।

अथात परिमर्पणीयमिन्द्रियव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेय ॥

अब हम परिमर्पणीय इन्द्रियाध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

वर्णेस्वरेचगन्धेचरसेचोक्तपृथक्पृथक् ।
लिङ्गमुमूर्पतासम्यक्स्पर्शेप्वपिनिबोधत ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! वर्ण, स्वर और गध तथा रसविज्ञानसे मरणासन्न मनुष्योंके लक्षण कथन किये गयेहैं । अब स्पर्शसे भी मरनेवाले मनुष्योंके लक्षणोंको श्रवणकरो ॥१॥

स्पर्शप्राधान्येनआतुरस्यायुप प्रमाणविशेपंजिज्ञासु प्रकृतिस्थेनपाणिनाकेवलमस्यशरीरस्पृशेत् । परिमर्पयेद्वान्येन ॥ २ ॥

रोगीको स्पर्श द्वारा उसकी आयुका विशेपरूपसे प्रमाण जाना जासक्ताहै इसलिये रोगीकी आयु जाननेकी इच्छावाला रोगरहित मनुष्यके हाथसे वा उ इसके शरीरका स्पर्श करावे अथवा स्वय करे ॥ २ ॥

स्पर्शके लक्षण ।

परिमृपतातुखल्वातुरशरीरमिमेभावास्तत्रावबोद्धव्याः । तद्यथा सततस्पन्दनानाशरीरोद्देशानास्तम्भ । नित्योष्मणांशीतीभावः । मृदूनांदारुणत्वम् । श्लक्ष्णानांखरत्वम् । सतामसद्भाव सन्धीनांस्रंसभ्रंशच्यवनानि । मांसशोणितयोर्गतीभाव । दारुणत्वस्वेदानुबन्ध स्तम्भौनायच्चान्यदपिकिञ्चिदशविकृतमनिमित्तस्यादिति लक्षणस्पृश्यानांभावानाम् ॥ ३ ॥

स्पर्शकरनेवाले मनुष्यको स्पर्शद्वारा रोगीके यह भाव जानने चाहिये जैसे—जो शरीरके अग निरतर फडकनेवाले हों उनका स्थिर होकर स्तभ होजाना। जो अग नित्य गरम रहनेवाले है उनका शीत होजाना। जो नरम हों उनका कठिन होजाना। जो चिकने हो उनका खरदरे होजाना। जिनका जिसस्थानमें होना उचित हो उनका उसस्थानमें न रहना। सधियोंका ढीला पडजाना या बिगडजाना। तथा नष्ट होजाना। मास और रक्तका देहसे हीन होजाना। शरीरका कठिन होजाना। पसीना अधिक आना अथवा बिल्कुल न आना। शरीरका स्तभ होजाना। इनके सिवाय बिनाही कारण एकाएकी स्पृश्य भावोंके जो लक्षण उत्पन्न हों उनको भी जानलेना चाहिये। इन स्पर्शजनित लक्षणोंसे रोगीको कालग्रस्त जानना चाहिये ॥ ३ ॥

विस्तारपूर्वक स्पर्शका लक्षण।

तद्व्यासतोऽनुव्याख्यास्याम। तस्यचेत्परिदृश्यमानंपृथक्त्वेनपादजङ्घोरुस्फिगुदरपार्श्वपृष्ठपिण्डिकापाणिग्रीवाताल्वोष्ठललाटंस्विन्नशीतमस्तब्धदारुणमीतमासशोणितवास्यात्परासरयंपुरुषोनचिरात्कालकरिष्यतीतिविद्यात् ॥ ४ ॥

उन्हीं स्पृश्यभावोंको विस्तारपूर्वक वर्णन करतेहै। यदि उस रोगीके सपूर्ण दृश्यमान अगोंको एक एककर देखाजाय कि पाव, जघा, घुटना, पार्श्वभाग, कुल्हे, गुदा, उदर, पीठका वासा, हाथ, गर्दन, तालु, होठ और ललाट यह शीतल, पसीनेयुक्त, स्तब्ध, कठोर, मास और रक्तरहित होजायँ तो इस गतायु मनुष्यको तत्काल मरजानेवाला जानना चाहिये ॥ ४ ॥

तस्यचेत्परिमृश्यमानानिपृथक्त्वेनगुल्फजानुवक्षणगुदवृषणमेढ्रनाभ्यसस्तनमणिकहनुस्पर्शुकानासिकाकर्णाक्षिभ्रूशखादीनिस्रस्तानिव्यस्तानिच्युतानिस्थानेभ्य स्यु.परासुरयपुरुषोनचिरात्कालकरिष्यतीतिविद्यात् ॥ ५ ॥

यदि रोगीके यह अग पृथक २ देखे जायँ जैसे गुल्फ, घुटने, वक्षण, गुदा, अण्डकोष, लिंग, नाभि, कधे, स्तन, दोनों हाथोंके पहुँचे, ठोढी, पसली, नाक, कान, नेत्र, भौंह और कनपटी आदि अग अलग २ अपने स्थानसे छूटजायँ और हटजायँ तो उस मनुष्यको गतायु अर्थात् शीघ्र मरनेवाला जानना चाहिये ॥ ५ ॥

तथास्योच्छ्वासमन्यादन्तपक्ष्मचक्षु केशलोमोदरनखागुलीरालक्षयेत्। तस्यचेदुच्छ्वासोऽतिदीर्घ अतिह्रस्वोवास्यात्परासुरितिविद्यात्।

तत्रश्लोकः।

यान्येतानिमयोक्तानिलिङ्गानिरसगन्धयो·।
पुष्पितस्यनरस्यैते फलंमरणमादिशेत् ॥ २१ ॥

इति चरकस० इन्द्रि० पुष्पितकमिंद्रियं समाप्तम् ॥ २ ॥

यहापर श्लोक है-कि जो वैद्य इन हमारे कहेहुए रस और गधके लक्षणोंसे पुष्पित (मरणासन्न) मनुष्यके लक्षणोंको जानलेताहै वह मृत्युके लक्षणोंको कथन कर सकताहै ॥ २१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० इन्द्रियस्थाने भाषाटीकायां पुष्पितमिन्द्रियनाम द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः।

अथातःपरिमर्षणीयमिन्द्रियव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेय ॥

अव हम परिमर्षणीय इन्द्रियाध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे।

वर्णेस्वरेचगन्धेचरसेचोक्तपृथक्पृथक्।
लिङ्गमुमूर्षतासम्यक्स्पर्शेप्यपिनिबोधत ॥ १ ॥

हे अग्निवेश! वर्ण, स्वर और गध तथा रसविज्ञानसे मरणासन्न मनुष्योंके लक्षण कथन किये गयेहैं। अब स्पर्शसे भी मरनेवाले मनुष्योंके लक्षणोंको श्रवणकरो ॥१॥

स्पर्शप्राधान्येनआतुरस्यायुष प्रमाणविशेषजिज्ञासु प्रकृतिस्थेनपाणिनाकेवलमस्यशरीरस्पृशेत्। परिमर्षयेद्वान्येन ॥ २ ॥

रोगीको स्पर्श द्वारा उसकी आयुका विशेषरूपसे प्रमाण जाना जासकताहै इसलिये रोगीकी आयु जाननेकी इच्छावाला रोगरहित मनुष्यके हाथसे केवल इसके शरीरका स्पर्श करावे अथवा स्वय करे ॥ २ ॥

स्पर्शके लक्षण।

परिमृषतातुखलुआतुरशरीरमिमेभावास्तत्रावबोद्धव्याः। तद्यथा सततस्पन्दनानाशरीरोद्देशानास्तम्भ। नित्योष्मणाशीतीभावः। मृदूनादारुणत्वम्। श्लक्ष्णानाखरत्वम्। सतामसद्भाव·सन्धीनास्रंसभ्रंशच्यवनानि। मासशोणितयोर्वीतीभाव। दारुणत्वस्वेदानुबन्ध स्तम्भोवायच्चान्यदपिकिंचिद्भृशविकृतमनिमित्तस्यादिति लक्षणस्पृश्यानाभावानाम् ॥ ३ ॥

स्पर्शकरनेवाले मनुष्यको स्पर्शद्वारा रोगीके यह भाव जानने चाहिये जैसे-जो शरीरके अग निरतर फडकनेवाले हों उनका स्थिर होकर स्तभ होजाना। जो अग नित्य गरम रहनेवाले है उनका शीत होजाना। जो नरम हों उनका कठिन होजाना। जो चिकने हों उनका खरदरे होजाना। जिनका जिसस्थानमें होना उचित हो उनका उसस्थानमें न रहना। सधियोंका ढीला पडजाना या विगडजाना। तथा नष्ट होजाना। मास और रक्तका देहसे हीन होजाना। शरीरका कठिन होजाना। पसीना अधिक आना अथवा बिल्कुल न आना। शरीरका स्तभ होजाना। इनके सिवाय विनाही कारण एकाएकी स्पृश्य भावोंके जो लक्षण उत्पन्न हों उनको भी जानलेना चाहिये। इन स्पर्शजनित लक्षणोंसे रोगीको कालग्रस्त जानना चाहिये ॥ ३ ॥

विस्तारपूर्वक स्पर्शका लक्षण।

तद्व्यासतोऽनुव्याख्यास्याम। तस्यचेत्परिदृश्यमान पृथक्कृत्वेनपादजङ्घोरुस्फिगुदरपार्श्वपृष्ठपिकापाणिग्रीवाताल्वोष्ठललाटस्विन्नशीतप्रस्तब्धदारुणवीतमासशोणितवास्यात्परासरयपुरुषोनचिरात्कालकरिष्यतीतिविद्यात् ॥ ४ ॥

उन्हीं स्पृश्यभावोंको विस्तारपूर्वक वर्णन करतेहैं। यदि उस रोगीके सपूर्ण दृश्यमान अगोंको एक एककर देखाजाय कि पाव, जघा, घुटना, पार्श्वभाग, कुल्हे, गुदा, उदर, पीठका वासा, हाथ, गर्दन, तालु, होठ और ललाट यह शीतल, पसीनेयुक्त, स्तब्ध, कठोर, मास और रक्तरहित होजायँ तो इस गतायु मनुष्यको तत्काल मरजानेवाला जानना चाहिये ॥ ४ ॥

तस्यचेत्परिमृश्यमानानिपृथक्त्वेनगुल्फजानुवक्षणगुदवृषणमेढ्नाभ्यसस्तनमणिकहनुस्पर्शुकानासिकाकर्णाक्षिभ्रूशखादीनिस्रस्तानिव्यस्तानिच्युतानिस्थानेभ्य स्यु परासुरयंपुरुषोनचिरात्कालकरिष्यतीतिविद्यात् ॥ ५ ॥

यदि रोगीके यह अग पृथक २ देखे जायँ जैसे गुल्फ, घुटने, वक्षण, गुदा, अण्डकोष, लिंग, नाभि, कधे, स्तन, दोना हाथोंके पहुँचे, ठोडी, पसली, नाक, कान, नेत्र, भौंह और कनपटी आदि अग अलग २ अपने स्थानसे छूटजायँ और हटजायँ तो उस मनुष्यको गतायु अर्थात् शीघ्र मरनेवाला जानना चाहिये ॥ ५ ॥

तथास्योच्छ्वासमन्यादन्तपक्ष्मचक्षु केशलोमोदरनखांगुलीरालक्षयेत्। तस्यचेदुच्छ्वासोऽतिदीर्घ अतिह्रस्वोवास्यात्परासुरितिविद्यात्।

तस्यचेन्मन्येपरिदृश्यमानेनस्पन्देयातापरासुरितिविद्यात् । तस्य चेद्दन्ताःप्रतिकीर्णाश्वेतर्जातशर्करा'स्यु परासुरितिविद्यात् । तस्य चेत्पक्ष्माणिजटावद्धानिस्युःपरासुरितिविद्यात् । तस्यचेच्चक्षुषीप्र-कृतिहीनेविकृतियुक्तेअत्युत्पिण्डितेअतिप्रविष्टेअतिजिह्मेअतिविष-मेअतिप्रस्रुतेअतिविमुक्तवन्धनेसततोन्मेषितेसततनिमेषितेनिमे षोन्मेषातिप्रवृत्तविभ्रान्तदृष्टिकेविपरीतदृष्टिकेहीनदृष्टिकेव्यस्तदृ-ष्टिकेनकुलान्धेकपोतान्धेअलातवर्णेकृष्णनीलपीतश्यावताम्रहरि-तहारिद्रशुक्लवैकारिकाणावर्णानामन्यतमेनाभिसंप्लुतेवास्यातापरासुरितिविद्यात् ॥ ६ ॥

तथा रोगीके उच्छ्वास, ठोडी, दात, पलकें, नेत्र, केश, लोम, उदर, नख और अंगुली इनकी भी परीक्षा करनी चाहिये । यदि रोगीका उच्छ्वास अत्यत लवा या बहुतही ह्रस्व चलनेलगे तो रोगीको प्राणरहित होनेवाला जानना चाहिये । जिस रोगीकी दोनों तरफसे ठोढीकी नोंडे फडकनेलगे और ठोडी हिलनेलगे उस रोगीको भी गतायु जानना चाहिये । जिस रोगीके दात अधिक मेले विखरेहुए और सफेद शर्करायुक्त हों उसको भी शीघ्र मृत्युग्रस्त होनेवाला जानना चाहिये । जिस रोगीकी पलकें जटाके समान वधजाय वह भी गतायु होताहै । जिस रोगीके नेत्र अपने स्वभावसे हीन होकर विकृत होजायँ अत्यत वाहर निकल आवें अथवा अधिक भीतरको वढजायँ या टेढे होजायँ या एक वडा एक छोटा होजाय अथवा एक वद होजाय एक खुला रहे एवम् अत्यत पानी वहना, वहुत ही शिथिल होजाना विलकुल वद होजाना या खुलेही रहना या थोडी २ देरमें खुलना या वद होवें अथवा फटेसे होजायँ या भयानक रीतिसे देखे या दृष्टिहीन होजायँ या अपूर्वदृष्टि होजाय, दिनमें सव वस्तुए साधारण देखना अथवा सव वस्तुयें काली देखना अगारके समान काले, नीले, पीले, श्याम, ताम्रवर्ण, हरे, हल्दीके रंगके या सफेद इन सव वर्णोंमेंसे अत्यत विकृत होकर किसी वर्णका होना यह सव लक्षण गतायु मनुष्यके हैं ॥ ६ ॥

केशपरीक्षा ।

अथास्यकेशलोमान्यायच्छेत्तस्यचेत्केशलोमान्यायम्यमानानिप्र-लुच्येरन्नचेद्वेदयेत्परासुरितिविद्यात् ॥ ७ ॥

रोगी मनुष्यके केश और रोमोंकी भी परीक्षा करनी चाहिये । जिस रोगीके केश

या रोम खींचनेसे उखडजायँ और उस रोगीको किंचित् पीडा भी प्रतीत न हो उसको गतायु जानना ॥ ७ ॥

उदरपरीक्षा ।

तस्यचेदुदरेशिरा.प्रदृश्येरन् , श्यावताम्रनीलहारिद्रशुक्लावास्यु.परासुरितिविद्यात् ॥ ८ ॥

जिस रोगीके पेटपर काली, लाल, नील, पीत और श्वेत नस दीखनेलगें उसको भी गतप्राण जानना चाहिये ॥ ८ ॥

नखपरीक्षा ।

तस्यचेन्नखावीतमांसशोणिता पक्वजाम्बववर्णाःस्यु'परासुरितिविद्यात् ॥ ९ ॥

जिस रोगीके नख मांसरहित तथा रुधिररहित होजायँ और पकेहुए जामुनके समान कालेवर्णके होजायँ उसको भी गतप्राण जानना चाहिये ॥ ९ ॥

अंगुलीपरीक्षा ।

अथास्यांगुलीरायच्छेत्तस्यचेदंगुलयआयम्यमानानचेत्स्फुटेयु.परासुरितिविद्यात् ॥ १० ॥

इसके उपरांत इसकी अंगुलियोंकी भी परीक्षा करनी चाहिये । यदि रोगीकी अंगुलियें खींचनेसे शब्द नहीं करें तो उस रोगीको भी मरणासन्न जानना चाहिये॥१०॥

भवतिचात्र ।

एतान्स्पृश्यान्बहून्भावान्य'स्पृशन्नावबुध्यते ।
आतुरेनससम्मोहमायुर्ज्ञानस्यगच्छति ॥ ११ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रियस्थाने परिमर्शनीयमिंद्रियं समाप्तम्॥३॥

यहांपर अध्यायके उपसंहारमें श्लोक हैं जो वैद्य इन अनेक प्रकारके स्पृश्यभावोंको स्पर्शद्वारा जानलेताहै वह रोगीके आयुज्ञानमें मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ ११ ॥

इति श्रीमहर्षिचर० शारी० स्था० भाषाटी० भतुल्यगोत्रीयशारीर नाम तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्याय ।

अथात इन्द्रियानीकमिंद्रियंव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अव हम इद्रियानीक इद्रियकी व्याख्या करतेहै इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

इन्द्रियाणियथाजन्तोःपरीक्षेतविशेषवित्।
ज्ञातुमिच्छन्भिषङ्मानमायुपस्तन्निवोधमे ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! बुद्धिमान् वैद्यको आयुका प्रमाण जाननेकी इच्छासे जिसप्रकार मनुष्यके इद्रियोंकी परीक्षा करना चाहिये सो तुम श्रवण करो ॥ १ ॥

अनुमानात्परीक्षेतदर्शनादीनितत्त्वत॰ ।
अद्धाहिविदितज्ञानमिन्द्रियाणामतीन्द्रियम् ॥ २ ॥
स्वर्थेभ्योविकृतयस्यज्ञानमिन्द्रियसम्भवम् ।
आलक्ष्येतानिमित्तेनलक्षणमरणस्यतत् ॥ ३ ॥

मनुष्यकी दर्शनादिक सपूर्ण इद्रियोंके तत्त्वको अनुमान द्वारा परीक्षा करनी चाहिये जिसको अकस्मात् अतीन्द्रिय ज्ञान इन्द्रियोंद्वारा साक्षात् होनेलगे । अथवा जिस मनुष्यके इद्रियोंका ज्ञान विनाकारणही सहसा विकृत होजाय तो यह लक्षण मृत्युका पूर्वरूप है ॥ २ ॥ ३ ॥

इत्युक्तलक्षणसर्वमिन्द्रियेष्वशुभोदयम् ।
तदेवतुपुनर्भूयोविस्तरेणनिवोधत ॥ ४ ॥

इसप्रकार सक्षेपसे सब इन्द्रियोमें होनेवाले अशुभ लक्षण कथन कियेगयेहैं । अब उनको ही विस्तारसे वर्णन करतेहै ॥ ४ ॥

नेत्रइन्द्रियद्वारा परीक्षा ।

घनीभूतमिवाकाशमाकाशमिवमेदिनीम् ।
विगीतंह्युभयह्येतत्पश्यन्मरणमृच्छति ॥ ५ ॥

जिस मनुष्यको आकाश पृथ्वीके समान घनीभूत (कठोर) दिखाई देवे और पृथ्वी आकाशके समान खाली दिखाई देनेलगे इसप्रकार विपरीतभाव दोनोंमें प्रतीत हो तो वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥

यस्यदर्शनमायातिमारुतोऽम्बरगोचर ।
अग्निर्नायातिवादीप्तस्तस्यायु.क्षयमादिशेत् ॥ ६ ॥

जिस रोगीको आकाशमें विचरनेवाली वायु मूर्तिमान् दिखाई देनेलगे अथवा प्रज्वलित अग्नि दिखाई न देवे उसकी शीघ्र मृत्यु होजाताहै ॥ ६ ॥

जलेसुविमलेजालमजालावततेतथा।
स्थितेगच्छतिवादृष्ट्वाजीवितात्परिमुच्यते ॥ ७ ॥

जिस रोगीको निर्मल जलमें जिसमें जाल न पडाहो उसमें जाल प्रतीत हो और जो स्थिरजलको चचल समझे वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥

जाग्रत्पश्यतिय प्रेतान्रक्षांसिविविधानिच ।
अन्यद्वाप्यद्भुतकिंचिन्नसजीवितुमर्हति ॥ ८ ॥

जिस रोगीको जाग्रत अवस्थामेंही अनेक प्रकारके प्रेत और राक्षस दिखाई देनेलगें अथवा अन्य इसीप्रकार अद्भुत सामान प्रतीत होनेलगें वह जीता नहीं रहसकता अर्थात् मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

योऽग्निंप्रकृतिवर्णस्थनीलपश्यतिनिष्प्रभम् ।
कृष्णवायदिवाशुक्लनिशावसतिससमीम् ॥ ९ ॥

जो रोगी अपने ठीक स्वभाव और वर्णमें स्थित अग्निको नीले रग और कान्ति-रहित अथवा कृष्ण या श्वेत देखे वह आठ दिनके बीचमें मृत्युको प्राप्त होताहै ॥९॥

मरीचीनसतोमेघान्मेघान्वाप्यसतोऽम्बरे ।
विद्युतोवाविनामेघे पश्यन्मरणमृच्छति ॥ १० ॥

जिस रोगीको विना प्रकाशके आकाशमें प्रकाश प्रतीत होताहो अथवा विनाही बादलोंके आकाश मेघाच्छन्न प्रतीत होताहो अथवा विनाही मेघोंके बिजली चमकती दिखाई देतीहो वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥

मृण्मयीमिवय पात्रींकृष्णाम्बरसमावृताम् ।
आदित्यमीक्षतेशुद्धंचन्द्रवानसजीवति ॥ ११ ॥

जिस रोगीको स्वच्छ सूर्य अथवा चन्द्रमा काले कपडेसे लिपटाहुआ या मट्टीके पात्रके समान दिखाई देवे वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥

अपर्वणियदापश्येत्सूर्य्याचन्द्रमसोर्ग्रहम् ।
अव्याधितोव्याधितोवातदन्ततस्यजीवनम् ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यको पर्वके विना ही सूर्य और चन्द्रमाका ग्रहण दिखाई देताहो वह रोगी हो अथवा नीरोगी हो अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

नक्तसूर्य्यमहश्चन्द्रमनग्नौधूममुत्थितम् ।
अग्निवानिष्प्रभरात्रौदृष्ट्वामरणमृच्छति ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यको रात्रिको सूर्य और दिनमें चन्द्रमाका प्रकाश दिखाई देताहो और अग्निके विना ही धुआँ उठता दिखाई देताहो अथवा रात्रिके समय प्रकाशमान अग्नि भी प्रभारहित दिखाई देतीहो वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥

प्रभावतःप्रभाहीनान्निष्प्रभावान्प्रभावतः ।
नराविलिङ्गान्पश्यन्तिभावान्प्राणाञ्जिहासव ॥ १४॥

जिस मनुष्यको प्रकाशमान वस्तुयें निस्तेज प्रतीत होतीहों और प्रकाशरहित प्रकाशमान दिखाई देती हों । इसी प्रकार अन्य द्रव्योंमे भी विपरीत लक्षणाको देखे उस मनुष्यकी अवश्य मृत्यु होतीहै ॥ १४ ॥

व्याकृतानिविवर्णानिविसंख्योपगतानिच ।
विनिमित्तानिपश्यन्तिरूपाण्यायु क्षयेनरा. ॥ १५ ॥

-जिस रोगीकी आयु नष्ट होगयीहो वह संपूर्ण वस्तुओंको विकृतरूपसे विकृतवर्ण-वाली और विपरीत संख्यासेभी तथा कारणसे विपरीत ही देखताहै ॥ १५ ॥

यश्चपश्यत्यदृश्यान्वैदृश्यान्यश्चनपश्यति ।
तावुभौपश्यत. क्षिप्रयमक्षयमसंशयम् ॥ १६ ॥

जो मनुष्य अदृश्य वस्तुओंको देखे और जो दृश्योंको भी न देखे यह दोनों निश्चय मृत्युको प्राप्त होतेहै ॥ १६ ॥

कर्णेन्द्रियद्वारा परीक्षा ।

अशब्दस्यचय श्रोताशब्दान्यश्चनबुध्यते ।
द्वावप्येतौयथाप्रेतौतथाज्ञेयौविजानता ॥ १७ ॥

जो रोगी शब्दोंको श्रवण न करे और जो विना ही शब्द होनेके शब्दोंको सुने यह दोनों मृत्युके मुखमें पडे जानना चाहिये ॥ १७ ॥

संवृत्याङ्गुलिभि कर्णौज्वालाशब्दयआतुर॰ ।
नशृणोतिगतासुतंबुद्धिमान्परिवर्जयेत् ॥ १८ ॥

जो रोगी अपने दोनों कानोंको अंगुलियोंसे दबाकर बंदकर लेनेपर सॉय सॉय सुनाई पडनेवाले अनाहत शब्द जो होताहै उसको न सुनसके उसकी अवश्य मृत्यु होतीहै । बुद्धिमान् वैद्य ऐसे रोगियोंको मृतप्राय समझकर त्याग देवे ॥ १८ ॥

नासिकाद्वारा परीक्षा ।

विपर्य्ययेणयोविद्याद्गंधानांसाध्वसाधुताम् ।
नवातान्सर्वशोविद्याच्चविद्याद्विगतायुषम् ॥ १९ ॥

जो रोगी उत्तम सुगंधिको दुर्गंध और दुर्गंधको उत्तम सुगंध प्रतीतकरे अथवा बिल्कुल गंधज्ञानरहित होजाय उसको गतायु जानना चाहिये ॥ १९ ॥

त्वचाद्वारा परीक्षा ।

योरसान्नविजानातिनवाजानातितत्त्वत ।
मुखपाकादृतेपक्वतमाहुःकुशलानरम् ॥ २० ॥

जिस रोगीको विना किसी मुखके विकारके किसी प्रकारके भी मीठे, खट्टे रसका ज्ञान हो अथवा रसके तत्त्वको न जानसके उस मनुष्यको मरणासन्न जानना चाहिये ॥ २० ॥

उष्णाञ्छीतान्खराञ्श्लक्ष्णान्मृदूनपिचदारुणान् ।
स्पर्शान्स्पृष्ट्वाततोऽन्यत्वंमुमूर्षुस्तेपुमन्यते ॥ २१ ॥

जो मनुष्य उष्ण द्रव्योंको शीतल, खरदरे द्रव्योंको चिकने, नरम द्रव्योंको कठोर इनके सिवाय अन्य भी स्पृश्य वस्तुओंको स्पर्शकर विपरीत प्रतीत करे उसको भी मरनेवाला जानना चाहिये ॥ २१ ॥

अन्तरेणतपस्तीव्रयोगवाविधिपूर्वकम् ।
इन्द्रियैरधिकपश्यन्पञ्चत्वमधिगच्छति ॥ २२ ॥

जो मनुष्य तीव्र तपस्याके विना अथवा विधिवत् योगसाधन विना अतींद्रिय विषयोंको जानने लगजाय, अथवा इन्द्रियोंसे देखने लगजाय वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥

इन्द्रियाणामृतेदृष्टेरिन्द्रियार्थान्नपश्यति ।
विपर्य्ययेणयोविद्यात्तंविद्याद्विगतायुषम् ॥ २३ ॥

जो मनुष्य दृष्टिके विना अन्य इन्द्रियोंके शब्दादि ज्ञानको न जानसके परन्तु दृष्टिद्वारा अन्य इन्द्रियोंके विषयोंको भी जानने लगजाय अथवा संपूर्ण इन्द्रियोंके ज्ञानको विपरीत भावसे जाने वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥

स्वस्था प्रज्ञाविपर्य्यासैरिन्द्रियार्थेषुवैकृतम् ।
पश्यन्तियेऽसद्बहुशस्तेषामरणमादिशेत् ॥ २४ ॥

यदि स्वस्थ मनुष्य भी बुद्धिके विपरीत भावसे संपूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको विपरीत देखे एवम् अच्छेको बुरा और बुरेको अच्छा प्रतीत करे वह भी मरणासन्न जानना चाहिये ॥ २४ ॥

तत्रश्लोकः।

एतदिन्द्रियविज्ञानयःपश्यतियथातथा।
मरणजीवितचैतत्सभिषक्ज्ञातुमर्हति ॥ २५ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रि० इंद्रियानीकमिंद्रिय समाप्तम् ॥ ४ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है-कि जो वैद्य इस इन्द्रियविज्ञानको यथोचित रीतिपर ठीक परीक्षा करना जानता है वही वैद्य मनुष्यके जीवन और मरणको जान सकताहै ॥ २५ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक०इन्द्रिस्थाने भाषाटीकायामिन्द्रियानीकमिन्द्रियंनाम चतुर्थोऽध्याय. ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्याय ।

अथात. पूर्वरूपीयमिंद्रिय व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम पूर्वरूपीय इन्द्रियकी व्याख्या करतेहै इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे।

पूर्वरूपाण्यसाध्यानाविकाराणापृथक्पृथक् ।
भिन्नाभिन्नानिवक्ष्यामोभिषजाज्ञानवृद्धये ॥ १ ॥

वैद्यजनोंके ज्ञानवृद्धिके लिये पृथक २ रोगोंके असाध्य पूर्वरूपोंको अलग २ करके वर्णन करतेहै ॥ १ ॥

पूर्वरूपाणिसर्वाणिज्वरोक्तान्यतिमात्रया।
यविशन्तिविशत्येनमृत्युर्ज्वरपुर सर ॥ २ ॥

यदि ज्वरके सपूर्ण पूर्वरूप बलवान् होकर अधिकतासे जिस रोगीका आश्रय लेवें तो उस रोगीके शरीरमें ज्वरको आगेकर मृत्यु प्रवेश करतीहै ॥ २ ॥

अन्यस्यापिचरोगस्यपूर्वरूपाणियं नरम्।
विशन्त्येतेनकल्पेनतस्यापिमरणध्रुवम् ॥ ३ ॥

अन्य रोगोंमें भी यदि किसी रोगके सपूर्ण पूर्वरूप बलवान् होकर अधिकरूपसे जिस मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करतेहै तो उसकी अवश्य मृत्यु होजातीहै ॥ ३ ॥

पूर्वरूपैकदेशास्तुवक्ष्यामोऽन्यान् सुदारुणान्।
येरोगाननुवध्नन्तिमृत्युर्यैरनुवध्यते ॥ ४ ॥

अब अन्य रोगोंमें भी जो दारुण पूर्वरूप होनेसे रोग मनुष्यकी मृत्युकरदेतेहैं उन पूर्वरूपोंका वर्णन करतेहै ॥ ४ ॥

भिन्न २ मृत्युकारक रोग।

बलञ्चहीयतेयस्यप्रतिश्यायश्चवर्द्धते ।
तस्यनारीप्रसक्तस्यशोषोन्तायोपजायते ॥ ५ ॥

जिस मनुष्यका बल क्षीण होगयाहो और प्रतिश्याय बहुत जोरसे बढाहुआ हो वह मनुष्य यदि स्त्रीसगमें अत्यत आसक्त रहे तो उस मनुष्यको शोषरोग अवश्य नष्ट करदेताहै ॥ ५ ॥

श्वभिरुष्ट्रैःखरैर्वापियातियोदक्षिणादिशम् ।
स्वप्नेयक्ष्माणमासाद्यजीवितसविमुञ्चति ॥ ६ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें कुत्ता, ऊट वा गधेके ऊपर चढकर दक्षिणकी ओर गमन करे उस मनुष्यको राजयक्ष्मा रोग प्रवेशकर उसके जीवनको नष्ट करदेताहै ॥ ६ ॥

प्रेतैःसहपिबेन्मद्यस्वप्नेय कृष्यतेशुना ।
सघोरज्वरमासाद्यनजीवेन्नचसृज्यते ॥ ७ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें प्रेता (मरेहुए) के साथ मिलकर मद्यको पीताहै अथवा जिसको स्वप्नमें कुत्ते घसीटते है उस मनुष्यको घोर ज्वर उत्पन्न होकर नष्ट करदेताहै ॥ ७ ॥

लाक्षारक्ताम्बराभ य पश्यत्यम्बरमन्तिकात् ।
सरक्तपित्तमासाद्यतेनैवान्तायनीयते ॥ ८ ॥

जिस मनुष्यको अपने समीपका आकाश लाखके रगमे रगाहुआसा प्रतीत होवे उस मनुष्यको रक्तपित्त रोग होकर शीघ्र यमलोकको लेजाताहै ॥ ८ ॥

रक्तस्रग्रक्तसर्वांगोरक्तवासामुहुर्हसन् ।
य स्वप्नेह्रियतेनार्य्यासरक्तप्राप्यसीदति ॥ ९ ॥

जिस मनुष्यको स्वप्नमें लाल वस्त्र, लालफूलकी माला पहिनेहुए सपूर्ण लाल अगावाली स्त्री वारवार हसतीहुई आकर हरण करतीहै, उसको रक्तपित्त रोग होकर मृत्युको प्राप्त करदेताहै ॥ ९ ॥

शूलाटोपान्त्रकूजाश्चदौर्बल्यचातिमात्रया ।
नखादिपुचवैवर्ण्यगुल्मेनान्तकरोग्रह ॥ १० ॥

जिस मनुष्यको अत्यंत शूल, अफारा, आंतोंका कूजन, दुर्बलता यह अधिक होजायँ और नखादिकोंमें विवर्णता होजाय उस मनुष्यकी गुल्मरोग द्वारा मृत्यु होजा तीहै ॥ १० ॥

लताकण्टकिनीयस्यदारुणाहृदिजायते ।
स्वप्नेगुल्मस्तमन्तायक्रूरोविशतिमानवम् ॥ ११ ॥

जिसमनुष्यको स्वप्नमें अत्यंत कांटोंसे युक्त बेल अपने गलेमें पडीहुई छातीपर लटकती दिखाई दे उसकी गुल्मरोगसे मृत्यु होजातीहै ॥ ११ ॥

कायेऽल्पमपिसंस्पृष्टसुभृशयस्यदीर्य्यते ।
क्षतानिचनरोहन्तिकुष्ठैर्मृत्युर्हिनस्तितम् ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें थोडासा स्पर्शकरनेसे भी शरीर फटजाय और जो शरीरमें घाव उत्पन्न हो वह रुटे नहीं तो उस मनुष्यकी कुष्ठरोगसे मृत्यु होजातीहै ॥ १२ ॥

नग्नस्याज्यावसिक्तस्यजुह्वतोऽग्निमनर्चिषम् ।
पद्मान्युरसिजायन्तेस्वप्नेकुष्ठैर्मरिष्यत. ॥ १३ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें नग्न होकर संपूर्ण देहमें घी लगा ज्वालारहित अग्निमें हवनकरे अथवा अपने छातीमें कमल उत्पन्न हुआ देखे तो उस मनुष्यकी कुष्ठ रोगसे मृत्यु होतीहै ॥ १३ ॥

स्नातानुलिप्तगात्रेऽपियस्मिन्गृध्नन्तिमक्षिका ।
सप्रमेहेणसस्पर्शंप्राप्यतेनैवहन्यते ॥ १४ ॥

जिस मनुष्यके शरीरपर स्नानकर चंदन आदि लगा लेनेपर भी बहुतसी मक्खियां आकर बैठें उस मनुष्यकी प्रमेह रोगसे मृत्यु होतीहै ॥ १४ ॥

स्नेहबहुविधस्वप्नेचण्डालैःसहयःपिबेत् ।
बुध्यतेसप्रमेहेणस्पृश्यतेऽन्तायमानव ॥ १५ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें चाण्डालोंके साथ मिलकर अनेक प्रकारके घृत, तेल आदिकोंका पान करताहै उसकी प्रमेह रोगसे मृत्यु होतीहै ॥ १५ ॥

ध्यानायासौतथोद्वेगोमोहश्चास्थानसम्भव. ।
अरतिर्बलहानिश्चमृत्युरुन्मादपूर्वक ॥ १६ ॥

जिस मनुष्यको ध्यान, थकावट, घबराहट, भ्रम, उद्वेग और मोह तथा चित्तका न लगना यह सब एकही कालमें उत्पन्न होजायँ उसकी उन्माद रोगसे मृत्यु होती है॥१६॥

आहारद्वेषिणंपश्यल्लुप्तचित्तमुदर्दितम्।
विद्याद्धीरोमुमूर्षुतमुन्मादेनातिपातिना ॥ १७ ॥

जिस मनुष्यको भोजनके सब पदार्थ बुरे प्रतीत होतेहों और ज्ञान जातारहे, उदर्द रोग हो उस मनुष्यको बुद्धिमान उन्माद रोगसे मृत्यु होनेवाला जाने ॥ १७ ॥

क्रोधनंत्रासबहुलंसकृन्प्रहसिताननम्।
मूर्च्छापिपासाबहुलहन्त्युन्मादःशरीरिणम् ॥ १८ ॥

जिस मनुष्यको अत्यत क्रोध, त्रास, और हास्य ये एककालमें ही प्रगट होजावें तथा वारवार मूर्च्छा और प्यासकी अधिकता हो उसकी उन्माद रोगसे मृत्यु होतीहै ॥ १८ ॥

नृत्यन्रक्षोगणैःसार्द्धंय स्वप्नेऽम्भसिसीदति।
सप्राप्यभृशमुन्मादयातिलोकमत परम् ॥ १९ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमे राक्षसोके साथ नाच करता हुआ जलमें डूबजाय वह उन्माद रोगसे ग्रसित होकर परलोकको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥

असत्तम पश्यतिय श्रृणोत्यप्यसतःस्वरान्।
बहून्बहुविधाञ्जाग्रत्सोऽपस्मारेणबध्यते ॥ २० ॥

जिस मनुष्यको विना अधकारके अधकार प्रतीत होताहो और विना ही किसी-प्रकारकी आवाजसे अनेक प्रकारके गायनके स्वराको श्रवण करे वह मनुष्य मृगी-रोगसे मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २० ॥

मत्तनृत्यन्तमाविध्यप्रेतोहरतियनरम्।
स्वप्नेहरतितमृत्युरपस्मारपुरःसर ॥ २१ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमे अपनेको उन्मत्त होकर नाचताहुआ देखे और उस नाचती-हुई अवस्थामें उसको प्रेत उठाकर लेजाव। ऐसा स्वप्न आनेवाले मनुष्यको अप-स्मार (मृगी) रोगको आगेकर मृत्यु प्रवेश करताहै ॥ २१ ॥

स्तुभ्येतेप्रतिबुद्धस्यहनुमन्येतथाक्षिणी।
यस्यतन्नहिरायामोगृहीत्वाहन्त्यसशयम् ॥ २२ ॥

जिस मनुष्यके ठोडी, गर्दन और दोनो नेत्र अकडजावें उसको वहिरायाम नामक वातव्याधि प्राप्त होकर नष्ट करदेतीहै ॥ २२ ॥

शष्कुलीरप्यपूपान्वस्वप्नेखादतियोनर।
सचेत्तादृक्छर्दयतिप्रतिबुद्धोनजीवति ॥ २३ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें पूडियें, और पूआको खाताहै और जागकर उन्हीके समान वमनकर देताहै वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥

एतानिपूर्वरूपाणिय'सम्यगववुद्ध्यते ।
सएपामनुवन्धश्चफलश्चज्ञातुमर्हति ॥ २४ ॥

इन सब प्रकारके पूर्वरूपाको जो वैद्य भलेप्रकार जानताहै वह ही इस अनुबंधके फलको जानताहै । अर्थात् मनुष्यकी रोगों द्वारा मृत्युको कहसकताहै ॥ २४ ॥

यइमाश्चापरान्स्वप्नान्दारुणानुपलक्षयेत् ।
व्याधितानाविनाशायक्लेशायमहतेऽपिवा ॥ २५ ॥

जो मनुष्य इन आगे कहे दारुण स्वप्नोंको देखताहै वह यदि रुग्णावस्थामें देखे तो अवश्य मृत्यु होतीहै और यदि स्वस्थावस्थामें देखे तो महान कष्ट उपस्थित होताहै ॥ २५ ॥

यस्योत्तमाङ्गेजायन्तेवशगुल्मलतादय' । वयासिचविलीयन्तेस्वप्ने मौढ्यमियाच्चयः ॥ २६ ॥ गृध्रोलूकश्वकाकाद्यै स्वप्नेय.परिवार्य्यते । रक्ष प्रेतपिशाचस्त्रीचण्डालद्रवितान्धकैः ॥ २७ ॥ वशवेत्रलतापाशतृणकण्टकसङ्कटे । प्रमुह्यतिहिय स्वप्नेलगतिप्रपतत्यपि ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यके स्वप्नमें शिरपर वास, गुल्म, बेलें आदि प्रकट होजायँ और कौआ आदि पक्षी मुख आदि किसी अगमें छिपजावें अथवा स्वप्नमें जिसका शिर मुण्डन कियाजावे अथवा गीध, उल्लू, कुत्ते, काग, राक्षस, प्रेत, पिशाच स्त्रिय, चाण्डाल और दैत्य आदि चारों तरफसे घेरे हुए हों अथवा वास, वेत, लता, फासी, तृण, काँटे आदिके सकटम फसजाय और उन्हीम फसकर बेहोश हो गिरजाय तो यदि यह स्वप्न रोगीको आवे तो उसकी मृत्यु होय और स्वस्थ अवस्थाम आवे तो वह महान् सकटमें पडे ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

भूमौपाशूपधानायांवल्मीकेवाथभस्मनि । श्मशानायतनेश्वभ्रेस्वप्नेय'प्रपतत्यपि ॥ २९ ॥ कलुषेऽम्भसिपङ्केचकूपेवातमसावृते । स्वप्नेमज्जतिशीघ्रेणस्रोतसाह्रियतेचय' ॥ ३० ॥ स्नेहपानतथाभ्यङ्ग.स्वप्नेबन्धपराजयौ । हिरण्यलाभ'कलह.प्रच्छर्दनविरेचने ॥ ॥ ३१ ॥ उपानद्युगनाशश्चप्रपातःपांशुचर्मणो । हर्ष'स्वप्नेप्रकुपि-

ते पितृभिश्चापिभर्त्सनम् ॥ ३२ ॥ दन्तचन्द्रार्कनक्षत्रदेवतादीप-
चक्षुषाम् । पतनंवाविनाशोवास्वप्नेभेदोनगस्यवा ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें धूलियुक्त पृथ्वीमें अथवा सापकी वाँबीमें या भस्ममें या श्मशानमें या गढेमें गिरजाय अथवा मलिन जलमें कीचडमें, कुएमें या अंधकारमें डूबजाताहै या नदीके प्रवाहमें वहजाता है अथवा स्नेहपान या अपने शरीरपर तैल मर्दन करताहै या बंधनमें फँसजाय अथवा शत्रुओंसे हारजाय या जिसको स्वप्नमें सुवर्ण मिले या कलह हो वमन अथवा विरेचन हो अथवा दोनों जूते नष्ट होकर शरीरपर बालू और चमडेकी स्वप्नमें वृष्टि हो स्वप्नमें हँसना और कुपित हुए पितरोंसे ताडित होना या स्वप्नमें दांत, चंद्रमा, सूर्य, नक्षत्र, देवता, दीपक और नेत्रोंका गिरजाना देखे या नष्ट होते देखे एवं पर्वतका फटना देखे तो वह यदि रोगी हो तो मृत्युको प्राप्त होताहै और आरोग्य हो तो संकटमें पडताहै ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

रक्तपुष्पवनभूमिंपापकर्मालयंचिताम् । गुहान्धकारसम्बाधस्वप्नेयः
प्रविशत्यपि ॥ ३४ ॥ रक्तमालीहसन्नुच्चैर्दिग्वासादक्षिणादिशम् ।
दारुणामटवींस्वप्ने कपियुक्त प्रयातिवा ॥ ३५ ॥ कषायिणामसौ-
म्यनानग्नानादण्डधारिणाम् । कृष्णानारक्तनेत्राणास्वप्नेनेच्छन्ति-
दर्शनम् ॥ ३६ ॥ कृष्णापापानिराचारादीर्घकेशनखस्तनी । विराग-
माल्यवसनास्वप्नेकालनिशामता ॥ ३७ ॥ इत्यन्येदारुणा स्वप्ना-
रोगीयैर्यातिपञ्चताम् । अरोग संशयंगत्वाकश्चिदेवविमुच्यते ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें लाल फूलोंके वनमें तथा पापकर्म होतेहुए स्थानमें, अंधकारयुक्त गुफामें प्रवेश करताहै अथवा लाल फूलोंका हार धारण किये हुए हँसता २ दक्षिण दिशामें या बन्दरके ऊपर चढकर घोर जंगलमें प्रवेश करताहै अथवा भगुए वस्त्र पहिने विकराल रूपवाले नग्न, हाथोंमें डण्डे लियेहुए कृष्णवर्ण और लाल नेत्रवाले दूतोंको स्वप्नमें देखकर डरताहै अथवा कालेवर्णकी पापाचारिणी लंबे बालोंवाली तथा लंबे नख और स्तनोंवाली मलिन माला और मलिन वस्त्रोंवाली काली निशाचरीको देखताहै अथवा अन्य इसीप्रकारके दारुण स्वप्नोंको देखताहै तो वह यदि रोगी हो तो मृत्युको प्राप्त होताहै और नीरोगी मनुष्यभी ऐसे स्वप्नोंको देख महान् कष्टको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मनोवहानापूर्णत्वाद्दोषैरतिबलैस्त्रिभिः । स्रोतसादारुणान्स्वप्ना-

जो मनुष्य स्वप्नमें पूड़ियें, और पूवोंको खाताहै और जागकर उन्हींके समान वमनकर देताहै वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥

एतानिपूर्वरूपाणिय.सम्यगवबुद्धयते ।
सएषामनुबन्धश्चफलञ्चज्ञातुमर्हति ॥ २४ ॥

इन सब प्रकारके पूर्वरूपोंको जो वैद्य भलेप्रकार जानताहै वह ही इस अनुबंधके फलको जानताहै । अर्थात् मनुष्यकी रोगा द्वारा मृत्युको कहसकताहै ॥ २४ ॥

यइमांश्चापरान्स्वप्नान्दारुणानुपलक्षयेत् ।
व्याधितानाविनाशायक्लेशायमहतेऽपिवा ॥ २५ ॥

जो मनुष्य इन आगे कहे दारुण स्वप्नोंको देखताहै वह यदि रुग्णावस्थाम देखे तो अवश्य मृत्यु होतीहै और यदि स्वस्थावस्थामें देखे तो महान् कष्ट उपस्थित होताहै ॥ २५ ॥

यस्योत्तमाङ्गेजायन्तेवशगुल्मलतादय.। वयासिचविलीयन्तेस्वप्ने मौढ्यमियाच्चयः ॥ २६ ॥ गृध्रोलूकश्वकाकाद्यै स्वप्नेय.परिवार्य्यते । रक्ष प्रेतपिशाचस्त्रीचण्डालद्रवितान्धकैः ॥ २७ ॥ वशवेत्रलतापाशतृणकण्टकसङ्कटे । प्रमुह्यतिहिय स्वप्नेलगतिप्रपतत्यपि ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यके स्वप्नमें शिरपर बास, गुल्म, वेलें आदि प्रकट होजायँ और कौआ आदि पक्षी मुख आदि किसी अगमें छिपजावें अथवा स्वप्नमें जिसका शिर मुण्डन कियाजावे अथवा गीध, उल्लू, कुत्ते, काग, राक्षस, प्रेत, पिशाच स्त्रियें, चाण्डाल और दैत्य आदि चारो तरफसे घेरे हुए हों अथवा बास, वेत, लता, फासी, तृण, काँटे आदिके सकटमे फसजाय और उन्हींमें फमकर बेहोश हो गिरजाय तो यदि यह स्वप्न रोगीको आवे तो उसकी मृत्यु होय और स्वस्थ अवस्थाम आवें तो वह महान् सकटम पडे ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

भूमौपाशूपधानायावल्मीकेवाथभस्मनि । श्मशानायतनेश्वभ्रेस्वप्नेय.प्रपतत्यपि ॥ २९ ॥ कलुषेऽम्भसिपङ्केचकूपेवातमसावृते । स्वप्नेमज्जतिशीघ्रेणस्रोतसाह्रियतेचय ॥ ३० ॥ स्नेहपानतथाभ्यङ्ग.स्वप्नेबन्धपराजयौ । हिरण्यलाभ कलह प्रच्छर्दनविरेचने ॥ ॥ ३१ ॥ उपानद्युगनाशश्चप्रपात'पादुचर्मणो । हर्ष स्वप्नेप्रकुपि-

तै.पितृभिश्चापिभर्त्सनम् ॥ ३२ ॥ दन्तचन्द्रार्कनक्षत्रदेवतादीप-
चक्षुपाम् । पतनंवाविनाशोवास्वप्नेभेदोनगस्यवा ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें धूलियुक्त पृथ्वीमें अथवा सांपकी बाँवीमें या भस्ममें या श्मशानमें या गढेमें गिरजाय अथवा मलिन जलमें कीचडमें, कुएमें या अंधकारमें डूबजाताहै या नदीके प्रवाहमें बहजाता है अथवा स्नेहपान या अपने शरीरपर तैल मर्दन करताहै या बंधनमें फँसजाय अथवा शत्रुओंसे हारजाय या जिसको स्वप्नमें सुवर्ण मिले या कलह हो वमन अथवा विरेचन हो अथवा दोनों जूते नष्ट होकर शरीरपर वालू और चमडेकी स्वप्नमें वृष्टि हो स्वप्नमें हँसना और कुपित हुए पितरोंसे ताडित होना या स्वप्नमें दांत, चंद्रमा, सूर्य, नक्षत्र, देवता, दीपक और नेत्रोंका गिरजाना देखे या नष्ट होते देखे एवं पर्वतका फटना देखे तो वह यदि रोगी हो तो मृत्युको प्राप्त होताहै और आरोग्य हो तो संकटमें पडताहै ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

रक्तपुष्पवनभूमिंपापकर्मालयंचिताम् । गुहान्धकारसम्बाधस्वप्नेयः प्रविशत्यपि ॥ ३४ ॥ रक्तमालीहसन्नुच्चैर्दिग्वासादक्षिणादिशम् । दारुणामटवींस्वप्ने कपियुक्त प्रयातिवा ॥ ३५ ॥ कषायिणामसौ-म्यनानग्नानादण्डधारिणाम् । कृष्णानारक्तनेत्राणांस्वप्नेनेच्छन्ति-दर्शनम् ॥ ३६ ॥ कृष्णापापानिराचारादीर्घकेशनखस्तनी । विराग-माल्यवसनास्वप्नेकालनिशामता ॥ ३७ ॥ इत्यन्येदारुणा स्वप्ना-रोगीयैर्यातिपञ्चताम् । अरोग संशयगत्वाकश्चिदेवविमुच्यते॥३८॥

जो मनुष्य स्वप्नमें लाल फूलोंके वनमें तथा पापकर्म होतेहुए स्थानमें, अंधकारयुक्त गुफामें प्रवेश करताहै अथवा लाल फूलोंका हार धारण किये हुए हसता २ दक्षिण दिशामें या वन्दरके ऊपर चढकर घोर जंगलमें प्रवेश करताहै अथवा भगुए वस्त्र पहिने विकराल रूपवाले नग्न, हाथोंमें डण्डे लियेहुए कृष्णवर्ण और लाल नेत्रोंवाले दूतोंको स्वप्नमें देखकर डरताहै अथवा कालेवर्णकी पापाचारिणी लंबे बालोंवाली तथा लंबे नख और स्तनोंवाली मलिन माला और मलिन वस्त्रोंवाली काली निशाचरीको देखताहै अथवा अन्य इसीप्रकारके दारुण स्वप्नोंको देखताहै तो वह यदि रोगी हो तो मृत्युको प्राप्त होताहै और नीरोगी मनुष्यभी ऐसे स्वप्नोंको देख महान् कष्टको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मनोवहानापूर्णत्वाद्दोषैरतिबलैस्त्रिभि । स्रोतसादारुणान्स्वप्ना-

न्कालेपश्यतिदारुणे ॥ ३९ ॥ नातिप्रसुप्तःपुरुष सफलानफलान-पि। इन्द्रियेशेनमनसास्वप्नान्पश्यत्यनेकधा ॥ ४० ॥

जब वातादि तीनो दोष वलवान् होकर मनकी वहन करनेवाली नाडियोंमे प्राप्त होजातेहैं तव उस समयमे वह मनुष्य शुभ और अशुभ स्वप्नोंको देखताहै। जिस समय मनुष्य अधिक निद्रामे नही होता उस समय इन्द्रियोंके पति मनके द्वारा अनेक प्रकारके स्वप्नोंको देखताहै वह स्वप्न कोई सफल होतेहै कोई निष्फल होतेहै॥३९॥४०॥

स्वप्नके भेद।

दृष्टश्रुतानुभूतश्चप्रार्थितकल्पितस्तथा।
भाविकदोषजश्चैवस्वप्नसप्तविधविदु ॥ ४१ ॥

सुनेहुए, देखेहुए, अनुभव कियेहुए, इच्छा कियेहुए, कल्पना कियेहुए, भावी फलके करनेवाले और तीनो दोषोसे होनेवाले इन भेदोंसे स्वप्न सात प्रकारके होतेहैं ॥ ४१ ॥

तत्रपञ्चविधपूर्वमफलभिषगादिशेत्।
दिवास्वप्नमतिह्रस्वमतिदीर्घश्चबुद्धिमान् ॥ ४२ ॥

इनमे पहिले पाच प्रकारके स्वप्नोंको वैद्य निष्फल कथन करे। अथवा जो स्वप्न दिनमे देखा गया या वहुत छोटासा हो या वहुत लम्बा हो उसको भी बुद्धिमान् निष्फल जाने ॥ ४२ ॥

दृष्ट प्रथमरात्रेय स्वप्न सोऽल्पफलोभवेत्।
नस्वपेद्य·पुनर्दृष्ट्वासस्य स्यान्महाफल ॥ ४३ ॥

जो स्वप्न रात्रिके प्रथम प्रहरमे दिखाइ देताहै वह अल्प फलको करनेवाला होताहै जिस स्वप्नको देखकर मनुष्यको फिर निद्रा न आवे वह स्वप्न महाफलको देनेवाला होताहै ॥ ४३ ॥

अकल्याणमपिस्वप्नदृष्ट्वातत्रैवय पुन ।
पश्येत्सौम्यशुभाकारतस्यविद्याच्छुभफलम् ॥ ४४ ॥

यदि प्रथम अशुभ स्वप्नको देखकर फिर उसी समय शुभ स्वप्नको देखे तो उसका शुभही फल होताहै ॥ ४४ ॥

तत्रश्लोक।

पूर्वरूपाण्यथस्वप्नान्यइमान्वेत्तिदारुणान्।
नसमोहादसाध्येषुकर्माण्यारभतेभिषक् ॥ ४५ ॥

इति चरकसहितायामिन्द्रियस्थाने पूर्वरूपीयमिन्द्रियसमाप्तम् ॥ ५ ॥

जो वैद्य इन संपूर्ण पूर्वरूपोंको तथा इन दारुण स्वप्नोंको भलेप्रकार जानताहै वह असाध्यरोगोंमें मोहके वश चिकित्सा करनेके लिये नहीं फँसता ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० इन्द्रियस्थान भाषाटीकायां पूर्वरूपीयमिन्द्रियं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातः कतमानिशरीरीयमिन्द्रियंव्याख्यास्यामः इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम कतमानिशरीरीय इन्द्रियाध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

कतमानिशरीराणिव्याधिमन्तिमहामुने ।
यानिवैद्य परिहरेद्येषुकर्मनसिध्यति ॥ १ ॥

अग्निवेश कहनेलगे कि हे महामुने ! कितने प्रकारकी व्याधियोंवाले रोगियोंके शरीर ऐसे होते हैं जिनको वैद्य त्याग देवे और जिनमें चिकित्सा कीहुई सफल नहीं होती॥१॥

इत्यात्रेयोऽग्निवेशेनप्रश्नपृष्ठ सुदुर्वचम् ।
आचचक्षेयथातस्मैभगवस्तान्निबोधमे ॥ २ ॥

इसप्रकार यह गहन विषय अग्निवेशके पूछनेपर भगवान् आत्रेयजीने जिसप्रकार अग्निवेशके प्रति वर्णन किया उसको श्रवण करो ॥ २ ॥

त्याज्यरोगोंके लक्षण ।

यस्यवैभाषमाणस्यरुजत्यूर्ध्वमुरोभृशम् । अन्नश्चच्यवतेभुक्तस्थित-श्चापिनजीर्य्यति ॥ ३ ॥ बलश्चहीयतेयस्यतृष्णाचाभिप्रवर्द्धते । जायतेहृदिशूलश्चतंभिषक्परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥

जिस रोगीके बोलते समय छातीके ऊपरके भागमें अत्यंत पीडा हो और भोजन कियाहुआ उसी समय निकलजाया करे अर्थात् उदरमें ठहर नहीं सके यदि ठहरे भी तो पचे नहीं और जिसका प्रतिदिन बल क्षीण होता जाय तथा प्यास बढती चलीजाय हृदयमें शूल हो उसको वैद्य त्याग देवे ॥ ३ ॥ ४ ॥

हिक्कागम्भीरजायस्यशोणितश्चातिसार्य्यते ।
नतस्मैभेषजदद्यात्स्मरन्नात्रेयशासनम् ॥ ५ ॥

जिस रोगीको गंभीरनामक हिचकी आनेलगे और अत्यंत रुधिर निकलताहो उसको आत्रेयजीकी आज्ञाका स्मरण करताहुआ कोई औषध न देवे ॥ ५ ॥

आनाहश्चातिसारश्चयमेतौदुर्बलंनरम् ।
व्याधितविंशतोरोगौदुर्लभतस्यजीवितम् ॥ ६ ॥

जो रोगी अत्यंत दुर्बल होजाय और उस क्षीण अवस्थामें अफारा और अतिसार भी आकर प्रवेश होजाय तो उस रोगीके जीवनको दुर्लभ जानना चाहिये । अर्थात् उसकी अवश्य मृत्यु होजायगी ॥ ६ ॥

आनाहश्चैवतृष्णाचयमेतौदुर्बलंनरम् ।
विशतोविजहत्येनप्राणानतिचिरान्नरम् ॥ ७ ॥

जिस रोगीको अफारा और तृष्णा यह दोनों अत्यंत बढजायँ और वह रोगी अधिक दिनोंसे बीमार होनेके कारण अत्यंत दुर्बल हो तो यह रोग उस मनुष्यके प्राणोंको थोडे ही समयमें नष्टकर डालतेहैं ॥ ७ ॥

ज्वर पौर्वाह्णिकोयस्यशुष्क.कासश्चदारुण. । ज्वरोयस्यापराह्णेतु श्लेष्मकासश्चदारुण' । बलमांसविहीनस्ययथाप्रेतस्तथैवस.॥८॥

जिस मनुष्यको प्रातःकालमें ज्वर चढजायाकरे और साथ ही साथ दारुण सूखी खांसी भी होजाय और इस ज्वर तथा खांसीसे बल और मांस क्षीण होजायँ तो उस मनुष्यकी मृत्यु होनेवाली है ऐसा जानना अथवा अपराह्णमें नित्य ज्वर उत्पन्न होताहो और कफकी खांसी अत्यंत दारुण हो तथा इसी ज्वर, खांसीसे बल और मांस क्षीण होजायँ तो वह रोगी भी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

यस्यमूत्रपुरीषञ्चग्रथितसम्प्रवर्त्तते ।
निरूष्मिणोजठरिण श्वसनोनसजीवति ॥ ९ ॥

जिस रोगीका मल और मूत्र गांठदार निकले और शरीरमें गर्मी बिल्कुल न रहे तथा उदररोग हो और श्वासका रोग हो वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥९॥

श्वयथुर्यस्यकुक्षिस्थोहस्तपादौविसर्पति ।
ज्ञातिसंघसंक्लिश्यतेनरोगेणहन्यते ॥ १० ॥

जिस रोगीके कुक्षि (कोख) से आरम्भ होकर संपूर्ण हाथपावोंपर सूजन पहुँच जाय वह सूजन उसके जाति समूहको कष्ट देता रोगीको नष्ट करडालताहै॥१०॥

श्वयथुर्यस्यपादस्थस्तथास्रस्तेचपिण्डिके ।
सीदतश्चाप्युभेजंघेतंभिषक्परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

जिस रोगीके पैरोंमें सूजन उत्पन्न हो जाय और दोनों पिण्डलियें शिथिल पडजायें ... ऐसा जरा हिल न सके उस रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ ११ ॥

शूनहस्तशूनपादशूनगुह्योदरनरम् ।
हीनवर्णवलाहारमौषधैर्नोपपादयेत् ॥ १२ ॥

जिस रोगीके हाथपाव सूख जायँ तथा गुह्यस्थान और उदरपर सूजन होजाय, वर्ण और वल तथा आहार हीन होजाय उस रोगीकी औषधा द्वारा चिकित्सा नहीं करनी चाहिये क्योंकि वह अवश्य मरजानेवाला है ॥ १२ ॥

उरोयुक्तोवहुश्लेष्मानील पीत सलोहित. ।
सततच्यवतेयस्यदूरात्तपरिवर्जयेत् ॥ १३ ॥

जिस पुराने रोगीकी छातीमेंसे नीलवर्ण और पीला तथा लालीयुक्त वहुतसा वलगम जाताहो तो उस रोगीको दूरसेही त्याग देवे ॥ १३ ॥

हृष्टरोमासान्द्रमूत्र शून कासज्वरार्दित ।
क्षीणमासोनरोदूराद्वर्ज्योवैद्येनजानता ॥ १४ ॥

जिस रोगीके रोम खडे हों, मूत्र आमसहित आताहो, शरीरपर सूजन हो तथा खासी और ज्वरसे पीडित हो, मास क्षीण होगया हो उसको ज्ञानी वैद्य दूरसे ही त्याग देवे ॥ १४ ॥

त्रय.प्रकुपितायस्यदोषा.कोष्ठेऽभिलाक्षिता. ।
कृशस्यवलहीनस्यनास्तितस्यचिकित्सितम् ॥ १५ ॥

जिस वलहीन दुर्वल रोगीके कोष्ठमें वातादि तीनों दोष कुपित होकर प्राप्त होजायँ उस रोगीकी कोई चिकित्सा नहीं है अर्थात् वह अवश्य मरेगा ॥ १५ ॥

ज्वरातिसारौशोफान्तेश्ववयुर्वातयो क्षये ।
दुर्वलस्यविशेपेणनरस्यान्तायजायते ॥ १६ ॥

जिस मनुष्यको ज्वर और अतिसारके अन्तमें सूजन उत्पन्न होजाय अथवा सूजनके अतमें ज्वर और अतिसार उत्पन्न होजायँ और वह मनुष्य विशेपरूपसे वलहीन हो तो उसकी अवश्य मृत्यु होतीहै ॥ १६ ॥

पाण्डूदर'कृशोऽत्यर्थतृष्णयाभिपरिप्लुत. ।
डम्वरीकुपितोच्छ्वास प्रत्याख्येयोविजानता ॥ १७ ॥

जो रोगी पाडुरोग सहित उदर रोगसे पीडित हो और अत्यत कृश तथा तृपासे व्याकुल हो, दोनों नेत्र जिसके वैठजावें और वेगसे श्वास चलनेलगे तो उस रोगीको प्रत्याख्येय जानना अर्थात् यह नहीं वचेगा इसप्रकार कहदेने योग्य जानना ॥ १७ ॥

हनुमन्याग्रहस्तृष्णाबलह्रासोऽतिमात्रथा ।
प्राणाश्चोरसिवर्त्तन्तेयस्यतपरिवर्जयेत् ॥ १८ ॥

जिस रोगीकी ठोडी और मन्या यह दोनो अकड गईहो प्यासकी अधिकता हो, बल अत्यत क्षीण होगयाहो और प्राण केवल छातीमें आगयेहो उस रोगीको त्यागदेना चाहिये ॥ १८ ॥

ताम्यत्यायच्छतेशर्मनकिञ्चिदपिविन्दति ।
क्षीणमासबलाहारोमुमूर्षुरचिरान्नर ॥ १९ ॥

जो रोगी अत्यत व्याकुल होगयाहो और उसको किसीप्रकारभी शान्ति प्राप्त न होतीहो, ज्ञान एकदम नष्ट होगयाहो एव मास बल और आहार क्षीण होगयेहों उसको थोडे ही समयमें मरनेवाला जानना चाहिये ॥ १९ ॥

विरुद्धयोनयोयस्यविरुद्धोपक्रमाभृशम् ।
वर्द्धन्तेदारुणारोगा.शीघ्रशीघ्रसहन्यते ॥ २० ॥

सब रोग परस्पर विरोधी कारणोंके उत्पन्न होनेसे तथा विरोधी चिकित्सा करनेसे शीघ्र २ वृद्धिको प्राप्त होकर मनुष्यको मारडालते है ॥ २० ॥

बलविज्ञानमारोग्यग्रहणीमासशोणितम् ।
एतानियस्यक्षीयन्तेक्षिप्रक्षिप्रसहन्यते ॥ २१ ॥

जिस मनुष्यका बल, ज्ञान, आरोग्य, ग्रहणी, मास और रक्त यह क्षीण होगये हो वह रोगी शीघ्र मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २१ ॥

विकारायस्यवर्द्धन्तेप्रकृति परिहीयते ।
सहसासहसातस्यमृत्युर्हरतिजीवितम् ॥ २२ ॥

जिस रोगीके शरीरम विकार बढते चलेजायँ और स्वाभाविक प्रकृति नष्ट होती चलीजाय उस रोगीके जीवितको मृत्यु शीघ्र हरलेती है ॥ २२ ॥

तत्रश्लोकः ।

इत्येतानिशरीराणिव्याधिमन्तिविवर्जयेत् ।
नह्येषुधीरा पश्यन्तिसिद्धिंकाञ्चिदुपक्रमात् ॥ २३ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रि० कतमानिशरीरीयमिन्द्रियं समाप्तम् ॥६॥

अब अध्यायके उपसहारमें एक श्लोक है इसप्रकार ऊपर कहे लक्षणोंवाले रोगियोको त्यागदेना चाहिये क्योंकि इसप्रकारके रोगियोंकी किसीप्रकार चिकित्सा करनेमें बुद्धिमान् सिद्धिको नहीं देखते ॥ २३ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक०इन्द्रियस्थाने भाषा० कतमानिशरीरीयमिन्द्रिय नाम षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातः पन्नरूपीयमिंद्रियंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम पन्नरूपीय इन्द्रियनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

दृष्ट्वायस्यविजानीयात्पन्नरूपाकुमारिकाम् ।
प्रतिच्छायामयीमक्ष्णोर्नैनमिच्छेच्चिकित्सितुम् ॥ १ ॥

जिस रोगीकी छाया विकृतरूप दिखाई दे अथवा दिखाई न देवे या उस रोगीको अपनी छाया न दिखाई देती हो या वह किसीकी छाया न देखसकता हो तो वैद्य उसकी चिकित्सा करनेमें यत्नवान् न होवे ॥ १ ॥

ज्योत्स्नायामातपेदीपेसलिलादर्शयोरपि ।
अङ्गेषुविकृतायस्यछायाप्रेतस्तथैवसः ॥ २ ॥

जिसको चद्रमाकी चादनी, धूप, दीपक इनके आगे खडे होनेसे अपनी छाया विकृताग दिखाइ देतीहो अथवा जल या शीशेमें अपने प्रतिबिम्बको विकृताग देखे तो वह मनुष्य अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २ ॥

छिन्नाभिन्नाकुलाछायाहीनावाप्यधिकापिवा । नष्टातन्वीद्विधाछायाविशिराविस्तृताचया ॥ ३ ॥ एताश्चान्याश्चया काश्चित्प्रतिच्छायाविगर्हिता । सर्वामुमूर्षताज्ञेयानचेल्लक्ष्यनिमित्तजा ॥ ४ ॥

जिस मनुष्यकी छाया छिन्न, भिन्न, व्याकुल, हीन, अधिक, नष्ट, वारीक, दो मार्गोमें कटीहुई, मस्तकरहित और वडे विस्तार पूर्वक दिखाई देतीहो इनके सिवाय अन्य निंदित प्रकारकी या छिद्रयुक्त दिखाई देतीहो वह छाया भी यदि किसी पवन आदि निमित्तसे, या ऊँचे नीचे स्थान आदि किसी कारणसे विकृत नहीं है तो अवश्य मृत्यु होनेवाले मनुष्यकी जाननी ॥ ३ ॥ ४ ॥

संस्थानेनप्रमाणेनवर्णेनप्रभयातथा ।
छायाविवर्त्ततेयस्यस्वप्नेऽपिप्रेतएवसः ॥ ५ ॥

जिस मनुष्यकी आकृति, वर्ण, प्रमाण, काति आदिसे छाया विकृत हुई स्वप्नमें भी दिखाई दे वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥

छायाके भेद ।

सस्थानमाकृतिर्ज्ञेयासुपमाविपमाचया । मध्यमल्पंमहच्चोक्तप्रमा-

णत्रिविधनृणाम् ॥ ६ ॥ प्रतिप्रमाणसंस्थानाजलादर्शातपादिषु ।
छायायासाप्रतिच्छायायाचवर्णप्रभाश्रया ॥ ७ ॥

स्थान आकृतिको कहतेहैं वह आकृति सुषमा (सुन्दरता) और विषमा इन दो भेदोंसे दो प्रकारकी होतीहै और मनुष्योंका प्रमाण अल्प, मध्य और बृहत्के भेदसे तीन प्रकारका होताहै ॥ ६ ॥ प्रत्येक मनुष्यके अपने प्रमाण और आकृतिके अनुसार जल दर्पण और धूप आदिमें जो छाया पडतीहै उसीको छाया कहतेहैं । छायामें वर्ण और प्रभा रहनेसे उसको प्रतिच्छाया तथा कांति कहतेहैं ॥ ७ ॥

पंचभूतात्मक छायाका लक्षण ।

खादीनापञ्चपञ्चानाछायाविविधलक्षणा ।
नाभसीनिर्मलानीलासस्नेहासप्रभेवच ॥ ८ ॥

आकाशादि पांच महाभूतोंकी अनेक प्रकारके लक्षणोंवाली छाया होतीहै उनमें नीलवर्णकी और निर्मल तथा चिकनी और कांतियुक्त छाया आकाशीय होतीहै ॥८॥

रूक्षाश्यावारुणायातुवायवीसाहतप्रभा ।
विशुद्धरक्तात्वाग्नेयीदीप्ताभादर्शनप्रिया ॥ ९ ॥

रूक्ष, काली, लाल, प्रभारहित छाया वायवीय होती है । विशुद्ध, लालवर्णकी, कांतियुक्त, देखनेमें प्रिय इन लक्षणोंवाली आग्नेयी छाया होतीहै ॥ ९ ॥

शुद्धवैदूर्य्यविमलासुस्निग्धाचाम्भसीमता ।
स्थिरास्निग्धाघनाश्लक्ष्णाश्यामाश्वेताचपार्थिवी ॥ १० ॥

स्वच्छ, वैदूर्य मणिके समान निर्मल और चिकनी जलकी छाया होतीहै । स्थिर, चिकनी, घनी, श्लक्ष्ण, श्याम और श्वेत पार्थिवी छाया होतीहै ॥ १० ॥

वायवीगर्हितात्वासाचतस्रःस्युःशुभोदया ।
वायवीतुविनाशायक्लेशायमहतेऽपिवा ॥ ११ ॥

इन सब छायाओंमें वायवीय छाया निन्दनीय होतीहै । और चार प्रकारकी छाया सुखदायक होती हैं । वायवीय छाया तो मृत्युको करनेवाली अथवा महाकष्ट देनेवाली होतीहै ॥ ११ ॥

तैजसी प्रभाका वर्णन ।

स्यात्तैजसीप्रभासर्वासातुसप्तविधास्मृता ।
रक्तापीतासिताश्यावाहरितापाण्डुराऽसिता ॥ १२ ॥

सब प्रकारकी प्रभा तैजसी होतीहै और उस प्रभाके सात भेद है। जैसे लाल, पीली, सफेद, श्याम, हरित, पाण्डुर और काली ॥ १२ ॥

तासाया.स्युर्विकासिन्य.स्निग्धाश्चविपुलाश्चयाः ।
ता.शुभारूक्षमलिना.सक्षिप्ताश्चाशुभोदया ॥ १३ ॥

उनमें जो प्रभा विकाशवाली, चिकनी और विपुल होतीहै वह तीन प्रकारकी प्रभा शुभ होतीहै । और रूक्ष, मलिन, सक्षिप्त यह तीन प्रकारकी अशुभ होतीहै॥१३॥

वर्णमाक्रामतिच्छायाभास्तुवर्णप्रकाशिनी ।
आसन्नालक्ष्यतेछायाभा प्रकृष्टाप्रकाशते ॥ १४ ॥

छाया वर्णको छिपा लेतीहै अथवा या कहिये कि वर्णरहित प्रतिबिम्बको छाया कहतेहै । और वर्ण प्रकाशयुक्त प्रतिबिम्बको प्रभा कहतेहै । छाया समीपके मनुष्यकी दिखाई देतीहै और प्रभा दूरके मनुष्यकी भी दिखाई देतीहै ॥ १४ ॥

नाच्छायोनाप्रभ.कश्चिद्विशेषाश्चिह्नयन्तितु ।
नृणाशुभाशुभोत्पत्तिकालेछाया प्रभाश्रिता. ॥ १५ ॥

किसी मनुष्यकी भी प्रभा और छाया विशेषरूपसे विकृत नहीं होती न कभी किसी मनुष्यको छायामे किसी प्रकारकी विशेपता देखनेम आतीहै परन्तु जब किसी प्रकारका शुभ अथवा अशुभ होनेवाला होताहै तब ही छाया और प्रभामे किसी-प्रकारके विशेष लक्षण दिखाई पडतेहै ॥ १५ ॥

कामलाक्षणोर्मुखपूर्णगण्डयोर्युक्तमाम्नता ।
सन्त्रासश्चोष्णगात्रश्चयस्यतपरिवर्जयेत् ॥ १६ ॥

जिस रोगीके दोनों नेत्र कामलारोगसे पीले पडगयेहों, मुख बहुत भारी होगयाहो और दोनों कपोल मासंसे फूले हुएसे होगये हों, अंगोंमें त्रास तथा उष्णता अधिक हो उस रोगीको त्याग देना चाहिये ॥ १६ ॥

उत्थाप्यमान शयनात्प्रमोहयातियोनर ।
मुहुर्मुहुर्नसप्ताहसजीवतिविकत्थनः ॥ १७ ॥

जो मनुष्य शय्यासे उठाया हुआ झट बेहोश होजाय और बारबार इसीप्रकार हो तथा प्रलाप अर्थात् अटसट बकता हो वह मनुष्य सात दिनकी आयुवाला होताहै अर्थात सातरोजमें मरजाताहै ॥ १७ ॥

ससृष्टाव्याधयोयस्यप्रतिलोमानुलोमगा ।
व्यापन्नाग्रहणीप्राय.सोऽर्द्धमासनजीवति ॥ १८ ॥

जिसके शरीरमें प्रतिलोमगामी अर्थात् उल्टी चलनेवाली और अनुलोमगामी अर्थात् सीधी चलनेवाली दोनों प्रकारकी व्याधियें आपसमें मिलजावें और जिसकी ग्रहणी दोषोंसे युक्त हो वह मनुष्य प्रायः पद्रह दिनमें मरजाताहै ॥ १८ ॥

उपद्रुतस्यरोगेणकर्षितस्याल्पमश्नतः ।
बहुमूत्रपुरीषस्याब्यस्यतपरिवर्जयेत् ॥ १९ ॥

जो रोगी रोगोंसे ग्रसाहुआ हो, जिसका शरीर कृश होगया हो तथा भोजन बहुत ही थोडा करता हो और मल मूत्र बहुत अधिक आताहो उस रोगीको त्यागदेना चाहिये ॥ १९ ॥

दुर्बलोबहुभुङ्क्तेय प्राग्भुक्तादन्नमातुर ।
अल्पमूत्रपुरीषश्चयथाप्रेतस्तथैवसः ॥ २० ॥

जो रोगी दुर्बल हो और इस रोगग्रस्त दुर्बल अवस्थामे यदि रोगी पहिलेसे भी अर्थात् अपनी स्वस्थ अवस्थासे भी बहुत अधिक खानेलगे और मलमूत्र भी बहुत कम त्याग करे तो उसको प्रेत (मरेहुए) के समान जानना चाहिये ॥ २० ॥

वर्द्धिष्णुगुणसम्पन्नमन्नमश्नातियोनरः ।
शश्वच्चबलवर्णाभ्याहीयतेनसजीवति ॥ २१ ॥

जो मनुष्य पुष्टिकारक पदार्थोंको भोजन करताहुआ भी प्रति दिन बल, वर्णसे हीन होता चलाजाय वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २१ ॥

प्रकूजतिप्रश्वसितिशिथिलश्चातिसार्य्यते ।
बलहीन पिपासार्त्त शुष्कास्योनसजीवति ॥ २२ ॥

जिस रोगीका कण्ठ गूजे और श्वास अधिक आवे, शरीर शिथिल होजाय तथा अतिसार हो, बलहीन हो, प्यास अधिक लगे, मुख सूखजाय वह मनुष्य अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥

ह्रस्वञ्चय प्रश्वसितिव्याविद्धस्पन्दतेचय ।
मृतमेवतमात्रेयोव्याचचक्षेपुनर्वसु ॥ २३ ॥

जिसका श्वास अत्यत क्षीन होजाय और बिंधे हुएकी समान खडकने लगे भगवान् पुनर्वसुजी कहतेहै कि, उस मनुष्यको मराहुआही समझना चाहिये ॥ २३ ॥

ऊर्द्ध्वञ्चय प्रश्वसितिश्लेष्मणाचाभिभूयते ।
हीनवर्णबलाहारोयोनरोनसजीवति ॥ २४ ॥

जिस मनुष्यका ऊर्द्ध्वश्वास जल्दी जल्दी चले और कफ अधिक बोलनेलगे । बल, वर्ण और आहार हीन होगयेहो वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

ऊर्द्ध्वाग्रेनयनेयस्यमन्येचानतकम्पने ।
बलहीन पिपासार्त्त शुष्कास्योनसजीवति ॥ २५ ॥

जिस रोगीके नेत्रोंके अग्रभाग ऊपरको होगये हो और ठोडीकी दोंनो संधियें नीचेको होकर कांपने लगें बलसे हीन हो, प्याससे व्याकुल हो और मुख सूखजाय तो वह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २५ ॥

यस्यगण्डावुपचितौज्वरकासौचदारुणौ ।
शूलीप्रद्वेष्टिचाप्यन्नतस्मिन्कर्मनसिद्ध्यति ॥ २६ ॥

जिस रोगीके दोनों गण्डस्थल(गडवाले)फूलजायँ, ज्वर और खासी अत्यत दारुण हो, छातीमें शूल हो तथा अन्नसे द्वेष हो तो उस रोगीकी चिकित्सा करना वृथाहै२६

व्यावृत्तमूर्द्धजिह्वाक्षोभ्रुवौयस्यचविच्युते ।
कण्टकैश्चाचिताजिह्वायथाप्रेतस्तथैवस ॥ २७ ॥

जिस रोगीके मस्तक, जीभ और दोना भौंह टेढी अथवा ऊपरको उल्टीसी होगई हों तथा जीभके ऊपर बहुत कांटेसे होगयेहों उसको मरेहुएके समान जानना ॥२७॥

शेफश्चात्यर्थमुत्सिक्तनिसृतौवृषणौभृशम् ।
अतश्चैवविपर्यासोविकृत्याप्रेतलक्षणम् ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यका लिंग पीठेको हटगया हो और दोनो फोते लटक आये हों अथवा इससे विपरीत होगये हो या स्वभावसे विपरीत होगये हो यह मरनेवाले मनुष्यके लक्षण जानने ॥ २८ ॥

निचितयस्यमासस्यात्त्वगस्थिचैवदृश्यते ।
क्षीणस्यानश्नतस्तस्यमासमायु परभवेत् ॥ २९ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें मास बिल्कुल क्षीण होगयाहो, केवल त्वचा और अस्थि-मात्र दिखाई देतेहों तथा वह आहार न करताहो इसप्रकारके क्षीण मनुष्यकी एक महीनेकी परमआयु जानना चाहिये ॥ २९ ॥

तत्र श्लोक ।

इदलिङ्गमरिष्टाख्यमनेकमभिजज्ञिवान् ।
आयुर्वेदविदित्याख्यालभतेकुशलोनर. ॥ ३० ॥

इति चरकसहितायामिन्द्रि० पूर्वरूपीयमिन्द्रिय समाप्तम् ॥ ७ ॥

अब अध्यायके उपसहारमे एक श्लोक है कि, जो वैद्य इन अरिष्टनामक अनेक प्रकारके लक्षणोंको भलेप्रकार जानताहै उसी कुशल पुरुपको आयुर्वेदका जाननेवाला कहना चाहिये ॥ ३० ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० इन्द्रियस्थाने भाषाटीकायां पूर्वरूपीयमिन्द्रिय' नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्याय. ।

अथातोऽवाक्शिरसीयमिन्द्रिय व्याख्यास्याम इति ह स्माह भगवानात्रेय ।

अब हम अवाकशिरशीय नामक इन्द्रियाध्यायकी व्याख्या करतेहै इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

अवाक्शिरावाजिह्मावायस्यवाविशिराभवेत् ।
जन्तोरूपप्रतिच्छायानैनमिच्छेच्चिकित्सितुम् ॥ १ ॥

जो मनुष्य अपनी छायाका नीचेको शिर देखे अथवा टेढा देखे या विना शिरके देखे उस मनुष्यकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १ ॥

जटीभूतानिपक्ष्माणिदृष्टिश्चापिनिगृह्यते ।
यस्यजन्तोर्नतधीरोभेपजेनोपपादयेत् ॥ २ ॥

जिस मनुष्यकी पल्कें जटाओंके समान बधजायँ और दृष्टि जातीरहे उस मनुष्यकी बुद्धिमान् वैद्य चिकित्सा न करे ॥ २ ॥

यस्यशूनानिवर्त्मानिनसमायान्तिशुष्यत' ।
चक्षुपीचोपदह्येतेयथाप्रेतस्तथैवस ॥ ३ ॥

जिस रोगीकी दोनों पल्कें सूज जावें और दोनों पल्कें आपसमे न मिलसकें नेत्रोंमें अत्यन्त दाह होतीहो ओर वह पल्कें सूखनेमे न आवे वह रोगी भी मृत्युके वशमें जानना ॥ ३ ॥

भ्रुवोर्वायदिवामूर्ध्निसीमन्तावर्त्मकान्वहून् । अपूर्वानकृतान्व्यक्तान्दृष्ट्वामरणमादिशेत् ॥ ४ ॥ त्र्यहमेतेनजीवन्तिलक्षणेनातुरा नरा' । अरोगाणापुनस्त्वेतत्पड्रात्रपरमुच्यते ॥ ५ ॥

जिस रोगीकी दोनों भौंहें या मस्तकमे अपूर्व जटासी होजायँ तो इन अपूर्व विना किसीकी बनाई प्रगट भवरियोंको देखकर रोगीकी मृत्यु जानलेना चाहिये यदि यह

लक्षण रोगी मनुष्यके हों तो वह तीन दिनमें मरजाताहै और रोगरहितके होजायँ तो वह छ' दिनमें मरजाताहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

आयम्योत्पाटितान्केशान्योनरोनावबुध्यते ।
अनातुरोवारोगीवाषड्रात्रनातिवर्त्तते ॥ ६ ॥

जिस मनुष्यके वालोंको खेंचकर उखाड दियाजाय और वह उसके किसी प्रकारके दुःखको प्रतीत न करसके तो यदि वह रोगी हो तो तीन दिनमे और रोगरहित हो तो छ॰ दिनमें मृत्युके वश होजाताहै ॥ ६ ॥

यस्यकेशानिरभ्यङ्गाद्दश्यन्तेभ्यक्तसन्निभाः ।
उपरुद्धायुषंज्ञात्वातधीरःपरिवर्जयेत् ॥ ७ ॥

जिस मनुष्यके केश विनाही तेलके लगाये तेलसे भिगेहुएसे प्रतीत हों तो उस रोगीको गतायु समझकर धीर वैद्य त्याग देवे ॥ ७ ॥

ग्लायतोनासिकावश पृथुत्वयस्यगच्छति ।
अशून शूनसङ्काश प्रत्याख्येयःसजानता ॥ ८ ॥

जिस रोगी मनुष्यके नाकका वास मोटा होजाय और सूजनके विनाही सूजा हुआसा दिखाई दे और वह पुराना रोगी तथा कृश शरीर हो तो उसको मरनेवाला जानना चाहिये ॥ ८ ॥

अत्यर्थविवृतायस्ययस्यचात्यर्थसवृता ।
जिह्वावापरिशुष्कावानासिकानसजीवति ॥ ९ ॥

जिस रोगीकी जीभ अधिक वाहर निकल आवे अथवा अधिक भीतर चली जाय तथा नाक सूखजाय उस रोगीकी अवश्य मृत्यु होतीहै ॥ ९ ॥

मुखशब्दस्रवावोष्ठौशुक्लश्यावातिलोहितौ ।
विकृतौयस्यवानीलौनसरोगाद्विमुच्यते ॥ १० ॥

जिस मनुष्यके मुखसे अवध्य शब्द निकले अथवा मुख, कान, दोनों होठ यह काले या अत्यत लाल, नीले एव विकृत होजायँ वह रोगी मृत्युको प्राप्त होताहै १०॥

- अस्थिश्वेताद्विजायस्यपुष्पिता पङ्कसवृता. ।
विकृत्यानसरोगतविहायारोग्यमश्नुते ॥ ११ ॥

जिस रोगीके दात विकृत होजायँ और श्वेत तथा फुलडीयुक्त, हड्डियाके बुरादे युक्त एव कीचडयुक्त होजायँ वह मनुष्य कभी रोगोंसे मुक्त नहीं होता अर्थात मरजाताहै ११॥

स्तब्धानिश्चेतनागुर्वीकण्टकोपचिताभृशम् ।
श्यावाशुष्काथवाशूनाप्रेताजिह्वाविसर्पिणी ॥ १२ ॥

जिस रोगीकी जीभ टेढी, बाहरको निकलीहुई चैतन्यता रहित, भारी, काँटेयुक्त, काली, सूखी या सूजीहुई हो वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

दीर्घमुच्छ्वस्ययोह्रस्वनरोनिश्वस्यताम्यति ।
उपरुद्धायुपज्ञात्वातधीर परिवर्जयेत् ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यका श्वास लम्बा लम्बा आताहुआ क्रमसे धीरेधीरे अत्यत हीन होजाय और वह मनुष्य वेहोश होजाय उसको गतायु जानकर त्यागदेना चाहिये १३॥

हस्तौपादौचमन्येचतालुचैवातिशीतलम् ।
भवत्यायु क्षयेक्रूरमथवापिभवेन्मृदु ॥ १४ ॥

जिस रोगीके हाथ, पाव, मन्या और तालु यह सब अत्यत शीतल अथवा क्रूर या बहुत नरम पडजायँ उस रोगीका आयु क्षीण हुआ जानना ॥ १४ ॥

घट्टयञ्जानुनाजानुपादावुद्यम्यपातयन् ।
योऽप्यास्यतिमुहुर्वक्त्रमातुरोनसजीवति ॥ १५ ॥

जो रोगी अपनी दोनो जंघाओंको कटकट बजावे और पावको उठा २ जमीनपर फेंके और अपने मुखको वारवार फिरावे वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै॥१५॥

दन्तैश्छिन्दन्नखाग्राणिनखैश्छिन्दञ्शिरोरुहान् ।
काष्ठेनभूमिंविलिखन्नरोगात्परिमुच्यते ॥ १६ ॥

जो रोगी दांतोंसे अपने नखोंका काटे और नखोंसे अपने शिरके बालोंको उखाडे एव लकडीसे जमीनको खुरेदे वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

दन्तान्खादतियोजाग्रदसाम्नाविरुदन्हसन् ।
विजानातिनचेद्दु:खनसरोगाद्विमुच्यते ॥ १७ ॥

जो रोगी अपनी जाग्रत अवस्थामे दांतोंको पीसे और ऊचे स्वरसे रोवे तथा हँसे और अपने शरीरके किसीप्रकारके दु खोंका होश न हो वह रोगी रोगसे नहीं बचसकता अर्थात् मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥

मुहुर्हसन्मुहु:क्ष्वेडञ्शय्यापादेनहन्तिय ।
उच्चैश्छिद्राणिविमृशन्नातुरोनसजीवति ॥ १८ ॥

जो रोगी वारबार हसे और चीख मारे, पैरोंसे अपनी शय्याको खराब करे तथा

अपने हाथोंसे नाक कान आख आदि छिद्रोंको मर्दन करे या छूता जाय उसको मरणासन्न जानना चाहिये ॥ १८ ॥

येर्विन्दतिपुराभावे.समेतै परमारातिम् ।
तैरेवारममाणस्यग्लास्नोर्मरणमादिशेत् ॥ १९ ॥

जो भाव रोगीको अपनी रोगावस्थासे पहिले उत्तम प्रतीत होते हों, जो २ वस्तुए अत्यत प्रिय हों वह सब जिस रोगीको बुरी और ग्लानिकारक प्रतीत होनेलगें उसकी अवश्य मृत्यु होती है ॥ १९ ॥

नविभर्तिशिरोग्रीवानपृष्ठभारमात्मन ।
नहनूपिण्डमास्यस्थमातुरस्यमुमूर्षत ॥ २० ॥

जिस रोगीकी गर्दन शिरके भारको न सभाल सके और पीठ शरीरके भारको न सभाल सके और ठोडी मुखके भारको न सँभालसके वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ २० ॥

सहसाज्वरसन्तापस्तृष्णामूर्च्छावलक्षय ।
विश्लेषर्णश्चसन्धीनामुमूर्षोरुपजायते ॥ २१ ॥

जिस रोगीको एकाएकी ज्वर, सताप, प्यास, मूर्च्छा, वलकी क्षीणता, सधियाका ढीला हो जाना यह सब लक्षण होजायँ उसकी मृत्यु होती है ॥ २१ ॥

गोसर्गेवदनाद्यस्यस्वेद प्रच्यवतेभृशम् ।
लेपज्वरोपतप्तस्यदुर्लभतस्यजीवितम् ॥ २२ ॥

जिस प्रलेपक ज्वरवाले रोगीके मुखसे प्रात काल गौओंको छोड़नेके समय अत्यत पसीना टपकने लगे और वह प्रलेपक ज्वरसे पीड़ित हो तो उसका जीता रहना कठिन है ॥ २२ ॥

नोपैतिकण्ठमाहारोजिह्वाकण्ठमुपैति च ।
आयुष्यन्तगतेजन्तोर्वलश्चपरिहीयते ॥ २३ ॥

जिस रोगीकी जीभ कण्ठमें चलीगई हो, बल क्षीण होगया हो और आहार कण्ठसे नीचे न जा सकता हो उस रोगीके आयुको नष्ट जानना चाहिये ॥ २३ ॥

शिरोविक्षिपतेकृच्छ्रान्मुश्चयित्वाप्रपाणिकौ ।
ललाटप्रस्नुतस्वेदोमुमूर्षु श्लथवन्धन ॥ २४ ॥

जो रोगी बड़ी कठिनतासे अपने दोनों हाथोंको शिरके ऊपर रखकर शिरको

चड़े कष्टसे इधर उधर हिलासके और उसके मस्तकसे अत्यंत पसीना निकलने लगे, शरीरके बंधन ढीले पड़जायँ तो उस रोगीको मृत्युवश जानना ॥ २४ ॥

तत्रश्लोकः ।

इमानिलिङ्गानि नरेषुबुद्धिमान्विभावयेतावहितोमुहुर्मुहुः ।
क्षणेनभूत्वाह्यपयान्तिकानिचिन्नचाफलंलिङ्गमिहास्तिकिञ्चन॥२५॥
इति चरकसंहितायामिन्द्रियस्थानेऽवाक्शिरसीयमिन्द्रियंसमाप्तम्८॥

अब अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है बुद्धिमान् वैद्य मनुष्योंमें इन लक्षणोंको देखकर वारंवार अपने अनुभवको सावधानीसे पुष्ट करता जाय क्योंकि वहुतसे ऐसेभी लक्षण होतेहैं जो थोडेसे काल रहकर फिर नष्ट होजातेहै । और कोई लक्षण ऐसे होतेहै जो निष्फल नहीं जाते अर्थात् अवश्य मृत्युके करनेवाले होतेहै इसलिये सावधानीसे परीक्षा करतेहुए अपने अनुभवको पुष्ट कर लेना चाहिये ॥ २५ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० इन्द्रियस्थाने भाषाटीकायामवाक्शिरसीयमिन्द्रिय नामाष्टमोध्याय ॥ ८ ॥

नवमोऽध्याय ।

अथातोयस्यश्यावनिमित्तीयमिन्द्रियंव्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम यस्यश्यावनिमित्तीय इन्द्रियाध्यायकी व्याख्या करतेहै इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

यस्यश्यावेपरिध्वस्तेहरितेचापिदर्शने ।
आपन्नोव्याधिरन्तायज्ञेयस्तस्यविजानता ॥ १ ॥

जिस रोगीके दोनो नेत्र श्याम, अथवा हरे और टेढे अथवा शिथिल होजायँ, बुद्धिमान् वैद्य उसकी व्याधिको उसके नाशके लिये उपस्थित जाने ॥ १ ॥

निःसंज्ञः परिशुष्कास्यः सविद्धोव्याधिभिश्चयः ।
उपरुद्धायुषञ्ज्ञात्वातधीरः परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

जिस रोगीकी संज्ञा (होश) नष्ट होजाय, मुख सूखजाय और व्याधियासे अत्यंत सविद्ध हो उस रोगीको गतायु समझलेना चाहिये ॥ २ ॥

हरिताश्चशिरायस्यलोमकूपाश्चसंवृताः ।
सोऽम्लाभिलाषीपुरुषः पित्तान्मरणमश्नुते ॥ ३ ॥

जिस रोगीकी सब नसें हरी होगई हों और सपूर्ण रोममार्ग बद होगये हों और खटाई खानेकी इच्छा रखता हो वह मनुष्य पित्तरोगसे मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥

शरीरान्ताश्चशोभन्तेशरीरञ्चोपशुष्यति ।
वलञ्चहीयतेयस्यराजयक्ष्माहिनस्तितम् ॥ ४ ॥

जिस रोगीके शरीरके सब अग शोभायुक्त प्रतीत हो और शरीर सूखा हो तथा उस मनुष्यका वल नष्ट होगया हो वह राजयक्ष्मावाला रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥

असाभितापोहिक्काचछर्दनशोणितस्यच ।
आनाह॰पार्श्वशूलञ्चभवत्यन्तायशोषिण॰ ॥ ५ ॥

जिस शोषरोगीके दोना पार्श्वभागोंमे शूल होता हो तथा अफारा हिचकी, रुधिरकी छर्दि और कधोंमे पीडा होती हो वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥

वातव्याधिरपस्मारीकुष्ठीशोफीतथोदरी । गुल्मीचमधुमेहीचराज-
यक्ष्मीचयोनर ॥ ६ ॥ अचिकित्स्याभवन्त्येतेवलमासक्षयेसति ।
अन्येष्वपिविकारेषुतान्भिषक्परिवर्जयेत् ॥ ७ ॥

वातव्याधि, अपस्मार, कुष्ठ, सूजन, उदर, गुल्म, मधुमेह और राजयक्ष्मा इन रोगोमेंसे किसी एक रोगवालेका वल और मास क्षीण होजायँ तो वह चिकित्साके योग्य नहीं रहता । इसीप्रकार अन्य विकारोंमें भी वल और मासके क्षीण होजानेपर प्रायः रोग असाध्य होजातेहैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

विरेचनहृतानाहोयस्तृष्णानुगतोनर ।
विरिक्तःपुनराध्मातियथाप्रेतस्तथैवस ॥ ८ ॥

जिस रोगीको विरेचन होनेके अनन्तर अफारा दूर होनेपर अधिक प्यास लगे अथवा विरेचन होनेके पीछे फिर अफारा उत्पन्न होजाय वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

पेयपातुनशक्नोतिकण्ठस्यचमुखस्यच ।
उरसश्चविवद्धत्वाद्योनरोनसजीवति ॥ ९ ॥

जिस रोगीका कण्ठ, मुख और छाती यह विल्कुल रुकजायँ और वह जल, दूध आदि पतले पदार्थोंको भी न पीसके उसकी अवश्य मृत्यु होतीहै ॥ ९ ॥

स्वरस्यदुर्वलीभावंहानिश्चवलवर्णयो ।
रोगवृद्धिमयुक्त्याचदृष्ट्वामरणमादिशेत् ॥ १० ॥

जिस रोगीका स्वर हीन होजाय, बल और वर्ण नष्ट होजायँ और रोगकी वृद्धि होतीचलीजाय उसको विनाही किसी परीक्षाके मरनेवाला जानना चाहिये ॥ १० ॥

ऊर्द्ध्वश्वासंगतोष्माणशूलोपहतवंक्षणम् ।
शर्मचानधिगच्छन्तबुद्धिमान्परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

जिस रोगीके उर्द्ध्वश्वास चलनेलगे शरीर शीतल पडजाय, दोनों वक्षणार्म अत्यत शूल होनेलगे और किसीप्रकार भी शान्तिको प्राप्त न हो ऐसे रोगीको बुद्धिमान् त्याग देवे ॥ ११ ॥

अपस्वरभापमाणप्रातमरणमात्मन ।
श्रोतारश्चाप्यशब्दस्यदूरत परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥

जो रोगी अनेक प्रकारके विनाहुए शब्दोंको सुने और अपने मुखसे आप ही अपनी मृत्युको हतस्वरसे होनेवाली कथन करताहो उस रोगीको त्याग देना चाहिये ॥१२॥

यनरंसहसारोगोदुर्बलपरिमुञ्चति । सशयप्राप्तमात्रेयोजीवितस्य मन्यते॥१३॥अथचेज्ज्ञातयस्तस्ययाचेरन्प्रणिपातत । रसेनाद्या-दितिब्रूयान्नास्मैदद्याद्विशोधनम् ॥ १४ ॥ मासेनचेन्नदृश्येतविशेष-स्तस्यशोभन । रसैश्चान्यैर्बहुविधैर्दुर्लभतस्यजीवितम् ॥ १५ ॥

जिस अत्यत दुर्बल रोगीको झट एकसाथ रोग छोडकर अलग होजाय उसका जीवन सशययुक्त ही जानना चाहिये यदि ऐसे समय रोगीके घरवाले वैद्यसे अधिक प्रार्थना करें कि, इसकी चिकित्सा कीजिये तो उनको कहे कि इसको मासरस या विधिवत् बनायाहुआ यवाका रस पीनेको दो परतु ऐसे मनुष्यको विशोधन नहीं देना चाहिये । यदि उस रोगीको अनेक प्रकारके रस आदिकोंके सेवनसे एक महीने भी कुछ फायदा प्रतीत न हो तो उसका जीवन दुर्लभ समझकर त्याग देवे ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

निष्ठ्यूतञ्चपुरीपञ्चरेतश्चाम्भसिमज्जति ।
यस्यतस्यायुष'पातमन्तमाहुर्मनीपिण' ॥ १६ ॥

जिस रोगीका थूक, पुरीष और वीर्य जलमे डूबजाय बुद्धिमान् उस रोगीका अत आयाहुआ कथन करतेहै ॥ १६ ॥

निष्ठ्यूतेयस्यदृश्यन्तेवर्णाबहुविधा पृथक् ।
तच्चसीदत्यप प्राप्यनसजीवितुमर्हति ॥ १७ ॥

जिस रोगीका थूक अलग २ अनेक वर्णोवाला दिखाई दे और जलमें डालनेसे डूबजाय वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

पित्तमुष्मानुगयस्यशखौप्राप्यविमूर्च्छति ।
सरोग शखकोनाम्नात्रिरात्राद्धन्तिजीवितम् ॥ १८ ॥

जिसके पित्त ऊष्माको लेकर दोना कनपटियोंम प्राप्त होकर विमूर्च्छित होजाय उसको शखके रोग कहतेहै । (इस रोगम कनपटिय अत्यत चटकती है और उनमें अत्यत दारुण शूल उत्पन्न होजाताहै) इसमे रोगी तीन दिनमें मरजाताहै ॥ १८ ॥

सफेनरुधिरयस्यमुहुरास्यात्प्रमुच्यते ।
शूलैश्चतुद्यतेकुक्षि प्रत्याख्येय सतादृश ॥ १९ ॥

जिस रोगीके मुखसे झाग मिलाहुआ रक्त वारवार गिरे और उस रोगीकी कूखमें अत्यत शूल होता हो उस रोगीको मरजानेवाला जानना चाहिये ॥ १९ ॥

वलमासक्षयस्तीव्रोरोगवृद्धिररोचक ।
यस्यातुरस्यलक्ष्यन्तेत्रीनहान्नसजीवति ॥ २० ॥

जिस रोगीका वल और मास क्षीण होगया हो और रोग सहमा वढकर तीव्र होजाय तथा अरुचि हो वह रोगी तीन दिनम मरजाताहै ॥ २० ॥

तत्रश्लोकौ ।

विज्ञानानिमनुष्याणामरणेप्रत्युपस्थिते । भवन्त्येतानिसम्पञ्ये-दन्यान्येवविधानिच ॥ २१ ॥ तानिसर्वाणिलक्ष्यन्तेनतुसर्वाणि मानवम् । विशन्तिविनशिष्यन्ततस्माद्बोध्यानिसर्वश ॥ २२ ॥
इति चरकसंहितायामिन्द्रियस्थाने यस्यश्यावमिन्द्रिय समाप्तम्॥९॥

यहा अध्यायके उपसहारमे दो श्लोक हैं जब मनुष्योंका मरणसमय आजाता है उस समय ऐसे २ लक्षण उत्पन्न होतेहैं तथा इसी प्रकारके और भी लक्षण उत्पन्न होतेहै सो वैद्यको चाहिये कि इन मरणख्यापक सब प्रकारके लक्षणोंको विज्ञानपूर्वक सावधानीसे देखा करे । सब लक्षण एक ही मनुष्यम नहीं होसकते इसलिये अनेक मरणासन्न मनुष्योंमें सब प्रकारके लक्षणोको सावधानीसे देखना चाहिये ॥२१॥२२॥

इति श्रीमहर्षिचर० इन्द्रि० स्था० भाषाटी० यस्यश्यावनिमित्तीय नाम नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

जिस रोगीका स्वर हीन होजाय, बल और वर्ण नष्ट होजायँ और रोगकी वृद्धि होतीचलीजाय उसको विनाही किसी परीक्षाके मरनेवाला जानना चाहिये ॥ १० ॥

ऊर्द्ध्वश्वासगतोष्माणशूलोपहतवंक्षणम् ।
शर्मचानधिगच्छन्तबुद्धिमान्परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

जिस रोगीके उर्द्धश्वास चलनेलगे शरीर शीतल पडजाय, दोनों वक्षणोंमें अत्यत शूल होनेलगे और किसीप्रकार भी शान्तिको प्राप्त न हो ऐसे रोगीको बुद्धिमान् त्याग देवे ॥ ११ ॥

अपस्वरभापमाणप्राप्तमरणमात्मन ।
श्रोतारश्चाप्यशब्दस्यदूरत परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥

जो रोगी अनेक प्रकारके विनाहुए शब्दोंको सुने और अपने मुखसे आप ही अपनी मृत्युको हतस्वरसे होनेवाली कथन करताहो उस रोगीको त्याग देना चाहिये ॥१२॥

यंनरसहसारोगोदुर्वलपरिमुञ्चति । सशयप्राप्तमात्रेयोजीविततस्य मन्यते॥१३॥अथचेज्ज्ञातयस्तस्ययाचेरन्प्रणिपातत । रसेनाद्या-दितिब्रूयान्नास्मैदद्याद्विशोधनम् ॥ १४ ॥ मासेनचेन्नदृश्येतविशेप-स्तस्यशोभन । रसैश्चान्यैर्वहुविधैर्दुर्लभतस्यजीवितम् ॥ १५ ॥

जिस अत्यत दुर्वल रोगीको झट एकसाथ रोग छोडकर अलग होजाय उसका जीवन सशययुक्त ही जानना चाहिये यदि ऐसे समय रोगीके घरवाले वैद्यसे अधिक प्रार्थना करें कि, इसकी चिकित्सा कीजिये तो उनको कहे कि इसको मासरस या विधिवत् बनायाहुआ यवाका रस पीनेको दो परतु ऐसे मनुष्यको विशोधन नहीं देना चाहिये । यदि उस रोगीको अनेक प्रकारके रस आदिकोंके सेवनसे एक महीने भी कुछ फायदा प्रतीत न हो तो उसका जीवन दुर्लभ समझकर त्याग देवे ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

निष्ठ्यूतञ्चपुरीपञ्चरेतश्चाम्भसिमज्जति ।
यस्यतस्यायुप प्राप्तमन्तमाहुर्मनीपिण ॥ १६ ॥

जिस रोगीका थूक, पुरीप और वीर्य जलमे डूबजाय बुद्धिमान् उस रोगीका अत आयाहुआ कथन करतेहै ॥ १६ ॥

निष्ठ्यूतेयस्यदृश्यन्तेवर्णावहुविधा पृथक् ।
तच्चसीदत्यप प्राप्यनसजीवितुमर्हति ॥ १७ ॥

जिस रोगीका थूक अलग २ अनेक वर्णोवाला दिखाई दे और जलमें डालनेसे डूबजाय वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

पित्तमुष्मानुगयस्यशङ्खौप्राप्यविमूर्च्छति ।
सरोग.शखकोनाम्नात्रिरात्राद्धन्तिजीवितम् ॥ १८ ॥

जिसके पित्त ऊष्माको लेकर दोनो कनपटियामे प्राप्त होकर विमूर्च्छित होजाय उसको शखके रोग कहतेहै । (इस रोगम कनपटिये अत्यत चटकती है और उनमे अत्यत दारुण शूल उत्पन्न होजाताहै) इससे रोगी तीन दिनमे मरजाताहै ॥ १८ ॥

सफेनरुधिरयस्यमुहुरास्यात्प्रमुच्यते ।
शूलैश्चतुद्यतेकुक्षि.प्रत्याख्येय सतादृश ॥ १९ ॥

जिस रोगीके मुखसे झाग मिलाहुआ रक्त वारवार गिरे और उस रोगीकी कूखमें अत्यत शूल होता हो उस रोगीको मरजानेवाला जानना चाहिये ॥ १९ ॥

वलमासक्षयस्तीव्रोरोगवृद्धिररोचक ।
यस्यातुरस्यलक्ष्यन्तेत्रीनहान्नसजीवति ॥ २० ॥

जिस रोगीका वल और मास क्षीण होगया हो और रोग सहसा वढकर तीव्र होजाय तथा अरुचि हो वह रोगी तीन दिनम मरजाताहै ॥ २० ॥

तत्रश्लोकौ ।

विज्ञानानिमनुष्याणामरणेप्रत्युपस्थिते । भवन्त्येतानिसम्पञ्चये-दन्यान्येवविधानिच ॥ २१ ॥ तानिसर्वाणिलक्ष्यन्तेनतुसर्वाणि मानवम् । विशन्तिविनशिष्यन्ततस्माद्बोध्यानिसर्वश ॥ २२ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रियस्थाने यस्यश्यावनिमित्तीय समाप्तम्॥९॥

यहा अध्यायके उपसहारमे दो श्लोक है जब मनुष्योंका मरणसमय आजाता है उस समय ऐसे २ लक्षण उत्पन्न होतेहैं तथा इसी प्रकारके और भी लक्षण उत्पन्न होतेहै सो वैद्यको चाहिये कि इन मरणरूयापक सब प्रकारके लक्षणाको विज्ञानपूर्वक सावधानीसे देखा करे । सव लक्षण एक ही मनुष्यम नहीं होसकते इसलिये अनेक मरणासन्न मनुष्योंमे सब प्रकारके लक्षणाको सावधानीसे देखना चाहिये ॥२१॥२२॥

इति श्रीमहर्षिचर०इन्द्रि०स्था०भाषाटी०यस्यश्यावनिमित्तीय नाम नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

दशमोऽध्याय. ।

अथात' सद्योमरणीयमिन्द्रियंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेय. ।

अब हम सद्योमरणीय इन्द्रियाध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

सद्यस्तितिक्षतःप्राणान्लक्षणानिपृथक्पृथक् ।
अग्निवेश ! प्रवक्ष्यामिसस्पृष्टोयैर्नजीवति ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! जिन लक्षणोंके स्पर्शमात्रसे ही मनुष्यकी शीघ्र मृत्यु होजातीहै उन प्राणाके नष्ट करनेवाले लक्षणोंको हम अलग २ वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥

वाताष्ठीला सुसवृत्तास्तिष्ठन्तिदारुणाहृदि ।
तृष्णयाभिपरीतस्यसद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ २ ॥

जिस मनुष्यके शरीरम वाताष्ठीला रोग बढकर हृदयमें दारुणभावसे स्थित होजाय तथा उसको अधिक प्यास लगनेलगे तो वह रोगी शीघ्र मरजाताहै ॥ २ ॥

पिण्डिकेशिथिलीकृत्यजिह्मीकृत्यचनासिकाम् ।
वायु शरीरेविचरन्सद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ३ ॥

जिस रोगीके शरीरमे वायु दोना पिण्डलियाको शिथिल करके नाकको टेढा बनादेवे तथा शरीरमे विचरण करनेलगजाय वह रोगी शीघ्र मृत्युको प्राप्त होताहै॥३॥

भ्रुवौयस्यच्युतेस्थानादन्तर्दाहश्चदारुण ।
तस्यहिक्काकरोरोगस्सद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ४ ॥

जिस रोगीकी दोनों भौंहें अपने स्थानसे हटजाय शरीरम अत्यत दारुण अन्तर्दाह हो और हिचकी अधिक आनेलगे वह रोगी शीघ्र मरजाताहै ॥ ४ ॥

क्षीणशोणितमासस्यवायुरूर्द्धगतिश्चरन् ।
उभेसन्येसमेयस्यसद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ५ ॥

जिस रोगीके रक्त और मास क्षीण होगये हों तथा वायु ऊर्द्धगतिसे चलनेलगे और दोनों मन्या (ठोडीकी दोनों ओरकी सधियें) अकडजायँ वह मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥

अन्तरेणगुदगच्छन्नाभिञ्चसहसानिल ।
कृशस्यवंक्षणौगृह्णन्सद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ६ ॥

यदि क्षीण रोगीके शरीरमें वायु गुदासे नाभिमें होतीहुई दोनों वक्षणोंको ग्रहण करे अर्थात् गुदामेंसे वायु उठकर नाभिमें प्रवेश करतीहुई दोनों वक्षणों (वक्खी) में दारुण पीडाको उत्पन्न करे तो वह मनुष्य शीघ्र मरजाताहै ॥ ६ ॥

वितत्यपर्शुकाग्राणिगृहीत्वोरश्चमारुत. ।
स्तिमितस्यायताक्षस्यसद्योमुष्णाति जीवितम् ॥ ७ ॥

जिस रोगीके दोनों पासुओंका अग्रभाग वायुसे फैलजाय तथा उसकी छातीको वायु रोककर अत्यत पीडा उत्पन्न करे उस पीडासे रोगीका सपूर्ण शरीर गीला होजाय ओर आखें वडी २ खुलजायँ तो उस रोगीका शीघ्र मरण होताहै ॥ ७ ॥

हृदयञ्चगुदञ्चोभेगृहीत्वामारुतोवली ।
दुर्वलस्यविशेपेणसद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ८ ॥

यदि दुर्वल रोगीके हृदयको और गुदाको रोककर वलवान् वायु अत्यत पीडा उत्पन्न करे तो वह रोगी शीघ्र अपने जीवनको त्याग देताहै ॥ ८ ॥

वक्षणौचगुदञ्चोभेगृहीत्वामारुतोवली ।
श्वाससञ्जनयञ्जन्तो सद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ९ ॥

यदि वलवान् वायु दोनों वक्षण और उत्तरगुद तथा अधोगुदको रोककर उनमें अत्यत पीडा करताहुआ श्वासको उत्पन्न कर देवे तो रोगीके प्राणोंको शीघ्र नष्टकर देताहै ॥ ९ ॥

नाभिवस्तिशिरोमूत्र पुरीषश्चापिमारुत ।
विवध्यजनयञ्छूलसद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ १० ॥

यदि वलवान् वायु मनुष्यके नाभि, वस्ति, शिर, मूत्र और पुरीपको रोककर दारुण शूलको उत्पन्नकरदेवे तो मनुष्यका जीवन शीघ्र नष्ट होजाताहै ॥ १० ॥

भिद्येतवक्षणौयस्यवातशूलै समन्तत. ।
भिन्नपुरीपतृष्णाचसद्य प्राणाञ्जहातिस ॥ ११ ॥

जिस रोगीके दोनो वक्षणोंजाघोंकी सन्धियोंमें वायुके शूलोंसे सर्वत. अत्यत भेद (काटनेकीसी पीडा) होतीहो तथा साथ ही दस्तोंका लगना और दारुण प्यास भी हो वह मनुष्य शीघ्र अपने जीवनको त्याग देताहै ॥ ११ ॥

आप्लुतंमारुतेनेहशरीरयस्यकेवलम् ।
भिन्नंपुरीपंतृष्णाचसद्योजह्यात्सजीवितम ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यका शरीर केवल वायुके वेगसेही पसीनेसे भीगजाय और साथमें दस्तोंका वेग तथा प्यास भी हो वह शीघ्र अपने जीवनको त्याग देताहै ॥ १२ ॥

शरीरंशोफितंयस्यवातशोफेनदेहिनः ।
भिन्नंपुरीषंतृष्णाचसद्योजह्यात्सजीवितम् ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यका शरीर वायुकी सूजनसे सूजाहुआ हो और उसको दस्त तथा प्यासकी भी अधिकता होजाय तो वह मनुष्य शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त होताहै ॥१३॥

आमाशयसमुत्थानायस्यस्यात्परिकर्तिका ।
तृष्णागुदग्रहश्चोग्रःसद्योजह्यात्सजीवितम् ॥ १४ ॥

जिस मनुष्यके आमाशयमें मास काटनेकी सी पीडा हो और अधिक प्यास तथा गुदामें उग्र पीडा भी साथमें प्रगट होजाय वह मनुष्य शीघ्र ही मरजाताहै ॥ १४ ॥

पक्वाशयमधिष्ठायहत्वासंज्ञांचमारुतः ।
कण्ठेघुर्घुरकंकृत्वासद्योहरतिजीवितम् ॥ १५ ॥

जिस मनुष्यके पक्वाशयमें बलवान् वायु प्रविष्ट होकर संज्ञाको नष्ट कर देताहै अर्थात् बेहोश करदेताहै और कण्ठमें घुरघुर शब्द करने लगताहै वह मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥

दन्ताःकर्दमचूर्णाभामुखचूर्णकसन्निभम् ।
शिथायन्तेचगात्राणिलिङ्गंसद्योमरिष्यतः ॥ १६ ॥

जिस रोगीके दांतोंपर कीचडसा लगा हो और सफेद चूनासा बुरका प्रतीत होता हो तथा मुख भी चूनेके समान सफेद होगया हो तथा सब अंग पसीनेसे युक्त हों और शिथिल होजायँ उसे शीघ्र मरनेवाला जानना ॥ १६ ॥

तृष्णाश्वासशिरोरोगमोहदौर्बल्यकूजनैः ।
स्पृष्टःप्राणाञ्जहात्याशुशकृद्भेदेनचातुरः ॥ १७ ॥

यदि दुर्बल रोगीको प्यास, श्वास, शिरोरोग, मोह, क्षीणता, कण्ठका कूजन एक साथ ही होजायँ तथा दस्त लगनेलगे वह रोगी शीघ्र अपने प्राणोंको त्याग देताहै ॥ १७ ॥

तत्रश्लोकः ।

एतानिखलुलिङ्गानियःसम्यगवबुध्यते ।
सजीवितंचमर्त्यानांमरणंचावबुध्यते ॥ १८ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रिय० सद्योमरणीयमिन्द्रियं समाप्तम् ॥ १० ॥

यह अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है। जो वैद्य इन संपूर्ण लक्षणोंको भले प्रकार जानताहै वह मनुष्योंके जीवन और मरणको भी अच्छीतरह जानलेताहै ॥१८॥

इति श्रीमहर्षिचरक० इन्द्रियस्थाने भा०टी० सद्योमरणीयमिन्द्रिय नाम दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

एकादशोऽध्याय ।

अथातोऽणुज्योतीयमिन्द्रिय व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेय ।

अब हम अणुज्योतीय इन्द्रियनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

अणुज्योतिरनेकाग्रोदुश्छायोदुर्मना सदा।
रतिंनलभतेयातिपरलोकसमान्तरे ॥ १ ॥

जिस मनुष्यकी ज्योति (कान्ति) क्षीण होजाय, चित्तमें अनेक प्रकारके संकल्प विकल्प उत्पन्न हो, शरीरकी छाया हीन लक्षणोंवाली होजाय, मन खिन्नसा रहे, किसी समय किसी वस्तुमें भी प्रीति न हो वह मनुष्य एक वर्षके भीतर परलोककी यात्रा करताहै ॥ १ ॥

बलिंबलिभुजोयस्यप्रणीतनोपभुञ्जते ।
लोकान्तरगत.पिण्डभुङ्क्तेसंवत्सरेणस ॥ २ ॥

जिस मनुष्यके हाथकी दी हुई बलि काग, कुत्ते आदि न खातेहो वह मनुष्य एक वर्षके भीतरही परलोकमें प्राप्त हो प्रेतत्वके पिंडको ग्रहण करताहै ॥ २ ॥

सप्तर्षीणासमीपस्थांयोनपश्यत्यरुन्धतीम् ।
संवत्सरान्तेजन्तु ससम्पश्यतिमहत्तमः ॥ ३ ॥

जो मनुष्य सामने आये हुए सप्तऋषियों (तुलालग्नमें उदय होनेवाले साततारों)को और अरुधतीको नहीं देखसकता वह मनुष्य एक वर्षके भीतर ही यमलोकका दर्शन करताहै ॥ ३ ॥

विकृत्याविनिमित्तय शोभामुपचयधनम् ।
प्राप्नोत्यतोवाविभ्रंशसमान्तनसजीवति ॥ ४ ॥

जिस मनुष्यके शोभा, स्वभाव, पुष्टि, घना, विना ही कारणसे एकाएक अपने स्वभावको छोडकर बदलजायँ अर्थात् विकृत होजायँ वह मनुष्य एक वर्षके भीतर मृत्युको प्राप्त होजाताहै ॥ ४ ॥

भक्तिःशीलस्मृतिस्त्यागोबुद्धिर्बलमहेतुकम् ।
षडेतानिनिवर्त्तन्तेषड्भिर्मासैर्मरिष्यतः ॥ ५ ॥

जिस मनुष्यके भक्ति, शील (स्वभाव) स्मृति, त्याग, बुद्धि और बल यह विनाही कारणसे बदलजायँ उस मनुष्यकी छः महीनेके भीतर मृत्यु होतीहै ॥ ५ ॥

धमनीनामपूर्वाणाजालमत्यर्थशोभनम् ।
ललाटेदृश्यतेयस्यषण्मासान्नसजीवति ॥ ६ ॥

जिस मनुष्यके ललाटपर अपूर्व और सुन्दर नसोंका जाल दिखाई देने लगताहै वह मनुष्य छ॰ महीनेमें मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥

लेखाभिश्चन्द्रवक्राभिर्ललाटमुपचीयते ।
यस्यतस्यायुष षड्भिर्मासैरन्तसमादिशेत् ॥ ७ ॥

जिस मनुष्यके मस्तकमें चन्द्रमाके समान एक ऊंची रेखासी उठखडी हो वह मनुष्य छः महीनेमें मरजाताहै ॥ ७ ॥

शरीरकम्प संमोहोगतिर्वचनमेवच ।
मत्तस्येवोपलक्ष्यन्तेयस्यमासंनजीवति ॥ ८ ॥

जिस मनुष्यका शरीर कांपने लगजाय और महोशी उत्पन्न होजाय तथा चलने और बोलनेकी गति बिगडजाय वह मनुष्य एक महीनेमें मृत्युको प्राप्त होताहै ॥८॥

रेतोमूत्रपुरीषाणियस्यमज्जन्तिचाम्भसि ।
समासात्स्वजनद्वेष्टामृत्युवारिणिमज्जति ॥ ९ ॥

जिस मनुष्यका वीर्य, मूत्र और मल जलमें डूबजाताहै और अपने मित्रोंको भी द्वेषभावसे देखने लगताहै वह मनुष्य एक महीनेमें मृत्युको प्राप्त होजाताहै ॥ ९ ॥

हस्तपादमुखश्चोभौनिशेषायस्यशुष्यत ।
शूयेतेवाविनादेहात्सचमासनजीवति ॥ १० ॥

जिस मनुष्यके हाथ, पाव, मुख यह विशेषकर सूखजायँ अथवा इनमें सूजन उत्पन्न होजाय परन्तु वह सूजन और देहमें न हो वह मनुष्य एक महीनेमें मृत्युको प्राप्त होजाताहै ॥ १० ॥

ललाटेमूर्ध्निवस्तौवानीलायस्यप्रकाशते ।
राजीबालेन्दुकुटिलानसजीवितुमर्हति ॥ ११ ॥

जिस मनुष्यके ललाट और मूर्धा (शिर) तथा वस्तिमें बालचद्रमाके समान नीले रगकी और टेढी रेखा उत्पन्न होजायँ वह मनुष्य अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥

प्रवालगुटिकाभासायस्यगात्रेमसूरिका ।
उत्पाद्याशुविनश्यन्तिनचिरात्सविनश्यति ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें मूगेके वर्णवाली गोल मसूरिका (शीतला) बहुतसी निकल आवे और वह जल्दी सूखे नहीं तो वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

ग्रीवावमर्दोबलवाञ्जिह्वाश्वयथुरेवच ।
ब्रध्नास्यगलपाकश्चयस्यपक्वतमादिशेत् ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यकी गर्दनमें अत्यत पीडा होती हो तथा जीभ सूजजाय, बर्वे निकल आवे गला पकजाय वह मनुष्य अवश्यही शरीरके अतको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥

सभ्रमोऽतिप्रलापोऽतिभेदोऽस्थ्नामतिदारुण' ।
कालपाशपरीतस्यत्रयमेतत्प्रवर्तते ॥ १४ ॥

जो रोगी कालरूपी फासीसे बधजाताहै उसको भ्रम, प्रलाप, और हड्डियोंका फूटना यह तीनोंही अति दारुणरूपसे प्रगट होजाते है ॥ १४ ॥

प्रमुह्यल्लुञ्चयेत्केशान्परान्गृह्णात्यतीवच ।
नर स्वस्थवदाहारमबल कालचोदित' ॥ १५ ॥

जो मनुष्य बेहोशीको प्राप्त होकर अपने केशोंको उखाडता है तथा अन्य मनुष्योंसे लिपट जाताहै एव रुग्णावस्थामें भी रोगरहित मनुष्योंके समान बहुत भोजन करताहै वह क्षीण मनुष्य अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

समीपेचक्षुषो कृत्वामृगयेताङ्गुलीयकम् । स्मयतेऽपिचकालान्धऊर्द्ध्वाक्षोऽनिमिषेक्षण ॥ १६ ॥ शयनाद्वसनादङ्गात्काष्ठात्कुड्यादथापिवा । असन्मृगयतेकिञ्चित्समुह्यन्कालचोदित' ॥ १७ ॥

जो रोगी अपने हाथोंकी अगुलियोंको नेत्रोंके समीप लेजाकर उनको वारवार देखे और विस्मितके समान ऊपरको नेत्र करके किसी विचित्र अवस्थाको देखे तथा पलक न झपके अथवा अपनी शय्यामें वा अगोंमें अथवा किसी काष्ठ या दिवार आदिमें जैसे किसी खोयी हुई वस्तुको ढूढा करते है इस तरह वारवार टटोले और बेहोश होजाय वह मनुष्य कालका प्रेरा हुआ जानना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥

अहास्यहसनोमुह्यन्प्रलेढिदशनच्छदौ ।
शीतपादकरोच्छ्वासोयोनरोनसजीवति ॥ १८ ॥

जो रोगी विना ही कारण हसे, विना ही किसी कारणके वेहोश होजाय तथा अपने दांतोंको और होठोंको जीभसे चाटे, जिसके हाथ और पाव ठण्डे हों तथा जो दीर्घ श्वास लेता हो वह मनुष्य अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥

आह्वायन्तसमीपस्थस्वजनजनमेववा ।
महामोहावृतमनाःपश्यन्नपिनपश्यति ॥ १९ ॥

जो रोगी अपने समीप वैठेहुए वान्धवोंको भी अमुक कहा हैं अमुक कहा हैं इस प्रकार बुलावे और मनके महामोहावृत होनेके कारण देखता हुआ भी न देखे अथवा अपने पास वैठे हुए वान्धवोंको भी न देखकर महामोहसे व्याकुल हो और वारवार बुलावे वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

अयोगमतियोगवाशरीरेमतिमान्भिषक् ।
खादीनायुगपद्दृष्ट्वाभेपजनावचारयेत् ॥ २० ॥

जिस रोगीके शरीरमें पाचभौतिक पदार्थोंको हीन देखे अथवा अत्यंत वढे देखे उसकी चिकित्सा न करे ॥ २० ॥

अतिप्रवृद्ध्यारोगाणामनसश्चवलक्षयात् ।
वासमुत्सृजतिक्षिप्रंशरीरीदेहसज्ञकम् ॥ २१ ॥

रोगोंके अत्यंत वढकर वलवान् होनेसे, मन और वलके क्षीण हो जानेसे जीव देहरूपी घरको छोडकर शीघ्र वाहर होजाताहै ॥ २१ ॥

वर्णस्वरावग्निवलवागिन्द्रियमनोवलम् ।
हीयतेऽसुक्षयेनिद्रानित्याभवतिवानवा ॥ २२ ॥

जब मनुष्यके वर्ण, स्वर, अग्नि, वल, वाणी, इन्द्रिय और मन इनका वल क्षीण होजाताहै तव वह मनुष्य यातो अधिक सोना ही रहताहै अथवा जागताही रहता है तव इस मनुष्यके प्राण शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ २२ ॥

भिपग्भेपजपानान्नगुरुमित्रद्विपश्चये ।
वशगा सर्वएवैतेवोऽब्दया समवर्त्तिन ॥ २३ ॥

जो मनुष्य-वैद्य, औषधि, अन्न, पान, माता, पिता आदि गुरुजन, और मित्र आदिकोंसे द्वेप करने लगते है कालवश हुए इस प्रकारके मनुष्य एक वर्षके भीतर मृत्युको प्राप्त होजाते हैं ॥ २३ ॥

एतेपुरोगःक्रमतेभेषजंप्रतिहन्यते ।
नैषामन्नानिभुञ्जीतनचोदकमपिस्पृशेत् ॥ २४ ॥

इस प्रकार असाध्य रोगियाको औषध नहीं देना चाहिये और न इनके अन्न और जलका स्पर्श करना चाहिये ॥ २४ ॥

पादाःसमेताश्चत्वारःसम्पन्नाःसाधकैर्गुणैः ।
व्यर्थागतायुषोद्रव्याद्विनानास्तिगुणोदय ॥ २५ ॥

यदि एकत्रित औषध, वैद्य, परिचारक, रोगी यह सब चिकित्साके चारों पाद साधकगुणोंसे सपन्न भी हों तो भी आयुरहित मनुष्यकी चिकित्सा करना वृथा है। जैसे–औषधके विना गुण नहीं रह सकता उसी प्रकार आयुके विना चिकित्सा भी निष्फल है ॥ २५ ॥

परीक्ष्यमायुर्भिषजानीरुजस्यातुरस्यच ।
आयुर्वेदफलंकृत्स्नमायुर्देह्यनुवर्त्तते ॥ २६ ॥

वैद्यको चाहिये कि रोगी तथा नीरोग मनुष्यके आयुकी परीक्षा करके ही चिकित्सा करे। क्योंकि सपूर्ण आयुर्वेदका फल आयु ही है। वह आयु देहके आधीन है इसलिये रोगीका देह तथा आयुकी परीक्षा कर चिकित्साम प्रवृत्त होना चाहिये ॥ २६ ॥

तत्रश्लोकः ।

क्रियापथमतिक्रान्ताःकेवलदेहमाप्लुता ।
चिह्नकुर्वतियद्दोपास्तदरिष्टनिरुच्यते ॥ २७ ॥

इति चरकसहितायामिन्द्रियस्थानेऽणुज्योतीयमिन्द्रियं समाप्तम् ॥११॥

यहा अध्यायके उपसहारमें श्लोक है–कि वातादि दोष क्रियामार्गसे अतिक्रान्त हों अर्थात् चिकित्सा द्वारा सिद्ध होनेवाले न रहकर केवल शरीरमें प्राप्त होकर जिन लक्षणोंको करते हैं उनको अरिष्ट कहते हैं । अर्थात् अवश्य मृत्यु करनेवाले लक्षणोंको अरिष्ट कहते हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० इन्द्रियस्थाने भा० टी० अणुज्योतीयमिन्द्रिय नामैकादशोऽध्याय ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्याय ।

अथातो गोमयचूर्णीयमिन्द्रियं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेय ।

अब हम गोमयचूर्णीय नामक इन्द्रियाध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

यस्यगोमयचूर्णाभंचूर्णंमूर्द्धनिजायते ।
सस्नेहंभ्रश्यतेचैवमासान्तंतस्यजीवितम् ॥ १ ॥

जिस रोगीके मस्तकमें गोबरके चूर्णके समान (चूर्णसा) उत्पन्न होजाय तथा वह चूर्ण चिकनाई युक्त होकर झडे तो उस रोगीका जीवन एक महीनेके भीतर नष्ट होजाताहै ॥ १ ॥

निर्घर्षन्निवय पादौच्युतांस परिधावति ।
विकृत्यानसलोकेऽस्मिंश्चिरवसतिमानव ॥ २ ॥

जिस रोगीको अपने दोनों पाव आपसमें घिसतेहुएसे भागते प्रतीत होते हों और दोनों कंधे या छातीके अंश ढीले पडकर गिरेहुएसे प्रतीत हों वह मनुष्य इस विकृतिसे मनुष्यलोकमें अधिक नहीं रहसकता ॥ २ ॥

यस्यस्नातानुलिप्तस्यपूर्वंशुष्यत्युरोभृशम् ।
आर्द्रेषुसर्वगात्रेषुसोऽर्द्धमासनजीवति ॥ ३ ॥

जिस मनुष्यके स्नान करनेपर अथवा चंदनादि लेपन करनेपर संपूर्ण अंग गीले रहते हुए भी छाती झटपट सूखजाय वह मनुष्य पंद्रह दिनके भीतरमें मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥

यमुद्दिश्यातुरंवैद्य संवर्त्तयितुमौषधम् ।
यतमानोनशक्नोतिदुर्लभंतस्यजीवितम् ॥ ४ ॥

जिस रोगीकी योग्य वैद्योंसे अनेक प्रकार चिकित्सा कराई जानेपर भी औषधियें अपना कुछ गुण न करसकें उस मनुष्यका जीवन दुर्लभ ही जानना चाहिये॥४॥

विज्ञातंबहुशःसिद्धंविधिवच्चावचारितम् ।
नसिध्यत्यौषधंयस्यनास्तितस्यचिकित्सितम् ॥ ५ ॥

जिन औषधियोंको अनेक रोगियोंपर अनेक प्रकारसे अनुभव करचुके हैं और व तत्काल फल दिखाने वाली हों उन औषधियोंसे योग्य वैद्य विधिपूर्वक अनेक प्रकार जिसकी चिकित्सा करे उनसे भी उसको किंचित् लाभ न पहुंचे तो उस रोगीक चिकित्साही नहीं है ॥ ५ ॥

आहारमुपयुञ्जानोभिषजासूपकल्पितम् ।
यःफलंतस्यनाप्नोतिदुर्लभंतस्यजीवितम् ॥ ६ ॥

जिस रोगीको वैद्यकशास्त्रके अनुसार विधिवत् पथ्य आहार दिया जावे और उस पथ्यका कुछ भी फल न होकर विपरीत गुण उत्पन्न होवे उस रोगीका जीवन दुर्लभ जानना चाहिये ॥ ६ ॥

दूताधिकारेवक्ष्यामोलक्षणानिमुमूर्षताम् ।
यानिदृष्ट्वाभिषक्प्राज्ञःप्रत्याख्येयादसंशयम् ॥ ७ ॥

अब दूतपरीक्षा वर्णन करते हैं । इस दूताधिकारमें मरनेवाले रोगियोंके लक्षणोंको दूतको देखनेसेही जानकर रोगीको प्रत्याख्येय (चिकित्सा न करनेयोग्य) कह सकताहै ॥ ७ ॥

मुक्तकेशोऽथवानग्नोरुदत्यप्रयतेऽथवा ।
भिषगभ्यागतंदृष्ट्वादूतंमरणमादिशेत् ॥ ८ ॥

यदि दूत शिरके बालोंको छोडाये हुए, नगेशिर, अथवा नगा, हाथसे अपने मुखपर पवन करता हुआ, अपवित्र अवस्थामें वैद्यको बुलाने आवे तो उसको देखकर रोगी मरजावेगा ऐसा समझ लेवे ॥ ८ ॥

सुप्तेभिषजि ये दूताश्छिन्दत्यपिचभिन्दति ।
आगच्छन्तिभिषक्तेषांनभर्त्तारमनुव्रजेत् ॥ ९ ॥

यदि वैद्य सो रहा हो, अथवा कुछ काट रहा हो या कुछ छेदन कर रहा हो उस समय जो दूत वैद्यको बुलाने आवे तो उसके मालिककी चिकित्सा करने नहीं जाना चाहिये ॥ ९ ॥

जुह्वत्यग्नितथापिण्डपितृभ्योनिर्वपत्यपि ।
वैद्येदूतायआयान्तितेघ्नन्तिप्रजिघांसव ॥ १० ॥

जब वैद्य अग्निमें हवन कररहाहो अथवा पितरोंके अर्पण श्राद्ध कररहाहो तो ऐसे समय यदि रोगीका दूत बुलाने आवे तो जानलेना चाहिये कि यह दूत रोगीके प्राणोंका नाशक है ॥ १० ॥

कथयत्यप्रशस्तानिचिन्तयत्यथवापुन. ।
वैद्येदूतामनुष्याणामागच्छन्तिमुमूर्षताम् ॥ ११ ॥

यदि वैद्य किसी प्रकारकी अशुभ बातें कररहा हो अथवा किसी प्रकारकी चिंतामें मग्न हो तो उस समय जो किसी रोगीका दूत आवे तो वह दूत रोगीके मृत्युका पूर्वरूप जानना ॥ ११ ॥

मृतदग्धविनष्टानिभजतिव्याहरत्यपि ।
अप्रशस्तानिचान्यानिवैद्येदूतामुमूर्षताम् ॥ १२ ॥

जब वैद्य किसी मरी अथवा जली या नष्ट हुई वस्तुके विषयमें शोचता हो अथवा उसी विषयमें कुछ कार्य करता हो या अन्य किसी निंदित कर्मकी वातचीत कररहा हो उस समय रोगीका दूत वैद्यको बुलाने आवे तो वह रोगीके मृत्युका कारण होताहै

विकारसामान्यगुणेदेशकालेऽथवाभिषक् ।
दूतमभ्यागतदृष्ट्वानातुरंतमुपाचरेत् ॥ १३ ॥

अथवा रोगके समान गुणवाले देश, कालमें अर्थात् जिस प्रकृतिका रोगी हो उस रोगको बढानेवालाही देश और काल हो तो ऐसे समयमें यदि रोगीका दूत वैद्यको बुलाने आवे तो वैद्यको उस समय उसकी चिकित्सा करनेके लिये नहीं जाना चाहिये ॥ १३ ॥

दीनभीतद्रुतत्रस्तांमलिनामसतींस्त्रियम् ।
त्रीन्व्याकृतांश्चपण्डाश्चदूतान्विद्यान्मुमूर्षताम् ॥ १४ ॥

यदि वैद्यको बुलाने रजस्वला अथवा व्यभिचारिणी, मलिन, दीन, भयभीत स्त्री अथवा तीन स्त्रियें मिलकर या जल्दी २ भागीहुई स्त्रियें बुलाने आवें अथवा बुलानेके लिये तीन दूत इकठे होजाय, या विकृत अंगवाला दूत हो अथवा नपुंसक दूत बुलाने आवे तो वैसे दूतोंको देखकर रोगीकी मृत्यु जानना चाहिये ॥ १४ ॥

अङ्गव्यसनिनदूतलिङ्गिनंव्याधितंतथा ।
सम्प्रेक्ष्यचोग्रकर्माणनवैद्योगन्तुमर्हति ॥ १५ ॥

यदि वैद्यको बुलानेके लिये अंगहीन अथवा कोई सन्यास आदिका चिह्न धारणकिये या रोगी अथवा किसी विकट कर्मको करनेवाला रोगीका दूत आवे तो ऐसे दूतको देखकर वैद्यको चिकित्सा करनेके लिये जाना उचित नहीं ॥ १५ ॥

आतुरार्थमनुप्राप्तखरोष्ट्रमथवाहनम् ।
दूतदृष्ट्वाभिषग्विद्यादातुरस्यपराभवम् ॥ १६ ॥

यदि दूत वैद्यको बुलानेके लिये गधा, ऊट आदि निंदित, सवारियोंपर चढकर आवे तो ऐसे दूतको देखकर वैद्य रोगीके मरणको जान लेवे ॥ १६ ॥

पलालवुपमासास्थिकेशलोमनखद्विजान् । मार्जनींमुसलशूर्पमुपानद्भर्मविच्युते ॥ १७ ॥ तृणकाष्ठतुषाङ्गारंस्पृशन्तोलोष्टभस्मच ।
तत्पूर्वदर्शनेदूताव्याहरन्तिमुमूर्षताम् ॥ १८ ॥

जब रोगीका दूत वैद्यको बुलाने आवे और वह आतेही पहिले पराली, तुष, मास हड्डी, केश, लोम, नख, दांत, झाड, मूसल, सूप (छाज), जूता अथवा जूतेका टूटाहुआ चमडा, घास, लकडी, किसी प्रकारके अन्नका छिलका या अंगार, मिट्टीका डला अथवा पत्थरका स्पर्श करे या इनके ऊपर हाथ रक्खे तो ऐसे दूतको देखतेही रोगीका मरण जान लेना चाहिये ॥ १७ ॥ १८ ॥

यस्मिंश्चदूतेब्रुवतिवाक्यमातुरसंश्रयम् ।
पश्येन्निमित्तमशुभंतंश्चनानुव्रजेद्भिषक् ॥ १९ ॥

यदि वैद्य दूतसे रोगीके सम्बधमें बातचीत करतेहुए अशुभ शकुनोंको देखे तो उस दूतके साथमें नहीं जाना चाहिये ॥ १९ ॥

यथाव्यसनिनंप्रेतंप्रेतालङ्कारमेववा। भिन्नदग्धविनष्टवातद्वादीनिवचांसिवा ॥ २० ॥ रसोवाकटुकस्तीव्रोगन्धोवाकौणपोमहान् । स्पर्शोवाविपुल.क्रूरोयद्वान्यदशुभभवेत् ॥ २१ ॥ तत्पूर्वमभितोवाक्यवाक्यकालेथवा पुन । दूतानाव्याहृतश्रुत्वाधीरोमरणमादिशेत् ॥ २२ ॥

जब दूत वैद्यके पास बुलानके लिये आवे और वैद्यसे रोगीके सम्बधमें कुछ बातचीत करना चाहे तो उसी समय वैद्यके समीप बात करनेसे प्रथमही किसी व्यसन अथवा प्रेतकी बात चलपडे अथवा कटेहुए, जलेहुए या किसी नष्ट हुएके विषयकी बात चलपडे। अथवा कडुए और तीव्ररस तथा मुर्देकी दुर्गंध या किसी दुष्ट और क्रूर वस्तुका स्पर्श होजाय या अन्य किसी प्रकारका अशुभ हो अथवा कोई सर्प बिच्छू आदि क्रूर जानवर दिखाई दे जायँ तो यह अशुभ शकुन दूतके आनेके समय या दूतसे बातचीत करनेसे प्रथम अथवा दूतसे बोलते समय वा दूतकी बात सुननेके अनन्तर हो जाय तो बुद्धिमान् रोगीके मरणको कथन करे अर्थात् ऐसी अवस्थामें रोगीको मरनेवाला जानकर दूतके साथ न जावे ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

इतिदूताधिकारोऽयमुक्त कृत्स्नोमुमुर्षताम् ।
पथ्यातुरकुलानाञ्चवक्ष्याम्यौत्पातिकं पुन. ॥ २३ ॥

इसप्रकार मरनेवाले रोगियोंके विषयमें सपूर्णरूपसे दूताधिकार वर्णन करदिया गया है। अब मरनेवाले रोगीको देखनेके लिये जातेहुए मार्गमें होनेवाले तथा रोगीके घरमें होनेवाले अशुभ उत्पातोंका वर्णन करतेहैं ॥ २३ ॥

अवक्षुतमथोत्क्रुष्टस्खलनपतनतथा। आक्रोश·सप्र

धोविगर्हणम् ॥ २४ ॥ वस्त्रोष्णीषोत्तरासङ्गश्छत्रोपानद्युगाश्रयम् । व्यसनदर्शनञ्चापिमृतव्यसनिनंतथा ॥ २५ ॥

जब वैद्य रोगीको देखनेके लिये चले तो रास्तेमें सामनेसे छींक होना अथवा अशुभ किलकारीका सुनना या पावका स्खलन होना अथवा ठोकर खाकर गिरजाना या चिघाड वा गालीका सुनना या चोट लगना या चलतेहुए कोई रोके अथवा आगेसे कोई ताडना करे या कोई मनुष्य आगेसे कपडा, पगडी, चद्दर, छतरी, जूता आदि मृतशय्याका सामान लिये मिले अथवा इनमेंसे किसी एक वस्तुको भी लेकर मिले या रास्तेमें किसी प्रकारके व्यसनका दर्शन हो अथवा किसी मरेहुए मनुष्यका रोदन आदि सुनाई पडे या लाश दिखाई देवे तो रोगीको देखनेके लिये नहीं जाना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

चैत्यध्वजपताकानाचूर्णानापतनानिच । हतानिष्टप्रवादाश्चदर्शनं भस्मपांसुभिः ॥ २६ ॥ पथच्छेदोविडालेनशुनासर्पेणवापुन । मृगद्विजानांक्रूराणागिरोदीप्तादिशप्रति ॥ २७ ॥ शयनासनयानानामुत्तानानाप्रदर्शनम् । इत्येतान्यप्रशस्तानिसर्वाण्याहुर्मनीषिणः ॥ २८ ॥

अथवा बौद्धोंका मन्दिर या देवस्थान देववृक्ष या ध्वजा, पताका वा चूना रास्तेमें गिराहुआ हो या गिरताहुआ दिखाईदे किसीकी मारनेकी अथवा अन्य प्रकारकी अनिष्ट आवाज सुनाई दे वा रास्तेमें राख या धूल उडती हो या बिल्ली, कुत्ता अथवा साप वैद्यके आगे रास्ता काटकर निकलजावें या मृग अथवा पक्षियोंका सूर्यके सन्मुख क्रूर शब्द करना अथवा शय्या, आसन, यान, रास्तेमें उलटे पडे देखना इत्यादि सब प्रकारके अशुभोंको बुद्धिमान् वैद्य रोगीको देखनेके लिये जाते समय अशुभ शकुन कहतेहैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

एतानिपथिवैद्येनपश्यतातुरवर्त्मनि ।
शृण्वताचनगन्तव्यतदागारविपश्चिता ॥ २९ ॥

वैद्य मार्गमें इस प्रकारके अशुभ शकुनोको देखकर अथवा अशुभ-शब्दोंको सुनकर रोगीके घरको न जावे ॥ २९ ॥

इत्यौत्पातिकमाख्यातपथिवैद्यविगर्हितम् ।
इमामपिचबुध्येतगृहावस्थासुमूर्षताम् ॥ ३० ॥

इसप्रकार रोगीको देखने जातेहुए मार्गमें होनेवाले अशुभ उत्पातोंका वर्णन क

दियागया है। अब रोगीके घर पहुचनेपर जो मरनेवालेके उत्पात होतेहैं उनको भी श्रवण करो॥ ३०॥

प्रवेशेपूर्णकुम्भाग्निमृद्बीजफलसर्पिषाम्। नृपब्राह्मणरत्नानांदेवतानांविनिर्गतिम्॥ ३१॥ अग्निपूर्णानिपात्राणिभिन्नानिविशिखानि च। भिषङ्मुमूर्षतावेश्मप्रविशन्नेवपश्यति॥ ३२॥

जब वैद्य रोगीके घरम प्रवेश करे उस समय रोगीके घरसे जलका भरा कलश अग्नि, मृत्तिका, फल, बीज, घृत, थेल, ब्राह्मण, रत्न और देवता आदिको बाहर निकलते देखे तथा उसके घरके पात्रोंको अग्निसे भरेहुए, फूटेहुए, विना गलेके देखे तो समझे कि इस रोगीका मरण होनेवालाहै॥ ३१॥ ३२॥

छिन्नभिन्नविदग्धानिभग्नानिमृदितानिच।
दुर्बलानिचसेवन्तेमुमूर्षोर्वेश्मिकाजनाः॥ ३३॥

अथवा रोगीके घरके मनुष्य—छिन्न, भिन्न (फूटे टूटे) जलेहुए, फटेहुए, मलिन और दुर्बल वस्त्र आदि अशुभ द्रव्याको धारण किये बैठे हों एव अशुभ शब्दोंको करते हों तो रोगीका मृत्यु समीप जानना॥ ३३॥

शयनवसनयानगमनभोजनरुतम्।
श्रूयतेऽमङ्गलयस्यनास्तितस्यचिकित्सितम्॥ ३४॥

जिस रोगीकी शय्या विछाते समय, वस्त्र पहिनाते समय अथवा बैठते, उठते, चलते, फिरते, भोजनकरते सब समय रोनेकी अथवा अशुभ आवाज आती हो उस रोगीकी कोई चिकित्सा नहीं है॥ ३४॥

शयनंवसनंयानमन्यद्वापिपरिच्छदम्।
प्रेतवद्यस्यकुर्वन्तिसुहृद प्रेतएवस॥ ३५॥

जिस रोगीके सुहृद्गण सोना, बैठना, उठना, वस्त्रपहिनाना, वा अन्य सब कर्म मरे हुएके समान करते हों उसको मराही जानना चाहिये॥ ३५॥

अन्नंव्यापद्यतेऽत्यर्थंज्योतिश्चैवोपशाम्यति।
निवातेसेन्धनयस्यतस्यनास्तिचिकित्सितम्॥ ३६॥

जिस रोगीके लिये पथ्य आदि बनाते हुए किसी न किसी प्रकारका अशुभ उपद्रव होजाय जिससे पथ्य बननेमें कोई विघ्न होजाय तथा विनाही पवनके लगे लकडी आदि रहते हुए भी अग्नि बुझजाय अथवा तेल वत्ती रहतेहुए भी विनाही कारण दीपक बुझजाय उस रोगीकी चिकित्सा नहीं है अर्थात् वह मरजानेवाला है॥ ३६॥

प्राणा.समुपतप्यन्तेविज्ञानमुपरुध्यते । वमन्तिबलमङ्गानिचेष्टा व्युपरमन्तिच ॥ ४४॥ इन्द्रियाणिविनश्यन्तिखिलीभूतेवचेतना । औत्सुक्यभजतेसत्त्वचेतोभीराविशत्यपि ॥ ४५ ॥ स्मृतिस्त्यजति मेधाचह्रीश्रियौचापसर्पत । उपप्लवन्तेपाप्मानओजस्तेजश्चनश्यति ॥ ४६ ॥

जैसे-प्राणोंको उपताप हो, ज्ञान नष्ट हो जाय, अग बलहीन होजायँ, सपूर्ण चेष्टा जातीरहे, इन्द्रिय नष्ट होजायँ, चैतन्यता जाती रहे, मन व्याकुल होजाय चित्त भयातुर होजाय, स्मृति जाती रहे तथा मेधा, काति, लज्जा यह सब नष्ट होजायँ उपद्रवरूपी पापोंका प्रवेश हो, ओज और तेज सब नष्ट होजायँ यह सब यमलोक जानेवाले मनुष्योंके लक्षण होते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

शीलव्यावर्त्ततेऽत्यर्थंभक्तिश्चपरिसर्पते । विक्रियन्तेप्रतिच्छाया-श्छायाश्चविकृतिगता ॥ ४७ ॥ शुक्रप्रच्यवतेस्थानादुन्मार्गभजतेऽनिल ।क्षयमासानिगच्छन्तिगच्छत्यसृगुपक्षयम् ॥ ४८ ॥ ऊष्माण प्रलययान्तिविश्लेषयान्तिसन्धय । गन्धाविकृततायान्ति भेदवर्णस्वरौतथा॥ ४९ ॥ वैरस्यंभजतेकाय कायश्छिद्रविशु‍ष्यति । धूम.सञ्जायतेमूर्ध्निदारुणाख्यश्चचूर्णक ॥ ५० ॥

स्वभाव अत्यत बिगडजाय, भक्ति जातीरहे, छाया और प्रतिच्छायामें विकारयुक्त लक्षण होनेलगे अथवा स्थानसे वीर्य गिरताहो वायु अपने स्थानोंको छोड उल्टे मार्गोंसे गमन करने लगजाय, मास क्षीण होजाय, रक्त नष्ट होजाय, शरीरकी गरमी शान्त होजाय, सपूर्ण सधिय ढीली पडजायँ, गधमे विकृति होजाय, वर्ण और स्वर बिगडजायँ, शरीर विरस होजाय, सपूर्ण शरीरमें छिद्रोंकी उत्पत्ति होजाय अथवा शरीरके छिद्र सूखजायँ, मस्तकसे धुआसा निकले और मस्तकपर गोबरके चूर्णके समान दारुण चूर्णसा उत्पन्न होजाय यह सब शरीर त्याग करनेवाले रोगियोंके लक्षण है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

सततस्पन्दनादेशा शरीरेयेऽभिलक्षिता । तेस्तम्भानुगता.सर्वेन चलन्तिकथश्चन ॥ ५१ ॥ गुणा शरीरदेशानाशीतोष्णमृदुदारुणा । विपर्य्यासेनवर्त्तन्तेस्थानेष्वन्येपुलद्विधा ॥ ५२ ॥ नखेपुजायते पुष्पपङ्कोदन्तेपुजायते । जटा पक्ष्मसुजायन्तेसीमन्ताश्चापिमूर्द्ध-

नि ॥ ५३ ॥ भेषजानिनसंवृत्तिंप्राप्नुवन्तितथारुचिम् । यानिचा-
प्युपपद्यन्तेतेषांवीर्य्यंनसिध्यति ॥५४॥ नानाप्रकृतयःक्रूराविका-
राविविधौषधाः ॥ ५५ ॥

शरीरके कई भागोंमें फडकन उत्पन्न होजाय अथवा शरीरके कई स्थान सोयेहुएसे सुन्न रहजायँ, हृदयकी गति अथवा धमनीकी गति बंद होजाय, या देहके सब अंगोंका स्तंभ होकर हिलने चलनेसे बंद होजायँ, शरीरके सब अंगोंकी शीतलता गरमी, नरमाई, कठोरपन यह सब विपरीत भावको प्राप्त होजायँ, अपने २ स्थानोंके गुणोंको छोड देवें । दूसरे अंगोंमें अन्य प्रकारके गुण उत्पन्न होजायँ, नखोंपर फुलडियेंसी पडजायँ, दांतोंपर कीचसा जमजाय, पलकोंकी जटेंसी बंधजायँ, शिरके केशोंमें अपूर्व भौरियेंसी पडजायँ, जिन औषधियोंको लेने जाय वह न मिलें अथवा अपना गुण न करें या उनके अनुरूप क्रिया न होसकें तथा जो औषधियोंके द्वारा साध्य न हों ऐसे अनेक प्रकारके उपद्रव होजायँ । अथवा जिनमें अनेक प्रकारकी अलभ्य औषधियोंकी आवश्यकता पडे इस प्रकारके भयंकर और विरोधी विकार उत्पन्न होजायँ तो ऐसे लक्षणवाले रोगी प्रायः अवश्यही कालके मुखमें पडनेवाले होतेहैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

क्षिप्रसमभिवर्त्तन्तेप्रतिहत्यबलौजसी । शब्दःस्पर्शोरसोरूपगन्ध-
श्चेष्टाविचिन्तितम् ॥ ५६ ॥ उत्पद्यन्तेऽशुभान्येवप्रतिकर्मप्रवृत्ति
षु । दृश्यन्तेदारुणाःस्वप्नादौरात्म्यमुपजायते ॥ ५७ ॥ प्रेष्याः
प्रतीपतांयान्तिप्रेताकृतिरुदीर्य्यते । प्रकृतिर्हीयतेऽत्यर्थंविकृतिश्चा-
भिवर्द्धते ॥ ५८ ॥

रोगीके शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध, और चेष्टा तथा अपकर्म यह सब अपनी २ शीघ्र गतिसे प्रवृत्त होजायँ जिससे रोगीका बल और ओज नष्ट होजाय । चिकित्सा करनेके लिये प्रवृत्त होनेके समय अनेक प्रकारके अशुभ उपद्रव उत्पन्न होजायँ तथा खोटे, दारुण स्वप्न दिखाई देनेलगें । और रोगी सबसे विनाही कारण द्वेष करनेलगे तथा प्रेष्य (नौकर चाकर) सब प्रतिकूल होजायँ, रोगीके सब लक्षण मरेहुएके समान होजायँ, शरीरके सब स्वभाव बिगडजायँ, वैकारिक स्वभाव उत्पन्न होजायँ । इ सब मृत्युके ग्रास होनेवाले रोगियोंके लक्षण होतेहैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

कृत्स्नमौत्पातिकंघोरमरिष्टमुपलक्ष्यते ।
इत्येतानिमनुष्याणांभवन्तिविना ९ ॥

तथा सपूर्ण लक्षण घोर उत्पातकेसे होने लगजायँ । यह सपूर्ण लक्षण विनाशको प्राप्त होनेवाले मनुष्योंके होतेहै ॥ ५९ ॥

लक्षणानियथोद्देशयान्युक्तानियथागमम् । मरणायेहरूपाणिपश्यतापिभिषग्विदा ॥ ६० ॥ अपृष्टेननवक्तव्यमरणप्रत्युपस्थितम् । पृष्टेनापिनवक्तव्यतत्रयत्रोपघातकम् ॥ ६१ ॥ आतुरस्यभवेद्दुःखमथवान्यस्यकस्यचित् । अध्रुवमरणंयस्यनैनमिच्छेच्चिकित्सितुम् । यस्यपश्येद्विनाशायलिङ्गानिकुशलोभिषक् ॥ ६२ ॥

यह सपूर्ण लक्षण शास्त्रानुकूल और अपने उद्देश्यके अनुसार कथन करदियेगये हैं। इन मरणव्यापक रूपोंको देखतेहुए भी विनापूछे वैद्यको किसीके पास नहीं कहना चाहिये। और पूछनेपर भी यह अवश्य मरजायगा इस प्रकार नहीं कहना चाहिये और खासकर जिस जगह रोगी और रोगीके घरवाले हों उस स्थानमे तो कहनाही नहीं चाहिये क्याकि ऐसा खोटाशब्द कहनेसे रोगीको अत्यत दुःख होताहै और उसके घरवालोंमे भी व्याकुलता उत्पन्न होजाती है। जब वैद्य किसीको मरनेके लक्षणोंवाला देखे तो कहदे कि इस समय हम इसकी चिकित्सा नहीं करसकते परन्तु यह कभी न कहे कि यह मरजायगा क्योंकि यदि दैवयोगसे वह बचजाय तो वैद्यको बडीभारी हानि पहुचती है इसलिये कुशलवैद्य अपने मुखसे रोगीके पास या रोगियोंके सबधियोंके पास उसके मरणकी बात न कहे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

साध्यरोगीके लक्षण ।

लिङ्गेभ्योमरणाख्येभ्योविपरीतानिपश्यता । लिङ्गान्यारोग्यमागन्तुवक्तव्यभिषजाध्रुवम् ॥ ६३ ॥ दूतैरौत्पातिकैर्भावैःपथ्यातुरकुलाश्रयैः । आतुराचारशीलेष्टद्रव्यसम्पत्तिलक्षणैः ॥ ६४ ॥

जिस रोगीके कोई लक्षण उपरोक्त लक्षणोंमेंसे न हों अर्थात् ऊपर कहेहुए सब अशुभ लक्षणोंसे विपरीत शुभ लक्षण दिखाई देते हों तथा अन्य किसी प्रकारके उत्पात न होते हों एव दूतसंबधी वा मार्गसबधी, कुलसबन्धी, पथ्यसबन्धी किसी प्रकारके अशुभ लक्षण न हों तथा रोगीके आचार, स्वभाव, इन्द्रियादि द्रष्टव्य विषय और शारीरिक सपत्ति इन सबके शुभ लक्षण हों तो वह रोगी अवश्य नीरोग होजाताहै ऐसा वैद्यको कहना चाहिये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

स्वाचारंहृष्टमव्यङ्ग्यशस्यशुक्लवाससम् । अमुण्डमजटदूतंजातिवेशक्रियासमम् ॥ ६५ ॥ अनुष्ट्रखरयानस्थमसन्ध्यास्वग्रहेषुच ।

अद्रारुणेपुनक्षत्रेष्वनुग्रेषुध्रुवेषुच ॥ ६६ ॥ विनाचतुर्थीनवमींविनारिक्ताश्चतुर्दशीम् । मध्याह्नश्चार्द्धरात्रश्चभूकम्पराहुदर्शनम् ॥६७॥

यदि दूत शुद्ध आचारवाला, प्रसन्न, सर्वांग सपन्न, यशस्वी, श्वेत वस्त्रोंको धारण किये न शिर मुंडा और न जटोंवाला, अपनी जातिके अनुकूल वेष और क्रियावाला हो तथा गधे, ऊंट आदि सवारियों पर न चढा हो, सध्याके समय अथवा क्रूरसमयमें न आया हो, खोटे नक्षत्रमें, उग्रनक्षत्रोंमें ध्रुवसज्ञक नक्षत्रोंमें (ज्येष्ठा, मूल, आदि उग्रनक्षत्र एव उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढा आदि नक्षत्रोंके उदयमें) न आया हो तथा चतुर्थी नवमी, चतुर्दशी इन रिक्ता तिथियोंमें मध्याह्नके समय अथवा आधीरात्रिमें जब भूकम्प होरहा हो उस समय तथा ग्रहणकालमें न आया हो तो वह दूत शुभ जानना ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

विनादेशमशस्तञ्चशस्तौत्पातिकलक्षणम् ।
दूतप्रशस्तमव्यग्रंनिर्दिशेदागतंभिषक् ॥ ६८ ॥

तथा वेसमय, निन्दितस्थानमें और निन्दित वस्तुओंको बिनाछुए, उत्पातके लक्षणोंके विना शुभ समयमें शुभदेशमें शुद्ध चित्तवाला दूत यदि वैद्यको बुलाने आवे तो उत्तम जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

दध्यक्षतद्विजातीनावृषभाणांनृपस्यच । रत्नानापूर्णकुम्भानांसितस्यतुरगस्यच ॥ ६९ ॥ सुरध्वजपताकानाफलानांयाचकस्यच । कन्यानांवर्द्धमानानावद्धस्यैकपशोस्तथा ॥ ७० ॥ पृथिव्याउद्धृतायाश्चवह्ने प्रज्वलितस्यच । मोदकानासुमनसाशुक्लानाचन्दनस्यच ॥७१॥ मनोज्ञस्यान्नपानस्यपूर्णस्यशकटस्यच । नृभिर्धेन्वाः सवत्सायावडवायाःस्त्रियास्तथा ॥ ७२ ॥

रोगीके घरको जाते समय वैद्यको दही, अक्षत, ब्राह्मण, बैल, राजा, रत्न, जलके भरेघट, सफेद घोडा, आगे मिलें अथवा इन्द्रधनुष, ध्वजा, पताका, फल, याचक, बढनेवाली कन्या, बंधाहुआ पशु, खुदीहुई भूमि प्रज्वलित अग्नि, मोदक, सफेदफूल सफेद चंदन, मनोज्ञ अन्नपान और मनुष्योंसे भराहुआ शकट [illegible]) बछडेवाली [illegible] को आगे किये मनुष्य, बच्चेवाली घोडी, लडकेको [illegible] स्त्री इन [illegible] मिलना रोगीकी आरोग्यताके लिये शुभ होताहै [illegible] ॥ ७२ ॥

जीवञ्जीवकसिद्धार्थसारसप्रियवादिन [illegible] ञ्त

'पाणाशिखिनातथा ॥ ७३ ॥ मत्स्याजाद्विजशखानाप्रियङ्गू-
नाघृतस्यच । रोचिष्फादर्शसिद्धानारोचनायाश्चदर्शनम् ॥ ७४ ॥

तथा जीवन्तीशाक, जीवक, सफेद सरसों अथवा सारस पक्षी, चकोर चातक, हस, शतपत्र (खटकनडहिया पक्षी, या गुलाबके फूल अथवा शतपत्री कमल) नीलकण्ठ, मोर, मछली बकरी, श्वेतवस्त्रोंको धारणकिये ब्राह्मण, शख, प्रियगु, घृत, नमक, दर्पण, सिद्ध, गोरोचन इनका दर्शन होना रोगीको आरोग्य करनेवाला शुभ लक्षण जानना ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

गन्ध सुरभिवर्णश्चसुशुक्लोमधुरोरस' । मृगपक्षिमनुष्याणाप्रशस्ता-
श्चगिर.शुभा ॥ ७५ ॥ छत्रध्वजपताकानामुत्क्षेपणमभिष्टुति. ।
भेरीमृदङ्गशंखानाशव्दा'पुण्याहनिस्वना ॥ ७६ ॥ वेदाध्ययनश-
व्दाश्चसुखोवायु प्रदक्षिण । पथिवेश्मप्रवेशेतुविद्यादारोग्यलक्ष-
णम् ॥ ७७ ॥

सुगंधित पदार्थ, सुन्दर वर्णवाले श्वेत पदार्थ, मीठे रस, मृग, पक्षी और मनुष्योंकी शुभवाणी, छत्र, ध्वजा और पताकाका ऊपरको उठाना, भेरी और मृदंग आदिका शब्द, शखध्वनि, पुण्याहवाचन आदिका मधुरस्वर, वेदाध्ययनका शब्द, सुन्दर सुखदायी दहिनी ओरका पवन यह सब शकुन वैद्यको रोगीके घरको जातेहुए या रोगीके घरमें प्रवेश करते हुए होना रोगीकी आरोग्यताका लक्षण जानना चाहिये ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

मङ्गलाचारसम्पन्न सातुरोवैश्मिकोजन । श्रद्दधानोऽनुकूलश्चप्रभू-
तद्रव्यसग्रह. ॥ ७८ ॥ धनैश्वर्य्यसुखावाप्तिरिष्टलाभ सुखेनच ।
द्रव्याणातत्रयोग्यानायोजनासिद्धिरेवच ॥ ७९ ॥

रोगीके घरमें सपूर्ण मनुष्य मगलाचारसे सपन्न हों और सब श्रद्धावान् हों और अनुकूल हों तथा चिकित्साके उपयोगी सब द्रव्य विधिवत् सग्रह किये हों और रोगी भी शुभगुण सपन्न हो एव धन, ऐश्वर्य, सुख इनसे सपन्न हो और जिस वस्तुकी उस जगह इच्छा कीजाय वह सुखपूर्वक झट प्राप्त होसकती हो ऐसे स्थानमें वैद्य योग्य औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करे तो शीघ्र सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

गृहप्रासादशैलानानागानावृषभस्यच ।-हयानापुरुषाणाञ्चस्वप्ने·

समधिरोहणम् ॥ ८० ॥ सोमार्काग्निद्विजातीनांगवान्नृणायशस्विनाम् । अर्णवानाप्रतरणंवृद्धिःसम्बाधनिःसृति ॥ ८१ ॥

जो रोगी स्वप्नमें घर, महल, पर्वत, हाथी, बैल, अथवा घोडेके ऊपर चढे तथा चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण और गौको देखे एव यशस्वी पुरुषोंसे मिलाप करे, समुद्रको तैरकर पार हो किसी बडे भारी सकटमसे छूटे तो अवश्य आरोग्यताको प्राप्त होताहै ॥ ८० ॥ ८१ ॥

स्वप्नेदेवै सपितृभि प्रसन्नैश्चाभिभाषणम् । दर्शनशुक्लवस्त्राणाहृदस्यविमलस्यच ॥ ८२ ॥ मासमत्स्यविषामेध्यच्छत्रादर्शपरिग्रह । स्वप्नेसुमनसाश्चैवशुक्लानादर्शनशुभम् ॥ ८३ ॥

एव स्वप्नमें देवता और पितरगणोको प्रसन्न देखना और प्रसन्नतापूर्वक भाषण सुनना, सफेद वस्त्रोंका देखना, निर्मल तालावका देखना, मास, मछली, विष और अपवित्र वस्तुओंको, तथा छत्री और दर्पणको ग्रहण करना, सफेद फूलोंको देखना यह स्वप्न रोगीके लिये शुभकारक होतेहैं ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

अश्वगोरथयानश्चयानंपूर्वोत्तरेणच ।
रोदनपतितोत्थानद्विपताश्चावमर्दनम् ॥ ८४ ॥

इसी प्रकार घोडा, गौ, और रथमें चढना तथा उनपर चढकर पूर्व या उत्तरकी दिशामें जाना, रोना, और शत्रुको जीतना यह सब स्वप्न शुभकारक होतेहैं ॥ ८४ ॥

रोगमुक्तलक्षण ।

सत्त्वलक्षणसयोगाभक्तिर्वैद्यद्विजातिषु ।
साध्यत्वनचनिर्वेदस्तदारोग्यस्यलक्षणम् ॥ ८५ ॥

अब रोग मुक्तके लक्षणोंको कहते है । मन प्रसन्न होना, शरीरमें चैतन्यता प्रतीत होना, वैद्य और ब्राह्मणोमे भक्ति होना, रोगमें साध्यता उत्पन्न होकर शरीरमें किसी प्रकारकी पीडा या ग्लानि न होना यह आरोग्यताके लक्षण हैं। अर्थात् जब मनुष्य रोगसे छूटकर आरोग्य होजाताहै तब उसके यह लक्षण होतेहै ॥ ८५ ॥

आरोग्याद्बलमायुश्चसुखश्चलभतेमहत् ।
इष्टांश्चाप्यपरान्भावान्पुरुष शुभलक्षणः ॥ ८६ ॥

आरोग्य होनेसे मनुष्य बल आयु तथा महान् सुखके लाभको प्राप्त होताहै । तथा अन्य भी उत्तम २ भावोंको वह शुभलक्षण पुरुष प्राप्त होताहै ॥ ८६ ॥

तत्रश्लोकः ।

उक्तंगोमयचूर्णीयेमरणारोग्यलक्षणम् ।
दूतस्वप्नातुरोत्पातयुक्तिसिद्धिव्यपाश्रयम् ॥ ८७ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि, इस गोमयचूर्णीय नामक अध्यायमें रोगीके मरनेके और आरोग्यताके लक्षणोंका कथन कियागयाहै तथा दूत और स्वप्न और उत्पात तथा वैद्यकी सिद्धिके आश्रित लक्षणोंका कथन कियागयाहै ॥ ८७ ॥

भवतिचात्र ।

इतीदमुक्तंप्रकृतंयथातथातदन्ववेक्ष्यसततंभिषग्विदा ।
तथाहिसिद्धश्चयशश्चशाश्वतंससिद्धकर्मालभतेधनानिच ॥ ८८ ॥

इति चरकसंहितायामिन्द्रियस्थानं समाप्तम् ॥

यहां यह श्लोक है कि, इस इन्द्रियस्थानमें जो संपूर्ण तत्त्व जिसप्रकार मनुष्यकी प्रकृति और विकृतिके विषयमें वर्णन कियागयाहै । वैद्यलोगोंको यह सब जिस २ प्रकार वर्णन कियागया है उसको जानकर इन संपूर्ण लक्षणोंको देखना चाहिये । इस प्रकार करनेसे वैद्यको सिद्धि और स्वच्छ यश तथा धनकी प्राप्ति होतीहै और वह सिद्धकर्मा होजाताहै ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायामिन्द्रियस्थाने टकसालनिवासिप० रामप्रसाद वैद्योपाध्यायविरचित-प्रसादनामकभाषाटीकायां गोमयचूर्णीयमिन्द्रियं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा ।

मनुजनके जीवन मरण, विषयक पूरण ज्ञान ॥
जानाचाहैं भिषक जो, पढलें इन्द्रिय स्थान ॥ १ ॥
द्वादश अध्यायन विषे, ऋषिजन वाक्य विचार ॥
सो प्रसादनीयुत भयो, तिलकित भलेप्रकार ॥ २ ॥
वैद्यजननको चाहिये, राखैं नित निज ध्यान ॥
ऋषिप्रणीत इस तंत्रमें, पूरण पञ्चमस्थान ॥ ३ ॥

॥ इतीन्द्रियस्थानं पञ्चमम् ॥

जाहिरात ।

क्रय्य पुस्तकें-(वैद्यकग्रन्थाः) ।

नाम

रसमजरी-भाषाटीकासहित सर्वप्रकारके रस बनाने और धातु फूकनेकी क्रिया

शुभसंततियोगप्रकाश-भाषाटीकासमेत-कई ग्रन्थोंके आधारसे यह लोकोपकारक ग्रन्थ निर्माण कियागयाहै इसके अनुसार वर्ताव करनेसे शरीर बलवान् होकर सन्ततिभी सदृढ और सतेज पैदा होगी

तिब्बअकबर-हकीम अकबर अलीखा लिखित देवीप्रसाद जीसे हिन्दी भाषामें अनुवादित छब्बीस अध्यायमें शिरसे पैरतक स्त्री पुरुष लडके आदिके सपूर्ण रोगोंकी उत्पत्ति निदान कारण स्वरूप लक्षण और यूनानीमतसे एक २ रोगोंपर सैकडों औषधियोंका उपचार (चिकित्सा) वर्णित है अपूर्व ग्रथ वैद्यमात्रोंको उपयोगी है

* * आरोग्यशिक्षा-प०मुरलीधर शर्मा राजवैद्य सकलित

शरीरपुष्टिविधान-अर्थात् शरीरके सदा हृष्ट पुष्ट बलिष्ठ होनेकी विधि जिसमें प्रकीर्णाध्याय क्षीणाध्याय नपुसकाध्याय जराध्याय समही ताध्यायादिमें निदान और चिकित्सा पाकादि प्रकरण है

„ „ तथा छोटा गुटका

अजीर्णतिमिरभास्कर-भाषामें चौबे बयाखूबरामप्रसादकृत

डाक्टरीचिकित्सासार-सक्षिप्त डाक्टरी निघटु

डाक्टरीचिकित्सार्णव-प्रत्येक रोगोंका डाक्टरीमतसे और साथ २ देशी वैद्यकमतसे नाम लक्षण रोग निदान और उपाय आदि लिखेगये है डाक्टरी सीखनेको यह पुस्तक परमोपयोगी है

वैद्यकरसराजमहोदधि-प्रथमभाग भाषामें मुन्शी भगवानप्रसादके शिष्य भगत भगवानदास कृत यूनानी हिकमत यूनानी दवा फकीरोंकी जडी बूटी और सन्तोंके पुस्तकोंका सग्रह है „